श्रम समस्यायें

एवं

समाज कल्याण

लेखक

आर० सी० सक्सेना

एम०ए०, बी०ए० (आनर्स) पी०-एच०डी०

प्रोफेसर तथा अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग,

मेरठ कालिज मेरठ।



जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी

पुस्तक प्रकाशक

मेरठ।

प्रकाशक
कान्तीलाल गुप्ता
व्यवस्थापक
जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी
मेरठ ।

प्रथम संस्करण, सितम्बर १९५०
द्वितीय संस्करण, सितम्बर १९५९

मूल्य [illegible]

मुद्रक ।
नवयुग प्रेस
बाबू गेट
मेरठ कैन्ट ।

परमपूज्य पिताजी

स्वर्गीय प्रोफेसर विश्वेश्वरचरणलाल

को

सादर समर्पित

प्रथम हिन्दी संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक 'लेबर प्रोब्लम्स एण्ड सोशल वेलफेयर' नामक मेरी अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा ही अब अधिकाधिक रूप में शिक्षा का माध्यम होती जा रही है। विद्यार्थियों अध्यापकों तथा अन्य पाठकों की यह निरन्तर माँग रही है कि मैं अपनी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित करूँ। अंग्रेजी पुस्तक की लोकप्रियता के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। आठ वर्षों में ही उसके आठ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और सभी क्षेत्रों में इसका काफ़ी स्वागत किया गया है। इसके लिए मैं विद्यार्थीगण अध्यापकों विभिन्न समाचारपत्रों व पत्रिकाओं और प्रमुख व्यक्तियों (जैसे स्व० डा० एल० सी० जैन) तथा श्री० वी० वी० गिरि, राज्यपाल केरल का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी अंग्रेजी पुस्तक की प्रशंसा की है। मैं आशा करता हूँ कि मेरी हिन्दी पुस्तक भी वैसी ही उपयोगी सिद्ध होगी जैसी इस विषय की मेरी अंग्रेजी पुस्तक सिद्ध हुई है।

अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करने में हिन्दी के प्रमाणिक व उपयुक्त शब्दों की समस्या प्रायः सामने आती है। इस पुस्तक में यथासम्भव मैंने उन शब्दों का प्रयोग किया है जो कि भारत सरकार की पारिभाषिक शब्दावली की अर्थशास्त्र विशेषज्ञ समिति ने स्वीकार किए हैं, जिसका मैं कई वर्षों से सदस्य भी हूँ।

इस पुस्तक के अनुवाद में मुझे काफी समय लगा है। बीच-बीच में अंग्रेजी पुस्तक के संस्करण की माँग के कारण मैं अनुवाद के कार्य की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाया हूँ। यह हिन्दी संस्करण कुछ शीघ्रता में ही प्रकाशित किया जा रहा है। इस कारण इस संस्करण में कहीं-कहीं त्रुटियाँ आ गई हैं जो ठीक नहीं हो पाई हैं। मुझे आशा है कि पाठकगण इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। अगले संस्करण में भाषा, शब्दावली तथा छपाई की जो भी त्रुटियाँ होंगी उन्हें दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

इस संस्करण की तैयारी और अनुवाद में मुझे अनेक व्यक्तियों का सहयोग मिला है तथा सहायता प्राप्त हुई है। इस सम्बन्ध में श्रीमती कोकिला सक्सेना श्री सुरेन्द्र सिंघल तथा कुमारी प्रीति सक्सेना के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त श्री संतोषकुमार गुप्ता श्री हर्षकुमार जैन श्री पी० के० जैन श्री राजेन्द्र पाठक श्री सुरेश पाठक श्री राजेन्द्र कंसल श्री राजकुमार त्यागी श्री परमहंस लाल मेहता तथा श्री राजकुमार गुप्ता ने भी अनेक रूपों में सहायता की है। श्रीमती मधुर सक्सेना कुमारी हेम सक्सेना श्री अमराजनारायण तथा अरुण अंजली व इन्दु का सहयोग भी प्रशंसनीय रहा है। मैं इन सबका आभारी हूँ।

मेरठ
दिसम्बर, १९६०

आर० सी० सक्सेना

परमपूज्य पिताजी

स्वर्गीय प्रोफेसर विश्वेश्वरचरणलाल

को

सादर समर्पित

प्रकाशक :
कान्तीलाल गुप्ता
व्यवस्थापक
जय प्रकाश नाथ एण्ड कम्पनी
मेरठ।

प्रथम संस्करण, दिसम्बर १९६०
द्वितीय संस्करण, दिसम्बर १९६१

मूल्य

मुद्रक :
नवयुग प्रेस
साबू लेन
मेरठ कैम्प।

परमपूज्य पिताजी

स्वर्गीय प्रोफेसर विश्वेश्वरचरणलाल

को

सादर समर्पित

द्वितीय हिन्दी संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक के प्रथम हिन्दी संस्करण का स्वागत विद्यार्थियों तथा अध्यापकों द्वारा उसी प्रकार हुआ जिस प्रकार इस विषय पर मेरी अंग्रेजी पुस्तक का स्वागत हो रहा है। इसके लिए मैं विद्यार्थियों अध्यापकों तथा विद्वानों का अत्यन्त आभारी हूँ। उनके सुझावों के अनुसार पुस्तक के इस संस्करण में स्थान-स्थान पर पारिभाषिक शब्दों के साथ-साथ अंग्रेजी के शब्द भी दे दिए गए हैं। इस संस्करण में भी मैंने यथासम्भव उन शब्दों का प्रयोग किया है जो कि भारत सरकार की अर्थशास्त्र विषयक पारिभाषिक शब्दावली तैयार करने वाली विशेषज्ञ समिति ने स्वीकार किए हैं जिसका कई वर्षों से मैं सदस्य हूँ।

पुस्तक के इस द्वितीय संस्करण में कई स्थानों पर पूर्ण रूप से संशोधन किया गया है और श्रम क्षेत्र में जो भी हाल के वर्षों में परिवर्तन हुए हैं उनका तथा श्रम से सम्बन्धित नवीनतम तथ्यों तथा आंकड़ों का समावेश किया गया है। तीसरी पंचवर्षीय आयोजना का भी संक्षेप में वर्णन किया गया है तथा पंचवर्षीय आयोजनाओं में श्रम नीति तथा श्रम सम्बन्धी सुझावों पर प्रकाश डाला गया है। कुछ महत्वपूर्ण विषयों (उदाहरणतः श्रमिक प्रबन्ध अनुशासन संहिता आचरण संहिता, शिकायत निवारण क्रियाविधि प्रबन्ध में श्रमिकों का हाथ आदि) का उल्लेख परिशिष्ट 'ग' में किया गया है। आशा है प्रस्तुत संस्करण पाठकों के लिए पहले से अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

इस संस्करण की तैयारी में मुझे अपने शिष्य श्री बी० मिश्र तथा मुद्रक श्री जे० मिश्र से काफी सहायता मिली है जिसके लिए मैं उनका आभारी हूँ।

मेरठ

सितम्बर, १९६२ — आर० सी० सक्सेना

अंग्रेजी पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका

श्रम आज का एक मुख्य विषय है। औद्योगिक प्रणाली और देश के भावी आयोजित विकास के लिए श्रम की महत्ता को सबने स्वीकार किया है परन्तु इस विषय पर काफी अस्पष्टता है। प्रकाशित सूचनाओं की बहुलता के कारण कई बार जनता में श्रम-समस्याओं को ठीक-ठीक समझने के स्थान पर भ्रम ही उत्पन्न हो जाता है। अतः विभिन्न श्रम-समस्याओं को स्पष्ट रूप से समझने की अत्यधिक आवश्यकता है।

भारतवर्ष के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में श्रम-समस्यायें एवं समाज कल्याण अध्ययन का विषय है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में अधिकतर विद्यार्थी इस विषय का अध्ययन कर रहे हैं। एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता काफी समय से अनुभव की जाती रही है जिसमें श्रम-समस्याओं के विषय में विस्तारपूर्वक सूचनायें सभी विचार तथा तथ्य और आंकड़े प्राप्त हो सकें। इस विषय पर जो कुछ साहित्य मिलता भी है वह या तो सरकार द्वारा प्रकाशित बड़ी-बड़ी रिपोर्टें हैं अथवा श्रम विषय के विभिन्न रूपों पर विशिष्ट अध्ययन हैं। साधारण छात्रों के लिए, विशेषकर पढ़ाई के साथ-साथ नौकरी भी करने वाले छात्रों के लिए, ऐसी रिपोर्टों और साहित्य को पाना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप विद्यार्थी या तो अध्यापक से प्रार्थना करते हैं कि कक्षा में कुछ नोट्स दे दिए जायें अथवा परीक्षा के दृष्टिकोण से अपना अध्ययन कुछ विशेष प्रश्नों तक ही सीमित रखते हैं। इस प्रकार श्रम समस्याओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं किया जाता।

प्रस्तुत पुस्तक इस कठिनाई को दूर करने के लिए ही लिखी गई है। पुस्तक में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि श्रम-विषय से सम्बन्धित तथ्य और विचारों को उचित दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जा सके। इस बात की ओर विशेष ध्यान रखा गया है कि पुस्तक की विषय सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाए कि विद्यार्थियों को श्रम-समस्याओं पर विचार करने और अधिक अध्ययन करने की प्रेरणा मिले। महत्वपूर्ण समस्याओं के सैद्धान्तिक आधार का भी विवेचन किया गया है। अतः मैं इस बात का दावा नहीं करता कि इस पुस्तक में कोई मौलिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। जो भी तथ्य और विचार दिए गए हैं वे विभिन्न रिपोर्टों पत्रिकाओं, समाचारपत्रों तथा विषय से सम्बन्धित विशिष्ट व ख्यातिप्राप्त लेखकों के लेखों और पुस्तकों से लिए गए हैं। सत्य तो यह है कि स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए तैयार किए गए नोट्स के आधार पर इस पुस्तक को तैयार किया गया है। अतः कई स्थानों पर सरकारी रिपोर्टों तथा ख्यातिप्राप्त लेखकों के लेखों का पुस्तक

प्रथम हिन्दी संस्करण की भूमिका

प्रस्तुत पुस्तक 'लेबर प्रोब्लम्स एण्ड सोशल वेलफेयर' नामक मेरी अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। अनेक भारतीय विश्वविद्यालयों में हिन्दी भाषा ही अब अधिकाधिक रूप में शिक्षा का माध्यम होती जा रही है। विद्यार्थियों अध्यापकों तथा अन्य पाठकों की यह निरन्तर मांग रही है कि मैं अपनी अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी संस्करण भी प्रकाशित करू। अंग्रेजी पुस्तक की लोकप्रियता के विषय में मुझे कुछ नहीं कहना है। आठ वर्षों में ही उसके आठ संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं और सभी क्षेत्रों में इसका काफी स्वागत किया गया है। इसके लिए मैं विद्यार्थीगण अध्यापकों विभिन्न समाचारपत्रों व पत्रिकाओं और प्रमुख व्यक्तियों (जैसे स्व० डा० एस० सी० जैन) तथा वी० वी० वी० गिरि राज्यपाल केरल का आभारी हूँ जिन्होंने मेरी अंग्रेजी पुस्तक की प्रशंसा की है। मैं आशा करता हूं कि मेरी हिन्दी पुस्तक भी वैसी ही उपयोगी सिद्ध होगी जैसी इस विषय की मेरी अंग्रेजी पुस्तक सिद्ध हुई है।

अंग्रेजी पुस्तक का हिन्दी अनुवाद करने में हिन्दी के प्रमाणिक व उपयुक्त शब्दों की समस्या प्राय: सामने आती है। इस पुस्तक में यथासम्भव मैंने उन शब्दों का प्रयोग किया है जो कि भारत सरकार की पारिभाषिक शब्दावली की अर्थशास्त्र विशेषज्ञ समिति ने स्वीकार किए हैं, जिसका मैं कई वर्षों से सदस्य भी हूं।

इस पुस्तक के अनुवाद में मुझे काफी समय लगा है। बीच-बीच में अंग्रेजी पुस्तक के संस्करण की मांग के कारण मैं अनुवाद के कार्य की ओर अधिक ध्यान नहीं दे पाया हूं। यह हिन्दी संस्करण कुछ शीघ्रता में ही प्रकाशित किया जा रहा है। इस कारण इस संस्करण में कहीं-कहीं त्रुटियां आ गई हैं जो ठीक नहीं हो पाई हैं। मुझे आशा है कि पाठकगण इसके लिए मुझे क्षमा करेंगे। अगले संस्करण में भाषा, शब्दावली तथा छपाई की जो भी त्रुटियां होंगी उन्हें दूर करने का प्रयत्न करूंगा।

इस संस्करण की तैयारी और अनुवाद में मुझे अनेक व्यक्तियों का सहयोग मिला है तथा सहायता प्राप्त हुई है। इस सम्बन्ध में श्रीमती कोकिला सक्सेना श्री सुरेन्द्र सिंघल तथा कुमारी प्रीति सक्सेना के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त श्री संतोषकुमार गुप्ता श्री हर्षकुमार जैन श्री पी० के० जैन श्री राजेन्द्र पाठक श्री सुरेश पाठक श्री राजेन्द्र कंसल श्री राजकुमार त्यागी श्री परमहंस लाल मेहता तथा श्री राजकुमार गुप्ता ने भी अनेक रूपों में सहायता की है। श्रीमती मधुर सक्सेना कुमारी हेम सक्सेना श्री बलराजनारायण तथा अरुण मधुसी व इन्दु का सहयोग भी प्रशंसनीय रहा है। मैं इन सबका आभारी हूं।

मेरठ

दिसम्बर, १९६०

आर० सी० सक्सेना

अंग्रेजी पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका

श्रम आज का एक मुख्य विषय है। औद्योगिक प्रणाली और देश के भावी आयोजित विकास के लिए श्रम की महत्ता को सबने स्वीकार किया है, परन्तु इस विषय पर काफी अस्पष्टता है। प्रकाशित सूचनाओं की बहुलता के कारण कई बार जनता में श्रम-समस्याओं को ठीक-ठीक समझने के स्थान पर भ्रम ही उत्पन्न हो जाता है। अतः विभिन्न श्रम-समस्याओं को स्पष्ट रूप से समझने की अत्यधिक आवश्यकता है।

भारतवर्ष के लगभग सभी विश्वविद्यालयों में श्रम-समस्यायें एवं समाज कल्याण अध्ययन का विषय है। स्नातकोत्तर कक्षाओं में अधिकतर विद्यार्थी इस विषय का अध्ययन कर रहे हैं। एक ऐसी पुस्तक की आवश्यकता काफी समय से अनुभव की जाती रही है जिसमें श्रम-समस्याओं के विषय में विस्तारपूर्वक सूचनायें सभी विचार तथा तथ्य और आंकड़े प्राप्त हो सकें। इस विषय पर जो कुछ साहित्य मिलता भी है वह या तो सरकार द्वारा प्रकाशित बड़ी-बड़ी रिपोर्टें हैं अथवा श्रम विषय के विभिन्न रूपों पर विशिष्ट अध्ययन हैं। साधारण छात्रों के लिए, विशेषकर पढ़ाई के साथ-साथ नौकरी भी करने वाले छात्रों के लिए, ऐसी रिपोर्टों और साहित्य को पाना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप विद्यार्थी या तो अध्यापक से प्रार्थना करते हैं कि कक्षा में कुछ नोट्स दे दिए जायें अथवा परीक्षा के दृष्टिकोण से अपना अध्ययन कुछ विशेष प्रश्नों तक ही सीमित रखते हैं। इस प्रकार श्रम समस्याओं का गम्भीरतापूर्वक अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं किया जाता।

प्रस्तुत पुस्तक इस कठिनाई को दूर करने के लिए ही लिखी गई है। पुस्तक में इस बात का प्रयत्न किया गया है कि श्रम विषय से सम्बन्धित तथ्य और विचारों को उचित दृष्टिकोण से प्रस्तुत किया जा सके। इस बात की ओर विशेष ध्यान रक्खा गया है कि पुस्तक की विषय सामग्री को इस प्रकार प्रस्तुत किया जाए कि विद्यार्थियों को श्रम-समस्याओं पर विचार करने और अधिक अध्ययन करने की प्रेरणा मिले। महत्वपूर्ण समस्याओं के सैद्धान्तिक आधार का भी विवेचन किया गया है। अतः मैं इस बात का दावा नहीं करता कि इस पुस्तक में कोई मौलिक सामग्री प्रस्तुत की गई है। जो भी तथ्य और विचार दिए गए हैं वे विभिन्न रिपोर्टों पत्रिकाओं समाचारपत्रों तथा विषय से सम्बन्धित विशिष्ट व ख्यातिप्राप्त लेखकों के लेखों और पुस्तकों से लिए गए हैं। सत्य तो यह है कि स्नातकोत्तर कक्षाओं के लिए तैयार किए गए नोट्स के आधार पर इस पुस्तक को तैयार किया गया है। अतः कई स्थानों पर सरकारी रिपोर्टों तथा ख्यातिप्राप्त लेखकों के लेखों का पुस्तक

में उपयोग किया गया है। (अंग्रेजी की पुस्तक परिशिष्ट 'D' में ऐसी सभी किताबों की सूची दी गई है जिनसे इस किताब के लिखने में सहायता मिली है।) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन के प्रकाशन रॉयल श्रम आयोग तथा श्रम अनुसन्धान समिति की रिपोर्ट, 'इण्डियन लेबर ईयर बुक्स' डा० राधाकमल मुकर्जी की पुस्तक 'इण्डियन वर्किंग क्लास' तथा श्री ए० एन० अग्रवाल की पुस्तक "इण्डियन लेबर प्रोब्लम्स" का विशेष रूप से इस सम्बन्ध में उल्लेख किया जा सकता है। मैं इन सभी प्रकाशनों तथा अन्य पुस्तकों के प्रति जिनका नाम सूची में दिया गया है अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ। इंगलैंड की श्रम समस्याओं के लिए मैसर्स जी० डी० एच० कोल तथा रिचर्डसन की पुस्तकें बहुत उपयोगी सिद्ध हुई हैं।

श्रम-समस्याओं में रुचि मुझे १६३१ से ही रही है जब अपने बड़े भाई श्री एच० सी० सक्सेना आर० ए० एस० के निर्देशन में जो उस समय पंजाब विश्वविद्यालय लाहौर में लेक्चरार थे, मैंने इस विषय को एम० ए० में लिया था। उसके पश्चात् पिछले कई वर्षों से स्नातकोत्तर कक्षाओं को यह विषय पढ़ाने, तथा श्रम-विषयों पर अनुसंधान का पर्यवेक्षण करने के कारण इस विषय पर मेरी रुचि सदा बनी रही है। उत्तर भारत के अधिकांश औद्योगिक और खनिज क्षेत्रों को स्वयं देखने का मुझे अवसर मिला है। अतः मैंने इस पुस्तक में कोई ऐसी बात नहीं लिखी है जो मेरे व्यक्तिगत अध्ययन पर आधारित न हो या जिसमें मुझे पूर्ण विश्वास न हो।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे कई विद्यार्थियों जैसे सर्वश्री गोपीचन्द हिलन, वीरेश्वर त्यागी ओ पी० कुकरेजा आर० डी० जैन पी० डी० शर्मा आदि ने कई रूपों में सहायता की है। इन सबको मैं धन्यवाद देता हूँ प्रो० पी० सी० माथुर, प्रो० ए एस० गर्ग और प्रो० एस० के० मुकर्जी के सहयोग तथा डा० के के० शर्मा ने इस पुस्तक में जो रुचि दिखाई है उसके लिए मैं अपना आभार प्रदर्शित करता हूँ प्रो० नन्दलाल भटनागर, अध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग मेरठ कालिज का आभार प्रकट करने के लिए मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं हैं। इस किताब को लिखने का विचार सर्वप्रथम प्रो० भटनागर ने ही दिया था और इस वर्ष तो उनका यह 'आदेश' मिल गया था कि मैं इस किताब को पूर्ण कर दूं। उनके स्नेह और प्रोत्साहन के कारण ही यह पुस्तक लिखी जा सकी है।

मेरठ
जनवरी १६५२

आर० सी० सक्सेना

विषय-सूची

अध्याय पृष्ठ

अध्याय पृष्ठ

अध्याय पृष्ठ

"मैं इस विचार का हृदय से समर्थन करता हूँ कि कोई भी ऐसी आयोजना जिसके अन्तर्गत देश के कच्चे माल का उपयोग तो होता है परन्तु अधिक सम्भाव्य शक्तिशाली मानव शक्ति की अवहेलना होती है एकपक्षीय आयोजना है और देश के मनुष्यों में परस्पर समानता लाने के लिए सहायक सिद्ध नहीं हो सकती।

—महात्मा गांधी

"किसान और मजदूर राष्ट्र की रीढ़ हैं।"

—श्री जगजीवन राम

"जब कि सम्पूर्ण राज्य यह प्रयत्न कर रहा है कि जनता के साथ उचित न्याय हो तब राज्य यह सहन नहीं कर सकता कि समाज के दुर्बल वर्ग के व्यक्तियों के साथ—चाहे वे औद्योगिक श्रमिक हों, कृषि श्रमिक हों अथवा किसी अन्य वर्ग के व्यक्ति हों—अन्याय होता रहे।"

—श्री खंडूभाई देसाई

"उद्योग केवल उद्देश्य की पूर्ति का एक साधन है तथा स्वयं उद्योग को उद्देश्य नहीं माना जा सकता। मनुष्य का स्थान सब से प्रथम है। मानव के जीवन को ही—कार्य करते समय भी तथा कार्य न करते हुए भी—वास्तव में सबसे अधिक महत्ता देनी चाहिए, विशेषकर ऐसे देश में जो प्रजातन्त्र का दम भरता है।"

—प्रिंस फिलिप ड्यूक आफ एडिनबरा

"अर्थशास्त्री सदैव इस बात पर बल देते हैं कि श्रम ही वह स्रोत है जिससे सब धन उत्पन्न होता है। प्रकृति के बाद श्रम का ही स्थान है। प्रकृति श्रम को सामग्री प्रदान करती है और श्रम द्वारा इस सामग्री को धन में परिवर्तित कर दिया जाता है। परन्तु श्रम युग-युगान्तर से इससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण रहा है। मानव के अस्तित्व का मूल आधार श्रम ही है और वह भी इस सीमा तक कि यह भी कहा जा सकता है कि मानव का निर्माण श्रम द्वारा ही हुआ है।"

—फ्रेडरिक एंजिल्स

मजदूर समितियाँ भारतीय औद्योगिक प्रणाली में एक बहुत उपयोगी कार्य कर सकती हैं।" परन्तु यह १० वर्ष पश्चात् हुआ कि सरकार ने इन समितियों की स्थापना की ओर कदम उठाया। १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम में इस बात की व्यवस्था की गई कि मालिक मजदूर समितियाँ बनाई जायें जिनमें श्रमिकों एवं मालिकों के प्रतिनिधि हों। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि उन सभी औद्योगिक संस्थानों में जिनमें सौ या अधिक श्रमिक काम करते हैं मालिक मजदूर समितियाँ स्थापित करें जिनका उद्देश्य मालिकों व श्रमिकों के बीच नित प्रतिदिन के झगड़ों के कारणों को दूर करना तथा उनके बीच मधुर सम्बन्ध बनाए रखना है। मालिक मजदूर समितियों में मालिक व श्रमिकों को समान प्रतिनिधित्व दिया गया है और श्रमिकों के प्रतिनिधियों का चुनाव श्रमिक संघों के परामर्श से करने का सुझाव है। अधिनियम में मालिक मजदूर समितियों के कार्यों का उल्लेख भी किया गया है। उनका कार्य मालिकों व श्रमिकों के बीच मधुर सम्बन्ध बनाए रखना है और इस ध्येय की प्राप्ति के लिए पारस्परिक मतभेदों को दूर करना एवं पारस्परिक हित के प्रश्नों पर विचार करना है।

अधिनियम में मालिक मजदूर समितियों के उद्देश्यों पर भी जोर दिया गया है। इनका मुख्य उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह मालिकों व श्रमिकों के मध्य पारस्परिक परामर्श का एक मान्यता प्राप्त साधन बन सकें और श्रमिकों में अपने काम के प्रति अधिक रुचि एवं उत्तरदायित्व की भावना पैदा कर सकें तथा जो भी निर्णय सामूहिक सौदाकारी सरकार, श्रम न्यायालय या औद्योगिक न्यायालय के निर्णय के द्वारा हों या उनके द्वारा कोई नियम बनाये गये हों उनको लागू करें। तथा मालिक व मजदूरों के बीच हुई किसी भी गलतफहमी या तनाव को दूर करें। मालिकों के प्रतिनिधि प्रबन्धकों के द्वारा मनोनीत होंगे। श्रमिकों के प्रतिनिधि ऐसे पंजीकृत श्रमिक संघों के द्वारा मनोनीत होंगे जो किसी मान्यता प्राप्त (Recognised) श्रमिकों के संघ से सम्बद्ध (Affiliated) हों। जहाँ कहीं ऐसे सम्बद्ध श्रमिक संघ न हों वहाँ पर श्रमिकों के प्रतिनिधियों का चुनाव उनके सदस्यों में से ही किया जायगा और उनके चुनाव की विधि अधिनियम में दी गई है। मालिक मजदूर समितियों के सविधान कार्य की शर्तें कार्य का ढंग आदि का भी उल्लेख उसमें किया गया है। मालिकों व श्रमिकों के प्रतिनिधियों की संख्या चौदह से अधिक नहीं हो सकती।

उत्तर प्रदेश की सरकार ने १९४८ में इस सम्बन्ध में एक आदेश जारी कर एक अग्रणी कदम उठाया। सर्वप्रथम चीनी के कारखानों में, तत्पश्चात् अन्य कारखानों में एक महीने के अन्दर मालिक मजदूर समितियों की स्थापना करने का आदेश दिया। आदेश में उत्तर प्रदेश सरकार ने कहा कि ऐसे तमाम संस्थानों में जहाँ २०० अथवा अधिक कर्मचारी काम करते हैं, ऐसी समितियाँ बनाई जायें। २०० की यह अधिक संख्या इसलिए रखी गई थी कि सरकार चाहती थी कि प्रारम्भ में मालिक मजदूर समितियाँ केवल बड़ी फैक्ट्रियों में ही स्थापित की जायें। मालिक

मजदूर समितियों की स्थापना करने का उत्तरदायित्व मालिकों पर सौंपा गया। १९४९ में उत्तर प्रदेश में मालिक मजदूर समितियों की संख्या १६१ थी परन्तु उनको १ नवम्बर १९५० से समाप्त कर दिया गया। इसका कारण श्रमिक संघों के मध्य पारस्परिक स्पर्धा थी जिसके परिणामस्वरूप मालिकों के लिए श्रमिकों को प्रतिनिधित्व देना कठिन हो गया और इस प्रकार समितियों का कार्य करना भी कठिन हो गया।

उत्तर प्रदेश सरकार ने पुनः १९५८ में इस बात के लिए आदेश दिए कि उन सभी राज्य संचालित उद्योगों में जिनमें १०० अथवा अधिक कर्मचारी कार्य करते हैं तथा उत्तर प्रदेश सहकारी बैंक सहकारी संघ तथा दुग्ध वितरण यूनियन में मालिक मजदूर परिषदें (Works Councils) बनाई जाएँ। इसके साथ-साथ राज्य स्तर पर एक स्थायी सुलह बोर्ड (Conciliation Board) बनाने की भी व्यवस्था की गई है। इन परिषदों का कार्य एवं विधान मालिक मजदूर समितियों जैसा ही है। यह श्रम-कल्याण सलाहकार समिति के रूप में भी कार्य करेंगी। यदि यह किसी भी विवाद में उचित समझौता कराने में असमर्थ रहती है तब विवाद स्थायी सुलह बोर्ड को विचारार्थ सौंप दिया जाएगा।

अन्य राज्यों तथा केन्द्र में मालिक मजदूर समितियां स्थापित कर दी गई हैं और उन्होंने अच्छा कार्य भी किया है। इसके अतिरिक्त जैसा कि १९४७ के उद्योग सम्मेलन ने सिफारिश की थी कई उद्योगों में उत्पादन व कार्यक्षमता बढ़ाने तथा विवेकीकरण की समस्या पर विचार करने के लिए इकाई उत्पादन समितियों (Unit Production Committees) की भी स्थापना की गई है। १९४६ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम के अन्तर्गत भी बम्बई में संयुक्त समितियों (Joint Committees) तथा उत्पादन समितियों (Production Committees) की स्थापना की गई है और १९५६ में उनकी संख्या क्रमशः ११९ व ४७ थी। मालिक मजदूर समितियों की संख्या बम्बई में २०२ थी। १९६० में केन्द्रीय क्षेत्र में ८ [illegible] मालिक मजदूर समितियां कार्य कर रही थीं।

१९६० में विभिन्न राज्यों में मालिक मजदूर समितियों की संख्या इस प्रकार थी — आंध्र–१ २ असम–९ बिहार–१४६, गुजरात–८६, जम्मू व काश्मीर–६, केरल – ७१ मध्य प्रदेश – ५, मद्रास – २६० महाराष्ट्र – १२५, मैसूर – ११६ उड़ीसा – ६ पंजाब – ११ राजस्थान – ४ उत्तर प्रदेश – २१ पश्चिमी बंगाल – ६२ अण्डमान व निकोबार द्वीप – २ देहली – २५, त्रिपुरा – २५, योग – १८२३। उत्पादन समितियों की संख्या इस प्रकार थी —आंध्र – २४ बिहार – ११ गुजरात – ७६ केरल – ६, मद्रास – ५० महाराष्ट्र – १० मैसूर – ८७ पंजाब– ३६, अण्डमान व निकोबार द्वीप– १ योग–३१२। संयुक्त समितियों की संख्या इस प्रकार थी —बिहार – ९, गुजरात – ८२, केरल – ६, मध्य

प्रदेश – १ महाराष्ट्र – १४० पंजाब – १ पश्चिमी बंगाल – २ देहली – १ योग २१८।

सरकारी क्षेत्र में मालिक मजदूर समितियों के कार्यों का केन्द्रीय मुख्य श्रम आयुक्त द्वारा १९५८–५९ में एक आलोचनात्मक विश्लेषण किया गया था। बम्बई में के० सी० कार्पोरेशन द्वारा भी उसी वर्ष इन समितियों का सर्वेक्षण किया गया। इन सर्वेक्षणों से जो मालिक मजदूर समितियों के कार्यों की कठिनाइयाँ ज्ञात हुईं उन पर जुलाई १९५९ में भारतीय श्रम सम्मेलन के १७ वें अधिवेशन में विचार हुआ। इस सम्मेलन ने इस सम्बन्ध में एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की। इस समिति ने १० नवम्बर १९५९ को मालिक मजदूर समितियों के बनाने के लिए तथा उनके कार्यों के लिए कुछ सूचक नियम (Guiding Principles) बनाए और इन समितियों द्वारा जो कार्य करने चाहिएं और जो नहीं करने चाहिए उनकी भी एक सूची बना दी है।

यह भी उल्लेखनीय है कि रेलों में तथा केन्द्रीय सरकार के विभिन्न मंत्रालयों में संयुक्त रूप से परामर्श करने की व्यवस्था इस उद्देश्य से कर दी गई है कि कर्मचारियों और सम्बन्धित अधिकारियों के मतभेदों को आपस में दूर किया जा सके।

औद्योगिक विवाद और श्रमिकों की आर्थिक स्थिति —

मालिकों और श्रमिकों में निकट और पारस्परिक सम्बन्ध बनाये रखने के लिये शक्तिशाली श्रमिक संघों एवं मालिक मजदूर समितियों के अतिरिक्त औद्योगिक विवादों की रोकथाम करने का एक और उपाय उन कारणों को ही दूर करना है जो विवादों को जन्म देते हैं। इससे अच्छा और कोई तरीका नहीं हो सकता क्योंकि इससे अशांति की समस्या को समूल नष्ट किया जा सकेगा। श्रमिक अपनी कुछ आवश्यक मांगों की पूर्ति हेतु हड़ताल का सहारा लेते हैं। समय-समय पर होने वाली हड़तालों में श्रमिकों में व्याप्त असन्तोष की अभिव्यक्ति मिलती है। हमने औद्योगिक विवादों के कारणों के विवेचन में इस बात की ओर संकेत किया है कि विवादों का एक प्रमुख कारण मजदूरी के प्रश्न से सम्बन्धित है। भारतीय श्रमिक की मजदूरी बहुत कम है। और यह आश्चर्य होता है कि किस प्रकार से यह निर्धन व्यक्ति इस तुच्छ सी राशि में निर्वाह कर पाता है। मालिक अपने लाभ में से श्रमिकों को हिस्सा देने में आनाकानी करते हैं और बोनस देने के प्रश्न पर कई बार झगड़े हुए हैं। अतः इस कारण को दूर करने के लिए श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि की जानी चाहिए। एक न्यूनतम मजदूरी निश्चित होनी चाहिए और लाभ सहभाजन जैसी कुछ योजनाएँ भी प्रारम्भ करनी चाहिएं। इसके अतिरिक्त नौकरी और रोजगार की अवस्थाओं में सुधार करके श्रमिकों में एक प्रकार की सुरक्षा की भावना भी पैदा करनी चाहिए। काम की अवस्थाओं में सुधार, काम के घंटों में कमी आदि की भी आवश्यकता है। बेकारी बीमारी, वृद्धावस्था दुर्घटनाएँ एवं जीवन की अन्य विपदाओं से भी सुरक्षा प्रदान करने के लिए सामाजिक बीमा जैसी योजनाओं की शीघ्र

आवश्यकता है। श्रमिकों के लिए कल्याणकारी कार्यों की व्यवस्था उनके बच्चों के लिए शिक्षा और आवास की व्यवस्था में सुधार करने की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। जब तक यह सुधार नहीं किये जाते और श्रमिक यह अनुभव नहीं करते कि वह उत्पादन के केवल मात्र साधन न होकर मानव प्राणी भी हैं औद्योगिक संघर्षों को दूर नहीं किया जा सकता।

परन्तु यह एक घोर विवाद का विषय है कि वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में इस प्रकार के सुधार सम्भव हैं अथवा नहीं। समाजवादियों व साम्यवादियों का विश्वास है कि पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में पूंजी और श्रम के बीच का संघर्ष दूर नहीं किया जा सकता। इसका केवल मात्र हल समाज के ढांचे को पूर्णतया बदल देने और श्रमिकों को स्वयं ही उद्योग-धन्धों का संचालन करने का अधिकार देने से हो सकता है। परन्तु दूसरी ओर कुछ व्यक्तियों का यह विश्वास है कि वर्तमान अर्थ-व्यवस्था में भी एक चालक सरकार मालिकों के सहयोग से उचित नियम व उद्योग-धन्धों पर नियन्त्रण कर सुधार कर सकती है। इन प्रश्नों पर काफी मतभेद है और यह कहना कठिन है कि कौनसा विचार ठीक है। रूस में भी औद्योगिक विवादों की सम्भावनाएँ हैं और विवाद होने पर उनके निपटारे के हेतु एक निश्चित व्यवस्था भी की गई है। ब्रिटेन और अमेरिका के उदाहरण यह बताते हैं कि श्रमिक पूंजीवादी अर्थव्यवस्था में भी अपनी दशाएँ सुधार सकते हैं। यहाँ हमारा मुख्य विषय भारत में वर्तमान अवस्थाओं को ध्यान में रखकर उनके हल के लिए व्यावहारिक उपचारों पर विचार करना है। भारतवर्ष में साम्यवाद का सरलता से स्थापित होना कठिन प्रतीत होता है और न ही यह सम्भव मालूम देता है कि श्रमिकों का उद्योगों पर नियन्त्रण हो जायेगा। श्रमिकों के पास न तो इतना धन ही है न इतनी योग्यता कि वह विशाल पैमाने के उद्योगों को संगठित कर सकें। अतः पूंजी और श्रम भिन्न भिन्न हाथों में ही रहेंगे और हमें वर्तमान अवस्था में ही सुधार की सम्भावनाओं को खोजना पड़ेगा। दोनों पक्षों को पारस्परिक रूप से एक दूसरे में विश्वास रखना चाहिए और समस्या के समाधान की ओर व्यक्तिगत दृष्टिकोण से ही नहीं वरन् राष्ट्रीय दृष्टिकोण से भी ध्यान देना चाहिए। यदि पारस्परिक सहयोग की भावना हो और श्रमिकों की दशाओं में सुधार हो तो कोई कारण नहीं है कि औद्योगिक विवादों को यदि पूर्णतया समाप्त न भी किया जा सके तो कम से कम उनमें पर्याप्त कमी क्यों न की जा सके।

स्थायी आदेश — (Standing Orders)

मालिक मजदूर समितियों के अतिरिक्त औद्योगिक शांति स्थापित करने की दृष्टि से दूसरा रचनात्मक (Constructive) पग सरकार द्वारा रोजगार की शर्तों और नियमों को निश्चित करना है। कभी कभी यह छोटे छोटे विषय उग्र रूप धारण कर लेते हैं और श्रमिकों में असन्तोष व्याप्त हो जाता है। दिन प्रतिदिन के कार्यों में मालिकों व श्रमजीवियों के सम्बन्ध को मालिकों की इच्छा पर ही नहीं छोड़ा जा सकता क्योंकि ऐसा करने से ही औद्योगिक अशांति उत्पन्न हो जाती है।

प्रत्येक औद्योगिक श्रमिक को इस बात का अधिकार है कि वह रोजगार की उन शर्तों और दशाओं को जान सके जिनके अन्तर्गत उसे नौकरी पर रखा गया है और अनुशासन के वह नियम भी उसे मालूम हों जिनका उससे पालन करने की आशा की जाती है। स्थायी आदेश रोजगार और कार्य की शर्तों को निर्धारित करते हैं। ग्रेट ब्रिटेन में ऐसी शर्तें संयुक्त ऐच्छिक समझौतों द्वारा निश्चित होती हैं जिनको कानून की भाँति ही महत्त्व प्रदान किया जाता है। उद्योग धन्धे इन समझौतों का उल्लंघन नहीं कर सकते। भारत में भी कुछ सीमा तक बड़े बड़े उद्योगों में विशेष तथा उनमें जिनमें विदेशी पूँजी लगी हुई थी कुछ अपने स्थायी आदेश बना लिए गए थे जो मालिकों व श्रमिकों के पारस्परिक सम्बन्धों को निश्चित करने के लिए थे। उत्तरी भारत की मालिक परिषद् (Employers Association of Northern India) जैसे कुछ मालिकों के संघों ने भी अपने स्थायी आदेश बना लिए थे जो कि परिषद् के सभी सदस्यों पर लागू होते थे। परन्तु और कहीं इस प्रकार का आयोजन नहीं था यदि कहीं था भी तो वह एकपक्षीय था तथा ऐसे स्थायी आदेश श्रमिकों की अपेक्षा मालिकों के हितों को अधिक ध्यान में रखकर बनाए गए थे। उनको कोई वैधानिक मान्यता भी प्राप्त नहीं थी। ये आदेश समान भी नहीं थे क्योंकि प्रत्येक कारखाने ने अपने अपने भिन्न स्थायी आदेश बना लिए थे।

भारत के उद्योग धन्धों में मालिकों और श्रमिकों के बीच प्रायः संघर्ष होने का एक मुख्य कारण यह भी है कि ऐसे कोई स्थायी आदेश नहीं हैं जो मालिकों और विस्तीर्ण श्रमिकों के अधिकारों और उत्तरदायित्वों की ठीक ठीक व्याख्या कर सकें। वर्गीकरण बर्खास्तगी छुट्टियाँ अनुशासनात्मक कार्यवाही अवकाश आदि ही ऐसी बातें हैं जिन पर मतभेद हो सकता है। अनेक त्रिदलीय श्रम सम्मेलनों ने इस बात पर कई बार ज़ोर दिया कि स्थायी आदेशों के लिए एक अलग से केन्द्रीय कानून बनाया जाए। परिणामस्वरूप औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम [Industrial Employment (Standing Orders) Act] १९४६ में पारित किया गया परन्तु प्रथम वैधानिक अधिनियम जिसमें स्थायी आदेशों के भी उपबन्ध बनाए गए थे बम्बई का १९३८ का औद्योगिक विवाद अधिनियम था जिसके अन्तर्गत आने वाले सभी मालिकों को निर्धारित फ़ार्म पर दो माह के अन्दर अनेक औद्योगिक विषयों से सम्बन्धित स्थायी आदेशों को श्रम कमिश्नर के सम्मुख प्रस्तुत करने का आदेश था।

१९४६ का औद्योगिक रोज़गार (स्थायी आदेश) अधिनियम जम्मू कश्मीर राज्य को छोड़कर समस्त भारत में लागू होता है। अधिनियम के अन्तर्गत उन सभी औद्योगिक संस्थाओं में जिनमें १०० या उससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं स्थायी आदेश निश्चित करने की व्यवस्था है। इसके अन्तर्गत इस बात का उल्लेख है कि अधिनियम के कार्यशील होने के ६ माह के अन्दर अन्दर मालिकों को प्रमाण अधिकारी (Certifying Officer) के सम्मुख ऐसे स्थायी आदेश प्रस्तुत करने होंगे

जिनमें निम्नलिखित बातें होंगी — श्रमिकों का वर्गीकरण उनको कार्य के घण्टे बताने की विधि छुट्टियाँ मजदूरी बाँटने का दिन मजदूरी की दर, अवकाश के लिए प्रार्थनापत्र की विधि नौकरी की समाप्ति व बर्खास्तगी अनुशासनात्मक कार्यवाही आदि आदि। अधिनियम के अन्तर्गत किसी भी औद्योगिक संस्थान में स्थायी आदेशों को प्रमाणित कराने से पूर्व श्रमिकों से परामर्श करने की भी व्यवस्था की गई है। प्रमाण अधिकारी श्रमिकों और मालिकों की आपत्तियों को ध्यान में रखते हुए स्थायी आदेशों को प्रमाणित करता है। प्रमाण अधिकारी के निर्णय के विरुद्ध औद्योगिक न्यायालय में अपील की जा सकती है। मालिकों को स्थायी आदेशों का मसौदा प्रस्तुत न करने पर दण्ड दिया जाता है जो जुर्माने के रूप में होता है। प्रमाण अधिकारियों का कार्य श्रम कमिश्नर करते हैं और जहाँ यह नहीं होते वहाँ अन्य किसी अधिकारी को यह कार्य सौंप दिया जाता है। अधिनियम को ऐसे समाचार पत्र संस्थानों में भी लागू कर दिया गया है जहाँ २० या अधिक श्रमजीवी पत्रकार काम करते हैं। इस अधिनियम का प्रशासन केन्द्रीय सरकारें तथा राज्य सरकारें दोनों ही अपने अपने क्षेत्र में करती हैं।

यह अधिनियम एक अनुमति प्रदान करने वाला कानून था और इसके अन्तर्गत राज्य सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया था कि वह इनके निर्धारित करने के विषय में कदम उठायें। इस अधिनियम के अन्तर्गत औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) नियम कई राज्यों में बन गये हैं जैसे असम (अप्रैल १९४७) बंगाल (अक्टूबर १९४६) बिहार (नवम्बर १९४७) बम्बई (नवम्बर १९४८) मध्य प्रदेश (नवम्बर १९४७) मद्रास (नवम्बर १९४७) उड़ीसा (जौलाई १९४७) पंजाब (अप्रैल १९४९) तथा उत्तर प्रदेश (दिसम्बर १९४६)। उत्तर प्रदेश की चीनी मिलों के सम्बन्ध में स्थायी आदेश १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित होते हैं। कई राज्यों ने अपने अपने क्षेत्र में अधिनियम को लागू करने के लिए इसमें संशोधन किए हैं। उत्तर प्रदेश सरकार ने इस अधिनियम को उत्तरी भारत की मालिक परिषद् तथा उत्तर प्रदेश तेल मिल मालिक परिषद् के सभी सदस्यों (मिलों) बिजली पूर्ति उद्योग वस्त्र कम उद्योग तेल निकालने का उद्योग तथा कांच उद्योगों में भी लागू किया है। उत्तर प्रदेश सरकार ने आदेशों की सूची में कुछ और बातें भी बढ़ा दी हैं। उदाहरणतः, नौकरी प्रमाण पत्रों का देना मजदूरी की परची देना कल्याणकारी योजनाओं को प्रारम्भ करना प्रॉविडेण्ट फण्ड आदि। इसके अतिरिक्त यदि मालिक स्वयं ही प्रमाण पत्र के लिए प्रार्थना करे तो यह अधिनियम ऐसे संस्थानों में भी लागू किया जा सकता है जिसमें १० से कम कर्मचारी काम करते हों। बम्बई तथा पश्चमी बंगाल में अधिनियम उन संस्थानों में लागू होता है जिनमें ५ या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं तथा असम में उन पर लागू होता है जिनमें १ या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। (परन्तु चाय बैल क्षेत्र तथा रेलें इसके अन्तर्गत नहीं आतीं) मद्रास में यह अधिनियम उन सभी फैक्ट्रियों

पर जो फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड हैं लागू होता है।

१९५९ के अन्त में ऐसी संस्थानों की संख्या जिनमें प्रमाणिक स्थाई आदेश सभी श्रमिकों के लिए बन गए थे ८०४१ थी। विभिन्न राज्यों म सख्या इस प्रकार थी — आंध्र– २१३ असम– ८३६ बिहार– १७७ बम्बई– २ १६६ केरल– ११२ मध्य प्रदेश– ६, मद्रास– ८११ मसूर– १४८ उड़ीसा– ४६ पजाब– ८ राजस्थान– ७३ उत्तर प्रदेश– १६२, पश्चिमी बंगाल– ? ८१४ देहली– ६३ हिमाचल प्रदेश– १ त्रिपुरा– १६ अण्डमान व निकोबार द्वीप– ६ राज्यों का योग– ६,८३० केन्द्रीय संस्थानों म– १ २११ कुल योग– ८०४१।

१९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम को संशोधन करने के लिए नवम्बर १९६० में एक विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया जो १४ दिसम्बर १९६० को पास होकर अधिनियम बन गया है। इसके अन्तर्गत केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार मिल गया है कि वह अधिनियम को ऐसी औद्योगिक संस्थानों पर लागू कर सकती है जिनमें १०० से कम श्रमिक काम करते हों। सम्बन्धित सरकारें अब अतिरिक्त प्रमाण अधिकारी भी नियुक्त कर सकती हैं। अधिनियम के अन्तर्गत अपील करने का समय २१ दिन से बढ़ाकर ३० दिन कर दिया गया है। केन्द्रीय सरकार को इस अधिनियम के अन्तर्गत जो अधिकार हैं वह आवश्यकता पड़ने पर राज्य सरकारों को दिए जा सकते हैं।

स्थायी आदेशों के दोष —

स्थायी आदेशों के प्रमाणीकरण की गति बड़ी धीमी है। इसका कारण यह है कि मालिकों की ओर से कोई सहयोग नहीं है और मालिक आदेशों के दोषपूर्ण मसौदे प्रस्तुत करते हैं। भिन्न भिन्न उद्योगों व संस्थानों में भी स्थायी आदेशों में काफी भिन्नता पाई जाती है। यद्यपि अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों को स्थायी आदेश बनाकर प्रमाण अधिकारी के समक्ष प्रस्तुत करना आवश्यक है तथापि इसमें प्रमाण अधिकारियों अथवा अपील अधिकारियों को यह अधिकार प्रदान नहीं किया गया था कि वह स्थायी आदेशों की अच्छाई (fairness) और औचित्य (reasonableness) के बारे में कोई निर्णय दे सकें। मार्टिन एण्ड कम्पनी के एक मुकदमे म निर्णय देते हुए इलाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायाधीश श्री के० एन० वान्छू ने अधिनियम के क्षेत्र और सीमाओं का विस्तृत विवेचन किया था। उन्होंने अपने निर्णय में कहा कि अधिनियम का कोई ऐसा उद्देश्य नहीं था कि मालिकों द्वारा प्रस्तुत स्थायी आदेशों पर किसी भी व्यक्ति द्वारा टीका टिप्पणी की जा सके और उनके उचित या न्यायपूर्ण होने का निर्णय किया जा सके। राज्य सरकारों द्वारा प्रस्तुत की जाने वाली अधिकतर रिपोर्टों में भी अधिनियम की इस कमी की ओर संकेत किया गया और कहा गया कि इस बात से श्रमिकों में काफी असंतोष उत्पन्न हो गया था और उनमें यह भावना आ गई थी कि जब तक मालिकों द्वारा प्रस्तुत स्थायी आदेशों के मसौदे में परिवर्तन करने की व्यवस्था नहीं की जाती तब तक उन्हें

अधिनियम से कोई लाभ न होगा।

अधिनियम का यह दोष अगस्त १९५६ में पारित औद्योगिक विवाद (संशोधन एवं विविध धारायें) अधिनियम द्वारा दूर कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम में भी कुछ आवश्यक संशोधन किए गए हैं। इसमें प्रमाण अधिकारी व अपील अधिकारियों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह स्थायी आदेशों को प्रमाण पत्र देने से पूर्व उनके औचित्य तथा न्याययुक्त होने का भी विचार कर सकें। १९४६ के अधिनियम के अन्तर्गत स्थायी आदेशों में संशोधन करने की प्रार्थना केवल मालिकों द्वारा ही की जा सकती थी परन्तु अब इस प्रकार का अधिकार श्रमिकों को भी प्रदान कर दिया गया है। अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई है कि यदि स्थायी आदेशों के प्रश्नों पर मालिक मजदूरों में कोई मतभेद हो तो उसको सुलझाया जा सके। अब सम्बन्धित पक्ष सरकार के हस्तक्षेप के बिना ही सीधे श्रम न्यायालय से निर्णय के लिए प्रार्थना कर सकते हैं।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि इस प्रकार के स्थायी आदेश देश में होने वाले औद्योगिक विवादों के एक प्रमुख कारण को दूर कर सकते हैं। परन्तु इस विषय में केवल अधिनियम ही काफी नहीं है वरन् आवश्यकता इस बात की है कि इसको ठीक प्रकार से लागू किया जाए। सरकार तो इस विषय में अधिनियम बनाकर ही अपना कर्तव्य पूरा करती है। अब यह मालिकों और श्रमिकों विशेषकर मालिकों पर निर्भर है कि वह पारस्परिक विवादों और उद्योग-सम्बन्धी विषयों का स्वयं ही निर्णय करें।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद विधान

(Industrial Disputes Legislation in India)

इसमें कोई सन्देह नहीं कि औद्योगिक विवादों की रोक थाम उनके सुलझाने के उपायों की अपेक्षा सदैव ही उचित होती है। विवादों की रोकथाम के उपायों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। परन्तु इसमें बुद्धिमानी नहीं है कि विवादों की रोकथाम पर ही निर्भर रहा जाय और उनके निपटारे के प्रश्न की उपेक्षा कर दी जाय। जैसा कि पहले भी बताया जा चुका है कि जब तक श्रम और पूंजी पृथक-पृथक हाथों में रहेंगे तब तक इन विवादों के पूर्णतया समाप्त हो जाने की कोई संभावना नहीं है। इसके अतिरिक्त भारत में राज्य को औद्योगिक शान्ति बनाने के लिए तथा सामाजिक न्याय स्थापित करने के लिए और अधिक कार्य करने पड़ेंगे क्योंकि सरकारी क्षेत्र में धीरे धीरे वृद्धि होती जा रही है और श्रमिकों के संगठन अभी तक शक्तिशाली नहीं हो पाए हैं और उनकी सौदाकारी की शक्ति भी कमजोर है। राज्य पर इस बात का भी उत्तरदायित्व है कि वह ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे जिनमें विभिन्न पक्ष आपस में मिल जुल कर सहयोग और सहृदयता की भावना से विचार विमर्श कर सकें और अपने मतभेदों का निपटारा कर लें। सरकार द्वारा औद्योगिक शान्ति

के लिए जो व्यवस्था की जाती है उनको दो शीर्षकों में बाँटा जा सकता है — (१) परामर्श करने की व्यवस्था (Consultative Machinery) (२) सुलह और विवाचन व्यवस्था (Conciliation and Arbitration Machinery)। परामर्श करने की जो व्यवस्था है उससे औद्योगिक विवादों का निपटारा भी होता है और उनकी रोक-थाम भी की जा सकती है। ऐसी व्यवस्था प्रत्येक स्तर पर होती है जैसे संस्था, उद्योग, राज्य और राष्ट्र। संस्था के स्तर पर तो मालिक मजदूर और संयुक्त समितियाँ हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है। उद्योग के स्तर पर मजदूरी निर्धारण बोर्ड (Wage Boards) तथा औद्योगिक समितियाँ हैं। राज्य स्तर पर श्रम सलाहकार बोर्ड हैं तथा राष्ट्र स्तर पर भारतीय श्रम सम्मेलन तथा स्थायी श्रम समितियाँ आदि हैं। इन सब का वर्णन आगे किया जाएगा। औद्योगिक विवाद विधान का पहले उल्लेख करना उचित होगा। इस विधान द्वारा विवादों के निपटारे के लिए सुलह और विवाचन की व्यवस्था की गई है।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवादों के विधान का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि भारत के आर्थिक जीवन में १९१४–१८ के महायुद्ध से पूर्व विशाल स्तर की हड़ताल सामान्य नहीं थी। इससे पूर्व विवादों के निपटारे के लिए केवल १८६० का मालिक एवं श्रमिक (विवाद) अधिनियम था जिसके अन्तर्गत यह व्यवस्था थी कि कुछ-विशेष श्रमिकों की मजदूरी से सम्बन्धित यदि कोई विवाद हो तो उसको शीघ्रातिशीघ्र सुलझाया जा सके। यह अधिनियम केवल रेलवे, नहरें तथा अन्य सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर ही लागू होता था। इसमें इस बात की व्यवस्था थी कि न्यायाधीशों द्वारा विवादों का तत्काल ही फैसला हो जाए। यह अधिनियम केवल सीमित ही नहीं था परन्तु दुर्भाग्यवश इसके अन्दर कुछ अवांछनीय उपबन्ध भी थे। उदाहरणस्वरूप श्रमिकों के द्वारा संविदा भंग करना एक फौजदारी अपराध माना गया था। रॉयल श्रम आयोग ने अपनी रिपोर्ट में बताया था कि यह अधिनियम निष्क्रिय हो गया था और यह बात सौभाग्यपूर्ण ही थी कि यह क्रियाशील न हुआ। कमीशन ने इसको पूर्णतया समाप्त करने की सिफारिश की थी और इसको १९३२ में निरसित (Repeal) कर दिया गया।

१९२० में भारत सरकार ने इस प्रश्न पर विचार किया कि ब्रिटेन के १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (Industrial Courts Act of 1919) के आधार पर भारत में भी औद्योगिक विवादों के लिए कानून बनाया जाए। परन्तु यह और औद्योगिक अशांति का समय था। इस कारण यह विचार प्रकट किया गया कि इस समय ब्रिटिश आधार पर बना हुआ कानून प्रभावशाली न हो सकेगा। इस प्रश्न पर १९२१ में बंगाल और बम्बई की औद्योगिक विवाद समितियों ने भी विचार किया। बंगाल समिति ने एक समझौता-नामिका (Panel) बनाने की सिफारिश की थी और इसको बनाया भी गया परन्तु संभवतः इसका कभी भी उपयोग नहीं किया गया। तभी उद्योगों में कुछ शांति आ जाने के कारण कानून बनाने का प्रश्न खटाई में

पड़ गया। परन्तु १६२४ में बम्बई में सूती वस्त्र मिलों में होने वाली एक गम्भीर हड़ताल के कारण बम्बई सरकार ने एक विधेयक तयार किया। किन्तु इस विधेयक को रोक लिया गया क्योंकि उसी वर्ष भारत सरकार ने एक विधेयक लोकमत के लिए परिचालित किया। यह विधेयक कुछ सीमा तक १६१६ के ब्रिटिश औद्योगिक न्यायालय अधिनियम पर आधारित था। परन्तु १६२८ तक संसद में कोई विधेयक प्रस्तुत नहीं किया जा सका। उस वर्ष ही एक विधेयक प्रस्तुत हुआ था कि अंततः १६२६ में व्यापार विवाद अधिनियम के नाम से पारित किया गया।

१६२६ का व्यापार विवाद अधिनियम — (Industrial Disputes Act of 1929)

यद्यपि सन् १६२६ का व्यापार विवाद अधिनियम मुख्यतः ब्रिटिश औद्योगिक न्यायालय अधिनियम पर ही आधारित था तथापि इससे यह भिन्नता थी कि इसमें औद्योगिक न्यायालय की कोई व्यवस्था नहीं थी। अधिनियम के अन्तर्गत जांच न्यायालयों (Courts of Enquiry) या सुलह बोर्डों (Conciliation Boards) की स्थापना उपयुक्त केन्द्रीय प्रान्तीय या रेलवे अधिकारियों द्वारा की जा सकती थी तथा कोई भी विवाद इन संस्थाओं के सम्मुख समझौते के हेतु प्रस्तुत किया जा सकता था। जांच न्यायालय के सदस्य या तो एक स्वतन्त्र अध्यक्ष या कोई अन्य स्वतन्त्र व्यक्ति या केवल एक स्वतन्त्र व्यक्ति ही सकते थे। सुलह बोर्ड में एक स्वतन्त्र अध्यक्ष तथा दो अथवा चार और सदस्य जो बराबर संख्या में दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व करते हों अथवा उनके द्वारा मनोनीत किए जाते हों होते थे। सुलह बोर्ड में केवल एक स्वतन्त्र व्यक्ति भी हो सकता था।

अधिनियम के अनुसार जांच न्यायालय का यह कर्तव्य था कि वह इसके सम्मुख आने वाले मामलों की जांच पड़ताल कर इस पर अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत करे। सुलह बोर्ड का कर्तव्य यह था कि वह विवाद की जांच पड़ताल कर आपस में समझौता कराने का प्रयत्न करे तथा दोनों पक्षों को इस बात के लिए प्रेरित करे कि वह एक निश्चित समय में आपस में समझौता कर लें। समझौता कराने में असफल होने की अवस्था में बोर्ड को नियुक्ति अधिकारी को अपनी जांच पड़ताल तथा सिफारिशों की विस्तृत रिपोर्ट देनी होती थी और उसके पश्चात् रिपोर्ट प्रकाशित कर दी जाती थी। अधिनियम के दूसरे भाग के उपबन्ध जन-उपयोगी सेवाओं में हड़तालों से सम्बन्धित थे जैसे रेलवे डाक-तार व टेलीफोन सेवाएँ विद्युत एवं जलपूर्ति स्वास्थ्य व सफाई सेवाएँ आदि-आदि। ऐसी सेवाओं में हड़ताल एवं तालाबंदी करने से पूर्व १४ दिन की सूचना देना आवश्यक था। इस धारा को न मानने वालों के लिए विशेष दण्ड की व्यवस्था की गई थी। इस अधिनियम में अवैध हड़तालों और तालाबंदी की परिभाषा में वह विवाद भी सम्मिलित कर लिए गए जिनका उद्देश्य औद्योगिक विवाद के अतिरिक्त कुछ और हो अथवा जिनसे सर्वसाधारण को कष्ट हो। इस अधिनियम के द्वारा सहानुभूति के लिए की गई हड़तालों (Sympathetic strikes) को भी

अवैध घोषित कर दिया गया। १९२९ के इस अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था थी कि श्रमिकों के हितों के लिए सरकारी श्रम अधिकारी (Labour Officers) नियुक्त किए जायें।

सन् १९२९ के अधिनियम के अन्दर कई दोष भी थे। उदाहरणतया इसमें औद्योगिक विवादों की रोकथाम के लिए किसी स्थायी प्रबन्ध की व्यवस्था नहीं थी। सहानुभूति में की गई हड़तालों को अवैध घोषित कर देने की भी आलोचना की गई। किसी भी बड़े विवाद को इस आधार पर अवैध घोषित किया जा सकता था कि उससे सर्वसाधारण को कष्ट पहुंच रहा है। जांच न्यायालय तथा सुलह बोर्ड ऐसी संस्थाएं नहीं थीं जो उद्योगों में होने वाले मामलों के निकट सम्पर्क में रह सकें और स्थिति पर अपना बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टिकोण अपना सकें। यद्यपि अधिनियम की कार्यप्रणाली का अधिक अनुभव नहीं था तथापि रॉयल श्रम आयोग को इन दोषों की ओर संकेत किया और औद्योगिक विवादों का निपटारा करने के लिए एक स्थायी वैधानिक व्यवस्था की आवश्यकता पर बल दिया। राज्य सरकारों द्वारा समझौता अधिकारियों की नियुक्ति की भी सिफारिश की जिनका कार्य विवाद की प्रारम्भिक अवस्था में ही सम्बन्धित पक्षों में समझौता कराना था।

१९३४ व १९३८ के अधिनियम —

१९२९ के अधिनियम में १९३२ में संशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत सुलह बोर्ड व जांच न्यायालय के सदस्यों को किसी भी गुप्त सूचना को प्रकट करने से मना कर दिया गया और यदि वह ऐसा करते थे तो उन पर सरकार की आज्ञा से मुकदमा चलाया जा सकता था। १९२९ का अधिनियम सर्वप्रथम केवल पांच वर्ष के लिए पारित किया गया था किन्तु १९३४ में एक संशोधन के द्वारा इसको स्थायी बना दिया गया और इसके उपबन्धों को और अधिक स्पष्ट कर दिया गया। बम्बई सरकार ने भी १९३४ में जांच न्यायालय व सुलह बोर्ड की नियुक्ति से सम्बन्धित उपबंधों को स्पष्ट करने के लिए एक अलग कानून बनाया।

भारत सरकार ने इस अधिनियम में कुछ संशोधन करने के लिए एक विधेयक सन् १९३८ में प्रस्तुत किया जो कि अंततः सन् १९३८ में अधिनियम के रूप में पारित हुआ। जैसा कि रॉयल श्रम आयोग ने सुझाव दिया था इस अधिनियम में सुलह अधिकारियों की (Conciliation Officers) की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी जिनका कर्तव्य यह था कि वह औद्योगिक झगड़ों में मध्यस्थता करें और उनका निपटारा करने के लिए प्रयत्न करें। इस संशोधित अधिनियम द्वारा औद्योगिक संघर्षों के क्षेत्र को विस्तृत कर दिया गया और इसके अन्तर्गत मालिक और कर्मचारियों के मतभेदों को भी ले लिया गया तथा जनोपयोगी सेवाओं के अन्तर्गत ट्राम्बे व जल-यातायात को भी सम्मिलित कर लिया गया तथा अवैध तालाबंदी व हड़ताल सम्बन्धी उपबन्ध भी कम प्रतिबंधनात्मक (Restrictive) कर दिए गए। यद्यपि इस संशोधित अधिनियम द्वारा कुछ उन्नति हुई थी लेकिन फिर भी इसमें कुछ दोष रह

गए। उदाहरणस्वरूप औद्योगिक संघर्षों को सुलझाने के लिए कोई स्थायी प्रबन्ध की व्यवस्था नहीं थी तथा सुलह बोर्ड या जांच न्यायालय के निर्णयों को विवाद सम्बन्धित पक्षों के लिए मानना अनिवार्य नहीं था। इस कारण बम्बई सरकार ने सन् १९३४ और १९३८ में अपने अलग विधान बना लिए। बम्बई के १९३४ के औद्योगिक विवाद सुलह अधिनियम के अन्तर्गत सूती वस्त्र मिलों में काम करने वाले श्रमिकों के हितों की देखभाल करने और उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिए श्रम अधिकारियों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई। श्रम कमिश्नर की नियुक्ति के लिए भी एक उपबंध था ताकि वह उन विवादों में जहां कि श्रम अधिकारी असफल हो जाते थे पदेन (Ex Officio) अधिकारी के रूप में मुख्य सुलह अधिकारी का कार्य कर सके।

१९३८ का बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम —(Bombay Industrial Disputes Act)

प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् बम्बई सरकार ने तत्कालीन विधानों के दोषों को दूर करने तथा हड़तालों की एक लहर सी आ जाने के कारण सन् १९३८ में बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम कई बातों में बिल्कुल नया था और इसका आगे आने वाले विधानों पर भी प्रभाव पड़ा। इस अधिनियम का मुख्य उद्देश्य सुलह तथा विवाचन द्वारा औद्योगिक विवादों का शांति व मैत्री पूर्ण ढंग से निपटारा करना था। इस अधिनियम ने विभिन्न प्रकार के संघों में अन्तर किया उदाहरणत: मान्यता प्राप्त (Recognised) संघ पंजीकृत (Registered) संघ नियम-अनुकूल (Qualified) संघ तथा प्रतिनिधि (Representative) संघ। अधिनियम की दूसरी विशेषता यह थी कि इसके अन्तर्गत कई प्राधिकारियों (Authorities) की नियुक्ति की व्यवस्था थी। श्रम कमिश्नर पदेन मुख्य समझौता अधिकारी बना दिया गया जिसका कार्यक्षेत्र सम्पूर्ण प्रान्त था। इसके अतिरिक्त विवादों का निपटारा करने के लिए स्थानीय सुलह अधिकारी अथवा किसी भी उद्योग के लिए विशेष सुलह अधिकारियों की नियुक्ति की भी व्यवस्था थी। प्रान्तीय सरकार स्थानीय क्षेत्रों अथवा उद्योगों के लिए श्रम अधिकारियों तथा सुलह बोर्ड की नियुक्ति भी कर सकती थी। सुलह बोर्ड में एक स्वतंत्र अध्यक्ष तथा मालिकों व श्रमिकों द्वारा बराबर बराबर संख्या में मनोनीत सदस्य होते थे। प्रान्तीय सरकार दो या उससे अधिक सदस्यों की *औद्योगिक न्यायालय (Industrial Court) या औद्योगिक* विवाचन न्यायालय भी बना सकती थी। इनके सदस्यों में से एक अध्यक्ष होता था जो किसी भी उद्योग से सम्बन्धित नहीं होता था। साधारणतया उच्च न्यायालय के न्यायाधीश ही इस पद पर नियुक्त किए जाते थे। औद्योगिक न्यायालय एक महत्वपूर्ण संस्था थी जो कि संघों के पंजीकरण विवाचन स्थायी आदेश हड़ताल की वैधता आदि से सम्बन्धित विषयों का निर्णय करती थी और किसी को भी

गवाही देने तथा सम्बन्धित कागजात प्रस्तुत करने का आदेश दे सकती थी। अधि नियम की एक और विशेषता यह थी कि इसमें स्थायी आदेशों के विषय में भी उप बंध थे जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। इस अधिनियम की एक अन्य विशेषता थी कि इसमें अवैध हड़तालों तथा तालाबंदी की परिभाषा की गई थी। यदि कोई हड़ताल स्थायी आदेशों में उल्लिखित मामलों पर की जाती है या जिस हड़ताल की उचित सूचना नहीं दी जाती वह हड़ताल अवैध है। यदि मामला सुलह की स्थिति में अथवा औद्योगिक न्यायालय के सम्मुख है तो हड़ताल की घोषणा नहीं की जा सकती और इसी आधार पर तालेबन्दी करना भी अवैध है। मालिकों द्वारा श्रमिकों को सताने तथा स्वच्छन्द रूप से बर्खास्त कर देने के विरुद्ध भी उपबन्ध बनाये गये थे। अवैध हड़तालों तथा तालाबंदी में न केवल भाग लेने वालों बरन ऐसे व्यक्तियों के लिए भी जो दूसरों को ऐसी हड़तालों में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित करते थे या उनके लिए चन्दा जमा करते थे उनके लिए भी कठोर दण्ड की व्यवस्था की गई थी। समझौता कार्यवाही के समय में मालिक भी रोजगार की शर्तों में कोई परिवर्तन नहीं कर सकते थे जब तक की ऐसा परिवर्तन पहले से समझौता व्यवस्था न करता हो।

१९३८ का बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम आगे के विधान के लिए अग्रणी था और इस विषय पर पूर्व के अधिनियमों से पूर्णतया भिन्न था। यह हड़तालों को कम करने में काफी सफल हुआ और इसने सुलह तथा विवाचन के द्वारा औद्योगिक झगड़ों का निपटारा करने के लिए व्यापक साधनों की व्यवस्था की। परन्तु इस अधिनियम की भी कई बातों पर आलोचना की गई। उदाहरणार्थ अनिवार्य समझौतों की धारा श्रमिक संघों का विभागीकरण सुलह प्रणाली की अधिकारिक प्रवृत्ति तथा अवैध हड़तालों में भाग लेने वालों को कठोर दण्ड की व्यवस्था आदि ऐसे ही अनेक उपबन्ध उस समय के नेताओं को अप्रिय लगे। परन्तु अधिनियम के कार्यान्वित होने के पश्चात् यह अनुभव किया गया कि अधिकांश आपत्तियां राजनैतिक ही थीं और यदि कोई उचित आलोचना की जा सकती थी तो वह केवल श्रमिक संघों के वर्गीकरण की थी।

युद्धकाल में औद्योगिक विवाद विधान —

युद्धकालीन परिस्थितियों ने औद्योगिक संघर्ष की दृष्टि से अनेक आवश्यक पग उठाने के लिए सरकार को विवश कर दिया। एक आपातिकालीन पग के रूप में असीमित उत्पादन की आवश्यकता के कारण १९४१ और १९४२ में १९३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम में संशोधन किए गए। प्रथम संशोधन से तो सरकार को इस बात का अधिकार मिल गया कि वह कोई भी औद्योगिक विवाद औद्योगिक विवाचन न्यायालयों को सौंप सकती थी यदि सरकार यह समझे कि विवाद से और अव्यवस्था फैलेगी या सम्बन्धित उद्योग पर दूषित प्रभाव पड़ेगा या समाज को बहुत समय तक कष्ट होगा। सन् १९४२ के संशोधित अधिनियम द्वारा

मालिकों को कार्य के घण्टे और विश्राम समय में परिवर्तन करने की छूट दे दी गई। यह पग सरकार द्वारा युद्धकालीन आवश्यकताओं को देखते हुए उठाया गया था। बम्बई में तीसरा संशोधित अधिनियम १९४५ में पारित किया गया जिसके अन्तर्गत सरकार द्वारा नियुक्त श्रम अधिकारियों को अधिकार दिया गया कि वह श्रमिकों की कोई भी मीटिंग उस कारखाने में बुला सकते थे जहां वे कार्य करते हों और यदि मालिकों को आज्ञा दी गई हो तो मीटिंग की घोषणा करने को वह मना नहीं कर सकते थे।

जनवरी १९४२ में हड़तालों तथा तालाबंदी को निर्बन्धित करने के लिए सरकार ने भारत सुरक्षा नियम (Defence of India Rules) में ८१ (अ) धारा और जोड़ दी। इसके अन्तर्गत सरकार को इस बात का अधिकार मिल गया कि वह साधारण अथवा स्थानीय क्षेत्र की आवश्यकताओं को देखते हुए कई प्रकार के विशेष आदेश बना सके। इन आदेशों से वह किसी भी हड़ताल अथवा तालाबंदी का निषेध घोषित कर सकती थी और किसी भी विवाद को सुलह या विवाचन के लिए सौंप सकती थी। मालिकों को इस बात के लिए विवश कर सकती थी कि वह रोजगार की कुछ विशेष शर्तों को लागू करें। सरकार विवाचन निर्णयों को भी लागू कर सकती थी। उसी वर्ष मई मास में दूसरी घोषणा की गई जिससे लगभग ऐसे ही अधिकार प्रान्तीय सरकारों को दे दिये गये और अगस्त में एक आदेश निकाला गया जिसके अनुसार चौदह दिन की पूर्व सूचना बिना हड़ताल तथा तालाबंदी निषेध कर दिए गए। उस तमाम अवधि के लिए भी हड़ताल तथा तालाबंदी करना निषेध घोषित कर दिया गया जब कोई विवाद कानूनी जांच सुलह या विवाचन के लिए प्रस्तुत हो। निर्णय के पश्चात् दो महीने तक हड़ताल तथा तालाबन्दी निषेध थे। अप्रैल १९४३ में भारत सुरक्षा नियम में कुछ और संशोधन किए गए और जान बूझ कर काम बन्द करना या कार्यस्थान पर एकत्रित कर्मचारियों को काम करने से मना करना निषेध घोषित कर दिया गया सिवाय उस अवस्था के जबकि काम बन्द करना उनके किसी ऐसे व्यावसायिक विवाद के कारण हो जिससे कि उनका प्रत्यक्ष सम्बन्ध हो। प्रान्तीय सरकारों को भी इस विषय में आवश्यक कार्यवाही करने का अधिकार प्रदान किया गया।

सन् १९४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम —

युद्धकालीन विधान जिनका कि ऊपर उल्लेख किया गया है ३० सितम्बर १९४६ को निष्क्रिय हो गये। परन्तु युद्धकालीन अनुभवों से सरकार आश्वस्त हो गई थी कि इस प्रकार के नियम बहुत लाभदायक हैं और यदि यह देश के स्थायी श्रम कानूनों में सम्मिलित कर लिए जाते हैं तब यह युद्धोपरांत औद्योगिक परिवर्तनों के कारण निरन्तर बढ़ रही उद्योग-अशांति को रोकने में बहुत सहायक सिद्ध होंगे। फलतः सन् १९४७ में केन्द्रीय सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया जिसने १९२९ के व्यापार विवाद अधिनियम को निरस्त (Repeal) कर दिया। प्रान्तीय क्षेत्रों में इस सम्बन्ध में अधिनियम १९४७ में बम्बई, उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में

पारित किए गये । सन् १९४७ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम ने १९३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम को निरस्त (Repeal) कर दिया ।

भारत सरकार का १९४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम पहली अप्रैल १९४७ से लागू किया गया । इस अधिनियम में पिछले अधिनियमों के बहुत से उपबन्ध वैसे ही रहे परन्तु इस नये अधिनियम में औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए दो नई संस्थाओं की व्यवस्था की गई अर्थात् मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों द्वारा बनी हुई मालिक मजदूर समितियाँ और औद्योगिक अधिकरण जिनमें एक या दो ऐसे सदस्य हों जिनमें उच्च न्यायालय के न्यायाधीश होने की योग्यता हो । (१९५६ के संशोधन के अनुसार निपटारे के लिए अब श्रम न्यायालय औद्योगिक अधिकरण और राष्ट्र अधिकरणों की व्यवस्था की गई है) । इस अधिनियम के अन्तर्गत उपयुक्त सरकारों को ऐसे औद्योगिक संस्थानों में जिनमें १०० या उससे अधिक कर्मचारी कार्य करते हों मालिक मजदूर समितियाँ बनाने का अधिकार दे दिया गया जिनका उद्देश्य यह था कि मालिकों व श्रमिकों के दैनिक संघर्षों को सुलझाकर उनमें सद्भावना एवं मधुर सम्बन्ध स्थापित करें । औद्योगिक अधिकरण या श्रम न्यायालय के सम्मुख मामला तब जायेगा जब किसी विवाद के दोनों पक्ष मामले को इसके सामने ले जाने की प्रार्थना करें अथवा उपयुक्त सरकारें उनको मामला सौंपना उचित समझें । अधिकरण के पंचाट अथवा निर्णय साधारणतया सरकार द्वारा लागू होंगे और जो भी समय निर्धारित किया जावे उस समय तक दोनों पक्षों के लिए मान्य होंगे । सम्पूर्ण समझौता व्यवस्था को एक नवीन रूप देना अधिनियम की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है । इसके अन्तर्गत उपयुक्त सरकारों को समझौता अधिकारी नियुक्त करने का अधिकार भी प्रदान किया गया है । इन अधिकारियों का कार्य यह है कि वह किसी भी विशेष क्षेत्र या विशेष उद्योग अथवा विभिन्न उद्योगों में औद्योगिक संघर्षों के निपटाने का प्रयत्न करें या उनको सुलझाने के लिए मध्यस्थता करें । अधिनियम इस बात का भी अधिकार देता है कि ऐसे सुलह बोर्डों की स्थापना की जाए जिसमें एक स्वतन्त्र अध्यक्ष तथा विवाद से सम्बन्धित दोनों पक्षों के बराबर-बराबर संख्या में दो या उससे अधिक सदस्य हों । उपयुक्त सरकारों को इस बात का भी अधिकार दिया गया है कि वह किसी भी विवाद की जाँच पड़ताल के लिए जाँच न्यायालय की स्थापना कर सकें । न्यायालय में एक या अधिक स्वतन्त्र व्यक्ति होंगे जिनमें से एक सभापति होगा ।

जब कोई औद्योगिक विवाद होता है या उसके होने की आशंका होती है तब सर्वप्रथम समझौता अधिकारी जिसके सम्मुख विवाद प्रस्तुत किया जाता है, दोनों पक्षों में मैत्रीपूर्ण समझौता कराने का प्रयत्न करता है । उसको अपनी रिपोर्ट सरकार को चौदह दिन के अन्दर भेजनी होती है । यदि समझौता हो जाता है तब इस पर दोनों पक्षों के हस्ताक्षर हो जाते हैं और तब यह सरकार को भेज दिया जाता है । यदि प्रयत्न असफल रहते हैं तब समझौता अधिकारी सरकार को अपने

प्रयत्नों की पूरी रिपोर्ट भेज देता है। अब सरकार मामले को सुलह बोर्ड अथवा औद्योगिक अधिकरण को सौंप सकती है। सुलह बोर्ड को दो मास की अवधि के अन्दर अन्दर समझौता कराने के अपने प्रयत्नों को पूरा करना होता है और यदि उसको सफलता प्राप्त हो जाती है तब यह समझौता छः मास तक या यदि सम्बन्धित पक्ष चाहें तो उससे भी अधिक अवधि के लिए लागू हो जाता है। असफल होने की अवस्था में बोर्ड अपनी पूरी रिपोर्ट सरकार को भेज देता है तब सरकार विवाद को जाँच न्यायालय को सौंप सकती है जो उससे सम्बन्धित सभी तथ्यों को एक निश्चित अवधि में जो साधारणतया ६ मास की होती है एकत्रित करती है। राज्य सरकार को यह भी अधिकार है कि वह सुलह बोर्ड या जाँच न्यायालय की रिपोर्ट के पश्चात् मामले को औद्योगिक अधिकरण को पंच फैसले के लिए सौंप दे। जब इस अधिकरण के द्वारा कोई निर्णय दिया जाता है तब अधिनियम के अनुसार सरकार इस निर्णय को ऐसी अवधि के लिए जिसको वह उचित समझती हो परन्तु जो साल भर से अधिक न हो सम्बन्धित पक्षों पर लागू कर सकती थी। परन्तु अब १९५० के औद्योगिक विवाद (अपील अधिकरण) अधिनियम [Industrial Disputes (Appellate Tribunal) Act] के अन्तर्गत सरकार के लिए यह आवश्यक नहीं रहा है कि वह फैसले को लागू करे और अब निर्णय के प्रकाशन के या निर्णय देने के ३० दिन के पश्चात् वह पक्षों पर अपने आप ही लागू और बाध्य हो जाता है। एक वर्ष की यह अवधि कम भी की जा सकती है अथवा कुल ३ वर्ष तक की अवधि के लिए बढ़ाई भी जा सकती है। यदि सरकार विवाचन निर्णय (Award) अथवा उसके किसी भाग से सहमत नहीं है तब वह ३० दिन के अन्दर अन्दर उसे अस्वीकार कर सकती है अथवा उसमें संशोधन कर सकती है परन्तु ऐसी अवस्था में इसको विधानसभा के सम्मुख प्रस्तुत करना होगा जो कि विवाचन निर्णय को स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकती है या उसमें संशोधन कर सकती है और सरकार को उस निर्णय को लागू करना आवश्यक होगा। इस प्रकार १९४७ के इस अधिनियम में अनिवार्य विवाचन के सिद्धान्त को अपनाया गया है क्योंकि राज्य सरकारें किसी भी विवाद को विवाचन के लिए अधिकरण को प्रस्तुत कर सकती हैं और उनके निर्णय को मानना बाध्य होता है।

अधिनियम की दूसरी महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसके अन्तर्गत सरकार को जन उपयोगी सेवाओं में होने वाले सभी विवादों को समझौते के लिए अनिवार्य रूप से प्रस्तुत करना आवश्यक है तथा अन्य मामलों में सरकार निर्णय स्वयं कर सकती है। जन उपयोगी सेवाओं में यदि उचित सूचना नहीं दी गई है तब हड़ताल या तालेबन्दी करना अवैध घोषित कर दिया गया है। जन उपयोगी सेवाओं में कोई भी कर्मचारी ६ सप्ताह की निश्चित रूप में पूर्व सूचना दिए बिना अथवा ऐसी सूचना की समाप्ति के १४ दिन पश्चात् तक अथवा सुलह कार्यवाही चलने की अवधि में तथा ऐसी कार्यवाही की समाप्ति के सात दिन पश्चात् तक हड़ताल नहीं कर

सकता। इसी प्रकार सुलह कार्यवाही के चलते समय और उसकी समाप्ति के ७ दिन पश्चात् तक, तथा अधिकरण की कार्यवाही चलते समय या उसके निर्णय के दो मास पश्चात् तक तथा उस अवधि के लिए जिसमें विवाचन निर्णय लागू रहेगा हड़तालो पर पूर्ण रोक लगा दी गई है। अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को यह भी अधिकार है कि वह विशेष सेवाओं को जन उपयोगी सेवाएँ घोषित कर सकती है और समय समय पर राज्य सरकार इस अधिकार का प्रयोग भी करती है। अधिनियम में इस बात के लिए दण्ड की भी व्यवस्था है (एक मास तक का कारागार अथवा ५० रु तक का दण्ड अथवा दोनों) कि कोई अवैध हड़ताल और तालाबन्दी में भाग ले या किसी भी अवैध हड़ताल और तालाबन्दी को उकसाए अथवा आर्थिक सहायता दे (६ मास तक का कारागार अथवा १   रु० तक का दण्ड अथवा दोनों)। अवैध हड़तालों में भाग लेने से इन्कार करने वाले श्रमिकों की सुरक्षा की भी व्यवस्था की गई है। कार्यवाही चलते समय कोई भी मालिक श्रमिक की रोजगार की शर्तों मे परिवर्तन नहीं कर सकता और न ही किसी कर्मचारी को सजा दे सकता है सिवाय उन मामलों में जिनमे कर्मचारियो का दुर्व्यवहार हो और वह मामला विवाद के विषय से सम्बन्धित न हो।

१९४७ के इस अधिनियम को देश के औद्योगिक विवाद विधान मे एक उन्नतिशील पग कहा जा सकता है। इसमें विवादों को सुलझाने की व्यापक व्यवस्था की गई है। इस अधिनियम की अधिकतर आलोचना अनिवार्य समझौते तथा अनिवार्य वेवाचन पर केन्द्रित रही है। इस समस्या की हम अगले पृष्ठों में विवेचना करेंगे। ‑वैध हड़तालों से सम्बन्धित उपबन्ध और सरकार के पंच फैसलों को लागू करने के अधिकार की भी आलोचना की गई है।

भारत सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम के उपबन्धों की क्षेपपूर्ति करने तथा कुछ विशेष स्थितियों का सामना करने के लिए कुछ अध्यादेश (Ordinances) व संशोधन अधिनियम पारित किए हैं।

एक से अधिक राज्यों में शाखा रखने वाली बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियों में अलग अलग विवाचन से उत्पन्न कठिनाइयों को दूर करने के हेतु अप्रैल १९४९ में औद्योगिक विवाद (बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियाँ) अध्यादेश पारित किया गया जिसको दिसम्बर सन् १९४९ में एक अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित (Replaced) कर दिया गया। इसके अन्तर्गत सन् १९४७ के अधिनियम को संशोधित करके इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि बैंकिंग तथा बीमा कम्पनियों को उन संस्थानों की सूची में सम्मिलित कर लिया जाए जिसमें कि केवल केन्द्रीय सरकार ही सुलह बोर्ड न्यायालय व अधिकरणों की स्थापना कर सकती है और इस सम्बन्ध मे राज्य सरकारों के अधिकार ले लिए जाएँ। फलतः केन्द्रीय सरकार ने जून १९४९ में एक औद्योगिक अधिकरण की स्थापना की और विभिन्न बैंकिंग कम्पनियों के विवादों को इसको सौंप दिया।

११ जून १९४९ को एक और अध्यादेश औद्योगिक अधिकरण बोनस भुगतान (राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्र) [Industrial Tribunal Payment of Bonus (National Savings Certificates) Ordinance] जारी किया गया। यह बम्बई औद्योगिक न्यायालय की कुछ सिफारिशों के परिणामस्वरूप पारित किया गया था क्योंकि १९४८ में इस न्यायालय ने एक निर्णय में बोनस के एक भाग को राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्रों के रूप में देने की वांछनीयता पर जोर दिया था। १९३६ की मजदूरी भुगतान अधिनियम (Payment of Wages Act) के अन्तर्गत इस प्रकार के भुगतान में कुछ कानूनी कठिनाइयाँ थीं। परन्तु इस प्रकार की कठिनाई उपरोक्त अध्यादेश द्वारा दूर कर दी गई है। अब औद्योगिक अधिकरण को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह बोनस का ३०% भाग तक राष्ट्रीय बचत प्रमाणपत्रों में देने का आदेश दे सकती है। इन प्रमाणपत्रों का मूल्य भी यही अधिकरण निश्चित कर सकती है। परन्तु इन प्रमाणपत्रों के द्वारा दी गई राशि बोनस की नकदी राशि से कम नहीं होनी चाहिए। केन्द्रीय सरकार को इस सम्बन्ध में उत्पन्न हुई कठिनाइयों को दूर करने के लिए आवश्यक नियम बनाने के अधिकार भी दे दिए गए हैं।

मद्रास में उस समय एक रोचक विषय उच्च न्यायालय के एक निर्णय के कारण उठ खड़ा हुआ। न्यायालय ने यह घोषित कर दिया कि औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को इस बात का अधिकार नहीं था कि वह सभी संभावित विवादों को औद्योगिक अधिकरण को सौंप दे। अतः अप्रैल १९४९ में औद्योगिक विवाद (मद्रास संशोधन) *अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत यह* उपबंध बना दिया गया कि मद्रास सरकार द्वारा अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित किये गये औद्योगिक अधिकरण के किसी भी पंच फैसले को कोई भी न्यायालय इस आधार पर अवैध घोषित नहीं कर सकता कि वह अधिकरण कानूनी नहीं है। संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत मद्रास सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि वह न केवल उन्हीं उद्योगों को जिनका अधिनियम में उल्लेख किया गया है वरन् किसी भी उद्योग को जनोपयोगी उद्योग घोषित कर सकती है।

१९५ में एक और महत्वपूर्ण अधिनियम औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) Industrial Disputes (Appellate Tribunal) Act पारित किया गया। १९४७ के अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय व राज्य सरकारों के द्वारा औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना होती थी। परन्तु किसी भी समन्वित (Co-ordinating) और पुनर्विलोकिनी (Reviewing) अधिकारी (Authority) के अभाव में तथा किसी मार्ग-दर्शक नीति न होने के कारण अनेक अधिकरणों ने कई महत्वपूर्ण मामलों पर विभिन्न मत अभिव्यक्त किये थे। विभिन्न राज्यों में और कभी कभी एक ही राज्य में अधिकरणों द्वारा दिये जाने वाले विभिन्न निर्णयों से कुछ ऐसी नीति विरुद्ध बातें उत्पन्न हो गई जिससे न केवल मालिकों में बल्कि श्रमिकों में भी असन्तोष व्याप्त हो गया। इस परिस्थिति का सामना करने के लिए भारत सरकार ने अपीलीय न्याया

क्रम स्थापित करने का निश्चय किया तथा मई १९५० में औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत अपीलीय अधिकरण की स्थापना की व्यवस्था की तथा औद्योगिक विवाद सम्बन्धी कानूनों में कुछ परिवर्तन किए गये। उदाहरणस्वरूप अधिकरण के विवाचन निर्णय को राज्य सरकार द्वारा लागू करने के लिये कुछ उपबन्ध बनाये गये। तथा न्यायालय या अधिकरण के समक्ष औद्योगिक विवादों में वकीलों के आने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। अपीलीय अधिकरणों को इस बात का अधिकार दिया गया कि वह किसी भी विवाचन अधिकारी के निर्णय अथवा पंच फैसले के विरुद्ध अपील सुन सकें जब भी ऐसी अपील उपयुक्त सरकारों अथवा असंतुष्ट पक्ष द्वारा की जाय। अपीलीय अधिकरण के समक्ष केवल कुछ ही विषयों पर अपील हो सकती थी। उदाहरणतः वित्त सम्बन्धी मामले, पदवी के अनुसार वर्गीकरण, कर्मचारियों की छटनी, कानूनी प्रश्न आदि। १९५६ के एक संशोधित अधिनियम द्वारा अब इस १९५० के अधिनियम को निरसित (Repeal) कर दिया गया है। परन्तु अब भारत सरकार पुनः अपीलीय अधिकरणों की स्थापना करने के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार कर रही है।

१९४७ के अधिनियम में १९५१ में पुनः संशोधन किया गया जिसका उद्देश्य यह था कि अधिकरणों में रिक्त स्थानों की पूर्ति से सम्बन्धित मामलों में जो दोष थे उनको दूर कर दिया जाय। १९५१ में एक अध्यादेश के द्वारा अधिनियम में पुनः संशोधन किया गया जिसके लिए मार्च १९५२ में अधिनियम भी बना दिया गया। इसके अन्तर्गत उपयुक्त राज्य सरकारों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह विवाचन के क्षेत्र में ऐसे संस्थानों को भी ला सकती थी जिनमें वास्तव में कोई विवाद नहीं हुआ हो। यह संशोधन इसलिये आवश्यक समझा गया क्योंकि १९४७ के अधिनियम के अन्तर्गत विवाचन उस समय किया जा सकता था जबकि कोई विवाद हो रहा हो अथवा उसकी सम्भावना हो। परन्तु विवाद की सम्भावना के प्रश्न पर मतभेद था और बैंक विवाद के सम्बन्ध में एक पंच फैसला को सर्वोच्च न्यायालय में इसी आधार पर कि विवाद की कोई 'सम्भावना' नहीं थी चुनौती दी गई। इस संशोधन के पश्चात् अब ऐसी कोई आपत्ति नहीं की जा सकती। अब सरकार उद्योगों के किसी ऐसे संस्थान को भी जिस पर विवाद के कारण प्रभाव पड़ने की संभावना हो पंच फैसले के लिए सम्मिलित कर सकती है।

दूसरा महत्वपूर्ण श्रम अधिनियम १९५३ का औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम था जिसमें जबरी छुट्टी (Lay off) तथा छटनी की अवस्था में श्रमिकों को क्षति-पूर्ति देने तथा इस सम्बन्ध में अन्य आवश्यक कार्यवाही करने के सम्बन्ध में उपबंध थे। आर्थिक मन्दी के कारण औद्योगिक संस्थानों को अपना काम कम करने अथवा श्रमिकों की संख्या को कम करने के लिये बाध्य होना पड़ा। अतः श्रमिकों की जबरी छुट्टी तथा छटनी बढ़ गई। परन्तु कई बार ऐसी जबरी छुट्टी व छटनी निष्कपट नहीं

कही जा सकती थी। छटनी और जबरी छुट्टी इतनी अधिक बढ़ गई कि एक संकट मय परिस्थिति उत्पन्न हो गई और इसको नियन्त्रित करना आवश्यक हो गया। अक्तूबर १९५३ में इस समस्या पर स्थायी श्रम समिति ने विचार किया। राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश प्रस्थापित किया जो कि तत्पश्चात् औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। मई १९५४ से फैक्टरी तथा खानों के अतिरिक्त इस संशोधित अधिनियम को बागान पर भी लागू कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि किसी भी ऐसे श्रमिक की जो किसी भी मालिक के साथ कम से कम १ साल की निरन्तर अवधि में रोजगार पर लगा रहा है छटनी नहीं हो सकती जब तक उसको एक महीने का लिखित नोटिस नहीं दिया जायगा या उसके बदले में एक महीने की मजदूरी नहीं दी जायगी। इसके अतिरिक्त श्रमिक के लिये क्षतिपूर्ति की भी व्यवस्था है जो हर पूरे साल की नौकरी पर या छः महीने से अधिक नौकरी पर १५ दिन के औसत वेतन के हिसाब से दी जाती है। जबरी छुट्टी के सम्बन्ध में इस बात की व्यवस्था है कि हर ऐसे श्रमिक का जो बदली या आकस्मिक श्रमिक नहीं है और जिसने १ साल से कम की निरन्तर नौकरी नहीं की है उसको क्षतिपूर्ति दी जायगी। ऐसी क्षतिपूर्ति उन सम्पूर्ण दिनों की जिनमें श्रमिक जबरी छुट्टी पर रहा है मूल मजदूरी और महँगाई भत्ता का ५ % के हिसाब से होगी। परन्तु एक वर्ष में यह अधिक से अधिक ४५ दिनों के लिए दी जाएगी अगर इस अवधि में श्रमिक को पुनः जबरी छुट्टी नहीं दी जाती है।

अन्य महत्वपूर्ण संशोधन बैंकिंग विवादों के सम्बन्ध में हुए हैं। अप्रैल १९५४ में श्रम अपीलीय अधिकरण ने अखिल भारतीय औद्योगिक अधिकरण (बैंक विवाद) के पंच फैसले पर अपना निर्णय दिया जो कि 'शास्त्री' अधिकरण के रूप में जाना जाता है। कानून द्वारा सरकार को निर्णयों के सम्बन्ध में सोच विचार करने के लिए प्रदान की गई ३ दिन की अवधि को परिस्थितियों को देखते हुए अपर्याप्त समझा गया था। अतः १९५ के औद्योगिक विवाद अपीलीय अधिकरण अधिनियम में एक अध्यादेश द्वारा संशोधन किया गया जिससे अवधि ३० दिन से बढ़ाकर ९२ दिन कर दी गई। विषय पर विचार करने के बाद २४ अगस्त सन् १९५४ को सरकार ने एक आदेश जारी किया जिसके अन्तर्गत श्रम अपीलीय अधिकरण के निर्णय को कई बातों में संशोधित कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप श्री वी वी गिरि ने श्रम मंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया तथा बैंक कर्मचारियों द्वारा घोर असंतोष व्यक्त किया गया व सांकेतिक हड़ताल हुई। सरकार ने न्यायाधीश श्री एस राजाध्यक्ष की अध्यक्षता में अनेक प्रश्नों पर जांच कराई। दुर्भाग्यवश फरवरी १९५५ में न्यायाधीश राजाध्यक्ष का स्वर्गवास हो गया। उनके स्थान पर न्यायाधीश श्री पी गजेन्द्रगडकर नियुक्त किए गए। गजेन्द्रगडकर आयोग ने विस्तृत जांच पड़ताल के पश्चात् जुलाई १९५५ में सरकार को अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। सरकार ने आयोग की सभी सिफारिशें स्वीकार कर लीं। इन सिफारिशों को लागू करने के हेतु आवश्यक

विधान भी बनाया गया था औद्योगिक विवाद (बैंक कम्पनी) निर्णय अधिनियम के नाम से अक्टूबर १९५५ में पारित हुआ। १९५८ में इसमें कुछ महँगाई भत्ते से सम्बन्धित संशोधन कर दिए गए हैं।

अन्य महत्त्वपूर्ण संशोधन अगस्त १९५६ में औद्योगिक विवाद (संशोधन और विविध उपबंध) के नाम से हुआ है। इस अधिनियम में सन् १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम तथा सन् १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थाई आदेश) अधिनियम में अनुभव की जा रही आवश्यकताओं को पूरा किया है। इस अधिनियम के द्वारा सन् १९५० के औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण अधिनियम) को निरसित कर दिया गया। अधिनियम की मुख्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं — (१) कर्मचारी शब्द की नई परिभाषा की गई है और इसके अन्तर्गत उन निरीक्षक कर्मचारियों को भी सम्मिलित कर लिया गया है जिनकी मासिक आय ५०० रु० से कम है तथा जो मुख्यतः प्रबन्धक का कार्य नहीं करते। सभी तकनीकी कर्मचारी भी इस नई परिभाषा के अन्तर्गत आ जाते हैं। (२) कोई भी मालिक कुछ विशेष मामलों में जैसे मजदूरी प्राविडेन्ट फण्ड में अंशदान कार्य के घण्टे आदि में श्रमिकों को २१ दिन की सूचना दिए बिना कोई परिवर्तन नहीं कर सकता। (३) मालिकों को यह अधिकार दे दिया गया है कि अगर किसी विवाद के मामले पर विचार भी हो रहा है तब भी अगर आवश्यक समझें तो श्रमिक के विरुद्ध ऐसे मामले में कार्यवाही कर सकते हैं जिसका विवाद से कोई सम्बन्ध न हो। परन्तु ऐसी कार्यवाही द्वारा यदि श्रमिक को बर्खास्त किया जाता है तो संघर्ष से सम्बन्ध रखने वाले अधिकारी की आज्ञा लेना अनिवार्य है। (४) सन् १९५० के औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम को निरसित कर दिया गया है तथा अधिकरणों की वर्तमान प्रणाली को अब अधिकरणों के त्रिश्रेणी पद्धति द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है। ये न्यायालय निम्नलिखित हैं — (क) श्रम अदालत (ख) औद्योगिक अधिकरण तथा (ग) राष्ट्रीय अधिकरण। श्रम अदालत का कार्य कुछ छोटे विषय प्रश्नों पर निर्णय करना है। औद्योगिक अधिकरणों का क्षेत्र अधिक विस्तृत है तथा मजदूरी भत्ते कार्य के घंटे छुट्टी अवकाश तथा बोनस जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों से सम्बन्धित है। राष्ट्रीय अधिकरण की स्थापना केन्द्रीय सरकार द्वारा होती है और इनका कार्य उन विवादों पर निर्णय देना होता है जो राष्ट्रीय महत्त्व के हैं तथा जो एक से अधिक राज्यों में स्थापित संस्थाओं को प्रभावित करते हैं। (५) अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि दोनों पक्ष किसी भी विवाद को स्वयं ही एक लिखित समझौते द्वारा पंच फैसले के लिए सौंप सकते हैं। इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई है कि सुलह कार्यवाही के अतिरिक्त अगर कोई और समझौता होता है तो उसको भी मालिकों व श्रमिकों पर लागू किया जा सके। (६) इस अधिनियम के अन्तर्गत १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम में भी कुछ आवश्यक संशोधन किए गए हैं। (जिनका ऊपर उल्लेख किया

जा चुका है — देख पृष्ठ १९२) ।

सितम्बर १९५३ में एक और संशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत १९५१ के संशोधित अधिनियम में जबरी छुट्टी व छटनी के समय क्षतिपूर्ति देने के विषय में उत्पन्न हुए कुछ संदेहों का समाधान कर दिया गया। अब ऐसी शर्तें भी लागू कर दी गई हैं जिनके अन्तर्गत एक संस्थान के प्रबन्ध अथवा स्वामित्व के हस्तांतरण होने के समय भी श्रमिकों को छटनी क्षतिपूर्ति दी जा सके। परन्तु नवम्बर १९५६ में सर्वोच्च न्यायालय ने निर्णय दिया कि किसी उद्योग के उचित तथा वास्तविक रूप से बन्द होने तथा उसका एक मालिक से दूसरे मालिक को हस्तांतरण होने की अवस्था में यदि श्रमिक की नौकरी समाप्त कर दी जाती है तब उसे कोई छटनी क्षतिपूर्ति नहीं दी जाएगी। इसके परिणामस्वरूप श्रमिकों को काफी कठिनाइयाँ हुई क्योंकि अहमदाबाद कानपुर तथा पश्चिमी बंगाल में कई संस्थान बन्द हो गए और उन्होंने अपने श्रमिकों को जो नौकरी से अलग हो गए थे कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी। अतः सरकार ने अप्रैल १९५७ म एक अध्यादेश जारी किया जो जून १९५७ के औद्योगिक विवाद (संशोधन) अधिनियम के द्वारा विस्थापित कर दिया गया। इसके अनुसार किसी भी उद्योग के उचित बन्द होने तथा स्वामित्व के हस्तांतरण होने पर भी छटनी क्षति पूर्ति दी जाएगी। इसको १ दिसम्बर १९५६ से कार्यशील किया गया। इस बात की व्यवस्था की गई है कि कोई क्षतिपूर्ति उस समय नहीं दी जाएगी जबकि श्रमिक को उद्योग के हस्तांतरण की अवस्था में ऐसी शर्तों पर पुनः कार्यों पर लगा लिया जाता है जो पहले से कम अनुकूल नहीं है अथवा यदि उद्योग किसी निर्माण कार्य में व्यस्त है और कार्य के पूरा हो जाने के कारण दो ही वर्षों में बन्द हो गया है। इस बात की भी व्यवस्था है कि अगर कोई व्यवसाय मालिक की शक्ति से बाहर की परिस्थितियों के कारण बन्द हुआ है तब श्रमिक को अधिक से अधिक मिलने वाली क्षतिपूर्ति उसकी तीन मास की औसत आय के बराबर होगी।

इस प्रकार १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित हैं — (१) मालिक मजदूर समितियाँ (२) सुलह और विवाचन व्यवस्था (३) हड़ताल और तालाबन्दी (४) जबरी छुट्टी और छंटनी के समय क्षतिपूर्ति।

स्थाई श्रम समिति द्वारा नियुक्त एक उपसमिति की सिफारिशों के आधार पर सरकार १९४७ के अधिनियम में पुनः संशोधन करने का विचार कर रही है। यह सिफारिशें निम्नलिखित हैं — (१) कटुनमेंट बोर्ड के विवादों को केन्द्रीय क्षेत्र में ले लिया जाए (२) 'उद्योग' शब्द की परिभाषा में इस प्रकार संशोधन किया जाए कि उसमें व्यावसायिक संस्थाएँ भी आ जाएँ (३) हवाई यातायात को स्थाई रूप से सार्वजनिक सेवा घोषित कर दिया जाए (४) जो व्यक्ति औद्योगिक अधिकरणों में नियुक्ति के योग्य हों उनको श्रम न्यायालयों में भी नियुक्ति दी जा सके (५) विवाचन के लिए जो विषय हों उनमें संशोधन करने या उनमें और विषय

थोड़न का अधिकार सम्बन्धित सरकार को होना चाहिए (६) विवाचन कार्यवाही के काल में हड़ताल और तालाबन्दी निषिद्ध होनी चाहिए।

बम्बई, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश, मैसूर, ट्रावनकोर, कोचीन तथा जम्मू व कश्मीर एवं पत्रकार श्रमजीवी के लिए औद्योगिक विवादों से सम्बन्धित पृथक अधिनियम बनाए गए हैं। सन् १९५० के ट्रावनकोर कोचीन औद्योगिक विवाद (समझौता) अधिनियम तथा सन् १९५० का जम्मू व कश्मीर औद्योगिक विवाद अधिनियम की धाराएं सन् १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम की मूल धाराओं के समान हैं। ट्रावनकोर कोचीन अधिनियम में कॉफी, चाय व रबड़ की कृषि व उत्पादन में संलग्न श्रमिक भी सम्मिलित किए गए हैं। अब केरल में १९५६ में एक औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम पारित किया जा रहा है। इस नए अधिनियम में विवादों के निपटारे के लिए आपसी बातचीत और वार्ता विधा पर अधिक जोर दिया गया है और इसमें प्रतिद्वन्दी संघों की समस्या पर भी प्रकाश डाला गया है। एक सरकारी औद्योगिक सम्बन्ध बोर्ड स्थापित करने का भी उपबन्ध है। जम्मू व कश्मीर अधिनियम की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि वह अधिनियम के सम्बन्ध में उत्पन्न होने वाली कठिनाइयों को दूर करने के लिए कोई भी पग उठा सकती है। सन् १९५३ में पंजाब सरकार ने एक अध्यादेश पंजाब औद्योगिक विवाद (कार्यवाहियों की वैधता) अध्यादेश जारी किया जिसमें औद्योगिक अधिकरणों के कार्यों के सम्बन्ध में कुछ धाराओं को स्पष्ट किया गया था। अब बम्बई, उत्तरप्रदेश के अधिनियमों का संक्षिप्त वर्णन किया जाएगा।

सन् १९४६ का बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम —

बम्बई ही पहला राज्य था जिसने कि औद्योगिक विवादों की रोकथाम तथा समझौते के लिए अपना स्वयं का अधिनियम पारित किया। १९३४ में इसने औद्योगिक विवाद समझौता अधिनियम पास किया था कि तत्पश्चात् सन् १९३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा विस्थापित कर दिया गया। इसमें युद्ध के समय कुछ संशोधन भी हुए थे। जब युद्ध समाप्त हो गया तब सरकार ने अधिनियम की पुनः जाँच की और १९४७ में एक व्यापक अधिनियम पारित किया जो कि सन् १९४६ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम का आधार भी १९३८ के अधिनियम के समान ही है, परन्तु १९३८ के अधिनियम के अन्तर्गत जो समझौता व्यवस्था की गई थी और जो व्यवस्था केन्द्रीय सरकार के १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम में थी उनको इस अधिनियम में पूर्ण और दृढ़ कर दिया गया है। इस अधिनियम में अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था करके विवाचन का क्षेत्र विस्तृत कर दिया है। इसके अतिरिक्त पहली बार औद्योगिक न्यायालय की स्थापना की भी व्यवस्था की गई है ताकि स्थायी आदेशों तथा काम की दशाओं में वर्तमान परिवर्तनों के सम्बन्ध में शीघ्र और पक्षपातहीन

निर्णय हो सकें। इस अधिनियम में ऐसी संयुक्त समितियों की स्थापना की भी व्यवस्था है जिसमें विभिन्न पेशों तथा उद्योग के संस्थानों के मालिकों एवं श्रमिकों के समान संख्या में प्रतिनिधि हों। १९४८ में इस अधिनियम में एक अन्य संशोधन द्वारा राज्य सरकार को विभिन्न उद्योगों में मजदूरी बोर्डों की स्थापना करने का अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत किसी विवाद का शीघ्र सुलझाने के लिए पंजीकृत संघों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वे विवाचन के लिए औद्योगिक न्यायालयों के पास सीधा प्रार्थना पत्र दे सकते हैं।

१९५१ के एक संशोधन द्वारा 'कर्मचारी' की परिभाषा का विस्तृत कर दिया गया है और औद्योगिक न्यायालय श्रम न्यायालय तथा मजदूर बोर्डों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वे किसी भी औद्योगिक विषय या विवाद से सम्बन्धित या उत्पन्न हुए प्रश्न पर निर्णय दे सकते हैं। इससे कार्यवाहियों में बाहुल्यता (Multiplicity) समाप्त हो गई है। बम्बई अधिनियम की एक अन्य महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि समझौता कार्यवाहियों में श्रमिक संघों को एक आवश्यक भाग के रूप में मान्यता देता है और अनेक सुविधाओं से युक्त एक नए वर्ग के संघ का निर्माण किया है जिसको अनुमोदित (Approved) संघ का नाम दिया है। ऐसा संघ तभी कहा जाएगा जब कोई संघ इस बात की शर्त मान लेगा कि समझौते के असफल हो जाने पर सभी विवाद पंच-फैसले को सौंप दिये जाएंगे और उस समय तक कोई भी हड़ताल नहीं की जायेगी जब तक कि अधिनियम में उल्लिखित समझौते के सभी साधन समाप्त न हो जावें तथा श्रमिकों का बहुमत ऐसी हड़ताल के पक्ष में न हो। जैसा कि पूर्व अधिनियम में था इस अधिनियम के अन्तर्गत भी श्रम अधिकारी और जाँच-न्यायालय तथा समझौताकारी की नियुक्तियों की व्यवस्था है। कुछ कानूनी बाधाओं को दूर करने के लिए इस अधिनियम में सन् १९५३ व १९५६ में संशोधन किये गये।

सन् १९४७ का उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम —

उत्तर प्रदेश में औद्योगिक विवाद अधिनियम सन् १९४७ में पारित किया गया जोकि १ फरवरी १९४८ से लागू किया गया। यह अधिनियम सरल है तथा सन् १९४७ के केन्द्रीय सरकार द्वारा पारित औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकार को अधिकार प्रदान करता है। यह बम्बई के अधिनियम के समान संघों के वर्गीकरण की कोई व्यवस्था नहीं करता और न ही समझौता और विवाचन के लिए कई प्रकार की एजेन्सियों की इसमें व्यवस्था है। परन्तु यह राज्य सरकार को इस बात का अधिकार देता है कि वह हड़तालों और तालाबन्दी को निषेध घोषित कर सके तथा मालिकों और मजदूरों को बाध्य कर सके कि वे रोजगार की विशेष शर्तों को लागू करें। राज्य सरकार औद्योगिक न्यायालय भी स्थापित कर सकती है। उसे यह भी अधिकार है कि किसी भी विवाद को सुलह या विवाचन के लिए सौंप दे और विवाचन निर्णय को सम्बन्धित पक्षों पर लागू कर दे। सार्वजनिक उपयोगी

सवाओं पर भी सरकार नियन्त्रण रख सकती है ताकि ऐसी सेवाओं की पूर्ति निरन्तर होती रहे और इस प्रकार सार्वजनिक सुरक्षा आराम और रोजगार में कोई विघ्न न पड़े। मई १९४८ के प्रारम्भ मे सरकार के आदेशानुसार राज्य के श्रम विभाग के अनेक अधिकारियों को विशेष क्षेत्रों मे समझौताकार के रूप में नियुक्त किया गया तथा औद्योगिक विवादों का सुलझाने के लिए कई क्षेत्रीय और प्रान्तीय सुलह बोर्ड और औद्योगिक न्यायालयों की स्थापना की गई। सूती कपड़ा चीनी काँच चमड़ा विद्युत और इन्जीनियरिंग उद्योगों के लिये क्षेत्रीय सुलह बोर्ड स्थापित किये गये और इनके लिये कानपुर, लखनऊ, आगरा और प्रयाग में औद्योगिक न्यायालय भी स्थापित किये गये। अगस्त १९५० मे इस अधिनियम में संशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत सरकार को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि ऐसे जन उपयोगी सेवा संस्थानों के प्रबन्ध को जो बन्द हो गये हों अथवा बन्द होने को हों अपने नियन्त्रण में ले ले।

सन् १९५१ में उत्तर प्रदेश मे औद्योगिक शान्ति को स्थापित करने की जो व्यवस्था थी इसका पुनर्संगठन हुआ। विशेष उद्योगों के लिये जो क्षेत्रीय सुलह बोर्ड थे उनको समाप्त कर दिया गया। और यह व्यवस्था कर दी गई कि हर क्षेत्र का सुलह अधिकारी ही किसी भी उद्योग से शिकायत प्राप्त पर या सरकार द्वारा निर्देश पाने पर सुलह बोर्ड का काम करेगा। इस प्रकार के बोर्ड का कर्त्तव्य केवल सुलह कराना और समझौते की संभावना के लिये यत्न करना होता है और यदि किसी समझौते की संभावना नहीं है तो अपनी रिपोर्ट श्रम कमिश्नर और सरकार को यह बोर्ड भेज देता है। फिर किसी उचित कार्यवाही के लिए आगे कदम उठाया जाता है। उदाहरणार्थ अगर आवश्यक हो तो विवाचन के लिए मामला सौंप दिया जाता है। औद्योगिक न्यायालयों को भी भंग कर दिया गया तथा पूरे राज्य के लिये इलाहाबाद में एक औद्योगिक अधिकरण की स्थापना कर दी गई। सरकार अपनी इच्छा से या सुलह बोर्ड की सूचना पर किसी भी मामले को विवाचन के लिए किसी विवाचक को या इलाहाबाद के राज्य औद्योगिक अधिकरण को सौंप सकती है तथा उसके निर्णय को लागू कर सकती है। इसके विरुद्ध अपील सन् १९५० के अधिनियम के अन्तर्गत निर्मित अखिल भारतीय श्रम अपीलीय न्यायालय में १९५६ तक जब कि अपीलीय न्यायालय समाप्त नहीं हुए थे की जा सकती थी। फरवरी १९५१ में एक संशोधन के द्वारा विवाचक और औद्योगिक अधिकरण द्वारा निर्णय देने की अवधि जो मूल आदेश में मामले का सौंपने की तिथि से ४० दिन थी अब १८० दिन कर दी गई। सन् १९५४ में एक और संशोधन द्वारा सुलह अधिकारियों को यह अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि व कुछ परिस्थितियों में प्रार्थना-पत्र लेने से इन्कार कर सकते हैं ताकि निरर्थक शिकायतों को रोका जा सके। और औद्योगिक अधिकरण व विवाचक को अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि वह लिपि या हिसाब की अशुद्धियों को ठीक कर सकते हैं। राज्य में सात क्षेत्रीय सुलह कार्यालय — कानपुर, इलाहाबाद गोरखपुर, लखनऊ, आगरा बरेली और मेरठ में स्थापित किये गये हैं। अब

कमिश्नर और उप-श्रम-कमिश्नर पूर्ण राज्य के लिए मुख्य अधिकारी हैं। हर क्षेत्र में मुख्य अधिकारियों के अतिरिक्त अब १९५९ से एक सहायक श्रम कमिश्नर की भी नियुक्ति हो गई है। इनकी संख्या इस समय ७ क्षेत्रों में ६ है (गोरखपुर और इलाहाबाद क्षेत्रों के लिए केवल एक सहायक श्रम कमिश्नर है)।

सन् १९४७ के अधिनियम में एक अन्य संशोधन सन् १९५६ के उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद (संशोधन और विविध उपबंध) अधिनियम द्वारा किया गया जो कि अप्रैल १९५७ से लागू हुआ। इस संशोधन द्वारा उत्तर प्रदेश के अधिनियम में भी १९५६ के संशोधित केन्द्रीय अधिनियम के उपबन्धों को लागू कर दिया गया। संशोधित अधिनियम के द्वारा 'कर्मचारी' शब्द की परिभाषा का विस्तृत कर दिया गया है। और राज्य सरकार का इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह औद्योगिक विवादों के निर्णायन के लिए एक या अधिक श्रम-न्यायालय और औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना कर सकती है। श्रम-न्यायालय का अधिकार क्षेत्र केवल उन विषयों तक है जिनका उल्लेख अधिनियम की अनुसूची (Schedule) नं० १ में किया गया है। इसके अन्तर्गत स्थायी आदेश छटनी या बरखास्तगी उनका पुन नौकर रखना श्रमिकों की सुविधायें और अधिकार, हड़तालों और तालाबन्दियों की वैधता निश्चय आदि विषयों से सम्बन्धित तमाम मामले आ जाते हैं। अनुसूची नं० २ में उनसे अधिक महत्वपूर्ण विषय रखे गये हैं। जैसे मजदूरी बोनस भत्ता कार्य करने के घण्टे विश्राम-काल अवकाश और छुट्टियाँ लाभ-विभाजन पारिश्रमिक प्रोवीडेन्ट फण्ड अनुशासन विवेकीकरण छटनी आदि। औद्योगिक अधिकरणों को यह अधिकार भी प्रदान कर दिया गया है कि वे दोनों अनुसूचियों के मामलों को सुन सकता है। यदि निर्णायन का निर्णय एक से अधिक उद्योग संस्थानों को प्रभावित करता है तो सरकार तीन व्यक्तियों के एक विशेष अधिकरण की स्थापना कर सकती है या सरकार को इस बात का भी अधिकार है कि वह अनुसूची नं० २ का भी कोई मामला श्रम न्यायालय को सौंप सकती है अगर ऐसे मामले से १०० से अधिक श्रमिक सम्बन्धित नहीं हैं। अधिनियम की एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें इस बात की व्यवस्था है कि किसी भी विवाद का ऐच्छिक रूप से निर्णायन को सौंपा जा सकता है। मालिक और श्रमिक लिखित समझौते द्वारा चाहे वह संघर्ष अथवा सम्भावित विवाद को किसी विशेष निर्णायक या निर्णायकों को सौंप सकते हैं। मालिकों को यह अधिकार दिए गए हैं कि वे अनुसूची नं० १ में वर्णित विषयों पर श्रमिकों की नौकरी की शर्तों को परिवर्तन करने के लिए सूचना दे सकते हैं। अधिनियम में किसी भी संस्थान के स्वामित्व अथवा प्रबन्ध के परिवर्तन होने की अवस्था में छटनी क्षति पूर्ति के सम्बन्ध में मालिकों की स्थिति को और स्पष्ट किया गया है। इस अवस्था में श्रमिकों को तब तक कोई भी क्षति पूर्ति न दी जायगी जब तक परिवर्तन द्वारा उस श्रमिक की नौकरी में बाधा न पहुँचती हो या जब नौकरी की शर्तें कम अनुकूल हो जाती हों। अथवा नया मालिक छटनी क्षतिपूर्ति देने के लिये श्रमिकों की सेवाओं को निरन्तर नहीं मानता।

इस नये संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने इलाहाबाद में तीन औद्योगिक अधिकरणों की स्थापना कर दी है जो क्रमशः सामान्य सूती तथा चीनी उद्योग धन्धों के लिये हैं। गोरखपुर, कानपुर बरेली और मेरठ में चार श्रम न्यायालयों की स्थापना की गई है। समझौता प्रणाली पूर्व की भांति कार्यशील है। वर्ष १९५९ में क्षेत्रीय सहायक श्रम कमिश्नरों की भी नियुक्ति कर दी गई है।

एक अन्य महत्वपूर्ण संशोधन उत्तर प्रदेश अधिनियम में जुलाई १९५७ में हुआ। इसके अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था है कि किसी संघ का कोई भी अधिकारी किसी भी पक्ष का उस समय तक प्रतिनिधित्व नहीं कर सकता जब तक कि श्रमिक संघ अधिनियम के अन्तर्गत उस संघ को पंजीकृत हुए दो वर्ष व्यतीत न हो गए हों। तथा संघ एक ही व्यवसाय के लिए पंजीकृत किया गया हो। इस बात की भी व्यवस्था है कि किसी भी औद्योगिक संस्थान में हड़ताल एवं तालाबन्दी दूसरे पक्ष को १० दिन की पूर्व सूचना दिये बिना नहीं की जा सकती है। श्रमिक को अधिकार दिया गया है कि वह राज्य सरकार से इस बात की प्रार्थना कर सकता है कि वह उसको मालिकों से उसके बकाया धन की वसूली करवावे। और अगर सरकार संतुष्ट हो जाए तो उस धन की वसूली के लिये जिलाधीश के नाम एक प्रमाण पत्र जारी कर सकती है जो उसकी वसूली उसी प्रकार कर सकता है जैसे कि लगान की बकाया की वसूली की जाती है। यदि राज्य सरकार को इस बात का विश्वास हो जाय कि कोई निर्णय निर्णय धोखे (Fraud) मिथ्या निरूपण (Misrepresentation) या दुरभि-सन्धि (Collusion) द्वारा प्राप्त किया गया है या दिया गया है तो ऐसा निर्णय लागू नहीं होगा। सुलह कार्यवाहियों के अतिरिक्त भी यदि कोई समझौता होता है तो उसकी रजिस्ट्री कराना आवश्यक है ताकि उसे लागू किया जा सके परन्तु वह सामाजिक न्याय के आधार पर रजिस्ट्रेशन को मना किया जा सकता है। उत्तर प्रदेश के इस औद्योगिक विवाद अधिनियम में अब फिर संशोधन करने पर विचार किया जा रहा है और संशोधित विधेयक तैयार किया जा चुका है।

जुलाई १९५८ से उत्तर प्रदेशीय सरकार ने राजकीय उद्योगों और संस्थानों तथा उत्तर प्रदेशीय सहकारी बैंक और उसकी शाखाओं और उत्तर प्रदेशीय सहकारी संघम तथा उत्तर प्रदेशीय दुग्ध पूर्ति सहकारी संघ और शाखाओं जिनमें १०० से अधिक श्रमिक काम करते हों के लिए एक स्थायी सुलह बोर्ड की स्थापना की है। इसका मुख्य कार्यालय लखनऊ में है।

मध्य प्रदेश औद्योगिक विवाद समझौता अधिनियम —

मध्य प्रान्त तथा बरार (मध्य प्रदेश) में मई १९४७ में औद्योगिक विवाद समझौता अधिनियम पारित किया गया था तथा इसमें दिसम्बर १९४७ मई सन् १९५१ तथा नवम्बर सन् १९५२ में संशोधन किये गये थे। प्रथम दो संशोधित अधिनियमों से तो केवल कुछ थोड़े ही संशोधन हुए। परन्तु १९५२ के अधिनियम से कुछ महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। इसके अनुसार श्रमिक के प्रतिनिधि की परिभाषा में संशोधन हुआ। मान्यता प्राप्त श्रमिक संघों को अधिक सदस्य वाले श्रमिक संघों से प्रतिस्थापित करने

का उपबन्ध भी था। सुलह बोर्ड के अधिकारों को भी विस्तृत कर दिया गया और एक अथवा अधिक उद्योगों के लिए मजदूरी बोर्ड की स्थापना की भी व्यवस्था की गई। राज्य सरकार द्वारा कोई भी औद्योगिक विषय जिसका सम्बन्ध मजदूरी कार्य के घण्टे विवेकीकरण न्यूनतम मजदूरी नियुक्ति या छटनी आदि से हो मजदूरी बोर्डों को सौंपे जा सकते हैं। सरकार को मजदूरी बोर्ड के निर्णय को लागू करना होगा। परन्तु यदि वह निर्णय से असहमत हो तब मामले को राज्य विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया जाएगा जो कि निर्णय का स्वीकार अस्वीकार तथा उसमें संशोधन कर सकती है। मध्य प्रदेश का यह अधिनियम बम्बई के औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम पर ही लगभग आधारित है यद्यपि इसकी धारायें बम्बई के अधिनियम की तरह व्यापक नहीं हैं। इसके अन्तर्गत मालिकों द्वारा अनिवार्य रूप से स्थायी आदेशों को बनाने का उल्लेख है। किसी भी औद्योगिक मामले में परिवर्तन करने के लिये १४ दिन की सूचना देनी आवश्यक है और यदि वह असहमत हो तब समझौता कार्यवाही की अवधि में उनको हड़ताल एवं तालाबंदी को रोकने की भी व्यवस्था है। अधिनियम के अन्तर्गत एक स्थायी सुलह व्यवस्था का उपबन्ध है जिसके अन्तर्गत समझौताकार, विशेष समझौताकार, मुख्य समझौताकार, जिला औद्योगिक न्यायालय तथा राज्य औद्योगिक न्यायालय आ जाते हैं। एक श्रम अधिकारियों की व्यवस्था है जो विशेष परिस्थितियों में श्रमिकों के प्रतिनिधियों का कार्य कर सकते हैं। १९५५ के संशोधन के अनुसार सुलह बोर्ड और मालिक मजदूर समितियां भी तमाम उद्योगों में स्थापित की जा सकती हैं। अधिनियम के अन्तर्गत यदि सम्बन्धित पक्ष चाहें तो विवाचन की भी व्यवस्था है। राज्य सरकार को अधिकार है कि यदि वह यह समझे कि जन साधारण की सुरक्षा और सुविधा के विचार से इस प्रकार का पग आवश्यक है तब वह अपनी ही इच्छा से किसी भी औद्योगिक विवाद को राज्य औद्योगिक न्यायालय को विवाचन के लिये सौंप सकती है। संघ की कार्यवाही में भाग लेने पर किसी भी श्रमिक को दण्ड देना या सताना मालिकों के लिए गैरकानूनी कर दिया गया है। मध्य प्रदेश सरकार ने अप्रैल १९६० में एक विधेयक को परिचालित किया है जिसका नाम मध्य प्रदेश औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक है। इसके अन्तर्गत राज्य में उद्योग सम्बन्धी जो भी विधान हैं उनको संयोजित कर उनमें उन्नति करने की व्यवस्था है। यह विधेयक १९६ में पास होकर अब अधिनियम बन गया है। इस १९६ के अधिनियम में औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए उपबन्ध है और कई प्रकार की व्यवस्थाएँ की गई हैं जैसे प्रतिनिधित्व श्रमिक संघों को मान्यता देना श्रम अधिकारियों की नियुक्ति, संयुक्त समितियाँ श्रम न्यायालय औद्योगिक न्यायालय जांच न्यायालय विवाचन बोर्ड आदि की स्थापना तथा हड़तालों और तालाबन्दियों को अवैध घोषित करने के लिए उपबन्ध आदि है।

औद्योगिक विवाद विधान की संक्षिप्त समीक्षा —

अब हम भारतवर्ष में औद्योगिक विवादों को रोकने तथा सुलझाने सम्बन्धी सभी उपायों की संक्षिप्त समीक्षा करेंगे। १९२९ का व्यापार विवाद अधिनियम

जिसके अन्तर्गत औद्योगिक विवादों के निपटारे के लिए एक अस्थायी बाह्य व्यवस्था की गई थी पहला कानून था जिसमें इस बात का उपबन्ध था कि भारत में औद्योगिक विवाद रोकने और निपटारे के लिए कोई वैधानिक व्यवस्था स्थापित की जाए। परन्तु इस अधिनियम में भी इस बात की कोई व्यवस्था न थी कि कोई ऐसी आन्तरिक व्यवस्था की जाये जिससे पारस्परिक बातचीत द्वारा प्रारम्भिक अवस्था में ही विवादों को निपटाया जा सके। अधिनियम का यह दोष सन् १९३८ के एक संशोधन द्वारा दूर किया गया जिसमें कि सुलह अधिकारियों की नियुक्ति का प्रबन्ध था। बम्बई में सन् १९३८ के बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम में न केवल विवाचकों उत्साहकारों आदि की नियुक्ति की व्यवस्था थी बल्कि औद्योगिक न्यायालय के रूप में एक स्थायी व्यवस्था का भी प्रबन्ध था जिससे भारतवर्ष में श्रम न्यायालयों का प्रारम्भ हुआ। यद्यपि अब भी आंतरिक व्यवस्था की अपेक्षा बाह्य व्यवस्था पर अधिक बल था। परन्तु युद्ध के बाद के वर्षों में अधिक उद्योग अशांति के कारण आंतरिक व्यवस्था की आवश्यकता अनुभव की गई। भारत सरकार ने १९४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया और कुछ प्रान्तीय सरकारों जैसे बम्बई मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश ने भी केन्द्रीय अधिनियम के आधार पर अधिनियम बनाये। औद्योगिक झगड़ों को रोकने के लिए तथा निपटारे के लिये आंतरिक तथा बाह्य व्यवस्था दोनों की गई है।

जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है सरकार द्वारा औद्योगिक शांति बनाए रखने की जो व्यवस्था है वह इस प्रकार है — (१) परामर्श व्यवस्था तथा (२) सुलह व विवाचन व्यवस्था। औद्योगिक विवाद विधान के अन्तर्गत मालिक मजदूर समितियाँ श्रम तथा सुलह अधिकारी औद्योगिक न्यायालय श्रम न्यायालय औद्योगिक अधिकरण तथा राष्ट्रीय अधिकरण आदि की व्यवस्था है। केन्द्रीय क्षेत्र के संस्थानों के लिए एक मुख्य श्रम आयुक्त की नियुक्ति की गई है जिसका कार्य औद्योगिक सम्बन्धों को भी देखना है। इसकी सहायता के लिए क्षेत्रीय श्रम आयुक्त सुलह अधिकारी और श्रम निरीक्षक हैं। औद्योगिक विवादों के विवाचन के लिए श्रम न्यायालय औद्योगिक अधिकरण तथा राष्ट्रीय न्यायालय स्थापित किए गए हैं जिनका अपना अपना अधिकार क्षेत्र है। देहली में एक श्रम न्यायालय है और बम्बई में दो तथा धनबाद में एक औद्योगिक अधिकरण है। देहली में भी एक औद्योगिक अधिकरण बना दिया गया है जिसका उपयोग केन्द्रीय सरकार भी कर लेती है। राज्य सरकारों ने भी सुलह के लिए व्यवस्था की है जिसके अध्यक्ष श्रम आयुक्त होते हैं। राज्यों में भी अधिकरण और श्रम न्यायालय स्थापित हो गए हैं। उत्तर प्रदेश में सरकारी औद्योगिक संस्थानों के लिए तथा सहकारी संघों व बैंक के लिए एक स्थायी सुलह बोर्ड तथा मालिक मजदूर परिषदों की स्थापना की गई है। इस प्रकार हम देखते हैं कि देश में औद्योगिक विवादों को सुलझाने तथा उनकी रोकथाम के लिए एक व्यापक व्यवस्था की गई है।

कार्यान्वित व्यवस्था — (Implementation Machinery)

श्रम सम्बन्धी विधायन निर्णय समझौते तथा विधान को लागू न करने या लागू करने में देर के कारण सदा शिकायतें आती रहती हैं तथा इस कारण औद्योगिक विवाद भी हो जाते हैं। इन सब का लागू न करना एक वैध अपराध तो है और इसके लिए दण्ड की व्यवस्था भी है परन्तु अनुभव से यह पता चलता है कि इससे तनाव और कटुता कम नहीं होती और दण्ड आदि से औद्योगिक सम्बन्ध अच्छे नहीं बनते। इसलिए स्थायी श्रम समिति ने इस समस्या पर अक्तूबर १९५७ में अपने १६वें अधिवेशन में विचार किया। इसकी सिफारिशों के आधार पर केन्द्र में और राज्यों में इस बात की विशेष व्यवस्था कर दी गई है कि श्रम सम्बन्धी विधायन निर्णय समझौते आदि और अनुशासन संहिता उचित प्रकार से कार्यान्वित हों। इस का प्रारम्भ जनवरी १९५८ में हुआ जबकि केन्द्रीय श्रम व रोजगार मंत्रालय में एक कार्यान्वित विभाग खोला गया। (Implementation Cell) शीघ्र ही इसके कार्यों का विस्तार हो गया और एक केन्द्रीय मूल्यांकन तथा कार्यान्वित प्रभाग (Central Evaluation and Implementation Division) की स्थापना हो गई। जून १९५८ में एक त्रिदलीय केन्द्रीय कार्यान्विति समिति भी बनाई गई जिसके अध्यक्ष केन्द्रीय श्रम मंत्री हैं। सब राज्य सरकारों ने भी अब अपने श्रम विभागों में कार्यान्वित प्रभाग खोल दिए हैं तथा त्रिदलीय कार्यान्वित समितियाँ स्थापित कर दी हैं। केन्द्रीय प्रभाग राज्यों की कार्यान्वित व्यवस्था में समन्वय स्थापित करता है तथा नीति में समानता लाता है। राज्यों के कार्यान्वित अधिकारियों की समय समय पर बैठकें होती रहती हैं।

केन्द्रीय मूल्यांकन तथा कार्यान्वित प्रभाग के मुख्य कार्य निम्नलिखित हैं — (१) यह देखना कि अनुशासन संहिता आचरण संहिता श्रम सम्बन्धी विधान विधायन निर्णय समझौते आदि उचित प्रकार से लागू हो रहे हैं ताकि औद्योगिक विवादों के मुख्य कारणों की आरम्भ में ही रोकथाम की जा सके (२) औद्योगिक विवादों की रोकथाम के लिए कुछ प्रारम्भिक पग उठाना ताकि ऐसे विवाद हानि कारक न हो जाएँ और बहुत दिनों तक न चलते रहें (३) कुछ मुख्य हड़तालों तालाबन्दियों और विवादों का मूल्यांकन करना ताकि यह जाना जा सके कि उनका उत्तरदायित्व किस पर है। इसके अतिरिक्त यह प्रभाग श्रम सम्बन्धी विधान विधायन निर्णय नीति तथा अन्य निर्णयों का भी मूल्यांकन करता है और इस बात को देखता है कि जिस उद्देश्य से यह सब बनाए गए हैं वह उद्देश्य पूरे हो रहे हैं या नहीं तथा उनमें और क्या सुधार किए जा सकते हैं।

१९५० का श्रम-सम्बन्ध विधेयक — (The Labour Relations Bill 1950)

उल्लिखित अधिनियमों से जो अनुभव हुआ उसको देखते हुए सरकार ने औद्योगिक विवादों सम्बन्धी विधान में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन करने के विषय में गम्भीरतापूर्वक विचार किया और इसके परिणामस्वरूप १९५० का श्रम सम्बन्ध

विधेयक संसद में प्रस्तुत किया गया । इस श्रम सम्बन्ध विधेयक ने नये उपायों का मार्ग प्रशस्त किया और विवादों को सुलझाने के लिए आंतरिक एवं बाह्य व्यवस्था पर जोर दिया । स्थायी आदेश सामूहिक सौदाकारी छंटनी काम मन्दन नीति आदि के लिए कई अधिकारियों की नियुक्ति के लिए उपबन्ध थे । किसी समझौते सामूहिक करार, आदि तथा पंचाट का उल्लंघन करने अथवा किसी भी अवैध हड़ताल तथा तालाबन्दी को घोषित करने पर कठोर दण्ड की व्यवस्था थी । उपयुक्त मामलों में सरकार को किसी भी संस्थान का अपने नियंत्रण में लाने का अधिकार था।

इस विधेयक की कई आधारों पर कठोर आलोचना की गई और सरकार ने विधेयक के पास होने में विलम्ब किया तत्पश्चात् यह व्यपगत (Lapse) हो गया । श्री वी वी गिरि के केन्द्रीय सरकार के श्रम मंत्री के रूप में आने पर औद्योगिक सम्बन्धों की समस्याओं के प्रति बिल्कुल दूसरा दृष्टिकोण अपनाया गया । जुलाई १९५२ में सरकार ने विधेयक की धाराओं के सम्बन्ध में जनमत जानने के लिए एक प्रश्नावली तैयार की और इसका परिचालन भी किया । इसके ऊपर जो भी मत आए उन पर अक्तूबर १९५२ में नैनीताल में हुए त्रिदल श्रम सम्मेलन में विचार किया गया । श्री वी वी गिरि ने ऐच्छिक समझौता तथा ऐच्छिक विवाचन के साधनों पर अपना दृढ़ विश्वास प्रकट किया । सम्मेलन ने औद्योगिक विवादों के विभिन्न स्वरूपों पर विचार करने के लिए ७ सदस्यों की एक समिति की नियुक्ति की । दिसम्बर १९५२ में समिति की सभा हुई जिसमें समस्या से सम्बन्धित विभिन्न महत्त्वपूर्ण विषयों पर विचार विमर्श किया गया । फरवरी १९५३ में श्रम मंत्रियों के सम्मेलन में इस विधेयक पर पुन विचार किया गया । परन्तु विधेयक को संसद के सामने लाने में पुन विलम्ब कर दिया गया । मार्च १९५४ में कांग्रेसी संसदीय दल ने इस विलम्ब पर असंतोष प्रकट किया । ३१ मार्च १९५४ को श्री गिरि ने संसद में घोषणा की कि एक व्यापक श्रम सम्बन्धी विधेयक की रूपरेखा तैयार की जा चुकी थी और संसद में प्रस्तुत होने से पूर्व केवल मंत्रीमण्डल की स्वीकृति लेनी थी । परन्तु शीघ्र ही श्री गिरि ने त्यागपत्र दे दिया और अब सरकार ने इस विषय पर नया विधान प्रस्तुत करने के स्थान पर सन् १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम में संशोधन कर दिया है । इस संशोधन का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है ।

पंचवर्षीय आयोजनाओं में औद्योगिक सम्बन्ध

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने अनुभव किया कि औद्योगिक शांति की दृष्टि से कई औद्योगिक विवादों में वैधानिक व्यवस्था ने विशेष योगदान नहीं दिया था । इसका विचार था कि निर्णय देने में अत्यधिक देरी होती थी और कई मामलों में निर्णय परिस्थिति की वास्तविक आवश्यकता से दूर हट गए थे । उसने यह भी अनुभव किया कि औद्योगिक और श्रम न्यायालयों में कार्य का स्तर कम हो गया है और काम के निपटाने की गति भी मंद थी । अत आयोजना आयोग का मत था कि विवाद को निपटाने का सबसे उपयुक्त साधन किसी भी तीसरे

पक्ष के हस्तक्षेप के बिना श्रमिकों एवं मालिकों के बीच स्वयं ही झगड़ों पर आपसी समझौता करना था । आयोग अपीलीय अधिकरण के पक्ष में नहीं था । उसके अनुसार औद्योगिक न्यायालयों या अधिकरणों के निर्णय के विरुद्ध कोई अपील नहीं होनी चाहिए सिवाय उन विशेष मामलों के जिनमें निर्णय विप्रतीप तथा स्वाभाविक न्याय के विरुद्ध मालूम हो । परन्तु आयोग का मत किसी ऐसी व्यवस्था के विरुद्ध नहीं था जिससे कुछ विशेष विवादों को निपटाने में न विलम्ब हो और न अधिक व्यय हो । औद्योगिक झगड़ों का सुलझाने के लिए जो भी व्यवस्था की जाए वह निम्नलिखित पाँच सिद्धांतों पर आधारित होनी चाहिए — (क) वैधानिक विधियों और कार्यवाही की औपचारिकता (technicalities) जितनी भी कम हो सके कम कर देनी चाहिए । (ख) प्रत्येक मामले की प्रकृति और महत्त्व के अनुसार अन्तिम और शीघ्र निपटारा होना चाहिए । (ग) न्यायालयों या अधिकरणों में केवल प्रशिक्षण पाए हुए विशेषज्ञों की नियुक्ति होनी चाहिए । (घ) असाधारण मामलों को छोड़कर इन न्यायालयों के विरुद्ध अपील कम कर देनी चाहिए । (ङ) पंच फैसले को शीघ्र से शीघ्र लागू करने की व्यवस्था होनी चाहिए ।

आयोग ने एकरूपता को लाने के लिए और अधिकरणों को मार्ग बताने के लिए आपसी सम्बन्धों को नियमित करने वाले कुछ आदर्श नियमों की स्थापना की सिफारिश भी की थी । सरकार, श्रमिक और मालिक की त्रिदलीय प्रतिनिधि समितियों द्वारा इस प्रकार के आदर्श नियम बनाने की व्यवस्था थी और किसी मत भेद होने की अवस्था में सरकार को विशेषज्ञों के परामर्श पर निर्णय लेकर इस निर्णय को न्यायालयों या अधिकरणों पर लागू करने का सुझाव था ।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में आयोग ने संकेत किया है कि औद्योगिक संबंधों का मुख्य उद्देश्य औद्योगिक शांति स्थापित करना होना चाहिए जिसके लिए पारस्परिक वार्ता समझौता और ऐच्छिक पंच-फैसले का उपयोग किया जा सकता है और दुस्साध्य या हठी (intractable) मामलों में अनिवार्य पंच-फैसले का प्रयोग भी किया जा सकता है । औद्योगिक सम्बन्धों में अगर काम रुक जाता है तो इस बात की अभावात्मक लोक प्रसिद्धि हो जाती है । इसके प्रतिरोध की आवश्यकता है । इस प्रतिरोध के लिए ऐसे उद्योग धंधों में जिनमें बहुत समय से शांतिपूर्वक काम करने की परम्परा पड़ी हुई है, उन बातों के अध्ययन की आवश्यकता है जिनके कारण औद्योगिक शांति या एकता आ जाती है । आयोग ने औद्योगिक शांति स्थापित करने की दृष्टि से रोक थाम के साधनों को अधिक महत्त्व प्रदान किया है । इसने यह भी सुझाव दिया है कि विवाचन निर्णय तथा समझौतों आदि को न मानने और न लागू करने की अवस्था में कठोर दण्ड की व्यवस्था की जाए । उल्लंघन की अवस्था में निर्णयों को लागू करने का उत्तरदायित्व किसी उपयुक्त अधिकरण को होना चाहिए जिस पर दोनों पक्षों को सीधी पहुँच हो । यह सुझाव दिया गया है कि केन्द्रीय राज्यों और निजी संस्थानों में सभी स्तरों पर एक स्थायी संयुक्त

परामर्श दायी व्यवस्था होनी चाहिए। संस्थानों में इस उद्देश्य से मालिक मजदूर समितियाँ कार्य कर सकती हैं और उनके प्रभावपूर्ण कार्य करने के लिए उनके उत्तरदायित्वों तथा श्रमिक संघों के उत्तरदायित्वों के बीच सीमा स्पष्ट कर देनी चाहिए। संयुक्त परामर्शदात्री बोर्ड का भी पूर्णरूप से उपयोग किया जाना चाहिए। योजना ने श्रम और प्रबन्ध में अधिक सहयोग को बहुत महत्त्व प्रदान किया है जो कि प्रबन्ध परिषदों के द्वारा प्राप्त हो सकता है जिसमें प्रबन्धकों तकनीकी विशेषज्ञों एवं श्रमिकों के प्रतिनिधि हों। इस प्रकार की परिषदों को संस्थान से सम्बन्धित सभी मामलों पर विचार-विमर्श करना चाहिये सिवाय उन मामलों को छोड़कर जो सामूहिक सौदाकारी के अन्तर्गत आते हैं।

तीसरी पंचवर्षीय आयोजना में यह कहा गया है कि औद्योगिक सम्बन्धों के विकास में अनुशासन संहिता को आधार-शिला माना जा सकता है। पिछले तीन वर्षों में अनुशासन संहिता के कार्यों से उसकी उपयोगिता सिद्ध हो चुकी है। इसके अन्तर्गत जो मालिकों और श्रमिकों के उत्तरदायित्व हैं उनको उन्हें भली भाँति समझ लेना चाहिए और यह सभी मालिकों और श्रमिकों पर लागू होना चाहिए। अनुशासन संहिता औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में एक महत्त्वपूर्ण कार्य कर सकती है। जिन आधारों पर यह संहिता बनी है उनको दृढ़ करने की आवश्यकता है। आयोजना में इस ओर भी संकेत किया गया है कि ऐच्छिक विवाचन को लागू करने के लिए अधिक प्रयत्न किए जाएँगे। सरकार को क्षेत्रीय और औद्योगिक स्तर पर विवाचकों की एक तालिका (Panel) बनाने के लिए अग्रणीय कार्य करना चाहिए।

यह सब सुझाव बहुत लाभदायक हैं। परन्तु सुझावों को आयोजना नहीं कहा जा सकता। आवश्यकता तो इस बात की है कि इन सुझावों को कार्य रूप में परिणत किया जाय अन्यथा कोरी आशाओं से कुछ प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

त्रिदलीय श्रम व्यवस्था — (Tripartite Labour Machinery)

सरकार की श्रम नीति को निर्धारित करने श्रम सम्बन्धी आदर्श नियम तथा स्तर निश्चित करने तथा मालिकों एवं श्रमिकों से सम्बन्धित अन्य महत्वपूर्ण प्रश्नों पर विचार करने के लिये त्रिदलीय व्यवस्था की महत्ता को अब सभी देशों में स्वीकार कर लिया गया है। वास्तव में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का पूरा ढाँचा इस त्रिदलीय विचार-विमर्श के सिद्धान्त पर ही आधारित है। भारतवर्ष में सरकार ने सन् १९४० से ही सर्व प्रथम एक त्रिदलीय श्रम व्यवस्था का न केवल विकास किया है वरन् उसे पूर्ण भी किया है। यह अब नई सलाहकार संस्था बन गई है। इसका एक रूप भारतीय श्रम सम्मेलन है जिसको साधारणतया त्रिदलीय श्रम सम्मेलन भी कहा जाता है। इसको पहले परिपूर्ण (Plenary) श्रम सम्मेलन कहते थे। इस श्रम सम्मेलन में जो कि वर्ष में एक बार होता है श्रम से सम्बन्धित सभी पक्षों अर्थात् केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों तथा मालिकों और श्रमिकों के संघों को प्रतिनिधित्व दिया जाता है। सम्मेलन ने स्थायी श्रम समितियाँ तथा औद्योगिक समितियाँ स्थापित

की है जिनकी सभाएं साधारणतया होती रहती हैं। यह सम्मेलन अब ऐसी संस्था बन गई है जिसकी सभाओं में विधान सभा में प्रान से पूर्व श्रम कानून के लिए सुझावों तथा श्रम-नीति और श्रम प्रशासन से सम्बन्धित विषयों पर विचार-विमर्श किया जाता है। इस प्रकार विधान सभा में श्रम कानून के पास होने में सरलता हो जाती है क्योंकि प्रस्ताव की अन्तिम रूपरेखा तैयार करने से पूर्व मतभेद के सभी पहलुओं पर विचार-विनिमय हो जाता है और सभी पक्षों को अपना-अपना दृष्टिकोण रखने का अवसर मिल जाता है। श्रम-मंत्रियों का सम्मेलन भी इस व्यवस्था से सम्बन्धित है यद्यपि यह त्रिदलीय नहीं है। केन्द्र तथा राज्य में त्रिदलीय सलाहकार समितियां भी स्थापित की गई हैं तथा सभी समझौता व्यवस्था के लिए एक केन्द्रीय सलाहकार समिति की भी स्थापना की गई है।

गत वर्षों में इन सम्मेलनों और स्थायी श्रम समितियों की समय-समय पर सभाएं होती रही हैं और श्रम नीति से सम्बंधित अनेक महत्वपूर्ण विषयों पर निर्णय लिए गए हैं। सन् १९४८ में एक केन्द्रीय श्रम सलाहकार परिषद की स्थापना की गई जिसमें उचित मजदूरी तथा लाभ विभाजन पर विचार के लिए विशेषज्ञों की दो समितियां नियुक्त की गईं। सन् १९५१ में मालिकों और श्रमिकों के बीच सुलह कराने के लिए एक संयुक्त उद्योग और श्रमिक सलाहकार बोर्ड स्थापित किया गया। सन् १९५४ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रस्ताव तथा सिफारिशों की जांच करने के लिए तीन सदस्यों की एक त्रिदलीय समिति बनाई गई। आयोजना आयोग ने भी श्रम नीति पर परामर्श के लिये श्रम विशेषज्ञों की एक समिति बनाई है। केन्द्र तथा राज्यों में कई श्रम सम्मेलनों तथा समिति की अनेक बैठकें हुई हैं जिनमें महत्वपूर्ण विषयों पर विचार-विमर्श हुआ है। इससे मालिकों सरकार और श्रमिकों को एक दूसरे के दृष्टिकोण को समझने में बहुत सहायता मिली है। भारतीय श्रम सम्मेलन का १६ वां अधिवेशन अक्तूबर १९५१ में बंगलौर में हुआ तथा श्रम मंत्रियों के सम्मेलन का १७ वां अधिवेशन तथा स्थायी श्रम समिति का १९ वां अधिवेशन भी १९५१ में हुए। उत्तर प्रदेश में श्रमिकों के कल्याण के लिए राज्य त्रिदलीय श्रम सम्मेलन कानपुर त्रिदलीय श्रम सम्मेलन स्थायी श्रम समिति तथा अनेक सलाहकार समितियां हैं।

औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव — (Industrial Truce Resolution)

यहां औद्योगिक विराम संधि प्रस्ताव का भी उल्लेख कर देना उचित होगा। यह प्रस्ताव दिसम्बर १९४७ में सरकार, मालिकों और श्रमिकों के एक त्रिदलीय सम्मेलन द्वारा पारित हुआ था। इसका कारण यह था कि १९४७ में बहुत अधिक संख्या में हड़तालें हुई थीं जिनसे उत्पादन बहुत गिर गया था और चारों ओर 'उत्पादन करो या मरो' की ही पुकार थी। देश की अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ बनाये रखने के लिए उत्पादन बढ़ाने के हेतु इस प्रस्ताव में मालिकों और श्रमिकों में सहयोग और मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों की आवश्यकता पर बल दिया गया था। इस प्रस्ताव में मालिकों और

श्रमिकों से इस बात का अनुरोध किया गया था कि वह इस बात के लिए सहमत हो जाएं कि तीन वर्ष तक औद्योगिक शांति बनाये रखेंगे और हड़ताल तालाबंदी तथा उत्पादन-मन्दी के साधनों को न अपनायेंगे। मालिकों को उद्योग में श्रम की महत्ता और श्रमिकों के लिए उचित मजदूरी और अच्छी कार्य की दशाओं की आवश्यकता को स्वीकार करना था। श्रमिकों को भी राष्ट्रीय आय में वृद्धि करने के अपने कर्त्तव्यों को समझना था जिसके बिना उनके रहन-सहन के स्तर में स्थायी उन्नति नहीं हो सकती थी। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि विवादों को सुलझाने में मालिकों और श्रमिकों दोनों का ही दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि उत्पादन में किसी प्रकार की बाधा डाले बिना पारस्परिक वार्तालाप से मामला सुलझा लें। उपभोक्ताओं के हित के लिए यह सुझाव था कि उद्योगों के अत्यधिक लाभ को कर लगाकर और अन्य साधनों से रोका जाय। अन्य सुझाव प्रस्ताव में यह थे कि श्रमिकों को उचित मजदूरी मिलने का प्रबन्ध होना चाहिए। प्रत्येक औद्योगिक संस्थान में अनुरक्षण (Maintenance) और विस्तार के लिए उचित धन आरक्षित करने के पश्चात् इस बात की भी व्यवस्था होनी चाहिये कि श्रमिकों को उचित मजदूरी मिले और लगी हुई पूंजी पर भी उचित लाभ हो।

सम्मेलन ने इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित साधनों की सिफारिश की — (क) शान्तिपूर्ण उपायों से विवादों को सुलझाने की व्यवस्था का पूर्ण उपयोग किया जाना चाहिए और जहाँ ऐसी व्यवस्था न हो वहाँ पर तुरन्त ही ऐसी व्यवस्था हो जानी चाहिए। (ख) केन्द्रीय क्षेत्रीय व उत्पादन इकाई समितियां बनाकर श्रमिकों को औद्योगिक उत्पादन के सभी मामलों पर सम्मिलित किया जाना चाहिए। (ग) प्रत्येक औद्योगिक संस्थान में दिन प्रति दिन के विवादों को सुलझाने के लिए प्रबन्धकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों की मालिक मजदूर समितियां बनाई जानी चाहिएं। (घ) श्रमिकों के जीवन स्तर को सुधारने के लिए औद्योगिक श्रमिकों के आवास पर तत्काल ध्यान देना चाहिए और आवास की ...त सरकार, मालिकों और श्रमिकों तीनों के ही द्वारा दी जानी चाहिए परन्तु ...ों का भाग केवल उचित किराये के रूप में होना चाहिए।

औद्योगिक विराम-सन्धि प्रस्ताव को लागू कराने के लिए उठाये गये पग —

अप्रैल १९४८ में भारत सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा में इस प्रस्ताव को स्वीकार किया और इस हेतु एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति भी की। यह भी निश्चय किया गया कि प्रत्येक मुख्य उद्योग के लिए एक केन्द्रीय सलाहकार परिषद तथा अनेक समितियों की स्थापना की जाये। विशेष प्रश्नों पर विचार करने के लिए उप-समितियों की भी नियुक्ति की जाये। अप्रैल १९४८ में हुए भारतीय श्रम सम्मेलन के नवें अधिवेशन में मालिकों और श्रमिकों ने भी प्रस्ताव को स्वीकृत कर लिया। केवल अखिल भारतीय श्रमिक संघ कांग्रेस ने ही इसको स्वीकार करने में कुछ शर्तें रखीं। विभिन्न राज्य सरकारों ने इस प्रस्ताव को कार्यान्वित करने में

लिए प्रयत्न किए और मालिक-मजदूर व उत्पादन समितियों श्रम अधिकरणों विवाचकों और श्रम सलाहकार परिषदों आदि की नियुक्ति की। कुछ राज्यों ने औद्योगिक विवादों को निबटाने के लिए कुछ अलग से अपने अधिनियम बनाये जिनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। इस प्रस्ताव के परिणामस्वरूप ही उचित मजदूरी पूंजी पर उचित लाभ लाभ विभाजन की योजनाओं आदि पर विचार करने के लिये विशेषज्ञ समितियों की नियुक्ति की गई। संसद में एक उचित मजदूरी विधेयक भी प्रस्तुत किया गया था परन्तु लाभ विभाजन के लिये अभी तक कोई पग नहीं उठाया गया है। आवास व्यवस्था की दृष्टि से सरकार ने विभिन्न योजनाएँ कार्यान्वित की हैं।* विवादों को रोकने और उनके निबटाने के लिये सरकार के प्रयत्नों की विवेचना ऊपर की जा चुकी है। विभिन्न राज्यों में बहुत से उद्योगों के लिए मजदूरी बोर्डों की स्थापना हो चुकी है।

इसमें संदेह नहीं है कि औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव से एक स्वस्थ वातावरण उत्पन्न हो गया और औद्योगिक विवादों की संख्या में भी कुछ कमी दिखाई दी। इसने देश के हित के लिये औद्योगिक शान्ति की आवश्यकता पर जोर दिया। परन्तु आँकड़ों को देखने से स्पष्ट है कि विवादों में कोई प्रशंसनीय कमी नहीं हुई। यहाँ यह भी स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि चाहे परिस्थितियाँ कैसी भी कठिन क्यों न हों जब तक राष्ट्र की सुरक्षा को ही खतरा न हो तब तक मानव के मूल्य पर उत्पादन में वृद्धि करना अवांछनीय है। इस प्रकार से उद्योग में शान्ति स्थापित करने से पूँजीपतियों की स्थिति दृढ़ होती है। और श्रमिकों का और अधिक शोषण होता है। अतः व्यावहारिक रूप में औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ। 'इस्टर्न इकोनोमिस्ट' ने लिखा था कि यदि श्रमिक कारखाने में आने पर निरीक्षक की आँखों में वैसी ही पहले की भयानकता देखता है और घर लौटने पर वही मन्दगी व निर्धनता आदि दृष्टिगोचर होती है और जब वह इस बात का अनुभव करता है कि उसके पैसे की क्रय-शक्ति दिन प्रतिदिन कम होती जा रही है तो वह इस बात की कोई परवाह नहीं करेगा कि उसकी ओर से किसी ने किसी संधि पर हस्ताक्षर किये हैं या नहीं। अतः उद्योग में शान्ति स्थापित करने के लिये इस प्रकार के प्रस्तावों में आशा व्यक्त करने के स्थान पर औद्योगिक विवादों को उत्पन्न करने वाले कारणों का समाधान और उनका निबटारा और रोकने के सुरक्षात्मक साधन अपनाए जाने की अधिक आवश्यकता है।

सुलह तथा विवाचन पर टिप्पणी

समझौता, विवाचन और मध्यस्थता — (Conciliation, Arbitration and Mediation)

औद्योगिक विवादों को शान्तिपूर्ण ढंग से सुलझाने के सुलह तथा विवाचन दो मान्यताप्राप्त साधन हैं। सुलह व्यवस्था वह विधि है जिसमें श्रमिकों और मालिकों

* मजदूरी और आवास समस्या के अध्याय देखिए।

१

के प्रतिनिधि तीसरे व्यक्ति या व्यक्तियों के समक्ष इस हेतु लाये जाते हैं कि उनको पारस्परिक वार्तालाप द्वारा समझौता कराने के लिए प्रेरित किया जा सके। दूसरा साधन मध्यस्थता है। मध्यस्थता में किसी बाहरी व्यक्ति को उस समय हस्तक्षेप करना पड़ता है जबकि साधारण सुलह बोर्ड द्वारा वार्तालाप के प्रयत्न असफल होने लगते हैं। मध्यस्थ कोई व्यक्ति या व्यक्तिगण अधिकारी में से कोई भी हो सकता है। सुलह तथा मध्यस्थता के यह साधन इस बात का प्रयत्न करते हैं कि सम्बन्धित पक्ष आपस में मिलकर पारस्परिक वार्तालाप और वाद-विवाद द्वारा अपने मतभेदों का शांतिपूर्वक निपटारा कर लें। विवाचन इस बात का साधन है कि किसी भी विवादपूर्ण विषय पर एक तीसरे पक्ष द्वारा एक निश्चित निर्णय या विवाचन प्राप्त कर लिया जाय। इस प्रकार विवाचन व्यवस्था में अलग से एक अधिकारी होता है जो कुछ निश्चित नियमों के आधार पर औद्योगिक विवादों पर अपना निर्णय देता है।

सुलह और विवाचन की यह दोनों विधियाँ ऐच्छिक या अनिवार्य दोनों ही हो सकती हैं। यदि राज्य कुछ विशेष प्रकार के विवादों को अनिवार्य रूप से सुलह या विवाचन को सौंपने के लिए नियम बना दे तो यह विधियाँ अनिवार्य हो जाती हैं। यह साधन ऐच्छिक इस दृष्टि से होते हैं कि सरकार विवादों को सुलह या विवाचन को प्रस्तुत करने के लिए केवल सुविधाएँ प्रदान कर देती है। इस प्रकार की व्यवस्था स्थायी तदर्थ (ad hoc) साधारण या विशिष्ट संस्था द्वारा हो सकती है।

विवादों के निपटारे में इन विधियों की उपयोगिता प्रत्यक्ष है। प्रोफेसर पीगू ने कहा है कि हड़ताल और तालाबन्दी के कारण जब श्रम और पूँजी कुछ उद्योग या उसके किसी भी भाग में बेकार हो जाते हैं तो राष्ट्रीय लाभांश कम हो जाता है और आर्थिक कल्याण में क्षति पहुँचती है। इन विवादों के कारण उत्पादन में जो हानि होती है उसका प्रभाव केवल उसी उद्योग पर नहीं पड़ता जिसमें विवाद होता है वरन् इस हानि का प्रभाव दूर दूर तक पहुँचता है। इसका कारण यह है कि यदि किसी महत्वपूर्ण उद्योग में काम बन्द हो जाता है तो उससे और उद्योगों के कार्यों में भी दो प्रकार से रुकावट पड़ जाती है। एक प्रभाव तो यह पड़ता है कि जिस उद्योग में काम रुक जाता है उस उद्योग के व्यक्तियों की आय कम हो जाती है और फिर दूसरे उद्योगों की चीजों की माँग भी कम हो जाती है। दूसरे अगर वह उद्योग जिसमें काम रुक गया है ऐसा उद्योग है जिसकी बनाई हुई चीजें दूसरे उद्योगों में काम आती हैं तो इसका अर्थ यह हुआ कि दूसरे उद्योगों में कच्चा माल या सामान की कमी हो जायगी। यह सब प्रभाव इस बात पर निर्भर करता है कि किस प्रकार की चीज का उत्पादन हो रहा है। परन्तु कुछ सीमा तक सभी प्रकार के कार्यों के रुकने से राष्ट्रीय लाभांश को अप्रत्यक्ष रूप से क्षति पहुँचती है क्योंकि इसका प्रभाव न केवल प्रत्यक्ष रूप से हानिकारक होता है वरन् दूसरे उद्योगों में भी काम रुकने से हानि पहुँचती है।

यह सच हो सकता है कि औद्योगिक विवादों के कारण जो उत्पादन में अन्ततः कमी आती है वह तत्कालीन कमी से आमतौर पर कम होती है। इसका कारण यह है कि एक स्थान पर कार्य के रुकने से अन्य स्थानों पर कामों में वृद्धि हो सकती है तथा उसी संस्था में जिसमें कार्य रुक गया है बाद में अधिक कार्य हो सकता है। इसके अतिरिक्त हड़तालों और तालाबंदियों से जो प्रत्यक्ष रूप से हानि होती है वह कभी कभी इस बात से पूरी हो जाती है कि इनके कारण मशीन आदि में कुछ सुधार कर लिए जाते हैं और कार्य का संगठन भी अच्छा हो जाता है। परन्तु यदि सब बातों को ध्यान में लिया जाय तो यह मानना पड़ेगा कि उन उद्योगों में जिनमें कार्य रुक जाता है यह काल्पनिक लाभ इतना नहीं होता जितनी उत्पादन की हानि होती है तथा सम्बन्धित उद्योगों में भी कच्चा माल न मिलने से प्रभाव पड़ता है और उत्पादन पूर्ण रूप से नहीं हो पाता। इसके अतिरिक्त श्रमिकों को भी स्थायी रूप से हानि पहुंचती है। उनके औद्योगिक जीवन में रुकावट आने से उनकी आय कम हो जाती है। स्थायी रूप से उन्हें ऋण लेना पड़ता है और खाना आदि न मिलने के कारण उनके बच्चों की सेहत भी खराब हो जाती है। यह हानियां कहां तक हो सकती हैं इसकी सीमा इस बात पर निर्भर है कि जिस वस्तु का उत्पादन बंद हो गया है उसका उपयोग गरीब लोग कहां तक करते हैं और उनका जीवन स्वास्थ्य और समाज में सुरक्षा और शांति के लिए क्या महत्व है। परन्तु कोई भी बात हो औद्योगिक विवादों से राष्ट्रीय लाभांश में सब बातों को देखते हुए जो हानि होती है वह बहुत गम्भीर है इसी कारण औद्योगिक शांति बनाये रखने के लिए सामाजिक सुधारक सदा कोई व्यवस्था करने और उसे दृढ़ करने के लिए तत्पर रहते हैं। परन्तु इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि केवल तकनीकी बातों पर ही ध्यान न दिया जाए क्योंकि औद्योगिक तथा अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में किसी व्यवस्था का होना इतना महत्वपूर्ण नहीं होता है जितना दूसरों के लिए शुभ भावनाओं और पारस्परिक विश्वास का प्रभाव होता है। फिर भी इस बात का कुछ तो असर पड़ता ही है कि किस प्रकार की व्यवस्था की गई है और कभी कभी तो मालिकों और श्रमिकों में एक दूसरे के प्रति जो दृष्टिकोण होता है उस पर प्रभाव डाल कर, और प्रत्यक्ष रूप से भी इस व्यवस्था का महत्व अधिक हो जाता है। इस कारण औद्योगिक शांति को बनाए रखने के लिए जो व्यवस्था की जाए उसके लिए जो भी समस्याएं सामने आती हैं उनका अध्ययन महत्वपूर्ण है*।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद निरन्तर तीव्र गति से बढ़ते जा रहे हैं। उनका जल्दी-जल्दी होना और उनसे घोर औद्योगिक और सामाजिक अव्यवस्था फैलना ऐसी बातें हैं जो चिन्ता का विषय बन जाती हैं। किसी विवाद विशेष के दृष्टिकोण से हड़ताल अथवा तालाबंदी का समर्थन चाहे किया जा सकता हो परन्तु विस्तृत सामाजिक दृष्टिकोण से इच्छित परिवर्तन लाने के लिए यह हानिकारक साधन है।

* A. C. Pigou — *Economics of Welfare.*

अत: कोई भी प्रगतिशील नीति हो उसका उद्देश्य यह होना चाहिए कि इस प्रकार के औद्योगिक विवादों को कम किया जाये। अत हड़तालों और तालाबंदी को रोकने और निबटाने के साधनों की अत्यन्त आवश्यकता है। सुलह तथा विवाचन इस उद्देश्य की पूर्ति क लिए दो महत्वपूर्ण साधन हैं।

सुलह तथा विवाचन से मूल उद्देश्य यह होता है कि एक ऐसी व्यवस्था कर दी जाए जो काम रोकने के विकल्प (Alternative) म हो और जिसस सम्बन्धित पक्षों के हितों के लिए जो सामूहिक विवाद हो जाते हैं उनका निपटारा किया जा सके — विशेषकर ऐसे विवादों का निपटारा हो सके जो धार्मिक विषयों पर मतभेद उत्पन्न कर देते हैं। ऐसे विषय मजदूरी काम के घण्टे और रोजगार की अवस्थाएं होती हैं जो साधारणत सामूहिक करारों द्वारा निर्धारित किए जाते हैं। साधारणत कार्य तब रुकता है जब सम्बन्धित पक्षों में वार्ता असफल हो जाती है। मान्य व्यवस्था द्वारा निबटारे के प्रयत्नों म असफलता होने पर ही काम बन्द करना अन्तिम साधन के रूप में अपनाया जाता है। हड़तालों तथा तालाबन्दी की अधिकता पारस्परिक वार्तालाप और समझौता साधनों की असफलता को प्रकट करती है। अत इस उद्देश्य के लिए एक उचित तथा समय सोच कर व्यवस्था करने की अति आवश्यकता है।

प्रो॰ पीगू* के अनुसार औद्योगिक शान्ति की विविधा कई प्रकार की हो सकती है — जैसे सुलह और विवाचन के लिए ऐच्छिक व्यवस्था मध्यस्थता तथा अवपीड़क हस्तक्षेप (Coercive Intervention)। मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि द्वारा बनाये गये स्थाई बोर्डों से औद्योगिक शान्ति स्थापित की जा सकती है। इन बोर्डों का कार्य केवल समझौता कराना ही नहीं होना चाहिए वरन् कार्य की दशाओं मजदूरी देने क तरीकों तकनीकी शिक्षा औद्योगिक अनुसन्धान तथा कार्य प्रक्रियाओं आदि में उन्नति करना भी होना चाहिये। यदि मालिक और श्रमिकों क प्रतिनिधि इन समस्याओं पर संयुक्त रूप से विचार करने तो वे एक दूसरे को प्रतिस्पर्धी मानने के स्थान पर सहयोगी मानने लगेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि यदि कभी मत भेद भी होगा तो न केवल वार्तालाप का वातावरण अच्छा होगा वरन् दोनों पक्षों को यह ध्यान रहेगा कि वह कुछ ऐसी सीमा का उल्लंघन न कर जाए जिससे उनके हितों के लिये जो संगठन बना हुआ है उसी को क्षति पहुंचे। इस प्रकार सुलह के लिये जो ऐच्छिक व्यवस्था की जाती है उसमें औद्योगिक परिषद और मालिक मजदूर समितियां सम्मिलित की जा सकती हैं। प्रो पीगू ने इस ओर भी संकेत किया है कि इन बोर्डों और परिषदों में महत्वपूर्ण बात यह है कि दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों में विशेष कर श्रमिकों के प्रतिनिधियों मे अपन अपने पक्षों का विश्वास होना चाहिए। तकनीकी बातें और वकील इन बोर्डों के सम्मुख नहीं आने चाहिएं ताकि कोई ऐसी बात न हो जिससे कुछ तनाव हो तथा वार्तालाप में मुकदमे बाजी की भावना नहीं होनी चाहिये वरन् समझौते की भावना पर बल देना चाहिए।

* A. C Pigou — *Economics of Welfare*

जहाँ तक सम्भव हो निर्णय भी केवल बहुमत से न होकर एकमत से होने चाहिए। वार्ताओं की बैठक भी गुप्त होनी चाहिए ताकि उनमें स्पष्टता से विचार विमर्श हो सके।

यह भी प्रश्न उठता है कि औद्योगिक शान्ति के लिये जो ऐच्छिक व्यवस्था की जाती है उसमें अन्ततः विवाचन होना चाहिये या नहीं। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि मुक्त वाद के आपसी समझौते की अपेक्षा विवाचन व्यवस्था से अधिक झुंझलाहट तथा बुरी भावनाएं हो सकती हैं। इसलिये जब तक अति आवश्यक न हो विवाचन का सहारा नहीं लेना चाहिए। परन्तु यदि विवाचन के लिये कोई व्यवस्था न की जाय तो आपसी मतभेदों के कारण हड़तालें और तालाबन्दियाँ हो सकती हैं जिनसे श्रम की हानि और आपस में बुरे सम्बन्ध पैदा हो जाते हैं। यदि पहले से ही किसी विवाचक की व्यवस्था कर ली जाती है तो इसका तात्पर्य यह होता है कि शान्ति से दोनों पक्ष इस बात का निर्णय कर लेते हैं कि भविष्य में कोई कार्य उत्तेजना से नहीं करेंगे। परन्तु विवाचन की कुछ अप्रत्यक्ष रूप से हानियाँ भी हैं। प्रथम तो दोनों पक्षों के प्रतिनिधि आपसी समझौते की ओर प्रयत्न करने में गम्भीरता नहीं दिखाते। वे दूसरे पक्ष को कोई भी रियायत देने में हिचकिचाते हैं ताकि कहीं ऐसा न हो कि विवाचन के समय उनके सुझाव का उन्हीं के खिलाफ प्रयोग किया जाय। दूसरे आपसी मतभेदों की संख्या विवाचन व्यवस्था होने से अधिक बढ़ सकती है क्योंकि काम बन्द होने का डर न रहने से कुछ न कुछ लाभ हासिल करने के लिये मतभेद अधिक उत्पन्न हो सकते हैं। इसलिये कोई नियमित रूप से विवाचन व्यवस्था करने के स्थान पर विवाचन तब होना चाहिए जब दोनों पक्ष इस बात के लिये सहमत हों। जो भी विवाचक हो वह अपनी निष्पक्षता एवं कार्य क्षमता के लिए प्रसिद्ध होना चाहिए।

यह हो सकता है कि ऐच्छिक व्यवस्था हड़तालों और तालाबन्दियों की रोक-थाम करने के लिए सभी परिस्थितियों में सहायक सिद्ध न हो। ऐसी अवस्था में मैत्रीपूर्ण मध्यस्थता का साधन सामने आता है अर्थात् दोनों पक्षों में मतभेद के निपटारे के लिए किसी बाहरी व्यक्ति को हस्तक्षेप करना चाहिये। जब कभी कोई मतभेद बढ़ जाता है और उससे खुले तौर पर संघर्ष उत्पन्न हो जाता है तब दोनों पक्ष उसको आत्म सम्मान का प्रश्न बना लेते हैं और झुकने में अपनी हीनता समझते हैं। ऐसे समय में मध्यस्थ के प्रयत्नों द्वारा मामला सुलझ सकता है और बिना सम्मान में हानि अनुभव किए हुए कोई भी पक्ष झुक सकता है। यदि मध्यस्थ समझौता न भी करा पाये तब भी वह इस बात में तो सफल हो सकता है कि दोनों पक्ष झगड़ा करने के स्थान पर विवाचन द्वारा निर्णय करने के लिये सहमत हो जाएं। मध्यस्थता की जो व्यवस्था होती है उसमें कोई बाहरी प्रसिद्ध व्यक्ति हो सकता है या कोई गैर सरकारी या सरकारी बोर्ड हो सकता है। इन सब का अपने-अपने क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य होता है परन्तु मध्यस्थता व्यवस्था से परस्पर शान्ति बनाये रखने की व्यवस्था में रुकावट नहीं पड़नी चाहिये और उद्योगों में पारस्परिक बोर्डों की स्थापना में सहयोग मिलना चाहिये।

अवपीड़क हस्तक्षेप — (Coercive Intervention)

जिस प्रकार कभी कभी ऐच्छिक सुलह व्यवस्था से आपसी मतभेद नहीं सुलझ पाते उसी प्रकार मध्यस्था के प्रयत्न भी असफल हो सकते हैं। इन कठिन मतभेदों के बार बार होने के कारण यह सोचना पड़ता है कि राज्य द्वारा जो अवपीड़क अधिकार हैं उनका प्रयोग करना चाहिए या नहीं। राज्य के इस प्रकार के हस्तक्षेप को प्रो० पीगू ने 'अवपीड़क हस्तक्षेप' (Coercive Intervention) कहा है। यह चार प्रकार से हो सकता है। सबसे सीधा और सर्ल तरीका यह है कि जब भी दोनों पक्ष चाहें तो उनके लिए अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था कर दी जाय। दोनों पक्ष अपने आपसी मतभेदों को किसी सरकारी बोर्ड के सम्मुख रख देते हैं और उसका निर्णय अपने आप तथा वैध रूप से लागू हो जाता है। यह कहा जा सकता है कि एक बार विवाचन व्यवस्था से सहमत हो जाने पर इस बात का पयाप्त आश्वासन मिल जाता है कि जो भी निर्णय होगा वह मान्य होगा क्योंकि जनमत का तथा उचित अथवा अनुचित का ध्यान रखना पड़ता है। इस प्रकार यदि वैध रूप से लागू करने की कोई व्यवस्था की जाती है तो विवाचन का मानवीय पहलू नष्ट हो जाता है। इस प्रकार जब ऐच्छिक विवाचन होता है तो अनिवार्य व्यवस्था करने से सुलह व्यवस्था का कम प्रयोग होगा। परन्तु इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि ऐच्छिक विवाचन तो तब भी रहेगा ही और इसका प्रयोग किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त यदि विवाचन में कोई मजबूरी न हो तो यह हो सकता है कि इसको इतना पसंद न किया जावे। वैध रूप से लागू करने की जो धारा है उसका प्रयोग नेता लोग अपने एवं श्रमिकों के विरुद्ध कर सकते हैं जो उनके खिलाफ आवाज उठाएं।

राज्य के हस्तक्षेप का दूसरा तरीका यह है कि जो भी निर्णय मालिकों और श्रमिकों के मुख्य संस्थानों द्वारा ले लिया गया है उसे सभी उद्योगों व्यापार, जिला या देश में लागू कर दिया जावे। इससे यह लाभ होगा कि कोई भी समझौता कुछ बुरे मालिकों द्वारा रद्द नहीं किया जा सकेगा। कई मालिक श्रमिकों को अच्छी मजदूरी देने के लिये और उनके कार्य के घण्टे कम करने के लिये सहमत हो सकते हैं यदि उनके सभी प्रतिस्पर्धी ऐसा करने के लिये तैयार हो जाएं; नहीं तो उनको नुकसान होगा। परन्तु राज्य के इस हस्तक्षेप से यह भी भय है कि मालिकों के कुछ ऐसे गुट न बन जाएं जिनसे उपभोक्ताओं को नुकसान पहुंचे। इस बात में भी व्यवहारिक रूप से कठिनाई आती है कि इस सम्बन्ध में विधान किस सीमा तक लागू किया जावे। इन सब बातों के होते हुवे भी राज्य के इस प्रकार के हस्तक्षेप को बहुत से देशों में सराहा गया है। भारत में भी मजदूरी बोर्डों के जो निर्णय होते हैं वह सरकार द्वारा लागू किये जाते हैं।

राज्य के हस्तक्षेप का तीसरा तरीका यह है कि राज्य कोई ऐसा विधान बना दे जिसके अन्तर्गत हड़ताल या तालाबन्दी करने से पहले औद्योगिक विवादों

को किसी अधिकरण के सम्मुख रखना अनिवार्य हो। इस व्यवस्था के तीन लाभ हैं। प्रथम तो दोनों पक्षों के बीच गम्भीर प्रकार से विचार विमर्श हो सकता है और एक निष्पक्ष अधिकारी की सहायता से आपसी मतभेदों का निपटारा हो सकता है। दूसरे — सरकार द्वारा नियुक्त अधिकरण को इस बात का पूरा अधिकार होता है कि वह विवाद से सम्बन्धित हर बात की जाँच कर सके और प्रपत्रों (Documents) को देख सके और गवाहों को बुला सके। तीसरे — कार्यों को रोकना अवश्य घोषित कर दिया जाता है जब तक जाँच का कार्य समाप्त न हो जाये और उसकी रिपोर्ट प्रस्तुत न कर दी जाये। भारत में औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत सरकार जाँच न्यायालय नियुक्त कर सकती है और कोई भी मामला श्रम न्यायालय या अधिकरण को निर्णय के लिये सौंप सकती है। विवाचन काल में हड़ताल और तालाबन्दी करना निषेध है।

राज्य के हस्तक्षेप का चौथा तरीका अनिवार्य विवाचन का है। इसका तात्पर्य यह है कि कोई ऐसा विधान बना दिया जाता है जिसके अन्तर्गत जो कोई भी सरकार द्वारा नियुक्त होता है वह विवादों के निपटारे की शर्तों की न केवल सिफारिश करता है वरन् यह शर्तें बल रूप से लागू हो जाती हैं और उनके खिलाफ कोई भी हड़ताल या तालाबन्दी करना एक दण्डनीय अपराध माना जाता है। विचार विमर्श और सुलह व्यवस्था से निपटारा करने का तरीका भी रहता है लेकिन मुख्यतः इस बात पर जोर दिया जाता है कि जब और सब तरीके समाप्त हो जाएं और विवाद कठिन हो जाएं तो हड़ताल और तालाबन्दी को निषेध कर दिया जावे। ऐसे विधान विभिन्न देशों में कुछ विभिन्नता रखते हैं परन्तु सभी जगह राज्य द्वारा इस प्रकार से स्वतन्त्रता कम कर देने के खिलाफ आवाजें उठाई गई हैं। हमारे देश में भी कई परिस्थितियों के अन्तर्गत हड़तालों और तालाबन्दियों पर रोक लगाई हुई है उदाहरणार्थ सार्वजनिक सेवाओं में बिना उचित नोटिस के कोई तालाबन्दी या हड़ताल नहीं हो सकती है।

अब हम अपने देश की परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए सुलह और विवाचन व्यवस्था पर विचार विमर्श कर सकते हैं।

यहाँ इस ओर भी संकेत किया जा सकता है कि विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से निपटाने की व्यवस्था पर पूर्णतया निर्भर रहने का श्रमिक स्वागत नहीं करते। इसका कुछ कारण तो यह होता कि राज्य और उसकी व्यवस्था में इनका अविश्वास होता है, क्योंकि ऐसी व्यवस्था को साधारणतया वह पूँजीपति के हितों के लिए समझते हैं। अन्य कारण यह भी है कि श्रमिकों के संगठन दुर्बल है जिससे उनको अपना मामला नियमित रूप से प्रस्तुत करने में कठिनाई होती है। परन्तु इसका मुख्य कारण यह है कि श्रमिक शांतिपूर्ण उपायों के विरोध में रहते हैं और अपने हड़ताल के अस्त्र को छोड़ने को तैयार नहीं होते। इस कारण शांतिपूर्ण समझौता करने की अनिवार्य विधियाँ बनाने का सुझाव साधारणतया मालिकों की ओर से या सरकार

म उनके समर्थकों की ओर स ही आया है जिन्हें इस बहाने यह भी अवसर मिल जाता है कि अपनी राजनैतिक स्वार्थसिद्धि के लिए राष्ट्रीय एकता की बातें करें। परन्तु अधिकतर देशों मे विवादों को निपटाने व रोकने में राज्य के हस्तक्षेप की आवश्यकता को श्रमिकों ने भी स्वीकार कर लिया है। दूसरे देशों में विधानों का रस इस बात का प्रमाण है कि राज्य अब अधिक से अधिक इन विषयों में भाग ले रहा है। यह प्रवृत्ति दो विश्व युद्धों द्वारा उत्पन्न हुए संकटकाल में अधिक शक्तिशाली हो गई थी। अतः वर्तमान समस्या यह नहीं रही है कि सुलह तथा विवाचन हो या न हो वरन् समस्या अब यह है कि उनके निश्चित क्षेत्र की परिभाषा किस प्रकार की जावे और प्रभावपूर्ण कार्य करने के लिए विभिन्न समझौतों के साधनों के दोष और गुणों के अध्ययन की ओर ध्यान दिया जाये।

विभिन्न अधिनियमों में सुलह और विवाचन —

औद्योगिक विवादों के निपटारे क साधन के रूप म सुलह व्यवस्था की सम्भावना पर विचार यद्यपि सन् १९२१ में बंगाल और बम्बई सरकारों द्वारा नियुक्त समितियों ने व्यक्त किया था तथापि औद्योगिक विवादों को सुलझान क लिए जांच न्यायालय एवं सुलह बोर्ड की वधानिक व्यवस्था सर्वप्रथम १९२९ म व्यापार विवाद अधिनियम में की गई थी। इस सम्बन्ध में अधिनियम की धाराओं का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। अधिनियम म शांति स्थापित करने के लिए कोई भी स्थायी व्यवस्था नहीं की गई थी और इसमें सरकार को सुलह बोर्ड के निर्णयों को लागू करने का भी अधिकार नहीं दिया गया था। सन् १९३४ और सन् १९३८ के बीच बम्बई में औद्योगिक विवादों क समझौते क लिए स्थाई सुलह व्यवस्था की स्थापना की ओर विशेष पग उठाये गये। सन् १९३४ में बम्बई व्यवसाय विवाद समझौता अधिनियम पारित किया गया जो १९३८ में एक व्यापक अधिनियम -- बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित किया गया। इन अधिनियमों के उपबन्धों का उल्लेख भी ऊपर किया जा चुका है। सन् १९३८ क अधिनियम द्वारा अनिवार्य सुलह की व्यवस्था की गई और समझौताकारों मुख्य समझौताकारों विशेष समझौताकारों औद्योगिक न्यायालय आदि की नियुक्ति की गई। युद्धकाल में सन् १९३८ के बम्बई अधिनियम में १९४१ और १९४२ में संशोधन किए गये जिनके अन्तर्गत सरकार को इस बातका अधिकार दे दिया गया कि सरकार यदि आवश्यक समझे तो विवादों को औद्योगिक विवाचन न्यायालय को सौंप सकती है। सन् १९४२ में बम्बई में एक संशोधन द्वारा श्रम अधिकारियों की नियुक्ति की गई। केन्द्रीय सरकार ने सन् १९४२ में हड़तालों और तालाबन्दी को रोकने और किसी भी विवाद को सुलह तथा विवाचन को सौंपने के लिए कई अध्यादेश जारी किये। सन् १९४७ में भारत सरकार ने औद्योगिक विवाद अधिनियम पारित किया। बम्बई उत्तर प्रदेश तथा मध्य प्रदेश की सरकारों ने भी इस सम्बन्ध में कानून बनाये। सन् १९४७ के अधिनियम में औद्योगिक विवादों को सुलझाने के अनेक साधनों की व्यवस्था की गई है।

समझौता अधिकारियों सुलह बोर्ड जांच न्यायालय तथा औद्योगिक अधिकरण की नियुक्ति की भी व्यवस्था है। अधिनियम में अनिवार्य समझौते के अतिरिक्त अनिवार्य विवाचन की भी व्यवस्था है क्योंकि सरकार कोई भी विवाद अधिकरण को विवाचन के लिए सौंप सकती है और इसके निर्णय को पूर्ण रूप से अथवा आंशिक रूप से लागू करा सकती है। अधिनियम में अनेक विशेष स्थितियों का समावेश और क्षेत्रपूर्ति करने के लिए अनेक संशोधन किए गये हैं। १९५० में एक अपीलीय अधिकरण की स्थापना की गई जिसको कि १९५६ में समाप्त कर दिया गया। अब अधिकरणों की तीन श्रेणी व्यवस्था की गई है। अर्थात् श्रम न्यायालय औद्योगिक अधिकरण और राष्ट्रीय अधिकरण। अधिनियम की धाराओं को दोहराने का उद्देश्य इस तथ्य की ओर संकेत करना है कि भारतवर्ष में औद्योगिक विवादों को रोकने और निपटाने के लिए सुलह व्यवस्था तथा विवाचन को आवश्यक समझा जाने लगा है और इनके लिए सरकार द्वारा व्यवस्था की गई है। अब तो केवल इस बात पर मतभेद है कि इस प्रकार के साधन ऐच्छिक हों अथवा अनिवार्य।

सुलह व्यवस्था — (Conciliation)

उपचार से रोकथाम सर्वत्र अच्छी होती है और औद्योगिक विवादों के विषय में भी यह बात लागू होती है। प्रारम्भिक अवस्था में ही यदि ठीक प्रकार से सहायता मिल जाय तो सुलह व्यवस्था के रूप में हो सकती है तो उसका महत्व बहुत बढ़ जाता है। रॉयल श्रम आयोग के अनुसार "यह कहीं अच्छा है कि कोई भी समझौता विवाद के पक्षों में स्वयं के प्रयत्नों से हो बजाय इसके कि समझौता उनके सामने रखकर जनमत या किसी और के जोर से उसको लागू किया जाय। कई बार ऐसा होता है कि चतुर और अनुभवी अधिकारी पक्षों को एक दूसरे के सम्पर्क में लाने में सहायता कर सकते हैं या एक पक्ष के सम्मुख दूसरे पक्ष का दृष्टिकोण जिस पर ध्यान न गया हो रख सकते हैं या पारस्परिक समझौते के सम्भावित मार्ग का सुझाव दे सकते हैं*। शुरू-शुरू में भारत में ग्रेट ब्रिटेन की नकल करते समय हमने दुर्भाग्यवश वहां की व्यवस्था के कम महत्वपूर्ण भाग को ही अपनाया और वहां की व्यवस्था के सबसे महत्वपूर्ण भाग की ओर ध्यान ही नहीं दिया। ग्रेट ब्रिटेन में ऐसी सदैव सार्वजनिक जांचों के ऊपर कम निर्भर रहा जाता है जिस प्रकार की जांच हम भारत में करते हैं, और सुलह अधिकारियों के प्रयत्नों पर जो पक्षों को निजी तौर पर समझौता करने में सहायता देते हैं ज्यादा निर्भर रहा जाता है। इस लिए रॉयल श्रम आयोग ने अपना निर्णय सुलह व्यवस्था के पक्ष में दिया था और जांच न्यायालयों अथवा विवाचन कार्यवाहियों में अपना विश्वास प्रकट नहीं किया था।

सुलह के व्यावहारिक लाभ की महत्ता का उस समय सबसे अधिक पता चलता है जब इसकी विवाचन से तुलना की जाती है। उद्योग शांति की स्थापना में सुलह व्यवस्था को विवाचन की अपेक्षा निश्चित रूप से अच्छा समझा जाता है। यह

Report of the Royal Commission on Labour pages 347 348

अनुभव किया गया है कि जहाँ भी विवाचन इच्छित परिणामों को प्राप्त करने में असफल रहा है वहाँ सुलह व्यवस्था को विशेष सफलता प्राप्त हुई है। बरेली की 'वस्टर्न इण्डिया मैच फैक्टरी (दियासलाई कारखाना) के एक विवाद में दिए गये विवाचन के निर्णय का उदाहरण इस सम्बन्ध में लिया जा सकता है। एक उच्च श्रम अधिकारी द्वारा दिये गये निर्णय को सरकार द्वारा लागू किया गया था परन्तु श्रमिक फिर भी असंतुष्ट रहे थे। तत्पश्चात् से एक हड़ताल हुई और फिर श्रमिकों ने कार्य मन्दन युक्तियाँ (Go slow tactics) अपना ली और दियासलाई का उत्पादन घटकर चौथाई ही रह गया। परन्तु जब श्रम कमिश्नर ने कारखाने को स्वयं आकर देखा और दोनों पक्षों से सम्पर्क स्थापित किया तब वह सुलह की सरल विधि से ही समझौता कराने में सफल हो गया। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि अब देश में इस बात की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि उद्योगों में मालिक मजदूरों में सम्पर्क स्थापित करके उत्पादन को बढ़ाया जाय तब औद्योगिक विवादों को सुलझाने के लिए कानून की शक्ति की अपेक्षा मानवीय विधियों को ही अपनाना चाहिए। यदि सुलह के क्रम में मानवता के दृष्टिकोण से कार्य किया जाता है तब इसके अच्छे प्रभाव पड़ने में कभी असफलता नहीं होगी। यह ध्यान रखना चाहिए कि सुलह व्यवस्था में दोनों पक्षों का एक दूसरे के दृष्टिकोण की सराहना करना आवश्यक है और यह केवल तब ही संभव है जबकि दोनों पक्षों में न केवल सकटकाल में वरन् स्थायी रूप से सम्पर्क स्थापित किया जाए।

भारत में विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत सुलह बोर्ड और समझौता कारों की नियुक्ति के विषय में ऊपर कहा जा चुका है और उनकी कार्य व्यवस्था पर पूर्ण रूप से विचार भी किया जा चुका है। यह बात भी उल्लेखनीय है कि इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए जो व्यवस्था की गई है उसमें कुछ दोष भी हैं। प्रथम तो यह कहा जाता है कि पक्षों में समझौता कराने के लिए समझौताकारों की विचार धारा दोषपूर्ण है। समझौताकार न्यायाधीश से भिन्न होता है क्योंकि उसे कानूनी दृष्टिकोण से दोनों पक्षों के अधिकारों पर विवाचन नहीं करना होता है। उसका काम केवल मांगों और विरोधी मांगों की व्यक्तिगत रूप से व्याख्या करना है जिससे दोनों पक्ष एक दूसरे की मांगों के औचित्य को समझ सकें। परन्तु व्यवहार में देखने में आता है कि हमारे देश में समझौता अधिकारी अधिकतर निर्णय ही देते हैं और इस प्रकार न्यायाधीश के समान कार्य करते हैं। इस व्यवस्था का दूसरा दोष यह है कि उचित वकीलों के अभाव में श्रमिकों के दृष्टिकोण की अवहेलना हो जाती है। वकीलों को सुलह बोर्डों के समक्ष आने की आज्ञा नहीं है। इसका उद्देश्य न्यायालय के वातावरण को दूर रखना और अनावश्यक जटिलता को दूर करना है। लेकिन दुर्भाग्यवश श्रमिकों में सुलह कार्यवाहियों के सम्मुख अपने दृष्टिकोण को सफलतापूर्वक रखने की योग्यता नहीं है। उनके सामने श्रमिक संघ अधिकारियों द्वारा प्रस्तुत किए जाते हैं जो साधारणतया बाहरी व्यक्ति होते हैं और इस प्रकार श्रमिकों की सच्ची भावनाओं का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते। श्रमिक

अपनी शिकायतों के समर्थन में उचित दस्तावेजी प्रमाणों के बिना ही कई बार अपनी मांगों को बढ़ाकर प्रस्तुत करने का प्रयत्न करते हैं। इसी कारण उनकी अधिकतर मांगें अस्वीकार कर दी जाती है। इसके अलावा श्रमिकों और मालिकों दोनों का व्यवहार सुलह बोर्ड के सामने लगभग ऐसा ही होता है मानो वह किसी न्यायालय में किसी मुकदमे के ऊपर लड़ रहे हों। समझौते की भावना और पक्षों के विवेकपूर्ण व्यवहार का भारत में अभाव रहा है जो सुलह की सफलता के लिए अति आवश्यक है। ऐसे व्यवहार और भावना से ही ग्रेट ब्रिटेन में सफलता मिली है। श्रमिकों और मालिकों दोनों के प्रतिनिधियों के व्यवहार इन सुलह बोर्डों के सामने ऐसे स्वतन्त्र व्यक्तियों की भांति नहीं होते जो समझौता करने का प्रयत्न कर रहे हों वरन् ऐसी वमबन्दी के रूप में होते हैं जो एक दूसरे के मूल्य पर लाभ उठाना चाहते हों और अपने पक्ष की मांगों पर ही जोर देते हों। देश के श्रमिक नेताओं को श्रम अधिनियमों का ज्ञान भी बहुत कम है और कभी कभी तो वह इस प्रकार की मांग करने लगते हैं जो कानून के विरुद्ध होती है। इसके अतिरिक्त सुलह बोर्डों के निर्णयों के विरुद्ध अपील औद्योगिक न्यायालयों में होती है जिसके अध्यक्ष न्यायाधीश होते हैं। इस कारण सुलह अधिकारी स्वभावतः पूरे मामलों पर कानूनी दृष्टिकोण से विचार करना शुरू कर देता है क्योंकि वह जानता है कि सम्पूर्ण मामले पर औद्योगिक न्यायालयों के न्यायाधीशों द्वारा वैधानिक दृष्टिकोण से ही विचार किया जायेगा। अतः कार्यवाही में सुलह की भावना का अभाव हो जाता है। परन्तु इस प्रकार के दोष सुलह व्यवस्था की कार्यप्रणाली में ही हैं और इन्हें समझौता अधिकारियों को उचित निर्देश देकर और श्रमिकों में शिक्षा का प्रसार करके दूर किया जा सकता है। जहाँ तक सुलह व्यवस्था का सम्बन्ध है औद्योगिक विवादों की समस्या को सुलझाने के लिए उसको अपनाने में कोई एतराज नहीं किया जा सकता।

अनिवार्य सुलह — (Compulsory Conciliation)

यह भी उल्लेखनीय है कि केवल सुलह को ही नहीं वरन् अनिवार्य सुलह को भी देश में अपनाया गया है। प्रथम बार इसकी व्यवस्था १९३८ के बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम में और इसके पश्चात् १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम में की गई थी। अनिवार्य सुलह की आलोचना इस आधार पर की गई थी कि समझौते की ऐच्छिक प्रकृति के कारण इस सम्बन्ध में किसी भी प्रकार की अनिवार्यता अवांछनीय है, विशेषतः ऐसी स्थिति में जबकि १९२९ के व्यापार विवाद अधिनियम में ऐच्छिक सुलह की पद्धति को बहुत ही कम अपनाया गया था। इसके अतिरिक्त श्रमिक अभी तक अच्छी प्रकार से संगठित नहीं हो सके हैं और अपने मामले को नियमित रूप से प्रस्तुत नहीं कर सकते हैं। इसलिए यह हो सकता है कि सुलह अधिकारियों के निर्णय श्रमिकों के विरुद्ध हों। परन्तु इन आलोचनाओं में अधिक सार नहीं था क्योंकि जब ऐच्छिक सुलह की व्यवस्था का प्रयोग नहीं किया गया था

तब ही इस बात की आवश्यकता अनुभव हुई कि विवादों को प्रारम्भिक अवस्था में ही सुलझाने के लिए अनिवार्य सुलह की व्यवस्था की जावे। अधिनियम के कार्यान्वित होने पर अनिवार्य सुलह की दलीलों को और भी अधिक बल मिला। परन्तु यह बात ध्यान देने योग्य है कि अनिवार्य सुलह व्यवस्था जिसमें सुलह कार्यवाहियों के शुरू होने या समाप्ति की अवधि में हड़तालें और तालाबन्दी निषेध कर दी जाती है, का उद्देश्य केवल यह होता है कि शांतिपूर्वक समझौता करने की सम्भावना को खोजा जाए। इस प्रकार, श्रमिकों का हड़ताल करने का अधिकार केवल स्थगित ही कर दिया जाता है। यह कहना कि औद्योगिक सम्बन्धों को नियंत्रित करने में राज्य का हस्तक्षेप करना या हड़ताल करने के अधिकार पर कोई वैधानिक रोक लगाना श्रमिकों के मूल अधिकारों को छीनना है, गलत होगा। इसका तो यह अर्थ होगा कि स्वतन्त्रता और उच्छृंखलता में कोई भेद नहीं किया जाता। हड़तालों का उस अवधि के लिए स्थगित करना जब तक समझौते और सुलह की सम्भावनाओं पर प्रयत्न नहीं कर लिए जाते विवादों को सुलझाने में एक उचित वातावरण पैदा करने के लिए आवश्यक है। श्रमिकों के दृष्टिकोण से भी यह वाञ्छनीय होगा। इससे निरर्थक और अपरिपक्व (Premature) हड़तालें समाप्त हो जायेंगी और जो वास्तविक और मुख्य मामले होंगे उनके लिए संघर्ष करने के लिए श्रमिक अपनी शक्तियों को संचित रख सकेंगे। इससे हड़तालों का महत्व भी बढ़ जायेगा श्रमिकों के संगठन भी अधिक सुदृढ़ हो सकेंगे और उन्हें जनता का सहयोग भी प्राप्त होगा। इस प्रकार सफल हड़तालों की संख्या बढ़ जायेगी।

विवाचन विधि ऐच्छिक एवं अनिवार्य —

ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि देश में विवाचन विधि अपना ली गई है और इसको युद्ध काल में अनेक अध्यादेशों द्वारा और १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम द्वारा लागू किया गया है। विवाचन ऐच्छिक भी हो सकता है और अनिवार्य भी। ऐच्छिक विवाचन से यह तात्पर्य है कि दोनों पक्ष अपने मतभेदों को पारस्परिक रूप से सुलझाने में असमर्थ होने पर तथा मध्यस्थ एवं समझौताकार के प्रयत्नों से भी कोई सहायता न पाकर अपने विवाद को एक विवाचक के सम्मुख प्रस्तुत करके उसके द्वारा दिए गए निर्णय को मानना स्वीकार कर लेते हैं। इस प्रकार ऐच्छिक विवाचन का मुख्य तत्व ऐच्छिक रूप से किसी विवाद को विवाचन हेतु सौंपना है। इस प्रकार, इसमें यह आवश्यक नहीं रहता कि वाद में गवाहों की उपस्थिति हो या कोई जांच पड़ताल की जाए या निर्णय को लागू किया जाए, क्योंकि इसमें अनिवार्यता नहीं होती। इसके विपरीत अनिवार्य विवाचन से यह तात्पर्य है कि दोनों पक्षों को आवश्यक रूप से विवाद को विवाचक को प्रस्तुत करना पड़ता है। अभिनिर्णय (Adjudication) इसी विवाचन का दूसरा नाम है जिसका आशय है कि सरकार विवाद को विवाचन के लिए किसी अधिकारी को सौंप देती है और इसके निर्णय को दोनों पक्षों को मानने को बाध्य

करती है। इस प्रकार सरकार द्वारा विवाचन की व्यवस्था को अधिनिर्णय कहा जाता है। अनिवार्य विवाचन में अनिवार्य रूप से गवाहों की उपस्थिति अनिवार्य रूप से जांच पड़ताल के अधिकार और अनिवार्य रूप से निर्णय को लागू करना और इन विवाचन निर्णयों के उल्लंघन करने पर दण्ड देने की व्यवस्था आदि सब ही आ जाते हैं। द्वितीय महायुद्ध में युद्ध के लिए उत्पादन को जारी रखने और उद्योग में शांति स्थापित करने के विचार से अनिवार्य विवाचन को कई देशों में अपनाया गया था। भारत में भी इस व्यवस्था को अपनाया गया था और इसमें इतनी सफलता हुई कि युद्ध के बाद भी अनिवार्य विवाचन के सिद्धान्त को १९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम में अपना लिया गया।

जबकि अनिवार्य सुलह के पक्ष में तर्क बिल्कुल स्पष्ट है यह बात अनिवार्य विवाचन के लिए नहीं कही जा सकती क्योंकि अनिवार्य विवाचन व्यवस्था में दोनों पक्षों पर यह उत्तरदायित्व होता है कि वह विवाचन निर्णय को स्वीकार करें और इसी प्रकार अनिवार्य अधिनिर्णय व्यवस्था में सरकार को यह अधिकार होता है कि वह विवाचन के निर्णय को लागू कर दे। इस प्रकार, इन दोनों व्यवस्थाओं में श्रमिक के भाग्य का निर्णय अधिकारियों के हाथों में होता है। इन अधिकारियों को जो भी अधिकार मिलते हैं, स्वभावतः राज्य से ही मिलते हैं। इस प्रकार सामाजिक न्याय पूर्णतया निर्णायक अधिकारी की कार्यक्षमता सद्भावना और विद्वत्ता पर निर्भर होता है। इसलिए श्रमिक अपनी स्थिति में किसी प्रकार के क्रांतिकारी परिवर्तन की आशा नहीं कर सकते और श्रमिकों को ऐसे मामूली परिवर्तनों से ही संतुष्ट होना पड़ता है जो राज्य अधिकारी को स्वीकार हों। अनिवार्य विवाचन या अधिनिर्णय को जब तक सावधानी से और यदा कदा ही उपयोग में न लाया जायेगा तब तक यह सम्भावना बनी रहेगी कि राज्य का अनुचित हस्तक्षेप हो जाए। यह प्रजातंत्र के सिद्धान्त के पूर्णतया विरुद्ध बात होगी। अतः अनिवार्यता का यह सिद्धान्त आलोचनात्मक वाद विवाद का विषय रहा है। रॉयल श्रम आयोग भी अनिवार्य विवाचन के विरोध में था। इसके मतानुसार औद्योगिक शांति की स्थापना के लिए किसी बाह्य शक्ति पर निर्भर रहने की प्रवृत्ति यदि सामान्य हो जाती है और उद्योग में आपसी भावना से विवाद निपटाने के प्रयत्न को प्रोत्साहन नहीं दिया जाता तो उद्योग पर इसका विनाशपूर्ण प्रभाव पड़ेगा। यह कहा जाता है कि अनिवार्य विवाचन अपने उद्देश्य के लिए स्वयं ही असफल सिद्ध होता है। इससे उद्योग में शांति स्थापना की अपेक्षा श्रमिकों में घोर असंतोष की भावना पैदा हो जाती है। दूसरे देशों में भी *इस व्यवस्था का सदैव विरोध हुआ है। सिडनी वैब ने कहा है "अनिवार्य विवाचन* को विवाचन नहीं कहा जा सकता इसका अर्थ यह होगा कि सामूहिक सौदाकारी को पूर्णतया दबा दिया जाए। विवाचन कानून बनाने का एक साधन है। न्यायालय का काम तो केवल कानून की व्याख्या करना है न कि विधान बनाने का। अमेरिका में अनिवार्य विवाचन अधिनियम पर विचार करते समय अमेरिकन फैडरेशन ऑफ

सेवर न मत प्रकट किया था 'अमेरिका के श्रमिक कभी गुलाम बनकर काम नहीं करेंगे। अनिवार्य विवाचन से औद्योगिक विवादों को बढ़ावा मिलेगा और वह अधिक सम्न हो जायेंगे। इसम स्वशासन (Self-Govt.) लगभग समाप्त हो जाता है; मालिकों और श्रमिक संघों म स्वयं अपनी समस्याओं पर विचार करने का उत्तरदायित्व छिन जाता है सामूहिक सौदाकारी पर कुठाराघात हुआ है और इसकी जगह मुकदमेबाजी आ जाती है। विवाचन का अर्थ व्यक्तिगत स्वाधीनता का हनन गति शीलता की क्षति प्रेरणा की समाप्ति तथा आशा और स्वत (Self) उन्नत होने की आकांक्षाओं का टूट जाना है। दूसरे देशों के अनुभवों ने भी यह पता चलता है कि अनिवार्य विवाचन का कहीं भी समर्थन नहीं किया गया है। युद्ध के समय म ऐसे विवाचन को अपनाया गया था परन्तु जैसा कि ब्रिटिश श्रम मन्त्रालय द्वारा प्रकाशित एक औद्योगिक शान्ति सम्बन्धी पुस्तिका में कहा गया है कि काम बन्द करने पर कानूनी निरोध, तथा अनिवार्य विवाचन व्यवस्था के होते हुए भी युद्ध के मध्य काल में सम्पूर्ण देश में औद्योगिक अशांति आ गई थी। ब्रिटिश श्रमिक संघ और ह्विटल समिति ने भी जिन्होंने इस समस्या का विस्तार से अध्ययन किया था अनिवार्य विवाचन के विरोध में विचार प्रकट किए हैं। १९४५ में अमेरिका राज्य के तीसरे श्रम सम्मेलन में एक ऐसे प्रस्ताव में जिसको अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी स्वीकार कर लिया है यह स्पष्ट रूप से लिखा है कि श्रमिकों के सामूहिक सौदाकारी के अधिकारों की रक्षा की जानी चाहिये।

इस समय यह ठीक ठीक नहीं कहा जा सकता कि भारतवर्ष में अनिवार्य विवाचन सफल होगा अथवा नहीं। इस प्रश्न पर तीव्र मतभेद है। रॉयल श्रम आयोग का मत इसके विरोध में था। परन्तु भारत सरकार ने इस सिद्धान्त को स्वीकार कर इस विषय पर अधिनियम बनाये हैं। परन्तु श्रम मन्त्री के रूप में श्री वी० वी० गिरि के आ जाने के पश्चात् से सरकार का दृष्टिकोण कुछ बदला हुआ सा प्रतीत हुआ। फिर विवादों को सुलझाने के लिये ऐच्छिक समझौतों तथा मालिकों व श्रमिकों के बीच सीधी वार्ता को अधिक महत्व प्रदान किया गया और इस बात पर जोर दिया गया कि औद्योगिक न्यायालय का तो आपत्ति के समय के लिए पुलिस व सेना की भांति ही होना चाहिए जो आवश्यक समय पर ही कार्यशील होते हैं। युद्धकाल में संभवत: अनिवार्य विवाचन ठीक माना भी जा सकता है परन्तु सामान्य अवस्था में इस सिद्धान्त को बनाये रखना अन्तत: हानिकारक होगा। यह भी देखने में आया कि जिस समय श्री जगजीवन राम श्रम मन्त्री थे तब जनमत धीरे धीरे अनिवार्य विवाचन के पक्ष में होता चला गया परन्तु श्री वी० वी० गिरि के श्रम मंत्री के रूप में आने पर पुन: ऐच्छिक बातचीत की ओर हो गया। श्री खंडूभाई देसाई की इस विषय में विचारधारा कुछ-कुछ श्री गिरि जैसी ही थी और वर्तमान श्रम मन्त्री श्री गुलजारी लाल नन्दा तो और भी सजग प्रतीत होते हैं। उनका उद्देश्य यह है कि श्रमिकों का सहयोग प्राप्त करने के लिए संयुक्त परिषदों और श्रमिकों के प्रबन्ध में

भाग लेने की व्यवस्था जैसी कुछ योजनाएं शुरू की जायें ताकि प्रबन्धक और श्रमिक एक दूसरे के निकट हों जायें और पारस्परिक संदेह दूर हो जाये तथा आपस में विश्वास उत्पन्न हो जाये। इन सब का अन्ततः परिणाम यह होगा कि अनिवार्य विवाचन को अपनाने की अपेक्षा सीधे वार्तालाप और सामूहिक सौदाकारी की प्रणालियों को अपना लिया जायगा।

परन्तु यहां हम यह कह सकते हैं कि हमारे देश में श्रमिक असंगठित हैं और श्रमिक संघों में बाह्य व्यक्तियों के छाये रहने के कारण समझौता कार्यवाहियों में श्रमिक अपने मामले को प्रभावपूर्ण तरीके से प्रस्तुत नहीं कर पाते। अतः औद्योगिक विवादों में सरकार के हस्तक्षेप करने के अधिकार को मानना ही पड़ेगा। निष्पक्ष विवाचन से श्रमिकों के हित को ध्यान में रखा जा सकता है। इससे औद्योगिक विवादों में अधिक न्याय भी हो सकेगा। हड़ताल अथवा तालाबन्दी कोई निजी प्रश्न नहीं है। इनसे सारे समाज पर प्रभाव पड़ता है। यदि सरकार हस्तक्षेप नहीं करती तब सम्पूर्ण समाज का जीवन ही दूभर हो जाता है। भारत में दूसरे देशों की अपेक्षा स्थिति भिन्न है। हमारे देश में दूसरे देशों की भांति श्रमिक संघ भली भांती संगठित नहीं हैं और न ही वे पश्चिम की भांति औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था के मुख्य भाग माने जाते हैं। भारतवर्ष में इस समय कुछ गम्भीर परिस्थितियां हैं जैसे उपभोग्य वस्तुओं की कमी ऊँची कीमतें निर्वाह व्यय की अधिकता उत्पादन बढ़ाने और लोगों को रोजगार दिलाने की तीव्र आवश्यकता आदि-आदि। हम आयोजना के दौर में हैं और दूसरे देशों की भांति श्रम और पूंजी की आपसी कशमकश और खींचातानी का तमाशा नहीं देख सकते। समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि मालिकों और श्रमिकों की आपसी लड़ाई को पूर्णतया समाप्त कर दिया जाय और यथासंभव अधिकतम उत्पादन करने के लिए अधिक से अधिक प्रयत्न किये जायें। अतः कुछ मामलों में इस समय देश में अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता है। परन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि अनिवार्य विवाचन ही केवल-मात्र साधन नहीं है। यह तो राज्य का एक अंतिम साधन है। इसका प्रयोग केवल उसी समय होना चाहिए जबकि मैत्रीपूर्ण समझौते के सभी प्रयत्न असफल हो गये हों। अतः यदि श्रमिक और पूंजीपति औद्योगिक सम्बन्धों की समस्या के प्रति वास्तविक और विवेकपूर्ण दृष्टिकोण अपनाएं तब अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता यदा-कदा ही पड़ेगी। अनिवार्य विवाचन जैसी व्यवस्था से कोई अनावश्यक डर नहीं होना चाहिए। समस्या के इस पहलू पर श्री वी वी गिरि ने अपने अनेक भाषणों में ध्यान आकर्षित कराया है और नैनीताल अधिवेशन में भी जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है इसको स्वीकार कर लिया गया है। श्री वी वी गिरि के इस सम्बन्ध में विचार महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने आकाशवाणी से एक भाषण में कहा था "इस प्रश्न पर मेरे विचार सब को भली भांति मालूम है। मैं सामूहिक सौदाकारी और विवादों के निपटारे के लिये पारस्परिक समझौते में दृढ़ विश्वास रखता हूं। मेरे विचार में प्रबन्ध और श्रम के

बीच स्थायी सम्बन्ध उत्पन्न करने एवं दृढ़ तथा आत्मविश्वासी श्रम आन्दोलन निर्माण करने के लिए यही सर्वोत्तम साधन है। परन्तु सम्बन्धित सभी पक्षों से विचार विनिमय करने के पश्चात् मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि अभी ऐसा समय नहीं आया है कि अनिवार्य विवाचन को छोड़ कर हम विवादों के समझौते के लिए केवल पारस्परिक वार्तालाप पर निर्भर रहें। पंचवर्षीय आयोजना को सफलता पूर्वक लागू करने के लिए हम सब लोगों ने इस समय व्रत लिया है और इसमें यह बात इस समय मेल नहीं खाती कि हम कोई ऐसा नया प्रयोग शुरू करें जिससे औद्योगिक विवाद बढ़ जाएं चाहे वह अल्पजीवी ही क्यों न हों। इसके अतिरिक्त एक ऐसे समय में जबकि रोजगार में कमी हो रही है और श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति स्वाभावतः कमजोर है श्रमिकों से अपने रोजगार की जोखिम पर, आत्मनिर्भर होने की आशा नहीं करनी चाहिए। अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि यद्यपि इसमें कोई संदेह नहीं कि विवादों के पारस्परिक निबटारे के लिए सामूहिक सौदाकारी को प्रोत्साहित करने के लिए हर प्रकार के प्रयत्न करने चाहिएं और धीरे धीरे इस व्यवस्था को आवश्यकता के स्थान पर एक आदत सी बना देना चाहिए, फिर भी ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे औद्योगिक संस्थाओं में विवादों के निबटारे की वर्तमान व्यवस्था कमजोर हो जाए और सरकार को इस समय विवादों को अधिकरणों को सौंपने का जो अधिकार है उससे वंचित कर दिया जाए।" श्री खंडूभाई देसाई के भी ऐसे ही विचार थे। श्री नन्दा की समान विचारधारा का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। श्री गिरि ने नवम्बर १९५८ में औद्योगिक सम्बन्धों में पुनः स्वशासन व्यवस्था पर जोर दिया है। उन्होंने बताया है कि अनिवार्य विवाचन एक पुलिसमैन की भांति है जो कि असन्तोष के चिह्न देखता रहता है और जरा सी उत्तेजना होने पर पक्षों को ऐसे न्याय के लिए न्यायालय के सामने ले जाता है जो महंगा पड़ता है और जिससे पूर्ण संतुष्टि भी नहीं होती। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में औद्योगिक शान्ति की स्थापना के लिए पारस्परिक बातचीत समझौता तथा ऐच्छिक विवाचन तथा कुछ विषम विवादों में अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था पर जोर दिया गया है तथा तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में भी ऐच्छिक समझौतों और अनुशासन संहिता के महत्व पर प्रकाश डाला गया है।

उपसंहार समस्या का समाधान —

यद्यपि यह मान भी लिया जाए कि देश में अनिवार्य विवाचन की आवश्यकता है फिर भी इसकी सफलता के लिए कुछ मूल बातों का होना आवश्यक होगा। औद्योगिक विवादों की समस्या विवादों के मूल कारणों को दूर किए बिना नहीं सुलझायी जा सकती। औद्योगिक विवादों की समस्या को ठीक प्रकार से समझने के लिए तथा उनके शान्तिपूर्ण निबटारे के हेतु विभिन्न प्रकार की व्यवस्थाओं को अपनाने के लिए हमें अनेक बातों को ध्यान में रखना आवश्यक होगा। उदाहरणतः मजदूरी की दर में एक क्रांतिकारी परिवर्तन करना होगा, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं का

लागू करना होगा रोजगार के स्तर को भी ऊंचा और स्थिर बनाना होगा कार्य एवं रहने की दशाओं में सुधार लाना होगा आदि। विवादकों का ठीक प्रकार से चुनाव और एक शक्तिशाली श्रमिक संघ भी आवश्यक है। राज्य की नीति का यही उद्देश्य होना चाहिए कि विवादों के क्षेत्र का जितना भी हो सके कम करे। मालिकों और श्रमिकों में संयुक्त रूप से और सीधी वार्ता को प्रोत्साहन देने की आवश्यकता है और सबसे पहले सुलह व्यवस्था पर ही जोर देना चाहिए। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिए कि यदि श्रमिकों और मालिकों के आपसी समझौते के परिणामस्वरूप कीमतों में वृद्धि करके दोनों पक्षों को संतुष्ट करने का प्रयत्न किया जाता है तो ऐसी व्यवस्था अल्पजीवी होगी क्योंकि उपभोक्ता अपने ऊपर अधिक भार होने से असंतोष प्रकट करेंगे। अतः उद्योग में शांति की समस्या पर न केवल श्रमिकों और मालिकों के दृष्टिकोण से वरन् उपभोक्ताओं के दृष्टिकोण से भी विचार करना होगा। इसलिए प्रत्येक उद्योग में सीमान्त इकाइयों को अर्थात् ऐसी संस्थाओं को जिनकी उत्पादन लागत सबसे अधिक है उन्नत करना होगा ताकि उनकी लागत में कमी हो और मूल्य अधिक न बढ़े। औद्योगिक विवादों की समस्या को सुलझाने के लिए केवल विधान पर ही अधिक निर्भर नहीं रहना चाहिए। मालिकों और श्रमिकों में निकट सम्पर्क स्थापित करने की अधिक आवश्यकता है और श्रमिकों को और अधिक सीमा तक प्रबन्ध कार्यों में सम्मिलित करना चाहिए। इस समय औद्योगिक विवादों की समस्या मनोवैज्ञानिक भी है। दोनों पक्षों का एक दूसरे के प्रति अविश्वास है। यदि मालिक श्रमिकों को उत्पादन में बराबर का साथी समझने लगें और उनसे दूर-दूर रहने की वर्तमान प्रवृत्ति को छोड़ दें तो श्रमिकों का असंतोष काफी सीमा तक दूर हो जाएगा और औद्योगिक शान्ति भी स्थापित हो सकेगी। इस बात पर बार बार जोर दिया जा सकता है कि विवादों के मूल कारणों को दूर करना चाहिए। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दों में "उचित मजदूरी सुन्दर आवास बीमारी तथा मातृत्व हित लाभ के लिए बीमा योजना आदि जैसी मानवीय मूल आवश्यकताओं को पूरा किए बिना हड़तालों को बलपूर्वक समाप्त कर देने की नीति अपनाना और उनके लिए दण्ड की व्यवस्था करना श्रमिक समस्याओं को गलत ढंग से सुलझाने का प्रयत्न करना होगा।

अतः सामाजिक और आर्थिक ढांचे को हमें इस प्रकार से समायोजित करने का प्रयत्न करना चाहिए कि हर श्रमिक को इस बात का आश्वासन हो जाए कि उसकी न्यूनतम आवश्यकताओं की संतुष्टि होती रहेगी उसके रोजगार में सुरक्षा रहेगी यदि बेरोजगारी हो ही जाय तो इस अवधि में उसको कोई और रोजगार मिलने की व्यवस्था होगी तथा ऐसी मजबूरी में कि वह काम करने के अयोग्य हो जाए, उसका निर्वाह होता रहेगा। श्रमिकों में उचित शिक्षा और श्रमजीवी वर्ग में उचित प्रकार का प्रचार होना चाहिए ताकि श्रमिक अपने अधिकारों के बारे में ही न सोचें वरन् अपने कर्तव्यों की ओर भी ध्यान दें। प्रजातन्त्र व्यवस्था में

अनेक कानून बनाकर और सरकार के अधिक हस्तक्षेप से समस्या का समाधान नहीं हो सकता। इससे सम्बन्धित पक्षों को बुरा ही सब मनता है। जहाँ तक हो सके श्रमिकों और मालिकों का एक दूसरे के निकट आने का प्रयत्न करना चाहिए। कानूनी विषमताओं का दूर ही रखना चाहिए। यदि पारस्परिक सहयोग की भावना है और श्रमिकों की अवस्था में सुधार कर दिया जाता है तो कोई कारण नहीं है कि औद्योगिक विवाद यदि पूर्णतया समाप्त न भी हों फिर भी अधिक से अधिक कम क्यों न हो जावें।

इस प्रकार के विचारों पर जो हम पहले भी कई बार व्यक्त कर चुके हैं श्री वी० वी० गिरि ने भी अपना मत आरम्भ से प्रकट किया है। श्री गिरि ने औद्योगिक सम्बन्धों की समस्या पर बहुत व्यावहारिक दृष्टि से विचार किया है। श्री गिरि की इस विचारधारा (Giri's Approach) का अर्थ यह है कि विवादों को पारस्परिक रूप से सुलझाने के प्रयत्न करने चाहिएं और अनिवार्य निर्णयन की अपेक्षा सामूहिक सौदाकारी और ऐच्छिक निर्णयन को अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए। श्री गिरि की विचारधारा एक उचित पग है और इसका स्वागत करना चाहिए। परन्तु जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है अभी कुछ वर्षों तक हम सरकार के हस्तक्षेप को पूर्णतया दूर नहीं कर सकते और किसी न किसी प्रकार की अनिवार्य निर्णयन व्यवस्था को रखनी ही होगी। श्री गिरि ने भी अपनी इस विचारधारा में कुछ संशोधन किया था। परन्तु यह मानना ही पड़ेगा कि कभी न कभी मालिकों और श्रमिकों में इस बात की भावना लाना बहुत जरूरी है कि यदि दोनों पक्षों का उन्नति करनी है तो उन्हें एक दूसरे को सहयोग देना होगा तथा अपने विवादों और मतभेदों का आपस में ही सुलझाना होगा। इस प्रकार एक शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन तथा श्रमिक प्रबन्धक सहयोग प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग अनुशासन अहिंसा आदि भावनाओं का देश में औद्योगिक शान्ति स्थापित करने में बहुत अधिक महत्व है।

८

ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक सम्बन्ध

(Industrial Relations in Great Britain)

सामूहिक सौदाकारी — (Collective Bargaining)

सामूहिक सौदाकारी का विकास ग्रेट ब्रिटेन के मालिक-मजदूर सम्बन्धों की एक महत्वपूर्ण विशेषता है और इस सामूहिक सौदाकारी को कई वर्षों तक उद्योग धन्धों की समस्याओं में निवारणार्थ मान्यता प्राप्त होती रही है। बहुत समय तक मालिकों ने श्रमिकों के इस अधिकार को स्वीकार नहीं किया कि वे अपने संघों के प्रतिनिधियों द्वारा किसी प्रकार का सौदा करें और मालिक श्रमिकों से व्यक्तिगत रूप से ही व्यवहार करने पर जोर देते रहे। उन्नीसवीं शताब्दी में यह सामान्य विचारधारा थी कि श्रमिक संघ अनुचित रूप से श्रमिकों के व्यक्तित्व में हस्तक्षेप करते हैं और जैसा कि इंगलैंड के श्रमिक संघ इतिहास के अध्याय में बताया जा चुका है श्रमिक संगठनों को काफी समय तक अच्छी दृष्टि से नहीं देखा गया। श्रमिकों के संगठनों के विरुद्ध कई कानून बना दिए गये थे क्योंकि श्रमिक वर्ग का विकास नहीं हो सका था। इसलिए १८१ तक सामूहिक सौदाकारी की प्रगति की ओर कोई विशेष कदम भी नहीं उठाया गया। परन्तु १८७१ के बाद श्रमिक संघ आन्दोलन के विकास के साथ-साथ सामूहिक सौदाकारी को भी महत्वपूर्ण समझा जाने लगा और धीरे धीरे यह साधन शक्तिशाली होता चला गया। आज इंगलैंड के मालिक मजदूर सम्बन्धों को निर्धारित करने में सामूहिक सौदाकारी का मुख्य स्थान है।

इंगलैंड में सामूहिक सौदाकारी का तात्पर्य उस व्यवस्था से लिया जाता है जिसके अन्तर्गत मजदूरी और कार्य की दशायें एक ऐसे पारस्परिक सौदे द्वारा निश्चित होती हैं जो मालिकों और मजदूरों के संघों के बीच होता है और जिसको एक समझौते या करार का रूप दे दिया जाता है। इस प्रकार सामूहिक सौदाकारी उस अवस्था को कहते हैं जबकि अनेक श्रमिक एक सौदाकार एकांश के रूप में अपने रोजगार से सम्बन्धित विषयों पर मालिकों से या मालिकों के किसी समूह से समझौता करने के उद्देश्य बातचीत करते हैं। किसी भी व्यक्तिगत श्रमिक से उस बात की आशा नहीं की जा सकती कि वह असंगठित रूप से अपने लिए समस्त हितों को प्राप्त कर सके। वह केवल सामूहिक सौदाकारी द्वारा ही अनुचित प्रतियोगिता से अपनी सुरक्षा कर सकता है। इन सामूहिक करारों में विभिन्न विषय आ जाते हैं जैसे मजदूरी समयोपरि मेहनताना छुट्टियां कार्य की दशाएं, रोजगार की स्थिति आदि। एक व्यक्तिगत श्रमिक यह समस्त लाभ प्राप्त नहीं कर सकता और

असंगठित उद्योगों में उनको मालिकों द्वारा प्रस्तुत की गई शर्तों को ही स्वीकार अथवा अस्वीकार करना पड़ता है। यह स्थिति सामूहिक सौदाकारी में नहीं रहती क्योंकि सामूहिक सौदाकारी का मतलब यह होता है कि एक ही श्रेणी या स्तर के समस्त श्रमिक और किसी एक विशेष उद्योग के सब ही मालिक एक करार द्वारा बंध जाते हैं। इन करारों से न केवल श्रमिकों का लाभ होता है वरन् मालिकों को भी लाभ पहुंचता है क्योंकि किसी भी झगड़े के समय यह सामूहिक करार मालिकों की भी रक्षा करते हैं। सामूहिक सौदाकारी की सफलता दोनों पक्षों की पारस्परिक स्वीकृति और करार को वफादारी से निभाने पर निर्भर करती है। यद्यपि इन करारों के पीछे कोई वैधानिक मान्यता नहीं है तथापि इंगलैण्ड में दोनों पक्ष इनको पूर्ण वफादारी से निभाते हैं। जनमत कभी इस पक्ष में नहीं रहा है कि करारों के उल्लंघन पर किसी दण्ड की व्यवस्था की जाए। फिर भी संयुक्त ऐच्छिक व्यवस्था (Joint Voluntary Machinery) को प्रोत्साहित करने के लिए कुछ कानून बनाए गए हैं।

श्रमिक संघों के दृष्टिकोण से सामूहिक सौदाकारी का उद्देश्य मालिकों की एकपक्षीय कार्यवाही को रोकना होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वे मालिकों से एक ऐसे संविदा (Contract) पर हस्ताक्षर करा लेते हैं जिसमें निश्चित समय के लिए रोज़गार की दशाओं को निर्धारित करने और उस समय में उत्पन्न होने वाले झगड़ों को निपटाने के लिए व्यवस्था होती है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि सामूहिक सौदाकारी मालिकों पर नियंत्रण लागू करने का एक तरीका है। इस साधन से श्रमिकों को कई अधिकारों का आश्वासन मिल जाता है और कई बातों की छूट भी मिल जाती है क्योंकि मालिक फिर स्वतन्त्र रूप से प्रत्येक कार्य नहीं कर सकते। यह तो स्पष्ट है कि उद्योगों में और अलग अलग कारखानों में जो समस्याएँ उत्पन्न होती हैं उनके निवारण के लिए मालिकों और मजदूरों के संगठनों को आपस में मिलजुल कर ही बात करनी चाहिएँ। श्रमिक विधान और उनको लागू करने की व्यवस्था तो केवल उद्योग धन्धों को चालू रखने के लिए उचित वातावरण ही पैदा कर सकते हैं। पारस्परिक समस्याओं का समाधान तो उन्हीं पक्षों द्वारा किया जा सकता है जिनका मामले से सीधा सम्बन्ध होता है। इस विषय में सामूहिक करार ही ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं जिससे प्रगति में सहायता मिले। यह सामूहिक करार मालिक और मजदूर संघों के बीच कार्य में क्या पारस्परिक सम्बन्ध होने चाहिएँ उनकी रूपरेखा का निर्माण करते हैं और श्रमिकों की मांगों और मालिकों द्वारा सुविधाएँ देने के मध्य समायोजन ला देते हैं। इस प्रकार यह सामूहिक सौदाकारी और करार इस बात को प्रकट करते हैं कि श्रमिक संघ आन्दोलन परिपक्व (Mature) और शक्तिशाली हो गए हैं और मालिकों के दृष्टिकोण में भी परिवर्तन आ गया है।

सामूहिक सौदाकारी का क्षेत्र और कार्य प्रत्येक वर्ष में विस्तृत हुए हैं।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के अनुसार अमेरिका में गैर कृषि उद्योगों में लगे हुए लगभग एक तिहाई श्रमिकों की कार्य की दशाएँ सामूहिक सौदाकारी के द्वारा निश्चित की जाती हैं। स्विट्जरलैण्ड में लगभग आधे औद्योगिक श्रमिक सामूहिक करारों के अन्तर्गत आ जाते हैं। इसी प्रकार आस्ट्रेलिया बेल्जियम जर्मन गणराज्य लक्जम्बर्ग स्केन्डेनेवियन देशों तथा ग्रेट ब्रिटेन में कम से कम आधे औद्योगिक श्रमिक भी इसी प्रकार सामूहिक करारों के अन्तर्गत आ जाते हैं। सोवियत संघ और पूर्वीय योरप के प्रजातन्त्र राज्यों में ऐसे सामूहिक करार हर उद्योग संस्थान में पाए जाते हैं और अधिकांश श्रमिक इनके अन्तर्गत आ जाते हैं। अल्प विकसित देशों में भी सामूहिक सौदाकारी की रीति अब काफी श्रमिकों में फैल गई है यद्यपि अनुपात के हिसाब से ऐसे देशों में अभी तक कम श्रमिक ही इनके अन्तर्गत आए हैं। भारत में हाल ही में कुछ सामूहिक करारों पर हस्ताक्षर हुए हैं। (देखिये पृष्ठ १४२)। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि ऐसे करार भारतीय स्थितियों के बहुत अनुकूल हैं विशेषकर जब हम औद्योगिक विकास के मार्ग पर अग्रसर हो रहे हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि सामूहिक सौदाकारी यह बात मान कर चलती है कि श्रमिक संघों को मालिकों द्वारा मान्यता प्राप्त है। अगर ऐसा नहीं होता अथवा एक उद्योग में दो या उससे अधिक प्रतिद्वन्दी संघ होते हैं तब सामूहिक सौदाकारी निष्क्रिय (Ineffective) हो जाती है। ग्रेट ब्रिटेन में श्रमिक संघ मालिकों द्वारा मान्यता प्राप्त कर चुके हैं और श्रमिकों में एकता है। इस कारण ग्रेट ब्रिटेन में सामूहिक सौदाकारी अत्यन्त सफल रही है और जो भी करार हुए हैं उनको न केवल व्यापक रूप से बनाया गया है वरन् उनमें निश्चितता और स्पष्टता भी पाई जाती है और ये करार औद्योगिक सम्बन्धों के लगभग सभी पहलुओं पर प्रकाश डालते हैं। इसलिए इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि ब्रिटेन में एक ऐसी समायोजित और स्वीकृत कार्य प्रणाली बना ली गई है जो न केवल अधिकतर उद्योगों पर प्रभाव डालती है — वरन् जिसके अन्तर्गत बहुत बड़ी संख्या में श्रमिक आ जाते हैं। इंगलैण्ड में प्रथाएँ और रीतियाँ इतनी प्रभावशाली और महत्त्वपूर्ण हो गई हैं कि हमारे देश में श्रमिक और उद्योगपति दोनों ही स्वयं के और देश के हित के लिए उनका अनुसरण कर सकते हैं।

इंगलैण्ड में औद्योगिक विवाद और श्रमिक संघ —

इंगलैण्ड में श्रमिक संघों के प्रारम्भिक विकास से दो बातें सामने आती हैं— एक तो श्रमिकों में 'औद्योगिक समंज' अर्थात् उद्योगों में अपने स्थान बनाने की अभिलाषा और दूसरे उनके राजनैतिक विचार। १८५ तक इंगलैण्ड में श्रमिक संघों ने काम की दशाओं में सुधार की ओर अधिकतर ध्यान देना आरम्भ कर दिया था। अधिकतर संघों की सदस्य संख्या महत्त्वपूर्ण हो गई थी। सुलह या विवाचन द्वारा विवादों के निपटारे के लिए व्यवस्था भी कर दी गई थी। कई उद्योगों में

मुख्य बोर्ड स्थापित कर दिए गए थे यद्यपि विवादों के समझौते में इनका कार्य सीमित ही रखा गया था। जैसे जैसे उद्योगों का विकास हुआ इस व्यवस्था का क्षेत्र भी विस्तृत होता गया। इस प्रक्रिया में व्यापार परिषद् और मालिक संघों के संघर्षों ने काफी सहायता की। १९० तक विवादों को निपटाने के लिए सामूहिक सौदाकारी को अधिकतर उद्योगों में अपना लिया गया था। इस प्रकार इंगलैण्ड में विवादों के निबटाने में श्रमिक संघों ने महत्त्वपूर्ण कार्य किए हैं और इस सम्बन्ध में उनके कार्यों का वर्णन हम इंगलैण्ड के श्रमिक संघवाद के अध्याय में कर चुके हैं (पृष्ठ ११८–१९)।

इंगलैण्ड में औद्योगिक विवादों के कारण —

इंगलैण्ड में श्रमिकों का असंतोष ही अधिकतर हड़तालों का कारण है। श्रमिकों में असंतोष की भावना इसलिए पाई जाती है कि उनके मतानुसार उन्हें उद्योग के लाभ में से कम हिस्सा मिलता है। यह आर्थिक होने के साथ साथ मनोवैज्ञानिक समस्या भी है। जहाँ तक भौतिक उपभोग का प्रश्न है श्रमिक की स्थिति आरम्भ की आर्थिक प्रणाली की अपेक्षाकृत यद्यपि अच्छी तो है परन्तु फिर भी वह कम संतुष्ट है। श्रमिकों में शिक्षा का विकास इस असंतोष का एक कारण है। श्रमिक समाज में अपने स्थान तथा उचित कर्त्तव्यों के बारे में पहले से कहीं अधिक वाद विवाद करते है। संयुक्त पूँजीवादी प्रणाली (Joint Stock System) के विकास ने भी इस असंतोष की भावना में वृद्धि की है। इस प्रणाली से पूँजी के नियन्त्रण एवं स्वामित्व में भिन्नता आ जाती है और मालिकों व श्रमिकों के व्यक्तिगत सम्बन्ध टूट जाते हैं। मालिक और श्रमिक के जीवन के रहन सहन के स्तर में भी पूर्व की अपेक्षा अब बहुत अन्तर हो गया है। श्रमिक अपनी स्थिति की अपने पूर्वजों से तुलना नहीं करता वरन् मालिकों के वर्तमान वर्ग से करता है और दोनों के मध्य की गहरी खाई को निहारता है। जब उसे मालिकों के बड़े बड़े लाभांशों (Dividends) का ज्ञान होता है तब वह अनुभव करता है कि उससे उसका उचित भाग छीना जा रहा है। वह देखता है कि विभिन्न प्रकार की सम्पत्ति के केवल स्वामित्व के कारण ही पूँजीपति कितने आनन्द से रहते है। यद्यपि वह यह स्वीकार करता है कि उत्पादन के लिए पूँजीगत वस्तुएँ आवश्यक हैं परन्तु वह मालिकों द्वारा उद्योग के लाभ में से एक बड़े हिस्से को हड़प जाना अन्याय समझता है। दो महायुद्धों से भी श्रमिकों पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ा है और वह मालिकों की ही भाँति सुखपूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने के अधिकार को पाने का दावा करते हैं। इसीलिए मजदूरी बोनस और महँगाई भत्ते के प्रश्नों पर ही अनेक हड़तालें हुई है।

श्रमिकों के मेहनताने के प्रश्न से ही कार्य के घण्टे और कार्यों की दशाओं के प्रश्न भी सम्बन्धित है। इंगलैण्ड में अनेक कटु संघर्ष कार्य दिवस के घंटों के कारण हुए हैं। समयोपरि (Overtime) का प्रश्न औद्योगिक अशान्ति का प्रमुख कारण रहा है, विशेषकर उस समय जब व्यवसाय में बेरोजगारी होती है। मालिक अकसर बंधे

खर्चों में कमी करने के लिए श्रमिकों से अतिरिक्त घंटों तक काम कराते थे क्योंकि पारी प्रणाली के अभाव में नए श्रमिकों को कार्य पर लगाने से मशीनरी आदि पर अतिरिक्त धन व्यय करना पड़ता था। इस कारण श्रमिक समयोपरि का विरोध करते हैं क्योंकि उससे कम घण्टे कार्य करने से जो सुविधा मिलती है उसका अन्त हो जाता है और उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त समयोपरि के न होने से अधिक श्रमिक रोजगार पा सकते हैं।

इंगलैण्ड में अनेक हड़तालें इस कारण भी हुई हैं कि मालिकों ने श्रमिक संघों को उचित तथा सक्षम (Competent) सौदाकारी संगठन के रूप में मान्यता देने से इन्कार कर दिया है। उदाहरणतः रेलवे श्रमिकों को काफी लम्बे समय तक संघर्ष करना पड़ा तब कहीं जाकर रेलवे कम्पनियों ने उनको पूर्ण मान्यता प्रदान की। परन्तु औद्योगिक अशान्ति का यह कारण अब विशेष महत्त्व नहीं रखता क्योंकि मालिक अब श्रमिकों के उनके संघों द्वारा बातचीत और सौदा करने के अधिकार को स्वीकार करते हैं। अब मालिक देश में शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन की उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकते।

इंगलैण्ड में औद्योगिक अशान्ति का एक और कारण कुछ उत्साही श्रमिकों का उद्योग के प्रबन्ध में भाग लेने की इच्छा है। वह उस व्यवस्था से संतुष्ट नहीं है जिसमें श्रमिकों का स्तर अधीनस्थ (Subordinate) हो जाता है उनके व्यक्तित्व का लोप हो जाता है और इस प्रकार उन्हें अपनी प्रतिभाओं के विकास का अवसर नहीं मिलता। उनका उद्देश्य हड़तालों के माध्यम से पूँजीवादी प्रणाली को पूर्णतया समाप्त कर श्रमिकों का नियन्त्रण स्थापित करना है। श्रमिकों के स्तर को 'दास मजदूर' (Wage slave) की स्थिति से ऊँचा उठाना उनका लक्ष्य है। इन विचारों के परिणामस्वरूप अनेक औद्योगिक विवाद हुए हैं। यदि ब्रिटिश लोग क्रान्तिकारी विचारों के विरोधी न होते तो इनका प्रभाव और भी अधिक होता। किन्तु इंगलैण्ड में सम्भवतः कुछ साम्यवादियों को छोड़कर अन्य कोई भी वर्ग व्यवस्था के वर्तमान स्वरूप को नष्ट कर श्रमिकों के नियन्त्रण के पक्ष में नहीं है।

प्रोफेसर पीगू ने औद्योगिक मतभेदों का दो श्रेणियों में वर्गीकरण किया है—(१) ऐसे मतभेद जो मजदूरी में भिन्नता (Fraction of Wages) के कारण होते हैं और (२) ऐसे मतभेद जो कार्यों के सीमांकन (Demarcation of Functions) के कारण होते हैं। मजदूरी में भिन्नता के कारण जो मतभेद होते हैं उनको निम्नलिखित भागों में बाँटा जा सकता है — (क) ऐसे मतभेद जो श्रम के मेहनताने से सम्बन्धित होते हैं। यह मतभेद साधारणतया नकद मजदूरी दर की समस्याओं के कारण उत्पन्न होते हैं परन्तु कुछ अन्य बातों से भी सम्बन्धित होते हैं जैसे कार्यदशा की दशाएं जुर्माना या नकदी या जिन्स के रूप में पेंप भत्ते की मात्रा आदि (ख) ऐसे मतभेद जिनका सम्बन्ध कर्मचारियों के कार्य व व्यवहार से होता है। यह साधारणतया कार्यों के घण्टों के प्रश्न से सम्बन्धित होते हैं।

कार्यों के सीमांकन के कारण (जिनमें सम्बन्धित व्यापारों के सीमांकन विवाद भी आ जाते हैं) जो मतभेद होते हैं उनके अन्तर्गत वे सब मसले आ जाते हैं जो श्रमिकों के इस दावे से उत्पन्न होते हैं कि उन्हें प्रबन्ध कार्यों में भाग मिलना चाहिए। ऐसे मतभेद निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित होते हैं — (क) काम को विभिन्न वर्गों के श्रमिकों में तथा विभिन्न प्रकार की मशीनों में किस प्रकार बाँटा जाता है। (ख) मालिक अपने कर्मचारियों को किस प्रकार और कहाँ से कार्य पर लगाता है। इसमें भरमार, पक्षपात तथा केवल श्रमिक संघों के द्वारा ही कार्य पर लगाना आदि समस्याएं आ जाती हैं। (ग) इस बात की समस्या कि श्रमिकों का अपनी कार्य दशाएं निर्धारित करने में कितना हाथ होना चाहिए।

किन्तु प्रोफेसर पीगू ने यह भी कहा है कि उपरोक्त वर्गीकरण द्वारा मतभेदों को ठीक ठीक बाँटना कठिन भी है। औद्योगिक मतभेदों को एक और तरीके से भी दो विभागों में बाँटा गया है (१) ऐसे मतभेद जो वर्तमान रोजगार की शर्तों के अर्थ निर्णय (Interpretation) से सम्बन्धित होते हैं तथा (२) जो भविष्य के रोजगार के सामान्य प्रश्नों से सम्बन्धित होते हैं। वर्तमान रोजगार की शर्तों का अर्थ निर्णय तो एक न्यायिक (Judicial) कार्य है, तथा सामान्य प्रश्नों का समझौता एक विधायी (Legislative) कार्य है। ऐसे सभी मतभेद जो किसी करार के बाद उत्पन्न होते हैं अर्थ निर्णय मतभेद कहे जा सकते हैं। ऐसे मतभेद अधिकतर किसी विशेष संस्थान तक ही सीमित रहते हैं और बहुधा पूर्णतया किसी प्रकार के होते हैं। ऐसे मतभेद मात्रा और गुण की वास्तविक बातों के ऊपर जो मतभेद उत्पन्न हो जाते हैं उनसे सम्बन्धित होते हैं। यह मतभेद स्थानीय 'शाखा' (Branch) की ओर से उच्च संस्था द्वारा निपटाए जाते हैं। 'सामान्य प्रश्न' रोजगार की शर्तों तथा नौकरी की सामान्य दशा से सम्बन्धित बातों से उत्पन्न होते हैं अर्थात् ऐसी बातों से जिनका प्रभाव भविष्य में पड़ता है। इनके अन्तर्गत बहुत बातें आ जाती हैं और इनका प्रभाव बहुत मनुष्यों पर पड़ता है। हड़तालों और तालाबन्दियों के विस्तृत रूप में होने के साधारणतया यही कारण होते हैं। ऐसे प्रश्नों का निपटारा प्रत्यक्ष रूप से असम्बद्ध संस्थाओं द्वारा किया जाता है।

औद्योगिक विवाद सम्बन्धी विधान —

यद्यपि इंगलैंड में औद्योगिक विवाद सम्बन्धी विधान एक शताब्दी से भी अधिक पुराना है परन्तु १८९६ के पूर्व जो भी विधान बनाए गए थे उनमें अधिक उत्साह नहीं दिखाया गया था और इस कारण मालिक और मजदूरों के बीच जो बातें धीरे धीरे उत्पन्न होती जा रही थी उनको कम करने में इन विधानों से अधिक सहायता प्राप्त नहीं होती थी। १८२४ के अधिनियम के अन्तर्गत 'जस्टिसेज आफ पीस (Justices of Peace) को स्वेच्छापूर्वक मजदूरी निर्धारित करने का अधिकार दे दिया गया था। १८६७ और १८७२ के अधिनियमों में यद्यपि सुलह बोर्डों की व्यवस्था की गई थी परन्तु इनकी स्थापना की ओर कोई विशेष पग नहीं उठाया

गया था। १८९४ में प्रकाशित श्रम आयोग की रिपोर्ट की सिफारिश के आधार पर १८९६ का सुलह अधिनियम (Conciliation Act) पारित किया गया। इसमें सुलह के ऐच्छिक सिद्धान्त पर जोर डाला गया था। सुलह का ऐच्छिक सिद्धान्त ब्रिटिश विधान की अपनी एक निराली विशेषता रही है। जहाँ सुलह बोर्ड नहीं बनाए गए थे वहाँ मालिकों को ऐसे बोर्डों के स्थापित करने को प्रोत्साहित किया गया। बोर्ड आफ ट्रेड (Board of Trade) को मध्यस्थता करने का अधिकार था। किसी भी एक पक्ष की प्रार्थना पर बोर्ड समझौताकार को और दोनों पक्षों की प्रार्थना पर विवाचक को नियुक्त कर सकता था। यद्यपि बोर्ड के निर्णय को मानना वैधानिक रूप से बाध्य नहीं था परन्तु फिर भी आशा की जाती थी कि सामान्यतः दोनों पक्ष निर्णय का आदर करेंगे।

१८९६ का अधिनियम केवल साधारण रूप से सफल रहा। पंजीकृत सुलह बोर्डों की संख्या धीरे धीरे बढ़ने लगी। हड़ताल और तालाबन्दी को रोकने में बोर्ड आफ ट्रेड का काफी हाथ रहा। १९०८ में एक स्थाई विवाचन न्यायालय (Court of Arbitration) की स्थापना की गई और इसके तीन वर्ष पश्चात् औद्योगिक परिषदें (Industrial Councils) बनाई गई। यह परिषद जिसका अध्यक्ष एक स्थायी अधिकारी होता था मालिकों और कर्मचारियों की एक संयुक्त संस्था थी और इसका मुख्य कार्य बोर्ड आफ ट्रेड को सुलह और विवाचन कार्यों में सहयोग और सहायता देना था। इतना होते हुए भी १९१४ के युद्ध से पूर्व राष्ट्रव्यापी हड़तालें हुईं और उनको सुलझाने के लिए तत्कालीन व्यवस्था पूर्णतया असफल सिद्ध हुई।

युद्ध के परिणामस्वरूप नीति में कुछ समय के लिए परिवर्तन हुआ। समय की आवश्यकताओं के कारण ही १९१५–१७ के 'म्युनिशन आफ वार एक्ट' (Munitions of War Act) पारित किए गए जिनके अन्तर्गत हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया गया तथा विवाचन बोर्ड के निर्णयों को मानना वैधानिक रूप से अनिवार्य कर दिया गया। परन्तु इतना सब होने पर भी युद्धकाल में ही औद्योगिक अशांति दृष्टिगोचर होने लगी। फलतः अक्तूबर १९१६ में सरकार ने ह्विटले समिति (Whitley Committee) नियुक्त की। इसने संगठित उद्योगों में संयुक्त औद्योगिक परिषदों (Joint Industrial Councils) के निर्माण आंशिक रूप से संगठित उद्योगों के लिए मासिक मजदूर समितियों (Works Committees) के निर्माण और असंगठित उद्योगों में मजदूरी के नियमन करने की सिफारिश की। समिति ने विभिन्न उद्योगों में ऐच्छिक रूप से राष्ट्रीय संयुक्त स्थायी औद्योगिक परिषदों (National Joint Standing Industrial Council) और विभिन्न क्षेत्रों के लिए जिला परिषदों (District Councils) के स्थापित करने की भी सिफारिश की। राष्ट्रीय संयुक्त परिषदों का कार्य सामान्य नीति' (General Policy) से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना था और जिला परिषदों का कार्यक्षेत्र स्थानीय प्रश्नों

से सम्बन्धित था और मालिक-मजदूर समितियों के कार्य उन विषयों से सम्बन्धित थे जो किसी विशेष उद्योग संस्था के आंतरिक (Internal) सम्बन्धों और कार्यों पर प्रभाव डालते थे।

१९१९ में सरकार ने औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (Industrial Courts Act) पारित किया जो व्हिटले समिति के सुझावों को मानकर बनाया गया था। इस समिति ने अनिवार्य विवाचन विधि का घोर विरोध किया था और वर्तमान व्यवस्था को ही जारी रखने का सुझाव दिया था जिसमें मालिक और श्रमिक स्वयं ही समझौते करते थे और अपने मतभेदों को पारस्परिक रूप से निबटा लेते थे। अधिनियम के अन्तर्गत एक स्थायी औद्योगिक न्यायालय (Standing Industrial Court) की स्थापना भी की गई। इस न्यायालय में मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि तथा अन्य स्वतन्त्र व्यक्ति थे और यह सब श्रम मंत्रालय द्वारा मनोनीत किए जाते थे। दोनों पक्षों की सहमति से कोई भी विवाद इस न्यायालय को सौंपा जा सकता था। इग्लैण्ड में इस न्यायालय ने विवादों को सुलझाने की दृष्टि से उपयोगी कार्य किया है। अधिनियम के अन्तर्गत श्रम मंत्रालय को यह अधिकार था कि वह किसी भी विवाद की जाँच करने के लिए जाँच न्यायालय (Court of Inquiry) स्थापित कर दे और जाँच की रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दे। पिछले युद्ध के समय विवादों को सुलझाने की दृष्टि से "रोजगार और राष्ट्रीय विवाचन आदेश (Employment and National Arbitration Order)" के अन्तर्गत एक राष्ट्रीय विवाचन अधिकरण (National Arbitration Tribunal) की स्थापना की गई। इसके अनुसार उस समय तक हड़तालों और तालाबन्दियों का अवैध घोषित कर दिया गया जब तक कि कोई भी विवाद श्रम मंत्री को प्रस्तुत नहीं किया जाता और वह २१ दिन के अन्दर अन्दर समझौता नहीं करा पाता। सर्वप्रथम सामूहिक संयुक्त व्यवस्था से परामर्श लिया जाना जरूरी था और इसके निर्णय की महत्ता भी विवाचन निर्णय जैसी ही मानी गई थी। इस प्रकार इग्लैण्ड में सामूहिक सौदाकारी की व्यवस्था युद्ध काल में भी कार्यान्वित होती रही है।

विवादों को निपटाने का ऐच्छिक आधार — (Voluntary Basis of Settlement)

युद्धोपरांत वर्तमान समय में भी औद्योगिक सम्बन्धों की व्यवस्था मुख्य रूप से ऐच्छिक आधार पर स्थापित है। कुछ ही मामलों में सरकारी व्यवस्था इसके पूरक के रूप में की जाती है। औद्योगिक सम्बन्धों की व्यवस्था श्रमिकों और मालिकों के संगठनों अर्थात् मालिकों के संघ और श्रमिक संघों पर निर्भर है। यह संगठन श्रमिकों के काम की शर्तों और अन्य मामलों पर विचार-विमर्श और बातचीत करते हैं। कुछ विषयों में तो यह वार्ता अगर आवश्यकता हो तो केवल संघों की सभा बुला कर ही की जाती है। अन्य विषयों के लिए एक स्थायी ऐच्छिक संयुक्त व्यवस्था की गई है। साधारणतः यह व्यवस्था सामने आने वाले प्रश्नों को सुलझाने के लिए पर्याप्त

है। परन्तु उन विवादों के लिए जिनका निपटारा इस प्रकार नहीं हो पाता स्वतन्त्र रूप से विवाचन के लिए प्रस्तुत करने की भी व्यवस्था है। कुछ व्यवसाय विशेषों में जहाँ मालिकों और श्रमिकों के ऐच्छिक संगठनों का इतना विकास नहीं हो पाया है *कि वह इस प्रकार के मामलों को सामूहिक सौदाकारी द्वारा निबटायें* या इस प्रकार होने वाले समझौतों का लागू कर सकें वहाँ ऐसे मामलों को मिटाने के लिए राजकीय कानूनों द्वारा व्यवस्था की गई है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था सम्बन्धी अनेक अधिनियम भी पारित किए गए हैं।

जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है इंग्लैण्ड में मालिकों और श्रमिकों के संघ सामूहिक सौदाकारी और औद्योगिक सम्बन्धों के दृष्टिकोण से बहुत महत्वपूर्ण हैं। इंग्लैण्ड में अधिकतर मालिक मालिक-संघों के सदस्य हैं। इनमें से अनेक संघ काफी समय से चले आ रहे हैं। साधारणतया संघ औद्योगिक आधार पर संगठित किए गये हैं। इनमें से कुछ तो स्थानीय हैं और कुछ राष्ट्रीय आधार पर बनाये गये हैं। 'ब्रिटिश एम्पलायर्स कन्फिडरेशन' (British Employers Confederation) मालिक संघों की केन्द्रीय संस्था है और इससे अधिकतर मालिक संघ और संघम सम्बद्ध (Affiliated) हैं। यह संगठित मालिकों के ऐसे हितों को ध्यान में रखकर कार्य करती है जिनका श्रमिकों के साथ सम्बन्ध होता है। जहाँ तक श्रमिक संघों का सम्बन्ध है अधिकतर श्रमिक इन संघों में संगठित हैं। इनके विकास और कार्यों का वर्णन इंग्लैण्ड में श्रमिक संघवाद अध्याय में पहले ही किया जा चुका है। 'ट्रेड यूनियन कांग्रेस' श्रमिक संघों की केन्द्रीय संस्था है और इससे अधिकतर श्रमिक संघ सम्बद्ध हैं। सरकारी विभागों व संगठित मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के बीच उनके हितों को व्यापक रूप से प्रभावित करने वाले विषयों पर परामर्श करने के लिए 'ब्रिटिश एम्पलायर्स कन्फिडरेशन' और 'ट्रेड यूनियन कांग्रेस' को सरकार द्वारा मुख्य संस्था के रूप में मान्यता प्राप्त है।

संयुक्त औद्योगिक परिषदें — (Joint Industrial Councils)

जहाँ तक ऐच्छिक संयुक्त वार्ता व्यवस्था का सम्बन्ध है यह देखने में आता है कि रोजगार की शर्तों और दशाओं को प्रभावित करने वाले सभी मामलों पर सम्बन्धित मालिकों और श्रमिकों के संगठन द्वारा तदर्थ (Ad hoc) रूप से विचार किया जाता है और अन्य मामलों में संयुक्त औद्योगिक परिषदों के रूप में स्थायी संस्थाएं हैं और उनका कार्य इस प्रकार के मामलों पर राष्ट्रीय स्तर पर संयुक्त रूप से विचार करना है। इनकी स्थापना 'ह्विटले समिति' की सिफारिशों और १९१९ के 'औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (Industrial Courts Act) के परिणामस्वरूप हुई है। इस समय इस प्रकार की संस्थाओं की संख्या २ ० है। इनमें उद्योग के दोनों पक्षों के प्रतिनिधि होते हैं और कुछ मामलों में एक स्वतन्त्र अध्यक्ष भी होता है। इनके कार्यों में बहुत भिन्नता होती है। जबकि कुछ संस्थाएं केवल मजदूरी के विषय पर ही बातचीत करती हैं, अन्य महत्वपूर्ण संस्थाएँ उद्योग के हितों को प्रभावित करने वाली अनेक बातों

पर विचार करती हैं। यदि निबटारे की शर्तों पर समझौता नहीं हो पाता है तब वह अपने विवाद को किसी स्वतन्त्र विवाचक के सम्मुख रखने को अथवा १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम के अन्तर्गत किए गए अन्य किसी माध्यम को अपनाने को सहमत हो जाते हैं।

अनेक उद्योगों में इसी प्रकार के प्रबन्ध जिला और कारखाना स्तरों (District and Factory Levels) पर हैं जहाँ मामलों पर दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों द्वारा या तो तदर्थ (Ad hoc) रूप से विचार किया जाता है अथवा जिला संयुक्त औद्योगिक परिषदों या ऐसी ही संस्थाओं या मालिक-मजदूर परिषदों द्वारा की गई किसी मिश्रित व्यवस्था द्वारा विचार होता है। इस प्रकार की संस्थाएं राष्ट्रीय स्तर पर किए गए समझौतों को अपने जिले या कारखाने में लागू करने के प्रश्न पर विचार करती हैं परन्तु साधारणतया इन्हें राष्ट्रीय समझौतों की शर्तों में परिवर्तन करने का अधिकार नहीं है। ये नई समस्याओं पर भी विचार करते हैं और यदि जिला अथवा कारखाना स्तरों पर उनका कोई हल नहीं निकलता तब उनको राष्ट्रीय संस्था को सौंप दिया जाता है।

मजदूरी को नियंत्रित करने वाली व्यवस्था — (Wage Regulating Machinery)

अनेक उद्योगों में जहाँ श्रमिकों और मालिकों के संगठन की कमी के कारण ऐच्छिक रूप से पारस्परिक बातचीत का प्रबन्ध नहीं है या यदि है तो वह अपर्याप्त है वहाँ कुछ वैधानिक निकायों (Statutory Bodies) की स्थापना की गई है जिन्हें मजदूरी निर्धारण परिषद् (Wage Council) और मजदूरी निर्धारण बोर्डों (Wage Boards) के नाम से जाना जाता है। इनमें मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के साथ-साथ कुछ विशेष स्वतन्त्र व्यक्ति भी होते हैं। इन निकायों से सम्बन्धित मंत्री को जो साधारणतया श्रम मंत्री होता है मजदूरी की न्यूनतम शर्तों और दशाओं के लिए सुझाव देने का अधिकार है। मंत्री को इन न्यूनतम दशाओं और शर्तों को वैधानिक रूप देने का अधिकार है। लगभग ३०-३ लाख श्रमिकों के रोजगार की दशाओं का निर्धारण एेसी ही वैधानिक व्यवस्था द्वारा होता है। १९४५ के मजदूरी परिषद् अधिनियम (Wages Council Act) द्वारा भी मजदूरी निर्धारित करने वाली इस व्यवस्था की स्थापना की गई है। अनेक उद्योगों के लिए भी अधिनियम बनाए गए हैं जैसे १९४८ में कृषि की मजदूरी निर्धारण के लिए (Agricultural Wages Act), १९३८ में सड़क यातायात के कार्यों में मजदूरी निर्धारण के लिए (Road Haulage Wages Act) १९४३ में भोजनालयों में काम करने वालों के लिए मजदूरी निर्धारण के लिए (Catering Wages Act) आदि। इन सब में न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था है।

राज्य द्वारा सुलह और विवाचन व्यवस्था — (State Conciliation and Arbitration)

सरकार की ओर से सुलह विवाचन और अनुसंधान की भी व्यवस्था की गई है। १८९६ के सुलह अधिनियम (Conciliation Act) और १९१९ के औद्योगिक न्यायालय अधिनियम (Industrial Courts Act) के अन्तर्गत श्रम मंत्री को यह अधिकार है कि यदि ऐच्छिक सुलह व्यवस्था द्वारा औद्योगिक विवादों का निपटारा न किया जा सके तो वह *उद्योगों के विवादों के निपटारे में सहायता करें।* इन अधिकारों का उद्देश्य ऐच्छिक साधनों और संयुक्त व्यवस्था को हटाना नहीं वरन् पूरक करना है। सुलह व्यवस्था द्वारा उद्योगों को सहायता देने के लिए सुलह अधिकारियों की व्यवस्था है जो श्रम मन्त्रालय का एक भाग माने जाते हैं। इन सुलह अधिकारियों का कार्य राष्ट्रीय और जिला और कुछ विषयों में कारखाना स्तर पर मालिकों और श्रमिकों के आपसी सम्बन्धों को ध्यान में रखना है और यदि श्रमिक और मालिक चाहें *तो वह पारस्परिक वार्तालाप और वाद-विवाद द्वारा उनके विवादों का निपटारा* करने में सहायता देना है। जिन विवादों को इस प्रकार से नहीं निपटाया जा सकता उनको यदि सम्बन्धित पक्ष चाहें तो ऐच्छिक विवाचन के लिये सौंपा जा सकता है। यह विवाचन या तो एक विवाचक द्वारा या एक तदर्थ (Ad hoc) विवाचन बोर्ड द्वारा या औद्योगिक न्यायालय द्वारा जो १९१९ के अधिनियम के अन्तर्गत एक स्थायी अधिकरण के रूप में स्थापित हुआ है किया जाता है। युद्धकाल के आपत्कालीन (*Emergency*) उपाय के रूप में *यह उपबंध बनाया गया था कि किसी भी पक्ष* द्वारा मंत्री को प्रस्तुत किये जाने वाले मामले को राष्ट्रीय विवाचन अधिकरण को सौंपा जा सकता था और इसके निर्णयों का सम्बन्धित पक्षों पर लागू करना अनिवार्य था। यह व्यवस्था १९५८ तक चलती रही जबकि उसी वर्ष नवम्बर में अधिकरणों को समाप्त कर दिया गया यद्यपि श्रमिक संघ के नेताओं ने इसका विरोध किया था। अब १९५९ के रोजगार की शर्तों और दशाओं से सम्बन्धित अधिनियम (*Terms and Conditions of Employment Act*) के अन्तर्गत श्रमिकों के प्रतिनिधित्व संगठन द्वारा श्रम मंत्री को यह रिपोर्ट दी जा सकती है कि उसके व्यापार या उद्योग में कोई विशेष मालिक रोजगार की ऐसी शर्तों और दशाओं को कार्यान्वित नहीं कर रहा है जिनका आपस में निर्णय हो चुका है या जिनके लिए कोई विवाचन निर्णय दिया जा चुका है या जिनको मान्यता प्राप्त है। यदि मामले का निपटारा नहीं हो पाता तो श्रम मंत्री को उसे औद्योगिक न्यायालय को सौंपना पड़ता है। मालिकों को रोजगार की शर्तों और दशाओं को मनवाने के लिए न्यायालय द्वारा विवाचन निर्णय दिया जा सकता है। यह निर्णय रोजगार संविदा की एक निहित शर्त के रूप में मान्य हो जाता है। श्रम मंत्री को यह अधिकार भी है कि वह उन विवादों के लिए जो हो चुके हैं या जिनके होने की सम्भावना है अथवा जिनकी उपरोक्त साधनों द्वारा सरलता से सुलझने की आशा नहीं है जाँच न्यायालय या

अनुसंधान समिति की स्थापना कर दें। इन निकायों (Bodies) की रिपोर्ट मुख्यतः मतैक्य और समता की सूचना के लिए होती है। यद्यपि रिपोर्ट का किसी पक्ष के लिए मानना अनिवार्य नहीं है फिर भी इन रिपोर्टों की सिफारिशों को विवादों के निपटारे का आधार समझकर स्वीकार कर लिया जाता है।

इंगलैंड में श्रमिकों और श्रमिकों के सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले विषयों पर विचार करने के लिए सरकार और उद्योग में पारस्परिक सम्पर्क भी रहता है। दोनों पक्षों के सामान्य हितों के विषयों पर सरकार सभी स्तरों पर विचार करने के लिए श्रमिकों और मालिकों के प्रतिनिधियों के साथ सम्पर्क बनाये रखती है। स्थानीय और जिला स्तर पर श्रम मंत्रालय के मुख्य अधिकारी उद्योग के दोनों पक्षों के प्रतिनिधियों के सम्पर्क में रहते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर विभाग के अधिकारी पारस्परिक सम्पर्क बनाये रखने वाले अधिकारियों के रूप में निमंत्रण पाकर अथवा सौजन्यता के नाते से संयुक्त औद्योगिक परिषदों की सभाओं में उपस्थित होते हैं। राष्ट्रीय संयुक्त सलाहकार परिषद् के माध्यम से सरकार व ब्रिटिश एम्पलायर्स कॉन्फ्रेंस और 'ट्रेड यूनियन काँग्रेस' के बीच परामर्श करने की स्थायी व्यवस्था भी है। इस राष्ट्रीय संयुक्त सलाहकार परिषद् (National Joint Advisory Council) की स्थापना १९१९ में की गई थी। इसमें दोनों पक्षों का प्रतिनिधित्व होता है और इसका कार्य सामान्य हित के प्रश्नों पर सरकार को सलाह देना है।

उत्पादन सम्बन्धी सभी विषयों पर कारखाना स्तर पर उद्योग में संयुक्त रूप से परामर्श करने की व्यवस्था की गई है। बहुधा विषयों पर संयुक्त रूप से विचार किया जाता है जो अनौपचारिक (Informal) रूप से होता है विशेषकर छोटे कारखानों में ऐसा ही होता है। कुछ अन्य उद्योगों में ऐसे विचार-विमर्श कुछ संयुक्त निकायों (Bodies) द्वारा होते हैं जो कारखाना जिला और राष्ट्रीय हर स्तर पर स्थापित कर दिये गए हैं। यह संयुक्त निकायें रोजगार की शर्तों और दशाओं के बारे में विचार और समझौता कराने का प्रयत्न करती हैं और उत्पादन से सम्बन्धित विषयों पर भी विचार करती हैं। अनेक अन्य उद्योगों में इन मामलों पर विचार करने के लिए संयुक्त उत्पादन समिति अथवा मालिक मजदूर परिषद् की अलग व्यवस्था है। इनकी स्थापना कारखाना स्तर पर की जाती है और इनमें उन मामलों को सम्मिलित नहीं किया जाता जिन पर सामान्य वार्तालाप व्यवस्था के अन्तर्गत विचार किया जाता है। इन संयुक्त उत्पादन समितियों का गठन भिन्न-भिन्न होता है, और कुछ उद्योगों में आपसी वार्तालाप की सामान्य निकायों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर इनको निर्देशित करने का प्रबन्ध होता है।

इंगलैण्ड में औद्योगिक शांति की स्थापना के लिए की गई व्यवस्था की प्रमुख विशेषतायें —

इस प्रकार ब्रिटिश औद्योगिक व्यवस्था की मुख्य विशेषता यह है कि विवादों की प्रारम्भिक अवस्था में ही शिकायतों को दूर करने का अवसर मिलता है। इंग्लैंड

में औद्योगिक सम्बन्धों की सम्पूर्ण व्यवस्था का आधार ऐच्छिक है। वहाँ पर दोनों पक्ष एक दूसरे के दृष्टिकोणों को समझने का प्रयत्न करते हैं और अपने सामान्य हितों को भी जानते हैं। इस कारण इंग्लैंड में पिछले बीस वर्षों में हड़ताल और तालाबन्दी बहुत ही कम हुई है। १९३१ से १९५४ तक २२ वर्षों में औसतन केवल १०१ लाख कार्य दिनों की हानि हुई जबकि १९१० से १९३२ तक २१ वर्षों में २१० लाख कार्य दिनों की हानि हुई थी। १९५५ में कोयला खान रेल यातायात और बन्दरगाहों पर हुई हड़तालों से जो कार्य दिनों की क्षति हुई वह १९४४ के बाद के किसी भी वर्ष की अपेक्षा बहुत अधिक थी। विवादों के शांतिपूर्ण निपटारे के लिए और अधिक सुविधाजनक व्यवस्था की सम्भावना पर विचार किया जा रहा है।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि इंग्लैण्ड में औद्योगिक-शांति स्थापित करने के लिए निम्नलिखित व्यवस्था है — (१) मालिकों और श्रमिकों में सामूहिक सौदाकारी द्वारा किए गए संयुक्त ऐच्छिक समझौते करार, (२) मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों में औद्योगिक परिषदों द्वारा राष्ट्रीय क्षेत्रीय और स्थानीय स्तरों पर संयुक्त रूप से औद्योगिक वार्तालाप (३) प्रत्येक संस्थान मे मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों की मालिक मजदूर समितियाँ (४) ऐसे उद्योगों में जहाँ संघ कमजोर हैं वहाँ न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए वैधानिक मजदूरी नियंत्रण की व्यवस्था (Statutory Wages Regulating Machinery) (५) सरकार द्वारा सुलह विवाचन और अनुसंधान तथा युद्ध काल में अनिवार्य विवाचन की व्यवस्था (६) श्रमिकों और मालिकों के पारस्परिक सम्बन्धों पर प्रभाव डालने वाले विषयों पर सरकार और उद्योग में पारस्परिक सम्पर्क बनाए रखने की व्यवस्था (७) कारखाना स्तर पर उद्योग में संयुक्त परामर्श व्यवस्था।

इंगलैंड में मालिक मजदूर समितियाँ — (Works Committees)

इंगलैंड में मालिक मजदूर समितियों की स्थापना के अनेक उद्देश्य रहे हैं। श्रमिक मालिक मजदूर समितियों को प्रबन्ध में हिस्सा लेने का साधन मानते हैं। मालिकों के विचार से यह समितियाँ अशांति को कम करने और कार्यकुशलता को बढ़ाने का साधन हैं। उचित रूप से संगठित मालिक मजदूर समितियों से श्रमिकों को बहुत लाभ होता है। प्रत्येक संस्थान में मजदूरी एवं कार्य के घण्टों आदि विषयों से सम्बन्धित विवादों को तुरन्त ही सुलझाया जा सकता है। इन समितियों द्वारा रोज़गार और कार्य की दशाओं से सम्बन्धित अन्य विषयों पर भी विचार किया जाता है। परन्तु ऐसे उदाहरण बहुत कम हैं जहाँ श्रमिकों को प्रबन्ध में वास्तविक रूप से भाग मिला हो। जहाँ तक नीति निर्धारण में श्रमिकों के सहयोग का प्रश्न है उसका अस्तित्व लगभग है ही नहीं। जिन श्रमिकों ने इस उद्देश्य से ममालय समितियों का निर्माण किया था साधारणतया उन्हें निराश ही

होना पड़ा। यह बात उल्लेखनीय है कि शुरू शुरू में श्रमालय समितियों और श्रमालय प्रतिनिधि समितियों का श्रमिक संघों द्वारा अपनी गतिविधियों के पूरक के रूप में समर्थन किया गया था परन्तु बाद में जब श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन प्रभावशाली हुआ तो श्रमिक संघ इसके विरोधी हो उठे जिसके कारण यह आन्दोलन १९१८ के बाद असफल हो गया। वर्तमान समय में श्रमालय समितियाँ श्रमिक संघों से मिलकर अपना कार्य सुचारु रूप से कर रही हैं और इन्होंने विवादों को तत्काल ही सुलझाने की स्वस्थ परम्परा का विकास किया है। श्रमिकों की सुरक्षा और कल्याण के लिए भी इन्होंने अच्छा कार्य किया है। ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था में इनका अब एक मुख्य स्थान है।

ग्रेट ब्रिटेन के अनुभव और भारत —

अब हमको यह देखना है कि किस सीमा तक हम भारत में इंगलैण्ड के अनुभवों से लाभ उठा सकते हैं और किस किस रूप में इंगलैण्ड और भारत के औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था में भिन्नता पाई जाती है। कुछ लोगों का ऐसा विचार है कि इंगलैण्ड की भांति औद्योगिक विवादों के विषयों पर राजकीय हस्तक्षेप यथासम्भव कम होना चाहिए और देर से करने की अपेक्षा प्रारम्भिक अवस्था में ही तर्क और वाद विवाद को प्रोत्साहित करना चाहिए। भारत में अब तक श्रमिक संघों ने औद्योगिक विवादों के सुलझाने में कोई विशेष भाग नहीं लिया है जबकि ग्रेट ब्रिटेन के औद्योगिक सम्बन्धों के यह अभिन्न (Integral) अंग हैं। इसके अतिरिक्त ग्रेट ब्रिटेन में भारत के विपरीत किसी भी औद्योगिक विवाद के सम्बन्धित पक्ष एक दूसरे के दृष्टिकोण की सराहना करते हैं तथा पारस्परिक वार्तालाप और स्वतन्त्र विचार विमर्श द्वारा स्थिति को स्पष्ट रूप से समझने का प्रयत्न करते हैं। भारत में कर्तव्यनिष्ठ (Responsible) श्रमिक नेताओं की कमी है। श्रमिक अशिक्षित और असंगठित होने के कारण पारस्परिक विचार विमर्श में भाग नहीं लेते और इस प्रकार प्रतिपक्ष के विचारों को समझ भी नहीं पाते। ग्रेट ब्रिटेन में औद्योगिक सम्बन्धों की व्यवस्था सफलतापूर्वक ऐच्छिक आधार पर कार्य करती है और इसका कारण शक्तिशाली श्रमिक संघ और शिक्षित श्रमिक वर्ग है। भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन अभी तक दुर्बल है और श्रमिक वर्ग अशिक्षित है इसलिए राजकीय हस्तक्षेप आवश्यक और वांछनीय प्रतीत होता है। परन्तु भारत में भी अब प्रारम्भिक अवस्था में ही स्वतंत्र और निष्पक्ष विचार विमर्श की महत्ता को धीरे धीरे समझा जा रहा है। भारत में भी इंगलैण्ड के समान विभिन्न औद्योगिक अधिनियमों में मालिक मजदूर समितियों संयुक्त औद्योगिक परिषदों समझौताकारों आदि की व्यवस्था की गई है। अब श्रमिकों और मालिकों के बीच संयुक्त ऐच्छिक विचार विमर्श पर अधिक जोर दिया जा रहा है। भारत में कुछ औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों और मालिकों के मध्य हाल ही में हुए करारों ने यह सिद्ध कर दिया है कि पारस्परिक विवादों में ही रत होने के पुराने तरीकों का प्रभाव अब कम होता

जा रहा है। इस प्रकार भारत अपनी औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था में ग्रेट ब्रिटेन की व्यवस्था का अनुसरण करने का प्रयत्न कर रहा है। इगलैण्ड और भारत की औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था में कुछ न कुछ अन्तर तो रहेगा ही क्योंकि दोनों देशों की परिस्थिति बहुत भिन्न है। इसलिए इस समय औद्योगिक विवादों में सरकारी हस्तक्षेप को किसी बड़ी सीमा तक समाप्त नहीं किया जा सकता क्योंकि श्रमिक और मालिक दोनों ही इस समय इस बात के पक्ष में प्रतीत नहीं होते। हम इतना कह सकते है कि भारत मे श्रमिकों और मालिकों दोनों को ही प्रतिपक्षी के दृष्टिकोण को समझने के लिए ग्रेट ब्रिटेन की भाँति निष्पक्ष एवं स्वतन्त्र विचार विमर्श की महत्ता को समझना होगा। औद्योगिक विवादों के हो जाने के पश्चात् उनके निवारण के लिए हल ढूढने की अपेक्षा हमें भी इस बात का अधिक प्रयत्न करना चाहिए कि औद्योगिक विवाद उत्पन्न ही न हों।

९

औद्योगिक श्रमिकों की आवास समस्या

(Housing of Industrial Labour) ✓

आवास की महत्ता और आवश्यकता –

आवास की समस्या निश्चय ही भारत में औद्योगिक श्रमिकों की एक महत्त्वपूर्ण समस्या है। भोजन तथा कपड़े के बाद आवास का ही स्थान है। उचित आवास के अभाव के कारण ही बीमारियाँ फैलती हैं व्यक्तियों में असंतोष व्याप्त हो जाता है मानव की उच्चतर भावनाओं का अन्त हो जाता है तथा उनमें असभ्यता एवं निर्दयता आ जाती है। अनेक अमेरिकन तथा यूरोपियन लेखकों द्वारा मकानों के आर्थिक एवं सामाजिक महत्त्व पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया गया है। यह देखा गया है कि उद्योगों के चुनाव (Choice) तथा स्थापन (Location) के साथ-साथ अन्य देशों में आवास समस्या भी बहुत महत्त्वपूर्ण बन गई है तथा नगर नियोजन पर भी पर्याप्त ध्यान दिया गया है। हमारा देश इस दृष्टि से बहुत पीछे है क्योंकि यहाँ पर कुछ स्थानों को छोड़कर, शेष में आवास केवल अव्यवस्थित रूप से ईंटों व मिट्टी का एक संचय मात्र ही है। आधुनिक आवास जैसा कि नाम से ही विदित है औद्योगिक क्षेत्रों में नहीं पाये जाते। आधुनिक आवास* की अपनी कुछ विशेषतायें हैं और उसकी कुछ ऐसी विशिष्ट पद्धतियाँ हैं जिनके कारण पिछली शताब्दी के आवास-वातावरण से आधुनिक आवास भिन्न होते हैं। मकानों का निर्माण दीर्घकालीन उपयोग के हेतु किया जाता है और इस कारण उनको केवल शीघ्रता से लाभ कमाने के निमित्त नहीं बनाया जाता। आवास एक आयोजित व्यवस्था है और इस कारण इसको व्यापारिक दृष्टि से नहीं देखना चाहिये। आवास से तात्पर्य यह नहीं है कि बस्तियों का स्वयं संचालित रूप से विस्तार हो जाय या ईंटों को एक स्थान पर एकत्रित कर दिया जाय। आवास का एक आदि और एक अन्त होता है और इसका एक भौतिक रूप भी होता है। इसका एक भाग दूसरे भाग से सम्बन्धित होता है और प्रत्येक भाग एक उद्देश्य विशेष की पूर्ति करता है। इसमें दैनिक जीवन की न्यूनतम सुविधायें जैसे वायु आने जाने के लिए संवातन, सूर्य प्रकाश प्रत्येक खिड़की से शान्त व सुहावना दृश्य पर्याप्त एकान्तता बीमारी तथा प्रसूतिकावस्था में आवश्यक सफाई की सुविधा तथा बच्चों के खेलने के स्थान आदि होनी चाहियें। आवास केवल मौसम से बचाव खाना बनाने और सोने के लिये ही

---

* *Modern Housing* by Catherine Bauer quoted by the Labour Investigation Committee Report page 294

नहीं होता वरन् यह विषम सामाजिक रीतियों का कम भी है। फिर एक आधुनिक मकान उस कीमत पर मिलना चाहिये, जिसे औसत अथवा कम आय का व्यक्ति भी दे सके।

जनसंख्या में वृद्धि —

हमारे औद्योगिक क्षेत्रों में कितने गृह आधुनिक गृह के उपरोक्त वर्णनानुसार हैं अथवा उसके निकट भी मात्र हैं? सम्भवतः कोई भी नहीं अथवा इतने कम कि उनकी संख्या समुद्र में एक बूंद के समान है। आवास समस्या दिन प्रति-दिन जटिल होती जा रही है और वर्तमान आवास व्यवस्था अत्यन्त असन्तोषजनक है। औद्योगिक क्षेत्र बहुत भीड़-भाड़ वाले हो गये हैं। ग्राम्य भूमि की अपेक्षा जनसंख्या में अधिक वृद्धि हुई है। बम्बई, कलकत्ता अहमदाबाद जैसे शहरों की जन संख्या बहुत बढ़ गई है तथा छोटे नगर एवं अविकसित क्षेत्रों ने भी अपना एक विशिष्ट स्थान बना लिया है। न केवल जनसंख्या में ही वृद्धि हुई है वरन् पिछले कई वर्षों से गावों से शहरों व नगरों की ओर जनसंख्या बढ़ती गई है। १९५१ की जन-गणना के आंकड़ों से ज्ञात होता है कि १९४१ तथा १९५१ के १ वर्षों में ऐसे ७५ नगरों की जनसंख्या में जिनमें १ लाख या अधिक आबादी थी ४१·८% वृद्धि हुई। नई देहली में ११७·७%, मद्रास में ८१·९%, बम्बई में ६१·१%, कलकत्ता में २ ९% तथा उ प्र के १६ नगरों म ३१·७% जनसंख्या की वृद्धि हुई है। १९६१ की जनगणना के आकड़ों से भी स्पष्ट हो जाता है कि औद्योगिक नगरों की जन संख्या तीव्र गति से और बहुत अधिक मात्रा में बढ़ रही है। देहली की जनसंख्या में ही १९५१ १९६१ के मध्य ५१·९ प्रतिशत वृद्धि हो गई है। औद्योगिक क्षेत्रों में जनसंख्या की यह वृद्धि अधिकतर ग्रामीण जनता के नगरों में आने के कारण हुई है जो बड़े पैमाने के उद्योगों के विकास के कारण श्रमिकों की मांग बढ़ने से नगरों में आई है। कारखानों की स्थापना के साथ-साथ कोई नगर नियोजन नहीं हुआ और इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों के मकान बड़े अव्यवस्थित ढंग से बनाये गये। भूमि तथा इमारती सामान के ऊँचे मूल्यों के कारण नये मकान नहीं बनाये गये अतः भीड़ भाड़ की समस्या और भी बढ़ गई। विभाजन के पश्चात् शरणार्थियों के आ जाने तथा आधुनिक युवक की संयुक्त परिवार को छोड़कर अपना घर बसाने की इच्छा के कारण भी समस्या की गम्भीरता अधिक हो गई है। काम के अधिक घण्टे व यातायात की सुविधाओं में कमी के कारण श्रमिकों की फैक्टरी के पास ही रहने की इच्छा के कारण भी यह समस्या अधिक गम्भीर हो गई है।

औद्योगिक श्रमिकों के आवास की सामान्य दशायें —

सरकार की विभिन्न आवास योजनाओं के होते हुये भी श्रमिकों की वर्तमान आवास व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। रॉयल श्रम आयोग के शब्द इस सम्बन्ध में आज भी सत्य हैं 'नगरों तथा औद्योगिक केन्द्रों में एक दूसरे से सटे हुये स्थान भूमि का उच्च मूल्य तथा श्रमिकों की अपने उद्योगों के निकट रहने की आवश्यकता के

कारण अधिक भीड़ और घनी आबादी में वृद्धि हुई है। व्यस्त केन्द्रों में प्राप्त भूमि का पूरा उपयोग करने के हेतु मकान एक दूसरे से सटा कर बनाये जाते हैं। यहाँ तक की मोरी से मोरी छूती है और दीवार से दीवार मिली होती है। वास्तव में भूमि इतनी मूल्यवान है कि मकानों में पहुँचने के लिये सड़कों के स्थान पर छोटी एवं संकरी गलियाँ होती हैं। सफाई की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता और यह इस बात से प्रकट है कि सड़ते हुये कूड़ों के ढेर पड़े रहते हैं और गन्दे पानी के गड्ढे भरे रहते हैं। टट्टियों के अभाव में हवा और धरती दोनों में गन्दा वातावरण फैल जाता है। अनेक मकान जिनमें चौखट खिड़की और संवातन (Ventilation) का अभाव होता है प्रायः एक कमरे वाले होते हैं, जिनमें वायु के आवागमन का मार्ग केवल एक द्वार होता है जो कि इतना नीचा होता है कि उसमें बिना झुके घुसना असम्भव है। एकान्तता पाने के लिये पुराने कनस्तरों के टीन एवं पुरानी बोरियों को परदे के रूप में काम में लाया जाता है जिससे प्रकाश एवं निर्मल वायु का आना और भी बन्द हो जाता है। इस प्रकार के घरौंदों में मनुष्य जन्म लेता है, खाता है, जाता है, रहता है और मृत्यु को प्राप्त होता है।"[1]

ऐसी ही अवस्था का वर्णन १९२८ में ब्रिटिश ट्रेड यूनियन काँग्रेस के एक प्रतिनिधि मण्डल द्वारा किया गया था "हम जहाँ भी ठहरे हमने श्रमिकों के क्वार्टरों को देखा और यदि हम उन्हें न देखते तो कभी विश्वास न करते कि ऐसे बुरे स्थान भी हैं ... पंक्तियों में मकानों का समूह होता है जिसका मालिक किरायेदारों से ४½ शि॰ प्रतिमास किराया लेता है। प्रत्येक आवास में एक अंधेरी कोठरी जो रहने खाना पकाने सोने आदि सभी के काम आती है ९ × ९ नाप की होती है। इसमें मिट्टी की दीवारें और टीनी खपरैल की छतें होती हैं। इसके सामने एक छोटा सा खुला आँगन होता है जिसका एक कोना शौचालय के काम में आता है। रहने के कमरों में टूटी छत अथवा खुले हुए प्रवेश द्वार के अतिरिक्त कोई संवातन नहीं होता। घर के बाहर लम्बी संकरी एक नाली होती है जहाँ सब प्रकार का कूड़ा करकट संचित होता है और वहाँ कीड़े और मक्खियों की अधिकता होती है ... इन मकानों के बाहर भूमि की पट्टी के एक कोर पर पंक्तियों के बीच खुली नालियाँ होती हैं कूड़ा-करकट और अन्य व्यर्थ की चीजों से जिनमें से अति तीक्ष्ण दुर्गन्ध आती रहती है कहीं कहीं पर बन्द भी हो जाती है। यह तो स्पष्ट ही है कि यह नालियाँ बच्चों के टट्टी करने के काम में लाई जाती हैं।"[2]

यही आवासों की सामान्य व्यवस्था है जो आज तक बनी हुई है। यह किसी भी औद्योगिक केन्द्र को स्वयं देखने से स्पष्ट हो जायगा। लेखक ने स्वयं उत्तरी भारत के औद्योगिक केन्द्रों में ऐसी शोचनीय दशाओं का अवलोकन किया है। श्रम अनुसन्धान-समिति ने भी बताया था कि उसके सम्मुख प्रस्तुत गवाही आदि का दबाव

1. *Report of the Royal Commission on Labour* page 271-72
2. Quoted in Palme Dutt's *India Today* page 361

हुए वह इस निष्कर्ष पर पहुंची कि सम्पूर्ण देश में वर्तमान् व्यवस्था उतनी ही शोचनीय थी जितनी कि रॉयल श्रम आयोग ने बताई थी। १९४६ की स्वास्थ्य सर्वेक्षण एवं विकास समिति अर्थात् 'भोर समिति' ने भी श्रमिकों के रहने की शोचनीय दशाओं की ओर ध्यान आकृष्ट कराया था। पिछले युद्ध के पश्चात् आवास समस्या शरणार्थियों के आने के कारण और भी अधिक गम्भीर हो गई। सन् १९५२ में कानपुर में श्रमिकों की गन्दी बस्तियों का अवलोकन कर पं० नेहरू को बड़ा आश्चर्य तथा झुंझलाहट हुई थी। बड़े शहरों में इतनी भीड़ और घनी आबादी होती है कि वास्तव में उसका वर्णन करना भी कठिन है और छोटे छोटे शहरों में भी व्यवस्था अच्छी नहीं है। किरायेदारों द्वारा भी मकान फिर से किराये पर उठाने का रिवाज भी बहुत अधिक पाया जाता है। कलकत्ता और बम्बई जैसे शहरों में बहुत से श्रमिक बिना किसी आवास के पाए जाते हैं। ऐसे श्रमिक दिन में काम करते हैं और रात को सारे सामान को तकिये की जगह प्रयोग कर फुट पाथ पर सो रहते हैं। हाल ही में सन् १९६२ के प्रारम्भ में जो उत्तरी भारत में शीत लहर (Cold wave) आयी थी उसमें आवास रहित व्यक्तियों की शोचनीय दशाओं का हाल सबको विदित है। कानपुर, देहली आदि कुछ बड़े नगरों में तो बहुत से एस व्यक्ति जो सड़कों पर सोते थे मृत्यु को प्राप्त हो गए। केवल हाल ही के कुछ वर्षों में सरकारों की विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत थोड़ा सुधार हुआ है फिर भी अभी बहुत कुछ करने को बाकी है।

विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में आवास की दशाएं —

बम्बई में अनेक श्रमिक ऐसी झोंपड़ी या ओसारे में रहते हैं जिनको 'जवेली' कहते हैं जो कच्ची दीवारों तथा नारियल की सूखी पत्तियों की छतों से बनी होती है। परन्तु अधिकतर श्रमिक ऐसे मकानों में रहते हैं जिनको 'चॉल' कहते हैं जो कि ३ या ४ मंजिल ऊंचे पक्के मकान होते हैं। उनमें एक सामान्य बरामदा अथवा बीच में से एक रास्ता होता है जो एक कमरे वाले मकानों तक पहुँचता है। यह 'चॉल' विशेष रूप से श्रमिकों के लिए मिल क्षेत्रों के निकट बनाए जाते हैं और इस कारण इनमें बड़ी भीड़ रहती है। इन चॉलों की व्यवस्था वैसी ही शोचनीय है जैसा कि रॉयल श्रम आयोग का उपरोक्त वर्णन है। आयोग ने यह भी कहा था कि इनमें सुधार होना असम्भव था और इसलिए इनको गिरा देना ही ठीक था। बम्बई में नगर निगम के भी कुछ 'चॉल' हैं। बम्बई के नगर सुधार ट्रस्ट ने भी श्रमिकों के हेतु कुछ आवास एवं अर्ध स्थायी झोंपड़ियों का निर्माण किया है। बम्बई के बन्दरगाह ट्रस्ट ने भी अपने लगभग ३०% श्रमिकों को आवास की सुविधा दी है और श्रम कल्याण अधिकारी की अधीनता में दो भिन्न स्थानों पर स्वतन्त्र आवास क्षेत्रों का निर्माण किया गया है। इनमें २,९६ तीसरी और चौथी श्रेणी के कर्मचारी रहते हैं। बम्बई मिल मालिक परिषद की २१ सदस्य मिलों ने भी अपने श्रमिकों के लिए १९६ चॉल बनवाये हैं जिनमें ४८४२ एक या दो कमरे वाले मकान

है। इनका किराया १ रु० से लेकर ७ रु० प्रति माह तक होता है और दो कमरे वाले मकानों का किराया १४ रु० तक है। इनमें लगभग १६,००० श्रमिक (७·१%) रहते हैं। श्रमिकों के लिए मकान बनाने के सम्बन्ध में सरकारी प्रयासों का उल्लेख *आगामी पृष्ठों में किया गया है।*

अहमदाबाद में आवास की स्थिति भी उतनी ही असन्तोषजनक है। मकान एक दूसरे से इतने सटे हुए हैं कि कभी तो हज़ारों व्यक्ति इधर उधर घूमते दिखाई देते हैं और कभी एकाएक दूसरों को स्थान देने के हेतु एक कोने में गायब हो जाते हैं। अभी कुछ समय पहले सरकार की श्रमिकों के लिए कोई आवास योजना नहीं थी। नगरपालिकाओं ने अभी हाल ही में हरिजनों और अन्य व्यक्तियों के लिए कुछ मकान बनवाए हैं। इसके अतिरिक्त मिल मालिकों की एक संस्था अर्थात् अहमदाबाद मिल आवास कम्पनी ने श्रमिकों के लिए ८०० मकानों की व्यवस्था की है। प्रत्येक मकान में एक कमरा, रसोईघर व एक बरामदा होता है। उनका किराया ४ रु० प्रति मास वसूल किया जाता है। यहाँ पर भी सफाई, पानी और स्वच्छ वातावरण के विषय में अनेक शिकायतें हैं। अहमदाबाद के कपड़ा मिल मजदूर परिषद ने भी ६० मकानों के एक क्षेत्र का निर्माण किया है जो कि किराया खरीद व्यवस्था (Hire Purchase System) पर किराये पर दिए गए हैं और प्रत्येक किरायेदार १० रु० प्रति माह चुकाता है और २० वर्ष में उस मकान का स्वामी बन जाता है। प्रत्येक मकान में दो कमरे, एक रसोई, एक बरामदा और एक आंगन है। फिर अहमदाबाद में १०० से अधिक श्रमिक सहकारी आवास समितियाँ भी हैं जिनकी स्थापना अहमदाबाद के कपड़ा मिल मजदूर परिषद के प्रयत्नों द्वारा हुई है। उन्होंने ४०० मकानों का निर्माण किया है जिनमें से प्रत्येक में एक रहने का कमरा, एक दूसरा कमरा, एक रसोईघर और दो छतदार बरामदे सम्मिलित हैं। फिर भी भिन्न भिन्न संस्थाओं द्वारा प्रदान की गई आवास सुविधाएँ श्रमिकों के लिए व्यक्तिगत मकान की सुविधाओं की तुलना में बहुत कम हैं। श्रमिकों की अधिक संख्या अब भी 'चाल' में ही रहती है जिनमें से बहुत सी सस्ते सामान से निर्मित की गई हैं। इनमें कोई सुविधाएँ नहीं हैं और सफाई की व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है। किराया भी बहुत अधिक लिया जाता है। इन 'चालों' की दशाएँ भी रॉयल श्रम आयोग द्वारा वर्णन की हुई दशाओं जैसी ही हैं।

१९३८ तक कानपुर के नगर सुधार ट्रस्ट ने २११ क्वार्टरों का निर्माण किया था जिन्हें बाद में उनको लागत मूल्य पर सहकारी आवास समिति नगरपालिका एवं व्यक्तिगत श्रमिकों को हस्तान्तरित कर दिया गया। प्रत्येक पंक्ति में २० क्वार्टरों का निर्माण किया गया है जो एक दूसरे से सट कर बनाए गए हैं। १९३९ से इन क्वार्टरों में भारी भीड़ हो गई है।

सरकार द्वारा श्रमिकों के लिए आवास योजना की कानपुर में कोई सुविधा नहीं थी। केवल १९४३–४४ में प्रान्तीय सरकार ने २,४०० पारिवारिक मकानों के

निर्माण के लिए मगर सुधार ट्रस्ट को ११ ८ लाख रुपये ब्याज मुक्त ऋण के रूप में प्रदान किए थे। इन क्वार्टरों का निर्माण हो चुका है लेकिन स्वयं जाकर देखने से पता लगा है कि सफाई की कोई सन्तोषजनक सुविधा नहीं है और निर्माण में लगाया गया सामान भी उत्तम कोटि का नहीं है। फरवरी १९५२ म प्रधान मन्त्री पं० नेहरू के कानपुर आने के पश्चात् ही सरकार ने कानपुर में औद्योगिक गृह समस्या की ओर ध्यान दिया और अब श्रमिकों के लिए बहुत से क्वार्टरों का निर्माण-कार्य हाथ में लिया है। (सरकारी योजनाओं के अन्तर्गत देखिए)

कानपुर में मालिकों की आवास-योजनायें भी हैं। १९३८ तक १ ० मकानों की व्यवस्था मालिकों ने की थी। तब से स्थिति में कोई विशेष उन्नति नहीं हुई है। श्रमिकों की संख्या को दृष्टि में रखते हुए कानपुर में मालिकों ने केवल १ % से भी कम श्रमिकों के लिए आवास व्यवस्था की है। मालिकों में ब्रिटिश इंडिया कॉरपोरेशन श्रमिकों को आवास-सुविधा प्रदान करने में अग्रगामी थी। उन्होंने दो स्थानों पर— अर्थात् ऐलेन गंज और मैक रॉबर्ट गंज में १ ६९ क्वार्टरों का निर्माण किया है जिनमें साधारणतया एक या दो कमरों के मकान हैं। एक कमरे वाले क्वार्टरों का किराया १।) प्रति मास तथा दो कमरों वाले क्वार्टरों का किराया ४।।) प्रति माह है। एल्गिन मिल ने भी दो आवास क्षेत्रों की व्यवस्था की है — जिन्हें मैक्सवल गंज और एल्गिन मिल्स के आवास क्षेत्र कहते हैं। इनमें ११६ मकानों की व्यवस्था है। प्रति मास किराया २।।) और ६।।) के बीच है। जे० के० मिल्स ने भी अपने श्रमिकों के लिए एक बड़े आवास क्षेत्र का निर्माण किया है।

कानपुर नगरपालिका ने भी पार्कों व उद्यानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए और भंगियों के लिए कुछ बिना किराए के क्वार्टरों की व्यवस्था की है। चार स्थानीय क्षेत्रों में लगभग २ क्वार्टरों का निर्माण किया गया है और उनमें लगभग ५ ० व्यक्ति रहते हैं। क्वार्टर तीन प्रकार के हैं — एक कमरे वाले दो कमरे वाले और बरामदे के साथ दो कमरे वाले। पानी का नल सामान्य है और स्त्री पुरुषों के लिए अलग टट्टियों की व्यवस्था है।

फिर भी कानपुर में अधिकतर श्रमिक बस्तियों एवं अहातों में रहते हैं जो व्यक्तिगत मकान-मालिकों की सम्पत्ति होते हैं। अहातों को स्वयं जाकर देखने से उनमें रहने वाले श्रमिकों की शोचनीय दशा का वास्तविक ज्ञान हो सकता है और रॉयल श्रम आयोग द्वारा वर्णित व्यवस्था आज भी सत्य है। रॉयल श्रम आयोग ने इन अहातों का निम्नलिखित वर्णन किया था "अधिकांश मकान ८ × ९ नाप के एक कमरे वाले हैं जिनमें से कुछ में एक बरामदा है तथा कुछ में उसका भी अभाव है, और ऐसे आवास प्रायः दो तीन या चार परिवारों द्वारा लिए जाते हैं। इन मकानों के फर्श साधारणतया पृथ्वी की सतह से नीचे होते हैं और नालियों संवातन (Ventilation) और सफाई का उनमें पूर्ण अभाव है।" तब से यदि कोई सुधार हुआ है तो वह केवल कुछ सड़कों तथा नालियों की सुविधायें हैं अन्यथा आज

भी उनकी दशायें उतनी ही असन्तोषजनक हैं जितनी कि पहले थीं।

कानपुर-श्रम-जाँच-समिति के सुझाव पर उत्तर प्रदेश के आर्थिक ज्ञान ब्यूरो (Bureau of Economic Intelligence) ने १९३८–३९ में कानपुर नगर के मिल क्षेत्र के मकानों की दशाओं की जाँच की जिसके अन्तर्गत उसने समस्त बस्तियों एवं अहातों का सर्वेक्षण किया। सर्वेक्षण के अनुसार ६५% परिवार एक कमरे वाले मकान में रहते थे, ३१% दो कमरे वालों में तथा केवल ४% तीन या चार कमरों वाले मकानों में रहते थे। चार कमरों से अधिक कमरे वाले मकान नहीं थे। कमरे बहुत ही छोटे थे तथा उनमें बहुत ही नीचे दरवाजे लगे हुए थे। लगभग ९२% मकानों के कमरों में खिड़कियों व संवातन का अभाव था और ७२% कमरों में कच्चे फर्श थे। बरामदों के फलस्वरूप उनमें कोई एकान्तता नहीं थी तथा मकान की चारदीवारी के अन्दर का अवलोकन बराबर के मकान की छत से पूर्णरूपेण किया जा सकता था। पानी का प्रबन्ध बहुत असन्तोषजनक था। लगभग ८६% परिवार सार्वजनिक नल से पानी लेते थे और केवल ७% के अपने व्यक्तिगत नल थे। लगभग १०% व्यक्ति कुओं से पानी भरते थे। कुओं और नलों पर बहुत भीड़ हो जाती थी औसतन प्रति नल से २३३ व्यक्ति और प्रति कुएँ से ११४ व्यक्ति पानी भरते थे। २६% परिवारों के लिए टट्टियों की कोई व्यवस्था नहीं थी। केवल १९% मकानों में शौचालयों की व्यवस्था थी और शेष परिवार सार्वजनिक शौचालयों में जाते थे जो कि अत्यधिक गन्दे होते थे। सफाई की दशा बहुत शोचनीय थी और वर्षा के दिनों में अधिकांश मकानों की छतें टपकती थीं और बस्तियों में पानी भर जाता था। सड़कों की दशा बहुत असन्तोषजनक थी। सड़कों पर प्रकाश का प्रबन्ध भी नहीं था। इस सम्बन्ध में कानपुर-श्रम-जाँच-समिति ने इस क्षेत्र के आवासों के विषय में लिखा है कि "एक अपरिचित के लिए रात्रि में इन स्थानों को देखने जाना एक संकटमय कार्य है। टखने में मोच तो अवश्य ही आ जाएगी जबकि किसी गन्दे कुएँ या विस्तृत आकार के गड्ढे में गिर कर गर्दन तुड़वा लेना भी कोई असम्भव बात नहीं होगी।" कानपुर में सहस्रों श्रमिक भूमि के नीचे बनाए गए कमरों में रहते हैं जिनको देखकर समिति के एक सदस्य को फ्रांस में लड़ाई के दिनों की खाइयों की याद आ गई, और उसने कहा "इन गन्दी बस्तियों में रहने वालों की वायुयानों द्वारा बमवर्षा व गोलाबारी से तो रक्षा हो सकती है परन्तु ऐसे रहने वाले श्रमिक सरलता से मनुष्य के शत्रु मच्छर, कीड़े खटमल आदि के शिकार हो जाते हैं।" डा० बी० अग्निहोत्री द्वारा १९५० और १९५४ में किए गए सर्वेक्षणों से स्पष्ट है कि कानपुर में मकानों की दशा युद्ध के पश्चात् के वर्षों में बहुत ही शोचनीय हो गई थी और भीड़भाड़ गन्दगी आदि असमस्य और सामाजिक पतन आज इन अहातों के साधारण लक्षण हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने जब फरवरी १९५२ में कानपुर का निरीक्षण किया तो उन्हें इन गंदी बस्तियों को देखकर अत्यन्त धक्का लगा था। उन्होंने चिड़चिड़ाहट व क्रोधपूर्ण शब्दों में कहा था "यह गन्दी बस्तियाँ मानवता के अत्यधिक पतन का

प्रदर्शन करती हैं। जो व्यक्ति इन स्थितियों के लिए उत्तरदायी हैं उन्हें फांसी दे देनी चाहिए।" उन्होंने यह भी कहा कि इन गन्दी बस्तियों को शीघ्र ही जला देना चाहिए और उनकी जगह अस्थायी रूप से स्वस्थ व साफ जगहों में घर बना देने चाहियें। व्यक्तिगत पूछताछ से ज्ञात हुआ है कि इन बस्तियों में रहने वाले श्रमिकों *तथा अन्य लोगों को शिकायत है कि अधिकारी वर्ग इन बस्तियों एवं अहातों में* सुधार करने की ओर से कुछ उदासीन थे। हाल के वर्षों में ही इस ओर कुछ सुधार किए गए हैं लेकिन समस्या केवल इन गन्दी बस्तियों के सुधार की ही नहीं वरन् उनके पुनर्निर्माण की और श्रमिकों के लिए इनके स्थान पर अन्य स्थान की व्यवस्था करने की है।

कलकत्ते में भी आवास की दशाएँ कोई अच्छी नहीं हैं। मालिकों ने अपने श्रमिकों के आवास की व्यवस्था के प्रति बहुत ही उदासीनता दिखाई है। सरदार अर्थात् मध्यस्थ और निजी मकान मालिकों ने अधिकतर श्रमिकों के लिए ऊँचे किराए पर सस्ते मकानों की व्यवस्था की है। जहाँ श्रमिकों के मकान हैं उन जगहों को बस्ती *के नाम से पुकारा जाता है जिनका कलकत्ता नियम की एक रिपोर्ट में 'देसी ग्राम'* के नाम से वर्णन किया गया है और जिनमें बिना किसी योजना के बिना सड़क के तथा बिना नालियों के झोपड़ियाँ बनी हैं जिनमें न कोई संवातन होता है और न कभी सफाई होती है। इनमें से अधिकतर प्रकाशरहित नम और टपकने वाली हैं और इनमें दु:ख पाप गन्दगी रोग और बीमारियों ने घर कर लिया है। जगह जगह पर गन्दे और सड़ी वनस्पतियों और कूड़े से भरे बदबूदार पानी के गड्ढे भी पाए जाते हैं जिनकी हानिकारक वायु वातावरण को दूषित करती है। ऐसे ही गन्दे तालाब श्रमिकों के पारिवारिक कार्यों के लिए जलपूर्ति के साधन हैं। रास्ते तंग हैं सड़कों का तो नामोनिशान भी नहीं है। स्वच्छता का कोई प्रबन्ध नहीं है। बस्ती के प्रत्येक मकान के दरवाजे पर कूड़े के ढेर को उठाने का भी कोई प्रबन्ध नहीं है। अधिकतर मकान कच्चे और फूस की छतों के बने हैं। उनके कमरे बहुत छोटे और तंग हैं जो कि रसोई घर और भण्डार-गृह के भी काम आते हैं और श्रमिकों के लिए बाहर खुले में सोना अधिक सुविधापूर्ण होता है। इन मकानों में संवातन खिड़की प्रकाश और एकान्तता की कोई व्यवस्था नहीं है। बंगाल के आस्ट्रेलियन गवर्नर श्री केसी ने १९४५ में इन बस्तियों का निरीक्षण किया और कहा कि "जो कुछ मैंने देखा है उसकी भयंकरता से मुझे धक्का लगा है। मनुष्य दूसरे मनुष्यों को इन मकानों में रहने के लिए कभी भी स्वीकृति नहीं दे सकते। यह आशा की गई थी कि इसके पश्चात् कुछ सुधार किए जायेंगे। लेकिन इसके बाद के उपद्रव और बंगाल के विभाजन से उत्पन्न हुई समस्याओं ने इस प्रश्न को खटाई में डाल दिया और आवास की दशाएँ शरणार्थियों के भारी संख्या में आने के कारण पहले से भी अधिक शोचनीय हो गईं।

कलकत्ता में सूती वस्त्र मिलों के लगभग ६२% श्रमिकों को मालिकों द्वारा

कान प्रदान किए गए हैं। मकान पक्के हैं परन्तु पानी व स्वच्छता का प्रबंध अत्यन्त असन्तोषजनक है। कुछ मिलें तो कुछ भी किराया नहीं लेतीं परन्तु अन्य १ रु० ५० ये पैसे मासिक किराया लेती हैं। कलकत्ता बन्दरगाह के लगभग ६०% कर्मचारियों ो भी बिना किराये के क्वार्टर मिले हुए हैं और वहाँ व्यवस्था भी इतनी बुरी नहीं । कुछ और कारखानों के मालिकों ने भी अपने कुछ श्रमिकों के लिए मकानों की यवस्था की है जैसे इण्डियन जनरल नेवीगेशन एण्ड रेलवे कम्पनी हावड़ा व्यापार म्पनी कुछ रासायनिक कारखाने सिगरेट व कांच फैक्टरियां तथा कुछ अन्य कारखानों अपने कुछ श्रमिकों के लिए मकान बनाये हैं। परन्तु अधिकतर क्वार्टर बैरकों जैसे , जो एक कमरे और बरामदे अथवा बिना बरामदे वाले हैं। भीड़भाड़ सामान्य ात है। संवातन और स्वच्छता असन्तोषजनक है। कलकत्ता तथा निकटवर्ती क्षेत्रों ी कुछ जूट मिलों ने भी अपने कुछ श्रमिकों के लिए मकान प्रदान किए हैं। ऐसे श्रमिकों की संख्या जिनको मकान मिले हैं विभिन्न जूट मिलों में ७१% से १००% क है। पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा एक जांच से पता चलता है कि १९५६ में जूट मल के कर्मचारियों के लिए ४८८१२ मकानों की व्यवस्था थी जिनमें ४८१३७ मकान केवल एक कमरे वाले थे। यह घर अधिकतर बैरकों की भांति हैं जिनमें ३ चौड़ा एक संयुक्त बरामदा है जिसका एक भाग रसोई के कार्य में लाया जाता है। १४% मकानों में श्रमिक एवं उसके परिवार को १०० वर्ग फीट से भी कम जगह मिलती है। प्रकाश, संवातन सफाई व शौचालयों की व्यवस्था अत्यन्त असंतोषजनक है। हाल ही में जूट मिल कर्मचारियों के लिए आवास क्षेत्र बने हैं। इनमें से एक अच्छा आवास क्षेत्र बिड़ला जूट मिल द्वारा निर्मित किया गया है जो कि मिल के लगभग ४१% कर्मचारियों को पक्के मकान उपलब्ध करता है। इनकी कुल संख्या लगभग १२०० है। फिर भी अधिकतर श्रमिक जैसा कि ऊपर बताया गया है, कलकत्ता की बस्तियों में रहते हैं, वहाँ की व्यवस्था अत्यन्त शोचनीय है।

मद्रास में भी आवास-व्यवस्था समान रूप से असन्तोषजनक है। बरामदे अथवा बिना बरामदे वाले एक कमरे क मकानों में अधिकतर श्रमिक रहते हैं जिनमें खिड़की व संवातन भी नहीं है। ईंटों की पक्की इमारतें हैं तथा प्रत्येक मकान को अनेक छोटे-छोटे भागों में बांट दिया गया है और प्रत्येक भाग में श्रमिकों का एक परिवार किराये पर रहता है। कमरे साधारणतः १०×८ से १२×११ तक नाप के होते हैं। शौचालयों का प्रबन्ध अत्यन्त असन्तोषजनक है। स्नानघरों का नितान्त अभाव है और मल खाने के होते हैं जिनके कारण अनेक झगड़े खड़े हो जाते हैं। कमरों में बहुत कम स्वच्छ हवा आती है तथा उनमें अन्धेरा होता है। किराया १) से १०) रु० प्र० मास तक होता है। इसके अतिरिक्त मद्रास निगम अपने सफाई विभाग के लगभग ३५% कर्मचारियों को आवास की सुविधायें देता है। इसने ३५४ क्वार्टर बनाये हैं जिनमें २४४ एक कमरे वाले और ११० दो कमरे वाले हैं। किराया क्वार्टरों के अनुसार एक आने से २) प्रति मास तक है। प्रकाश

संचालन तथा जलपूर्ति की व्यवस्था भी असन्तोषजनक ही है। इसके अतिरिक्त मद्रास में एक दूसरी भाँति के भी आवास हैं जिन्हें 'चेरी' कहते हैं। कूम नदी के किनारे तथा अन्य कुछ स्थानों में छोटी-छोटी फूस की झोंपड़ियों के यह आवास क्षेत्र हैं। यह बिना किसी सफाई व सुविधा के बनाये गये हैं। यह गन्दे नम और अस्वास्थ्यपूर्ण हैं और वर्षा ऋतु में यह मिट्टी की झोंपड़ियाँ चूती हैं। सारा स्थान गन्दगी और कूड़े से परिपूर्ण रहता है। यह झोंपड़ियाँ श्रमिकों द्वारा उधार लिए हुए धन से ऐसे क्षेत्र में बनाई जाती है जहाँ भूमि का वह किराया देते हैं।

मद्रास में एक अच्छा उदाहरण जो मिलता है वह बकिंघम तथा कर्नाटिक मिलों द्वारा अपने १० प्रतिशत श्रमिकों को अच्छी आवास व्यवस्था प्रदान करना है। उन्होंने चार ग्रामों में लगभग ६५१ मकान बनाये हैं। साधारणतः हर मकान में रहने का एक कमरा एक रसोई घर, एक स्नानागार एक बरामदा और एक आँगन होता है। पानी के नल की भी व्यवस्था है। साधारणतः किराया १॥) रु० मासिक है परन्तु बड़े मकानों का किराया ३) से ५) रु० प्रति मास तक है। ग्रामों में सभी सड़कों पर बिजली का प्रकाश है और इस प्रकाश सफाई तथा पानी का व्यय कम्पनी द्वारा दिया जाता है। फिर भी सब श्रमिकों में से ऐसे श्रमिकों की संख्या जिनको गृह उपलब्ध हैं केवल ९ प्रतिशत है।

जमशेदपुर में आवास की सुविधा उसकी माँग से बहुत कम है अतः भीड़ भाड़ साधारण बात है। टाटा के द्वारा जो कि जमशेदपुर के औद्योगिक नगर के स्वामी हैं आवास की कुछ अच्छी सुविधाएं प्रदान की गई हैं। टाटा लौह व इस्पात कम्पनी ने अब तक अपने श्रमिकों के लिए १४ ०० क्वार्टर बनाये हैं। श्रमिक को कम से कम दो कमरे एक रसोईघर, एक स्नानागार और एक शौचालय वाले मकान मिलते हैं। सभी घर पक्के हैं बिजली की भी व्यवस्था है और कुछ घरों में पंखे भी हैं। एक कमरे वाले आवास गृहों को छोड़ कर जिनमें साझे के शौचालय हैं सभी क्वार्टरों में फ्लश की व्यवस्था है। पानी के नल की व्यवस्था सन्तोषजनक है। फिर भी मालिकों ने अकुशल श्रमिकों की जो असन्तोषजनक स्थितियों में रहते हैं आवास व्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया है। कम्पनी की आवास ऋण-योजना के अन्तर्गत कम्पनी द्वारा पट्टे पर दी हुई भूमि पर श्रमिकों के द्वारा लगभग ८९ मकान बनाये गये हैं। श्रमिकों के द्वारा एक सहकारी-आवास-समिति भी बनाई गई है। जमशेदपुर की टिन प्लेट कम्पनी ने भी ६३१ पक्के घर बनाये हैं, जबकि श्रमिकों ने स्वयं भी कम्पनी के आवास ऋण की सहायता से जिस पर ३ प्रतिशत दर से ब्याज वसूल किया जाता है ५ ० कच्चे मकान बनाये हैं।

देहली में भी गन्दी बस्तियों की अवस्था अति शोचनीय है, और हाल ही में प्रधान मंत्री तथा अधिकारियों का ध्यान इस ओर आकर्षित हुआ है। यहाँ लगभग ७ ० कटरे हैं जहाँ कि दो लाख से अधिक व्यक्ति अमानवीय व्यवस्था में रहते हैं। नवम्बर १९५८ में एक सर्वेक्षण रिपोर्ट से पता चलता है कि देहली के ८ श्रमिक-

कैम्पों में १२५,००० श्रमिक हृदयविदारक एवं अमानवी व्यवस्थाओं में रह रहे हैं। प्रमुख नागरिकों तथा सामाजिक कार्यकर्ताओं की एक समिति इन श्रमिकों को सुविधाएं देने के हेतु बनाई गई है।

शोलापुर में आवास व्यवस्था सन्तोषजनक प्रतीत होती है तथा मालिक अपने श्रमिकों को आवास की सुविधाएं प्रदान करने में रुचि लेते हैं। नगर में भीड़भाड़ नहीं है और अधिकतर श्रमिक दो कमरों वाले मकानों में रहते हैं। मदुरा में भी आवास व्यवस्था प्रायः सन्तोषजनक है और आवास क्षेत्र में दो-दो पक्के घरों की पंक्तियां हैं जिनमें प्रत्येक परिवार को पर्याप्त सुविधा है। उनमें एक रहने के लिए कमरा, एक सोने के लिए कमरा, एक रसोई, एक भण्डार, एक आंगन, एक बरामदा तथा सामने थोड़ी खुली हुई जगह है। हर पंक्ति के लिए अलग शौचालय तथा पानी के नल लगे हैं। मकान का किराया केवल ४) रु प्रति मास है और यह १० वर्ष के पश्चात् श्रमिक की अपनी सम्पत्ति हो जाता है। विद्यालय, बाजार तथा औषधालय की सुविधाओं की दृष्टि से आवास क्षेत्र आत्म-निर्भर है। नागपुर की एम्प्रेस मिल तथा बंगलौर की सिल्क, सूती व ऊनी मिलों ने भी अपने कर्मचारियों के लिए आवास क्षेत्रों का निर्माण किया है जिनकी व्यवस्थायें सन्तोषजनक हैं। चीनी उद्योग में मालिकों ने १० से ५० प्रतिशत तक कर्मचारियों को आवास की सुविधायें प्रदान की हैं। कागज, माचिस, रसायन, चर्म, रंगाई, इंजीनियरिंग आदि फैक्टरी उद्योगों में केवल बड़े-बड़े संस्थानों ने अपने श्रमिकों को आवास की सुविधायें प्रदान की हैं परन्तु ऐसे श्रमिकों की संख्या बहुत थोड़ी रही है। कुछ गोदी कर्मचारियों (Dock Workers) को भी आवास की सुविधायें प्रदान की गई हैं जिनकी संख्या साधारणतः ४ से १० प्रतिशत तक ही है।

अपनी स्थिति के कारण खान उद्योगों को भी अपने श्रमिकों को बड़ी संख्या में मकान देने पड़ते हैं। अधिकतर क्वार्टर बिना किराये के हैं। झरिया, रानीगंज और हजारी बाग में खान-स्वास्थ्य-बोर्ड द्वारा निर्धारित विशिष्ट नमूनों और वर्णन के अनुसार ही मालिकों द्वारा मकान बनाये जाते हैं। इन मकानों में जिनको 'धोरा' कहते हैं, एक कमरा और एक बरामदा होता है, और यह प्राय एक दूसरे से सटे होते हैं। १९५४ में इन 'धोरों' की संख्या झरिया में ४७,३८९ और आसनसोल में १६,११० और हजारीबाग खानों में १,७४२ थी। टाटा जैसी कुछ बड़ी खानों में इन मकानों में एक अलग रसोई और स्नान-घर भी प्रदान किये गये हैं। रानीगंज की कोयले की खानों में लगभग ८० प्रतिशत श्रमिकों को मालिकों द्वारा मकान दिये गये हैं। हैदराबाद की खानों के मालिकों ने आवास के लिये ६,८८९ घरों का निर्माण किया है। यह कहा जाता है कि अधिकतर खानों में मकानों में भीड़ रहती है। अब कोयला-खान-कल्याण-निधि के अन्तर्गत कुछ सुधार किया जा रहा है। (सरकारी योजनाओं के अन्तर्गत देखिये।)

कोलार की सोने की खानों के मालिकों ने अपने श्रमिकों के लिये स्वच्छ

आवास-सेवा प्रदान किये हैं। यहाँ पर एक व दो कमरे वाले लगभग ११,०८२ क्वार्टर हैं जिनमें से ४४०८ पक्के हैं। १९५८ में ४०० और अधिक क्वार्टर बने थे। किराया भी साधारण है जो एक कमरे वाले झोंपड़े के लिये आठ आना और दो कमरों वाले के लिये १) रु० अथवा १।) रु० प्रति मास है। पानी की व अन्य व्यवस्था सन्तोषजनक है। परन्तु जिन श्रमिकों को कम्पनी द्वारा मकान नहीं मिलते वह अत्यन्त अस्वस्थतापूर्ण स्थिति में रहते हैं। इसी गोवा खानों में कम्पनी द्वारा ८९१ मकानों की व्यवस्था श्रमिकों के लिए की गई है।

मध्य प्रदेश में म० प्र० कच्चा मैंगनीज कम्पनी ने भी बाहर से आये हुए श्रमिकों को मकान प्रदान किये हैं जिनकी प्रतिशत संख्या विभिन्न खानों में ४ से १०० तक है। इन मकानों की व्यवस्था विशेष सन्तोषजनक नहीं है। बम्बई में सिवराजपुर सिंडिकेट ने भी अपने कर्मचारियों के लिये कुछ घर बनाने का कार्य हाथ में लिया है। फिर भी प्रारम्भ में यह मानव के रहने के अयोग्य थे अतः इनको गिरा दिया गया था। कच्चे लोहे की खानों में भी कम्पनी अथवा ठेकेदारों की ओर से थोड़े से श्रमिकों को आवास की सुविधायें दी गई हैं, जिनमें कम्पनी द्वारा दिये गये क्वार्टर अच्छे हैं। परन्तु यहां भी मकान पाने वाले श्रमिकों का प्रतिशत ६ से १० तक है। अभ्रक की खानों में कुछ प्रतिशत श्रमिकों को जो खानों पर ही रहते हैं आवास की सुविधायें दी गई हैं। खान क्षेत्रों में एक मुख्य कठिनाई ऐसी भूमि का प्राप्त करना है जहां की भूमि ठोस हो और जिस पर नींव रखी जा सके। इसलिये अधिकतर श्रमिक प्रवासी हैं जो कि निकटवर्ती क्षेत्रों से आते हैं। खान केन्द्रों में आवास की एक विशेषता यह है कि एक ही मकान कई श्रमिकों के नाम नियत (Allot) कर दिया जाता है जो पारी प्रणाली के कारण उसमें विभिन्न समय में रहते हैं। खान बोर्डों से यह कहा गया है कि वह अब इस बात की अनुमति न दें।

बागान में मकान बिना किराये के प्रदान किये जाते हैं। यह मिट्टी के प्लास्टर की दीवारों व फूस की छतों के बने होते हैं। आवास के दृष्टिकोण से असम के बागान में व्यवस्था बड़ी असन्तोषजनक है। शौचालयों का अभाव है सफाई की बड़ी असन्तोषजनक दशा है तथा मलेरिया साधारण बात है। मकानों की टूट-फूट स्वयं श्रमिकों से ही ठीक कराई जाती है। किसी भी मकान में खिड़की या बरामदा नहीं है। असम के चाय बागान में लगभग ५ प्रतिशत मकान कच्चे हैं। यह या तो एक पंक्ति में अथवा गांव की तरह एक झुण्ड में बने रहते हैं। मकान का आकार साधारणतया १२ × १२ होता है। १—१२ कमरे वाली एक दूसरे से सटी हुई बैरकों की पंक्तियां होती हैं। यद्यपि यह तरीका अब नये निर्माण में दूर होता जा रहा है। असम में एक बुराई यह है कि श्रमिकों के क्वार्टरों में उनके सम्बन्धियों अथवा मित्रों के अतिरिक्त अन्य किसी के प्रवेश पर रोक है। बागान मालिक अपनी निजी सम्पत्ति के स्वामित्व के अधिकार का प्रयोग कर प्रवेश पर रोक लगाते हैं। रॉयल श्रम आयोग ने इस बात पर विरोध प्रकट किया था और कहा था

एक सभी बागान क्षेत्र जनता के लिये खुले होने चाहियें तथा मकानों की न्यूनतम आवश्यकताओं को निर्धारित करने के लिये स्वास्थ्य और कल्याण बोर्ड होने चाहियें। फिर भी अब तक बागान आम जनता के लिये बन्द हैं क्योंकि सरकार ने निजी सम्पत्ति में हस्तक्षेप करने को मना कर दिया है। बागान में श्रमिकों का संगठन भी कमजोर है। आसाम सरकार द्वारा दिये गये मकानों के आँकड़ों से पता चलता है कि बागान के श्रमिकों के लिये १८८६२० मकान हैं जिनमें से ४१२२१ पक्के, १२२६१२ अर्ध पक्के तथा ४१६७८२ कच्चे हैं।

बंगाल के 'डार' नामक बागान में मकान बैरकों की पंक्ति में बनाये गये हैं और साधारणतः प्रत्येक घर में अपना एक अहाता होता है। इनमें मिट्टी के घर भी हैं, जिनमें ढांचा बांस का होता है। प्रकाश संवातन आदि के दृष्टिकोण से व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। तथा अन्धेरे कम और बिना संवातनों के होने के कारण तपेदिक की बीमारी आम है। दक्षिणी भारत के बागान में मकान साधारणतः ६ से १० कमरे वाली पंक्तियों में होते हैं जिनमे साधारणतः स्थान १० × १२ अथवा १० × १० होता है। यहां पर भी अवस्था सन्तोषजनक नहीं है। मैसूर और कुर्ग के कहवा बागान तथा ट्रावनकोर के रबड़ बागान में भी मकानों की ऐसी ही असन्तोषजनक अवस्था है।

सितम्बर १९५१ तक बागान कर्मचारियों के लिये भारतीय चाय परिषद् ने २६२४११ चाय बागान मालिक परिषद् ने ११४५२ तथा दक्षिण भारत की संयुक्त बागान मालिक परिषद् ने ५३,१२८ मकान बनाये थे। राज्यों द्वारा प्रदान किये जाने वाले मकानों की संख्या इस प्रकार थी—बिहार १२११ उड़ीसा ४० उत्तर प्रदेश १०८ तथा हिमाचल प्रदेश १। १९५४ से बागान श्रम अधिनियम १९५१, तथा बागान श्रम आवास योजना १९५६, के अन्तर्गत जिनका उल्लेख सरकारी योजनाओं में किया गया है अब अधिक मकान बनाये जा रहे हैं। यह नियम लागू किया गया है कि प्रतिवर्ष कम से कम आठ प्रतिशत श्रमिकों और उनके परिवारों के लिये मकान बनाने चाहियें। प्राप्त आँकड़ों से पता चलता है कि २,८८१ बागानों में जिनमें ५,४८,६२४ श्रमिक परिवार रहते हैं केवल १९७,७३३ परिवारों के लिये मकान बनवाये गये हैं। १९६० के अन्त तक भारतीय चाय बागान परिषद् ने ५,२२७ ऐसे मकान बनाये जिनके आकार प्रकार की स्वीकृति मिल चुकी थी। इनमें से ४,०६६ मकान तो 'डार' क्षेत्र में थे ७१३ तराई क्षेत्र में ४१८ दार्जिलिंग की पहाड़ियों में तथा २६० आसाम में थे।

सीमेंट उद्योग में श्रमिकों को आवास की सुविधा प्रदान करने की जो योजनायें बनाई गई हैं, वह देश की सर्वोत्तम आवास योजनाओं में से हैं। यहां पर मालिकों ने अपने श्रमिकों को आराम और सुविधा प्रदान करने के लिये क्वार्टरों के निर्माण में दूरदर्शिता का परिचय दिया है। सीमेंट उद्योग में एक साधारण अकुशल श्रमिक को भी ऐसे क्वार्टर प्रदान किए गए हैं जिनमें दो रहने के अच्छे कमरे, एक आंगन तथा

पानी और सफाई का अलग से प्रबन्ध होता है। इसके अतिरिक्त हार्वेपती गृह-निर्माण समिति ने औद्योगिक श्रमिकों के लिए सहकारी रूप से मकान बनाने का सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसके द्वारा मदुरा मिल्स लिमिटेड (मद्रास) ने ६०० मकानों के एक पूर्ण आवास क्षेत्र का निर्माण किया है जिसमें बिजली की रोशनी पानी नालियाँ सड़कें पार्क स्कूल निःशुल्क यातायात आदि की सभी सुविधाएँ हैं। इस क्षेत्र का प्रबन्ध एक सहकारी समिति व एक डायरेक्टरों के बोर्ड द्वारा किया जाता है जिसमें मिलों श्रमिक संघों और मिल श्रमिकों के एक एक प्रतिनिधि होते हैं तथा जिलाधीश तथा मदुरा जिला बोर्ड के अध्यक्ष अथवा उपाध्यक्ष होते हैं। प्रत्येक घर का मूल्य युद्ध काल से पूर्व की कीमतों के अनुसार ६० रु० है और इस राशि को मासिक किस्तों के रूप में जो १२½ साल तक फैली हुई हैं देने पर श्रमिक उसका स्वामी हो जाता है। इस योजना की सफलता का मुख्य कारण यह है कि मिलों के प्रबन्धकों ने इसमें वित्तीय सहायता दी है और समिति को उसकी शेयर पूंजी और निर्माण के लिए एक बड़ा ऋण प्रदान किया है और पूंजीगत व चालू खर्चों को पूरा करने के लिए अनेक अनुदान भी प्रदान किये हैं।

रेलवे कर्मचारियों के आवास के सम्बन्ध में रेलवे बोर्ड की नीति केवल उन्हीं श्रमिकों के आवास की व्यवस्था करना है जिनको विशेष कारणों से कार्य के स्थान के निकट रहना पड़ता है जैसे चिकित्सा स्टाफ, स्टेशन स्टाफ गाड़ियों के साथ जाने वाला स्टाफ, गाड़ियों और रेल की पटरियों की देखभाल करने वाला स्टाफ आदि। इसके अतिरिक्त उन लोगों के लिए भी मकानों की व्यवस्था की गई है जिनके लिए निजी संयोजकों ने मकान नहीं बनाए हैं। इसलिए वर्तमान आवास व्यवस्था रेलवे कर्मचारियों के लिए बहुत कम है। अतः अनेक श्रमिकों को निजी मकान मालिकों द्वारा निर्मित मकानों में रहना पड़ता है। श्रमिकों में सामान्य धारणा है कि सभी वर्ग के श्रमिकों को क्वार्टर मिलने चाहिएं। ३१ मार्च १९५१ तक तृतीय व चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों के लिए २८ ९८८ क्वार्टर बनाए जा चुके थे। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत रेलवे श्रमिकों के लिए ४० नये क्वार्टर बनाये गये। उसके पश्चात् विभिन्न वर्षों में रेलवे कर्मचारियों के लिये निम्नलिखित संख्या में क्वार्टर बनाये गये— १९५५-५६— ८ ६४५, १९५६-५७— ९,६४२, १९५७-५८ १५ ६, १९५८-५९— ११ ४८१ १९५९-६०— ११ १९६। रेलवे कर्मचारियों की तीन सहकारी आवास समितियां भी हैं जिन्होंने १९५९-६ तक ८६ मकान बनाये थे।

नगरपालिकाओं में केवल १५ प्रतिशत कर्मचारियों को मकान प्रदान किये जाते हैं। आवास की यह सुविधा मुख्यतः सफाई, आग बुझाने वाले दल तथा अस्पतालों के कर्मचारियों तक ही सीमित है। आवास भत्ता सामान्यतः उनको दिया जाता है जिनको मकान नहीं दिये जाते हैं। कुछ विशेष प्रकार के श्रमिकों को भी आवास भत्ता मिलता है। इसकी दर लखनऊ में ८ आने प्रति माह से देहली में ७ रु०

इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रमिकों को गाँव जाने के लिये हर प्रकार की सुविधायें देनी चाहियें जैसे सस्ते वापसी टिकट तथा छुट्टी आदि। परन्तु श्रम अनुसंधान समिति इस बात से सहमत नहीं है कि भविष्य में श्रमजीवियों की सुरक्षा के दृष्टिकोण से गाँवों से सम्बन्ध स्थापित रहना चाहिए। निःसन्देह उपाय यही है कि औद्योगिक नगरों की दशा में उन्नति की जाय और श्रमिकों के लिये सामाजिक सुरक्षा योजना मकान मजदूरी अच्छा भोजन आदि का उचित प्रबन्ध किया जाय और कारखानों में काम करने के वातावरण में उन्नति की जाय। इस बात से सब सहमत हैं कि गाँव में संयुक्त परिवार प्रथा और जाति-बन्धनों का ह्रास होता जा रहा है जो अब तक आर्थिक दृष्टि से मजदूरों की सुरक्षा के साधन थे और श्रमिक इस समय ऐसी परिवर्तनशील अवस्था में हैं जबकि धीरे-धीरे उनका गाँवों से तो सम्बन्ध टूटता जा रहा है परन्तु अभी तक वे औद्योगिक नगरों के पूर्णतया स्थायी निवासी नहीं बन सके हैं। अतः ऐसी स्थिति में श्रमिक को गाँव से जाने से रोकना या उसको गाँव वापिस जाने के लिये विवश करना समस्या का समयानुकूल समाधान न होगा।[1]

1 *Labour Investigation Committee Report, page 78*

३

औद्योगिक श्रमिकों की भर्ती की समस्याएं

(The Problems of Recruitment of the Industrial Workers)

प्रारम्भिक इतिहास—(Early History)

श्रमिकों के रोजगार में सर्वप्रथम समस्या उनकी भर्ती की है। उद्योगों में जिन पद्धतियों और संगठनों द्वारा श्रमजीवियों को भर्ती किया जाता है उन पर व्यवसाय की सफलता अथवा विफलता बहुत कुछ निर्भर करती है। यदि कार्य के अनुकूल श्रमिक काम पर नहीं लगाया जाता तो उत्पादन और कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। बड़े उद्योगों के स्थापन के प्रारम्भिक समय में कारखानों और बागान के मालिकों को श्रमिक भरती करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इसका कारण यह था कि श्रमिक अपना गांव छोड़ कर नये वातावरण में कारखानों और बागान में जाने के लिये तैयार नहीं थे। काम करने की स्थिति भी वर्तमान समय से अधिक खराब थी। १८९६ की प्लेग तथा १९१८ की इन्फ्लुएन्जा की बीमारियों के कारण भी श्रमिकों का अभाव हो गया था। इसका प्रभाव यह पड़ा कि मालिकों को मजदूर भर्ती करने के लिये अच्छे बुरे सब प्रकार के तरीकों को अपनाना पड़ा और भर्ती मध्यस्थों (Intermediaries) तथा ठेकेदारों (Contractors) द्वारा होने लगी। यह प्रणाली आज भी प्रचलित है यद्यपि पिछले कुछ वर्षों से अब भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा होने लगी है। इसका कारण यह है कि अब श्रमिक काफी संख्या में उद्योग-धन्धों में आने लगे हैं क्योंकि जनसंख्या की वृद्धि के कारण और कृषि पर जनसंख्या का अधिक दबाव होने के कारण जीविका की खोज में लोगों को गांव छोड़ना पड़ा है। यातायात के साधनों में उन्नति हो जाने के कारण उन्हें नगरों में आने में कठिनाई भी नहीं होती। फिर भी प्रारम्भ में श्रमिकों के अभाव और उनकी प्रवासिता (Migratory character) के कारण भर्ती की प्रणाली सोच विचार कर प्रारम्भ नहीं की गई और श्रमिकों के प्रशासन तथा व्यवस्था में कोई सैद्धान्तिक तरीका नहीं अपनाया गया। श्रमिक नगरों में कभी केन्द्रित नहीं हुए। और जैसा पिछले अध्याय में बताया जा चुका है श्रमिक गांव से ही आते थे और उनसे अपना सम्बन्ध स्थापित रखते थे। इसलिये भर्ती प्रणाली भी श्रमजीवियों की इस प्रवासिता से प्रभावित हुई और श्रमिकों को प्राप्त करने के लिये भर्ती की अनेक दोषपूर्ण पद्धतियां काम में लाई गईं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रमजीवियों की प्रवासिता ने भर्ती प्रणाली पर अपना काफी प्रभाव डाला।

भर्ती प्रणाली में मध्यस्थों का स्थान—(The Role of Intermediaries)

संगठित व असंगठित दोनों प्रकार के उद्योगों में श्रमिकों को गांव से नगरों में लाने के लिये अधिकतर मध्यस्थों पर निर्भर रहा गया है। प्रायः श्रमिकों को अच्छा वेतन सुविधाजनक व्यवसाय आदि का प्रलोभन देकर नगरों की ओर आकर्षित किया जाता है। मध्यस्थों को श्रमिक लाने के लिये अच्छा कमीशन मिलता रहा है।

मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों की भर्ती बहुत समय से अनेक भारतीय उद्योगों का मुख्य लक्षण रहा है यद्यपि पिछले वर्षों में इस प्रणाली म कुछ परिवर्तन हुआ है। मध्यस्थों अथवा मिस्त्रियों को भारत के विभिन्न उद्योग-धन्धों में विभिन्न नामों से पुकारा जाता है जैसे सरदार, मिस्त्री मुकद्दम टिन्डेल चौधरी कंगनी आदि। मध्यस्थ एक महत्वपूर्ण व्यक्ति है जो अनेक कार्य करता है। बड़े-बड़े उद्योगों में प्रधान मध्यस्थ और नाटी मध्यस्थ भी जिन्हें नायकिन या मुक्दमिन कहते हैं पाये जाते हैं। मध्यस्थ या सरदारों का श्रमजीवियों में से ही चुना जाता है। यह कोई बाहर के व्यक्ति नहीं होते। जो श्रमिक अनुभवी हो जाते हैं और मालिकों की कृपा दृष्टि प्राप्त कर लेते हैं उनको इस पद पर नियुक्त कर दिया जाता है। इन सरदारों पर अनेक कामों का भार सौंप दिया जाता है। श्रमिकों की नियुक्ति प्रशिक्षा पदोन्नति बरखास्तगी तथा छुट्टी और आवश्यकता के समय उन्हें व उधार देना आदि सभी प्रकार के कार्य मध्यस्थ करते हैं। कारखानों में श्रमिकों की देखभाल में वे मिस्त्रियों की सहायता भी करते हैं। श्रमिक उन्हें अपने अधिकारों का संरक्षक भी समझते हैं जिनके बिना उनका निर्वाह कठिन हो जाता है। मालिक भी मजदूरों की इच्छाओं तथा मांगों आदि के बारे में मध्यस्थों से ही जानकारी प्राप्त करते हैं और यदि उनको मजदूरों के पास कोई संदेश भेजना हो तो यह कार्य भी मध्यस्थों द्वारा ही सम्पन्न होता है। जो उद्योग विदेशी मालिकों के हाथों में थे जो भारतीय भाषा नहीं जानते थे वहां मध्यस्थ और भी अधिक शक्तिशाली रहे हैं।

मध्यस्थों के दोष—(Evils of Intermediaries)

मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों की भर्ती की प्रणाली सदैव से ही अत्यन्त दोषपूर्ण सिद्ध हुई है। रॉयल श्रम आयोग के शब्दों म "मध्यस्थ का पद अत्यन्त प्रलोभनीय है और यदि ये लोग इन अवसरों से लाभ न उठायें तो यह आश्चर्यजनक होगा। ऐसे थोड़े से ही कारखाने हैं जिनमें श्रमिकों की सुरक्षा कुछ सीमा तक मध्यस्थों के हाथ में न हो। अनेक कारखानों में तो मध्यस्थों को श्रमिकों की नियुक्ति तथा बरखास्तगी का अधिकार भी है। इस बात में कोई संदेह नहीं कि मध्यस्थ अपने अधिकारों से साधारणतया लाभ उठाते रहते हैं। यह दोष कुछ उद्योगों में कम और कुछ उद्योगों में अधिक मात्रा म पाये जाते हैं। यह प्रथा तो बहुत प्रचलित है कि किसी को नया रोजगार देने या फिर से रोजगार पर लगाने के बदले में शुल्क लिया जाये। बहुधा यह देखा गया है कि श्रमिकों को अपने मासिक वेतन का एक अंश भी नियमित रूप

से जमा पड़ता है। श्रमिकों को समय-समय पर मलीम पेय पदार्थ या दूसरे उपहारों द्वारा भी मध्यस्थों को प्रसन्न करते रहना पड़ता है। कभी-कभी स्वयं मध्यस्थ को भी प्रधान मध्यस्थ की जेब भरनी पड़ती है और ऐसा सुनने में आया है कि अन्य निरीक्षकगण (Supervisory staff) भी कभी-कभी इसमें से कुछ भाग पाते हैं।" इसके अतिरिक्त अनेक अवसरों पर इन मध्यस्थों द्वारा श्रमिकों का गलत ढंग से प्रतिनिधित्व होने के कारण बहुधा मालिकों और श्रमिकों के बीच झगड़े उत्पन्न होते रहते हैं और फिर यह आवश्यक नहीं कि वे कुशल श्रमिक का ही भर्ती करें। ये तो उसी को भर्ती करेंगे जो उन्हें अधिक कमीशन दे या जिसमें वह दूसरे कारणों से दिलचस्पी रखते हों। इस प्रकार धन प्राप्त करने की लालसा के कारण अनेक श्रमिक मध्यस्थों द्वारा अन्यायपूर्वक बरखास्त कर दिए जाते हैं और इससे श्रमिकावर्त (Labour Turnover) अधिक हो जाता है। मध्यस्थ सदैव स्थानों को रिक्त करने के प्रयत्न में रहता है जिससे नई भर्ती करके वह अपनी जेबें भर सके। वह श्रमिकों को उनके वेतन की जमानत पर ऊंची ब्याज दर पर ऋण भी देता है। अनेक मध्यस्थ बेईमानी करके ऋण के हिसाब में ऐसी गड़बड़ी कर देते हैं जिससे मजदूरों को हानि हो। महिला श्रमिकों का महिला मध्यस्थ द्वारा और भी अधिक शोषण होता है क्योंकि महिला मध्यस्थ अधिकतर अच्छे चरित्र की नहीं होती हैं। अच्छे चरित्र की स्त्रियां इस पद को इसलिए स्वीकार नहीं करती क्योंकि यह पद सम्मानित नहीं समझा जाता है। ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जबकि इन नायकिनों के कारण महिला श्रमिकों को अनैतिक जीवन व्यतीत करना पड़ा है।

वर्तमान स्थिति और भविष्य—

मध्यस्थों द्वारा भर्ती की प्रथा को सब लोग अत्यन्त असंतोषजनक तथा अवांछनीय समझते हैं। पिछले कुछ वर्षों से सभी जगह मध्यस्थों की शक्ति तथा अधिकारों को कम करने का प्रयत्न किया गया है जिससे घूसखोरी व भ्रष्टाचार का अन्त हो सके। बम्बई सूती कपड़ा श्रम जांच समिति का कथन है कि बम्बई और शोलापुर जैसे केन्द्रों में भी जहाँ पर श्रमिकों विशेष रूप से 'बदली' के श्रमिकों की भर्ती करने में थोड़ा बहुत नियन्त्रण लागू कर दिया गया है अभी तक मध्यस्थ न तो हटाए ही जा सके हैं और न उनका प्रभाव ही कम हो सका है। 'उत्तरी भारत मालिक संघ' ने भी स्वीकार किया है कि भर्ती से सम्बन्धित भ्रष्टाचार और घूसखोरी अब भी प्रचलित है। परन्तु इस संघ ने इस विवशता की ओर भी संकेत किया है कि वह एक ऐसी पद्धति को जड़मूल से नहीं समाप्त कर सकते जो कि उद्योग-धन्धों में भर्ती की दृष्टि से मान्य हो गई है।[1] श्रम अनुसंधान समिति का भी यही मत है कि भारतीय श्रमिक अपनी विकास और गतिशीलता की उस सीमा पर अभी तक नहीं पहुंच सका है कि भर्ती के लिये मध्यस्थों को आसानी से समाप्त किया जा सके। वर्तमान परिस्थितियों में भर्ती के अन्य साधनों के न होने के कारण मध्यस्थ एक

1 Report of the Kanpur Labour Enquiry Committee.

अनिवार्य सा साधन प्रतीत होता है। इस प्रणाली के कुछ लाभ भी हैं। मध्यस्थ उन गांवों और जिलों से निकटता का सम्पर्क रखता है जहां से श्रमिक भर्ती किये जाते हैं। अतः वह श्रमिकों की आदतों आशाओं और भय को भली-भांति समझता है और प्राय अपने व्यवहार में उनका ध्यान रखता है जबकि अन्य सीधे भर्ती करने वाली संस्थाओं का इन श्रमिकों से कोई भी निकट सम्पर्क नहीं होता। यही कारण है कि मध्यस्थों की स्थिति इन संस्थाओं की तुलना में अधिक लाभदायक सिद्ध हुई है। यह बात उल्लेखनीय है कि युद्ध के समय में फौज तथा लड़ाई की अन्य योजनाओं में भर्ती के लिये सरकार को भी मध्यस्थों की सहायता लेनी पड़ी थी और उनको कुछ कमीशन भी देना पड़ा था। फिर भी मध्यस्थों की अनिवार्यता को स्वीकार करने का तात्पर्य यह नहीं होना चाहिये कि इस प्रणाली को नियमित बनाने की ओर कोई भी प्रयत्न न किया जावे या भर्ती का कोई सैद्धान्तिक तरीका न अपनाया जाए। इस प्रणाली को सुधारने के लिए विभिन्न सुझाव प्रस्तुत किये जा चुके हैं और कुछ ठोस कदम भी उठाये जा चुके हैं। इस समय सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न केन्द्रों में रोजगार दफ्तर भर्ती की प्रणाली के दोष दूर करने में सहायक सिद्ध हुए हैं तथा स्थायीकरण (Decasualisation) की योजनाएं भी कई केन्द्रों में लागू हैं। इस प्रकार विभिन्न कस्बों और उद्योगों में भर्ती की प्रणाली इस समय एक समान नहीं है।

विभिन्न उद्योगों में भर्ती की प्रणाली—

फैक्टरी उद्योगों में कहीं थोड़ी मात्रा में और कहीं सभी श्रमिकों की भर्ती साधारणतया सीधी प्रणाली द्वारा होती है। बम्बई, मद्रास पंजाब बिहार व उड़ीसा के राज्यों में सीधी (Direct) भर्ती प्रणाली अधिक प्रचलित है। इसका तरीका यह है कि फैक्टरी के फाटक पर एक नोटिस लगा दिया जाता है कि अमुक संख्या में श्रमिकों की आवश्यकता है। इसके पश्चात् जनरल मैनेजर स्वयं या कोई अन्य अधिकारी या श्रम अधीक्षक (Superintendent) फाटक पर जाकर आवश्यक श्रमिकों का चुनाव कर लेता है। कभी-कभी ऐसा होता है कि रिक्त स्थानों की सूचना काम पर लगे श्रमिकों को दे दी जाती है जो उसका विज्ञापन अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों में कर देते हैं। इस प्रकार नियत दिन पर बहुत बड़ी संख्या में प्रार्थी फैक्टरी के फाटक पर एकत्रित हो जाते हैं। किसी-किसी स्थान पर तो प्रातःकाल ही काम के इच्छुक लोग लम्बी पंक्तियों में खड़े दिखाई देते हैं। लेकिन यह प्रणालियां साधारण तथा अनिपुण (Unskilled) या बदली के श्रमिकों को प्राप्त करने में ही अधिक लाभप्रद सिद्ध हुई हैं। निपुण (Skilled) या अर्द्धनिपुण (Semi-skilled) श्रमिकों की भर्ती अधिक कठिन है। इनकी भर्ती दो प्रकार से की जा सकती है—प्रथम तो कुशल श्रमिकों की पदोन्नति करके दूसरे प्रार्थनापत्र मंगा कर, आवश्यक परीक्षाओं के बाद योग्य श्रमिकों का सीधा चुनाव करके। बीड़ी लाख तथा जूट की चटाइयों की भांति कुछ अनियमित उद्योगों में भी भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा ही होती है। फिर

भी मध्यस्थों को पूर्ण रूप से हटाया नहीं जा सका है।

मध्यस्थों द्वारा भर्ती के दोषों को दूर करने के लिए रॉयल श्रम आयोग ने सिफारिश की थी कि जनरल मनेजर के अधीन ऊँचे वेतन देकर श्रम-अधिकारी (Labour Officers) रखे जायें। यह अफसर उचित चाल चलन प्रभावशाली व्यक्तित्व और दूसरे व्यक्तियों को ठीक से समझ सकने की योग्यता रखने वाले होने चाहियें। अधिकतर उद्योगों में अब ऐसे अफसर नियुक्त किये जा चुके हैं और बहुधा श्रमिकों की भर्ती उन्हीं के द्वारा की जाती है। ये श्रमिकों की शिकायतों आदि की जांच पड़ताल करके अपनी रिपोर्ट भी प्रस्तुत करते हैं। इसके अतिरिक्त ये मालिकों और श्रमिकों के बीच मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कराते हैं। कभी-कभी ये अफसर आसपास के गांवों में श्रमिकों की भर्ती के लिए जाते हैं। ऐसे अफसर बम्बई की लगभग ५० प्रतिशत सूती कपड़ा मिलों कलकत्ता की टाटा ऑयल कम्पनी विशाखापट्टम के सिन्धिया जहाजी बेड़ा डिगबोई की आसाम तेल कम्पनी और बंगाल की जूट मिलों में पाये जाते हैं। कानपुर की अनेक मिलों में भी ऐसे अफसर नियुक्त किए गए हैं। परन्तु व्यावहारिक रूप में यह देखा गया है कि इन अफसरों पर श्रमिकों को इतना भरोसा नहीं होता जितना भरोसा वे मध्यस्थों पर करते हैं। अतः इन श्रम अधिकारियों की आड़ में मध्यस्थ प्रणाली अब भी प्रचलित है।

अहमदाबाद में भर्ती साधारणतया मध्यस्थों और विभागीय अध्यक्षों द्वारा की जाती है। मद्रास की बकिंघम और कर्नाटिक मिल में श्रमिक एक विशेष 'भर्ती पदाधिकारी' द्वारा भर्ती किए जाते हैं। कुशल नौकरियों के लिए परीक्षायें भी ली जाती हैं। मद्रास की मिलों में मिल-मालिकों और श्रमिक संघों के बीच में यह समझौता है कि रिक्त स्थानों की सूचना संघों को दी जाएगी जो कि श्रमिकों के बेरोजगार सम्बन्धियों और कारखाने के पूर्व अस्थायी (Temporary) श्रमिकों की सूची रखते हैं। संघ रिक्त स्थानों के लिए कुछ श्रमिकों के नामों की सिफारिश करता है। श्रमिकों का चुनाव अधिकतर प्रबन्धकर्ताओं द्वारा ही उसी सूची में से किया जाता है। इस प्रकार से दोनों पक्ष के लोग सन्तुष्ट रहते हैं। हैदराबाद में भी ऐसी ही व्यवस्था है। कोयम्बटूर में भर्ती करने की कोई भी विशेष संस्था नहीं है। कानपुर में श्रम-अधिकारियों के अतिरिक्त सन् १९३८ से उत्तरी भारत मालिक संघ द्वारा स्थापित किया हुआ श्रम ब्यूरो (Labour Bureau) भी काम रहा है। कानपुर में अब एक स्थायीकरण (Decasualisation) योजना चल रही है। जिसके अन्तर्गत रोजगार के दफ्तर श्रमिकों की एक संचित सूची रखते हैं। योजना में सहयोग देने वाले उद्योग-धन्धों में श्रमिकों की भर्ती रोजगार के दफ्तरों द्वारा इसी संचित सूची से की जाती है। इसके पूर्व एक बदली नियन्त्रण योजना थी जिसके अन्तर्गत नित्य के आकस्मिक रिक्त स्थानों की पूर्ति छंटनी किये हुये श्रमिकों द्वारा होती थी। टाटा की लोहे व इस्पात कम्पनी ने तथा बिहार की कुछ बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियों ने भर्ती के लिए अपने स्वयं के ब्यूरो खोल रखे हैं। जमशेदपुर की टिनप्लेट कम्पनी तथा अहमदाबाद,

बम्बई, सोलापुर और कोयम्बटूर की सूती कपड़ा मिलों में भी स्थायीकरण योजनायें चल रही हैं। बंगाल की जूट की मिलों में श्रम अधिकारियों की नियुक्ति करके उनको श्रम ब्यूरो का अधिकारी बना दिया गया है। भर्ती के कार्य के लिए एक बदली रजिस्टर रखा जाता है। अगर रिक्त स्थानों के लिए श्रमिकों की फिर भी कमी रहती है तब फैक्ट्री के फाटक पर ही सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती कर ली जाती है। यद्यपि यह प्रणाली मध्यस्थों को हटाने के लिए लागू की गई थी परन्तु इन मध्यस्थों का प्रभाव अब भी काफी है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि अधिकतर फैक्ट्रियों में भर्ती सीधी प्रणाली और मध्यस्थों द्वारा होती है। पिछले कुछ वर्षों से अब हम भर्ती के तरीकों में काफी उन्नति पाते हैं। कई स्थानों पर स्थायीकरण की योजनायें लागू हो चुकी हैं। रोजगार के दफ्तरों द्वारा भी अब भर्ती काफी मात्रा में होने लगी है।

चीनी के कारखानों में जहां कार्य सामयिक (Seasonal) होता है कुछ निरीक्षकों और तकनीकी विशेषज्ञों (Technicians) को छोड़ कर सभी मजदूर मौसम या समय समाप्त होने पर निकाल दिये जाते हैं तथा मौसम फिर आरम्भ होने पर उनको सूचित किया जाता है। यदि वे निश्चित समय पर उपस्थित हो जाते हैं तो उनकी नियुक्ति फिर से हो जाती है। सामयिक या मौसमी श्रमिकों के सम्बन्ध में उत्तर प्रदेश की सरकार विशेष आज्ञायें जारी करती है।

रेलवे के विभिन्न विभागों में भरती की प्रणालियां भिन्न-भिन्न हैं। रेलवे विभाग के उच्च पदाधिकारियों की नियुक्ति या तो प्रत्यक्ष रूप से सीधी प्रणाली द्वारा हो जाती है या दूसरे और तीसरे दर्जे की नौकरियों से पदोन्नति के द्वारा। तीसरे दर्जे के पदों पर भर्ती रेलवे सेवा आयोग द्वारा होती है जो कलकत्ता बम्बई इलाहाबाद और मद्रास में है। साधारणतया अकुशल और निम्न श्रेणी के श्रमिकों की भर्ती सीधी प्रणाली द्वारा की जाती है। रेलवे में ठेकेदारों के श्रमिक भी काफी संख्या में पाए जाते हैं। १९५९ में सरकार ने चौथी श्रेणी के कर्मचारियों की पदोन्नति के लिए नियुक्त की हुई समिति की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है।

खानों में अधिकतर श्रमिक ठेकेदारों द्वारा ही भर्ती किये जाते हैं। अन्य देशों के विपरीत भारतवर्ष में खान के श्रमिकों का कोई पृथक वर्ग नहीं है। अधिकतर कृषक वर्ग से ही उन श्रमिकों की भर्ती की जाती है जो समय पर कृषि सम्बन्धी कार्यों के हेतु अपने गांवों को लौट जाते हैं। कोयले की खानों में जमींदारी प्रथा भर्ती की सबसे पुरानी प्रथा थी। इसके अन्तर्गत श्रमिकों को यह प्रलोभन दिया जाता था कि उनको बिना कीमत के या नाममात्र लगान पर ही खेत दिए जायेंगे। श्रमिकों का इन भूमियों पर अधिकार रहने की यह शर्त थी कि वे खानों में काम करते रहें। परन्तु बहुत जल्दी ही कोयले की खानों के पास कृषि-योग्य भूमि का अभाव अनुभव होने लगा और ऐसे श्रमिक अधिक कार्यकुशल भी नहीं सिद्ध हुए। इस प्रकार से यह प्रथा सफल न हो सकी। रॉयल श्रम आयोग ने भी यह कह कर

इस प्रथा का खण्डन किया है कि यह ठेके की प्रथा आपत्तिजनक है। यद्यपि हाल ही में कुछ खानों ने अपने प्रतिनिधि बाहर भेजकर सीधी भर्ती की प्रणाली अपना ली है परन्तु अब भी ठेकेदारों द्वारा श्रमिकों की भर्ती करने की प्रणाली प्रचलित है। भर्ती के लिये कई प्रकार के ठेकेदार होते हैं। बहुत सी खानें केवल "भर्ती करने वाले ठेकेदार" (Recruiting Contractors) रखती हैं जो श्रमिकों की पूर्ति करते हैं। इस प्रकार से भर्ती किये गए श्रमिकों को प्रबन्धकगण नौकर रखकर वेतन देते हैं। कुछ खानें "प्रबन्धक ठेकेदार" (Managing Contractors) रखती हैं जो केवल श्रम की पूर्ति ही नहीं करते हैं वरन खान की समृद्धि तथा उन्नति के लिये भी उत्तरदायी होते हैं और इस प्रकार से प्रबन्धकगण के अन्तर्गत ही आ जाते हैं। "कार्य ठेकेदारों" (Raising Contractors) द्वारा भर्ती की प्रथा सबसे अधिक प्रचलित है। ये ठेकेदार न केवल श्रमिकों की भर्ती करते हैं और उनके खर्चों को सहन करते हैं वरन् इसके साथ ही कोयले को काटने तथा लादने के लिये भी उत्तरदायी होते हैं। इसके लिये इन्हें प्रति टन की दर से कुछ पैसा मिलता है। युद्ध के दिनों में कोयले की तीव्र आवश्यकता तथा श्रमिकों की कमी के कारण स्वयं सरकार ने अकुशल श्रमिकों की पूर्ति के लिये ठेकेदारों का काम किया।

१९४८ की कोयला खान औद्योगिक समिति ने ठेके की प्रथा को कोयला खानों में समाप्त करने पर विचार किया। उसके सुझावों के अनुसार केवल दो को छोड़कर अन्य रेलवे के लिये कोयला खानों में इस प्रथा की समाप्ति हो गई है। अन्य खानों में भी इस प्रथा को तब तक चालू रखने का निश्चय हुआ है जब तक इस बारे में कुछ और सोच विचार न कर लिया जाये। राजकीय तथ्य जांच समिति (मई १९४७) ने भी असम की खानों में ठेके की प्रथा को समाप्त करने की सिफारिश की और हैदराबाद की कोयले की खानों में भी इस प्रथा को बुरा बताया गया है। १९५१ में कोयला खानों के लिये नियुक्त कार्य दल (Working Party) के श्रमिक प्रतिनिधियों ने भी कोयले की खानों में ठेके की प्रथा समाप्त करने की जोरदार सिफारिश की। और "कोयला खान भर्ती संगठन" (Coal Fields Recruiting Organisation) जिसके द्वारा अनेक कोयले की खानों के मालिक गोरखपुर से श्रमिकों की भर्ती करते हैं को भी समाप्त करने पर बल दिया। १९५४ में होने वाली भारतीय श्रम सम्मेलन की सिफारिशों के अनुसार एक त्रिदलीय समिति बनाई गई थी। उसने भी ठेकेदारी प्रथा के दोषों को कम करने तथा ठेके के श्रमिकों को अन्य श्रमिकों के स्तर पर लाने के लिये कई बातों की सिफारिश की है। अप्रैल १९६० में कोयला खानों से सम्बन्धित औद्योगिक समिति (Industrial Committee) की सिफारिशों के फलस्वरूप सरकार ने नवम्बर १९६० में एक जांच समिति (Court of Enquiry) की नियुक्ति की। इसका कार्य यह था कि कोयला खानों में ठेके के श्रमिकों की पद्धति को समाप्त करने पर विचार करे जिससे उत्पादन पर बुरा प्रभाव न पड़े और इस बात की सिफारिश करे कि यह पद्धति किस-किस स्थान पर और किस समय तक

समाप्त हो सकती है। ठेके के श्रमिक यदि समाप्त नहीं किये जा सकते तो उनके लिये उचित मजदूरी और उचित कार्य की दशायें देने के लिए क्या पग उठाने चाहिए। इस समिति ने अभी हाल ही (दिसम्बर १९६१) में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की है और यह सिफारिश की है कि ठेके के श्रमिकों की प्रथा सितम्बर १९६२ तक समाप्त कर दी जाय। *केवल सात प्रकार के रोजगारों में यह प्रथा अभी चालू रह सकती है।* गोरखपुर में कोयले की खानों में श्रमिकों की भर्ती करने के लिये जो संस्था बनाई हुई है (Coal Fields Recruiting Organisation) उसको भी समाप्त करने का निर्णय कर लिया गया है। बिहार और बंगाल में कुछ कोयला खानों में रोजगार दफ्तर खोले जा रहे हैं।

अन्य खानों में भर्ती करने के तरीके कुछ भिन्न हैं। कच्चे लोहे की खानों में बहुधा सीधी प्रणाली द्वारा ही श्रमिक भर्ती किये जाते हैं। कभी-कभी काम पर लगे हुए श्रमिकों की सहायता से निकट के गांवों से भी श्रमिकों की भर्ती होती है। मूल्यवान पत्थरों की खानों में ठेके के काम के लिये श्रमिकों की भर्ती 'सरदार' या 'उप-ठेकेदारों' द्वारा की जाती है। अभ्रक की खानों में 'सरदार' निकट के गांवों में भेजे जाते हैं जिससे वे इच्छुक श्रमिकों को पेशगी पैसा देकर भर्ती कर सकें। भर्ती करने वाले सरदारों को कोई कमीशन नहीं मिलता है। उनकी मजदूरी भर्ती किये गए श्रमिकों की संख्या पर निर्भर करती है। जो खानें जमींदारों के अधिकार में हैं उनके लिये श्रमिक काश्तकारों में से ही प्राप्त कर लिए जाते हैं। १९५८ में की गई एक जांच से यह पता लगता है कि अभ्रक की खानों में इस समय लगभग ८२·९ प्रतिशत श्रमिक सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती किये जा रहे हैं और शेष श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारों द्वारा होती है। मैंगनीज की खानों में ४२ प्रतिशत श्रमिकों की भर्ती ठेकेदारों द्वारा होती है और शेष सीधी प्रणाली द्वारा भर्ती किये जाते हैं। लगभग ६० प्रतिशत श्रमिक आदिवासी वर्ग के होते हैं। बम्बई राज्य में चित्तराज पुर की खानों में भर्ती 'टिण्डेलों' द्वारा की जाती है। मैसूर राज्य में लगभग ५० प्रतिशत श्रमिकों का बाहर से आगमन होता है और उनको खानों के निकट बसाया जाता है। *बाकी श्रमिक पांच या दस मील की दूरी से गांवों से प्रतिदिन आते हैं।* सोने की खानों में श्रमिक 'समय-कार्यालय' (Time Offices) के द्वारा भर्ती होते हैं।

बागान के श्रमिक जो लगभग १२·५ लाख की संख्या में हैं अपनी एक विशेषता रखते हैं। बागान इतने दूर तथा ऐसे स्थानों पर पाये जाते हैं जहां की जलवायु अत्यन्त नम है तथा वातावरण स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है। श्रमिक वहां जाना पसन्द नहीं करते इसलिए प्रारम्भ में वहां भर्ती की समस्या एक विकट समस्या थी और इसके कारण बहुत सी आपत्तिजनक प्रथायें अपनायी गयीं। अनेक मध्यस्थ नौकर रखे गये जो श्रमिकों को ऊंची दर की मजदूरी तथा अन्य सुविधाओं का लोभ दिखाकर बागान के क्षेत्रों में ले आते थे। परन्तु एक बार वहां पहुंच जाने पर

श्रमिक को वापिस लौटने या अपने परिवार के लोगों से सम्बन्ध रखने की आज्ञा नहीं थी। श्रमिकों को नशा करा कर बहका लाने या बालकों का अपहरण जैसे आपत्तिजनक तरीकों द्वारा भी श्रमिक प्राप्त किये जाते थे। श्रमिकों की भर्ती बागान में अत्यन्त महँगी भी पड़ती है।

बागान में श्रमिकों की भर्ती से सम्बन्धित बुराइयों के कारण समय-समय पर बहुत से कानून बनाये गए। जिसमें १९३२ का "चाय क्षेत्र प्रवासी श्रमिक अधिनियम" (Tea Districts Emigrant Labour Act) सबसे बाद का कानून है। यह केवल श्रमिकों की भर्ती से ही सम्बन्धित है। बागान के श्रमिकों से सम्बन्धित दूसरे मामले १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम (Plantation Labour Act) द्वारा नियन्त्रित होते हैं परन्तु १९३२ का अधिनियम केवल प्रवेश करने वाले लोगों को आने भेजने अथवा भर्ती करने पर ही नियन्त्रण रखता है और यह भी केवल असम के चाय के बागान पर ही लागू है। इस अधिनियम के द्वारा अब भर्ती की अनेक अनुचित बातें समाप्त हो गई हैं। इस अधिनियम से केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में स्थानीय सरकारों को अब यह अधिकार मिल गया है कि वह श्रमिकों के बाग प्रवेश करने पर कोई भी रोक लगा दें और यदि आवश्यक हो तो श्रमिकों की भर्ती पर भी नियन्त्रण लगा दें। मालिकों पर भी यह रोक लगा दी गई है कि प्रमाणित बागान के सरदारों या लाइसेंस प्राप्त भर्ती करने वालों के अतिरिक्त किसी और साधन से भर्ती न करें। १६ साल से कम उम्र वाले किशोर उस समय तक भेजे नहीं जा सकते जब तक कि वे अपने माता-पिता अथवा संरक्षकों के साथ न हों तथा स्त्रियां अपने पति की अनुमति के बिना भर्ती नहीं की जा सकती। असम में प्रवेश करने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने पर, या कुछ विशेष परिस्थितियों में जैसे कुछ स्वास्थ्य होने पर इससे पूर्व भी प्रत्येक प्रवासी तथा उसके परिवार को स्वदेश लौटने का अधिकार है जिसका व्यय भी मालिकों को सहन करना पड़ता है। श्रमिकों की भर्ती के लिये कुछ क्षेत्र निश्चित कर दिये गए हैं, जिनको "भर्ती के नियन्त्रित प्रवासी क्षेत्र" कहा जाता है। ऐसे क्षेत्रों के अन्तर्गत निम्नलिखित राज्य आते हैं—पश्चिमी बंगाल बिहार, उड़ीसा उत्तर प्रदेश मध्य प्रदेश तथा मद्रास। इन क्षेत्रों में से जो भी लोग भर्ती किये जाते हैं उनको सबसे निकट के आगे भेजने वाले स्थानीय अभिकर्ता के सम्मुख उपस्थित होना पड़ता है और फिर वे एक निश्चित रास्ते से असम भेज दिये जाते हैं। इस रास्ते पर अनेक डिपो होते हैं, जहां पर इनको विश्राम भोजन सोने का स्थान तथा आवश्यकता होने पर चिकित्सा सहायता दी जाती है। दस वर्ष से कम आयु के बच्चों को दूध भी दिया जाता है। साधारणतया अब भर्ती निम्न प्रकार से की जाती है—(क) सरदारी प्रथा (ख) स्थानीय भर्ती करने वालों द्वारा (ग) पुन पद्धति द्वारा। सरदारी प्रथा के अन्तर्गत बागान से चुने हुये कुछ श्रमिक आगे भेजने वाले स्थानीय अभिकर्ताओं के द्वारा ऐसे जिलों में भेज दिये जाते हैं जहां से उनकी भर्ती होती है। कुछ बागान

स्थानीय भर्ती करने वालों को ही श्रमिक भर्ती करने के लिये नौकर रख लेते हैं। अतः किसी सरदार या मध्यस्थ को भेजने की आवश्यकता नहीं रहती। इस प्रथा के अन्तर्गत श्रमिक स्वयं ही अपने को आगे भेजने वाले स्थानीय अभिकर्ताओं के डिपो में भर्ती के लिये प्रस्तुत कर देते हैं। फिर वे उन बागान में भेज दिये जाते हैं जहां *उनकी आवश्यकता होती है। इस प्रकार यह कानून केवल भर्ती किए हुए श्रमिकों* को आसाम भेजने पर ही नियन्त्रण रखता है। भर्ती के साधनों या पद्धतियों पर इसका नियन्त्रण नहीं है। यह कानून केवल उपरोक्त ६ राज्यों के लिये ही है जो कि नियन्त्रित प्रवासी क्षेत्र कहलाते हैं। लगभग समस्त भर्ती चाय-बागान श्रमिक परिषदों द्वारा की जाती है जो कि भर्ती किये हुए श्रमिकों को आगे भेजने का प्रबन्ध करती है। परन्तु वास्तविक भर्ती मध्यस्थों द्वारा ही की जाती है जिनको इसके लिये कमीशन मिलता है। इस संघ के द्वारा एक वयस्क प्रवासी की भर्ती में १९५८ में १४१ रु० १८ न० पै० औसत व्यय होते थे। प्रवासी श्रमिकों के अतिरिक्त 'फ़ालतू' या 'बस्ती' श्रमिक भी होते हैं जो कि निकट के गांवों से आते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे श्रमिक भी होते हैं जिन्होंने किसी समय बाहर से आसाम में प्रवेश किया था और अब बागान में आकर बस गए हैं। ऐसे श्रमिक आवासित (Settled) *श्रमिक कहलाते हैं।*

पश्चिमी बंगाल में चाय के बागान में साधारणतया श्रमिकों की कमी रहती है। इसलिये भर्ती पर कोई नियन्त्रण नहीं है। चाय उद्योगों के विभिन्न परिषदों जैसे "भारतीय चाय परिषद" 'भारतीय चाय बागान नियोजक परिषद' तथा 'चाय बागान श्रमिक परिषद" अपने बागान के लिये श्रमिकों की भर्ती स्वयं करते हैं। दार्जिलिंग में भर्ती की कोई समस्या नहीं है, क्योंकि वहां स्थानीय श्रमिक ही पर्याप्त मात्रा में प्राप्त हो जाते हैं। बिहार के चाय बागान में भर्ती साधारणतया बागान के सरदारों द्वारा होती है। वे श्रमिकों को आगे भेजने वाले अभिकर्ताओं के समक्ष उपस्थित करते हैं और ये अभिकर्ता उनको बागान में भेज देते हैं। परन्तु इससे पहले वह इस बात से आश्वस्त हो लेते हैं कि ये श्रमिक नौकरी की तथा कार्य की अवस्थाओं से परिचित हैं और वे अपनी इच्छा से काम करने आये हैं उनका स्वास्थ्य ठीक है और उन्होंने चेचक का टीका आदि लगवा लिया है। कुछ श्रमिक भेजने वाले अभिकर्ताओं के सम्मुख सीधे ही आ जाते हैं। यात्रा का समस्त व्यय बागान नियोजक ही देते हैं। पंजाब व त्रिपुरा के बागान उद्योगों में मालिक स्वयं सीधी *प्रणाली द्वारा श्रमिक भर्ती कर लेते हैं अथवा भर्ती मध्यस्थों द्वारा कराते हैं, जिनको* पंजाब में "चौधरी" कहते हैं। केरल राज्य के बागान में ऐसे श्रमिक जिनको थोड़े समय के लिये ही काम पर लगाया जाता है बागान के श्रमिकों के द्वारा ही भर्ती कर लिये जाते हैं।

दक्षिणी भारत के बागान में भर्ती 'कंपनियों' के द्वारा होती है। साधारणतया यह कंपनी लोग बागान के श्रमिकों में से ही होते हैं। इन कंपनियों के

कमीशन की मात्रा श्रमिकों की मजदूरी के आधार पर निश्चित होती है। इसलिए भर्ती के पश्चात् भी ये श्रमिकों से अपना सम्पर्क बनाए रहते हैं। कम्पनियों द्वारा भर्ती करने की इस प्रथा के बहुत से दुष्परिणाम प्रकट हुये हैं। नवम्बर १९५० में बागान औद्योगिक आयोग तथा फरवरी १९५१ की त्रिदलीय गोष्ठी ने भी इसका विरोध किया है। भारतीय सरकार ने प्रत्येक कंपनी के अन्तर्गत श्रमिकों की संख्या ४० तक सीमित कर दी है; और अब उनको समाप्त करने के लिये पग उठाए जा रहे हैं। परिणामस्वरूप कंपनी अब धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही हैं। कॉफी व रबर के बागान में श्रमिकों की भर्ती के लिये पक्षेवर व्यक्ति नियुक्त किये जाते हैं जो दक्षिण भारत के संयुक्त बागान परिषद के श्रम विभाग द्वारा पंजीकृत होते हैं। यह संस्था इन लोगों को भर्ती के काम में सहायता भी देती है। बंगाल में भर्ती की पद्धति में उल्लेखनीय बात यह है कि भर्ती परिवार के आधार पर होती है यद्यपि यह प्रथा खानों और दूसरे उद्योगों में भी कुछ सीमा तक प्रचलित है।

बन्दरगाहों में बहुत समय तक सामान उतारने और चढ़ाने वाले सभी श्रमिकों की भरती छोटे-छोटे ठेकेदारों के द्वारा की जाती थी जो "टोलीवाला" कहलाते थे। परन्तु अप्रैल १९४८ में इस प्रथा का उन्मूलन कर दिया गया है। अब बम्बई, कलकत्ता और मद्रास के बन्दरगाहों पर सामान चढ़ाने व उतारने वाले श्रमिकों की भर्ती १९४८ के एक अधिनियम "बन्दरगाह श्रमिक रोजगार नियन्त्रण अधिनियम" (Dock Workers' Regulation of Employment Act) के द्वारा नियमित कर दी गई है। यह अधिनियम बन्दरगाह के श्रमिकों की उन कठिनाइयों को जो उनके आकस्मिक (Casual) रोजगार के कारण उत्पन्न होती हैं दूर करने का प्रयत्न करता है। यह अधिनियम श्रमिकों के रोजगार को अधिक नियमित बनाने के लिये श्रमिकों को पंजीकृत होने में सुविधा प्रदान करता है। उसके साथ-साथ यह अधिनियम सारे श्रमिकों के रोजगार का तथा उनके रोजगार की अवस्थाओं को जैसे कार्य के घण्टे, छुट्टियां और वेतन आदि नियमित करता है। उसी के साथ-साथ उनके स्वास्थ्य-सुरक्षा और कल्याण के कार्य का भी प्रबन्ध करता है। सरकार द्वारा इस कानून को लागू कराने के लिये एक परामर्श समिति नियुक्त की गई थी और उसी समिति की रिपोर्ट के आधार पर योजनाएं बना कर बम्बई (जनवरी १९५१) कलकत्ता (अक्टूबर १९५१) और मद्रास (मार्च १९५२) में लागू की गई हैं। ऐसी ही योजनाएं विशाखापट्टम (जुलाई १९५९) और कोचीन (जून १९५९) में भी लागू कर दी गई हैं। ये योजनायें जो इस अधिनियम के अन्तर्गत बनी हैं इस बात का प्रयत्न करती हैं कि सामान चढ़ाने व उतारने वाले श्रमिकों को नौकरी नियमित रूप से मिलती रहे और जहाज पर से सामान उतारने व चढ़ाने के कार्य के लिये पर्याप्त मात्रा में श्रमिक मिलते रहें। इन योजनाओं को लागू करने के लिये बम्बई (अप्रैल १९५१) कलकत्ता (सितम्बर १९५२) व मद्रास (जुलाई १९५१) कोचीन (जुलाई १९५९) तथा विशाखापट्टम (नवम्बर १९५९) में कुछ ऐसे बोर्डों की स्थापना कर दी

गई है जिनमें सरकार, मालिक तथा श्रमिक तीनों के प्रतिनिधि सम्मिलित हैं (Dock Labour Boards)। बम्बई व मद्रास में इस योजना के दैनिक प्रबन्ध का उत्तर दायित्व "स्टेवडोर्स परिषद" (Stevedores' Associations) नाम की सस्थाओं पर है। इस योजना के अन्तर्गत श्रमिकों का एक मासिक रजिस्टर तथा एक संरक्षित पूल रजिस्टर भी बनाया गया है। मालिकों के लिये भी एक रजिस्टर है। इस योजना में उन नियमों का भी स्पष्टीकरण कर दिया गया है जिनके आधार पर किसी श्रमिक या मालिक का नाम रजिस्टर पर लिखा जा सकता है। इस योजना के अनुसार पंजीकृत श्रमिकों को पंजीकृत मालिकों के बीच बांट दिया जाता है। जिन श्रमिकों को जिस मालिक के साथ काम करना होता है वह उसके अतिरिक्त किसी अन्य मालिक के साथ कार्य नहीं कर सकते और न ही वह मालिक किन्हीं अन्य पंजीकृत (Registered) श्रमिकों को अपने यहां कार्य पर लगा सकता है। संरक्षित पूल रजिस्टरों में जिन श्रमिकों का नाम होता है उनको इस योजना के अनुसार एक माह में कम से कम १२ दिन की मजदूरी व महंगाई भत्ता मिलने का आश्वासन रहता है। जिन दिनों वे काम के लिये तैयार हों और उन्हें काम न मिले उन दिनों के लिये भी इस योजना के अन्तर्गत श्रमिकों को कुछ मजदूरी मिल जाती है जिसको "हाजिरी की मजदूरी या "निराश होने की मजदूरी' कहा जाता है। अनुशासनहीनता तथा दुर्व्यवहार के कारण श्रमिकों को बर्खास्त किया जा सकता है।

जनवरी १९५५ में सरकार ने इन योजनाओं के कार्य की जाँच तथा सुधार के लिये एक जाँच समिति की नियुक्ति की। इस समिति ने सितम्बर १९५५ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और अनेक सिफारिशें कीं जैसे मजदूरी और उत्पत्ति का सम्बन्ध स्थापित करना बोनस देना माह में आश्वासित दिनों की संख्या १२ से २१ तक बढ़ा देना श्रमिकों को साल में ≡ दिन वेतन सहित छुट्टी देना, 'बन्दरगाह श्रमिक बोर्ड' के चेयरमैन के अधिकारों में वृद्धि जिससे अनुशासन रोका जा सके आदि। इन सिफारिशों के आधार पर सरकार ने मार्च १९५६ में एक संशोधित योजना प्रकाशित की जिसे नवम्बर १९५६ में कार्यान्वित किया गया। अब श्रमिकों को हाजिर होने पर १ रुपया ૨ न० पै० प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिल जाती है (Attendance Wage) और काम न होने पर आधी मजदूरी मिलती है (Disappointment Money)। कई प्रकार के श्रमिकों की भर्ती रोजगार दफ्तरों द्वारा भी होती है।

कलकत्ता व बम्बई के बन्दरगाहों में जहाज पर काम करने वाले श्रमिकों की भर्ती मध्यस्थों के द्वारा होती है। इस व्यवसाय में श्रमिकों की पूर्ति अधिक होने के कारण इनकी भर्ती प्रणाली में बहुत से दोष आ गये हैं। १९४० में सरकार ने एक "त्रिदलीय सामुद्रिक परामर्श समिति" (Tripartite Maritime Labour Advisory Committee) स्थापित की और उसकी सिफारिशों के आधार पर सामुद्रिक श्रमिकों के फिर से रजिस्ट्रेशन और उनकी अच्छाइयों के सार्टीफिकेट प्रदान करने पर नियंत्रण लगा दिया गया है। केवल अनुभवी श्रमिक ही अब फिर से पंजीकृत हो सकते हैं।

कलकत्ता और बम्बई में ऐसे बोर्ड भी स्थापित किये गये हैं जो ऐसे प्रमाणित सामुद्रिक श्रमिकों का एक रजिस्टर रखते हैं जो युद्ध काल में जहाज पर काम कर चुके हैं। बन्दरगाहों पर सामुद्रिक श्रमिकों के रोजगार दफ्तर स्थापित करने के लिये और उनकी भर्ती को नियमित बनाने के लिये सरकार ने १९४९ के 'भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम' (Indian Merchant Shipping Act) में कुछ संशोधन किये हैं। कलकत्ता (१९५५) और बम्बई (१९५४) में ऐसे रोजगार दफ्तर खोल दिये गये हैं और उनको सलाह देने के लिये त्रिदलीय रोजगार बोर्डों की भी स्थापना कर दी है। मद्रास में जहाज पर काम करने वालों की भर्ती स्थानीय रूप से होती है। भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम के अनुसार किसी भी भारतीय ब्रिटिश या विदेशी जहाज पर श्रमिक केवल जहाज के संयोजक द्वारा ही नियुक्त किये जा सकते हैं और यह नियुक्ति विशेष नियमों के अधीन और जहाज के नियन्त्रक (Master) की उपस्थिति में ही हो सकती है।

ट्राम्वे में कर्मचारियों की भर्ती विभिन्न नगरों में विभिन्न प्रकार से होती है। कलकत्ता में भर्ती या तो सीधी प्रणाली के द्वारा श्रमिकों के सम्बन्धियों में से होती है या रोजगार दफ्तरों के द्वारा। बम्बई में रिक्त स्थानों की पूर्ति प्रार्थना-पत्र मंगा कर की जाती है।

ठेके के श्रमिक—(Contract Labour)

हमारे उद्योग-धन्धों में ठेके के श्रमिक भी अत्यधिक मात्रा में पाये जाते हैं। पिछले युद्ध की आकस्मिक आवश्यकताओं के कारण इस प्रणाली को बहुत प्रोत्साहन मिला। इंजीनियरिंग सीमेंट कागज तथा अहमदाबाद के सूती कपड़े के उद्योग धन्धों में तथा खानों व बन्दरगाहों के उद्योगों में और केन्द्रीय व राज्यीय भवन-निर्माण विभाग में अधिकतर ठेके के श्रमिक ही पाये जाते हैं। जैसा कि पहले बताया जा चुका है खानों में अधिकतर श्रमिक ठेके के ही श्रमिक होते हैं, और यह प्रथा बागान में भी फैल चुकी है। अहमदाबाद में लगभग १०% और सीमेंट, कागज तथा जूट की चटाइयों के उद्योग में लगभग २० से २५% ठेके के ही श्रमिक हैं। कोलार की सोने की खानों में एक तिहाई श्रमिक तथा बंगाल के बन्दरगाहों के लगभग ४१% श्रमिक ठेकेदारों के द्वारा ही रोजगार पाते हैं।

ठेके के श्रमिकों की प्रथा के प्रचलन के अनेक कारण हैं। कई बार ऐसा होता है कि कार्य को जल्दी समाप्त करने के लिये कुछ श्रमिकों की एकाएक आवश्यकता पड़ती है। श्रमिक कई बार मिलते भी नहीं हैं। हमारे देश में रोजगार के दफ्तरों की स्थापना हुए भी बहुत दिन नहीं हुए हैं। कारखानों में निरीक्षक कर्मचारियों की भी कमी रही है। इन अनेक कारणों से ठेके के श्रमिकों को ही काम पर लगाना अधिक सुविधाजनक रहता है। परन्तु इस प्रथा के पक्ष में चाहे जितने भी तर्क क्यों न दिये जायें यह स्पष्ट है कि इस प्रथा से लाभ के स्थान पर हानियाँ ही अधिक हैं। सर्व प्रथम तो श्रमिकों के हित के लिये बनाये गये अनेक कानून जैसे कारखाना अधिनियम

मजदूरी अधिनियम मातृत्व हित-लाभ अधिनियम आदि ठेके के श्रमिकों पर लागू नहीं होते और श्रमिक अनेक लाभों व सुविधाओं से वंचित रह जाते हैं। ठेके के श्रमिक अधिकतर प्रवासी होते हैं। अतः इन के लिये कानूनों को लागू करना कठिन हो जाता है। केवल श्रमिकों का क्षति-पूर्ति देने के लिये जो अधिनियम है वही इन पर लागू होता है। रॉयल श्रम आयोग ने ठेके के श्रमिकों की प्रथा की अत्यन्त बुराई की है और सिफारिश की है कि श्रमिकों की भर्ती उनके काम के घंटे तथा उनके वेतन आदि पर प्रबन्धकों का पूरा नियन्त्रण होना चाहिये। इसी प्रकार से बिहार की श्रम जाँच समिति ने ठेकेदारों द्वारा भर्ती की प्रथा का खंडन किया है क्योंकि ठेकेदार अपने श्रमिकों की ओर कोई नैतिक कृतज्ञता नहीं मानते हैं और उनकी असहाय स्थिति का अनुचित लाभ उठाते हैं। बम्बई की 'कपड़ा श्रम जाँच समिति' ने इससे सहमति प्रकट करते हुये इस प्रथा के बहुत से दोषों की ओर संकेत किया है। क्योंकि ठेकेदार अपना ठेका सबसे कम बोली पर पाता है इसलिये उसके लिये यह स्वाभाविक है कि वह श्रमिकों को कम से कम मजदूरी देने का प्रयत्न करे अन्यथा उसे लाभ न होगा। इस प्रथा का एक अन्य दोष यह है कि मालिकों पर ठेके के श्रमिकों के कल्याण-कार्यों का कोई उत्तरदायित्व नहीं होता और इस प्रकार ठेकेदारों द्वारा श्रमिकों को काम पर लगाने से उनको आर्थिक लाभ होता है। ठेके की भर्ती की प्रणाली तो मध्यस्थ द्वारा भर्ती की प्रणाली से भी अधिक दोषपूर्ण है क्योंकि मध्यस्थ श्रमिकों में से ही एक होता है परन्तु ठेकेदार तो बिल्कुल बाहरी व्यक्ति होता है।

इन विचारों को ध्यान में रखते हुये यह अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है कि ठेके के श्रमिकों की प्रथा के स्थान पर सीधी भर्ती की प्रणाली अपनाई जाये। वन निर्माण-विभाग जैसी कुछ जगहों में जहाँ ठेके के श्रमिकों की प्रथा का पूर्णतया त्याग नहीं किया जा सकता वहाँ यह प्रथा नियमित कर दी जानी चाहिये। श्रमिक सम्बन्धी सभी कानून ठेके के श्रमिकों पर पूर्ण रूप से लागू होने चाहियें। किसी भी स्थिति में कोई भी ठेकेदार कानून द्वारा निश्चित न्यूनतम मजदूरी से कम मजदूरी न दे। इसके अतिरिक्त जहाँ कहीं भी सम्भव हो ठेके के श्रमिकों की प्रथा के उन्मूलन का प्रयत्न किया जाना चाहिये। सरकार ने इस प्रथा को समाप्त करने या नियमित करने के लिये एक विशेष जाँच करने का निश्चय किया है। कई औद्योगिक समितियों ने भी इस प्रथा को समाप्त कर देने की सिफारिश की है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है इस प्रथा को खानों में समाप्त करने के लिये एक समिति भी नियुक्त की गई थी जिसने अपनी रिपोर्ट में (दिसम्बर १९६१ में) इस प्रथा को सितम्बर १९६२ तक समाप्त करने की सिफारिश की है।

जनवरी १९५१ में उत्तर प्रदेश की सरकार ने तीन-चार बड़े-बड़े श्रमिक डिपो बसाना निश्चित किया और वन-निर्माण विभाग के ठेकेदारों के लिये यह अनिवार्य कर दिया कि वह केवल उन्हीं डिपो में से श्रमिक भर्ती करें। गोरखपुर और लखनऊ

में रोजगार दफ्तरों द्वारा श्रमाय खान काम श्रमिक डिपो को अपने अधिकार में लेकर सरकार ने इस योजना को कार्यान्वित करने की ओर प्रथम कदम उठाया है। यह श्रमिक को किसी निश्चित काल तक कार्य करने का आश्वासन देते हैं भर्ती कर लिये जाते हैं, और उनके प्रारम्भिक प्रशिक्षण भोजन और कपड़े का प्रबन्ध किया जाता है। काम करने वाले श्रमिकों का भोजन कपड़ा और थोड़ा सा जेबखर्च दिया जाता है। उनके वेतन में से लागत काट कर शेष वेतन उनके परिवारों को भेज दिया जाता है। इस प्रकार से श्रमिक मध्यस्थों व ठेकेदारों के अनुचित व्यवहार से बच जाता है और उसका पर्याप्त वेतन सुरक्षित हो जाता है।

गोरखपुर में एक भर्ती का डिपो १९४२ में खोला गया था जिसका उद्देश्य यह था कि लड़ाई से सम्बन्धित सामान बनाने के लिये जो संस्थायें थीं उनमें श्रमिकों की कमी न रहे। इस डिपो ने शीघ्र ही एक बड़ी संस्था का रूप धारण कर लिया और इसके द्वारा लगभग ३ ००० श्रमिक भर्ती होने लगे। इस संस्था का नाम 'गोरखपुर श्रम संस्था (Gorakhpur Labour Organisation) पड़ गया। स्थानीय श्रमिकों की कमी के कारण यह संस्था बिहार व बंगाल की कोयले की खानों के लिए भी श्रमिकों की पूर्ति करने लगी। लड़ाई समाप्त होने पर भी खान उद्योग की प्रार्थना पर यह संस्था कोयले की खानों के लिये श्रमिकों की पूर्ति करती रही परन्तु भर्ती का व्यय अब खान उद्योग वहन करने लगा। खानों में श्रमिकों की भर्ती के लिये इस प्रकार यह एक संगठन बन गया जिसका नाम 'कोयला क्षेत्र भर्ती संगठन' पड़ गया (Coal Fields Recruiting Organisation)। भर्ती का आरम्भ का व्यय तो केन्द्रीय सरकार करती है और बाद में कार्य पर लगाने वाली खानों से उनमें श्रमिकों की भर्ती के अनुसार ब्याज ले लिया जाता है। १९५६ में विभिन्न कोयला खानों में गोरखपुर के श्रमिकों की संख्या १५,८९३ थी। परन्तु इस योजना के विरुद्ध कई शिकायतें प्राप्त हुई और १९५ में इनके बारे में जाँच की गई। कोयला खानों की औद्योगिक समिति ने १९५५ में इस बात का निर्णय किया कि गोरखपुर के श्रमिक और अन्य श्रमिकों में कोई भेद नहीं होना चाहिए और गोरखपुर की संस्था का सम्बन्ध केवल भर्ती से ही रहना चाहिए। अगस्त १९५६ में समिति द्वारा अन्तिम रूप से यह निर्णय किया गया कि गोरखपुर की श्रम संस्था बिल्कुल ही बन्द कर दी जाये और इसके जो भर्ती के कार्य हैं वे रोजगार दफ्तरों को सौंप दिये जायें। संसद सभा के दस सदस्यों की एक समिति भी इस सम्बन्ध में बना दी गई थी। इस प्रकार अब गोरखपुर की इस श्रम संस्था को समाप्त करने का निर्णय कर लिया गया है।

श्रमिकों का स्थायीकरण—(Decasualisation of Labour)

श्रमिकों की भर्ती को नियमित करने के लिए कुछ कारखानों ने बदली के श्रमिकों के नियन्त्रण की रीति अपनाई है। इस योजना को बदली नियन्त्रण प्रथा अथवा बदली श्रमिकों का स्थायीकरण कहते हैं। इस योजना को दो उद्देश्यों से

अपनाया गया है। प्रथम—बदली के श्रमिकों के रोजगार को नियमित बनाना और दूसरा—श्रमिकों की भर्ती में मध्यस्थों के प्रभाव को मिटाना। इस योजना के अन्तर्गत प्रत्येक माह की पहली तारीख को कुछ चुने हुये लोगों को एक विशेष बदली कार्ड दिया जाता है जिन्हें प्रतिदिन प्रातःकाल मिल के फाटक पर हाजिरी देनी होती है और अस्थायी रिक्त स्थानों की पूर्ति इन्ही लोगों मे से की जाती है। जब तक बदली के कार्ड प्राप्त श्रमिक पर्याप्त होते हैं किसी अन्य श्रमिक को भर्ती नही किया जा सकता। इन नौकरियों की पूर्ति कार्य व अनुभव की अवधि की श्रेष्ठता के अनुसार की जाती है। इस कार्य के लिये एक रजिस्टर रखा जाता है। अहमदाबाद में केन्द्रीय सरकार की सहायता से सितम्बर १९४८ में इस योजना को सूती कपड़ा मिल के श्रमिकों के लिए प्रारम्भ किया गया और बाद मे यह योजना बम्बई शहर और शोलापुर में भी लागू कर दी गई। इस योजना के अन्तर्गत बम्बई राज्य में सूती मिलों में काम करने वाले १६७ ० श्रमिक आते हैं। यह योजना बम्बई व अहमदाबाद के मिल मालिक संघों के सहयोग से ऐच्छिक रूप से लागू है। बदली श्रमिकों का स्थायीकरण और उनकी अनुपस्थिति श्रमिकावर्त (Labour Turn-over) की दरों व माँग के आधार पर श्रमिकों पर नियन्त्रण तथा अधिक व अच्छा उत्पादन भर्ती के दोष तथा रिश्वत को समाप्त करना और श्रमिकों को प्रशिक्षण देना आदि ही इस योजना के उद्देश्य हैं। पंजीकृत श्रमिकों को प्रमाण पत्र दिये जाते हैं और नौकरी दिलाने मे नौकरी कर चुकने की अवधि का विचार रखा जाता है। कोयम्बटूर की कपड़ा मिलों में भी यह योजना लागू कर दी गई है। बन्दरगाहों के श्रमिकों के रोजगार को नियन्त्रण में लाने के लिये जो १९४८ का अधिनियम है उसके अन्तर्गत बम्बई व कलकत्ता मद्रास कोचीन तथा विशाखापट्टम में श्रमिकों के स्थायीकरण की योजनायें लागू हैं। ऐसी स्थायीकरण योजना जमशेदपुर की लोहे की टाटा की कम्पनी मे भी लागू है। इन योजनाओं के अन्तर्गत फैक्टरी के प्रत्येक विभाग में श्रमिकों के पूल बना लिए गये हैं और प्रत्येक पारी (Shift) में आवश्यकतानुसार श्रमिकों को काम पर लगा लिया जाता है। श्रमिकों की अनुपस्थिति के कारण जो स्थान रिक्त हो जाते हैं उनको भी इन्ही पूल के श्रमिकों से भर लिया जाता है। इन्दौर में भी सूती कपड़ों के कारखानों में श्रमिकों की भर्ती के लिए १९२१ में एक केन्द्रीय बदली नियन्त्रण कमेटी की स्थापना की गई थी। परन्तु यह योजना अधिक दिनों तक न चल सकी।

जनवरी १९५० में छटनी के श्रमिकों का पूल बनाने तथा श्रमिकों के स्थायीकरण के लिये उत्तर प्रदेश की सरकार द्वारा एक योजना बनाई गई। यह योजना पहले छः माह फिर एक वर्ष तक चलाने का विचार था परन्तु अब इसकी सफलता को देखकर इसको जारी रखने का निश्चय किया गया है। प्रयोगात्मक रूप से यह योजना कानपुर में प्रारम्भ की गई और ग्वालटोली कालपी रोड जूही तथा सूटरगंज में रोजगार दफ्तर के उप-कार्यालय खोले गये। यद्यपि इस योजना की पूर्ण प्रगति

में कुछ प्रारम्भिक कठिनाइयां थीं फिर भी इस योजना का प्रारम्भ सफल रूप से हुआ। परन्तु नैनीताल में हुए त्रिदलीय श्रम सम्मेलन ने इस बात का निर्णय किया कि इस योजना को १ जुलाई १६५४ से समाप्त कर दिया जाये। परन्तु फिर भी राज्य सरकार ने इस बात का निर्णय किया कि रोजगार दफ्तरों से सम्बन्धित विचाराय समिति की सिफारिशों पर निर्णय होने तक इस योजना का कुछ दिनों तक अस्थायी रूप से चालू रखा जाए। केवल कूपरगंज का कार्यालय बन्द कर दिया गया। हमारे विचार से इस योजना को समाप्त नहीं करना चाहिये क्योंकि भर्ती के तरीके में जो पक्षपात व भ्रष्टाचार था वह इस योजना से काफी सीमा तक समाप्त हो गया। यह योजना रोजगार के दफ्तरों और उत्तरी भारतवर्ष के मालिक संघ के मध्य हुए सम्मानित समझौते पर आधारित है। और इस योजना के अन्तर्गत जो कार्य अब तक हुआ है वह भी काफी सराहनीय कहा जा सकता है। यह योजना कानपुर की सभी सूती कपड़ा और तेल मिलों में लागू है। १६५५ में १६,४०२ कुल के प्रार्थियों को कानपुर में पंजीकृत किया गया जिनमें से १२,६८८ को नौकरियां भी दिलाई गई। इस अवधि में १४६६८ रिक्त स्थानों की सूचना मिली जिनमें से १४३११ स्थानों पर लोगों को लगा भी दिया गया।

भर्ती की कुछ अन्य पद्धतियां—

एक स्थायी श्रमिक वर्ग तैयार करने के उद्देश्य से अनेक संस्थाएं रोजगार में लगे हुए श्रमिकों के सम्बन्धियों को ही भर्ती में प्रथम अवसर देती हैं। यह कहा जाता है कि ऐसे लोग सरलता से कारखाने के अनुशासन को स्वीकार कर लेते हैं। अतः प्रबन्धकर्ताओं के अनुकूल भी होते हैं। फिर भी यह रीति दोषरहित नहीं है। यदि शेष बातें सामान्य हों अर्थात् प्रार्थी पूर्ण रूप से योग्य हों तो इसमें कोई हानि नहीं है वरन् यह वांछनीय है कि रोजगार में लगे हुए तथा रोजगार में पहले रह चुके लोगों के पुत्र तथा सम्बन्धियों को प्रथम अवसर दिया जावे। परन्तु व्यावहारिक रूप में यह रीति पक्षपात साम्प्रदायिकता तथा जातीयता को प्रोत्साहन देती है और बहुत से अयोग्य लोग नौकरियां पा लेते हैं। अतः भर्ती करने में केवल वैज्ञानिक सिद्धान्तों का ही पालन होना चाहिए और इसमें किसी भी प्रकार का पक्षपात न होना चाहिये।

सम्भवतया भर्ती की प्रचलित बुराइयों को दूर करने और उसे वैज्ञानिक रूप से चलाने का एक ही उपाय है कि रोजगार के दफ्तरों में वृद्धि करके उनका अधिकतम उपयोग किया जाय।

रोजगार दफ्तर (Employment Exchanges)

परिभाषा—

रोजगार दफ्तर एक विशेष प्रकार की वह संस्था है जिसका मुख्य कार्य कार्य-इच्छुक लोगों को उनकी योग्यतानुसार उपयुक्त कार्य दिलाना तथा मालिकों को योग्य और अच्छे श्रमिक प्राप्त करने में सहायता देना है। इस प्रकार से कार्य

इच्छुक लोगों और मालिकों को शीघ्रतम सम्पर्क में लाने का कार्य करते हैं। प्रत्येक श्रमिक जो कार्य ढूंढने में सहायता चाहता है अपने घर के निकटतम रोजगार दफ्तर में प्रार्थनापत्र देता है। वहां उसका नाम योग्यता अनुभव तथा विशेष रुचि आदि का विवरण लिख लिया जाता है। इसी प्रकार मालिक जिनको श्रमिकों की आवश्यकता होती है रोजगार दफ्तरों को यह सूचित करते हैं कि उनके पास कौन से स्थान रिक्त हैं और उन्हें किस योग्यता के श्रमिकों की आवश्यकता है। यह सारे विवरण रोजगार दफ्तर में सुव्यवस्थित रूप से रखे जाते हैं। जब भी कोई स्थान रिक्त होने की सूचना मिलती है तो रोजगार दफ्तर कार्य-इच्छुक व्यक्तियों में से उस स्थान के लिये उपयुक्त योग्यता रखने वालों को चुन लेता है और उनके नाम मालिकों के सम्मुख विचारार्थ पेश देता है और यदि आवश्यकता हुई तो दोनों पक्षों के बीच समालाप (Interview) का प्रबन्ध कर देता है। अन्तिम निर्णय मालिकों पर निर्भर करता है। जिन व्यक्तियों का चुनाव नहीं हो पाता है उनके लिये रोजगार दफ्तर तब तक प्रयत्न करता रहता है जब तक वे योग्य व्यवसाय नहीं पा लेते। इस प्रकार रोजगार दफ्तर श्रमिकों की मांग और पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करता है और प्रत्येक स्थान पर उपयुक्त व्यक्तियों की नियुक्ति करने में सहायक होता है।

रोजगार दफ्तरों का काम तथा महत्त्व—

राज्य द्वारा संचालित रोजगार दफ्तरों के महत्व को १९१९ में विश्व व्यापी मान्यता प्रदान की गई, जबकि वाशिंगटन में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने एक अभिसमय (Convention) द्वारा इस बात पर जोर दिया कि प्रत्येक सदस्य देश को जनता के लिए एक नि:शुल्क रोजगार दफ्तर स्थापित करना चाहिये जो कि एक विशेष केन्द्रीय नियन्त्रण के अधीन रहे। यह विषय १९४७ में जेनेवा में हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के तीसवें अधिवेशन की कार्य-सूची पर फिर से रखा गया और सदस्य सरकारों से रोजगार दफ्तरों के संगठनों के बारे में सूचना मांगी गई। यह सूचना अनेक देशों से प्राप्त हुई, जिनमें भारत भी था। इसके आधार पर १९४८ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने सान-फ्रांसिस्को में होने वाले ३१ वें वार्षिक अधिवेशन में एक अभिसमय पास किया और एक सिफारिश भी की। इस अभिसमय में रोजगार दफ्तरों के कार्यों और कर्तव्यों की रूपरेखा दी गई है और इनको सफल बनाने के लिये मालिक और मजदूरों के सहयोग का अनुरोध किया गया है।

रोजगार दफ्तर के कार्य अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं। एक सुसंचालित औद्योगिक व्यवस्था में इनका एक विशेष स्थान है। राष्ट्रीय लाभांश (National dividend)की अधिकतम वृद्धि दो बातों पर निर्भर है। प्रथम तो श्रमिकों को अनैच्छिक(Involuntary) बेकारी से बचाना दूसरे प्रत्येक श्रमिक को उसकी योग्यतानुसार कार्य देना। रोजगार दफ्तर इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि रोजगार दफ्तर नवीन व्यवसायों का निर्माण नहीं कर सकते। इनका मुख्य कार्य श्रम की मांग व पूर्ति में पूर्ण रूप से सन्तुलन स्थापित करना है। श्रमिकों और उनकी नौकरियों में

उचित प्रकार का सन्तुलन स्थापित न हो पाने का एक कारण यह भी है कि श्रमिकों को रिक्त नौकरियों की और मालिकों को बेरोजगार मजदूरों की सूचना नहीं मिल पाती। ऐसी स्थिति में रोजगार दफ्तर दोनों को उपयुक्त सूचना दे सकते हैं। कितने आश्चर्य की बात है कि विनियोग तथा अन्य अनेक महत्वपूर्ण वस्तुओं के लिए तो संगठित बाजार काफी समय से पाये जाते हैं परन्तु श्रम के लिये कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है यद्यपि श्रम का मोलभाव भी संसार में अत्यन्त महत्वपूर्ण है। अतः इसके लिए भी किसी उचित व्यवस्था का होना अत्यधिक आवश्यक है।

यह तो सरकार का कर्तव्य है कि वह जन-निर्माण कार्यों में उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहन देकर, कृषि में उन्नति करके तथा देश में धन का समान वितरण आदि करके लोगों के लिये अधिक नौकरियाँ उपलब्ध करे। रोजगार दफ्तरों का यह उत्तरदायित्व होता है कि वे इस बात का ध्यान रखें कि रिक्त स्थानों पर वही मनुष्य नियुक्त किए जायें जो उनके लिये सर्व-उपयुक्त हों। इस प्रकार रोजगार दफ्तरों के द्वारा श्रमिकों को सर्व-उपयुक्त नौकरी और मालिकों को सर्व-उपयुक्त कर्मचारी मिल जाते हैं। इस प्रकार हर नौकरी पर उचित व्यक्ति की ही नियुक्ति होती है। जो समय स्थानों के रिक्त होने तथा उनकी पूर्ति होने में व्यर्थ जाता है वह भी यथा सम्भव कम हो जाता है। मध्यस्थों द्वारा भर्ती के दोष आदि भी रोजगार दफ्तरों के होने से दूर हो जाते हैं। रोजगार दफ्तर इस बात का भी ध्यान रखते हैं कि आवश्यकतानुसार निपुण श्रमिक बाजार में प्राप्त होते रहें और उनका उचित रूप से उत्पत्ति की विभिन्न शाखाओं में वितरण हो जाये। ये कार्य योग्य मनुष्यों, नौकरियों, बेरोजगारी तथा व्यवसाय आदि के बारे में सूचना भी देते रहते हैं जो कि जनता और सरकार के लिये अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध होती है। ये विस्थापित (Displaced) व्यक्तियों, शरणार्थियों तथा पूर्व सैनिकों (Ex-servicemen) को बसाने में भी सहायता देते हैं। यद्यपि यह सत्य है कि रोजगार दफ्तर नौकरियाँ निर्मित नहीं कर सकते और जब तक कोई स्थान खाली न हो वह किसी को काम पर नहीं लगा सकते फिर भी एक सीमा तक रोजगार के दफ्तर बेरोजगारी कम करने में सहायक सिद्ध होते हैं। अनेक बार ऐसा होता है कि एक स्थान पर तो बेकारी होती है और अन्य स्थानों पर श्रमिकों का अभाव होता है। ऐसी अवस्था दो कारणों से उत्पन्न हो सकती है—एक तो नौकरी के सम्बन्ध में बेरोजगार मनुष्यों की पूर्ण अनभिज्ञता के कारण, दूसरे उचित प्रशिक्षण के अभावस्वरूप उस स्थान के लिए अयोग्यता के कारण। ऐसी अनेक अवस्थाओं में रोजगार दफ्तर बेकारी कम करने में अत्यधिक सहायक सिद्ध हो सकता है। ये केवल आवश्यक सूचना देने का साधन ही नहीं होते वरन् नौकरियों के लिए उपयुक्त प्रशिक्षण देने का कार्य भी करते हैं। इस प्रकार रोजगार दफ्तर श्रम बाजार में श्रमिकों की माँग व पूर्ति के सन्तुलन में जो विलम्ब होता है उसको कम कर देते हैं। इस प्रकार यद्यपि कुल रोजगार की वृद्धि करने में उनका अधिक हाथ नहीं होता, तथापि बेरोजगारी के दोषों को दूर करने में वे

सहायक होते हैं।

लोगों का यह विचार भी भ्रमपूर्ण है कि रोजगार दफ्तरों से सब लाभ केवल श्रमिकों को ही होते हैं। ये दफ्तर मालिकों के लिए भी अत्यन्त लाभदायक हैं। प्रत्येक मालिक के लिए रिक्त स्थान का शीघ्र से शीघ्र भर जाना बहुत महत्व रखता है। मालिक यह भी समझता है कि रिक्त स्थानों का भर जाना ही काफी नहीं है, अपितु उपयुक्त स्थान के लिए उपयुक्त मनुष्य का होना भी आवश्यक है। रोजगार दफ्तर इन दोनों उद्देश्यों की पूर्ति में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। जब श्रमिक अनायास ही भर्ती के लिए आ जाते हैं तो या तो मालिक को उपयुक्त श्रमिक पाने के लिए काफी प्रतीक्षा करनी पड़ती है या उन्हें नए श्रमजीवियों की बहुत बड़ी संख्या में शिक्षा देनी पड़ती है। परन्तु मालिक के लिए यह दोनों ही बातें दुष्कर होती हैं और परिणामस्वरूप अनुपयुक्त लोगों की भर्ती अधिक हो जाती है। जिसका फल यह होता है कि श्रमिकों का अनिकार्यत बढ़ जाता है। इसके अतिरिक्त मालिकों को और भी खर्चे करने पड़ते हैं जैसे रिक्त स्थानों का विज्ञापन या भर्ती के लिए एक विशेष विभाग का संचालन आदि। परन्तु यदि मालिकों को रोजगार दफ्तरों के द्वारा श्रमिक मिल जायें तो यह सब कठिनाइयाँ तथा व्यय दूर हो सकते हैं।

यह सर्वमान्य है कि रोजगार दफ्तर बेरोजगार मनुष्यों के लिए अत्यन्त लाभदायक सिद्ध हुए हैं। इनके न होने से काम की खोज में श्रमिक को प्रार्थनापत्र लिए हुए स्थान स्थान पर घूमना पड़ता है। ऐसी स्थिति में यह संयोग पर ही निर्भर है कि भाग्यवश श्रमिक ऐसे स्थान पर पहुंच जाए जहाँ उसे नौकरी मिल जाए। अधिकतर श्रमिकों को ऐसा सुसंयोग बहुत दिनों तक नहीं मिल पाता। एक बड़े नगर में एक श्रमिक एक दिन में कुछ ही स्थानों पर जा सकता है और इस अवस्था में यह सम्भव है कि वह जगह पाने के लिए घूमता फिरता रहे जबकि उसी नगर के किसी ऐसे स्थान पर, जहाँ पर वह संयोगवश न जा पाया हो स्थान रिक्त हो। इस प्रकार समय व श्रम का नष्ट होना श्रमिक मालिक तथा समाज सभी के दृष्टि कोण से हानिकारक होता है और यदि नौकरी की खोज में कहीं दूर जाना पड़ता है तो व्यय और भी बढ़ जाता है। रोजगार दफ्तरों की सहायता से, वे सब हानियाँ जो अव्यवस्थित रूप से नौकरियाँ खोजने के कारण उत्पन्न हो जाती हैं, दूर हो सकती हैं।

संक्षेप में रोजगार दफ्तरों के कार्य निम्नलिखित कहे जा सकते हैं:— (१) ये मालिकों तथा श्रमिकों के बीच मध्यस्थ का काम करते हैं और नौकरी का आपसी निर्णय उन्हीं दोनों पर छोड़ देते हैं। इस प्रकार यह श्रम की माँग व पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करते हैं। (२) उस स्थान से जहाँ श्रमिक अधिक हों वे श्रमिकों को उस स्थान पर भेज देते हैं जहाँ उनकी कमी हो। इस प्रकार वे श्रम की गतिशीलता को बढ़ाते हैं, और सूचना के अभाव के कारण उत्पन्न हुए श्रम के असमान वितरण में समानता लाते हैं। (३) उनके कारण भर्ती में प्रचलित रिश्वत और भ्रष्टाचार दूर हो जाते

है क्योंकि वे सबको निःशुल्क समान सहायता देते हैं। उनके कारण सर्व-उपयुक्त व्यक्तियों की ही नियुक्ति होती है। (४) वे कार्य-योग्य मनुष्यों तथा बेरोजगारी के आंकड़ों को एकत्रित करते हैं और इस प्रकार देश में श्रमिकों की वास्तविक स्थिति ज्ञात हो जाती है। (५) वे अनेक योजनाओं को लागू करने व चलाने में सहायता देते हैं; जैसे बेरोजगारी बीमा योजना स्वामीकरण योजना तथा विस्थापित व्यक्तियों को बसाने तथा उनको कार्य पर लगाने की योजना आदि। (६) वे श्रमिकों को प्रशिक्षण की सुविधायें देते हैं तथा बच्चों के माता-पिता व अभिभावकों को व्यवसाय सम्बन्धी तथा व्यापार सम्बन्धी परामर्श व निर्देशन देते हैं। (७) वे नौकरियों के खाली होने और उनके भरने के बीच के समय को कम कर देते हैं और इस प्रकार अनैच्छिक बेकारी को कम करने में सहायक होते हैं यद्यपि यह सत्य है कि वे रोजगार की उत्पत्ति नहीं कर सकते।

अन्य देशों की भाँति रोजगार दफ्तरों का महत्व हमारे देश में भी सामाजिक सुरक्षा और आर्थिक उन्नति की योजनाओं में अत्यधिक है। इनका संगठन हुए अभी अधिक वर्ष नहीं हुए हैं और इनकी सेवायें निःशुल्क तथा ऐच्छिक रूप से होती हैं। यदि इनको व्यावहारिक दृष्टि से देखा जाए, जैसी कुछ अन्य देशों में इनकी स्थिति है तो ऐसा प्रतीत होता है कि यह भारत में सफल नहीं हो सकते। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ का अभिसमय भी इसी बात की सिफारिश करता है कि रोजगार के दफ्तर निःशुल्क सेवा देते रहें। इनको एक महत्वपूर्ण राष्ट्रीय और समाजसेवी संस्था समझना चाहिए परन्तु इस बात का अवश्य ध्यान रखना चाहिए कि इनके अन्दर भी सरकारी कार्यालयों की भाँति केवल कागजी कार्यवाही की ही प्रधानता न रहे। यदि रोजगार दफ्तर कार्य के लिये उपयुक्त व्यक्तियों को ढूंढने में अधिक समय लगायेंगे तो मालिकों के लिये श्रमिकों की प्रतीक्षा करना कठिन हो जायेगा। इसी प्रकार जिन श्रमिकों को काम की आवश्यकता है वह बार-बार रोजगार के दफ्तरों के ही चक्कर नहीं काट सकते जबकि उनके घर में खाने का भी अभाव हो। इसलिये रोजगार दफ्तरों को अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये शीघ्रता कुशलता और व्यावहारिक रूप से कार्य करना चाहिये।

अन्य देशों में रोजगार दफ्तर:—

रोजगार दफ्तरों की आवश्यकता औद्योगिक विकास के आरम्भ में ही अनुभव की जाने लगी थी। आरम्भ में यह व्यापारिक दृष्टि से लाभ उठाने के लिये व्यक्तिगत संस्था के रूप में अथवा कुछ दानी संस्थाओं, जैसे युवक क्रिश्चियन संघ (Y M C A) द्वारा निर्मित समाजसेवी संस्था के रूप में प्रचलित हुये। राज्य द्वारा निर्देशित रोजगार दफ्तरों का बाद में विकास हुआ और न्यूजीलैंड में इनको १८९१ में प्रथम बार आरम्भ किया गया। जर्मनी में पहला रोजगार दफ्तर १८८३ में बर्लिन में चालू हुआ परन्तु उसका राष्ट्रीयकरण १९१८ के बाद हुआ। १९२७ में रोजगार दफ्तरों की एक राष्ट्रीय संस्था और रोजगार दिलाने की एक बीमा योजना

का बर्लिन में प्रारम्भ हुआ। यह एक नियंत्रीय आयोग के नियंत्रण में थे। फ्रान्स ने सामुदायिक रोजगार कार्यालयों से प्रारम्भ किया जिनके स्थान पर बाद में १९१४–१८ के बीच में विभागीय रोजगार कार्यालयों की स्थापना हुई। आजकल एक तो क्षेत्रीय परिसूचन गृह (Regional Clearing House) है और एक श्रम मंत्रालय के अधीन केन्द्रीय रोजगार कार्यालय है। फ्रान्स के रोजगार दफ्तरों का एक विशेष लक्षण यह है कि वह व्यवसाय के आधार पर विभिन्न खंडों में विभाजित है और प्रत्येक खण्ड मालिकों और श्रमिकों से पूर्ण रूप से परामर्श करके अपनी नीति लागू करता है। रूस में राष्ट्रीय समाजवादी व्यवस्था के अधीन १९३१ में स्टाफ कार्यालयों की स्थापना हुई जो रोजगार दफ्तरों का कार्य करते हैं और यह सभी संस्थाओं के लिये अनिवार्य है कि वे श्रमिकों को इन दफ्तरों के द्वारा ही भर्ती करें। अमरीका में प्रारम्भ में व्यक्तिगत और सशुल्क रोजगार दिलाने की संस्थायें जिन्हें लाइसेंस लेना पड़ता था स्थापित हुईं। सरकार का इनके ऊपर नियंत्रण १९११ से प्रारम्भ हुआ जबकि एक श्रम-विभाग खोला गया परन्तु नियंत्रण में दृढ़ता १९१८ के पश्चात् ही आई। १९१४–१८ की लड़ाई के दिनों में व्यक्तिगत संस्थाओं ने बहुत कार्य किया और अत्यधिक लाभ उठाया। आजकल भी अमरीका में व्यक्तिगत रोजगार के दफ्तर काफ़ी प्रचलित हैं यद्यपि नगरपालिका और सरकार द्वारा स्थापित कार्यालयों से उनकी संख्या अधिक नहीं है।

ग्रेट ब्रिटेन में जिसके आधार पर भारतीय रोजगार दफ्तर निर्मित किए गये हैं प्रथम रोजगार दफ्तर १८८१ में ऐगम में प्रारम्भ हुआ। किसी प्रकार का शुल्क नहीं लिया जाता था परन्तु जिनको नौकरी मिल जाती थी उनसे चंदादान ग्रहण कर लिया जाता था। १९०२ में एक 'श्रम ब्यूरो (लन्दन) अधिनियम' (Labour Bureau 'London, Act) पास हुआ जिसके अधीन स्थानीय संस्थाओं को रोजगार के दफ्तर स्थापित करने का अधिकार मिल गया। १९०५ में बेरोजगार श्रमिकों के लिये एक अधिनियम पास हुआ जिसके अधीन पीड़ित मनुष्यों के लिये स्थापित समितियों ने २१ रोजगार दफ्तर स्थापित किये किन्तु इनकी आलोचना की गई। पहला रोजगार दफ्तर १९१० में सरकार ने व्यापार बोर्ड (Board of Trade) के अन्तर्गत स्थापित किया। यह १९०९ में जो दरिद्र मनुष्यों के कानूनों(Poor Laws)के लिये रॉयल आयोग की नियुक्ति हुई थी उसकी सिफारिशों के परिणामस्वरूप स्थापित किया गया था। देश को फिर ११ विभागों में विभाजित किया गया और लन्दन में एक केन्द्रीय कार्यालय खोला गया। महीने भर के अन्दर ही रोजगार दफ्तरों की संख्या ६१ से बढ़कर २१४ हो गई और १९१२ में उनकी संख्या ४१४ तक पहुंच गई। १९१६ में जब श्रम मंत्रालय की स्थापना हुई तब इसने श्रम दफ्तरों का प्रशासन भार व्यापार बोर्ड से लेकर स्वयं संभाल लिया और तब से इस संस्था का नाम श्रम दफ्तरों के स्थान पर रोजगार दफ्तर हो गया। १९१९ में इन रोजगार दफ्तरों के कार्यों की जाँच करने के लिए एक समिति की नियुक्ति हुई। इसने यह सिफ़ारिश की कि इनका एक राष्ट्रीय आधार

पर निर्माण किया जाये और राष्ट्रीय बीमा योजना भी इनके ही द्वारा लागू की जाए। परिणामस्वरूप १२० लाख श्रमिकों का १६२० में बेरोजगारी बीमा अधिनियम के पास होने के पश्चात् रोजगार दफ्तरों के द्वारा बीमा हुआ। अब श्रम मन्त्रालय और राष्ट्रीय बीमा योजना रोजगारों दफ्तरों के संचालन के लिये उत्तरदायी हैं। इनका क्षेत्र भी धीरे धीरे विकसित कर दिया गया है और यह अब व्यवसाय सम्बन्धी निर्देशन और प्रशिक्षण का कार्य भी करती हैं। १६४८ में एक रोजगार और प्रशिक्षण अधिनियम भी इनके कार्यों को स्पष्ट करने के लिए पारित हुआ। इस समय ब्रिटेन में ६०० स्थानीय तथा शाखा रोजगार दफ्तर हैं। १४ सरकारी प्रशिक्षण केन्द्र हैं, जिनमें व्यवसाय सम्बन्धी प्रशिक्षण दिया जाता है। दो विशेष रोजगार दफ्तर भी हैं जो युवकों को रोजगार देने और अपाहिज लोगों को बसाने का कार्य करते हैं।

भारत में रोजगार दफ्तर

ऐतिहासिक रूपरेखा—

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ ने १६१६ में अभिसमय द्वारा इस बात की सिफारिश की थी कि एक निःशुल्क रोजगार दफ्तर की स्थापना होनी चाहिये। भारत ने १६२१ में इस अभिसमय को स्वीकार कर लिया था पर १६३८ में उसको अस्वीकृत घोषित कर दिया। १६२६ की मन्दी से उत्पन्न बेकारी की समस्या के विषय में सुझाव प्रस्तुत करते हुये रॉयल श्रम आयोग ने इस बात को स्वीकार नहीं किया था कि रोजगार दफ्तर बेकारी को दूर कर सकते हैं। उसके मतानुसार ऐसे दफ्तर केवल श्रम की गतिशीलता में ही वृद्धि कर सकते हैं। आयोग के शब्दों में "ऐसे कार्यालय उन क्षेत्रों से जहाँ से श्रमिकों को लिया जाता था भूतकाल में तो कुछ उपयोगी सिद्ध हो सकते थे परन्तु हमारे विचार में ऐसे समय में उनका स्थापित करना बुद्धिमानी नहीं होगी जबकि अधिकतर श्रमिक कारखाने के फाटक पर ही मिल जाते हैं।" किन्तु इस विचार के होते हुये भी श्रमिक और मालिकों के संघों ने तथा अनेक समितियों ने जैसे सप्रू कमेटी बिहार व कानपुर की श्रम जाँच समिति और श्रम अनुसंधान समिति आदि ने रोजगार दफ्तरों की स्थापना के पक्ष में ही अपना मत प्रकट किया।

पिछले युद्ध के दिनों में जब कि सरकार ने तकनीकी कर्मचारियों का अभाव अनुभव किया तब युद्ध की सामग्री के कारखानों और फौज के लिये तकनीकी कारीगरों की पूर्ति करने के लिये श्रम विभाग के अन्तर्गत कारीगरों के तकनीकी प्रशिक्षण के लिये एक योजना बनाई गई। केवल इस प्रशिक्षण के लिये १६४३–४४ में ६ रोजगार दफ्तरों की स्थापना की गई। युद्ध की समाप्ति के पश्चात् सेना से निकले हुये सैनिकों और कारीगरों को काम पर लगाने की समस्या उपस्थित हो गई और यह आवश्यक हो गया कि रोजगार दफ्तरों का विस्तार और संयोजन किया जाये। अतः जुलाई १६४५ में पुनर्निवास तथा रोजगारी का विभाग एक महा-निदेशक के अधीन खोला गया और उसके अन्तर्गत देश में ७० रोजगार

दफ्तर स्थापित किये गये। प्रारम्भ में इन दफ्तरों का कार्य केवल यही था कि सेना से निकले हुये सैनिकों और कारीगरों की सहायता करें और उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करे। परन्तु १९४७ में इस संगठन का क्षेत्र विस्तृत करके इसके अन्तर्गत पाकिस्तान से विस्थापित हुये लोगों की सहायता का कार्य भी सम्मिलित कर लिया गया और अप्रैल १९५२ में रोजगार दफ्तरों को उन सभी मनुष्यों के लिये जिनको रोजगार की आवश्यकता हो खोल दिया गया।

भारत में रोजगार दफ्तरों का संगठन—

१९४७ में भारत में ७० रोजगार दफ्तर थे परन्तु देश के विभाजन के बाद १७ रोजगार दफ्तर पाकिस्तान के अधिकार में आ गये। फरवरी १९४८ में पश्चिमी बंगाल में एक नया दफ्तर खोला गया। देहली के केन्द्रीय रोजगार दफ्तर को क्षेत्रीय रोजगार दफ्तर में परिणत कर दिया गया। यह विभिन्न क्षेत्रों के लिये परिसूचना गृह (Clearing House) का कार्य भी करता रहा। देहली में एक केन्द्रीय निरीक्षण कार्यालय भी स्थापित किया गया। अप्रैल १९५० में 'ब' श्रेणी के राज्यों के दफ्तरों को भी केन्द्रीय संगठन के अन्तर्गत ले लिया गया। जनवरी १९५१ में रोजगार दफ्तरों की संख्या १२८ थी जिनमें ९ क्षेत्रीय दफ्तर, १४ उप-क्षेत्रीय दफ्तर और ९५ जिला दफ्तर थे। १ नवम्बर १९५६ से रोजगार दफ्तर और प्रशिक्षण केन्द्र (Training Centres) राज्य सरकारों के नियन्त्रण में आ गये हैं। प्रत्येक राज्य में अब प्रशिक्षण तथा रोजगार निदेशालय (Directorate of Training and Employment) बना दिये गये हैं। अब केन्द्रीय सरकार का उत्तरदायित्व केवल नीति सम्बन्धी कार्य संयोजन (Coordination) तथा देखभाल और व्यवस्था सम्बन्धी व्यय का ६०% खर्चा वहन करने तक ही सीमित रह गया है। केंद्रीय नियन्त्रण और संयोजन अब रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय (Directorate General of Employment and Training) नई देहली द्वारा होता है। इसके दो मुख्य विभाग हैं—रोजगार तथा प्रशिक्षण। अगस्त १९५१ से पहले इसका नाम पुनः स्थापन (Resettlement) तथा रोजगार महानिदेशालय था। रोजगार दफ्तरों से सम्बन्धित कुछ रोजगार सूचना ब्यूरो तथा कुछ उप-दफ्तर भी हैं। समुद्री और हवाई कर्मचारियों के लिये विशेष दफ्तर हैं। इसके अतिरिक्त देश के विस्तार को ध्यान में रखते हुए रोजगार दफ्तर से दूर रहने वाले लोगों के लिये कुछ चलते-फिरते रोजगार दफ्तरों (*Mobile Exchanges*) की स्थापना की गई है। यह चलते-फिरते दफ्तर बड़ी मोटरों में होते हैं और क्षेत्रीय तथा उपक्षेत्रीय दफ्तरों द्वारा संचालित होते हैं। रोजगार दफ्तरों की सहायता के हेतु केन्द्र क्षेत्रों तथा उपक्षेत्रों में सरकार, मालिक तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों से बनी हुई कुछ परामर्श समितियाँ भी होती हैं। विशेष प्रकार के रोजगार की खोज करने वालों के लिए पृथक्-पृथक् विभाग हैं जैसे विस्थापित व्यक्ति छंटनी में आए हुए सरकारी कर्मचारी अधिसूचित जाति के लोग भूतपूर्व सैनिक एंग्लो-इण्डियन प्रार्थी तथा स्त्रियां। पदाधिकारियों के मार्ग प्रदर्शन के लिये "पदाधिकारी-प्रशिक्षण-पत्र"

निकाले जाते हैं और उनके लिये कई प्रशिक्षण कार्य-क्रम भी लागू किए गये हैं। अस्थायी श्रमिकों के स्थायीकरण होने की योजना में भी रोजगार के दफ्तर सहायता व सहयोग देते हैं। १६५८–५६ में रानीगंज और झरिया की कोयले की खानों के लिये प्रमग से रोजगार दफ्तरों की स्थापना हुई है। विश्वविद्यालय के छात्रों की सहायता के लिये दिल्ली विश्वविद्यालय में एक रोजगार ब्यूरो की भी स्थापना की गई थी और अब ऐसे ब्यूरो चार विश्वविद्यालयों में पाये जाते हैं अर्थात् देहली त्रिवेन्द्रम अलीगढ़ और वाराणसी। जुलाई १६६ से नई दिल्ली में रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय के अन्तर्गत एक केन्द्रीय रोजगार दफ्तर स्थापित कर दिया गया है। सरकारी संस्थाओं में ७००) प्रतिमाह से अधिक के जो भी पद रिक्त होते हैं उनकी सूचना इस केन्द्रीय रोजगार दफ्तर को देना आवश्यक है। मालिक भी अपने रिक्त स्थानों की सूचना इस केन्द्रीय रोजगार दफ्तर के द्वारा दूसरे राज्यों में भेज सकते हैं। १६५७ से निदेशालय में एक विशेष विभाग केन्द्रीय सरकार के अन्तर्गत रिक्त स्थानों की पूर्ति करने और यदि किसी विभाग में आवश्यकता से अधिक कर्मचारी हों तो उनको अन्य रोजगारों में लगा देने का प्रयत्न करने हेतु खोल दिया गया है। नवम्बर १६५६ से घरेलू नौकरों के लिये भी एक विशेष रोजगार दफ्तर देहली में स्थापित कर दिया गया है। १६५६ में एक अधिनियम भी पारित किया गया जो १ मई सन् १६६० से लागू कर दिया गया है। इसको "रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानों की अनिवार्य सूचना) अधिनियम [Employment Exchanges (Compulsory Notification of Vacancies) Act] कहते हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत अब मालिकों के लिये अनिवार्य हो गया है कि वे विशेष रिक्त स्थानों की सूचना रोजगार दफ्तरों को दें और नियमित रूप से अपने कर्मचारियों की संख्या भी समय-समय पर प्रस्तुत करते रहें। सितम्बर १६६१ में रोजगार दफ्तरों की संख्या ३१६ थी और इसके अतिरिक्त ४ विश्वविद्यालयों के रोजगार ब्यूरो भी थे। उत्तर प्रदेश में रोजगार दफ्तरों की संख्या ५३ थी—१ केन्द्रीय ६ उप क्षेत्रीय तथा ४६ जिला रोजगार दफ्तर थे।

श्रमिकों की प्रशिक्षण व्यवस्था—(Training of Workers)

श्रमिकों के लिये विभिन्न व्यवसायों का प्रशिक्षण अति आवश्यक है। अन्य देशों में सरकार द्वारा प्रशिक्षण के अतिरिक्त मजदूर संघों तथा मालिक संघों आदि के द्वारा भी प्रशिक्षण व्यवस्था है। भारत में प्रशिक्षण का भार केवल सरकार पर ही पड़ा है क्योंकि मजदूर संघों की ऐसी अवस्था नहीं है कि वे प्रशिक्षण योजनाओं को नियमित रूप से चला सकें। मालिकों ने भी केवल कुछ संगठित उद्योग-धन्धों को छोड़कर, इस ओर कम ही ध्यान दिया है। भारत में प्रथम प्रशिक्षण योजना वही थी जो कि द्वितीय युद्ध के समय रोजगार दफ्तरों के द्वारा तकनीकी कारीगरों की पूर्ति के लिए प्रारम्भ की गई थी। युद्ध की समाप्ति के बाद यह योजना चालू रही और इसके अन्तर्गत भूतपूर्व सैनिकों को विभिन्न कलाओं तथा व्यवसायों का प्रशिक्षण दिया जाता था। १६५० में इस योजना को समाप्त कर दिया गया। और इसके स्थान पर नाथ

१९५० में एक व्यापक योजना जिसको वयस्क लोगों के प्रशिक्षण की योजना कहा गया प्रारम्भ की गई। इस योजना का भी १९५४ में पुनर्संगठन किया गया और अब "शिल्पियों के प्रशिक्षण की योजना' (Craftsmen s Training Scheme) के नाम से यह योजना चल रही है। प्रारम्भ में इसमें दस हजार व्यक्तियों के लिए जगह थी। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में ३२ ० अन्य व्यक्तियों के लिए और जगह बना दी गई। इस प्रकार द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की समाप्ति पर ४२ ०० व्यक्तियों के प्रशिक्षण हेतु स्थान था तथा १६६ औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थायें थीं। तृतीय पंच वर्षीय आयोजना में ११८ और संस्थायें स्थापित करने का कार्यक्रम बनाया गया है और ५८ हजार और व्यक्तियों के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था कर दी जायेगी। इस प्रकार एक लाख शिल्पियों के प्रशिक्षण की व्यवस्था हो जाएगी। इस योजना के अन्तर्गत अब प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार है और दोनों प्रकार के अर्थात् तकनीकी तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। इसके पाठ्य-विषय को उद्योग-धन्धों की आवश्यकताओं के अनुसार बनाया गया है और जो प्रशिक्षण समाप्त कर लेते है उनको एक शिल्पी प्रमाणपत्र दे दिया जाता है। इस प्रमाणपत्र को अनेक राज्य सरकारों ने मान्यता प्रदान की है। एक "राष्ट्रीय व्यवसाय प्रमाणपत्र बोर्ड' की भी स्थापना की गई है जो परीक्षाओं का संचालन करता है और डिप्लोमा प्रदान करता है। तकनीकी व्यवसायों में प्रशिक्षण की अवधि दो वर्ष तथा व्यवसायिक प्रशिक्षण की अवधि एक वर्ष है। इस योजना का उद्देश्य यही है कि उद्योग-धन्धों के लिए निपुण कारीगर मिलते रहें और शिक्षित लोगों में बेकारी कम हो तथा उत्पादन की मात्रा व गुण में वृद्धि हो। मई १९५७ में प्रशिक्षण नीति निर्धारण में परामर्श देने के लिए तथा स्तरों में एकता लाने के लिए एक व्यवसायिक प्रशिक्षण सम्बन्धी राष्ट्रीय परिषद् की स्थापना की गई।

शिल्पी प्रशिक्षण (Craftsmen Training) योजना के अतिरिक्त द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत कुछ अन्य कार्यक्रम भी प्रारम्भ किये गये हैं जिनमें तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में और वृद्धि करने का कार्यक्रम है। एक तो शिक्षार्थी प्रशिक्षण योजना (Apprenticeship Training Scheme) है तथा दूसरी शिक्षित बेरोजगार व्यक्तियों को काम सिखाने हेतु केन्द्र (Orientation Centres for Educated Unemployed) हैं तथा तीसरी श्रमिकों के लिए संध्या कक्षाओं के केन्द्र (Evening Classes for Industrial Workers) हैं। सितम्बर १९६१ में *प्रशिक्षण योजना के आंकड़े इस प्रकार थे—ऐसी संस्थाओं की कुल संख्या जिनमें प्रशिक्षण दिया जा रहा था—२६५ (शिल्पी प्रशिक्षण संस्थायें—१६६, शिक्षार्थी प्रशिक्षण संस्थायें—६६, शिक्षित बेरोजगारों हेतु प्रशिक्षण केन्द्र—१५ तथा संध्या* कक्षाओं के केन्द्र-१५, योग २६५)। ऐसे व्यक्तियों की संख्या जिनको प्रशिक्षण दिया जा रहा था ४१०८० थी [गैर-यंत्रशास्त्रीय (Non-Engineering) व्यवसाय में-पुरुष १,५४८ तथा स्त्रियाँ ४६ यंत्रशास्त्रीय (Engineering) व्यवसाय

में–३८ १६६, शिक्षार्थी केन्द्रों में–१ २५१ शिक्षित बेरोजगारों के काम व प्रशिक्षण केन्द्रों में–७११ तथा संध्या कक्षाओं में–८८४]। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में शिल्पी प्रशिक्षण संस्थाओं की संख्या १६६ से बढ़ाकर ३१८ करने का कार्यक्रम है। शिक्षार्थी प्रशिक्षण योजना के अंतर्गत १४ ००० और अधिक व्यक्तियों को प्रशिक्षित करने की योजना है। संध्या कक्षाओं के अंतर्गत भी १५०० व्यक्तियों हेतु स्थान बनाने की योजना है।

इसके अतिरिक्त 'प्रशिक्षकों' के प्रशिक्षण हेतु एक केन्द्रीय संस्था (Central Training Institute for Craft Instructors) है। इसकी स्थापना १९४८ में मध्य प्रदेश में कोनी बिलासपुर में हुई। एक और संस्था १९५८ में इसी उद्देश्य से पूना के पास औंध में स्थापित की गई। कोनी बिलासपुर की संस्था तो अब कलकत्ता में स्थापित कर दी गई है तथा औंध की संस्था को भी बम्बई में स्थापित किया जा रहा है। जनवरी १९६१ में कानपुर में भी एक ऐसी ही संस्था स्थापित कर दी गई है। इन सब संस्थाओं में ५१२ प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण देने की योजना है। तृतीय आयोजना में इन संस्थाओं में ९७५ व्यक्तियों के लिये स्थान बना दिए जायेंगे और महिला प्रशिक्षकों के लिये भी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जायेगी। मार्च १९६१ तक इन संस्थाओं से १८०९ पूर्ण प्रशिक्षित प्रशिक्षक निकल चुके थे। तीन अन्य केन्द्र और खोलने का भी कार्यक्रम है और तृतीय पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में ७८०० प्रशिक्षकों को प्रशिक्षण देने की योजना है। इलाहाबाद में दिसम्बर १९५४ में एक धन्धा केन्द्र (Hobby Centre) भी खोला गया जिसका उद्देश्य यह है कि विद्यार्थियों को शारीरिक श्रम की महत्ता का ज्ञान कराया जाए और उनमें दस्तकारी तथा व्यवसायिक विषयों के प्रति रुचि उत्पन्न की जाए। इस केन्द्र में १९५९ में ११२ विद्यार्थी प्रशिक्षण पा रहे थे। इसके अतिरिक्त अनेक राज्यों ने और रेलवे विभाग ने भी प्रशिक्षण केन्द्र तथा औद्योगिक विद्यालय खोल रखे हैं। नई दिल्ली में स्त्रियों के लिए १९५५–५६ से एक औद्योगिक प्रशिक्षण केन्द्र की भी स्थापना की गई है। इसमें १९५९ तक ४०० महिलाओं को कताई सिलाई कढ़ाई और बुनाई के कामों में प्रशिक्षण दिया जा चुका था।

रोजगार दफ्तरों के विषय में शिवाराव समिति की रिपोर्ट—

आयोजना आयोग के सुझाव पर सरकार ने नवम्बर १९५२ में श्री बी० शिवाराव के सभापतित्व में प्रशिक्षण तथा रोजगार दफ्तरों के लिए एक समिति की नियुक्ति की जिसमें ७ सदस्य थे जिनमें श्रमिकों तथा मालिकों के प्रतिनिधि भी थे। इसका कार्य रोजगार दफ्तरों के संगठन पद्धति व कार्य आदि की जाँच करना तथा उनमें उपयुक्त परिवर्तनों के विषय में सुझाव देना था। इस समिति ने अपनी रिपोर्ट २८ अप्रैल १९५४ को सरकार के सम्मुख प्रस्तुत की।

इस समिति ने यह सुझाव दिया कि रोजगार दफ्तरों का उपयुक्त नाम "राष्ट्रीय रोजगार सेवा" होना चाहिये और सिफारिश की कि इन दफ्तरों को स्थायी

संस्था का रूप दे देना चाहिए। इस समिति ने ऐसी सरकारी तथा अर्द्ध-सरकारी नौकरियों की संख्या और बढ़ा दी है जो कि अनिवार्य रूप से रोजगार दफ्तरों द्वारा ही भरी जानी चाहिएं। परन्तु यह समिति वर्तमान परिस्थितियों को देखते हुए इस बात के पक्ष में नहीं थी कि रोजगार दफ्तरों द्वारा ही अनिवार्य रूप से भर्ती की जाए। परन्तु निजी मालिकों के लिए यह अनिवार्य कर देने की सिफारिश की कि वे सभी रिक्त स्थानों की सूचना इस दफ्तर को दें। किन्तु यह बात अस्थायी नौकरियों तथा अनिपुण श्रमिकों की भर्ती के लिए लागू नहीं की गई।

इस रिपोर्ट का एक अन्य मुख्य सुझाव यह था कि इन दफ्तरों का दैनिक प्रबन्ध राज्यों को सौंप दिया जाये और केवल नीति-निर्धारण स्तर-निर्धारण और दफ्तरों के सयोजन तथा उनके कार्यों की देख रेख का उत्तरदायित्व केन्द्रीय सरकार पर रहे। नये दफ्तर खोलने अथवा किसी दफ्तर को बन्द करने के लिये भी केन्द्रीय सरकार की पूर्वानुमति अवश्य ली जाए। इन दफ्तरों के खर्चे का ६ % भार केन्द्रीय सरकार पर होगा।

रिपोर्ट में एक अन्य महत्वपूर्ण सिफारिश यह भी थी कि श्रमिक अपने को रोजगार दफ्तरों में स्वेच्छा से रजिस्टर कराने के लिये स्वतन्त्र हो। मालिकों और रोजगार ढूंढने वालों से रोजगार दफ्तर कोई शुल्क न ले। समिति ने रोजगार दफ्तर के कार्यों को अधिक विस्तृत करने का सुझाव दिया था। उदाहरणतः रोजगार के आंकड़े इकट्ठे करना रोजगार के लिये परामर्श देना तथा व्यावसायिक अनुसन्धान विश्लेषण और परीक्षण करना आदि। इस रिपोर्ट में रोजगार दफ्तरों के संगठन की व्यापक ऐतिहासिक विवेचना अब तक के किए गये कार्यों की रिपोर्ट तथा इस सगठन के शासन के विषय में सुझाव और कार्य करने की प्रणाली तथा पद्धति की विवेचना भी सम्मिलित है। इस रिपोर्ट म पुनः स्थापना संस्था की क्रियाओं और प्रशिक्षकों के लिए विभिन्न तकनीकी तथा व्यवसायात्मक प्रशिक्षण योजनाओं का भी अवलोकन किया गया है और इनके सम्बन्ध में अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत की हैं।

इन सिफारिशों को आधार मानकर द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में रोजगार दफ्तरों के पुनर्संगठन के लिये अनेक सुझाव उपस्थित किये गये थे जिनको अब लागू भी कर दिया गया है।

जनता में रोजगार दफ्तरों की कार्य-विधि पर काफी असंतोष रहा है। यद्यपि इनकी आवश्यकता तथा महत्व के बारे में कोई आपत्ति नहीं उठा सकता परन्तु इन पर व्यय होने वाली धनराशि को दृष्टि में रखते हुये यही कहा गया कि इनसे अधिक लाभ नहीं हुआ था। इसलिए इस विषय में जांच करना अति आवश्यक था और आयोजना आयोग ने भी इसकी सिफारिश की थी।

यहां यह भी उल्लेख करना अनुचित न होगा कि रोजगार दफ्तरों के नियंत्रण का विकेन्द्रीकरण करना अधिक लाभदायक सिद्ध न होगा क्योंकि इससे राज्य सरकारों का दृष्टिकोण बहुत संकुचित हो जायगा और हो सकता है कि वे अपनी आयोजनाओं में

कार्य करने वाले श्रमिकों को अन्य राज्यों से न बुलायें। इस प्रकार श्रम की गतिशीलता पर बुरा प्रभाव पड़ेगा जबकि रोजगार दफ्तरों से यह आशा की जाती है कि वह इस गतिशीलता में वृद्धि करेंगे। शिवाराव समिति ने यह भी कहा था कि रोजगार दफ्तरों के लिये यह अनिवार्य नहीं होना चाहिये कि वे अनिपुण श्रमिकों को भी रजिस्टर करें। इस सुझाव का कारण सम्भवतः यह प्रतीत होता है कि ऐसा करने से रोजगार दफ्तरों का कार्य बढ़ जायगा और कार्य सुचारु रूप से नहीं चल सकेगा। परन्तु हम इस सुझाव से सहमत नहीं हैं क्योंकि बिना अनिपुण श्रमिकों को रजिस्टर किये देश के कार्य योग्य मनुष्यों की संख्या का ठीक अनुमान नहीं लगाया जा सकता।

रोजगार दफ्तरों के कार्यों का मूल्यांकन —

बहुधा ऐसा देखा गया है कि रोजगार दफ्तर अपने अस्तित्व को प्रमाणित करने के लिये अपने कर्मचारियों को कारखानों के फाटकों पर भेज देते हैं और वे वहीं पर भर्ती किए गये श्रमिकों को रजिस्टर कर लेते हैं और फिर अपने आँकड़ों में यह दिखा देते हैं कि दफ्तर ने इतने अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाया है। बहुधा ऐसा भी देखा गया है कि अनेक मालिक तथा सरकारी पदाधिकारी भी किसी विशेष व्यक्ति की या तो पूर्व नियुक्ति कर देते हैं या नियुक्त करने का निश्चय कर लेते हैं और तब उस व्यक्ति को रोजगार दफ्तर में रजिस्टर कराने को कह देते हैं। यह सब बातें अनुचित हैं क्योंकि इससे रोजगार के दफ्तरों का वास्तविक उद्देश्य अर्थात् उपयुक्त स्थानों पर उपयुक्त श्रमिकों की पूर्ति करना–पूरा नहीं होता और भर्ती की बुराइयां दूर नहीं होतीं। रोजगार दफ्तरों को श्रमिकों को नौकरी दिलाने में पूर्ण तटस्थता दिखानी चाहिये और अनुचित पक्षपात नहीं करना चाहिए। इसके अतिरिक्त यदि रोजगार दफ्तर वास्तव में लाभप्रद सिद्ध होना चाहते हैं तो उनका केवल काम ढूंढने वालों का और नौकरियों का रजिस्टर बना लेने से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिये वरन् उनको श्रमिकों को सलाहकार के रूप में उन्हें श्रम के बाजार की स्थिति का ज्ञान कराने का उत्तरदायित्व भी लेना चाहिए। उन्हें श्रमिकों को बताना चाहिए कि किन क्षेत्रों में व्यवसाय घट रहे हैं अथवा बढ़ रहे हैं। इसके अतिरिक्त उनको बढ़ते हुए व्यवसायों में श्रमिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिये जिससे पुराने कार्य को छोड़कर नये कार्य लेने में श्रमिकों को बाधा न पड़े। रोजगार दफ्तरों के इस प्रशिक्षण तथा मार्ग प्रदर्शन की सेवाओं का लाभप्रद उपयोग उस समय हो सकता है जबकि किसी भी उद्योग-धन्धे का विवेकीकरण (Rationalization) किया जाए। यदि विवेकीकरण की योजना के परिणामस्वरूप किसी विशेष उद्योग धन्धे में कुछ मजदूर नौकरी से अलग कर दिए जाते हैं तो रोजगार दफ्तरों का यह कर्त्तव्य है कि वे उनको दूसरी नौकरियाँ दिलाने में या उन नौकरियों के लिए आवश्यक प्रशिक्षण देने में सहायक सिद्ध हों। प्रशिक्षण काल में अपने पूर्व मालिकों से इन श्रमिकों को वेतन मिलता रहना चाहिए।

रोजगार दफ्तर एक अन्य दिशा में भी अपनी सेवा का विस्तार कर सकते

है। कभी-कभी श्रमिकों के पास इतना पैसा नहीं होता कि वे दूरस्थ स्थानों पर नौकरी करने के लिये जा सकें या ऐसी नौकरियों के लिये आवश्यक प्रशिक्षण प्राप्त कर सकें। ऐसी अवस्था में रोजगार दफ्तर आर्थिक रूप से उनकी कुछ सहायता कर सकते हैं। जो भी रुपया इस प्रकार दिया जाये वह बाद में किश्तों में वापस लिया जा सकता है।

इन साधारण रोजगार दफ्तरों के अतिरिक्त कुछ विशेष रोजगार दफ्तर भी खोले जाने चाहियें जिनसे विशेष प्रकार के उद्योग के मजदूर भी लाभ उठा सकें जैसे जहाज पर, बन्दरगाहों पर, वरत्र नौकरी के लिये बागान में तथा खानों में काम करने वाले श्रमिकों के हेतु आदि। इन विशेष प्रकार की संस्थाओं की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि इन उद्योगों की अपनी अलग विशेषतायें हैं उदाहरणार्थ समुद्र के कर्मचारी एक बार में केवल निश्चित समय तक के लिये ही नौकर रखे जाते हैं और समुद्री यात्रा समाप्त होते ही उनका नौकरी का सिलसिला टूट जाता है। अतएव एक जहाज पर जितनी बार भी किसी कर्मचारी की नौकरी की अवधि समाप्त होती है उतनी ही बार उसे रोजगार दफ्तर की सहायता की आवश्यकता होती है। बन्दरगाह के कर्मचारियों की नौकरी आकस्मिक होती है अतः श्रमिक की भलाई और उद्योग की कार्यकुशलता के लिये स्थायीकरण योजना का लागू होना अनिवार्य है। स्थायीकरण (Decasualisation) का तात्पर्य है भर्ती को नियमित बनाना और रोजगार दफ्तरों के द्वारा नौकरी दिलाना। इसी प्रकार से कोयले की खानों में रोजगार ढूंढने वाले मजदूरों तथा उन कोयले की खानों में जिनको मजदूरों की आवश्यकता होती है उनके मध्य रोजगार दफ्तर एक कड़ी का काम करते हैं। इस प्रकार से कोयले की खानों में जो वर्तमान कठिनाइयां श्रमिकों की भर्ती में पड़ती है वह दूर हो जायेंगी और भर्ती का व्यय भी कम हो जायेगा।

इसके अतिरिक्त रोजगार दफ्तर को सफल बनाने के लिए मालिकों का सहयोग अति आवश्यक है। उनको चाहिए कि वे बराबर रिक्त स्थानों की सूचना रोजगार दफ्तरों को देते रहें और उनकी पूर्ति भी उन्हीं के द्वारा करवायें। दुर्भाग्यवश मालिकों से इस प्रकार का सहयोग अभी तक प्राप्त नहीं हो सका है और यदि वे इसी प्रकार रोजगार दफ्तरों से अलग रहकर भर्ती करते रहे तो रोजगार के दफ्तर अपना कार्य सफलतापूर्वक न कर सकेंगे। अब वह समय आ गया है जबकि मालिकों के लिये रोजगार दफ्तरों को प्रयोग में लाना अनिवार्य हो जाना चाहिए। यदि कुछ मालिक इस विचार को नापसन्द करते हैं तो केवल अपनी अज्ञानता तथा सन्देह प्रवृत्ति के कारण ही। यह हर्ष का विषय है कि मालिकों का एक प्रभावशाली दल इस अनिवार्यता के पक्ष में है उदाहरणतः अहमदाबाद मिल मालिक संगठन ने कपड़ा श्रम जांच समिति १९४८-४९ के सम्मुख यह प्रस्ताव रक्खा था कि श्रमिकों की भर्ती रोजगार दफ्तरों द्वारा अनिवार्य होनी चाहिये। यहां पर यह उल्लेखनीय है

कि सोवियत रूस में हम रोजगार दफ्तरों द्वारा भर्ती अनिवार्य है।

इस सम्बन्ध में हम डा० राधाकमल मुकर्जी के मत से सहमत हैं कि अब जब कि रोजगार दफ्तर प्रारम्भिक अवस्था पार कर चुके हैं, इनका संगठन एक राष्ट्रीय आधार पर स्थापित किया जाना चाहिए। भारतीय सरकार को एक रोजगार दफ्तर अधिनियम बनाना चाहिये जिससे श्रम मन्त्रालय के अन्तर्गत पूरे देश भर में रोजगार दफ्तरों का एक सुसंगठित जाल सा बिछ सके। ब्रिटेन और अमरीका के अनेक देशों में रोजगार दफ्तर सम्बन्धी व्यापक कानून बनाए गए हैं और इसके फलस्वरूप उन देशों में रोजगार दफ्तर काफी सीमा तक उन्नति कर गए हैं। कोई कारण नहीं प्रतीत होता कि भारत में भी हम ऐसे कानून क्यों न बनायें। २० ० से अधिक आबादी वाले प्रत्येक नगर में एक रोजगार दफ्तर होना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ विशेष उद्योगों और क्षेत्रों में मालिकों के लिये रोजगार दफ्तरों के द्वारा ही भर्ती अनिवार्य कर दी जानी चाहिए। रोजगार दूढ़ने वालों के लिये भी यह अनिवार्य होना चाहिये कि वे रोजगार के दफ्तर में अपने को रजिस्टर करवायें। भारतीय सरकार तथा अनेक राज्य सरकारों ने ऐसी आज्ञायें घोषित कर रखी हैं कि सरकारी नौकरियों के रिक्त होने की सूचना रोजगार कार्यालयों को दी जायें और उनकी पूर्ति भी उन्हीं के द्वारा हो। इस सम्बन्ध में जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है १९५९ में रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानों की अनिवार्य सूचना) अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों के लिए अपने कर्मचारियों की संख्या समय-समय पर बताना और रिक्त स्थानों की सूचना रोजगार दफ्तरों को देना अनिवार्य कर दिया गया है। यह अधिनियम १ मई १९६० से लागू हो गया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने श्रम शक्ति का पूर्ण प्रयोग करने में रोजगार दफ्तरों के महत्त्व पर काफी बल दिया था। इसके लिये श्रम शक्ति सम्बन्धी आंकड़े एकत्रित करना विभिन्न प्रकार के श्रम की मांग का पूर्ण ज्ञान होना और श्रमिकों को उचित प्रशिक्षण देना अति आवश्यक है। रोजगार दफ्तरों के संगठन तथा कार्य विधि की जांच करने की सिफारिश की गई थी जिसके परिणामस्वरूप शिवाराव समिति की नियुक्ति हुई थी। उसकी सिफारिशों के अनुसार भारत सरकार ने रोजगार दफ्तरों का शासन १ नवम्बर १९५६ से राज्य सरकारों को दे दिया है। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में रोजगार दफ्तरों को अधिक लाभदायक बनाने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए गये थे—

(१) रोजगार दफ्तरों की संख्या में वृद्धि—आयोजना काल में १२० नए रोजगार दफ्तर खोले जाने की व्यवस्था थी। (२) रोजगार सम्बन्धी अधिक से अधिक जानकारी एकत्रित करना। (३) युवक व्यक्तियों को सलाह देने के लिए एक युवक रोजगार कार्यालय की स्थापना करना। (४) रोजगार दफ्तरों में नौकरी खोजने वालों को सूचना देने तथा उनके मार्ग प्रदर्शन के लिये एक 'रोजगार सलाह

कार्यालय की स्थापना तथा उसके द्वारा जीवन वृत्ति के लिये पुस्तकों तथा अन्य साहित्य का प्रकाशन करना। (५) व्यवसाय सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का समानीकरण करने के लिए और एक व्यापक व्यावसायिक शब्द कोष बनाने के लिये व्यवसाय सम्बन्धी अनुसंधान तथा विश्लेषण करना। (६) रोजगार दफ्तरों में नौकरी खोजने वालों के लिये व्यवसाय सम्बन्धी परीक्षाओं का प्रबन्ध करना।

प्रशिक्षण के सम्बन्ध में द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में निम्नलिखित सुझाव थे—(१) शिल्पियों की वर्तमान प्रशिक्षण योजनाओं में वृद्धि तथा विस्तार करना। (२) शिल्पियों की एक नियमित रूप से शिक्षार्थी प्रशिक्षण योजना का चालू करना। (३) मध्य प्रदेश में कोनी बिलासपुर में जो प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक केन्द्रीय संस्था है उसकी उन्नति और विस्तार करना तथा एक ऐसी ही संस्था की और स्थापना करना।

तृतीय आयोजना में १ और रोजगार दफ्तरों के खोलने का कार्यक्रम है ताकि हर जिले में १ रोजगार दफ्तर हो जाये। वर्तमान कार्यों के विस्तार हेतु भी कार्यक्रम है। तृतीय आयोजना में प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

द्वितीय आयोजना के अधिकतर सुझाव कार्यान्वित हो चुके हैं और रोजगार दफ्तरों के कार्यों को विस्तृत कर दिया गया है। सितम्बर १९६१ में ३१६ रोजगार दफ्तर थे। १ ६४०६२ प्रार्थी पंजीकृत थे जिनमें से ३४४४१ व्यक्तियों को रोजगार मिला। १६, ७२७६ प्रार्थी रोजगार दफ्तर के रजिस्टर में शेष थे। उत्तर प्रदेश में ५१ रोजगार दफ्तर थे। रोजगार दफ्तरों पर लगभग ३७.६६ लाख रुपया वार्षिक व्यय होता है। रोजगार सम्बन्धी जानकारी एकत्रित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के एक विशेषज्ञ की देखभाल में १९५९ में देहली में एक अग्रगामी योजना प्रारम्भ हुई जिसके अनुभव के आधार पर यह योजना अन्य राज्यों में भी लागू कर दी गई है। इसे कार्यान्वित करने के लिए अनेक पदाधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। सरकारी क्षेत्रों में सभी संस्थाओं से इस सम्बन्ध में सूचना प्राप्त की जा रही है। तथा निजी क्षेत्रों से भी २२ रोजगार क्षेत्रों से सूचना १ जनवरी १९६० से एकत्रित की जाने लगी है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के अन्तर्गत १९५७ की अन्तिम तिमाही में नई दिल्ली में "रोजगार बाजार सम्बन्धी जानकारी' और व्यावसायिक मार्ग-दर्शक और रोजगार परामर्श पर "एशियाई क्षेत्रीय प्रशिक्षण कोर्स" प्रारम्भ हुआ जिसमें एशिया के अनेक देशों ने भाग लिया जिसमें भारतवर्ष भी था। युवकों को रोजगार सम्बन्धी सलाह देने की योजना भी शुरू हो गई है और ऐसे ७२ केन्द्र खोले जा चुके हैं और तृतीय आयोजना में १०० ऐसे और केन्द्र खोले जायेंगे। १९५७ में ४६ जीवनवृत्ति (Career) पुस्तिकाएं अंग्रेजी में और ११ हिन्दी में छापी गईं और १९५८ में इनकी संख्या क्रमशः ४ और २६ थी। १९५९ में १२ अंग्रेजी में और २९ हिन्दी में ऐसी पुस्तकें छापी गईं। और

१९६० में ऐसी २० अन्य पुस्तकें तयार की गईं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के एक विशेषज्ञ की देखभाल में १३ वर्गों की व्यवसायिक परिभाषाएं बन चुकी हैं और अन्य १० वर्गों पर खोज हो रही है। देश में मिलने वाले प्रशिक्षण के सम्बन्ध में अनेक पुस्तिकायें छापी जा चुकी हैं। रोजगार दफ्तरों में रजिस्टर्ड व्यक्तियों की व्यवसायिक योग्यता जांचने के लिए एक और योजना भी चालू की गई है जिसे 'व्यवसायिक विशेष वर्णन और समालाप' Occupational Specification and Interview Aids (O S I A) का नाम दिया है। श्रम शक्ति अध्ययन और रोजगार दफ्तरों के लिए एक कार्य समिति भी बना दी गई है और एक केन्द्रीय रोजगार समिति की भी स्थापना हुई है जिसमें राज्य सरकारों मालिकों श्रमिकों और संसद के प्रतिनिधि हैं। रोजगार दफ्तरों को इस बात का भी विशेष उत्तरदायित्व सौंप दिया गया है कि वे शारीरिक रूप से असमर्थ व्यक्तियों को काम दिलाने में सहायता करें और उन्हें ऐसा रोजगार दिलायें जहां उनकी असमर्थता से बाधा न पहुंचे। बम्बई, देहली और मद्रास में इनके लिए विशेष रोजगार दफ्तर स्थापित कर दिये गये हैं। सामुदायिक विकास खंडों में भी रोजगार सूचना तथा सहायता ब्यूरो विशेष-विशेष स्थानों पर स्थापित कर दिये गये हैं। ये ब्यूरा सूचना एकत्रित करके रोजगार दफ्तरों और ग्रामीण नौकरी चाहने वालों के मध्य एक कड़ी का काम करते हैं। राष्ट्रीय प्रायोजनाओं (Projects) में भी ६ रोजगार दफ्तर इस उद्देश्य से स्थापित कर दिये गये हैं कि काम की समाप्ति पर श्रमिकों को अन्य स्थानों पर रोजगार दिला सकें तथा इन रोजगार दफ्तरों के द्वारा प्रशिक्षित व्यक्ति भी प्राप्त हो सकें। कोयले की खानों में भी ९ विशेष रोजगार दफ्तर स्थापित कर दिये गये हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि अनेक प्रारम्भिक कठिनाइयां होने पर भी हमारे देश में रोजगार दफ्तरों ने कम सफलता प्राप्त नहीं की है। यदि मालिक थोड़ा और सहयोग देने लगें और श्रमिक रोजगार दफ्तरों के कार्य तथा मार्गों के विषय में और अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें तथा पंचवर्षीय आयोजनाओं के सुझावों को पूर्णतया लागू कर दिया जाए और यदि अधिकारी वर्ग अधिक सहानुभूति और ईमानदारी से कार्य करें तो हमारे रोजगार दफ्तरों का भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल होने की सम्भावना है। अन्त में हम पंडित नेहरू के उन शब्दों को दुहरा सकते हैं जो उन्होंने सितम्बर १९४६ में हुए रोजगार संगठन के चौथे वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष पद से कहे थे "जिस समय तक समाज का वर्तमान ढांचा अस्तित्व रखता है जब तक इसके स्थान पर एक ऐसा ढांचा नहीं खड़ा हो जाता जिसमें प्रशिक्षण और रोजगार नागरिकों के लिए स्वाभाविक रूप से सुरक्षित हो जाएं उस समय तक रोजगार की सेवाओं का रहना श्रम की मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने के लिए आवश्यक है। इसलिए इस संस्था को पूर्ण रूप से समाप्त करना गलत और अनुचित होगा।"

कार्यालय' की स्थापना तथा उसके द्वारा जीवन वृत्ति के लिये पुस्तकों तथा अन्य साहित्य का प्रकाशन करना। (५) व्यवसाय सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का समानीकरण करने के लिये और एक व्यापक व्यवसायिक शब्द कोष बनाने के लिये व्यवसाय सम्बन्धी अनुसंधान तथा विश्लेषण करना। (६) रोजगार दफ्तरों में नौकरी खोजने वालों के लिये व्यवसाय सम्बन्धी परीक्षाओं का प्रबन्ध करना।

प्रशिक्षण के सम्बन्ध में द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में निम्नलिखित सुझाव थे—(१) शिल्पियों की वर्तमान प्रशिक्षण योजनाओं में वृद्धि तथा विस्तार करना। (२) शिल्पियों की एक नियमित रूप से शिक्षार्थी प्रशिक्षण योजना का चालू करना। (३) मध्य प्रदेश में कोनी बिलासपुर में जो प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक केन्द्रीय संस्था है उसकी उन्नति और विस्तार करना तथा एक ऐसी ही संस्था की और स्थापना करना।

तृतीय आयोजना में १०० और रोजगार दफ्तरों के खोलने का कार्यक्रम है ताकि हर जिले में १ रोजगार दफ्तर हो जाय। वर्तमान कार्यों के विस्तार हेतु भी कार्यक्रम है। तृतीय आयोजना में प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

द्वितीय आयोजना के अधिकतर सुझाव कार्यान्वित हो चुके हैं और रोजगार दफ्तरों के कामों को विस्तृत कर दिया गया है। सितम्बर १९६१ में ३११ रोजगार दफ्तर थे। १,१४ १२ प्रार्थी पंजीकृत थे जिनमें से ३४४४१ व्यक्तियों को रोजगार मिला। १९, ७५७६ प्रार्थी रोजगार दफ्तर के रजिस्टर में दर्ज थे। उत्तर प्रदेश में ५३ रोजगार दफ्तर थे। रोजगार दफ्तरों पर लगभग १० ६६ लाख रुपया वार्षिक व्यय होता है। रोजगार सम्बन्धी जानकारी एकत्रित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के एक विशेषज्ञ की देखभाल में १९५६ में देहली में एक प्रयोगात्मक योजना प्रारम्भ हुई जिसके अनुभव के आधार पर यह योजना अन्य राज्यों में भी लागू कर दी गई है। इसे कार्यान्वित करने के लिए अनेक पदाधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। सरकारी क्षेत्रों में सभी संस्थाओं से इस सम्बन्ध में सूचना प्राप्त की जा रही है। तथा निजी क्षेत्रों से भी ५२ रोजगार क्षेत्रों से सूचना १ जनवरी १९६ से एकत्रित की जाने लगी है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के अन्तर्गत १९५७ की अन्तिम तिमाही में नई दिल्ली में 'रोजगार बाजार सम्बन्धी जानकारी' और व्यवसायिक मार्ग-दर्शक और रोजगार परामर्श पर "एशियाई क्षेत्रीय प्रशिक्षण कोर्स" प्रारम्भ हुआ जिसमें एशिया के अनेक देशों ने भाग लिया जिसमें भारतवर्ष भी था। युवकों को रोजगार सम्बन्धी सलाह देने की योजना भी शुरू हो गई है और ऐसे ७२ केन्द्र खोले जा चुके हैं और तृतीय आयोजना में १०० ऐसे और केन्द्र खोले जायेंगे। १९५७ में ४६ जीवनवृत्ति (Career) पुस्तिकाएं अंग्रेजी में और ११ हिन्दी में छापी गईं और १९५८ में इनकी संख्या क्रमशः ४ और २६ थी। १९५९ में १२ अंग्रेजी में और २९ हिन्दी में ऐसी पुस्तकें छापी गईं। और

१९६ में ऐसी २० अन्य पुस्तकें तयार की गईं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के एक विशेषज्ञ की देखभाल में ११ वर्गों की व्यवसायिक परिभाषाएं बन चुकी हैं और अन्य १० वर्गों पर खोज हो रही है। देश में मिलने वाले प्रशिक्षण के सम्बन्ध में अनेक पुस्तिकायें छापी जा चुकी हैं। रोजगार दफ्तरों में रजिस्टर्ड व्यक्तियों की व्यवसायिक योग्यता जांचने के लिए एक और योजना भी लागू की गई है जिसे 'व्यवसायिक विशेष वर्णन और समासाप' Occupational Specification and Interview Aids (O S I A) का नाम दिया है। श्रम शक्ति अध्ययन और रोजगार दफ्तरों के लिए एक कार्य समिति भी बना दी गई है और एक केन्द्रीय रोजगार समिति की भी स्थापना हुई है जिसमें राज्य सरकारों मालिकों श्रमिकों और संसद के प्रतिनिधि हैं। रोजगार दफ्तरों को इस बात का भी विशेष उत्तरदायित्व सौंप दिया गया है कि वे शारीरिक रूप से असमर्थ व्यक्तियों को काम दिलाने में सहायता करें और उन्हें ऐसा रोजगार दिलायें जहां उनकी असमर्थता से बाधा न पहुँचे। बम्बई, देहली और मद्रास में इनके लिए विशेष रोजगार दफ्तर स्थापित कर दिये गये हैं। सामुदायिक विकास खंडों में भी रोजगार सूचना तथा सहायता ब्यूरो विशेष-विशेष स्थानों पर स्थापित कर दिए गये हैं। ये ब्यूरो सूचना एकत्रित करके रोजगार दफ्तरों और ग्रामीण नौकरी खोजने वालों के मध्य एक कड़ी का काम करते हैं। राष्ट्रीय आयोजनाओं (Projects) म भी ६ रोजगार दफ्तर इस उद्देश्य हेतु स्थापित कर दिए गये हैं कि काम की समाप्ति पर श्रमिकों को अन्य स्थानों पर रोजगार दिला सकें तथा इन रोजगार दफ्तरों के द्वारा प्रशिक्षित व्यक्ति भी प्राप्त हो सकें। कोयले की खानों में भी ६ विशेष रोजगार दफ्तर स्थापित कर दिये गये हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि अनेक प्रारम्भिक कठिनाइयाँ होने पर भी हमारे देश म रोजगार दफ्तरों ने कम सफलता प्राप्त नहीं की है। यदि मालिक थोड़ा और सहयोग देने लग और श्रमिक रोजगार दफ्तरों के काय तथा लाभों के विषय में और अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें तथा पंचवर्षीय आयोजनाओं के सुझावों को पूर्णतया लागू कर दिया जाए और यदि अधिकारी वर्ग अधिक सहानुभूति और ईमानदारी से काम करें तो हमारे रोजगार दफ्तरों का भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल होने की सम्भावना है। अन्त म हम पंडित नेहरू के उन शब्दों को दुहरा सकते हैं जो उन्होंने नवम्बर १९४९ में हुए रोजगार संगठन के चौथे वार्षिकोत्सव के अध्यक्ष पद से कहे थे:

"जिस समय तक समाज का वर्तमान ढांचा अस्तित्व रखता है तब तक इसके स्थान पर एक ऐसा ढांचा नहीं खड़ा हो जाता जिसमें प्रशिक्षण और रोजगार नागरिकों के लिए स्वाभाविक रूप से सुरक्षित हो जाएं उस समय तक रोजगार दफ्तरों का रहना श्रम की मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने के लिए आवश्यक है। इसलिए इस संस्था को पूर्ण रूप से समाप्त करना मूर्खता और ...।"

कार्याभ्यर्थ की स्थापना तथा उसके द्वारा जीवन वृत्ति के लिये पुस्तकों तथा अन्य साहित्य का प्रकाशन करना। (५) व्यवसाय सम्बन्धी पारिभाषिक शब्दों का समानीकरण करने के लिये और एक व्यापक व्यवसायिक शब्द कोष बनाने के लिये व्यवसाय सम्बन्धी अनुसंधान तथा विश्लेषण करना। (६) रोजगार दफ्तरों में नौकरी खोजने वालों के लिये व्यवसाय सम्बन्धी परीक्षाओं का प्रबन्ध करना।

प्रशिक्षण के सम्बन्ध में द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में निम्नलिखित सुझाव थे—(१) शिल्पियों की वर्तमान प्रशिक्षण योजनाओं में वृद्धि तथा विस्तार करना। (२) शिल्पियों की एक नियमित रूप से शिक्षार्थी प्रशिक्षण योजना का चालू करना। (३) मध्य प्रदेश में कोनी बिलासपुर में जो प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण के लिये एक केन्द्रीय संस्था है उसकी उन्नति और विस्तार करना तथा एक ऐसी ही संस्था की और स्थापना करना।

तृतीय आयोजना में १०० और रोजगार दफ्तरों के खोलने का कार्यक्रम है ताकि हर जिले में १ रोजगार दफ्तर हो जाये। वर्तमान कार्यों के विस्तार हेतु भी कार्यक्रम है। तृतीय आयोजना में प्रशिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों का उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

द्वितीय आयोजना के अधिकतर सुझाव कार्यान्वित हो चुके हैं और रोजगार दफ्तरों के कार्यों को विस्तृत कर दिया गया है। सितम्बर १९६१ में ३१६ रोजगार दफ्तर थे। ३१४ १२ प्रार्थी पंजीकृत थे जिनमें से १४४४१ व्यक्तियों को रोजगार मिला। १२०७५७९ प्रार्थी रोजगार दफ्तर के रजिस्टर में शेष थे। उत्तर प्रदेश में ३१ रोजगार दफ्तर थे। रोजगार दफ्तरों पर लगभग १८.९६ लाख रुपया वार्षिक व्यय होता है। रोजगार सम्बन्धी जानकारी एकत्रित करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के एक विशेषज्ञ की देखभाल में १९५५ में देहली में एक अग्रगामी योजना प्रारम्भ हुई जिसके अनुभव के आधार पर यह योजना अन्य राज्यों में भी लागू कर दी गई है। इसे कार्यान्वित करने के लिए अनेक पदाधिकारियों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। सरकारी क्षेत्रों में सभी संस्थाओं से इस सम्बन्ध में सूचना प्राप्त की जा रही है। तथा निजी क्षेत्रों से भी ३२ रोजगार क्षेत्रों से सूचना १ जनवरी १९६० से एकत्रित की जाने लगी है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के अन्तर्गत १९५७ की अन्तिम तिमाही में नई दिल्ली में "रोजगार बाजार सम्बन्धी जानकारी" और व्यवसायिक मार्ग-दर्शन और रोजगार परामर्श पर "एशियाई क्षेत्रीय प्रशिक्षण कोर्स" प्रारम्भ हुआ जिसमें एशिया के अनेक देशों ने भाग लिया जिसमें भारतवर्ष भी था। युवकों को रोजगार सम्बन्धी सलाह देने की योजना भी शुरू हो गई है और ऐसे ७२ केन्द्र खोले जा चुके हैं और तृतीय आयोजना में १०० ऐसे और केन्द्र खोले जायेंगे। १९५७ में ४६ जीवनवृत्ति (Career) पुस्तिकाएं अंग्रेजी में और ११ हिन्दी में छापी गई और १९५८ में इनकी संख्या क्रमशः ४ और २६ थी। १९५९ में १२ अंग्रेजी में और २६ हिन्दी में ऐसी पुस्तकें छापी गई। और

१९५० में ऐसी २० अन्य पुस्तकें तैयार की गईं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के एक विशेषज्ञ की देखभाल में १३ वर्गों की व्यावसायिक परिभाषाएं बन चुकी हैं और अन्य १० वर्गों पर खोज हो रही है। देश में मिलने वाले प्रशिक्षण के सम्बन्ध में अनेक पुस्तिकायें छापी जा चुकी हैं। रोजगार दफ्तरों में रजिस्टर्ड व्यक्तियों की व्यावसायिक योग्यता जांचने के लिए एक और योजना भी लागू की गई है जिसे 'व्यावसायिक विवेच वर्णन और समालाप' Occupational Specification and Interview Aids (O S I A) का नाम दिया है। श्रम शक्ति अध्ययन और रोजगार दफ्तरों के लिए एक कार्य समिति भी बना दी गई है और एक केन्द्रीय रोजगार समिति की भी स्थापना हुई है जिसमें राज्य सरकारों मालिकों श्रमिकों और संसद के प्रतिनिधि हैं। रोजगार दफ्तरों को इस बात का भी विशेष उत्तरदायित्व सौंप दिया गया है कि वे शारीरिक रूप से असमर्थ व्यक्तियों का काम दिलाने में सहायता करें और उन्हें ऐसा रोजगार दिलायें जहां उनकी असमर्थता से बाधा न पहुंचे। बम्बई, देहली और मद्रास में इनके लिए विशेष रोजगार दफ्तर स्थापित कर दिये गये हैं। सामुदायिक विकास खंडों में भी रोजगार सूचना तथा सहायता ब्यूरो विशेष-विशेष स्थानों पर स्थापित कर दिये गये हैं। ये ब्यूरो सूचना एकत्रित करके रोजगार दफ्तरों और ग्रामीण नौकरी चाहने वालों के मध्य एक कड़ी का कार्य करते हैं। राष्ट्रीय आयोजन कार्यों (Projects) में भी ६ रोजगार दफ्तर इस उद्देश्य हेतु स्थापित कर दिये गये हैं कि कार्य की समाप्ति पर श्रमिकों को अन्य स्थानों पर रोजगार दिला सकें तथा इन रोजगार दफ्तरों के द्वारा प्रशिक्षित व्यक्ति भी प्राप्त हो सकें। कोयले की खानों में भी ५ विशेष रोजगार दफ्तर स्थापित कर दिये गये हैं।

इन सब बातों से स्पष्ट है कि अनेक प्रारम्भिक कठिनाइयां होने पर भी हमारे देश में रोजगार दफ्तरों ने कम सफलता प्राप्त नहीं की है। यदि मालिक थोड़ा और सहयोग देने लगें और श्रमिक रोजगार दफ्तरों के काम तथा लाभों के विषय में और अधिक ज्ञान प्राप्त कर सकें तथा पंचवर्षीय आयोजनाओं के सुझावों को पूर्णतया लागू कर दिया जाए और यदि अधिकारी वर्ग अधिक सहानुभूति और ईमानदारी से कार्य करें तो हमारे रोजगार दफ्तरों का भविष्य और भी अधिक उज्ज्वल होने की सम्भावना है। अन्त में हम पंडित नेहरू के उन शब्दों को दोहरा सकते हैं जो उन्होंने सितम्बर १९४६ में [illegible] रोजगार संगठन के चौथे वार्षिकोत्सव के अवसर पर कहे थे "जिस समय तक समाज का वर्तमान ढांचा अस्तित्व रखता है जब तक इसके स्थान पर एक ऐसा ढांचा नहीं खड़ा हो जाता जिसमें प्रशिक्षण और रोजगार नागरिकों के लिए स्वाभाविक रूप से सुरक्षित हो जाएं उस समय तक रोजगार की सेवाओं का रहना श्रम की मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन स्थापित करने के लिए आवश्यक है।" इसलिए इस संस्था को पूर्ण रूप से समाप्त करना गलत और अनुचित होगा।"

४

अनुपस्थिति, श्रमिकावर्त तथा वेतन सहित छुट्टियां

(Absenteeism Labour Turn-over and Holidays with Pay)

किसी भी संगठित उद्योग की सफलता श्रमिकों की कार्यकुशलता और अनुभव पर निर्भर है। अतः किसी उद्योग में श्रमिकों की अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त जितना भी कम हो सके उतना ही वह उस उद्योग की सफलता के लिये आवश्यक है। परन्तु अधिक समय तक न तो इन शब्दों की उचित परिभाषा ही की गई और न स्पष्ट रूप से इनको समझा ही गया। बहुत कम ऐसी औद्योगिक संस्थाएं थीं जिनमें अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त के आंकड़ों को एकत्रित करने का प्रयत्न किया गया। ये आंकड़े भी अधिक विश्वसनीय न थे। पिछले कुछ वर्षों से ही इन आंकड़ों को एकत्रित करने की ओर कुछ ध्यान दिया गया है।

अनुपस्थिति (Absenteeism)

परिभाषा —

अनुपस्थिति शब्द की उचित परिभाषा सबसे पहले भारतीय सरकार के श्रमिक विभाग के एक परिपत्र द्वारा की गई जिसके अनुसार काम पर आने वाले कुल निर्धारित श्रमिकों में से जितने प्रतिशत श्रमिक काम से अनुपस्थित रहते हैं उस अनुपात को ही श्रमिकों की अनुपस्थिति दर कहा जा सकता है। इस प्रकार यह दर ज्ञात करने के लिये हम काम पर आने वाले निर्धारित (Scheduled) श्रमिकों की संख्या तथा वास्तव में उपस्थित श्रमिकों की संख्या मालूम होनी चाहिये। एक श्रमिक जो किसी पारी के एक भी घंटा में उपस्थित हो उसे उपस्थित ही मानना चाहिये। एक श्रमिक तब ही काम करने के लिये निर्धारित समझा जायगा जब मालिक के पास श्रमिक के लिये कार्य विद्यमान हो और श्रमिक भी उससे अवगत हो तथा जब मालिक को काफी पहले से ही यह ज्ञात न हो कि श्रमिक निर्धारित समय पर उपस्थित न हो सकेगा। निम्नलिखित उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायगी। एक ऐसा श्रमिक जो नियमित निश्चित छुट्टी पर है उसको न तो काम पर आने वाला निर्धारित श्रमिक समझना चाहिये और न ही अनुपस्थित। यही बात मिल मालिकों के द्वारा जबरी छुट्टी (Lay-off) पर भी लागू होती है। इसके विपरीत यदि एक श्रमिक नियमित छुट्टी के काल के अतिरिक्त अवकाश की प्रार्थना करता है तो वह उस समय तक काम पर आने वाले निर्धारित श्रमिकों में से अनुपस्थित समझा जायगा जब तक वह लौट न आये या उसकी अनुपस्थिति की अवधि इतनी न हो कि उसका नाम सक्रिय श्रमिकों की सूची में से काटा जा सके। ऐसी स्थिति के पश्चात्

वह श्रमिक न तो काम करने के लिये निर्धारित समझा जायगा और न ही अनुपस्थित। इसी प्रकार से एक ऐसा श्रमिक जो बिना सूचना दिये हुये नौकरी छोड़ देता है उसको निर्धारित कार्य से उस समय तक अनुपस्थित समझना चाहिये जब तक श्रमिक सूची से उसका नाम हटा न दिया जाय। परन्तु जहाँ तक हो सके यह अवधि एक सप्ताह से अधिक नहीं होनी चाहिये। यदि कोई हड़ताल चल रही है तो हड़ताली श्रमिकों को न तो कार्य करने के लिये निर्धारित समझना चाहिये और न ही अनुपस्थित क्योंकि हड़ताल द्वारा नष्ट समय के आंकड़े अन्य प्रकार से एकत्रित किये जाते हैं। अनुपस्थिति दर के आंकड़ों की गणना मासिक आधार पर होती है।

अनुपस्थिति की व्यापकता (Extent of Absenteeism) —

अनुपस्थिति के सम्बन्ध में प्राप्त आंकड़े इतने पर्याप्त नहीं हैं कि उनके आधार पर किसी सामान्य निष्कर्ष पर पहुंचा जा सके। अनुपस्थिति के आंकड़े एकत्रित करने में किसी सैद्धान्तिक प्रणाली को नहीं अपनाया गया है। संस्थाओं ने आंकड़े एकत्रित करने की जो प्रणालियां अपनाई हैं वह भी समान नहीं हैं। केवल कोयले की खानों में अनुपस्थिति के आंकड़े कानूनी रूप से एकत्रित किये जाते हैं। अन्य स्थानों पर अनुपस्थिति के आंकड़े संस्थाओं द्वारा स्वयं दी हुई सूची में से ही लिये जाते हैं। यदि कोई संस्था सूची नहीं भेजती है तो उस संस्था के आंकड़े छोड़ दिये जाते हैं। विश्वसनीय आंकड़े एकत्रित करने में एक अन्य कठिनाई यह है कि जैसे ही एक श्रमिक अनुपस्थित होता है वैसे ही एक बदली का श्रमिक उसके स्थान पर रख लिया जाता है और अनुपस्थिति कहीं पर अंकित नहीं की जाती। इस प्रकार से प्राप्त आंकड़ों की सत्यता को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता।

युद्ध काल में भारतीय सरकार ने एक विशेष फार्म पर अनुपस्थिति के मासिक आंकड़े ऐसे कारखानों से मांगे थे जो इनका हिसाब रखते हों। तब से ऐसे आंकड़ों की सूचना सब संस्थाओं से श्रमिक ब्यूरो में प्राप्त होती है जहाँ इन आंकड़ों को एकत्रित किया जाता है। कुछ विशेष उद्योगों के आंकड़े 'इण्डियन लेबर जरनल' में प्रकाशित किये जाते हैं। बड़े-बड़े केन्द्रों के विशेष उद्योगों में अनुपस्थिति के आंकड़ों, का हिसाब रखा जाता है। कुछ राज्य सरकारें और खानों के मुख्य निरीक्षक के कार्यालय द्वारा भी यह आंकड़े प्रकाशित किये जाते हैं। कानपुर के कुछ विशेष उद्योगों में अनुपस्थिति के आंकड़े उत्तरी भारत के मालिक संघ द्वारा भी एकत्रित किये जाते हैं। परन्तु अनुपस्थिति दर निकालते समय इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता कि श्रमिक की अनुपस्थिति अधिकृत (Authorised) है अथवा अनाधिकृत (Unauthorised) है अर्थात श्रमिक किसी प्रकार की छुट्टी लेने के कारण अनुपस्थित है या बग़ैर किसी छुट्टी के काम पर नहीं आया है। कुछ समय से इस दिशा में कुछ परिवर्तन हुआ है। औद्योगिक आंकड़े अधिनियम (श्रम नियम) (Industrial Statistics Act, Labour Rules) के अन्तर्गत अनुपस्थिति के व्यापक आंकड़े एकत्रित और प्रकाशित करना सम्भव हो जायगा क्योंकि इस अधिनियम में कारखानों ट्राम्बे,

बन्दरगाहों तथा यातायात से श्रमिकों की अनुपस्थिति के आंकड़े एकत्रित करने के लिये एक विशेष धारा है।

सितम्बर १६६१ में सूती कपड़ा मिल उद्योग में अनुपस्थिति की प्रतिशत दर इस प्रकार थी—बम्बई १ ·६, अहमदाबाद ७ ३ (औसत १६६) शोलापुर १२ २ मद्रास ७·६ मदुरा १२ १ कोयम्बटूर १० ६ कानपुर १४ २ (औसत १६६०)। अन्य मिल उद्योगों में अनुपस्थिति की प्रतिशत दर कुछ मुख्य स्थानों पर इस प्रकार थी—ऊनी मिल (धारीवाल) ६ १ और (कानपुर) १ १ (औसत १६६०)। इन्जीनियरिंग (बम्बई) ११ २ और (प बंगाल) १० १। चमड़ा (कानपुर) ६ ६ (औसत १६६०)। लोहा तथा इस्पात (बिहार) ११ ४। फौजी वस्त्र फैक्टरी (उत्तर प्रदेश) ५·७। सीमेंट (मध्य प्रदेश) १२ ६। दियासलाई (आसम) १६·४। तार विभाग कार्यशाला (महाराष्ट्र) १२ ०। ट्राम कार्यशाला (कलकत्ता) ६ १।

कोयले की खानों में श्रमिकों की अनुपस्थिति के बारे में श्रम मंत्रालय द्वारा १६४५ की एक जांच द्वारा ज्ञात हुआ कि हर मौसम में अव्यवस्थिता के अतिरिक्त खान के श्रमिकों में विशेष रूप से खोदने वाले और कोयला लादने वाले श्रमिकों में अनुपस्थिति की काफी शिकायत थी। आंकड़ों से यह पता चलता है कि खानों के भीतरी धरातल पर कार्य करने वाले श्रमिक औसत रूप से प्रति सप्ताह ४·५ दिन और खानों के ऊपरी धरातल पर काम करने वाले श्रमिक ५ ५ दिन काम करते थे। खानों के मुख्य निरीक्षक की जांच पर आधारित आंकड़ों से पता चलता है कि जुलाई १६६१ में कोयले की खानों में श्रमिकों की अनुपस्थिति दर इस प्रकार थी—खानों के भीतरी धरातल पर ११ ४ खुले मैदान में १४ २ ऊपरी धरातल पर १ ६, कुल ११ ६। पिछले वर्षों में कभी कभी यह अनुपस्थिति की दर २५ से ९८ तक पहुंच जाती थी। अब अनुपस्थिति की दर कम होने का कारण संभवतः यह है कि सरकार के १६४७ के सुलह बोर्ड की सिफारिशों के अनुसार बंगाल और बिहार की कोयला खान के श्रमिकों के वार्षिक बोनस को उनकी उपस्थिति से सम्बन्धित कर दिया है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक दिन की उपस्थिति पर पाव भर चावल बिना मूल्य के इनाम के रूप में दिया जाने लगा है।

हैदराबाद की कोयला खान जांच समिति (१६४६) के अनुसार हैदराबाद में कोयले की खानों के सभी श्रमिकों की अनुपस्थिति की प्रतिशत दर १६४८ में १२·६ थी तथा कोयला काटने वाले श्रमिकों की १०·२ थी। खानों के भीतरी धरातल पर काम करने वाले श्रमिकों की साप्ताहिक औसत उपस्थिति ४·७ दिन थी। बिहार की अभ्रक की खानों के सम्बन्ध में १६४८ के औद्योगिक अधिकरण ने श्रमिकों की बढ़ती हुई अनुपस्थिति दर की ओर संकेत किया था। ऐसा अनुमान था कि एक श्रमिक औसत रूप से एक सप्ताह में ५ या ५½ दिन काम करता है और वर्षा ऋतु में उपस्थिति १०% तक गिर जाती है। सितम्बर १६५८ में अभ्रक की खानों में अनुपस्थिति दर इस प्रकार थी—आन्ध्र प्रदेश १५·६, बिहार १६·८ तथा राजस्थान

११·२। कोलार की सोने की खानों में अनुपस्थिति की दर अगस्त १९५१ में ८·२ थी।

बागान के आवासित श्रमिकों के नियंत्रक की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार सितम्बर १९५८ में असम चाय बागान में अनुपस्थिति की प्रतिशत दर नैमित्तिक (Casual) श्रमिकों में २९·४ और निवासित (Settled) श्रमिकों में १७·८ थी। मैसूर के बागान में अनुपस्थिति की प्रतिशत दर अगस्त १९५१ में २१·९ थी। १९४७ में श्रमिक ब्यूरो ने भारतीय चाय कॉफी और रबर के उद्योगों के श्रमिकों के पारिवारिक बजट की जाँच पड़ताल की और उनकी अनुपस्थिति का भी अध्ययन किया। इस जाँच पड़तालों से यह ज्ञात हुआ कि असम में अनुपस्थिति की प्रतिशत दर पुरुषों में २२ तथा महिलाओं में ३० थी। बंगाल में पुरुषों में अनुपस्थिति की प्रतिशत दर ११ तथा महिलाओं में १४ तक पहुंच गई थी। दक्षिणी भारतीय चाय बागान में पुरुषों व महिलाओं दोनों की अनुपस्थिति की प्रतिशत दर लगभग २२ थी जब कि कहवा के बागान में यह उससे अधिक थी। मद्रास और कुर्ग मे पुरुषों में अनुपस्थिति की प्रतिशत दर ३० तथा महिलाओं मे ३५ थी और कोचीन मे पुरुषों में २१ तथा महिलाओं में २५ थी। रबर के बागान में भी अनुपस्थिति की दर काफी ऊंची थी। मद्रास में अनुपस्थिति की दर पुरुषों में २४ तथा महिलाओं में ३५ थी और कोचीन में पुरुषों में २७ तथा महिलाओं मे ३० पाई गई थी। बन्दरगाहों में सितम्बर १९५८ में अनुपस्थिति दर १२·२ थी।

केन्द्रीय श्रम मंत्रालय द्वारा १९६ में किये गये अध्ययन के अनुसार अनुपस्थिति दर इस प्रकार थी—सूती कपड़ा उद्योग में ७ से १८·५ तक ऊनी कपड़ा उद्योग में ७·१ इंजीनियरिंग में १२·१ चमड़ा उद्योग म ९·४ सोने की खानों में ९·७ बागान में २०·५ तथा कोयले की खानों में ११·२।

अनुपस्थिति का प्रभाव—

उपरोक्त आंकड़ों से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश के संगठित उद्योगों में श्रमिकों की अनुपस्थिति अत्यन्त व्यापक है। इस अनुपस्थिति से दोहरी हानि होती है। प्रथम तो इससे श्रमिकों को ही स्पष्ट हानि होती है। उपस्थिति में अनियमितता उनकी आय को कम कर देती है क्योंकि "काम नहीं तो वेतन भी नहीं" तो साधारण नियम है। मालिकों को हानि इससे भी अधिक होती है क्योंकि अनुपस्थिति से अनुशासन और कार्यकुशलता दोनों को ही क्षति पहुंचती है और उत्पादन कम हो जाता है। इसके अतिरिक्त अनुपस्थिति से एक अन्य दोष यह उत्पन्न हो जाता है कि मालिकों को या तो सदव कुछ अतिरिक्त श्रमिकों को रखना पड़ता है जिसमें आकस्मिक आवश्यकता के समय उनको काम पर लगाया जा सके या फिर अनुपस्थिति के समय उनको ऐसे श्रमिकों को भर्ती करना पड़ता है जो उनको तत्काल ही प्राप्त हो जाते हैं यद्यपि ऐसे श्रमिक साधारणतया कुशल नहीं होते। कुछ और अधिक श्रमिक रखने की इस प्रथा से अनेक दोष तथा कठिन समस्याएं उत्पन्न

हो जाती हैं। विशेष रूप से मालिक इन अतिरिक्त या बदली श्रमिकों को काम दिलाने के लिए बहुधा काम पर लगे हुए श्रमिकों को जबरी छुट्टी लेने के लिए बाध्य करते हैं जिससे श्रमिकों में असन्तोष उत्पन्न हो जाता है और वे यह समझते हैं कि यह अतिरिक्त श्रमिक मालिकों द्वारा केवल इस कारण रखे जाते हैं कि हड़ताल आदि के समय में वे इन अतिरिक्त श्रमिकों के द्वारा काम जारी रख कर अपनी सुरक्षा का प्रबन्ध रखें। श्रमिकों को ऐसे छुट्टी दिलाने की प्रथा नागपुर की कपड़ा मिलों में काफी मात्रा में पाई जाती है। इसके विपरीत मालिक यह कहते हैं कि अतिरिक्त श्रमिक रखने के अलावा उनके पास कोई और चारा नहीं है क्योंकि श्रमिकों का अनुपस्थित होना उनके लिए एक गम्भीर समस्या बन जाती है विशेष रूप से जबकि उद्योग के कुछ विभागों में श्रमिकों की प्रतिदिन की आवश्यकता का पहले से अनुमान लगा लेना कठिन होता है। अतः अनुपस्थिति मालिकों और श्रमिकों दोनों के लिए हानिकारक है।

अनुपस्थिति के कारण—

श्रमिक अनेक कारणों से अनुपस्थित हो जाते हैं जिनमें से कुछ ही कारण यथार्थ कहे जा सकते हैं। अधिकतर स्थानों में अनुपस्थिति का कारण बहुधा बीमारी ही होती है। श्रमिक अपनी शारीरिक दुर्बलता तथा गन्दी बस्तियों में रहने के कारण हैजा चेचक मलेरिया आदि अनेक बीमारियों के शिकार बन जाते हैं जिनके कारण उनको अपने काम पर से अनुपस्थित होना पड़ता है। इसके अतिरिक्त रात के कार्य में अधिक असुविधाएं होने के कारण दिन की पारियों की अपेक्षा रात्रि की पारियों में अनुपस्थिति की प्रतिशत दर अधिक होती है। परन्तु अनेक स्थानों पर, जैसे बम्बई की सूती कपड़ा मिलों में पारी में बदली की प्रथा अपना ली गई है जिससे रात्रि की पारी में अनुपस्थितियों की दर कम हो गई है। श्रमिकों की अनुपस्थिति का सबसे महत्वपूर्ण कारण उनकी समय समय पर देहात जाते रहने की प्रवृत्ति है जिसके बारे में हम श्रमिकों में प्रवासिता का वर्णन करते समय बता चुके हैं। फसल काटने के समय अनुपस्थिति बढ़ जाती है। अनुपस्थिति के अन्य कारण औद्योगिक दुर्घटनाएं, सामाजिक और धार्मिक उत्सव जुआ खेलना तथा शराब पीना निवास तथा कार्य की बुरी दशायें मकानों का अभाव कुछ कार्यों का खतरनाक होना इत्यादि इत्यादि हैं। महिला श्रमिकों में पुरुषों की अपेक्षा अनुपस्थिति दर अधिक पाई जाती है क्योंकि उन्हें घरेलू काम करने पड़ते हैं और गर्भ और प्रसूति की दशा में वे अनुपस्थित हो जाती हैं। २५ वर्ष से कम आयु के और ४० वर्ष से अधिक आयु के व्यक्तियों में तथा ऐसे व्यक्तियों में जो सपरिवार नहीं रहते अनुपस्थिति दर अधिक पाई जाती है। इसके अतिरिक्त वेतन मिलने के फौरन बाद ही अनुपस्थिति तुलनात्मक रूप से अधिक हो जाती है क्योंकि श्रमिक वेतन पाते ही या तो बहुधा मनोरंजन में समय व्यतीत करना चाहता है या वह अपने गाँव को अपने परिवार से मिलने तथा अपनी आवश्यकताएं पूरी करने के लिए चला जाता है। कोयले की खानों में अधिक

अनुपस्थिति होने का कारण यह है कि वहाँ काम करने की अवस्था असन्तोषजनक है और श्रमिक स्वभावतः खानों के भीतर काम नहीं करना चाहते। उनका स्वास्थ्य भी उनको इस ओर अधिक प्रेरित नहीं करता।

सितम्बर १९६१ में कुछ उद्योगों में विभिन्न कारणों से अनुपस्थिति की दर निम्नलिखित थी—

उद्योग	बीमारी या दुर्घटना	सामाजिक या धार्मिक कारण	अन्य कारण		कुल कारण
			छुट्टी	बिना छुट्टी	
लोहा तथा इस्पात (बिहार)	३५	११	३७	३१	११६
अस्त्र-शस्त्र उद्योग (उत्तर प्रदेश)	२६	०६	१६	०९	५७
सीमेन्ट (मध्य प्रदेश)	५१	३५	२४	१६	१२६
दियासलाई (महाराष्ट्र)	१९	०७	१४	३८	७८
कपड़ा मिल— (मद्रास)	५५	०३	०६	१२	७६
(मदुरा)	४०	२९	३८	१४	१२१
ऊनी कपड़ा मिल (धारीवाल)	२२	—	५४	१५	९१

अनुपस्थिति को दूर करने के उपाय—

जहाँ तक अनुपस्थिति को कम करने के लिये सुझावों का प्रश्न है बम्बई की कपड़ा मिल श्रमिक जाँच समिति के सुझाव सब से अधिक उपयुक्त हैं और उनसे श्रम अनुसन्धान समिति भी सहमत है। इस समिति के अनुसार अनुपस्थिति को कम करने का प्रभावपूर्ण उपाय यही है कि श्रमिकों के काम करने का वातावरण तथा दशाएं सुधारकर व स्वास्थ्यप्रद बनाई जायं। उनको पर्याप्त मजदूरी मिले बीमारी तथा दुर्घटना से बचाव के लिये सामाजिक सुरक्षा का प्रबन्ध हो और विश्राम तथा स्वास्थ्य के लिये छुट्टियों की व्यवस्था हो। कार्य की दोषित दशाएं एवं अत्यधिक श्रान्ति (fatigue) श्रमिकों में स्वाभाविक रूप से विद्रोह की प्रवृत्ति जगा देती हैं। अतः यदि हम यह चाहते हैं कि श्रमिक स्थायी रूप से एक स्थान पर काम करता रहे तो उसके कार्य करने की तथा रहने की अवस्थाओं में सुधार करना और उसको सन्तुष्ट व प्रसन्न रखना ही सबसे उचित नीति होगी। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनुपस्थिति की समस्या का समाधान करने का सबसे प्रथम व प्रभावशाली उपाय उनको वेतन सहित या वेतनरहित छुट्टियाँ देना तथा उन्हें समय समय पर अपनी निजी

आवश्यकताओं को पूर्ण करने के लिए अवकाश देना है। इस प्रकार से श्रमिकों की अनुपस्थिति नियमित हो जायगी और उनके विरुद्ध अनुशासनीय कार्यवाही करने की आवश्यकता न पड़ेगी। औद्योगिक नगरों में श्रमिकों के रहने के लिए अच्छे मकानों का प्रबन्ध भी उपस्थिति की वृद्धि में काफी सहायक सिद्ध हो सकता है। श्रमिकों को कार्य अधिक करने के लिये प्रोत्साहन देने हेतु बोनस देने की योजना से तथा बोनस को उत्पादन से सम्बन्धित करने से भी अनुपस्थिति कम हो जायेगी।

श्रमिकावर्त (Labour Turn Over)

परिभाषा—

श्रमिकावर्त तथा अनुपस्थिति में अन्तर है। श्रमिकावर्त तो किसी उद्योग संस्था में कर्मचारियों के हुए परिवर्तन को कहा जाता है और अनुपस्थिति उस अवस्था को कहा जाता है जब श्रमिक अपना नियमित काम करने के लिए उपस्थित नहीं होता। इस प्रकार श्रमिकावर्त कर्मचारियों के परिवर्तन की वह दर है जो किसी उद्योग संस्था में एक विशेष समय में पाई जाती है। अर्थात् एक समय विशेष में जिस सीमा तक पुराने कर्मचारी किसी संस्था को छोड़ देते हैं और नए कर्मचारी आ जाते हैं उसको श्रमिकावर्त कहते हैं।

श्रमिकावर्त का प्रभाव—

श्रमिकावर्त रोजगार की अस्थिरता का कारण भी है और उसका परिणाम भी। कुछ सीमा तक तो श्रमिकावर्त अनिवार्य सा हो जाता है जैसे श्रमिकों की माँग न रहने पर श्रमिक कार्य से हटा दिये जाते हैं। कुछ श्रमिकावर्त स्वाभाविक भी होता है जैसे वृद्ध श्रमिकों के अवकाश ग्रहण कर लेने पर तथा नए श्रमिकों की नियुक्ति होने पर। ऐसा श्रमिकावर्त कुछ सीमा तक उचित कहा जा सकता है। परन्तु इस प्रकार के श्रमिकावर्त की प्रतिशत दर बहुत थोड़ी है। अधिकतर श्रमिकावर्त त्याग-पत्र देने तथा बरखास्तगी के कारण होता है। श्रमिकावर्त की ऊँची दर श्रमिकों की कार्यकुशलता और उत्पादन के परिमाण तथा गुणों की दृष्टि से हानिप्रद है। श्रमिकावर्त के कारण श्रमिक अनेक ऐसे लाभों से वंचित रह जाते हैं, जो निरन्तर एक स्थान पर कार्य करने से उन्हें मिल सकते हैं, जैसे क्रमवृद्धि वेतन बोनस प्रॉविडेन्ट फंड व छुट्टी इत्यादि। इसके अतिरिक्त भर्ती प्रणाली के दोषपूर्ण होने के कारण उनको बहुधा पुनः नौकरी पाने के लिए कुछ मूल्य भी चुकाना पड़ता है। श्रमिकों के संगठन पर भी श्रमिकावर्त का बुरा प्रभाव पड़ता है। क्योंकि जब श्रमिक एक उद्योग से दूसरे उद्योग में या एक कारखाने से दूसरे कारखाने में चले जाते हैं तो उनमें एकता कठिन हो जाती है। श्रमिकों को बार बार काम पर लगाने से कार्यक्रम में कुछ व्यय भी बढ़ जाता है और जब श्रमिकों को किसी कार्यविशेष के लिए प्रशिक्षण देना होता है तो श्रमिकावर्त के कारण ऐसे प्रशिक्षण का व्यय भी अधिक हो जाता है। श्रमिकावर्त के कारण देश के मानवीय तथा प्राकृतिक साधनों का पूर्णतया उपयोग नहीं हो पाता। यद्यपि श्रमिकावर्त का यह दोष भारत जैसे देश

में जहाँ बेकारी तथा अपूर्ण रोजगार वाले श्रमिकों की संख्या अत्यधिक है कोई विशेष महत्व नहीं रखता।

श्रमिकावर्त को मापने में कठिनाइयाँ–

अनुपस्थिति के आँकड़ों की भाँति ही श्रमिकावर्त के आँकड़े भी पर्याप्त मात्रा में प्राप्त नहीं है। श्रमिकावर्त का ठीक ठीक जानना और मापना कठिन भी है। यदि इस बात को मान भी लिया जाए कि किसी संस्था में नौकरियों की संख्या एकसी ही रहेगी तब श्रमिकावर्त को मापने में अधिक कठिनाइयाँ न होंगी क्योंकि तब या तो कुल वियुक्ति दर (Separation Rate) (अर्थात् कितने कर्मचारी एक निश्चित समय में नौकरी छोड़ जाते है) को जानकर चल सकते है,या कुल नियुक्ति दर (Accession Rate) (अर्थात् कितने कर्मचारियों की एक निश्चित समय में नियुक्ति होती है) को मान सकते है क्योंकि जितने श्रमिक एक संस्था को एक समय में छोड़ते हैं उतने ही श्रमिक साधारणतः उस संस्था में नौकरी पर आ भी जाने चाहिये। कारणों के आधार पर वियुक्ति दर को तीन हिस्सों में बाँटा जा सकता है जिनको हम त्याग दर, बरखास्तगी दर, और जबरी छुट्टी दर कह सकते है। परन्तु जब व्यवसाय में मन्दी और तेजी होती है तब नौकरियों की संख्या भी बदलती रहती है और फिर यह आवश्यक नहीं है कि वियुक्ति दर और नियुक्ति दर एक ही समान हो। ऐसी अवस्था में श्रमिकावर्त की माप कठिन हो जाती है। दूसरी कठिनाई यह है कि जब श्रमिक कुछ दिनों के लिए छुट्टी लेकर अनुपस्थित हो जाते हैं तब तत्काल ही बदली के श्रमिकों से उनके स्थानों की पूर्ति कर दी जाती है। स्थायी श्रमिक न त्यागपत्र देते है और न बरखास्त किये जाते हैं अपितु वे जबरी छुट्टी पर होते हैं। इस प्रकार श्रमिकावर्त की दर तो काफी ऊँची मालूम होती है परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं होता। तीसरी कठिनाई यह है कि श्रमिकावर्त तथा अनुपस्थिति के पारस्परिक सम्बन्ध को ठीक प्रकार से समझा नहीं जाता। यदि एक श्रमिक दो या तीन माह छुट्टी पर रहकर वापिस आ जाए तो इस अवधि में उसकी स्थानपूर्ति हो चुकी होती है। अतः श्रमिकावर्त की माप कठिन हो जाती है। एक और बात ध्यान में रखने की यह है कि अगर एक श्रमिक उसी उद्योग-धन्धे में एक कारखाना छोड़कर दूसरे कारखाने में नौकरी करने चला जाता है तो दोनों कारखानों में श्रमिकावर्त की दर बढ़ जाती है। परन्तु इससे श्रमिक की कार्य-कुशलता पर इतना बुरा प्रभाव नहीं पड़ता।

इन कठिनाइयों के कारण श्रमिकावर्त की अनेक उद्योग-धन्धों में ऊँची दर होने पर भी उसके ठीक ठीक आँकड़े प्राप्त नहीं हो पाते। फिर भी अनेक समितियों तथा अनुसन्धानकर्ताओं ने जो भी आँकड़े मिल सके हैं एकत्रित किए हैं और उनके आधार पर हम विभिन्न उद्योग-धन्धों में श्रमिकावर्त की सीमा का अनुमान लगा सकते हैं।

श्रमिकावर्त की व्यापकता—(Extent of Labour Turnover)

रॉयल श्रम आयोग के अनुसार अधिकतर कारखानों में नए कर्मचारियों की भर्ती प्रत्येक माह कम से कम ५% तक होती है। श्रम अनुसन्धान समिति के अनुसार श्रमिकावर्त की मासिक प्रतिशत दर विभिन्न उद्योगों में इस प्रकार थी—सूती कपड़ा ०.६, ऊनी कपड़ा ०.४ सीमेंट २.० कांच २.१ कागज १.१ तथा शीशे का सामान १.६। डा० मुकर्जी के अनुसार बंगाल की जूट की मिलों में श्रमिकावर्त की मासिक प्रतिशत दर ६.२६ है। बम्बई की सूती कपड़ा मिलों में १९५१ में श्रमिकों की औसत नियुक्ति दर प्रति सैकड़ा १.९० थी तथा औसत विमुक्ति दर १.२१ थी। व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो विभिन्न आंकड़ों द्वारा यह ज्ञात होता है कि श्रमिकावर्त की दर बम्बई की सूती कपड़ा मिलों में मदुरा कलकत्ता और कानपुर की मिलों की अपेक्षा अधिक है। इसका कारण यह है कि बम्बई में मिलें अधिक हैं और श्रमिक एक मिल को छोड़कर दूसरी मिल में नौकरी करते रहते हैं। इन्जीनियरिंग उद्योग में श्रमिकावर्त की प्रतिशत दर का अनुमान बम्बई में १.१ तथा मद्रास व बंगाल में १.६ लगाया गया है। कोयले के उद्योग में भी श्रमिकावर्त अत्यधिक है क्योंकि यहां श्रमिक काफी गतिशील हैं। इसका कारण यहां प्रशिक्षित श्रमिकों की कमी है और मालिक प्रशिक्षित श्रमिकों को किसी भी मूल्य पर भर्ती करने के लिये तैयार रहते हैं। १९५४ में चाय के कारखानों में नौकरी छोड़ने वालों की दर समस्त देश के लिये ११.४ आंकी थी तथा उत्तर प्रदेश में यह दर ५१.४ थी। असम के खनिज तेल के उद्योग में १९५५ में श्रमिकावर्त की दर का अनुमान ९.६% तथा कागज की मिलों में १०% लगाया गया था। श्रमिकों की भर्ती की अपनी विशेष प्रणाली होने के कारण बागान के सम्बन्ध में श्रमिकावर्त के पर्याप्त आंकड़े प्राप्त नहीं हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि यद्यपि श्रमिकावर्त के कोई नियमित आंकड़े एकत्रित नहीं किए जाते हैं और न प्रकाशित होते हैं फिर भी इसमें कोई सन्देह नहीं कि भारतीय उद्योग-धन्धों में श्रमिकावर्त व्यापक है। परन्तु यह भी मानना पड़ेगा कि श्रमिकावर्त की दर अनुपस्थिति दर से कम है और भारतवर्ष में श्रमिकावर्त अन्य औद्योगिक देशों की अपेक्षा कम है। इसका मुख्य कारण नगरों में अत्यधिक बेरोजगारी और गांवों में अपूर्ण रोजगार का होना है जिसके कारण कोई भी व्यक्ति अपना रोजगार, जहां तक सम्भव हो छोड़ना नहीं चाहता।

श्रमिकावर्त के कारण—

श्रमिकावर्त के मुख्य कारण त्यागपत्र देना तथा बरखास्तगी है। त्यागपत्र देने के अनेक कारण हैं, जैसे कार्य करने के वातावरण तथा अवस्थाओं के प्रति असन्तोष अपर्याप्त मजदूरी बुरा स्वास्थ्य बीमारी वृद्धावस्था पारिवारिक समस्याएं तथा कृषि सम्बन्धी कार्यों के लिये गांव को प्रवास। अनेक उद्योगों जैसे चाय बागान सूती कपड़ा जूट तथा छोटे उद्योग-धन्धे जैसे चमड़ा चावल कूटना अभ्रक आदि, के श्रमिकों का गांव से सम्बन्ध अब भी काफी महत्वपूर्ण है। श्रमिकों

को गांव जाने के लिये लम्बी छुट्टी प्राप्त नहीं होती इसलिये फसल काटने व बोने के समय वे त्यागपत्र देकर चले जाते हैं। इसके विपरीत बरखास्तगी श्रमिकावर्त्त के कारणों की दृष्टि से इतनी महत्वपूर्ण नहीं है। बरखास्तगी के कई कारण होते हैं। बरखास्तगी अधिकतर श्रमिकों के प्रति अनुशासनीय कार्यवाही के कारण होती है जबकि श्रमिक ठीक प्रकार से काम नहीं करते या आज्ञा-उल्लंघन तथा दुर्व्यवहार करते हैं अथवा हड़तालों में भाग लेते हैं। बरखास्तगी का एक कारण यह भी है कि ऐसे श्रमिक जो श्रमिक संघों में रुचि दिखाते हैं मालिकों द्वारा किसी न किसी बहाने से सताये व निकाल दिये जाते हैं। अस्थायी श्रमिकों में श्रमिकावर्त्त इसलिये अधिक होती है कि कार्य समाप्ति पर श्रमिकों को निकाल दिया जाता है और जब कार्य फिर प्रारम्भ होता है तो नये श्रमिकों को भर्ती कर लिया जाता है। बदली श्रमिकों को रखने की प्रणाली के कारण भी श्रमिकावर्त्त में वृद्धि हो जाती है क्योंकि अनेक बार बदली श्रमिकों को काम दिलाने के लिये पुराने श्रमिकों को छुट्टी लेने के लिए बाध्य किया जाता है। लड़ाई के दिनों में श्रमिकावर्त्त इसलिये अधिक हो गया था कि वेतन वृद्धि के आकर्षण तथा अन्य उद्योगों में प्राप्त अतिरिक्त सुविधाओं के कारण श्रमिकों ने एक कारखाने से दूसरे कारखाने में या एक उद्योग से दूसरे उद्योग में जाना प्रारम्भ कर दिया था। श्रमिकों को पाने के लिये मालिकों में भी पारस्परिक प्रतिस्पर्द्धा आ गई थी और अनेक बार एक कारखाने के श्रमिकों को दूसरे कारखाने के मालिक प्रलोभन देकर बुला लेते थे।

श्रमिकावर्त्त को कम करने के उपाय :—

जैसा ऊपर बताया जा चुका है श्रमिकावर्त्त अवांछनीय है क्योंकि इससे कार्य कुशलता कम होती है और उत्पादन कम हो जाता है। अतः कुछ ऐसे उपाय अपनाने आवश्यक हैं जिनसे श्रमिकावर्त्त कम हो। इसके लिये एक निश्चित नीति तथा कार्य प्रणाली का अनुसरण आवश्यक है। दुर्भाग्यवश अधिकांश मालिक अभी तक श्रमिकों में विशेष रूप से अनिपुण श्रमिकों में श्रमिकावर्त्त के कम होने के लाभों को अभी भांति समझते नहीं हैं। साधारणतया शान्तिकाल में अनिपुण श्रमिक काफी संख्या में प्राप्त हो जाते हैं। इस कारण मालिक कम वेतन पर श्रमिक पाने के लिये एक श्रमिक को निकाल दूसरे को भर्ती कर लेते हैं और यदि उन्हें अपनी मजदूरी के बिल में कमी करने का अवसर मिलता है तो श्रमिकावर्त्त को अधिक अच्छा समझते हैं। वह इस बात का अनुभव नहीं करते कि नए श्रमिकों को मशीनों और काम के नये तरीकों से अभ्यस्त होने में कुछ समय लगता है और निरन्तर कार्य करने से अनिपुण श्रमिक भी कुछ कुशलता प्राप्त कर लेते हैं जिससे सब को लाभ होता है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रमिकावर्त्त की समस्या भर्ती की समस्या से सम्बन्धित है क्योंकि अधिकतर उद्योगों में भर्ती प्रणाली में काफी भ्रष्टाचार तथा रिश्वत प्रचलित है और मध्यस्थ सदा इस बात का प्रयत्न करते हैं कि पुराने कर्मचारी निकाल दिए जायें और नये भर्ती हों जिसमें उन्हें अपनी जेब गरम करने का अवसर मिले। इसलिए भर्ती

प्रणाली में सुधार करने से अनिकावर्त कम किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त ऐसे उपाय भी अपनाने चाहियें जिनसे श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में उन्नति हो उनकी नौकरी सुरक्षित रहे तथा नगरों में ऐसी सुविधाएं प्राप्त होनी चाहियें कि श्रमिक बार बार अपने गाँव न जायें। स्थायीकरण योजना भी जो बम्बई आदि अनेक स्थानों पर लागू हो चुकी है श्रमिकावर्त को कम कर सकती है। जैसा कि बम्बई की सूती कपड़ा श्रमिक जांच समिति ने भी संकेत किया था अत्यधिक श्रमिकावर्त को कम करने का मुख्य उपाय भर्ती की पद्धतियों में उन्नति करना ही है। और इसके लिए कुछ विशेष प्रभावपूर्ण व क्रान्तिकारी उपाय होने चाहियें जैसे रोजगार दफ्तरों की स्थापना मध्यस्थों के अधिकारों पर नियन्त्रण तथा कार्मिक (Personnel) विभाग का उचित संगठन। एक स्थायी श्रमिक वर्ग की स्थापना के लिए और भी कई बातों की आवश्यकता है जैसे कार्य की दशाओं में उन्नति श्रम कल्याणकारी कार्य सामाजिक बीमा योजना सवेतन छुट्टियाँ तथा अधिक मजदूरी आदि। इसके अतिरिक्त श्रम संघों को प्रोत्साहन देने तथा उनकी उन्नति करने से औद्योगिक नगरों में स्थायी श्रमिक वर्ग की स्थापना हो सकती है।

छुट्टियां और वेतन सहित अवकाश

छुट्टियों की आवश्यकता तथा महत्त्व —

श्रमिकों तथा मालिकों के पारस्परिक सम्बन्धों को अच्छा बनाने तथा औद्योगिक कार्यकुशलता को स्थिर रखने तथा उसकी वृद्धि के लिए छुट्टियां अत्यन्त महत्त्व पूर्ण हैं। भारतीय उद्योग-धन्धों में अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त की प्रतिशत दर अधिक होने का एक कारण यह भी है कि श्रमिकों को पर्याप्त छुट्टियाँ तथा अवकाश मिलने की सुविधा नहीं है। बिहार श्रमिक जाँच समिति ने ठीक ही कहा है कि पश्चिमी देशों की अपेक्षा भारत में छुट्टियों तथा वेतन सहित अवकाश की आवश्यकता अधिक है क्योंकि यहाँ जलवायु गर्म है श्रमिकों का भोजन खराब तथा अपर्याप्त है शारीरिक दृष्टि से वे दुर्बल हैं और उनके रहने का वातावरण दूषित व असन्तोषजनक है। अधिकांश श्रमिक गाँवों से आते हैं और वहां से अपना सम्बन्ध बनाए रखते हैं। अतः जो भी छुट्टियाँ उन्हें मिलती हैं वे उन्हें अपने गाँव में ही बिताने का प्रयत्न करते हैं। इससे न केवल उनके स्वास्थ्य को ही लाभ होता है अपितु, चाहे एक वर्ष में थोड़े ही दिनों के लिये जायें इससे उनके हृदय में प्रसन्नता का संचार होता है। रॉयल श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि मालिकों को छुट्टियों के महत्त्व तथा आवश्यकता को स्वीकार करना चाहिए और श्रमिकों को एक निश्चित काल की छुट्टी लेने के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए और उन्हें यह आश्वासन देना चाहिए कि वापिस आने पर वे अपने पुराने कार्य को पुनः प्राप्त कर सकेंगे। यदि छुट्टियाँ बिना वेतन या भत्ते के भी दी जायेंगी तब भी वर्तमान पद्धति में एक बहुत बड़ा सुधार होगा। कानपुर श्रम जाँच समिति तथा बम्बई की वस्त्र मिल श्रमिक जाँच समिति ने भी वेतन सहित छुट्टियों के महत्त्व पर जोर दिया है। डा० राधाकमल मुकर्जी ने भी

औद्योगिक श्रमिकों के लिए छुट्टियों के महत्त्व और आवश्यकता की ओर संकेत करते हुए इसकी विवेकपूर्ण व्यवस्था पर जोर दिया है।

इस प्रकार औद्योगिक श्रमिकों की अनुपस्थिता को नियमित बनाने के लिए, वर्तमान भर्ती की पद्धति के कुछ दोषों को दूर करने के लिए, अनुपस्थिति तथा अभिकावर्त को कम करने के लिए तथा औद्योगिक श्रमिकों की कार्यकुशलता को बढ़ाने और मालिकों से उनके सम्बन्ध अच्छे बनाने के लिए छुट्टियों तथा अवकाश का महत्त्व वास्तव में बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त यह तो मानना ही पड़ेगा कि श्रमिक भी मनुष्य होते हैं केवल उत्पादन के साधन मात्र नहीं। किसी भी मनुष्य के लिए, बिना छुट्टी या विश्राम के वर्षों तक निरन्तर काम में लगे रहना कठिन है। मनुष्य के जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जब बीमारी पारिवारिक कार्यों तथा सामाजिक उत्सवों आदि के कारण वह अपने काम पर जाने में असमर्थ होता है। ऐसे अवसरों पर उसे छुट्टी अवश्य मिलनी चाहिए। अतः वेतन सहित अवकाश देने का प्रस्ताव जोर पकड़ चुका है और अनेक औद्योगिक देशों में या तो कानून द्वारा या श्रमजीवियों व मालिकों के पारस्परिक समझौते द्वारा ऐसी छुट्टियों की सुविधा मिल रही है।

भारतीय उद्योगों में छुट्टियाँ और अवकाश —

भारत में यद्यपि अनेक उद्योगों में छुट्टियाँ और अवकाश प्रदान किया जाता है परन्तु इन छुट्टियों का महत्त्व अभी पूर्ण रूप से समझा नहीं गया है। छुट्टियों व अवकाश देने की रीतियाँ भी विभिन्न उद्योगों में भिन्न-भिन्न हैं। अतः इनके बारे में कोई सामान्य निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता। वेतन सहित छुट्टियाँ केवल स्थायी श्रमिकों तथा क्लर्कों और निरीक्षक कर्मचारियों को ही दी जाती हैं। साधारण तथा दैनिक वेतन पाने वाले या कार्य के अनुसार वेतन पाने वाले तथा अस्थायी श्रमिकों को वेतन सहित छुट्टियाँ नहीं मिलतीं। अधिकतर कारखानों में साधारणतः रविवार की छुट्टी होती है और पर्वों पर भी छुट्टी प्रदान की जाती है। कुछ संस्थाएँ आकस्मिक तथा विशेष छुट्टियाँ भी प्रदान करती हैं। परन्तु इस सम्बन्ध में सन्तोष जनक प्रबन्ध नहीं है। फिर भी दक्षिणी भारत की मिलें वर्ष में १ से १२ दिन तक की वेतन सहित छुट्टी देने की सहृदयता दिखाती हैं। नागपुर की एम्प्रेस मिल में जो श्रमिक २० वर्ष तक नौकरी कर चुके हैं १२ दिन की वेतन सहित छुट्टियों के अधिकारी हैं। १९४३ से जूट के उद्योग में प्रत्येक श्रमिक को ७ दिन की वेतन सहित छुट्टी मिलती है। बंगाल के अधिकांश रासायनिक उद्योगों में रविवार के अतिरिक्त ११ से २४ दिन तक की सवेतन छुट्टी दी जाती है। बम्बई की सूती कपड़ा मिलें भी अपने कुछ श्रमिकों के श्रमिकों को सवेतन छुट्टियाँ प्रदान करती हैं। इंजीनियरिंग उद्योग में भी अधिकांश श्रमिकों को सवेतन छुट्टियाँ मिलती हैं। मद्रास में स्थायी श्रमिकों को २१ दिन की विशेष छुट्टियों का अधिकार है। रेलवे कर्मचारियों को भी आकस्मिक छुट्टियाँ प्रदान की जाती हैं। टाटा की लोहे और इस्पात की कम्पनी में

मासिक वेतन पाने वाले श्रमिकों को एक वर्ष की नौकरी पर एक माह की सवेतन छुट्टियाँ मिलती हैं और ऐसे श्रमिकों को जिनकी मजदूरी दैनिक कार्य के अनुसार निर्धारित होती है परन्तु भुगतान महीने भर बाद होता है १४ दिन की सवेतन छुट्टियाँ मिलती हैं। साप्ताहिक मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को कोई छुट्टी नहीं मिलती। सोने की खानों में भीतरी धरातल पर काम करने वाले श्रमिकों को १ दिन की विशेष छुट्टी और ऊपरी धरातल पर काम करने वाले श्रमिकों को की सवेतन छुट्टी मिलती है। खनिज तेल के उद्योग में दैनिक वेतन पाने वाले श्रमिकों को १४ दिन की सवेतन छुट्टियाँ तथा २८ दिन की वेतनरहित छुट्टियों का अधिकार है। पंजाब में मासिक वेतन पाने वाले श्रमिकों को १५ दिन की सवेतन छुट्टियों के साथ साथ ६ सवेतन वार्षिक छुट्टियाँ भी मिलती हैं। अन्य स्थानों तथा संस्थाओं में भी छुट्टियों व अवकाश का प्रबन्ध है परन्तु सवेतन या वेतनरहित छुट्टियाँ प्रदान करने की कोई नियमित रीति नहीं है। विभिन्न संस्थाएं अपनी सुविधा के अनुसार छुट्टियाँ प्रदान करती हैं और इस हेतु उन्होंने अपने श्रमिकों की भिन्न भिन्न श्रेणियाँ बना ली हैं।[1] कुछ मालिक ३ दिन तक वेतनरहित छुट्टियाँ दे देते हैं। डाक्टरी प्रमाण-पत्र उपस्थित करने पर मालिक अपनी इच्छानुसार श्रमिकों को सवेतन या वेतनरहित बीमारी की छुट्टी भी प्रदान कर सकते हैं। सवेतन पर्वों की छुट्टियों की संख्या भी विभिन्न प्रदेशों में भिन्न भिन्न है।

छुट्टियों और अवकाशों से सम्बन्धित विधान[2] —

अवकाश और छुट्टियाँ प्रदान करने के लिए देश में कुछ वैधानिक सुविधाएं भी हैं। १९३६ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन ने सवेतन छुट्टियों के सम्बन्ध में एक अभिसमय पास किया था। भारत सरकार द्वारा यह अभिसमय स्वीकार नहीं हुआ और उसने यह घोषित किया कि अभिसमय में उल्लिखित सब दशाओं पर इसे लागू करना सम्भव नहीं था। फिर भी फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले सारे कारखानों में एक साप्ताहिक छुट्टी प्रदान कर दी गई। केन्द्रीय सरकार ने १९४२ में साप्ताहिक छुट्टी के लिए एक अधिनियम बनाया जिसके अन्तर्गत सभी दुकानों के नौकरों को सप्ताह में एक छुट्टी प्रदान करने की तथा दुकानों को सप्ताह में एक दिन बन्द रखने की व्यवस्था की गई। परन्तु यह अधिनियम राज्यों को इस प्रकार के अधिनियम पास करने की या लागू करने की केवल अनुमति प्रदान करता है। आठ राज्यों ने ही इस अधिनियम को अपनाया अर्थात् अजमेर, बिहार कुर्ग उड़ीसा राजस्थान विन्ध्य प्रदेश तथा मैसूर। इसके अतिरिक्त कुछ राज्य सरकारों ने दुकान व वाणिज्य सम्बन्धी कर्मचारियों (Shops and Commercial Establishments Employees) के लिए भी कुछ कानून बनाए हैं जिनमें दुकान के नौकरों के लिए भी छुट्टियों की व्यवस्था है। ऐसे अधिनियम राज्यों के पुनर्गठन से पहले

1. *See Labour Investigation Committee Report* pages 120-21
2. *See Labour Year Books*

२१ राज्यों में लागू थे और अब सभी राज्यों में यह अधिनियम बना दिये गये हैं। बम्बई में १९३७ में सर्वप्रथम ऐसा अधिनियम पास हुआ था। कुछ अन्य ऐसे महत्त्वपूर्ण अधिनियम उत्तर प्रदेश (१९४७) पंजाब (१९४ तथा १९५८) पश्चिमी बंगाल, मद्रास मध्य प्रदेश बिहार असम आन्ध्र करल तथा मैसूर आदि के हैं पहले कई भारतीय देशी राज्य संघों में भी ऐसे अधिनियम थे। देहली में भी १९५४ से एक ऐसा अधिनियम लागू है। यह सभी अधिनियम सप्ताह में एक दिन की सवेतन छुट्टी की व्यवस्था करते हैं। परन्तु असम का अधिनियम इससे भी एक कदम आगे बढ़ गया है और सप्ताह में डेढ़ दिन की छुट्टी की व्यवस्था करता है। असम हैदराबाद और मद्रास के अधिनियम केवल दुकानों को एक दिन के लिए बन्द करने की व्यवस्था करते हैं तथा बम्बई और देहली के अधिनियमों में होटलों और थियेटरों का जिक्र नहीं है। सभी अधिनियमों में हर प्रकार की छुट्टी की व्यवस्था है। १२ माह की निरन्तर नौकरी के बाद पूरे वेतन सहित विशेष छुट्टी (Privilage Leave) की व्यवस्था विभिन्न राज्यों में इस प्रकार है—बम्बई तथा पश्चिमी बंगाल में १४ दिन असम में १६ दिन मद्रास व हैदराबाद में १२ दिन उत्तर प्रदेश और देहली में १५ दिन (उत्तर प्रदेश में चौकीदारों के लिए ३० दिन) और मध्य प्रदेश में एक माह। बिहार, उड़ीसा और पंजाब में २० दिन के कार्य पर १ दिन तथा मैसूर में १ वर्ष में १ दिन। ऐसी विशेष छुट्टियाँ एकत्रित भी की जा सकती हैं। पूरे वेतन सहित आकस्मिक छुट्टियों (Casual Leave) की व्यवस्था इस प्रकार है—असम उत्तर प्रदेश मैसूर और पश्चिमी बंगाल में १० दिन मद्रास हैदराबाद और देहली में १२ दिन मध्य प्रदेश में १८ दिन। बीमारी की छुट्टियाँ डाक्टरी प्रमाण-पत्र उपस्थित करने पर ही प्रदान की जाती हैं। इनकी व्यवस्था विभिन्न राज्यों में इस प्रकार है—असम में एक वर्ष की नौकरी के बाद आधे वेतन पर एक माह उत्तर प्रदेश में ६ महीने की नौकरी के बाद पूरे वेतन पर १५ दिन पश्चिमी बंगाल में आधे वेतन पर १४ दिन और हैदराबाद व मद्रास में पूरे वेतन पर १२ दिन तथा उड़ीसा में १ वर्ष की नौकरी के पश्चात् १५ दिन। इसके अतिरिक्त असम में धार्मिक कार्यों के लिए तीन छुट्टियों की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश के अधिनियम में ३ गजटेड छुट्टियों की व्यवस्था है। हैदराबाद में अनेक गजटेड छुट्टियाँ प्रदान करने की व्यवस्था है। पंजाब में २ राष्ट्रीय तथा ४ पर्वों की छुट्टियाँ प्रदान करने की व्यवस्था है। देहली में तीन राष्ट्रीय छुट्टियाँ दी जाती हैं। केरल में १९५८ के एक अधिनियम के अनुसार ७ सवेतन छुट्टियाँ प्रदान की जाती हैं जिनमें दो राष्ट्रीय छुट्टियाँ और एक पहली मई की छुट्टी भी है जो छुट्टियाँ समाप्त उद्योग-धन्धों के लिए हैं। अन्य राज्यों में भी इसी प्रकार छुट्टियाँ प्रदान करने की व्यवस्था है।

इसके अतिरिक्त सरकार ने एक 'सवेतन छुट्टी अधिनियम (Holidays with Pay Act) पास किया था जिसको १ जनवरी १९४६ से लागू किया गया था। यह केवल निरन्तर चालू कारखानों पर ही लागू किया गया था। इस अधिनियम में

यह व्यवस्था थी कि प्रत्येक ऐसे श्रमिक को जो १२ माह तक किसी कारखाने में निरन्तर काम कर चुका हो उसे आगामी १२ महीनों में अगर वयस्क हो तो १० दिन की और यदि बालक हो तो १४ दिन की लगातार छुट्टी मिलेगी। ऐसी छुट्टियाँ दो वर्ष तक जमा की जा सकती थीं। इन दिनों में श्रमिकों को पिछले तीन महीनों की दैनिक औसत मजदूरी के हिसाब से वेतन मिलने की व्यवस्था थी। आधा वेतन छुट्टी पर जाने से पहले और शेष वेतन वापिस आने पर मिलने की व्यवस्था थी।

१९४८ के फैक्टरी अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिकों को छुट्टियों की और भी सुविधाएँ प्रदान की गई हैं। १२ माह लगातार काम करने के पश्चात् साप्ताहिक छुट्टियों के अतिरिक्त प्रत्येक श्रमिक को निम्नलिखित दरों पर सवेतन छुट्टियों का अधिकार दिया गया है—वयस्क—प्रत्येक २० दिन के काम पर एक दिन की छुट्टी परन्तु कम से कम १० दिन की छुट्टी बच्चे—१५ दिन के काम पर एक दिन की छुट्टी परन्तु कम से कम १४ दिन की छुट्टी। इस प्रकार छुट्टियों की व्यवस्था श्रमिकों के काम करने की अवधि के साथ सम्बन्धित है।

१९४८ के फैक्टरी अधिनियम में श्रमिकों को छुट्टियाँ प्रदान करने से पहले जो १२ माह की निरन्तर नौकरी की अवधि रखी गई थी उसका निर्णय करने में कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस कारण इस अधिनियम में १९५४ में संशोधन किया गया। इसके अन्तर्गत अब छुट्टी लेने से पहले की नौकरी की अवधि को एक कैलेण्डर वर्ष में २४० दिन कर दिया गया है। उन तमाम दिनों को जबकि श्रमिक जबरी छुट्टी, प्रसूति काल की छुट्टी अथवा गत वर्ष के कार्य के अनुसार उपार्जित छुट्टी पर हो उन दिनों माना जाता है जब श्रमिक कार्य करता हो। परन्तु श्रमिकों को इन दिनों के आधार पर छुट्टी लेने का अधिकार न होगा। जो श्रमिक १ जनवरी के बाद नौकरी आरम्भ करें उनको भी छुट्टी प्राप्त करने का अधिकार होगा यदि वे वर्ष के शेष दो तिहाई दिनों में काम कर सकें। यदि किसी श्रमिक को उपार्जित छुट्टी लेने से पहले ही निकाल दिया जाता है तो मालिकों को उपरोक्त दर से छुट्टी के दिनों का वेतन देना पड़ेगा चाहे उसके कार्य की अवधि कितनी ही रही हो। यह छुट्टी अन्य छुट्टियों के अतिरिक्त प्रदान की जाती है। तथा एक वर्ष में ३ किश्तों में यह छुट्टी ली जा सकती है।

खानों और बागान के श्रमिकों को भी अब ऐसी ही सुविधाएँ प्रदान कर दी गई हैं। १९५२ के खानों के अधिनियम के अन्तर्गत खान का प्रत्येक श्रमिक एक साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त १२ माह की लगातार नौकरी के बाद निम्नलिखित दर से पूरे वेतन सहित छुट्टी का अधिकारी होगा—(i) मासिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों को—१४ दिन (ii) साप्ताहिक वेतन पाने वाले कर्मचारी या बोझ उठाने वाले श्रमिक अथवा खान के भीतरी मुहानों पर काम करने वाले श्रमिक या कार्य के आधार पर वेतन पाते हैं—७ दिन। केवल मासिक वेतन पाने वाले कर्मचारी ही अपनी छुट्टियों को २८ दिनों तक एकत्रित कर सकते हैं। छुट्टी लेने के लिये काम की माँग

स्वक प्रवधि प्राप्त बढ़ाने वाले श्रमिकों तथा खान के भीतरी धरातल पर काम करने वाले ऐसे श्रमिकों के लिये, जो काम के आधार पर वेतन पाते हैं १२ महीनों में १९० दिन है और अन्य सब श्रमिकों के लिय २६५ दिन है।

१९५१ के बागान श्रम अधिनियम के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को निम्न लिखित दर से सवेतन छुट्टी देने की व्यवस्था है—(क) वयस्क के लिये २० दिन के कार्य पर १ दिन की छुट्टी (ख) बच्चों तथा किशोरावस्था वालों के लिये १५ दिन के कार्य पर १ दिन की छुट्टी। श्रमिको को ३ दिन तक छुट्टी एकत्रित करने का अधिकार है। राज्य सरकार श्रमिकों की साप्ताहिक छुट्टी के बारे में तथा उस दिन काम करने पर वेतन के बारे में नियम बना सकती है।

१९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम के अनुसार प्रत्येक मालिक को यह स्पष्ट कर देना चाहिये कि वह श्रमिको को कितनी वेतन सहित या वेतन रहित छुट्टियां देगा और छुट्टियां किस प्रकार दी जायेगी।

उत्तर प्रदेश में चीनी मिलों के श्रमिकों के सम्बन्ध में नवम्बर १९५७ में एक विशेष नियम बनाया गया जिसके अनुसार फैक्टरी अधिनियम के अतिरिक्त, छुट्टी वेतन आदि के सम्बन्ध मे निम्नलिखित व्यवस्था की गई है—स्थायी श्रमिक—साल में आकस्मिक छुट्टी ६ दिन बीमारी की छुट्टी १० दिन मौसमी श्रमिक—मिलों में चीनी बनने के मौसम में हर महीने पर आधे दिन की आकस्मिक छुट्टी तथा आधे दिन की बीमारी की छुट्टी। यदि किसी माह में १५ दिन से अधिक कार्य हो तो वह पूरा माह समझा जायगा।

१९४७ के औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में पर्वों की छुट्टियों की भी व्यवस्था कर दी गई है। १९५० में इनकी संख्या साल में १७ दिन निश्चित की गई जो १९५३ में बढ़ाकर १८ कर दी गई। नवम्बर १९५५ में यह १८ दिन पर्वों की छुट्टियां चीनी मिलों पर भी लागू कर दी गई। अगस्त १९६१ में उत्तर प्रदेश में एक और अधिनियम पास हुआ है जिसको औद्योगिक संस्था (राष्ट्रीय छुट्टियां) अधिनियम [Industrial Establishment (National Holidays) Act] कहते है। इसके अन्तर्गत औद्योगिक श्रमिकों को गणराज्य दिवस व स्वतन्त्रता दिवस तथा गांधी जयन्ती पर सवेतन छुट्टी प्रदान करने की व्यवस्था है।

वर्तमान स्थिति —

इन वैधानिक उपबन्धों के होते हुए भी छुट्टियां तथा अवकाश देने की व्यवस्था संतोषजनक नहीं है। स्वयं अधिनियमों में ही कुछ सुधार सम्भव हैं जैसे कि अधिनियम सब कारखानों पर लागू होना चाहिये। छुट्टियों का एकत्रित करने की अवधि भी दो वर्ष से अधिक होनी चाहिये। यह अवधि पांच वर्ष की हो सकती है। इस बात की सुविधा भी होनी चाहिये कि श्रमिक अपनी सवेतन छुट्टियों की अवधि को वेतन रहित छुट्टियां लेकर आगे बढ़ा सकें। इस प्रकार यदि आवश्यक हो तो प्राप्तव्य(Due) छुट्टियों से दुगुनी छुट्टियां तक भी मि सकें। ऐसा भी देखा गया है कि व्यवहार में

अधिनियम की धाराओं का न ठीक से पालन होता है और न उनको ठीक से लागू किया जाता है। अधिकतर कारखानों में "काम नहीं तो वेतन भी नहीं" का सिद्धान्त ही अपनाया जाता है और क्योंकि भारतीय श्रमिक निर्धन होता है और एक काफी बड़े परिवार का भार उस पर होता है अतः साधारणतः वह उस समय तक वेतन रहित छुट्टी नहीं लेना चाहता जब तक यह उसके लिए बहुत ही आवश्यक न हो जाए। केवल यही नहीं वह कभी कभी छुट्टियों में भी काम करना चाहता है। ऐसा प्रायः मौसमी व अनियमित कारखानों में देखा जाता है। मालिक भी श्रमिकों से मिलकर छुट्टी वाले दिन कारखाना खुला रखते हैं। यह इस बात से स्पष्ट हो जाता है कि कहीं कहीं हाजिरी के रजिस्टर में तो श्रमिक साप्ताहिक छुट्टी के दिन अनुपस्थित दिखाया गया होता है परन्तु वेतन की बही पर सप्ताह के सातों दिनों का भुगतान मिलता है। अवकाश और छुट्टियाँ भी अधिकार के रूप में नहीं अपितु विशेष कृपा के रूप में प्रदान की जाती हैं। परिणामस्वरूप अत्यन्त पक्षपात तथा असमान व्यवहार होता है और बहुधा श्रमिक संघ के कार्यकर्त्ताओं को इस विषय में वंचित किया जाता है। बीमारी की छुट्टी के लिए कारखाने के डाक्टर का प्रमाण-पत्र उपस्थित करना पड़ता है। परन्तु वे सदैव पक्षपातरहित नहीं होते और बहुधा अवैध घूस भी लेते हैं। अतः कानूनी व्यवस्था की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वे किस प्रकार कार्यान्वित किए जा रहे हैं और यह तभी सम्भव है जब पर्याप्त निरीक्षण और मालिकों का पूरा सहयोग प्राप्त हो। अनेक राज्यों में ऐसा देखा गया है कि अधिनियम की धाराओं को ठीक से नहीं लागू किया जाता। यदि मालिकों को अपने श्रमिकों में एक सन्तोष की भावना पैदा करनी है और उनकी कार्यकुशलता बढ़ानी है तो उन्हें सवेतन छुट्टियों का मूल्य तथा उनकी महत्ता को भली भाँति अनुभव करना चाहिए।

छुट्टियों की न्यूनतम संख्या —

कांग्रेस की राष्ट्रीय आयोजना समिति की श्रम उपसमिति ने इस बात की सिफारिश की थी कि प्रत्येक औद्योगिक श्रमिक को १२ माह नौकरी करने के बाद १० कार्य के दिनों की सवेतन छुट्टियाँ मिलनी चाहिएँ, जिनमें सार्वजनिक छुट्टियाँ सम्मिलित नहीं होनी चाहिए। परन्तु डा० बी० आर० सेठ ने एक नोट में अपना यह मत प्रकट किया कि श्रमिकों के लिए दस दिन की छुट्टियाँ इतनी पर्याप्त नहीं हैं कि वह दैनिक मेहनत के बाद कुछ आराम पा सकें और अपने स्वास्थ्य को ठीक कर सकें जबकि वास्तव में छुट्टियाँ देने का मुख्य उद्देश्य यही है। श्रमिक अधिकतर छुट्टियाँ अपने घर व्यतीत करना चाहते हैं और उनका घर साधारणतया औद्योगिक नगरों से काफी दूर होता है। इसलिए थोड़े दिनों के लिए वे यात्रा का व्यय आदि सहन करना पसन्द नहीं करेंगे। अतः १२ माह की नौकरी के बाद सवेतन छुट्टियों की न्यूनतम संख्या कम से कम १२ दिन होनी चाहिये और प्रत्येक वर्ष इस संख्या में एक दिन की वृद्धि होनी चाहिए। इस प्रकार अधिकतम छुट्टियों की संख्या ३० दिन तक होनी चाहिए जोकि श्रमिकों को १८ वर्ष की नौकरी के पश्चात् मिल सके। श्रमिकों

को कम से कम दो वर्ष तक अपनी छुट्टियाँ एकत्रित करने की सुविधा होनी चाहिए। मालिकों को असुविधा न हो इसलिए छुट्टियाँ ऐसे समय दी जा सकती हैं जबकि कार्य और व्यापार में कुछ शिथिलता हो। और एक समय में दस प्रतिशत से अधिक कर्मचारियों को छुट्टी प्रदान नहीं करनी चाहिए। इस बात का भी सुझाव दिया गया है कि छुट्टियों के दिनों का वेतन मालिकों द्वारा संचित ऐसी निधि से दिया जाना चाहिए जो सार्वजनिक नियंत्रण में हो। मालिकों को इस निधि में धन अपने श्रमिकों की संख्या तथा कुल मजदूरी के बिल के अनुसार जमा करना चाहिए। छुट्टियों के दिनों का वेतन श्रमिकों को छुट्टी से वापिस आने पर मिलना चाहिए, जिससे श्रमिकावर्त के दोष कम हो जावें।

कृषि श्रमिकों के लिए भी सवेतन छुट्टियों की महत्ता स्वीकार कर ली गई है और अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक सम्मेलन ने जून १९५२ में अपने ३५वें अधिवेशन में इस सम्बन्ध में एक अभिसमय भी पास किया था। कृषि श्रमिकों के लिए एक वर्ष की नौकरी के बाद कम से कम एक सप्ताह की छुट्टी की सिफारिश की गई है और १८ या १६ वर्ष से कम आयु के लोगों के लिए छुट्टियों की संख्या इससे भी अधिक होनी चाहिए। आशा है कि इस अभिसमय को भारतीय सरकार स्वीकार कर लागू कर देगी।

श्री वी० वी० गिरि ने राष्ट्रीय तथा पर्वों की छुट्टियों के सम्बन्ध में एक महत्व पूर्ण विचार प्रकट किया है। ऐसी छुट्टियों में प्रत्येक राज्य तथा स्थान पर विभिन्नता पाई जाती है। परन्तु विभिन्न उद्योगों तथा कारखानों में छुट्टियों की संख्या में समता अवश्य होनी चाहिए। कुछ संस्थाओं में राष्ट्रीय तथा पर्व-सम्बन्धी छुट्टियों की संख्या बहुत है। हमें अत्यधिक अवकाश तथा कम काम की बात ही नहीं सोचनी चाहिए। परन्तु इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि ऐसे लोगों के लिए जिनके जीवन में कोई अन्य सुख और शान्ति नहीं है, हमारे पुराने पर्व ही मनोरंजन तथा विश्राम के सर्व-उपयुक्त साधन हैं। अतः हमारी अवकाश की इच्छा तथा उत्पादन के प्रति उत्तरदायित्व में एक समुचित सामंजस्य होना चाहिए और राष्ट्रीय तथा पर्व-सम्बन्धी छुट्टियाँ प्रदान करने के लिए एक समान रीति अपनानी चाहिए। सरकार इस ओर ध्यान दे रही है और इस समस्या पर अनेक श्रम सम्मेलनों में भी विचार किया जा चुका है।

५

भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन

(Trade Unionism in India)

श्रमिक संघ की परिभाषा—विभिन्न मत—

श्रमिक संघों की उत्पत्ति पर प्रकाश डालते हुए विभिन्न लेखकों ने इन संघों की विभिन्न परिभाषाएँ दी हैं। सिडने और बैट्रिस वेब[1] के मतानुसार "एक श्रमिक संघ मजदूरी प्राप्त करने वालों का एक ऐसा निरन्तर समुदाय है, जिसका उद्देश्य उनकी कार्मिक जीवन की स्थितियों को सुधारना तथा कायम रखना है। वेब के अनुसार इन संघों का मूल उद्देश्य "रोजगार की स्थितियों को इस प्रकार सक्रिय रूप से नियमित बनाने का है कि श्रमिकों को औद्योगिक प्रतिस्पर्धा के बुरे प्रभावों से बचाया जा सके। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये सामाजिक विकास की स्थिति के अनुसार पारस्परिक बीमा, सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) तथा कानूनी विधि जैसे तरीकों को अपनाया जाता है। उनके मतानुसार प्रजातांत्रिक समाज में एक ऐसे श्रमिक संगठन की अत्यन्त आवश्यकता है जिसके द्वारा श्रमिक भी अपने रोजगार की स्थितियों का नियमित करने में कुछ योग दे सकें। इस प्रकार से श्रमिक संघों के विकास को पूंजीवादी व्यवस्था की एक घटनामात्र नहीं कहा जा सकता बल्कि प्रजातंत्र राज्य में उनका एक स्थायी महत्त्व है। एक अन्य विद्वान[2] के अनुसार "श्रमिक आन्दोलन एक परिणाम है, जिसका मुख्य कारण मशीन है। मशीन श्रमिकों की रोजगार सम्बन्धी सुरक्षा में बाधक सिद्ध होती है। श्रमिक अपने बचाव के लिये संघों के द्वारा मशीन पर नियन्त्रण पाने का प्रयत्न करता है और इस प्रकार से ये संघ सामाजिक कल्याण में सहायक सिद्ध होते हैं। श्रमिक संघ आन्दोलनों द्वारा वर्तमान पूंजीवादी व्यवस्था के स्थान पर एक औद्योगिक प्रजातंत्र की स्थापना करने का प्रयत्न किया गया है। रॉबर्ट हॉक्सी का विश्वास है कि श्रमिक संगठन सामूहिक मनोविज्ञान (Group Psychology) के कारण सम्पन्न हुए हैं। श्रमिक संघ ही ऐसी संस्था है जिसमें श्रम सम्बन्धी अनेक समस्याओं तथा श्रमिकों की उन्नति के कार्यक्रम पर सामूहिक रूप से विचार किया जाता है। 'सेलिग पर्लमैन' के अनुसार किसी भी देश में श्रमिक संघ आन्दोलन का स्वरूप उस देश के बुद्धिमान लोगों के कार्यों, पूंजीवाद के विरोध तथा लोगों में रोजगार पाने की इच्छाओं के पारस्परिक सामंजस्य

1 *History of Trade Unionism* by Sidney and Beatrice Webb

2 Frank Tonnenbaum —Quoted in *Insights into Labour Issues* by Lester and Shister

पर निर्भर करता है। कार्ल मार्क्स[1] के मतानुसार संघ ही सबसे प्रथम तथा सबसे अग्रगामी 'संगठनकर्ता केन्द्र' (Organising Centre) था। श्रमजीवियों के एकत्री करण का प्रारम्भ इन संघों से ही होता है। संगठन की अनुपस्थिति में श्रमिक रोजगार पाने के लिये आपस में ही प्रतिस्पर्धी बने रहते थे। श्रमिक संघों के विकास का वास्तविक कारण यही है कि श्रमिक इस स्पर्धा को समाप्त कर देना चाहते थे या इस स्पर्धा को इतना सीमित कर देना चाहते थे कि उनको रोजगार की ऐसी शर्तें प्राप्त हो सकें जिनसे उनका स्तर दासता की श्रेणी से ऊँचा उठ सके। मार्क्स के विचार में श्रमिक संगठन ही एक ऐसा साधन और केन्द्र है जिसके अन्तर्गत कार्य करते हुए श्रमिक वर्ग समाज की व्यवस्था में परिवर्तन कर सकता है। जिस प्रकार मध्य कालीन नगरपालिकाएँ तथा समितियाँ 'बुर्जुआ' वर्ग के संगठन का केन्द्र थीं श्रमिक संघ उसी प्रकार से मजदूर वर्ग (Proletariat) के संगठन के केन्द्र हैं। इस प्रकार से श्रमिक संघों का अपने साधारण कार्यों के अतिरिक्त एक महत्वपूर्ण कार्य यह भी होना चाहिये कि वे श्रमिक वर्ग की राजनैतिक मुक्ति के हेतु संगठन का केन्द्र बनें।

श्रमिक संघवाद का विकास —

श्रमिक संघवाद का विकास आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप ही हुआ है। पहले जब मालिकों तथा श्रमिकों में पारस्परिक सम्पर्क रहता था तब उनके सम्बन्धों को उचित रूप देने के लिए किसी विशेष संगठन की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। परन्तु आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था में वह पारस्परिक सहयोग तथा सम्पर्क समाप्त हो गया है, और उनके सम्बन्ध अत्यन्त कटु हो गये हैं। इसके अतिरिक्त आधुनिक औद्योगिक जीवन में मजदूर वर्ग व्यक्तिगत रूप से सौदा करने में अपने मालिक की अपेक्षा अधिक निर्बल होता है। इसका कारण श्रम की विशेषताएँ हैं। श्रम एक नाशवान् वस्तु है। इसको संचित नहीं किया जा सकता। श्रमिक यदि काम नहीं करेगा तो उसे भूखा रहना पड़ेगा। इसके विपरीत मालिक प्रतीक्षा कर सकते हैं। अतः श्रमिक मालिकों से उचित शर्तों पर सौदा करने में असमर्थ रहते हैं, और मालिक अधिक लाभ प्राप्त करने के हेतु उनका शोषण करने में सफल हो जाते हैं। व्यक्तिगत रूप से श्रमिक अपना महत्व तथा बाजार में अपना मूल्य भी ठीक प्रकार से नहीं आँक पाता। अतः प्रत्येक देश में औद्योगिक प्रगति के प्रारम्भ में ही श्रमिकों को इस सत्य का आभास हो गया कि जब तक वे श्रमिक संघों की सहायता के द्वारा अपनी सौदाकारी की अवस्था को प्रबल न बनायेंगे तब तक वे मालिकों के शोषण से अपनी सुरक्षा नहीं कर सकते। इस प्रकार श्रमिक संघों की उत्पत्ति हुई। उनके विकास की गति तथा कार्यों का स्वरूप प्रत्येक देश की राजनैतिक आर्थिक तथा बौद्धिक प्रगति पर निर्भर रहा है। इनसे सामाजिक संघर्ष का संकेत मिलता है परन्तु साथ ही ये सामाजिक उन्नति के परिचायक हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि श्रमिक संघ मजदूरों का संगठन है।

---

1 *Marx and the Trade Unions* by A. Lozovsky

श्रमिक स्वयं को संगठित करते है, चन्दा जमा करते हैं, तथा अपने संघ को कानून के अनुसार पंजीकृत करवाते हैं और फिर उनका यह संघ श्रमजीवियों के हित के लिये अनेक कार्य करता है। पारिभाषिक दृष्टि से ट्रेड यूनियन अर्थात् 'व्यापार संघ' में मालिक तथा मजदूर दोनों ही के संघों को सम्मिलित किया जाता है परन्तु साधारणतया 'व्यापार संघ' का तात्पर्य मजदूरों के संगठन अर्थात् श्रमिक संघ से लिया जाता है।

श्रमिक संघों के कार्य —

श्रमिक संघों के कार्यों को तीन विभागों में विभाजित किया जा सकता है:—

(१) अन्तर्मुखी कार्य (Intra-mural Activites)—इनके अन्तर्गत वे सब कार्य आते हैं जिनके द्वारा श्रमिकों के रोजगार की स्थिति में उन्नति हो सकती है। इन कार्यों का उद्देश्य यह है कि वे श्रमिकों के लिये पर्याप्त मजदूरी रोजगार व कार्य की अच्छी स्थितियां मालिकों से उचित व्यवहार, काम के घंटों में कमी आदि की सुविधा प्राप्त करने का प्रयत्न करें। इसके अतिरिक्त ये संघ इस बात का भी प्रयत्न करते हैं कि श्रमिकों को लाभ-सहभाजन (Profit-sharing) तथा उद्योग व्यवस्था के नियन्त्रण में भाग लेने का अधिकार मिले। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये ये संघ सामूहिक सौदाकारी मालिकों से पारस्परिक वार्तालाप हड़ताल तथा बहिष्कार जैसे साधनों को अपनाते हैं। इसीलिये इन कार्यों को कभी कभी "झगड़े या संघर्ष के कार्य" भी कह दिया जाता है।

(२) बहिर्मुखी कार्य (Extra-mural Activities)—इन कार्यों का उद्देश्य श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि करना तथा आवश्यकता के समय उनकी सहायता करना होता है। श्रमिक संघ श्रमिकों में सहकारिता तथा मित्रता की भावना उत्पन्न करते हैं और उनमें शिक्षा व संस्कृति का प्रसार करते हैं। बीमारी व दुर्घटना तथा बेकारी हड़ताल व तालाबन्दी के समय ये संघ श्रमिकों को हर प्रकार की आर्थिक सहायता देते हैं। आवश्यकता के समय वे श्रमिकों को कानूनी सहायता भी प्रदान करते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिकों के लिये ये संघ अनेक अन्य कल्याणकारी कार्य भी करते हैं जैसे श्रमिकों के बच्चों के लिये स्कूल खोलना पुस्तकालय तथा वाचनालयों की व्यवस्था करना घर के बाहर व भीतर के खेलों का प्रबन्ध करना और अन्य मनोरंजन के साधन प्रदान करना। कुछ संघ तो श्रमिकों के लिये मकानों की व्यवस्था भी करते हैं, और उनके लिये पत्र-पत्रिकाएं प्रकाशित करते हैं। ऐसे कार्यों को बन्धुत्व-कार्य (Fraternal Activities) भी कहते हैं। इन कार्यों की सफलता श्रमिकों के आपस मैत्रीत्व तथा उनकी पर्याप्त निधि (Funds) पर निर्भर करती है जिसका निर्माण संघ के सदस्यों से चन्दे तथा अन्य लोगों द्वारा दी गई आर्थिक सहायता से होता है।

(३) राजनैतिक कार्य— कुछ श्रमिक संघ चुनाव लड़ते हैं, और सरकार बनाने का प्रयत्न करते हैं। अनेक देशों में शक्तिशाली श्रमिक दलों का विकास हो चुका है और इंगलैण्ड में तो अनेक बार श्रमिक दल ने सरकार बनाई है। भारत में संघों के

राजनैतिक कार्य अधिक महत्वपूर्ण नहीं है यद्यपि कभी कभी श्रमिक संघों ने सरकार की श्रम नीति को प्रभावित अवश्य किया है और विधान सभाओं में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व भी किया है।

श्रमिक संघों के हानि और लाभ—

श्रमिक संघों द्वारा किये हुये कार्य श्रमिकों के लिये इतने महत्वपूर्ण तथा हितकारी हैं कि इन संघों का अस्तित्व उनके लिये वरदानस्वरूप है। परन्तु कई बार इनके कार्य आलोचनात्मक भी हो जाते हैं। श्रमिक संघ उत्पादन के विवेकीकरण तथा अन्य उन्नत पद्धतियों के प्रति साधारणतया एक प्रकार का विरोधात्मक दृष्टि कोण सा बना लेते हैं क्योंकि इन्हीं पद्धतियों से कुछ श्रमिकों को काम पर से हटाने की सम्भावना रहती है। इसके अतिरिक्त कभी कभी ये श्रमिकों को कार्य-मंदन नीति अपनाने के लिये प्रेरित करते हैं जिससे औद्योगिक उन्नति में बाधा पहुँचती है और राष्ट्रीय आय को हानि पहुँचती है। अनेक बार अपनी शक्ति के नशे में मामूली बातों पर ही वे हड़ताल करा देते हैं और इस प्रकार से वे न केवल उत्पादकों तथा समाज को हानि पहुँचाते हैं वरन् स्वयं भी हानि उठाते हैं। अनेक बार ये संघ मालिकों को इस बात के लिए विवश करते हैं कि श्रमिक उनके द्वारा ही कार्य पर लगाये जायें। इस प्रकार से वे श्रमिकों की पूर्ति में कृत्रिम (Artifical) अभाव उत्पन्न कर देते हैं।

परन्तु इन दोषों के होते हुये भी श्रमिक संघ अत्यन्त लाभप्रद सिद्ध हुये हैं और उनके विकास ने समय की एक बहुत बड़ी आवश्यकता को पूरा किया है। एक शक्तिशाली संघ उद्योग-धन्धों की स्थिरता तथा औद्योगिक शान्ति के हेतु एक आश्वासन है। अगर कोई भी निर्णय सामूहिक रूप से किया जाय तो वह स्वयं श्रमिकों में अधिक मान्य होता है और मालिक भी ऐसे निर्णयों को आसानी से टाल नहीं सकते। ये संघ अपने कार्यों द्वारा न केवल श्रमिकों की रोजगार तथा मजदूरी की अवस्था में सुधार व उन्नति करते हैं, वरन् श्रमिकों की कार्य-कुशलता बढ़ाने में भी सहायक सिद्ध होते हैं और उनमें आत्म-सम्मान तथा आत्म-विश्वास की भावना उत्पन्न करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि इन संघों की अनुपस्थिति में श्रमिक वर्ग का क्रूरतापूर्वक शोषण होगा जो राष्ट्र की प्रगति के लिये घातक सिद्ध होगा।

श्रमिक संघों पर मजदूरी का प्रभाव:—

श्रमिक संघ मजदूरी की दर पर भी प्रभाव डालते हैं। संस्थापक अर्थशास्त्रियों (Classical Economists) का मत था कि संघ मजदूरी में स्थायी कमी व वृद्धि नहीं कर सकते। क्योंकि यदि मजदूरी में वृद्धि होगी तो लाभ कम हो जायेगा। लाभ कम होने से उद्योग-धन्धों की संख्या भी कम हो जाएगी। परिणामस्वरूप श्रमिकों की माँग भी गिर जायेगी। इसलिए या तो मजदूरी कम होगी या श्रमिकों को बेरोजगारी का सामना करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त मजदूरी श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता (Marginal Productivity) द्वारा निर्धारित होती है। अतः श्रमिक

संघों का मजदूरी पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता।

परन्तु आधुनिक अर्थशास्त्री मजदूरी पर श्रमिक संघों के प्रभाव को स्वीकार करते हैं। श्रमिक संघ प्रत्यक्ष रूप से तो साधारणतया मजदूरी पर प्रभाव नहीं डालते परन्तु उनका प्रभाव उन अनेक आर्थिक शक्तियों पर होता है जिनके कारण मजदूरी स्थायी रूप से बढ़ सकती है। प्रथम तो संघ इस बात का पूरा ध्यान रखते हैं कि श्रमिक को उसकी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार पूरी मजदूरी मिल जाए। सम्पूर्ण प्रतियोगिता में मजदूरी सीमान्त उत्पादकता के अनुसार तो मिलती है परन्तु वास्तविकता यह है कि सम्पूर्ण प्रतियोगिता कम ही होती है। श्रमिकों की सौदा करने की शक्ति मालिकों की अपेक्षा कम होती है और उनका शोषण होता है तथा उनको सीमान्त उत्पादकता के अनुसार भी मजदूरी नहीं मिल पाती। श्रमिक संघ मजदूरों की सौदा करने की शक्ति को बढ़ाकर मजदूरी को सीमान्त उत्पादकता की सीमा तक बढ़ा सकते हैं। दूसरे वे स्वयं श्रमिकों की सीमान्त उत्पादकता में वृद्धि कर सकते हैं और इस प्रकार मजदूरी को स्थायी रूप से बढ़ा सकते हैं। श्रमिक संघ मालिकों द्वारा अच्छी मशीन तथा समुचित संगठन की व्यवस्था कराके तथा स्वयं श्रमिकों में शिक्षा तथा कल्याणकारी कार्यों का प्रसार करके उनकी कार्यकुशलता में वृद्धि कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिक संघ किसी विशेष व्यवसाय में भी श्रमिकों की पूर्ति सीमित करके उनकी मजदूरी बढ़ा सकते हैं। परन्तु उनका यह प्रयत्न अनेक बातों पर निर्भर करता है। प्रथम तो जो वस्तु श्रमिकों द्वारा निर्मित की जा रही है किसी अन्य साधन से प्राप्त न की जा सके। दूसरे उस वस्तु की माँग भी बेलोचदार हो जिससे उसका मूल्य बढ़ाया जा सके। तीसरे उस वस्तु के निर्माण में जो कुल खर्च आता हो उसमें मजदूरी का अंश कम हो जिससे कि मजदूरी अधिक देने पर भी वस्तु का मूल्य अधिक न बढ़े। चौथे उत्पत्ति के अन्य साधन तथा अन्य प्रकार के श्रमिक आसानी से मिलते रहें और वे अपनी पूर्ति को सीमित न करें। इन सभी बातों के होने पर ही किसी विशेष व्यवसाय के श्रमिक अपने संघ की सहायता द्वारा अपनी पूर्ति सीमित करके अपनी मजदूरी को बढ़ा सकते हैं।

अनेक बार ऐसा भी देखा गया है कि श्रमिक संघ मालिकों को इस बात के लिए बाध्य करते हैं कि वे श्रमिकों के रोजगार व काम की स्थिति में सुधार करें तथा उनको बोनस व मंहगाई भत्ता आदि के रूप में समय-समय पर लाभ में से भी एक भाग देते रहें। इस प्रकार ये संघ अपने प्रयत्नों द्वारा न केवल नकद मजदूरी (Nominal Wages) में ही वृद्धि करते हैं वरन् असल मजदूरी (Real Wages) में भी वृद्धि कर सकते हैं।

श्रमिक संघों के विभिन्न रूप—

श्रमिक संघ कई प्रकार के होते हैं। प्रथम तो 'दस्तकारी संघ' (Craft Unions) होते हैं जिनको व्यावसायिक संघ भी कहा जाता है। यह ऐसे श्रमिकों के

संगठन होते हैं जो किसी एक विशेष व्यवसाय या दो तीन सम्बन्धित व्यवसायों में काम पर लगे हों। उदाहरणतः रेल इंजिन के ड्राइवरों का संघ और अहमदाबाद जुलाहा संघ आदि। दूसरे औद्योगिक संघ होते हैं। ये संघ एक ही उद्योग-धन्धे में लगे हुए श्रमिकों का संगठन होता है जो धन्धा चाहे कोई भी करते हों। उदाहरणतः कपड़ा उद्योग में लगे हुए श्रमिकों का संघ या रेल कर्मचारियों का संघ आदि। अधिकतर श्रमिक संघ औद्योगिक संघ ही होते हैं। तीसरी प्रकार संगम (Federation) की है। विभिन्न संघ जब किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठित होकर एक सम्मिलित संघ बना लेते हैं तो उसे संगम कहते हैं। ऐसे संगम या तो स्थानीय होते हैं जैसे अहमदाबाद का सूती कपड़ा संगम या प्रान्तीय होते हैं जैसे बम्बई के रेल डाक कर्मचारियों का संगम या राष्ट्रीय भी होते हैं, जैसे नेशनल फेडरेशन ऑफ इण्डियन रेलवेमैन या इण्डियन नेशनल ट्रेड यूनियन काँग्रेस आदि। कुछ अन्तर्राष्ट्रीय संगम भी होते हैं जैसे इंटरनेशनल कान्फीडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन (स्वतन्त्र श्रमिक संघों का अन्तर्राष्ट्रीय संगम)।

श्रमिक संघों के विकास के लिए आवश्यक तत्त्व —

प्रत्येक देश में श्रमिक संघों के विकास के लिए कुछ बातों का होना आवश्यक है। प्रथम बात तो देश का औद्योगिक विकास है। श्रमिक संघ आधुनिक औद्योगिक व्यवस्था के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुए हैं। बड़े पैमाने के आधुनिक उद्योग-धन्धों की अनुपस्थिति में श्रमिक संगठन का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरे श्रमिक संघों के विकास के लिए यह भी आवश्यक है कि मजदूरों में असन्तोष की भावना हो। जब तक श्रमिक शोषित अवस्था में न होंगे वे संगठन बनाने की आवश्यकता को अनुभव न करेंगे। अतः श्रमिक संघों का विकास न हो पाएगा। यह बात इससे स्पष्ट हो जाती है कि विरोधी दल सरकार की त्रुटियों से लाभ उठाते हैं। साम्यवादी दल के आरम्भ में कई देशों में यह नीति रही है कि पूँजीवादी व्यवस्था को थोड़ा सा प्रोत्साहन दिया जाए जिससे कि उसके दोष इतने बढ़ जाएँ कि उसे समाप्त करने में कठिनाई न हो। अतः जब तक शोषण न होगा और श्रमिक साम्यवादी बने रहेंगे श्रमिक संघ उन्नति नहीं कर सकते। तीसरे यह भी आवश्यक है कि श्रमिकों के स्वतन्त्र व्यक्तित्व को स्वीकार किया जाए और उन्हें दास न समझा जाए। उनके संगठन भी समाज द्वारा मान्य हों। एक हिटलर जैसी फासिस्ट अर्थ-व्यवस्था में हम किसी प्रभावशाली श्रमिक संघ की कल्पना भी नहीं कर सकते। इसके अतिरिक्त श्रमिक संघों के विकास के लिये यह भी आवश्यक है कि श्रमिक शिक्षित हों उन्हें अपने अधिकारों तथा संगठन के लाभों का ज्ञान हो उनकी आय इतनी हो कि वे आसानी से संघों को चन्दा दे सकें, जनता और सरकार भी उनके उद्देश्यों से सहानुभूति रखती हो और संघ के नेता भी श्रमिक वर्ग के ही हों। श्रमिक संघों को अपनी उन्नति के लिए बहिर्मुखी कार्यों की ओर भी अधिक ध्यान देना चाहिये।

संक्षेप में एक अच्छे और सफल श्रमिक संघ की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं —

(क) संघ के सदस्यों की संख्या अधिक हो — अर्थात् सम्बन्धित व्यापार या व्यवसाय के अधिकांश श्रमिकों का वह प्रतिनिधित्व करती हो। (ख) उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी हो। (ग) उसके नेता योग्य ईमानदार तथा श्रमिक वर्ग के हों। (घ) उसके सदस्य शिक्षित हों और उन्हें अपने अधिकारों का पूर्ण ज्ञान हो तथा संघ के कार्यों में उन्हें पूर्ण रुचि हो। (ङ) सदस्यों में एकता की भावना हो और उनमें प्रतिद्वन्दिता तथा पारस्परिक द्वेषभाव न हो। (च) संघ अपने सदस्यों की भलाई के लिये बहिर्मुखी कार्यों पर अधिक समय तथा धन व्यय करे।

भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन का इतिहास

प्रारम्भिक इतिहास —

भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन का इतिहास अत्यन्त संक्षिप्त है। परन्तु आन्दोलन के इस संक्षिप्त इतिहास में ही अनुभव तथा क्रान्तिकारी कार्यों के इतने प्रचुर उदाहरण मिलते हैं, जितने अन्य देशों के अधिक पुराने तथा विकसित आन्दोलनों में भी नहीं मिलते।

अन्य देशों की भाँति भारत में भी श्रमिक आन्दोलन की उत्पत्ति औद्योगिक विकास के परिणामस्वरूप ही हुई है। पिछली शताब्दी के मध्य में बड़े उद्योगों के विकास के साथ ही औद्योगिक संगठनों की स्थापना की ओर ध्यान आकर्षित हुआ। परन्तु पहले संगठन मालिकों के ही स्थापित हुए, जिन्होंने श्रमिकों के विरुद्ध अपने हितों की रक्षा के लिए अपने संघ बनाए। सर्वप्रथम यूरोपियन मालिकों ने अपने संघ बनाए और सन् १८६० में वे एक ऐसा अधिनियम पास करवाने में सफल हुए, जिस के अन्तर्गत काम छोड़ने वाले श्रमिकों पर मुकदमा चलाया जा सकता था। इसका नाम 'श्रमिक संविदा भंग अधिनियम (Workmen's Breach of Contract Act) था। इसके बाद से ही मालिकों के संगठन अत्यन्त शक्तिशाली होते चले गए और समय समय पर इन्होंने सरकार की श्रम नीति पर काफी प्रभाव डाला है। मालिकों के ऐसे संगठनों को 'चेम्बर्स ऑफ कॉमर्स' कहा जाता है। १९१४–१८ के युद्ध तक श्रमिक संगठनों का विकास परिस्थितियाँ अनुकूल न होने कारण समुचित रूप से न हो सका। श्रमिक अत्यन्त निर्धन व कमजोर थे मालिक अत्यन्त शक्तिशाली थे जनता ऐसी बातों के प्रति उदासीन थी तथा सरकार की भी उनसे कोई सहानुभूति न थी।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि औद्योगिक विकास के प्रारम्भ में श्रमिकों के हितों की ओर कोई ध्यान दिया ही नहीं गया। वरन् सामाजिक कार्यकर्ताओं जन उपकारी व्यक्तियों तथा धार्मिक नेताओं द्वारा मनुष्यता का आधार लेकर इस ओर अनेक प्रयत्न किए गए, परन्तु ये सब प्रयत्न मनुष्यता तथा धर्म की भावना से प्रेरित होकर ही किये गये थे। इनमें किसी प्रकार की सामूहिक सौदाकारी न थी। सन् १८७२ में बंगाल के पी० सी० मजूमदार० नामक एक ब्राह्मोपदेशक ने बम्बई नगर

*R. K. Mukerjee : *Indian Working Class*, page 252-53

में श्रमिकों के हित के लिए आठ रात्रि-स्कूल स्थापित किए। सन् १८७८ में कलकत्ता में ब्रह्म समाज के अन्तर्गत 'कर्मचारियों के मिशन' की स्थापना हुई, जिसने धर्म और नैतिकता सम्बन्धी उपदेश दिये तथा श्रमिकों व पिछड़ी जातियों के लिये रात्रि-स्कूल स्थापित किए। इसी समय पटसन के काम में लगे हुए श्रमिकों की शिक्षा तथा सामाजिक कल्याण के लिये श्री शशीपाद बनर्जी ने 'बड़ा नगर संस्थान' की नींव डाली।

यह बात महत्त्वपूर्ण है कि इस समय से ही मालिकों और मजदूरों में संघर्ष पैदा हो गया था। सन् १८७७ में नागपुर की ऐम्प्रेस मिल में मजदूरी के प्रश्न पर एक हड़ताल होने का विवरण मिलता है। सन् १८८२ और १८९० के मध्य में मद्रास और बम्बई में २५ हड़तालों का विवरण पाया जाता है।[1]

सन् १८७५ में सोराबजी शापुर्जी बंगाली जैसे कुछ परोपकारी व्यक्तियों ने श्रमिकों की दयनीय अवस्था की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित करने के लिए एक आन्दोलन किया जिसका उद्देश्य श्रमिको (विशेषतया महिला व बाल श्रमिकों) की सुरक्षा के हेतु कानून बनवाना था। परन्तु यह आन्दोलन अधिक प्रभावपूर्ण नहीं सिद्ध हो सका। केवल सन् १८८१ का प्रथम 'फैक्टरी अधिनियम' ही पास हुआ। परन्तु इसके अन्तर्गत श्रमिकों को पूर्ण रूप से सुविधाएँ न मिली और बम्बई में श्रमिकों ने इसके विरुद्ध आवाज उठाई। इसी समय श्री नारायण मेघजी लोखान्डे जनता के सम्मुख आए जिन्हें श्रमिकों का प्रथम नेता कहा जा सकता है। इन्होंने अपना जीवन एक मजदूर के रूप में आरम्भ किया था और जीवन भर श्रम आन्दोलनों में सहयोग देते रहे। सन् १८८४ में इन्होंने बम्बई के फैक्टरी-श्रमिकों का एक सम्मेलन आयोजित किया जिसमें एक निवेदन-पत्र[2] (Memorial) तयार किया गया। इस निवेदन-पत्र में सप्ताह में एक छुट्टी, काम के घंटों में कमी तथा अन्य असुविधाओं को दूर करने के पक्ष में प्रस्ताव थे। यह निवेदन-पत्र भारतीय फैक्टरी आयोग के सम्मुख प्रस्तुत किया गया जिसने इस पर विचार भी किया परन्तु सरकार ने आयोग की रिपोर्ट पर कोई कार्यवाही न की। कारखानों के लिए कानून बनाने के लिए आन्दोलन जारी रहे और श्रमिक श्री लोखान्डे के नेतृत्व में इसमें भाग लेते रहे। सन् १८८९ में गवर्नर जनरल से एक निवेदन-पत्र द्वारा प्रार्थना की गई कि श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान की जाए। अप्रेल १८९० में बम्बई में एक बहुत बड़ी सभा हुई जिसमें १० हजार श्रमिकों ने भाग लिया और २ महिला श्रमिकों ने भाषण भी दिया। इसी वर्ष श्रमिकों ने सप्ताह में एक छुट्टी के लिए प्रार्थना करते हुए एक निवेदन-पत्र बम्बई के मिल-मालिक संघ के सम्मुख प्रस्तुत किया। उनकी माँग आसानी से स्वीकार हो गई। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर सन् १८९० में श्री लोखान्डे ने 'बम्बई मिल-मजदूर संघ' (Bombay Mill hands Association) नामक प्रथम

1 Palme Dutt India Today page 375
2. R. K. Das The Labour Movement in India.

श्रमिक संस्था की स्थापना की और एक श्रमिक पत्रिका भी निकाली जिसका नाम 'दीनबंधु' था। श्री लोखान्डे का प्रभाव इस समय काफी बढ़ गया था और उनको १८९० के फैक्टरी आयोग के सम्मुख गवाही देने के लिए बम्बई का प्रतिनिधि निर्वाचित किया गया। परन्तु यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि बम्बई मिल–मजदूर संघ कोई संगठित श्रमिक संघ न था। इसके सदस्यों की न तो कोई सूची थी न इसकी कोई निधि थी और न इसके कोई नियम थे। श्री लोखान्डे को श्रमिक आन्दोलन का अग्रदूत नहीं कहा जा सकता क्योंकि श्रमिकों के हित के लिए तथा उनके लिए कानून बनवाने के लिए उन्होंने जो भी कार्य किए उनमें जन–सेवा की भावना ही अधिक प्रबल थी*।

सन् १८९१ के फैक्टरी अधिनियम के पास होने के साथ ही श्रमिक आन्दोलन का प्रथम अध्याय समाप्त होता है। इसके बाद केवल कुछ स्थानीय आन्दोलन हुए और कुछ नए संघ भी उत्पन्न हुए परन्तु प्लेग अकाल तथा आर्थिक मन्दी आदि के कारण इनकी प्रगति अति धीमी रही। श्री बंगाली तथा श्री लोखान्डे की मृत्यु के बाद आन्दोलन को नेताओं का अभाव अनुभव होने लगा। सन् १८९७ में यूरोपियन और एंग्लो–इण्डियन रेलवे कर्मचारियों का एक संघ (Amalgamated Society of Railway Servants of India and Burma) 'भारत और बर्मा रेलवे कर्मचारी मिश्रित समिति' के नाम से स्थापित हुआ और इसको भारतीय कम्पनी अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत कराया गया। सन १९२८ में इस संस्था का नाम (National Union of Railway Men) 'रेलवे कर्मचारियों का राष्ट्रीय संघ' हो गया। इस संस्था ने भारतीय श्रमिक आन्दोलन में कोई विशेष भाग नहीं लिया और इसका कार्यक्षेत्र मुख्यतः श्रमिकों के हित सम्बन्धी कार्यों तक ही सीमित रहा।

सन् १९०५ में बंगाल–विभाजन के समय श्रमिक आन्दोलन ने फिर सिर उठाया। इस विभाजन से राजनीतिक आन्दोलन आरम्भ हुआ और कुछ राजनैतिक नेताओं ने श्रमिकों का पक्ष लिया। स्वदेशी आन्दोलन जो इस समय आरम्भ हुआ था उससे भी श्रमिकों की अवस्था सुधारने के प्रयत्नों में सहायता मिली। मन्दी के बाद जब व्यवसाय में कुछ पुनरुत्थान (Revival) हुआ तो श्रमिकों द्वारा अधिक मजदूरी की माँग बढ़ी। इसी समय बम्बई की मिलों में विद्युत्–शक्ति आ जाने से काम के घंटों में वृद्धि हो गई और सरकार के इस विचार के समर्थन में कि वयस्क पुरुष श्रमिकों के काम के घंटे कम होने चाहिए श्रमिकों ने आन्दोलन आरम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप १९०५ और १९ ९ के बीच में हड़तालों की एक लहर सी आ गई। उदाहरणतः बम्बई की अनेक मिलों में और उत्तरी बंगाल रेलवे में अनेक हड़तालें हुईं। सबसे बड़ी हड़ताल श्री तिलक को १९०८ में ६ वर्ष के कारावास मिलने के विरोध में हुई। यह राजनीतिक हड़ताल बम्बई में ६ दिन तक चलती रही। इसी श्रमिकों के कुछ संगठन भी बन गए; उदाहरणतः १९०५ में कलकत्ता में मुद्रक-

*Palme Dutt : *India Today* page 375

संघ और १९०७ में बम्बई का डाक-कर्मचारी संघ। १९१० में बम्बई के श्रमिकों की दूसरी महत्वपूर्ण संस्था 'कामगर हितवर्धक सभा' का निर्माण हुआ। इस संस्था ने भी "कामगर समाचार" नामक एक पत्र निकाला। इस संघ ने श्रमिकों के रहन-सहन की तथा काम करने की अवस्थाओं में सुधार करने के लिए, उनके झगड़े निपटाने के लिए, उनके कार्य के घण्टे कम करने के लिए तथा उन्हें दुर्घटना की क्षति-पूर्ति दिलाने के लिए अनेक सफल प्रयत्न किए और सरकार को प्रार्थना-पत्र दिए। १९११ के फैक्टरी अधिनियम के पास होने के साथ-साथ श्रमिक आन्दोलन का दूसरा अध्याय समाप्त होता है।

इस समय तक श्रमिकों के जो भी संगठन बने थे एक निरन्तर संस्था के रूप में न थे। केवल किसी विशेष उद्देश्य या किसी विशेष कार्य की पूर्ति के लिए ही वे अस्थायी रूप से बनाए जाते थे। श्रमिक संघों का वास्तविक प्रारम्भ लड़ाई के उत्तरार्द्ध काल में हुआ जब कि अनेक कारणों वश श्रमिकों में असन्तोष की भावना तथा अरक्षा का भय उत्पन्न हो गया था। असन्तोष की भावना श्रमिकों में लड़ाई से पहले भी थी परन्तु यह अभी तक प्रकट नहीं हो पाई थी क्योंकि श्रमिक अशिक्षित थे उनमें अनुशासन की कमी थी और उनका न कोई संगठन था और न कोई नेता। इसके अतिरिक्त उनमें धर्म सहनशीलता तथा दासत्व की भावना भी थी तथा असह्य परिस्थितियों में वे गांव लौट जाते थे। अतः उनका असन्तोष दबा ही रहा। सन् १९१४-१८ की लड़ाई ने इन परिस्थितियों को बिलकुल बदल दिया। युद्ध के कारण सभी में विशेषकर औद्योगिक श्रमिकों में जागृति आ गई। युद्ध से लौटे हुए सैनिकों ने दूसरे देशों के श्रमिकों की अच्छी अवस्थाओं का वर्णन किया। रूसी क्रान्ति से अन्य देशों में भी क्रान्ति की एक लहर सी पैदा हो गई थी और भारतीय श्रमिक भी इससे प्रभावित हुए बिना न रह सके थे। नवीन विचारों तथा नयी आशाओं का संचार हुआ। असन्तोष तथा विरोध करने की भावना अब दबी न रह सकी। इसके अतिरिक्त कीमतों में वृद्धि होने के कारण निर्वाह-व्यय बढ़ गया था। परन्तु मजदूरी में उतनी वृद्धि नहीं हुई थी। लड़ाई के दिनों में उद्योगपतियों ने बहुत लाभ उठाया था और श्रमिक भी उस लाभ में से अपना भाग प्राप्त करना चाहते थे। देश में फैले हुए राजनीतिक असन्तोष के कारण भी श्रमिकों में अपने अधिकारों के प्रति सजगता आ गई थी। कांग्रेस और मुस्लिम लीग में स्वराज्य पाने के लिए एकता हो गई थी। महात्मा गांधी के 'स्वराज्य आन्दोलन' तथा सरकार द्वारा किए गए अनेक अत्याचारों जैसे जलियांवाला बाग की दुर्घटना 'मार्शल लॉ', 'रौलेट अधिनियम तथा करों में वृद्धि आदि, से देश में एक असन्तोष तथा अस्थिरता की स्थिति आ गई थी। इसके अतिरिक्त 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' (International Labour Organisation) की स्थापना होने से भी श्रमिकों में आत्मसम्मान की भावना उत्पन्न हो गई थी और उन्हें यह अधिकार मिल गया था कि इस संघ के वार्षिक सम्मेलनों में अपना एक प्रतिनिधि भेज सकें। अतः स्पष्ट था कि अपने

अधिकारों तथा आत्मसम्मान के प्रति सजग हो जाने के बाद अब श्रमिक उन पुरानी परम्पराओं में बंधे हुए अत्याचारों को सहन नहीं कर सकते थे। नवीन क्रान्तिकारी विचारों के प्रभाव के कारण उनमें नई सामाजिक व राजनीतिक चेतना आ चुकी थी। परिणामस्वरूप यह विरोध व असन्तोष हड़तालों के रूप में प्रकट हुआ जो १९१८ में प्रारम्भ हुई और १९१९ व १९२० तक समस्त देश में फैल गई। १९१८ में एक बहुत बड़ी हड़ताल बम्बई की कपड़ा मिलों में प्रारम्भ हुई और जनवरी १९१९ तक १,२५,००० श्रमिक इस हड़ताल में सम्मिलित हो गये थे। १९१९ में रॉलेट अधिनियम के विरुद्ध जो हड़ताल हुई उससे यह स्पष्ट हो गया कि श्रमिक राजनैतिक आन्दोलन में भाग लेने में पीछे नहीं रहे थे। सन् १९१९ के अन्त में और १९२० के प्रारम्भ में हड़ताल-लहर ने एक विराट रूप धारण कर लिया था। १९२० के प्रथम ६ महीनों में २०० हड़तालें हुईं जिनमें लगभग १५ लाख श्रमिकों ने भाग लिया[1]।

आधुनिक श्रम संघों के विकास का इतिहास —

इन झगड़े की परिस्थितियों के अन्तर्गत ही भारत में श्रम संघों का जन्म हुआ। मुख्य उद्योग-धन्धों में और विभिन्न केन्द्रों में जो श्रमिक संघ हैं उनका विकास इसी समय से प्रारम्भ हुआ यद्यपि परिस्थितिवश प्रारम्भ में श्रमिक संगठन निरंतर रूप से चालू न हो सका था।

प्रथम श्रमिक संघ के निर्माण का श्रेय श्री बी पी वाडिया को है जिन्होंने श्रीमती बसन्ट के साथ भी काम किया था। श्री वाडिया ने सन् १९१८ में मद्रास के 'पुलाई' नामक स्थान में कपड़ा उद्योग धन्धों के श्रमिकों को संगठित किया। एक ही वर्ष में श्रमिक संघों की संख्या चार तक पहुँच गई जिनमें बीस हज़ार सदस्य थे। यह वही समय था जबकि सम्पूर्ण देश में श्रमिक संघों की स्थापना के प्रयत्न किये जा रहे थे। इस बात का भी पता चलता है कि सन् १९१७ में अहमदाबाद के सूती कपड़ा मिलों के श्रमिकों ने कुमारी अनुसूइया बहिन[2] के नेतृत्व में एक संघ बनाया। कुमारी अनुसूइया बहिन ने अहमदाबाद के श्रमिकों की हड़ताल का भी नेतृत्व किया। परन्तु श्रमिक संगठन के लिये जो विधिपूर्वक प्रथम प्रयास हुआ वह श्री वाडिया ही का था। इस संघ की सदस्यता नियमित थी जिसके लिये शुल्क भी देना पड़ता था। दूसरे उद्योग केन्द्रों ने भी इसका अनुकरण किया और स्थानीय श्रमिकों के संगठन बनने लगे। १९१९ व १९२१ के बीच में अनेक संघों की स्थापना हुई। श्री मिलर के नेतृत्व में पंजाब के रेल कर्मचारियों का एक शक्तिशाली संघ बना। महात्मा गाँधी की प्रेरणा से अहमदाबाद में कई व्यावसायिक संघों की स्थापना हुई जैसे कातने वालों का संघ और बुनने वालों का संघ आदि। ये सब संघ एक संगम में संयुक्त हो गये जिसका नाम अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर परिषद् (Ahmedabad Textile Labour Association) रखा गया। यह संगम देश के अधिकांश उत्तम संघों का

---

1 Palme Dutt : *India Today* pages 377 – 78

2 यह मिल मालिक सेठ के भ्राता श्री अम्बालाल साराभाई की बहिन थी।

एक उदाहरण है और यह बल शान्ति के आधार पर स्थापित है और आज भी इसका स्थान दूसरे संघों से कुछ ऊँचे स्तर पर है।

प्रारम्भ में ये संघ अधिकतर हड़ताल समितियों की भाँति चालू रहे। जैसे ही उनकी माँगें पूरी हो जाती थीं संघ भी समाप्त हो जाते थे। ऐसे संघ हड़ताल की पूर्व सूचना कम देते थे और अपनी शिकायतों को ठीक से प्रस्तुत भी न कर पाते थे। कई बार ऐसा होता था कि उनके कार्यों व बातों में दृढ़ता न होती थी और बहुधा वे ऐसी माँगें प्रस्तुत कर देते थे जिनका पूरा करना कठिन होता था। इसके अतिरिक्त ये संघ एक दूसरे से पृथक भी रहते थे और इनमें एकता नहीं थी। देश में इस समय कोई ऐसा कानून भी न था जिसके अन्तर्गत श्रमिक संघों को मान्यता प्राप्त होती। मालिकों का व्यवहार भी संघों के प्रति विरोधपूर्ण था। मालिकों और संघों में सदा खींचातानी चलती रहती थी। इस खींचातानी के परिणामस्वरूप सन् १६२१ में एक बड़ा झगड़ा हुआ जबकि मद्रास की बकिंघम मिलों में एक तालाबन्दी के बाद हड़ताल घोषित कर दी गई। मालिकों ने हाईकोर्ट से मद्रास श्रमिक संघ के विरुद्ध मजदूरों को हड़ताल के लिये बहकाने के आरोप में एक आदेश (Injunction) प्राप्त कर लिया। संघ पर इस अभियोग के परिणामस्वरूप ७०० पौंड का जुर्माना हुआ। श्री वाडिया ने विवश होकर इस शर्त पर कि मिल वाले संघ से जुर्माना वसूल न करें श्रमिक संघ आन्दोलन से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। इस घटना से यह विदित हो गया कि श्रम आन्दोलन को समाप्त करने के लिए मालिकों के हाथ में एक शक्तिशाली अस्त्र था और श्रमिक नेताओं ने यह अनुभव किया कि श्रमिक संघों के कार्यों को नियमानुसार करने पर भी उन पर मुकदमा चलाया जा सकता था। सन् १६२१ में श्री एन. एम. जोशी ने इस बात का प्रयत्न किया कि एक श्रमिक संघ कानून बनाया जाए और विधान परिषद् में उन्होंने एक विधेयक (Bill) प्रस्तुत किया परन्तु वह उसे पास कराने में सफल न हो सके।

यही समय था जबकि श्रम संघों में सामञ्जस्य (Coordination) स्थापित करने के प्रयत्न प्रारम्भ हुए। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के वार्षिक सम्मेलनों में श्रमिकों के प्रतिनिधियों के चुनाव की आवश्यकता ने भी इस आन्दोलन को प्रोत्साहन दिया। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की सन् १६२० में इसी उद्देश्य से स्थापना हुई। यह कांग्रेस पहिली अखिल भारतीय संस्था थी जिसने यह स्पष्ट कर दिया कि सम्पूर्ण देश में श्रमजीवियों का ध्येय एक ही है। परन्तु यह बात अर्थपूर्ण है कि इस समय श्रम आन्दोलन में पहिला पग राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं ने उठाया। यह इस बात से स्पष्ट होता है कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस के प्रथम अधिवेशन के सभापति कांग्रेस के अनुभवी नेता लाला लाजपतराय थे और स्वागत समिति के अध्यक्ष दीवान चमनलाल थे। कर्नल वेजवुड बैन जो इंगलैंड के श्रम नेता थे इस अधिवेशन में उपस्थित थे। बाद में इसके सभापति देशबन्धु चितरंजन दास पं. जवाहरलाल नेहरू श्री सुभाषचन्द्र बोस और श्री वी. वी. गिरि भी हुए। राष्ट्रीय कांग्रेस ने भी

श्रमिकों को संगठित करने और उनके आन्दोलन को शक्तिशाली करने के लिये एक श्रम उप-समिति की स्थापना की। इन सब बातों से स्पष्ट होता है कि श्रम आन्दोलन श्रमिकों की केवल प्रतिदिन की आर्थिक समस्याओं तक ही सीमित नहीं रहा परन्तु इसमें राजनैतिक रंग भी आ गया। आसाम में चाय बागान के श्रमिकों की जो इस समय हड़ताल हुई वह इस राजनैतिक रंग का ही द्योतक है। परन्तु इस बात में भी कोई सन्देह नहीं कि ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने श्रमिकों की समस्याओं और उनकी आवश्यकताओं के महत्व पर प्रकाश डालने में बड़ा भारी कार्य किया। सन् १९२४ में 'सुधार समिति (Reforms Committee) के सामने इस कांग्रेस ने इस बात की मांग रखी कि विधान सभा में श्रमजीवियों के अधिक सदस्य हों। इसने कई प्रस्तावों द्वारा श्रमिकों की दुर्दशा की ओर सरकार का ध्यान आकर्षित किया और कई कठोर कानून जैसे 'श्रमिक संविदा भंग अधिनियम' को रद्द कराया।

इसी समय सन् १९२२ में रेलवे कर्मचारियों के अखिल भारतीय संघ की स्थापना हुई जिसमें रेलवे कर्मचारियों के सभी संघ सम्मिलित हो गये। श्रमिकों के और कई संगठन जैसे बंगाल के श्रमिक संघों का संघ और बम्बई का केन्द्रीय श्रमिक बोर्ड आदि की स्थापना भी इसी समय हुई।

परन्तु इस समय श्रम आन्दोलन में झगड़ा करने की प्रवृत्ति कुछ अधिक मालूम होने लगी और साम्यवादी लोग (Communists) श्रमिकों में दिखाई देने लगे। इस साम्यवादिता की ओर सरकार का ध्यान सबसे पहिले कानपुर में गया जबकि सन् १९२४ में कुछ साम्यवादी श्रमिकों को षड्यंत्र के आरोप में बन्दी बना लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया और भिन्न भिन्न अवधि के लिए उन्हें दंडित किया गया। सरकार ने इस नई प्रवृत्ति को रोकने के लिये कई कदम उठाये। सन् १९२१ में बंगाल में और १९२२ में बम्बई में औद्योगिक अशान्ति और विवाद की समस्याओं पर सुझाव देने के लिये समितियां नियुक्त की गईं। बम्बई और मद्रास में इसी समय श्रम विभागों की भी स्थापना हुई। एक श्रमिक संघ विधेयक भी तैयार किया गया और लोगों की राय जानने के लिये परिचालित किया गया जो सन् १९२६ में स्वीकृत होकर अधिनियम बना। सन् १९२६ का यह अधिनियम श्रमिक संघ आन्दोलन के इतिहास में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत श्रमिक संघों को वैधानिक मान्यता प्राप्त हो गई। प्रारम्भ में संघों ने रजिस्टर कराने में बहुत उत्साह नहीं दिखाया क्योंकि बकिंघम मिल की घटना के बाद से किसी संघ पर अभियोग नहीं चलाया गया था और संघ इस बात पर तैयार नहीं थे कि रजिस्ट्रेशन का खर्चा उठायें और वार्षिक ब्यौरा देने की भी असुविधा अपने ऊपर लें। परन्तु ऐसी भावना अधिक दिन न टिक सकी क्योंकि यदि कोई श्रमिक संघ स्वीकृत न होता था तो मालिकों को उसको मान्यता न देने का बहाना मिल जाता था। पंजीकृत श्रमिक संघों की संख्या अब तीव्र गति से बढ़ने लगी।

सन् १९२६ के बाद से श्रमिक आन्दोलनों का नेतृत्व साम्यवादियों के हाथों में

चला गया। ये साम्यवादी श्रमिक संघ आन्दोलन की आड़ में अपना कार्य करते रहे। दूसरे देशों के कुछ साम्यवादी जैसे ब्रिटिश साम्यवादी दल के नेता 'स्प्रेट एवं ब्रैडले' १९२७ में कानपुर ट्रेड यूनियन कांग्रेस के अधिवेशन में भाग लेते हुए देखे गए। इन साम्यवादियों ने सन् १९२७ में एक मजदूर और किसान पार्टी की भी स्थापना की जिसका उद्देश्य यह था कि नये श्रमिक संघों की स्थापना हो और जो संघ बन चुके थे उनको सुधारवादियों के नियन्त्रण से निकाल लिया जाये। बम्बई में एक संघ 'गिरनी कामगार' संघ के नाम से चालू किया गया जिसकी सदस्यता ५४००० तक पहुँच गई। इसने पर्याप्त धनराशि भी एकत्रित की और सन् १९२८ में एक हड़ताल को छः माह तक चालू रखा। इस सफलता से प्रोत्साहित होकर साम्यवादियों ने अपना कार्य बंगाल तक फैला दिया और कलकत्ता में एक प्रचार केन्द्र भी खोला। सन् १९२७ में श्री सकलातवाला के आने पर ये साम्यवादी एक पृथक दल के रूप में सामने आये जिसके कार्य करने के ढंग कार्यक्रम तथा विचार अलग ही थे। परिणाम यह हुआ कि अशान्ति और हड़तालों का युग देश में व्याप्त हो गया। कई हड़तालें बम्बई की सूती कपड़ा मिलों में तेल कारखानों में और जी० आई० पी० रेलवे आदि में हुईं। सन् १९२८ में झरिया में साम्यवादियों ने इस बात का पूरा प्रयत्न किया कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर अधिकार जमा लें। सरकार को उनके बढ़ते हुए प्रभाव से चिन्ता हुई और सरकार ने अपनी इस दोहरी नीति को अपनाया कि एक ओर तो कठोरता से दबाया जाय और दूसरी ओर कुछ सुधार का वचन दिया जाय। कठोरता की नीति का परिणाम तो यह हुआ कि श्रमिक वर्ग में जो प्रमुख साम्यवादी नेता थे उन्हें बन्दी बना लिया गया और उन पर मुकदमा चलाया गया। यह मुकदमा संसार के बहुत बड़े और खर्चीले मुकदमों में से एक था। यह मेरठ में चार वर्षों तक चलता रहा और 'मेरठ ट्रायल' (Meerut Trial) के नाम से मशहूर हुआ। नेताओं को भिन्न भिन्न अवधि के लिए दंडित किया गया। सरकार के सुधार के वचन के परिणामस्वरूप रॉयल श्रम आयोग की सन् १९२८ में नियुक्ति हुई जिसका नाम 'ह्विटले कमीशन' भी था। सन् १९२९ में बम्बई में वस्त्रगृहों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए एक जाँच समिति की स्थापना हुई। इस समिति ने अशान्ति और झगड़ों का दोष 'गिरनी कामगार संघ' पर लगाया तथा साम्यवादियों के विरुद्ध कठिन कार्यवाही करने के सुझाव दिये। पहला 'व्यवसाय विवाद अधिनियम' (Trade Disputes Act) १९२९ में पारित हुआ।

इसके पश्चात् साम्यवादियों और सुधारवादियों में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर अपना आधिपत्य जमाने के लिये खींचातानी प्रारम्भ हुई। संयमी (Moderate) श्रमिक संघों को साम्यवादियों के प्रभाव से शंका उत्पन्न हो गई थी। ट्रेड यूनियन कांग्रेस के दसवें अधिवेशन में जो नागपुर में १९२९ में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुआ आमूल परिवर्तन चाहने वालों (Radicals) ने कुछ प्रस्ताव

*B. Shiva Rao *Industrial Worker in India*, page 152.

पास करा लिये जिनमें से मुख्य प्रस्ताव रॉयल श्रम आयोग का बहिष्कार करने और ट्रेड यूनियन कांग्रेस को मॉस्को की 'तीसरी इन्टरनेशनल' से सम्बद्ध कराने के हेतु थे। इसका परिणाम यह हुआ कि संयमी दल श्री एन० एम० जोशी के नेतृत्व में कांग्रेस से पृथक हो गया और अपनी अलग संस्था बना ली जिसका नाम उन्होंने 'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन फेडरेशन' रक्खा। ट्रेड यूनियन कांग्रेस को जिसके नये अध्यक्ष श्री सुभाषचन्द्र बोस चुने गये थे अपने कार्य में अब कठिनाई प्रतीत होने लगी। रेल कर्मचारियों का जो संगम था वह इन झगड़ों से अलग ही रहा। साम्यवादी इतने शीघ्र विभाजन के लिये तैयार न थे। उनका आपस में मतभेद हो गया। कुछ लोग तो मॉस्को की तीसरी इन्टरनेशनल के बताये हुये नियमों पर चलने के पक्ष में थे और कुछ लोग श्री एम० एन० राय के पक्ष में थे जो इस समय भारत में गुप्त रूप से कार्यवाहियाँ कर रहे थे। श्री राय की गिरफ्तारी तथा सन् १९३० के महात्मा गांधी के आज्ञा उल्लंघन आन्दोलन के कारण संगठित रूप से कोई कार्यवाही करना कठिन हो गया। परिणामस्वरूप सन् १९३१ में कलकत्ता में ट्रेड यूनियन कांग्रेस अत्यन्त शोर और गड़बड़ के बाद दो और भागों में विभाजित हो गई। और कुछ लोगों ने श्री देशपांडे और श्री रणदिवे के नेतृत्व में एक और संस्था की स्थापना की जिसका नाम अखिल भारतीय रैड ट्रेड यूनियन कांग्रेस रखा।

इसके पश्चात् संघों में राष्ट्रीय कांग्रेस का महत्त्व फिर से प्रकट होने लगा। सन् १९३१ में समझौते के प्रयत्न आरम्भ हुए और रेलवे कर्मचारियों के संगम के पदाधिकारियों के प्रयत्नस्वरूप एक 'श्रमिक संघ एकता समिति' की स्थापना हुई जिसने एकता लाने के लिए एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया। सन् १९३४ में पं० हरिहरनाथ शास्त्री की अध्यक्षता में जब ट्रेड यूनियन कांग्रेस का वार्षिकोत्सव हुआ तब उसमें साम्यवादियों से समझौता हो गया और रैड ट्रेड यूनियन कांग्रेस को समाप्त कर दिया गया। सन् १९३८ में श्री वी० वी० गिरि के प्रयत्नस्वरूप ट्रेड यूनियन फेडरेशन भी ट्रेड यूनियन कांग्रेस में सम्मिलित हो गई। इस प्रकार सम्मिलित हुई अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का एक अधिवेशन सन् १९४० में बड़े समारोह के साथ नागपुर में हुआ। इसके सभापति डा० सुरेश बनर्जी और जनरल सेक्रेटरी श्री एन० एम० जोशी थे। विभाजन नागपुर में ही हुआ था और नागपुर में ही फिर सब एक हो गये। इस बात से बचने के लिए कि पहिले जैसे विवादों और विभाजन का अवसर न आये यह निर्णय किया गया कि कोई भी राजनैतिक प्रस्ताव तब तक पास नहीं होगा जब तक कि वह उपस्थित सदस्यों की तीन चौथाई संख्या को मान्य न हो।

इसी समय कलकत्ते में बंगाल श्रम संघ की स्थापना हुई और सन् १९३८ में श्री जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में पटना में समाजवादी दल का जन्म हुआ। 'हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ' की भी एक श्रम सलाहकार समिति के रूप में स्थापना हुई जिसका सम्बन्ध 'अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर परिषद्' से था और जिसका उद्देश्य श्रम आन्दोलन को गांधीवाद के सिद्धान्तों जैसे अहिंसा सच्चाई तथा त्याग

आदि पर चलाया था।

परन्तु यह एकता अधिक दिनों न चल पाई। सन् १९३९ में जब लड़ाई प्रारम्भ हुई तब फिर विच्छेद हो गया। कांग्रेसी नेता सब जेल चले गए और अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस में साम्यवादियों का प्रभाव बढ़ गया। इस कांग्रेस ने प्रारम्भ में तो युद्ध के प्रति तटस्थता को अपनाया परन्तु कुछ लोग श्री एम० एन० राय के नेतृत्व में लड़ाई के प्रयत्नों में पूरा पूरा सहयोग देने के पक्ष में थे। श्री एम० एन० राय और उनके अनुगामियों ने अलग संस्था बना ली जिसका नाम उन्होंने 'इण्डियन फैडरेशन ऑफ लेबर' रखा। इस संघ को सरकार से आर्थिक सहायता मिलने के कारण जनता का पूर्ण समर्थन प्राप्त न हो सका।

इस प्रकार लड़ाई के दिनों में दो अखिल भारतीय श्रमिक संघ संस्थायें थीं। एक तो *'अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस'* और दूसरी *'इण्डियन फैडरेशन ऑफ लेबर'*। १९४४ में भारत सरकार ने इस बात को मान लिया कि इन दोनों ही संस्थाओं को बारी बारी से अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रतिनिधित्व करने का अधिकार दिया जाय। इसीलिये १९४४ में फैडरेशन से और १९४५ में ट्रेड यूनियन कांग्रेस से प्रतिनिधि भेजने के लिए परामर्श लिया गया। १९४६ में सरकार ने इस बात की जाँच की कि इन दोनों संस्थाओं में से कौनसी संस्था श्रमिकों का अधिक प्रतिनिधित्व करती थी और इस बात की घोषणा की गई कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का प्रतिनिधित्व अधिक था।

जून १९४७ में फिर एक विभाजन हो गया। युद्ध के पश्चात् औद्योगिक अशान्ति की एक तीव्र लहर सी सारे देश में फैल गई। जब कांग्रेस ने शासन भार संभाला तो उसने देखा कि श्रमिकों पर साम्यवादियों का अधिक प्रभाव है। प्रारम्भ में कांग्रेस ने श्रम की समस्याओं को 'हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ' के द्वारा हल करने की चेष्टा की तथा अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर प्रभाव जमाने का प्रयत्न किया। परन्तु अन्त में मई १९४७ में राष्ट्रीय कांग्रेस के प्रमुख नेताओं ने एक सम्मेलन में जिसमें हिन्दुस्तान मजदूर सेवक संघ के अध्यक्ष सरदार पटेल और सचिव श्री गुलजारीलाल नन्दा ने भी भाग लिया एक पृथक श्रमिक संगम बनाने का निर्णय किया। परिणामस्वरूप भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस (Indian National Trade Union Congress) की स्थापना हुई। इस संस्था ने जल्दी ही जोर पकड़ लिया। सन् १९४६ और १९४७ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रतिनिधि भेजने के लिये अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस को निमंत्रित किया गया था। परन्तु दिसम्बर १९४७ में भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने भारत में संगठित श्रमिकों का अधिक प्रतिनिधित्व करने वाली संस्था होने का दावा किया। सरकार ने १९४८ में इस बात की सरकारी जाँच कराई। इससे यह ज्ञात हुआ कि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की सदस्य-संख्या ८ १५,०११ थी और भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की सदस्य-संख्या ९ ७३ ९७६ थी। इस प्रकार सरकार ने इस बात को मान

लिया कि भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ही संगठित श्रमिकों का अधिक प्रतिनिधित्व करती थी। तब से इसी संस्था को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में प्रतिनिधित्व दिया जाता रहा है। १९५८ में अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने देश में सबसे बड़ी सदस्यता वाली श्रमिक संस्था होने का दावा किया था। परन्तु सरकार ने यह नहीं माना क्योंकि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस द्वारा दिये गये आंकड़े ठीक नहीं थे। यह बात एक मुख्य श्रम कमिश्नर की जांच द्वारा प्रमाणित हो गई थी।

दिसम्बर १९४८ में फिर एक विभाजन हुआ। समाजवादी अलग हो गये और उन्होंने 'हिन्द मजदूर सभा' नाम से अपना अलग मजदूरों का संगठन बनाया। श्री एम० एन० राय की जो भारतीय फेडरेशन ऑफ लेबर थी वह इसी में विलीन हो गई। श्रमिकों का एक और संगठन मई १९४९ में प्रोफेसर के० टी० शाह तथा श्री मृणाल कान्ति बोस ने बनाया जिसका नाम संयुक्त ट्रेड यूनियन कांग्रेस रखा गया (United Trade Union Congress)। अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संघ में समाजवादियों का आधिपत्य स्थापित हो गया। उसके सभापति श्री जयप्रकाश नारायण हुए। श्री हरिहरनाथ शास्त्री की अध्यक्षता में रेलवे कर्मचारियों का एक और संघ बना जिसका नाम भारतीय राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी संघ रखा गया।

इस प्रकार आजकल चार केन्द्रीय श्रमिक संगठन हैं। अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर तो साम्यवादियों का अधिकार है और यह संस्था उन्हीं की विचारधाराओं पर विश्वास रखती है। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस पर राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रभाव है और इस संस्था का विश्वास इस बात पर है कि झगड़ों का शान्तिपूर्वक निबटारा किया जाय। इस संस्था ने पंचवर्षीय आयोजनाओं के लागू होने में सरकार को पूर्ण सहयोग देने का भी निर्णय किया है। हिन्द मजदूर सभा समाजवादियों के प्रभाव में है और उद्योग-धन्धों के राष्ट्रीयकरण में विश्वास रखती है। इस समय यह प्रजा समाजवादी दल तथा समाजवादी दल दोनों से ही प्रभावित है। संयुक्त ट्रेड यूनियन कांग्रेस राजनैतिक दलबन्दियों से अलग रहती है और इसका झुकाव साम्यवादिता की ओर अधिक है। इसमें क्रान्तिकारी समाजवादी दल जैसी संस्थाओं का प्रभाव अधिक है। इन चार संगठनों के अतिरिक्त कुछ अखिल भारतीय संगठन भी हैं जैसे रेल, डाक और तार विभागों के कर्मचारियों के संगठन आदि। १९५१ में ऐसे संगठनों की संख्या ७२ थी। रेलवे श्रमिकों की दो मुख्य संस्थाएं अर्थात् अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संगठन और भारतीय राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी संघ अप्रैल १९५३ में आपस में संगठित हो गईं और एक नई अखिल भारतीय संस्था बना ली जिसका नाम भारतीय रेलवे कर्मचारियों का राष्ट्रीय संगठन रखा गया। परन्तु इनकी यह एकता अधिक दिनों नहीं चल सकी और अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संगम पृथक हो गई परन्तु नवम्बर १९५७ में इसने भारतीय राष्ट्रीय रेलवे कर्मचारी संगम से फिर संगठित हो जाने का निर्णय किया। किन्तु यह एकता अभी तक नहीं आ

पाई है। डाक और तार विभागों के कर्मचारियों के संघ भी एक ही संस्था में एकत्रित हो जाने के लिये प्रयत्न करते रहे हैं।

श्रमिक संघ सम्बन्धी आंकड़े[1] —

पंजीकृत श्रमिक संघों के आंकड़ों में जो प्रति वर्ष वृद्धि होती रही है वह निम्नलिखित सूची से स्पष्ट हो जायगी —

पंजीकृत श्रमिक संघ और उनकी सदस्यता

वर्ष	पंजीकृत संघों की संख्या	ब्योरा देने वाले संघों की संख्या	ब्योरा देने वाले संघों की सम्पूर्ण सदस्यता			ब्योरा देने वाले संघों की सदस्यता की औसत संख्या	महिला सदस्यों की प्रतिशत संख्या
			पुरुष	महिलायें	योग		
१	२	३	४	५	६	७	८
१९२७–२८	२९	२८	९९,७११	१ १६८	१०० ६१९	३ ५९५	१२
१९३२–३३	१७०	१४७	२ ३२ २७९	५ ०९	२ ३७ ३६९	१ ६१५	२ १
१९३९–४०	६६७	४५	४ ९२ ५२६	१८ ६१२	५ ११ १३८	१ १३६	३ ६
१९४५–४६	१ ०८७	५८५	८ २५,४६१	३८ ५७०	८ ६४ ०३१	१ ४८	४५
१९४७–४८	२,६९३	१ ६२८	११ ६० ९३	१ ०२ २९९	१६ ६२ ९२९	१ ०२१	६ २
१९४९–५०	३ ५२२	१ ९१९	१६ ८८,८८७	१ ७९ ५६५	१८ २१ १३२	९४९	६ ६
१९५०–५१	३ ७६६	२ ००२	१६,४८ ९६६	१,०९ ४२४	१७ ५६ ९०१	८७७	६ २
१९५१–५२	४,६२३	२ ५५६	१८ ४६ ९६२	१ ३६ २५७	१९,९६ ३११	७८१	६८
१९५२–५३	४ ९३४	२,७१८	१९,३६,२१३	१ ३६,५६०	२० ९९,००३	७७२	७ ५
१९५३–५४	६,०२९	३,२९५	१९,२५,७७६	१ ७६ ७७६	२१ १२ ६१५	६४१	८४
१९५४–५५	६,६५८	३ २४५	१९,४० ४२५	२ २९,२८७	२१ ७० ४५०	६६२	१०६
१९५५–५६	८ ०९५	४ ००६	२० १४ ११२	२ ४० ०४५	२२,७४ ७१२	५६८	१०६
१९५६–५७	८ ३५५	४ ११४	२० ९१ ११७	२,८० १०५	२३ ७६ ७६२	५४०	११४
१९५७–५८	१० ०४५	५ ५२०	२६,८१,८२८	३ ३१ ८८२	३० १३,०१२	५४५	११ ०
१९५८–५९	१० २२८	६ ०४०	३२ ५४,७१४	३ ९२ ११४	३६,४७ १४८	६०४	१०८
१९५९–६०	४ ९२९	२,७११	१६,१६,४२०	१,२९,१२७	१७ ६८ ७४७	६५	७ १

१९५९–६० के आँकड़े सब राज्यों से प्राप्त हुये आँकड़ों पर आधारित नहीं हैं क्योंकि कई राज्यों से सूचना नहीं मिल पाई थी। १९५८–५९ में विभिन्न राज्यों में संघों की संख्या इस प्रकार थी। आन्ध्र–४८७ आसाम–११७ बिहार–५९९, बम्बई–१ ७२४ केरल–१ ५४६, मध्य प्रदेश–३२० मद्रास–९४६, मैसूर–४०३ उड़ीसा–११६, पंजाब–४६६, राजस्थान–प्राप्त नहीं उत्तर प्रदेश–१,०११, पश्चिमी बंगाल–२,६६७ देहली – ३११, हिमाचल प्रदेश–१२, त्रिपुरा–३० अण्डमान व निकोबार द्वीप–८, योग–१० २२८।

1 *Indian Labour Year Books, Indian Labour Journals and Annual Review of Activities, Department of Labour, U P*

विभिन्न केन्द्रीय श्रम-संस्थाओं से सम्बन्धित संघों की संख्या और उनकी सदस्यता निम्नलिखित है :—

संस्था	सम्बन्धित संघों की संख्या			सदस्यता		
	१९५७	१९५८	१९५९	१९५७	१९५८	१९५९
भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	६७०	७७२	८८६	९,१४ १८२	९,१० २२१	१० २१ ७
अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस	प्राप्त नहीं	८०७	८१४	प्राप्त नहीं	५ ३७ ५६७	५, ७ ६
हिन्द मजदूर सभा	१३८	१५१	११५	२ ११ ११०	१ ६२ ६४२	२,४१ ६
संयुक्त ट्रेड यूनियन कांग्रेस	प्राप्त नहीं	१८२	१७२	प्राप्त नहीं	८२ ००१	५ ६
योग	—	१ ८६७	१ ९८७	—	१७ २२,७११	१८ २१ ६

संघों की आय तथा व्यय :—

सन् १९५८–५९ में मालिकों के संघों की आय ११ २६ १११ रुपये और व्यय १२ ८१ ८११ रुपये था। श्रमिक संघों की आय १ २४ ६१ ८०० रुपये और व्यय १ १५,२२ १८५ रुपये था। श्रमिक संघों की आय के मुख्य साधन सदस्यों का चन्दा, भेंट राशि, पत्रिकाओं की बिक्री, निवेश पर ब्याज तथा अन्य विविध मदें थीं। ७१ ९४ प्रतिशत आय तो केवल सदस्यों के चन्दे से ही थी। व्यय की मुख्य मदें इस प्रकार थीं :—कार्यालय सम्बन्धी व्यय, कर्मचारियों का वेतन, हिसाब जाँच का व्यय, कानूनी कार्यों का व्यय, हड़ताल और झगड़ों का व्यय, सदस्यों को आवश्यक समय पर सहायता, पत्रिकाओं की छपाई, विविध मदें आदि। व्यय का २५ १२ प्रतिशत तो केवल कार्यालय सम्बन्धी कार्यों पर खर्च हो जाता है तथा ४० ८१ प्रतिशत व्यय विविध मदों पर होता है।

श्रमिक संघ विधान —

प्रथम भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम १९२६ में बना जो १ जून १९२७ से लागू हुआ। १९४७ तक इस अधिनियम में कोई विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, केवल १९२८ व १९४२ में कुछ साधारण से परिवर्तन किए गए थे। १९४७ के संशोधित अधिनियम में यह वैधानिक उपबन्ध बनाया गया था कि मालिकों के लिये यह अनिवार्य है कि वह रजिस्टर्ड संघों को मान्यता दें। इस संशोधित अधिनियम में एक विशेष

धारा यह भी थी कि रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के कुछ कार्य और मालिकों के कुछ कार्यों को अनुचित घोषित कर दिया गया था। परन्तु १९४७ के इस संशोधित अधिनियम की धाराएँ लागू नहीं की गई। १९६० में इस अधिनियम में फिर संशोधन किया गया जिसे लागू कर दिया गया है। इस समय जैसा कि अधिनियम लागू है उसके अनुसार उसकी मुख्य धाराएँ निम्नलिखित हैं —

जहाँ तक रजिस्ट्री कराने का सम्बन्ध है किसी भी श्रमिक संघ के कोई से भी सात या अधिक सदस्य संघ को रजिस्टर कराने के लिये रजिस्ट्रार के पास आवेदन पत्र दे सकते हैं। इस रजिस्ट्रार की इसी अधिनियम के अन्तर्गत नियुक्ति होती है। यदि ये सदस्य और संघ अधिनियम के खण्ड ६ में दी हुई शर्तों को पूर्ण करते हैं तो उनको रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र मिल जाता है। कुल पदाधिकारियों (Office Bearers) में से कम से कम आधी संख्या ऐसे व्यक्तियों की होनी चाहिये जो उस उद्योग में जिससे संघ सम्बन्धित है काम करते हों। रजिस्ट्रार को अधिकार है कि कुछ स्थितियों में वह रजिस्ट्रेशन को हटाले या रद्द कर दे। परन्तु ऐसी स्थिति में उसके निर्णय के विरुद्ध अपील की जा सकती है।

जहाँ तक रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के अधिकारों और रियायतों का सम्बन्ध है उसके सदस्यों और पदाधिकारियों के लिये यह बचत कर दी गई है कि यदि वे अपने संघ के नियमित उद्देश्यों की पूर्ति के लिये कोई भी कार्य कर रहे हों तो उस कार्य के लिये उन पर फौजदारी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता। सदस्यों को इस बात की भी सुरक्षा दे दी गई है कि अगर वे कोई ऐसा कार्य करते हैं जिसका उद्देश्य किसी औद्योगिक विवाद से सम्बन्धित होता है तो इस बात पर कि उनका यह कार्य किसी अन्य व्यक्ति को रोजगार के संविदा को भंग करने को प्रेरित करता है या उस व्यक्ति के रोजगार, व्यवसाय आदि में विघ्न डालता है उन पर दीवानी मुकदमा नहीं चलाया जा सकता है।

जहाँ तक रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के प्रतिबन्धों और दायित्व का प्रश्न है, अधिनियम के अन्तर्गत उनकी सामान्य निधि का व्यय कुछ विशेष उद्देश्यों के लिये सीमित कर दिया गया है। परन्तु संघों को यह अधिकार दिया गया है कि यदि वे चाहें तो ऐच्छिक रूप से ऐसे कार्य के लिये पृथक निधि जमा कर सकते हैं जिनका उद्देश्य सदस्यों के नागरिक और राजनैतिक हितों की वृद्धि करना हो। रजिस्टर्ड श्रमिक संघों पर यह बात भी लागू है कि वह अपना नाम और संघ बनाने के उद्देश्य का ठीक ठीक वर्णन करें तथा हिसाब खाता रखें और प्रति वर्ष जाँच किया हुआ हिसाब प्रस्तुत करें। हिसाब खाते की जाँच संघ का कोई भी पदाधिकारी या सदस्य कर सकता है। अगर नाम नियम और विधान में कोई परिवर्तन किया जाय तो उसकी सूचना रजिस्ट्रार को देनी आवश्यक है।

१९६० में भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम में एक महत्वपूर्ण संशोधन हुआ जो अब लागू कर दिया गया है। इस संशोधन के अनुसार श्रमिक संघों के प्रत्येक सदस्य

के लिये २५ न० पै० प्रतिमाह का चन्दा देना अनिवार्य कर दिया गया है। रजिस्ट्रार या किसी अन्य मान्यता प्राप्त अधिकारी को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह बही खाता या रजिस्टर या रजिस्ट्रेशन का प्रमाण-पत्र या अन्य कोई भी कागजात जो श्रमिक संघ तथा उनके ब्योरे से सम्बन्धित हों उनकी जाँच कर सकें। इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार अब अतिरिक्त अथवा उपरजिस्ट्रार भी नियुक्त कर सकती है जिनके अधिकार और कार्य रजिस्ट्रार के ही समान होंगे। एक अन्य धारा इस सम्बन्ध में भी है कि यदि एक बार रजिस्ट्रेशन के लिये प्रार्थना पत्र स्वीकार कर लिया जाता है तो वह इस कारण रद्द घोषित नहीं किया जा सकता कि कुछ प्रार्थी (यदि उनकी संख्या आधे से अधिक न हो) उसकी सदस्यता छोड़ चुके हैं या उन्होंने प्रार्थना-पत्र से अपना नाम वापस ले लिया है।

१९४७ में अधिनियम में जो संशोधन हुआ था उसके अन्तर्गत एक धारा बना दी गई थी कि मालिकों के लिये यह अनिवार्य होगा कि वह ऐसे संघ को मान्यता दें जो श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करता हो। मालिकों के किसी विशेष संघ को मान्यता देने या न देने पर जो झगड़े उत्पन्न हों उनको सुनने तथा निर्णय देने के लिये श्रमिक अदालतों की भी व्यवस्था की गई थी। श्रमिक अदालत के किसी आदेश से किसी संघ को तब तक मान्यता प्राप्त नहीं हो सकती जब तक वह कुछ शर्तों को पूरा न करे जैसे—(१) वह संघ अधिनियम के अन्तर्गत रजिस्टर्ड हो। (२) उसके कुल सदस्य एक ही उद्योग या उससे सम्बन्धित उद्योगों में कार्य करते हों। (३) वह उन कुल श्रमिकों का जो कि उस उद्योग में मालिकों द्वारा काम पर लगाये गये हों प्रतिनिधित्व करता हो। (४) उसके नियम उस उद्योग के किसी श्रमिक को सदस्य होने से नहीं रोकते हों। (५) उसके नियम हड़ताल की घोषणा करने के ढंग का ब्योरा भी देते हों। (६) उसकी कार्यकारिणी की बैठक ६ माह में कम से कम एक बार होने की व्यवस्था हो।

१९४७ का यह संशोधित अधिनियम रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के कुछ कार्यों को अनुचित घोषित भी करता था उदाहरणतया — (१) अधिकांश सदस्यों का किसी अनियमित हड़ताल में भाग लेना। (२) कार्याय (Executive) का किसी अनियमित हड़ताल के लिये परामर्श या सहायता देना या उसके लिये भड़काना। (३) संघ के किसी पदाधिकारी का ऐसा ब्योरा प्रस्तुत करना जिसमें असत्य बयान हों।

इसी प्रकार संशोधित अधिनियम मालिकों के भी कुछ कार्यों को अनुचित घोषित करता था—(१) अपने श्रमिकों के इस अधिकार में किसी भी प्रकार से हस्तक्षेप करना कि वह अपने संघ को संगठित करें या पारस्परिक सहायता और रक्षा के लिये कुछ कार्य करें। (२) किसी भी श्रमिक संघ के बनाने या उसके प्रबन्ध में दखल देना या किसी भी संघ को आर्थिक या किसी और प्रकार की सहायता देना। (३) किसी भी मान्य श्रमिक संघ के पदाधिकारी अथवा श्रमिक को इस बात पर निकाल देना या उसके विरुद्ध कोई भेद की नीति बर्तना कि उसने अधिनियम के

अन्तर्गत की गई जाँच में कोई गवाही दी है। (४) किसी भी मान्य संघ से बातचीत करने से इन्कार करना या अधिनियम के अन्तर्गत उसको किसी अधिकार या रियायत से वंचित रखना।

कोई मालिक यदि अनुचित कार्य करे तो उस पर १००० रु० तक जुर्माने के दंड की व्यवस्था थी। मान्य संघों के लिये अनुचित कार्य करने पर यह दंड नियत किया गया था कि उनकी मान्यता रद्दित कर दी जाय। यदि किसी ऐसे संघ को जब प्रवासत मान्यता दे भी दी है जो कोई अनुचित कार्य करता है या श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करना बन्द कर देता है या अधिनियम के अन्तर्गत ब्यौरा देने में असफल रहता है तो रजिस्ट्रार उस मान्यता को खंडित करने के लिये आवेदन-पत्र दे सकता था।

१९४७ के इस संशोधित अधिनियम की धारायें लागू नहीं की गई हैं। परन्तु इस बात का निर्णय कर लिया गया है कि यदि किसी श्रमिक संघ की अवधि एक वर्ष से अधिक है और यदि उसमें संस्था के कुल श्रमिकों में से कम से कम १५ प्रतिशत श्रमिक सदस्य हैं तो उस संघ को मान्यता दे देनी चाहिये। यदि किसी संस्था में एक ही संघ है तो यह १५ प्रतिशत सदस्यता की शर्त लागू नहीं होगी। संघों को मान्यता प्रदान करने के लिये शर्तें भी भारतीय श्रम सम्मेलन के १६वें अधिवेशन में (जो मई १९५८ में हुआ था) बना ली गई है। और अनुशासन संहिता (Code of Discipline) के अनुच्छेद में यह शर्तें दी गई हैं। (देखिये परिशिष्ट 'ग')।

यह अधिनियम राज्य की सरकारें लागू करती हैं जो व्यापार संघों के रजिस्ट्रारों की नियुक्ति करती हैं। परन्तु रजिस्ट्रार किसी संघ के बही-खाते की जाँच नहीं कर सकता था और यह इस अधिनियम का एक दोष था जो अब १९६० के संशोधन अधिनियम द्वारा दूर कर दिया गया है। ट्रेड यूनियन अर्थात् श्रमिक संघ अधिनियम अब सम्पूर्ण भारत में, जम्मू और काश्मीर को छोड़कर लागू होता है। जम्मू और काश्मीर में इस विषय पर केन्द्रीय अधिनियम के आधार पर एक अलग अधिनियम अर्थात् १९५० में बनाया गया था।

सन् १९५० में भारतीय विधान परिषद् में एक व्यापार संघ विधेयक (Bill) भी प्रस्तुत किया गया था जिसका उद्देश्य यह था कि श्रम संघ सम्बन्धी भिन्न धाराओं और कानूनों को एक जगह संचित कर दे। इसमें अनेक नए उपबन्ध भी थे। सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि इस विधेयक का उद्देश्य श्रमिक संघों की स्थिति में उन्नति करना तथा अच्छे ढंग से उनका विकास करना था। परन्तु इस विधेयक का अत्यधिक विरोध हुआ और सरकार ने भी इसको स्वीकृत कराने में विलम्ब किया और अन्त में यह व्यपगत (Lapse) हो गया। जुलाई १९५२ में सरकार ने राज्य सरकारों, मालिकों और श्रमिकों से संघों के पास एक प्रश्नावली परिचालित की जिसमें इस विधेयक की धाराओं के विषय में राय माँगी। जो भी रायें आईं उन पर विचार-विमर्श करने के लिए नैनीताल में एक त्रिदलीय श्रम सम्मेलन बुलाया

गया जिसके परिणामस्वरूप एक नया विधेयक तैयार किया गया। परन्तु इस विधेयक को भी विधान परिषद् में रखने में देर हुई जिसका कारण यह बताया गया कि विभिन्न केन्द्रीय मंत्रालयों से राय ली जा रही थी। तब से अब तक उसके विषय में कुछ ज्ञात नहीं हुआ है। ऐसा जान पड़ता है कि सरकार इस प्रकार का अधिनियम बनाना उचित नहीं समझ रही है। सरकार का ऐसा व्यवहार टीका-टिप्पणी का विषय बन जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन और श्रमिक संघ —

अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का भारतीय श्रमिक संघों पर यथेष्ट प्रभाव पड़ा है। श्रमिक संघ आन्दोलन का प्रारम्भ और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना दोनों साथ-साथ ही हुई। इस अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का भारतीय श्रम आन्दोलन पर पर्याप्त मात्रा में प्रभाव पड़ा है। इसने श्रमिकों में एकता की भावना उत्पन्न कर उनमें अलग अलग रहने की भावना को दूर कर दिया है। श्रमिकों में अपने अधिकारों और शिकायतों की जानकारी के प्रति जागृति पैदा करने में भी इसने सहायता की है। सामयिक पत्रिकाओं और श्रम रिपोर्टों आदि के द्वारा श्रमिकों को अत्यन्त मूल्यवान् सूचनाएँ भी यह देता रहा है। श्रमिकों के प्रतिनिधि भी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों में भाग लेते हैं और ऐसे श्रम सम्मेलनों में चुनकर प्रतिनिधि भेजने की आवश्यकता के कारण ही कुछ प्रारम्भिक संगठनों की स्थापना हुई थी। इसके अतिरिक्त दूसरे देशों के श्रमिक संघों के प्रतिनिधियों ने भी भारतीय श्रमिकों में अपना संगठन बनाने के प्रति रुचि उत्पन्न करने में यथेष्ट सहायता की है। यह बात भी देखने में आई है कि ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघों के संघम ने और मास्को की तीसरी 'इन्टर-नेशनल' ने औद्योगिक अशान्ति और हड़ताल के दिनों में भारतीय श्रमिकों के लिये आर्थिक सहायता भेजी*। इस कारण इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि भारतीय श्रम आन्दोलन को अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों से अच्छी सहायता मिली है। नई देहली में सन् १९४७ और नवम्बर १९४७ में हुए 'एशियाई क्षेत्रीय श्रम-सम्मेलनों' ने भी भारतीय श्रम-आन्दोलन के सही ढंग पर विकास होने में और श्रमिकों में उनकी समस्या पर प्रकाश डालकर एकता की भावना उत्पन्न करने में यथेष्ट सहायता की है। इसके अतिरिक्त श्रमिक संघ के प्रतिनिधि न केवल अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों में भाग लेते रहे हैं वरन् भारतीय सरकार द्वारा स्थापित विभिन्न समितियों में श्रम-विधान श्रम-नीति श्रम-शासन और अन्य श्रम-सम्बन्धी कार्यों से सम्बन्धित वाद-विवाद में भी भाग लेते रहे हैं। मिस्टर एलबर्ट पॉर्सल ने जो कि ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के एक नेता हैं और जो भारत में १९२१ में आये थे यह बताया कि ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस एशिया में व्यापार संघों के विकास के लिये १,००० पौंड प्रदान दे चुकी है। 'स्वतन्त्र व्यापार संघों के अन्तर्राष्ट्रीय संघम' (International Federation of Free Trade Union) ने भी दक्षिणी पूर्वी

*B. Shivarao : *Industrial Worker in India* page 161

एशिया में व्यापार संघों के विकास के लिये एक एशियाई क्षेत्रीय संगठन की स्थापना की है जिसका मुख्य कार्यालय कलकत्ता में है।

व्यापार संघों का आकार — (Structure of Trade Unions)

भारत में अधिकांश श्रमिक संघ औद्योगिक संघ हैं। इसका तात्पर्य यह है कि एक ही उद्योग के श्रमिक अपना संघ बनाते हैं — चाहे उनका कोई पेशा हो किसी प्रकार के कार्य पर लगे हों चाहे पुरुष हों या स्त्री। इसका एक विशेष अपवाद अहमदाबाद के कपड़ा मिल मजदूर परिषद् में मिलता है जिससे सम्बद्ध सदस्य शिल्पी संघ हैं। हाल ही में केन्द्रीय श्रमिक संघों का इस ओर झुकाव होने लगा है कि औद्योगिक संघ सम्पूर्ण देश के लिये बनें। इसका उदाहरण हमको रेल कर्मचारियों के राष्ट्रीय संगम में और कपड़ा मिल श्रमिकों के अखिल भारतीय संगम में मिलता है।

श्रमिक संघों ने बम्बई राज्य में विशेष उन्नति की है। और यातायात के श्रमिकों का संगठन सबसे अच्छा है। सबसे अधिक शक्तिशाली संघ रेलवे कर्मचारियों तथा डाक तार और सफाई करने वाले श्रमिकों के हैं क्योंकि वे श्रमिक कुछ पढ़े लिखे भी होते हैं और उनके कार्य को चलाने के लिये अपने ही नेता होते हैं। भारत में सबसे महत्वपूर्ण श्रमिक संघों के संगम रेलवे कर्मचारियों डाक और रेल डाक विभाग श्रमिकों के हैं। सन् १९५५ में रजिस्टर्ड श्रमिक संघों के ७२ संगम थे। अहमदाबाद का कपड़ा मिल मजदूर परिषद् श्रमिकों के एक ऐसे संगठन का उदाहरण है जो कि अनुपम है। यह सन् १९२० में स्थापित हुई थी। श्री गुलजारीलाल नन्दा इसके प्रथम जनरल सेक्रेटरी थे। इस समय इसके लगभग ११००० सदस्य हैं। यह कई शिल्पी संघों का संगम है जैसे जुलाहा संघ कताई करने वालों का संघ मशीन चलाने वालों का संघ कलपुर्जों में तेल देने वालों का संघ फायरमैनों का संघ चौकीदारों का संघ आदि। यह श्रमिकों के हितार्थ कई अच्छे सामाजिक कल्याणकारी कार्य करता रहता है जो दूसरों के लिये उदाहरणस्वरूप हैं। इस संगम की सफलता का मुख्य कारण यह भी रहा है कि महात्मा गांधी का इससे कई वर्षों तक सम्बन्ध रहा।

भारतीय श्रमिक संघों के दोष और कठिनाइयाँ —

श्रमिक संघों के उपरोक्त वर्णन से यह पूर्णतया स्पष्ट हो जाता है कि श्रमिक संघ आन्दोलन देश में अब दृढ़ रूप से स्थापित हो चुका है और मजदूर वर्ग की एक शक्तिशाली वर्ग में गणना होने लगी है। जैसा ऊपर संकेत किया जा चुका है रजिस्टर्ड संघों की संख्या उत्तरोत्तर बढ़ती रही है। इनके अतिरिक्त अनेक औद्योगिक तथा अनौद्योगिक सरकारी तथा अर्धसरकारी संस्थाओं में काम करने वाले श्रमिकों के बहुत से ऐसे संघ हैं जो रजिस्टर्ड नहीं हैं और जिनके आँकड़े आसानी से प्राप्त नहीं होते। कई स्थानों पर श्रमिक संघों ने श्रमिकों के कल्याण के लिये और उनकी आर्थिक दशा की उन्नति करने के लिये कई अच्छे काम किये हैं।

इन सब बातों के होते हुए भी हम यह देखते हैं कि अन्य देशों की तुलना में हमारे देश में श्रमिक संघ आन्दोलन का ठोस आधार पर विकास नहीं हुआ है। श्री रौवट्‌स ने जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है स्पष्ट कहा है कि भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन इतना शक्तिशाली नहीं है जितना इसे होना चाहिये। श्री वी वी गिरि ने भी कहा है कि भारत में श्रमिक संघ आन्दोलन अभी तक प्रारम्भिक अवस्था में ही है और आधुनिक श्रमिक संघ पिछले तीस वर्षों में ही कार्य करते हुए पाये गये हैं। आँकड़ों से पता चलता है कि औद्योगिक संघों में केवल १० लाख श्रमिक सम्मिलित हैं जबकि बड़े उद्योगों में ही एक करोड़ से अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। इस आन्दोलन के इतिहास से यह स्पष्ट पता चलता है कि श्रमिक संघ संगठन में बहुधा विच्छेद हो चुका है और इस आन्दोलन के निर्माण तथा विकास में राजनीति का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा है। इस आन्दोलन के वास्तविक और ठोस विकास में कई कारणों से रुकावटें पड़ी हैं।

प्रथम कठिनाई तो भारतीय श्रमिकों की प्रवासिता (Migratory Character) है। श्रमिक जब हर समय गाँव वापिस जाने की ही सोचता रहता है तो वह संघों के कार्यों में कोई तीव्र और निरन्तर रुचि नहीं लेता। स्वस्थ संघवाद के लिये यह आवश्यक है कि एक स्थायी औद्योगिक जन-संख्या हो। परन्तु ऐसी जन-संख्या का हमारे देश में अभाव है। श्रमिकों की यह प्रवृत्ति कि किस प्रकार उद्योगों से नौकरी छोड़कर अपने गाँव वापिस जा सकें उनमें संयुक्त प्रयत्नों द्वारा अपनी दशा को सुधारने के उत्साह को कम कर देती है।

दूसरी कठिनाई यह है कि भारत में मजदूरी बहुत कम है और श्रमिक अत्यन्त निर्धन हैं और वे ऋण में भी दबे रहते हैं। यह बात स्वस्थ संगठन के विकास के लिये एक बहुत बड़ी रुकावट बन जाती है। श्रमिकों के लिये संघ निधि में थोड़ा सा चन्दा देना भी एक बोझ बन जाता है। सदस्यता का चन्दा नियमित रूप से नहीं दिया जाता और बहुत से श्रमिक तो सदस्य भी नहीं बनते। इसका परिणाम यह होता है कि संघों की आर्थिक दशा शोचनीय ही रहती है और किसी बाहरी सहायता के बिना उनके पास पर्याप्त धन नहीं होता। श्री रौवट्‌स ने यह भी बताया था कि उन्हें भारत में कई ऐसे संघ मिले जिनके पास कोई निधि नहीं थी और जिन्हें केवल 'कागजी-संघ' कहा जा सकता था। उन्हें इस बात से भी आश्चर्य हुआ कि बहुत से सदस्य अपना चन्दा नहीं देते थे अर्थात् बाकीदार थे। ब्रिटेन में ट्रेड यूनियन कांग्रेस के ८ लाख सदस्य प्रति सप्ताह अपना चन्दा नियमित रूप से दे दिया करते हैं।

तीसरी कठिनाई एक शक्तिशाली संगठन बनाने में यह है कि श्रमिक अपने वंश धर्म भाषा जाति और स्वभाव के अनुसार प्रायः एक दूसरे से पृथक रहते हैं। यह सब बातें एकता को छिन्न भिन्न करने वाली हैं और श्रमिकों के आपस में मिलकर बैठने में रुकावटें डालती हैं। मालिक उनकी ऐसी दुर्बलता का प्रायः अनुचित लाभ

उठाते हैं और फूट डालकर के शासन को दृढ़ बनाये रखने वाली नीति को अपनाते हैं। खेद है कि देहली अजमेर और बंगाल में कुछ संघों को साम्प्रदायिकता के आधार पर संगठित किया गया था। परन्तु सन् १९४१ ई० में सरकार ने ऐसे संघों को मान्यता नहीं दी*।

चौथी कठिनाई यह है कि श्रमिकों में जीवन-स्तर नीचा होने के कारण और काम के घण्टे अधिक होने के कारण न तो इतनी शक्ति रहती है और न उन्हें इतना समय मिल पाता है कि वह श्रमिक संघ का कोई कार्य कर सकें। जिस गिरी हुई दशा में हमारे श्रमिक रहते हैं उसे देखते हुए उनसे यह आशा नहीं की जा सकती कि वे अपने संगठन कार्य की ओर ध्यान दे सकें।

श्रमिक प्राय अनपढ़ और अज्ञानी भी होते हैं और उनमें प्रजातन्त्रीय उत्साह का अभाव पाया जाता है। पीढ़ियों से उनमें शासित होने का स्वभाव पड़ गया है और उनमें दासता और हीनता का भाव घर कर गया है। इन्हीं कारणों से बहुत से श्रमिक तो सोच भी नहीं पाते कि वे स्वयं संगठित होकर कोई काम कर सकते हैं।

एक और दोष जो देखने में आता है वह यह है कि अधिकांश श्रमिक संघ हड़ताल करने और उसे जारी रखने के अभिप्राय से ही बनाये जाते हैं। वे श्रमिकों के हितार्थ कल्याणकारी कार्य करने में असमर्थ रहते हैं। इस कारण यह देखा गया है कि अधिकांश संघ केवल हड़ताल-समिति ही कहलाए जा सकते हैं। वे स्वस्थ रूप से विकास करने का कोई प्रयत्न नहीं करते।

इसके अतिरिक्त भारतीय श्रमिक संघों के संगठन में एक भारी दोष यह है कि ये संघ अपने श्रमिकों में से ही अपने नेताओं को नहीं बना पाये हैं। साधारणतया श्रमिक संघों का आदर्श नेता मध्यम वर्ग का एक वकील होता है जो जन उपकार की भावना से या राजनैतिक उद्देश्य से अपनी सम्पूर्ण शक्तियों को श्रमिकों के हितों के लिए लगा देता है। इन व्यक्तियों को उद्योग की विभिन्न तकनीकी विधियों के विषय में पूर्ण ज्ञान नहीं होता है और इस कारण ये मालिकों के साथ समानता के आधार पर किसी पारस्परिक वार्तालाप में भाग नहीं ले सकते। वे श्रमिकों की वास्तविक कठिनाइयों को और उनकी शिकायतों को भी समझ नहीं पाते। कभी-कभी ये इतना अधिक प्रयत्न कर बैठते हैं कि उनका प्रभाव स्वयं कम हो जाता है। फिर कुछ बहुत से नेता अवसरवादी होते हैं और उनका कुछ निजी स्वार्थ होता है। कई बार वे स्वयं आपस में झगड़ा कर बैठते हैं और श्रमिकों से प्राय अनुचित लाभ उठाते हैं। वर्तमान समय में ऐसा देखा गया है कि अधिकतर नेता किसी न किसी राजनैतिक दल से सम्बन्ध रखते हैं और श्रमिक संघों की आड़ लेकर ही अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति करते हैं। स्वस्थ संघवाद का विकास तब तक नहीं हो सकता जब तक कि उसके नेता मजदूर वर्ग के ही न हों। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रमिक संघों में जो बाहरी नेतृत्व पाया जाता है उसके काम और

*R. K. Mukerjee Indian Working Class.

निरन्तर पाये जाने का उत्तरदायित्व कुछ सीमा तक मालिकों पर भी है। श्रमिकों में यह वास्तविक भय होता है कि अगर उन्होंने संघों का नेतृत्व किया तो उन पर बाद में किसी न किसी प्रकार से अत्याचार होगा। इस कारण मालिक ही श्रमिकों के हृदय में यह भावना उत्पन्न कर सकते हैं कि यदि श्रमिक वर्ग से ही उनके नेता बनें तो उनका स्वागत होगा। बाहरी नेतृत्व का एक अन्य कारण यह भी है कि राजनैतिक दल श्रमिकों में अपना प्रचार करते हैं और उनके कार्यों में दखल देते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिकों की अज्ञानता और उनके अपढ़ होने के कारण भी बाहरी नेतृत्व श्रमिक संघों में पाया जाता है। ईमानदार, सच्चे और कुशल नेता श्रमिकों में से नहीं मिलते। अमरीका और पश्चिमी देशों के श्रमिक संघों की भांति भारतीय श्रम संघों के पास इतना धन नहीं होता कि वे बाहरी व्यक्तियों को पैसा देकर अपने कार्य करा सकें।

एक और कठिनाई यह है कि मध्यस्थ प्रायः संघों के विरोधी होते हैं। श्रमिक संघों के बन जाने से मध्यस्थों के अधिकार छिन जाते हैं। इस कारण ये मध्यस्थ हर उचित और अनुचित उपाय से श्रमिकों में फूट डालने और श्रमिक संघों के उद्देश्यों को विफल बनाने का प्रयत्न करते हैं। इसके अतिरिक्त मालिकों का व्यवहार भी संघों के प्रति विरोधपूर्ण रहता है। भारत में अधिकांश मालिक श्रमिकों के संगठन को अपने अधिकारों शासन और प्रभाव के लिये एक चुनौती समझते हैं और कुछ हीन प्रवृत्ति के मालिक तो श्रमिकों की एकता तोड़ने के लिये हर प्रकार के उचित या अनुचित साधन अपनाने से नहीं हिचकते। ऐसी कई घटनायें हुई हैं जबकि मालिकों ने संघ में भाग लेने वाले श्रमिकों पर अत्याचार किए हैं। वे भेदिया गुण्डे और हड़ताल-तोड़क आदि व्यक्तियों को संघ-कार्यों में विघ्न डालने के लिये नौकर रखते हैं। मालिक प्रतिद्वन्द्वी श्रमिक संघों की स्थापना को भी प्रोत्साहन देते हैं और कई बार उन्होंने ऐसे श्रमिक संघों को मान्यता देने से इन्कार कर दिया है जिनमें उनकी रुचि के श्रमिक न हों। संघों के पदाधिकारियों को मालिकों द्वारा प्रायः घूस भी दी जाती है और श्रमिकों में साम्प्रदायिकता तथा विभिन्न जातियों के कारण उत्पन्न हुए भेदों से लाभ उठाने का प्रयत्न किया जाता है। डा० राधाकमल मुकर्जी* ने श्रमिकों पर अत्याचार होने की कई घटनाओं का उल्लेख किया है। डा० राजेन्द्र प्रसाद और पं० जवाहरलाल नेहरू ने जो कुछ झगड़ों के विवाचक थे अपने निर्णय में यह लिखा है कि "जमशेदपुर पिछले वर्षों में अपने झगड़ों के लिये अत्यन्त कुख्यात रहा है। प्रतिद्वन्द्वी संघों के श्रमिकों के बीच प्रायः मुठ-भेड़ें हुई हैं। सभाओं को तोड़ा गया है। हाथा-पाई और पत्थर फेंकने की घटनायें भी सामान्य थीं। कई श्रम नेताओं और उनके अनुयायियों पर खुल्लमखुल्ला यह आरोप लगाया गया कि वे मालिकों से कुछ धनराशि लेते थे। ऐसी परिस्थिति में कोई शक्तिशाली तथा अनुशासित श्रमिक संघ नहीं पनप सकता था और श्रमिकों के हितों का लालची नेताओं द्वारा बलिदान होता रहा।"

* R. K. Mukerjee *Indian Working Class* pages 357 – 360.

एस अत्याचारों को कई स्थानों पर देखा गया है। सताये जाने का यह भय कोई काल्पनिक भय नहीं है। सन् १९२६ और १९३६ ई० के बीच में अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर परिषद ने अत्याचार होने पर ४५,००० रु० सहायता धनराशि के रूप में बांटे थे। उत्तर प्रदेश म भी कानपुर की कपड़ा मिलों में अत्याचार होने की घटनाओं की जाँच के लिये एक जाँच न्यायालय की स्थापना करनी पड़ी थी।

इस सम्बन्ध म यह उल्लेख किया जा सकता है कि बम्बई का सन् १९३८ का औद्योगिक विवाद अधिनियम संघों के श्रमिकों पर अत्याचार होने को एक अपराध घोषित करता है जिस अपराध के लिये १००० रु तक जुर्माना किये जाने के दण्ड की व्यवस्था है। न्यायालयों को इस बात का अधिकार दिया है कि जुर्माने में से कुछ भाग सताये हुए श्रमिक को क्षतिपूर्ति के रूप में दिया जाय। डा० राधाकमल मुकर्जी ने इस बात का सुझाव दिया है कि भारत में भी अमरीका के सन् १९३५ के 'नेशनल लेबर रिलेशन्स एक्ट' की भाँति एक अधिनियम होना चाहिये। यह अधिनियम अमरीका में श्रमिकों का 'मैगना कार्टा' माना जाता है। इसके अन्तर्गत श्रमिकों को स्वयं संगठित करने के लिए कई अधिकार दिये गये हैं। मालिकों का संघों में हस्तक्षेप करना या श्रमिकों को संघ कार्यों में भाग लेने स रोकना अपराध घोषित कर दिया है। किसी भी प्रकार का अत्याचार निषेध है। कनाडा में भी श्रमिकों को ऐसे ही अधिकार दिये गये हैं। भारत में १९४२ में मसूर राज्य में 'मसूर श्रम अधिनियम' के अन्तर्गत श्रमिकों की अत्याचार से रक्षा की गई थी। भारत के श्रमिक संघ अधिनियम क अन्तर्गत सन् १९४७ के संशोधन क अनुसार मालिकों क कई कार्यों को अनुचित ठहराया गया था और ऐसे कार्यों के लिये दंड जुरमाने क रूप में देने की व्यवस्था थी। यह भी अनिवार्य कर दिया गया था कि संघों को मान्यता दी जाय। परन्तु ये धारायें अभी तक लागू नहीं की गई हैं। मुझे अधिकारियों के सम्मुख जो मुकदमे आते हैं उनसे यह स्पष्ट पता चलता है कि जिन श्रमिकों को मालिक कुछ झगड़ा करने वाला समझते हैं उनको किसी न किसी बहाने नौकरी से अलग कर दिया जाता है।

श्रमिक संघों के संगठन में एक और दोष यह है कि अधिकांश संघों की सदस्यता बहुत कम है। इस कारण इनमें यथेष्ट धन संगठन और नेतृत्व की कमी रहती है। उदाहरणार्थ १९५८-५९ में ब्यौरा देने वाली ७१·६४ प्रतिशत संघों की सदस्यता १०० से कम थी। सदस्यता के कम होने का मुख्य कारण यह है कि एक ही उद्योग में श्रमिकों क कई संघ होते हैं और श्रमिकों में आपस में एकता नहीं है। श्री वी० वी० गिरि ठीक ही इस बात पर जोर देते रहे हैं कि एक उद्योग में एक ही संघ होना चाहिये। बड़े संघ अधिक टिकाऊ होंगे। उनका नियमितरूप स कार्यालय बन सकता है समस्त समय के लिये उनमें कर्मचारी भी लगाये जा सकते हैं और सौदा करने की शक्ति भी उनमें अधिक हो सकती है।

देश में श्रमिक संघों में जो फूट पड़ी हुई है और उनमें द्वेष भावना से जो प्रतिद्वन्द्विता चल रही है उसका कुछ उत्तरदायित्व राजनैतिक दलों पर भी है। प्रत्येक

राजनैतिक दल यह प्रयत्न करता है कि श्रमिक वर्ग उनकी ओर आ जाए और इस प्रयत्न में वह श्रमिकों में परस्पर दूषित भावनाएँ और मतभेद उत्पन्न कर देते हैं। श्रमिक संघों में इस प्रतिद्वन्दिता ने इस समय एक जटिल समस्या का रूप धारण कर लिया है और इस कारण उनके स्वस्थ विकास में एक बहुत बड़ी रुकावट आती है।

उपसंहार और सुझाव —

रॉयल श्रम आयोग के अनुसार श्रमिक संघों के पूर्ण प्रभावशाली होने के लिये दो बातों की आवश्यकता है — एक तो प्रजातन्त्रीय भावना और दूसरी शिक्षा। श्रमिकों में प्रजातन्त्रीय उद्देश्य की भावना अभी उत्पन्न करनी है। उससे भी अधिक बड़ी रुकावट है वह शिक्षा का अभाव है। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में बतलाया गया है कि एक ही उद्योग में अनेक श्रमिक संघों का होना राजनैतिक प्रतिस्पर्धा धन की कमी तथा श्रमिकों की पारस्परिक फूट इत्यादि ही वर्तमान समय के संघों की दुर्बलताओं में से कुछ हैं। एक शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन श्रमिकों के हितों की रक्षा करने के लिये तथा उत्पादन के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। इससे संगठित श्रमिकों और मालिकों में अधिकतर सहयोग भी उत्पन्न होगा और औद्योगिक शान्ति भी रहेगी। एक शक्तिशाली संघ श्रमिकों की उस समय सहायता करता है जब वे प्रथम बार गाँव से आते हैं। इस प्रकार वह प्रवासिता अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त को कम करता है और भर्ती के दोषों को दूर करता है। मजदूरी की उचित नीति के निर्धारण में श्रमिक संघ सहायता कर सकते हैं और प्रबन्धकों के साथ औद्योगिक विराम सन्धि (Truce) समझौते भी श्रमिक संघ ही कर सकते हैं। इस प्रकार देश के आर्थिक विकास में और आयोजनों की सफलता में भी संघों का एक विशेष और महत्वपूर्ण स्थान है। इस समय ऊपर लिखे कई कारणों से श्रमिक संघों में आपस में मतभेद और फूट है। इसलिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि प्रथम तो श्रमिकों को शिक्षा और प्रशिक्षण दिया जाय जिससे वे एक शक्तिशाली और स्वस्थ संगठन के लाभों को समझ सकें। श्रमिक संघों को केवल एक हड़ताल समिति की भाँति कार्य नहीं करना चाहिये वरन् उनको अपने कार्य श्रमिकों की शिक्षा की ओर भी विस्तृत करने चाहिएँ। ये संघ वे अधिक सभाएँ करके वाद विवाद करके भाषण कराके तथा कल्याणकारी कार्य करके कर सकते हैं। इस ओर निरन्तर प्रयत्न होने चाहियें कि विभिन्न श्रमिक संघों में एकता आ जाय और एक उद्योग में एक ही संघ हो। इसके अतिरिक्त इस बात की भी आवश्यकता है कि अधिकतर एम हों जो स्वयं श्रमिक रह चुके हों और उनको उचित प्रशिक्षण भी दिया जाना चाहिये। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना ने इस प्रस्ताव के साथ कि श्रमिक संघों में बाहर वालों की संख्या कम हो यह भी कहा है कि बाहर वालों ने देश में श्रमिक संघ आन्दोलन के निर्माण में यथेष्ट महत्वपूर्ण कार्य किया है और उनके सम्पर्क के बिना यह आन्दोलन इतना शक्तिशाली और विशाल नहीं

हो पाता। परन्तु हम यह भी कह सकते हैं कि यदि बाहर वालों का सम्पर्क न होता तो श्रमिक संघ आन्दोलन का विकास ऐसे अस्वस्थ रूप में न होता। संघों को इस बात को समझ लेना चाहिये कि यदि वे किसी ऐसे व्यक्ति पर जो श्रमिक वर्ग का नहीं है अधिकतर निर्भर रहेंगे तो उनका अपने को संगठित करने की शक्ति अवश्य कम हो जायगी। वर्तमान समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि राजनैतिक दल श्रमिक संघों से अलग रहें और श्रमिक संघों को राजनीति से दूर रखा जाय और वे अपने कार्यों को श्रमिकों की भलाई तक ही सीमित रक्खें। इस सम्बन्ध में यह बात बहुत आवश्यक है कि श्रमिकों को संघ ज्ञान और संघ-विधियों में प्रशिक्षण दिया जाय। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में इसके लिये वृत्तियाँ देने की व्यवस्था है। इस बात का सुझाव दिया जा सकता है कि ऐसे श्रमिकों के प्रशिक्षण के लिये जो संघ-नेता बनने की आकांक्षा रखते हों उनके लिये अधिकतर संस्थायें खोली जाएँ। कोलम्बो आयोजना के अन्तर्गत श्रमिक संघों के पदाधिकारियों को प्रशिक्षण के लिए इंगलैंड भेजा जा रहा है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में इस बात का भी सुझाव था कि संघों को कुछ शर्तें पूरी करने पर वैधानिक मान्यता दे देनी चाहिये। परन्तु कानून केवल उपशमन (Palliative) का कार्य ही कर सकता है और केवल दोषों को ही दूर कर सकता है। यदि श्रमिक स्वयं शक्तिशाली होंगे तो किसी विधान की आवश्यकता नहीं होगी। मालिक भी एक शक्तिशाली और पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले संघ को मान्यता देने से इन्कार नहीं कर सकेंगे। इस सम्बन्ध में इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि मई १९५८ में भारतीय श्रम सम्मेलन के १६वें अधिवेशन में श्रमिक संघों को मान्यता प्रदान करने के लिये कुछ शर्तें बनाई गईं और अब उनको अनुशासन संहिता के परिशिष्ट में जोड़ दिया गया है। (देखिये परिशिष्ट 'च') संघों को अपनी धनराशि में वृद्धि करने के लिये द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में यह सुझाव दिया गया था कि संघों के नियमों में यह बात भी रखी जानी चाहिये कि कम से कम चार आने मासिक सदस्यता शुल्क होगी। इस नियम के बिना किसी भी संघ को एक मान्य संघ के रूप में रजिस्टर न किया जाय। संघ धनराशि या बकाया के चुकाने के जो नियम हैं उनको दृढ़ता से लागू करना चाहिये। जुलाई १९५९ में भारतीय श्रम सम्मेलन (१७वें अधिवेशन) में इस सुझाव को वैधानिक रूप देने का निश्चय किया गया। १९६० के भारतीय श्रमिक संघ (संशोधित) अधिनियम के अन्तर्गत अब प्रत्येक सदस्य के लिए कम से कम २५ न० पै० प्रतिमाह का चन्दा देना अनिवार्य कर दिया गया है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि श्रमिकों की आर्थिक दशा में सुधार की बहुत आवश्यकता है। अपने संगठन-कार्यों के लिये जब तक श्रमिकों के पास यथेष्ट समय शक्ति और धन न होगा स्वस्थ संघवाद का विकास सम्भव नहीं है। इस कारण स्वस्थ संगठन की समस्या को पृथक रूप से नहीं सुलझाया जा सकता। इसके

लिये सब ओर से तथा हर प्रकार के प्रयत्न की आवश्यकता है। श्रमिक संघों को यह समझना चाहिए कि उनका कार्य केवल यही नहीं है कि वे मालिकों से झगड़ा करते रहें या केवल श्रमिकों की भलाई व उन्नति के लिए ही कार्य करते रहें। अब उन्हें राष्ट्रीय हित के लिए आत्म-त्याग और सहयोग की भावना से कार्य करने की रीति अपनानी चाहिए। उन्हें श्रमिक संघ अनुशासन की एक संहिता का भी निर्माण करके इस बात का प्रयत्न करना होगा कि सब श्रमिक ठीक राह पर चलें। इस सम्बन्ध में 'अनुशासन संहिता' तथा 'आचरण संहिता' जैसे महत्वपूर्ण पग अत्यन्त सहायक सिद्ध हो सकते हैं। (देखिए परिशिष्ट 'ब')। पिछले कुछ वर्षों से श्रमिकों में अधिक मनोवैज्ञानिक (Psychological) परिवर्तन पाया जाता है। वे अपने अधिकारों से तो अधिकतर परिचित हो गये हैं परन्तु इस परिवर्तन के समय में वे अपने कर्तव्यों को भूल गये हैं। हर ओर से मालिकों की ये शिकायतें आती हैं कि श्रमिकों की कार्यकुशलता कम हो गई है। श्रमिक अधिक कार्य करने में कोई रुचि नहीं दिखाते और मालिक उनसे कुछ कह नहीं सकते क्योंकि हड़ताल का हर समय डर लगा रहता है। पिछले दिनों में श्रमिकों की ओर से हिंसात्मक कार्य भी हुये हैं जैसे कलकत्ता, कानपुर, बम्बई, अहमदाबाद आदि में। ऐसे अस्वस्थ वातावरण को दूर करने की आवश्यकता है। इसका सबसे अच्छा उपाय यही है कि स्वस्थ श्रमिक संगठन के विकास का प्रयत्न किया जाय। देश में इस बात का आन्दोलन भी चल पड़ा है कि श्रमिकों को भी प्रबन्ध कार्यों में भाग लिया जाय। इसका प्रयोग भी सफलतापूर्वक कई स्थानों पर किया गया है। इस आन्दोलन का विस्तार हो सकता है परन्तु इसकी सफलता के लिये भी यह आवश्यक है कि शक्तिशाली और पूर्ण रूप से प्रतिनिधित्व करने वाले श्रमिक संघ हों। यदि हम अपने श्रमिकों से अधिक कार्यकुशलता की आशा करते हैं तथा देश में अधिक उत्पादन चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि संघों के समस्त दोषों को दूर करने और स्वस्थ संघवाद के विकास में उन्नति करने की ओर हमें गम्भीर रूप से प्रयत्न करने चाहियें।

६

इंगलैंड में श्रमिक संघवाद

(Trade Unionism In England)

मध्ययुग में दस्तकारी श्रेणियाँ —(Craft Guilds in Middle Ages)

ब्रिटेन के श्रमिक संघ औद्योगिक क्रांति की उपज हैं। इससे पूर्व अधिकतर उद्योग-धन्धे श्रमिकों के घर पर ही होते थे और श्रमिक कठिनता से ही मिल पाते थे क्योंकि वह अलग-अलग कार्य करते थे। अतः किसी प्रकार के संघ बनाने का अवसर न था। परन्तु मध्ययुग में श्रमिकों की दस्तकारी श्रेणियों (Craft Guilds) का उल्लेख मिलता है। यह उन कुशल श्रमिकों के संघ थे जो एक ही प्रकार की वस्तु के उत्पादन में संलग्न होते थे। इस प्रकार की श्रेणी या गिल्ड सभी व्यवसायों जैसे सीमेंट यातायात आदि में पाये जाते थे। परन्तु ये दस्तकारी श्रेणियाँ आधुनिक श्रमिक संघों से भिन्न थीं। दस्तकारी श्रेणियाँ उन शिल्पियों का संगठन थीं जो मालिक होने के साथ-साथ श्रमिक भी थे और यह सम्पूर्ण दस्तकारी को नियंत्रित करते थे जबकि श्रमिक संघ में केवल श्रमिक ही होते हैं। इसके अतिरिक्त यह मध्यकालीन दस्तकारी श्रेणियाँ अधिकतर स्थानीय ही होती थीं जबकि आधुनिक श्रमिक संघ अधिक विस्तृत आधार पर संगठित किए जाते हैं। श्रेणियाँ धार्मिक व दान के कार्य भी करती थीं जो कि आधुनिक श्रमिक संघों के द्वारा सम्पन्न नहीं किए जाते। श्रेणियाँ एक ही व्यवसाय में लगे व्यक्तियों का संगठन होती थीं परन्तु श्रमिक संघों में विभिन्न व्यवसायों के श्रमिक भी हो सकते हैं। दोनों में विभिन्नता का एक अन्य महत्त्वपूर्ण कारण यह है कि दस्तकारी श्रेणियाँ अपने तथा जनता दोनों के ही हितों को ध्यान में रखती थीं। आधुनिक श्रमिक संघ सामान्यतः मजदूरों के ही हितों का ध्यान रखते हैं और कभी-कभी जनसाधारण और अपने उद्योग तक की भलाई की परवाह नहीं करते।

आधुनिक श्रमिक संघों का विकास —

अठारहवीं शताब्दी तथा उसके पश्चात् आधुनिक उद्योग-धन्धों के विकास होने के कारण श्रमिक संघों की आवश्यकता अनुभव हुई। कारखाना प्रणाली से श्रम जीवियों के एक नये वर्ग की उत्पत्ति हुई जो अपने निर्वाह के लिये पूर्णतया अपनी मजदूरी पर ही निर्भर था। व्यक्तिवाद (Individualism) के ऐसे युग में जबकि अबन्ध नीति (Laissez-faire) ही सर्वोपरि थी श्रमिक वर्ग को अनेक हानियाँ

पहुँचीं। अनेक कठिनाइयों तथा अन्याय के शिकार श्रमिकों का शोषण किया जाता था। प्रारम्भिक श्रमिक संगठन इस शोषण के स्वाभाविक परिणाम थे।

संसद का विरोधी व्यवहार संगठन कानून –(Combination Laws)

इस युग से पूर्व कुछ ऐसे अधिनियम थे जिनके अन्तर्गत मजदूरी का निर्धारण 'जस्टिसेज आफ पीस' (Justices of Peace) द्वारा होता था। इस प्रकार जब सरकार ने श्रमिकों की अवस्था पर नियंत्रण रखने का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया तब मजदूरी बढ़ाने अथवा श्रम अवस्थाओं में हस्तक्षेप करने के लिए श्रमिक संगठनों को कानून द्वारा निषेध कर दिया गया। इसी प्रकार के निषेध मालिकों के लिये भी थे। परन्तु समय की गति के साथ साथ मालिकों के लिए राज्य का यह हस्तक्षेप निष्क्रिय होता गया। औद्योगिक क्रांति के पश्चात् जब उद्योगों का तीव्र गति से विकास हुआ राज्य के कानूनों का प्रभाव कम हो गया और मजदूरी तथा श्रम की अवस्थाएं मालिकों द्वारा निर्धारित की जाने लगीं। परिणामस्वरूप श्रमिकों का शोषण हुआ। परन्तु संगठन अब भी अपराध माने जाते थे और षड्यन्त्र के कानून (Law of Conspiracy) के अन्तर्गत वर्जित होते थे। तत्कालीन आर्थिक सिद्धान्त ने भी श्रमिक संघों के प्रति सरकार के दृष्टिकोण पर प्रभाव डाला। मजदूरी निधि सिद्धान्त (Wages Fund Theory) के अनुसार मजदूरी एक निश्चित निधि में से दी जाती है और यदि श्रमिकों का कोई संघ किसी एक उद्योग में श्रमिक संघों के माध्यम से अधिक मजदूरी प्राप्त कर लेता है तो दूसरे उद्योग में श्रमिकों को कम मजदूरी मिलती। इसके अतिरिक्त फ्रांसीसी क्रांति ने भी इंगलैंड में यह भय व्याप्त कर दिया कि कहीं यह श्रमिक संघ क्रांतिकारी न हो जावें। अतः संसद (Parliament) इन संघों के प्रति विरोधी हो उठी और कई ऐसे अधिनियम पारित किए गये जिनके अन्तर्गत एक के बाद एक उद्योगों में संगठन अवैध घोषित कर दिए गये। इन सब कानूनों के पश्चात् सन् १७९९ और १८०० में संगठन कानून (Combination Laws) के रूप में और भी कठोर कदम उठाये गये जिनके अन्तर्गत तमाम उद्योगों में संगठनों को अवैध घोषित कर दिया गया। इसका परिणाम यह हुआ कि श्रमिकों के गुप्त संघ बनने लगे। गुप्त शराबखानों में सभायें होने लगी तथा सदस्यों के नाम भी गुप्त रखे जाने लगे। जब मालिकों से संघ प्रत्यक्ष रूप से बात नहीं कर सकते थे और शांतिपूर्ण ढंग से समझौतों का रास्ता बन्द हो गया था तब परिणामस्वरूप अनेक स्थानों पर हड़तालें हुई और श्रमिक हिंसा पर उतर आये तथा मशीनों की तोड़ फोड़ की गई क्योंकि मशीनें श्रमिकों द्वारा उनकी निर्धनता और कठिनाइयों का कारण समझी जाती थी। इस समय कुछ 'फ्रेंडली सोसाइटीज' अर्थात् मित्र समितियाँ बनाई गई जो कि १७९३ के 'फ्रेंडली सोसाइटी एक्ट' (Friendly Societies Act) के अन्तर्गत पंजीकृत होती थीं। इन 'फ्रेंडली सोसाइटीज' ने कुछ महत्वपूर्ण कार्य किए जैसे श्रमिकों को बेकारी और बीमारी के दिनों में सहायता दी। यह कार्य बाद में श्रमिक संघों द्वारा किए जाने लगे।

परन्तु ऐसी संस्थाएँ श्रमिकों का संगठन नहीं कही जा सकती थीं क्योंकि तमाम संस्थाएँ निषेध थीं।

श्रमिक संघों का प्रारम्भ —

श्रमिकों में असंतोष व्याप्त हो रहा परन्तु शिक्षा और तीव्र बुद्धि न होने के कारण वह अनेक वर्षों तक संगठन कानूनों (Combination Laws) को समाप्त न करा सके। सैद्धान्तिक रूप से तो मालिकों के संघ बनाने पर भी प्रतिबन्ध था परन्तु इस प्रतिबन्ध को लागू करने के लिए बहुत ही कम कार्य किया गया जबकि श्रमिकों के लिये 'षड्यन्त्र के कानून' के अन्तर्गत कठोर दण्ड की व्यवस्था थी। कुछ तीव्र बुद्धि वाले श्रमिकों ने संगठन कानूनों को समाप्त कराने के हेतु आन्दोलन किया। 'फ्रांसिस प्लेस' (Francis Place) नामक एक दर्जी ने कई वर्षों तक इन अधिनियमों को समाप्त कराने के लिए कार्य किया और १८२४ में संसद के निम्न सदन (House of Commons) के क्रांतिकारी नेताओं विशेषकर जोसेफ ह्यूम (Joseph Hume) की सहायता से एक ऐसा अधिनियम पारित कराने में सफल हुआ जिसके अन्तर्गत श्रमिकों को मजदूरी और काम के घंटों के प्रश्न पर मालिकों से बातचीत करने के लिए संघ बनाने की अनुमति प्राप्त हो गई। परन्तु इस अधिनियम के परिणामस्वरूप अनेक हड़तालें हुईं और अव्यवस्था फैली। इसकी प्रतिक्रिया हुई। सन् १८२४ के अधिनियम के द्वारा श्रमिकों को षड्यन्त्र के सामान्य नियम के अन्तर्गत भी दण्डित नहीं किया जा सकता था। इसलिए इसके स्थान पर सन् १८२५ का संशोधित अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत संघों को वैधानिक रूप तो प्रदान किया गया परन्तु सामान्य कानून का कोई भी उल्लेख नहीं था। अतः श्रमिक अब किसी भी संगठन के लिए जिसका उद्देश्य काम के घण्टे या मजदूरी के बारे में समझौता कराना नहीं था सामान्य कानून के अन्तर्गत दण्डित किये जा सकते थे और न ही हड़ताल करने वाले श्रमिक दूसरे मजदूरों को काम पर जाने से रोक सकते थे। इससे श्रमिक संघों को काफी क्षति पहुँचा और १८२५ के अधिनियम द्वारा इनको केवल वैधानिक मान्यता ही प्राप्त हो सकी।

सन् १८२४ के पश्चात् श्रमिक संघों का गुप्त रूप से संगठन होना बन्द हो गया और उनकी तथा उनके सदस्यों की संख्या में आशातीत वृद्धि होने लगी। इस समय के अधिकतर संघ केवल हड़ताल समितियों के रूप में थे। जैसे ही हड़तालों को चालू रखने के लिए निधि की समाप्ति हो जाती थी श्रमिक काम पर लौट आते थे। स्थानीय छोटे छोटे श्रमिक संघों को बड़े संगठनों के रूप में परिवर्तित करने का प्रयत्न भी किया गया। १८३४ में राबर्ट ओवन के प्रभाव के फलस्वरूप "ग्रांड नेशनल कन्सोलिडेटेड ट्रेड यूनियन" की स्थापना हुई। परन्तु यह 'ग्रांड नेशनल' सदस्यों की आशाओं को पूरी करने में असमर्थ रही क्योंकि इसमें आर्थिक पुनर्निर्माण के आदर्श बहुत ऊँचे रख गये थे जिनको प्राप्त करना कठिन था। इसलिए यह शीघ्र ही समाप्त हो गई। कुछ वर्षों तक श्रमिकों का विश्वास संघवाद से उठ

के अनेक संघ बने। इसी समय १८९० ई० में रेलवे कर्मचारियों का एक सम्मिलित संघ (Amalgamated Society of Railway Servants) बना यद्यपि रेलवे कर्मचारियों के संघ १८७१ से बनने लगे थे।

यहाँ इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि १९वीं शताब्दी के अन्त तक श्रमिक संघ अपने सदस्यों का कल्याणकारी काम नहीं पहुँचाते थे क्योंकि यह काम सरकार का समझा जाता था। सन् १८९३ में श्रमजीवियों की अवस्था को सुधारने के लिए स्वतन्त्र मजदूर दल (Independent Labour Party) का निर्माण किया गया। इस लेबर पार्टी ने कई बार अपनी सरकार बनाई है। इसके बाद में श्रमिक संघों ने स्वतन्त्र रूप से राजनैतिक कार्यों में भाग लिया तथा सामाजिक कानूनों की उन्नति की ओर अधिक ध्यान दिया।

टैफवेल रेलवे कम्पनी और ओस्बोर्न के मुकदमे —

वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में इंगलैण्ड के श्रमिक संघ आन्दोलन को दो भारी झटके लगे। सन् १९०० में टैफवेल रेलवे कम्पनी के कर्मचारियों ने हड़तालें कीं। कम्पनी ने रेलवे कर्मचारियों के सम्मिलित संघ (Amalgamated Society) पर क्षतिपूर्ति के लिये मुकदमा दायर किया। संघ का विचार था कि सन् १८७१ और १८७५ के अधिनियमों द्वारा उसको पर्याप्त सुरक्षा प्रदान थी। परन्तु न्यायालय ने संघ को कम्पनी को भारी मात्रा में क्षतिपूर्ति देने का आदेश दिया। इससे यह धारणा बन गई कि संघों का धन मुकदमों में तथा क्षतिपूर्ति देने में ही व्यर्थ होता था। सन् १९०६ में व्यापार विवाद अधिनियम (Trade Disputes Act) के अन्तर्गत इस विषय में कुछ अधिकार मिले और न्यायालयों को इस बात के लिए मना कर दिया गया कि वह शान्तिपूर्वक धरना देने वालों तथा संघ के कार्यों के विषय में कोई भी मुकदमा न लें।

श्रमिक संघवाद को दूसरा महत्वपूर्ण झटका अपनी राजनैतिक क्रियाओं के परिणामस्वरूप लगा। कई श्रमिक संघ अपने सदस्यों से मजदूर दल का समर्थन करने के लिए चन्दा लेते थे। उनके इस अधिकार के विरुद्ध सन् १९०८ में रेलवे कर्मचारियों के सम्मिलित संघ (Amalgamated Society) के एक सदस्य मि० डब्लू ओसबोर्न ने आवाज उठाई और उनके इस मत का न्यायालयों ने भी समर्थन किया। इससे मजदूर दल (Labour Party) का अस्तित्व ही खतरे में पड़ गया। अब केवल धनी व्यक्ति ही दल के लिए धन दे सकते थे और श्रमिक ऐसा करने में असमर्थ थे।

सन् १९१३ में 'ट्रेड यूनियन एक्ट' पारित किया गया जिसके अनुसार संघ राजनैतिक क्रियाओं में भाग ले सकते थे तथा इस कार्य के लिये धन भी एकत्रित कर सकते थे। परन्तु राजनैतिक क्रियाओं में भाग लेने के लिये आवश्यक था कि उसका समर्थन मत द्वारा बहुमत से होना चाहिए तथा राजनैतिक निधि को अन्य निधियों से पृथक रखा जाय। इसके अतिरिक्त कोई भी व्यक्तिगत सदस्य राजनैतिक निधि में

चन्दा देने से मना कर सकता था और उसे इस कार्य के लिए कोई दण्ड नहीं दिया जा सकता था।

युद्ध और संघ —

प्रथम महायुद्ध में श्रमिक संघ आन्दोलन का महत्त्व बढ़ गया। युद्ध काल में हड़तालें स्थगित कर दी गईं और श्रमिक संघ व मजदूर दल ने अपने आपको पूर्णतया युद्ध में लगा दिया तथा अपने अनेक अधिकारों का परित्याग कर दिया। परन्तु युद्ध की स्थिति के कारण नई औद्योगिक समस्याएँ सामने आईं और 'कारखाना प्रतिनिधि' (Shop Steward) आन्दोलन के रूप में एक नया श्रमिक संघ आन्दोलन उठा। युद्ध के पश्चात् ही आर्थिक मन्दी आई। मजदूरी में कमी कर दी गई और अनेक हड़तालें हुई। १९१९ में रेलवे की हड़ताल में श्रमिकों को सफलता प्राप्त हुई। लन्दन के गोदी कर्मचारी अर्नेस्ट बेविन के नेतृत्व में न्यूनतम मजदूरी प्राप्त करने में सफल हुए। सन् १९२६ में एक आम हड़ताल हुई जिसके परिणामस्वरूप सन् १९२७ का श्रमिक संघ अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा आम हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था थी कि प्रत्येक सदस्य को राजनैतिक निधि में चन्दा देने की अपनी इच्छा को घोषित करना चाहिए और सन् १९१३ के अधिनियम की भाँति यह आवश्यक नहीं रह गया कि प्रत्येक व्यक्ति राजनैतिक निधि में चन्दा दे और जो न देना चाहे वह मना कर दे। इस बात से मजदूर दल में असन्तोष व्याप्त हुआ। परन्तु उस समय की 'लेबर' सरकार ने भी इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। सन् १९४६ के श्रमिक संघ अधिनियम तथा व्यापार विवाद अधिनियम के द्वारा ही इस बात को पुनः लागू किया गया कि प्रत्येक सदस्य को राजनैतिक निधि में चन्दा देना होगा जब तक कि वह छूट के लिए प्रार्थना न करे।

वर्तमान स्थिति —

इस अवधि के पश्चात् से इंगलैंड में श्रमिक संघ आन्दोलन निरन्तर शक्तिशाली होता जा रहा है और इसने श्रमिकों के कल्याण और हित के लिए अनेक कार्य किए हैं। अधिकतर कर्मचारी जो उद्योगों में लगे हुए हैं जिनमें कृषि और यातायात जैसी जनोपयोगी सेवाएँ भी सम्मिलित हैं अब श्रमिक संघों में संगठित हैं। इनका विकास स्वतन्त्र रूप से धीरे धीरे कई वर्षों में हुआ है। यह आन्दोलन २०० वर्ष पूर्व कुशल कर्मचारियों से प्रारम्भ हुआ था और तत्पश्चात् अकुशल वर्गों में भी फैल गया। द्वितीय विश्व युद्ध के समय में सदस्यों की संख्या २५ प्रतिशत और बढ़ गई। सन् १९४६ में ब्रिटिश श्रमिक संघों की सदस्यता ८७ १४ ००० थी। सन् १९५७ में सदस्य संख्या ९७ ०० ० तक पहुँच गई। अब भी ६४७ अलग अलग संगठन हैं परन्तु दो तिहाई सदस्य १७ ऐसे बड़े बड़े संघों में संगठित हैं जिनमें प्रत्येक में सदस्यों की संख्या १ लाख से भी अधिक है। कुछ संघ एक दस्तकारी (Craft) या दस्तकारों के वर्ग तक सीमित हैं जबकि कुछ दूसरे संघ किसी उद्योग

अथवा उद्योगों में लगे हुए सभी प्रकार के श्रमिक व कर्मचारियों तक फैले हुए हैं। प्रत्येक संघ अपने संगठन में स्वतन्त्र रूप से कार्य करता है और इसका आधार शाखा (Branch) अथवा लॉज (Lodge) है जो स्थानीय क्षेत्रों पर आधारित है। 'शाखा' अधिकारियों और समितियों का निर्वाचन करती है और उन सभी विषयों पर विचार करती है जो कि स्थानीय रूप से सुलझाये जा सकते हैं। अधिक महत्त्वपूर्ण मामले जिले की अथवा राष्ट्रीय संस्थाओं द्वारा सुलझाये जाते हैं। अब स्त्रियों तथा हर प्रकार के कर्मचारियों में भी संघवाद विकसित होता जा रहा है। कई संघों में प्रमापन प्रतिनिधि (Shop Steward) या कर्मचारियों के प्रतिनिधि भी होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यापारिक परिषदें (Trade Councils) भी हैं जो विभिन्न उद्योगों में संगठित श्रमिकों के राजनैतिक और औद्योगिक प्रश्नों पर सहयोग देने के लिए हैं। यह प्रत्येक क्षेत्र में श्रमिक संघों की शाखा का कार्य करती हैं। इंग्लैंड में श्रमिक संघ आन्दोलन कुशल दस्तकारों जैसे इन्जीनियरिंग कामों, वस्त्र उद्योग रेलवे यातायात और गोदी कर्मचारियों में पर्याप्त शक्तिशाली है। इंग्लैंड में श्रमिक संघों का एक महत्त्वपूर्ण कार्य सामूहिक सौदाकारी (Collective Bargaining) के माध्यम से मालिकों से बातचीत करना रहा है।

इंग्लैण्ड में संगम — (Federations in England)

ब्रिटेन में श्रमिक संघ आन्दोलन की एक प्रमुख विशेषता संगमों की स्थापना है। सन् १८८६ में खान-श्रमिकों के संगम और सन् १९१३ में रैलवे कर्मचारियों की राष्ट्रीय यूनियन बनाई गई। सन् १९१४ में रेलवे खान और यातायात कर्मचारियों का एक त्रिदलीय संगठन बनाया गया। अनेक अन्य संगम नीति के प्रश्नों पर विचार करते हैं। इंग्लैंड में श्रमिक संघ आन्दोलन का केन्द्रीय संगठन 'ट्रेड यूनियन कांग्रेस' है जिससे अधिकतर श्रमिक संघ सम्बद्ध हैं। यह ट्रेड यूनियन कांग्रेस सन् १८६८ में स्थापित की गई थी और यह एक प्रकार से श्रमिकों की संसद है जिसमें अनेक वर्गों का प्रतिनिधित्व मिलता है। इस संस्था की एक सामान्य परिषद् सन् १९२१ में स्थापित की गई थी जिसका श्रमिक संसार में महत्त्वपूर्ण प्रभाव है। सामान्य परिषद् प्रतिवर्ष कांग्रेस द्वारा अपनी कायक (Executive) के रूप में निर्वाचित की जाती है। यह परिषद् उस सामान्य नीति को कार्यान्वित करती है जो कि सम्बद्ध संघों के प्रतिनिधियों के वार्षिक अधिवेशन द्वारा निश्चित की जाती है। ट्रेड यूनियन कांग्रेस को सरकार द्वारा सरकारी विभागों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के बीच परामर्श करने के लिए मान्यता भी प्राप्त है।

ब्रिटिश श्रमिक संघों की उपलब्धियां — (Achievements)

इंग्लैंड में श्रमिक संघ आन्दोलन ने श्रमिकों की दशा सुधारने और श्रम व सामाजिक कल्याण कार्यों की अवस्थाओं में सुधार करने के लिए महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। श्रमिक संघों ने मालिकों से बातचीत और समय-समय पर रॉयल कमीशन और जांच समितियों को गवाही देकर मजदूरी और श्रमिक की अवस्थाओं में सुधार कराया

है। समय-समय पर उन्होंने हड़तालें और सीधी कार्यवाहियाँ भी की हैं परन्तु हड़ताल उनका अन्तिम अस्त्र है जिसका प्रयोग उस समय किया जाता है जबकि परस्पर समझौते और वार्तालाप के साधन असफल हो जाते हैं। विकासात्मक और वैधानिक उपायों से ही उद्देश्यों को प्राप्त करने का प्रयत्न किया जाता है। क्रांतिकारी तरीके इंगलैंड के संघ आन्दोलन के नेताओं और साधारण सदस्यों के विचारों के अनुकूल नहीं हैं। अनेक श्रमिक संघ अपने सदस्यों के लिए अनेक लाभ प्राप्त करने में सफल हुए हैं। संघ न केवल कारखाने वर्कशॉप और खानों में कार्य की शिकायतों पर ही ध्यान देते हैं वरन् प्रगतिशील निर्माणकारी सुझावों में सहयोग भी देते हैं। उनका यह सहयोग छोटी छोटी बातों से बड़ी बड़ी बातों तक होता है। उदाहरणतः यह उचित प्रकाश रोशनदान कार्य सगठन की व्यवस्था से लेकर अवकाश समय कैंटीन व्यवस्था और श्रमिकों के मनोरंजन एवं कल्याण कार्य जैसे प्रश्नों तक में रुचि लेते हैं। इस कार्य को समायोजित करने और इस ओर निरन्तर विचार करने के लिए श्रमिक संघ कांग्रेस ने एक स्थायी 'वर्कमैन्स कम्पनसेशन एण्ड फैक्ट्रीज कमेटी' स्थापित की है। अनेक उद्योगों में अनुशासन के प्रश्न पर भी संघ विचार करते हैं। उदाहरणतः संघ और मालिकों की मिली जुली कमेटी कुछ उद्योगों में इसलिए बनी हुई है कि वह नियमों का उल्लंघन करने वाले कर्मचारियों के विरुद्ध आरोपों की सुनवाई कर सकें। कर्मचारियों के मुकदमों में वकालत करने का काम भी संघ करते हैं। यदि किसी श्रमिक को मुअत्तल (Suspend) कर दिया जाता है या उसे कोई अन्य दण्ड मिलता है तो श्रमिकों की ओर से संघ सफाई पक्ष करने का कार्य भार भी संभालते हैं। यहाँ तक कि कई बार श्रमिकों की नियुक्ति और बरखास्तगी का निर्णय संघ और मालिक मिलकर स्वयं करते हैं। इसके अतिरिक्त संघ अपने सदस्यों को नकदी के रूप में अनेक प्रकार की सहायता देते हैं जो कि विभिन्न संघों में भिन्न-भिन्न हैं। यह सहायता बीमारी दुर्घटना अथवा मृत्यु की अवस्था में दी जाती है। अंतिम संस्कार के लिए भी सदस्यों को धन दिया जाता है जो अधिकतर उनकी पत्नी की मृत्यु पर प्रदान किया जाता है। कभी कभी मातृत्व हित लाभ भी प्रदान किए जाते हैं। कुछ संघ बेकारी की अवस्था में भी सहायता देते हैं। नकद लाभ का प्रबन्ध इंगलैंड में श्रमिक संघों का बहुत पुराना कार्य है और कई प्रारम्भिक श्रमिक संघ वास्तव में कल्याण समितियाँ ही थे। राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत भी सदस्यों को जो बीमारी के दिनों में सहायता मिलती है उसको नियोजित करने का कार्य भी संघों द्वारा ही होता है और इसके लिए संघों को मान्यता प्राप्त समितियाँ माना जाता है। कुछ संघ सदस्यों के लिए सेवा सुश्रुषा गृहों (Convalescent Homes) की भी व्यवस्था करते हैं। इसके अतिरिक्त श्रमिक संघ अपने सदस्यों के लिए, जब उन पर कोई मुकदमा चलता है या जब वह दुर्घटना के पश्चात् क्षतिपूर्ति की मांग करते हैं, कानूनी सहायता की भी व्यवस्था करते हैं। अनेक संघ सदस्यों को शिक्षा सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अनुदान और

छात्रवृत्ति भी प्रदान करते हैं। इन उद्देश्यों के लिए "वर्कर्स एज्यूकेशनल एसोसिएशन्स" तथा "नेशनल कौंसिल ऑफ लेबर कॉलिजेज" स्थापित किए गए हैं जहाँ अर्थशास्त्र सामाजिक विज्ञान सांस्कृतिक विषयों और श्रमिक संघवाद का अध्ययन कराया जाता है। कुछ संघ विशेष पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था करते हैं। उदाहरणतः "ट्रांसपोर्ट एण्ड जनरल वर्कर्स यूनियन" ने अपने सदस्यों के लिए दिन के स्कूलों की व्यवस्था की है और "संघ और युद्ध" या संघ और उसकी समस्याओं पर पत्र व्यवहार कोर्स की भी व्यवस्था की है। इसके अतिरिक्त श्रमिक संघों और लेबर पार्टी के बीच घनिष्ठ सहयोग रहा है यद्यपि पिछली लेबर सरकार के समय श्रमिक संघों का लेबर पार्टी की सरकार से मतभेद हो गया था जबकि कोयला और इस्पात कर्मचारियों और आम श्रमिकों ने हड़ताल कर दी थी। फिर भी यह कहा जा सकता है कि श्रमिक संघ लेबर पार्टी और सरकार के बीच एक कड़ी है और इन्होंने लेबर पार्टी पर दबाव डालकर संसद में श्रमिकों के लिए अनेक कानून बनवाये हैं। श्रमिक संघों ने श्रमिकों की आवास समस्या की भी उपेक्षा नहीं की है। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में ब्रिटिश श्रम संघवाद ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के माध्यम से श्रम दशाओं का सन्तोषजनक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर स्थापित किया है।

इस प्रकार से इंगलैंड में श्रमिक संघ अपने को केवल श्रमिकों के जीवन तक ही सीमित नहीं रखते वरन् ग्रेट ब्रिटेन की औद्योगिक प्रणाली में उनका अत्यन्त ही महत्वपूर्ण स्थान है। वे मालिक-मजदूर सम्बन्धों की व्यवस्था का एक अंग हैं, और श्रमिकों की ओर से मजदूरी पर बातचीत करने और रोजगार की अवस्थाओं पर विचार करने के लिए श्रमिकों की संगठित संस्था हैं। उन्होंने उद्योग में मधुर सम्बन्ध स्थापित किए हैं और इस प्रकार एक महत्वपूर्ण जन-सेवा की है। उन्होंने इंगलैंड में श्रमिक विवादों की संख्या कम की है। श्रमिकों के सामान्य जीवन के रहन-सहन के स्तर को ऊँचा उठाने की ओर भी ध्यान दिया है। उन्होंने श्रमिकों के भौतिक मानसिक और सांस्कृतिक तथा नागरिक उत्तरदायित्व के स्तरों को ऊँचा उठाने में सहायता दी है। पिछले कुछ वर्षों से संघों ने अपने सदस्यों की शिक्षा की ओर भी अधिक ध्यान दिया है। इन कार्यों ने श्रमिकों के स्तर और आत्म-सम्मान को बहुत ऊँचा उठाया है। अब संघों से सरकार के द्वारा निरन्तर आर्थिक सामाजिक और प्रतिरक्षा (Defence) जैसे विषयों पर भी परामर्श किया जाता है। श्रमिक संघ आन्दोलन समाज के जीवन का प्रतिबिम्ब है और कोई भी इंगलैंड के १ करोड़ श्रमिकों की उपेक्षा करने का साहस नहीं कर सकता।

कार्यालय प्रतिनिधि आन्दोलन (Shop Stewards Movement) —

इंगलैंड में कार्यालय प्रतिनिधि आन्दोलन* का भी कुछ वर्णन कर देना उपयुक्त होगा। कार्यालय प्रतिनिधि आन्दोलन और इसके परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाला श्रमिक समिति आन्दोलन (Workers Committee Movement) १९१८–

---

*G. D. H. Cole *British Trade Unionism Today* page 163

१८ के विश्वयुद्ध की देन थे। एक समय तो ऐसा प्रतीत हुआ कि यह आन्दोलन श्रमिक संघों की नीति और संगठन विधि में परिवर्तन ला देंगे परन्तु युद्ध समाप्ति के एक दो वर्ष पश्चात् यह आन्दोलन प्रगति न कर सका।

सन् १९१९ की ह्विटले समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप ग्रेट ब्रिटेन में संयुक्त औद्योगिक परिषदें (Joint Industrial Councils) स्थापित की गई थीं। ये परिषद उद्योग की समस्याओं पर विचार करने के लिये थीं। इसके अतिरिक्त प्रत्येक कार्यालय ही में श्रमिकों और मालिकों के मध्य मतभेद दूर करने के लिये हजारों की संख्या में मालिक मजदूर समितियाँ (Works Committee) स्थापित हो गई थीं। अमालय प्रतिनिधि आन्दोलन' इसके साथ ही साथ विकसित हुआ।

'अमालय प्रतिनिधि' उस श्रमिक को कहते हैं जो किसी कारखाने में कारखाने की समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर प्रतिनिधित्व करने के लिए अपने साथियों द्वारा छाँट लिया जाता है। इस प्रकार के अमालय प्रतिनिधि युद्ध से पूर्व भी थे। इनको बड़ा उपयोगी समझा जाता था क्योंकि किसी श्रमिक संघ के लिए किसी कारखाने विशेष की समस्याओं पर विचार करना और उनके दिन प्रति दिन के मामलों को सुलझाना बड़ा कठिन होता है। श्रमिक संघों के अधिकारी थोड़े होते हैं और वह हर समय हर स्थान पर उपस्थित नहीं हो सकते। श्रमिक संघ तो केवल श्रमिकों के सामान्य हित पर ही विचार करते हैं। श्रमिकों को कारखाने में भी किसी ऐसे व्यक्ति की आवश्यकता होती है जो तत्कालीन और विशेष समस्याओं को जैसे ही वह उत्पन्न हों सुलझा सके।

अत यह उपयुक्त ही है कि प्रत्येक संस्थान में श्रमिक अपने बीच से किसी एक व्यक्ति को चुनें जो उनकी ओर से बोल सके और संघ में विषय विशेष पर उनका प्रतिनिधित्व कर सके। खान-श्रमिक इस कार्य के लिये 'चेकवेमैन' (Check-weighman) की सेवाएँ प्राप्त करते हैं जिनका कानून के द्वारा उन्हें चुनने का अधिकार है और जिनको श्रमिकों के द्वारा वेतन दिया जाता है। अन्य उद्योगों में इस उद्देश्य के लिए अमालय प्रतिनिधि चुने जाते हैं। परन्तु युद्ध से पूर्व यह महत्व पूर्ण नहीं थे। श्रमिक संघ भी उनका समर्थन नहीं करते थे क्योंकि यह विचार था कि वह श्रमिक संघ अधिकारियों के विरोध में आ जायेंगे। इनका सन्देह उचित ही था क्योंकि कई बार मालिकों ने मालिक-मजदूर समितियाँ बनाईं और संघों को दूर रखने के लिए कारखानों के अन्दर ही प्रतिनिधियों का चुनाव कर लिया। उस समय तक अमालय प्रतिनिधियों को श्रमिक संघों के द्वारा किसी प्रकार के संगठनात्मक कार्य नहीं दिए जाते थे।

परन्तु युद्ध से सारी स्थिति ही बदल गई। सर्वप्रथम तो मान्यता प्राप्त श्रमिक संघों की शक्ति ही समाप्त हो गई क्योंकि पहले तो उन्होंने ऐच्छिक रूप से ही युद्ध के दिनों में हड़ताल न करने का संकल्प लिया और फिर सन् १९१५ के 'म्यूनिशन ऑफ वार एक्ट' के अन्तर्गत हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया गया।

इसका परिणाम यह हुआ कि जब स्थिति इतनी गम्भीर हो जाती थी कि हड़ताल करने की स्थिति उत्पन्न हो जाये तो श्रमिकों को संघ से बाहर के नेतृत्व की सहायता लेनी पड़ती थी। इस नेतृत्व की पूर्ति कारखाना प्रतिनिधियों ने की। दूसरे सन् १९१५ के प्रारम्भ में ही अस्त्र-शस्त्रों की तीव्र आवश्यकता के कारण कारखानों की प्रणाली में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे थे। यहाँ तक कि कुशल श्रमिकों के स्थान पर अकुशल व अर्धकुशल स्त्री व पुरुष रखे जा रहे थे। निरन्तर होने वाले इन परिवर्तनों से संघर्ष उत्पन्न हो गया और श्रमिकों के प्रतिनिधियों द्वारा प्रत्यक्ष रूप से बातचीत करना आवश्यक हो गया। इस प्रकार से कारखाना प्रतिनिधि महत्वपूर्ण हो गए। तीसरे मार्च १९१६ में सेना में अनिवार्य भर्ती लागू हो गई। इसके परिणामस्वरूप अधिक से अधिक संख्या में कुशल श्रमिकों की मांग युद्ध के कारण बहुत बढ़ गई और उनको सेना के लिए भेजना पड़ा। मार्च १९१७ में रूसी क्रांति के पश्चात्, युद्ध के निरन्तर बढ़ते हुए विरोध के कारण संघर्ष और भी बढ़ गया। इस विरोध का नेतृत्व भी कारखाना प्रतिनिधियों ने किया।

इन तीन कारणों के परिणामस्वरूप ही कारखाना प्रतिनिधियों के आन्दोलन का अभ्युदय और विकास हुआ। आन्दोलन के रूप में यह क्लाइड में सन् १९१५ ई० में इन्जिनियरों की हड़ताल से प्रारम्भ हुआ था। यह हड़ताल श्रमिक संघों की अनुमति के बिना हुई। इसका नेतृत्व 'सेन्ट्रल विथड्रावल ऑफ लेबर कमेटी' (Central Withdrawal of Labour Committee) ने किया जिसमें संघों के द्वारा मान्यता प्राप्त कारखाना प्रतिनिधि तथा श्रमिकों के चुने हुए प्रतिनिधि होते थे। इस हड़ताल के पश्चात् इसने 'क्लाइड वर्कर्स कमेटी' के रूप में अपने को परिवर्तित कर लिया और प्रत्येक इन्जिनियरिंग कारखाने में एक निश्चित तौर से साधारण श्रमिकों का संगठन हुआ। क्लाइड का उदाहरण छूत की बीमारी की तरह फैला तथा 'कारखाना प्रतिनिधि' आन्दोलन और विकसित हुआ। अनेक जिलों में श्रमिकों की समितियाँ स्थापित की गईं। प्रारम्भ में प्रतिनिधि केवल कुशल श्रमिकों के प्रतिनिधि होते थे परन्तु शीघ्र ही आन्दोलन अकुशल श्रमिकों में भी फैल गया। श्रमिकों की समितियाँ स्थापित की गईं जिन्होंने संघों में भी व्यापक प्रभावशाली प्रतिनिधित्व का दावा किया। परन्तु 'कारखाना प्रतिनिधि' आन्दोलन अकुशल श्रमिकों की अपेक्षा कुशल श्रमिकों का अधिक प्रतिनिधित्व करता था तथा इसमें स्त्रियों का कोई महत्वपूर्ण प्रतिनिधित्व नहीं था।

'क्लाइड श्रमिक समिति' युद्ध काल में तो सक्रिय रही परन्तु सन् १९१६ ई० में इसके नेताओं के कारावास और देश निष्कासन के कारण इसकी शक्ति छिन्न-भिन्न हो गई तथा नेतृत्व अन्य स्थानों के व्यक्तियों के हाथ में चला गया। इसके पश्चात् 'शेफील्ड वर्कर्स कमेटी' निर्मित हुई। इस्पात-निर्माताओं की समिति एक ऐसे कुशल श्रमिक को जिसे सेना में भर्ती कर लिया गया था हड़ताल द्वारा वापिस बुलाने में सफल हुई। इसी समय अनेक स्थानीय कारखाना प्रतिनिधियों के संगठन को राष्ट्रीय आन्दोलन के रूप में संगठित करने का प्रयत्न किया गया। एक राष्ट्रीय कारखाना प्रतिनिधि समिति

की स्थापना की गई और जनवरी १९१८ में रूसी क्रांति की प्रेरणा से राष्ट्रीय श्रमालय प्रतिनिधि परिषद् पूर्णतया संगठित हो गई। युद्ध काल में इन्जीनियरों और जहाज-निर्माण श्रमिकों की जो हड़तालें हुईं वह श्रमालय प्रतिनिधियों के द्वारा संचालित की गई थी और यह मान्यता प्राप्त श्रमिक संघों के नेताओं की इच्छा के विरुद्ध हुईं। प्रारम्भ में उन्होंने मजदूरी जैसे औद्योगिक प्रश्नों तक ही अपने को सीमित रखा परन्तु रूसी क्रांति के परिणामस्वरूप वह सेना की नौकरी के विरोध में हो गए और शांति-स्थापना तथा पूंजीवाद की समाप्ति के लिए क्रांतिकारी उपायों में विश्वास करने लगे। परन्तु यहाँ इस बात का उल्लेख कर दिया जाना आवश्यक है कि इस आन्दोलन में सभी श्रमालय प्रतिनिधि सम्मिलित नहीं थे। इनमें से कई कट्टर श्रम-संघवादी और युद्ध के समर्थक थे। आन्दोलन के क्रांतिकारी विचारों के कारण सरकार और जनता ने इसका घोर विरोध किया। जब तक युद्ध होता रहा तब तक तो कुशल श्रमिकों की कमी के कारण श्रमालय प्रतिनिधियों से किसी ने कुछ न कहा। परन्तु युद्ध समाप्त होते ही एक नवीन परिस्थिति उत्पन्न हो गई। श्रमिकों की पूर्ति अधिक थी और अब मालिकों के लिए आन्दोलन के नेताओं को बर्खास्त करना सरल हो गया। परिणामस्वरूप श्रमालय प्रतिनिधि का होना ही बर्खास्तगी को निमन्त्रण देना था। अतः श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन की शक्ति तीव्रता से क्षीण होती गई। कई सक्रिय नेता साम्यवादी दल में सम्मिलित हो गए और कुछ श्रमिक संघ नेतृत्व के अन्तर्गत आ गए।

यद्यपि श्रमिक संघों के नेता श्रमालय प्रतिनिधि के पक्ष में तो थे परन्तु उनके आन्दोलन का सदैव विरोध करते थे क्योंकि वह इसको संघों के अधिकार और प्रणाली को चुनौती समझते थे। इसके अतिरिक्त श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन ने विभिन्न संघों के अन्तर की ओर ध्यान नहीं दिया और सभी श्रमिकों को बिना इस बात का विचार किए कि वह किस संघ से सम्बन्धित है संगठित किया। अतः यह आन्दोलन श्रमिक संघ व्यवस्था से मेल नहीं रख सका तथापि इसने काफी महत्ता प्राप्त कर ली थी। युद्ध के पश्चात् भी अनेक श्रमिक संघ नेताओं ने इस बात का प्रयत्न किया कि जैसी युद्ध से पूर्व स्थिति थी श्रमालय प्रतिनिधियों को श्रम संघों के अधीन काम करने दिया जाए। परन्तु आन्दोलन असफल रहा क्योंकि इसने क्रांतिकारी उपायों और उद्योग पर श्रमिकों के नियन्त्रण में विश्वास करना प्रारम्भ कर दिया था। इंगलैंड में श्रमिक संघ आन्दोलन क्रांतिकारी धारणाओं के सदैव विरुद्ध रहा है और श्रमिक व्यवस्था में सुधार के लिए अर्थ-व्यवस्था के वर्तमान रूप में ही विश्वास करता रहा है। अतः श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन उसी समय पुनः शक्तिशाली हो सकता है जबकि श्रमिकों में क्रांतिकारी विचार घर कर जायें। उनका श्रमिक संघों की चुनौती के रूप में होना सन्देहयुक्त ही है। श्रमालय प्रतिनिधि श्रमिक संघ आन्दोलन के साथ अथवा उनके एक भाग के रूप में ही सर्वोत्तम तरीके से काम कर सकते हैं। यद्यपि श्रमालय प्रतिनिधि अब भी अपने को एक अलग

श्रेणी के रूप में समझते हैं तथापि श्रमिक संघ इतने शक्तिशाली हो गए हैं कि सन् १९१४–१८ के महायुद्ध के समय का असामान्य प्रतिनिधि जैसे आन्दोलन का विकसित होना कठिन है।

अन्य देशों में श्रमिक संघ —

श्रम संघवाद विश्वव्यापी आन्दोलन है। प्रत्येक पूंजीवाद देश में इसका विकास भी पूंजीवाद के विकास के साथ हुआ है और यह पूंजीवादी शोषण के उत्तर के रूप में आगे बढ़ा है। सिद्धान्त' अथवा 'आन्दोलन' के कारण नहीं वरन् श्रमजीवी वर्ग की तीव्र आवश्यकता के कारण ही श्रम संघवाद का अभ्युदय हुआ। अतः श्रम संघवाद सब पूंजीवादी देशों में विकसित हुआ है। इटली जर्मनी और कुछ सीमा तक जापान में भी श्रम संघों को समाप्त कर दिया गया था क्योंकि फासिस्ट सरकार कभी भी श्रमिकों की शक्ति में विश्वास नहीं करती थी और उसने केवल वही संघ बनाए जो कि सत्ताधारी दल के द्वारा नियन्त्रित हों। ऐसे देशों में श्रमिकों में अनुशासन बनाए रखने के लिए संघ स्थापित हुए थे। परन्तु चूंकि उन्हें हड़ताल करने अथवा अपने हितों की रक्षा करने का अधिकार न था अतः इनको श्रमिक संघ नहीं कहा जा सकता। दूसरी ओर श्रम संघवाद अमेरिका ग्रेट ब्रिटेन व रूस में काफी शक्तिशाली रहा है। अमेरिका में काफी समय से अमेरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर (A F L) दस्तकारी संघ का संगठन रही है जिसमें मुख्यतया कुशल श्रमिक होते हैं। इसका प्रभाव बड़े-बड़े उद्योगों पर अधिक न पड़ सका क्योंकि ऐसे उद्योगों के कम्पनी के संघ छाए हुए थे जिनका निर्माण बड़े-बड़े मालिकों द्वारा स्वतंत्र श्रमजीवी वर्ग संगठन को रोकने के उद्देश्य से किया गया था। अमरिकन फेडरेशन ऑफ लेबर ने अपनी दस्तकारी संघ नीति में परिवर्तन नहीं किया। परिणामस्वरूप जॉन एल॰ लीविस की अध्यक्षता में सन् १९३८ में एक कमेटी फार इन्डस्ट्रियल आरगेनाइजेसन (C. I. O) बनाई गई जिसने असंगठित उद्योगों में भी औद्योगिक संघ बनाने प्रारम्भ किए। लेबर फडरेशन के विरोध के बावजूद भी इस कमेटी ने अपना प्रचार जारी रखा और उल्लेखनीय सफलता पाई। सन् १९५५ में यह दोनों संगठन मिल कर एक सम्मिलित नाम से एक हो गये (A F L — C I O)।

रूस के श्रमिक संघ जिनको व्यावसायिक संघ कहा जाता है सरकार की उदारता के कारण तीव्रता से विकसित हुए। यद्यपि सब कारखानों पर सरकार ने अपना अधिकार कर लिया था तथापि इस बात को सब ने स्वीकार किया कि श्रमिक संघों का यह मौलिक कार्य कि वह श्रमिकों की अवस्थाओं में उन्नति लायें यथावत् बना रहेगा। सन् १९२८ में श्रमिक संघों को समाजवादी नीति के साथ समायोजित किया गया और अब श्रम संघों का केवल श्रमिकों की अवस्थाएं सुधारना मात्र कार्य नहीं रह गया है। अब वह श्रम अनुशासन लागू करने और उत्पादन बढ़ाने में सरकार की सहायक संस्था हो गये हैं। वे श्रमिकों की योग्यताओं एवं कुशलताओं में भी वृद्धि करने और कारखानों के विवेकीकरण का प्रयत्न करने में सहयोग प्रदान

करते हैं। श्रमिक संघ उद्योगों के आधार पर संगठित किए जाते हैं। आधार स्तर पर कारखाना अथवा स्थानीय समिति होती है जिसका निर्वाचन उत्पादन अथवा प्रशासन इकाइयों के सभी सदस्यों द्वारा गुप्त मत से होता है। प्रत्येक प्राइमरी समिति जिला सोवियत (District Soviet) के लिए प्रतिनिधियों का निर्वाचन करती है जहाँ से प्रतिनिधि प्रान्तीय सोवियत (Provincial Soviet) को और प्रान्तीय सोवियत से संघटानिक गणतन्त्र की श्रम संघ सोवियत (Trade Union Soviet of the Constituent Republic) के लिए भेजे जाते हैं। सबसे ऊपर श्रम संघों की अखिल संघ परिषद (All Union Council of Trade Unions) की सर्वोच्च सामान्य सभा (Supreme Common Assembly) होती है। यह रूस में सब श्रमिकों के लिए काम करती है*।

अन्य देशों में भी श्रम संघ विकसित हुए हैं। फ्रांस में ऐसे अनेक श्रम संघ पाए जाते हैं जो मालिकों के द्वारा समर्थित हैं और उन्हें उनके द्वारा धन दिया जाता है। इन संघों को पोषित संघ (Yellow Unions) कहा जाता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ —

अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में काफी समय से श्रमिक संघ आन्दोलन का प्रतिनिधित्व मुख्यतः दो संस्थाओं द्वारा किया गया है। एक है 'इन्टरनेशनल फेडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन' जिसका प्रधान कार्यालय एम्स्टर्डम में है तथा दूसरी है 'रेड इन्टरनेशनल ऑफ लेबर यूनियन' जो मास्को में संगठित है। दोनों के विचारों में काफी अन्तर है। अन्तर वैसा ही है जैसा साम्यवाद तथा विभिन्न श्रमिक और सामाजिक प्रजातान्त्रिक दलों के व्यवहार में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पाया जाता है। यही कारण है कि दोनों को समायोजित करने के अनेक प्रयत्नों में सफलता नहीं मिल पाई है। वर्तमान समय में यह अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं 'वर्ल्ड फैडरेशन ऑफ ट्रेड यूनियन' जिसमें साम्यवादियों का प्रभाव है तथा "इन्टरनेशनल फैडरेशन ऑफ फ्री ट्रेड यूनियन्स" जिसमें साम्यवादी विरोधी दलों के सदस्य हैं और जिससे ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस भी सम्बद्ध है के नाम से जानी जाती हैं। यह अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं समय-समय पर सब देशों के श्रमिकों के सामान्य हित के ही हेतु सम्मेलन आयोजित करती हैं। १९४५ में लन्दन में वर्ल्ड ट्रेड यूनियन कांग्रेस आयोजित की गई जिसमें संसार की श्रम समस्याओं पर विचार करने के लिए ३८ राष्ट्रों के प्रतिनिधि सम्मिलित हुए। अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाओं का विकास एक स्वस्थ चिह्न है परन्तु यह अच्छा होगा कि संसार के सब देशों के श्रमिक संघों का केवल एक ही संगठन हो और संसार के सब देशों के श्रमिकों का ध्येय एक ही समझा जाए। यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेनी चाहिए कि श्रमिक संघ आन्दोलन मजदूरी प्रणाली के अन्तर्गत श्रमिकों का आन्दोलन है अर्थात् यह मालिकों और श्रमिकों की पहले से ही उपस्थिति को मानकर चलता है। अतः श्रमिक

Russia from A to Z pages 346 – 47

संघ आन्दोलन में साम्यवादी विचारों का लाना आन्दोलन को निर्बल करता है और मालिकों में अनावश्यक ही श्रमिकों के प्रति विरोध की भावना उत्पन्न करता है। यदि अर्थ-व्यवस्था को बदलना आवश्यक हो तो अन्य साधनों व उपायों को काम में लाना चाहिए। श्रमिक संघ आन्दोलन को राजनैतिक संघर्षों का अखाड़ा नहीं बनाना चाहिए।

भारत और इंगलैंड के श्रमिक संघों की तुलना —

अब हम भारत तथा इंगलैंड के श्रमिक संघवाद की विभिन्नताओं का उल्लेख करेंगे। यह बात ध्यान देने योग्य है कि इंगलैंड में पूर्ण रोजगार है जिसके परिणाम स्वरूप श्रम की पूर्ति की कमी है। भारत में स्थिति इसके बिल्कुल विपरीत है। यहाँ अत्यधिक बेरोजगारी है और श्रम की पूर्ति माँग से अधिक है। भारतवर्ष में मजदूरी भी अन्य देशों की अपेक्षा बहुत कम है। हमारे देश में श्रमिक वर्ग के रहन-सहन की दशाएँ बड़ी शोचनीय हैं जबकि अन्य देशों में श्रमिकों की परिस्थितियों में काफी सुधार हुआ है। इंगलैंड में सभी श्रमजीवियों के लिए व्यापक सामाजिक बीमा योजना है जबकि भारतवर्ष में इस दिशा में प्रारम्भिक पग ही उठाया गया है। अन्य देशों के श्रमिक हमारे श्रमिकों की अपेक्षा अधिक शिक्षित और जागरूक भी हैं। अन्य देशों में जबकि स्थायी औद्योगिक जनसंख्या है भारतवर्ष के श्रमिकों में प्रवासिता पाई जाती है।

इसके अतिरिक्त श्रम संघों के संगठन में भी अन्तर है। इंगलैंड में श्रमिक संघवाद दस्तकारी श्रेणियों में विकसित हुआ। इंगलैंड और अमरीका दोनों में ही यह अधिकतर दस्तकारी के अनुसार आयोजित है। भारत में श्रम संघ अधिकतर उद्योगों के अनुसार आयोजित हैं। इंगलैंड और अमरीका में श्रमिक संघ राष्ट्रीय आधार पर संगठित किए गए हैं। भारतवर्ष में यह अधिकतर स्थानीय हैं। इसके अतिरिक्त अन्य देशों के श्रमिक संघों की अपनी विश्राम निधि होती है। उनके अपने भवन होते हैं जिनमें कि उनका कार्य-दल सभालय तथा सुव्यवस्थित कार्यालय होता है। कुछ राष्ट्रीय श्रमिक संघों के तो अपने छापेखाने भी हैं और अधिकांश राष्ट्रीय संघ अपने समाचार-पत्र भी प्रकाशित करते हैं। इसके विपरीत भारतवर्ष में अधिकांश संघों के कार्यालय किराये के अव्यवस्थित मकानों में हैं तथा उनके पास धनराशि अल्प मात्रा में होती है। यहाँ के संघ प्रायः हड़ताल होने की सम्भावना के समय ही अपने लिए धन एकत्रित करते हैं। साधारण स्थिति में बहुत कम ही एकत्रित होता है। यहाँ के श्रमिक संघों के कार्यालय अव्यवस्थित रूप में हैं और कार्य-दल भी अधिक नहीं है। इसके अतिरिक्त संघों के रचनात्मक कार्यों का अभी विकास नहीं हो पाया है और वह अधिकतर आन्दोलन के रूप में कार्य करते रहे हैं। अन्य देशों में विशेषतया इंगलैंड में श्रमिक संघों के रचनात्मक कार्यों का यद्यपि काफी विकास हो चुका है तथापि उन्होंने अपना आन्दोलन रूप भी बनाए रखा है।

इंगलैंड के श्रमिक संघों के सामाजिक और कल्याणकारी कार्यों की चर्चा हम ऊपर कर चुके हैं। इसीलिए वेल्स की खानों के श्रमिक सिनेमा-घर, पुस्तकालय, सार्वजनिक कमरों और स्कूलों का भी आयोजन करते हैं। अमेरिका में तो एक संघ अपनी स्वयं की बीमा कम्पनी भी चलाता है और कुछ संघ में स्वयं के जगह-जगह विश्राम-गृह भी खोल रखे हैं जहां सदस्य जाकर ठहर सकते हैं। इंगलैंड और अमेरिका में प्रत्येक सदस्य अपना सदस्यता कार्ड अपने साथ रखता है और दूसरों को दिखाने में गौरव अनुभव करता है। इस प्रकार की भावना का हमारे श्रमिकों में अभाव है। अन्य देशों में हम देखते हैं कि श्रमिक सदस्यता शुल्क को स्वयं ही देना अपना कर्तव्य समझते हैं जो कि कभी-कभी मनी-आर्डर द्वारा भी भेजा जाता है। इसके विपरीत भारत में सदस्यता शुल्क को एकत्र करने के लिए संघों के पदाधिकारियों को घर-घर फिरना पड़ता है। शुल्क भी नियमित रूप से नहीं दिया जाता और चन्दा न देने वालों अर्थात् बकायादारों की संख्या काफी होती है। भारत की अपेक्षा अन्य देशों में सदस्यता शुल्क भी अधिक है और शुल्क साप्ताहिक अथवा मासिक दिया जाता है। इंगलैंड में श्रमालय प्रतिनिधि आन्दोलन काफी विकसित हुआ है तथा श्रमालय प्रतिनिधि का काफी महत्त्व है। भारत में हम प्रत्येक दुकान या संस्थान पर श्रमिकों का कोई प्रतिनिधि नहीं पाते। अन्य देशों में श्रमिक संघों के नेता श्रमिक वर्ग में से ही होते हैं। भारत में अधिकांश श्रम संघों पर बाहरी व्यक्ति छाए रहते हैं। इंगलैंड में श्रम संघ राजनैतिक जीवन में महत्त्वपूर्ण भाग लेते हैं परन्तु भारत में इस ओर अधिक ध्यान नहीं दिया गया है। औद्योगिक झगड़ों का सुलझाने की दृष्टि से भी काफी अन्तर है। भारत के अधिकांश श्रमिक संघों पर राजनैतिक संस्थाएँ छाई हुई हैं। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस वार्तालाप और समझौतों में विश्वास करती है जबकि अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस सदैव हड़ताल को प्रेरित करती है। इसके विपरीत ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस ने प्रत्येक संघ पर यह अनिवार्य कर दिया है कि वह हर प्रकार के झगड़े की सूचना केन्द्रीय संस्था को दे। जब समझौते की आशा नहीं रहती तब ही केन्द्रीय संस्था हस्तक्षेप करती है। मालिक मजदूरों में पारस्परिक बातचीत अधिकतर सामूहिक सौदाकारी पर ही आधारित होती है। भारत में श्रमिकों में अविश्वास पाया जाता है और वह किसी भी ऐसी सामूहिक सौदाकारी में जिसमें सरकार भी एक पक्ष के रूप में न हो सम्मिलित होते हुए डरते हैं। अमेरिका और इंगलैंड में हड़ताल होने से पूर्व मत का लिया जाना आवश्यक है। भारत में अधिकतर हड़तालें अकस्मात् रूप से हो जाती हैं। हमारे देश में श्रमिक संघ के कार्यकर्ताओं को अभी तक सताया भी जाता है और काम से अलग भी कर दिया जाता है। परन्तु ऐसी बातें दूसरे देशों में नहीं पाई जातीं। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत में कुछ श्रमिक संघ नैतिक आधार को भी मानते हैं जबकि यह बात हम अन्य देशों में नहीं पाते। भारत में श्रमिक संघ अनेक राजनैतिक दलों में विभक्त हैं। इसके विपरीत इंगलैंड में श्रमिक संघ आन्दोलन केवल एक राजनैतिक संस्था अर्थात् लेबर-पार्टी का ही

अधिकतर समर्थन करता है।

भारत व इंगलैंड के श्रमिक संघों में अन्तर होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में गत कुछ वर्षों से श्रम संघ आन्दोलन स्थिर और शक्तिशाली होता जा रहा है। वह दिन भी दूर नहीं जब भारत में श्रम संघ आन्दोलन उतना ही शक्तिशाली हो जायगा जितना अन्य देशों में है और हमारे श्रमजीवी वर्ग के लिए भी उन्हीं अवस्थाएँ प्राप्त करने में सहायता देगा जिससे उनकी उन्नति हो और वह एक स्वस्थ जीवन और अच्छे कार्य की दशाओं को प्राप्त कर सकें।

७

भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद

(Industrial Disputes in India)

१९१४ – १८ के महायुद्ध के पश्चात् से हमारे औद्योगिक केन्द्रों में घोर असन्तोष निरन्तर रूप से व्याप्त हो रहा है। यह असन्तोष इतनी अधिक मात्रा में बढ़ गया है कि यह श्रमजीवियों के हित तथा उनकी कार्यक्षमता में रुचि रखने वाले विचारकों की चिन्ता का विषय बन गया है। हड़तालें न केवल भूतकाल में हुई हैं वरन् वर्तमान समय में भी अक्सर होती रहती हैं। अधिकतर हड़तालें तो अल्प-जीवी और अनियमित रूप से होती हैं परन्तु कुछ हड़ताल दीर्घकाल तक चलने वाली होती हैं और उनमें कटुता भी आ जाती है। श्रमिकों तथा मालिकों के बीच की खाई गहरी होती जा रही है और यह बात स्पष्ट है कि मालिक मजदूरों के ऐसे सम्बन्ध तथा इस प्रकार की अशांति वर्तमान समय में भारतीय उद्योगों व श्रमिकों की एक मुख्य व जटिल समस्या बन गई है और सम्भवतः भविष्य में भी रहेगी। भारत का भावी औद्योगिक विकास तथा पंचवर्षीय आयोजनाओं की सफलता इस समस्या के उचित समाधान पर ही निर्भर है।

विवादों के मूल कारण —

पूर्व अध्यायों में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि आधुनिक औद्योगिक प्रणाली की मुख्य विशेषता श्रम और पूंजी के बीच का संघर्ष है। आधुनिक उद्योगों में बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति करना निर्धन श्रमिकों की शक्ति के बाहर है। परिणामस्वरूप दो विभिन्न वर्ग उत्पन्न हो गए हैं एक वर्ग तो पूंजी की पूर्ति करता है तथा दूसरा वर्ग श्रम की पूर्ति करता है। साधारणतया इनको पूंजी पति व श्रमिक कहा जाता है। इन पूंजीपतियों व श्रमिकों के न केवल अपने-अपने वरन् कभी-कभी एक दूसरे के विरोधी हित भी हो जाते हैं। यही वास्तव में आधुनिक औद्योगिक अशांति का मूल कारण है। जब तक श्रम और पूंजी एक ही व्यक्ति के हाथों में रहते हैं तब तक संघर्ष की समस्या उत्पन्न नहीं होती। परन्तु जैसे ही श्रम और पूंजी पृथक हो जाते हैं जैसा कि बड़े पैमाने के उद्योगों में होता है तब शक्तिशाली द्वारा निर्बल का शोषण करने की प्रवृत्ति जागृत हो उठती है और संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार जहाँ भी औद्योगीकरण का विस्तार हुआ है वहीं हमें पारस्परिक असहमति हड़तालें तालाबन्दी आदि की समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

हड़ताल उस परिस्थिति को कहते हैं जबकि श्रमिक उस समय तक काम पर आने को तैयार नहीं होते जब तक कि उनकी माँगें स्वीकार न कर ली जायें।

अधिकतर समर्थन करता है।

भारत के इसमें के श्रमिक वर्गों में दरार होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में गत कुछ वर्षों से श्रम संघ आन्दोलन स्थिर और शक्तिशाली होता जा रहा है। वह दिन भी दूर नहीं जब भारत में श्रम संघ आन्दोलन उतना ही शक्तिशाली हो जायगा जितना अन्य देशों में है और हमारे श्रमजीवी वर्ग के लिए भी ऐसी अवस्थायें प्राप्त करने में सहायता देगा जिससे उनकी उन्नति हो और वह एक स्वस्थ जीवन और अच्छे काम की दशाओं को प्राप्त कर सकें।

७

भारतवर्ष में औद्योगिक विवाद

(Industrial Disputes in India)

१९१४ – १८ के महायुद्ध के पश्चात् से हमारे औद्योगिक केन्द्रों में घोर असन्तोष निरन्तर रूप से व्याप्त हो रहा है। यह असन्तोष इतनी अधिक मात्रा में बढ़ गया है कि यह श्रमजीवियों के हित तथा उनकी कार्यक्षमता में रुचि रखने वाले विचारकों की चिन्ता का विषय बन गया है। हड़तालें न केवल युद्धकाल में हुई हैं हैं वरन् वर्तमान समय में भी अनवरत होती रहती है। अधिकतर हड़तालें तो अल्प जीवी और अनियमित रूप से होती हैं परन्तु कुछ हड़तालें दीर्घकाल तक चलने वाली होती हैं और उनमें कटुता भी आ जाती है। श्रमिकों तथा मालिकों के बीच की खाई गहरी होती जा रही है और यह बात स्पष्ट है कि मालिक मजदूरों के एसे सम्बन्ध तथा इस प्रकार की अशांति वर्तमान समय में भारतीय उद्योगों व श्रमिकों की एक मुख्य व जटिल समस्या बन गई है और सम्भवतः भविष्य में भी रहेगी। भारत का भावी औद्योगिक विकास तथा पंचवर्षीय आयोजनाओं की सफलता इस समस्या के उचित समाधान पर ही निर्भर है।

विवादों के मूल कारण —

पूर्व अध्यायों में यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि आधुनिक औद्योगिक प्रणाली की मुख्य विशेषता श्रम और पूंजी के बीच का संघर्ष है। आधुनिक उद्योगों में बड़ी मात्रा में पूंजी की आवश्यकता होती है जिसकी पूर्ति करना निर्धन श्रमिकों की शक्ति के बाहर है। परिणामस्वरूप दो विभिन्न वर्ग उत्पन्न हो गए हैं एक वर्ग तो पूंजी की पूर्ति करता है तथा दूसरा वर्ग श्रम की पूर्ति करता है। साधारणतया इनको पूंजी पति व श्रमिक कहा जाता है। इन पूंजीपतियों व श्रमिकों के न केवल अपने-अपने वरन् कभी-कभी एक दूसरे के विरोधी हित भी हो जाते हैं। यही वास्तव में आधुनिक औद्योगिक अशांति का मूल कारण है। जब तक श्रम और पूंजी एक ही व्यक्ति के हाथों में रहते हैं तब तक संघर्ष की समस्या उत्पन्न नहीं होती। परन्तु जैसे ही श्रम और पूंजी पृथक हो जाते हैं जैसा कि बड़े पैमाने के उद्योगों में होता है तब शक्तिशाली द्वारा निर्बल का शोषण करने की प्रवृत्ति जागृत हो उठती है और संघर्ष उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार जहाँ भी औद्योगीकरण का विस्तार हुआ है वहीं हमें पारस्परिक असहमति हड़तालें तालाबन्दी आदि की समस्याएँ दृष्टिगोचर होती हैं।

हड़ताल उस परिस्थिति को कहते हैं जबकि श्रमिक उस समय तक काम पर आने को तैयार नहीं होते जब तक कि उनकी माँगें स्वीकार न कर ली जावें।

तालाबन्दी मालिकों के द्वारा लिया गया वह पग है जिसके द्वारा वह संस्थानों को उस समय तक बन्द रखते हैं जब तक कि श्रमिक उनकी ही शर्तों पर कार्य करने को तैयार न हों। दोनों ही स्थितियों में सम्बन्धित पक्षों का उद्देश्य यही होता है कि वह अपने लिए उचित सुविधाएँ प्राप्त कर सकें। इस कारण हड़ताल व तालाबन्दी दोनों ही अस्थायी होते हैं। इन झगड़ों के कई कारण हैं। उदाहरणस्वरूप किसी कर्मचारी को पदच्युत करना श्रमिकों की छटनी अथवा अन्य महत्वपूर्ण समस्याएँ जैसे मजदूरी बोनस अवकाश कार्य के घण्टे कार्य की दशाएँ आदि। वास्तव में जब कभी भी श्रमिक किसी कठिनाई का अनुभव करते हैं या उनको कोई शिकायत होती है तब वह उसके समाधान के लिए संगठित हो जाते हैं और औद्योगिक अशान्ति उत्पन्न हो जाती है जिसके परिणामस्वरूप समय समय पर अनेक हड़तालें होती हैं। शीघ्रपरिवर्तनीय आर्थिक क्रियाओं के समय में विवाद अधिक गम्भीर हो जाते हैं और हड़तालें और तालाबन्दी अधिक होने लगती हैं। इन आर्थिक परिवर्तनों का कारण साधारणतया मन्दी विवेकीकरण बेकारी रहन-सहन के व्यय में वृद्धि आदि समस्याओं से सम्बन्धित होता है।

भारत में औद्योगिक विवादों का इतिहास —

पिछली शताब्दी के मध्य में बड़े पैमाने के उद्योगों की स्थापना के बाद से ही भारत में ऊपर लिखे कारण दृष्टिगोचर होने लगे। परन्तु १९१८ – १९ की शरद ऋतु से पूर्व भारतवर्ष में हड़तालें सामान्य रूप से नहीं होती थीं क्योंकि श्रमिक असंगठित थे लोकमत अधिक विचारशील न था और सरकार भी ऐसी समस्याओं में तटस्थ रहती थी। परन्तु आधुनिक उद्योगों के विकास के प्रारम्भिक समय में भी छोटे स्तर पर कुछ हड़तालें हुईं। १८२१ – ६ में यूरोपियन रेलवे ठेकेदारों तथा उनके भारतीय श्रमिकों के बीच एक महत्वपूर्ण संघर्ष हुआ। फलतः १८६ में मालिक एवं श्रमिक (विवाद) अधिनियम' पारित किया गया। १८७७ में नागपुर की एम्प्रेस मिल में मजदूरी दर के प्रश्न पर तथा १८८२ में बम्बई की सूती वस्त्र मिल में हड़तालों का विवरण मिलता है। १८८२ से १८९ के बीच बम्बई तथा मद्रास में २५ हड़तालों का विवरण मिलता है। ऐसी सर्वप्रथम बड़ी हड़ताल जिसका अधिकृत (Official) विवरण मिलता है अहमदाबाद की एक सूती मिल में हुई, जो साप्ताहिक मजदूरी की अपेक्षा पाक्षिक (Fortnight) रूप से मजदूरी देने के प्रश्न पर थी। दूसरी बड़ी हड़ताल १८९७ में मजदूरी भुगतान के प्रश्न को लेकर बम्बई में हुई। परन्तु यह हड़तालें असफल रहीं। १९ ५ में बम्बई की मिलों में विद्युत शक्ति आ जाने एवं कार्य के घण्टे बढ़ाये जाने के फलस्वरूप हड़तालें हुईं। रेलों में विशेषतया पूर्वी बंगाल स्टेट रेलवे में भी गम्भीर हड़तालें हुईं। हड़तालों की चरम सीमा तब पहुँची जब १९ ८ में श्री तिलक को ६ वर्ष का कारावास मिलने पर बम्बई में ६ दिन की राजनैतिक आम हड़ताल हुई। परन्तु युद्ध से पूर्व हड़तालें कम ही होती थीं क्योंकि श्रमिकों में संगठन एवं नेतृत्व की कमी थी जीवन के प्रति उनका दृष्टिकोण

*R. Palme Dutt : India Today page 378

I

निराशापूर्ण था और औद्योगिक जीवन की कटुता से बचने के लिए उनका एकमात्र सहारा यही था कि वह अपने गांव के घरों को वापिस चले जायें। वास्तव में उस समय तक श्रमिक भाग्यवादी और सन्तोषी ही था।

प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात औद्योगिक विवाद –

१९१४–१८ के प्रथम विश्वयुद्ध ने इस स्थिति में महत्वपूर्ण परिवर्तन कर दिया। तब से विशेषतया युद्ध के अन्त से श्रमिकों और मालिकों के सम्बन्ध अधिक कटु हो गये हैं तथा दोनों के मध्य विवाद भी बढ़ गये हैं। विश्वयुद्ध के कारण देश में जन जागृति उत्पन्न हो गई थी। रूस की क्रान्ति ने समस्त संसार में क्रांतिकारी लहर उत्पन्न कर दी थी जिसका प्रभाव भारतीय श्रमिकों पर भी पड़ा। रहन-सहन का व्यय बढ़ रहा था कीमतें लगभग दुगुनी हो गई थीं। परन्तु मजदूरी की दर उतनी नहीं बढ़ सकी जितनी कीमतें बढ़ गई थीं। पूंजीपतियों का लाभ युद्ध के कारण बहुत बढ़ गया था और श्रमिक भी इसमें अपना भाग चाहते थे। देश की राजनैतिक अशांति से श्रमिकों को भी अपने अधिकारों का भान हुआ। कांग्रेस-मुस्लिम लीग एकता प्राप्त कर ली गई थी। महात्मा गांधी राजनैतिक क्षेत्र में आ गये थे। जलियांवाला बाग की घटना सरकार के रौलट अधिनियम व मार्शल लॉ जैसे अत्याचारी कार्य करने के बढ़ते हुए भार ने सभी में अशान्ति उत्पन्न कर दी थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना से श्रमिकों को कुछ प्रतिष्ठा प्राप्त हुई*। इन सब का परिणाम यह हुआ कि हड़तालों की जो लहर १९१८ में आई और १९१९ और १९२ तक सम्पूर्ण देश में व्याप्त हो गई वह अत्यन्त गम्भीर थी। सन् १९१८ के अन्त में बम्बई की सूती वस्त्र मिलों में पहली बड़ी हड़ताल हुई और जनवरी १९१९ तक लगभग १२५,०० श्रमिकों में जिनमें सभी श्रमिक आ जाते थे यह हड़ताल फैल गयी।

सन् १९१९ में रौलट एक्ट के विरोध में हड़तालें हुई। सन् १९२० के प्रथम ६ मासों में लगभग २०० हड़तालें हुईं जिनमें १५ लाख श्रमिक सम्मिलित थे। जैसे जैसे देश में श्रमिक संघ आन्दोलन विकसित होता गया इसमें से अधिकतर हड़तालें सफल भी होती रहीं। सन् १९२० की शरद ऋतु के पश्चात् यद्यपि औद्योगिक अशान्ति कुछ कम हो गई थी परन्तु इस समय तक अधिकांश श्रमिक हड़ताल के अस्त्र से परिचित हो चुके थे। इस समय की बड़ी हड़तालों में १९२१ की आसाम के चाय बागान की हड़ताल उल्लेखनीय है। इस हड़ताल में आसाम के बागान के कुलियों ने अपना काम छोड़कर बागान से बाहर जाने का प्रयत्न किया परन्तु चांदपुर रेलवे स्टेशन पर असहाय एवं शान्तिपूर्ण कुलियों पर गोरखा सिपाहियों द्वारा आक्रमण किया गया। परिणामस्वरूप आसाम बंगाल रेलवे व स्टीमर के श्रमिकों ने तत्काल ही सहानुभूति में हड़ताल कर दी जो लगभग तीन मास तक चलती रही। परन्तु कुलियों की हड़ताल उनमें संगठन के अभाव के कारण असफल रही। सन् १९२२ में

ईस्ट इण्डियन रेलवे के कर्मचारियों ने हड़ताल की। सन् १९२४ में बम्बई नगर में सामान्य रूप से हड़ताल की गई और लगभग १६०००० श्रमिकों ने इसमें भाग लिया। अगले वर्ष ही एक और अधिक बड़ी आम हड़ताल हुई, जिसमें लगभग एक करोड़ दस लाख श्रम दिनों की क्षति हुई। यह कहा जा सकता है कि इस समय तक देश में औद्योगिक अशान्ति की जो प्रथम लहर आई थी वह ही व्याप्त रही। इसका मुख्य कारण युद्ध के समय और उसके पश्चात् के मूल्यों में वृद्धि और श्रमिकों द्वारा उच्च मजदूरी की माँग थी।

१९२९ के पश्चात् औद्योगिक विवाद

१९२८ में औद्योगिक विवादों की दूसरी लहर आई। आर्थिक मंदी प्रारम्भ हो चुकी थी जिसके उद्योगों पर बुरा प्रभाव पड़ा। उद्योगपतियों ने इस मन्दी के प्रभाव को दूर करने के लिए विवेकीकरण, सीमित उत्पादन, मजदूरी में कमी तथा श्रमिकों की छटनी की नीति को अपनाया। स्वभावतः श्रमिकों ने इस नीति के विरुद्ध असन्तोष प्रकट किया। इस समय तक श्रमिक संघ आन्दोलन दृढ़ हो गया था और देश में साम्यवादी तत्व भी दृष्टिगोचर होने लगे थे। फलतः देश में औद्योगिक अशान्ति बढ़ गई। १९२८ में विवेकीकरण लागू करने के विरोध में बम्बई में एक बड़ी हड़ताल हुई। श्रमिकों पर अत्याचार किया गया। परिणामस्वरूप १९२९ में बम्बई में पुनः एक बड़ी हड़ताल हुई जो ६ महीने तक चलती रही और बम्बई के सूती वस्त्र मिलों में कार्य करने वाले लगभग सभी कर्मचारियों ने इसमें भाग लिया। १९२९ की यह हड़ताल दो कारणों से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। प्रथम तो इसी हड़ताल में साम्यवादी विचारधारा का प्रभाव भारतीय श्रमिकों पर दृष्टिगोचर हुआ। दूसरे, १९२९ के व्यवसाय विवाद अधिनियम के पारित होने का यह हड़ताल एक कारण बनी। इसके अतिरिक्त बंगाल जूट मिलों में कार्य के घण्टे बढ़ाए जाने के कारण कई हड़तालें हुईं। जमशेदपुर में भी एक बड़ी हड़ताल हुई।

इसके पश्चात् १९३१ से १९३७ का समय सापेक्षिक रूप से औद्योगिक शांति का समय रहा यद्यपि बम्बई सूती मिलों में कुछ अल्पजीवी हड़तालें हुईं जो सफल न हो सकीं। इस समय अनेक कारणों से श्रमिकों को बड़ी-बड़ी आशाएँ हो गई थीं और इसीलिये उनमें असन्तोष की भावना भी पैदा हो गई थी। इस समय मन्दी का प्रभाव कम होने लगा था और साम्यवादी काफी शक्तिशाली हो गए थे और उनका श्रमिकों में प्रचार बढ़ गया था। १९३३ में मेरठ का मुकदमा समाप्त हो गया था* जिसमें साम्यवादी नेताओं को दीर्घकालीन कारावास का दण्ड प्रदान किया गया। प्रान्तीय स्वायत्त शासन के अन्तर्गत चुनाव से पूर्व कांग्रेस के घोषणा-पत्र से श्रमिकों में बड़ी-बड़ी आशाएँ उत्पन्न हो गई थीं और उनका विचार था कि अब सब प्रकार का शोषण समाप्त हो जायेगा और उनके कार्य व जीवन-निर्वाह की दशाओं में भी परिवर्तन होगा। जब कांग्रेस ने सत्ता ग्रहण की और श्रमिकों की अवस्था में

* कृपया ८९ पृष्ठ देखिए।

तात्कालिक कोई उन्नति होती दिखाई नहीं दी तो अनेक हड़तालें हुईं। साम्यवादियों ने इस परिस्थिति का लाभ उठाया और श्रमिकों में अधिक असन्तोष उत्पन्न कर दिया। अनेक प्रान्तीय सरकारों ने श्रमिकों की अवस्था सुधारने के लिये अनेक उपाय किए। उदाहरणस्वरूप १९३० में उत्तर प्रदेश सरकार ने श्रमिकों की अवस्था की जाँच करने के लिए एक समिति नियुक्त की। समिति ने अनेक महत्वपूर्ण सुझाव दिए। परन्तु मालिकों ने सभा में न केवल इन सुझावों को मानने से इन्कार कर दिया वरन् सरकार अथवा श्रम सभाओं द्वारा किसी प्रकार के हस्तक्षेप के लिए भी वे तैयार न हुए। कानपुर मिलों में आम हड़तालें हुई तथा बम्बई व बंगाल में भी हड़तालें हुईं। यह देश में औद्योगिक अशान्ति का समय था। १९३७ और १९३८ में क्रमशः १७६ तथा १६६ हड़ताल हुईं जो कि उनसे पूर्व वर्षों में हुई हड़तालों से सबसे अधिक थीं। इस अवधि में उत्तर प्रदेश चीनी मिलों में भी हड़ताल हुई।

१९३९ के पश्चात् औद्योगिक विवाद —

सितम्बर १९३९ में युद्ध प्रारम्भ हो जाने के पश्चात् मुद्रा स्फीति के कारण कीमत और बढ़ गई व श्रमिक की मजदूरी और उसके रहन-सहन के व्यय के बीच चौड़ी खाई हो गई। परिणामस्वरूप अनेक औद्योगिक विवाद हुए और उनकी संख्या १९४० में ३२२ विवादों से बढ़ते-बढ़ते १९४७ में ६६४ तक पहुँच गई। उस समय से हमारे देश में औद्योगिक विवाद आम हो गए हैं। युद्ध के प्रारम्भिक वर्षों में अनेक हड़तालों का कारण महँगाई भत्ता था। मार्च १९४० में हड़ताली नेताओं की गिरफ्तारी एवं श्रमिकों की पुलिस द्वारा पिटाई पर भी बम्बई के १,७२ लाख सूती वस्त्र मिल के कर्मचारियों ने हड़ताल कर दी जो ४० दिन तक चालू रही। १० मार्च को सभी कर्मचारियों ने सहानुभूति में हड़ताल की इससे सारे देश में हड़ताल की लहर व्याप्त हो गई। कानपुर के सूती मिल कर्मचारियों कलकत्ते के म्यूनिसिपल कर्मचारियों, बंगाल और बिहार में जूट कर्मचारियों असम में डिग्बोई के तेल कर्मचारियों धनबाद व झरिया के कोयला खानों के कर्मचारियों जमशेदपुर के लोहे के कर्मचारियों तथा अन्य श्रमिकों ने महँगाई भत्ते की मांग की और काम पर नहीं गए। सरकार ने युद्ध का सञ्चालन सफलतापूर्वक करने के लिए इस अशांति को रोकने के विषय में विचार किया और इसके लिए उसने "डिफेंस ऑफ इण्डिया रूल्स" बनाए, जिनके अन्तर्गत अनेक आवश्यक उद्योगों में हड़तालें अवैध घोषित कर दी गई तथा अन्य दूसरे उद्योगों में चौदह दिन की पूर्व सूचना दिए बिना हड़ताल या तालाबन्दी करना अवैध हो गया। इन प्रतिबन्धों का परिणाम यह हुआ कि १९४२ से १९४६ तक के समय में कोई बड़ी हड़ताल तथा तालाबन्दी नहीं हुई, यद्यपि छोटे छोटे औद्योगिक विवादों की संख्या में वृद्धि अवश्य हुई। श्रमिक कोई भी बड़ी हड़ताल नहीं कर सकते थे परन्तु श्रमजीवी वर्ग को इन दिनों अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी। विशेषतया रेलें डाक-तार जैसी जन-उपयोगी सेवाओं में जहाँ हड़ताल पूर्णतया निषेध थी उनको काफी मुसीबतों का सामना करना पड़ा क्योंकि श्रमिकों की मजदूरी में

कोई वृद्धि नहीं की गई थी केवल थोड़ा सा महंगाई भत्ता अवश्य प्रदान किया गया था। श्रमिक किसी प्रकार का भी विरोध प्रकट नहीं कर सकते थे।

परन्तु जैसे ही युद्ध समाप्त हुआ और श्रमिकों पर से बन्धन हटा लिए गए, श्रमिकों के हृदय में धधकती हुई असंतोष की अग्नि प्रज्वलित हो उठी और चारों ओर हड़ताल की ही चर्चा चल पड़ी। जुलाई १९४६ में डाक व तार कर्मचारियों की देशव्यापी हड़ताल हुई और रेलवे कर्मचारियों ने भी हड़ताल की धमकी दी जो कि कुछ राजनैतिक नेताओं के हस्तक्षेप करने के फलस्वरूप रुक गई।

सन् १९४७ में देश के स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात् अनेक महत्वपूर्ण राजनैतिक परिवर्तनों के फलस्वरूप हड़तालों की संख्या में वृद्धि हो गई। राष्ट्र उस समय मुद्रा स्फीति के कारण और युद्ध तथा युद्ध-उपरान्त स्थितियों से उत्पन्न हुई वस्तुओं की दुर्लभता के कारण कठिनाइयों के दौर से गुजर रहा था। कांग्रेस ने सत्ता प्राप्त कर ली थी परन्तु हैदराबाद काश्मीर तथा विभाजन की अन्य समस्याओं के कारण वह श्रमिकों की समस्याओं की ओर उचित ध्यान न दे सकी। साम्यवादियों ने इस अवसर से लाभ उठाया। उनके हिंसात्मक प्रचार के कारण १९४७ में देश में घोर औद्योगिक अशांति फैली। बम्बई, मद्रास और उत्तर प्रदेश में हड़तालों की संख्या में विशेष वृद्धि हुई। सितम्बर १९४७ में बम्बई की ७८ सूती वस्त्र मिलों में हड़ताल हुई जिसमें १ लाख श्रमिकों ने भाग लिया। दूसरी महत्वपूर्ण हड़ताल मद्रास में बकिंघम और कर्नाटिक मिल में हुई जो तीन महीने से भी अधिक रही। इन हड़तालों व तालाबन्दी के अतिरिक्त अनेक सहानुभूतिपूर्ण प्रदर्शन भी हुए, जिनका औद्योगिक विवाद सम्बन्धी आंकड़ों में उल्लेख नहीं है। १९४७ में सरकार ने औद्योगिक विराम संधि का प्रस्ताव पारित किया परन्तु इसका प्रभाव अधिक उत्साहजनक नहीं हुआ। १९४८ में कोयम्बटूर, नागपुर, कानपुर, बंगाल व बम्बई की सूती वस्त्र मिलों बंगाल की बड़ी बड़ी जूट मिलों बम्बई बन्दरगाह आसनसोल का एल्यूमिनियम उद्योग बम्बई जी॰ आई॰ पी के इंजिनियरिंग विभाग बी एन रेलवे कार्यशाला अनेक जूट मिलों बम्बई के बीड़ी उद्योग कलकत्ता की ट्रामवे आदि में बड़ी मात्रा में हड़तालें हुईं।

१९४९ में मध्य प्रदेश की सूती वस्त्र मिलों में तालाबन्दी घोषित हुई तथा मद्रास बम्बई एवं बंगाल में हड़तालें हुईं। बम्बई नगर निगम में एक विवाद लगभग २ मास में समाप्त हुआ। रेलवे में भी हड़ताल करने की धमकी दी गई थी परन्तु हड़ताल रोकने के प्रयत्न सफल हो गए। १९४९ – ५० में कलकत्ता निगम में आम हड़ताल हुई। ईशानपुर कौन मूर मिल्स एवं न्यू विक्टोरिया मिल तथा मद्रास की मीनाक्षी मिलों में तालाबन्दी हुई। बम्बई के बीड़ी उद्योग हावड़ा की जूट मिलों, नागपुर की मॉडल मिल तथा बी एन रेलवे कार्यशाला में भी हड़तालें हुईं। अगस्त १९५० में बम्बई के सूती वस्त्र उद्योग में श्रमिकों के बोनस भुगतान के प्रश्न पर महत्वपूर्ण हड़ताल हुई। यह भारत में उस समय तक हुई हड़तालों में सब से बड़ी थी। इसमें

लगभग २ लाख श्रमिकों ने भाग लिया और यह ६३ दिन तक चलती रही जिसके परिणामस्वरूप १४ लाख श्रम दिनों की क्षति हुई। १९५० में कुछ केन्द्रों में श्रमिक संघ विधेयक एवं औद्योगिक सम्बन्ध विधेयक को लेकर कुछ सांकेतिक (Token) हड़तालें हुईं। तिलक नगर (बम्बई) की चीनी मिल तथा बिहार व पश्चिमी बंगाल की खानों में भी कुछ सांकेतिक हड़तालें हुईं। १९५१ में रेलवे कर्मचारियों ने हड़ताल की धमकी दी किन्तु खाद्य सामग्री के आवागमन की आवश्यकता एवं पाकिस्तान के साथ उत्तरोत्तर खराब हो रहे सम्बन्धों के कारण राष्ट्रपति ने एक अध्यादेश द्वारा सभी आवश्यक सेवाओं में हड़ताल करना अवैध घोषित कर दिया। तत्पश्चात् परस्पर वार्ता द्वारा इस हड़ताल को टाल दिया गया। उत्तर प्रदेश की चीनी मिलों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के प्रश्न को लेकर एक आम हड़ताल हुई। उच्चतम न्यायालय द्वारा औद्योगिक (बैंक) अभिकरण के विवादन निर्णय को अवैध घोषित कर देने पर बैंक कर्मचारियों ने देशव्यापी हड़तालें कीं। धनघाटी कोयला क्षेत्रों में व कानपुर, मद्रास तथा नागपुर की सूती वस्त्र मिलों में भी महत्वपूर्ण हड़तालें हुईं। किदरपोर की क्लाईव जूट मिलों एवं बम्बई की स्वदेशी मिल में तालाबन्दी हुई तथा बम्बई में होटल के कर्मचारियों ने हड़तालें की।

१९५२ में राजकीय आर्डिनेन्स फैक्ट्री पूना अहमदाबाद नागपुर, बम्बई की सूती वस्त्र मिलों कलकत्ता में जहाजी कर्मचारियों तथा बम्बई के यातायात कर्मचारियों की हड़तालें महत्वपूर्ण थीं। हावड़ा की बंगाल जूट कम्पनी कलकत्ता की एलन बेरी कम्पनी तथा बम्बई की मैटल रोलिंग वर्क्स में तालाबन्दी हुई। १९५३ में बरनपुर के आयरन एण्ड स्टील वर्क्स में गम्भीर हड़ताल हुई। असम और ट्रावनकोर कोचीन के चाय बागान में भी कुछ छोटी छोटी हड़तालें हुईं। १९५४ में रानीगंज की बर्न एण्ड स्टील कम्पनी लिमिटेड, बम्बई की न्यू चाईना मिल्स, अहमदाबाद की वेस्टर्न इण्डिया मैच कम्पनी तथा बंगाल की जूट मिल व अमृतसर में कुछ छोटे-छोटे उद्योगों में भी हड़तालें हुईं। १९५५ में कानपुर की सूती वस्त्र मिलों में विवेकीकरण के लागू करने के विरोध में एक बड़ी हड़ताल हुई, जो २ मई १९५५ से लेकर २० जुलाई १९५५ तक चालू रही जिसके परिणामस्वरूप १६,६१ ७४७ श्रम दिनों की क्षति हुई। कानपुर की एक जूट मिल में सात मास तक तालाबन्दी रही। दिल्ली के होटल कर्मचारियों बम्बई के यातायात कर्मचारियों व पश्चिमी बंगाल के रबड़ और प्लास्टिक उद्योग आदि में अनेक हड़तालें हुईं।

१९५६ में बम्बई, अहमदाबाद व कलकत्ता में राज्यों के पुनर्गठन के प्रश्न को लेकर आम हड़तालें हुईं। इनमें कुछ हिंसात्मक प्रवृत्तियाँ भी उत्पन्न हो गईं। इसी वर्ष नागपुर, खड़गपुर व पश्चिमी बंगाल की १० खानों, दिल्ली में प्रतिरक्षा कारखानों, आदि में भी हड़तालें हुईं। १९५७ में केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों एवं डाक-तार विभाग की प्रस्तावित हड़ताल को सफलतापूर्वक टाल दिया गया परन्तु

पश्चिमी बंगाल तथा बिहार की खानों व पश्चिमी बंगाल की बैंकिंग कम्पनियों आदि म हड़तालें हुईं। मोदीनगर की कताई व बुनाई मिल में तालाबन्दी हुई। उड़ीसा की हिंदीर रामपुर खान मे भी श्रमिकों के द्वारा मैनेजर के मारे जाने पर तालाबन्दी हुई। कानपुर की म्यूर मिल म भी हड़ताल व तालाबन्दी हुई। १९५८ में मैसूर की कपिला टैक्सटाइल मिल बन्दरगाहों में गोदी कर्मचारियों बम्बई के नगर निगम कर्मचारियों जमशेदपुर क टाटा लोहा व स्पात के कारखानों में बिहार के पश्चिमी बकारो की खानों में कलकत्ता की ट्राम्बे कम्पनी में और केरल के बागान में महत्वपूर्ण हड़तालें हुईं। हिन्दुस्तान वायुयान उद्योग बंगलौर म भी हड़ताल और तालाबन्दी हुई। बम्बई की प्रीमियर ऑटोमोबाइल कम्पनी कलकत्ता की बंगाल कैमीकल वर्क्स में मद्रास की तथा कानपुर की बकिंघम और कर्नाटिक मिल्स तथा बर्नपुर की आयरन वर्क्स म हड़तालें और तालाबन्दी हुई। १९५९ में कोलार की सोने की खानों मे जनवरी में हड़ताल व तालाबन्दी हुई। रामपुर की रजा चीनी मिल धनबाद कोयला खानों मे उत्तरी आरकोट के बीड़ी कारखानो में राउरकेला के लोहे के कारखाने के तकनीकी विशेषज्ञों की कलकत्ते की ग्राई जी एन रेलवे कम्पनी में इलाहाबाद में स्वदेशी सूती कपड़ा मिलों आदि म हड़तालें हुईं। मथुरा मिल कम्पनी में तालाबन्दी भी घोषित की गई। कई स्थानों पर श्रमिक द्वारा मार-पीट के भी समाचार मिले। १९६० में महत्वपूर्ण मगड़े निम्नलिखित थे —

बाटा कम्पनी में हावड़ा मिल्स मे गुडलो जूट क हावड़ा के कनफ्लिायड जूट मिल मे केदारनाथ जूट मिल हावड़ा में मुर्शिदाबाद की बीड़ी के कारखाने में कलकत्ता में कांच के कारखाने में हिन्दुस्तान इलैक्ट्रिक कम्पनी हावड़ा में कोहनूर रबर वर्क्स कलकत्ता मे विशाखापट्टम और कठिहार की जूट मिलों में गंगापुर की कपड़ा मिलों में कलकत्ता की स्वाइन मिल्स मे हिम्म साइकिल्स बम्बई मे आदि आदि। जुलाई ११ १९६ से केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों की भी एक हड़ताल हुई जो पांच दिन तक चलती रही। कर्मचारियों की मुख्य मांग यह थी कि उनको १२५ रु० माह का न्यूनतम वेतन दिया जाए और महंगाई भत्ता 'निर्वाह खर्च सूचकांक' से सम्बद्ध कर दिया जाए। इस हड़ताल से रेल डाक और तार जैसी आवश्यक सेवाओं पर भी प्रभाव पड़ा जिसके कारण जनता इस हड़ताल के अधिक पक्ष में न थी। इस हड़ताल के परिणामस्वरूप सरकारी कर्मचारियों से संघ बनाने का अधिकार छीन लिया गया जिसके कारण काफी वाद-विवाद उत्पन्न हो गया। यह हड़ताल असफल रही। इसके विषय में संसद और भारतीय श्रम सम्मेलन में भी बहस हुई।

औद्योगिक विवादों के इतिहास से स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश में औद्योगिक अशांति काफी बढ़ गई है और हाल में हड़तालें फिर महत्वपूर्ण हो गई हैं।

औद्योगिक विवाद सम्बन्धी आंकड़े —

निम्न तालिका में १९२१ के बाद होने वाले औद्योगिक विवाद सम्बन्धी आंकड़े प्रस्तुत हैं * —

वर्ष	हड़तालों और तालाबन्दी की संख्या	विवादों में सम्मिलित श्रमिकों की संख्या	वर्ष में हानि हुए कार्य दिवसों की संख्या
१९२१	३९६	६ ०० ३५१	६९,८४ ४२६
१९२३	२१३	३ ०१ ०४४	५०,५१ ७०४
१९२७	१२९	१ ३१ ६५५	२० १६,९७०
१९२९	१४१	५,३१ ०५९	१ २१ ६५,६६१
१९३७	३७९	६,४७ ८०१	८९ ८२ ०००
१९३८	३९९	४ ०१ ०७५	९१ ९८,७०८
१९३९	४०६	४ ०९ १७९	४९ ९२ ७९५
१९४०	३२२	४ ५२ ५३९	७५,७७ २८१
१९४२	६९४	७ ७२ ६५३	५७ ०६,९६५
१९४६	१ ६२९	१९ ६१ ९४८	१ २७ १७ ७६२
१९४७	१ ८११	१८ ४० ७८४	१ ६५,६२ ६६६
१९४८	१ २५९	१० ५९,१२०	७८ ३७ १७३
१९४९	९२०	६ ८५ ४५७	६६ ०० ५९५
१९५०	८१४	७ १९,८८१	१,२८ ०७ ००
१९५१	१ ०७१	६ ९१ ३२१	३८ १८ ९२८
१९५२	९६३	८ ०९ २४२	३३ ३६,९६२
१९५३	७७२	४ ६६,६०७	३३ ८२ ६०८
१९५४	८४०	४ ७७ १३८	३३ ७२ ६३०
१९५५	१ १६६	५ २७,७१७	५६,९७ ८४८
१९५६	१ २०३	७ १५,१३०	६९ ९२ ०४०
१९५७	१ ६३०	८ ८९,३७१	६४ २९,३१९
१९५८	१,५२४	९,२८ ५६६	७७ ९७ ४८५
१९५९	१,५३१	६९,३ ६३६	५६ ३३ १४८
१९६०	१ ५५६	९८ २ ८६८	६५ १४ ९५५

भारतवर्ष म औद्योगिक विवाद सम्बन्धी दो मुख्य बातें दृष्टिगोचर होती हैं। प्रथम तो अधिकतर विवाद सूती वस्त्र उद्योगों म तथा बम्बई और पश्चिमी बंगाल में होते हैं और दूसरे यह अधिकतर असफल रहते हैं, जिसका कारण भारत में श्रमजीवी वर्ग की निर्धनता और उनकी सौदाकारी शक्ति की क्षीणता है।

* From Indian Labour Year Books, Palme Dutt's *India Today*, page 382, *Indian Labour Gazettes and Journals*

निम्न तालिका से यह स्थिति और अधिक स्पष्ट हो जायगी —

राज्य	१९६ में विवादों की संख्या	सितम्बर १९६१ में विवादों की संख्या
आंध्र		
असम	७०	
बिहार	२९	६
बम्बई	९१	२
जम्मू व कश्मीर	२८८	१
केरल	४	१५ (महाराष्ट्र)
मध्य प्रदेश	२४२	—
मद्रास	८४	२
मैसूर	२११	४
उड़ीसा	८	५
पंजाब	९	५
राजस्थान	१५	—
उत्तर-प्रदेश	२४	—
पश्चिमी बंगाल	६०	१
अंडमान व निकोबार द्वीप	१११	५
देहली	६	—
हिमाचल प्रदेश	१	—
त्रिपुरा	१	२
	—	—
योग	१५५६	६१

प्राप्त आंकड़ों के आधार पर पता चलता है कि सन् १९६० में ९९६ विवादों में जो मजदूरी की हानि हुई वह १०४९१९९० रु० थी तथा ३३४ विवादों में उत्पादन की हानि का अनुमान ४८९१९२३ रु० था। सन् १९६ म ४७९ विवाद ऐसे थे जिनमें ५ से कम श्रमिक सम्मिलित थे। ऐसे विवादों की संख्या जिनमें १००० से अधिक श्रमिकों ने भाग लिया केवल १७१ थी।

सन् १९६ में प्रति विवाद सम्मिलित श्रमिकों की औसत संख्या ६१२ थी (सन् १९५९ में ४५१ थी)। प्रत्येक विवाद की औसत अवधि ९.६ दिवस थी (सन् १९५९ में ८.१ दिवस थी) तथा प्रति विवाद वर्ष में हानि हुए कार्य दिवसों की संख्या ४१८७ थी (सन् १९५९ में ३९७८ थी)। विभिन्न उद्योगों में विवादों की संख्या निम्नलिखित थी — कृषि– १ व बागान– १२९, खानें– १०२, औद्योगिक कारखानें– ९९१ निर्माण कार्य– १९ बिजली गैस पानी और सफाई की सेवायें– ७७ वाणिज्य अर्थात् व्यापार, बैंक बीमा आदि– ६५ यातायात और परिवहन– ७५, नौकरियां – ५१ विविध – ८१, योग – १५५६।

कारखानों के ६२१ विवादों में से विभिन्न कारखानों में संख्या इस प्रकार थी — खाद्य उद्योग– १६१ (चीनी मिलों में ७), पेय पदार्थ– ३ तम्बाकू– ४२ (बीड़ी में १२) कपड़ा व बुनाई– २६४ (सूती कपड़ा– १७४ जूट– ४३ रेशमी कपड़ा– २४ ऊनी कपड़ा– ३ अन्य– २०) जूता– ७ लकड़ी व कार्क– २६, कागज और गत्ता– १० छपाई प्रकाशन आदि– २४ चमड़ा– १२ रबर एवं रबर की वस्तुएँ–१४ रसायन और रासायनिक पदार्थ– ८ पेट्रोल व तेल– ६, अधात्विक खनिज पदार्थ – ६४ मूल धातु उद्योग– ७५ (लोहा और इस्पात– १८) धात्विक वस्तुएँ तथा मशीनें– ७६ बिजली की मशीनें व सामान– २१ यातायात सामग्री– २२ विविध– [illegible] योग– ६२१। खानों में जो १०२ विवाद हुए थे उनमें से २६ कोयला खानों में थे। यातायात के विवादों में से १२ रेलवे में थे और ३४ विवाद बन्दरगाहों में हुए थे। केन्द्रीय संस्थाओं में सन् १९६० में विवादों की संख्या २१२ थी।

सन् १९६ के विवादों में से ३३ १ प्रतिशत में तो श्रमिक पूर्ण सफल रहे ११ ० प्रतिशत में आंशिक रूप में सफल रहे ४० ६ प्रतिशत में असफल रहे और २६ ४ प्रतिशत विवाद अनिश्चित रहे। ३१ १ प्रतिशत विवाद तो एक दिन की अवधि में ही समाप्त हो गए, २६ ६ प्रतिशत पाँच दिन से कम चले। केवल ७ ६ प्रतिशत विवाद तीस दिन से अधिक चले। इन विवादों में से तालाबंदी की संख्या ११६ थी।

औद्योगिक विवादों के कारण —

विवाद उत्पन्न होने के अनेक कारण हैं किन्तु मुख्यतः आर्थिक व गैर-आर्थिक कहा जा सकता है। आर्थिक कारणों में मुख्यतः मजदूरी बोनस महँगाई-भत्ता, कार्य और रोजगार की दशाएँ, कार्य के घण्टे निरीक्षकों तथा मध्यस्थों द्वारा दुर्व्यवहार, अनुचित बर्खास्तगी एक या अधिक श्रमिकों को पुनः काम पर लगाने की माँग छुट्टियाँ व वेतन सहित अवकाश विवाचन निर्णय को कार्यान्वित करने में देर करना आदि समस्याएँ रही हैं। इन कारणों का आन्तरिक कारण भी कहा जा सकता है अर्थात् ऐसे कारण जो उद्योग मालिक और मजदूरों से सम्बन्धित होते हैं। श्रमिकों पर अत्याचार तथा प्रबन्धकों द्वारा श्रमिक संघों को मान्यता देने से अस्वीकार कर देना भी इन विवादों के कारण रहे हैं। विवेकीकरण की योजनाओं के लागू होने के पश्चात् श्रमिकों की छँटनी होने पर अनेक हड़तालें हुई हैं। भारत में औद्योगिक विवादों के इतिहास से स्पष्ट है कि देश में अनेक हड़तालों के आर्थिक कारण ही रहे हैं। प्रथम विश्व युद्ध के पश्चात् औद्योगिक अशांति का मुख्य कारण निर्वाह-व्यय व वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि का होना था जबकि मजदूरी में मूल्यों के अनुपात में वृद्धि नहीं हुई थी। श्रमिक भी नीचे पदों पर कार्य करते तथा गन्दे अस्वस्थ और दोषपूर्ण रहन-सहन और कार्यों की दशाओं में उत्पन्न बुराइयों के प्रति सजग हो उठे थे। सन् १९२२ के पश्चात् श्रमिकों की अवस्था में कुछ उन्नति के प्रयत्न हुए, परन्तु सन् १९२८ के पश्चात् अवस्था पुनः दयनीय हो गई क्योंकि आर्थिक मन्दी के कारण

कर्मचारियों की छँटनी और उनकी मजदूरी में कमी की गई थी। परिणामस्वरूप हड़तालों का तांता सा बँध गया था। इसी प्रकार की परिस्थिति द्वितीय महायुद्ध के पश्चात् भी पाई गई। निर्वाह-व्यय में वृद्धि होने के कारण श्रमिकों ने मजदूरी महँगाई भत्ता व बोनस आदि में वृद्धि की माँगें की और मालिकों द्वारा इनको न मानने के कारण अनेक हड़तालें हुईं। अतः श्रमिकों का अपनी आर्थिक स्थिति तथा मजदूरी के प्रति असंतोष ही अधिकतर हड़तालों का कारण रहा है। सन् १९२९ में रॉयल श्रम आयोग * के अनुसार सन् १९२१ और १९२८ के बीच के काल में ६७१ विवादों का मुख्य कारण मजदूरी या बोनस की माँग थी और ४२१ विवादों का कारण कर्मचारियों से सम्बन्धित था जिसमें निकाले गये श्रमिकों को पुनः रोज़गार देने की माँग ही मुख्य थी। ७४ हड़तालों का सम्बन्ध अवकाश अथवा कार्य के घंटों से था और शेष विभिन्न माँगों से सम्बन्धित थीं। १९६० में भी १५५६ विवादों में ६६१ विवाद मजदूरी और भत्ते के प्रश्नों से सम्बन्धित थे, १२० बोनस से, १११ कर्मचारियों से, ४ छुट्टी से, ११ अवकाश व काम के घंटों से तथा ३८१ हड़तालें अन्य माँगों से सम्बन्धित थीं। ५० हड़तालों के विषय में ठीक-ठीक पता नहीं चला।

गैर आर्थिक कारण वे होते हैं जिनका उद्योग से प्रत्यक्ष रूप से सम्बन्ध नहीं होता है। इनमें राजनैतिक कारण मुख्य हैं। कुछ वर्ष पूर्व तक भारत ब्रिटिश साम्राज्य के अधीन था तथा श्रम आन्दोलन का देश के राष्ट्रीय आन्दोलन से निकटतम सम्पर्क था। १९०८ में श्री तिलक के ६ वर्ष के कारावास के विरोध में बम्बई में एक आम हड़ताल हुई। कई ऐसी हड़तालें खिलाफत, असहयोग व सविनय (Civil) अवज्ञा आन्दोलन के दिनों में भी मनाई गईं। अनेक बार हड़तालें श्रमिकों के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही करने तथा उनको बर्खास्त करने पर हुईं। श्रमिकों के विरुद्ध ऐसी कार्यवाहियाँ तब की जाती थीं जबकि श्रमिक राष्ट्रीय नेताओं के मुकदमों की कार्यवाही सुनने चले जाते थे या विदेशी माल को हाथ लगाने से इन्कार करते थे या जब उन्होंने राजनैतिक प्रदर्शनों में भाग लिया अथवा यूरोपियन मैनेजरों को मारा-पीटा या कांग्रेस के स्वयंसेवकों के रूप में कार्य किया। साम्यवादियों से सहानुभूति रखने वाले श्रमिकों पर अत्याचार करने के विरोध में भी हड़तालें हुई हैं। कई बार हड़तालें सटोरियों अर्थात् सट्टेबाजों (Speculators) ने भी कराई हैं जो अपने लाभ के लिए काम और उत्पादन बंद कराकर कीमतों में वृद्धि करा देते हैं। इस हेतु सट्टेबाजों ने कई बार मिथ्या अफ़वाहें फैलाई हैं तथा श्रमिकों को वित्तीय सहायता भी दी है। और विवादों को बढ़ाया है।

सारांश यह है कि आर्थिक एवं गैर आर्थिक दोनों ही प्रकार के कारण औद्योगिक विवादों के लिए उत्तरदायी रहे हैं। कुछ वर्षों से ऐसा देखने में आ रहा है कि मालिकों एवं श्रमिकों के बीच की खाई गहरी होती जा रही है और दोनों

* Report of the Royal Commission on Labour page 334

पक्षों में घोर असम्भाव व्याप्त है। श्रमिकों की मनोवृत्ति में तीव्र परिवर्तन हो गया है और वे दिन प्रतिदिन लाभ में से अधिक भाग प्राप्त करने की मांग कर रहे हैं। राजनैतिक परिवर्तन, अन्तर्राष्ट्रीय शक्तियां, साम्यवादी विचारों का प्रसार, अनिश्चित आर्थिक परिस्थितियां तथा निर्वाह व्यय में वृद्धि इस मनोवृत्ति के लिए उत्तरदायी है। इसके साथ-साथ अनेक राजनैतिक दलों के प्रचार ने भी असंतोष उत्पन्न कर दिया है। अनेक राजनैतिक दलों ने कांग्रेस सरकार को तंग करने के लिए श्रमिक संघों पर अधिकार कर हड़ताल करवायी हैं। परन्तु फिर भी औद्योगिक विवादों की दृष्टि से आर्थिक कारण ही सबसे प्रमुख रहे हैं। रॉयल श्रम आयोग का मत इस बारे में महत्वपूर्ण है जो आज भी सत्य कहा जा सकता है। "चाहे अनेक राष्ट्रीय साम्यवादी या वाणिज्य उद्देश्यों से प्रभावित हुए हों लेकिन फिर भी हमारा विश्वास है कि शायद ही कोई ऐसी हड़ताल हुई हो जो कि पूर्णतया या अधिकांश रूप में आर्थिक कारणों के फलस्वरूप न हुई हो।"* यह सर्वविदित है कि श्रमिकों की निर्धनता ही साम्यवाद को जन्म देती है। हमारे श्रमिकों की आर्थिक शिकायतें, उनमें इस बात की भावना कि समाज में उनका कोई उचित स्तर नहीं है, उनमें इस बात का डर कि कहीं उनकी धन-उपार्जन शक्ति में अस्थिरता न आ जाये, उनमें इस बात की आशंका कि कहीं उनकी नौकरी में रुकावट न पड़ जाये, आर्थिक असुरक्षा का भार (जिससे इस बात की भावना बढ़ जाती है कि उनके साथ अन्याय हो रहा है), कार्य एवं रहन-सहन की दयनीय दशाएँ आदि अनेक ऐसे शक्तिशाली कारण हैं जिनसे श्रमिकों के हृदय में असंतोष व्याप्त हो गया है और जिनकी अभिव्यक्ति (Expression) निरन्तर होने वाली हड़तालों में मिलती है।

यहां इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि भारतवर्ष में मालिकों व श्रमिकों के बीच जो खाई उत्पन्न हो गई है उसका एक महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि भाषा, जाति आदि की भिन्नता होने से उनके बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध नहीं हो पाते और आपस में एक दूसरे को समझने का प्रयत्न नहीं किया जाता। अधिकांश उद्योगों का प्रबन्ध विदेशियों द्वारा होता रहा है जिनको कि भारतीय भाषाओं का बहुत कम ज्ञान होता है। अतः ऐसे प्रबन्धकों को मध्यस्थों के ऊपर ही निर्भर रहना पड़ता है। इन मध्यस्थों ने अनेक बार श्रमिकों का गलत ढंग से प्रतिनिधित्व किया है। यदि प्रबन्धक भारतीय भी होते हैं तब भी उनमें और श्रमिकों में जाति व परम्पराओं आदि में विभिन्नता होने के कारण अन्तर बना रहता है। परिणामस्वरूप बहुत से प्रबन्धक अपने कुछ अधिकारों को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों या मध्यस्थों को सौंप देते हैं। यह मध्यस्थ विश्वसनीय नहीं होते और मालिकों और श्रमिकों के बीच पारस्परिक सम्पर्क को कठिन बना देते हैं। श्रमिकों और मालिकों में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने में एक अन्य कठिनाई शक्तिशाली श्रमिक संघों का अभाव है। बाहरी नेता भी कई बार हड़तालों के लिए उत्तरदायी होते हैं। 'प्रीमियर आटोमोबाइल्स' कम्पनी बम्बई

* *Report of the Royal Commission on Labour page 335*

में जो १९५८ में हड़ताल हुई थी उसकी जांच से पता चला है कि यह हड़ताल मजदूरी बोनस या किसी ऐसे ही औद्योगिक प्रश्न से सम्बन्धित नहीं थी वरन् नेता की व्यक्तिगत बातों के कारण हड़ताल कराई गयी थी।

यहां इस बात का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है कि अनेक बार आम हड़तालें भी होती हैं जिनमें दुकानें कार्य आदि बन्द हो जाते हैं। ऐसी हड़तालें श्रमिकों की हड़तालों से भिन्न होती हैं। यह सरकार अथवा पुलिस के कार्यों के प्रति विरोध प्रदर्शन करने के लिए होती है। और इनका मालिक से कोई सम्बन्ध नहीं होता। राजनैतिक उथल पुथल के दिनों में यह बहुत अधिक होती है। ऐसी हड़तालें यद्यपि अल्पजीवी होती है तथापि सब बातों को देखते हुए उद्योगों और उत्पादन को इनसे काफी क्षति पहुंचती है।

हड़तालों का प्रभाव, हड़ताल करने का अधिकार —

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि देश के आर्थिक जीवन पर हड़तालों का क्या प्रभाव पड़ता है। इन हड़तालों के कारण हम किस दिशा में जा रहे हैं? क्या श्रमिकों को हड़ताल करने का अधिकार होना चाहिए? हड़तालों से बचने के लिए क्या उपाय करने चाहिएं तथा उनके होने पर समझौते के लिए कौनसा साधन ग्रहण करना चाहिए? इस प्रकार के अनेक प्रश्न हैं जो जनता की चिन्ता का कारण बने हुए हैं और जिनके ऊपर विचारशील लोगों में मतभेद भी है। यद्यपि हमने पाश्चात्य देशों के औद्योगिक साधनों व संगठन की तो नकल की है परन्तु यह खेद की बात है कि उन देशों में औद्योगिक सम्बन्धों को सौहार्दपूर्ण बनाये रखने और गम्भीर और तीव्र औद्योगिक विवादों को कम करने के लिए जो साधन अपनाए गए हैं उनका हमारे देश में सफलता के साथ उपयोग नहीं किया गया है। फलतः भारत में हड़तालों का होना एक आम बात हो गई है जिनका मालिकों एवं श्रमिकों पर आर्थिक दृष्टि से बुरा प्रभाव तो पड़ता ही है उनसे जनता को भी बहुत असुविधा होती है। पिछले तीस वर्षों में जो हड़ताल व तालाबन्दी आदि हुई हैं यदि उन पर दृष्टिपात करें तो उनका परिणाम श्रमिकों को कष्ट उत्पादन व लाभ में कमी सर्व साधारण को असुविधा और मालिकों व श्रमिकों में पारस्परिक मतभेद सन्देह और कटुता ही मालूम देता है। इस कारण यह बहुत आवश्यक है कि ऐसे साधनों पर विचार किया जाए जिनसे औद्योगिक झगड़ों को रोका जा सके और यदि वह हों भी तो उनका सरलतापूर्वक निपटारा हो सके।

आर्थिक आधारों पर हड़तालों का समर्थन नहीं किया जा सकता है। अनुभव से स्पष्ट हो जाता है कि कटु संघर्षों की अपेक्षा अंतत समझौता व्यवस्था तथा विवाचन जैसे साधनों से जिनमें पारस्परिक सौहार्दपूर्ण बातचीत व तर्क हो सकते हैं कहीं अधिक लाभ प्राप्त किया जा सकता है। जीवन के किसी भी क्षेत्र में धमकी द्वारा अधिक समय तक काम चलाना कठिन है। धमकी सदैव विपक्ष के मस्तिष्क को हठी बना देती है और वह एक पग आगे बढ़ने को तैयार नहीं होता। औद्योगिक अवस्था से सम्पूर्ण हानि का अनुमान केवल खोई हुई मजदूरी और लाभ की क्षति से

अथवा कम उत्पादन से ही नहीं नापा जा सकता है। उसके लिए इनसे जो असुविधाएँ उत्पन्न हो जाती हैं और जनता को जो कष्ट और दुःख होते हैं, उनको भी ध्यान में रखना चाहिए, जैसे विद्युत व जलपूर्ति यातायात स्वास्थ्य व सफाई आदि जनउपयोगी सेवाओं में विवादों से जनता का कष्ट दुःख और असुविधा अधिक होती है। हड़ताल तीन धारों वाला शस्त्र है। इससे न केवल मालिकों व समाज को ही हानि होती है वरन् श्रमिकों को ही इससे सबसे अधिक तकलीफ पहुँचती है। हड़तालों से श्रमिकों को लाभ की अपेक्षा हानि ही अधिक होती है। कभी-कभी तो श्रमिकों को हड़ताल की अवधि में लाठीचार्ज एवं गोलियों का भी सामना करना पड़ता है एवं तत्पश्चात् उन पर अत्याचार भी किए जाते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि क्या श्रमिक यह सब तकलीफें विवाद के लिए झुकते हैं? जब उनको ज्ञात रहता है कि उनको ही सर्वाधिक हानि होगी तो फिर वे हड़ताल क्यों करते हैं? उत्तर स्पष्ट है। आधुनिक पूँजीवादी व्यवस्था की यह विशेषता है कि यदि श्रमिक लड़ने झगड़ने की प्रवृत्ति को न अपनाएँ तो अनेक अन्यायी मालिक श्रमिकों का शोषण करने की प्रवृत्ति को नहीं छोड़ेंगे और उद्योग के समस्त लाभ को अपनी ही तिजोरियों में बन्द करते रहेंगे। अतः समस्या का यह समाधान नहीं है कि हड़तालों को अवैध घोषित कर दिया जाय अथवा श्रमिकों से हड़ताल के अधिकार को छीन लिया जाय। यह उपचार तो रोग से भी भयंकर होगा। श्रमिकों के पास मालिकों के द्वारा किए गए शोषण का विरोध करने के लिए हड़ताल ही एक मात्र शस्त्र है। अतः हड़तालों के कुप्रभावों के दृष्टिकोण से ही हमें इस समस्या पर विचार नहीं करना चाहिए, वरन् श्रमिकों के दृष्टिकोण का भी ध्यान रखना चाहिए। समस्या का समाधान उन कारणों को जो हड़ताल को जन्म देते हैं दूर करने से ही हो सकता है। हम मालिकों व श्रमिकों के बीच अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए। हड़तालों के दोषों का विवेचन तो केवल इसलिए होना चाहिए कि औद्योगिक विवादों को रोकने और उनका निपटारा करने के साधनों पर विचार किया जा सके और उनकी महत्ता को समझा जा सके।

भारत में आज औद्योगिक विवादों से बहुत सी हानियाँ हैं। देश आर्थिक संकट से गुजर रहा है और बेकारी अपना व्यापक रूप दिखा रही है। अतः ऐसे समय देश में अधिक उत्पादन तथा औद्योगीकरण की तीव्र आवश्यकता है। मुद्रास्फीति प्रवृत्तियों को केवल अधिक उत्पादन करके ही दूर किया जा सकता है। वास्तव में आज हमारे देश में— राजनैतिक सामाजिक एवं आर्थिक— प्रत्येक दृष्टिकोण से उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता है। देश के सभी राजनैतिक नेता भी उत्पादन वृद्धि को बहुत अधिक महत्त्व प्रदान कर रहे हैं। हमारे देश में इस समय पंचवर्षीय आयोजनाएँ लागू हैं तथा उनकी सफलता के लिए देश में औद्योगिक-शान्ति आवश्यक है। अतः राष्ट्रीय दृष्टिकोण से इस समय हड़तालों का समर्थन नहीं किया जा सकता है। चाहे

मालिक हो, चाहे श्रमिक हो अथवा कोई भी बाह्य संस्था हो यदि वह इस समय उद्योग-अशांति के लिए उत्तरदायी है तो उसको देशद्रोही कार्यों के लिए दोषी ठहराया जा सकता है। श्री खण्डूभाई देसाई के अनुसार "वयस्क मताधिकार पर आधारित प्रजातन्त्र में हड़ताल और तालेबन्दी न केवल असामयिक हो गए हैं अपितु उन उद्देश्यों के लिए भी जिनके लिए वे किए जाते हैं पूर्णतया हानिप्रद हैं।" देश में समाजवादी ढंग की स्थापना के लिए उत्पन्न हो रही नवीन परिस्थितियों में हड़तालों व तालाबन्दी को उचित कहना ठीक नहीं जान पड़ता। आज जो भी व्यक्ति हड़तालों का समर्थन करते हैं वे प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से अपनी राजनैतिक स्वार्थसिद्धि के लिए ऐसा करते हैं। उनका उद्देश्य सामाजिक ढांचे व संगठन को उकसाना है। क्योंकि वह समाज के ढांचे को समाप्त कर तथाकथित साम्यवाद लाना चाहते हैं। उनका ध्यान इस ओर नहीं जाता कि इस समय हमारे देश की तत्कालीन आवश्यकताएं क्या हैं और किसी और आर्थिक ढंग को ग्रहण करने में क्या व्यावहारिक कठिनाइयां हैं। हमें ऐसे व्यक्तियों से सचेत रहना चाहिए।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि श्रमिकों को हड़ताल करने के अधिकार से तो वंचित नहीं किया जा सकता परन्तु इस अधिकार का दुरुपयोग भी नहीं होना चाहिए। कई हड़तालें केवल मामूली सी बातों पर हो जाती हैं। कई बार मालिकों को श्रमिकों की ऐसी अटपटी मांगों का सामना करना पड़ता है जो राजनैतिक अथवा आर्थिक आधारों की अपेक्षा मनोवैज्ञानिक अधिक होती हैं। अनेक हड़तालें राजनैतिक दलों द्वारा अपनी स्वार्थसिद्धि के हेतु कराई जाती हैं जिनका श्रमिकों के हित से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। १९५८ में 'प्रीमियर आटोमोबाइल्स बम्बई' में जो हड़ताल व्यक्तिगत बातों को लेकर हुई थी उसका उदाहरण इस सम्बन्ध में दिया जा सकता है। ऐसा भी देखने में आया है कि कभी-कभी मालिकों ने जानबूझकर हड़तालों को अधिक समय तक चलने दिया है ताकि वह जनसाधारण की सहानुभूति प्राप्त कर सकें और श्रमिकों को उन्हीं के अस्त्र (हड़ताल) द्वारा पराजित कर दें। १९५० में बम्बई की सूती वस्त्र मिल की हड़ताल जो ६२ दिन तक चली इसका एक उदाहरण है। भारतीय श्रमिकों में यह प्रवृत्ति देखी गई है कि यद्यपि उनमें हफ्तों या महीनों दुःख उठाने का साहस शक्ति व धैर्य होता है फिर भी मुसीबत उठाने के बाद उनमें कुछ ऐसी प्रतिक्रियायें उत्पन्न हो जाती हैं, जिनको दूर करने के लिए बहुत समय लगता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रत्येक हड़ताल के पश्चात् काफी समय तक श्रमिकों की ओर से एक प्रकार का रोष और असन्तोष वातावरण बन जाता है। इस बात से लाभ उठाकर कई बार मालिकों ने हड़तालों को दीर्घ समय तक चलने को प्रोत्साहित किया है तथा तालाबन्दी भी की है क्योंकि मालिकों में प्रतीक्षा करने की क्षमता होती है। मालिकों को ऐसे दृष्टिकोण की भर्त्सना करनी चाहिए। इसी प्रकार ऐसी अनेक परिस्थितियां हो सकती हैं जबकि हड़ताल के अधिकार पर रोक लगानी पड़ती है। युद्ध जैसी आपत्कालीन

अवस्थाओं में अनोपयागी सभाओं में देश के आर्थिक विकास सम्बन्धी योजनाओं के कार्यान्वित होने की अवस्था में अथवा जब कोई भी पक्ष अनुचित दृष्टिकोण अपनाये सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह हस्तक्षेप करे और हड़ताल के अधिकार को वापिस लेकर सभी प्रकार के विवादों का प्रबन्ध घोषित कर दे।

इस सम्बन्ध में यह बात भी उल्लेखनीय है कि भारतवर्ष में श्रमिकों के हड़ताल के अधिकार को स्वीकार कर लिया गया है। यह इससे स्पष्ट हो जाता है कि भारतवर्ष के संविधान में संगठन व संघ बनाने का अधिकार प्रदान किया गया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय द्वारा भी इस अधिकार की सुरक्षा होती है। फिर भी भारत में हड़ताल के इस अधिकार को असीमित नहीं कहा जा सकता। औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत कुछ विशेष परिस्थितियों में हड़तालें अवैध घोषित कर दी गई हैं और अवैध हड़तालों में भाग लेने पर दंड की भी व्यवस्था कर दी गई है।

भारतवर्ष में औद्योगिक विवादों को रोकने और सुलझाने के उपाय

(Prevention and Settlement of Industrial Disputes in India)

विवादों की रोक-थाम —

उपचार से बचाव सदैव ही अच्छा होता है। इसलिए हम सर्वप्रथम उन उपायों का विवेचन करेंगे जो कि देश में होने वाले औद्योगिक विवादों की रोक-थाम कर सकें। जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है समय की तत्कालीन आवश्यकता यह है कि पूंजी और श्रम के मध्य की खाई को कम किया जाए तथा मालिकों व श्रमजीवियों के मध्य सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने के प्रयत्न किए जाएँ। मालिकों के दृष्टिकोण में न केवल परिवर्तन करने की आवश्यकता है जिससे वह श्रमिकों के कल्याण में अधिक रुचि ले सकें वरन् इस सम्बन्ध में कई अन्य उपाय भी हैं। प्रथम उपाय तो यह है कि ऐसे शक्तिशाली श्रमिक संघों का विकास हो जिनकी प्रबन्धकर्त्ताओं तक पहुँच हो।

शक्तिशाली श्रमिक संघ —

श्रमिक संघों के अध्याय में हम इस बात का उल्लेख कर चुके हैं कि शक्तिशाली श्रमिक संघों द्वारा मालिकों व श्रमिकों में मधुर सम्बन्ध बनाये रखने के क्या लाभ हैं। श्रमिक संघ मालिकों से सीधी बातचीत कर सकते हैं और इस प्रकार हड़ताल होने के एक मुख्य कारण को दूर कर सकते हैं जो कारण यह होता है कि अनेक बार मध्यस्थ मालिकों के समक्ष श्रमिकों का प्रतिनिधित्व उचित रूप से नहीं करते। मालिकों के लिए भी यह सम्भव नहीं होता है कि वे व्यक्तिगत रूप से प्रत्येक कर्मचारी से मिलें और उनके कष्टों का निवारण करने का प्रयत्न करें। मालिक श्रमिक संघों में श्रमिकों का हृदय पायेंगे और यदि एक बार हृदय संतुष्ट हो गया तो मालिक इस बात का विश्वास कर सकते हैं कि फिर निराशा का अवसर न होगा। मालिकों को

यह अनुभव कर लेना चाहिए कि इस बात के लिए कि पारस्परिक सम्बन्ध मधुर बने रहें श्रमिक संघ एक आवश्यक और उचित साधन है। एकता और सामूहिक रूप से कार्य करने से श्रमिकों को भी लाभ होता है क्योंकि वे मालिकों की इस सौदाकारी शक्ति का सब सामना कर सकते हैं और इस प्रकार मालिकों से उचित व्यवहार पा सकते हैं। श्रमिकों द्वारा सामूहिक रूप से लिए गए निर्णयों की मालिकों द्वारा सरलता से उपेक्षा नहीं की जा सकती। परन्तु प्रभावशाली होने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिक संघ अपनी संगठन में मजबूत और अच्छे हों और श्रमिकों के बहुमत का प्रतिनिधित्व करते हों। भारत के श्रमिक संघ आन्दोलन में कई प्रकार के गम्भीर दोष हैं जिनका उल्लेख किया जा चुका है। इन दोषों को दूर कर देने से देश में एक शक्तिशाली श्रमिक संघवाद का विकास होगा और यह बात औद्योगिक अशान्ति को रोकने के लिए प्रभावशाली साधन सिद्ध होगी।

इस सम्बन्ध में यह उल्लेखनीय है कि भारत के अनेक औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिकों और मालिकों के बीच समझौते हुए हैं। ऐसे समझौते औद्योगिक-शांति के लिए अनुकूल वातावरण प्रदान करते हैं। इनका स्वागत करना चाहिए। यह समझौते औद्योगिक-शांति को बनाये रखने के लिए सामूहिक सौदाकारी की महत्ता को प्रकट करते हैं और यह आशा की जा सकती है कि सम्पूर्ण भारत में श्रमिक संघों और प्रबन्धकों द्वारा ऐसे समझौते अनुकरणीय होंगे। अहमदाबाद में २७ जून १९५५ को अहमदाबाद मिल मालिक परिषद् और सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद् के बीच दो सामूहिक समझौते हुए। प्रथम समझौते का उद्देश्य पारस्परिक बातचीत या स्वीकृत विवाचन द्वारा विवादों का निपटारा करना है। दूसरा समझौता बोनस भुगतान से सम्बन्धित है। एक और समझौता टाटा आयरन एण्ड स्टील कम्पनी (TISCO) व टाटा श्रमिक संघ के बीच जनवरी १९५६ में जमशेदपुर में हुआ। यह एक व्यापक समझौता है और इसमें सेवा सुरक्षा श्रमिक उत्पादन कार्य श्रेणी निर्धारण आदि की मोबलाओं में श्रमिकों द्वारा सहयोग देने के उपबन्ध हैं। इसमें अनेक ऐसे उपबन्धों का भी उल्लेख है जो भारत के लिए नवीन हैं यद्यपि दूसरे उन्नत औद्योगिक देशों के लिए यह कोई नई चीज नहीं है। अन्य समझौते जो हुए हैं उनमें से कुछ निम्नलिखित हैं — बम्बई मिल मालिक परिषद और राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ के मध्य आसाम तेल कम्पनी व श्रमिक संघ के मध्य मोदीनगर में मोदी कताई और बुनाई मिल के मजदूर और प्रबन्धकों के मध्य मैसूर कागज मिल भद्रावती के श्रमिक संघ और प्रबन्धकर्त्ताओं के मध्य और मैसूर सरकार सड़क यातायात विभाग और इसके श्रमिकों के मध्य मैसूर चीनी कम्पनी मंगलोर और उनके कर्मचारियों के मध्य मद्रास के बागान के प्रबन्धकर्त्ताओं और वहां के श्रमिकों के मध्य। इस प्रकार के समझौते अब अन्य कई स्थानों पर भी हुए हैं और मालिकों और श्रमिकों के मध्य मधुर सम्बन्ध बनाये रखने में बहुत सहायक सिद्ध हो रहे हैं।

औद्योगिक शान्ति को बनाये रखने के लिए जो अन्य महत्वपूर्ण पग उठाये

गए हैं वह निम्नलिखित है — (क) प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग (Workers Participation in Management) (ख) अनुशासन संहिता (Code of Discipline), (ग) आचरण संहिता (Code of Conduct) (घ) शिकायत निवारण क्रियाविधि (Grievance Procedure) (ङ) मूल्यांकन तथा कार्यान्विति समितियां तथा प्रभाग (Evaluation and Implementation Committees and Division)। इनमें से प्रथम चार का उल्लेख परिशिष्ट 'ग' में किया गया है।

मालिक-मजदूर समितियां (Works Committees)

उनके महत्व और कार्य —

मालिक मजदूर समितियों व कार्यों का भी इस सम्बन्ध में उल्लेख करना आवश्यक है। उद्योगों की अलग-अलग प्रत्येक संस्था में उद्योग-अशांति को रोकने के लिए यह समितियां बहुत उपयुक्त हैं। इनमें मालिकों और श्रमिकों दोनों के ही प्रतिनिधि होते हैं। इनका मुख्य उद्देश्य यह होता है कि कारखाने की सीमा में ही पारस्परिक सद्इच्छा और मैत्रीपूर्ण वातावरण बनाकर दिन प्रतिदिन की समस्याओं पर विचार-विमर्श करें। इन समितियों में मालिक व श्रमिक इस प्रकार नहीं मिलते जिस प्रकार किसी संघर्ष के निपटाने के लिये समाकार के सम्मुख आते हैं वरन् वो मित्रों की भांति पारस्परिक विचार-विमर्श से अपने विवादों को अविलम्ब एवं शांतिपूर्ण ढंग से निपटाने और मतभेदों को दूर करने के लिये मिलते हैं। यह समितियां प्रबन्धकों और कर्मचारियों दोनों ही से सम्बन्धित दिन प्रतिदिन के पारस्परिक प्रश्नों पर विचार करती हैं। यह प्रश्न उत्पादन कार्य की दशायें, कल्याण कार्य अभिसरण मजदूरी अनुशासन वेतन सहित अवकाश कार्य के घण्टे, बोनस आदि उद्योग की लगभग सभी बातों से सम्बन्धित होते हैं और इनका सम्बन्ध श्रमिकों के दैनिक जीवन से भी होता है। यदि इन समस्याओं का प्रारम्भिक अवस्था में सफलतापूर्वक उपचार नहीं किया जाता तो यह विषम गम्भीर विवाद उत्पन्न कर सकते हैं। मालिक मजदूर समितियां अलग-अलग संस्थानों में इस प्रकार के प्रश्नों पर विचार-विमर्श करने में सहायक होती हैं। औद्योगिक शांति की नींव प्रत्येक संस्थान में डाली जानी चाहिए और यह नींव इस प्रकार पड़ सकती है कि दिन-प्रति दिन की समस्याओं पर अलग-अलग संस्थानों में सावधानी से विचार किया जावे। इस प्रकार औद्योगिक विवादों को रोकने में मालिक मजदूर समितियों का बहुत महत्व है। प्रारम्भिक अवस्था में दोनों पक्षों में समझौता करा देना जबकि किसी ने भी इसको अपने सम्मान का प्रश्न नहीं बनाया होता अपेक्षाकृत सरल होता है क्योंकि तत्पश्चात् सम्बन्धित पक्ष अपनी ही बात पर अड़ जाते हैं और विवाद बढ़ जाता है। इस दृष्टिकोण से भी औद्योगिक विवादों को रोकने में मालिक मजदूर समितियों की अधिक उपयोगिता है। इन समितियों से श्रमिकों को इस बात की भी शिक्षा मिल सकती है कि वह अपने उत्तरदायित्वों को ठीक ठीक समझ सकें।

मालिक मजदूर समितियों के कार्यों में बाधायें —

रॉयल श्रम आयोग ने इस प्रकार की मालिक मजदूर समितियों की स्थापना करने की सिफारिश की थी और कुछ समितियां बनी थी। परन्तु अहमदाबाद को छोड़कर जहाँ गाँधी जी के प्रभाव के कारण यह समितियां सफल हो सकी अन्य स्थानों में यह सतोषजनक प्रगति नहीं कर सकी। उनके निर्माण एवं कार्य-विधि में अनेक कठिनाइयों का अनुभव किया गया जो कठिनाइयाँ आज तक भी पाई जाती है। मालिक ऐसी समितियों को श्रमिक संघो का प्रतिस्थापन (Substitute) समझते है, जबकि श्रमिक संघ के नेता इन्हे अपना प्रतिद्वन्दी (Rival) समझते हैं और उनके विचार से इन्हे कोई भी प्रोत्साहन नही देना चाहिए। अत दोनों ही पक्षों मे गलतफहमी है। इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि पिछली त्रुटियो को दूर किया जाय व मालिक मजदूर समितियों की उचित रूप से स्थापना की जाय। अन्य देशों में इस प्रकार की समितियाँ अत्यन्त सफल हुई है। परन्तु भारत मे अब तक इनकी प्रगति बहुत धीमी रही है। भारतवर्ष मे श्रमिको की दोषपूर्ण शिक्षा ऐसी समितियों की स्थापना में एक बड़ी बाधा है। पश्चिमीय देशों मे ऐसी स्थिति नही है। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि जहाँ श्रमिक संघ हो वहाँ मालिक इन समितियों की स्थापना व कार्य-संचालन म इन संघो से सहयोग लें और समितियों को श्रमिक संघों की प्रतिस्थापना न मानें। कभी कभी मालिक ऐसी समितियों में पोषित संघ (Yellow Union) के प्रतिनिधियों को भी सम्मिलित कर लेते है जो कार्य अवांछनीय है। श्रमिकों के प्रतिनिधियों को पृथक पृथक व संयुक्त रूप से सभा करने की भी सुविधा होनी चाहिए। और प्रबन्धकों को मालिक मजदूर समितियों के विचार से सहानुभूति रखनी चाहिए। श्रमिकों को भी सहयोग देना चाहिए और श्रमिक संघों को इन समितियों को अपना प्रतिद्वन्दी नही समझना चाहिए।

भारत में मालिक मजदूर समितियां —

१९२ में भारत सरकार ने अपने छापाखानों में संयुक्त समितियों (Joint Committees) की स्थापना की थी। टाटा आयरन वर्क्स जमशेदपुर तथा कुछ रेलवे में भी ऐसी समितियो की स्थापना की गई। १९२१ की बंगाल की औद्योगिक विवाद समिति ने इस विचार का समर्थन किया। १९२२ में मद्रास की बकिंघम और कर्नाटिक मिल्स में श्रमिक कल्याण समिति के नाम से एक समिति की स्थापना की गई। इसने मालिकों व श्रमिकों के मध्य अच्छे सम्बन्ध बनाये रखने में उपयोगी कार्य किया। कुछ राज्यों निजी उद्योगों एवं रेलवे मे भी इस प्रकार की समितियों की स्थापना की गई। परन्तु सब बातों को देखते हुए इनकी प्रगति विशेष उत्साह वर्धक नही हुई। रॉयल श्रम आयोग ने ऐसी समितियों को बड़ी आशापूर्ण दृष्टि से देखते हुए कहा था 'हमारा विश्वास है कि यदि इनको उचित उत्साह प्रदान किया जाता है और भूतकाल की त्रुटियों को दूर कर दिया जाता है तब मालिक

९८.१ करोड़ रुपए और राज्य सरकारों का व्यय १० १६ करोड़ रुपए होने का था। औद्योगिक श्रमिकों के मकानों को प्राथमिकता दी गई थी जिसके लिए केन्द्रीय सरकार को सहायता देनी थी और राज्य सरकारों को इस सम्बन्ध में ग्रामीण क्षेत्रों की ओर ध्यान देना था। परन्तु औद्योगिक श्रमिकों के आवास के लिए केवल १३ २१ करोड़ रुपये व्यय किये गये और प्रथम आयोजना काल में केवल ४३ ८३१ मकान बनाये जा सके थे।

प्रथम पचवर्षीय आयोजना में औद्योगिक श्रमिकों के आवास की एक योजना भी थी जिसके आधार पर उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना बनाई गई जो आज तक चालू है। इस योजना के अन्तर्गत ८५ प्रतिशत मकान बनाने का उत्तर दायित्व राज्य सरकारों का है (केन्द्रीय सरकार द्वारा ५० प्रतिशत उपदान तथा ५०% ऋण द्वारा) और १५% मकान मालिकों द्वारा बनाने की व्यवस्था है (२५ प्रतिशत उपदान और ५ % ऋण द्वारा)। शेष १३ ५ प्रतिशत मकान सहकारी समितियों द्वारा (२५ प्रतिशत उपदान और ६५ प्रतिशत ऋण द्वारा) बनाये जाते हैं। इस योजना का ऊपर विस्तृत उल्लेख किया जा चुका है। भवन निर्माण के लिए अन्वेषणों तथा सभी आवास एजेन्सियों द्वारा उनके लागू करने के कामों को समायोजित करने के लिए आयोजना में एक राष्ट्रीय भवन निर्माण संगठन की स्थापना की सिफारिश की गई थी जिसकी स्थापना की जा चुकी है। आयोजना में एक केन्द्रीय आवास बोर्ड तथा एक क्षेत्रीय आवास बोर्ड की स्थापना करने की तथा नगर नियोजन के लिए अधिनियम बनाने तथा भूमि अधिग्रहण अधिनियम में संशोधन करने की भी सिफारिश की गई थी।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में आवास के हेतु १२ करोड़ रुपयों का आयोजन किया गया था जिसको निम्न प्रकार से विभाजित किया गया था —उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास-व्यवस्था ४५ करोड़ रुपए, कम आय वाले लोगों के लिये आवास हेतु ४० करोड़ रुपये ग्रामीण आवास १० करोड़ रुपये गन्दी बस्तियां हटाने और भंगियों के लिए आवास २० करोड़ रुपये मध्यम वर्ग के आवास के लिए ३ करोड़ रुपए बागान आवास के लिए २ करोड़ रुपए। आयोजना में गंदी बस्तियों की सफाई का बहुत अधिक महत्व दिया गया है और इसके लिए सुझाव दिया गया है कि केन्द्रीय सरकार लागत का २५% अनुदान के रूप में तथा ५० प्रतिशत ऋण के रूप में जो कि ३० वर्षों में भुगतान किया जा सकता है दल दे तथा लागत का शेष २५% राज्य सरकारों द्वारा अनुदान के रूप में दिया जाय। यह भी बताया गया है कि प्रथम आयोजना काल म नगरों में १३ लाख मकान बनाये गये थे जिनमें से ६ लाख निजी क्षेत्र में तथा शेष केन्द्रीय मंत्रालयों राज्यों तथा सार्वजनिक संस्थाओं द्वारा बनाये गए थे। द्वितीय आयोजना के लिए अनुमान था कि १ १२२ करोड़ रुपए की लागत से १६ लाख मकान बनाए जायेंगे जिनमें से ८०० करोड़ रुपये की लागत के ८ लाख मकान निजी क्षेत्र में बनाय जायेंगे। आयोजना में औद्योगिक श्रमिकों के

आवास के लिए सहकारी आवास समितियों के विकास को अत्यधिक महत्व दिया गया है। १९५८–५९ में योजना की धीमी प्रगति होने के कारण स्वीकृत धन राशि १२० करोड़ रुपए से घटा कर ८४ करोड़ रुपए कर दी गई थी।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में ६, • मकान बनाने का कार्यक्रम है। आवास के लिए १४२ करोड़ रु० की व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त जीवन बीमा निगम से ६ करोड़ रु की राशि मकान बनाने के लिए प्राप्त होने का अनुमान है। यह कुल धन राशि निम्न प्रकार से विभाजित की गई है —

योजना	व्यय (करोड़ रु० में)
(1) निर्माण निवास और संभरण मंत्रालय द्वारा —	
उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास	२१ ८
गोदी श्रमिक (Dock Labour) आवास	२
गन्दी बस्तियों की सफाई तथा सुधार तथा रात्रि विश्राम गृह	२८ ६
कम आय वाले वर्गों के लिए आवास	६५ २
मध्य आय वाले वर्गों के लिए मन्त्रीय क्षेत्रों में आवास	२ ४
ग्रामीण आवास	१२ ७
बागान श्रमिक आवास	७
भूमि अभिग्रहण तथा विकास	६ ५
आवास सम्बन्धित अनुसंधान प्रयोग तथा आँकड़े	१
योग	१२२
(ii) अन्य योजनायें —	
राज्य सरकारों द्वारा आवास योजनायें	२ ३
नगर नियोजन तथा नगर विकास योजनायें	५ ४
शहरी विकास योजनायें	१२ ३
योग	२ •
(1) तथा (ii) के अन्तर्गत योजनाओं का योग	१४२
ऐसी योजनायें जिनके लिए वित्तीय सहायता जीवन बीमा निगम से प्राप्त होने की आशा है	६
कुल योग	२०२ •

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में उपदान प्राप्त आवास योजना के अन्तर्गत ७१ हजार मकान कम आय वाले वर्ग के लिए ७५ हजार मकान गंदी बस्तियों की

सफाई के अन्तर्गत १ ०० ००० मकान तथा ग्रामीण आवास के अन्तर्गत १ लाख ७५ हजार मकान बनाने का कार्यक्रम है। यह अनुमान लगाया गया है कि कोयला और अभ्रक खानों की कल्याण निधियों में से १४ करोड़ की लागत से तीसरी आयोजना काल में ६० हजार मकान बनाये जायेंगे तथा रेलवे व अन्य संस्थाओं द्वारा २० करोड़ रुपये की लागत से कर्मचारियों के लिए मकान बनाने की व्यवस्था है।

उपसंहार —

इस प्रकार आवास की समस्या सरल नहीं है और औद्योगिक श्रमिकों की आवास समस्या को सन्तोषजनक ढंग से सुलझाने के लिए अनेक सैद्धान्तिक बातों का ध्यान रखना पड़ेगा। समाजवादी विचारधारा वाले व्यक्ति सम्भवत आवास के संबंध में राज्य द्वारा अधिक हस्तक्षेप एवं नियंत्रण पर जोर देते हैं और श्रम अनुसंधान समिति ने भी आवास के सम्बन्ध में राजकीय नियंत्रण पर जोर दिया था। प्रत्येक देश में सरकार ने जनता की सामाजिक आवश्यकताओं में अधिक से अधिक हस्तक्षेप करने की नीति को अपनाया है और निर्धनों के आवास का प्रबन्ध करना भी वैसा ही आवश्यक समझा गया है जैसा सरकार द्वारा चिकित्सा एवं अन्य सेवाओं की व्यवस्था करना है। फिर भी इस समय सरकार की कठिनाइयां बहुत अधिक हैं और इसमें सन्देह है कि सरकारी कर्मचारियों द्वारा आवास व्यवस्था का प्रबन्ध कुशलतापूर्वक किया जा सकेगा। अतः वर्तमान समय में सरकार ही पूर्णतया आवास का उत्तर दायित्व नहीं ले सकती। आवास पर सरकार के नियन्त्रण के प्रश्न को हमें एक अलग समस्या नहीं समझना चाहिये वरन् राज्य द्वारा उद्योगों के नियन्त्रण की सामान्य समस्या के साथ ही लेना चाहिये। यदि उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया जाता है, तब समस्या पूर्णत: भिन्न होगी। वर्तमान समय में हमारा विचार है कि अच्छी आवास व्यवस्था का उत्तरदायित्व मालिकों पर होना चाहिये। मालिकों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि यदि वह ऐसा नहीं करते और सरकार हस्तक्षेप करती है तो न केवल आवास के नियन्त्रण के लिये वरन् सरकार द्वारा उद्योग के नियन्त्रण के लिये भी मालिक स्वयं उत्तरदायी होंगे। यह कोई गुप्त बात नहीं है कि साम्यवादी, पूंजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध तर्क देते हुए, श्रमिकों की शोचनीय आवास व्यवस्था का उदाहरण देते हैं। मालिकों को इस चेतावनी पर ध्यान देना चाहिये।

सारांश में यह कहा जा सकता है कि उचित स्थानों की कमी भूमि और इमारती सामान की लागत में अत्यधिक वृद्धि दूर बने हुए उपनगरों से आने जाने के लिये यातायात के साधनों की कमी और सबसे अधिक धन की कमी ने आवास की समस्या के समाधान को असाधारण रूप से जटिल बना दिया है। इस प्रकार के संकट का सामना केवल सरकार, मालिकों श्रमिकों तथा सहकारी समितियों के संयुक्त और दृढ़ प्रयत्नों के द्वारा ही हो सकता है। सरकार अपना उत्तरदायित्व सुचारु रूप से निभा रही है और अब यह अन्य दलों का कर्त्तव्य है कि वे पूर्णतया सहयोग दें।

हम डा० राधा कमल मुकर्जी के शब्दों में कह सकते हैं कि 'भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर, व्यवहार और नैतिकता में उन्नति करने के लिये अच्छे आवास की व्यवस्था करना पहला पग है। इसके साथ साथ हम रोकी जा सकने वाली बीमारियों तथा अकाल मृत्यु पर भी विजय पा सकेंगे। फलस्वरूप उत्पादन में वृद्धि तथा स्वास्थ्य में उन्नति होगी। भारतीय श्रमिकों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने और उनकी भलाई के लिये निःसन्देह आवास व्यवस्था ही मुख्य समस्या है। जिन लोगों का यह मत है कि भारतवर्ष औद्योगिक आवास के लिये धन व्यय नहीं कर सकता उनके लिये एक ही उत्तर है कि भारत में ऐसे व्यय को करने के लिये अब विलम्ब नहीं किया जा सकता। *

* R. Mukerjee *Indian Working Class* page 321

१०

ब्रिटेन में आवास समस्या

(Housing Problem in Great Britain)

समस्या की गम्भीरता — (Magnitude of the Problem)

ब्रिटेन में १९ वीं शताब्दी के पूर्वार्ध में अहस्तक्षेप नीति (Non-intervention) का सबसे अच्छा उदाहरण आवास निर्माण तथा नगर विकास के क्षेत्रों में मिलता है। औद्योगिक क्रान्ति के पश्चात् घरेलू उत्पादन का स्थान कारखाना उत्पादन ने ले लिया। इस परिवर्तन के कारण जनसंख्या औद्योगिक तथा व्यापारिक केन्द्रों में तेजी से एकत्रित होने लगी। लाखों की संख्या में लोग गाँवों और जिलों से शहरों की ओर आये और इनके रहने की कुछ न कुछ व्यवस्था शीघ्रता से करनी पड़ी। इन वर्षों में जनसंख्या में भी अधिक वृद्धि हुई जिसके कारण आवास की आवश्यकता अधिक तीव्र हो गई। सन् १८०० से १८३१ के मध्य मकानों की संख्या में १२ लाख से लेकर लगभग ३० लाख तक वृद्धि हुई। परन्तु न तो राज्य ने और न ही स्थानीय अधिकारियों ने आवास निर्माण के नियन्त्रण के लिये कोई प्रभावशाली कदम उठाया। उस समय न तो कोई आवास नियम था और न ही किसी स्तर को निर्धारित किया गया था। स्वास्थ्य तथा सफाई की दृष्टि से भी आवास निर्माण पर कोई रोक नहीं लगाई गई थी। सिविल कमिश्नरों को कुछ नाममात्र के अधिकार दिये गये थे परन्तु इस सम्बन्ध में उनका प्रभाव नगण्य (Negligible) था। स्थानीय प्रशासन (Local Governments) उस समय ऐसे दफ्तरशाही (Bureaucratic) लोगों के हाथों में था जो आवास निर्माण पर नियंत्रण लागू करना अपना कार्य नहीं मानते थे।

प्रारम्भ में आवासों का अनियोजित विकास —

परिणामस्वरूप नये नगरों का निर्माण तथा पुराने नगरों का विकास बिना किसी पद्धति के तथा बिना भविष्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए हुआ। जहाँ भी उचित स्थान मिला वहीं पर सड़कें तथा मकान बना लिए गये। स्थान उचित है या नहीं इसका निर्णय केवल कारखानों की निकटता को ध्यान में रखकर किया जाता था। यातायात के साधन अपर्याप्त व महँगे थे। इसीलिए लोग अपने काम करने के स्थानों के निकट रहने के लिए बाध्य थे। इसका अवश्यम्भावी (Inevitable) परिणाम यह हुआ कि भीड़ भाड़ व अस्वास्थ्यकर वातावरण अधिक बढ़ गया। दोषपूर्ण सफाई व्यवस्था ने इस वातावरण को और भी अधिक शोचनीय बना दिया।

आवास व्यवस्था में उन्नति के लिये प्रयत्न —

१८३० व १८४ के बीच दो बार भयानक हैजे का प्रकोप हुआ जिनमें मृत्यु दर 'वाटरलू' की लड़ाई से भी अधिक थी। परिणामस्वरूप लोगों ने बुरे आवास के खतरों को समझा और अच्छी स्वच्छ दशाओं की आवश्यकता अनुभव की। १८४४ में नगरों की आवास दशा के अनुसंधान हेतु एक आयोग की नियुक्ति हुई। इसकी रिपोर्ट में कहा गया था कि साधारणतः आवास व्यवस्था जनता के स्वास्थ्य के लिये हानिकारक थी पीने का जल अनेक क्षेत्रों में दोषपूर्ण पाया गया साथ ही मल-मल निकास का प्रबन्ध (Sewag) भी बहुत खराब था। आयोग की नियुक्ति के चार वर्ष पश्चात् जन-स्वास्थ्य से सम्बन्धित प्रथम अधिनियम पारित हुआ।

इसके पश्चात् आवास निर्माण के नियंत्रण सम्बन्धी नियमों को बनाने के लिए कुछ पग उठाये गये। देश में मोतीझरा महामारी के समाप्त करने का श्रेय मुख्यतः १८४८ का जन स्वास्थ्य अधिनियम (Public Health Act) को था। इससे जल वितरण व्यवस्था में सुधार हुआ और अधिकारियों को बाध्य किया गया कि वे अब तक चले आने वाले मल मल निकास के तरीकों को बदल कर उचित नालियों आदि की व्यवस्था करें। परन्तु अब तक आवास निर्माण की व्यवस्था को उन्नत करने तथा गन्दे मकानों को नष्ट करने के लिये कोई पग नहीं उठाया गया था।

गन्दी बस्तियों की सफाई के लिये अधिनियम —

(Acts for Clearance of Slums)

सन् १८५१ में 'शेफ्टसबरी' अधिनियम (Shaftesbury Act) के अन्तर्गत नगरपालिकाओं को यह अधिकार मिल गया कि वह धन उधार लेकर श्रमिकों के लिए मकान बनायें। इसके पश्चात् सन् १८६६ के टॉरेन्स अधिनियम (Torrens Act) के अन्तर्गत नगरपालिकाओं को निजी गन्दे मकानों का सुधार करने अथवा उन्हें नष्ट करने का भी अधिकार प्राप्त हो गया। सन् १८७५ के क्रॉस अधिनियम (Cross Act) के अन्तर्गत भी गन्दी बस्तियों की सफाई की आज्ञा मिल गई। परन्तु वास्तव में इन अधिनियमों से कुछ अधिक लाभ न हो सका। दशा और भी बुरी होती गई और अधिक भीड़भाड़ वाले मकानों तथा क्षेत्रों की संख्या कई गुनी हो गई। सन् १८७५ के जन स्वास्थ्य अधिनियम (Public Health Act) से भी कुछ सुधार हुआ। इसके अन्तर्गत दो वर्ष पश्चात् ही स्थानीय सरकार बोर्ड द्वारा एक उपनियमों की आदर्श संहिता (Model Code of bye-laws) प्रकाशित की गई जिसमें नए मकानों का निर्माण गलियों नालियों तथा अधिक जनसंख्या वाले क्षेत्रों की सफाई के लिए उपनियमों की व्यवस्था थी। १८७२ से जन स्वास्थ्य अधिकारियों की स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा नियुक्ति अनिवार्य हो गई। १८८४ में श्रमिक वर्ग की आवास व्यवस्था की जाँच पड़ताल के लिये एक आयोग की नियुक्ति हुई और ६ वर्षों के पश्चात् एक व्यापक श्रमिक वर्ग आवास अधिनियम (Housing of the Working Class Act) पारित हुआ।

१८९० के अधिनियम ने आवास सम्बन्धी पिछले कानूनों को समायोजित तथा अधिक विस्तृत कर दिया। क्रॉस अधिनियम के उपबन्ध भी इस नये अधिनियम में उद्धृत कर दिये गये और इसके अन्तर्गत अब स्थानीय अधिकारियों को गन्दी बस्तियों का पूर्णतया हटाने का अधिकार मिल गया। टौरेन्स अधिनियम की धाराओं को भी इस अधिनियम में दोहराया गया था। नगरपालिकाओं का छोटे-छोटे क्षेत्रों में निजी आवासों को उन्नत करने का अधिकार भी मिल गया था। यह सब बातें अनिवार्य रूप से लागू की गई थी। इसके साथ ही शेफ्टसबरी अधिनियम की तरह स्थानीय प्राधिकारियों को श्रमिक वर्ग के आवास हेतु जमीन खरीदने और ऋण लेने का अधिकार दिया गया। परन्तु यह केवल एक अनुमोदक (Permissive) धारा थी। परिणामस्वरूप मकान किराये तो प्राप्त करने परन्तु नये आवासों का निर्माण कम हुआ। इस कारण १९०९ में इस धारा को अनिवार्य कर दिया गया। परन्तु १९१४ से पहले मकानों की बढ़ती हुई मांग को पूरा करने के लिये नये मकानों का निर्माण बहुत कम हुआ। युद्ध पूर्व की सार्वजनिक योजनाओं के अन्तर्गत गन्दी बस्तियों की सफाई के कारण विस्थापित (Displaced) हुये लोगों को फिर से बसाना एक बड़ी कठिनाई थी। विस्थापितों के लिये जो नये मकान थे उनके किराये बहुत अधिक थे। जिन श्रमिकों को वेतन अच्छा मिलता था वे तो अच्छे मकानों में चले गये परन्तु अन्य श्रमिकों को घटिया मकानों में ही बसना पड़ा। इस प्रकार कितने ही स्थानों पर भीड़भाड़ और अधिक बढ़ गई।

इसमें सन्देह नहीं कि समस्त गन्दी बस्तियों को पूर्णतः हटा देना ही सर्वोत्तम था परन्तु यह काम काफी महँगा पड़ता था। इसलिए कई नगरपालिकाओं ने गन्दी बस्तियों को पूर्णतः नष्ट करने की अपेक्षा छोटे छोटे क्षेत्रों को उन्नत करने तथा मकानों की मरम्मत करने पर अधिक ध्यान दिया। गन्दे क्षेत्रों को साफ करने के उत्साह में कमी होने का एक कारण यह भी था कि राज्य से आवास सम्बन्धी अनुदान कम प्राप्त होता था। सन् १९११ की जनगणना से यह प्रकट हुआ कि जन संख्या का कम से कम दसवाँ भाग भीड़भाड़ वाले वातावरण में रहता था तथा लग भग चार लाख लोग केवल एक कमरे के मकानों में रहते थे। परन्तु वास्तव में अवस्था जैसा कि इन आँकड़ों से स्पष्ट होता है, उससे भी अधिक शोचनीय थी क्योंकि अति भीड़भाड़ की परिभाषा अर्थात् बच्चों को आधा वयस्क मानकर एक कमरे में दो से अधिक वयस्कों का होना कोई सन्तोषजनक परिभाषा नहीं थी। इसी दृष्टि से भीड़भाड़ की वास्तविक स्थिति अत्यधिक शोचनीय थी।

१९०९ का आवास तथा नगर आयोजन अधिनियम युद्धकालीन अवस्था
(Housing and Town Planning Act of 1909 Conditions during the War)

सन् १९०९ का आवास तथा नगर आयोजन अधिनियम पिछले कानूनों का पूरक था। स्थानीय अधिकारियों को सफाई के हेतु या भूमि लेने का अधिकार था

थी। इसके अतिरिक्त उन्हें यह भी अधिकार दे दिये गये कि वे नगर विकास के लिये भूमि ले सकें। परिणामस्वरूप नगर आयोजन महत्त्वपूर्ण हो गया और लोगों ने इस बात का अनुभव कर लिया कि अनियोजित ढंग से बने हुये मकान ही नहीं अपितु अनियोजित ढंग से निर्मित नगर भी दोषपूर्ण होते हैं। गन्दी बस्तियां बन जाती हैं बनाई नहीं जातीं। इस कारण यह असम्भव नहीं है कि जो भी नये मकान और बस्तियाँ बनें वह इस प्रकार से बनाये जायें कि वे अन्तत: गन्दी बस्तियां न बन सकें। १९०९ के नगर आयोजन अधिनियम की धाराओं के अनुसार कुछ निजी संस्थानों तथा प्रगतिशील मालिकों द्वारा अनेक प्रयोग किये गए, परन्तु युद्ध के कारण वे अधिकतर लागू न किये जा सके। जितने भी मकान बनते थे मांग उससे भी अधिक तीव्रता के साथ बढ़ रही थी। युद्ध के समय लड़ाई का सामान बनाने वाले नगरों के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर निर्माण कार्य स्थगित कर देना पड़ा। भीड़भाड़ कुछ सीमा तक कुछ समय के लिये कम हो गई थी क्योंकि उन मकानों में भी लोग रहने लगे थे जो लड़ाई से पहले मौजूद थे परन्तु अधिक किरायों के कारण खाली पड़े थे। एक यह कारण भी था कि लाखों लोग सैन्य सेवा के लिये अपने घरों को छोड़ कर चले गये थे। परन्तु युद्ध समाप्त होने पर सैनिकों की वापसी के कारण तथा जनसंख्या की स्वाभाविक वृद्धि होने और लोगों का विदेशों को प्रवास रुक जाने के कारण मकानों का फिर अभाव हो गया। युद्ध के समय निर्माण कार्य का स्थगित होना भी इस अभाव के लिये उत्तरदायी था। सन् १९१८ से १९२४ के बीच अनुमानत: तीन लाख मकानों का निर्माण हुआ। परन्तु इसी समय में जैसा कि हिसाब लगाया गया कम से कम पांच लाख मकानों की आवश्यकता उत्पन्न हो गयी थी।

१९१४-१८ के युद्ध के पश्चात आवास निर्माण

इस प्रकार इंगलैंड में भी कुछ गम्भीर आवास समस्याएं रही हैं, जैसे आवासों की संख्या में कमी, गन्दी बस्तियों को नष्ट करना तथा उनके स्थान पर नये मकानों का निर्माण करना आदि। मकान निर्माण की अधिक लागत, कुशल श्रमिकों का अभाव तथा किराया नियन्त्रण अधिनियमों के प्रभाव से भी आवास सम्बन्धी कुछ समस्यायें उत्पन्न हो गई थीं। सन् १९१४-१८ के युद्ध के पश्चात् इमारती सामान का मूल्य अत्यधिक बढ़ गया। श्रमिकों की मजदूरी भी अधिक हो गई तथा उनके काम करने के घण्टे कम हो गये। इस कारण आवास निर्माण की लागत में काफी वृद्धि हो गई। एक और बड़ी समस्या यह थी कि कार्य कुशल मजदूर पर्याप्त मात्रा में नहीं मिलते थे। शताब्दी के प्रारम्भ से कुशल शिल्पकारों में लगभग १५ प्रतिशत की कमी आ गई थी। कुशल श्रमिकों के इस अभाव का कारण यह भी था कि भवन निर्माण कार्य के लिये उनकी मांग अधिक हो गई थी। जैसे जैसे समाज गन्दे नगरों को साफ करने तथा लोगों को फिर से मकान उपलब्ध करने के अपने कर्त्तव्य को समझता गया उतनी ही तेजी से कुशल श्रमिकों का अभाव बढ़ता गया।

इसके अतिरिक्त अभिभावकों (Guardians) को भवन निर्माण का व्यवसाय अपने लड़कों के लिए विशेष सन्तोषजनक नहीं लगता था क्योंकि इस व्यवसाय में मजदूरी अधिक नहीं मिलती थी तथा काम भी अनियमित था। युद्ध काल तथा उसके पश्चात् की व्यवस्था के कारण भी जब मकान मालिकों को एक निश्चित राशि से अधिक किराया बढ़ाने पर प्रतिबन्ध था भवन-निर्माण का कार्य स्थगित हो गया। दिसम्बर १९१५ में प्रथम किराया नियन्त्रण अधिनियम (Rent Restriction Act) पारित हुआ जो कि युद्ध के पश्चात् भी लागू रहा। सन् १९२३ से अब तक ये किराया नियन्त्रण अधिनियम बराबर लागू रहे हैं।

सन् १९१९ तथा १९२३ की योजनायें —

सन् १९१९ में पार्लियामेंट ने एडीसन योजना के अन्तर्गत स्थानीय अधिकारियों को श्रमिक वर्ग के आवास के निर्माण की एक योजना बनाने का कार्य सौंपा। यह आवास या तो स्थानीय अधिकारियों द्वारा सीधे श्रमिकों को लगाकर अथवा निजी निर्माताओं द्वारा या जनोपयोगी समितियों (Public Utility Societies) द्वारा बनाये जाने थे। जनोपयोगी समितियों में ऐसे लोग होते हैं जो निर्माण काम को सहकारी आधार पर करना चाहते हैं या ऐसे मालिक होते हैं जो अपने कर्मचारियों को आवास सुविधा प्रदान करना चाहते हैं। परन्तु राज्य को ही लागत का अधिकांश भार वहन करना होता था। राज्य द्वारा जनोपयोगी समितियों को और दूसरे निजी व्यक्तियों को भी उपदान प्रदान करने की व्यवस्था थी। राज्य ने नगर नियोजन तथा मकानों की विशिष्टता या गुण के लिए भी कुछ न्यूनतम शर्तें निर्धारित कर दी थीं। किन्तु एडीसन योजना काफी महँगी सिद्ध हुई और १९२१ में इसे स्थगित कर देना पड़ा यद्यपि इसी योजना के अन्तर्गत काफी मकानों का निर्माण हुआ।

सन् १९२३ में चेम्बरलेन योजना के नाम से एक नई आवास योजना लागू की गई। इसके अन्तर्गत सरकार निजी सम्पत्ति लगाने वालों को स्थानीय अधिकारियों के द्वारा २० वर्ष के लिए ६ पौंड प्रति वर्ष के हिसाब से उपदान देती थी। स्थानीय अधिकारी यदि चाहते तो इस सहायता में वृद्धि भी कर सकते थे। स्थानीय अधिकारी उन लोगों को ऋण प्रदान कर सकते थे जो श्रमिक वर्ग के आवासों का उनके निवास के लिये ही निर्माण करना चाहते थे। यह ऋण बाजार मूल्य का ९० प्रतिशत तक हो सकता था।

१९२४ का ह्वीटले अधिनियम — (Wheatley Act of 1924)

सन् १९२४ में आवास नीति में एक महत्त्वपूर्ण संशोधन करने का निश्चय किया गया। अब तक की व्यवस्था में निर्माण कार्यक्रम की गति काफी मन्द थी किराये अत्यधिक थे तथा मकानों का विक्रय-मूल्य श्रमिक वर्ग की सामर्थ्य से कहीं अधिक था। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि कार्य करने वालों के लिये बहुत कम मकानों का निर्माण हुआ था। इन दोषों के निवारण के लिये १९२४ का ह्वीटले अधिनियम

पारित हुआ। इसके अन्तर्गत निरन्तर १५ वर्ष का कार्यक्रम बनाया गया था। निर्माण व्यवसाय के मालिकों तथा कर्मचारियों की एक कमेटी के कथन के अनुसार यदि श्रमिक मिल जाते तो इतने समय में पचीस लाख मकान बन सकते थे। प्रत्येक वर्ष कितने आवासों का निर्माण होना है इसके लिये एक सूची बना ली गई थी और तीसरे वर्ष अगर यह देखा जाता था कि दो वर्षों में जितने मकान बने थे सूची के आंकड़ों के दो तिहाई से कम थे तब इस योजना को बन्द करना पड़ता था। दूसरी विशेषता यह थी कि अधिनियम के अन्तर्गत उपदान में २ वर्ष के लिये ६ पौंड के स्थान पर ४ वर्ष के लिये ८ पौंड के हिसाब से वृद्धि कर दी गई थी। साथ ही यह शर्त भी थी कि आवास किराये पर ही दिये जा सकते थे परन्तु बिना स्वास्थ्य मंत्री की अनुमति के बेचे नहीं जा सकते थे बिना आज्ञा के स्वयं किरायेदार उनको किराये पर नहीं दे सकते थे और स्थानीय अधिकारी भी उनको बेच नहीं सकते थे। और भी अनेक शर्तें थीं जैसे आवासों के निर्माण में श्रमिकों को उचित मजदूरी देनी चाहिये युद्ध से पूर्व के साधारण किरायों से अधिक किराये नहीं होने चाहिएं तथा किराये पर देने के लिये बड़े परिवारों को प्राथमिकता देनी चाहिये आदि। यदि ये शर्तें नहीं मानी जाती थी तो उपदान कम होकर ६ पौंड हो सकता था। यदि मकानों का निर्माण ग्रामीण क्षेत्रों में होता था तो सहायता बढ़ा दी जाती थी। सरकार ने इमारती सामान के मूल्यों को नियन्त्रित करने के लिये भी विधान पारित करने का प्रयत्न किया परन्तु इसमें उसे सफलता न मिली। १९३० तथा १९३६ में भी आवास अधिनियम पारित हुये जिनके अनुसार स्थानीय अधिकारी उन परिवारों को आवास देने के लिये बाध्य थे जिन्हें गन्दी बस्तियाँ नष्ट करके वहाँ से विस्थापित कर दिया गया था। सन् १९३६ का अधिनियम अन्य अधिनियमों को समायोजित करने वाला था।

इन विभिन्न योजनाओं से काफी आवासों का निर्माण हुआ और युद्ध के प्रारम्भ में ही आवास दशा काफी अंशों में सुधर गई थी। सन् १९३९ के युद्ध से पूर्व ब्रिटेन में लगभग एक करोड़ तीस लाख मकान थे। परन्तु युद्धकाल तथा उसके पश्चात् फिर मकानों का कुछ अभाव उत्पन्न हुआ और नई समस्याएँ सामने आईं, जो कि सफलतापूर्वक सुलझाई जा रही है।

इंग्लैंड में आवास सम्बन्धी वर्तमान दशा —

इंग्लैंड की औद्योगिक आवास समस्या साधारण जनता की आवास समस्या से ही सम्बन्धित है क्योंकि इंग्लैंड एक औद्योगिक देश है तथा बड़े शहरों की अधिकांश जनता औद्योगिक जनता ही है। औद्योगिक जनता स्थाई भी है, और भारत की तरह प्रवासी नहीं है। इसलिए इंग्लैंड की औद्योगिक आवास समस्या पर हम साधारण आवास समस्या के साथ ही विचार कर सकते हैं।

ब्रिटेन में १९३९ के युद्ध के पहले जो एक करोड़ तीस लाख मकान थे उनमें से लगभग पैंतालीस लाख मकान शत्रुओं द्वारा या तो पूर्णतः नष्ट कर दिये गये

अथवा उनको इतनी हानि पहुँची कि वे निवास के योग्य न रहे। कुछ हानि लगभग चालीस लाख अन्य मकानों को भी पहुँची। इसके अतिरिक्त युद्धकाल में नए आवासों का निर्माण पूर्णतया रुक गया था तथा श्रमिकों व इमारती सामान की भी कमी थी। इन सब बातों ने मिलकर इंग्लैण्ड में आवास का गम्भीर अभाव (Shortage) उत्पन्न कर दिया। युद्ध से पूर्व इंग्लैण्ड तथा वेल्स में तीन लाख छ्यालिस हजार मकान प्रति वर्ष बनने लग थे और स्काटलैण्ड में प्रति वर्ष छब्बीस हजार मकान बनते थे। इस हिसाब से यदि देखा जाए तो युद्धकाल में ब्रिटेन बीस लाख मकानों से वंचित रह गया, क्योंकि सितम्बर १९३९ तथा मई १९४५ के बीच जितने मकान बने वे दो लाख से अधिक न थे जिनमें से १६ हजार स्काटलैण्ड में थे। इस प्रकार युद्ध के पश्चात् एक निश्चित आवास नीति की आवश्यकता अनुभव की गई क्योंकि युद्ध के बाद पुनर्निर्माण योजनाओं में श्रमिकों और सामान की कमी थी और इमारती लकड़ी (शहतीर) की भी कमी थी क्योंकि इसको डालर देकर खरीदना पड़ता था।

अगस्त १९४५ में राष्ट्रीय पुनर्निर्माण आयोजना में आवास को प्रथम स्थान दिया गया तथा राष्ट्र के निर्माण साधनों का लगभग ६ प्रतिशत आवास व्यवस्था के लिए लगाया गया। युद्ध के पश्चात् सरकार का यही उद्देश्य रहा कि राष्ट्रीय निर्माण साधनों से जितना भी हो सके उत्तम आवास बनवाये जायें। सन् १९५१ से सरकार का यह लक्ष्य रहा है कि प्रति वर्ष कम से कम तीन लाख मकानों का वह निर्माण करे। सरकार की नीति मरम्मत तथा देखभाल पर कम और नये मकानों के निर्माण पर अधिक जोर देने की है। ऐसे श्रमिकों के मकानों की ओर वह विशेष ध्यान देती है जो खानों और कृषि में काम करते हैं और जिनका राष्ट्र की उत्पत्ति के प्रयत्नों में बड़ा हाथ है। सरकार स्थानीय अधिकारियों द्वारा भवन निर्माण कार्य को प्राथमिकता देती है। इसका अर्थ यह है कि स्थानीय अधिकारियों द्वारा निजी व्यक्तियों के मकान बनाने के लिए ठेका दिए जाने को सरकार उत्साहित करती है। निजी लोगों की अपेक्षा स्थानीय अधिकारियों को मकानों का निर्माण करने में अधिक उपयुक्त माना गया है क्योंकि स्थानीय अधिकारी किरायेदारों के लिए ऐसे मकान बनवा सकता है जिन्हें ऐसे किरायेदार भी ले सकें जो मकान खरीद नहीं सकते। इसके अतिरिक्त स्थानीय अधिकारी आवश्यकतानुसार किरायेदार भी छाँट सकता है। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् स्थानीय अधिकारियों ने मुख्यतः इस बात पर ध्यान दिया कि मकानों में अधिक भीड़ को कम किया जाए और उन परिवारों को मकान किराये पर दिये जाएँ जिनके पास अपना मकान नहीं है। निजी मकानों का निर्माण केवल स्थानीय अधिकारियों से लाइसेन्स लेकर ही हो सकता है। निजी मकानों का क्षेत्रफल १,००० वर्ग फीट से अधिक नहीं हो सकता है। निजी आवास के लाइसेन्स साधारणतः उन्हीं को मिलते हैं जो मकानों में स्वयं रहना चाहते हैं उन्हें नहीं मिलते जो किराये पर देने के लिए मकान बनाते हैं क्योंकि यह बात ध्यान में रखी जाती है कि मकान उन्हीं को मिलें जिन्हें वास्तव में मकान की आवश्यकता है।

परन्तु नवम्बर १९५४ में यह लाइसेन्स देने की प्रणाली समाप्त कर दी गई, ताकि मकान बनाने में निजी सम्पत्ति लगाने वालों को प्रोत्साहन मिले।

सन् १९५४ से गन्दी बस्तियों की सफाई का आन्दोलन भी प्रारम्भ हो गया है जो कि युद्ध काल में स्थगित हो गया था तथा युद्ध के पश्चात् भी नए आवासों पर ध्यान देने के कारण कुछ समय के लिए रुक गया था। स्थानीय अधिकारियों को गन्दी बस्तियों की सफाई के कार्यों की रूपरेखा व गति को निर्धारित करने के लिये कहा गया है तथा इस काम को जितना शीघ्र हो सके उतनी शीघ्रता से कार्यरूप में परिणत करने की भी आज्ञा दे दी गई है। इंग्लैण्ड व स्काटलैण्ड में १९५४ के आवास मरम्मत व किराये के अधिनियम (Housing Repairs and Rents Acts) पारित हुए जिनमें स्थानीय अधिकारियों को आवश्यकता पड़ने पर खराब आवासों पर अधिकार करने व उनको बन्द कर देने के अधिकार प्रदान किये गए हैं। सन् १९५५ से १९५८ तक १,३८,६२४ अयोग्य मकानों को इंग्लैण्ड तथा वेल्स में और ११ मकानों को स्काटलैण्ड में नष्ट कर दिया गया था नष्ट करने के लिये बन्द करवा दिया गया था। इंग्लैण्ड तथा वेल्स में सन् १९५५ में निवास के अयोग्य ८५ ० तथा स्काटलैण्ड में १ ५ आवासों का अनुमान लगाया गया था। ऐसे मकानों के लिये जो मनुष्यों के रहने योग्य नहीं थे नष्ट करने पर क्षतिपूर्ति भी नहीं मिलती थी केवल मुसीबत को कम करने के लिये कुछ सहायता मिल जाती थी।

सन् १९४५ तथा १९५९ के बीच ब्रिटेन में बने कुल नए मकानों की संख्या ३५ लाख थी। इसके अतिरिक्त लगभग १ ६ अस्थायी मकान भी बनाये गये थे। सब मिलाकर इस काल में नए मकान बना कर या अयोग्य मकानों की मरम्मत तथा रूपान्तर करने के पश्चात् ४५ लाख से अधिक परिवारों को फिर से बसाया गया। जो नए मकान बने उनमें से लगभग ¾ मकान स्थानीय अधिकारियों द्वारा बनाये गये थे।*

इंग्लैण्ड में आवासों का प्रशासन —

वेल्स तथा इंगलैण्ड में आवास तथा स्थानीय प्रशासन मंत्रालय (Ministry of Housing and Local Government) ही मुख्यतः आवास-नीति व आवास सिद्धान्तों की रचना के लिये व आवास कार्य-क्रम के निरीक्षण के लिए उत्तरदायी है। सन् १९५१ से मंत्रालय के उत्तरदायित्व कुछ अन्य विभागों में भी वितरीत कर दिये गये हैं। इस मंत्रालय को इमारती सामान आदि निर्माण-मंत्रालय (Ministry of Works) और सम्भरण मंत्रालय (Ministry of Supply) से मिलता है। निर्माण-मंत्रालय इमारती सामान का उत्पादन अधिकारी होता है और इसके कई कार्य होते हैं यह निर्माण कार्य के अनुसंधान करने आवास निर्माण उद्योग से सम्बन्ध स्थापित करने और लाईसेंस देने की पद्धति को चलाने के लिए भी उत्तरदायी होता है। इन

*Britain—An Official Hand-book, 1960

कार्यों के लिये यह स्थानीय अधिकारियों को अपने प्रतिनिधि के रूप में प्रयोग करता है। नगर तथा ग्राम नियोजन मंत्रालय (Ministry of Town and Country Planning) भी अलग से है जो मकानों के नियोजन को स्वीकृति देने के लिये उत्तरदायी है। यह आवासों के स्थान को चुनने में उनकी रूपरेखा निर्धारित करने में तथा उन सब प्रश्नों का जो भूमि के प्रयोग तथा समुदाय के नियोजित वितरण को प्रभावित करते हैं सहायता करता है। सन् १९४७ का एक नगर तथा ग्राम नियोजन अधिनियम (Town and Country Planning Act) भी है जो १९५३ तथा १९५४ में संशोधित किया गया। यह सारे देश में भूमि के उचित उपयोग के हेतु एक ढांचा या नमूना प्रस्तुत करता है। यह एक मौलिक अधिनियम है। १९४६ के नवीन नगर अधिनियम (New Towns Act) के अन्तर्गत जो १९५२, १९५३ तथा १९५५ में संशोधित हुआ सरकार को यह अधिकार दिया गया है कि जब भी जनता के लिए आवश्यक हो वह नए नगरों का निर्माण व विकास कर सकती है। जून १९५७ तक १५ नये नगरों का विकास किया जा रहा था जिन पर दो करोड़ पन्द्रह लाख पौंड व्यय करना स्वीकृत किया गया था। १९४९ के नेशनल पार्क एण्ड एक्सेस टू दि कन्ट्रीसाइड एक्ट (National Park and Access to the Countryside Act of 1949) में पार्कों को बनाने की भी व्यवस्था है। जून सन् १९५६ तक १० राष्ट्रीय पार्क स्थापित हो चुके थे। कृषि-मंत्रालय को यह निश्चित करना पड़ता है कि किस भूमि को कृषि के लिये रखना चाहिए और किसे आवास हेतु दे देना चाहिये। व्यापार बोर्ड उद्योग का वितरण अधिकारी है तथा श्रम व राष्ट्रीय सेवा मंत्रालय भवन निर्माण उद्योग व इसके गौण व्यवसायों के लिये श्रम की व्यवस्था करता है। युद्ध हानिपूरक आयोग (War Damage Commission) युद्ध में हुई हानि के लिए रुपया देने की व्यवस्था की देखभाल करता है। विभिन्न राजकीय विभागों तथा आवास निर्माण से सम्बन्धित स्थानीय अधिकारियों से अत्यन्त निकट का सम्पर्क रहता है। इस उद्देश्य के लिए आवास मंत्रालय अपने क्षेत्रीय कार्यालय और प्रधान आवास-अधिकारी रखता है। आवास नीति का नियन्त्रण तो आवास मंत्रालय करता है परन्तु उसको विभिन्न क्षेत्रों में कार्यान्वित करने का उत्तरदायित्व तथा सार्वजनिक पद्धति को अपनाने का उत्तरदायित्व स्थानीय अधिकारियों पर होता है। यह स्थानीय अधिकारी निम्नलिखित हैं :—काउन्सिल ऑफ काउन्टीज (Council of Counties) काउन्टी बॉरोज (County Boroughs) मेट्रोपोलिटन बॉरोज (Metropolitan Boroughs) अरबन डिस्ट्रिक्ट्स (Urban Districts) या रूरल डिस्ट्रिक्ट्स (Rural Districts)। इन स्थानीय अधिकारियों के आवास सम्बन्धी कार्य ये हैं कि वे इस बात का ध्यान रखें कि उनके क्षेत्रों में मकान के लिये कोई कठिनाई न हो और जो भी रहन के मकान हों वे सफाई, स्वास्थ्य, शोभा आदि की कुछ न्यूनतम शर्तों को पूरा करते हों।

आवासों के स्तर —

स्थानीय प्राधिकारी द्वितीय महायुद्ध से पहले के आवासों की अपेक्षा अब बड़े और अच्छे आवासों का निर्माण कर रहे हैं। कई केन्द्रीय विभागों ने स्थानीय प्राधिकारियों के मार्ग-दर्शन के लिये अनेक पुस्तकें प्रकाशित की हैं जिनमें विभिन्न प्रकार के आवासों के लिये स्थानों का स्तर ढांचा डिजाइन तथा सामान आदि को निश्चित किया गया है। साथ ही उनमें इस बात का भी विवरण है कि भूमि तथा धन की बचत करते हुये आवासों को नई समोचित रूपरेखा में रखकर किस प्रकार आकर्षक रूप दिया जा सकता है। डिजाइन निर्माण व आवास साधनों और सामानों पर काफी अनुसंधान हो चुका है तथा हो रहा है। मकानों के विभिन्न अंगों और मापों में समानता आ गई है और पुराने सामान की कमी को पूरा करने के लिये तथा कुशल कर्मचारियों के भार को हल्का करने के लिये नये सामान और नई पद्धतियों का निर्माण हुआ है।

इंग्लैंड में आवासों के हेतु वित्त व्यवस्था

जहाँ तक राजकीय सहायता का प्रश्न है सरकार १९४६ के आवास (वित्तीय तथा विविध उपबन्ध) अधिनियम [Housing (Financial and Miscellaneous Provisions) Act)] के अन्तर्गत कुछ उपदान देती है। इन उपदानों के कारण स्थानीय प्राधिकारी भवन निर्माण की ऊँची लागत होने पर भी उचित किरायों पर आवास प्रदान कर सकने योग्य हो जाते हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत ६० वर्षों के लिये २२ पौंड प्रति मकान प्रति वर्ष के हिसाब से एक प्रामाणिक उपदान प्रदान किया जाता है। सन् १९५६ के आवास उपदान अधिनियम (Housing Subsidies Act) में इस बात की व्यवस्था है कि अगर अधिक भीड़ को कम करने के लिये मकान बनाये जायें तो ऐसे मकानों के लिये उपदान की दर अधिक होगी (२४ पौंड प्रति आवास प्रति वर्ष)। विशेष प्रकार के आवासों के लिये विशेष उपदानों की व्यवस्था है उदाहरणतया कृषि जनसंख्या के लिये निर्धन क्षेत्रों के आवासों के लिये तथा तीन मंजिलों से अधिक के आवासों के लिये जिनमें लिफ्ट होती है। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्राधिकारियों को ऐसे मकानों के लिये जो कि स्वीकृत नवीन तरीकों से बनाये जाय इस हेतु पूंजी अनुदान दी जाती है कि उनमें जो अधिक व्यय हुआ है वह पूरा हो सके। सरकार भवन-निर्माण के साधनों पर भी नियन्त्रण रखती है जिससे उनका समुचित प्रयोग किया जा सके। इस्पात इमारती लकड़ी तथा अन्य दुर्लभ सामग्रियों के उपयोग के लिए आज्ञा-पत्र प्रदान किये जाते हैं। श्रमिकों की आवश्यकता के कारण ऐसे श्रमिकों को जो गृह-निर्माण का कार्य करते थे फौज में से जल्दी छुट्टी दिला दी गई थी। भवन-निर्माण कार्यों के अनुभवी श्रमिकों का एक रजिस्टर तैयार किया गया है तथा उनके लिए एक विशेष प्रशिक्षण योजना की भी व्यवस्था की गई है। सन् १९४९ में एक आवास अधिनियम (Housing Act) और

पारित हुआ जिसके अन्तर्गत स्थानीय प्राधिकारियों अथवा निजी मकान मालिकों को उनके आवासों को ठीक करने व वर्तमान निवासों में सुधार के लिये सरकार द्वारा वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। इस अधिनियम में स्थानीय प्राधिकारियों व अन्य निकायों द्वारा बनाये गये होस्टलों के लिये भी उपदानों की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त स्थानीय प्राधिकारियों निर्माण समितियों कुछ विशेष बीमा कम्पनियों व अन्य वित्त-संस्थाओं द्वारा लोगों को इस बात के लिये ऋण दिया जाता है कि वे अपने लिए कई वर्षों की किश्तों से मकान खरीद सकें। उपदान तथा सुधार के लिये अनुदान सम्बन्धी जो भी कानून हैं उनको १९५८ के एक अधिनियम द्वारा [Housing (Financial Provisions) Act] जिसका १९५९ में एक अन्य अधिनियम (House Purchase and Housing Act) द्वारा संशोधन भी हुआ है समायोजित कर दिया गया है।

सस्ते मकानों के लिए उठाए गए पग —

सरकार ने एक संक्षिप्त दो दायम-वर्गों वाले मकानों को बनाने का कार्यक्रम भी अपनाया हुआ है। मकानों के हिस्से कारखानों में बनाये जाते हैं तथा आवास बनाने के स्थान पर संगठित कर दिये जाते हैं। ऐसे मकान स्थायी आवासों से छोटे होते हैं तथा केवल १० वर्षों के लिये बनाये जाते हैं परन्तु कुछ आवास लम्बे समय के लिए भी उपयोगी होते हैं। ऐसे मकानों का किराया न बहुत अधिक है और न काफी कम तथा उनमें आधुनिक सुविधाएं भी प्रदान की गई हैं। इस योजना को मकानों की सहसा उत्पन्न होने वाली आवश्यकता की पूर्ति के लिये अपनाया गया था। कार्य-कुशल मजदूरों तथा पुरातन इमारती सामान के अभाव के कारण नवीन स्थायी मकानों के निर्माण के नये तरीके विकसित किये गये हैं जिनमें पूंजी तथा श्रम दोनों की बचत होती है। इनमें कुछ इस्पात के ढांचे के कुछ पहले बने हुए 'कंकरीट' के तथा कुछ लकड़ी के ढांचे के हैं। इसके अतिरिक्त एल्युमिनियम के बंगले भी बनाये गये हैं जो कि पूर्णतः पहले से ही बने हुए होते हैं तथा आवश्यकता के स्थान पर कुछ ही घण्टों में जोड़ दिए जा सकते हैं। एल्युमिनियम के बंगले बनाने का कार्यक्रम प्रारम्भ में तो केवल अस्थायी मकानों के लिए था परन्तु अब खानों और दूसरे औद्योगिक क्षेत्रों में मकानों की विशेष और अधिक आवश्यकता के कारण इनके निर्माण के कार्यक्रम को स्थायी मकानों के लिए भी लागू कर दिया गया है।

किरायों पर नियन्त्रण —

किरायों में अत्यधिक वृद्धि को रोकने के लिये कानून बनाये गये हैं। सर्वप्रथम किराया नियन्त्रण अधिनियम (Rent Restrictions Act) १९१५ में पारित हुआ। इसके पश्चात् १९२० से १९३९ तक अनेक किराया तथा बंधक ब्याज (नियन्त्रण) अधिनियम [Rent and Mortgage Interest (Restrictions) Act] बनाये गये जो सामान रहित मकानों में रहने वाले किरायेदारों को सुरक्षा प्रदान करते हैं।

इसके अन्तर्गत किरायों की सीमा निर्धारित कर दी गई है तथा जब तक किराया दिया जायेगा तब तक मकानों से किरायेदारों को निकाला नहीं जा सकता। इसी प्रकार का संरक्षण उन व्यक्तियों को भी दिया जाता है जो वेतन पर मकान खरीदते हैं। इसके अतिरिक्त इंग्लैण्ड तथा वेल्स में सामान सहित आवासों का किराया सन् १९४६ के सामान सहित आवास (किराया नियन्त्रण) अधिनियम [Furnished Houses (Rent Control) Act] द्वारा नियन्त्रित किया गया है। स्थानीय अधिकारियों अथवा किसी पक्ष की मांग पर सामान सहित मकानों के किरायों को निश्चित करने के लिये स्थानीय अधिकरणों (Local Tribunals) की नियुक्ति की गई है। दिसम्बर १९४९ के इमारती सामान तथा आवास अधिनियम ने एक और सुरक्षा भी प्रदान की थी जिसका तात्पर्य यह था कि चार वर्ष तक के लिये ऐसे मकानों का किराया और विक्रय मूल्य निर्धारित कर दिया जाय जो युद्ध काल में लाइसेन्स पद्धति के अन्तर्गत बने थे। १९४९ का एक और अधिनियम भी है जिसका नाम मालिक मकान व किरायेदार (किराया नियन्त्रण) अधिनियम है। इसके अन्तर्गत किसी भी ऐसे मकान को जिसका किराया निर्धारित है किराये पर उठाने के लिये पगड़ी लेना गैर-कानूनी है। १९५४ के मकान मरम्मत तथा किराया अधिनियम के अन्तर्गत मालिक-मकान कुछ शर्तों के अनुसार मरम्मत के लिये एक अधिकतम सीमा तक किराया बढ़ा सकते हैं। किराये में सन् १९५७ के किराया अधिनियम के अन्तर्गत फिर संशोधन हुआ है। साथ ही सरकार ने धीरे-धीरे किराया नियन्त्रण की पद्धति को समाप्त करने की नीति अपनाने की घोषणा की है क्योंकि यह पद्धति मकानों के सर्वश्रेष्ठ उपयोग के लिये सन्तोषजनक सिद्ध नहीं हुई है।

स्काटलैण्ड तथा आयरलैण्ड में आवास योजनायें

स्काटलैण्ड में आवास योजना राज्य-सचिव (Secretary of State) का कार्य है जो आवास नगर तथा ग्राम्य नियोजन का अपना उत्तरदायित्व स्काटलैण्ड के स्वास्थ्य विभाग द्वारा निभाता है। 'स्काटलैण्ड की विशेष आवास परिषद्' नाम की एक कानूनी संस्था भी स्थापित की गई है जो स्थानीय अधिकारियों की सहायता करने के हेतु बनाई गई है विशेषतः उन क्षेत्रों में जहाँ साधारण आवासों के निर्माण की सबसे अधिक आवश्यकता है। यह परिषद् एक सीमित देयता वाली कम्पनी है जिसकी कोई शेयर पूंजी नहीं है और इसमें पूर्णतया सरकारी निधि से धन दिया जाता है। यह राज्य सचिव के निर्देशों के अनुसार कार्य करती है। इस परिषद् ने सन् १९४५ से जून १९५५ तक दो लाख बीस हजार मकानों का निर्माण किया। इंग्लैण्ड की ही तरह १९४६ और १९५७ के दो अधिनियमों [Housing (Financial Provisions) Act of Scotland of June 1946 and the Housing and Town Development (Scotland) Act of 1957] के अन्तर्गत उपदान भी प्रदान किये जाते हैं। १९४३ व १९५४ के अधिनियमों के अन्तर्गत किरायों पर भी नियन्त्रण है। आवासों के स्तर इंग्लैण्ड और वेल्स की ही तरह हैं। उत्तरी आयरलैण्ड

में आवास तथा नियोजन के लिए स्वास्थ्य मन्त्रालय तथा स्थानीय शासन उत्तरदायी है। सन् १९४५ के आवास अधिनियम के अन्तर्गत 'उत्तरी आयरलैंड आवास ट्रस्ट' श्रमिकों के आवास बनाने वाली एक अतिरिक्त एजेन्सी के रूप में स्थापित हुआ है। यह स्काटलैंड की विशेष आवास परिषद् की भाँति एक संस्था है जिसको सरकार द्वारा वित्त दिया जाता है। इसको सरकार द्वारा स्वीकृत निर्माण योजनाओं के लिए भूमि लेने व बेचने के अधिकार हैं और यह सरकार द्वारा स्वीकृत योजनाओं के अन्तर्गत मकान बनाती है। इस ट्रस्ट (न्यास) ने १९४५ से जून १९५५ तक चौदह हजार मकानों का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त इक्कीस हजार स्थायी मकान स्थानीय अधिकारियों द्वारा बनाये गये हैं। आयरलैंड में उपदान भी प्रदान किये जाते हैं जिनको १९२६ के 'आवास उपदान आदेश' (Housing Subsidy Order) के अन्तर्गत संशोधित किया गया है।

उपसंहार

इंग्लैंड में मकानों की उपरोक्त व्याख्या से यह पूर्णतः स्पष्ट हो जाता है कि भोजन और वस्त्रों को छोड़कर उस देश में मकानों के निर्माण को जीवन की सबसे महत्त्वपूर्ण आवश्यकता माना जाता है और इस बात के लिए गम्भीर प्रयत्न हुए हैं तथा हो रहे हैं कि रहने के लिए अच्छे व अच्छे प्रकार के मकान बनाये जाय और वर्तमान मकानों की स्थिति में सुधार किया जाय। भारतवासियों को इंग्लैंड से इस सम्बन्ध में बहुत कुछ सीखना है। जैसा कि उस देश में पाया जाता है हमें भी इस बात को समझना है कि नगर नियोजन रहने के स्तरों का निर्धारण एक स्पष्ट आवास-नीति तथा एक सुयोजित कुशल आवास प्रबन्ध-व्यवस्था का बहुत महत्व है।

आवास व्यवस्था तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन —

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने आवासों की कमी, आवास-नीति, आवास स्तर तथा गन्दी बस्तियों की सफाई के प्रश्नों पर काफी महत्त्वपूर्ण अध्ययन प्रकाशित किये हैं। सन् १९२१ व १९२४ में इस संगठन ने श्रमिकों की आवास स्थिति को सुधारने के लिये सिफारिशें (Recommendations) कीं। सन् १९२८ तथा १९३९ में आवास समस्या पर पुनः विचार विमर्श हुआ। आवास प्रश्नों पर जो अध्ययन प्रकाशित हो चुके हैं वह निम्नलिखित देशों के हैं —स्वीडन और ब्रिटेन (१९४४) अमरीका (१९४२) योरोप (१९४७) आदि। सन् १९४२ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने 'आवास-नीति' के नाम से एक संक्षिप्त अध्ययन पुस्तिका भी प्रकाशित की तथा १९४८ में इसने एक 'आवास तथा रोजगार' नाम की रिपोर्ट प्रकाशित की। आवासों के विभिन्न पक्षों पर विचार हेतु एक 'अन्तर्राष्ट्रीय निर्माण सिविल इंजीनियरिंग तथा सार्वजनिक कार्य समिति' की भी स्थापना की गई है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन की कोयला-खानों की समिति ने भी आवास की समस्या पर अपने विचार प्रकट किये हैं। पूर्व प्रबन्धक एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन (जो नवम्बर १९४७ में दिल्ली में हुआ

था) तथा तीसरा एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन (जो टोकियो में १९५३ में हुआ) में भी आवास सम्बन्धी प्रस्ताव पारित किये गये थे।

इसके अतिरिक्त संयुक्त राष्ट्र महासभा और अन्तर्राष्ट्रीय संघ की विशिष्ट एजेन्सियों जैसे यूनेस्को (UNESCO) ने भी आवास समस्याओं तथा नगर नियोजन विषयों में अपनी रुचि दिखाई है और इसके सम्बन्ध में प्रस्ताव पारित किये हैं। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि आवास समस्याएं अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी विचारणीय रही हैं तथा अन्तर्राष्ट्रीय संस्थाएं आवास नगर तथा ग्राम नियोजन की विषम समस्याओं को सुलझाने के लिये कार्यशील हैं और रही हैं।

श्रम कल्याण कार्य

(Labour Welfare Activities)

श्रम कल्याण की परिभाषा और क्षेत्र —

श्रम कल्याण के कई अर्थ निकल सकते हैं और विभिन्न देशों में इसकी महत्ता भी समान नहीं है। रायल श्रम आयोग के मतानुसार औद्योगिक श्रमिकों से संबंधित 'कल्याण' शब्द ऐसा है जो आवश्यक रूप से लचीला रहेगा। इसका अर्थ भी एक देश से दूसरे देश में विभिन्न सामाजिक प्रथाओं, औद्योगीकरण के स्तर एवं श्रमिकों के शैक्षिक विकास के अनुसार भिन्न होता है।[1] अतएव 'कल्याण कार्य' की परिभाषा करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि यह आवश्यक रूप से लचीला शब्द है। श्री आर्थर जेम्स टोड ने यह ठीक ही कहा है कि "औद्योगिक कल्याण कार्य के ध्येय तथा विशेष शर्तों पर तीव्र मतभेद है।"[2] विभिन्न व्यक्तियों ने विभिन्न प्रकार से इसकी परिभाषायें दी हैं। एक परिभाषा के अनुसार यह कल्याण कार्य वह ऐच्छिक प्रयत्न है जो कि मालिकों के द्वारा अपनी फैक्ट्रियों में काम करने वाले कर्मचारियों की अवस्थाओं को सुधारने के लिये किया जाता है। एक अन्य परिभाषा के अनुसार 'कल्याण कार्य' वह कार्य है जिसके अन्तर्गत कर्मचारियों के लिए उनके वेतन के अतिरिक्त उन तमाम कार्यों को सम्मिलित कर लिया जाता है जो उनके आराम तथा मानसिक व सामाजिक उन्नति के लिये किये जाते हैं और जो न तो कानून के द्वारा अनिवार्य हैं और न ही उद्योग के लिये आवश्यक हैं। श्रमिकों के कल्याण कार्यों की विकास सम्बन्धी सुविधाओं को उपलब्ध करने के हेतु एक रिपोर्ट[3] में कहा गया है कि श्रम कल्याण का अर्थ ऐसी सुविधाओं व सेवाओं से लिया जा सकता है जो किसी संस्थान में या उसके समीप इस हेतु उपलब्ध की जायें कि उस संस्थान के कर्मचारी अपना कार्य उचित तथा स्वस्थ वातावरण में कर सकें और उनको अच्छे, स्वस्थ व उच्च आचरण को बनाये रखने से सम्बन्धित सुविधायें प्राप्त हो सकें। जून १९५६ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के १६ वें अधिवेशन में एक प्रस्ताव में इन सुविधाओं व सेवाओं का कुछ उल्लेख किया गया था। इसमें निम्नलिखित सुविधायें आती हैं (i) संस्था के समीप खाने-पीने की सुविधायें (ii) आराम एवं मनोरंजन की सुविधायें तथा

1 *Report of the Royal Commission on Labour* page 26

2. Quoted by the Labour Investigation Committee Report, page 345

3. Report II of the I. L. O., Asian Regional Conference page 3

(iii) कार्य के करने के स्थान से आने जाने के लिये यातायात की सुविधायें जबकि साधारण सार्वजनिक यातायात अपर्याप्त हो या उसके उपलब्ध करने में सुविधा न हो। भारत सरकार की श्रम अनुसंधान समिति ने कल्याण कार्य के क्षेत्र की सबसे उत्तम ढंग से व्याख्या की है। उसके अनुसार श्रम कल्याण कार्य के अन्तर्गत मालिकों सरकार अथवा अन्य संस्थाओं के द्वारा किये गए श्रमिकों के बौद्धिक शारीरिक नैतिक व आर्थिक विकास के कार्यों का समावेश होना चाहिये। यह कार्य ऐसी सुविधाओं के अतिरिक्त होने चाहियें जो श्रमिक संविदिक (Contractual) रूप से अपने लिए मालिकों से प्राप्त कर लेते हैं या जो विधान के अन्तर्गत उनको मिलती हैं। इस प्रकार इस परिभाषा के अन्तर्गत वे सब कार्य जैसे आवास व्यवस्था चिकित्सा एवं शिक्षा सम्बन्धी सुविधायें उत्तम भोजन (कैंटीन की सुविधाओं सहित) विश्राम करने एवं मनोरंजन की सुविधायें सहकारी समितियां नर्सरी एवं शिशुगृह, स्वास्थ्य प्रद स्थान सवेतन अवकाश सामाजिक बीमा बीमारी एवं मातृत्व हित लाभ योजनायें प्रौवीडेन्ट फंड एवं पैंशन आदि कार्य चाहे वह मालिकों द्वारा ऐच्छिक रूप से अकेले अथवा श्रमिकों के सहयोग से किये जाते हों आते हैं।* परन्तु इस प्रकार से 'कल्याण' शब्द बहुत व्यापक हो जाता है। ऊपर वर्णित अनेक समस्यायें सामाजिक बीमा योजना के अन्तर्गत आ जाती हैं और आवास सम्बन्धी जैसी समस्यायें स्वयं एक अलग समस्या हैं। इस अध्याय में हम उन कल्याणकारी कार्यों का विस्तार से अध्ययन करेंगे जिनका अन्य कहीं उल्लेख नहीं है।

श्रम कल्याण कार्यों का वर्गीकरण —

कल्याण सम्बन्धी कार्यों का क्षेत्र काफी व्यापक है। इन कार्यों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है—(१) वैधानिक (Statutory) (२) ऐच्छिक (Voluntary) (३) पारस्परिक (Mutual)। वैधानिक कल्याण कार्यों के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जिनको सरकार के अवपीड़क अधिकारों (Coercive Power) के कारण करना अनिवार्य होता है। श्रमिकों की सुरक्षा एवं उनके स्वास्थ्य का न्यूनतम स्तर स्थिर रखने के लिये सरकार कुछ कानून बनाती है जिनका मालिकों को पालन करना पड़ता है। यह कार्य भी यथार्थ कार्य के पहले प्रकार स्वास्थ्य एवं सफाई आदि से सम्बन्धित हो सकते हैं। श्रमिकों के कल्याण के लिये इस प्रकार का राज्य द्वारा हस्तक्षेप दिन प्रतिदिन सब देशों में वृद्धि पर है। ऐच्छिक कल्याण कार्य के अन्तर्गत वे कार्य आते हैं जो कि मालिक अपने श्रमिकों के लिये सम्पादित करते हैं। प्रत्यक्ष रूप से तो यह कार्य परोपकारी दृष्टिकोण से होता है परन्तु यदि हम इसकी गहराई में जायें तो पता चलेगा कि इस प्रकार के कार्यों पर धन व्यय करना उद्योग में विनियोग (Investment) माना जाना चाहिए क्योंकि कल्याण कार्य न केवल श्रमिकों की कार्य क्षमता में वृद्धि करते हैं अपितु संघर्ष

* *Report of the Labour Investigation Committee* page 345

उत्पन्न होने की सम्भावना को भी बहुत कम कर देते हैं। ऐच्छिक कल्याण कार्य वाई० एम० सी० ए० (Y. M. C. A.) जैसी कुछ सामाजिक संस्थाओं द्वारा भी किए जाते हैं। पारस्परिक कल्याण कार्य श्रमिकों द्वारा किए गये वह कार्य हैं जो कि वह परस्पर सहयोग से अपने कल्याण के लिए करते हैं। इस उद्देश्य से श्रमिक संघ श्रमिकों के कल्याण के लिए अनेक कार्य करते हैं।

कल्याण कार्यों का एक अन्य ढंग से भी दो शीर्षकों में वर्गीकरण किया जा सकता है। पहले को हम अन्तर्मुखी (Intra-mural) कल्याणकारी कार्य कह सकते हैं। इनमें समस्त वह सुविधाएँ व सेवाएँ सम्मिलित की जा सकती हैं जो कारखानों के भीतर श्रमिकों को प्राप्त होती हैं। उदाहरणतः औद्योगिक थकावट को दूर करने की व्यवस्था जैसे अल्प विराम (Rest pause) संगीत आदि सामान्य हित एवं स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यवस्था जैसे स्वच्छ दशाएँ सफाई पीने के पानी की व्यवस्था चिकित्सा की सुविधाएँ कैन्टीन व विश्राम स्थान आदि श्रमिकों की सुरक्षा से सम्बन्धित सुविधाएँ जैसे मशीनों से रक्षा करने के लिए उनको पर्याप्त रूप से ढकना तथा उनके चारों ओर रोक लगाना मशीनों का उचित ढंग से लगाना पर्याप्त प्रकाश प्राथमिक चिकित्सा सुविधाएँ आग बुझाने के यन्त्र आदि तथा ऐसे कार्य जिनसे भर्ती अनुशासन और रोजगार की दशाओं में सुधार हो आदि श्रमिक उसी कार्य में लग सके जिसके लिए वह सबसे अधिक उपयुक्त हो। दूसरे वर्गीकरण में बहिर्मुखी (Extra-mural) कल्याण कार्य आते हैं। इनमें वे सभी कल्याणकारी कार्य सम्मिलित किये जा सकते हैं जो कि श्रमिकों को कारखाने के बाहर उनके हित के लिए व सामान्य सुविधाएँ प्रदान करने के लिए किए जाते हैं जैसे अच्छे मकानों की व्यवस्था चिकित्सा की सुविधा मनोरंजन व खेल कूद की सुविधाएँ शिक्षा व्याख्यान वाद विवाद और समाज का प्रबन्ध आदि। इसके अतिरिक्त बीमारी बेरोजगारी वृद्धावस्था आदि में वित्तीय लाभ तथा मितव्ययता की आदत को प्रोत्साहन देने के लिए भी पग उठाए जा सकते हैं।

इस प्रकार श्रम कल्याण के क्षेत्र में वह सब कार्य आ जाते हैं जो कि श्रमिकों के स्वास्थ्य सुरक्षा सामान्य भलाई और औद्योगिक क्षमता को बढ़ाने के उद्देश्य से किये जाते हैं। इस प्रकार कल्याणकारी कार्यों की सूची कितनी भी व्यापक क्यों न हो फिर भी यह नहीं कहा जा सकता कि वह पूर्ण है।

कल्याणकारी कार्यों का उद्देश्य —

कल्याणकारी कार्यों का उद्देश्य आंशिक रूप से मानवीय आंशिक रूप से आर्थिक एवं आंशिक रूप से नागरिक है। मानवीय इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिकों को उन अनेक सुविधाओं को प्रदान करता है जिनकी वह स्वयं व्यवस्था नहीं कर सकते। आर्थिक इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिकों की कार्य क्षमता में वृद्धि करता है और झगड़े की सम्भावनाओं को कम कर देता है और श्रमिकों को सन्तुष्ट रखता है। नागरिक इस दृष्टिकोण से है कि यह श्रमिकों में उत्तरदायित्व और

उत्तरदायित्व की भावना जागृत कर देता है और उनका अच्छे नागरिक बनाने में सहयोग देता है।

भारत में श्रम-कल्याण कार्यों की आवश्यकता —

भारत में कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता का अनुमान श्रमिक वर्ग की दशाओं को देखने से ही लगाया जा सकता है। उनको अस्वच्छ वातावरण में अधिक घन्टों तक काम करना पड़ता है और फिर थकावट का दूर करने का कोई साधन भी नहीं है। ग्रामीण समाज से दूर वह नगरों के अपरिचित एवं दूषित वातावरण में पटक दिए जाते हैं जहाँ पर वह मद्यपान जुआ और दूसरी बुराइयों के शिकार हो जाते हैं और इस प्रकार उनका नैतिक पतन हो जाता है। भारतीय श्रमिक औद्योगिक रोजगार को एक आवश्यक बुराई समझता है और उससे जितनी शीघ्र सम्भव हो सके छुटकारा पाने को उत्सुक रहता है। अत: देश में उस समय तक स्थायी सन्तुष्ट एवं कुशल श्रमजीवी वर्ग उत्पन्न नहीं हो सकता जब तक उनके जीवन की दशाओं तथा औद्योगिक केन्द्रों में कार्य की दशाओं में सुधार नहीं किया जाता। इस प्रकार पश्चिमी देशों की अपेक्षा भारत में कल्याणकारी कार्यों की महत्ता अधिक है। शिक्षा खेल कूद मनोरंजन आदि कार्यों का निस्सन्देह श्रमिकों की मानसिक स्थिति पर बहुत लाभप्रद प्रभाव पड़ता है जो कि औद्योगिक शान्ति स्थापित करने में बहुत सहायक सिद्ध होता है। जब श्रमिक यह अनुभव करता है कि मालिक व सरकार उसके दिन प्रतिदिन के जीवन को हर प्रकार से सुखी बनाना चाहते हैं तो उसकी असंतोष और विरोध की प्रवृत्ति धीरे धीरे लुप्त हो जाती है। इसके अतिरिक्त मिलों में किया जाने वाला कल्याण कार्य मिल की नौकरी को आकर्षक बना देता है और एक स्थायी श्रमिक वर्ग उत्पन्न हो जाता है। अच्छे मकान कैन्टीन बीमारी लाभ और अन्य हितकारी कार्यों से श्रमिकों में निस्सन्देह यह भावना उत्पन्न हो जाती है कि औरों के समान उद्योग में उनका भी हाथ है और इस प्रकार श्रमिकावर्त और अनुपस्थिति काफी कम हो जाती है और श्रमिकों की कार्यकुशलता बढ़ जाती है। कल्याणकारी कार्यों के सामाजिक लाभ भी अति महत्वपूर्ण हैं। कैन्टीन की व्यवस्था से श्रमिकों को सस्ते दामों पर स्वच्छ एवं उत्तम भोजनादि वस्तुएँ प्राप्त हो सकती हैं जिससे उनके स्वास्थ्य में सुधार होगा। मनोरंजन के साधन श्रमिकों की कुप्रवृत्तियों को रोकते हैं। चिकित्सा प्रसूतिका एवं शिशु कल्याण की सुविधाएँ श्रमिकों एवं उनके परिवारों के स्वास्थ्य में उन्नति कर सामान्य मातृ एवं शिशु मृत्यु दर में कमी करती हैं। शिक्षा की सुविधाएँ उनकी मानसिक कुशलता एवं आर्थिक उत्पादन शक्ति में वृद्धि करती हैं।

इस प्रकार कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता के प्रश्न पर अब कोई वाद विवाद नहीं है और संसार के समस्त देशों में इसको औद्योगिक प्रबन्ध का एक अभिन्न (Integral) भाग के नाते मान्यता प्रदान की जा चुकी है और यह एक औद्योगिक प्रथा बन चुकी है। श्रम कल्याणकारी कार्य केवल परोपकारी तथा सहृदय

मालिकों का एक बोझ ही नहीं समझा जाता है। अब उद्योग एवं व्यापार संगठन तथा प्रबन्ध का कल्याणकार्य एक महत्त्वपूर्ण अंग बन गये हैं। इसका कारण यह है कि अब उद्योग में प्रत्येक समस्या को मानवीय दृष्टि से देखा जाता है। यह श्रमिकों की उत्पादन शक्तियों में वृद्धि कर देता है तथा उनमें आत्मविश्वास और चेतना की नई भावना प्रवाहित करता है। श्रम कल्याण कार्य श्रमिक और मालिक दोनों के ही हृदयों में वास्तविक परिवर्तन ला देता है और उनके दृष्टिकोणों में भी परिवर्तन आ जाता है और दोनों अपने को एक ही गाड़ी के दो पहिए समझने लगते हैं। भारतवर्ष में उत्पादन बढ़ाने और पंचवर्षीय आयोजनाओं के लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कल्याणकारी कार्यों की आवश्यकता बहुत अधिक है क्योंकि जब तक श्रमिक सब प्रकार से संतुष्ट एवं प्रसन्न न होंगे तब तक उत्पादन नहीं बढ़ सकता।

श्रम कल्याण कार्यों का उद्गम —

भारतवर्ष में श्रम कल्याण कार्यों का उद्गम (Origin) १९१४-१८ के महायुद्ध के समय में मिलता है। उस समय तक स्वयं श्रमिकों की अज्ञानता एवं अशिक्षा मालिकों के संकीर्ण दृष्टिकोण सरकार की लापरवाही तथा जनता की उदासीनता के कारण श्रम कल्याण कार्यों की ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया गया था। परन्तु प्रथम महायुद्ध के पश्चात् से यह काम धीरे धीरे और अधिकतर ऐच्छिक आधार पर विकसित हो रहा है। आर्थिक मन्दी के समय में भी इस ओर रुचि अधिक हो गई थी। सरकार और उद्योगपतियों दोनों ने ही सक्रिय रूप से कल्याण कार्यों में इसलिए रुचि ली कि उस समय देश में औद्योगिक अशान्ति और श्रमिकों में असन्तुष्टि बहुत फैल गई थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों से भी श्रम कल्याण व्यवस्था की ओर काफी जोर पड़ा। श्रम कल्याण कार्य की महत्ता द्वितीय विश्वयुद्ध में और भी अधिक बढ़ गई। श्रमिकों के स्वास्थ्य और कल्याण के लिए उचित पग उठाने से जो लाभ होते हैं उनको स्वीकार कर लिया गया। मालिकों ने श्रमिकों के लिये अधिक सुविधायें प्रदान करने के लिये सरकार के साथ सहयोग दिया। युद्ध के दिनों में कल्याण कार्यों में जो रुचि दिखाई गई थी, वह रुचि लड़ाई के बाद भी बनती रही। भारतवर्ष में यद्यपि कल्याण कार्यों का स्तर अन्य देशों की अपेक्षा बहुत नीचा है फिर भी यह कार्य महत्वपूर्ण हो गये हैं और आगे आने वाले वर्षों में इनमें उन्नति होना अवश्यम्भावी है क्योंकि भारत अब एक प्रजातन्त्र राज्य है तथा इसका उद्देश्य देश में समाजवादी ढाँचे के समाज का तथा कल्याणकारी राज्य को स्थापित करना है।

भारतीय सरकार द्वारा सम्पादित श्रम कल्याण कार्य —

द्वितीय महायुद्ध से पूर्व तक भारत सरकार ने श्रम कल्याण की ओर बहुत ही कम ध्यान दिया था। सन् १९२२ में बम्बई में एक अखिल भारतीय श्रम-कल्याण सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें कुछ महत्वपूर्ण एवं रुचिप्रद समस्याओं पर

विचार विनिमय किया गया था तथा समस्त कल्याण कार्यों को समन्वय करने का सुझाव दिया गया था। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के एक अभिसमय (Convention) के परिणामस्वरूप सन् १९२६ में कल्याण कार्यों की जाँच की गई तथा प्रान्तीय सरकारों को उन कार्यों से सम्बन्धित सूचनायें एकत्रित करने का आदेश दिया गया। इस प्रकार केन्द्रीय सरकार ने बहुत समय तक श्रम कल्याण कार्य के हेतु श्रम सम्मेलन बुलाने और सुझाव देने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया।

परन्तु द्वितीय महायुद्ध से उत्पन्न परिस्थितियों और आवश्यकताओं के कारण श्रम कल्याण से सम्बन्धित इस उदासीन नीति में परिवर्तन हुआ। युद्ध के समय में सरकार ने श्रमिकों को उत्साहित करने और उनकी उत्पादन शक्ति में वृद्धि करने के लिए, युद्ध उत्पादन में संलग्न उद्योगों तथा अपनी कारखानों आदि की फैक्ट्रियों में श्रम कल्याण योजनायें चालू की। यह गतिविधियाँ न केवल युद्ध के समय तक चालू रहीं अपितु बाद में भी उनका और अधिक विस्तार हुआ तथा कुछ निजी व्यवसायों में भी वे विस्तृत हो गईं। सन् १९४२ में श्री आर. एस. निम्बकर को केन्द्रीय सरकार ने श्रमकल्याण सलाहकार नियुक्त किया तथा उनके अधीन अनेक सहायक श्रम कल्याण सलाहकार तथा श्रमकल्याण अधिकारी नियुक्त किये। सन् १९४४ में कोयले की खानों में काम करने वाले श्रमिकों को चिकित्सा, मनोरंजन, शिक्षा और आवास व्यवस्था की सुविधा प्रदान करने के लिये कोयला खान श्रमकल्याण निधि का निर्माण किया गया। केन्द्रीय सरकार द्वारा नियन्त्रित सभी व्यवसायों में कैन्टीनें भी खोली गईं जिनमें भोजन और चाय दोनों की व्यवस्था की गई। फैक्टरी अधिनियम में संशोधन करके मालिकों के लिये यह अनिवार्य कर दिया गया कि जहाँ २५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ श्रमिकों के लिये कैन्टीन की व्यवस्था करनी होगी। सरकार ने कोयला खान कल्याण निधि की भाँति अभ्रक खान कल्याण निधि का भी निर्माण किया है। यह कोयला खान और अभ्रक खान कल्याण निधियाँ सन् १९४७ के कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम तथा सन् १९४६ के अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित की गई हैं जिनका विस्तृत विवेचन आगामी पृष्ठों में किया जायेगा। सरकार मैंगनीज खान के श्रमिकों के कल्याण के लिये भी इसी प्रकार के अधिनियम को पारित करने के विषय में विचार कर रही है। कुछ राज्यों में जैसे बम्बई तथा उत्तर-प्रदेश में श्रमिकों के कल्याण के लिये जो अधिनियम पारित हुये हैं उनका भी उल्लेख आगामी पृष्ठों में किया जायेगा। प्रथम पंचवर्षीय योजना में श्रम और श्रम कल्याण सम्बन्धी कार्यों के लिये ६·७४ करोड़ रुपयों की व्यवस्था की गई थी। द्वितीय योजना में इस व्यवस्था के लिये २९ करोड़ रुपये निश्चित किये गये थे। तृतीय पंचवर्षीय योजना में श्रम और श्रम कल्याण कार्यों के लिए ७१·०८ करोड़ रुपयों की व्यवस्था है।

कारखाना अधिनियमों में कल्याण सम्बन्धी उपबन्ध —

कारखाना अधिनियमों में जो समय-समय पर पारित होते रहे हैं प्रकाश संचालन मशीनों से बचाव की व्यवस्था तापक्रम पर नियन्त्रण सुरक्षा के साधन आदि का न्यूनतम स्तर निश्चित कर दिया गया है। सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम में कल्याण कार्यों के लिये एक अलग अध्याय बना दिया गया है जिसके अन्तर्गत मालिकों के लिए कुछ कल्याण कार्य करने अनिवार्य कर दिये गये हैं। उदाहरण स्वरूप कपड़े धोने की सुविधा प्राथमिक चिकित्सा कैन्टीन विश्राम स्थान शिशुगृह आदि। इनमें से अधिकतर तो सन् १९३४ के कारखाना अधिनियम में भी थे परन्तु इस १९४८ के अधिनियम में कल्याण सम्बन्धी दो नई धारायें जोड़ दी गई हैं। यह धारायें श्रमिकों के लिए बैठने की व्यवस्था (जिसके सम्बन्ध में राज्य सरकारों को नियम बनाने का अधिकार दिया गया है) तथा कारखानों में श्रमिकों को अपने कपड़े रखने और गीले कपड़े सुखाने के लिये व्यवस्था करने से सम्बन्धित है। अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को ऐसे नियम बनाने का अधिकार दिया गया है जिनसे इस बात की व्यवस्था हो सके कि कल्याण कार्यों के प्रबन्ध में हर कारखाने में प्रबन्धकों के साथ-साथ श्रमिकों के प्रतिनिधियों का भी सहयोग हो। एक अन्य धारा द्वारा इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि हर एक कारखाने में जिसमें ५०० या उससे अधिक श्रमिक काम करते हों एक कल्याण कार्य अधिकारी की नियुक्ति होनी चाहिए। राज्य सरकारों को इन अधिकारियों के कर्तव्य योग्यतायें और नौकरी की शर्तों आदि को निश्चित करने का अधिकार दिया गया है। इसी प्रकार के उपबन्ध सन् १९५२ के खान अधिनियम सन् १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम तथा १९२३ के (१९४६ में संशोधित) भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम में भी हैं।

श्रम कल्याण निधियाँ —

एक अन्य महत्वपूर्ण काम सरकार ने यह किया है कि राजकीय औद्योगिक संस्थानों में श्रम कल्याण निधियों की स्थापना की है। निजी संस्थानों में भी ऐसी निधियों के बनाने का प्रस्ताव है। केन्द्रीय राज्य संस्थानों में रेल और बन्दरगाहों को छोड़कर श्रम कल्याण निधि की प्रयोगात्मक रूप से स्थापना करने के सम्बन्ध में सरकार ने १९४६ में कुछ आदेश दिये। १९४८-४९ में लगभग ८ केन्द्रीय सरकारी औद्योगिक संस्थानों में श्रम कल्याण निधियाँ स्थापित हो गई थी जिनकी संख्या १९५०-५१ में २२१ तक हो गई। इन निधियों में १,४५,००० श्रमिकों का लाभ पहुँचाने के लिए लाख लाख रुपया जमा हो गया था। श्रमिकों के प्रतिनिधियों को भी इन निधियों के प्रबन्ध में सम्मिलित कर लिया गया है। इन निधियों में से श्रमिकों के लिए कमरे के भीतर खेले एवं मैदान में खेले जाने वाले खेलों वाचनालय पुस्तकालय मनोरंजन आदि के लिये धन व्यय किया जाता है अर्थात् ऐसी सुविधाओं पर जो

विशाखापत्तनम और कोचीन में सहकारी साख समितियां तथा कलकत्ते में एक कल्याण निधि है। अधिकांश बन्दरगाहों पर मनोरंजन की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं तथा कैन्टीनें प्रायः सहकारिता के आधार पर चलायी जाती हैं। कलकत्ता तथा बम्बई में श्रमिकों के बच्चों के लिए प्राइमरी स्कूल तथा मद्रास में दुर्घटनाग्रस्त श्रमिकों के लिए कल्याण निधि की व्यवस्था है। सरकार ने बम्बई तथा कलकत्ते में जहाज के कर्मचारियों के लिए भी कल्याण कार्य किये हैं तथा उनके लिए भी चिकित्सालय कैन्टीन व होस्टल्स की व्यवस्था है। उनके लिए एक त्रिदलीय राष्ट्रीय कल्याण बोर्ड की भी स्थापना की गई है। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग में भी प्राविडेन्ट फंड पेंशन तथा चिकित्सा की सुविधाएँ प्रदान की जाती हैं। डाक-तार विभाग ने दिसम्बर १९६० तक अपने कर्मचारियों के लिए १६१ सहकारी समितियां ३२० कैन्टीनें २०१ खाने के कमरे ३४ चाय क्लब १८ वारमेन्टीस २ ७ विश्राम कक्ष ५ मनकांश गृह ११ चिकित्सालय तथा लगभग ८२१ मनोरंजन क्लबों की व्यवस्था की है। तपेदिक से पीड़ित कर्मचारियों के लिए विभिन्न सनीटोरियम में १६७ पलंगों की व्यवस्था है। रेलवे कर्मचारियों के लिए भी उचित सामान सहित चिकित्सालयों स्कूलों सहकारी समितियों कैन्टीनों तथा खेलों की व्यवस्था है।

इस प्रकार से केन्द्रीय सरकार ने कल्याण कार्यों के लिए सक्रिय पग उठाये हैं। अगस्त १९५९ में 'मूली' स्थान पर एक प्रशिक्षण केन्द्र (Training Centre) खोला गया है। इस केन्द्र में कल्याण कार्यों के संगठन और चलाने के लिए प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रतिवर्ष १०० व्यक्तियों को प्रशिक्षण देने की योजना है। १९३७-३९ में जब लोकप्रिय मन्त्रिमण्डल बने थे तब से विशेषतया युद्ध के पश्चात् से राज्य सरकारों ने भी औद्योगिक श्रमिकों के लिए कल्याणकारी कार्य करने की नीति का अनुसरण किया है।*

बम्बई सरकार के कल्याण कार्य

बम्बई राज्य में सर्वप्रथम सन् १९३९ में कुछ आदर्श (Model) श्रम कल्याण केन्द्रों का आयोजन किया गया था और उनके लिए १ ५० ० रुपयों की धनराशि स्वीकृत की गई थी। सन् १९४४-४५ के लिए यह राशि २ ५ रुपए थी। युद्धोत्तर पुनः निर्माण कार्य हेतु प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में श्रम कल्याण के अन्तर्गत १ करोड़ रुपया निर्धारित किया गया था जो पाँच वर्षों के लिए था। सन् १९५३ में बम्बई सरकार ने 'श्रम कल्याण निधि अधिनियम' पारित किया और इसके अन्तर्गत स्थापित किए गए बम्बई श्रम कल्याण बोर्ड को कल्याण सम्बन्धी सभी कार्य हस्तान्तरित कर दिये गये। इस बोर्ड में १४ सदस्य होते हैं जिनमें मालिकों श्रमिकों स्वतन्त्र व्यक्तियों एवं महिलाओं का प्रतिनिधित्व होता है। इस कल्याण निधि में धन का संचय प्रयोग में न आये हुये जुर्माने ऐसी धनराशि जिसके लिये कोई दावेदार न हो दान तथा उधार ली हुई राशि आदि द्वारा होता है। कल्याण

---

* For details refer to the Indian Labour Year Books

निधि में एकत्रित की गई धनराशि का प्रयोग सामुदायिक और सामाजिक शिक्षा केन्द्रों, सामुदायिक आवश्यकताओं खेल-कूद की सुविधाओं मनोरंजन अवकाश गृहों महिलाओं व बेरोजगार व्यक्तियों कुटीर व सहायक उद्योगों तथा ऐसे कार्यों के लिये जो कि राज्य सरकार श्रमिकों के जीवन स्तर को बढ़ाने और उनकी अवस्था को सुधारने के लिये उचित समझती है किया जाता है। अप्रैल सन् १९५६ में अधिनियम में एक संशोधन द्वारा कल्याण बोर्ड के कुछ अधिकार कल्याण कमिश्नरों को प्रदान कर दिये गये हैं ताकि दिन प्रतिदिन के प्रशासन में कठिनाई न हो।

बोर्ड ५१ कल्याण केन्द्रों* का संचालन करता है जो सुविधाओं के अनुसार 'क' 'ख' 'ग' व 'घ' श्रेणियों में विभक्त किये गये हैं। 'क' श्रेणी के केन्द्र हवादार तथा विस्तृत भवनों में हैं। इनमें अखाड़े व्यायामशाला फव्वारे के पानी से नहाने का प्रबन्ध खेल-कूद के लिये मैदान तथा बच्चों के लिये खेलने के स्थान की व्यवस्था है। 'ख' श्रेणी के केन्द्रों में भी लगभग ऐसी ही सुविधायें हैं परन्तु वह छोटे पैमाने पर होती हैं। 'ग' श्रेणी के केन्द्र किराये के मकानों में स्थापित होते हैं और उनमें कमरे के भीतर खेले जाने वाले खेल तथा थोड़ी संख्या में बाहरी मनोरंजन की व्यवस्था होती है। 'घ' श्रेणी के केन्द्रों में केवल मैदान के खेलों की व्यवस्था होती है। कल्याण केन्द्रों के कार्य इस प्रकार हैं: दृश्य की सहायता से मनोरंजन जैसे सिनेमा, मैजिक लैन्टर्न आदि, शारीरिक शिक्षा की सुविधायें, शिक्षा सम्बन्धी क्रियाएँ, वयस्क शिक्षा, सुविधानुसार दूसरे व्यवसायों में प्रशिक्षण देकर रोजगार पाने में सहायता करना, कल्याण एवं मद्य-विरोधी प्रचार, शिशु-गृह एवं नर्सरी स्कूल, महिलाओं के लिये सिलाई-कढ़ाई की कक्षाएँ तथा स्वच्छ प्राथमिक चिकित्सा और स्वास्थ्य विज्ञान द्वारा शिक्षा आदि। श्रमिकों को चिकित्सा की सुविधा प्रदान करने के लिये बम्बई शहर में ५, अहमदाबाद में ३ तथा अदन में १ चिकित्सा सहायता केन्द्र है। प्रत्येक केन्द्र में एक रेडियो सेट की भी व्यवस्था है। अहमदाबाद में तकनीकी व्यवसायों में प्रशिक्षण प्रदान करने के हेतु उचित छात्र संख्या सहित एक इंजिनियरिंग कारखाने की भी स्थापना की गई है। बम्बई में श्रम कल्याण कर्मचारियों के प्रशिक्षण हेतु एक स्कूल की स्थापना भी की गई है। स्कूल में ६ महीने का दीर्घकालीन पाठ्यक्रम और ३ मास के अल्पकालीन पाठ्यक्रम की व्यवस्था है।

बम्बई राज्य ने एक और सराहनीय कार्य यह किया है कि उसने एक श्रम कल्याण संस्था के अन्तर्गत कुछ चुने हुए श्रमिकों को श्रमिक संघवाद एवं नागरिकता में प्रशिक्षण देने की व्यवस्था भी है। बम्बई अहमदाबाद और शोलापुर में ३ स्कूल

* महाराष्ट्र तथा गुजरात राज्य बनने के पश्चात अब दोनों राज्यों में श्रम-कल्याण बोर्ड स्थापित कर दिये गये हैं। ३८ कल्याण केन्द्र महाराष्ट्र में हैं तथा १३ गुजरात राज्य में। इनके अतिरिक्त ११ केन्द्र मैसूर क्षेत्र में, २ विदर्भ क्षेत्र में तथा ८ मराठवाड़ा क्षेत्र में हैं। १० चलते फिरते केन्द्र भी हैं।

प्रारम्भ हो चुके हैं। श्रमिकों की शिक्षा के लिए एक प्रारम्भिक योजना भी शुरू कर दी गई है। विभिन्न स्थानों पर गतिशील पुस्तकालयों वाचनालयों एवं सामाजिक शिक्षा केन्द्रों की भी व्यवस्था है। सरकार द्वारा बम्बई शहर में २ तथा अहमदाबाद शोलापुर और हुबली में एक-एक अवकाश गृह स्थापित करने का विचार किया जा रहा है जिससे कि श्रमिक अपनी छुट्टियाँ उचित वातावरण में व्यतीत कर सकें। इसके लिए एक विशिष्ट अधिकारी की नियुक्ति भी कर दी गई है। जो मनोरंजन कार्य अब तक बम्बई राज्य मद्य निषेध बोर्ड तथा सरकार के श्रम एवं शिक्षा विभागों द्वारा सम्पादित होते थे उनका श्रमकल्याण कार्यों के साथ समन्वय कर दिया गया है।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा श्रम कल्याण के कार्य —

सन् १९३७ में उत्तर प्रदेश सरकार ने श्रम-कमिश्नर के निरीक्षण में एक नवीन श्रम-विभाग की स्थापना की और कानपुर में चार श्रम कल्याण केन्द्र खोले। इसके पश्चात् केन्द्रों की संख्या में वृद्धि हुई तथा अब एक अनुभवी अधीक्षक (Superintendent) के निरीक्षण में एक पृथक कल्याण-विभाग स्थापित कर दिया गया है। महिलाओं व बालकों के हेतु कल्याण-कार्य करने के लिए एक महिला अधीक्षक की भी व्यवस्था है। इस समय (१९६०–६१ में) कुल ६१ श्रम कल्याण केन्द्र हैं जिनमें ६१ तो स्थायी केन्द्र हैं और दो चीनी उद्योग के श्रमिकों के लिए मौसमी केन्द्र हैं। स्थायी केन्द्र राज्य के प्रत्येक मुख्य औद्योगिक नगरों में इस प्रकार स्थापित हैं —कानपुर क्षेत्र—कानपुर (१६) फर्रुखाबाद (१) मेरठ क्षेत्र—मेरठ (१), मोदिनगर (१) गाजियाबाद (१) सहारनपुर (२) रुड़की (१) खतौली (मुजफ्फर नगर) (१) हरबंसवाला (देहरादून) (१) कोहरपुर (देहरादून) (१) बरेली क्षेत्र—बरेली (२) मुरादाबाद (१) रामपुर (१) काशीपुर (१) हल्द्वानी (१) इलाहाबाद क्षेत्र—इलाहाबाद (३) वाराणसी (२) साहुपुरी (वाराणसी) (१) मिर्जापुर (१) चुर्क (१) गोरखपुर क्षेत्र—गोरखपुर (२) पडरौना (१) रामकोला (देवरिया) (१) आगरा क्षेत्र—आगरा (३) फिरोजाबाद (२) अलीगढ़ (२) हाथरस (२) झांसी (१) शिकोहाबाद (१) मथुरा (१) लखनऊ क्षेत्र—लखनऊ (४) योग ६१। दो मौसमी केन्द्र बलरामपुर (गोंडा) तथा राजा-का-सहसपुर (मुरादाबाद) में हैं। देहरादून जिले के केन्द्र चाय बागान श्रमिकों के लिए हैं।

स्थायी केन्द्रों को उनके कार्यों के अनुसार तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। २४ केन्द्र "क" श्रेणी के १९ "ख" श्रेणी के तथा ७ "ग" श्रेणी के हैं। १६ केन्द्र तो कानपुर में ही हैं जिनमें ९ "क" श्रेणी के ६ "ख" श्रेणी के तथा १ "ग" श्रेणी का है। "क" श्रेणी के केन्द्रों में निम्न सुविधायें प्रदान की जाती हैं:— एक एलोपैथिक चिकित्सालय एक वाचनालय एवं पुस्तकालय सिलाई की कक्षायें कमरे के भीतर वाले एवं मैदान के खेल व्यायामशाला अखाड़े संगीत व रेडियो रंगारंग कार्यक्रम नाटक महिला व शिशु विभाग जिनमें शिशुओं के कल्याण के लिए और

महिलाओं के प्रसवकाल के लिए सुविधायें हैं आदि। मनोरंजन के लिए हारमोनियम तबला ढोलक आदि की भी व्यवस्था है। 'ख' श्रेणी के केन्द्रों में भी प्रायः ऐसी ही सुविधायें प्रदान की जाती हैं परन्तु इनमें एलोपैथिक के स्थान पर होम्योपैथिक चिकित्सा लय होते हैं। "ग" श्रेणी के केन्द्रों में केवल पुस्तकालय व वाचनालय कमरे के भीतर खेले एवं मैदान के खेल रेडियो तथा आयुर्वेदिक अथवा यूनानी चिकित्सालय की व्यवस्था होती है। चार केन्द्रों में लोकप्रिय चलचित्रों को मुफ्त दिखाया जाता है तथा संगीत और नाटक के क्लबों की भी व्यवस्था है। तीन केन्द्रों में श्रमिकों के बच्चों के लिये रात्रि पाठशालायें खोली गई हैं तथा १० केन्द्रों में वयस्क शिक्षा कक्षाएं हैं। कुछ केन्द्रों में कर्मचारियों के बालकों के लिये मुफ्त जलपान भी है। रोगी तथा अर्धपोषित शिशुओं को निःशुल्क दूध के वितरण की भी व्यवस्था है तथा श्रमिकों के बच्चों व गर्भवती स्त्रियों के स्वास्थ्य की देखभाल के लिये नर्सें और दाइयाँ भी नियुक्त की गई हैं। पहले दो सरकारी सहायता प्राप्त केन्द्र भी थे जो मोतीलाल स्मारक समिति द्वारा चलाए जाते थे परन्तु सरकार ने इन्हें अब अपने हाथों में ले लिया है। मीमो ग्रेंज सक्की में भी एक सरकारी सहायता प्राप्त केन्द्र है। श्रमिक वर्ग की स्त्रियों को आर्थिक सहायता देने के हेतु विभिन्न केन्द्रों में चरखा कातना भी सिखाया जाता है। कल्याण कार्यों में श्रमिक व्यक्तिगत रूप से रुचि ले सकें इस उद्देश्य से स्काउटिंग की व्यवस्था भी की गई है। कवि सम्मेलन कैम्पफायर व्यायाम प्रदर्शन तथा कुश्तियों आदि के मैच भी समय-समय पर आयोजित किये जाते हैं। कानपुर में एक क्षय निवारण चिकित्सालय भी खोला गया है। श्रम कल्याण विभाग में विदेशों से शिक्षा प्राप्त एक श्रम अधिकारी भी नियुक्त है। परन्तु यदि देखा जाय तो वर्तमान प्रबन्धकारी कर्मचारी पूर्णतः योग्य नहीं हैं तथा उनका वेतन भी कम है। मौसमी श्रम कल्याण केन्द्रों में चीनी के कारखानों में काम करने वाले कर्मचारियों के लिये केवल कमरे के भीतर वाले एवं मैदान के खेल वाचनालय रेडियो हारमोनियम तथा तबला जैसी सुविधाओं की व्यवस्था है। यह केन्द्र नवम्बर से मार्च तक खुलते हैं।

सन् १९३७ में कल्याण कार्यों के लिए राज्य के बजट में केवल १०,००० रुपयों की व्यवस्था की गई थी जो १९४६ में बढ़कर लगभग ढाई लाख व्यय हो गई। इस समय विभिन्न केन्द्रों में कल्याण कार्यों पर प्रतिवर्ष लगभग १६ से २० लाख रुपये व्यय किए जाते हैं। १९६०-६१ वर्ष के लिये श्रम कल्याण कार्यों के हेतु बजट में १८,००,१०० रुपयों की व्यवस्था थी। तृतीय पंचवर्षीय योजना काल में ११ 'क' व 'ग' श्रेणी के केन्द्र खोलने का कार्यक्रम है तथा ६ केन्द्र मालिकों श्रमिकों अथवा श्रमिक संघों के सहयोग से खोले जायेंगे।

सरकार ने १९४६ में 'उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारियों के नियम' भी बनाये थे जिनमें १९४८ के कारखाना अधिनियम में दिये गये कल्याण कार्य सम्बन्धी उपबन्ध सम्मिलित कर लिये गये थे। इन नियमों को हटा कर अब १९५५ के 'उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारियों के नियमों' को लागू कर दिया गया

है। इन नियमों के अनुसार उन तमाम कारखानों में जिनमें ५०० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं एक श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति करना आवश्यक है तथा जिन कारखानों में २५०० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं उनमें एक अतिरिक्त श्रम कल्याण अधिकारी की भी नियुक्ति आवश्यक है। इन नियमों में श्रम कल्याण अधिकारी की योग्यता वेतन नौकरी की शर्तें तथा उसके कार्य आदि का भी उल्लेख है। (देखिये परिशिष्ट 'च')। सरकार को श्रम कल्याण कार्य की व्यवस्था के हेतु सलाह देने के लिए श्रम कल्याण सलाहकार समितियाँ भी हैं। एसी एक समिति तो सम्पूर्ण राज्य के लिए है तथा १४ विभिन्न जिलों के लिये हैं। अगस्त १९५६ में उत्तर प्रदेश श्रम कल्याण निधि अधिनियम भी पारित किया गया। इसके अन्तर्गत ऐसी मजदूरी बोनस राशि व अवकाश प्राप्ति का धन जो मजदूरों को नहीं दिया जा सका है तथा जो मालिकों के पास बिना किसी उपयोग के पड़ा है तथा मजदूरों से ली गई जुर्माने की तमाम राशि एक निधि में संचित की जाती है। यह धन ऐसे श्रम कल्याण कार्यों में व्यय किया जाता है जो मालिकों द्वारा कानून के अन्तर्गत दी हुई सुविधाओं के अतिरिक्त हो। इस निधि का प्रबन्ध एक बोर्ड द्वारा होता है जिसमें एक अध्यक्ष तथा मालिक और कर्मचारियों के प्रतिनिधि होते हैं।

कल्याण कार्यों के प्रशासन के लिये श्रम विभाग में एक कल्याण प्रभाग है जो अतिरिक्त श्रमायुक्त (कल्याण) के अधीन है। यह प्रभाग राज्य के श्रम कल्याण केन्द्रों के माध्यम से श्रम कल्याण कार्य करने के लिये उत्तरदायी है। इस समय कानपुर, आगरा बरेली इलाहाबाद तथा मेरठ में से प्रत्येक में एक एक प्रादेशिक कार्यालय है तथा कानपुर में एक कल्याण अधिकारी तथा अन्य क्षेत्रों में एक एक सहायक कल्याण अधिकारी है। श्रम विभाग द्वारा कुछ निजी संस्थाओं को श्रम कल्याण कार्यों के लिये अनुदान भी दिया जाता है परन्तु इस अनुदान की राशि बहुत कम है। १९६० में श्री गोविन्द सहाय एम. एल. ए. की अध्यक्षता में श्रम कल्याण केन्द्रों द्वारा किये गए कार्यों का मूल्यांकन करने तथा अधिकाधिक सुविधायें उपलब्ध कराने से सम्बन्धित सुझाव देने के लिए एक सब-कमेटी बनाई गई थी परन्तु इसकी रिपोर्ट के बारे में कुछ ज्ञात नहीं हुआ है।

उत्तर प्रदेश में चीनी-कारखाना के कर्मचारियों के लिए कल्याण कार्य —

उत्तर प्रदेश सरकार ने चीनी मिल मजदूरों को सुविधायें प्रदान करने के लिये भी कदम उठाये हैं। जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है कई कल्याण केन्द्र ऐसे स्थानों पर हैं जहाँ चीनी मिलें हैं। "उत्तर प्रदेश चीनी एवं चालक मद्यसार उद्योग श्रम कल्याण तथा विकास निधि" (U. P. Sugar and Power Alcohol Industries Labour Welfare and Development Fund) की भी स्थापना की गई है। इस समय इस निधि में ४८ लाख रुपये से भी अधिक की राशि है। इसको तीन विभागों में बाटा गया है —आवास सामान्य कल्याण तथा विकास।

इस निधि में से चीनी व शासक मद्यसार उद्योग में लगे हुए कर्मचारियों के कल्याण हेतु धन व्यय किया जाता है। शीरे की बिक्री पर चीनी मिलों को केवल साढ़े चार आने प्रति मन के हिसाब से ही मूल्य मिलता है। खुली बिक्री द्वारा इससे अधिक जो कुछ प्राप्त होता है उसे इस निधि में जमा होता है। इस प्रकार इस निधि का निर्माण शीरे की बिक्री के लाभ से होता है जो प्रत्येक फैक्ट्री द्वारा कानूनन निधि में जमा किया जाता है। आवासों के बारे में राज्य की ६५ मिलों में लगभग १ ५०० क्वार्टरों के निर्माण की योजना है। चीनी के ६३ कारखाने इस समय इस योजना में भाग ले रहे हैं। एक आवास बोर्ड भी स्थापित कर दिया गया है। इस निधि की राशि में से ९८ प्रतिशत आवास के लिये और केवल २ प्रतिशत सामान्य कल्याण तथा विकास के लिये है।* १९६० तक निधि की कुल जमा राशि ४८ ९८ ५०० रुपए थी। इस धनराशि में से ४५,३० ६६६ रु० आवास के लिए ३ १८,८४६ रुपए सामान्य कल्याण के लिये तथा ४८ ९८५ रु विकास के लिये निर्धारित किये गये हैं। सामान्य कल्याणकारी कार्य निम्नलिखित हैं :— सफाई व स्वास्थ्य में उन्नति, बीमारी की रोकथाम चिकित्सा व मातृत्व हित सुविधाओं में उन्नति व सुधार, औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान के ज्ञान को बढ़ावा देना, जलवितरण व धोने की सुविधाओं की व्यवस्था, पुस्तकालय तथा प्रचार द्वारा शिक्षा का विकास, सामाजिक दशाओं व रहन सहन के स्तर में सुधार, मनोरंजन की सुविधाएं और काम पर आने तथा वहाँ से आने के लिये यातायात की व्यवस्था आदि। विकास कार्य निम्नलिखित हैं — तकनीकी शिक्षा तथा चीनी व मद्यसार और उससे बनने वाली अन्य वस्तुओं के बनाने का प्रशिक्षण जिसमें गन्ना पैदा करना और उसके गौण उत्पादनों का उपयोग करना भी सम्मिलित है। इसके अतिरिक्त इसमें गन्ना उत्पादन के लिये सब प्रकार के अन्वेषण करने की सुविधाएं तथा सड़कें बनाने व सिंचाई की सुविधायें भी सम्मिलित हैं। इस समय तो निधि का काम अधिकतर फैक्ट्री कर्मचारियों के लिये मकान निर्माण करना ही है। सामान्य कल्याण निधि में से अभी तक कुछ धनराशि मनस्वाद गृहों के निर्माण तथा शिक्षा चिकित्सालयों में दोनों मिलों के श्रमिकों के लिए पलंग सुरक्षित करने पर व्यय की गई है।

पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा श्रम-कल्याण कार्य :—

सन् १९३९-४० तक बंगाल में सरकार ने श्रमिकों के लाभ के लिये केवल निजी संस्थाओं को ही सहायता दी थी। सन् १९४० में सरकार द्वारा श्रम कल्याण केन्द्रों की स्थापना की गई जो १९४४-४५ में ४१ तक पहुंच गई। परन्तु देश के विभाजन के पश्चात् सारी व्यवस्था को फिर से संगठित करना पड़ा और इस समय पश्चिमी बंगाल सरकार के अधीन राज्य के विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों में ११ श्रम कल्याण केन्द्र हैं। इन केन्द्रों में किये जाने वाले कल्याण कार्य निम्नलिखित हैं—

---

*पृष्ठ २१९-४० भी देखिये।

प्रचार पुस्तकालय रेडियो खेल चिकित्सा के प्रबन्ध कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल नाटक का प्रबन्ध संगीत सभाएँ कुश्ती सिनेमा आदि। बच्चों व श्रमिकों को प्रारम्भिक शिक्षा देने और कर्मचारियों को श्रमिक संघवाद तथा श्रम समस्याओं के बारे में शिक्षा देने की भी व्यवस्था है। प्रत्येक केन्द्र एक श्रम कल्याण कर्मचारी के अधीन होता है। इस कर्मचारी को एक श्रम कल्याण सहायक तथा एक महिला श्रम कल्याण कर्मचारी की सहायता प्राप्त होती है। दार्जिलिंग के चाय बागान क्षेत्रों में महिला श्रमिकों की दशाओं के निरीक्षण के लिए तथा उन्हें स्वास्थ्य सफाई और बच्चों की देख रेख की शिक्षा देने के लिये तीन महिला कर्मचारियों की नियुक्ति की गई है। एक चाय क्षेत्र में एक हस्पताल स्थापित किया गया है। पश्चिमी बंगाल के बागान के क्षेत्रों में स्थापित केन्द्रों की संख्या १३ है। प्रत्येक केन्द्र में चिकित्सालय भी है जहाँ मुफ्त चिकित्सा सहायता उपलब्ध है। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में एक आदर्श श्रम-कल्याण केन्द्र अवकाश गृह आदि खोलने का कार्य क्रम है।

अन्य राज्यों के श्रम कल्याण कार्य —

बिहार सरकार ने विभिन्न क्षेत्रों में १८ कल्याण केन्द्र खोले हैं तथा एक केन्द्र पलामू चाय बागान के लिये है। प्रत्येक में एक श्रम कल्याण अधिकारी की नियुक्ति की गई है। सारे राज्य की महिला श्रमिकों की देख रेख के लिये पटना में एक महिला श्रम कल्याण अधिकारी की भी नियुक्ति हुई है। ये केन्द्र श्रमिकों के लिये मनोरंजन तथा शिक्षा सम्बन्धी कार्य करते हैं। सरकार ने श्रमिकों को समाज कल्याण में प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिये वृत्तियाँ भी प्रदान की हैं। श्रमिकों की अनेक बस्तियों में कल्याण समितियाँ स्थापित की गई हैं जो जुए और शराब के विरुद्ध प्रचार करती हैं तथा सफाई के लिये भी कार्य करती हैं। किशन गंज रांची और पैलामू के चाय के बागान के लिये तीन कल्याण केन्द्र हैं। बिहार में ११ ऐच्छिक रूप से बनाये गये कल्याण केन्द्र हैं जिन्हें सरकार ने १०० रुपये का अनुदान दिया है। यह राशि वस्तुओं के रूप में दी जायेगी। सरकार द्वारा अधिक श्रमिक कल्याण केन्द्र खोलने की तथा विभिन्न केन्द्रों के कार्यों को विस्तृत करने की योजना है। मध्य प्रदेश में सरकार ने सूती वस्त्र मिलों द्वारा किये जाने वाले श्रम कल्याण कार्यों की जाँच के लिये सितम्बर १९४८ में एक श्रम-कल्याण जाँच समिति की नियुक्ति की थी तथा राज्य की पंचवर्षीय आयोजना में सम्मिलित करने के लिये एक श्रम-कल्याण योजना भी तैयार की गई थी। श्रमिक संघों द्वारा १५ श्रम-कल्याण केन्द्र चलाये जा रहे हैं जिन्हें सरकार द्वारा प्रतिवर्ष अनुदान मिलता है। सरकार ने भी विभिन्न औद्योगिक क्षेत्रों में ८ कल्याण केन्द्र खोले हैं। वे निम्नलिखित हैं दो नागपुर में एक-एक अकोला जबलपुर, रायगढ़ राजनन्द गाँव तथा बुरहानपुर में हैं तथा दो अहुगढ़ बीच केन्द्र नागपुर में हैं। प्रत्येक केन्द्र में रेडियो कमरे के भीतर तथा मैदान के खेलों का सामान पुस्तकालय आदि की व्यवस्था है। भिलाई के इस्पात के कारखाने के श्रमिकों के लिये एक कल्याण समिति बनाई गई है। इन्दौर,

ग्वालियर, उज्जैन तथा रतलाम में स्वास्थ्य केन्द्र खोले गये हैं। इन्दौर में एक श्रमिक शिक्षा केन्द्र भी है। मद्रास सरकार ने कोयमुतूर में तीन कल्याण केन्द्रों की स्थापना करने की योजना बनाई है तथा नीलगिरि में बागान के श्रमिकों के लिये एक श्रम कल्याण अधिकारी की भी नियुक्ति की है। कुन्नूर में टोकरी बनाने और दर्जी के काम सिखाने के हेतु दो प्रशिक्षण केन्द्र हैं। पंजाब सरकार ने १९६० तक २१ श्रम कल्याण केन्द्र खोले हैं जिनमें कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की तथा एक पुस्तकालय शिक्षा मनोरंजन की सुविधाएँ एवं सिलाई की कक्षाओं की व्यवस्था की गई है। पाथनपुर में भी बागान के श्रमिकों के लिये एक केन्द्र है।

मैसूर सरकार ने त्रिदलीय आधार पर एक श्रम कल्याण बोर्ड नियुक्त किया है इसका अध्यक्ष श्रम कमिश्नर होता है। इसका कार्य सरकार को श्रम कल्याण और श्रम विधान से सम्बन्धित मामलों में सलाह देना है। १९६० में १४ श्रम-कल्याण केन्द्र निम्न प्रकार थे — ६ बंगलौर में १ मललीर में ४ धारवार में १ मैसूर में तथा दो गुलबर्ग में। इन केन्द्रों में वाचनालय पुस्तकालय कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल रेडियो आदि की सुविधायें हैं। एक श्रम अन्वेषण संस्था स्थापित करने का विचार है। केन्द्रीय चाय बोर्ड ने कोप्पामाला बागान में एक केन्द्र खोलने के लिये धन दिया है। त्रिवांकुर कोचीन में श्रम विभाग द्वारा तीन कल्याण केन्द्रों का संगठन किया गया था परन्तु मार्च १९५५ में श्रमिकों में उत्साह न होने के कारण वे समाप्त कर दिये गये। केरल में अब कई संस्थाओं ने बच्चों के लिये स्कूल तथा मनोरंजन केन्द्र खोले हैं। राजस्थान सरकार ने मई १९५० में श्रम-कल्याण कार्यों के लिये एक श्रम बोर्ड का निर्माण किया था और कल्याण कार्य के लिये दो लाख दस हजार रुपए प्रदान किये थे। बोर्ड द्वारा १९६० तक २४ श्रम-कल्याण केन्द्रों की स्थापना की जा चुकी है। हैदराबाद सरकार ने श्रमिकों व उनके बच्चों के लिये कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की सुविधाएँ प्रदान करने के लिये दो कल्याण केन्द्र कोठागोडियम में तथा एक आज़माबाद में आरम्भ किये थे। १९५६ में एक केन्द्र बादमीर और एक आलमा में खोला गया। राजकीय श्रम विभाग श्रम संघों के कार्यकर्त्ताओं के प्रशिक्षण के लिये कक्षाएँ भी चलाता है। आसाम में चाय बागान श्रमिकों के लिये कुल २० कल्याण केन्द्र सरकार द्वारा समाज तथा संस्थाओं की सहायता से चलाये जाते हैं और इनमें चाय बोर्ड भी अंशदान देता है। इन केन्द्रों में से पाँच कल्याण केन्द्र पुरुषों के लिये तीन स्त्रियों के लिये तथा नौ केन्द्र चाय बागान के भूतपूर्व श्रमिकों के लिये हैं। ३ श्रम-कल्याण प्रशिक्षण केन्द्र भी खोले गये हैं। राज्य में श्रम-कल्याण कार्यों के लिये प्रथम आयोजना में २ लाख रुपये की तथा द्वितीय आयोजना में चालीस लाख रुपये की व्यवस्था थी। उड़ीसा में ११ ऐच्छिक श्रमिक कल्याण केन्द्र कार्य कर रहे हैं जिन्हें सरकार आर्थिक सहायता दे रही है। सरकार द्वारा भी ३ केन्द्र खोले जा चुके हैं। देहली सरकार ने राज्य में आठ कल्याण केन्द्र खोले हैं। आन्ध्र में १० कल्याण केन्द्र चालू हैं।

सरकार द्वारा किए गए कल्याण कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन —

इस प्रकार केन्द्रीय तथा विभिन्न राज्यों की सरकारें श्रम-कल्याण कार्यों में सक्रिय रूप से भाग ले रही हैं परन्तु अब भी श्रम कल्याण के सम्बन्ध में बहुत कुछ करने को बाकी है। देश में श्रमिकों की संख्या तथा औद्योगिक विकास व विस्तार को देखते हुये प्रत्येक राज्य में कल्याण केन्द्रों की संख्या अत्यधिक कम है। कल्याण केन्द्रों पर जो धन व्यय किया जाता है वह देखने में अवश्य अधिक मालूम देता है किन्तु यदि उस धन का हम विश्लेषण करें तो मालूम होता है कि उसमें से प्रति श्रमिक पर औसतन कुछ पैसे ही व्यय हो पाते हैं। शिक्षा के क्षेत्र में तथा बच्चों व मातृत्व हित कल्याण केन्द्रों के लिये अधिक प्रयत्न करने की आवश्यकता है। वर्तमान समय में महिला डाक्टरों का अत्यधिक अभाव है। महिला श्रमिकों को कपड़े की वस्तुएँ, खिलौने बटन तथा दूसरी इसी तरह की प्रतिदिन काम में आने वाले वस्तुओं को बनाने का प्रशिक्षण दिया जा सकता है तथा शहर में एक दुकान भी खोली जा सकती है जहाँ कल्याण केन्द्रों में निर्मित वस्तुओं का विक्रय किया जा सके। महिला विभाग के कामों को और विस्तृत करना आवश्यक है, तथा और अधिक सिलाई मशीनों की व्यवस्था भी करनी चाहिये। महिला श्रमिक इन कल्याण केन्द्रों में कार्य करके अपने परिवार के लिये अतिरिक्त आय पैदा कर सकती हैं। प्रत्येक केन्द्र में श्रमिक संघवाद की भी शिक्षा देनी चाहिये। श्रमिकों के बालकों की शिक्षा पर अधिक ध्यान देना आवश्यक है। यह बालक अधिकतर मारे मारे फिरते हैं तथा इनमें अनेक बुरी आदतें पड़ जाती हैं। कल्याण केन्द्रों में बालकों के लिये मनोरंजन सुविधाएँ भी अधिक होनी चाहिएँ। कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की सुविधाएँ भी अधिक हो सकती हैं। विभिन्न खेलों की नियमित टीमें संगठित की जा सकती हैं तथा मैचों का भी प्रबन्ध हो सकता है। वार्षिक या अर्द्धवार्षिक खेलकूद और प्रतियोगिताएँ करके जीतने वाले प्रतियोगियों को पारितोषिक भी दिये जाने चाहियें। चिकित्सा सुविधाओं का कार्य कर्मचारी राज्य बीमा निगम के लिये छोड़ देना चाहिये तथा कल्याण केन्द्रों में अन्य कल्याण कार्यों को विस्तृत करना चाहिये। इन केन्द्रों को चलाने में सबसे बड़ा दोष यह है कि इनके प्रबन्ध में श्रमिकों का हाथ कम होता है। यही कारण है कि इन केन्द्रों को अधिक लोकप्रियता व सफलता नहीं मिल पाई है। श्रम कल्याण केन्द्रों में मालिकों को सलाह और सहायता देने के लिये श्रमिकों की एक समिति भी होनी चाहिये। इससे श्रमिकों का सक्रिय रूप से सहयोग मिल जायगा और श्रमिकों में यह उत्साह आ जायगा कि वे कल्याण केन्द्रों से पूर्ण लाभ उठायें। इसके अतिरिक्त कल्याण केन्द्र किसी ऐसे प्रशिक्षित व अनुभवी व्यक्ति के अधीन होना चाहिये जिसमें समाज सेवा की भावना हो। केन्द्रों के कर्मचारियों को समुचित वेतन दिया जाना चाहिये। दफ्तरों जैसा वातावरण इन केन्द्रों के कल्याण कार्यों के लिये सहायक नहीं हो सकता। निश्चय ही इस प्रकार के केन्द्रों का महत्व व इनकी उपयोगिता बहुत अधिक है क्योंकि ऐसे देश में जहाँ अब भी श्रमिक अपने हितों की

स्वयं देखभाल नहीं कर सकते वहाँ सरकार का यह कर्तव्य हो जाता है कि उनके लिए कुछ कल्याण काम करे और ऐसे अधिनियम बनाये जिनके अन्तर्गत मालिकों को कल्याण कार्य करने के लिये विवश किया जा सके। श्रम कल्याण केन्द्रों की संख्या में वृद्धि करने की बहुत आवश्यकता है। प्रत्येक औद्योगिक बस्ती में सरकार द्वारा चलाया जाने वाला एक श्रम-कल्याण केन्द्र होना आवश्यक है तथा उन केन्द्रों के कल्याण कार्यों को विस्तृत करने के लिये अधिक श्रम किये जाने की आवश्यकता है।

मालिकों द्वारा कल्याण कार्य

कल्याण कार्य इस समय मालिकों की इच्छा पर छोड़ने के स्थान पर अधिकाधिक कानून के क्षेत्र में आता जा रहा है। कैन्टीनें, विश्राम स्थल, शिशुगृह खानों में स्नानगृह आदि विभिन्न अधिनियमों के अन्तर्गत आवश्यक कर दिए गए हैं। इसी प्रकार कर्मचारी राज्य-बीमा-योजना लागू होते ही मालिकों पर चिकित्सा सहायता का उत्तरदायित्व नहीं रहेगा। उपरोक्त विवरण से यह भी स्पष्ट है कि केन्द्रीय व राज्य सरकारें भी औद्योगिक नगरों में कल्याण केन्द्रों की स्थापना करके कल्याण कार्यों में अधिकाधिक भाग ले रही हैं। परन्तु फिर भी श्रमिकों को सुविधाएँ व सेवाएँ प्रदान करने के लिए मालिक तथा उनकी संस्थाएँ अभी काफी काम कर सकती हैं। कई जागरूक मालिक विभिन्न उद्योगों में स्वयं अपनी इच्छा से श्रमिकों के लिए कल्याण कार्य करते रहे हैं उनमें से कुछ का विवरण निम्नलिखित है —

सूती वस्त्र उद्योग में कल्याण कार्य —

बम्बई में लगभग प्रत्येक सूती मिल में चिकित्सालय, शिशु गृह तथा अनाज की दुकानों की सुविधाएँ दी गई हैं। ७० मिलों द्वारा कैन्टीन चलाई जाती हैं तथा कुछ मिलों में डाइनिंग हाल्स भी खोले गए हैं जहाँ सस्ते भोजन की व्यवस्था है। बम्बई की लगभग ११ मिलों ने श्रमिकों के लिए क्षेम गृह (?) क्लब तथा व्यायामशालाएँ बनवाई हैं। ४१ मिलों में शिक्षा धन के लिए कक्षाएँ चलाई जाती हैं। ६६ सहकारी साख समितियाँ हैं जिनके लगभग १,१६,६१ सदस्य हैं। लगभग ४० मिलें अपने सदस्यों को उनके अवकाश प्राप्त करने पर धन प्रदान करती हैं। अहमदाबाद की मिलें एक योग्य डाक्टर के अधीन एक चिकित्सालय चलाती हैं तथा कुछ मिलों ने तो हस्पताल की सुविधाएँ भी प्रदान की हैं। जहाँ-जहाँ महिला श्रमिक हैं वहाँ शिशुगृहों की भी व्यवस्था है। कुछ मिलों में शिशुओं को दूध, मछली का तेल तथा संतरे का रस आदि देने का भी प्रबन्ध है। गर्म या ठंडे पानी से स्नान करने की भी व्यवस्था है। कुछ मिलों ने श्रमिकों के बालकों के लिए किंडर गार्टन अथवा मांटेसरी शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है। अनेक मिलों ने मैदान में रेन्ट फ्री (?) मकानों की सुविधा भी प्रदान की है तथा कई मिलों में सहकारी समितियाँ भी हैं। कैन्टीनों की व्यवस्था सभी मिलों में है।

नागपुर की एम्प्रेस मिल में एक उल्लेखनीय श्रम कल्याण कार्य चल रहा है।

यहाँ चिकित्सा का प्रबन्ध अत्यन्त सन्तोषजनक है। चार पूर्ण सुविधाओं से युक्त चिकित्सालय हैं जिनमें योग्य डाक्टर हैं। पुरुष तथा महिला श्रमिकों के लिए अलग अलग चिकित्सालय हैं और शिशुओं की भी व्यवस्था है। किंडर गार्टन व नर्सरी कक्षाएं भी चलती हैं। श्रमिकों में सहकारिता की काफी लोकप्रिय है और श्रमिक सहकारी साख समितियों से ऋण लेते हैं। एक बीमारी लाभ निधि भी बनाई गई है परन्तु यह अधिक लोकप्रिय नहीं हो पाई है। श्रमिकों को निःशुल्क दिखाने के लिए भी एक योजना बनाई गई है। श्रमिकों के लिए हिन्दी व मराठी में एक समाचार पत्र भी प्रकाशित किया जाता है जिसका नाम "एम्प्रेस मिल पत्रिका" है। इस पत्रिका को श्रमिकों में बिना मूल्य के ही वितरित किया जाता है। पत्रिका में स्वास्थ्य स्वास्थ्य विज्ञान सफाई तथा अन्य साधारण रुचि के विषय होते हैं। कर्मचारियों को लेख भेजने के लिए उत्साहित किया जाता है। इन पर पारितोषिक भी दिये जाते हैं। प्राविडेन्ट फन्ड के अतिरिक्त पुराने कर्मचारियों को पेन्शन देने की भी मिल ने एक योजना चालू की है।

बेहली मे देहली क्लाथ एवं जनरल मिल्स में एक कर्मचारी हित निधि ट्रस्ट बनाया गया है। इसके प्रबन्ध के लिये पांच सदस्य श्रमिकों में से चुने गए हैं तथा चार प्रबन्धकों की ओर से नियुक्त किए गये हैं। इस निधि में धन वितरित किये जाने वाले लाभांश के एक निश्चित प्रतिशत भाग से श्रमिकों पर हुए जुर्माने की राशि से तथा लावारिस मजदूरी की राशि से संचय किया जाता है। यह ट्रस्ट वैच्छिक स्वास्थ्य बीमा योजनाओं अवकाश प्राप्त धन और वृद्धावस्था की पेन्शन योजनाओं तथा प्रोवीडेन्ट फण्ड और लड़की के विवाह के लिये धन देने की योजनाओं का प्रबन्ध भी करता है। कर्मचारियों को सहसा आवश्यकता पड़ने पर (जैसे लम्बी बीमारी में विशेषज्ञों से इलाज के लिये तथा मृत्यु संस्कार आदि के समय) विशेष आर्थिक सहायता दी जाती है। एक सहकारी बैंक भी है जिसमें धन जमा करने वालों की संख्या ४०० से अधिक है। प्रबन्धकों ने अपने कर्मचारियों को सस्ती बीमा पॉलिसी देने के लिये स्वयं अपनी एक बीमा कम्पनी की स्थापना की है। यहाँ सब सुविधाओं से युक्त ३० पलंगों वाला एक हस्पताल भी है जिसमें एक्स रे का सामान दन्त-चिकित्सा की कुर्सी तथा विद्युत किरणों से इलाज की भी पूर्ण व्यवस्था है। चिकित्सा सहायता निःशुल्क दी जाती है तथा एक योग्य महिला डाक्टर की भी व्यवस्था है। ट्रस्ट द्वारा चलाये जाने वाले स्कूलों में श्रमिकों के बालकों तथा बालिकाओं को निःशुल्क शिक्षा देने का प्रबन्ध है। योग्य छात्रों को छात्रवृत्ति भी प्रदान की जाती है। ट्रस्ट द्वारा एक उच्च माध्यमिक विद्यालय एक शिल्प स्कूल तथा एक तकनीकी स्कूल चलाये जा रहे हैं। श्रमिकों तथा उनके परिवारों के लिये वयस्क शिक्षा कक्षाएं, पुस्तकालय तथा वाचनालय की भी व्यवस्था है। एक व्यायामशाला तथा खेल-कूद का भी प्रबन्ध किया गया है। श्रमिकों के अपने ही तैरने के तालाब नाटक संघ आदि हैं। "डी० सी० एम० समाचार" के नाम से एक साप्ताहिक समाचार-पत्र हिन्दी तथा उर्दू

में प्रकाशित किया जाता है, जिसे कर्मचारियों में बिना मूल्य के वितरित किया जाता है।

मद्रास में बकिंघम तथा कर्नाटिक मिलों में एक मिल चिकित्सालय है जिसमें छः डाक्टर नियुक्त हैं जो कर्मचारियों को उनके घरों पर भी देखने जाते हैं। एक महिला डाक्टर के अधीन भी एक चिकित्सालय है। प्रत्येक मिल के श्रमिक क्षेत्रों में एक चिकित्सालय होता है तथा नर्सें प्रतिदिन श्रमिकों के घरों पर जाती हैं। महिला डाक्टर तथा दो स्वास्थ्य निरीक्षक भी सप्ताह में एक या दो बार श्रमिक क्षेत्रों में जाती हैं। महिलाओं के लिए विशेष कक्षाएं आयोजित की जाती हैं जिनमें सफाई बच्चों का पालन-पोषण भोजन का महत्व तथा बीमारियों की रोकथाम आदि पर व्याख्यान दिये जाते हैं। महिलाओं के लिये सिलाई की कक्षायें हैं। लड़कियों को गृह-विज्ञान स्वास्थ्य विज्ञान सामान्य विज्ञान तथा दस्तकारी आदि की शिक्षा दी जाती है। प्रत्येक श्रम क्षेत्र में नर्सरी कक्षाएं भी चालू की गई हैं तथा केवल आठ आने प्रतिमाह देने पर बालकों को हल्का नाश्ता व मछली का तेल दिया जाता है। ठेकेदारों द्वारा दो कैन्टीनें चलाई जाती हैं तथा कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की भी सुविधायें दी गई हैं। मिल में एक सहकारी समिति भी है। एक वर्ष से अधिक नौकरी करने पर प्रत्येक श्रमिक मिल प्रोवीडेन्ट फण्ड का सदस्य हो सकता है।

बंगलौर की ऊनी सूती व रेशम की मिलें भी कल्याण कार्यों को सर्वाधिक रूप दे कर रही हैं। एक आधुनिक दवाखाना मातृत्व हित व बाल-कल्याण व्यवस्था चिकित्सालय तथा स्वास्थ्य निरीक्षक कर्मचारियों की व्यवस्था है। प्रत्येक वर्ष श्रमिकों की बस्ती में एक बाल प्रदर्शनी तथा स्वास्थ्य सप्ताह मनाया जाता है। एक नर्सरी पाठशाला एक माध्यमिक पाठशाला व रात्रि में वयस्कों के लिये कक्षाएं भी चलाई जाती हैं। दो वाचनालयों तथा एक पुस्तकालय की भी व्यवस्था है। कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल नाटक, सभाओं आदि जैसी मनोरंजन की सुविधाएं भी प्रदान की गई हैं। कोयम्बटूर में भी प्रत्येक सूती वस्त्र मिलों में एक-एक चिकित्सालय है। कुछ मिलें हस्पताल भी चलाती हैं जिनमें विशेष रूप से मातृत्व हित व बच्चों के विभाग भी होते हैं। सारी मिलों में शिशु गृह कैन्टीन नहाने की सुविधायें विश्राम स्थान तथा चिकित्सालय हैं। कई मिलों में उपदान प्राप्त कैन्टीनें हैं और मनोरंजन की तथा बच्चों की शिक्षा की सुविधाएं भी हैं।

मदुरा में मदुरा मिल्स कम्पनी ने अपने कर्मचारियों की चिकित्सा के लिए बहुत ही अच्छा प्रबन्ध किया है। सब सुविधाओं से युक्त चिकित्सालयों की व्यवस्था है तथा हस्पताली चिकित्सा के लिए एक स्थानीय हस्पताल में प्रबन्ध किया गया है जिसमें मिलों ने स्वयं अपना एक्स रे यन्त्र लगा लिया है। मिलों में शिशु गृहों की भी व्यवस्था है। स्कूलों में बच्चों को दूध भोजन फल आदि बिना किसी मूल्य के दिये जाते हैं। मदुरा मिल कर्मचारी सहकारी भण्डार भी चलाया जाता है जिसके प्रबन्ध में श्रमिकों का भी हाथ होता है। यह कर्मचारी बचत निधि योजना भी

चालू है जिसमें मिल मासिक भी सहायता देते हैं। तीस वर्षों से अधिक नौकरी करने वाले कर्मचारियों को पेन्शन भी दी जाती है जो उनकी मासिक आय की आधी होती है इसमें १) महंगाई भत्ता और मिला दिया जाता है। अवकाश प्राप्त धन देने की भी व्यवस्था है। मदुरा मिलों द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्यों में एक विशेषता यह है कि वे 'मदुरा श्रमिक संघ कल्याण परिषद्' को ५, ०० रु० प्रति माह अनुदान में देती है। यह परिषद् कर्मचारियों के बच्चों के लिये एक पाठशाला तथा पुरुष व महिला कर्मचारियों को शिक्षा देने के लिये दो वयस्क केन्द्रों को चलाती है। मिल ने श्रमिकों की बस्ती में भी एक स्कूल की व्यवस्था की है।

इसी प्रकार अनेक और स्थानों पर भी सूती वस्त्र मिलों द्वारा श्रमिकों के लिये विभिन्न प्रकार के कल्याण कार्यों की सुविधाएं प्रदान की गई हैं। उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता है कि सूती मिल उद्योग में दी जाने वाली कल्याण सुविधाओं के स्तर विभिन्न केन्द्रों में भिन्न भिन्न हैं। कुछ मालिक तो केवल कानून के अनुसार ही आवश्यक सुविधाएं देकर संतुष्ट हो गए हैं। परन्तु कुछ बड़ी मिलों ने कल्याण कार्यों को विस्तृत स्तर पर किया है तथा वे कानून द्वारा वांछित सुविधाओं से भी आगे बढ़ गई हैं।

जूट मिल उद्योग में कल्याण काम —

केवल "भारतीय जूट मिल परिषद्" ही एक ऐसा संघ है जिसने अपने सदस्य संस्थाओं के कल्याण कार्यों को संगठित करने का प्रयत्न उत्तरदायित्व लिया है। यह परिषद् विभिन्न स्थानों पर पांच कल्याण केन्द्र चलाती है, जिनमें सामान्य कल्याण कार्य होते हैं। इनमें कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की तथा मनोरंजन की सुविधाओं की व्यवस्था है तथा मिलों में आपस में खेल की प्रतियोगिताएं भी की जाती हैं। प्रत्येक केन्द्र में एक एक रेडियो तथा वाचनालयों में समाचार पत्रों की व्यवस्था है। कुछ केन्द्रों ने स्वयं अपने पुस्तकालय नाटक मण्डली तथा संगीत कक्षाएं चलाई हैं। टीटागढ़ केन्द्र में एक कैन्टीन तथा चिकित्सालय ऐसे भी हैं जिनमें मुफ्त ही चीजें व दवाएं मिलती हैं। यह परिषद् प्रत्येक केन्द्र पर एक प्रारम्भिक पाठशाला चलाती है। स्त्रियों के हेतु पाक व सिलाई कक्षाओं की व्यवस्था भी की गई है। मिल कर्मचारियों के बच्चों को तकनीकी शिक्षा देने के लिये २) प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष के मूल्य की दस छात्रवृत्तियां प्रदान की जाती हैं। कुछ केन्द्रों पर एक महिला कल्याण समिति तथा महिला क्लबें भी चलाई जाती हैं। महामारी को रोकने के लिये नियमित रूप से चेचक व अन्य रोगों के टीके लगाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त मिलें अलग से भी श्रमिकों के लिये कल्याण कार्य करती रहती हैं। उदाहरणतः परिषद् की ८८ सदस्य मिलों में से जिनका पश्चिमी बंगाल सरकार द्वारा सन् १९५७ में एक सर्वेक्षण किया गया था ७२ में चिकित्सालयों की व्यवस्था है ८ मिलें हस्पताल चलाती हैं १२ मिलों में मातृत्व हित चिकित्सालय हैं ७० में कैन्टीनें हैं ६५ शिशु गृह चलाती हैं ६१ में पाठशालाओं की व्यवस्था है ४१ में पुस्तकालय हैं ३४ में कमरों के भीतर के

केन्द्रों और ६१ में मैदान के खेलों की व्यवस्था है। ७८ मिलों में व्यायामशालाएं हैं तथा ४२ मिलों में समय समय पर सिनेमा दिखाने की व्यवस्था है। सारी मिलों में श्रम कल्याण अधिकारी नियुक्त हैं। कुछ मिलों में उन्हें 'कामिक' या 'कल्याण अधिकारी' कहा जाता है। कुछ मिलों की ओर से १२ मण्डप पश्चिमी बंगाल में तथा एक उत्तर प्रदेश में चलाया जा रहा है।

कानपुर में मालिकों के श्रम कल्याण कार्य —

कानपुर में ब्रिटिश इण्डिया कारपोरेशन ने दो श्रमिक बस्तियों के लिये एक कल्याण अधीक्षक (Welfare Superintendent) की नियुक्ति की है। लड़कों तथा लड़कियों के स्कूलों, क्लबों, चिकित्सालयों, मातृत्व हित तथा बाल-कल्याण केन्द्रों, सभाओं, एक हस्पताल तथा एक विधवा आश्रम आदि की सुविधाएं कल्याण कार्यों द्वारा दी गई हैं। कानपुर की जेके कॉटन मिलों ने बालकों तथा वयस्कों के स्कूलों, मैस के मैदानों, कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों, रेडियो तथा पूर्ण सुविधायुक्त शिशुगृहों की व्यवस्था की है। कानपुर की जे० के० इण्डस्ट्रीज ने भी तीन लाख रुपयों से एक ट्रस्ट की स्थापना की थी जिसके अन्तर्गत कर्मचारियों के लिये कई पाठशालाएं, एक तैरने का तालाब तथा कई अन्य सुविधाएं प्रदान करने की व्यवस्था थी। परन्तु इन सुविधाओं को प्रदान करने की ओर कोई पग नहीं उठाया गया है।

इन्जीनियरिंग उद्योग में कल्याण कार्य

इन्जीनियरिंग उद्योग में कई बड़ी सम्स्थाओं ने अनेक प्रकार के श्रम-कल्याण कार्य किये हैं जिनका अब लगभग १६४८ में पश्चिमी बंगाल के इन्जीनियरिंग अधिकरण द्वारा दिये गये एक निर्णय के पश्चात् सामान्यीकरण किया गया है। अनेक संस्थाओं ने अपने कर्मचारियों के लिये चिकित्सालयों, कैन्टीनों, शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधायें प्रदान की हैं। जमशेदपुर की टाटा लोहा एवं इस्पात कम्पनी द्वारा किये गये काम भी विशेष उल्लेखनीय हैं। यह कम्पनी ४१६ पलंगों वाला एक हस्पताल चलाती है। इसके अतिरिक्त नगर के विभिन्न भागों में आठ औषधालय तथा एक हस्पताल संक्रामक बीमारियों का है। कर्मचारी तथा उनके परिवारों का इलाज निःशुल्क किया जाता है। एक महिला चिकित्सा अधिकारी के अधीन एक महिला विभाग तथा मातृत्व हित व शिशु विभाग है। एक मातृत्व हित व बाल कल्याण संस्था भी है जिसके अन्तर्गत निर्धन श्रमिकों के परिवारों के लिये कई चिकित्सालयों का प्रबन्ध है। एक वार्षिक स्वास्थ्य तथा बाल-प्रदर्शनी का भी आयोजन किया जाता है। शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाता है। वयस्क शिक्षा कक्षाओं के अतिरिक्त कम्पनी ३ हाई स्कूल ११ मिडिल स्कूल १६ प्रारम्भिक पाठशालाएं, ६ रात्रि पाठशालाएं तथा एक तकनीकी रात्रि पाठशाला का भी चलाती है। शिक्षा विभाग का वार्षिक बजट लगभग १८ लाख रु० का है। बच्चों के लिए कई खेल के मैदानों का भी प्रबन्ध है तथा कर्मचारियों के लिये कमरों के भीतर एवं मैदान के

खेलों की भी व्यवस्था है। नगर के विभिन्न भागों में १२ श्रम-कल्याण केन्द्र खोले गये हैं जिनमें एक वाचनालय व एक पुस्तकालय कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल व्यायाम व वाद-विवाद प्रतियोगिताएं, संगीत व नाटक आदि की सुविधाएं आदि प्रदान की गई है। इसके अतिरिक्त विभिन्न बस्तियों में मुफ्त सिनेमा दिखाया जाता है। एक रेडियो प्रसारण की भी व्यवस्था है जिसमें से नौ लाउडस्पीकर शहर के विभिन्न भागों में लगाये गये हैं। कारखाने के अंदर कम्पनी दो बड़े-बड़े होटल चलाती है तथा महिला कर्मचारियों के लिये कई विश्रामालयों व बच्चों के लिये शिशुगृहों की व्यवस्था की गई है। अर्धपोषित बच्चों को दूध तथा बिस्कुट बिना मूल्य के दिये जाते हैं। महिलाओं को धोने के लिये साबुन मुफ्त मिलता है। बंगाल की इस्पात निगम तथा भारतीय लोहा कम्पनी ने भी अपने कर्मचारियों के कल्याण के लिये बहुत अच्छे प्रबन्ध किये हैं।

कागज व सीमेन्ट उद्योग में कल्याण कार्य —

कागज उद्योग में सारी मिलें चिकित्सालयों शिशुगृहों व कैन्टीनों का प्रबन्ध करती है तथा सहकारी समितियों को प्रोत्साहन दिया जाता है। कुछ मिलों ने कर्मचारियों के बच्चों की शिक्षा का भी प्रबन्ध किया है कुछ ने 'कर्मचारी क्लब' स्थापित की हैं तथा कुछ में खेलों की व्यवस्था भी है। सीमेंट कारखानों ने (विशेषकर उन्होंने जो 'एसोसियेटेड सीमेंट कम्पनी' से सम्बन्धित हैं) अपने कर्मचारियों के कल्याण के लिये काफी ध्यान दिया है। उत्तम हस्पतालों और चिकित्सालयों (जिनमें योग्य डाक्टर हैं) संगठित शिशुगृहों कैन्टीनों खेल तथा मनोरंजन के लिये क्लबों सस्ते अनाज की दुकानों तथा शिक्षा आदि की सुविधाएं प्रदान की जा रही हैं।

हस्पतालों चिकित्सालयों शिक्षा तथा मनोरंजन की सुविधाओं की व्यवस्था मालिकों द्वारा अन्य कई उद्योगों जैसे चीनी चमड़ा तथा चर्म रंगाई, रसायन ऊनी वस्त्र तेल सीमेंट, कांच सिगरेट, वनस्पति आदि उद्योगों में भी की गई है।

बागान में कल्याण कार्य —

असम तथा पश्चिमी बंगाल के चाय बागान में चिकित्सा सुविधाएं दी गई है। एक डाक्टर अथवा कम्पाउन्डर से युक्त चिकित्सालय की भी व्यवस्था है तथा कई क्षेत्रों में गम्भीर बीमारियों के लिये बागानों में ही हस्पताल खोले गये हैं। कुछ बागान ने सामूहिक रूप से सहयोग देकर एक चिकित्सा परिषद् बनाई है जिसमें एक मुख्य चिकित्सा अधिकारी की नियुक्ति की गई है तथा चिकित्सा सम्बन्धी गम्भीर मामले एक सामूहिक हस्पताल में भेज दिये जाते हैं। इसी प्रकार के एक सामूहिक हस्पताल की व्यवस्था दक्षिण भारत के चाय क्षेत्रों में भी की गई है। लगभग सारे बड़े-बड़े चाय व कहवा क्षेत्रों में हस्पतालों व चिकित्सालयों की व्यवस्था है और छोटे क्षेत्रों में कर्मचारियों की चिकित्सा के लिये स्थानीय हस्पतालों में प्रबन्ध हैं। कई स्थानों पर शिशुगृह नहीं हैं परन्तु जब मातायें काम पर चली जाती हैं तो उनके

बच्चों की देखभाल के लिये वृद्ध महिलाओं का प्रबन्ध किया गया है। कई क्षेत्रों में कर्मचारियों के बालकों के लिये स्कूल चलाये जाते हैं तथा उनमें से कुछ में वयस्कों के लिये रात्रि कक्षायें भी स्थापित की गई हैं। कुछ स्थानों को छोड़ कर अन्य स्थानों पर मनोरंजन की सुविधाएं प्रदान नहीं की जाती हैं। बागान में कर्मचारियों के लिये कैन्टीनें भी बहुत कम हैं। मद्रास के एक बागान क्षेत्र में कर्मचारियों में बचत व मितव्ययता की भावना बढ़ाने के लिए एक क्षेत्रीय कर्मचारी सहकारी बैंक खोला गया है। सरकार सहकारी विभाग द्वारा इसके प्रबन्ध में सहायता देती है तथा इसके व्यय के लिये ३००० रुपये का एक अनुदान स्वीकृत किया गया है। बागान में मातृत्व हित-लाभ व बीमारी के लाभ भी दिये गये हैं। पांच कल्याण केन्द्र पुरुषों के लिये तथा पांच स्त्रियों के लिये खोलने की योजना असम श्रम कल्याण बोर्ड द्वारा स्वीकृत हो चुकी है तथा महिलाओं के लिये तीन केन्द्र पहले ही स्थापित हो चुके हैं। त्रिपुरा तथा मनुर्वली में दो तथा एक कल्याण केन्द्र क्रमशः खोले गये हैं। चाय बोर्ड चाय क्षेत्रों के कर्मचारियों के कल्याण के लिये राज्य सरकारों को अपनी निधि से धन देती रही है। कहवा तथा रबर बोर्ड भी रबर तथा कहवा के बागान क्षेत्रों के कर्मचारियों के कल्याण कार्यों के हेतु अपनी निधियों में से धन देने के लिए तैयार हो गये हैं। इसके अतिरिक्त १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम के अन्तर्गत हस्पताल तथा चिकित्सालय चलाये जाने की व्यवस्था है।

कोयले की खानों में कल्याण-कार्य — १९४७ का कोयला-खान-श्रम कल्याण निधि अधिनियम —

कोयला तथा अभ्रक की खानों में कल्याण सुविधाएं देने का उत्तरदायित्व अब, "कोयला तथा अभ्रक की खानों के श्रम कल्याण निधियों" पर है। फिर भी मालिकों द्वारा भी कुछ कल्याण सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। उदाहरण के लिये एक रिपोर्ट के अनुसार २८ कोयले की खानों ने मनोरंजन का प्रबन्ध किया है, १६७ ने खेल के मैदानों का, २७६ ने बच्चों के लिये पाठशालाओं का तथा ११ ने वयस्क शिक्षा वर्गों की व्यवस्था की है। मद्रास की अभ्रक खानों में ६ स्थानों पर तो खेल के मैदानों का तथा दो स्थानों पर बच्चों के स्कूलों का प्रबन्ध है।

कोयले की खानों में संगठित कल्याण कार्य की आवश्यकता देखते हुए भारत सरकार ने ११ जनवरी १९४४ को एक अध्यादेश की घोषणा की जिसका उद्देश्य एक निधि निर्मित करना था। इसे "कोयला खान श्रम कल्याण निधि" नाम दिया गया है। अध्यादेश को सन् १९४७ में कोयला खान-श्रम-कल्याण निधि अधिनियम में परिवर्तित कर दिया गया जिसमें कोयला उद्योग में काम करने वाले कर्मचारियों के लिये अधिक सुचारु रूप से धन देने की व्यवस्था है। यह अधिनियम जून १९४७ से लागू हुआ। इसके अन्तर्गत "कोयला खान श्रम आवास तथा सामान्य-कल्याण निधि" नाम से एक निधि की स्थापना की गई है। इस निधि के दो खाते हैं —(१) आवास

खाता तथा (२) सामान्य कल्याण खाता । इस अधिनियम के अन्तर्गत सारे भारत में खानों से भाने वाले हर प्रकार के कोयले पर एक उपकर (Cess) लगाया गया है जो न तो चार आने प्रति टन से कम होगा और न ही आठ आने प्रति टन से अधिक। इसका निश्चय केन्द्रीय सरकार समय-समय पर करेगी। इस उपकर से प्राप्त राशि को आवास खाते तथा सामान्य कल्याण खाते में अनुभाजित कर दिया जाता है। अधिनियम में उन तमाम कार्यों का वर्णन किया गया है जिन पर प्रत्येक खाते में से रुपया व्यय किया जा सकता है। पुन सन् १९४७ में खानों से आने वाले कोयले तथा भारी कोयले पर ६ आना प्रति टन के हिसाब से एक उपकर लगाया गया था। जनवरी १९६१ से इस उपकर की दर ५० न० पै० प्रति टन अथवा ४९.२१ न० पै० प्रति मट्रिक टन कर दी गई है। सन् १९२६-२७ तक यह उपकर ७ २ के अनुपात से "सामान्य खाते' तथा "आवास खाते' में विभाजित होता रहा था। सन् १९२६-२७ में आवास पर अधिक जोर देने के लिये अनुपात को ९ ११ में बदल दिया गया। तब से यही अनुपात चल रहा है। इस निधि का प्रशासन केन्द्रीय सरकार एक सलाहकार समिति के परामर्श से करती है जिसमें सरकार व कोयला खानों के मालिक तथा श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करने वाले सदस्यों की संख्या बराबर होती है। सारे सदस्य केन्द्रीय सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते हैं, जिनमें एक महिला भी होती है। एक 'कोयला खान श्रमिक आवास बोर्ड' पहले से ही स्थापित किया जा चुका है। अधिनियम के अनुसार एक 'कोयला खान श्रम कल्याण कमिश्नर" की भी नियुक्ति हुई है जिसकी सहायता के लिए एक मुख्य कल्याण अधिकारी तीन श्रम कल्याण निरीक्षक तथा एक महिला कल्याण अधिकारी रखे गये हैं। कोयले की खानों के श्रमिकों के लिये जो कानून बने हैं उन्हें क्रियान्वित करने के लिये बिहार, बंगाल तथा मध्य प्रदेश में पाँच प्रकार अधिकारी नियुक्त किये गये हैं।

१९५०-५१ में 'कोयला खानों के कल्याण निधि नियमों" में तीन विशेष संशोधन किये गये। वे निम्नलिखित विषयों पर थे—(१) बड़े कोयला क्षेत्रों की 'कोयला क्षेत्र उपसमाओं' का संविधान बनाना (२) खानों से रेल के अतिरिक्त किसी और साधन से भेजे जाने वाले कोयले तथा भारी कोयले पर भी उपकर लगाना तथा (३) जो खानें अपने कर्मचारियों के लिये एक निश्चित स्तर के चिकित्सालय चलाती हैं उन्हें सहायता देना। सन् १९६० -६१ में "कोयला खान श्रम कल्याण निधि" की कुल आय १८१ लाख रु० थी जिसमें से ९६ लाख रु० सामान्य कल्याण और आवास पर व्यय हो जाने का अनुमान था। १९५९-६० तक सामान्य कल्याण पर ७६.३ लाख रु० तथा आवास योजनाओं पर ७१.१ लाख रु० व्यय हुआ था।

निधि के आवास सम्बन्धी कार्य पहले ही बताये जा चुके हैं। (देखिये पृष्ठ २१४-१६) जहाँ तक सामान्य कल्याण का प्रश्न है व्यय का एक बड़ा भाग स्वास्थ्य सुविधाओं तथा चिकित्सा सम्बन्धी देखभाल व इलाज के साधनों पर लगाया जाता है। इस समय यहाँ ८ क्षेत्रीय हस्पताल हैं जिनमें से दो-दो बिहार,

पश्चिमी बंगाल और मध्य प्रदेश में हैं तथा एक दूसरी (बकारो कोयला खान) एवं एक कोरिया की कोयला खानों म दुगाभिया स्थान पर है। दो चिकित्सालय भी हैं तथा दो केन्द्रीय हस्पताल भी हैं जिनमें से एक धनबाद में है और एक आसनसोल में है। सरसोल और कजरा में दो क्षय चिकित्सालय भी खोले गये हैं। कुछ सेनिटोरियमों में खानों म काम करने वालों के लिये पलंग सुरक्षित कर दिये गये हैं। केन्द्रीय हस्पतालों म तथा आसनसोल मांग्या तथा हजारीबाग में खानों के स्वास्थ्य बोर्ड के द्वारा मातृत्व हित तथा शिशु कल्याण की सुविधाएं भी प्रदान की जाती हैं। अन्य उल्लेखनीय कार्यों में से मुख्य ये हैं—आसनसोल का एक बैंक मलेरिया के विरुद्ध प्रचुर मात्रा म होने वाला काम दो सी० बी० आन्दोलन अनेक मातृत्व हित व बाल कल्याण केन्द्र अनेक सचल औषधालय तथा कन्धुडुमों में संक्रामक हस्पताल। एक और हस्पताल मनरई में खोला गया है। ६ आयुर्वेदिक औषधालय अभी हाल म ही खोले गये हैं। खानों के श्रमिक जनसाधारण के लिये कृत्रिम अंग देने की भी व्यवस्था की गई है। इस बात का निर्णय भी अभी हाल में ही लिया गया है कि कोयला खानों के उन तमाम कर्मचारियों का जिनका मूल वेतन १०० रुपये प्रति मास से कम है निःशुल्क चिकित्सा सुविधा प्रदान की जायेगी।

कोयला क्षेत्रों में काफी संख्या म बहुउद्देशीय कल्याण केन्द्र भी हैं जिनमें शिक्षा मनोरंजन तथा अन्य सुविधाएं दी गई हैं। रेडियो का भी प्रबन्ध है तथा सचल सिनेमाओं द्वारा चलचित्र दिखाये जाते हैं। इस प्रकार के १६ केन्द्र चालू हैं। ५२ पुस्तकालयों की भी व्यवस्था है वयस्क शिक्षा के लिये भी कदम उठाये गये हैं और निधि द्वारा वयस्क शिक्षा के ६ केन्द्र चलाये जा रहे हैं। प्रत्येक केन्द्र में एक कैन्टीन भी है। महिलाओं के लिये २६ विचार केन्द्र हैं जिनमें कताई बुनाई गृह अर्थव्यवस्था आदि की शिक्षा दी जाती है। बिहार कोयला क्षेत्र में ४७ सहकारी समितियों का संगठन किया गया है। खान कर्मचारियों की ६० संस्थाएं भी हैं जिनमें से मकदा में एक महिला कल्याण केन्द्र बाल शिक्षा केन्द्र एवं वयस्क शिक्षा केन्द्र तथा एक बाल उद्यान की व्यवस्था है। कर्मचारियों के बालकों को छात्रवृत्ति देने की एक योजना भी लागू कर दी गई है। सन् १९५९ में निधि ने १२ दिन की भारत दर्शन यात्रा की भी एक व्यवस्था की थी जिसमें ३०० कोयला खानों के श्रमिक गये थे। खानों के श्रमिकों के पुत्र और पुत्रियों के लिये सामान्य शिक्षा हेतु २० रु० प्रति माह की ७२ छात्र वृत्तियां तथा तकनीकी शिक्षा के लिये ३० रु० प्रति माह की २२ छात्र वृत्तियां प्रदान की जाती हैं। बिहार में राजगीर स्थान पर खान श्रमिकों के लिये एक अवकाश गृह भी खोला गया है।

अन्य योजनाएं जिनके लिये इस निधि से धन दिया गया है निम्नलिखित हैं—आवास मकान निर्माण जल वितरण व्यवस्था व उत्पत्ति दुर्घटना में श्रमिकों की मृत्यु पर विधवा को तथा बच्चों को जो स्कूल जाते हैं आर्थिक सहायता धनबाद में दुग्ध डेपो के लिए एक कम्पी की योजना तथा सामूहिक खान श्रमिकों की सहायता

करने व उन्हें किसी अन्य कार्य में प्रशिक्षित करने के लिये धनबाद हस्पताल में एक पुनर्वास केन्द्र स्थापित करने की योजना। सन् १९६ में खानों के ऊपरी धरातल पर स्नान गृहों की कुल संख्या २२१ थी। १५१ खानों में शिशु गृहों का प्रबन्ध था। गोरखपुर श्रम संगठन द्वारा कोयला खानों में जो श्रमिक भरती होते हैं उनके कल्याण कार्यों के लिये ३ कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति की गई है। कोयला खान प्रोवीडेण्ट फण्ड तथा बोनस योजना पर सामाजिक सुरक्षा के अध्याय में विचार किया गया है।

अभ्रक की खानों में श्रम-कल्याण कार्य १९४६ का अभ्रक खान श्रम-कल्याण निधि अधिनियम —

सरकार ने १९४६ में अभ्रक खान श्रम कल्याण अधिनियम को पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत एक निधि की स्थापना की गई है जिस निधि में धन मूल्य अनुसार, एक आयात निर्यात कर लगा कर संचित किया गया है। यह कर उस तमाम अभ्रक पर जो भारत से निर्यात होता है लगाया गया है। इस कर की दर ६¼ प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती है। वर्तमान दर मूल्य अनुसार २½% है। इस निधि का उपयोग अभ्रक खानों में काम करने वाले श्रमिकों के कल्याण हेतु होता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत सरकार ने सलाहकार समितियां बनाई हैं जिनमें से एक बिहार के लिये एक आन्ध्र के लिये तथा एक राजस्थान के लिये है। कोयला खानों का कल्याण कमिश्नर ही अभ्रक खानों का कल्याण कमिश्नर बना दिया गया है। निधि के १९५८–५९ के बजट में ११ ८९,७११ रु० के व्यय की व्यवस्था थी। निधि की आय २६,१९,५० रु० थी। कल्याण कार्यों से सम्बन्धित श्रमिकों को निम्नलिखित सुविधाएं उपलब्ध हैं चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं के अन्तर्गत ७ पलंगों वाला एक केन्द्रीय हस्पताल कर्मा (बिहार) में है। १२ पलंगों वाला एक हस्पताल तीसरी (बिहार) में तथा १४ पलंगों वाला एक हस्पताल कालीचेडु (आन्ध्र) में है। गंगापुर (राजस्थान) में ६ पलंगों वाला एक हस्पताल तथा केन्द्रीय हस्पताल कर्मा (बिहार) के साथ २० पलंगों वाला एक टी० बी० हस्पताल बनाये जा रहे हैं। अभ्रक खानों के श्रमिकों के लिये वैलोर के टी० बी० हस्पताल तथा रांची के टी० बी० सैनिटोरियम में भी पलंग सुरक्षित किये गये हैं। अभ्रक खान के जो श्रमिक क्षय रोग से पीड़ित हैं तथा इलाज करा रहे हैं उनके आश्रितों के लिये २० रु प्रति माह का निर्वाह भत्ता प्रदान किया जाता है। इनके अतिरिक्त १४ अचल चिकित्सालय हैं—(२ आन्ध्र में ६ बिहार में तथा ६ राजस्थान में) [illegible] चल चिकित्सालय हैं (१ आन्ध्र में १ बिहार में तथा ५ राजस्थान में) तथा ९ मातृत्व हित तथा शिशु कल्याण केन्द्र हैं, (४ आन्ध्र में २ बिहार में तथा ३ राजस्थान में)। प्रत्येक वर्ष अभ्रक की खानों में मलेरिया उन्मूलन कार्यवाहियां भी की जाती हैं। शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के अन्तर्गत ६ बहुउद्देशीय संस्थाएं निधि द्वारा बिहार में चलाई जा रही हैं। प्रत्येक में एक वयस्क शिक्षा केन्द्र तथा एक महिला कल्याण केन्द्र है। इनमें

मनोरंजन की तथा शिक्षा की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। सिलाई कढ़ाई, बुनाई आदि कक्षाओं का भी प्रबन्ध है। १६ वयस्क शिक्षा तथा सामुदायिक केन्द्र भी हैं। (१ आन्ध्र में २ बिहार में तथा १३ राजस्थान मे) १० प्रारम्भिक और प्राइमरी स्कूल हैं (६ आन्ध्र में तथा ४ राजस्थान में) और दो मिडिल स्कूल हैं (१ आन्ध्र में तथा १ राजस्थान में)। अभ्रक खानो के श्रमिकों के बच्चों के लिये उच्च शिक्षा हेतु छात्र वृत्तियां भी प्रदान की जाती हैं। आन्ध्र में स्कूल के बच्चों को किताबें मुफ्त दोपहर का खाना स्लेटें कपड़े बस्ते आदि भी मुफ्त प्रदान किये जाते हैं। बच्चों के लिये दो बोर्डिंग हाउस भी बनाये गये हैं। मनोरंजन सुविधाओं के अन्तर्गत अभ्रक खान श्रमिकों के लिये ३ चलते फिरते सिनेमा हैं (२ बिहार में तथा १ राजस्थान में)। यह विभिन्न अभ्रक खानों में मुफ्त सिनेमा दिखाते हैं। खानों में मनोरंजन क्लब तथा रेडियो भी हैं। उपभोग की वस्तुओ के लिये एक चल दुकान भी है जिसमें सस्ते दामों पर वस्तुएं मिल जाती हैं। आहातों में साग सब्जी उगाने के लिये बीज भी बांटे जाते हैं। पीने के पानी की व्यवस्था के लिये निधि द्वारा ६ कुएं बिहार में तथा ४ आन्ध्र में बनाये गये हैं। अभ्रक खान मालिकों को अनुमोदित योजना के आधार पर कुओं का निर्माण करने पर उपदान दिया जाता है। इसके अन्तर्गत ११ कुएं बिहार में तथा ८ आन्ध्र में बनाये गये हैं तथा ४ कुएं राजस्थान में बनाये जा रहे हैं। उन क्षेत्रों में जहां पानी का अभाव है वहां ट्रकों द्वारा पानी पहुंचाया जाता है। दुर्घटना से श्रमिक की मृत्यु पर उसकी विधवा एवं बच्चों को वित्तीय सहायता इस प्रकार दी जाती है (१) विधवा को २ वर्ष के लिये १० रु० प्रति माह का भत्ता (२) स्कूल जाने वाले प्रत्येक बच्चे को ३ वर्ष तक ५ रु० प्रति माह की छात्रवृत्ति।

कोलार की सोने की खानों में और अन्य खानों में कल्याण कार्य —

मैसूर में कोलार की सोना खानों में कई वर्षों से कल्याणकार्य एक संगठित स्तर पर हो रहा है। इसके अन्तर्गत निःशुल्क व्यापक स्वास्थ्य सेवायें मुफ्त मातृत्व हित गृह अनाज शिक्षा व मनोरंजन की सुविधाएं आदि की व्यवस्था है जिनके लिये उपदान भी प्रदान किया जाता है। इन सुविधाओं से युक्त एक हस्पताल ४६ पाठशालाएं, ११ रात्रि पाठशालायें ११ मनोरंजन के क्लब जिनमें रेडियो वाचनालय व पुस्तकालय आदि हैं एक कैन्टीन चार मातृत्व हित गृह तीन शिशुगृहों तथा ३ सहकारी भंडारों की व्यवस्था है। कल्याण कार्यों को संगठित करने के लिये एक केन्द्रीय कल्याण समिति भी बना दी गई है।

इसी सोना खानों में सब सुविधाओं से युक्त एक हस्पताल एक कैन्टीन एक अनाज भंडार, एक सहकारी भंडार तथा माग मजियों के लिये एक दुकान की व्यवस्था की गई है। शिशुगृह मनोरंजन की सुविधायें कमरे के भीतर व मैदान के खेल मुफ्त सिनेमा आदि की सुविधायें भी हैं। मैंगनीज की ७६ खानों में श्रम ब्यूरो द्वारा १९५७ में एक जांच की गई थी। इससे पता चलता है कि चिकित्सा की

सुविधायें तो सभी मैंगनीज खानों में प्रदान की जा रही हैं परन्तु मनोरंजन शिक्षा व यातायात की सुविधायें केवल कुछ खानों में ही पाई जाती हैं। अधिकतर खानों में विश्राम स्थल भी पाये जाते हैं। सरकार ने अब कोयला और अभ्रक खानों की भांति एक मैंगनीज श्रमिक कल्याण निधि स्थापित करने के लिये विधान बनाने का निर्णय कर लिया है। परन्तु अभी इस विधान को उस समय तक के लिये स्थगित कर दिया है जब तक कि मैंगनीज का आयात बढ़ नहीं जाता और उसके मूल्यों में स्थिरता नहीं आ जाती। कच्चे लोहे की १९ खानों में भी एक जांच की गई थी। इससे पता चलता है कि केवल ४ खानों में अस्पताल या चिकित्सालय हैं। ११ खानों में मनोरंजन की सुविधायें १० में शिक्षा की सुविधायें ५ में कैंटीनें ११ में शिशुगृह तथा २३ में विश्राम स्थल पाये जाते हैं। ठेके के श्रमिकों के लिये कल्याण सुविधायें बहुत कम हैं।

१९४६ के खान शिशुगृह नियमों के अनुसार जो शिशुगृह बनाये गये हैं उनकी संख्या १९५८ में कोयले की खानों को छोड़कर अन्य खानों में १८३ थी। २९ और शिशुगृह बनाये जा रहे थे। खानों में १९५५ के खान नियमों के अन्तर्गत पीने के पानी का प्रबन्ध प्रारम्भिक चिकित्सा सहायता शौचालय विश्राम गृह आदि की व्यवस्था भी की गई है। बड़ी-बड़ी खानों में कैंटीनें भी खोली गई हैं और कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति भी की गई है।

मालिकों द्वारा किये गए कल्याण कार्यों का आलोचनात्मक मूल्यांकन —

यह देखा गया है कि अब तक मालिकों द्वारा किये गये कल्याण कार्य अनमने मन से तथा अहसान की भावना से किये गये हैं। उनके पीछे सेवा की सच्ची भावना का अभाव ही रहा है और जो कुछ भी कल्याण कार्य उन्होंने किये हैं वे स्वार्थ से किये गये हैं। मालिकों द्वारा किये गये कल्याण कार्यों को अधिकांश श्रमिक संदेह की दृष्टि से देखते हैं। यह शंका की गई है कि यदि श्रमिक सचेत नहीं रहेंगे तो जो भी कल्याण कार्य हो रहा है उसके बदले उनकी मजदूरी कुछ अंश तक कम हो जायगी। श्रमिक यह भी अनुभव करते हैं कि मालिक अधिकतर कल्याण कार्यों का उपयोग श्रमिक संघों के प्रभाव को कम करने के लिये तथा श्रमिकों को उनसे दूर रखने के लिये करते हैं तथा ऐसे श्रमिकों के विरुद्ध जो संघों के सदस्य होते हैं, भेदभाव की नीति बरतते हैं। जो कल्याण कार्य ऐसी बदले की भावना से किए जाते हैं उनके अन्ततः अवश्य ही बुरे परिणाम निकलते हैं। श्रम अनुसंधान समिति ने डा० बी० आर० सेठ के इस सम्बन्ध में विचार उद्धृत किये हैं। उनके शब्दों में 'भारत में उद्योगपतियों की एक बड़ी संख्या अब भी कल्याण कार्यों को एक बुद्धिमत्तापूर्ण निवेश (Wise Investment) न समझ कर निरर्थक दायित्व (Barren Liability) समझती है।* श्री शिवाराव ने भी ब्रिटिश ट्रेड यूनियन कांग्रेस के एक

* *Labour Investigation Committee Report, Page 349*

प्रतिनिधि मंडल के विचार उद्धृत किये हैं जो १६२० में भारत आया था कि "जो कल्याण कार्य इस समय भारत में चल रहा है वह केवल एक भ्रम तथा जाल (Delusion and a Snare) है तथा कल्याण योजनाओं ने श्रम सघों के निर्माण को असम्भव कर दिया है।"* श्रम अनुसन्धान समिति ने यह भी कहा है कि मालिकों की एक बड़ी संख्या कल्याण कार्य की ओर उदासीन व प्रतिकूल व्यवहार रखती है और मालिक कहते हैं कि विश्राम स्थलों की व्यवस्था इसलिये नहीं है क्योंकि कारखाने का सम्पूर्ण क्षेत्र ही श्रमिकों का है, शौचालयों का प्रबन्ध इस कारण नहीं किया गया है क्योंकि श्रमिक जंगलों में शौच जाना अधिक पसन्द करते हैं और क्योंकि कैन्टीनों व क्रैचों की सुविधाओं का श्रमिक उपयोग नहीं करते इसलिये इनकी कोई आवश्यकता नहीं है। इसलिये समिति ने यह विचार व्यक्त किया है कि यह स्पष्ट है कि जब तक कल्याण कार्यों के बारे में मालिकों के निश्चित उत्तरदायित्वों को कानून द्वारा स्पष्ट नहीं किया जायगा तब तक इस प्रकार के मालिक उस मार्ग का अनुसरण नहीं करेंगे जिस पर उनके प्रगतिशील और दूरदर्शी भाई चल रहे हैं। किन्तु यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ आवश्यक मालिकों ने कुछ बहुत अच्छे काम भी किये हैं। इसलिये इस संस्था का प्रमाणित होना या न होना विशिष्ट मालिकों व परिस्थितियों पर निर्भर है। अनेक मालिकों ने यह स्वीकार कर लिया है कि कल्याण कार्य स्वयं उनके ही लाभ के लिये हैं। यदि कुछ मालिकों को कल्याण कार्य लाभदायक प्रतीत होता है तो यह कोई कारण नहीं है कि श्रमिक कल्याण कार्य के लागू होने पर शंका प्रकट करे अथवा आपत्ति करे, विशेषकर जबकि यह योजना दोनों पक्षों के लिये लाभप्रद है। यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि कल्याण कार्यों के प्रशासन में समस्त अधिकार मालिकों के ही हाथ में नहीं होने चाहिये अपितु कर्मचारियों का भी पर्याप्त रूप में प्रतिनिधित्व होना चाहिये।

समाज सेवा संस्थाओं द्वारा कल्याण कार्य :—

अनेक समाज सेवा संस्थाएं भी कल्याण काम के क्षेत्र में उपयोगी कार्य कर रही हैं। वे मालिकों और श्रमिकों दोनों की इस क्षेत्र में सहायता करती हैं और स्वयं भी स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हैं। ऐसी संस्थाओं के उदाहरण निम्नलिखित हैं :—बम्बई समाज सेवा लीग जो "सरवेन्ट्स ग्राफ इण्डिया सोसायटी (Servants of India Society) द्वारा प्रारम्भ की गई थी तथा मद्रास व बंगाल की अन्य इसी प्रकार की और लीगें सेवासदन समितियां, बम्बई प्रैसीडेन्सी महिला परिषद्, मातृत्व हित व बाल कल्याण परिषद्, आई० एम० सी० ए०, वमिन वर्क संघ, मिशन समिति तथा अन्य धर्म प्रचारक समितियां आदि। सन् १६१८ में बम्बई समाज सेवा लीग ने दो प्रगतिशील मिल मालिकों को इस बात के लिये प्रेरित किया कि मिल के कर्मचारियों के लाभार्थ जो दो कर्मचारी संस्थान चालू थे उनका प्रबन्ध और संगठन

* B Shiva Rao The Industrial Worker in India, Page 236

इस लीग को ही सौंप दिया जाये। इस बम्बई समाज सेवा लीग ने जिससे स्वर्गीय एन एम जोशी का सम्बन्ध था कई कार्यों को चलाया। उदाहरणार्थ रात्रि पाठशालाओं द्वारा जनता में शिक्षा का प्रचार, अनेक पुस्तकालय तथा मैजिक लालटेन की सहायता से व्याख्यान सदस्यों के लिये स्कार्उटिग जन स्वास्थ्य की वृद्धि श्रम-वर्ग के लिए खेल तथा मनोरंजन श्रमिकों को दुर्घटनाओं के समय क्षतिपूर्ति दिलाना सहकारी आन्दोलन को विस्तृत करना आदि। बम्बई व पूना की सेवासदन समितियों ने महिलाओं व बालकों के लिये सामाजिक शैक्षिक तथा चिकित्सा सम्बन्धी कार्य किये हैं। साथ ही समाज सेवकों को प्रशिक्षण भी दिया गया है। बगाल के 'महिला संस्थान' (Women's Institute) ने गांवों में जाकर शिक्षा तथा जनस्वास्थ्य के कार्य को बढ़ाने के लिए 'महिला समितियाँ' स्थापित की हैं। इन सभी संस्थाओं के कल्याण कार्यों का वास्तविक महत्व इस बात में है कि इनसे कार्य करने तथा रहने की परिस्थितियों के उच्च स्तर स्थापित हो जाते हैं जो प्रचलित होने के पश्चात् धन्त में कानून द्वारा निर्धारित न्यूनतम स्तर को भी ऊँचा उठाने में सहायक होते हैं।

नगरपालिकाओं द्वारा श्रम कल्याण कार्य —

कुछ नगरपालिकाओं द्वारा कर्मचारियों के कल्याण हेतु विशेष कदम उठाये गये हैं। कानपुर मद्रास तथा कलकत्ता निगम तथा अजमेर नगरपालिका सहकारी साख समितियाँ चलाती हैं। बम्बई निगम ने एक विशेष कल्याण विभाग के निरीक्षण में कल्याण कार्यों का एक जाल सा फैला रखा है। उसके अन्तर्गत १५ कल्याण केन्द्र हैं जो साधारणतः मिल कर्मचारियो के चालों में स्थित हैं। इनमें कर्मचारियों के लिए कमरे के भीतर एवं मैदान के खेल शिक्षा सुविधाएं चलचित्र प्रदर्शन आदि की व्यवस्था है। एक नर्सरी पाठशाला तथा एक मातृत्व हित केन्द्र भी चलाये जा रहे हैं। प्रत्येक कैम्प मे सहकारी समितियां स्थापित कर दी गई हैं। मद्रास निगम श्रम क्षेत्रों में वयस्क शिक्षा के लिये अनेक रात्रि पाठशालाएं चलाता है। श्रमिको के बालकों के लिए एक शिशु गृह भी है और निगम की कार्यशाला में एक कैन्टीन भी चालू है। शिशु गृहों का प्रबन्ध योग्य नर्स तथा दो महिला सेविकाओं के हाथों में है। बालकों के लिये खेल के मैदान पालनों व झिलमों स्नान गृहों आदि का भी प्रबन्ध है। बच्चों को बिना मूल्य भोजन व दूध दिया जाता है तथा एक नर्सरी कक्षा का भी प्रबन्ध है। निगम की पाठशालाओं में पढ़ने वाले निर्धन बालकों को दोपहर का भोजन मुफ्त दिया जाता है। कलकत्ता निगम भी रात्रि पाठशालाएं चलाता है। अभी हाल ही में दिल्ली में वयस्क शिक्षा की सुविधाएं प्रारम्भ की गई हैं। लगभग सारी नगरपालिकाओं और निगमों में प्राविडेन्ट फण्ड योजना लागू है। कानपुर, अजमेर नागपुर, मद्रास कलकत्ता लखनऊ तथा अहमदाबाद नगरपालिकाओं और निगमों में साधारणतः उन व्यक्तियों के लिए जो प्राविडेन्ट फण्ड योजना के सदस्य होने की शर्तें पूरी नहीं करते अवकाश प्राप्ति धन देने की व्यवस्था भी है।

श्रमिक संघों द्वारा श्रम कल्याण कार्य —

श्रमिक संघों द्वारा किये गये कल्याण कार्यों को देखते हुए स्पष्ट ज्ञात हो जाता है कि श्रमिक संघों के कार्य के क्षेत्र के सीमित होने के कारण उनके कल्याण कार्यों में अनेक रुकावटें पड़ती हैं। यह समझा जाता है कि श्रमिक संघ केवल मालिकों से लाभ लेने के साधन मात्र हैं तथा परस्पर सहायता से हो सकने वाले लाभप्रद कार्यों को उपेक्षित कर सकते हैं। अहमदाबाद सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद्, कानपुर की मजदूर सभा तथा इन्दौर की मिल मजदूर यूनियन' जैसे केवल कुछ ही श्रमिक संघों ने श्रम कल्याण कार्यों के लिए कदम उठाये हैं।

अहमदाबाद की सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद् कल्याण कार्यों पर अपनी आय का ६० प्रतिशत व ७ प्रतिशत तक व्यय करती है। यह राशि लगभग चालीस हजार रुपये तक होती है। इन कल्याण कार्य के अन्तर्गत तीन दिन की तथा तीन रात्रि की पाठशालाएं श्रमिक वर्ग की लड़कियों के लिए एक आवास युक्त बोर्डिंग हाउस लड़कों के लिए दो अध्ययन कक्ष, ६६ वाचनालय व पुस्तकालय २७ शारीरिक शिक्षा व समाज केन्द्र ६ व्यायामशालाएं आदि बने हुये हैं। छात्रवृत्तियाँ भी प्रदान की जाती हैं तथा दर्जी के काम में व्यवसायिक प्रशिक्षण देने की भी योजना है। इस उद्देश्य के लिए लगभग २४ विशेष निरीक्षक तथा कुछ महिला कर्मचारियों की नियुक्ति की गई है। ये निरीक्षक प्रतिदिन श्रमिकों के सम्पर्क में आते हैं तथा उनके रहने के क्षेत्रों में जाकर उनकी कठिनाइयों को सुलझाने में सहायता करते हैं और श्रमिकों के आर्थिक और सामाजिक स्तर को ऊपर उठाने के हेतु उनके जीवन के महत्वपूर्ण पहलुओं पर ध्यान देते हैं। १९५१ से खास केन्द्र भी संगठित किये गये हैं जिनकी संख्या ३५ है। यह परिषद् विभिन्न बस्तियों में पांच चिकित्सालय चलाती है जिनमें एक एलोपैथिक, एक होम्योपैथिक व तीन आयुर्वेदिक हैं। साथ ही एक मातृत्व हित-गृह भी है। परिषद् द्वारा एक कर्मचारी सहकारी बैंक भी चालू किया गया है। इस बैंक से ११ आवास समितियां १७ साख समितियाँ और १० संभरण समितियाँ सम्बद्ध (Affiliated) हैं। अपने सदस्यों को परिषद् कानूनी सहायता भी देती है

कानपुर की "मजदूर सभा" एक वाचनालय, एक पुस्तकालय तथा एक चिकित्सालय श्रमिकों के लिए चलाती है। कुछ रेलवे कर्मचारी संघों ने सहकारी समितियाँ तथा अनेक प्रकार की निधियाँ विशेष लाभों के लिये स्थापित की हैं, उदाहरणार्थ कानूनी सहायता मृत्यु तथा अवकाश के समय सहायता बेरोजगारी व बीमारी लाभ तथा जीवन बीमा आदि। उत्तर प्रदेश में भारतीय श्रम संघ ने लगभग ४८ केन्द्र खोले हैं जिनमें अनेक प्रकार के कल्याण कार्य चालू हैं। कहा जाता है कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ कांग्रेस की असम शाखा ने एक समाज कल्याण संस्थान सरकारी सहायता से प्रारम्भ किया है जहाँ प्रत्येक चाय बागान के कुछ श्रमिकों को सामाजिक व कल्याण कार्यों में प्रशिक्षित करने की व्यवस्था है। इन्दौर

के मिल मजदूर श्रम संघ ने एक श्रम-कल्याण केन्द्र खोला है जो तीन विभागों में कार्य कर रहा है बाल मन्दिर, कन्या मन्दिर तथा महिला मन्दिर। बाल मन्दिर में ४ वर्ष से लेकर १ वर्ष की आयु तक के बालकों को लिखना पढ़ना गिनना आदि सिखाया जाता है तथा खेलों और शारीरिक शिक्षा पर भी ध्यान दिया जाता है। बालकों के लिये खेल का मैदान भी है। नृत्य संगीत तथा सामाजिक उत्सव भी आयोजित किये जाते हैं। कन्या मन्दिर में श्रमिक वर्ग के परिवारों की ऐसी लड़कियों को जिन की आयु १ से १६ वर्ष तक की होती है प्रारम्भिक शिक्षा दी जाती है तथा सिलाई, बुनाई कताई आदि कार्य सिखाये जाते हैं। स्वास्थ्य विज्ञान व बच्चों की देखभाल का प्रशिक्षण भी दिया जाता है। महिला मन्दिर में भी इसी प्रकार की शिक्षा महिला श्रमिकों को दी जाती है। इसके अतिरिक्त संघ एक पुस्तकालय एक वाचनालय तथा रात्रि कक्षाएं भी चलाता है और मजदूर बस्तियों में कमरे के भीतर एवं मैदान के खेलों की भी व्यवस्था की गई है।

किन्तु साधारणतः श्रमिक संघों ने कल्याण कार्यों में अधिक रुचि नहीं ली है। इन कार्यों में सबसे बड़ी बाधा यह है कि श्रम संघों के पास धन और योग्य नेताओं का अभाव है। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि श्रमिक संघ कल्याण कार्यों को चलायें तो वे अपनी स्थिति को विशेष रूप से दृढ़ कर सकेंगे।

कल्याण कार्यों के कुछ विशेष पहलू

कैन्टीनें — (Canteens)

सारे संसार में अब इस बात को मान लिया गया है कि हर औद्योगिक संस्था का कैन्टीन एक आवश्यक अंग है। ये श्रमिकों के स्वास्थ्य कार्यक्षमता तथा उनके हित की दृष्टि से अत्यधिक लाभदायक होती हैं। एक औद्योगिक कैन्टीन के उद्देश्य हैं—श्रमिकों को अपूर्ण व असन्तुलित आहार के स्थान पर सन्तुलित आहार उपलब्ध करना सस्ता तथा स्वच्छ भोजन प्रदान करना और काम करने के स्थान के निकट ही विश्राम करने का अवसर देना फैक्ट्री में कई घण्टे काम करने के पश्चात् उनको काम के स्थान से आने जाने की कठिनाइयों को दूर करना और इस प्रकार उनके समय की बचत करना भोजन एवं खाद्य सामग्री प्राप्त करने में जो कठिनाइयां होती हैं उनको दूर करना आदि। इसके अतिरिक्त कैन्टीन द्वारा एक ऐसा मिलन स्थान प्राप्त हो जाता है जिसमें कारखाने के हर विभाग के श्रमिक परस्पर मिल सकते हैं तथा वहां वह न केवल खाना खाते हैं वरन् बातचीत भी कर सकते हैं और विश्राम करके अपनी थकान दूर कर सकते हैं। इस प्रकार कैन्टीन का श्रमिकों के आराम विश्वास तथा हौसले पर उचित प्रभाव पड़ता है। कैन्टीनों की स्थापना की ओर ध्यान देना राज्य का विशेष कार्य माना जाना चाहिये और कैन्टीन का चलाना मालिकों द्वारा एक राष्ट्रीय निवेश समझना चाहिये।

योरुप और अमरीका के देशों के श्रमिकों में कैन्टीनें अत्यधिक लोकप्रिय हैं

तथा ये पोषण व आहार विद्या पर प्रयोग करने वाली प्रयोगशालायें मानी जाती हैं। ये औद्योगिक कल्याण के एक साधन के रूप में निरन्तर प्रगति कर रही हैं। ब्रिटेन में सन् १९३७ के फैक्टरी अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों को भोजनालय के लिए स्थान देना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त वहाँ फैक्टरी निरीक्षकों को अभी हाल ही में विशेष कारखानों में उचित तथा अच्छी कैन्टीनें बनवाने की आज्ञा देने के अधिकार दिये गये हैं। किन्तु भारत में श्रमिकों तथा मालिकों ने कैन्टीनों द्वारा की गई मूल्यवान सेवाओं को नहीं पहचाना है। अधिकांश स्थानों में कैन्टीनें चालू नहीं की गई हैं तथा जहाँ हैं भी वे अधिकतर ठेकेदारों द्वारा चलाई जाती हैं जो निजी चाय की दुकानों के समान भी अच्छी नहीं होती हैं। ऐसी कैन्टीनों में न तो सस्ता और अच्छा भोजन ही मिलता है और न ही उनका वातावरण स्वच्छ, स्वस्थ तथा आकर्षक होता है। ठेकेदार श्रमिकों के हित की अपेक्षा अपने लाभ की ओर अधिक ध्यान देते हैं। परिणामस्वरूप दोपहर के भोजन को श्रमिक अपने साथ लाना अधिक उचित समझते हैं तथा कैन्टीनें श्रमिकों में लोकप्रिय नहीं हो पाई हैं। अधिकांश श्रमिक इस बात से भी अनभिज्ञ हैं कि उचित तथा पोषक आहार का उनके स्वास्थ्य पर क्या लाभप्रद प्रभाव पड़ता है। इसलिए औद्योगिक संस्थानों में अच्छी कैन्टीनें खोली जानी अत्यन्त आवश्यक हैं।

एक कैन्टीन को सफलतापूर्वक चलाने के लिए कुछ विशेष बातें होनी आवश्यक हैं। कैन्टीन खुली साफ तथा स्वच्छ होनी चाहिए और फैक्टरी के अन्दर होनी चाहिए। उसमें मित्रता का वातावरण पैदा करने के लिए पूरा प्रयत्न होना चाहिये जिससे श्रमिक वास्तव में शांति व विश्राम का अनुभव कर सकें। कैन्टीन को लाभ के आधार पर नहीं चलाना चाहिए तथा वहाँ बनने वाली वस्तुएं अच्छे प्रकार की होनी चाहिएँ। मालिकों को इसके लिये आर्थिक सहायता देनी चाहिये जिससे कैन्टीन सस्ते मूल्य पर वस्तुएं बेच सकें। कारखाने के प्रबन्धकर्ता भवन मेज कुर्सियाँ तथा पानी के बर्तन आदि भी बिना मूल्य के दे सकते हैं। कैन्टीन मैनेजर तथा अन्य कर्मचारियों का वेतन कारखाने के सामान्य वेतन बिल में सम्मिलित किया जा सकता है। यह उल्लेखनीय है कि कुछ मालिकों ने जैसे टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी ने, देहली क्लॉथ मिल्स व बम्बई में लीवर ब्रदर्स ने तथा भारतीय चाय बाजार विस्तार बोर्ड ने अपने कर्मचारियों के लिए बहुत अच्छी कैन्टीनों की व्यवस्था की है। अनुभव द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि जो कैन्टीनें केवल लाभ अर्जित करने के लिये नहीं अपितु उचित मूल्यों पर स्वास्थ्यकर भोजन देने के लिये चलाई जाती हैं श्रमिक इन अच्छी कैन्टीनों के उपयोग करने के विरोध में नहीं होते हैं। इसलिये मालिकों की यह आपत्ति उचित नहीं है कि श्रमिकों में कैन्टीन उपयोग करने की प्रवृत्ति अभी विकसित नहीं हो पाई है तथा वे अपने-अपने घरों से भोजन साथ लाना अधिक पसन्द करते हैं। यह भी उल्लेखनीय है कि भारत सरकार ने औद्योगिक कैन्टीनों के महत्व को पूर्णतः स्वीकार कर लिया है।

१९४८ के कारखाना अधिनियम के अनुसार राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे तमाम ऐसे कारखानों में जहाँ २५० या इससे अधिक श्रमिक काम कर रहे हों कैन्टीनें स्थापित करने के नियम बना सकती हैं। इन नियमों में निम्न बातें होनी चाहियें—कैन्टीनें स्थापित करने की तिथि निर्माण स्थान मेज-कुर्सी तथा सामान का स्तर आदि भोजन व उसके मूल्य प्रबन्धकर्ता समिति का संविधान तथा इस समिति में श्रमिकों का प्रतिनिधित्व आदि। राज्य सरकारों ने इस सम्बन्ध में नियम बना दिये हैं तथा उन तमाम कारखानों में जिनमें २५ या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हों कैन्टीनों की स्थापना अनिवार्य कर दी गई है।

शिशुगृह —(Creches)

जहाँ तक शिशुगृहों का प्रश्न है भारत सरकार ने कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को कुछ नियम बनाने के अधिकार दिये हैं। राज्य सरकारें यह नियम बना सकती हैं कि ऐसे तमाम कारखानों में जहाँ ५ या इससे अधिक महिलाएं काम करती हैं उनके ६ वर्ष से कम के बालकों के लिये एक अलग उचित कमरा सुरक्षित कर देना चाहिये। ऐसे कमरों के स्तर के लिये और बच्चों की देख रेख के लिये भी नियम बनाये जा सकते हैं। बम्बई, मध्य प्रदेश उत्तर प्रदेश मद्रास बंगाल जैसे अधिकांश राज्यों ने इस अधिकार के अन्तर्गत नियम बनाये भी हैं। उत्तर प्रदेश में मातृत्व हित लाभ अधिनियम के अन्तर्गत उन तमाम कारखानों में जिनमें ५० या इससे अधिक महिला श्रमिक कार्य करती हैं एक शिशुगृह खोलना आवश्यक है। परन्तु श्रम अनुसंधान समिति के अनुसार केवल कुछ कारखानों को छोड़कर अधिकांश में शिशुगृह उचित प्रकार से स्थापित नहीं किये गये हैं। साधारणतः शिशुगृह कारखानों के उपेक्षित स्थानों पर होते हैं तथा कार्य करने के स्थान से भी दूर होते हैं। उनमें बालकों को बहलाने के लिए खिलौने तक नहीं होते तथा बच्चों की देख-रेख के लिए भी कोई व्यक्ति नहीं होता। यदि कोई आया या नर्स होती भी है तो वह बालकों की आवश्यकता की ओर पूर्ण रूप से ध्यान नहीं देती है। साधारणतः इस कार्य के लिये नर्सों को कम वेतन मिलता है। जिन्हें अच्छे शिशुगृह कहा जा सकता है वहाँ भी बच्चों की देख रेख भली प्रकार नहीं होती। पालने बहुत कम होते हैं तथा बच्चे जमीन पर धूल में पड़े रहते हैं। अगर कोई अधिकारी या समिति निरीक्षण करती है तो ऊपरी दिखावट तो काफी कर दी जाती है परन्तु फिर भी स्थिति सन्तोषजनक नहीं दिखाई पड़ती। इस प्रकार जहाँ नियम लागू भी किये गये हैं वहाँ यह देखा गया है कि केवल नियम के शब्दों को निभाया गया है और उनके पीछे छिपी हुई मूल भावना की उपेक्षा की गई है। अनेक मालिक शिशुगृहों की स्थापना के उत्तर
...ने के लिए यह कह देते हैं कि उनके कारखाने में ऐसी स्त्रियाँ काम
में ... अविवाहित हैं या विधवा हैं या माता बनने के योग्य आयु में ...
नये शिशुगृहों की ... आवश्यकता नहीं है।
बहुत अधिक ... माताओं की कार्य-कुशलता

निर्भर इस बात पर बहुत निर्भर करती है कि उन्हें अपने बच्चों की ओर से चिन्ता न हो और यह विश्वास हो कि उनके बच्चे सुरक्षित हैं तथा उनकी उचित प्रकार से देख भाल हो रही है। जब शिशुगृह नहीं होते हैं तब स्त्रियाँ अपने पास काम के समय भी मशीनों के निकट अपने बच्चों को रखती हैं अथवा इससे भी बुरी बात यह है कि उन्हें अफीम खिलाकर घर पर ही छोड़ देती हैं। किन्तु अब जैसा कि कल्याण कार्यों के अन्तर्गत उल्लेख किया गया है अधिकांश मिलों में शिशुगृहों की व्यवस्था कर दी गई है। मदुरा मिल्स बकिंघम एण्ड कर्नाटिक मिल्स देहली क्लॉथ मिल आदि ऐसे कुछ स्थानों पर शिशुगृहों की अत्यन्त सन्तोषजनक व्यवस्था है। इन मिलों में बच्चों के लिये सब सुविधाओं से युक्त शिशुगृह हैं। बच्चों के लिये दूध का भी प्रबन्ध है। खानों तथा बागान में शिशुगृहों की व्यवस्था नहीं है और कुछ स्थानों पर अत्यन्त असन्तोषजनक व्यवस्था है। सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम में तथा खानों में शिशुगृहों की स्थापना के लिये कुछ निश्चित स्तर बना दिये गये हैं। यह आशा की जाती है कि शिशुगृहों की उन्नति के लिये पर्याप्त पग उठाये जायेंगे।

मनोरंजन सुविधाएं (Recreational Facilities)

मनोरंजन की सुविधा जैसा श्रम अनुसंधान समिति ने भी कहा है बहुत ही महत्वपूर्ण और उपयोगी होती है। भारतीय श्रमिकों को शिक्षा व प्रशिक्षण देने में भी इनका काफी महत्त्व है। कारखानों और खानों में अधिक घण्टे काम करने से जो कुछ थकान और शारीरिक क्लान्ति उत्पन्न हो जाती है उनको मनोरंजन सुविधाएं कम कर सकती हैं तथा श्रमिक के जीवन में प्रसन्नता और शान्ति लाने में सहायक सिद्ध होती हैं। साधारण औद्योगिक श्रमिक धूल धुआँ तथा गर्मी से परिपूर्ण वातावरण में कार्य करता है तथा ऐसे भीड़ भाड़ वाले अस्वच्छ मकानों में रहता है जिन्हें काल कोठरी कहना अतिशयोक्ति न होगा। इसका परिणाम यह होता है कि अधिकांश श्रमिक कई दुर्गुणों के शिकार हो जाते हैं। जब तक श्रमिकों को इन दुर्गुणों से दूर नहीं रखा जायगा तथा उनके मनोरंजन की व्यवस्था नहीं की जाएगी, जिससे वे अपने खाली समय को अच्छे वातावरण में व्यतीत कर सकें तब तक इन लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा करने में कोई भी युक्ति सफल नहीं हो सकती। मनोरंजन की सुविधाएं जैसे चलचित्र प्रदर्शन रेडियो सेट आदि इस उद्देश्य की पूर्ति में सहायक हो सकते हैं। अनेक दुर्गुणों को जैसे शराब जुआ तथा विशेषकर वेश्यावृत्ति को जो श्रम क्षेत्रों में स्त्री व पुरुषों की संख्या में असमानता होने के कारण काफी पाई जाती है दूर करने में भी मनोरंजन सुविधाएं सहायक होती हैं। उद्योगों में अधिक यंत्रीकरण हो जाने से तथा कार्य के घंटों में कमी हो जाने से श्रमिकों का समय अब पहले की अपेक्षा अधिक खाली रहता है। यह बात महत्वपूर्ण है कि इस खाली समय का किस प्रकार उपयोग किया जाता है। यह कहा जाता है कि किसी भी देश की सभ्यता तथा कार्य-क्षमता की कसौटी यही है कि उस देश में खाली समय का उपयोग किस प्रकार किया जाता है। कार्य दिन की समाप्ति पर

तथा बाहर को विश्राम के घंटे आदि में जो खाली समय रहता है उसमें मनोरंजन सुविधाओं की व्यवस्था से श्रमिकों के स्वास्थ्य में उन्नति होगी तथा उनके ज्ञान में भी वृद्धि होगी।

१९२४ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने श्रमिकों के अवकाश के समय का उपयोग करने के हेतु कुछ सुविधाओं में वृद्धि करने के लिये एक सिफारिश की थी। इस सिफारिश में उल्लेख किया गया है कि "अपने अवकाश के समय में श्रमिकों को अपनी व्यक्तिगत रुचि के अनुसार शारीरिक मानसिक तथा नैतिक शक्तियों का स्वतन्त्रतापूर्वक विकास करने का अवसर मिलता है। इस प्रकार का विकास सभ्यता की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है श्रमिकों के अवकाश के समय का सबसे अच्छा उपयोग यह हो सकता है कि श्रमिक के लिये उसकी रुचियों के अनुसार कुछ न कुछ साधनों की व्यवस्था की जाये। इस प्रकार श्रमिक पर उसके साधारण कार्य से जो भार पड़ता है उसमें भी कुछ कमी होगी और इससे उसकी उत्पादन क्षमता बढ़ जायेगी तथा उत्पादन अधिक होगा। इन प्रकार से यह सब साधन कार्य के आठ घण्टों में श्रमिक से अधिक से अधिक अच्छा कार्य लेने में सहायक हो सकते हैं।

भारत में राज्य द्वारा अथवा मालिकों द्वारा मनोरंजन सुविधाओं पर बहुत कम ध्यान दिया गया है यद्यपि जैसा कि 'मालिकों के कल्याण कार्य' के अन्तर्गत उल्लेख से स्पष्ट है कई स्थानों पर अच्छे कार्य भी किये गये हैं। सरकार ने भी अनेक राज्यों के श्रम कल्याण केन्द्रों में मनोरंजन सुविधाओं की व्यवस्था की है। कुछ मालिक शिकायत करते हैं कि श्रमिकों में क्लब लोकप्रिय नहीं है। इसका कारण यह है कि इन केन्द्रों में या तो अच्छा प्रबन्ध नहीं होता या इनमें टैनिस बिलियर्ड्स आदि जैसे आधुनिक खेलों की व्यवस्था होती है जिनका खेलना श्रमिकों की क्षमता के बाहर है। जहाँ कहीं भी उचित मनोरंजन की व्यवस्था है तथा प्रबन्ध ठीक है वहाँ मनोरंजन सुविधाएं श्रमिकों तथा उनके परिवारों में बहुत लोकप्रिय सिद्ध हुई हैं। श्रम अनुसंधान समिति के विचार में मनोरंजन सुविधाओं को मालिकों के एक ऐच्छिक कार्य के रूप में माना जाना चाहिये क्योंकि उनके लिये कानून द्वारा कोई नियम बनाना कठिन है। मनोरंजन की व्यवस्था करने में अधिक लागत नहीं आती लेकिन श्रमिकों की कार्य-कुशलता तथा मनोवृत्ति पर इसके प्रभाव बहुत अच्छे पड़ते हैं।

चिकित्सा सुविधाएं —(Medical Facilities)

चिकित्सा सुविधाओं और स्वच्छ वातावरण का जीवन में अत्यधिक महत्व है। रायल श्रम आयोग ने इस बात पर जोर दिया था कि औद्योगिक मजदूरों के स्वास्थ्य का महत्व स्वयं उनके ही लिए नहीं है अपितु उसका सम्बन्ध साधारणतया औद्योगिक विकास व प्रगति से भी है। बीमारी तथा श्रमिकों की शारीरिक दुर्बलता अनेक बुराइयों का कारण बन जाती है। इन्हीं के कारण अनुपस्थिति होती है नैतिकता गिर जाती है तथा समय की पाबन्दी नहीं हो पाती। परिणामस्वरूप उत्पत्ति कम होती है काम बिगड़ जाता है तथा मालिक मजदूरों के सम्बन्ध खराब हो जाते हैं।

भारत में श्रमिकों के स्वास्थ्य पर कई बातों का बुरा प्रभाव पड़ता है जैसे अस्वस्थ जलवायु में काम करना, कारखानों में अस्वास्थ्यकर दशायें, गर्म देशों के रोग और श्रमिकों की अज्ञानता व निर्धनता के कारण बीमारी, काम करने के अधिक घण्टे, कम मजदूरी तथा उनकी प्रवासिता जिसके कारण वे गावों में आते हैं तथा शहरों के जीवन को अपने स्वास्थ्य के लिये अनुकूल नहीं पाते आदि। इसलिये श्रमिकों के लिये देश में चिकित्सा सुविधाओं की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण कार्य है।

सारे देश में चिकित्सा व्यवस्था की काफी कमी है और मालिकों द्वारा दी गई सुविधाएं भी अपर्याप्त हैं। यहाँ यह भी प्रश्न उठता है कि चिकित्सा सुविधाओं के लिये व्यय के वहन करने का उत्तरदायित्व कहाँ तक मालिकों पर होना चाहिये। इस बात को सब मानते हैं कि यह कर्त्तव्य मालिकों का ही है कि वह अपने श्रमिकों के ऐसे शारीरिक कष्टों का जो प्रत्यक्ष रूप में औद्योगिक रोजगार के कारण उत्पन्न होते हैं निवारण करें। दूसरी ओर समाज का भी यह कर्त्तव्य है कि औद्योगिक रोजगार तथा इससे उत्पन्न हुई बुराइयों का उत्तरदायित्व कुछ अपने ऊपर भी ले और इस प्रकार समाज पर भी इस बात का भार होना चाहिये कि वह कुछ सीमा तक चिकित्सा सुविधाओं की लागत वहन करे। सरकार ने इस बात को माना है और अब कर्मचारी राज्य बीमा योजना लागू होने के पश्चात् चिकित्सा सहायता मालिकों का उत्तरदायित्व न रहेगा। परन्तु श्रम अनुसंधान समिति ने कहा है कि "चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करना मुख्यतः राज्य का उत्तरदायित्व होने पर भी इसमें मालिकों तथा श्रमिकों को स्वयं भी सहायता करनी चाहिये। कुछ ऐसी चिकित्सा सुविधाएं भी हैं जो केवल मालिकों के उत्तरदायित्व में ही आती हैं, विशेषकर दुर्घटनाओं अथवा आकस्मिक बीमारियों के समय प्राथमिक चिकित्सा सहायता की व्यवस्था, एम्बुलेंस की व्यवस्था, औद्योगिक स्वच्छता के स्तर को बनाये रखना आदि मालिकों का ही काम है। भारत में कानून द्वारा तो मालिकों पर केवल इस बात का उत्तरदायित्व सौंपा गया है कि वह प्राथमिक चिकित्सा की सुविधाओं की व्यवस्था करें और इसके लिए फैक्टरी में कुछ सामान रखें। परन्तु यह देखा गया है कि इस सामान की उचित व्यवस्था नहीं होती और अगर सामान होता भी है तो आवश्यकता पड़ने पर उसका उपयोग नहीं किया जाता। अनेक स्थानों पर एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं होता जिसको इस बात का प्रशिक्षण दिया गया हो कि वह घटना-स्थल पर तुरन्त प्राथमिक चिकित्सा सहायता दे सके। इस प्रकार कानून की यह धारायें उचित प्रकार से कार्य रूप में परिणत नहीं की गई हैं। किन्तु फिर भी जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है अनेक मालिकों ने श्रमिकों के लिए हस्पताल तथा चिकित्सालयों की व्यवस्था की है यद्यपि उनमें से अधिकांश की दशा सन्तोषजनक नहीं है। स्वास्थ्य निरीक्षण तथा विकास समिति (भोर समिति) की सिफारिशों के परिणामस्वरूप देश में चिकित्सा व्यवस्था की उन्नति की ओर कुछ पग उठाये गये थे। कर्मचारी राज्य बीमा योजना से कारखाना श्रमिकों के लिये बीमारी में रोजगार से उत्पन्न

प्रसूति में तथा प्रसव के समय चिकित्सा सुविधायें दी गई हैं। इन सुविधाओं से भी श्रमिक के स्वास्थ्य में उन्नति होनी चाहिये। केन्द्रीय सरकार ने एक औद्योगिक स्वास्थ्य विभाग संगठन (Industrial Hygiene Organisation) तथा एक केन्द्रीय श्रम संस्थान (Central Labour Institute) की स्थापना भी की है जिन्होंने अनेक संकटग्रस्त उद्योगों में अन्वेषण किया है। औद्योगिक कर्मचारियों को कल्याण स्वास्थ्य तथा सुरक्षा कार्यों की शिक्षा देने के लिये तीन क्षेत्रीय म्यूजियम या प्रदर्शन-गृह खोले जा रहे हैं जिनमें से एक कानपुर में एक कलकत्ता में तथा एक कोयम्बटूर में होगा। इस बात पर भी जोर दिया जा रहा है कि देश में औद्योगिक चिकित्सा के लिये एक अखिल भारतीय मैडिकल सर्विस का भी विकास होना चाहिये।

नहाने धोने की सुविधाएं — (Washing and Bathing Facilities)

कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत यह आवश्यक कर दिया गया है कि उस प्रत्येक कारखाने में जहाँ ऐसा कोई काम हो रहा है जिसमें श्रमिकों का किसी हानिप्रद या गन्दी वस्तु से सम्पर्क होता है वहाँ श्रमिक को पर्याप्त मात्रा में धोने योग्य जल तथा उसके प्रयोग के लिये उचित स्थान एवं सुविधायें दी जानी चाहिए। लगभग सारे कारखाने धोने के लिये जल प्रदान करते हैं परन्तु साबुन सोडा तथा तौलिये जो कि आवश्यक हैं नहीं दिये जाते। कई स्थानों पर नलों बाल्टियों तथा चिलमचियों की संख्या पर्याप्त नहीं है। केवल कुछ ही स्थानों पर धोने की सुविधायें पूर्णरूप से सन्तोषजनक हैं। कारखाने के भीतर नहाने की व्यवस्था बहुत कम मालिकों ने प्रदान की है यद्यपि ये सुविधायें अत्यन्त आवश्यक हैं क्योंकि जैसा कि रायल श्रम आयोग का कथन है कि जो श्रमिक भीड़ भाड़ के क्षेत्रों में रहते हैं उनके आवासों पर भी धोने आदि की सुविधायें अपर्याप्त हैं अतः स्नान की सुविधाओं से उनको काफी आराम मिलेगा और स्वास्थ्य तथा कार्य-कुशलता में वृद्धि होगी। खानों में जहाँ स्नान की सुविधायें अत्यन्त आवश्यक हैं वहाँ केवल कुछ खानों के मालिकों ने ही खानों के ऊपर स्नानगृहों की व्यवस्था की है। इस सम्बन्ध में झरिया कोयला क्षेत्र में टाटा की खानों का विशेषकर उल्लेख किया जा सकता है जहाँ पर ३२ श्रमिक एक साथ फुब्बारों से स्नान कर सकते हैं और पुरुषों तथा स्त्रियों के स्नानगृहों का अलग अलग प्रबन्ध है। अन्य खानों में नहाने की सुविधायें अत्यन्त असन्तोषजनक हैं यद्यपि अब कोयला खान श्रमिक आवास तथा सामान्य कल्याण निधि अधिनियम के अन्तर्गत इस सम्बन्ध में कुछ सुधार हो रहे हैं।

प्रौवीडेन्ट फण्ड —

प्रौवीडेन्ट फण्ड अवकाश प्राप्ति धन तथा पेन्शन आदि समाज सुरक्षा योजना के अन्तर्गत आते हैं जिनका अगले अध्याय में विस्तारपूर्वक अध्ययन किया गया है। इस सम्बन्ध में जो कुछ कार्य मालिकों ने किये हैं उनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है।

शिक्षा की सुविधाएं — (Educational Facilities)

भारत जैसे अशिक्षित देश में श्रमिकों और उनके बच्चों के लिये शिक्षा सुविधाओं की व्यवस्था करना एक महत्वपूर्ण समाज सेवा है। हमारे देश की अनेक कठिनाइयों का मूल कारण श्रमिकों में शिक्षा का अभाव है। शिक्षा की आवश्यकता और महत्ता औद्योगिक विकास के समय बहुत होती है क्योंकि उद्योगों की स्थापना के समय कृषि व्यवसाय से उद्योगों में आने वाले श्रमिकों की संख्या बहुत होती है और उनको औद्योगिक तकनीक और कुशलता सीखनी पड़ती है। अगर सामान्य शिक्षा की नींव अच्छी नहीं होती तो प्रशिक्षण में व्यय अधिक होगा और कठिनाई भी अधिक होगी। भारत में इस समय विभिन्न प्रकार के कुशल श्रमिकों का अभाव है। यदि शिक्षा तथा प्रशिक्षण की ओर विशेष रूप से प्रयत्न किये जायें तब ही इस अभाव की पूर्ति हो सकती है। श्रमिकों की शिक्षा का उद्देश्य केवल अशिक्षा दूर करना तथा औद्योगिक कार्यकुशलता में योग्यता प्राप्त कराना ही नहीं है। शिक्षा का तात्पर्य केवल यह नहीं है कि मनुष्य को लिखना पढ़ना और हिसाब लगाना आ जाये। इसका उद्देश्य जीवन की समस्त बातों को सिखाना है जिनमें औद्योगिक सामाजिक तथा व्यक्तिगत बातें भी होती हैं। सांस्कृतिक जीवन के विकास तथा रहन सहन के स्तर में उन्नति के साथ साथ श्रमिकों की विचार शक्ति का भी विकास होना चाहिये और उन्हें यह जानना चाहिये कि अपने संगठनों को किस प्रकार बनाया जाता है तथा अपनी समस्याओं जैसे काम करने के स्थानों पर कल्याण सुविधाओं की व्यवस्था करना आदि पर किस प्रकार विचार तथा कार्य किया जा सकता है। श्रमिक अब अपने कल्याण कार्यों के प्रबन्ध तथा उन्नति में अधिक सक्रिय भाग ले रहे हैं परन्तु कल्याण कार्यों के कुशल प्रशासन के लिये शिक्षित व्यक्ति होने चाहिएं। यह बात भी कि श्रमिक किस सीमा तक कारखाने के प्रबन्ध में भाग ले सकते हैं, तथा कार्य और रहन की दशाओं में किस सीमा तक उन्नति कर सकते हैं इस बात पर निर्भर है कि शिक्षा द्वारा उनकी योग्यता का कितना विकास हुआ है। औद्योगिक शांति के लिये मालिक मजदूर समितियों की सफलता भी श्रमिकों की शिक्षा पर निर्भर है। श्रमिकों के बालकों को भी उचित शिक्षा देना बहुत महत्वपूर्ण है, विशेषकर ऐसे देशों में जहां बाल श्रमिकों की संख्या अब भी काफी है। शाही श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि औद्योगिक श्रमिकों की शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये तथा कारखानों के स्कूलों में श्रमिकों के बालकों की शिक्षा के विकास के लिए प्रयत्न करने चाहिएं। शाही श्रम आयोग के शब्दों में "भारत में लगभग सभी औद्योगिक श्रमिक अशिक्षित हैं। यह ऐसी बात है जो किसी अन्य महत्वपूर्ण औद्योगिक देश में नहीं पाई जाती। इस अशिक्षा के जो परिणाम होते हैं उनका वर्णन नहीं किया जा सकता। अशिक्षा का परिणाम मजदूरी में स्वास्थ्य में कार्यक्षमता में संगठन में तथा अन्य कई रूपों में सामने स्पष्ट रूप से आता है। आधुनिक मशीन उद्योग एक विशेष सीमा तक शिक्षा पर निर्भर है तथा अशिक्षित

श्रमिकों के सहयोग से इसका निर्माण करना कठिन तथा खतरनाक है।"[1] श्री हैरल्ड बटलर का कथन है कि "भारत के अधिकांश कारखानों में यह देखा गया है कि श्रमिक अपनी मशीनों के मालिक न होकर उनके दास बन जाते हैं। वे मशीनों को ठीक प्रकार से समझते भी नहीं और लापरवाही से प्रयोग करने के परिणामस्वरूप उन देशों की अपेक्षा जहाँ कर्मचारियों की यान्त्रिक रुचि होती है हमारे देश की मशीनें जल्दी खराब हो जाती है।"[2] हमारी पंचवर्षीय आयोजनाओं की सफलता भी इस बात पर निर्भर करती है कि हमारे श्रमिक नए निर्माण के वातावरण को कहाँ तक समझते हैं और स्वयं को उसके अनुकूल बनाते हैं और उत्पादन बढ़ाने में कहाँ तक सहयोग देते हैं तथा देश की अर्थव्यवस्था में अपने स्थान को उचित प्रकार से समझते हैं। इस प्रकार श्रमिकों की शिक्षा के लिए विशेष रूप से प्रयत्न करने आवश्यक हैं।

इस प्रकार शिक्षा का अनेक कारणों से महत्व बहुत बढ़ जाता है। शिक्षा से ही श्रमिक अच्छे नागरिक बन सकते हैं। शिक्षा प्रसार से ही औद्योगिक सम्बन्धों में उन्नति हो सकती है तथा श्रमिक यह समझ सकते हैं कि आधुनिक आर्थिक समस्याएं क्या हैं? शिक्षा से ही श्रमिको में अनुशासन की भावना आ सकती है तथा उनकी विचार शक्ति तथा अधिकाधिक गुण विकसित हो सकते हैं। श्रम अनुसंधान समिति के विचार में शिक्षा देने का उत्तरदायित्व राज्य का होना चाहिए तथा मालिकों पर इसका उत्तरदायित्व डालने की नीति नहीं अपनानी चाहिए। यदि वास्तव में कुछ मालिक ऐसी सुविधाएं देते भी है तो उसे मालिक की सहृदयता ही समझना चाहिए। परन्तु फिर भी मालिकों को अपने ही हित के लिए श्रमिकों की शिक्षा में रुचि लेनी चाहिए। कम से कम रेडियो व्याख्यानो आदि के द्वारा तो वे शिक्षा दे ही सकते हैं तथा वे वयस्क शिक्षा की भी व्यवस्था कर सकते है। अनेक जागरूक मालिको ने श्रमिकों तथा उनके बालको को अच्छी शिक्षा सुविधाएं प्रदान की है जिनका उल्लेख "मालिकों द्वारा कल्याण कार्य" की व्याख्या में किया जा चुका है। इस सम्बन्ध में टाटा लोहा और इस्पात कम्पनी व बकिंघम तथा कर्नाटिक मिल्स विशेषकर उल्लेखनीय हैं। किन्तु वयस्क शिक्षा की सुविधाएं देहली कपड़ा एवं बनारस मिल्स और उत्तर प्रदेश बंगाल तथा बम्बई के राजकीय श्रम कल्याण केन्द्रों को छोड़ कर और कहीं अधिक संतोषजनक नहीं हैं। अहमदाबाद सूती कपड़ा मिल मजदूर परिषद के द्वारा भी वयस्कों के लिए रात्रि पाठशालाएं चलाई जाती हैं। बम्बई, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास के श्रम कल्याण केन्द्रों में भी व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश सरकार कानपुर में एक सूती वस्त्र संस्थान तथा एक चमड़े के काम का स्कूल चलाती है। अपने कर्मचारियों को प्रशिक्षण देने के लिए रेलवे के अपने अलग व्यावसायिक स्कूल हैं। टाटा लोहा एवं इस्पात कम्पनी कुशल कर्मचारियों को उच्च तकनीकी शिक्षा देने के लिए एक तकनीकी संस्थान चलाती है। अनेक स्थानों पर

1 *Report of the Royal Commission on Labour page 27*

2. Harold Butler *Problem of Industry in the East, page 24–25*

रोजगार के दफ्तरों के अधीन व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना की गई है। केन्द्रीय सलाहकार शिक्षा बोर्ड की रिपोर्ट (जो कि सार्जेन्ट रिपोर्ट के नाम से प्रसिद्ध है) के परिणामस्वरूप भारत सरकार ने सारे देश के लिये शिक्षा विकास की एक पंचवर्षीय योजना बनाई थी। केन्द्र तथा राज्यों दोनों की ही सरकारें शिक्षा सुविधाओं के पुनर्संगठन व उन्नति के लिये पग उठा रही हैं। उड़ीसा तथा उत्तर प्रदेश की तरह अनेक राज्यों ने वयस्क शिक्षा की योजनाएँ भी बनाई हैं। सामाजिक शिक्षा की एक योजना भी कई राज्यों में लागू है जिसका औद्योगिक मजदूरों के लिये विस्तार किया जा सकता है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में सम्पूर्ण देश में श्रमिकों को शिक्षा देने की एक योजना है जिसमें श्रमिक संघवाद और उनके तरीकों पर अधिक जोर दिया गया है। इस सिफारिश को लागू करने के लिये फोर्ड फाउन्डेशन के सहयोग से तथा कई विदेशी विशेषज्ञों की सहायता से जनवरी १९५७ में एक श्रमिक शिक्षा समिति की स्थापना की गई है। इस योजना के लिये एक प्रशासक (श्री पी० एम० एसकारन) की नियुक्ति की गई है। मार्च १९५७ में श्रमिकों की शिक्षा पर देहली में एक वाद विवाद गोष्ठी हुई और जुलाई १९५७ में भारतीय श्रम सम्मेलन के १५ वें अधिवेशन में श्रमिकों के शिक्षा के कार्य क्रम को लागू करने हेतु स्वीकार कर लिया गया। इस कार्य क्रम का उद्देश्य यह है कि श्रमिकों को अपने संगठन बनाने की तकनीक और सिद्धान्तों से परिचित कराया जाय ताकि वह इस योग्य हो सकें कि संघों के बनाने और उसके प्रबन्ध में बुद्धिमत्ता तथा उत्तरदायित्व की भावना से कार्य कर सकें। श्रमिकों की शिक्षा के कार्यक्रम का पहला चरण शिक्षक प्रशासकों (Teacher Administrators) का प्रशिक्षण था और यह बम्बई में मई १९५८ से प्रारम्भ हुआ। प्रथम वार्षिक काल में ४१ परीक्षार्थियों की भर्ती खुली प्रतियोगिता से हुई तथा १४ परीक्षार्थियों को श्रमिकों की तीन अखिल भारतीय संघों द्वारा मनोनीत किया गया था। यह प्रशिक्षण नवम्बर १९५८ में समाप्त हुआ तथा दूसरा कोर्स नवम्बर १९५९ में कलकत्ते में प्रारम्भ किया गया। वह भी पूरा हो चुका है और अब तीसरा कोर्स भी बम्बई में प्रारम्भ कर दिया गया है। और अब शिक्षक प्रशासकों की १२ विभिन्न केन्द्रों में नियुक्ति कर दी गई है। यह केन्द्र एक एक देहली अहमदाबाद इन्दौर, कानपुर, कलकत्ता, हैदराबाद बंगलौर मद्रास केरल और यमुना नगर (पंजाब) में और दो केन्द्र बम्बई में हैं। अन्य राज्यों में भी केन्द्र खोले जायेंगे। हर केन्द्र में २५ परीक्षार्थी होते हैं और इनका प्रशिक्षण काल ११ सप्ताह का होता है। इन केन्द्रों में शिक्षक प्रशासक फिर श्रमिक शिक्षकों (Worker Teachers) को प्रशिक्षण देते हैं। श्रमिकों की शिक्षा के लिये एक केन्द्रीय बोर्ड की भी स्थापना कर दी गई है जिसको एक समिति के रूप में रजिस्टर्ड कर लिया गया है। इस बोर्ड में केन्द्रीय और राज्य सरकारों के तथा मालिकों के संघों के प्रतिनिधि तथा शिक्षा विशेषज्ञ होते हैं। यह बोर्ड योजना की आगे आने वाली व्यवस्था अर्थात्

श्रमिक शिक्षक का प्रशिक्षण तथा फिर उनके द्वारा श्रमिकों का प्रशिक्षण करने से सम्बन्धित समस्त विषयों की देखभाल करता है। इस प्रकार श्रमिकों की शिक्षा का कार्य क्रम ३ चरणों में होता है (१) शिक्षक प्रशासकों का सम्वर्ग (Cadre) बनाना (२) शिक्षक प्रशासकों द्वारा विभिन्न उद्योग संस्थानों से आये हुए श्रमिक शिक्षकों को प्रशिक्षण देना तथा (३) श्रमिक शिक्षकों द्वारा श्रमिकों को शिक्षा देना। यह अनुमान लगाया जाता है कि दूसरी आयोजना काल के अन्त तक लगभग चार लाख श्रमिक प्रशिक्षण पा चुके होंगे। इस बात की भी योजना है कि हर ऐसे नगर में जिनमें श्रमिकों की संख्या अधिक हो एक श्रमिक संस्थान खोला जावे। बम्बई सरकार ने श्रम कल्याण संस्थान के द्वारा श्रमिकों की शिक्षा के लिये एक अग्रिम योजना लागू भी कर दी है। मई — जून १९६ में २ विदेशी विशेषज्ञों के पर्यवेक्षण में शिमला में शिक्षक प्रशासकों के लाभ के हेतु एक चार विचार गोष्ठी हुई थी। इसमें इस प्रकार की शिक्षा पर सोच विचार किया गया था जिससे श्रमिक अपनी सामाजिक और आर्थिक कठिनाइयों को दूर करके अपने कार्य करने की शक्ति में वृद्धि कर सकें। केन्द्रीय सरकार ने १९६ –६१ में ६४ हजार रु मालिकों और श्रमिकों की परिषदों को श्रमिकों की शिक्षा के हेतु अनुदान के रूप में प्रदान किये। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक विशेषज्ञ श्री चार्ल्स ओर की सेवाओं को श्रमिकों की शिक्षा के कार्यक्रम में बढ़ावा देने के लिये प्राप्त कर लिया गया है। जुलाई १९६१ तक श्रमिकों की शिक्षा के जो १२ क्षेत्रीय केन्द्र हैं उनमें ६४ शिक्षक प्रबन्धकों की नियुक्ति हो चुकी थी और उनके द्वारा १२५ श्रमिक शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका था।

इन तमाम प्रयत्नों से स्पष्ट हो जाता है कि श्रमिकों की शिक्षा समस्या पर अब ध्यान दिया जा रहा है। फिर भी शिक्षा सुविधाओं का देश में विकास करने के लिये अब भी अधिक व्यय और विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है।

अनाज की दुकानों की सुविधाएं –

उपरोक्त कार्यों के अतिरिक्त कुछ और भी कल्याण कार्य हैं जैसे अनाज की दुकानों की व्यवस्था। ऐसी दुकानें कई स्थानों पर स्थापित कर दी गई हैं। युद्धकाल में सरकार ने अनुभव किया कि श्रमिकों की कार्यक्षमता तथा उत्साह को बनाये रखना लड़ाई के सामान की उत्पत्ति की दृष्टि से अत्यन्त लाभप्रद है। इसलिये सरकार ने मालिकों को अनाज की दुकानें चलाने व अनाज संग्रह करने तथा उसे श्रमिकों में लागत मूल्य पर या घटे दामों पर बेचने के लिये उत्साहित किया। इसके लिये सरकार ने यातायात की विशेष सुविधाएं भी प्रदान कीं। अनेक मालिकों ने इसका लाभ उठाया और अनाज की दुकानें खोल दीं। दुकानों की श्रमिकों के मकानों के निकट खोलने का बहुत अधिक महत्व है क्योंकि सड़ा गला भोजन तथा अन्य खाद्य सामग्री जिन्हें श्रमिक व उनके बच्चे गन्दी नालियों के पास बैठे हुए खोमचे वालों से खरीदते हैं न केवल उनके स्वास्थ्य को खराब करते हैं वरन् बीमारी

भी फैलाते है। ये मुसीबतें उस समय कई गुनी बढ़ जाती हैं जब राशनिंग या मूल्य नियंत्रण हो जाता है तथा चोर बाजारी और मुनाफाखोरी चलती है। इसलिये कर्मचारियों तथा उनके परिवारों के कल्याण के लिए इस प्रकार की दुकानों की व्यवस्था की जानी चाहिये जहाँ उन लोगों को उचित मूल्य पर भोजन की अच्छी सामग्री तथा प्रतिदिन के उपयोग की वस्तुएं सुलभ हो सकें। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये "उपभोक्ता सहकारी भंडार" की स्थापना को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिये। मालिक इसमें कुछ प्रारम्भिक धन दे सकते हैं या जैसा ऊपर कहा गया है अनाज की दुकानों की सुविधाओं की व्यवस्था कर सकते हैं।

कल्याणकारी कार्यों के सम्बन्ध में कुछ सुझाव —

औद्योगिक श्रमिकों के जीवन पर प्रभाव डालने वाला एक महत्वपूर्ण कार्य यह है कि उनके लिये विभिन्न ऐजेंसियों द्वारा कल्याण कार्य किए जायें। इस समय कल्याण कार्यों में हर राज्य हर उद्योग और एक ही उद्योग के विभिन्न कारखानों में काफी अन्तर पाया जाता है। इस प्रकार के कार्यों में कुछ समता तो होनी ही चाहिये और कल्याण का एक निश्चित न्यूनतम स्तर बनाया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त कल्याण सुविधाएं देना समाज का कर्तव्य समझा जाना चाहिये और कानून द्वारा भी कुछ अनिवार्यता होनी आवश्यक है। भारत के कारखाना अधिनियम में इसके लिये कुछ निश्चित व्यवस्था की गई है परन्तु वे उचित रूप से लागू नहीं की जाती। वर्तमान समय में इस प्रकार के कार्यों का निरीक्षण तथा निर्देशन अधिक सन्तोषजनक नहीं है। सफाई व्यवस्था के बारे में (जो कानून द्वारा लागू है) श्रम अनुसंधान समिति का कथन है कि जाँच करते समय अनेक कारखानों में उन्होंने वहाँ का प्रबन्ध इतना गन्दा पाया कि यह देखकर आश्चर्य होता था कि कारखाना निरीक्षकों ने इस विषय पर कोई अधिक ध्यान नहीं दिया था। यदि हम चाहते हैं कि जो भी सुविधायें दी जा रही हैं वह श्रमिकों के हितों में वृद्धि करने में सहायक हों तो यह आवश्यक है कि सम्पूर्ण कारखाने का क्षेत्र सामान मशीन आदि का निरीक्षण भी उचित रूप से होना चाहिये। कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति करते समय यह ध्यान रखना चाहिये कि वह प्रशिक्षण प्राप्त तथा अनुभवी हों और इस कार्य के योग्य हों। कल्याण अधिकारियों का यह भी कर्तव्य है कि वह श्रमिकों को मानव समझकर उनकी समस्याओं पर ध्यान दें और समस्या का समाधान भी वह सोच समझ कर उचित प्रकार से करें। श्रमिकों की दशाओं का उन्हें व्यक्तिगत ज्ञान होना चाहिये तथा उनसे समय-समय पर सम्पर्क बनाये रखना चाहिये।

देश में अभी ऐसी और कल्याण निधियां स्थापित करने की आवश्यकता है जैसी कि कोयले की खानों अभ्रक खानों तथा उत्तर प्रदेश के चीनी कारखानों के श्रमिकों के लिये की गई हैं। यदि इस प्रकार की कल्याण निधियाँ स्थापित हो जायें जिनमें धन एक उपकर द्वारा जुटाया जाता है तो इसका अर्थ यह होगा कि कल्याण सुविधाओं का भार सीधे तौर पर मालिकों पर नहीं पड़ेगा। परिणामस्वरूप दी जाने वाली

सुविधाओं की मात्रा और उनका अच्छा या बुरा होना मालिकों की सद्इच्छा पर निर्भर नहीं रहेगा और मालिक इस बात का प्रयत्न नहीं करेंगे कि वे सुविधाएं देने में कोई कंजूसी करें और न उनका यह प्रयत्न होगा कि कानून की मूल भावना की ओर ध्यान न देकर केवल कानून के शब्दों का पालन करें। इस प्रकार की कल्याण निधियों में निम्न बातें अनिवार्य होनी चाहिएं — उनमें जो धन राशि हो वह काम करने वाले श्रमिकों की कुल संख्या के अनुपात में हो और उनमें धन भी इस प्रकार के साधनों से आना चाहिये कि उन्हें एक विस्तृत मात्रा में सुविधायें प्रदान करने और सुविधाओं का स्तर ऊँचा रखने में कोई कठिनाई न हो। इसके अतिरिक्त मालिकों द्वारा दी जाने वाली कल्याण सुविधाओं के प्रबन्ध में स्वयं श्रमिकों को भी भाग लेना चाहिये। इससे मालिकों द्वारा चलाये जाने वाले कल्याण कार्यों के सम्बन्ध में श्रमिकों की शंकाएं दूर हो जायेंगी। इस उद्देश्य के लिए यह सुझाव दिया जा सकता है कि प्रत्येक कारखाने में एक कल्याण समिति होनी चाहिए जिसमें कर्मचारियों के चुने हुए प्रतिनिधि कारखाने का श्रम कल्याण अधिकारी तथा मालिकों द्वारा मनोनीत एक या दो व्यक्ति होने चाहियें। इस समिति का मुख्य कार्य कल्याण कार्यों को प्रदान करना तथा उनका प्रबन्ध करना होना चाहिये तथा जहां तक हो सके इसे स्वतन्त्रतापूर्वक काम करना चाहिये। यह समिति कल्याण कार्यों के प्रत्येक भाग के निरीक्षण तथा उनके प्रतिदिन के कार्य चलाने के लिये उप-समितियां नियुक्त कर सकती है — जैसे एक कन्टीन समिति आवास समिति तथा शिक्षा समिति आदि। इस प्रकार सम्पूर्ण समस्या पर वास्तविक रूप से विचार किया जाना चाहिये।

कल्याण कार्य और उसका उत्तरदायित्व —

यह समस्या भी विचारणीय है कि कल्याण कार्य को चलाने के लिये कौनसी एजेन्सी सबसे उपयुक्त है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है कि कल्याण कार्य श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा कार्यक्षमता पर अत्यधिक प्रभाव डालते हैं और वे देश में औद्योगिक शान्ति स्थापित करने में भी सहायक हो सकते हैं इसलिये मालिकों को अपने ही हित में विभिन्न प्रकार के कल्याण कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लेना चाहिये। यदि मालिक निष्कपट हृदय से कल्याण कार्यों को चलायें तो वे मजदूरों के हृदय को जीतने में काफी सीमा तक सफल हो सकते हैं और इससे मालिकों और मजदूरों में एक नये प्रकार के सम्बन्ध स्थापित होंगे जो केवल आर्थिक तथा स्वार्थी प्रेरणाओं पर आधारित न हो कर उच्च व नैतिक आधारों पर निर्मित होंगे। इसके अतिरिक्त मालिकों का यह एक नैतिक कर्तव्य भी है कि वे मजदूरों के कल्याण पर ध्यान दें। यह मालिकों के लिये एक बुरी बात होगी कि वे अपने श्रमिकों को उन्हीं दशाओं में छोड़ दें जो उनके स्वास्थ्य तथा सुरक्षा की दृष्टि से हानिकारक हैं। कुछ ऐसी विशेष कल्याण सुविधायें हैं जो आसानी से फैक्ट्री-व्यवस्था में ठीक बैठती हैं इसलिए वे मालिकों द्वारा किये जाने वाले कल्याण कार्यों की सूची

में ही आनी चाहिये। उदाहरण के लिये इनमें कैन्टीनें शिशुगृह तथा मनोरंजन की सुविधाएं आती हैं।

राज्य अधिक समय तक श्रमिकों की बुरी अवस्था की ओर से आँखें नहीं मूंद सकता। श्रमिक वर्ग समाज का एक आवश्यक अंग है तथा राज्य का इसकी ओर भी कुछ कर्तव्य है। कुछ विशेष बातें ऐसी भी होती हैं जो समान रूप से केवल राज्य द्वारा लागू की जा सकती हैं उदाहरण के लिये काम के घण्टों पर नियन्त्रण महिला तथा बालकों के कार्य पर निषेध श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा सुरक्षा से सम्बन्धित व्यवस्था स्वच्छता का प्रबन्ध स्नान गृह तथा पीने के जल की सुविधाएं आदि। ये सब बातें अब प्रत्येक प्रगतिशील देश के कारखाना अधिनियमों में सम्मिलित कर दी गई हैं। इसके अतिरिक्त सरकार को औद्योगिक जनता की भलाई के लिये सक्रिय रूप से श्रम कल्याण कार्यों में रुचि लेनी होगी। कुछ विशेष श्रम कल्याण कार्य ऐसे हैं जिनको चलाने के लिये राज्य ही सबसे उचित एजेन्सी है। उदाहरणार्थ आवास शिक्षा चिकित्सा सुविधाएं, सामाजिक बीमा आदि जिन पर अत्यधिक व्यय होता है और केवल मालिकों द्वारा ही प्रभावात्मक रूप से नहीं चलाये जा सकते। भारत जैसे देश में यह बहुत आवश्यक और महत्वपूर्ण है कि राज्य कल्याण कार्यों को अपने हाथों में ले ले क्योंकि यहां श्रमिक अभी इस योग्य नहीं हैं कि वे अपने हितों की रक्षा कर सकें। इसका कारण यह है कि श्रमिकों में अभी शिक्षा और शक्तिशाली संघों का अभाव है। और यहां पूर्ण अविश्वास और शंकाओं के कारण मालिकों तथा मजदूरों में मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध नहीं हैं। सरकार को इस अविश्वास को दूर करने व उत्पादन को निरन्तर चलाते रहने के लिये हस्तक्षेप करना ही होगा। जिस देश के श्रमिक वर्ग में निर्धनता भूख तथा गिरी हुई हालत समान रूप से पाई जाती है ऐसे देश की एक विचारशील सरकार बिना उनकी अवस्था में सुधार किये हुये संतोष से नहीं बैठ सकती।

श्रमिकों की उन्नति का कोई भी प्रयत्न तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक कि श्रमिक अपने कर्तव्य और अधिकारों से अनभिज्ञ हैं तथा कल्याण कार्य उन पर ऊपर से थोपे जाते हैं। इसलिये श्रम कल्याण कार्यों को सफल बनाने में श्रमिक संघ भी महत्वपूर्ण योग दे सकते हैं। एक श्रमिक संघ का मूल उद्देश्य कार्य करने की दशाओं को सुधारना व संभालना तथा अपने सदस्यों की मानसिक व नैतिक क्षमता का विकास करना होता है। भारत में श्रमिक संघों ने अब तक कल्याण कार्यों में बहुत कम भाग लिया है। इसके लिये यह तर्क दिया जाता है कि धन के अभाव के कारण श्रमिक संघों द्वारा भारत में कल्याण कार्य करना सम्भव नहीं है। परन्तु इस बात को मान लेने पर भी कि श्रमिक संघों की आर्थिक स्थिति में उन्नति होनी चाहिये और उनको पश्चिमी देशों के श्रमिक संघों की भांति अपने कार्यों के एकतात्मक पहलू पर अधिक जोर देना चाहिये फिर भी कुछ ऐसे कल्याण कार्य हैं जो स्वयं श्रमिकों द्वारा ही प्रभावात्मक रूप से चलाये जा सकते हैं। कई ऐसे कार्य भी

है जिनका आर्थिक भार नहीं पड़ता और जो श्रमिकों की दशाओं को सुधारने में काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। श्रमिक संघ अपने श्रमिकों की मितव्ययता मिथ्या सहकारिता एवं स्वच्छता की आदतों के लाभों को भली प्रकार बता सकते हैं। वे श्रमिकों में स्वस्थ पारिवारिक जीवन बिताने की रीतियों तथा साधनों का प्रचार कर सकते हैं और स्वयं श्रमिकों की सहायता से श्रमिक बस्तियों में स्वच्छता के नियम लागू कर सकते हैं। यदि श्रमिक संघ के नेतागण अपने साथियों की सर्वसम्पूर्ति में सच्चे हृदय से सहयोग देना चाहते हैं तो उनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि वे श्रमिकों के लिये विभिन्न प्रकार के कल्याण कार्य करें।

उपसंहार —

इस प्रकार कल्याण कार्यों को प्रदान करने का उत्तरदायित्व मालिकों राज्य तथा श्रमिक संघों का संयुक्त रूप से होना चाहिये। श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के लिये इन सबको मिलकर कार्य करना चाहिये। श्रमिकों के कल्याण कार्य की समस्या इतनी विस्तृत व गम्भीर है कि कोई एक पक्ष इसको सफलतापूर्वक नहीं सुलझा सकता। सब बातों को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि यह राज्य का उत्तरदायित्व है कि वह देखे कि श्रमिकों की दशाओं में उन्नति हो रही है या नहीं। यह बात संतोषजनक है कि विश्व के अधिकतर सभ्य देशों में सरकारों ने कल्याण कार्यों की महत्ता को समझ लिया है और श्रम कल्याण तथा सामाजिक सुरक्षा की बड़ी-बड़ी योजनाओं को उन्होंने लागू किया है। भारत में अब तक इस दिशा में केवल प्रारम्भिक पग ही उठाये गये हैं तथा देश में श्रमिक वर्गों के लिये कल्याण कार्यों की उन्नति करने और उनका विस्तार करने के लिये अभी बहुत कुछ करने को है। हमें उन बातों को ध्यान में रखना चाहिये जिनका देश में कल्याण योजनाओं पर प्रभाव पड़ा है या जो प्रभाव डाल सकती हैं। उदाहरणार्थ श्रमिकों की प्रवासिता प्रभावशाली श्रमिक संघों का अभाव तथा श्रमिक संघों में धन का अभाव श्रमिकों में अत्यधिक अशिक्षा बागान के श्रमिकों की बड़ी संख्या (जिनके लिये कल्याण योजनाओं का एक अलग संगठन बनाने की आवश्यकता है) तथा अनेक सामाजिक व आर्थिक समस्याएं जो इस देश में अन्य देशों से अधिक तीव्र हैं। दूसरे देशों में ऐच्छिक रूप से कई संस्थायें हैं जैसे औद्योगिक क्लान्ति (Fatigue) व स्वास्थ्य अनुसन्धान संस्थायें औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान व मनो-वैज्ञानिक संस्थायें तथा कल्याण समितियाँ आदि। ये सब संस्थायें मौलिक अन्वेषण तथा प्रचार द्वारा औद्योगिक कल्याण के क्षेत्र में अग्रणी होकर कार्य कर रही हैं। परन्तु भारत में इस प्रकार की कोई संस्था नहीं है। हमारे देश में इस प्रकार की कठिनाइयों को दूर करने के लिये प्रयत्न होने आवश्यक हैं। परन्तु इन कठिनाइयों को बहाना बना कर हमें कल्याण कार्यों की ओर कम ध्यान नहीं देना चाहिये। प्रयत्न तो इस बात के होने चाहियें कि इस तमाम बातों को ध्यान में रखते हुए हम ऐसे व्यावहारिक कदम उठायें जिनसे हमारी औद्योगिक जनता का हित हो सके।

१२

भारत में सामाजिक सुरक्षा

(Social Security in India)

सामाजिक सुरक्षा का अर्थ —

सामाजिक सुरक्षा एक परिवर्तनशील विचार है जो संसार के सब उन्नत देशों में निर्धनता बेरोजगारी तथा बीमारी को जड़ से दूर करने के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम का एक आवश्यक भाग माना जाता है। साधारणतः सामाजिक-सुरक्षा औद्योगिक श्रमिकों के लिए बहुत आवश्यक समझी जाती है। परन्तु वर्तमान युग में कल्याणकारी राज्य का विचार विकसित हो जाने से इसका क्षेत्र भी समाज के सब वर्गों तक विस्तृत हो गया है। सामाजिक-सुरक्षा का तात्पर्य उस सुरक्षा से है जिसे समाज अपने सदस्यों को संकट से बचाने के लिए समुचित रूप से प्रदान करता है। ये संकट ऐसी विपत्तियां हैं जिनसे निर्धन व्यक्ति या श्रमिक अपनी सुरक्षा अपने साथियों के सहयोग अथवा अपनी दूरदर्शिता से भी नहीं कर पाता। इन विपत्तियों के कारण श्रमिक की कार्यक्षमता को क्षति पहुंचती है और वह अपना और अपने आश्रितों का पोषण नहीं कर पाता। राज्य की स्थापना का उद्देश्य जनसाधारण की भलाई करना है इसलिये सामाजिक-सुरक्षा की व्यवस्था करना राज्य का ही प्रमुख कार्य है। यद्यपि राज्य की प्रत्येक नीति का सामाजिक-सुरक्षा पर कुछ न कुछ प्रभाव पड़ता ही है तथापि सामाजिक-सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत केवल ऐसी योजनायें आती हैं जैसे बीमारी की रोकथाम तथा उसका इलाज रोजी कमाने योग्य न होने की अवस्था में श्रमिक को सहायता देना और उसको आजीविका उपार्जन के योग्य बनाना आदि। परन्तु यह भी कहा जा सकता है कि इन्हे तमाम साधनों से सुरक्षा नहीं मिल सकती क्योंकि सुरक्षा का तात्पर्य किसी प्रत्यक्ष वस्तु से ही नहीं होता वरन् यह एक मानसिक अनुभूति भी है। सुरक्षा से तभी लाभ अनुभव हो सकता है जब सुरक्षा प्राप्त करने वाले व्यक्ति को इस बात में विश्वास हो कि उसको सम्पूर्ण सुविधाएं जब भी उसे आवश्यकता होगी प्राप्त हो जायेंगी। यह भी आवश्यक है कि सुरक्षा प्रदान करते समय यह देख लेना चाहिये कि सहायता और सुविधाओं की मात्रा और गुण पर्याप्त है।

सामाजिक-सुरक्षा एक अत्यधिक व्यापक शब्द है और इसके अन्तर्गत सामाजिक-बीमा व सामाजिक सहायता की योजनाएं और कुछ व्यवसायिक (Commercial) बीमे की योजनाएं भी आ जाती हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि इन शब्दों के बीच का अन्तर स्पष्ट किया जाय एवं प्रत्येक के क्षेत्र के बारे में स्पष्ट रूप से विचार किया —

नाम । साधारणतः सामाजिक-बीमा और सामाजिक-सुरक्षा शब्दों को पर्यायवाची माना जाता है । इसका कारण यह है कि सामाजिक-बीमा प्रत्येक सामाजिक-सुरक्षा योजना का सबसे महत्वपूर्ण भाग होता है ।

सामाजिक-बीमे की परिभाषा –

सामाजिक-बीमा व्यक्ति को निर्धनता और दुःख से बचाने का एक साधन है । इससे व्यक्तियों को संकट के समय सहायता मिल जाती है । बीमे से तात्पर्य यह है कि कुछ धन अलग से सुरक्षित रख लिया जाता है तथा विशेष संकटों में जो क्षति होती है उसकी हानिपूर्ति के लिए दिया जाता है । बीमे का मूल उद्देश्य व्यक्ति के संकट को समाप्त करना है । हानि के भार को कम करने का कार्य मुख्यतः व्यक्ति का न होकर समाज का है । हम सामाजिक-बीमे की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं 'सामाजिक-बीमा एक सहकारी साधन है जिसका उद्देश्य अनिवार्य रूप से बीमा कराये हुए व्यक्तियों को बेरोजगारी बीमारी तथा अन्य संकटों के अवसरों पर न्यूनतम रहन-सहन के स्तर को दृष्टि में रखते हुए उचित लाभ प्रदान करना है । यह लाभ श्रमिकों मालिकों तथा राज्य तीनों पक्षों के अंशदान से निर्मित निधि से दिया जाता है तथा इसको प्राप्त करने के लिए किसी प्रकार की जीविका-साधन-जाँच (Means test) नहीं होती अपितु यह लाभ बीमा कराये हुए व्यक्तियों का अधिकार मानकर प्रदान किया जाता है ।" सर विलियम बेवरिज ने सामाजिक-बीमे की परिभाषा इस प्रकार की है 'सामाजिक-बीमे का तात्पर्य अंशदान के बदले में दिये गए ऐसे लाभों से है जो केवल जीविका-निर्वाह स्तर तक दिये जाते हैं और जो कि व्यक्ति को उसके अधिकार मानकर, बिना किसी जीविका-साधन-जाँच के प्रदान किये जाते हैं जिससे व्यक्ति स्वतन्त्रतापूर्वक अपना निर्वाह कर सके । इस प्रकार सामाजिक-बीमे में दो बातें निहित हैं—प्रथम तो यह कि वह अनिवार्य है और दूसरे यह कि मनुष्य अपने साथियों के दुख-सुख में साथ देते हैं ।"

सामाजिक-बीमे के मुख्य लक्षण –

अब हम सामाजिक-बीमे के सुनिश्चित लक्षणों की ओर दृष्टिपात कर सकते हैं । सर्वप्रथम इसके अन्तर्गत एक संयुक्त-धनराशि निधि की स्थापना होती है । इस निधि से सारे लाभ नकदी या जिन्स के रूप में दिये जाते हैं । यह निधि साधारणतः श्रमिकों मालिकों तथा राज्य के अंशदान से निर्मित की जाती है । द्वितीय श्रमिकों का अंशदान केवल नाममात्र का होता है तथा उसे निम्न-स्तर पर ही रखा जाता है जिससे श्रमिकों को अपनी शक्ति से अधिक न देना पड़े । राज्य तथा मालिक ही वित्त का अधिकांश भाग प्रदान करते हैं । इसका तात्पर्य यह है कि श्रमिकों द्वारा दिये जाने वाला अंशदान तथा उनको प्रदान किये जाने वाले लाभों में कोई अनुपात नहीं होता । तृतीय इन लाभों को एक निश्चित सीमा तक ही सीमित रखा जाता है ताकि लाभ ग्रहण वालों को पूर्ण या आंशिक आय की क्षति के समय एक न्यूनतम

जीवन स्तर बने रहने का आश्वासन रहे। चतुर्थ यह सहायता लाभ प्राप्त करने वालों का अधिकार मानकर तथा बिना जीविका-साधन-जाँच के प्रदान की जाती है जिससे उनके आत्मसम्मान को कोई ठेस न पहुंचे। पंचम सामाजिक-बीमा अब अनिवार्य रूप से प्रदान किया जाता है जिससे ये लाभ समाज के उन सब अभीष्ट (Needy) व्यक्तियों तक पहुंच सकें जिनको इसका संरक्षण मिलना वाञ्छनीय है। अन्त में यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि सामाजिक बीमा व्यक्ति के किसी विशेष घटना से होने वाले कष्टों का ही निवारण करता है उन्हें रोकता नहीं। वास्तव में जब कष्टों का अवरोध असम्भव होता है तब ही सामाजिक-बीमे की अत्यधिक आवश्यकता होती है।

सामाजिक-बीमे तथा व्यवसायिक बीमे में अन्तर —

व्यवसायिक-बीमा पूर्ण रूप से ऐच्छिक होता है परन्तु सामाजिक-बीमा साधारणतया अनिवार्य होता है। व्यवसायिक-बीमे में दी हुई बीमा-किस्तों के अनुसार ही पौलिसी-हित प्रदान किये जाते हैं परन्तु सामाजिक-बीमे में जो लाभ श्रमिकों को प्रदान किये जाते हैं, वे उनके अंशदान से अधिक होते हैं। इसके अतिरिक्त व्यवसायिक बीमे में न्यूनतम-जीवन-स्तर को बनाये रखने का उद्देश्य नहीं होता परन्तु सामाजिक-बीमे का यह एक मुख्य उद्देश्य होता है। सामाजिक-बीमे की व्यवस्था कई प्रकार की ऐसी विपत्तियों के समय की जाती है जो विभिन्न प्रकार की होती हैं और जिनकी तीव्रता भी विभिन्न होती है। परन्तु व्यवसायिक-बीमे की व्यवस्था केवल एक व्यक्तिगत संकट से सुरक्षा के लिए की जाती है।

सामाजिक-बीमा तथा सामाजिक सहायता —

सामाजिक-बीमा तथा सामाजिक-सहायता में भी कुछ अन्तर है। सामाजिक सहायता योजना वह साधन है जिसके द्वारा राज्य अपनी ही निधि में से श्रमिकों को द्वारा कुछ विशेष शर्तें पूरी हो जाने पर कानूनी तौर पर लाभ प्रदान करता है। इस प्रकार सामाजिक-सहायता सामाजिक-बीमे का स्थान लेने की अपेक्षा उसकी पूरक है। दोनों ही साथ-साथ चलते हैं। परन्तु अन्तर यह है कि सामाजिक-सहायता तो पूर्णतया सरकार का ही कार्य है जबकि सामाजिक-बीमे में राज्य द्वारा केवल आंशिक रूप से वित्त प्रदान किया जाता है। सामाजिक-बीमे के लाभ वही श्रमिक उठा सकता है जो इसमें अंशदान देता है। परन्तु सामाजिक-सहायता निःशुल्क प्रदान की जाती है। इसके अतिरिक्त सामाजिक-बीमे में किसी प्रकार की जीविका साधन-जाँच पर और नहीं किया जाता और इसके बिना ही लाभ प्रदान किये जाते हैं। परन्तु सामाजिक-सहायता केवल कुछ दी हुई शर्तें पूरी होने पर ही दी जाती है। मध्य में सामाजिक-बीमे में "बीमा" शब्द के अन्तर्गत अंशदान का सिद्धान्त निहित है जो कि सामाजिक-सहायता (Social Assurance) में नहीं है। इसी प्रकार "सामाजिक" और "व्यवसायिक" शब्द भी इनके अन्तर को स्पष्ट करते हैं।

यह भी स्पष्ट है कि सामाजिक-सहायता तथा व्यावसायिक-बीमे के मध्य में 'सामाजिक बीमा' आता है। 'सामाजिक-सहायता' में राज्य या समुदाय द्वारा अभीष्ट व्यक्तियों को निःशुल्क सहायता दी जाती है जबकि व्यावसायिक-बीमा पूर्णतः एक निजी संविदा है। सामाजिक-बीमे (Social Insurance) में राज्य तथा बीमा किये हुए व्यक्ति, दोनों का अंशदान आवश्यक होता है। इसलिये यह दोनों के मध्य का मार्ग कहा जा सकता है।

सामाजिक-सुरक्षा का क्षेत्र तथा विभिन्न विधियाँ :—

सामाजिक-सुरक्षा योजना के अन्तर्गत सामाजिक-बीमा और सामाजिक-सहायता दोनों आ जाती हैं। सब प्रकार के सामाजिक संकट जैसे—असमर्थता कार्य पाने की अयोग्यता चिकित्सा की आवश्यकताएं आदि—सामाजिक-बीमे अथवा सामाजिक-सहायता के अन्तर्गत आ सकते हैं। किन्तु व्यावहारिक रूप में साधारणतः कुछ संकट सामाजिक-बीमा-योजना द्वारा दूर किये जाते हैं और कुछ संकट "सहायता" द्वारा। कुछ संकटों के लिये देश की परिस्थिति के अनुसार इन दोनों में से कोई भी विधि लागू की जा सकती है। नकद लाभ तथा साधारण चिकित्सा सेवायें अधिकतर बीमे की विधि के अन्तर्गत प्रदान की जाती हैं किन्तु के रूप में दिये जाने वाले कुछ विशेष प्रकार के लाभों के लिए 'सामाजिक-सहायता' को अधिक उचित समझा जाता है। सामान्यतः बीमा की विधि उस समय अपनाई जाती है जबकि इस बात का डर होता है कि दावों को अधिक बढ़ा-चढ़ा कर दिखाया जायगा तथा संयुक्त निधि का दुरुपयोग होगा। यद्यपि बीमा विधि के अन्तर्गत सभी संकट न भी आ पायें तथापि कई बार उस समय इसको अपनाना पड़ता है जब मजदूरी में विपत्ति के कारण क्षति होती है और उसी क्षति के अनुपात से नकद लाभ देना पड़ता है। औद्योगिक दुर्घटनाओं और बीमारी के समय सामाजिक सहायता का कोई प्रश्न नहीं उठता क्योंकि इसका उत्तरदायित्व परम्परा से मालिकों पर ही रहा है। बीमारी का संकट निश्चित रूप से बीमे के अन्तर्गत आता है। पेन्शन तथा बेरोजगारी लाभ भी बीमे द्वारा ही प्रदान किये जाते हैं, यद्यपि ये कभी-कभी सामाजिक-सहायता योजनाओं के द्वारा भी दिये जाते हैं। उनके विषय में यह निर्णय अत्यन्त कठिन हो जाता है कि "बीमा" अथवा "सहायता" दोनों में से किसका चुनाव किया जाय। सामाजिक सहायता विशेषकर उन सेवाओं के क्षेत्र में सीमित रहती है जिनमें जनता का हित मुख्य होता है तथा दुरुपयोग के बहुत कम अवसर होते हैं। उदाहरणार्थ जनरल हस्पताल पागलों के लिये हस्पताल क्षय-सैनीटोरियम चिकित्सालय यौन-सम्बन्धी बीमारियों के चिकित्सा केन्द्र मातृत्व-हित तथा शिशु कल्याण केन्द्र पाठशालाओं में स्वास्थ्य सेवाएं, पुनर्वास संस्थायें वृद्धों तथा विकलांग व्यक्तियों की पेन्शनें माताओं की पेन्शनें तथा बेरोजगारी सहायता आदि।

इस प्रकार किसी देश की सामाजिक-सुरक्षा योजना में सामाजिक-बीमा तथा सामाजिक-सहायता दोनों का मिश्रण होता है। अनेक परिस्थितियों में तो दोनों का

समन्वय कर दिया जाता है। व्यावहारिक रूप में सामाजिक-सुरक्षा के इन विभिन्न रूपों के बीच एक निश्चित सीमा रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। यह भी उल्लेखनीय है कि राज्य के अतिरिक्त अन्य विधियों से भी विपत्तियों के समय सुरक्षा प्रदान की जा सकती है। कई देशों में अनेक श्रमिक-संघ अपने श्रमिकों के लिये बीमारी बेरोजगारी तथा वृद्धावस्था की योजनाएं चलाते हैं। अनेक उद्योगपतियों ने भी अपने कर्मचारियों के लिए बचत-निधि बीमारी लाभ तथा वृद्धावस्था व पन्शनों की योजनायें लागू की हैं।

सामाजिक-सुरक्षा के विचार की उत्पत्ति और विकास —

प्राचीन काल में सामाजिक संकटों से रक्षा करने के लिए जो रीति प्रचलित थी वह निर्धनों की सहायता करने की एक प्रणाली पर आधारित थी। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अनेक देशों में कानून बनाये गये तथा निर्धनों के लिये आवास स्थापित किये गये। परन्तु निर्धनों के लिये सहायता की यह सारी प्रणाली ऐच्छिक दान पर आधारित थी। स्थानीय अधिकारी निर्धनों की सहायता के लिए उत्तरदायी बना दिये गये थे। परन्तु यह सहायता पर्याप्त नहीं समझी गई। शीघ्र ही यह अनुभव किया गया कि समस्त व्यक्तियों व विशेषकर उनके जो उत्पादन-कार्य कर रहे हैं—संकटों को दूर करने का उत्तरदायित्व सारे समाज पर होना चाहिये। इसके अतिरिक्त "निर्धनों को सहायता योजना" ने कुछ सीमा तक केवल दरिद्रता की समस्या को सुलझाया था परन्तु सर विलियम बवरिज के शब्दों में पुर्ननिर्माण की राह के पांच दानवों में से दरिद्रता (Want) केवल एक दानव है जिस पर सबसे सरलता से आक्रमण किया जा सकता है। अन्य दानव हैं बीमारी (Disease) अज्ञानता (Ignorance) मलिनता (Squalor) और आलस्य (Idleness)। इस प्रकार सामाजिक-बीमा तथा सामाजिक-सहायता योजनाओं का विकास हुआ।

सामाजिक-सुरक्षा के विचार का प्रारम्भ जर्मनी में हुआ जब विलियम प्रथम ने रैश्टाग (Reichstag) (संसद) को सामाजिक बीमा योजनाओं को अपनाने के लिये प्रेरित किया। जर्मनी में बिसमार्क सामाजिक-बीमे के बड़े भारी समर्थक थे। फलतः १८८३ में जर्मनी में बीमारी बीमा अधिनियम पारित हुआ श्रमिक की क्षतिपूर्ति के लिये अनिवार्य बीमे का कानून १८८४ में बना तथा वृद्धावस्था और निबलता (Invalidity) बीमे के लिए १८८९ में कानून बना। बेरोजगारी बीमा योजना काफी समय पश्चात् १९२२ में लागू हुई। वर्तमान शताब्दी के प्रारम्भ में सामाजिक कल्याण कार्यों में राज्य का हस्तक्षेप बहुत बढ़ गया जिसका कारण यह था कि अबंध नीति के दोष अनुभव किये जाने लगे थे। परिणामस्वरूप अनेक देशों में राज्य द्वारा कई योजनायें प्रारम्भ की गईं जिनसे औद्योगिक-कर्मचारियों की भलाई के लिए न्यूनतम जीवन स्तर की व्यवस्था की जा सके। औद्योगिक श्रमिक राज्य के हस्तक्षेप न करने के कारण काफी समय तक पूंजीपतियों के हाथों बहुत कष्ट उठाते रहे।

विभिन्न देशों में सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की दशा में हुई प्रगति का मुख्य कारण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रयत्न तथा कार्य हैं इसलिए उसे ही इस मूल्यवान कार्य का श्रेय मिलना चाहिए। इस संगठन ने १९१९ में विभिन्न देशों के लिए सामाजिक बीमा अधिनियमों के स्तर को निर्धारित करने के हेतु मसौदे तैयार करने का कार्य प्रारम्भ किया। इस हेतु इसने समय-समय पर अभिसमय पारित किये हैं, उदाहरणार्थ — १९१९ में मातृत्व हित लाभ पर १९२१ १९२५ तथा १९३४ में श्रमिक क्षतिपूर्ति पर १९२७ तथा १९३३ में बीमारी बीमे पर १९३३ तथा १९३४ में विकलता वृद्धावस्था तथा उत्तरजीवी बीमे पर १९२८ में न्यूनतम मजदूरी पर १९३४ में बेरोजगारी बीमे पर तथा १९४४ में आय सुरक्षा तथा चिकित्सा सुविधा पर। अनेक देशों ने इन अभिसमयों को स्वीकार कर लिया है और जिन देशों ने इनको स्वीकार नहीं किया है उन्होंने भी इनको आधार मान कर कानून बनाये हैं। किसी ऐसे देश के लिये जो सामाजिक बीमा पहली ही बार लागू करने की इच्छा रखता है इन अभिसमयों को पूर्णतः या अंशतः आदर्श माना जा सकता है। १९४७ में नई देहली में हुये प्रारम्भिक एशियाई क्षेत्रीय श्रम सम्मेलन में भी सामाजिक सुरक्षा पर एक व्यापक प्रस्ताव स्वीकार किया गया जिसमें इस बात के लिए सिफारिश की गई थी कि एशिया के अनेक देशों में सामाजिक सुरक्षा की योजनाओं की प्रगति में तीव्रता आनी चाहिये। १९३८ में न्यूजीलैण्ड में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सामाजिक सुरक्षा अधिनियम पारित हुआ था जिसमें एक अनिवार्य तथा सार्वभौमिक बीमा प्रणाली की व्यवस्था थी जिसके लिए वित्त-व्यवस्था एक सामाजिक सुरक्षा कर द्वारा की गई थी।

सन् १९३९–४५ के युद्ध ने सामाजिक बीमे की योजनाओं को प्रारम्भ करने या कम-से-कम उनके प्रारम्भ करने के लिये प्रथम इन की आवश्यकता की ओर भी बल प्रदान किया। यह योजनाएं इस की प्रतिरक्षा की शक्ति में वृद्धि करती हैं क्योंकि यह योजनाएँ जनसंख्या के विभिन्न वर्गों को एक विशेष उद्देश्य के लिये संगठित करती हैं अन्याय को कम करती हैं जनता के स्वास्थ्य की रक्षा करती हैं तथा आर्थिक चिन्ताओं को दूर करने का भी प्रयत्न करती हैं। युद्ध पश्चात् जो प्रभाव हुए उनके कारण भी कुछ सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की आवश्यकता को अनुभव किया गया क्योंकि इन प्रभावों के कारण अनेक देशों में आवश्यक वस्तुओं की दुर्लभता उत्पन्न हो गई थी और पुनर्निर्माण की समस्याएं भी उत्पन्न हो गई थीं। लगभग प्रत्येक औद्योगिक उन्नत देश ने अब सामाजिक बीमे के महत्व को स्वीकार कर लिया है तथा उनमें से प्रत्येक ने सामाजिक बीमा के आयोजन की समस्या को सुलझाने का प्रयत्न किया है। कई स्थानों पर तो सामाजिक बीमा योजनाएं निश्चित की जा चुकी हैं तथा उनको कार्यान्वित भी कर दिया गया है। अमरीका आस्ट्रेलिया कनाडा तथा न्यूजीलैण्ड जैसे देशों में सामाजिक बीमे की विस्तृत योजनाएं बनाई गई हैं तथा लागू की गई हैं। १९४२ में लन्दन में "ब्रिटेन के सामाजिक बीमा तथा

सम्बन्धित सेवाओं" पर बवरिज रिपोर्ट (Beveridge Report on British Social Insurance and Allied Services) प्रकाशित हुई जो संसार भर में चर्चा का विषय बन गई। अब इसको कार्यान्वित कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक प्रकार का व्यक्तिगत दरिद्रता तथा असुरक्षा के लिये पूर्ण अनिवार्य राज्य बीमा योजना की व्यवस्था है। सामाजिक बीमा योजना जिस प्रकार विभिन्न देशों में लागू की गई है उसके विस्तृत क्षेत्र का उदाहरण कनाडा में 'सामाजिक-सुरक्षा' पर मार्श की रिपोर्ट (Marsh Report) तथा अमरीका में "मुरे-डिंगल विधेयक" (Murray-Dingell Bill) में मिलता है।

भारत में सामाजिक सुरक्षा के विचार की उत्पत्ति और विकास -

भारत में निर्धनों तथा असहायों की सहायता को सर्दव से ही धार्मिक कर्तव्य माना गया है। भूतकाल में ऐसे व्यक्तियों के लिये जिनके पास जीवन निर्वाह का कोई साधन न होता था और जो कार्य करने में भी असमर्थ होते थे उन्हें कई प्रकार की संस्थाओं और रीतियों से सहायता मिल जाया करती थी जैसे संयुक्त परिवार, सामुदायिक पंचायतें अनाथालय व विधवा आश्रम दान देने की रीति व्यक्तिगत दान तथा सेवा की भावना आदि। परन्तु पश्चिमी शिक्षा तथा देश के औद्योगीकरण के प्रभाव से ये संस्थाएं नष्ट होने लगी और अब वे इस योग्य नहीं रही हैं कि परिस्थिति के अनुसार पर्याप्त सहायता दे सकें। वर्तमान समय में सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना राज्य का ही कर्तव्य माना जाता है।

दोनों महायुद्धों के मध्यकाल की अवधि में तथा विशेषकर १९३९ से विभिन्न देशों में सामाजिक सुरक्षा का तीव्र गति से उन्नति तथा विस्तार हुआ है। किन्तु भारत में इसको लागू करने के प्रश्न पर कुछ समय पहले तक राज्य की ओर से कोई ध्यान नहीं दिया गया। रायल श्रम आयोग का भी यह मत था कि भारत में किसी राष्ट्रीय बीमा योजना का लागू करना सम्भव नहीं होगा। इसका कारण उसने यह दिया कि कोई स्थायी औद्योगिक जनसंख्या न होने के कारण और श्रमपरावर्त (Labour Turnover) अधिक होने के कारण किसी भी संकट का ठीक ठीक अनुमान लगाना कठिन था। इस प्रकार सामाजिक बीमे की समस्या को काफी समय तक केवल एक सैद्धान्तिक विषय ही समझा जाता रहा और अनेक समितियों आयोगों तथा अधिकारियों द्वारा दिये गये विचार सामाजिक सुरक्षा की केवल कुछ शाखाओं तक ही सीमित रहे। बवरिज रिपोर्ट के प्रकाशित होने के पश्चात् ही लोगों के विचारों तथा लेखों में "सामाजिक बीमा" शब्द आया और तब ही भारत में इसको लागू करने की सम्भावनाओं पर ध्यान दिया गया। राष्ट्रीय सरकार बन जाने के पश्चात् श्रमिकों में अशान्ति बढ़ने तथा अनेक देशों में साम्यवाद फैलने से सामाजिक बीमे की समस्या अधिक महत्वपूर्ण हो गई है। अब यह अनुभव कर लिया गया है कि सामाजिक सुरक्षा की आवश्यकता केवल इस कारण नहीं है कि श्रमिकों को आराम से रहने का अधिकार है अपितु सामाजिक दृष्टिकोण से भी "सामाजिक

सुरक्षा' की आवश्यकता है क्योंकि जब तक श्रमिकों को जीविका के अच्छे साधन नहीं प्रदान किये जायेंगे तथा उनकी अनेक विपत्तियों से रक्षा नहीं की जायेगी तब तक साम्यवादी विचारधारा को रोकना कठिन होगा। वास्तव में देश में एक सामाजिक बीमा योजना को स्थापित करने की आवश्यकता के विषय में कभी भी दो मत नहीं रहे किन्तु भारत मे इसको लागू करने की सम्भावनाओं पर मतभेद रहा है।

भारत में श्रमिकों के लिए सामाजिक बीमे की आवश्यकता विभिन्न विपत्तियां —

भारत मे सभी लोगों के लिए विशेष कर देश की श्रमिक जनता के लिए, सामाजिक बीमे की आवश्यकता अत्यधिक है। यह पूर्ण सत्य है कि हमारा देश गरीब है और हमारे देश में मजदूर को मजदूरी पाते हैं वह इतनी कम तथा कंजूसी से दी जाती है कि उससे निम्नतम आजीविका को छोड़कर अन्य कोई भी वस्तुएँ प्राप्त नहीं की जा सकतीं। वास्तव में यह आश्चर्यजनक है कि श्रमिक इतनी अपर्याप्त आय में अपनी और अपने परिवार की जीविका कैसे चलाता है। कुछ स्थानों को छोड़कर देश के अनेक स्थानों पर मजदूरी इतनी कम दी जाती है कि यदि कुशाग्र बुद्धि तथा इच्छा हो भी फिर भी मजदूर न्यूनतम स्तर बनाए रखने के लिए आवश्यक वस्तुएँ नहीं जुटा पाता तथा जिन परिस्थितियों में वह रहता है उनमें बुद्धि का प्रयोग भी कठिन हो जाता है। यह भी देखा गया है कि श्रमिक बड़ी संख्या में ऋण में दबे रहते हैं और औसतन यह ऋण उनकी तीन माह की मजदूरी के बराबर होता है। यह भी देखा गया है कि मजदूर की ८ % आय भोजन आवास और वस्त्रों पर ही व्यय हो जाती है और कम वेतन पाने वाले मजदूर के लिए तो आय जीविका भी बिना ऋण लिए असम्भव होती है। आय इतनी कम है कि उसमें से बचत करने के लिए कुछ नहीं बचता और इस प्रकार जब कभी श्रमिकों का मासिक बजट घाटे में चलता है तो उनके पास उसको पूरा करने के लिए पहले से बचाई हुई कोई भी निधि नहीं होती। बीमारी बेकारी अस्थायी असमर्थता परिवार के कमाने वाले व्यक्ति की अचानक मृत्यु जैसी अनेक विपत्तियों (Contingencies) में या तो श्रमिक यदि संभव होता है तो ऋण लेता है अथवा अपने पहले से ही गिरे हुए जीवन स्तर में वह असीम रूप से कष्ट भोगता है। इसलिए जीवन की विपत्तियों के विरुद्ध व्यवस्था करने के लिए भारत में कुछ सामाजिक सुरक्षा योजनाओं की अत्यधिक आवश्यकता है क्योंकि विपत्ति पड़ने पर मजदूरों के पास अपने निर्वाह के लिए कोई संचित निधि नहीं होती।

श्रमिक अनेक बीमारियों के बोझ से भी दबा रहता है। अत्यधिक भीड़-भाड़ वाले तथा घने बसे औद्योगिक क्षेत्रों में मलेरिया हैजा क्षय प्लेग इन्फ्लुएन्जा जैसी बीमारियाँ उग्र रूप से फैल जाती हैं। ऐसी बीमारियों के कारण सैकड़ों व्यक्ति प्रत्येक

बस्ती से प्रतिवर्ष मृत्यु के ग्रास हो जाते हैं। जो इनके आक्रमणों से बच भी जाते हैं उनमें दुर्बलता और अकुशलता आ जाती है। औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों की उचित चिकित्सा के लिए उनको निरन्तर काम की सुविधाएं प्रदान करने के लिए और बीमारी के पश्चात् उनको शीघ्र से शीघ्र पूर्णरूप से स्वस्थ करने के लिए काफी समय तक कोई उचित व्यवस्था नहीं थी।

बेरोजगारी तथा इसके साथ ही नौकरी से हटा दिए जाने का भय हमारे श्रमिकों के जीवन में एक अन्य विपदा है। वर्तमान समय की औद्योगिक बुराइयों में से यह सबसे निकृष्ट (Worst) और विस्तृत बुराई है। इससे निराश्रयता (Destitution) भिक्षा वृत्ति बाल श्रम महिला श्रम कम मजदूरी वेश्यावृत्ति तथा मदिरापान जैसी सामाजिक बुराइयाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जो श्रमिक अपने गाँव वापस जा सकते हैं वे अपने सम्बन्धियों के अल्प साधनों पर भार स्वरूप हो जाते हैं और साधारणतः उनके गाँव में वापस आने का स्वागत भी नहीं किया जाता। जो वापस नहीं जा सकते वे औद्योगिक नगरों में भूखे मरते हैं और निराश्रयता का जीवन व्यतीत करते हैं।

श्रमिक पर उस समय भी मुसीबतों का पहाड़ टूट पड़ता है जब वह अस्थायी रूप से असमर्थ हो जाता है या परिवार के एक मात्र रोजी कमाने वाले की मृत्यु हो जाती है जो अपने पीछे एक विधवा व अनाथ बच्चे अथवा अन्य आश्रितों को छोड़ जाता है जिनकी देख भाल करने वाला कोई नहीं रहता अथवा जब मजदूर पूर्णतः असमर्थ हो जाता है या अवकाश ग्रहण कर लेता है अथवा वृद्ध हो जाता है और काम के अयोग्य हो जाता है। इन समय-समय पर पड़ने वाली विपत्तियों के लिए कोई भी बचाव का साधन नहीं है और इनके आने पर वही पुरानी कहानी दोहराई जाती है—अत्यधिक ऋण, निम्नतम जीवन स्तर, कार्यक्षमता में क्षति तथा उत्पादन में कमी और अनेक सामाजिक बुराइयाँ। इस प्रकार इस तथ्य में पूर्ण सत्यता है कि श्रमिकों की निर्धनता एवं सामाजिक बुराइयों का सबसे शक्तिशाली कारण यही है कि उनकी बीमारी और बेरोजगारी से उनकी आय में विघ्न पड़ जाता है। ऐसी घटनाएं भी मिलती हैं कि एक मजदूर की मृत्यु पर अथवा उसके पूर्णरूप से निबल हो जाने पर उसकी पत्नी और लड़कियों को समाज के भेड़ियों का शिकार होना पड़ता है और उन्हें अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिये बाध्य होना पड़ता है।

श्रमिकों की सामान्य दशा —

इस प्रकार वर्तमान भारत में श्रम की अस्थिरता, श्रमिकावर्त व अनुपस्थिति की तीव्र समस्याओं से उत्पन्न हुई कठिनाइयाँ सामने आती हैं। नगरों में निर्धन श्रमिक को किसी प्रकार की कोई सुविधा नहीं मिल पाती। उसके पास नाम मात्र का ही एक मकान होता है उसको गन्दी तथा अस्वास्थ्यकर वातावरण में रहना पड़ता है और बीमार पड़ने पर उसकी देख भाल करने वाला भी कोई नहीं होता नौकरी से हटा दिये जाने पर उससे सहानुभूति करने वाला भी कोई व्यक्ति नहीं

होता। जब वह पूर्णतः अथवा अस्थायी रूप से असमर्थ हो जाता है तो उसकी रद्दी कागज की तरह उपेक्षा की जाती है बूढ़ा हो जाने पर उसे बेकार वस्तुओं की तरह फेंक दिया जाता है। इस प्रकार के सारे कष्ट दुःख और दुर्भाग्य आने पर उसके पास शरण लेने का स्थान केवल गांव रह जाता है। परन्तु गांव के साथ भी उसके सम्बन्ध टूटते जा रहे हैं क्योंकि आधुनिक सभ्यता के प्रभाव से संयुक्त परिवार तथा गांव का सामुदायिक जीवन समाप्त हो गया है और गांव में भी जीवन निर्वाह के लिये कठोर परिस्थितियां पैदा हो गई हैं।

सामाजिक बीमा व्यवस्था के लाभ —

इस बात को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि उपरोक्त विपत्तियों से बचने के लिये किसी न किसी सुरक्षा व्यवस्था की अत्यधिक आवश्यकता है। इसमें संदेह नहीं कि सामाजिक-बीमा व्यवस्था ही भली प्रकार से श्रमिकों की जीवन के सामान्य संकटों से सुरक्षा कर सकती है। यह संकट ऐसे होते हैं जिनसे श्रमिक स्वयं अपने प्रयत्नों द्वारा रक्षा नहीं कर पाता। श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा जीविका की सुरक्षा के लिये जिसके वे अधिकारी हैं सामाजिक बीमा ही विवेकपूर्ण और कुशल साधन है। सामाजिक-बीमा योजना का एक लाभ यह है कि इसमें श्रमिक का सहयोग भी होता है क्योंकि श्रमिकों से भी इसमें अंशदान लिया जाता है। यह निश्चित अधिकारों के आधार पर लाभ प्रदान करती है तथा लाभ प्राप्त करने वालों का आत्मसम्मान बनाये रखती है। इसका उद्देश्य मजदूर की खोई हुई कार्य करने की क्षमता को शीघ्र से शीघ्र तथा पूर्णतया पूरा करना है तथा यह जीविकोपार्जन के कार्यों के रुक जाने के समय मजदूर की सहायता करता है। कोई भी आत्म सम्मानित और प्रगतिशील देश अपने श्रमिक वर्ग को उनके ही न्यून साधनों पर नहीं छोड़ सकता और न ही न्याय और औचित्य की दृष्टि से श्रमिकों को इस संस्था के लाभों से वंचित रख सकता है। अब यह बराबर अनुभव किया जा रहा है कि कोई भी राष्ट्र इस की मानव शक्ति को इस बुरी तरह से व्यर्थ नहीं कर सकता। हर देश के लिये यह आवश्यक है कि वह अपनी कार्य क्षम्य जनसंख्या की नैतिक और शारीरिक शक्ति में वृद्धि करे और आगे आने वाली पीढ़ियों के लिये राह तैयार करे तथा उन लोगों की देखभाल करें जो उत्पादक कार्यों के योग्य नहीं रहे हैं। मालिकों के व्यक्तिगत और सामूहिक प्रयत्नों को कर्मचारियों के व्यक्तिगत तथा सामूहिक प्रयत्नों को तथा राज्य के पृथक-पृथक रूप से किये गये वैधानिक प्रयत्नों का संगठित और एकत्रित कर लेना चाहिये ताकि अधिक से अधिक संख्या में लोगों को अधिक से अधिक लाभ पहुंचे। इसी प्रकार के प्रयत्न सामाजिक बीमे में पराकाष्ठा तक पहुंचते हैं। सामाजिक-बीमा एक आकाश दीप है जो प्रजातन्त्र के आदर्श को दृढ़ करता है और भविष्य की प्रगति की राह को प्रकाशवान करता है। इसमें सामाजिक न्याय का आदर्श निहित है क्योंकि दुर्घटनाएं बीमारी बेरोजगारी जैसे संकट जो श्रमिकों पर पड़ते हैं वे आधुनिक उद्योग के संगठन और प्रबन्ध के कारण ही

उत्पन्न होते हैं। इसी कारण से समाज के सदस्यों द्वारा एक निश्चित सीमा तक सहन किये जाने चाहियें। इस प्रकार की योजनाओं की व्यवस्था विश्व के प्रत्येक देश की आर्थिक व सामाजिक शान्ति और समृद्धि के लिये अत्यधिक आवश्यक समझी जानी चाहिये। सामाजिक सुरक्षा सेवाओं का निर्माण समाज के लिये पर्याप्त लाभप्रद होगा जिससे समाज में नैतिक सम्मान की वृद्धि होगी। ऐसी शारीरिक तथा मानसिक पीड़ाओं को भी सीधे रूप से दूर किया जा सकेगा जिनसे अधिकांश लोग दुख उठाते हैं। इन बुराइयों के कारणों को दूर करने में भी सहायता मिलेगी तथा सामाजिक सुरक्षा से समाज के ढांचे में भी दृढ़ता आएगी। सामाजिक सुरक्षा केवल इसीलिये आवश्यक नहीं है कि श्रमिकों को भी सुख से रहने का अधिकार है अपितु यह सामाजिक दृष्टिकोण से भी आवश्यक है क्योंकि जब तक श्रमिकों को जीविका के अच्छे साधन नहीं प्रदान किये जायेंगे तथा अनेक विपत्तियों से उनकी रक्षा नहीं की जाएगी तब तक उनमें क्रान्तिकारी विचारों को फैलने से रोकना कठिन होगा।

कुछ व्यक्तियों का मत है कि श्रमिकों की उत्पादन प्रेरणा पर सामाजिक सुरक्षा का अच्छा प्रभाव नहीं होता क्योंकि सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था उत्साह को कम करती है शिथिलता उत्पन्न करती है तथा जोखिम उठाने के साहस और इच्छा को क्षति पहुंचाती है। सामाजिक सुरक्षा की व्यापक व्यवस्था में उत्पादकों की ओर से अनुत्पादकों को लाभ प्रदान किया जाता है अर्थात् जो योग्य हैं और रोजगार पर लगे हैं वे उन व्यक्तियों की सहायता करते हैं जो वृद्ध हैं बीमार हैं और बेरोजगार हैं। परन्तु यह बात भी ध्यान में रखनी चाहिये कि सामाजिक सुरक्षा द्वारा जो सहायता प्रदान की जाएगी उसके कारण ऐसे बीमार और बेरोजगार व्यक्ति जो कार्य योग्य आयु के होते हैं, फिर से उत्पादक बन सकते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक सुरक्षा द्वारा उन्हें जो भी सहायता मिलेगी वह उन्हें इस योग्य भी बना देगी कि अपने रोजगार को पुनः पाने पर पहले से अच्छा कार्य करें। इस सहायता के न होने पर कठोर अभावों के कारण उनकी कार्य क्षमता को बहुत क्षति पहुंचती है। जैसा कि सर विलियम बेवरिज ने कहा है "यह आवश्यक नहीं है कि उचित प्रकार से आयोजित नियन्त्रित तथा वित्त व्यवस्थित अर्थात् एक सम्पूर्ण सामाजिक-बीमा व्यवस्था उत्पादन प्रेरणा पर बुरा प्रभाव डाले वरन् सामाजिक सुरक्षा से उत्पादन बढ़ सकता है क्योंकि असुरक्षा के कारण जो दुःख भय चिन्ताएं और अभाव श्रमिक के जीवन में आ जाते हैं और उसको जो क्षति पहुंचती है उस क्षति को सामाजिक सुरक्षा कम कर देती है। राज्य को सामाजिक सुरक्षा योजनाएं संगठित करते समय यह भी ध्यान रखना चाहिये कि सामाजिक सुरक्षा से केवल एक न्यूनतम राष्ट्रीय जीवन स्तर की ही व्यवस्था होनी है ताकि प्रत्येक व्यक्ति को ऐच्छिक प्रयत्नों द्वारा (अपने तथा अपने परिवार के लिए इस न्यूनतम स्तर से अधिक अर्जित करने के लिए) उत्साह तथा अवसर प्राप्त होता रहे।

सामाजिक बीमे की विभिन्न व्यवस्थाएं —

किसी देश की सामाजिक-बीमा व्यवस्था में पूर्णता लाने के लिए यह आवश्यक है कि ऐसी सारी परिचित विपत्तियों से रक्षा होने की उचित व्यवस्था हो जिनसे श्रमिक या कोई भी व्यक्ति कष्ट पा सकता है तथा जो उन्हें जीविकोपार्जन के अवसरों से वंचित रख सकती है। जो संकट श्रमिकों को उनकी अर्जित करने की क्षमता से वंचित रख सकते हैं, वे निम्न बातों से उत्पन्न हो सकते हैं —(क) बीमारी दुर्घटना बेरोजगारी प्रसव काल आदि के कारण जीविका कमाने की अस्थायी अयोग्यता (ख) स्थायी अशक्तता जैसे पूर्ण असमर्थता पुरानी निबलता वृद्धावस्था आदि (ग) मृत्यु, जिससे परिवार का एकमात्र रोटी कमाने वाला एक साधन समाप्त हो जाता है। इसमें हम वैधव्य तथा अनाथ हो जाना सम्मिलित कर सकते हैं। इस प्रकार एक पूर्ण सामाजिक-बीमा व्यवस्था के निम्नलिखित भाग कहे जा सकते हैं —(१) बीमारी तथा निबलता बीमा (२) दुर्घटना बीमा (३) मातृत्व हित बीमा (४) बेरोजगारी बीमा (५) वृद्धावस्था बीमा (६) उत्तरजीवी बीमा।

भारत में सामाजिक-सुरक्षा की वर्तमान व्यवस्था —

भारत में अभी तक उल्लिखित विपत्तियों में से किसी के लिए भी पूर्ण सामाजिक-बीमा योजनाएँ लागू नहीं की गई हैं यद्यपि १९४८ के कर्मचारी राज्य-बीमा अधिनियम तथा १९५२ के कर्मचारी प्रोवीडेन्ट-फण्ड अधिनियम के पारित होने से इस ओर पग उठाया जा चुका है। इन दोनों के अतिरिक्त अन्य विषयों में भारत एक पिछड़े हुए देशों में से कहा जा सकता है। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि यहाँ इन विपत्तियों से किसी भी प्रकार की सुरक्षा नहीं रही है। निश्चय ही यहाँ कुछ सुरक्षा की व्यवस्था रही है यद्यपि ऐसी सुरक्षा को सामाजिक-बीमा नहीं कहा जा सकता। श्रमिकों को दुर्घटनाओं प्रसव काल और बीमारी में सुरक्षा प्रदान करने के लिए सरकार ने अनेक अधिनियम पारित किये हैं तथा अभी हाल में ही अन्य दिशाओं में भी प्रयत्न किये गये हैं। एक और प्रकार की सुरक्षा जो श्रमिकों को दी गई है, वह कल्याण कार्यों की है जिसका पिछले अध्याय में विस्तारपूर्वक उल्लेख किया जा चुका है। अब तक जो मुख्य रूप से कानूनी सुरक्षा प्रदान की गई है वह निम्न विषयों पर है —(१) औद्योगिक बीमारियों तथा दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्ति (Compensation) के लिए, (२) स्त्री श्रमिकों के मातृत्व हित लाभ के लिए, (३) स्वास्थ्य बीमा छटनी के समय क्षतिपूर्ति तथा प्रोवीडेन्ट फण्ड की व्यवस्था।

भारत में श्रमिकों के लिये क्षतिपूर्ति की व्यवस्था
(Workmen's Compensation in India)

क्षतिपूर्ति की आवश्यकता —

औद्योगिक दुर्घटनाओं से जो प्रत्येक देश में होती हैं श्रमिकों की रक्षा करना आवश्यक है। संगठित उद्योगों में मशीनों तथा यांत्रिक शक्तियों के बढ़ते हुए प्रयोग

से भारत में भी औद्योगिक दुर्घटनाओं की संख्या में सामान्यतः वृद्धि हो गई है। कारखाना अधिनियमों से कई सुरक्षा साधनों से सम्बन्धित उपबन्ध बनाये गये हैं जिनको कारखानों में लागू करना अनिवार्य है। उदाहरणार्थ मशीनों के चारों ओर रोक लगाना "पहले अपनी सुरक्षा" वाले इश्तहार आग बुझाने के साधन इत्यादि। परन्तु इतना सब होने के पश्चात् भी दुर्घटनाएं हो ही जाती हैं जिनका कारण कुछ तो खतरनाक मशीनों से सुरक्षा करने के पर्याप्त साधनों का अभाव होना है और कुछ श्रमिकों की लापरवाही के कारण होती हैं। गलत विचार या निर्णय के कारण या आवश्यक सावधानी न रख सकने के कारण या मशीन से अनभिज्ञ होने के कारण अथवा अधिक कार्य करने के कारण भी दुर्घटनाएं हो जाती हैं। दुर्घटनाओं की संभावना सर्वत्र रहती है क्योंकि मशीनें बहुत विशाल और विकट प्रकार की हो गई हैं और उत्पादन की गति अति तीव्र हो गई है। दुर्घटनाएं होने का भय है मृत्यु अथवा स्थायी या अस्थायी असमर्थता और इनके कारण आर्थिक साधनों व मानव क्षमता का ह्रास और इसके पश्चात् श्रमिकों तथा उनके आश्रितों को मिलने वाले कष्ट। इस प्रकार श्रमिकों के लिए औद्योगिक दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्ति की व्यवस्था प्रत्येक देश के श्रम विधान का आवश्यक अंग हो गयी है तथा अनेक देशों में यह सामाजिक-बीमा योजनाओं के अन्तर्गत सम्मिलित कर ली गई है।

क्षतिपूर्ति प्रदान करने का अनुमोदन आर्थिक तथा मानवीय दोनों ही दृष्टियों से किया जा सकता है। क्षतिपूर्ति प्रदान करना एक ओर तो मानव जीवन के मूल्य को स्वीकार करना है तथा दूसरी ओर इसके कारण श्रमिकों में सुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है उनकी कार्य-क्षमता में वृद्धि होती है तथा औद्योगिक कार्यों का अनाकर्षण कम हो जाता है। क्षतिपूर्ति के उत्तरदायित्व के कारण मालिक दुर्घटनाओं को रोकने के लिए उचित सुरक्षा के साधन प्रदान करने का भी ध्यान रखते हैं तथा इस कारण ही वे श्रमिकों को उचित चिकित्सा सुविधाएं प्रदान करने के लिए प्रेरित होते हैं। यह भी स्वीकार किया गया है कि चाहे व्यवसाय छोटा हो अथवा बड़ा चाहे उस कार्य को खतरनाक समझा जाता हो अथवा कम संकटपूर्ण चाहे वह कार्य औद्योगिक वाणिज्य सम्बन्धी या कृषि का हो चाहे श्रमिक का वेतन कम हो या अधिक उसका कार्य शारीरिक हो चाहे न हो और अन्त में चाहे वह औद्योगिक दुर्घटना का शिकार हुआ हो अथवा व्यवसायजनित बीमारी का इन सब अवस्थाओं में मजदूरों की क्षतिपूर्ति का अधिकार वैसा ही रहता है।

क्षतिपूर्ति के लिए कुछ प्रारम्भिक व्यवस्थाएं —

यद्यपि मजदूरों द्वारा क्षतिपूर्ति की मांग १८८४–१८८५ तथा १९१० में की गई थी परन्तु १९२१ में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित होने से पूर्व किसी श्रमिक के लिए जिसे कार्य करते समय चोट लगी हो यह सम्भव नहीं था कि वह कोई हरजाना या क्षतिपूर्ति पा सके। परन्तु कुछ अवसरों पर, साधारण कानून के अन्तर्गत मालिकों पर उनकी लापरवाही के कारण क्षतिपूर्ति देने का दायित्व था

अर्थात् एक मृतक श्रमिक के आश्रित कुछ स्थितियों में १८५५ के भारतीय घातक दुर्घटना अधिनियम (Indian Fatal Accidents Act) के अन्तर्गत मुआवजे का दावा कर सकते थे। परन्तु यह मुआवजा तब ही मिल सकता था जब यह प्रमाण मिल जाता था कि किसी व्यक्ति के गलत कार्य असावधानी या भूल के कारण ही दुर्घटना से मृत्यु हुई है। परन्तु इस अधिनियम में क्षतिपूर्ति पाने की कार्य प्रणाली इतनी कष्टप्रद थी कि यह क्षति दिलाने में अधिक सहायक सिद्ध न हो सकी। किन्तु १९२२ में कारखाना अधिनियम में एक धारा और जोड़ दी गई थी जिसमें फौजदारी न्यायालय को इस बात का अधिकार दे दिया गया था कि वे चोट पहुंचाने वाले व्यक्ति पर हुए जुर्माने का कुछ हिस्सा चोट खाये हुए व्यक्ति या उसके आश्रितों को देने का आदेश दे सकते हैं।

१९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम —

१९२१ में सरकार ने जनता का मत जानने के लिए कुछ क्षतिपूर्ति से सम्बन्धित प्रस्ताव परिचालित किये। उन प्रस्तावों को अधिकांशतः अनुमोदन प्राप्त हुआ जिसके फलस्वरूप मार्च १९२३ में श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम पारित किया गया और १ जुलाई १९२४ को लागू कर दिया गया। इस अधिनियम में १९२६ और १९२९ में कुछ संशोधन हुए जिनका उद्देश्य कुछ छोटे-छोटे परिवर्तन करना था और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के व्यवसाय जनित बीमारियों के अभिसमय को मान्यता देनी थी और अधिनियम के कुछ दोषों को दूर करना था। रॉयल श्रम आयोग ने अधिनियम के उपबन्धों की विस्तृत रूप से जांच के पश्चात् इसमें सुधार करने के कुछ सुझाव दिये। इन सिफारिशों के फलस्वरूप १९३३ में इस अधिनियम को पुनर्गठित व संशोधित करने वाला एक अधिनियम पारित किया गया जो जनवरी १९३४ से लागू कर दिया गया। इस अधिनियम द्वारा पहले अधिनियम का क्षेत्र और भी विस्तृत हो गया। इसके पश्चात् अधिनियम में कई और अवसरों पर अर्थात् १९३७ में १९३८ में १९३९ में १९४२ में १९४६ और १९५९ में संशोधन किया गया। इस अधिनियम को कुछ आदेशों द्वारा भी विस्तृत रूप से लागू किया गया था। यह आदेश १९४८ का भारतीय स्वतन्त्रता आदेश (केन्द्रीय अधिनियम और अध्यादेशों का अनुकरण) और १९५ का कानून का अनुकरण (Adaptation) करने के आदेश थे। इसके अतिरिक्त युद्ध के समय दो और अन्य युद्ध के कारण जो क्षति होती थी उसके लिए सुरक्षा देने के हेतु, उठाये गये। वे निम्नलिखित थे — १९४१ का युद्ध क्षति अध्यादेश और १९४३ का युद्ध क्षति (क्षतिपूर्ति बीमा) अधिनियम। इन दोनों के अन्तर्गत लड़ाई के कारण घायल कर्मचारियों को चिकित्सा सुविधाएं तथा अन्य सहायता और क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती थी। यह क्षतिपूर्ति भी उसी सीमा तक मिलती थी जो श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत मिलती है। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में सबसे महत्वपूर्ण संशोधन सन् १९४६ और १९५९ के थे। १९४६ के संशोधन के अनुसार १० रु० मजदूरी प्राप्त करने वाले श्रमिकों के

स्थान पर अब ४०० रु० तक प्राप्त करने वाले श्रमिक भी अधिनियम के अन्तर्गत आ गये हैं। १९५९ के संशोधित अधिनियम के अनुसार, जो मार्च १९५९ में पारित हुआ और जून १९५९ से लागू हुआ है क्षतिपूर्ति देने के हेतु वयस्क और अल्पवयस्क का अन्तर दूर कर दिया गया है और अन्य कई धाराओं में परिवर्तन किये गये हैं। अधिनियम जैसा इस समय लागू है, उसके उपबन्ध निम्नलिखित हैं —

क्षेत्र —(Scope)

यह अधिनियम रेलवे कारखानों खानों यातायात यंत्र से चलने वाली गाड़ियों निर्माण कार्यों तथा अनेक अन्य संकट-पूर्ण रोजगारों में काम करने वाले सारे श्रमिकों पर लागू होता है। जो लोग लिपिकीय अथवा प्रशासन कार्य करते हैं या सशस्त्र सेना में या नैमित्तिक (Casual) काम पर हैं अथवा जिनकी मासिक आय ४०० रु० से अधिक है वे इस अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते। नाविक (Seamen) और समुद्र पर काम करने वाले कुछ अन्य श्रमिक जो किसी यांत्रिक द्वारा चलने वाले जहाज पर काम करते हैं या २० या इससे अधिक टन वाले किसी जहाज पर नौकर हैं वे भी इस अधिनियम के अन्तर्गत आ जाते हैं। साधारणतः अधिनियम उन समस्त श्रमिकों पर लागू होता है जो संगठित उद्योगों तथा खतरनाक रोजगारों में काम पर लगे हुए हैं। १९५९ के संशोधित अधिनियम में ऐसे श्रमिकों की परिभाषा और भी स्पष्ट कर दी गई है। किन्तु राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वे अधिनियम का विस्तृत कर अन्य प्रकार के व्यक्तियों पर भी लागू कर दें जिनके व्यवसाय खतरनाक समझे जाते हों। मद्रास उत्तर प्रदेश मैसूर तथा बिहार की सरकारों ने अधिनियम के क्षेत्र को उन लोगों तक विकसित कर दिया है जो किसी भी यन्त्र से चलने वाली गाड़ी से माल उतारने अथवा चढ़ाने का कार्य करते हैं अथवा ऐसी ही गाड़ियों में माल या माल से जाने या रखने उठाने के कार्य में लगे हुए हैं। बिहार सरकार ने ऐसे भंगियों के लिए भी यह अधिनियम लागू कर दिया है जो जमीन के अन्दर गहरी खुदी नालियों की सफाई का कार्य करते हैं या जल मल निकास की नालियों में अथवा टट्टी पर कार्य करते हैं। मद्रास सरकार ने अधिनियम को विस्तृत कर नारियल चुनने वालों पर गहनीर के कारखानों में लगे हुए श्रमिकों पर, मालगाड़ी से उतारने वालों पर तथा शक्तिचालित प्रयोग करने वाली सब संस्थाओं पर जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आ जाती हैं यह अधिनियम लागू कर दिया है। मैसूर सरकार ने किसी भी जिला बोर्ड अथवा नगर पालिका के पुलों में कार्य करने वाले कर्मचारियों पर भी यह अधिनियम लागू किया है। बम्बई सरकार ने इस अधिनियम को तैरों के ऐसे श्रमिकों तक विस्तृत कर दिया है जो ईंजन चलाने अथवा अन्य किसी यान्त्रिक साधन के लिए नौकर हैं। इन विभिन्न प्रकार के कार्यों की एक सूची है जिनमें काम करने वाले श्रमिकों पर यह अधिनियम लागू होता है अर्थात् जो श्रमिक निम्नलिखित कार्य करते हैं — इमारतों के निर्माण-कार्य उनकी मरम्मत अथवा ढाने में, सड़कें पुल बांध सुरंग तार, टेलीफोन या

बिजली से चलने वाले शहरें, पाइप बिछाना, जल-मल निकास के नाले, रस्सी के पुल, आग बुझाने वाले, पैट्रोल, विस्फोटक कार्य, बिजली या गैस का कार्य, प्रकाश-स्तम्भ, सिनेमा दिखाना, जंगली जानवरों को पालना, गोताखोर इत्यादि-इत्यादि। १९५९ के संशोधन द्वारा इस प्रकार के रोजगारों की सूची और विस्तृत कर दी गई है। यदि कोई व्यक्ति १९४८ के कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत आता है और वह कर्मचारी राज्य बीमा निगम से असमर्थता और आयमता लाभ पाने का अधिकारी है तब उसे मालिकों से इस अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार नहीं है। जम्मू व काश्मीर राज्य के अतिरिक्त यह अधिनियम समस्त भारत में लागू होता है।

क्षतिपूर्ति पाने का अधिकार — (Title to Compensation)

क्षतिपूर्ति मालिकों द्वारा दी जाती है और ठेके के श्रमिकों के लिए भी क्षतिपूर्ति देने का उत्तरदायित्व मुख्यतः मालिकों पर है। यह क्षतिपूर्ति उस समय दी जाती है जब श्रमिक को अपने रोजगार के कारण या कार्य करते समय किसी दुर्घटना से क्षति पहुंचती है। क्षतिपूर्ति उस समय नहीं दी जाती जब कोई श्रमिक तीन दिन से अधिक अशक्त नहीं रहता या क्षति (मृत्यु न होने पर) स्वयं मजदूर की गलती से होती है, उदाहरणतः जब श्रमिक किसी नशीली चीज या शराब के प्रभाव में हो या उसने किसी आज्ञा का जान-बूझकर उल्लंघन किया हो आदि। मृत्यु के अवसर पर मालिकों को प्रत्येक परिस्थिति में क्षतिपूर्ति देनी होती है।

व्यवसाय जनित बीमारियां — (Occupational Diseases)

शारीरिक क्षतियों के अतिरिक्त कुछ विशिष्ट व्यवसाय जनित रोग हो जाने पर भी क्षतिपूर्ति प्रदान की जाती है। ऐसे रोगों का उल्लेख अधिनियम की तीसरी सूची में किया गया है उदाहरणतः सीसा, धुआं, फासफोरस, पारे के विष प्रयोग से व बन्द हवा आदि से होने वाली बीमारियां। राज्य की सरकारों को बीमारियों की सूची में और नाम बढ़ाने का अधिकार है जैसा कि कुछ राज्य की सरकारों ने किया भी है। १९५९ के संशोधन अधिनियम के अनुसार उस सूची का जिसमें ऐसी बीमारियों और क्षतियों का उल्लेख है जिनके लिए क्षतिपूर्ति दी जाती है, अधिक विस्तृत तथा व्यापक कर दिया गया है और ऐसी क्षतियों की संख्या जिनके कारण स्थायी आंशिक असमर्थता हो जाती है १४ से बढ़ा कर ५४ कर दी गई है।

क्षतिपूर्ति की राशि — (Amount of Compensation)

क्षतिपूर्ति में दी जाने वाली धन राशि चोट के प्रकार तथा श्रमिक की औसतन मासिक मजदूरी पर निर्भर है। इस उद्देश्य से क्षतियों को तीन भागों में बांटा गया है— (१) ऐसी क्षति जिसके कारण मृत्यु हो जाती है, (२) ऐसी क्षति जिससे स्थायी पूर्ण या आंशिक असमर्थता हो जाती है (३) ऐसी क्षति जिससे अस्थायी असमर्थता हो जाती है। वयस्क और अल्प वयस्कों के लिए क्षतिपूर्ति की दरें पहले

भिन्न थी (जैसा कि आगामी तालिका से स्पष्ट हो जाएगा) परन्तु अब वयस्क और अल्पवयस्क का अन्तर १९५९ के संशोधन द्वारा समाप्त कर दिया गया है। मृत्यु हो जाने पर अधिनियम मे दी हुई क्षतिपूर्ति की दरें निम्नतम वेतन वर्ग (अर्थात् १० रु० प्रतिमाह से कम) के व्यक्तियों पर ५०० रु० मे लेकर, उच्चतम वेतन वर्ग (अर्थात् १०० रु० प्रतिमाह से अधिक) वाले व्यक्तियों पर ४५०० रु० तक है। स्थायी पूर्ण असमर्थता के समय इसी प्रकार क्षतिपूर्ति की दरें वेतन के अनुसार ७०० रु० से ६,३०० रु० तक है। अस्थायी असमर्थता होने पर अधिनियम के अनुसार श्रमिकों को प्रत्येक आधे महीने के बाद क्षति की राशि दी जाएगी और इस राशि की दर इस प्रकार होगी। मासिक वेतन की आधी राशि से (उन श्रमिकों के लिए जिनकी मजदूरी १० रु० मासिक से कम है) ३० रु० तक (उन श्रमिकों के लिए जिनकी मजदूरी १०० रु० से अधिक है)। इस प्रकार अस्थायी असमर्थता में दिए जाने के लिए अधिक से अधिक ३० रु० निश्चित है। असमर्थता में प्रथम तीन दिनों के लिए *कोई क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती उसके पश्चात् १६ वें दिन से आधे माह के वेतन के* हिसाब से क्षतिपूर्ति का दिया जाना प्रारम्भ हो जाता है जो असमर्थता काल में चलता रहता है। यह क्षतिपूर्ति अधिक से अधिक पाँच वर्ष तक दी जा सकती है। स्थायी आंशिक असमर्थता के समय क्षतिपूर्ति का हिसाब धनोपार्जन-शक्ति में क्षति पहुंचने के प्रतिशत के हिसाब से लगाया जाता है और इसका उल्लेख अधिनियम की प्रथम अनुसूची में किया गया है। १९५९ के संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिये जो सात दिन के प्रतीक्षा काल की व्यवस्था थी उसे घटाकर ३ दिन कर दिया गया है। यदि असमर्थता का समय २८ दिन या इससे अधिक है तब असमर्थ होने के दिन से ही क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था की गई है।

अगले पृष्ठ पर दी हुई तालिका में विभिन्न वेतन वर्गों की क्षतिपूर्ति की दरें दी गई हैं।

आश्रित – (Dependants)

यदि श्रमिक की मृत्यु हो जाती है उस समय जो आश्रित क्षतिपूर्ति के अधिकारी हैं अधिनियम में उनकी भी एक सूची दी गई है। उनको दो भागों में बांटा गया है। प्रथम वे जो बिना प्रमाण के ही आश्रित समझे जाते हैं तथा दूसरे वे जिन्हें यह प्रमाणित करना पड़ता है कि वे मृत व्यक्ति के आश्रित थे। प्रथम वर्ग मे निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं—विधवा अल्प-वयस्क वैध-पुत्र वैध-अविवाहित पुत्री अथवा विधवा माँ। दूसरे वर्ग में निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं—विधुर पिता विधवा माँ के अतिरिक्त माता या पिता अल्पवयस्क अवैध पुत्र अविवाहित अवैध पुत्री विवाहित या विधवा अल्पवयस्क पुत्री अल्पवयस्क भाई अविवाहित या विधवा बहिन विधवा पुत्र वधू मृत पुत्र अथवा मृत पुत्री का अल्पवयस्क बच्चा यदि उसके माता-पिता में से कोई जीवित न हो और यदि श्रमिक के माता पिता जीवित नहीं है तो दादा और दादी।

क्षति पूर्ति की दरें*

दुर्घटनाग्रस्त श्रमिक का मासिक वेतन		क्षतिपूर्ति की राशि: मृत्यु		क्षतिपूर्ति की राशि: स्थायी सम्पूर्ण असमर्थता		अस्थायी असमर्थता की क्षतिपूर्ति के लिये प्रत्येक आधे माह पर भुगतान	
न्यून से	अधिक तक	वयस्क	अल्प वयस्क	वयस्क	अल्प वयस्क	वयस्क	अल्प वयस्क
रु	रु	रु	रु	रु	रु०	रु० म प०	
०	१०	५००		७ ०		आधा मासिक वेतन	
१०	१५	५५०		७७०		५—०	
१५	१८	६		८४		६—००	
१८	२१	६३		८८२		७— ०	
२१	२४	७२		१००८		८—०	मासिक
२४	२७	८१		११३४		८—८०	मजदूरी
२७	३	९ ०		१२६०		९—००	का आधा
३०	३५	१ ५		१४७०		९—८	अधिक से
३५	४०	१२ ०	२	१६८०		१ —००	अधिक
४०	४५	१ ३५		१८९०	१२००	११—२४	३ रु
४५	५०	१ ५		२१ ०		१२—५०	
५०	६०	१८ ०		२५२		१५—००	
६	७०	२१		२९४		१७—५०	
७०	८०	२४०		३३६		२०—५०	
८०	१००	३ ००		४२००		२५—००	
१००	२००	३५०		४९०		३०—००	
२००	३००	४०००		५६०		३०— ०	
३		४५ ०		६३००		३०—	

क्षतिपूर्ति का वितरण :—(Distribution of Compensation)

इस बात की भी व्यवस्था है कि समस्त घातक दुर्घटनाओं की सूचना एक श्रमिक क्षतिपूर्ति कमिश्नर को दी जायगी और यदि मालिक अपने उत्तरदायित्व को स्वीकार करता है तब उसे कमिश्नर के पास क्षतिपूर्ति की राशि जमा करनी होगी। परन्तु जब मालिक अपने उत्तरदायित्व को नहीं स्वीकार करता तो कमिश्नर जांच करने के पश्चात् आश्रितों को यह सूचित कर सकता है कि वे यदि दावा करना चाहें तो कर सकते हैं तथा इस विषय में वह हर प्रकार की सूचना दे सकता है। अधिनियम

* कर्मचारी क्षतिपूर्ति अधिनियम, चतुर्थ सूची, भाग ४। सन् १९३३ से इसमें और अन्य समय का अन्तर नहीं रहा है।

में इस बात की आज्ञा नहीं है कि क्षतिपूर्ति के लिए मालिक और मजदूर आपस में समझौता कर लें। मालिकों द्वारा क्षतिपूर्ति में से केवल १०० रु० तक अन्तिम राशि दी जा सकती है। कमिश्नर को यह भी अधिकार है कि वह क्षतिपूर्ति की राशि में से २५ रु० तक अन्त्येष्टि क्रिया पर व्यय करने वाले व्यक्ति को देने के लिए काट ले। १९२९ के संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था हो गई है कि समय पर क्षतिपूर्ति न देने पर दण्ड दिया जायगा।

अधिनियम का प्रशासन —(Administration of the Act)

अधिनियम का प्रशासन राज्य सरकारों द्वारा किया जाता है जिन्होंने अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिक क्षतिपूर्ति कमिश्नरों की नियुक्ति की है। विवादास्पद दावों को तय करना, किसी क्षति से मृत्यु होने पर क्षतिपूर्ति दिलवाना तथा सामयिक भुगतानों की जाँच करना आदि कमिश्नर के कर्तव्य हैं। अधिनियम के अनुसार सम्बन्धित प्राधिकारियों को मालिक एक रिपोर्ट देने के लिए बाध्य हैं जिसमें दुर्घटनाओं की संख्या, क्षतिपूर्ति में दी गई राशि आदि का उल्लेख हो। १९५१ में दुर्घटनाओं की संख्या इस प्रकार थी जिनसे मृत्यु हुई— १०७५, जिनसे स्थायी असमर्थता हुई–२०९९ जिनसे अस्थायी असमर्थता हुई–७ ०६९ कुल योग ७९ २३। उसी वर्ष मृत्यु पर क्षतिपूर्ति में दी गई राशि २६,१०,२९२ रु० थी और स्थायी असमर्थता के लिए दी हुई राशि २१,२९,७ १ रु० तथा अस्थायी असमर्थता के लिए दी गई राशि १८,३३,४१८ रु० थी। क्षतिपूर्ति के लिये दी गई राशि का कुल योग ७१,४१,६८४ रु० था।

भारत के क्षतिपूर्ति अधिनियम का आलोचनात्मक मूल्यांकन —

इन बातों को देखते हुए कहा जा सकता है कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम सफलतापूर्वक लागू किया गया है और इसके लागू करने में कोई कठिनाई भी नहीं हुई है। इसका कारण यह है कि यह अधिनियम बहुत स्पष्ट है और इसको लागू करने के लिए भी विशेष प्रबन्ध किया गया है। अधिकतर मालिकों ने इसके उपबन्धों को लागू करने के लिए अपनी सहमति दिखाई है। इसके अतिरिक्त अनेक मजदूरों के कल्याण कर्मचारियों ने कुछ श्रम सभा तथा समाज संस्थाओं ने भी अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति दिलाने में श्रमिकों की सहायता की है। उदाहरणार्थ अहमदाबाद का कपड़ा मिल मजदूर परिषद, बम्बई की टी कावा स्पिनल वाली ऐसोसियेशन और बम्बई राष्ट्रीय मिल मजदूर संघ आदि ने अधिनियम के प्रचार तथा निर्धन श्रमिकों को क्षतिपूर्ति दिलाने में अच्छा कार्य किया है। कई बार वकीलों ने भी बिना फीस लिए क्षतिपूर्ति के मुकदमों को लड़ा है। श्रमिक क्षतिपूर्ति कमिश्नर का कार्यालय भी क्षतिपूर्ति के लिए प्रार्थना पत्र लिखने में श्रमिकों की सहायता करता है। मद्रास में सरकार ने मुकदमे लड़ने के लिए कई बार श्रमिकों को आर्थिक सहायता भी दी है। प्रारम्भ में अधिनियम में जो दोष थे वह भी कई संशोधनों द्वारा दूर हो चुके हैं।

उदाहरणार्थ १९१४ में यह व्यवस्था की गई थी कि यदि चोट घातक है तो स्वयं श्रमिक का दोष होने पर भी मालिकों को क्षतिपूर्ति देनी ही पड़ेगी। १९१८ में उद्योगजनित बीमारियों का क्षेत्र स्पष्ट कर दिया गया तथा धीरे एवं धीरे धीरे लगने वाली व्यवसायजनित बीमारियों के अन्तर को भी स्पष्ट किया गया और साथ ही उद्योग-जनित बीमारी होने पर क्षतिपूर्ति के लिए जो ६ माह की नौकरी की शर्त थी उसको अब केवल धीरे धीरे लगने वाली बीमारियों के लिए ही रखा गया है। क्षतिपूर्ति के दावे किए जाने का समय ६ माह से बढ़ाकर १ साल कर दिया गया है। मासिक वेतन की परिभाषा को अब स्पष्ट कर दिया गया है जिसके अन्तर्गत अब सम्पूर्ण माह की मजदूरी ली जाती है चाहे उस मजदूरी के भुगतान की अवधि कोई भी क्यों न हो। १९५९ के संशोधन से भी इस अधिनियम में उन्नति हुई है। १९१८ में मालिकों के दायित्व का अधिनियम (Employers Liability Act) भी पारित किया गया था। इसके अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि किसी भी श्रमिक को कोई क्षति पहुंचने पर यदि हरजाने का दावा किया जाता है तो मालिक इस बात की दलील नहीं दे सकते कि श्रमिक का रोजगार सामान्य था अर्थात् वह कई मालिकों द्वारा काम पर लगा हुआ था। इस १९१८ के अधिनियम को बाद में १९५१ के एक संशोधन से और भी स्पष्ट कर दिया गया है।

श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के मुख्य दोष —

क्षतिपूर्ति अधिनियम के लागू होने पर इसके कई दोष सामने आये हैं। मालिकों ने यह शिकायत की है कि अधिनियम उनके प्रति अन्याय करता है क्योंकि उनकी यह समझ में नहीं आता कि जिस संकट के लिये वे व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी नहीं हैं उसकी क्षतिपूर्ति क्यों करें। उदाहरणार्थ घातक चोट के मामले में यदि श्रमिक की मृत्यु स्वयं उसकी ही गलती से होती है तब भी मालिक क्षतिपूर्ति के लिये उत्तरदायी ठहराया जाता है।

इस अधिनियम के कार्यान्वित होने पर कई दोष पाये जाते हैं जो विशेषकर श्रमिकों के दृष्टिकोण से अधिक गम्भीर हैं। यह अधिनियम ठीक प्रकार से लागू नहीं होता विशेषकर उन छोटे छोटे तथा मुफस्सिल क्षेत्रों में जहां साधारणतः इस बात का प्रयत्न किया जाता है कि जैसे भी हो मजदूर को क्षतिपूर्ति न देनी पड़े। बड़ी बड़ी कम्पनियाँ साधारणतः अधिनियम को ठीक प्रकार से लागू करती हैं यद्यपि उनमें भी छोटी मोटी क्षतियों की रिपोर्ट नहीं दी जाती। मुफस्सिल क्षेत्रों में प्रार्थनापत्र पर कार्यवाही करने में बहुत देर हो जाती है क्योंकि कानूनी अधिकारी बजाय इसके कि अधिनियम की मूल भावना एवं तत्व पर ध्यान दें कानूनी कृत्रिमता (Formalities) में अधिक पड़े रहते हैं। दूसरे अधिकारी अर्थात् जो कमिश्नर नियुक्त किये गये हैं वे इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले मामलों का शीघ्रता से निर्णय नहीं करते क्योंकि वे अपने अन्य कार्यों में बहुत व्यस्त रहते हैं। मौसमी कारखानों में जैसे चावल मिलों में या कपास निकालने की मिलों में दुर्घटनाएँ

प्रायः चुपचाप दबा दी जाती है अथवा यदि ऐसा सम्भव नहीं होता तो एकमुश्त राशि देकर फैसला कर लिया जाता है और क्षतिपूर्ति की पूरी राशि नहीं दी जाती। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग में भी अधिनियम संतोषजनक रूप से लागू नहीं होता विशेषकर ठेके पर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये। ठेकेदार कभी कभी अधिनियम के अनुसार दिये जाने वाली राशि के स्थान पर कम धन देकर पूरी राशि की रसीद ले लेते हैं और कभी कभी तो क्षतिपूर्ति बिल्कुल भी नहीं दी जाती। खानों में भी यह देखा गया है कि अधिकांश दुर्घटनाओं की सूचना तक नहीं दी जाती। इस समय मालिक ऐसी दुर्घटनाओं की सूचना देने के लिये बाध्य नहीं है जिससे मृत्यु नहीं होती चाहे उसकी क्षतिपूर्ति भले ही दी जाती हो। कमिश्नर यह नहीं जान पाता कि क्षतिपूर्ति उचित रूप से दी गई है या नहीं। इसके अतिरिक्त सेवा कार्ड रखने की भी कोई सामान्य व्यवस्था नहीं है। इसका परिणाम यह होता है कि जब दुर्घटना के पश्चात् श्रमिक और उसका परिवार अपने घर चला जाता है तब घर का पता ज्ञात न होने के कारण उससे सम्पर्क करना कठिन हो जाता है। श्रमिक इतने अज्ञानी और अशिक्षित होते हैं कि अधिकतर उन्हें इतना भी नहीं मालूम होता कि औद्योगिक दुर्घटनाओं के होने पर वे क्षतिपूर्ति के अधिकारी हैं। इस सम्बन्ध में श्रमिकों को शिक्षित करने की ओर सरकार, मालिकों और श्रमिक संघों द्वारा बहुत कम पग उठाए गए हैं। इसके अतिरिक्त कोई ऐसी संस्थाएं भी नहीं हैं जो श्रमिकों को क्षतिपूर्ति प्राप्त करने के लिए कानूनी सहायता प्रदान कर सकें। यदि श्रमिक को यह ज्ञात भी होता है कि वह क्षतिपूर्ति पाने का अधिकारी है तब भी उसे मालिक से क्षतिपूर्ति माँगनी पड़ती है और इस प्रार्थना का अधिकतर परिणाम यह होता है कि जब तक प्रार्थना को वापस न ले लिया जाय अथवा थोड़ी सी राशि को ही क्षतिपूर्ति की पूरी राशि के रूप में स्वीकार न कर लिया जाए, उसे बर्खास्त करने की धमकी दे दी जाती है। श्री शिवाराव का कहना है कि "एक सीमा के पश्चात् अपने अधिकारों की पूर्ति कराना भारतीय श्रमिक के लिए लाभदायक नहीं है।" श्रमिक को कई बार इस कठिन समस्या का सामना करना पड़ता है कि या तो क्षतिपूर्ति के लिए जोर डालकर अपनी नौकरी से हाथ धो ले या इस आश्वासन पर कि उसकी नौकरी बनी रहेगी वह जो भी मालिक दे उसे स्वीकार कर ले। यदि मालिक क्षतिपूर्ति देना अस्वीकार कर देता है तो श्रमिक के सामने केवल अदालत का रास्ता ही रह जाता है जिसमें अनेक कठिनाइयाँ हैं। श्रमिक के पास न तो इतना धन होता है और न इतना अवकाश ही होता है कि वह मुकदमेबाजी का बोझ सह सके। इसलिए अधिकतर मामलों में मुकदमा दायर ही नहीं किया जाता। दूसरी बात यह है कि मालिकों के बड़े-बड़े योग्य वकीलों के सामने श्रमिक की सफलता भी संदिग्ध रहती है। जब किसी श्रमिक की मृत्यु हो जाती है अथवा जब वह किसी गम्भीर दुर्घटना का शिकार हो जाता है तब दूर गाँव में रहने वाले उसके आश्रितों के लिए क्षतिपूर्ति का दावा करना कठिन हो जाता है। यदि

कठिनाई नहीं है कि अधिनियम को बहुधा मालिकों द्वारा लागू नहीं किया जाता बरन् एक और मुसीबत यह है कि अधिनियम में श्रमिकों के लिए दुर्घटनाओं और उद्योग जनित बीमारी होने पर चिकित्सा सहायता का कोई भी उपबन्ध नहीं है जो श्रमिक की सबसे बड़ी आवश्यकता है। वास्तव में उद्योग जनित बीमारियों की क्षतिपूर्ति दी ही नहीं जाती क्योंकि जब भी श्रमिक में किसी क्षतिपूर्ति देने वाली बीमारी के चिन्ह दिखाई देते हैं, मालिक उसको बरखास्त कर देता है। इन कारणों के आधार पर श्री ए० एन० अग्रवाल का यह कथन है कि श्रमिकों की क्षतिपूर्ति का अधिकार केवल एक कागजी कार्यवाही मात्र रह जाता है।[1]

सुधार के लिए सुझाव —

इन सब दोषों को दूर किया जाना चाहिए। अधिनियम की मुख्य धाराओं का भारतीय भाषाओं में प्रत्येक कारखानों के किसी मुख्य स्थान पर प्रदर्शन करना चाहिए, तथा जैसे ही श्रमिक नौकरी पर आता है उसको उसकी भाषा में अधिनियम के सारांश की एक प्रति दे देना लाभदायक होगा। श्रम कल्याण अधिकारियों एवं श्रमिक संघों को सभाओं और व्याख्यानों द्वारा इस सम्बन्ध में श्रमिकों को शिक्षित करना चाहिए। यह भी वांछनीय है कि राज्य द्वारा दुर्घटनाग्रस्त श्रमिकों को निःशुल्क कानूनी सहायता प्रदान की जाए तथा उनको निःशुल्क चिकित्सा सहायता भी दी जाए। क्षतिपूर्ति स्वतः प्राप्त हो जानी चाहिए तथा सभी प्रकार की— मृत्युजनक अथवा अन्य दुर्घटनाओं की सूचना तत्काल ही श्रम कमिश्नर को दी जानी चाहिए और इसके बाद शीघ्र ही एक रिपोर्ट दी जानी चाहिए जिसमें प्रत्येक दुर्घटना के लिए दी गई क्षतिपूर्ति की राशि दिखाई जानी चाहिये और जहाँ क्षतिपूर्ति देना अस्वीकार कर दिया जाता है उसके सम्बन्ध में कारणों की स्पष्टोक्ति भी की जानी चाहिये। निरीक्षण कर्मचारियों को इन श्रमिकों के मामले अपने हाथ में लेने का अधिकार होना चाहिये जिनको कि मालिकों द्वारा उनकी क्षतिपूर्ति नहीं दी गई है। प्रशासनात्मक व्यवस्था सरल होनी चाहिये तथा क्षतिपूर्ति के मामलों का शीघ्र निबटारा किया जाना चाहिये। इस बात की भी आवश्यकता है कि क्षतिपूर्ति श्रमिक के जीवन निर्वाह व्यय व उसके परिवार के सदस्यों की संख्या के अनुसार दी जाय।

श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में फिर से संशोधन करने का विचार किया जा रहा है। क्षतिपूर्ति की दरों को मृत्यु और स्थायी असमर्थता होने पर दुगुना कर देने का सुझाव है। एकमुश्त (Lumpsum) भुगतान के स्थान पर सामयिक रूप से क्षतिपूर्ति की राशि देनी चाहिये और इस राशि का वितरण कर्मचारी राज्य बीमा निगम के द्वारा होना चाहिये। अस्थायी असमर्थता के लिये भी क्षतिपूर्ति की दर को २५% बढ़ा देने का सुझाव है और अधिनियम को ४०० रु० के स्थान पर १,००० रु० पाने वाले कर्मचारियों तक लागू कर देने के सम्बन्ध में भी विचार किया जा रहा है।

[1] A. N. Agarwal—*Indian Labour Problems*, page 194

श्रमिक क्षतिपूर्ति और बीमा —

यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि श्रमिकों को क्षतिपूर्ति देने का उत्तरदायित्व मालिकों का हो अथवा इसको सामाजिक बीमा योजना के अन्तर्गत किया जाय। भारतीय श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम म क्षतिपूर्ति देने का पूर्ण उत्तरदायित्व मालिकों का ही है। यह एक ऐसी सामाजिक-बीमा व्यवस्था नहीं है जिसमें कि मालिक श्रमिक और राज्य मिलकर एक वित्तीय निधि बनाते हों। इस योजना में निजी व्यवसायिक बीमे के सिद्धान्त का भी अनुकरण नहीं किया गया है क्योंकि मालिक इसमें इस बात के लिये बाध्य नहीं है कि वे अपने जोखिम का बीमा किसी बीमा कम्पनी अथवा किन्हीं अन्य संस्थाओं के साथ कराएँ। फिर भी मालिकों के कुछ महत्वपूर्ण संगठनों के सदस्यों ने अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति में दिये जाने वाले भुगतान से बचने के लिए बीमा कराया है। उदाहरणार्थ 'बम्बई मिल मालिक परिषद्' ने स्वयं "मिल मालिक पारस्परिक बीमा परिषद्" की स्थापना की है जो अपने सदस्यों की क्षतिपूर्ति के दायित्व का बीमा करती है। भारतीय जूट मिल परिषद् के सदस्यों ने भी श्रमिक क्षतिपूर्ति के दायित्व से बचने के लिए बीमा कराया है।

इस प्रकार के बीमे की योजना के लाभ स्पष्ट है। यह सभी सम्बन्धित पक्षों के लिए लाभदायक है। जब मालिक अपनी जवाबदारी से मुक्त होता है तब वह श्रमिकों के द्वारा मांगी जाने वाली क्षतिपूर्ति का विरोध नहीं करता बल्कि वह इस बात का ध्यान रखता है कि उसके श्रमिकों को पर्याप्त रूप से क्षतिपूर्ति मिल जाय। इससे मालिकों और श्रमिकों के बीच कटुता कम हो जाती है। यदि मालिक ने पहले ही बीमा कराया हुआ है और किसी समय दिवालिया भी हो जाता है तब भी श्रमिकों की अवस्था अनिश्चित नहीं होती। अतः अनेक राज्य सरकारों, मालिकों के संगठनों और श्रम अनुसंधान समिति ने सुझाव दिया है कि दुर्घटनाओं की क्षतिपूर्ति देने के लिए मालिकों के दायित्व का बीमा अनिवार्य रूप से किया जाना चाहिए।

अनिवार्य बीमा दो प्रकार का हो सकता है कम्पनी बीमा और राज्य बीमा। अधिकतर राज्य बीमा का समर्थन किया जाता है क्योंकि निजी बीमा कम्पनियों में श्रमिकों को स्वयं ही दावा करना पड़ता है। इसमें खर्चीले और लम्बे मुकदमों की सम्भावनाएँ हो सकती है और श्रमिकों को मिलने वाला लाभ स्वतः प्राप्त नहीं होता और वर्तमान दोष भी यथावत् बने रहेंगे। देश म श्रमिक क्षतिपूर्ति की वर्तमान अवस्थाओं को सुधारने के लिए एकमात्र उपाय सामाजिक-बीमा के सिद्धान्त को अपनाना ही है। इसमें लागत तीन भागों म अर्थात् मालिकों श्रमिकों और राज्यों म बट जाती है। मालिकों का वर्तमान योजना के प्रति विरोध भी दूर हो जायेगा तथा उनको क्षतिपूर्ति म देने में जो लाभ होता है वह भी समाप्त हो जायेगा। इधर श्रमिकों के दृष्टिकोण से भी बहुत बड़ा लाभ होगा। जब मालिकों को श्रमिकों की क्षतिपूर्ति की मांग पूरा न करने से कोई लाभ नहीं होगा और इस सम्बन्ध में उनका कोई प्रत्यक्ष उत्तरदायित्व न होगा तब वे

श्रमिकों की राह में बाधक होने की अपेक्षा क्षतिपूर्ति दिलाने में उनके सहायक होंगे। क्षतिपूर्ति का भुगतान भी स्वतः ही होगा और श्रमिकों का दावा करने अथवा मुकदमा दायर करने की आवश्यकता नहीं होगी। अधिनियम से बचने का प्रयत्न भी बहुत कम हो जायगा। वर्तमान परिस्थिति में इस सुधार की बहुत आवश्यकता है। चिकित्सा लाभों के लिए भी व्यवस्था करना सम्भव हो जायगा जो स्वास्थ्य बीमा निधि का भाग हो सकता है और श्रमिक को किसी भी दुर्घटना का शिकार होने पर यह चिकित्सा-लाभ तत्काल ही निःशुल्क प्राप्त हो जायेगा। यद्यपि अधिनियम में ऐसा कोई संशोधन नहीं हुआ है जिसके अन्तर्गत क्षतिपूर्ति के लिए अनिवार्य बीमा की व्यवस्था हो फिर भी "कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम" द्वारा इस ओर कदम उठा लिया गया है। इसके अनुसार क्षतिपूर्ति देने का उत्तरदायित्व अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित निगम का है। मालिकों का उत्तरदायित्व इस प्रकार समाप्त हो गया है। जब यह अधिनियम सारे भारतवर्ष में लागू हो जायेगा तब श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम की कोई आवश्यकता नहीं रह जायेगी।

भारत में मातृत्व हित लाभ
(Maternity Benefits in India)

मातृत्व हित का महत्व —

भारत में गर्भवती स्त्रियों को मातृत्व हित लाभ और विश्राम प्रदान करने के महत्व की ओर प्रथम बार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने भारतीय जनता का ध्यान उस समय आकर्षित किया जब उसने १९११ में एक वाद-श्रम अभिसमय पारित किया। भारतीय सरकार इस अभिसमय को कुछ कठिनाइयों की वजह से नहीं अपना सकी। वे कठिनाइयाँ यह थीं स्त्री श्रमिकों की प्रवासिता गर्भवती होने से पूर्व घर लौट जाने का रिवाज तथा बीमारी का प्रमाणपत्र बनाने के लिए महिला डाक्टरों का अभाव आदि। इस विषय पर श्री एन० एम० जोशी ने कुछ प्रयत्न किये थे। १९२४ में विधान परिषद् के समक्ष उन्होंने एक विधेयक रखा। परन्तु उसमें वे सफल नहीं हो सके क्योंकि सरकार इस बात से सहमत नहीं थी कि इस प्रकार की व्यवस्था की आवश्यकता थी। परन्तु हमारे देश में महिला श्रमिकों के लिए मातृत्व हित लाभों की सदैव बहुत आवश्यकता रही है। भारत में लगभग सारी स्त्री श्रमिक विवाहित हैं और निर्धनता अज्ञानता तथा चिकित्सा सुविधाओं के अभाव के कारण यहाँ माताओं की मृत्यु संख्या अत्यधिक है। समाज-सेवकों द्वारा यह अनुमान लगाया गया है कि भारत में प्रत्येक १००० बच्चों के जन्म होने पर औसतन २५ माताओं की मृत्यु हो जाती है। इस प्रकार यह देखते हुए कि भारत में औसतन ९० लाख बच्चे प्रतिवर्ष पैदा होते हैं यह कहा जा सकता है कि लगभग २२० ०० माताओं की मृत्यु प्रतिवर्ष हो जाती है जिनमें से अधिकांश युवतियाँ होती हैं। निर्धनता के कारण अधिकतर महिलाओं को कोई न कोई नौकरी करनी पड़ती है और इसके साथ ही

उन्हें अपने घरेलू कामकाज को भी देखना होता है। परिणामस्वरूप उन्हें अपने व्यक्तित्व को विकसित करने का कोई अवसर नहीं मिल पाता। ऐसी परिस्थितियों में पैदा होने वाले शिशु के स्वास्थ्य को भी हानि पहुंचती है और बच्चे दुर्बल पैदा होते हैं क्योंकि माताओं को गर्भावस्था और बच्चे के जन्म के पश्चात् पर्याप्त विश्राम और भोजन नहीं मिल पाता। यदि गर्भवती माताओं की ठीक प्रकार से देखभाल नहीं की जाती है तो देश की भावी संतति के स्वास्थ्य विकास पर बुरा प्रभाव पड़ता है। अतः हमारे देश में मातृत्व हित लाभ की बहुत आवश्यकता है।

इतना होते हुए भी भारत सरकार ने मातृत्व हित लाभ की महत्ता को पूर्णतया नहीं समझा और आज भी कारखानों में मातृत्व हित के लिए कोई भी अखिल भारतीय स्तर पर व्यवस्था नहीं है। अनेक राज्य सरकारों ने समय-समय पर इस विषय पर विधेयक पारित किये हैं और इस प्रकार के लाभों की महत्ता धीरे-धीरे स्वीकार की जा रही है। अभी हाल ही में भारत सरकार ने १९६० का मातृत्व हित लाभ अधिनियम बनाया है जो समस्त देश पर लागू होगा।

विभिन्न राज्यों में मातृत्व हित लाभ —

१९२९ में बम्बई सरकार ने प्रथम मातृत्व हित लाभ अधिनियम पारित किया और उसके बाद इसका अनुसरण करते हुए मध्यप्रान्त (अब मध्यप्रदेश) ने भी एक अधिनियम पारित किया। रायल श्रम आयोग की सिफारिशों के परिणाम स्वरूप अनेक राज्यों में मातृत्व-हित लाभ अधिनियम पारित किये गये। स्वतन्त्रता के पश्चात् तथा राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् इन सभी अधिनियमों में संशोधन हुए। कुछ को निरस्त (Repeal) कर दिया गया और कुछ राज्यों में नये अधिनियम बनाये गये। इस समय सभी राज्यों में मातृत्व हित लाभ अधिनियम लागू हैं और ३ केन्द्रीय अधिनियमों के अन्तर्गत भी मातृत्व-हित लाभ मिलता है। केन्द्रीय अधिनियम ये हैं १९४१ का खान मातृत्व-हित लाभ अधिनियम, १९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम और १९५१ का बागान श्रमिक अधिनियम।

विभिन्न अधिनियमों की मुख्य विशेषतायें निम्नलिखित हैं —

क्षेत्र — (Scope)

जहाँ तक क्षेत्र का सम्बन्ध है आन्ध्र, बम्बई, मध्य प्रदेश, आसाम, मैसूर, हैदराबाद, पंजाब, उड़ीसा, राजस्थान में अधिनियम सभी नियमित कारखानों में काम करने वाली स्त्री श्रमिकों पर लागू होता है। बम्बई अधिनियम केवल कुछ नियत जिलों और नगरों तक ही सीमित है। बिहार अधिनियम पहले गैर मौसमी कारखानों पर लागू होता था परन्तु १९५३ में इसमें संशोधन करके इसे कपास जूट, बेड और चीनी के कारखानों को छोड़कर सभी रजिस्टर्ड कारखानों पर लागू कर दिया गया है। अन्य राज्यों में अधिनियम केवल उन महिला श्रमिकों पर लागू होते हैं जो गैर मौसमी फैक्ट्रियों में काम करती हैं। असम और केरल में

अधिनियमों को आसाम की स्त्री श्रमिकों पर भी लागू कर दिया गया है। १९४८ में पश्चिमी बंगाल सरकार ने प्रथम से एक अधिनियम पारित किया जिसका नाम पश्चिमी बंगाल मातृत्व हित लाभ (चाय बागान) अधिनियम है। इसके अन्तर्गत राज्य में चाय कारखानों और बागान में काम करने वाली स्त्रियों को भी मातृत्व हित लाभ दिया जाता है। १९५० में एक संशोधन के अनुसार स्त्री श्रमिकों को प्रसवकाल के ६ सप्ताह बाद तक किसी भी काम को करने की आज्ञा नहीं है। खान मातृत्व-हित लाभ अधिनियम १९२१ के भारतीय खान अधिनियम के अन्तर्गत आने वाली सभी स्त्री श्रमिकों पर लागू होता है। जिन स्थानों पर कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू कर दिया गया है वहां मातृत्व-हित लाभ अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों का स्त्री श्रमिकों को लाभ प्रदान करने का उत्तरदायित्व नहीं है।

लाभ प्राप्त करने के लिए पात्रता अवधि तथा लाभ राशि की दर और अवधि —

निम्नलिखित तालिका से विभिन्न मातृत्व-हित लाभ अधिनियमों में लाभ प्राप्त करने के लिये पात्रता अवधि (Qualifying Period) लाभ राशि की दर तथा लाभ की अवधि स्पष्ट हो जाएगी :—

१ अधिनियम	२ पात्रता अवधि	३ लाभ-काल (सप्ताह)	४ लाभ राशि की दर
१ असम मातृत्व हित लाभ अधिनियम १९४४।	सूचना देने के दिन से पूर्व १२ माह की अवधि में १५ दिन की नौकरी। यदि स्त्री आसाम में आने से पूर्व ही गर्भवती है तब उसके लिए इस प्रकार की नौकरी की अवधि की शर्त लागू नहीं होगी।	८ सप्ताह कारखानों में और १२सप्ताह बागान में	बागान में—११ आने ६ पा प्रतिदिन। भोजन की रियायतें इसके अतिरिक्त प्रदान की जायेंगी। कारखानों में—प्रसव से ४ सप्ताह पहले तथा ८ सप्ताह बाद तक पिछले १२ सप्ताह की औसतन आय परन्तु कम से कम २ रु० प्रति सप्ताह।
२ बिहार मातृत्व हित लाभ अधिनियम १९४७। (१९५९ में संशोधित)	सूचना देने के दिन से पूर्व ६ माह की नौकरी।	१२	औसतन प्रतिदिन की आय या ७५ न० पै० प्रतिदिन इनमें से जो भी अधिक हो।

१	२	३	४
३ बम्बई मातृत्व हित लाभ अधिनियम १९२९ (दिल्ली में भी लागू)।	सूचना देने के दिन से पूर्व ९ माह की नौकरी।	८	बम्बई और अहमदाबाद के शहरों में ८ आना प्रतिदिन और अन्य स्थानों पर प्रतिदिन की औसतन आय की दर से अथवा ८ आना प्रतिदिन—दोनों में से जो कम हो।
४ हैदराबाद मातृत्व हित लाभ अधिनियम १९४२। (१९५५ में संशोधित)	सूचना देने के दिन से पूर्व ९ माह की नौकरी।	१०	१२ आना प्रतिदिन।
५. केरल मातृत्व हित लाभ अधिनियम १९५७।	सूचना देने के दिन से पूर्व १२ महीनों में १५० दिन की नौकरी।	१२	१ रु० २५ न० पै० प्रति सप्ताह अथवा दैनिक औसतन आय का ७/१२ हिस्सा जिसे ७ से गुणा कर के सप्ताह में जो राशि आये और इनमें से जो अधिक हो।
६ मध्यप्रदेश मातृत्व-हित लाभ अधिनियम १९५८।	सूचना देने के दिन से पूर्व ९ माह की नौकरी।	१२	दैनिक औसतन आय का ७/१२ हिस्सा या ७५ न० पै० प्रतिदिन इनमें जो भी अधिक हो।
७ मद्रास मातृत्व हित लाभ अधिनियम १९३४। (१९५८ में संशोधित)	सूचना देने के दिन से पूर्व १ वर्ष की अवधि में २४० दिन की नौकरी।	१२	दैनिक औसतन आय का ७/१२ हिस्सा या ७५ न० पै० प्रतिदिन इनमें जो भी अधिक हो।

१	२	३	४
८ मैसूर मातृत्व हित लाभ अधिनियम १६५६।	सूचना देने के दिन से पूर्व ६ माह की नौकरी या पिछले १२ माह में निरन्तर या अविराम १५ दिन की नौकरी।	१२	७५ न. पै० प्रतिदिन अथवा दैनिक औसतन आय का ७/१२ हिस्सा इनमें जो भी अधिक हो।
९. उड़ीसा मातृत्व-हित लाभ अधिनियम १६५३। (१६५७ में संशोधित)	सूचना देने के दिन से पूर्व ६ महीने की नौकरी।	१२	वास्तविक दैनिक मजदूरी या वेतन जो १२ आना प्रतिदिन से कम न हो।
१० पंजाब मातृत्व-हित लाभ अधिनियम १६५३। (१६५८ में संशोधित)	प्रसव के दिन से पूर्व ६ महीने की नौकरी।	८४ दिन	दैनिक औसतन आय या १२ आना प्रतिदिन जो भी अधिक हो।
११ राजस्थान मातृत्व-हित लाभ अधिनियम १६५३। (१६५६ में संशोधित)	सूचना देने के दिन से पूर्व २४ दिन की नौकरी।	१२	दैनिक औसतन आय या १२ आना प्रतिदिन इनमें जो भी अधिक हो।
१२ उत्तर प्रदेश मातृत्व-हित लाभ अधिनियम १६३८	सूचना देने के दिन से पूर्व ६ माह की नौकरी।	८	दैनिक औसतन आय या ८ आना प्रतिदिन इनमें जो भी अधिक हो।
१३ (क) बंगाल मातृत्व-हित लाभ अधिनियम १६३६।	प्रसव के दिन से पूर्व ६ माह की नौकरी।	८	दैनिक औसतन आय या ८ आना प्रतिदिन, इनमें जो भी अधिक हो।

१	२	३	४
(ध) पश्चिमी बंगाल मातृत्व-हित लाभ अधिनियम (चाय बागान) १९४८। (१९५१ में संशोधित)	प्रसव के सम्भावित दिन से पूर्व १२ माह में १५ दिन की नौकरी।	१२	७ रु० प्रति सप्ताह (सारा नकद रूप में या कुछ भाग नकद और कुछ जिन्स के रूप में)
१४ खान मातृत्व हित लाभ अधिनियम १९४१।	प्रसव के दिन से पूर्व ६ माह की नौकरी।	८	१२ आना प्रतिदिन।

इस प्रकार भिन्न-भिन्न राज्यों में लाभ की राशि अलग-अलग है। दक्षिण भारत की "संयुक्त बागान मालिक परिषद्" ने यह सिफारिश की थी कि दक्षिण भारत के बागान क्षेत्रों में मातृत्व-हित लाभ की दर भोजन रियायतों सहित १२ आना प्रति दिन होनी चाहिए और लाभ की अवधि ८ सप्ताह होनी चाहिए। ये सिफारिशें १२ फरवरी १९४७ से कार्यान्वित कर दी गई हैं।

अतिरिक्त लाभ —(Additional Benefits)

कुछ अधिनियमों में चिकित्सा बोनस के रूप में अतिरिक्त लाभ देने की व्यवस्था है। यह लाभ तब दिये जाते हैं जब महिला श्रमिक किसी योग्य दाई अथवा अन्य प्रशिक्षित व्यक्तियों की सेवाओं का उपयोग करती है और मालिक अपनी ओर से किसी दाई आदि का निःशुल्क प्रबन्ध नहीं करते हैं। उत्तर प्रदेश में इस प्रकार का बोनस ५ रु० है गावों में ३ रु० है तथा केरल मद्रास मध्यप्रदेश मैसूर उड़ीसा तथा राजस्थान में १ रु० है। पंजाब और बिहार में यह बोनस २५ रु० निर्धारित किया गया है। असम और पश्चिमी बंगाल अधिनियमों के अन्तर्गत प्रसव काल में चिकित्सा सहायता निःशुल्क प्रदान करने की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश उड़ीसा और बिहार के अधिनियमों में यह भी व्यवस्था की गई है कि जहाँ ५० या इससे अधिक स्त्रियाँ या २५ प्रतिशत स्त्री श्रमिक काम करती हैं, वहाँ प्रत्येक मालिक को बच्चों के लिये शिशुगृहों की व्यवस्था करनी होगी तथा स्त्री श्रमिकों के कल्याण के लिये स्वास्थ्य निरीक्षकों को नियुक्त करना होगा। उस स्त्री को जिसके एक वर्ष से कम आयु का शिशु है जिस समय भी वह चाहे आधा आधा घण्टे के दो मध्यान्तर, एक दोपहर से पूर्व और एक दोपहर के बाद मिल सकती है। ये मध्यान्तर उसके एक घण्टे के सामान्य

मध्यान्तर के अतिरिक्त होंगे। यदि कारखाने में शिशुगृह की व्यवस्था की गई है तब ऐसे मध्यान्तर पन्द्रह-पन्द्रह मिनट के होंगे। इसी प्रकार प्रत्येक ३ घण्टे के कार्य के पश्चात् दिन में दो मध्यान्तर केरल में ३० मिनट का मध्यान्तर पंजाब में और १५ मिनट का मध्यान्तर मद्रास में देने की व्यवस्था है। उत्तर प्रदेश राजस्थान मैसूर और केरल के अधिनियमों में गर्भपात होने पर तीन सप्ताह की सवेतन छुट्टी की भी व्यवस्था है। पंजाब में भी अधिनियम में एक संशोधन द्वारा गर्भपात होने की अवस्था में स्त्रियां मातृत्व-हित लाभ पाने की अधिकारिणी हो गई हैं जो ६ माह काम करने के पश्चात् ४२ दिन के लिये दिया जाता है। पंजाब उड़ीसा तथा मैसूर में गर्भकाल से बीमारी के कारण स्त्री श्रमिक को १ माह की अतिरिक्त छुट्टी मिल सकती है।

सुरक्षा और दण्ड — (Safeguards and Penalties)

भुगतान के दायित्व से बचने के लिए मालिक स्त्रियों को बर्खास्त न कर दें इसके लिये अधिनियम में उनकी सुरक्षा की भी व्यवस्था की गई है। प्रसवकाल की छुट्टी में किसी भी स्त्री श्रमिक को बर्खास्त नहीं किया जा सकता। प्रसवकाल की छुट्टी में स्त्रियों को काम पर लगाना कानूनन अपराध है। परन्तु असम अधिनियम में इस बात की व्यवस्था है कि प्रसव से ४ सप्ताह पूर्व तक उन्हें हल्के कामों पर लगाया जा सकता है। इसी प्रकार पश्चिमी बंगाल मातृत्व-हित लाभ (चाय बागान) अधिनियम में इस बात की व्यवस्था है कि यदि डाक्टरों द्वारा उसे स्वस्थ प्रमाणित कर दिया जाता है तो स्त्री श्रमिक को हल्के कामों पर प्रसव के ६ सप्ताह पूर्व तक लगाया जा सकता है। केरल के अधिनियम में गर्भ काल में किसी भी कठिन प्रकार के कार्य पर स्त्री श्रमिक को लगाना निषेध है।

अधिनियमों का प्रशासन —

सारे राज्यों में अधिनियमों के प्रशासन के लिए कारखाना निरीक्षक उत्तरदायी हैं। कोयले की खानों को छोड़कर, जिनमें कोयला खान कल्याण कमिश्नर इसके लिए उत्तरदायी हैं अन्य खानों में इनका उत्तरदायित्व खानों के मुख्य निरीक्षक पर है। अधिनियम में मालिकों के लिए यह आवश्यक है कि वे प्रतिवर्ष वार्षिक विवरण प्रस्तुत करें जिसमें वर्ष भर में कितने दावे किये गये हैं तथा कितने दावों का भुगतान किया गया है और फलस्वरूप कितनी कुल राशि प्रदान की गई है इसका विवरण हो। उदाहरणार्थ १९५५ में राज्यों में ४ २,२६४ स्त्री श्रमिकों में से औसतन ४५,१२३ स्त्रियों ने मातृत्व हित लाभ की मांग की ४०,७४१ स्त्रियों को वास्तव में इस प्रकार के लाभ प्रदान किये गये २,७७४ मामलों में बोनस भी प्रदान किये गये और कुल २६,२५,७०४ रु० की राशि दी गई। उसी वर्ष ब्यौरा देने वाली खानों में काम करने वाली स्त्रियों की कुल संख्या ६६,१४० थी जिसमें ८,२६७ ने लाभों के लिए मांग की ८,२६१ को इस प्रकार के लाभों का भुगतान

किया गया । १,२६८ को बोनस प्रदान किया गया और भुगतान की कुल राशि २,१२,१८० रुपए थी ।

भारत में मातृत्व हित लाभ अधिनियमों का आलोचनात्मक मूल्यांकन :—

मातृत्व-हित लाभ अधिनियम कारखानों में काम करने वाली महिला श्रमिकों के लिए पर्याप्त आराम और वित्तीय सहायता प्रदान कराने में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध हुए हैं । परन्तु हमारे देश में इस विधान में कुछ दोष भी हैं । अधिनियमों का मुख्य दोष यह है कि न तो यह सब स्थानों पर एक समान है और न ही यह व्यापक है और कुछ अवस्थाओं को छोड़कर प्रसवकाल के समय उससे पूर्व और उसके बाद निःशुल्क चिकित्सा सहायता का भी कोई प्रबन्ध नहीं है । प्रो० बी० पी० अदारकर ने औद्योगिक श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य बीमा की अपनी रिपोर्ट में इन अधिनियमों के प्रशासन में पाये गये दोषों की ओर संकेत किया था । उनके विचार से इन दोषों का मुख्य कारण यह है कि लाभों के भुगतान का उत्तरदायित्व मालिकों पर डाल दिया गया है । उनके कथनानुसार जो दोष मालिकों की इस जिम्मेदारी के सिद्धान्त से पैदा हो गये थे उनको यद्यपि अनेक राज्य सरकारों ने अधिनियमों में संशोधन करके दूर करने का प्रयत्न किया है तथापि उसमें उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली है । उनके अनुसार कानून के मुख्य दोष निम्नलिखित हैं—प्रथम तो मातृत्व हित लाभ अधिनियम सब स्थानों पर एक समान नहीं है और न ही यह व्यापक है जिसके कारण कुछ ऐसी कमियाँ रह गई हैं जो श्रमिकों के लिए हितकर नहीं हैं । (२) वर्तमान समय में केवल नकद लाभ की व्यवस्था है और चिकित्सा के लिए स्त्री श्रमिकों को स्वयं अपने साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है । (३) कानून की कुछ त्रुटियों अथवा अन्य कारणों से इस अधिनियम से बचने का अब भी बहुत प्रयत्न किया जाता है । मातृत्व-हित लाभ प्राप्त करने के लिए नौकरी की जो शर्त है, उसके कारण तो मालिक अधिनियम से अक्सर अपना बचाव कर ही लेते हैं । इसके अतिरिक्त असम और बंगाल को छोड़कर कहीं ऐसी व्यवस्था नहीं है जहाँ मालिक स्त्री-श्रमिकों को गर्भ के प्रथम चरणों पर ही बर्खास्त न कर सकें । इसके अतिरिक्त अपनी अज्ञानता के कारण या अपनी स्थायी नौकरी के छूट जाने के भय से बहुधा महिला श्रमिक मातृत्व हित लाभ की मांग ही नहीं करती । यद्यपि रॉयल श्रम आयोग ने यह सिफारिश की थी कि अधिनियम का प्रशासन महिला कारखाना निरीक्षकों को सौंप देना चाहिए परन्तु अधिकतर राज्यों में अभी तक इस प्रकार की नियुक्तियाँ नहीं की गई हैं । साधारणतः स्त्रियाँ समय पर मालिकों को नोटिस देने में हिचकती हैं और उनको इसमें भी कठिनाई होती है कि वे मातृत्व-हित लाभ के लिए नौकरी की अवधि पूरी कर पायें या प्रसव काल के चार या छः सप्ताह बाद ही अपनी नौकरी पर फिर आ जायें या लाभों को प्राप्त करने के लिए बच्चे के जन्म का प्रमाण-पत्र दे सकें । श्रम अनुसंधान समिति ने इस प्रकार के अनेक मामलों के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं जिनमें अधिनियम का उल्लंघन किया जाता है । बहुधा ऐसे मामले छोटे कारखानों के थे ।

जब सर्वप्रथम इस अधिनियम को लागू किया गया था उस समय बहुत से मालिकों ने अपने यहां से स्त्री श्रमिकों को नौकरी से निकाल दिया। कई स्थानों पर तो मालिक केवल ऐसी स्त्रियों को ही अपने यहां नौकरी देने में प्राथमिकता देते हैं जो या तो अविवाहित लड़कियां होती हैं अथवा विधवाएं या ऐसी स्त्रियां जो संतानोत्पत्ति की आयु को पार कर चुकी होती हैं। अनेक स्थानों पर लड़कियों की शादी होने के तुरन्त बाद ही उन्हें नौकरी से बरखास्त कर दिया गया है। कभी-कभी तो लाभ देना इस आधार पर अस्वीकार कर दिया जाता है कि स्त्री श्रमिक लाभ प्राप्ति के लिए नौकरी की अवधि पूरी नहीं कर पाई है। कहीं-कहीं पर मालिक स्त्री श्रमिकों के नाम रजिस्टरों में नहीं लिखते और गर्भवती स्त्रियों को बर्खास्त कर देते हैं। श्री देशपाण्डे ने अपनी एक रिपोर्ट में जो उन्होंने कोयला खान उद्योग के श्रमिकों की दशाओं की जांच पर दी थी खानों में अधिनियम की धाराओं का स्पष्ट उल्लंघन होने के उदाहरण दिये हैं। अभ्रक खानों में भी अधिनियम का उल्लंघन होता है। कुछ खानों में स्त्री श्रमिकों की उपस्थिति का कोई लिखित प्रमाण नहीं रखा जाता और जिन दावों का भुगतान भी किया जा चुका है उनका भी कोई लिखित प्रमाण नहीं मिलता। जो क्लर्क स्त्री श्रमिकों की हाजिरी लगाते हैं वे अक्सर लाभ प्राप्ति के लिए नौकरी की अवधि को पूरा करने के लिए रिश्वत लेकर हाजरी बढ़ा देते हैं। श्रम अनुसंधान समिति ने इस बात की सिफारिश की थी कि जो भी लाभ दिया जाए, वह स्त्रियों की वास्तविक औसतन मजदूरी से कम नहीं होना चाहिए और इसका समय भी बढ़ाकर १२ सप्ताह कर देना चाहिए अर्थात् प्रसव से ६ सप्ताह पहले और ६ सप्ताह बाद तक। इस बात की सिफारिश अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक अभिसमय द्वारा भी की गई है।

मातृत्व-हित लाभ के लिए कुछ न्यूनतम स्तर निर्धारित करने के लिये तथा समानता लाने के लिये जनवरी १९५४ में भारतीय श्रम सम्मेलन ने एक समिति बनाई थी। उसके सुझावों के अनुसार केन्द्रीय सरकार ने १९५५ में कुछ नियम बनाकर राज्य सरकारों को परिचालित किये और उनके आधार पर कई अधिनियमों में संशोधन किये गये। उसके पश्चात् १९६० में केन्द्रीय सरकार द्वारा मातृत्व-हित लाभ अधिनियम पारित किया गया जो समस्त उद्योगों पर लागू होगा। इसके निम्नलिखित मुख्य उपबन्ध हैं — (क) मातृत्व-हित लाभ अधिनियम के लिये लाभ काल १२ सप्ताह निर्धारित किया गया है। लाभ राशि की दर औसतन दैनिक मजदूरी जो कम से कम एक रु० प्रति दिन हो निर्धारित की गई है। (ख) यदि मालिक अपनी ओर से प्रसव से पहले या प्रसव के बाद किसी दाई आदि का प्रबन्ध नहीं करते हैं तो २५ रु चिकित्सा बोनस देने की व्यवस्था है। (ग) गर्भपात के समय ६ सप्ताह की छुट्टी को मातृत्व-हित लाभ की दर के अनुसार मजदूरी सहित होती दिये जाने की व्यवस्था है। (घ) गर्भ के कारण या प्रसव के कारण यदि स्त्री श्रमिक बीमार हो जाती है तो उसे १ माह की अतिरिक्त छुट्टी मजदूरी सहित दी जायगी। इस अधिनियम का

उद्देश्य यह है कि राज्य अधिनियमों में जो विभिन्नता है उसको दूर करके समान मातृत्व हित लाभ की व्यवस्था की जाय। यह अधिनियम उन स्थानों पर लागू नहीं होगा जहाँ कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम लागू होता है।

मातृत्व हित लाभ और बीमा —

यह बात भी उल्लेखनीय है कि मातृत्व हित लाभों को स्वास्थ्य बीमा योजना में सम्मिलित कर लेने से बहुत लाभ हो जायगा। ये सुविधाएँ या लाभ उसी प्रकार से होंगे जिस प्रकार से श्रमिक क्षतिपूर्ति को सामाजिक बीमा योजना के अन्तर्गत सम्मिलित करने से होते हैं जिनका हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि मातृत्व-हित लाभ की व्यवस्था १९४८ के कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम में की जा चुकी है। इसके अनुसार प्रत्येक बीमाकृत स्त्री श्रमिक जो कुछ विशेष शर्तें पूर्ण करती है इन लाभों को प्राप्त करने की अधिकारिणी होती है। ये लाभ उसे ७५ न० पै० प्रतिदिन अथवा पूर्ण औसत दैनिक मजदूरी की दर से जो भी अधिक हो के हिसाब से मिलेंगे और अधिक से अधिक १२ सप्ताह तक वह इन लाभों को प्राप्त कर सकती है। उसको हस्पताल और चिकित्सालय में चिकित्सा सहायता पाने का अधिकार भी है। जिन स्थानों पर यह अधिनियम लागू होता है वहाँ मातृत्व-हित लाभ अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों को लाभ नहीं देने होते हैं। यह आशा की जाती है कि जब यह अधिनियम सब मजदूरों पर लागू हो जायगा तब मातृत्व-हित लाभ विभिन्न राज्यों में एक जैसे ही हो जायेंगे और इस समय मातृत्व हित लाभ विधान में जो दोष या कमियाँ हैं वे सब दूर हो जायेंगी।

भारत में बीमारी-बीमा
(Sickness Insurance in India)

बीमारी-बीमा की वांछनीयता —

बीमारी भी एक महत्वपूर्ण संकट है जिससे बचने के लिए बीमे की आवश्यकता पड़ती है। प्रोफेसर टौसिग (Tausag) के कथनानुसार "बीमारी के लिये बीमा करना उतना ही सरल व सम्भव है जितना कि दुर्घटनाओं का बीमा।" भारत में जहाँ रोग बहुत फैले हुये हैं इस प्रकार के बीमे की आवश्यकता भी बहुत अधिक है। इसकी वांछनीयता (Desirability) पर ऊपर भी उल्लेख किया जा चुका है। (देखिये पृष्ठ ११०—११)

भारत में बीमारी बीमा और उसके विचार की उत्पत्ति —

जब अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने उद्योग वाणिज्य और कृषि के मजदूरों के लिये स्वास्थ्य बीमा से सम्बन्धित दो अभिसमय अपनाए, तब भारत सरकार का ध्यान भी १९२७ में स्वास्थ्य बीमा योजना की ओर आकर्षित हुआ। रायल श्रम आयोग ने भी इस प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया और उसने यह सिफारिश की कि

बीमारी की घटनाओं के आंकड़े एकत्रित करने के पश्चात् प्रयोग के रूप में एक स्वास्थ्य बीमा योजना बनाई जानी चाहिए। भारत सरकार उस समय ऐसी किसी भी योजना के पक्ष में नहीं थी क्योंकि मालिक कठिनाइयां थीं और श्रमिकों में प्रवासिता के साथ ही साथ अंशदान देने की क्षमता की भी कमी थी। फिर भी सरकार ने इस विषय पर प्रान्तीय सरकारों से लिखा पढ़ी की। परन्तु उनकी ओर से इस विषय पर कोई उत्साह नहीं दिखाया गया। इस समस्या पर बम्बई सूती वस्त्र श्रम जाँच समिति और १९४० १९४१ तथा १९४२ के प्रथम तीन श्रम मंत्रियों के सम्मेलनों में भी विचार किया गया था।

प्रो० बी० पी० अदारकर की स्वास्थ्य बीमा योजना —

भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों से काफी विचार विमर्श और पत्र व्यवहार करने के पश्चात् मार्च १९४३ में एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया (प्रो० बी पी अदारकर) जिनका कार्य औद्योगिक श्रमिकों के लिए एक स्वास्थ्य बीमा योजना बनाना था। उन्होंने अपनी रिपोर्ट अगस्त १९४४ में भारत सरकार को दी। उन्होंने निरन्तर चालू कारखानों के श्रमिकों के लिए एक अनिवार्य तथा अंशदान वाली स्वास्थ्य बीमा योजना की सिफारिश की जो तीन प्रकार के उद्योगों के लिए थी – अर्थात् सूती वस्त्र उद्योग इन्जीनियरिंग उद्योग तथा खनिज व धातु उद्योग। इस योजना में मालिकों और मजदूरों को जो अंशदान देना था उसका उल्लेख किया गया था तथा साथ ही राज्य द्वारा अंशदान की भी सिफारिश की गई थी। योजना की कुल वार्षिक लागत ढाई करोड़ रुपए आंकी गई थी। इस बात की भी व्यवस्था थी कि प्रत्येक मालिक अपने जोखम को विस्तृत करने के लिये बीमा पालिसी ले। मजदूरों को इसके अन्तर्गत चिकित्सा लाभ नकद लाभ तथा कुछ अतिरिक्त अन्य लाभ प्रदान करने का सुझाव था। मातृत्व हित लाभ तथा श्रमिक क्षतिपूर्ति को हटाकर उनके स्थान पर एक बीमा योजना की व्यवस्था थी।

१९४५ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय के दो विशेषज्ञ (श्री एम स्टैक और श्री आर० राव) द्वारा इस योजना पर पुनः विचार किया गया। यद्यपि वे प्रो० बी पी अदारकर के मूल सिद्धान्तों से सहमत थे फिर भी उन्होंने कुछ विशिष्ट परिवर्तनों का सुझाव दिया। इन परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए भारतीय सरकार ने ६ नवम्बर १९४६ को कर्मचारी राज्य बीमा विधेयक प्रस्तुत किया जो 'कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम' के नाम से अप्रैल १९४८ में पारित किया गया। १९५१ में कुछ आपत्तियों को समाप्त करने तथा कुछ अन्य त्रुटियों को पूरा करने के लिए इसमें संशोधन हुआ। प्रथम एशियाई क्षेत्रीय सम्मेलन ने भी सामाजिक सुरक्षा पर कुछ प्रस्ताव पारित किए। यह सम्मेलन अक्टूबर १९४७ में नई दिल्ली में हुआ। इन प्रस्तावों के कारण इस अधिनियम पर विचार-विमर्श करने और उसको जल्दी पारित करने पर उल्लेखनीय प्रभाव पड़ा।

१९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम — (The Employee's State Insurance Act 1948)

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं —

क्षेत्र —

यह अधिनियम मौसमी कारखानों को छोड़कर प्रथम तो उन सब कारखानों पर लागू होता है जिनमें २० या इससे अधिक कर्मचारी काम करते हैं और जो कारखाने शक्ति से चलते हैं। परन्तु इसके साथ ही इसमें इस बात की भी व्यवस्था है कि अधिनियम को पूर्णतः या आंशिक रूप में किसी भी औद्योगिक, वाणिज्य, कृषि या अन्य किसी संस्था या संस्थाओं पर लागू किया जा सकता है। इसके अन्तर्गत वे सब कर्मचारी आ जाते हैं जिनका वेतन ४०० रु० से अधिक नहीं है — चाहे वे शारीरिक श्रम करने वाले हों अथवा लेखक का काम करने वाले और चाहे वे निरीक्षक हों अथवा तकनीकी कर्मचारी हों। परन्तु इसके अन्तर्गत सैनिक भाग नहीं आते। जम्मू काश्मीर राज्य को छोड़कर यह अधिनियम सारे भारत पर लागू है। यह योजना अनिवार्य भी है अर्थात् जो कर्मचारी इसके अन्तर्गत आते हैं उनका बीमा होना आवश्यक है। जो बीमाकृत व्यक्ति इस अधिनियम के अन्तर्गत लाभ पाने का अधिकारी है वह उसी प्रकार के लाभ किसी अन्य अधिनियम के अन्तर्गत नहीं ले सकता।

अधिनियम का प्रशासन —

इस बीमा योजना का प्रशासन एक स्वायत्तशासी (Autonomous) संस्था को सौंप दिया गया है जिसे 'कर्मचारी राज्य बीमा निगम' (Employees State Insurance Corporation) का नाम दिया गया है। इसमें ३६ व्यक्ति हैं जो केन्द्रीय और राज्यों की सरकारों, मालिकों और श्रमिकों के वर्गों, चिकित्सा व्यवसाय तथा पार्लियामेंट के सदस्यों का प्रतिनिधित्व करते हैं। केन्द्रीय श्रम और रोजगार के मंत्री इस निगम के अध्यक्ष हैं और स्वास्थ्य मंत्री इसके उपाध्यक्ष हैं। इसमें एक छोटी संस्था निगम की कार्यांग (Executive) के रूप में कार्य करती है। इसे स्थायी समिति (Standing Committee) कहा जाता है। इसमें निगम के सदस्यों में से चुने हुए ११ सदस्य होते हैं। एक सलाहकार संस्था भी है जिसे "चिकित्सा-लाभ परिषद्" (Medical Benefit Council) कहा जाता है। इसका कार्य यह होता है कि यह चिकित्सा लाभ के प्रबन्ध तथा लाभ देने के लिए प्रमाणपत्र प्रदान करने आदि से सम्बन्धित मामलों में निगम को परामर्श दे। इस परिषद् में स्वास्थ्य सेवाओं के डायरेक्टर जनरल (महा-निदेशक) और डिप्टी डायरेक्टर जनरल (उप-महा-निदेशक), चिकित्सा कमिश्नर और राज्यों, मालिकों, कर्मचारियों और चिकित्सा व्यवसाय के प्रतिनिधि होते हैं। निगम का मुख्य कार्यकारी अधिकारी डायरेक्टर जनरल होता है जिसके चार अन्य मुख्य सहायक अधिकारी होते हैं। ये मुख्य अधिकारी हैं — बीमा कमिश्नर, चिकित्सा कमिश्नर, मुख्य लेखाधिकारी और रजिस्ट्री अधिकारी।

डाइरेक्टर जनरल अपना कार्य क्षेत्रीय तथा स्थानीय कार्यालयों के द्वारा चलाता है क्षेत्रीय कार्यालय राज्यों में भी स्थापित कर दिये गये हैं।

वित्त — (Finance)

इस योजना की वित्तीय व्यवस्था कर्मचारी राज्य बीमा निधि में से की जाती है। यह निधि मालिकों और श्रमिकों के अंशदान से तथा केन्द्रीय और राज्य सरकारों, स्थानीय अधिकारियों किसी भी व्यक्ति या निकाय (Body) द्वारा दिये गये दान उपहार या सहायता से बनाई जाती है। इस बात की भी व्यवस्था थी कि पहले पांच वर्षों में केन्द्रीय सरकार निगम को वार्षिक अनुदान प्रदान करेगी जिसकी राशि निगम के प्रशासन व्यय की $\frac{2}{3}$ भाग होगी जिसमें लाभ देने का व्यय सम्मिलित न होगा। राज्य सरकारों का भी इस योजना की वित्तीय व्यवस्था में हिस्सा है जो बीमाकृत व्यक्तियों की देखभाल और चिकित्सा पर हुए व्यय का एक भाग के रूप में लिया जाता है। प्रत्येक के हिस्से का निर्णय निगम और राज्य सरकारों के बीच समझौते द्वारा होता है। यह अनुपात पहले २ : १ था। परन्तु अब बढ़ाकर ३ : १ कर दिया गया है अर्थात् निगम चिकित्सा सुविधाओं की लागत का $\frac{3}{4}$ भाग वहन करने को तैयार हो गई है और राज्य सरकारों के $\frac{1}{4}$ हिस्से के लिए यह निश्चय किया गया है कि यदि न चाहें तो इसके लिए ऋण भी ले सकती हैं। जब ये चिकित्सा सुविधाओं को श्रमिक के परिवारों के लिए भी विस्तृत कर दिया गया है तब से राज्य सरकार का हिस्सा $\frac{1}{2}$ कर दिया गया है। अधिनियम में ऐसे मद्दों की एक सूची भी तैयार की गई है, जिन पर निधि में से धन व्यय किया जा सकता है।

अंशदान — (Contributions)

अधिनियम में मुख्य मालिक पर अपना तथा साथ ही अपने श्रमिकों के अंशदान का हिस्सा देने का उत्तरदायित्व रखा गया है, अर्थात् श्रमिक के अंशदान का भुगतान श्रमिक और उसके मालिक दोनों के ही द्वारा किया जाता है। मजदूर का भाग मुख्य मालिक द्वारा उसकी मजदूरी से काट लिया जाता है। श्रमिक के साप्ताहिक अंशदान का हिस्सा उसकी उस सप्ताह की औसतन मजदूरी के आधार पर होता है और अंशदान प्रति सप्ताह देना होता है। यदि श्रमिक पूरे सप्ताह काम पर रहता है तो पूरे सप्ताह का और यदि सप्ताह में कुछ दिन काम पर रहता है तो कुछ दिनों का अंशदान उसे देना होता है—अर्थात् जब भी श्रमिक को मजदूरी मिलती है उसे अंशदान देना पड़ता है। परन्तु सवेतन छुट्टी बंद हड़ताल और तालाबन्दी के अवसरों को छोड़कर जिस सप्ताह श्रमिक ने कोई काम नहीं किया है और जिसके लिए उसे कोई मजदूरी नहीं दी गई है उस सप्ताह उसे अंशदान नहीं देना पड़ता। साप्ताहिक अंशदान की दरें अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका के अनुसार हैं —

	कर्मचारियों की श्रेणियाँ	कर्मचारी का अंशदान (मालिकों से वसूली)	मालिक का अंशदान	मालिक और कर्मचारी का कुल अंशदान
	१	२	३	४
		रु० आ० पा०	रु० आ० पा०	रु० आ० पा०
१	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी १ रु० प्रतिदिन से कम है।	कुछ नहीं	७ ०	० ७ ०
२	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी १ रु० प्रतिदिन या इससे अधिक है परन्तु १ रु० ८ आ० से कम है।	० २ ०	० ७ ०	० ९ ०
३	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी १ रु० ८ आ० प्रतिदिन या इससे अधिक है परन्तु २ रु० से कम है।	० ४ ०	० ८ ०	० १२ ०
४	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी २ रु० प्रतिदिन या इससे अधिक है परन्तु ३ रु० से कम है।	० ६ ०	० १२ ०	१ २
५	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी ३ रु० प्रतिदिन या इससे अधिक है, परन्तु ४ रु० से कम है।	० ८ ०	१ ० ०	१ ८ ०
६	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी ४ रु० प्रतिदिन या इससे अधिक है परन्तु ६ रु० से कम है।	० ११ ०	१ ६ ०	२ १ ०
७	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी ६ रु० प्रतिदिन या इससे अधिक है परन्तु ८ रु० से कम है।	० १५ ०	१ १४ ०	२ १३ ०
८	कर्मचारी जिनकी औसतन दैनिक मजदूरी ८ रु० प्रतिदिन या इससे अधिक है।	१ ४ ०	२ ८ ०	३ १२

१९५१ के एक संशोधन द्वारा यह व्यवस्था की गई है कि जब सम्पूर्ण भारत में अधिनियम लागू हो तब तक मालिक उपरोक्त सूची के तीसरे खाने में दिए गए अंशदानों के स्थान पर एक विशेष अंशदान देंगे जिसकी दर केन्द्रीय सरकार द्वारा निश्चित की जाएगी परन्तु यह दर उनके कुल वेतन बिल की ५ प्रतिशत से अधिक नहीं होगी। समस्त देश में मालिकों के लिए अंशदान की दर उनके कुल वेतन बिल का ¾ प्रतिशत निश्चित की गई है परन्तु उन स्थानों पर जहां यह योजना लागू हो चुकी है और जहां मालिक श्रमिक क्षतिपूर्ति तथा मातृत्व-हित लाभ के दायित्व से मुक्त हो गए हैं, उन स्थानों पर मालिकों को ½ प्रतिशत अंशदान और देना होता अर्थात् कुल मिलाकर १¼ प्रतिशत अंशदान मालिकों का देना होता है। इसके पश्चात् जब बीमा किये हुए श्रमिकों के परिवारों को भी चिकित्सा लाभ देने का निश्चय किया गया तब यह निर्णय हुआ कि विशेष अंशदानों को ४¾ प्रतिशत तक बढ़ा दिया जाय (जहां यह योजना लागू नहीं है वहाँ ¾ प्रतिशत से बढ़ा कर १¾ प्रतिशत तक और जिन क्षेत्रों में लागू है वहाँ १¼ से बढ़ाकर १½ प्रतिशत तक)। परन्तु अगस्त १९५८ में यह निश्चय किया गया है कि जब तक निगम अपना व्यय अपनी चालू आमदनी से ही पूरा करने के योग्य है तब तक दरें और न बढ़ाई जायें। अब जहाँ-जहाँ चिकित्सा सहायता श्रमिक के परिवारों को दी जाने लगी है वहाँ दर बढ़ाने का निर्णय कर लिया गया है। जिन स्थानों पर अधिनियम के अन्तर्गत लाभ दिए जाते हैं वहाँ श्रमिकों को दूसरे खाने में दी गई दर के अनुसार अंशदान देना होता है। परन्तु अन्य स्थानों पर जहाँ ये लाभ नहीं दिए जाते वहाँ श्रमिकों को किसी भी प्रकार का अंशदान नहीं देना होता है।

लाभ — (Benefits)

स्थिति के अनुसार अधिनियम के अन्तर्गत बीमा कराए हुए श्रमिकों अथवा उनके आश्रितों को निम्नलिखित लाभ उपलब्ध हैं—(१) बीमारी लाभ (२) मातृत्व हित लाभ (३) असमर्थता लाभ (४) आश्रितों को लाभ और (५) चिकित्सा लाभ। पहले चार लाभ नकदी में दिये जाते हैं और चिकित्सा लाभ सेवा या वस्तु के रूप में प्रदान किया जाता है।

जहाँ तक बीमारी लाभ का सम्बन्ध है इसके अन्तर्गत यदि श्रमिक की बीमारी का प्रमाण-पत्र अधिकृत चिकित्सक द्वारा दे दिया जाता है तो बीमा कराये हुए व्यक्तियों को समय-समय पर नकदी के रूप में लाभ दिया जाता है। प्रारम्भिक प्रतीक्षा काल दो दिन का है अर्थात् बीमारी के पहले दो दिन कोई लाभ नहीं दिया जाता। परन्तु यदि श्रमिक १५ दिनों के बीच में ही दूसरी बार बीमार पड़ जाए तब यह शर्त लागू नहीं होती। बीमारी लाभ किसी भी ३६५ दिनों के कार्य की अवधि में श्रमिकों को अधिक से अधिक ५६ दिन तक प्राप्त हो सकता है। बीमारी लाभ की प्रतिदिन की दर एक दिन की औसत मजदूरी की राशि से आधी होगी है

जिसका उल्लेख अधिनियम में किया गया है। परन्तु अब ये लाभ बीमारी के सम्पूर्ण दिनों के लिए दिए जाएँगे जिसमें रविवार तथा छुट्टियाँ भी आ जाती हैं तब इन लाभों की दर मजदूरी की [illegible] हिस्से के लगभग होगी। जो श्रमिक इन लाभों को प्राप्त करता है उसकी चिकित्सा अधिनियम के अन्तर्गत खोले गए किसी चिकित्सालय या हस्पताल में होनी चाहिए।

पहली जून १९५९ से नियम में यह निश्चय किया है कि बीमा कराए हुए व्यक्तियों में जो क्षय रोग से पीड़ित हैं, उन्हें और १८ सप्ताह तक नकद लाभ प्रदान किया जाएगा जिसकी दर ७५ न० पै० प्रतिदिन अथवा बीमारी लाभ की दर की आधी (जो भी अधिक हो) होगी। परन्तु इस लाभ को प्राप्त करने वालों के लिए एक शर्त यह भी है कि उन्होंने लगातार दो वर्षों तक काम किया हो। कोढ़ कैन्सर तथा मानसिक रोगों के लिए भी और अधिक बीमारी लाभ देने का निश्चय किया गया है और ऐसे रोगियों को १ वर्ष तक काम पर लगाए रखने की व्यवस्था की गई है। १९६० से क्षय से पीड़ित रोगियों के लिए सहायता की अवधि १८ सप्ताह से बढ़ाकर ३०९ दिवस कर दी गई है। इस प्रकार ऐसे व्यक्तियों को अब ५६ दिन के चिकित्सा लाभ सहित ३६५ दिन सहायता मिलेगी।

मातृत्व-हित लाभ के अन्तर्गत समय-समय पर नकद भुगतान किया जाता है, जिस की दर बीमारी लाभ की दर (प्रतिदिन की औसत मजदूरी से आधी) अथवा ७५ न० पै० प्रतिदिन (इन दोनों में से जो अधिक हो) होगी। यह लाभ १२ सप्ताह तक दिया जाता है जिसमें अधिक से अधिक ६ सप्ताह प्रसवकाल की अनुमानित तिथि से पहले होने चाहिएँ। जून १९५९ से इस लाभ की दर को महिला श्रमिक की औसत पूर्ण दैनिक मजदूरी अथवा ७५ न० पै० जो भी अधिक हो तक बढ़ा दिया गया है।

असमर्थता लाभ काम के समय क्षति पहुँचने पर, निम्न दरों से दिया जाता है—(१) अस्थायी असमर्थता — यदि असमर्थता ७ दिन से अधिक रहती है तब श्रमिकों को असमर्थता काल में 'पूरी दर' के अनुसार नकद भुगतान दिया जाता है। (२) स्थायी आंशिक असमर्थता — इसके लिए जैसा कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में दिया हुआ है जीवन पर्यन्त "पूरी दर" की प्रतिशत के हिसाब से नकद लाभ प्रदान किया जाता है। (३) स्थायी पूर्ण असमर्थता — इसके लिए आजीवन 'पूरी दर' के हिसाब से नकद लाभ प्रदान किया जाता है। ('पूरी दर' की परिभाषा इस प्रकार की गई है कि यह वह दर है जो सम्बन्धित व्यक्ति की उस प्रतिदिन औसत मजदूरी की आधी होती है जो उसे पिछले ५२ सप्ताह में मिलती रही है। यह दर इस हिसाब से मजदूरी का लगभग [illegible] वाँ हिस्सा होती है)।

यदि किसी बीमा कराए हुए श्रमिक की मृत्यु काम करते समय किसी दुर्घटना के फलस्वरूप हो जाती है तो आश्रितों के लाभ के अन्तर्गत उसके आश्रितों को निम्न दरों के अनुसार लाभ प्रदान किए जाते हैं—(क) विधवा पत्नी को आजीवन अथवा

पुनर्विवाह तक "पूरी दर" का ½ भाग दिया जाता है। यदि एक से अधिक विधवा पत्नियाँ हों तो उनमें यह धनराशि बराबर बराबर बाँट दी जाती है। (ख) १५ वर्ष की आयु प्राप्त होने तक मृतक के पुत्र अथवा गोद लिए हुए पुत्र को "पूरी दर" का ½ भाग दिया जाता है। (ग) १५ वर्ष की आयु अथवा विवाह होने तक (इनमें जो भी पहले हो) प्रत्येक वैध अविवाहित पुत्री को भी पूरी दर के ½ भाग का भत्ता दिया जाता है। किसी भी पुत्र या पुत्री को यह सुविधा १८ वर्ष की आयु तक प्रदान की जा सकती है यदि वह निगम की दृष्टि से शिक्षा प्राप्त करने का कार्य सन्तोषप्रद कर रहा/रही है। (घ) यदि बीमा कराया हुआ मृत व्यक्ति अपने पीछे कोई विधवा या वैध अथवा गोद लिया हुआ पुत्र नहीं छोड़ गया है, तब आश्रित लाभ या तो उसके माता पिता या दादा दादी को आजीवन दिया जा सकता है या उसके किसी अन्य आश्रित को कुछ सीमित काल तक दिया जा सकता है। परन्तु ऐसे व्यक्तियों के लिए दर कर्मचारी बीमा न्यायालय (Employees Insurance Court) निश्चित करता है। परन्तु ऐसे आश्रित लाभ की राशि "पूरी दर" की राशि से अधिक नहीं हो सकती। यदि पूरी दर की राशि अधिक होने लगती है तो प्रत्येक आश्रित का हिस्सा उसी हिसाब से कम कर दिया जाता है ताकि कुल राशि पूरी दर की राशि से अधिक न हो सके।

एक बीमाकृत व्यक्ति को चिकित्सा लाभ उस प्रत्येक सप्ताह के लिए पाने का अधिकार होता है जिस सप्ताह के लिए वह अंशदान देता है या जिस सप्ताह के लिए वह बीमारी मातृत्व हित और असमर्थता लाभ पाने का अधिकारी हो जाता है। (चाहे वह स्त्री हो या पुरुष) कुछ विशेष परिस्थितियों में ऐसे व्यक्तियों को चिकित्सा लाभ देने की भी व्यवस्था है जिन्होंने अधिनियम के अन्तर्गत अंशदान नहीं दिया है। चिकित्सा सम्बन्धी लाभों के अन्तर्गत बीमारी में काम करते समय क्षति होने पर और प्रसूतिका के अवसर पर निःशुल्क चिकित्सा की जाती है। इस प्रकार की चिकित्सा सुविधाएं निगम औषधालय या हस्पताल में चाहे भरती होकर या बिना भरती के मिलती है, या बीमा कराए हुए व्यक्तियों के घरों पर भी बीमा डाक्टरों द्वारा जाकर प्रदान की जाती है। किसी अन्य हस्पताल चिकित्सालय या संस्था के द्वारा भी यह चिकित्सा सुविधाएँ दी जा सकती हैं। यह लाभ ऐसे डाक्टरों द्वारा भी प्रदान किया जा सकता है जो निगम की सेवा में हों या उनके द्वारा भी प्रदान किया जा सकता है जिनका नाम डाक्टरों की नामिका (Panel) में हो। अधिनियम में यह व्यवस्था भी की गई है कि निगम बीमा कराए हुए व्यक्तियों के परिवारों को भी चिकित्सा सम्बन्धी लाभ दे सकता है जो सुविधा अब अनेक स्थानों पर प्रदान भी की जा रही है। चिकित्सा लाभों का स्तर धीरे-धीरे काफी ऊँचा कर दिया गया है। और अब इन लाभों में विशेषज्ञों की सेवाएँ भी सम्मिलित कर ली गई हैं। हस्पताल की सुविधाएँ दो प्रकार से दी जा रही हैं या तो जो हस्पताल हैं। उन्हीं में बीमा कराए हुए व्यक्तियों के लिए कुछ पलंग सुरक्षित कर दिए जाते हैं या हस्पतालों के साथ नयी

हुई कुछ इमारतों को बनवाकर उनमें व्यवस्था कर दी जाती है। अनेक स्थानों पर नये हस्पताल भी बनाये जा रहे हैं। कृत्रिम अंग और दांत देने की भी व्यवस्था है। ऐम्बुलैंस गाड़ियां और अन्य यातायात की सुविधाएं भी निःशुल्क प्रदान की जाती हैं। बीमाकृत श्रमिकों को कुछ अन्य लाभ दिये जाते हैं।

लाभ प्राप्त करने की शर्तें

अधिनियम के अन्तर्गत बीमारी तथा मातृत्व-हित लाभ पाने के लिए कुछ विशिष्ट शर्तें दी गई हैं। यदि कोई बीमा कराया हुआ श्रमिक लगातार २६ सप्ताह तक अपना अंशदान देता है तो वह आगामी २६ सप्ताहों के लिए बीमारी या मातृत्व हित लाभ पाने का अधिकारी हो जायगा/जायगी। लगातार २६ सप्ताह अंशदान देने वाले समय को 'अंशदान काल' कहा जाता है और जिन २६ सप्ताहों में श्रमिक लाभ प्राप्त करता है उसे "लाभ काल" कहा जाता है। "अंशदान काल" के समाप्त होने और "लाभ काल" के प्रारम्भ होने में १३ सप्ताह का अन्तर होना आवश्यक है। इस प्रकार कोई भी बीमा कराया हुआ व्यक्ति अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कारखानों में भर्ती होने के दिन से लगभग ९ महीने बाद बीमारी या मातृत्व हित लाभों को पाने का अधिकारी होता है। असमर्थता लाभ आश्रित लाभ और चिकित्सा लाभ के लिये अंशदान देने की कोई शर्तें नहीं हैं। ये लाभ उसी दिन से बीमा कराये हुए व्यक्तियों को मिलने लगते हैं जिस दिन से यह योजना लागू हो जाती है।

इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों द्वारा अनेक "कर्मचारी बीमा न्यायालय" स्थापित करने की भी व्यवस्था है जिनका काम झगड़ों का निबटारा करना और दावों का निर्णय करना है। १९५१ के संशोधित अधिनियम के द्वारा ऐसे स्थानों पर जहां मालिकों के विशेष अंशदानों के भुगतान या वसूली से सम्बन्धित मामलों को निपटाने के लिए कर्मचारी बीमा न्यायालय नहीं है वहां उनके स्थान पर विशेष अधिकरणों की व्यवस्था की गई है।

योजना को लागू करने की तैयारियां —

६ अक्टूबर १९४८ को गवर्नर-जनरल ने कर्मचारी राज्य बीमा निगम का उद्घाटन किया। निगम के द्वारा ११ सदस्यों की एक स्थायी समिति का चुनाव भी किया गया। डा० सी० एल० कटियाल को इस निगम का डायरेक्टर-जनरल नियुक्त किया गया। अधिनियम में योजना की केवल रूपरेखा ही रखी गई थी और इसकी विस्तृत बातें केन्द्रीय सरकार, राज्य सरकार और निगम द्वारा नियम और विनियम बनाकर पूरी की गई। योजना का अनुभव प्राप्त करने के लिये इसे सर्व-प्रथम कानपुर और केन्द्रीय शासित देहली और अजमेर के क्षेत्रों में अग्रगामी योजना के रूप में लागू करने का निश्चय किया गया। परन्तु फिर इस योजना को एक साथ ही देहली और कानपुर में लागू करने तथा देहली कानपुर और बम्बई में तीन क्षेत्रीय शाखाएं खोलने का निश्चय किया गया। नवम्बर १९४८ में भारत सरकार ने इस

सम्बन्ध में नियम भी बनाए और कुछ सुझावों के पश्चात् उन्हें अन्तिम रूप दे दिया गया। एक चिकित्सा सर्वेक्षण भी इस उद्देश्य से किया गया कि विभिन्न राज्यों में कहाँ-कहाँ चिकित्सालय आदि स्थापित किये जा सकते हैं। मई १९४५ में निगम की एक बैठक में यह निश्चय किया गया कि यद्यपि चिकित्सा की प्रणाली मुख्यतः एलो-पैथिक ही होगी परन्तु श्रमिकों द्वारा माग करने पर या जहाँ योग्य डाक्टर मिल सकते हों वहाँ अन्य कोई चिकित्सा प्रणाली भी प्रदान की जा सकती है। यह भी निश्चय किया गया कि पूर्ण समय देने वाले डाक्टरों के साथ-साथ निजी डाक्टरों की पैनल (नामिका) प्रणाली को भी प्रयोग में लाना चाहिये। इस योजना को लागू करने के लिये कर्मचारियों को प्रशिक्षित करने के हेतु मालिकों और श्रमिकों से सहयोग की प्रार्थना की गई। मालिकों ने योजना के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन करने और यह देखने के लिये कि इस योजना के कारण उन्हें क्या-क्या उत्तरदायित्व निभाने पड़ेंगे अनेक अधिकारियों और सहयोगियों को भेजा। इसी उद्देश्य से श्रमिक संघों की ओर से भी कुछ प्रतिनिधि भेजे गये। अंशदानों के भुगतान के लिये टिकटें भी छप-वाई गईं और उनको इम्पीरियल बैंक (अब स्टेट बैंक) के द्वारा बेचने की भी व्यवस्था की गई।

योजना चालू होने में देरी का कारण —

इस प्रकार प्रगतिगामी योजना का उद्घाटन पहली कानपुर और बाद में बम्बई में करने के लिये सब प्रकार की तैयारियाँ कर ली गई थीं। परन्तु अचानक ही उत्तर भारत के मालिकों की परिषद् ने उत्तर प्रदेश सरकार के द्वारा यह अभिवेदन किया कि कानपुर में यह योजना नहीं चलाई जानी चाहिये। इसी प्रकार के अभि-वेदन अन्य मालिकों की परिषदों द्वारा भी किये गये। जो आपत्ति उठाई गई थी वह यह थी कि योजना लागू करने के लिये यह उचित समय नहीं था और यदि यह योजना सब स्थानों पर एक साथ लागू नहीं होती तो कानपुर का उद्योग अन्य स्थानों के उद्योगों से प्रतियोगिता में नहीं ठहर सकता। साथ ही वित्तीय कठिनाइयों के कारण राज्य सरकारों में भी योजना के प्रति अधिक उत्साह नहीं पाया गया। एक और कठिनाई यह थी कि चिकित्सा सहायता प्रदान करने के लिये उचित और संतोषजनक व्यवस्था करने में काफी समय लगता था। डाक्टरों की पैनल (नामिका) प्रणाली की शर्तें तय करने में तथा कार्यालयों और चिकित्सालयों के लिए स्थान प्राप्त करने में भी अनेक कठिनाइयाँ आईं। इन कारणों से योजना के लागू होने में देर हो गई। परन्तु फिर भी चारों ओर से योजना को कार्यान्वित करने की प्रार्थनायें और माँग आती रहीं। अतः यह उचित समझा गया कि इन कठिनाइयों को दूर करके योजना को शीघ्र ही लागू कर देना चाहिए। इस कारण १९५१ में एक संशोधित अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत यह निश्चय किया गया कि प्रगतिगामी योजना को केवल कुछ स्थानों पर कार्यान्वित करने के लिए और इन स्थानों को

प्रतियोगिता की हानियों से बचाव के लिए देश भर के मालिकों से अंशदान लेने चाहियें। उन स्थानों पर जहाँ पर यह योजना लागू होगी वहाँ मालिकों को अधिक अंशदान देना चाहिए। (देखिये पृष्ठ १६०)

मालिकों की आपत्तियों पर विचार —

मालिकों ने कुछ विशिष्ट आधारों पर इस योजना का विरोध किया है। उनका कहना है कि 'कर्मचारी' की परिभाषा बहुत विस्तृत है और मजदूरी की परिभाषा भी स्पष्ट नहीं है। मजदूरी की परिभाषा के अनुसार तो महंगाई भत्ता मार्केटिंग भत्ता आदि भी सम्मिलित किये जा सकते हैं। श्रमिक के अंशदान की उगाही करने का उत्तरदायित्व भी मालिकों पर लाद दिया गया है। परन्तु ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की गई है जिसमें यदि मजदूर अपना अंशदान देने से मना कर देता है तो मालिक कोई कार्यवाही कर सके। मालिक मजदूरी को अंशदान के लिए साप्ताहिक दर का रूप देने की कठिनाइयों की ओर भी उन्होंने संकेत किया। परन्तु यह सब कठिनाइयाँ ऐसी नहीं थी जिनके कारण योजना को कार्यान्वित न किया जाता। वास्तव में मालिकों के लिए इस योजना की लागत इतनी नहीं होती जितनी कि दिखाई जाती है। ४०० रु० या इससे कम पाने वाले कर्मचारियों का अंशदान उनकी मजदूरी का १% से भी कम होता है। इस प्रकार मालिकों पर अंशदान का भार उत्पादन व्यय के ऊपर १ प्रतिशत ही और अधिक होगा। परन्तु इस योजना की लागत मालिकों को वास्तव में इससे भी कम बैठती है क्योंकि इस समय मालिकों को मातृत्व हित लाभ अधिनियम और श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत लाभों का भुगतान करना पड़ता है। यह भुगतान अब बीमा कराये हुए कर्मचारियों के लिए नियम द्वारा किया जायेगा। योजना के कार्यान्वित होने के तत्काल पश्चात् ही बीमा कराये हुए व्यक्ति की चिकित्सा लाभ की लागत भी नियम स्वयं वहन करेगी। इस प्रकार मालिकों के लिए वास्तविक लागत उत्पत्ति मूल्य के एक प्रतिशत की भी ½ भाग के लगभग बैठेगी। यह लागत इतनी भारी नहीं मालूम देती कि उद्योग इसका भार वहन न कर सके। लागत और आँकड़ों के प्रश्न को छोड़कर एक और महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि कारखानों में काम करने वाले १० लाख कर्मचारियों को किसी न किसी प्रकार की सुरक्षा कैसे प्रदान की जाय। यह योजना श्रमिकों के संकट के अनेक अवसरों पर उनकी सहायक होगी। इससे श्रमिकों का एक स्वस्थ और स्थायी वर्ग बन जायगा जिससे स्वभावतः उत्पत्ति में वृद्धि होगी। इस योजना में जो थोड़ी अतिरिक्त लागत आएगी वह अधिक उत्पत्ति और स्वस्थ व संतुष्ट जनता के रूप में हमें वसूल हो जायेगी।

योजना का कार्यान्वित होना —

२४ फरवरी १९५२ को कानपुर में प्रधान मन्त्री पं० नेहरू ने कर्मचारी राज्य बीमा योजना का उद्घाटन किया। उसी दिन देहली में भी इसे लागू कर दिया

गया। इसके पश्चात् यह योजना अन्य स्थानों पर भी लागू की गई। इस समय इसके अन्तर्गत जैसा कि निम्न तालिका से स्पष्ट है विभिन्न राज्यों के लगभग १७ लाख से अधिक श्रमिक आते हैं।

क्षेत्र १	लागू होने की तिथि २	योजना के अन्तर्गत आने वाले कर्मचारियों की संख्या ३
कानपुर	२४ फरवरी १९५२	८१
देहली	"	४ ०
पंजाब (७ नगर अमृतसर अम्बाला जालन्धर, बटाला अब्दुलपुर, भिवानी और लुधियाना)	१७ मई १९५१	१२
नागपुर	११ जुलाई १९५४	२२ ०
बृहत् बम्बई	२ अक्तूबर १९५४	४२१ ००
मध्य भारत (४ नगर इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन और रतलाम)	२१ जनवरी १९५५	५२ ००
कोयम्बटूर	"	१६, ०
हैदराबाद व सिकन्दराबाद	१ मई १९५५	१८
कलकत्ता शहर और हावड़ा जिला	१४ अगस्त १९५५	२ ३६,०००
आन्ध्र (७ नगर विशाखापटनम जिले के ३ गुन्टूर जिले के २, तथा गोदावरी व कृष्णा जिलों में से एक एक)	९ अक्टूबर १९५५	१७ ००
मद्रास	२० नवम्बर १९५५	५६,००
लखनऊ आगरा व सहारनपुर	१५ जनवरी १९५६	२१५ ०
अकोला और हिंगनघाट (मध्य प्रदेश के दो नगर)	२७ मई १९५६	१०० ०
बुरहानपुर (मध्य प्रदेश)	१ सितम्बर १९५६	३८०
त्रिवांकुर कोचीन (५ नगर अलवाय अलप्पी परलापुरम अलाप्पा और त्रिचुर)	१५ सितम्बर १९५६	१७ ५००
मद्रास (३ नगर मदुराई, अम्बासमुद्रम् और तूतीकोरन)	२८ अक्टूबर १९५६	११ ०००
राजस्थान (६ नगर जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, पाली भीलवाड़ा और ब्यावर)	९ दिसम्बर १९५६	१७००
इलाहाबाद वाराणसी रामपुर और फर्रुखाबाद (उत्तर प्रदेश)	११ मार्च १९५७	१५,५००
जबलपुर (मध्य प्रदेश)	२९ सितम्बर १९५७	४०

१	२	२
बीवार (राजस्थान)	२७ अक्टूबर १९५७	४ ०००
पटना कटिहार, मुंगेर और समस्तिपुर (बिहार)	१५ दिसम्बर १९५७	१६,५००
सवाई-माधोपुर (राजस्थान)	१ मार्च १९५८	२,५००
अलीगढ़ हाथरस शिकोहाबाद और बरेली (उत्तर प्रदेश)	३० मार्च १९५८	१० ५००
बंगलौर (मैसूर)	२६ जुलाई १९५८	५० ०००
त्रिवेन्द्रम (केरल)	१० अगस्त १९५८	४ ०००
असम (४ नगर गोहाटी डिब्रूगढ़ धुबरी तिनसुकिया-मकुम)	२८ सितम्बर १९५८	३ ७००
मद्रास (४ नगर वीरपुर पुदुमलपेट सलीम और मदुरा)	३ नवम्बर १९५८	२० ०००
श्री गंगानगर तथा धौलपुर जिला (राजस्थान)	२६ मार्च १९५९	२ ४००
सहजनवा (गोरखपुर) मिर्जापुर, गाजियाबाद तथा मोदीनगर (उत्तर प्रदेश)	२६ मार्च १९५९	११ ०००

इस प्रकार यह योजना मार्च १९५९ के अन्त तक ७९ केन्द्रों में लागू हो चुकी थी। और इसके अन्तर्गत १४.१४ लाख श्रमिक आते थे। वर्ष के अन्त तक यह योजना ८६ केन्द्रों पर लागू हो चुकी थी और उसके अन्तर्गत १४.७३ श्रमिक आ गए थे। यह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जाएगा।

१	२	३
केरल (२ केन्द्रों में अर्थात् कोझीकोडे तथा फीरोक में)	१२ जुलाई १९५९	१३ ०००
पंजाब (२ केन्द्र नाभा तथा बटाला)	अगस्त १९५९	५,०००
मध्य प्रदेश (२ केन्द्र नागदा तथा भोपाल)	२६ सितम्बर १९५९	६ ०००
वारंगल (आन्ध्र)	१४ नवम्बर १९५९	५,०००

१९६ में योजना निम्नलिखित स्थानों तक विस्तृत कर दी गई —

१	२	३
केरल (२ केन्द्र—फोर्ट कोचिन तथा मटनचेरी)	१ जनवरी १९६	१
उड़ीसा (१ केन्द्र—रजमालपुर, चंदवार बारंग कटक और ब्रजराजनगर)	१ जनवरी १९६	१८२००
मद्रास (४ केन्द्र)	२७ फरवरी १९६	८२ ०
सीरपुर (आन्ध्र)	२७ मार्च १९६	६,१ ०
डालमिया नगर, बंजारी तथा जापला (बिहार)	२७ मार्च १९६०	१ ०
डालमिया पुरम (मद्रास)	२७ मार्च १९६	१७ ०
हुबली (मैसूर)	२७ मार्च १९६	१७५०
श्यामपुर (पश्चिमी बंगाल)	५ जून १९६	प्राप्य नहीं
मावोरी तथा कोकीनाडा (आन्ध्र) उदयपुर तथा भरतपुर (राजस्थान)	११ अगस्त १९६	५२५०
धनबाद (बिहार)	२७ अगस्त १९६	१६
राजनन्द गाँव (मध्य प्रदेश)	२८ सितम्बर १९६	१२ ०
केरल (३ केन्द्र—कैनूर, तैलीचेरी तथा आलीपरम)	२९ अक्टूबर १९६	६,५ ०

इस प्रकार १९६ के अन्त तक यह योजना ११२ केन्द्रों में लागू हो चुकी थी तथा इसके अन्तर्गत १५७६८ लाख श्रमिक आते थे। १९६१ में यह योजना और केन्द्रों में भी लागू कर दी गई है जो निम्नलिखित है—

१	२	३
दावणगेरी (मैसूर) हिसार (पंजाब)	८ जनवरी १९६१	३६००
मद्रास (३ केन्द्र—तिरुचिरापल्ली रानीपत तथा कावेरी नगर) सोनीपत (पंजाब)	१९ फरवरी १९६१	प्राप्य नहीं
उत्तर प्रदेश (३ केन्द्र—मेरठ, मुरादाबाद तथा फिरोजाबाद)	२५ मार्च १९६१	५, ०
केरल (२ केन्द्र—पुनालूर तथा कोटयाम)	१० जुलाई १९६१	४४००
मंदसूर तथा देवास (मध्य प्रदेश)	२६ अगस्त १९६१	१७५०
नरवर (पंजाब)	१९ सितम्बर १९६१	१० ०
मद्रास (५ केन्द्र)	२८ अक्टूबर १९६१	२,८००
बमगोर (मध्य प्रदेश) मद्रास (११ गाँवों में)	२८ अक्टूबर १९६१	५,८००
विजियानगरम (आन्ध्र)	१८ नवम्बर १९६१	८००

१९६२ में भी इस योजना को अन्य केन्द्रों में लागू किया जा रहा है। १० जनवरी से यह योजना मंगलौर (मैसूर) तथा गोविन्दगढ़ कपूरथला और फगवाड़ा (पंजाब) में लागू कर दी गई है। मैसूर में ६ ४०० और पंजाब में ६,५०० और श्रमिक इसके अन्तर्गत आ गए हैं। ११ जनवरी १९६२ से योजना फरीदाबाद (पंजाब) में ७ हजार श्रमिकों पर लागू कर दी गई है। १० फरवरी १९६२ से यह उत्तर प्रदेश में ऐशबाग़नगर, रुड़की तथा झाँसी में २ १०० श्रमिकों पर लागू कर दी गई है। इस प्रकार इस योजना के अन्तर्गत फरवरी १९६२ तक १७ १८ ६४२ श्रमिक आ गए थे। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना काल में इस योजना को उन समस्त केन्द्रों पर लागू करने का विचार था जहाँ १ ५०० या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में यह योजना पहले तो उन ६ लाख श्रमिकों पर लागू की जाएगी जो द्वितीय आयोजना काल में इसके अन्तर्गत आने से रह गए हैं और फिर उन समस्त केन्द्रों पर लागू की जायगी जहाँ ५०० से १ ५०० तक श्रमिक ऐसे हैं जो 'कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम' के अन्तर्गत आते हैं। इस प्रकार इस योजना के अन्तर्गत ३० लाख श्रमिक आ जायेंगे।

चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाएँ अब बीमाकृत श्रमिकों के परिवारों को भी दी जा रही हैं। मैसूर सरकार ने सबसे पहले २६ जुलाई १९५८ को मंगलौर में श्रमिकों के परिवारों को चिकित्सा सुविधाएँ प्रदान कीं। उसके पश्चात् अन्य राज्यों में भी धीरे-धीरे यह योजना श्रमिकों के परिवारों तक विस्तृत कर दी गई है। १९६०-६१ तक यह योजना ५ ३४ लाख श्रमिक परिवारों पर लागू हो चुकी थी। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में १० लाख और श्रमिक परिवार इस योजना के अन्तर्गत आ जायेंगे।

योजना के कार्यान्वित होने के पश्चात् यह अनुभव किया गया है कि यह श्रमिकों में काफी लोकप्रिय हो रही है। चिकित्सालयों में आने वाले रोगियों की संख्या का प्रतिदिन बढ़ना और बीमारी व असमर्थता लाभों का अधिक संख्या में भुगतान होना यह प्रदर्शित करता है कि यह योजना श्रमिकों में काफी लोकप्रिय होती जा रही है। उदाहरणतः १९५९-६० में विभिन्न राज्य बीमा औषधालयों तथा चिकित्सालयों और पैनल डाक्टरों के दवाखानों में लगभग १,५०,३६ २६७ मरीजों का इलाज किया गया तथा ११ ७९२ मरीजों को हस्पताल में भरती किया गया। १,०८ ५०४ बार घरों पर मरीजों को देखा गया। १९५८-५९ तक निगम द्वारा नकदी लाभ के रूप में ६ ५८ ६० ००० रु० बीमाकृत व्यक्तियों को दिए गए जो निम्नलिखित लाभों के लिए दिए गए — बीमारी लाभ– ५ ६६,६६,००० रु०, मातृत्व हित लाभ– २१,८३ ००० रु० अस्थायी असमर्थता लाभ– ६२ ६७ ००० रु० स्थायी असमर्थता लाभ— १०,८६,००० रु०, आश्रितों का लाभ– ४,५६,००० रु०, अन्य लाभ– २ २१ ००० रु०। १९५९-६० में ३ ०५ लाख रु० नकदी लाभ के रूप में दिए गए थे। १९५८-५९ के अन्त में इस योजना की निधि में कर्मचारियों का

अंशदान ३ ८१ ११ ६६ रु० था और मालिकों का अंशदान २,६० २४ ०८१ रुपए पहुंच गया था। अनेक मालिकों पर अंशदान के न देने तथा अधिनियम के उपबन्धों को न मानने के कारण मुकदमा भी चलाया गया। निगम की वार्षिक रिपोर्ट से पता लगता है कि निगम की माली हालत संतोषजनक है। निगम के १९६१–६२ के बजट में ३०·६२ लाख रु० की बचत है (आय १ ६,२७८ ००० रु० और व्यय १० ३२१ ६० रु०)।

योजना को कार्यान्वित करने में कठिनाइयां :—

कुछ बाधाओं के कारण अभी तक यह सम्भव नहीं हो सका है कि इस योजना को और अधिक क्षेत्रों में कार्यान्वित किया जा सके। कुछ आपत्तियों के कारण जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है मालिकों की ओर से योजना का विरोध किया गया है और इसलिए उनका पूर्ण सहयोग नहीं मिल पाया है। श्रमिकों ने भी कुछ बातों पर इस योजना पर आपत्ति उठाई है। सर्वप्रथम मजदूरों की यह मांग रही है कि इस योजना में उनके परिवारों के सदस्य भी सम्मिलित कर लिये जायें और कभी-कभी उन्होंने इस बात पर बहुत जोर दिया है। यह बात अब मान भी ली गई है परन्तु वित्तीय कठिनाइयों के कारण सब स्थानों पर श्रमिकों के परिवारों के लिए यह सुविधा प्रदान नहीं की जा सकी है। मजदूरों की दूसरी मांग यह है कि हस्पताल की उत्तम सुविधायें प्राप्त हों और निगम के अपने हस्पताल अलग से हों। निगम को अधिकतर स्थानीय हस्पतालों पर निर्भर रहना पड़ता है जिनमें बीमा कराये हुए व्यक्तियों के लिए पलंग सुरक्षित कर दिये जाते हैं। मजदूरों की तीसरी न्यायपूर्ण मांग यह है कि कुछ प्रगतिशील मालिक जो उच्च स्तर की चिकित्सा सुविधाएं दे रहे हैं उनमें योजना लागू होने के पश्चात् कटौती नहीं होनी चाहिये। इसके अतिरिक्त मजदूरों ने यह मांग भी की है कि निगम के प्रबन्ध में उनका हाथ भी होना चाहिए। अमृतसर, कलकत्ता और हावड़ा जैसे कुछ स्थानों पर मजदूरों ने हड़तालें भी कीं और इस बात की मांग की कि मजदूरों द्वारा बीमानिधि में दिया जाने वाला अंशदान उनकी मजदूरी में से नहीं काटा जाना चाहिये।

एक और कठिनाई यह है कि चिकित्सा के लिए डाक्टरों आदि की भी कमी है। जो डाक्टर पैनल (नामिका) प्रणाली के अन्तर्गत कार्य करते हैं वह यह अनुभव करते हैं कि उन्हें प्राप्त होने वाला वेतन पर्याप्त नहीं है और वह अधिक वेतन की मांग करते हैं। प्रशिक्षित कम्पाउण्डर और चिकित्सालय चलाने के लिए उचित स्थान भी काफी कठिनाई से मिल पाते हैं।

एक और अड़चन यह थी कि राज्य सरकारों ने इस बात की शिकायत की कि चिकित्सा सुविधाओं की लागत का जो $\frac{1}{3}$ भाग उन्हें देना पड़ता था वह बहुत अधिक था। अब यह निश्चय किया गया है कि राज्यों को चिकित्सा लाभों की लागत का केवल $\frac{1}{4}$ भाग वहन करना पड़ेगा। राज्य सरकारें इस बात में भी हिच कती हैं कि बीमा कराए हुए मजदूरों के परिवारों को चिकित्सा लाभ प्रदान करने का

उत्तरदायित्व अपने ऊपर लें। परन्तु निगम इस बात के लिए बहुत जोर देता रहा है और इस बात तक के लिए राजी हो गया है कि जब योजना परिवारों पर भी लागू कर दी जाएगी तब राज्यों को चिकित्सा लागतों की लागत का केवल $\frac{1}{2}$ भाग ही देना पड़ेगा। एक अन्य कठिनाई यह है कि मालिक अपने अंशदान की राशि नियमित रूप से जमा नहीं कराते और यह बात सरकारी क्षेत्र में भी पाई गई है। बकाया की उगाही के लिये कठोर पग उठाने का सुझाव दिया गया है।

इसके अतिरिक्त श्रम मंत्रालयों के अधिकारियों और कर्मचारी राज्य बीमा निगम के अधिकारियों में सहयोग की कमी है। इसका अनुमान इस घटना से लगाया जा सकता है कि प्रारम्भ में बहुत अच्छा कार्य करने वाले निगम के प्रथम डाइरेक्टर जनरल डा० काटियाल की कार्य अवधि को बढ़ाया नहीं गया जिसका कारण यह बताया जाता है कि उनका श्रम मंत्रालय के अधिकारियों से कुछ मतभेद था। इसके विरोध में डा० काटियाल ने गांधी जी की समाधि पर उपवास किया। उसके पश्चात् कर्नल वी० एम० एलबुकर्क (Col V M Albuquerque) निगम के डाइरेक्टर जनरल नियुक्त किए गये परन्तु उन्होंने भी मार्च १९६१ में त्यागपत्र दे दिया क्योंकि उनका भी निगम के कर्मचारियों और प्रबन्धकों में आपसी सम्बन्धों के विषय में मत भेद था। अब श्री सी० श्री० एन राजन निगम के महा-निदेशक हैं। यदि सामाजिक सुरक्षा की किसी योजना को सफल बनाना है और उसे कार्यान्वित करने में देर नहीं करनी है तब यह बहुत आवश्यक हो जाता है कि योजना को चलाने वाले उच्च अधिकारी बहुत ईमानदार हों, उनमें प्रबन्ध करने की पर्याप्त क्षमता हो और वे पारस्परिक सहयोग से कार्य करें। डा० काटियाल जैसी घटनाएँ जनता के विश्वास को हिला देती हैं। इस प्रकार की घटनाएँ किसी भी हालत में नहीं होनी चाहिएँ।

स्थायी श्रम समिति की सिफारिशों के फलस्वरूप १९५६ में कर्मचारी राज्य बीमा योजना की जांच करने के लिये डा० लक्ष्मण स्वामी मुदालियर को जो मद्रास विश्वविद्यालय के उपकुलपति हैं नियुक्त किया गया। डा० मुदालियर ने अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी है जिस पर विचार किया जा रहा है। १ मार्च १९६१ तक जो ५ वर्ष पूरे हुए हैं उस अवधि में निगम की परिसम्पत्ति और देयता के सम्बन्ध में मूल्यांकन के लिए बीमा निर्धारक की नियुक्ति की गई है। मार्च १९६१ में निगम ने एक उपसमिति बनाई है जिसका कार्य कर्मचारी राज्यबीमा अधिनियम में संशोधन करने पर सुझाव देना है। यह सुझाव है कि अधिनियम के अन्तर्गत जो सुविधायें दी जा रही हैं उनकी कार्य विधि को सरल बना दिया जाय ताकि श्रमिक को अच्छी सेवायें प्राप्त हो सकें तथा इसके अन्तर्गत आने वाले श्रमिकों की सीमा उन श्रमिकों तक भी विस्तृत कर दी जाय जिनको ५०० रु० प्रति माह मिलते हैं।

उपसंहार —

कर्मचारी राज्य बीमा योजना एशिया में अपने प्रकार की पहली ही योजना है। भारतीय जनता के लिए सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना बनाने की

दिशा में यह पहला कदम है। इसे हम एक साहसपूर्ण और साथ ही ऐसी योजना कह सकते हैं जो बहुत महत्वाकांक्षी नहीं है। परन्तु अभी तक इसके अन्तर्गत जन-संख्या का एक छोटा सा ही भाग आ पाया है, अर्थात् केवल संगठित उद्योगों के मजदूरों पर ही जिनकी संख्या लगभग २५ लाख है यह योजना लागू होती है। इसके अन्तर्गत सब प्रकार के संकट और सब प्रकार के व्यक्ति विशेषकर कृषि मज़दूर नहीं आते हैं। सामाजिक सुरक्षा के दृष्टिकोण से यह एक व्यापक योजना नहीं है। परन्तु इसको एक अधिक बड़ी और साहसपूर्ण योजना को लागू करने के लिए आधारशिला माना जा सकता है और यह देश की जनता के लिए व्यापक समाज सुरक्षा की योजना बनाने में मार्ग-प्रदर्शक बन सकती है। यह आशा की जाती है कि इस योजना को दृढ़ विश्वास के साथ कार्यान्वित किया जाएगा और इसके लागू करने में अधिकारियों में भी सेवाभावना निहित रहेगी और मालिक और मजदूरों का इच्छित रूप से पूर्ण सहयोग होगा।

नाविकों के लिए सामाजिक बीमा — (Social Insurance for Seamen)

यह भी उल्लेखनीय है कि मजदूरों के एक अन्य वर्ग के लिये अर्थात् नाविकों के लिए भी भारत सरकार ने एक सामाजिक सुरक्षा योजना तैयार की है। इस विषय पर प्रो० बी पी अदारकर और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की डा (कुमारी) लौरा बोडमर द्वारा तैयार की हुई एक संयुक्त रिपोर्ट पहले ही प्रकाशित की जा चुकी है। इस अदारकर बोडमर योजना में बीमारी रोजगार, वृद्धावस्था व उत्तर जीवी बीमे और नाविकों के 'प्रतीक्षा काल' के लिए बीमे की व्यवस्था की गई है। परन्तु इस योजना के निर्माणकर्त्ताओं के विचार में नाविकों के लिए किसी भी बीमा योजना की सफलता बहुत सीमा तक इस बात पर निर्भर करेगी कि उनकी भर्ती की उचित व्यवस्था है। इस व्यवस्था द्वारा समुद्री सेवा में भर्ती होने वाले श्रमिकों की संख्या कम करने तथा ऐसे नाविकों के लिए, जिनको निरन्तर रोजगार नहीं होता एक क्रम चक्र (Rotation) की योजना लागू करने का सुझाव था। इस सुझाव को ध्यान में रखते हुए सरकार ने बम्बई और कलकत्ता में सरकारी रोजगार दफ्तर खोले हैं। नाविकों के लिए सामाजिक बीमा को प्रारम्भ करना तभी सम्भव हो सकेगा जब रोजगार के ये दफ्तर अपना कार्य सरलता से और सफलतापूर्वक करने लगेंगे। नाविकों के लिए एक राष्ट्रीय कल्याण बोर्ड की भी स्थापना हुई है जिसने नाविकों के लिए एक सामाजिक सुरक्षा योजना के निर्माण हेतु एक उपसमिति की नियुक्ति की है।

बेरोजगारी बीमा
(Unemployment Insurance)

बेरोजगारी के मूल कारण —

सामाजिक बीमे का एक अन्य महत्वपूर्ण भाग अनिवार्य सार्वजनिक बेरोजगारी बीमा है। इस ओर आधुनिक राज्यों का ध्यान भी पर्याप्त रूप से आकर्षित

हुआ है। बेरोजगारी का अर्थ होता है किसी योग्य व्यक्ति को रोजगार न मिल सकना। यह एक ऐसी अवस्था है जो अबन्ध नीति (Laissez Faire) पर आधारित आर्थिक प्रणाली में निहित है तथा इसके कारण पैदा होती है। इससे ऐसी अस्थिरता का पता चलता है जो मुक्त उद्यम प्रणाली (Free Enterprise) का एक आवश्यक लक्षण है और सम्भवतः यह एक ऐसा मूल्य है, जिसका चुकाना ही पड़ेगा यदि उत्पादन को दिन प्रतिदिन होने वाली नई-नई विधियों और आविष्कारों के द्वारा तथा बिना किसी नियन्त्रण के आगे बढ़ाना है तथा अधिक से अधिक लाभ प्राप्त करना है। उद्योग के लिये यह हमेशा सुविधा रहती है कि कुछ मजदूर बेरोजगार रहें जिससे जब भी आवश्यकता पड़े उन्हें बुला लिया जाय। जब व्यापार उन्नति पर होता है तब बेरोजगार मजदूरों की संख्या कम होती है परन्तु जब मन्दी का समय आता है तो संख्या बढ़ जाती है। इन निरन्तर होने वाले सामयिक उतार चढ़ाव (Cyclical Fluctuations) के अतिरिक्त नए आविष्कारों अथवा विदेशी व्यापार में हानि के कारण भी बड़ी-बड़ी मुसीबतें आ पड़ती हैं जिनसे उद्योग का सारा ताना-बाना शीघ्र नष्ट हो जाता है और मजदूरों को काफी समय तक आलस्य में समय गंवाना पड़ता है। इसके अतिरिक्त कुछ उद्योगों में कार्य सामयिक होता है और कुछ कामों में जैसे ठेकेदारों द्वारा सार्वजनिक निर्माण कार्यों में कार्य-व्यवस्था अनियमित होती है। इस प्रकार के कार्यों और उद्योगों में पूर्ण रोजगार की व्यवस्था नहीं हो पाती। इस प्रकार, बेरोजगारी वह अवस्था है जो हमारे समक्ष अनेक रूपों में आती है और यह विभिन्न देशों के मुक्त उद्यम पर आधारित आधुनिक उद्योग प्रणाली की एक नियमित लक्षण बन चुकी है। (कृपया परिशिष्ट 'ख' भी देखिये)।

बेरोजगारों को सहायता देने की आवश्यकता —

बेरोजगारी अनेक आर्थिक बुराइयों में से एक गम्भीरतम दोष है और यह आर्थिक संगठन के लिए एक गम्भीर खतरा भी है। यदि बेरोजगारी अधिक दिनों तक चलती है तब व्यक्ति और समाज के लिये इसके बहुत विनाशकारी परिणाम होते हैं। इससे मानसिक शक्ति का ह्रास कुण्ठा, आलस्य, दरिद्रता आदि अनेक सामाजिक बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं। समाज का एक बड़ा तथा सामान्य उत्तरदायित्व यह है कि प्रत्येक व्यक्ति को जीविका कमाने और निर्वाह करने का उचित अवसर प्रदान करे। जे० एस० मिल के शब्दों में "राज्य अनिवार्य रूप से एक अपराधी को दंड भुगतने के काल में खाने-पीने की सुविधायें प्रदान करता है। परन्तु यदि गरीब व्यक्तियों के लिये, जिन्होंने अपराध नहीं किया है, ऐसा नहीं किया जाता तब स्पष्ट रूप से यह अपराध का बढ़ावा देना।" अब अधिकतर राज्यों ने बेरोजगारी के समय लोगों को सहायता देने के अपने कर्तव्य को स्वीकार कर लिया है।

बेरोजगारी सहायता के लिए कुछ योजनायें —

मंदी के समय में १९२९ के पश्चात् अनेक देशों में बेरोजगारों को सहायता देने के लिये अनेक योजनायें बनाई गई थीं। कुछ योजनाओं के अन्तर्गत पूर्णतया

या मुख्यतया काम देने की सुविधायें दी गई थीं और कुछों में भत्ता देने की व्यवस्था की गई थी। इनमें से कुछ योजनाओं की व्यवस्था तो किसी विशिष्ट विपत्ति का सामना करने के लिये अस्थायी थी परन्तु कुछ योजनायें स्थायी थीं। बेरोजगारी *सहायता योजनायें अमरीका कनाडा स्वीडन आस्ट्रेलिया ग्रेट ब्रिटेन* और योरप के अधिकतर देशों में चालू रही हैं। इस प्रकार की सहायता सार्वजनिक निर्माण कार्यों में बेरोजगारों को सामान्य मजदूरी पर रोजगार प्रदान करके दी गई है। लाखों मजदूरों की इस प्रकार सहायता की गई है। बेरोजगारी सहायता की प्रत्येक योजना में यह आवश्यक है कि प्रार्थी में काम करने की योग्यता हो रोजगार दफ्तर में उसका नाम दर्ज हो किसी भी अपने योग्य रोजगार को स्वीकार करने की उसकी इच्छा हो किसी प्रशिक्षण लेने व सहायता कार्य करने के लिये वह तैयार रहे और उसे इस प्रकार की सहायता की आवश्यकता भी हो। बेरोजगारी-सहायता योजनाओं का मुख्य उद्देश्य लाभ प्राप्त करने वाले मजदूर और उसके आश्रितों का निर्वाह करना होता है इसलिए जो भी राशि सहायता-रूप में दी जाती है उसका निर्णय सहायता दिए जाने वाले परिवार के आकार और सदस्यों की संख्या को देखकर किया जाता है। *ब्रिटेन तथा न्यूजीलैण्ड जैसे* कुछ देशों में बेरोजगारी-सहायता योजनाओं को केन्द्रीय सरकार ने अपने हाथों में ले लिया है और उनका सारा व्यय राष्ट्रीय करों द्वारा पूरा किया जाता है। परन्तु कुछ दूसरे देशों में सरकारें ऐच्छिक बीमा निधियों को या स्थानीय बेरोजगार निधियों को इस [illegible] उपदान प्रदान करती हैं।

भारत में बेरोजगारी-सहायता प्रदान करने में कठिनाइयाँ —

बेरोजगारी-सहायता देने की जो प्रणाली अनेक देशों में चल रही है वह सम्भवतः भारत जैसे देश के लिए उपयुक्त नहीं है क्योंकि इसमें अनेक कठिनाइयाँ हैं। प्रथम तो भारत इतना बड़ा देश है और यहाँ बेकारी इतने व्यापक रूप में फैली हुई है कि वर्तमान आर्थिक दशाओं में बेरोजगारी-सहायता देने की कोई योजना बनाना असम्भव सा हो जाता है। इसके अतिरिक्त यदि यह सम्भव भी हो तो इस प्रकार की प्रणाली हमारे देश के लोगों को आलसी बना सकती है। योजना का लाभ उठाकर अनेक बेजिम्मेदारी युवक समय बर्बाद करने और साथ में वेतन भी पाने का एक तरीका बना सकते हैं। इंगलैंड में भी ऐसे मामले हुए हैं कि अनेक युवक जो अपने माता-पिता के साथ नहीं रहते थे उन्होंने कुछ समय तक तो कोई काम किया फिर छुट्टियाँ मनाने के लिए उसे छोड़ दिया और सरकार द्वारा प्रदान की जाने वाली बेरोजगारी-सहायता लेकर जेब खर्च चलाते रहे और कुछ समय पश्चात् फिर कोई नौकरी कर ली। इसके अतिरिक्त भारत में बेरोजगार-सहायता योजना का प्रशासन करने वाले अधिकारियों द्वारा अपने पद के अनेक दुरुपयोग किए जा सकते हैं जैसा कि कृषकों के लिए दिया जाने वाला 'तकावी' ऋण के सम्बन्ध में किया जाता है। भारत में एक यह भी कठिनाई है कि इस प्रकार की सहायता का वितरण किन आधारों पर किया जाय क्योंकि भारत में संयुक्त परिवार प्रणाली

है और अधिकांश जनता अशिक्षित है। कभी-कभी यह तर्क भी दिया जाता है कि इस प्रकार की सहायता उन आत्मसम्मानी लोगों की भावना को कुचल देगी जो सरकार से इस प्रकार की सहायता पाने की अपेक्षा स्वयं कोई अच्छी नौकरी करना अधिक पसन्द करते हैं।

बेरोजगारी-बीमा —

परन्तु बेरोजगार लोगों को बेरोजगारी-बीमा योजना के अन्तर्गत भी सहायता प्रदान की जा सकती है। यह विधि पिछले कुछ वर्षों से अनेक देशों में काफी लोकप्रिय हो गयी है। बेरोजगारी में सहायता देना पूर्णतया सरकार का कर्त्तव्य है परन्तु बेरोजगारी-बीमे के अन्तर्गत एक ऐसी निधि की स्थापना की जाती है जिसका निर्माण सरकार, मालिक और मजदूरों के वित्तीय अंशदान से होता है और फिर इसमें से सहायता दी जाती है। अनिवार्य बेरोजगारी-बीमा योजनाएं अनेक देशों में लागू की जा चुकी हैं, जैसे कनाडा (१६४०) ब्रिटेन (१९११–४०) इटली (१६१६), न्यूजीलैंड (१६३८) नार्वे (१६३६) दक्षिणी अफ्रीका (१६३७) और अमेरिका (१६३२–४१)।

यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने १९३४ के एक अभिसमय में बेरोजगारी बीमा योजनाओं की सिफारिश की थी परन्तु भारत में अभी तक बेरोजगारी बीमा के लिए किसी भी विधान की व्यवस्था नहीं की गई है। रॉयल श्रम आयोग ने भी इस प्रणाली को भारत के लिए सम्भव नहीं समझा था। उन्होंने इस सम्बन्ध में कई कठिनाइयों की ओर संकेत किया था जैसे किसी नियमित व स्थाई औद्योगिक जन संख्या का अभाव देश का बड़ा प्रकार तथा ऐसी योजना पर अधिक व्यय का होना। परन्तु हमारा देश धीरे-धीरे इस तथ्य के प्रति सजग होता जा रहा है कि बेरोजगारी अभाव के लिए बहुत खतरनाक है और बेरोजगारों के लिए किसी न किसी प्रकार की सुरक्षा व्यवस्था करने में देर नहीं करनी चाहिए। देश के श्रमिकों के लिए इस प्रकार की योजनाओं के अभाव में जो बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं उनका उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। जब मजदूर बेरोजगार होता है तब अनेक सामाजिक बुराइयां उत्पन्न होने लगती हैं। अतः सामाजिक बीमा प्रणाली के अन्तर्गत ही बेरोजगारी को भी सम्मिलित करने की अति आवश्यकता है।

परन्तु यह प्रणाली उस समय तक सम्भव नहीं हो सकती जब तक कि बीमे का कोई केन्द्रीय संगठन न हो और जिसका कार्य रोजगार दफ्तरों के माध्यम से न चलता हो। यह दफ्तर केन्द्रीय संगठन की स्थानीय एजेंसियों के रूप में कार्य कर सकते हैं। इस बात की भी आवश्यकता है कि बेरोजगारी के आंकड़े एकत्रित किए जाएं और यह जाना जाय कि किन परिस्थितियों में बेरोजगारी हो सकती है क्योंकि किसी भी संकट का बीमा होने के लिए आवश्यक है कि उस संकट को कुछ सीमा तक पहले से ही जानना सम्भव हो। बेरोजगारी बीमा में भी नकद लाभ लेने के लिए कठोर शर्तें होती हैं। प्रार्थी को यह सिद्ध करना होता है कि वह जिस रोजगार को

करता रहा है वह बीमा होने योग्य है और वह सहायता के लिए एक निश्चित काल के पश्चात् ही दावा कर रहा है तथा उसकी नौकरी कभी उसके दुर्व्यवहार के कारण नहीं गई है और न ही उसने किसी औद्योगिक विवाद के परिणामस्वरूप या स्वेच्छा से अपनी नौकरी छोड़ी है। बेरोजगार व्यक्ति में किसी न किसी ऐसे कार्य करने की इच्छा और योग्यता भी होनी चाहिए जो उसको साधारणतया मिल सकता है अथवा जो उसके साधारण काम के समान होता है। इस प्रकार के कार्य को जो भी प्रचलित मजदूरी की दर हो उस पर ही स्वीकार कर लेना चाहिए। जब तक श्रमिकों को बेरोजगारी लाभ मिले तब तक उसे रोजगार के दफ्तरों में भी कभी-कभी जाते रहना चाहिए। अतः 'योग्यता काल' तथा 'प्रतीक्षा काल' का स्पष्टीकरण किया जाना आवश्यक है और साथ ही बेरोजगारी लाभ कितने समय तक मिले यह भी निश्चित किया जाना चाहिए। बेरोजगारी-बीमा-योजना को रोजगार दफ्तरों के निकट सहयोग से कार्य करना चाहिए। यदि योजना अनिवार्य हो तो रोजगार दफ्तर लाभ देने की व्यवस्था कर सकते हैं। इस समय हमारे देश में रोजगार दफ्तरों का जाल सा बिछ गया है और सामाजिक सुरक्षा का आरम्भ स्वास्थ्य बीमा योजनाओं के द्वारा हो चुका है। अतः देश में बेरोजगारी बीमा लागू करने के लिए यह एक बहुत ही उपयुक्त अवसर है। कम से कम कुछ क्षेत्रों में तो बेरोजगारी बीमे की योजना प्रयोगात्मक रूप से लागू की जा सकती है।

बेरोजगारी में सहायता करने के लिए कुछ सुझाव —

जब तक बेरोजगारी को सामाजिक सुरक्षा योजना के अन्तर्गत नहीं लाया जाता तब तक बेरोजगारों को सहायता देने के लिए कुछ ऐसी ऐच्छिक योजनाएं चलाई जानी चाहिएं जिनमें सरकार अनुदान द्वारा सहायता दे। डा० राधा कमल मुकर्जी के सुझाव के अनुसार, मालिकों को इस बात के लिए उत्साहित किया जाना चाहिए कि वे एक ऐसी बेरोजगारी-सहायता निधि की स्थापना करें, जिसमें से नौकरी से निकले हुए मजदूरों को उनके सेवा-काल को ध्यान में रखते हुए, अवकाश प्राप्ति धन प्रदान किया जाए। इस निधि में स्थानीय सरकारों को भी अंशदान देना चाहिए जिसकी राशि बेरोजगार और नौकरी से निकले हुए श्रमिकों को जो सहायता प्रदान की जाए, उसके बराबर हो। इसके साथ ही सरकार को ऐसी योजनाओं को जिनका उद्देश्य अकुशल श्रमिकों को रोजगार देना हो या तो आरम्भ करना चाहिए या अनुदान द्वारा सहायता देनी चाहिए। जापान में सरकार द्वारा नगरपालिकाओं को यह अधिकार दिया हुआ है कि वे सहायता कार्यों (Relief Works) के लिए वित्त प्रदान करने के हेतु ऋण ले सकती हैं। यदि किसी योजना में अकुशल श्रमिकों को सहायता देने का व्यय कुल व्यय का कम से कम x % होता है तो उस योजना की लागत का आधा खर्च सरकार अपने कोष में से अनुदान के रूप में देती है।* अपने देश में हम इस अनुभव से लाभ उठा सकते हैं और बेरोजगारों की सहायता के लिए तत्काल

* Dr. R. K. Mukerjee *The Indian Working Class, Page 343*

ही कदम उठा सकते हैं। परन्तु वस्तुतः हमारा उद्देश्य देश में अनिवार्य बेरोजगारी बीमा योजना को कार्यान्वित करना होना चाहिए।

हाल ही के कुछ वर्षों में हमारे देश में बेरोजगारी के खतरे के बढ़ने के साथ साथ बेरोजगारी-बीमे की समस्या का महत्व भी बढ़ गया है। इस बात की अत्यधिक आवश्यकता अनुभव की गई है कि समस्या की गम्भीरता को शीघ्र ही आंका जाय और बेरोजगारी काल में जो आर्थिक असुरक्षा की समस्या पैदा होती है उसे भी सुलझाया जाय। इस दिशा में १९५३ के 'औद्योगिक विवाद अधिनियम' में संशोधन करके कुछ कदम उठाए गए हैं जिनके अनुसार बेरोजगारों को बेकारी के समय क्षति पूर्ति प्रदान करने की व्यवस्था है (पृष्ठ १६१–६४ देखें)। यह अधिनियम उन कारखानों और कारखानों में लागू होता है जहाँ ५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। इस अधिनियम को मई १९५४ से बागान में भी लागू कर दिया गया है। मौसमी कारखाने इस अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते। अधिनियम के अन्तर्गत कर्मचारियों को बेरोजगारी और जबरी छुट्टी (Lay-off) के समय में क्षतिपूर्ति देने की व्यवस्था है जो उनकी मूल मजदूरी और महंगाई भत्ते का ५०% के हिसाब से होती है बदली श्रमिकों के लिए यह व्यवस्था नहीं है। यह लाभ १२ महीनों में अधिक से अधिक ४५ दिन मिल सकता है परन्तु यदि कर्मचारी इस अवधि में एक सप्ताह से अधिक एक ही समय में जबरी छुट्टी के लिए विवश किया जाता है तो यह लाभ उसे ४५ दिन के पश्चात् भी मिलता रहेगा। इस प्रकार के कर्मचारियों को प्रतिदिन अपनी हाजिरी लगवानी पड़ती है और कोई दूसरा उचित काम दिए जाने पर उन्हें उसे स्वीकार करना पड़ता है। छटनी की अवस्था में उन्हें या तो एक माह का लिखित नोटिस दिया जाता है अथवा उसके स्थान पर एक माह की मजदूरी दे दी जाती है। छटनी हुए कर्मचारी को एक साल की नौकरी पर १५ दिन की औसत मजदूरी के हिसाब से क्षतिपूर्ति दी जाती है। ऐसी सुविधाओं को प्रदान करने का उत्तरदायित्व मालिकों पर है। ऐसी सुविधाएं केवल उन्हीं श्रमिकों को दी जाती हैं जिन्होंने निरन्तर एक वर्ष या इससे अधिक कार्य किया है। जून १९५७ में अधिनियम में एक संशोधन के अनुसार किसी भी उद्योग के उचित बन्द होने या स्वामित्व के हस्तांतरण होने पर भी छटनी क्षतिपूर्ति दी जाएगी (पृष्ठ १६६ देखें)। जबरी छुट्टी तथा छटनी के समय इस प्रकार जो सहायता दी जाती है वह किसी बीमा योजना के अन्तर्गत तो नहीं आती परन्तु फिर भी इस प्रकार की सहायता के कारण बेरोजगारी के दिनों में श्रमिकों को अपनी कठिनाइयां कम करने में बहुत सहायता मिलती है। यह सुझाव दिया जा सकता है कि इस प्रकार के लाभ उन संस्थानों के श्रमिकों को भी मिलने चाहिएं जिनमें ५० से कम श्रमिक कार्य करते हैं।

श्रमिकों के लिए एक अन्य प्रकार की सुरक्षा १९५६ में 'कम्पनी अधिनियम' में संशोधन द्वारा प्रदान की गई है। इस संशोधित अधिनियम में एक उपबन्ध यह है कि यदि किसी कम्पनी का समापन (Liquidation) हो जाता है तो कम्पनी की

परिसम्पत्ति (Assets) में से श्रमिकों का वेतन आदि सर्वप्रथम दिया जायगा।

१९५४ में सरकार ने एक कार्य-दल (Working Group) भी बनाया जिसमें श्रम, वित्त वाणिज्य और उद्योग मंत्रालयों आयोजना आयोग और कर्मचारी राज्य बीमा निगम के प्रतिनिधि थे। इस दल का कार्य इस समस्या का प्रारम्भिक अध्ययन करना और यह देखना था कि बेरोजगारी बीमा योजना किस प्रकार बनाई जा सकती है। कार्य-दल ने अपनी रिपोर्ट में जो १९५५ में प्रस्तुत की गई, बेरोजगारी बीमा योजना प्रारम्भ करने का सुझाव दिया है। इस योजना के लिए मालिक और मजदूर दोनों को अपने अंशदान प्रीमियम के रूप में देने होंगे। इस योजना में इस बात की व्यवस्था थी कि बेरोजगारी के समय में क्षतिपूर्ति विभिन्न आधारों पर दी जाए। इस योजना के लागू होने में औद्योगिक विवाद अधिनियम में जो जबरी छुट्टी और छटनी के लिए उपबन्ध हैं उन्हें निरस्त (Repeal) करने का सुझाव था। रिपोर्ट में बेरोजगारी बीमे की वांछनीयता तथा सम्भावना पर भी जोर दिया गया था। सरकार ने इस योजना को इस समय स्वीकार नहीं किया है क्योंकि वर्तमान विधान में ही जो श्रमिकों की छटनी और जबरी छुट्टी के काल में क्षतिपूर्ति देने से सम्बन्धित उपबन्ध हैं वे श्रमिकों के लिये अधिक लाभप्रद हैं। परन्तु इस समस्या पर हमें विस्तृत दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए और बेरोजगारी बीमे की एक व्यापक और अनिवार्य योजना बनाने में अब अधिक विलम्ब नहीं करना चाहिए।

एक अन्य महत्वपूर्ण पग जो इस सम्बन्ध में उठाया गया है वह बेरोजगारी सहायता निधि (Unemployment Relief Fund) स्थापित करने की योजना का है। ऐसी निधि की स्थापना का सुझाव मई १९५८ में भारतीय श्रम सम्मेलन के १६ वें अधिवेशन में केन्द्रीय श्रम मंत्री द्वारा दिया गया था। औद्योगिक संस्थानों के बन्द हो जाने से जो बेरोजगारी की समस्या उत्पन्न हो जाती है उसको दूर करने के लिये एक निधि की स्थापना करने का सुझाव था। इस निधि में से किसी भी औद्योगिक संस्थान के बन्द हो जाने के कारण बेरोजगार श्रमिकों को न केवल सहायता मिल सकती है वरन् उस औद्योगिक संस्थान को चालू रखने के लिये भी सहायता दी जा सकती है, जो औद्योगिक संस्थान अपने कुशल प्रबन्ध के लिये विख्यात है और जिसे वित्त की कठिनाइयां केवल अस्थायी रूप से ही है। यह आशा भी व्यक्त की गई थी कि इस निधि द्वारा कुछ औद्योगिक संस्थानों का अस्थायी रूप से प्रबन्ध संभाल लिया जायेगा और यदि श्रमिकों को उसी रोजगार में लगे रहने की कोई सम्भावना प्रतीत नहीं होती तो उसी प्रकार के अन्य रोजगारों में प्रशिक्षण पाने के लिये श्रमिकों की सहायता की जायगी। इस निधि में धन सरकार, मालिक और श्रमिकों के अंशदान से संचय करने का सुझाव था। परन्तु केन्द्रीय श्रम मंत्रालय द्वारा जब इस योजना पर विस्तार से विचार किया गया तो निधि में धन संचय करने के उपायों पर मतभेद हो गया। मालिकों ने ऐसी निधि में अंशदान देने का विरोध किया। इस निधि में धन संचय करने के लिये कोई कर लगाने के सुझाव का भी स्वागत

नहीं किया गया। परिणाम यह हुआ कि फरवरी १९६० में ऐसी लाभप्रद योजना को स्थगित कर दिया गया। परन्तु अब फिर बेरोजगारी सहायता निधि स्थापित करने पर विचार किया जा रहा है।

वृद्धावस्था और निबल सुरक्षा
(Old Age and Invalidity Security)

आवश्यकता —

वृद्धावस्था एक दूसरी औद्योगिक और सामाजिक समस्या है जिसका समाधान होना ही चाहिए। यह अत्यन्त आवश्यक है कि श्रमिकों के वृद्धावस्था प्राप्त करने पर और काम के लिए असमर्थ हो जाने के अवसर पर उन्हें सुरक्षा प्रदान की जाय। यदि मजदूर की मृत्यु हो जाय तब उसके आश्रितों को भी सुरक्षा की आवश्यकता होती है। इस प्रकार की सुरक्षा की व्यवस्था या तो प्रोवीडेन्ट फन्ड या अवकाश प्राप्ति के धन (Gratuity) की योजनाओं से अथवा वृद्धावस्था व निबल पेन्शन योजनाओं से हो सकती है। यह कितने दुःख की बात है कि जिन श्रमिक ने अपने जीवन के २० या ३० वर्ष किसी कारखाने में कठोर श्रम में व्यतीत किये हों उसे उसके वृद्ध होने पर कोई भी आश्रय न दिया जाय। वृद्धावस्था के लिए कुछ न कुछ व्यवस्था तो करनी चाहिये क्योंकि औद्योगिक जीवन से संयुक्त परिवार प्रथा लगभग समाप्त हो गई है और इस प्रकार वृद्ध व्यक्ति को संयुक्त परिवार से जो सहारा मिलता था वह भी समाप्त हो गया है। औद्योगिक जीवन में आने से पहले श्रमिक के पास यदि गांव में कुछ जमीन होती भी है तो अधिक समय व्यतीत हो जाने के बाद वह उसे भी खो बैठता है। श्रमिक की मजदूरी कम होती है परिवार बड़ा होता है इसलिए वह वृद्धावस्था के लिये कोई बचत भी नहीं कर पाता है। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए श्रमिक को प्रोवीडेन्ट फण्ड की सुविधा और जहां सम्भव हो वहां पेन्शन भी दी जानी चाहिए, जिससे वृद्धावस्था में असमर्थ हो जाने पर और उत्पादन कार्य में बहुत दिनों तक कठोर श्रम करने के पश्चात् वह अपना शेष जीवन आराम से व्यतीत कर सके।

वृद्धावस्था क्या है —(What is Old Age ?)

वृद्धावस्था या तो उस अवस्था को कहा जा सकता है जब मजदूर कार्य करने योग्य नहीं रहता अथवा जब मजदूर को वेतन सहित अन्तिम अवकाश दे दिया जाता है। अर्थशास्त्री वृद्धावस्था उस अवस्था को कहते हैं जब मजदूर को रोजगार से अवकाश दे दिया जाना चाहिये क्योंकि वह और अधिक दिनों तक उत्पत्ति के कार्य में साधारण रूप से प्रभावोत्पादक (Effective) सहयोग नहीं दे सकता। शारीरिक तथा साथ ही डाक्टरी दृष्टिकोण के आधार पर वृद्धावस्था का निबलता अर्थात् आयु के बढ़ने के साथ-साथ स्वास्थ्य के बिगड़ने की दशा है। इसलिये वृद्धावस्था विभिन्न व्यवसायों में विभिन्न व्यक्तियों में अलग-अलग आयु पर आरम्भ हो सकती है।

साधारणतः अधिकतर देशों में पेन्शन देने की आयु ६५ वर्ष निश्चित की गई है। इस तथ्य को भी ध्यान में रखा गया है कि स्त्रियाँ कम आयु में ही काम के अयोग्य हो जाती हैं इसलिये उनके लिये पेन्शन देने की आयु ६ वर्ष निर्धारित की गई है।

निबलता क्या है ? —(What is Invalidity ?)

जब एक बीमा कराए हुये व्यक्ति को स्वास्थ्य बीमा योजना के अन्तर्गत वे सब नकद लाभ दिये जा चुकते हैं जिनको वह पाने का अधिकारी होता है और उसके पश्चात् भी यदि वह बीमार रहता है उस दशा में उसे निबल (Invalid) कहा जाता है। इसलिए निबलता की परिभाषा हम इस प्रकार कर सकते हैं कि "काम करने की स्थायी असमर्थता ही निबलता है।" अतः यह भी ऐसी ही अवस्था होती है जैसी वृद्धावस्था क्योंकि दोनों में श्रमिक कार्य करने योग्य नहीं रहता।

पेंशन की व्यवस्था :—

वृद्धावस्था और निबलता की दशा में लाभ या तो अंशदान वाले प्रॉवीडेन्ट फन्ड के रूप में दिया जा सकता है या अंशदानरहित पेन्शन अथवा पेन्शन अथवा पेन्शन बीमा के रूप में लाभ दिये जा सकते हैं। अंशदानरहित पेन्शन अनेक देशों में अपनाई गई है जैसे डेनमार्क आस्ट्रेलिया कनाडा दक्षिण अमरीका। भारत में सरकारी कर्मचारियों को पेन्शन दी जाती है। कुछ अन्य मालिक और एजेन्सियाँ भी अपने मजदूरों को निबलता पेन्शन देती हैं। परन्तु साधारणतः अनेक देशों में अंशदानरहित पेन्शन योजनाओं को सामाजिक-बीमे की योजनाओं के कार्यान्वित हो जाने के कारण अधिक महत्व नहीं दिया गया है और अंशदानरहित योजनाओं के स्थान पर अंशदान वाली योजनाओं को लागू किया गया है। पेन्शन-बीमा योजना के अन्तर्गत वृद्धावस्था और निबलता आती है। यह जर्मनी ब्रिटेन आदि अनेक देशों में लागू हो चुकी है। पेन्शन-बीमे के अन्तर्गत वृद्धावस्था और निबलता व अकाल मृत्यु भी सम्मिलित की जाती है जो ऐसी अवस्थायें हैं जिनके लिये अधिक क्षतिपूर्ति के अन्तर्गत भी सहायता नहीं मिलती। इन सभी संकटों के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि जो लाभ और सहायता दी जाये उनकी गणना वर्षों के हिसाब से की जाय। अतः इनके लिए एक लम्बी नौकरी की शर्त लागू की जाती है, जिसकी अवधि ९० वर्ष भी हो सकती है। इस प्रकार पेन्शन-बीमा सामाजिक-बीमा का वह अंग है जिसकी लागत सबसे अधिक होती है। सामाजिक-बीमा प्रणाली के विकास में यह काफी समय पश्चात् लागू होती है।

निबलता की दशा में यह निर्णय करना बहुत कठिन हो जाता है कि कोई व्यक्ति किसी प्रकार के काम के लिये योग्य या उपयुक्त है अथवा नहीं और कितनी असमर्थता होने पर पेन्शन दी जानी चाहिए। यह निर्णय भी कठिन होता है कि किन व्यवसायों अथवा व्यवसायों की श्रेणियों के आधार पर असमर्थता की माप की जाए।

अतः ऐसी व्यवहारिक कठिनाइयों के कारण इस समय भारत के औद्योगिक श्रमिकों के लिए कोई पेन्शन बीमा योजना बनाना संभव नहीं है और उस समय तक संभव भी नहीं होगा जब तक कोई ऐसी पूर्ण सामाजिक सुरक्षा योजना लागू नहीं हो जाती जिसके अन्तर्गत सारे संकटों से सुरक्षा की व्यवस्था हो परन्तु इसमें कोई संदेह नहीं कि हमारे देश में इस प्रकार की सहायता की बहुत अधिक आवश्यकता है।

वर्तमान समय में प्रॉवीडेन्ट फण्ड, पेन्शन और अवकाश प्राप्त धन की व्यवस्था —

हमारे देश में वृद्धावस्था के लिये किसी न किसी प्रकार की व्यवस्था की सदैव ही आवश्यकता रही है। इस समस्या की ओर रायल श्रम आयोग और अनेक श्रम जांच समितियों का ध्यान आकर्षित हुआ था। परन्तु उनमें से किसी ने भी वृद्धावस्था पेन्शन बीमे की सिफारिश नहीं की। १९३४ में भारत सरकार ने १९३३ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन के उस अभिसमय को मान्यता प्रदान करने में भी अपनी असमर्थता प्रकट की जो अभिसमय विधवा वृद्धावस्था असमर्थ और अनाथों के अनिवार्य बीमे से सम्बन्धित था। सरकार के इस निर्णय का मुख्य आधार प्रशासन तथा वित्त की कठिनाइयां थीं क्योंकि भारत जैसे देश में यदि इस प्रकार के अभिसमय को लागू कर दिया जाय तो लाभ प्राप्त करने वालों की संख्या लगभग ४ करोड़ होगी जिनमें वृद्ध असमर्थ विधवाएं और अनाथ बच्चे आदि सब ही सम्मिलित होंगे।

इस समय औद्योगिक श्रमिकों के लिये सरकारी कारखानों और रेलवे में वृद्धावस्था पेन्शन या प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजनायें लागू हैं। भारत में अनेक मालिकों ने भी अपने श्रमिकों की वृद्धावस्था के लिये प्रॉवीडेन्ट फण्ड और अवकाश प्राप्ति के समय कुछ लाभों को प्रदान करने की व्यवस्था की है। इस प्रकार के प्रॉविडेन्ट फण्ड स्थापित करने के लिये और उनको अच्छी तरह चलाते रहने के लिये करों में छूट आदि देकर उत्साहित किया जाता है परन्तु फण्ड के लिये अनेक निर्धारित शर्तों को पूरा करना आवश्यक होता है। १९२५ के प्रॉवीडेन्ट फण्ड अधिनियम जिसमें संशोधन भी हो चुका है रेलवे और राजकीय प्रॉवीडेन्ट फण्डों म लागू होता है और १९२२ का भारतीय आय कर अधिनियम (Indian Income Tax Act) जिसमें भी संशोधन हो चुका है उन कम्पनी निधियों पर लागू होता है जिनको आय कर से विशेष छूट मिली हुई है। उनके प्रॉवीडेन्ट फण्ड में दिये गये अंशदानों पर आय कर नहीं लिया जाता।

नागपुर की एम्प्रेस मिलों में अंशदान वाली प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना लागू है और इसके साथ ही एक पेन्शन योजना भी है जिसके अन्तर्गत वृद्ध मजदूरों को पेन्शनें दी जाती हैं। "दिल्ली क्लोथ एण्ड जनरल मिल्स' में भी श्रमिकों के लिये वृद्धावस्था पेन्शन अवकाश धन तथा प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजनाएं लागू हैं। मद्रास की

बकिंघम एण्ड कर्नाटिक मिल्स में भी श्रमिक एक साल से अधिक समय तक काम करने पर प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजना का सदस्य बन सकता है। इस फण्ड में मजदूर और मालिक महंगाई भत्ते को छोड़कर मजदूर के वेतन का ६¼% अंशदान के रूप में देते हैं। मदुरा की मदुरा मिल्स कम्पनी भी अपने उन मजदूरों को जिन्होंने १० वर्ष से अधिक कार्य किया है, पेन्शनें देती है। इस पेन्शन की राशि मजदूर के मासिक वेतन से आधी होती है और इसके साथ सामान्य रूप से १० रुपये महंगाई भत्ता भी दिया जाता है। ये मिल अवकाश प्राप्ति का धन भी देती हैं। इंजीनियरिंग उद्योग में विशेषकर उन फर्मों में जो भारतीय इंजीनियरिंग परिषद की सदस्य हैं और जहाँ १०० या इससे अधिक मजदूर काम करते हैं अनिवार्य अंशदान वाली प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजना को अपनाया गया है। जिन फर्मों में १०० से कम मजदूर काम करते हैं उन्होंने अवकाश प्राप्त धन की योजना को अपने यहाँ लागू किया है। पश्चिमी बंगाल की इंजीनियरिंग फर्मों में तो इसे एक विवाचन निर्णय द्वारा अनिवार्य भी बना दिया गया है। बिहार की टाटा की लोहा और इस्पात कम्पनी ने भी अपने मजदूरों के लिये प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजनाओं की व्यवस्था की है। प्रॉवीडेण्ट फण्ड और अवकाश प्राप्त धन की योजनाएं अनेक कागज मिलों म और समस्त सीमेंट मिलों में भी चल रही हैं।

इसके अतिरिक्त भारतीय रेलवे ने भी स्थायी और पेन्शन न पाने वाले मजदूरों के लिये प्रॉवीडेण्ट फण्ड और अवकाश प्राप्त धन की व्यवस्था की गई है। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण विभाग के स्थायी कर्मचारियों को पेन्शन पाने का अधिकार है। शेष कर्मचारियों में से जिन्होंने निरन्तर तीन वर्ष तक कार्य किया है उन्हें अंशदान सहित प्रॉवीडेण्ट फण्ड की सुविधा दी गई है। प्रत्येक कर्मचारी के लिये जिसका वेतन २० रु० मासिक या इससे अधिक है इस फण्ड का सदस्य होना अनिवार्य है और जिनका वेतन १० रु से २० रु० प्रति माह तक है उनके लिये सदस्य बनना उनकी इच्छा पर निर्भर है। प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजनायें लगभग सारी नगर पालिकाओं में भी लागू हैं। इनमें अधिकांश में केवल स्थायी कर्मचारी ही प्रॉवीडेण्ट फण्ड में अपना अंशदान दे सकते हैं। कुछ नगरपालिकाओं में कहीं कहीं आय की शर्त भी रक्खी गई है जो साधारणतया २० रु० प्रति माह है। कानपुर, अजमेर, नागपुर, मद्रास कलकत्ता लखनऊ और अहमदाबाद की नगरपालिकाएं या निगम साधारणतः उन लोगों को अवकाश प्राप्ति का धन देती हैं जो प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजना के सदस्य नहीं बन सकते।

जुलाई १९५९ में भिलाई के हिन्दुस्तान इस्पात कम्पनी के श्रमिकों के लिये भी एक अंशदान सहित प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजना १ अप्रैल १९५८ से लागू कर दी गई है। कम्पनी का अंशदान ८⅓% होगा और श्रमिक अपनी आय का ⅓ भाग तक अंशदान दे सकता है। डी० डी० टी० कारखानों में अंशदान की दर ८⅓% कर दी गई है। तेल और प्राकृतिक गैस कमीशन ने भी अपने कर्मचारियों के लिये एक

प्रोवीडेन्ट फण्ड योजना बनाई है।

इस प्रकार कुछ मालिकों ने काफी अच्छी योजनाएं आरम्भ की हैं परन्तु ऐसे मालिकों की संख्या बहुत ही कम है। साधारणतः प्रोवीडेन्ट फण्ड योजना ही अधिक प्रचलित है और अवकाश प्राप्ति धन केवल कुछ ही स्थानों पर दिया जाता है। पेन्शन तो बहुत कम स्थानों पर दी जाती है। इस प्रकार के लाभ प्राप्त करने की योग्यताएं भी विभिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु ये सब व्यवस्थाएं मालिकों की इच्छा पर ही निर्भर करती हैं।

१९५२ का कर्मचारी प्रोवीडेन्ट फण्ड अधिनियम —[The Employee's Provident Fund Act 1952]

उपरोक्त व्यवस्था के होते हुए भी भारत में सदैव ही औद्योगिक मजदूरों के लिये अनिवार्य प्रोवीडेन्ट फण्ड योजनाओं की आवश्यकता रही है। दीवान चमनलाल और श्री एन० एम० जोशी ने रायल श्रम आयोग की रिपोर्ट में असहमति का नोट देते हुये बताया कि औद्योगीकरण के साथ-साथ संयुक्त परिवार प्रथा टूटती जा रही थी और अवकाश प्राप्त वृद्ध मजदूरों को भुखमरी और मृत्यु से बचाने के लिए प्रोवीडेन्ट फण्ड जैसी कुछ व्यवस्था करना बहुत आवश्यक था। १९३४ और १९३८ में कानपुर और बम्बई की श्रम जांच समितियों ने भी इस विचार का समर्थन किया। १९४२ के श्रम मन्त्री सम्मेलन में इस विषय पर पुनः विचार-विमर्श किया गया। १९४७ में इस प्रश्न पर फिर से विचार किया गया और इसके पश्चात् तो भारतीय श्रम सम्मेलनों व स्थायी श्रम समिति और कुछ औद्योगिक समितियों ने भी अनेक बार वैधानिक रूप से एक प्रोवीडेन्ट फण्ड योजना लागू करने के लिए जोर दिया। १९४८ में एक गैर सरकारी सदस्य ने तो संविधान सभा (Constituent Assembly) में इस विषय पर एक विधेयक भी प्रस्तुत किया परन्तु वह सरकार के यह आश्वासन देने के कारण वापिस ले लिया गया कि सरकार स्वयं ही इस प्रकार के कदम भविष्य में उठाने वाली है। इन सब बातों के परिणामस्वरूप केन्द्रीय सरकार ने १५ नवम्बर १९५१ को इस विषय पर एक अध्यादेश जारी किया। इसको मार्च १९५२ में एक कर्मचारी प्रोवीडेन्ट फण्ड अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। अधिनियम के अन्तर्गत प्रोवीडेन्ट फण्ड योजना की रचना की गई और १ नवम्बर १९५२ से अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कारखानों में प्रोवीडेन्ट फण्ड के लिए धन एकत्रित करना आरम्भ कर दिया गया।

सर्वप्रथम यह अधिनियम ६ बड़े उद्योगों अर्थात् सीमेंट, सिगरेट, इंजीनियरिंग के उत्पादन (बिजली सम्बन्धी यंत्र या सामान) लोहा और इस्पात, कागज और सूती कपड़ा (सम्पूर्ण सूती या जूट व सिल्क से मिला कर बना हो चाहे यह प्राकृतिक हो या कृत्रिम) के ऐसे कारखानों पर लागू किया गया जहां ५० या इससे अधिक कर्मचारी कार्य करते हों। केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार दे दिया गया है कि सूचना द्वारा इस अधिनियम को वह दूसरे उद्योगों पर भी लागू कर सकती है और

उपरोक्त ५ बड़े उद्योगों के उन कारखानों पर भी लागू कर सकती है जहां काम करने वाले श्रमिकों की संख्या ५० से कम है। अधिनियम को किसी भी उस कारखाने पर लागू किया जा सकता है जहां मालिक और अधिकांश श्रमिक इस अधिनियम को अपनाना चाहते हों। नई व्यावसायिक संस्थाओं को कुछ रियायतें दे दी गई हैं अर्थात् ३ वर्ष तक यह अधिनियम उन पर लागू नहीं होगा। जिन संस्थाओं को बने हुये तीन वर्ष से भी कम समय हुआ है उनको भी निर्धारित अवधि के पूरा होने तक छूट दे दी गई है। केन्द्रीय तथा राज्य सरकार के अथवा स्थानीय अधिकारियों के संस्थानों पर भी यह योजना लागू नहीं होती थी परन्तु मई १९५८ के एक संशोधन द्वारा इस उपबन्ध को समाप्त कर दिया गया और अब यह अधिनियम इन संस्थाओं पर भी लागू होता है। जम्मू और काश्मीर राज्य के अतिरिक्त यह अधिनियम सम्पूर्ण भारत में लागू है। दिसम्बर १९५६ के एक संशोधन के अनुसार अब सरकार इस अधिनियम को कारखानों के अतिरिक्त अन्य संस्थानों पर भी लागू कर सकती है। इस अधिनियम को समाचार पत्र संस्थाओं में जहां २० या उससे अधिक कर्मचारी कार्य करते हों ३१ दिसम्बर १९५६ से लागू किया जा चुका है।

कर्मचारी प्रोवीडेन्ट फण्ड अधिनियम में १९६ म एक महत्वपूर्ण संशोधन हुआ और संशोधित अधिनियम ३१ दिसम्बर १९६ से लागू कर दिया गया है। इस संशोधन से अब अधिनियम का क्षेत्र विस्तृत कर दिया गया है और अब यह उन सब संस्थानों पर लागू होता है जहां २० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। इस बात की व्यवस्था कर दी गई है कि यदि किसी संस्थान में श्रमिकों की संख्या कम हो गई है तो इस कारण प्रोवीडेन्ट फण्ड अधिनियम का लागू होना बन्द नहीं किया जा सकता। अधिनियम तब ही लागू नहीं होगा जब संख्या इतनी गिर जाये कि १५ से कम श्रमिक रह जायें और यह कम संख्या निरन्तर एक वर्ष तक रहे। ऐसी संस्थाओं को जो सहकारी समिति अधिनियम के अन्तर्गत पंजीकृत (Registered) हैं और जिनमें ५० से कम श्रमिक कार्य करते हैं और जिनमें शक्ति का प्रयोग नहीं होता इस अधिनियम से छूट दे दी गई है। ऐसे लघु उद्योगों को भी जिनमें केवल २० से ५० तक श्रमिक कार्य करते हैं प्रथम ५ वर्षों के लिये इस अधिनियम से छूट दे दी गई है।

अधिनियम के अन्तर्गत प्रोवीडेन्ट फण्ड योजना की मुख्य विशेषता यह है कि यह मजदूर और मालिक दोनों के लिये अनिवार्य है और दोनों ही पक्षों को इसमें अंशदान देना होता है। श्रमिक और मालिक में से प्रत्येक को मजदूर को मिलने वाले कुल धन का ६¼ प्रतिशत अनुदान (एक रुपये में एक आना) देना होगा। मजदूर को मिलने वाले धन का अर्थ मजदूर की मूल मजदूरी और महंगाई भत्ते से है। अधिनियम के अन्तर्गत इस योजना में यदि कोई ऐसी व्यवस्था की गई हो तो मजदूर अधिक से अधिक ८⅓ प्रतिशत की राशि तक अंशदान दे सकता है। पहले तो मालिक अपना और अपने मजदूरों दोनों का अंशदान देगा और तत्पश्चात् मजदूरों

में से श्रमिकों के अंशदान की राशि काट लेगा। फरवरी १९५६ में इस योजना में फिर संशोधन हुआ जिसके अनुसार कर्मचारी अब ८⅓ प्रतिशत अंशदान दे सकते हैं। यह भी निश्चय कर लिया गया है कि अधिनियम में संशोधन करके यह व्यवस्था कर दी जाये कि श्रमिक की कुल आमदनी में से ही प्रॉवीडेन्ट फण्ड के लिये कटौती की जाय। इसका तात्पर्य यह हुआ कि मूल मजदूरी और महँगाई भत्ते के अतिरिक्त अब कुल आय में हर प्रकार का भत्ता और बोनस राशि भी सम्मिलित कर ली जायगी।

प्रॉवीडेन्ट फण्ड में जो सदस्यों की राशि होती है उसको सदस्यों के ऋण या किसी दायित्व के कारण कुड़की से बचाने के लिये भी अधिनियम में कुछ उपबन्ध हैं। इस बात की भी व्यवस्था है कि मालिक अपना अंशदान देने के कारण श्रमिकों की मजदूरी में से कटौती न कर लें। जीवन-बीमा पॉलिसी के भुगतान के लिये फण्ड में से धन निकाला जा सकता है। १९५९ में एक संशोधन के अनुसार श्रमिक अब अपनी या अपने परिवार के किसी सदस्य की लम्बी और गम्भीर बीमारी के लिये भी फण्ड में से रुपया निकाल सकता है। अप्रैल १९६० में सरकार की आवास योजनाओं के अन्तर्गत मकान बनाने या खरीदने के लिये भी श्रमिक फण्ड से रुपया निकाल सकता है और यह रुपया उसे फण्ड को वापिस भी नहीं देना पड़ता है (Non-refundable)। जिन स्थानों पर प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजनाएँ पहले ही से अच्छा कार्य कर रही हैं और वर्तमान योजना के समान ही या अधिक लाभदायक शर्तें प्रदान कर रही हैं वह उसी प्रकार चालू रहेंगी और वहाँ यह अधिनियम लागू नहीं होगा परन्तु मजदूरों के हितार्थ ऐसे स्थानों पर कुछ शर्तें लागू कर दी गई हैं। इस प्रकार से जिन संस्थानों को छूट दी गई है उनकी संख्या अक्तूबर १९६० में ८७६ थी। श्रमिकों के किसी भी वर्ग को इस बात की भी सुविधा दी गई है कि अगर उस वर्ग के अधिकांश व्यक्ति चाहें तो इस अधिनियम से छूट (Exemption) ले सकते हैं, यदि उनको संयुक्त या पृथक् पृथक् रूप से ऐसे लाभ मिल रहे हों जो अधिनियम के अन्तर्गत लाभों के बराबर हैं या इससे अधिक हैं। कोई भी व्यक्ति किसी भी फैक्टरी के द्वारा चालू प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना का सदस्य बना रह सकता है यदि ऐसे फण्ड को भारतीय आय-कर अधिनियम द्वारा मान्यता प्राप्त है और वह कुछ आवश्यक शर्तों को भी पूरा करता है।

इस योजना के अन्तर्गत वे सभी कर्मचारी आ जाते थे (उन उद्योगों में जहाँ यह अधिनियम लागू होता है) जिन्होंने निरन्तर एक वर्ष कार्य किया हो और जिनकी मूल मजदूरी ३०० रुपये प्रतिमाह से अधिक न हो और जो ठेकेदारों द्वारा कार्य पर न लगाये गये हों अथवा काम सीखने के लिये भर्ती न किये गये हों। ३१ मई १९५७ से पात्रता के लिये ३०० रुपये तक की सीमा बढ़ाकर ५०० रुपये प्रतिमाह कर दी गई है। १९५८ में एक दूसरे संशोधन के अनुसार जो मजदूर ठेकेदारों द्वारा किसी निर्माण कार्य के लिये कारखाने में भर्ती कराये जाते हैं वे तथा विद्यार्थी भी

अब हम योजना के अन्तर्गत आ जाते हैं। इस योजना के क्षेत्र को और विस्तृत करके उन कर्मचारियों पर भी लागू कर दिया गया है जो उस संस्थान में जहाँ यह अधिनियम लागू होता है कार्य के लिये नौकर तो हैं परन्तु संस्थान से बाहर रहकर कार्य करते हैं। इसी प्रकार उन कर्मचारियों पर भी अधिनियम लागू हो सकता है जिनका मासिक वेतन ५०० रु० प्रति माह से अधिक है परन्तु जो अपने मालिकों की अनुमति से प्रॉवीडेन्ट फण्ड के सदस्य होना चाहते हैं। संशोधन में 'निरन्तर कार्य' की भी स्पष्ट रूप से परिभाषा कर दी गई है। कोई भी मजदूर जिसने पिछले एक वर्ष में २४० दिन काम किया है प्रॉवीडेन्ट फण्ड का सदस्य हो सकता है। मशीन टूटने या कच्चे माल की कमी के कारण जब श्रमिक जबरी छुट्टी पर होता है और जब महिला श्रमिक मातृत्व हित छुट्टी पर होती है तब यह छुट्टी के दिन कार्य पर उपस्थिति दिन माने जायेंगे। कानूनी हड़ताल अधिकृत छुट्टियाँ बीमारी दुर्घटना आदि के अवसरों को भी नौकरी में विघ्न पड़ना नहीं समझा जायगा। कुछ और छूट देकर अब यह व्यवस्था कर दी है कि जिन श्रमिकों की नौकरी १ वर्ष से कम की अवधि में २४० दिन है वह भी फण्ड के सदस्य हो सकते हैं।

प्रॉवीडेन्ट फण्ड के लिये जो अंशदान दिये जाते हैं वे एक खाते में जमा किये जाते हैं जिसे 'प्रॉवीडेन्ट फण्ड खाता' कहा जाता है। ये प्रति सप्ताह केन्द्रीय सरकार की प्रतिभूतियों (Securities) में रिजर्व बैंक द्वारा विनियोग (Invest) कर दिये जाते हैं। इन पर इस समय ४½ प्रतिशत ब्याज दिया जा रहा है। मालिकों को प्रशासन व्यय के लिये अंशदानों का ३ प्रतिशत और देना होता है। जिन संस्थानों को छूट दी गई है उनको भी प्रशासन व्यय का ½ प्रतिशत देना होता है। १९५७ तक मालिकों के अंशदान का पूर्ण भुगतान २० वर्ष की सदस्यता के बाद हो सकता था और ५ वर्ष से कम समय तक काम करने पर मालिकों के हिस्से का भाग नहीं दिया जाता था परन्तु पेन्शन के योग्य वृद्धावस्था हो जाने पर ये नियम लागू नहीं होते थे। १९५७ में इस योजना में संशोधन किया गया जिसके अनुसार सदस्यता समाप्ति पर मालिकों के अंशदान की राशि मिलने की शर्तों को उदार कर दिया गया है। अब कोई भी अंशदान देने वाला व्यक्ति १५ वर्ष तक सदस्य रहने पर मालिकों का कुल अंशदान और उसका ब्याज पा सकेगा। यदि वह १० वर्ष से १५ वर्ष तक सदस्य रहा है तो उसे मालिकों के अंशदान का ८५ प्रतिशत भाग मिल जायेगा ५ साल से १० साल तक सदस्य रहने पर ७५ प्रतिशत ३ वर्ष से ५ वर्ष तक सदस्य रहने पर ५० प्रतिशत और ३ वर्ष से कम समय तक सदस्य रहने पर २५ प्रतिशत भाग मिलेगा। स्वयं मजदूर का अंशदान हर हालत में ब्याज सहित वापिस किया जायगा। मृत्यु होने पर (श्रमिक के कानूनी उत्तराधिकारी को या जिसे वह नामित करे) तथा श्रमिक की स्थायी असमर्थता होने पर या पूरी आयु प्राप्त होने पर या छटनी पर या किसी अन्य संस्था में तबादला होने पर या स्थायी रूप से बसने के

लिये किसी अन्य देश में चले जाने पर या ऐसे श्रमिकों को जो क्षय रोग या कोढ़ से पीड़ित हैं पूरी राशि दी जायेगी।

प्रॉवीडेन्ट फण्ड के कार्यों अधिकारी कमिश्नर होते हैं जिनमें से एक कमिश्नर केन्द्र में तथा एक एक प्रत्येक राज्य में होता है। इस समय क्षेत्रीय कमिश्नरों की नियुक्ति की गई है और उनको प्रॉवीडेन्ट फण्ड की सदस्यता से सम्बन्धित विवादों को तय करने का अधिकार दिया गया है। अंशदान न देने वालों को दण्ड देने के लिये निरीक्षकों की नियुक्ति की गई है। मालिकों को प्रत्येक मजदूर के लिये एक अंशदान कार्ड रखना होता है जिसमें प्रत्येक मजदूर का मासिक अंशदान अंकित किया जाता है। इस कार्ड का निरीक्षण कभी भी किया जा सकता है। इस समय यह योजना एक केन्द्रीय न्यासी बोर्ड (Board of Trustees) की सहायता से केन्द्रीय सरकार के निरीक्षण में चल रही है परन्तु इसके विकेन्द्रीयकरण कर देने के प्रस्ताव पर विचार किया जा रहा है और यह आशा की जाती है कि कुछ ही समय के पश्चात् इसका प्रशासन राज्य-सरकारों द्वारा होने लगेगा। योजना की कार्यान्विति के उद्देश्य से सारे देश को २० क्षेत्रों में विभाजित किया गया है जिनमें क्षेत्रीय कार्यालय हैं। क्षेत्रीय समितियाँ भी बम्बई, बिहार, मद्रास मध्य प्रदेश पश्चिमी बंगाल और उत्तर प्रदेश में बनाई गई हैं। अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था है कि अंशदान के बकाया (Arrears) की वसूली (Recovery) उसी प्रकार की जा सकती है जिस प्रकार मालगुजारी की वसूली की जाती है और बाकी-दार मालिकों से हर्जाना भी वसूल किया जा सकता है। १९६० से २० लाख रु० की राशि से एक विशेष आरक्षित निधि (Special Reserve Fund) की स्थापना की गई है। इसका उद्देश्य समय पूरा होने पर प्रॉवीडेन्ट फण्ड के सदस्यों या उनके वारिसों या नामित व्यक्तियों को उस दशा में भुगतान देना होता है जब प्रॉवीडेन्ट फण्ड का अंशदान श्रमिकों के वेतन से काट तो लिया जाता है परन्तु मालिकों द्वारा कुल राशि को अपने अंशदान सहित पूर्णरूप से जमा नहीं किया जाता या केवल आंशिक रूप से जमा किया जाता है। इस निधि में से इस समय भुगतान केवल उस दशा में दिया जा रहा है जब श्रमिक की मृत्यु हो जाती है या पूर्ण स्थायी असमर्थता होती है या जब वह अपनी नौकरी की अवधि पूरी कर लेता है।

प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना का विस्तार —

३१ जुलाई १९५६ से यह अधिनियम १३ और उद्योगों पर लागू कर दिया गया और ३० सितम्बर १९५६ को चार और दूसरे उद्योग भी इसके अन्तर्गत आ गये। इसमें निम्नलिखित उद्योग आ जाते हैं— (१) दियासलाई, (२) चीनी (३) चाय (४) छापाखाना (५) काँच (६) खान वाले तेल और चर्बी (७) रबर और रबर की चीजें (८) विद्युत जिसमें बिजली उत्पादन प्रसारण और वितरण आ जाता है, (९) विद्युत मोटोमीन के ऊँचे और नीचे दबाव वाले इन्सुलेटर,

(१०) पत्थर के नल (११) सफाई और स्वच्छता का सामान, (१२) फिल्म सम्बन्धी यन्त्र (१३) सीमेंट की पट्टियाँ (१४) मील (१५) लाख जिसमें चपड़ा भी सम्मिलित है (१६) भारी और शुद्ध रसायन जिसमें आक्सीजन, एसेटेलीन और कार्बन डाइ आक्साइड गैसें भी सम्मिलित हैं परन्तु इन पर अधिनियम जुलाई १९५७ से लागू किया गया था (१७) न खाने वाले वनस्पति तेल पशुओं के तेल और चर्बी। १९५७ में अधिनियम को निम्न तीन कारखाना उद्योगों पर लागू कर दिया गया—(१) खनिज तेल को शुद्ध करना (२) औद्योगिक और चालक मद्यसार, (३) सीमेंट की अदाह्य चादरें। इस प्रकार यह अधिनियम २६ कारखाना उद्योगों पर लागू हो रहा था जिनमें पहले ९ उद्योग भी सम्मिलित थे। ३१ दिसम्बर १९५६ से इस अधिनियम को समाचार पत्र संस्थानों पर भी लागू कर दिया गया। १ अप्रैल १९५७ से (१) चाय (असम को छोड़कर जहाँ राज्य सरकार का इसी प्रकार का अधिनियम पहले से ही लागू है) (२) कॉफी (३) रबर, (४) इलायची तथा (५) काली मिर्च के बागान में भी जहाँ २० या इससे अधिक कर्मचारी कार्य करते हों यह अधिनियम लागू कर दिया गया है। इसके पश्चात् १० नवम्बर १९५७ से अधिनियम चार प्रकार की खानों अर्थात् (१) सोना (२) लोहा (३) चूने का पत्थर, तथा (४) मैंगनीज पर लागू हुआ और इसी दिन से कॉफी साफ करने वाले संस्थानों में भी लागू कर दिया गया। १ अप्रैल १९५८ से इस अधिनियम को बिस्कुट उद्योग पर और १ अप्रैल १९५९ से मोटर कारखानों पर भी लागू कर दिया गया है।

इस प्रकार १९५९ में यह अधिनियम ३९ उद्योगों पर लागू हो रहा था। १९६० में इस अधिनियम के अन्तर्गत ८ और उद्योग आ गए अर्थात् (१) अभ्रक के कारखाने (२) अभ्रक की खानें (३) चीड़ की लकड़ी के कारखाने (४) मोटरों आदि की मरम्मत और सफाई आदि के कारखाने (५) चीनी कारखानों द्वारा चालू गन्ने के फार्म (६) चावल की मिलें (७) आटे की मिलें (८) दाल की मिलें।

इस प्रकार १९६० के अन्त तक यह अधिनियम ४७ उद्योगों पर लागू हो रहा था। उस समय तक इसके अन्तर्गत आने वाली संस्थाओं की संख्या ८१११ थी। अंशदान देने वालों की संख्या २८·१९ लाख थी। अंशदानों की कुल राशि १११·४२ करोड़ रु० थी। १९६१ में यह अधिनियम निम्नलिखित उद्योगों तक विस्तृत कर दिया गया ३१ मई, १९६१ से नशास्ता उद्योग (Starch Industry) पर, १ जून १९६१ से होटल और जलपान गृहों पर तथा पेट्रोल और प्राकृतिक गैस उद्योग पर, जिनमें इनका इकट्ठा करना या ले जाना अथवा वितरण करने या उनके उत्पादन खोज आदि से सम्बन्धित एवं उनकी शुद्धि से सम्बन्धित सभी कार्य सम्मिलित कर लिए गए हैं ३१ जुलाई १९६१ से सिनेमा उद्योग पर जिसमें फिल्म स्टूडियो सिनेमाघर, थियेटर, फिल्म उत्पादन वितरण तथा फिल्मों के धोने आदि से संबंधित कार्य और प्रयोगशालाएँ सम्मिलित कर ली गई हैं तथा ३१ अगस्त १९६१ से चमड़े और चमड़े से बने हुए सामान उद्योग पर।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में कर्मचारी प्रोवीडेन्ट फण्ड अधिनियम को उन सब उद्योगों पर लागू करने का सुझाव दिया गया था जिनमें देशभर में कम से कम १० हजार मजदूर कार्य करते थे। परन्तु जिन उद्योगों पर यह अधिनियम लागू नहीं किया जा सका उन पर तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में यह अधिनियम लागू कर दिया जायगा। प्रोवीडेन्ट फण्ड में अंशदान की दर को ६¼ प्रतिशत से ८⅓ प्रतिशत तक बढ़ा देने की समस्या पर भी विचार किया जा रहा है। इस बात में सन्देह प्रकट किया गया है कि यदि दर बढ़ा दी जायगी तो वे उद्योग जो इस अधिनियम के अन्तगत आते हैं इस अधिक भार को वहन कर पायेंगे या नहीं। इस बात की जांच करने के लिए मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों और विशेषज्ञों (Experts) की एक तकनीकी समिति बनाई गई है जिसके अध्यक्ष श्री एम० आर० महर हैं। यह समिति उन ६ उद्योगों में सर्वप्रथम जांच कर रही है जो आरम्भ म इस अधिनियम के अन्तर्गत आते थे। यह जांच अभी तक समाप्त नहीं हो पाई है यद्यपि समिति की स्थापना किए हुए एक वष से भी अधिक हो गया है।

प्रोवीडेन्ट फण्ड योजना का आलोचनात्मक मूल्यांकन —

बहुत से मालिकों ने इस योजना की आलोचना की है। उनका कहना है कि इससे उद्योग पर बहुत भार पड़ेगा जिससे वस्तु उत्पत्ति की लागत बढ़ जायगी लाभ कमाने की प्रेरणा कम हो जायगी कीमतें बढ़ जायेंगी जिनका भार उपभोक्ताओं पर आ पड़ेगा और इस योजना से श्रम की गतिशीलता बहुत कम हो जायगी क्योंकि मजदूर को ऐसे लाभ प्राप्त करने का पात्र होने के लिये कम से कम १० वर्ष तक एक ही उद्योग में कार्य करना पड़ेगा। परन्तु ये आपत्तियां कुछ उचित नहीं प्रतीत होतीं। मालिकों के अंशदान इतन अधिक नहीं हैं जिनसे उन पर बहुत बड़ा भार आ पड़े और उनकी लाभ प्रेरणा कम हो जायें। मूल्यों का बढ़ना भी वस्तुओं की मांग की लचक पर निर्भर करता है। यदि मजदूर एक ही उद्योग में अधिक समय तक रुकता है तब तो यह और भी लाभप्रद होगी क्योंकि इसमें श्रमिकावर्त कम हो जायेगा। इस योजना से तो मजदूर वर्ग में सन्तोष भी पैदा होगा जिससे औद्योगिक शान्ति होगी और औद्योगिक क्षेत्रों में स्थायी श्रमिक वर्ग संगठित हो सकेगा। वृद्ध मजदूर, दीर्घ समय तक उत्पादन कार्य करने के पश्चात् घोर निराश्रित असमानवीय तथा दुःख के जीवन से बच जायेंगे और उनको ऐसी कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ेगा जैसा कि आज हजारों असमर्थ और वृद्ध श्रमिकों को करना पड़ रहा है। परन्तु कुछ मालिकों ने इस अधिनियम के कुछ उपबन्धों का अनुचित लाभ उठा कर छूट ले ली है। कई ऐसे मामले भी आए हैं जिनमें मालिकों ने श्रमिकों से तो रु० वसूल कर लिया है परन्तु फंड म जमा नहीं किया है। अवकाश प्राप्ति पर श्रमिकों को फंड का रु० मिलने में भी बहुत विलम्ब किया जाता है। इन सब बातों को दूर करना चाहिए और मालिकों को अपनी भलाई के लिये भी इस योजना के लागू होने मे पूरा सहयोग देना चाहिये।

कोयला खानों में प्रॉवीडेन्ट फण्ड और बोनस की योजनाएं —

भारत सरकार ने १९४८ के 'कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड और बोनस योजनायें अधिनियम' के अन्तर्गत एक कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना तैयार की है। १९५० में अधिनियम में संशोधन किया गया और जम्मू व काश्मीर राज्य को छोड़ कर इसे सारे भारत में लागू कर दिया गया। १९५१ के एक और संशोधन द्वारा अंशदान से सम्बन्धित उपबन्धों को और स्पष्ट कर दिया गया। इस अधिनियम में केन्द्रीय सरकार को कोयला खान कर्मचारियों के लिये एक प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना और एक बोनस योजना बनाने के अधिकार दिये गये हैं। जिन खानों पर यह योजना लागू होती है उनको राजकीय गजट में प्रकाशित किया जाता है।

अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना में सम्मिलित होने वाले सदस्यों का विस्तृत ब्यौरा अंशदानों का भुगतान ब्याज की दर, लेखा-जोखा राशि का निवेश न्यासीयों के त्रिदलीय बोर्ड का विधान आदि बातों का उल्लेख करना होता है। इसी प्रकार कोयला खान बोनस योजना के अन्तर्गत किसी कोयला खान में किसी मजदूर की उपस्थिति पर बोनस का भुगतान लाभ प्राप्त करने के पात्र व्यक्ति बोनस की दर, उसके भुगतान का समय और तरीका आदि बातों का ब्यौरा देना होता है। अधिनियम में इस बात का उल्लेख किया गया है कि यदि किसी मजदूर पर कोई ऋण या देनदारी है तो उसको श्रमिक के प्रॉवीडेन्ट फण्ड से नहीं काटा जा सकता। सदस्य (श्रमिक) की मृत्यु होने पर प्रॉवीडेन्ट फण्ड का भुगतान उसके नामित व्यक्ति को कर दिया जायगा। मृत मजदूर पर मृत्यु से पहले का कर्जा या देनदारी यदि हो भी तब भी उस फण्ड में से चुकाने का दावा नहीं किया जा सकता। इस योजना के प्रशासन के लिए सरकार को निरीक्षकों की नियुक्ति करनी होती है। किसी भी व्यक्ति द्वारा योजना के उपबन्धों का उल्लंघन करने पर दण्ड देने की भी व्यवस्था की गई है।

सरकार ने अपने इन अधिकारों का प्रयोग करके जुलाई १९४८ में कोयला खान बोनस योजना बनाई। इसे एक पूर्व तिथि अर्थात् २१ मई १९४७ से पश्चिमी बंगाल और बिहार की समस्त कोयला खानों पर लागू कर दिया। इसके पश्चात् यह योजना दूसरे राज्यों की कोयला खानों पर भी लागू कर दी गई। इस समय यह पश्चिमी बंगाल बिहार, मध्यप्रदेश उड़ीसा और बम्बई की कोयला खानों में लागू है। इसी प्रकार की तीन और योजनायें आन्ध्र राजस्थान और असम की कोयला खानों में लागू कर दी गई हैं। इन योजनाओं के अन्तर्गत लगभग १,२०७ कोयला खानें आती हैं जिनमें लगभग १,८८,७०० मजदूर कार्य करते हैं। ये योजनाएँ ३०० रुपये प्रति माह तक पाने वाले व्यक्तियों पर लागू होती हैं। इनमें पात्रता की कुछ शर्तों तथा बोनस की दर का भी उल्लेख है। वर्तमान समय में योजना के अन्तर्गत आने वाले मजदूरों को हर तीन महीने पश्चात् अपनी मूल मजदूरी का ⅓ भाग बोनस के रूप में लेने का अधिकार है बशर्ते वह उपस्थिति से सम्बन्धित कुछ

पत्रों को भी पूरा करते हों। मालिकों को बोनस पत्र की तारीख के पश्चात् एक माह में ब्यौरा प्रस्तुत करना होता है और यदि वे किसी हड़ताल को अवैध समझते हैं तो इसके निर्णय के लिये उनको ३० दिन के अन्दर ही श्रम-कमिश्नर को प्रार्थना-पत्र भेज देना होता है और श्रम-कमिश्नर को १९५८ के एक संशोधन के अनुसार हड़ताल की अवैधता पर २१ दिन के अन्दर ही निर्णय देना होता है।

दिसम्बर १९४८ में केन्द्रीय सरकार ने एक कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना बनाई और १२ मई १९४७ से उसे पश्चिमी बंगाल व बिहार की कोयला खानों में और १० अक्टूबर १९४७ से मध्य प्रदेश और उड़ीसा की खानों में लागू कर दिया गया। इसी प्रकार की योजनाएँ असम, बम्बई, आंध्र और राजस्थान की कोयला खानों में भी लागू कर दी गई हैं।

जिन कोयला खानों में यह योजना लागू है वहाँ प्रत्येक कर्मचारी को उस तिमाही के बाद तत्काल ही सदस्य बनना पड़ता है जो तिमाही कोयला खान बोनस योजना के अन्तर्गत बोनस पाने योग्य प्राप्त होने की तिमाही के बाद आती है। किसी भी तिमाही में कोयला खान खानों के भीतर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए (पश्चिमी बंगाल और बिहार को छोड़कर अन्य राज्यों में) ६० दिन की उपस्थिति तथा खानों के बाहर कार्य करने वालों के लिए ६२ दिन की उपस्थिति है। बिहार तथा पश्चिमी बंगाल में यह क्रमशः ५४ और ६६ दिन है। इस योजना के अन्तर्गत वे कर्मचारी सम्मिलित नहीं किए जाते जिनकी मूल मजदूरी १०० रु० प्रति माह से अधिक है। परन्तु यदि प्रॉवीडेन्ट फण्ड का सदस्य होने के बाद उसकी मूल मजदूरी १०० रु० प्रति माह से अधिक हो जाती है तब भी वह इस फण्ड का सदस्य बना रह सकता है। इस फण्ड के लिए अपने मालिकों और सदस्यों दोनों के अंशदान मालिकों को ही देने होते हैं परन्तु मासिक मजदूरों के भाग का अंशदान उनकी मजदूरी से काट सकता है। सदस्यों के कार्ड पर अंशदान की टिकटें लगाकर फण्ड के लिए अंशदान दिए जाते हैं। मजदूरों के भिन्न-भिन्न आय वाले वर्गों के लिए अंशदान की अलग-अलग दर आरम्भ में निश्चित की गई थी और यह राशि मजदूर की मूल मजदूरी और महँगाई भत्ते का लगभग ६¼ प्रतिशत के बराबर आती थी जिसमें भोजन के लिये नकद या वस्तु के रूप में दिये गये लाभ भी आ जाते थे। अब जनवरी १९५८ से कोयला उद्योग में मजदूरी पुनः निश्चित करने के पश्चात् से इस योजना में भी संशोधन कर दिया गया है। अब कुल आमदनी का ६¼ प्रतिशत के हिसाब से अंशदान की समान दर निश्चित कर दी गई है। मालिक भी इतना ही अंशदान देते हैं। यदि किसी मजदूर को किसी सप्ताह १ रुपये से कम मजदूरी मिलती है तब उस अंशदान नहीं देना होता।

कोई भी सदस्य अपने फण्ड की राशि में से सारा धन केवल उस समय निकाल सकता है जब वह या तो ६० वर्ष की आयु पूरी हो जाने पर स्थायी अवकाश प्राप्त कर ले या स्थायी व पूर्ण असमर्थता के कारण अवकाश प्राप्त कर

अथवा जब वह विदेश में स्थायी तौर पर रहने के लिए चला जाय। उस समय भी वह फण्ड से पूर्ण राशि निकाल सकता है जब वह किसी ऐसी कोयला खान में काम न करे जहाँ यह योजना एक वर्ष से लागू हुई हो। जहाँ तक श्रमिकों को मालिकों के अंशदान के मिलने का प्रश्न है उसके लिए जुलाई १९५६ के एक संशोधन में यह उल्लेख किया गया है कि मालिकों के अंशदान का भाग और उस पर ब्याज निम्नलिखित प्रकार से फण्ड में ही रहेगा यदि सदस्यता का समय १ वर्ष से कम है तो ७५ प्रतिशत १ वर्ष से ५ वर्ष के समय के लिए ५० प्रतिशत, ५ वर्ष से १० वर्ष की सदस्यता होने पर २५ प्रतिशत १ वर्ष से १५ वर्ष तक के लिए १५ प्रतिशत और यदि सदस्यता का समय १५ वर्ष या इससे अधिक है तब कोई भी रुपया जब्त नहीं किया जायेगा। यदि कोई सदस्य ५ वर्ष का होकर अवकाश प्राप्त कर लेता है तब चाहे उसने ५ वर्ष से कम समय तक कार्य किया हो फिर भी उसे फण्ड का सारा भुगतान कर दिया जायगा।

इस योजना का प्रशासन एक निकासी बोर्ड (Board of Trustees) द्वारा होता है जिसके सदस्य सरकार, मालिकों और मजदूरों के बराबर संख्या में प्रतिनिधि होते हैं। इस फण्ड का केन्द्रीय कार्यालय धनबाद में है। कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फण्ड कमिश्नर इसका मुख्य कार्यांग अधिकारी होता है। दिसम्बर १९६० के अन्त तक फण्ड की कुल राशि २१·६१ करोड़ रुपए थी और उसके लगभग १२·८७ लाख सदस्य थे। १९५९–६ में अंशदान देने वालों को ३½ प्रतिशत की दर से ब्याज दिया गया। इस ब्याज की दर को बढ़ाकर १९६०–६१ से ४% कर दिया गया है।

उत्तर प्रदेश में वृद्धावस्था पेंशन योजना —

उत्तर प्रदेश सरकार ने १ दिसम्बर १९५७ से ७० वर्ष या इससे अधिक आयु के निर्धन और निराश्रित व्यक्तियों को उनकी वृद्धावस्था में सहायता देने के लिए एक वृद्धावस्था पेंशन योजना लागू की है। यह हमारे देश में अपनी तरह का एक अग्रणीय सामाजिक कदम है। यह केवल मजदूरों तक ही सीमित नहीं है वरन् यह उन सब व्यक्तियों के लिए है जो यहाँ के निवासी हैं और उत्तर प्रदेश में रहते हुये उन्हें एक वर्ष से अधिक समय हो गया है। इस योजना का मुख्य ध्येय ऐसे अभीष्ट (Needy) लोगों की सहायता करना और उन्हें किसी प्रकार की सामाजिक-सुरक्षा प्रदान करना है जिनके पास आय का कोई साधन नहीं है और जिनके सूची में दिए [redacted] कुछ विशिष्ट प्रकार के ऐसे कोई सम्बन्धी नहीं है जिनकी आयु २० वर्ष या उससे अधिक हो या यदि है भी तो उसकी आयु ७० वर्ष से अधिक है या वह अंध मर्द है या निराश्रित है। दिसम्बर १९५९ में सम्बन्धियों की इस सूची में संशोधन करके और अधिक व्यक्तियों को इस योजना के अन्तर्गत ले लिया गया है। इसके अन्तर्गत भिखारी या ऐसे व्यक्ति नहीं सम्मिलित किए जाते जिनका निर्वाह निर्धन सेवा गृहों (Poor Houses) में निःशुल्क होता है। पेन्शन की राशि १५ रुपये प्रति माह निश्चित कर दी गई है। पेन्शन दो प्रकार की होती है (१) जीवन पेन्शन जो

आजीवन दी जाती है और (२) सीमित पेन्शन जो कुछ समय के पश्चात् समाप्त हो जाती है अर्थात् पेन्शन लेने वाले के सम्बन्धी की आयु जब २० वर्ष की हो जाती है, तब पेन्शन मिलनी बन्द हो जाती है। पेन्शन की न तो कुर्की हो सकती है और न यह परिवर्तित की जा सकती है। पेन्शन का मिलना या तो पेन्शन पाने वाले की मृत्यु के दिन से बन्द हो सकता है अथवा जब वह निराश्रित नहीं रहता तब उसकी पेन्शन रोक दी जाती है। थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् ऐसे मामलों की जाँच होती रहती है। पेन्शन पाने वाले व्यक्ति के लिए एक मुख्य शर्त यह होती है कि उसका आचार व्यवहार अच्छा होना चाहिए। यदि पेन्शन पाने वाला किसी गम्भीर अपराध के कारण दण्डित होता है तो उस दशा में पेन्शन देना बन्द भी की जा सकती है और पेन्शन वापिस भी ली जा सकती है।

पेन्शन पाने के लिए प्रार्थी को एक फार्म पर अपना प्रार्थना-पत्र भेजना होता है जिसे तहसीलदार और जिलाधीश जाँच पड़ताल करने के पश्चात् उत्तर प्रदेश के श्रम कमिश्नर के पास भेज देते हैं। श्रम-कमिश्नर ही पेन्शन की स्वीकृति देने वाला अधिकारी है। पेंशन की राशि मनिआर्डर से भेजी जाती है। पहले तो पेंशन हर माह दी जाती थी किन्तु मार्च १९५८ से यह प्रति ३ महीने बाद दी जाती है। ३१ दिसम्बर १९६० तक पेन्शन के लिये ८,८१२ प्रार्थना पत्र आये व जिनमें से ७,२०२ को पेंशन देना स्वीकार किया गया। जीवित पेंशन पाने वालों की संख्या ५,३९५ थी जिनमें २,५११ पुरुष थे और २,८८३ महिलायें थीं। सबसे वृद्ध पुरुष जिसको पेंशन मिल रही थी १२० वर्ष की आयु का था। वह इलाहाबाद जिले का रहने वाला था। नवम्बर १९६१ में जीवित पेन्शन पाने वालों की संख्या ९,२०७ थी। उत्तर प्रदेश में ७० वर्ष की आयु से अधिक के निराश्रितों की संख्या ५०,००० आंकी गई है जो कि राज्य की ७० वर्ष या इससे अधिक आयु के व्यक्तियों की जनसंख्या का लगभग ४ प्रतिशत है। मद्रास, आंध्र तथा केरल में भी इस प्रकार की योजनाएं लागू की गई हैं।

उत्तरजीवी पेंशनें — इनकी आवश्यकता और वांछनीयता —

उत्तरजीवी पेंशनें (Survivorship Pensions) उन विधवाओं और अनाथ बच्चों के लिए आवश्यक हैं जिनका संरक्षक मजदूर एकाएक मृत्यु का ग्रास बन गया हो और अपने पीछे अपनी पत्नी और बच्चों को बेसहारे और बिना किसी आय के साधन के छोड़ गया हो। उत्तरजीवी पेंशनों के अभाव में ऐसी अभागी पत्नियों और बालकों को अनेक कष्ट सहने पड़ते हैं और अनेक सामाजिक कुरीतियाँ अपना सिर उठाने लगती हैं जिनका हमने देश में सामाजिक-बीमे की आवश्यकता का वर्णन करते समय उल्लेख किया है। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम और कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत केवल उन कर्मचारियों के आश्रितों को लाभ प्रदान करने की व्यवस्था की गई है जिनकी मृत्यु काम करते समय किसी क्षति के कारण से हुई हो परन्तु ऐसे मजदूरों के उत्तरजीवियों के लिए कोई भी व्यवस्था नहीं की गई है जिनकी मृत्यु किसी अन्य कारणवश हो गई हो। इस समय इस बात की

आवश्यकता है कि प्रत्येक मजदूर के आश्रितों को लाभ प्रदान किए जायें चाहे उसकी मृत्यु का कोई भी कारण क्यों न रहा हो। जब मजदूर की मृत्यु हो जाती है और वह अपने पीछे असहाय आश्रितों को छोड़ जाता है तब उन आश्रितों को तब तक आर्थिक सहायता दी जानी चाहिए जब तक कोई बच्चा बड़ा होकर अपने परिवार के लिए धन कमाने योग्य न हो जाये। विधवा स्त्री को भी पेंशन दी जानी चाहिए और इसके लिए जैसा कि ब्रिटेन में भी है, कोई शर्त नहीं रखी जानी चाहिए, यद्यपि इस बात की भी व्यवस्था करनी चाहिए कि ऐसे लाभों के पाने के लिए मरण तुल्य अवस्था में विवाह न हो। प्रत्येक व्यक्ति और बालक को पेंशन मिलनी चाहिए जो १६ वर्ष तक मिलती रहनी चाहिए, जब तक अल्पवयस्क अपनी रोजी कमाने लायक न हो जाय। यदि कोई लड़का या लड़की शिक्षा प्राप्त करते हैं तब यह पेंशन १८ वर्ष की आयु तक भी दी जा सकती है। उत्तरजीवी पेंशनों के लिए पात्रता अवधि (Qualifying Period) २ वर्ष से ३ वर्ष तक की नौकरी होनी चाहिए। उत्तरजीवी पेंशन का लाभ इतना होना चाहिए जितना मजदूर को जीवित होने पर निबल होने की अवस्था में दिया जाता है। आश्रितों के लिये वही शर्तें होनी चाहिएँ जो कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम में दी गई हैं। जब सरकार युद्ध में सैनिकों की मृत्यु हो जाने पर विधवाओं को पेन्शन प्रदान करती है तब कोई कारण नहीं है कि इसी प्रकार की कोई योजना औद्योगिक मजदूरों की पत्नियों और उनके बच्चों के लिये न अपनाई जा सकती हो।

इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि मजदूरों के लिए जीवन बीमा व्यवस्था करने की सम्भावना पर जाँच पड़ताल करनी चाहिए और इस जीवन बीमा को सामाजिक सुरक्षा की योजना के अन्तर्गत ले आना चाहिए। यह सत्य है कि वर्तमान समय में कम मजदूरी मिलने के कारण मजदूर जीवन बीमा पालिसी की किस्तें नहीं दे सकता और किसी भी जीवन बीमा कम्पनी ने मजदूर वर्ग के बीमे की ओर ध्यान नहीं दिया है। परन्तु प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना प्रारम्भ होने के पश्चात् इस समस्या का आसानी से समाधान हो सकता है। मजदूरों के लिए बीमा पॉलिसियाँ लेना अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए और किस्तें मालिकों द्वारा दी जानी चाहिएँ। किस्तों का भुगतान प्रॉवीडेन्ट फण्ड की राशि में से किया जा सकता है और बीमे की राशि फण्ड में सम्मिलित की जा सकती है जो मजदूरों को अवकाश प्राप्त करने पर दी जा सकती है। इस सुझाव पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाना चाहिए। यह एक सम्भव और व्यवहारिक सुझाव है। यदि किसी श्रमिक ने बीमा कराया हुआ है और उसकी एकाएक मृत्यु हो जाती है उस अवसर पर उसके उत्तरजीवियों को इतनी अधिक मुसीबतों का सामना नहीं करना पड़ेगा जितना इस समय करना पड़ता है।

उपसंहार —

भारत में सामाजिक सुरक्षा के विभिन्न पहलुओं का उक्त सर्वेक्षण करने के पश्चात् यह कहा जा सकता है कि हमारे देश में अभी तक इस दिशा में बहुत थोड़ी

प्रगति हो सकी है। इस विषय पर प्रगतिशील (Progressive) विचार बनाने की आवश्यकता है जिससे औद्योगिक मजदूरों को आधुनिक औद्योगिक जीवन के संकटों में उस प्रकार की सुरक्षा मिल सके जो दूसरे देशों के मजदूरों को मिल रही है। बीमारी स्वास्थ्य मातृत्व-हित और क्षतिपूर्ति बीमों को तथा प्रॉवीडेण्ट फण्ड योजनाओं को यद्यपि प्रारम्भ कर दिया गया है परन्तु अभी तक यह केवल कुछ व्यक्तियों तक ही सीमित है।

इस समय देश में विभिन्न ऐजेन्सियाँ मजदूर वर्ग के विभिन्न वर्गों को सामाजिक सुरक्षा साधन प्रदान करती हैं। यह अनुभव किया गया है कि यदि इन ऐजेन्सियों का कार्य एक ही प्रशासन के अन्तर्गत संयोजित कर दिया जाय तब मजदूरों को और अधिक लाभ प्रदान किए जा सकेंगे और मालिक या मजदूर में से किसी को भी कोई अतिरिक्त लागत नहीं आएगी। इसलिए सरकार ने एक अध्ययन दल (Study Group) श्री वी० के० मेनन की अध्यक्षता में नियुक्त किया जिसका कार्य यह था कि वह एक पूर्ण व संगठित (Integrated) सामाजिक सुरक्षा योजना की रूपरेखा तैयार करे जिसके अन्तर्गत ऊपर बताए संकट आ जाएँ और वह इस बात की भी जाँच पड़ताल करे कि एक उचित पेन्शन योजना चलाना कैसे सम्भव हो सकता है। अध्ययन दल ने जो सिफारिशें कीं उन पर मई १९५८ के १५ वें तथा १९६० के १६ वें श्रम मन्त्री सम्मेलन में विचार विमर्श किया गया। मुख्य सिफारिशें निम्नलिखित विषयों के सम्बन्ध में थीं — (१) कर्मचारी राज्य बीमा और प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना के प्रशासन को मिलाकर एक करना। (२) कर्मचारी राज्य बीमा योजना में मालिकों के भाग का अंशदान बढ़ाकर ४¾ प्रतिशत करना और चिकित्सा लाभों के लिये होने वाले राज्य सरकार के व्यय को जब यह योजना श्रमिकों के परिवारों पर भी लागू हो जाय घटाकर ⅛ करना। (३) कर्मचारी प्रॉवीडेन्ट फण्ड अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरों और मालिकों दोनों की अंशदान दरों को बढ़ाकर ८⅓ प्रतिशत करना और अधिनियम को उन संस्थानों पर भी लागू करना जहाँ २० या इससे अधिक व्यक्ति काम करते हैं। उन कर्मचारियों को भी अधिनियम के अन्तर्गत सम्मिलित करना जो वाणिज्य संस्थानों में काम करते हों और नए स्थापित कारखानों को ३ साल तक छूट देने की धारा को समाप्त कर देना। (४) प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना को बदलकर इसे वृद्धावस्था निबलता व उत्तरजीवी पेन्शन और अवकाश धन योजना (Old Age-Invalidity and Survivorship Pension-Cum-Gratuity Scheme) का रूप देना। निबलता पेन्शन अधिक से अधिक औसत मजदूरी की ६० प्रतिशत होनी चाहिये। उत्तरजीवी लाभ विधवाओं के लिये पेन्शन का ५० प्रतिशत और प्रत्येक बच्चे के लिये २० प्रतिशत होना चाहिये। अवकाश प्राप्त पेन्शन का हिसाब लगाने के लिये सिफारिशों में एक आधार का उल्लेख है (पिछले पाँच वर्षों की औसत मजदूरी को नौकरी के योग्यता (Qualifying) वर्षों के १/८० भाग से गुणा करके)। (५) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम के अन्तर्गत

लाभों की वृद्धि करना जैसे बीमारी लाभ को १३ सप्ताह तक प्रदान करना और क्षय जैसी लम्बे समय की बीमारी होने पर १८ सप्ताह का लाभ प्रदान करना मातृत्व हित लाभ को पूरी औसत आय के बराबर देना जो १ रुपया प्रतिदिन से कम न होना चाहिये। इस बात पर भी काफी जोर दिया गया कि मजदूरों के परिवारों को चिकित्सा सुविधाएँ शीघ्र से शीघ्र मिलनी चाहिएँ तथा उनको हस्पताल की सुविधाएँ भी प्रदान करनी चाहिएँ। कर्मचारी राज्य बीमा योजना को उन समस्त क्षेत्रों तक विस्तृत कर देना चाहिए जहाँ बीमा योग्य श्रमिकों की संख्या ५०० या उससे अधिक है।

जब ये सारी सिफारिशें कार्यान्वित हो जायेंगी तब मजदूरों को वर्तमान समय में मिलने वाली सुविधाओं और लाभों में निश्चित ही कुछ उन्नति व वृद्धि होगी यद्यपि इन सुविधाओं को प्रदान करने में मालिकों की लागत वेतन बिल का ७½% से बढ़कर १२% हो जायगी। अप्रैल १९६० में स्थायी श्रम समिति ने इस बात का सुझाव दिया कि वह पूर्ण व संगठित (Integrated) सामाजिक सुरक्षा योजना तीसरी पंचवर्षीय आयोजना में लागू कर देनी चाहिये। श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने इस बात की भी मांग की कि औद्योगिक श्रमिकों को ऐसी जीवन बीमा पॉलिसी अनिवार्य रूप से लेनी चाहिये जिनको बीमा किस्तें (Premiums) प्रॉवीडेन्ट फण्ड से दी जा सकती हैं। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में राज्य कर्मचारी बीमा योजना को विस्तृत करने का सुझाव है। नवम्बर १९६० में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन द्वारा एक माह का 'कोर्स' सामाजिक सुरक्षा के प्रशासन में प्रशिक्षण देने के लिये नई देहली में चलाया गया। इसमें १० एशियाई देशों ने भाग लिया और २१ व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया गया।

हमारे देश की वर्तमान परिस्थितियाँ ऐसी नहीं हैं कि सामाजिक सुरक्षा की कोई एक सामान्य योजना चलाई जा सके। अनेक बीमारियों और महामारियों का फैलना प्रसूतिकाओं और बालकों की बढ़ती हुई मृत्यु संख्या जीवन क्षमता में कमी पैतृक ऋण के कारण ऋण एवं निराश्रयता जनता की अशिक्षितता देश का बड़ा आकार और इसी प्रकार के दूसरे तथ्यों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि सामाजिक सुरक्षा प्रदान करना सरल कार्य नहीं है। घोर निर्धनता और विकास की कमी को भी इन तथ्यों में गिना जा सकता है। इसलिए इस समय तो यही उचित दिखाई देता है कि सामाजिक सुरक्षा योजना का प्रारम्भ औद्योगिक मजदूरों और नाविकों से किया जाय और थोड़े समय पश्चात् योजना को वाणिज्य सम्बन्धी श्रमिकों पर भी लागू कर दिया जाय। बाद में जैसे जैसे परिस्थितियाँ अनुकूल होती जायें वैसे-वैसे योजना का विस्तार श्रमिकों के अन्य वर्गों तक तथा स्वतंत्र जीविका उपार्जन करने वाले व्यक्तियों तक किया जा सकता है।

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना केवल आवश्यक या वांछनीय ही नहीं है अपितु इसका लागू होना सम्भव

भी है। स्वस्थ और कुशल औद्योगिक श्रमिकों के एक ऐसे स्थायी वर्ग के विकास के लिए, जिसकी तीव्रगति से बढ़ते हुये उद्योगों और व्यवसायों में बहुत माँग है यह आवश्यक है कि सामाजिक सुरक्षा योजना लागू की जाये। इस समय श्रमिकों का अंशदान जितना भी हो यथासम्भव कम होना चाहिए और सरकार व मालिक को सामाजिक सुरक्षा की लागत का अधिकांश भाग वहन करना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि देश में इस प्रकार की योजना लागू करने से पूर्व मजदूरों के जोखिम के भार से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करने चाहिएँ जिनसे यह मालूम हो सके कि ऐसी घटनाएँ श्रमिक के जीवन में कितनी बार आती हैं और वे कितनी गम्भीर होती हैं। सरकार को यह भी समझना चाहिये कि सर्वसाधारण की भलाई के लिये आर्थिक क्षेत्र में सामान्य मनुष्य को आधारभूत और मूल सुरक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व उसी पर है। सरकार और उसके अधिकारियों के वर्तमान दृष्टिकोण में परिवर्तन होना भी बहुत आवश्यक है। यदि वही पुराना दफ्तरी व्यवहार अपनाया गया जिसमें वास्तविकता के साथ कोई सहानुभूति नहीं होती और अनेक समितियाँ व आयोग नियुक्त करने और उनकी रिपोर्टों को अलमारी में बन्द कर देने का वही तरीका चलता रहा तब देश में निश्चय ही कोई भी सामाजिक सुरक्षा योजना सफल नहीं हो सकती।

कुछ व्यक्ति यह प्रश्न पूछते हैं कि क्या भारत सामाजिक सुरक्षा की सुविधाओं का व्यय वहन कर सकता है? इस सम्बन्ध में श्री जगजीवन राम ने ब्रिटेन की सामाजिक सुरक्षा-योजना के प्रसिद्ध निर्माता सर विलियम बेवरीज के शब्दों को दोहराया है। बेवरीज से ऐसा ही प्रश्न पूछा गया था। इस पर उनका उत्तर बहुत ही स्पष्ट था। उन्होंने कहा "मुझसे प्रायः पूछा जाता है कि क्या ब्रिटेन बेवरीज योजना का भार वहन कर भी सकेगा? मेरा उत्तर है कि यह एक ऐसा प्रश्न है जिससे भ्रम ही सकता है। इस प्रश्न में एक ऐसी बात मान ली गई है जो सत्य नहीं है, अर्थात् यह मानकर प्रश्न किया गया है कि आय का बुद्धिमत्तापूर्ण वितरण करने में कुछ लागत आती है। परन्तु मेरे विचार से आय को कम आवश्यक चीजों पर व्यय करने से पूर्व अधिक आवश्यक वस्तुओं पर व्यय करने से कोई लागत नहीं आती। यह तो केवल बुद्धिमत्तापूर्ण व्यय करना है। जब लोग यह प्रश्न पूछते हैं कि क्या ब्रिटेन बेवरीज योजना के भार को वहन कर सकता है तो जैसे वह यह पूछते हैं कि क्या कोई गृहणी रेडियो खरीदने से पहले अपने परिवार के लिये रोटी खरीद सकती है? निश्चय ही वह खरीद सकती है और उसे खरीदनी चाहिये।" सर विलियम ने इस बात पर भी जोर दिया है कि देश जितना अधिक निर्धन होता है उसके लिये सामाजिक सुरक्षा योजना की आवश्यकता भी उतनी ही अधिक होती है।

इस प्रकार इस समय हमारे देश में सामाजिक सुरक्षा योजना को लागू करने की बहुत आवश्यकता है और यह हमारे सम्मुख एक गम्भीर राष्ट्रीय समस्या है।

जिस दुःख और निर्धनता की गहरी खाई में श्रमिक आज पड़ा हुआ है उससे उसे उबारने के लिये यही एकमात्र साधन है। डा० अम्बेडकर के शब्दों में श्रमिकों को "रोटी मकान पर्याप्त वस्त्र शिक्षा अच्छा स्वास्थ्य और इन सबसे बड़ी चीज संसार में आत्मसम्मान तथा गौरव के साथ बसने का अधिकार देना चाहिये। चूंकि हमारे देश में राष्ट्रीय सरकार है और उसका उद्देश्य कल्याणकारी राज्य की स्थापना करना है तब हमें यह पूरी आशा है कि सामाजिक सुरक्षा के प्रश्न को अधिक समय तक नहीं टाला जायेगा और हमारी पंचवर्षीय आयोजनाओं में इसको उचित महत्व दिया जायेगा। सामाजिक सुरक्षा का प्रारम्भ कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम और प्रॉवीडेन्ट फण्ड योजना के रूप मे हो चुका है। हमें आशा है कि यह प्रारम्भ यहीं तक ही सीमित नहीं रहेगा और भविष्य में उन सभी को सुरक्षा प्रदान की जायेगी जो उत्पादक कार्यों में लगे हुये है।

ग्रेट ब्रिटेन में सामाजिक सुरक्षा

(Social Security in Great Britain)

मध्यकालीन युग में निर्धन सहायता — (Poor Relief in the Middle Ages)

महारानी एलिजाबेथ के समय से ही अभावग्रस्त नागरिकों की आवश्यकता को पूर्ण करना इंगलैंड में राज्य का ही कर्तव्य रहा है। मध्यकालीन युग में निराश्रित व्यक्तियों को सहायता देने का कार्य धार्मिक मठों द्वारा किया जाता था परन्तु मठों के उन्मूलन के पश्चात् राज्य के लिए यह आवश्यक हो गया कि उनके स्थान पर कोई अन्य सहायता व्यवस्था की जाय। परिणामस्वरूप इंगलैंड में निर्धन कानून (Poor Law) पारित किया गया। इसके अन्तर्गत सहायता के लिए जो धन जमा किया जाता था वह स्थानीय करों द्वारा होता था। निर्धन कानून जिसका नाम बाद में 'सार्वजनिक सहायता' (Public Assistance) कर दिया गया अभी तक विद्यमान है। पुरानी सेवाओं में से यही एक ऐसी सेवा है जो अभी तक बाकी है। इसका उद्देश्य यह है कि निराश्रित व्यक्तियों को ऐसी सहायता दी जाय जो उन्हें किसी और एजेन्सी द्वारा न मिल रही हो। आधुनिक समय में सामाजिक सेवा का जो इतिहास है, वह वास्तव में निर्धन कानून के अन्तर्गत जो सेवाएं आती थीं उनको ही अपनाने और उनके विकास का इतिहास है यद्यपि दोनों का आधार अवश्य भिन्न है। वर्तमान व्यवस्था में उतनी कठिन शर्तें नहीं हैं जो पहले थीं। निर्धन सहायता के नाम में जो एक हीनता की भावना छिपी हुई थी वह भी अब नहीं है। वित्त व्यवस्था भी भिन्न प्रकार से की जाती है।

इंगलैंड में सामाजिक सेवाओं पर व्यय —

बीसवीं शताब्दी में सार्वजनिक सामाजिक सेवाओं पर व्यय इंगलैंड में काफी बढ़ गया है। यह ब्रिटिश सामाजिक जीवन की एक मुख्य विशेषता है जो कि औद्योगिक सम्बन्धों पर बहुत प्रभाव डाल रही है। ग्रेट ब्रिटेन में सामाजिक सेवाओं पर १८९० में कुल व्यय लगभग २१० लाख पौंड था। इसमें प्रशासन की लागत भी सम्मिलित थी। सन् १९०० में यह व्यय २६० लाख पौंड तक बढ़ गया और सन् १९२० में २०१ लाख पौंड तक और १९३५ में ४९३० लाख पौंड तक पहुंच गया। इन आंकड़ों में संसद द्वारा दी हुई राशि तथा स्थानीय उपक्रमों द्वारा मिला हुआ धन तथा विभिन्न प्रकार की समाज सेवाओं के लिए स्वामियों और कर्मचारियों द्वारा दी हुई अंशदान की राशि भी सम्मिलित थी। सन् १९३५ में संसद ने जो

सहायता स्वीकृत की यह २ १४० लाख पौंड से अधिक अथवा कुल व्यय का ११%
के लगभग थी। १९३८–३९ में सामाजिक सेवा योजनाओं पर कुल खर्च ३ ४२०
लाख पौंड था। सन् १९५७–५८ में सरकार द्वारा सामाजिक सेवाओं एवं उपदानों
पर किया गया खर्च २०१ करोड़ १० लाख पौंड तक हो गया और सार्वजनिक प्राधिकारी (Public Authorities) भी सामाजिक सेवाओं पर प्रतिवर्ष ११० करोड़
पौंड व्यय कर रहे हैं अर्थात् प्रति व्यक्ति प्रतिवर्ष ६१ पौंड समाज सेवाओं पर व्यय
किया जाता है।

बैवरिज आयोजना (Beveridge Plan) से पूर्व इंगलैंड में जो सामाजिक
बीमे की व्यवस्था थी उसका भी वर्णन करना आवश्यक है।

बैवरिज आयोजना से पूर्व निर्धन सहायता —

इंगलैंड में निर्धन सहायता (Poor Relief) बहुत काल से चली आ रही है।
सन् १६०१ से पूर्व यह माना जाता था कि स्वस्थ शरीर वाले व्यक्ति, यदि उनकी
इच्छा हो तो कार्य पा सकते थे अतः उनकी निर्धनता उनके आलस्य की द्योतक थी।
इसलिए बिना किसी कार्य पर लगे हुए स्वस्थ शरीर वाले व्यक्तियों को दण्ड दिया
जाता था उदाहरणतः सन् १५३ में जो भी स्वस्थ शरीर वाले पुरुष एवं स्त्रियां
भीख मांगते अथवा बिना स्थायी रोजगार के पाये जाते थे उनको नंगा करके एक
ठेले के साथ बांध दिया जाता था और उनको तब तक कोड़े लगाये जाते थे जब तक
कि उनके शरीर से खून न निकलने लगे। सन् १५४७ में एक अधिनियम पारित
किया गया जिसमें इस बात की व्यवस्था थी कि जो भी स्वस्थ शरीर का व्यक्ति
आवारा पाया जायगा उसके शरीर पर V मुद्रा दिया जायगा और वह किसी भी
मालिक का जिसको आवश्यकता हो दो वर्ष तक दास रहेगा और उसको रोटी
पानी और कच्चे मांस का भोजन मिलेगा। इन दो वर्षों में भागने का प्रयत्न करते
हुए पकड़े जाने पर उसके शरीर पर S मुद्रवाने और जन्म भर की दासता का दंड
दिया जाता था। उसके पश्चात् भी भागने पर मृत्यु-दण्ड नियत था।

महारानी एलिजाबेथ के समय में सर्वप्रथम निर्धनों को सहायता देने के कार्य
में प्रगति हुई। इसके लिए बहुत से अधिनियम पारित किये गये और "जस्टिसेज
आफ पीस" (Justices of Peace) को श्रमिकों का वेतन निश्चित करने का अधिकार दिया गया। सन् १६०१ में निर्धन सहायता अधिनियम पारित हुआ जिसमें
पुरानी दमनकारी नीति पूर्णरूप से परिवर्तित कर दी गई। इसके अन्तर्गत निर्धनों
की सहायतार्थ एक अनिवार्य नीति को अपनाया गया। प्रत्येक नगर में निर्धनों के
ओवरसियर नियुक्त किये गये जिनका कार्य वृद्ध पीड़ित अथवा रोजगार न होने के
कारण ऐसे निर्धनों की सहायता हेतु कर उगाहना (Raise taxation) था जो वृद्धावस्था और निबलता के कारण कार्य नहीं कर सकते थे या बेरोजगार थे। कार्य
करने के योग्य व्यक्तियों को कार्य करने से मना करने पर दण्डित किया जाता था।
सन् १६०१ का यह अधिनियम कुछ संशोधनों के पश्चात् सन् १८३४ तक सार्वजनिक

सहायता कार्यों का आधार रहा यद्यपि इस कार्य के लिए और भी अधिनियम पारित किये गये थे।

एक महत्वपूर्ण अधिनियम १८३४ में पारित किया गया जिसके अनुसार निर्धन कानून प्रशासन को निर्धन कानून कमिश्नरों के केन्द्रीय बोर्ड (Central Board of Poor Law Commissioners) के अन्तर्गत लाया गया। स्वस्थ शरीर वाले व्यक्तियों के लिए कार्य गृह परीक्षा' (Work House Tests) की व्यवस्था की गई। 'पेरिशों' (Perishes) (कस्बा) को संघों में संगठित किया गया था। प्रत्येक संघ में उपकर देने वाले व्यक्ति एक संरक्षक बोर्ड (Board of Guardians) का चुनाव करते थे। कार्य गृह में सब स्वस्थ शरीर वाले निर्धनों को भरती करके सहायता दी जाती थी और ६० वर्ष से अधिक आयु वाले एवं अस्वस्थ व्यक्तियों को कार्य गृह के बाहर सहायता दी जाती थी। सन्१८४७ में निर्धन कानून बोर्ड (Poor Law Board) स्थापित हुआ और उसने सन् १८७१ तक सार्वजनिक सहायता के प्रशासन का निरीक्षण किया और तब उसकी जगह स्थानीय सरकारी बोर्ड (Local Government Board) बनाया गया जो सन् १९१९ तक रहा। इसके उपरान्त स्वास्थ्य मन्त्रालय का निर्माण हुआ जिसने सार्वजनिक सहायता के प्रशासन कार्य को सम्भाला। सन् १८३४ के अधिनियम ने यह सिद्धान्त बना कर कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी जीविका स्वयं अपने परिश्रम से कार्य करके अर्जित करनी चाहिए, ईमानदारी से कार्य करने वालों को प्रोत्साहन दिया परन्तु इस अधिनियम में बेरोजगारों के लिये कोई व्यवस्था नहीं थी। सन् १८११ में बेरोजगारों को कुछ सहायता 'फ्रेंडली सोसाइटीज' (Friendly Societies) द्वारा भी दी गई। सन् १९०२ में निर्धन कानून के लिए रायल कमीशन नियुक्त किया गया जिसने अपनी रिपोर्ट सन् १९०९ में दी। कमीशन ने कहा कि देश में भिक्षा-वृत्ति व्याप्त थी और उसने कार्य गृहों में बच्चों को रखने की प्रथा की निन्दा की और इस ओर भी संकेत किया कि कार्य गृह से बाहर दी जाने वाली सहायता का प्रशासन उचित प्रकार से नहीं हो रहा था।

सन् १९२९ में एक स्थानीय सरकारी अधिनियम (Local Government Act) पारित हुआ जिसके अनुसार निर्धन कानून की एक पूर्णतया नवीन प्रणाली का प्रारम्भ हुआ। निर्धन कानून के प्रशासन का कार्य काउन्टी कौंसिलों और काउन्टी बोरो कौंसिलों (County Borough Councils) को स्थानान्तरित कर दिया गया जिनको कि सार्वजनिक सहायता समितियों के द्वारा कार्य करना होता था। यह आशा व्यक्त की गई थी कि इस कानून के कारण कुछ बचत होगी व कार्य क्षमता बढ़ेगी और अन्त में निर्धन कानून के प्रशासन की जिम्मेदारी समस्त समाज की न होकर स्थानीय जिलों की हो जायगी।

बेरोजगारी बीमा — (Unemployment Insurance)

इंग्लैंड में बेरोजगारी बीमा ने भी जनता का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। जैसा कि ऊपर 'निर्धन कानून' के अन्तर्गत बताया गया है कुछ काल में

बेरोजगारी को माना ही नहीं जाता था और स्वस्थ शरीर वाले बेरोजगार व्यक्तियों को आलसी मान कर दण्ड दिया जाता था। परन्तु शीघ्र ही इस बात का अनुभव कर लिया गया कि प्रत्येक व्यक्ति को कार्य देने की जिम्मेदारी राज्य की है और यदि यह सम्भव न हो सके तो बेरोजगारों को सहायता दी जानी चाहिये। सन् १९ ९ में कुछ उद्योगों के लिए जिनमें लगभग २२ ५ लाख श्रमिक कार्य करते थे अनिवार्य बेरोजगारी राज्य बीमा योजना लागू की गई। यह योजना अंशदान सिद्धान्त पर आधारित थी। यह अंशदान मालिकों से २½ पैंस श्रमिकों से २½ पैंस और राज्य से १⅔ पैंस लिया जाता था। इस प्रकार प्रत्येक श्रमिक के लिए ६⅔ पैंस कुल अंशदान संचित होता था। साप्ताहिक सहायता ७ शिलिंग थी जो वयस्कों को १२ महीने में अधिक से अधिक १५ सप्ताह तक दी जा सकती थी और १८ वर्ष से कम आयु वाले श्रमिकों को इससे आधा लाभ दिया जाता था। समय-समय पर इस अधिनियम में परिवर्तन होते रहे। सन् १९१६ में यह योजना अन्य रोजगारों तक बढ़ा दी गई। महायुद्ध के तुरन्त बाद ही 'काम रहित व्यक्तियों के लिए एक दान (Out of Work Donations) योजना" भूतपूर्व सैनिकों जिनको कार्य नहीं मिल सका था और अन्य तमाम श्रमिकों के लिए लागू की गई।

सन् १९२ में अनिवार्य राजकीय बीमा योजना को शारीरिक कार्य करने वाले श्रमिकों और उन मानसिक काम करने वाले श्रमिकों के लिए भी जो २५ पौंड प्रति वर्ष से अधिक नहीं कमाते थे लागू कर दिया गया। कृषि सम्बन्धित श्रमिक एवं घरेलू कार्य के श्रमिक इस योजना के अन्तर्गत नहीं आते थे। बेरोजगारों को मालिक श्रमिक एवं सरकार के अंशदान (Contributions) से निर्मित निधि में से सहायता दी जाती थी। समय-समय पर अंशदान की दरों और लाभ दरों को बढ़ाया भी गया। सन् १९३१ में सरकार ने राष्ट्रीय बचत अधिनियम (National Economy Act) पारित किया जिसके अन्तर्गत बेरोजगारी बीमे का अंशदान तो बढ़ा दिया परन्तु लाभों में कमी कर दी गई। अंशदान की दर १० पैंस प्रति वयस्क पुरुष श्रमिक के लिए और १ पैं० प्रति मालिक के लिए थी जबकि राज्य का अंशदान ७½ पैंस ही रहा। २१ वर्ष से अधिक आयु के पुरुष व स्त्री श्रमिकों को सहायता क्रमशः १७ व १५ शि की जगह १५ शि ३ पैं और १३ शि ७ पैं कर दी गई। २१ वर्ष से कम आयु वाले श्रमिकों में लाभों की दर को एवं आश्रितों के लाभ को भी कम कर दिया गया और लाभ के लिए जीविका साधन जाँच (Means Test) की व्यवस्था की गई। १९३४ में यह तरीका भी समाप्त कर दिया गया। बेरोजगारों और 'निर्धन सहायता' चाहने वालों का अन्तर स्पष्ट कर दिया गया और इनको दो वर्गों में बाँटा गया प्रथम-बीमे के फलस्वरूप लाभ वाले और द्वितीय-सहायता पाने वाले। सहायता चाहने वालों की 'जीविका साधन जाँच' की जाती थी। लाभ दरें जो सन् १९३१ से पूर्व थीं उनको ही फिर से लागू कर दिया गया और सहायता काल १ वर्ष तक कर दिया गया। आश्रितों को लाभ दर बढ़ाकर दो से

तीन शिलिंग कर दी गई। जुलाई सन् १९३६ में जैसे-जैसे बेरोजगारी कम हुई, श्रमिकों एवं मालिकों के लिये अंशदान दर ९ पें० प्रति सप्ताह और स्त्री श्रमिकों के लिए ८ पें० प्रति सप्ताह कर दी गई। राज्य के अंशदान का हिस्सा इस निधि में बराबर का होता था।

सन् १९३६ में कृषि-श्रमिकों के लिए बेरोजगारी बीमे की एक अलग योजना बनाई गई। अंशदान की दर मालिक श्रमिक एवं राज्य के लिए ४½ पें० प्रति सप्ताह और स्त्री श्रमिकों के लिये ४ पें० प्रति सप्ताह नियत की गई। लाभ दरें पुरुषों के लिये १४ शि० स्त्रियों के लिये १२½ शि० वयस्कों के लिये ७ शि० और आश्रित अल्पवयस्कों के लिये ३ शि० प्रति सप्ताह निश्चित की गई। अधिकतम लाभ दर ३६ शि० प्रति सप्ताह थी।

बेरोजगारी बीमा योजना की इस बात पर आलोचना की गई कि इसकी लागत अधिक थी तथा अंशदान व लाभ की दरें बहुत कम थीं। आगामी पृष्ठों में जैसा कि उल्लेख किया गया है महायुद्ध के पश्चात् इस योजना के स्थान पर एक 'सामाजिक सुरक्षा योजना लागू कर दी गई।

स्वास्थ्य बीमा'— (Health Insurance)

ग्रेट ब्रिटेन में अनिवार्य स्वास्थ्य बीमा योजना भी लागू रही है। इसको सन् १९११ में प्रारम्भ किया गया था और बेरोजगारी बीमे की तरह यह भी अंशदान सिद्धान्त पर आधारित थी। यह योजना उस मजदूर वर्ग के समस्त व्यक्तियों पर लागू थी जिनकी आयु १६ वर्ष से अधिक एवं ६५ वर्ष से कम थी और जिनकी वार्षिक आय २५० पौंड से अधिक नहीं थी। उपलब्ध लाभों में नकदी और चिकित्सा सहायता भी सम्मिलित थी। बीमारी लाभ पुरुषों के लिए १५ शि० और अविवाहित महिलाओं के लिए १२ शि० और विवाहिताओं के लिए १० शि० की दर पर २६ सप्ताह तक उपलब्ध होता था और असमर्थता लाभ की दर पुरुषों के लिए ७ शि० ६ पेंस, अविवाहित महिलाओं के लिए ६ शिलिंग और विवाहित महिलाओं के लिए ५ शि० थी। मातृत्व-हित लाभ की दर ४० शि० थी जो किसी भी बीमाकृत महिला को या बीमाकृत पुरुष की पत्नी को प्रसव काल पर दिया जाता था। इन लाभों के लिये पुरुषों द्वारा ४½ पेंस प्रति सप्ताह मालिकों द्वारा ४½ पें० प्रति सप्ताह और स्त्री श्रमिकों द्वारा ४ पेंस प्रति सप्ताह अंशदान दिया जाता था। बीमारी के लिये प्रतीक्षा काल तीन दिन का था।

वृद्धावस्था पेन्शनें —(Old Age Pensions)

वृद्धावस्था पेन्शनों की योजना ब्रिटेन में १९०८ के अधिनियम के अन्तर्गत प्रारम्भ की गई और सामान्य करों द्वारा संचित निधि में से लाभ उपलब्ध किये जाते थे। मालिकों एवं श्रमिकों को अंशदान नहीं देना पड़ता था। सन् १९३४ में प्रत्येक वह व्यक्ति, जिसकी आयु ७० वर्ष से अधिक हो और जो ब्रिटेन में कम से कम २० वर्ष तक अधिवासी रहा हो या जो कम से कम १२ वर्ष से इंग्लैंड में निवास कर

रहा हो वृद्धावस्था पेन्शन लेने का अधिकारी हो जाता था। परन्तु यह शर्त भी थी कि उसकी वार्षिक आय ११ पौं १ शि० से अधिक न हो और उसे निर्धन सहायता भी न मिलती हो। अधिकतम साप्ताहिक लाभ ५ शि० और न्यूनतम साप्ताहिक लाभ १ शि० था। बाद में अधिनियम को संशोधित किया गया और उसमें अंशदान सिद्धान्त को लागू कर दिया गया। सन् १९२५ एवं १९२६ में पारित किये गये अधिनियमों के अन्तर्गत स्वास्थ्य बीमा प्रणाली में आने वाले सब व्यक्तियों को 'वृद्धावस्था अंशदान पेन्शन योजना' के अन्तर्गत सम्मिलित कर लिया गया। सन् १९१८ में अंशदान की दर पुरुषों एवं स्त्रियों के लिये क्रमशः ४½ पें० और २ पें प्रति सप्ताह निर्धारित कर दी गयी। मालिकों का अंशदान पुरुष एवं महिला श्रमिकों के हेतु क्रमशः ४½ पेंस और २½ पें था। मालिकों एवं श्रमिकों द्वारा दिये गये अंशदान की दर को धीरे-धीरे सन् १९३१, १९४१ और १९४६ में बढ़ाकर पुरुषों के लिये १½ शि० और स्त्रियों के लिये ७½ पें० प्रति सप्ताह तक कर दिया गया। राज्य द्वारा भी वार्षिक अनुदान दिये जाने लगे जिसकी राशि १९४२–४३ में २ करोड़ १० लाख पौंड थी। ६५ और ७० वर्ष के बीच के बीमाकृत पुरुषों एवं स्त्रियों को १० शि० प्रति सप्ताह दिये जाते थे। १ शि प्रति सप्ताह उन व्यक्तियों की पत्नियों को भी दिये जाते थे जो पेन्शन पाने के अधिकारी थे यदि इन पत्नियों की आयु भी ६५ और ७० के बीच हो।

आश्रित पेन्शनें —(Dependants' Pensions)

विधवा माताओं और अनाथ बच्चों को पेन्शन देने की योजना को भी सन् १९२५ से अंशदान के आधार पर लागू किया गया। विधवाओं को १० शि० प्रति सप्ताह की दर से पेन्शन दी गयी। इसके अतिरिक्त उनको १४ वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए अलग से भत्ता दिया गया जिसकी दर सबसे बड़े बच्चे के लिये ५ शि० और अन्य बच्चों के लिये ३ शि० प्रति सप्ताह थी। इस योजना के अन्तर्गत विधवा को ७० वर्ष की आयु तक अथवा उसके दुबारा विवाह करने तक यह पेन्शन उपलब्ध थी। परन्तु पुनर्विवाह का बालकों के भत्तों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। इस योजना के अन्तर्गत बीमाकृत मृतकों के अनाथ बच्चों के लिये ७½ शि० प्रति सप्ताह प्रति बालक को १४ वर्ष की आयु तक और यदि स्कूल में पढ़ता हो तो १६ वर्ष की आयु तक पेन्शन की व्यवस्था थी।

श्रमिक क्षतिपूर्ति — (Workmen's Compensation)

इंगलैण्ड में प्रथम श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम सन् १९०६ में पारित हुआ। इसके अन्तर्गत मालिकों को आयु एवं स्त्री पुरुष का भेद किये बिना अपने श्रमिकों को उस समय क्षतिपूर्ति देनी पड़ती थी जब कोई श्रमिक किसी दुर्घटना या विषय उद्योग जनित बीमारी के कारण जो उसको रोजगार काल में लगी हो अपनी जीविका कमाने से विवश हो जाता था। स्थायी एवं अस्थायी असमर्थता में साप्ताहिक भुगतान किया जाता था और मृत्यु पर आश्रितों को एकमुश्त राशि दी जाती

थी। सन् १९२३ में इस अधिनियम का संशोधित किया गया जिसके अन्तर्गत क्षति पूर्ति की राशि और उसके क्षेत्र में वृद्धि की गई और इकमुश्त राशि देकर निबटारे की अनुमति भी मिल गई। परन्तु क्षतिपूर्ति के लिये अनिवार्य बीमे की कोई व्यवस्था नहीं थी यद्यपि बहुत से मालिक विभिन्न कम्पनियों में अपना बीमा करा कर अपने दायित्व से मुक्त हो गये थे।

मालिकों की लाभ योजनाएं —

सामाजिक बीमे की राज्य प्रणाली के अतिरिक्त मालिकों द्वारा भी पेन्शन योजनाएं, बचत योजनाएं और बेरोजगारी लाभ योजनाएं ऐच्छिक सिद्धान्त पर लागू की गई हैं। परन्तु भुगतान राशि प्रत्येक फर्म में भिन्न-भिन्न है। इनमें से अधिकतर व्यवस्थाएं औद्योगिक कल्याण योजनाओं के अन्तर्गत आती हैं जो कि संसद के अधिनियमों द्वारा निर्धारित की गई हैं जैसे 'जनता स्वास्थ्य अधिनियम' (Public Health Act) दुकान अधिनियम (Shops Act) फैक्ट्री अधिनियम आदि। स्वास्थ्य कल्याण और कार्यों के घन्टों के सम्बन्ध में मालिकों और श्रमिक संघों के मध्य हुए समझौते द्वारा भी ऐसी व्यवस्थाएं की गयी हैं और कुछ व्यवस्थाएं मालिकों ने ऐच्छिक रूप से एक विशेष स्तर बनाए रखने के हेतु भी की हैं।

बेवरिज आयोजना से पूर्व योजनाओं के दोष —

महायुद्ध से पूर्व ब्रिटेन में सामाजिक बीमे की उपरोक्त प्रणाली ही प्रचलित थी परन्तु इसमें कुछ दोष भी थे। योजनाओं के अन्तर्गत बहुत से अभीष्ट (Needs) सम्मिलित नहीं किये गये थे। लाभ देने के हेतु या 'जीविका साधन जाँच' की पद्धति में उसमें कोई समानता नहीं थी। फिर लाभ दरें बिना किसी उचित कारण के घटती बढ़ती रहती थीं। बेवरीज आयोजना में इन सब दोषों को दूर करने का प्रयास किया गया।

बेवरिज आयोजना —(The Beveridge Plan)

जून सन् १९४१ में सर विलियम बेवरिज को सामाजिक बीमे की वर्तमान राष्ट्रीय योजनाओं और सम्बन्धित सेवाओं का सर्वेक्षण करने और सुझाव देने के हेतु नियुक्त किया गया। उनकी रिपोर्ट दिसम्बर सन् १९४२ में संसद के सम्मुख रखी गई। उसके पश्चात् संसदीय अधिनियमों के द्वारा इंगलैंड में इस रिपोर्ट को कार्यान्वित कर दिया गया है।

आयोजना की मूल आधारभूत विशेषताएं —

बेवरीज आयोजना का सबसे प्रथम ध्येय यह है कि जहां तक हो सके विभिन्न कारणों से उत्पन्न हुई आवश्यकताओं की पूर्ति करने के लिए एक संगठित निर्वाह प्रणाली की व्यवस्था की जाय। सर विलियम बेवरिज ने अपनी योजना को एक ऐसी समान दर (Uniform Rate) पर आधारित किया जिसमें विभिन्न स्थितियों का सामना करने के लिये अन्य विषय भी पूरक के रूप में जोड़े जा सकते थे और जिसमें

आयोजना के अन्तर्गत लाभ —

आयोजना के अन्तर्गत निम्नलिखित लाभों की व्यवस्था है —

गृहणियों के लिए लाभ— किसी गृहणी (House-wife) को कोई अंशदान नहीं देना होगा परन्तु वह ६ लाभों की अधिकारिणी होगी (क) १ पौंड तक का विवाह हेतु अनुदान (ख) प्रसव के समय पर ४ पौंड का मातृत्व हित अनुदान। यदि वह कमाने वाला रोजगार करती हो तो उसे १३ सप्ताह तक बिना अंशदान दिए ३६ शि० प्रति सप्ताह का अतिरिक्त मातृत्व हित लाभ मिलेगा (ग) १३ सप्ताह तक वैधव्य लाभ ३६ शि० प्रति सप्ताह की दर से मिलेगा (घ) १३ सप्ताह के पश्चात् जब तक बालक आश्रित रहेंगे उसे २४ शि प्रति सप्ताह अभिरक्षक (Guardian) लाभ मिलेगा और इसके अतिरिक्त बालकों का भत्ता भी मिलेगा। यदि उसका कोई आश्रित बालक नहीं है तब उसको प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत कार्य के लिए परीक्षा पास करनी होगी और इस बीच में उसे प्रशिक्षण लाभ मिलेगा। (च) यदि उसे बिना अपनी गलती के तलाक मिला हो तो उसको वैसा ही लाभ मिलेगा जैसा विधवा को मिलता है। (छ) बीमार पड़ने पर उसको बीमारी लाभ के रूप में सहायता उपलब्ध होगी।

बच्चों के लिए भत्ते— आयोजना के अन्तर्गत इस बात की भी व्यवस्था है कि हर परिवार में प्रथम आश्रित बालक के अतिरिक्त हर बालक को ८ शि प्रति सप्ताह भत्ता दिया जायेगा चाहे उसके माता पिता की आय व सामाजिक स्थिति कैसी भी हो। यदि माता पिता धनोपार्जन करने में असमर्थ हों तो प्रथम बालक के लिए भी भत्ते की व्यवस्था है।

बेरोजगारी और बीमारी लाभ— इसके अन्तर्गत अविवाहित व्यक्ति को २४ शि प्रति सप्ताह और विवाहित दम्पत्ति को ४० शि० प्रति सप्ताह दिया जाता है। ऐसे बेरोजगार पुरुष को जिसके पत्नी व दो बच्चे हों ६० शि० प्रति सप्ताह मिलेगा। इस लाभ के लिए केवल यही शर्त है कि जो छः महीने से अधिक बेरोजगार रहेंगे उनको एक प्रशिक्षण केन्द्र में भर्ती होना पड़ता है जहाँ कि उनको एक निर्धारित समय के लिए कार्य सिखाया जाता है और इस समय उनको एक प्रशिक्षण लाभ मिलता है जो कि बेरोजगार लाभ की तरह होता है।

श्रमिक क्षतिपूर्ति— बेवरिज आयोजना के अन्तर्गत १३ सप्ताह तक की असमर्थता के लिए श्रमिक को बीमार मान कर बीमारी लाभ दिया जाएगा। इसके पश्चात् साप्ताहिक भुगतानी बढ़ाकर उसकी पहली आय के ⅔ भाग तक कर दी जाएगी परन्तु यह निश्चित साधारण दर से कम नहीं हो सकती। आयोजना में क्षतिपूर्ति के मामलों पर विचार करने के लिये साधारण न्यायालयों के स्थान पर एक विशेष व्यवस्था का सुझाव है। यदि दुर्घटना घातक है तो आश्रितों को कुल मिला कर ३ पौंड का एकमुश्त अनुदान दिया जाएगा।

आयोजना में किसी वयस्क व्यक्ति की मृत्यु पर २० पौंड, १० और २१ वर्ष के बीच के व्यक्ति की मृत्यु पर १५ पौंड, ३ और १० वर्ष के बच्चे की मृत्यु पर १० पौंड और ३ वर्ष से नीचे के बच्चों के मरने पर ६ पौंड का अन्तिम संस्कार अनुदान दिए जाने की भी व्यवस्था है।

वृद्धावस्था पेन्शन — पुरुषों को वृद्धावस्था पेन्शन ६५ वर्ष और स्त्रियों को ६० वर्ष की आयु में दी जाएगी। इसकी दर अविवाहित व्यक्ति के लिए २४ शि० और दम्पति के लिए ४० शि० है चाहे दूसरे साथी की आयु कुछ भी हो।

आयोजना का प्रशासन और उसकी लागत —

जहाँ तक प्रशासन का प्रश्न है सर विलियम बेवरिज का सुझाव यह था कि प्रशासन के दायित्व को एक संगठित रूप देना चाहिए और एक सामाजिक बीमा निधि के साथ एक सामाजिक सुरक्षा मन्त्रालय (Ministry of Social Security) बनना चाहिए। प्रारम्भ में तो सरकार ने इस सुझाव को स्वीकार नहीं किया परन्तु पृथक रूप से एक राष्ट्रीय बीमा मन्त्रालय (Ministry of National Insurance) बना दिया गया है।

सन् १९४५ में योजना की लागत ६,९७० लाख पौंड लगाई गई थी और १९६५ में ८२८ लाख पौंड (११० करोड़ रुपए) का अनुमान है। यह सब अनुमान सन् १९३८ के मूल्य स्तर से ७५% ऊँचे मूल्य पर आधारित है। मूल्यों के घटने बढ़ने से लाभ और अंशदानों की राशि भी कम या अधिक करनी पड़ेगी।

बेवरिज आयोजना का आलोचनात्मक मूल्यांकन —

इसमें कोई संदेह नहीं कि बेवरिज आयोजना एक ऐसी व्यापक योजना है जो किसी व्यक्ति को जीवन की समस्त विपत्तियों से छुटकारा दिलाने में सहायक हो सकती है। व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु के समय तक (Cradle to the Grave) रक्षा होती है और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसके आश्रितों की भी रक्षा होती है। यदि आयोजना के समस्त सिद्धान्तों को कार्य रूप दिया जाय तो सामाजिक सहायता की दृष्टि से यह लगभग एक साम्यवादी समाज को जन्म देगी। फिर भी इसमें संदेह है कि कोई देश इतने उच्च स्तर की सुरक्षा की व्यवस्था कर सकता है जब तक कि उत्पादन एवं राष्ट्रीय आय को बढ़ाने के साधन न अपनाये जायें। यह देखा गया है कि आयोजना को जब तक पूरी तरह न काटा छाँटा न जाये तब तक प्रत्येक वर्ष यह आयोजना ब्रिटेन के करदाताओं के बोझ को जो पहिले से ही अधिक है बढ़ाती रहेगी। एक मुख्य भय यह भी है कि कहीं ऐसी योजना काम करने की प्रेरणा को कम न कर दे। साथ ही जब तक नागरिक पूर्णतया शिक्षित नहीं होंगे और उनमें आत्मसम्मान तथा राष्ट्र के सम्मान की भावना नहीं होगी ऐसी योजना सफल नहीं हो सकती। पूर्ण रोजगार के आदर्श का पालन भी अत्यन्त कठिन है। आयोजना इस पूर्व धारणा पर भी आधारित है कि बेरोजगारी दर कुल व्यक्तियों की केवल ८.५% होगी। यह दर कम है क्योंकि १९३९ में बेरोजगारी दर १५% थी। परन्तु

इसमें भी कोई संदेह नहीं है कि ऐसी योजना से कार्यकुशलता बढ़ेगी और यह जन संख्या को कम करने की विचारधारा को रोकेगी और क्योंकि यह पूर्ण रोजगार मानकर चलती है इससे उत्पादन भी अधिक होगा।

बेवरिज आयोजना का कार्यान्वित होना वर्तमान स्थिति —

बेवरिज रिपोर्ट में लोगों ने बहुत रुचि दिखाई और सरकार द्वारा भी यह सामाजिक सुरक्षा के भविष्य के हित का आधार मान ली गई। महायुद्ध के पश्चात् कुछ ही वर्षों में बहुत से अधिनियमों द्वारा जिनको कि ५ जुलाई सन् १९४८ में कार्यरूप दिया गया सामाजिक सुरक्षा की एक नवीन व्यापक प्रणाली का उदय हुआ। बाद के अधिनियमों द्वारा इसमें बहुत से संशोधन किये गये हैं। वर्तमानकाल में पारिवारिक भत्ते राष्ट्रीय बीमा औद्योगिक क्षति बीमा राष्ट्रीय सहायता एवं राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा आदि मिलकर इंग्लैण्ड में एक ऐसी सामाजिक सुरक्षा प्रणाली का निर्माण करते हैं जिसमें कि किसी व्यक्ति का जीवन स्तर एक न्यूनतम स्तर से नीचे किसी भी दशा में नहीं गिर सकता।

पारिवारिक भत्ते (Family Allowances)— प्रथम बालक को छोड़कर निर्धारित सीमा से कम आयु वाले प्रत्येक बालक को यह भत्ता सरकार द्वारा दिया जाता है। यह सीमा स्कूल जाने की आयु तक होती है जो साधारणतः १५ वर्ष होती है और यदि बच्चा स्कूल में हो अथवा शिक्षार्थी हो तो यह सीमा १८ वर्ष तक की भी हो सकती है। पारिवारिक भत्ता योजना प्रथम बार ६ अगस्त सन् १९४६ में जून १९४५ के पारिवारिक भत्ता अधिनियम के अन्तर्गत लागू की गई। भत्ते की दर ५ शि प्रति सप्ताह थी परन्तु फिर उसे १९५२ के पारिवारिक भत्ता एवं राष्ट्रीय बीमा अधिनियम (Family Allowances and National Insurance Act) के अन्तर्गत बढ़ाकर ८ शि प्रति सप्ताह कर दिया गया। फिर सन् १९५६ के एक ऐसे ही अधिनियम द्वारा इस भत्ते की दर तीसरे तथा उसके बाद के बच्चों के लिये १० शि० प्रति सप्ताह कर दी गई है।

राष्ट्रीय बीमा (National Insurance) —सन् १९४६ के राष्ट्रीय बीमा अधिनियम को ५ जुलाई सन् १९४८ को पूर्ण रूप से कार्यान्वित किया गया। तब से इसे कई बार अर्थात् सन् १९४९ १९५१ १९५२ १९५३ १९५४ १९५५, १९५६, १९५७ १९५८ एवं १९५९ में संशोधित किया जा चुका है। यह अधि नियम ग्रेट ब्रिटेन में स्कूल छोड़ने की आयु के ऊपर आयु वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिये लागू होता है। वृद्ध व्यक्ति, बच्चों विवाहित स्त्रियों एवं अल्प आय वाले व्यक्तियों के अतिरिक्त सबको साप्ताहिक निर्धारित अंशदान देना पड़ता है। अंशदानों को तीन वर्गों में बांटा गया है—(१) रोजगार पर लगे व्यक्ति (२) स्वयं रोजगार करने वाले व्यक्ति (३) ऐसे व्यक्ति जो रोजगार पर न लगे हों। सितम्बर सन् १९५९ में अंशदान की साप्ताहिक दरें अधोलिखित तालिका में दी गई हैं —

वर्ग	पुरुष (क)						महिलायें (क)					
	राष्ट्रीय बीमा (ख)		स्वास्थ्य बीमा		योग		राष्ट्रीय बीमा (ख)		स्वास्थ्य बीमा		योग	
वर्ग १	शि०	पें०	शि०	पें०	शि०	पें०	शि०	पें०	शि०	पें०	शि०	पें०
रोजगार पर लगे हुए व्यक्ति												
कर्मचारियों द्वारा अंशदान	८	०½	१	१०½	९	११	६	७½	१	४½	८	०
मालिकों द्वारा अंशदान	७	९½		५½	८	३	६	३½		५½	६	९
योग	१५	१०	२	४	१८	२	१२	११	१	१०	१४	[illegible]
वर्ग २ स्वयं रोजगार करने वाले व्यक्तियों का अंशदान	६	१०	२	२	९	०	८	४	१	८	१०	०
वर्ग ३ ऐसे व्यक्तियों का अंशदान जो रोजगार पर नहीं लगे हैं।	७	५	२	२	९	७	२	११	१	५	७	०

(क) १८ वर्ष से कम आयु के लड़के लड़कियों को कम दर से अंशदान देना पड़ता है।

(ख) इसके अन्तर्गत वर्ग एक में औद्योगिक क्षति के लिये अंशदान भी आ जाते हैं। इनकी दर कर्मचारियों के लिये ४ पें० और मालिकों के लिये ५ पें० प्रति पुरुष है। प्रत्येक महिला के लिये अंशदान की दर कर्मचारियों से ३ पें० और मालिकों से ४ पें० है।

जहाँ तक लाभों का प्रश्न है इस योजना में बीमारी, बेरोजगारी, मातृत्व-हित और वैधव्य लाभ, अभिरक्षा भत्ता, अवकाश प्राप्ति की पेंशन और मृत्यु अनुदान की व्यवस्था है। प्रथम वर्ग के व्यक्तियों को सब लाभ मिलते हैं, द्वितीय वर्ग के व्यक्तियों को बेरोजगारी एवं औद्योगिक क्षति लाभ के अतिरिक्त सब लाभ उपलब्ध हैं और तृतीय वर्ग के व्यक्तियों के लिये बीमारी, बेरोजगारी, औद्योगिक क्षति और मातृत्व-हित लाभ के अतिरिक्त समस्त लाभ उपलब्ध हैं। इनको पाने की शर्त यह है कि एक विशेष काल के लिए कम से कम कुछ अंशदान दिये जायें परन्तु अंशदान देने की यह शर्त अभिरक्षकों के भत्ते और औद्योगिक क्षति के लिये लागू नहीं होगी।

लाभों की दरों में समय-समय पर वृद्धि की गई है। १९५९ में जो दरें थीं वह निम्नलिखित हैं —

बीमारी लाभ की निश्चित साप्ताहिक दर, विवाहित स्त्रियों को छोड़कर १८ वर्ष स अधिक आयु वाले स्त्री और पुरुषों के लिये ५ शि है। इसके अतिरिक्त वयस्क आश्रित के लिये ३ शि० प्रथम बालक के लिये १२ शि एवं अतिरिक्त प्रत्येक बालक के लिये ७½ शि० और दिया जाता है। विवाहिता स्त्री के लिये साप्ताहिक दर १४ शि है परन्तु यदि उसका अपने पति से सम्बन्ध विच्छेद हो गया हो अथवा उसका पति निर्बल हो तो उसे ५ शि प्रति सप्ताह मिलता है। बेरोजगारी लाभ की दरें बीमारी लाभ के समान हैं। प्रारम्भ में तो बेरोजगारी लाभ १० सप्ताह के लिये दिया जाता है परन्तु बाद में यह अधिक से अधिक १९ मास तक दिया जा सकता है। मातृत्व हित लाभ की दर ५० शि० प्रति सप्ताह है जो प्रसवकाल की अनुमानित तिथि से ११ सप्ताह पहिले से प्रारम्भ कर दिया जाता है और उन महिला श्रमिकों का जो अंशदान की शर्त पूरी करती हैं १८ सप्ताह तक दिया जाता है। गृहणियों को प्रसवकाल में १२ पौंड १ शि का मातृत्व-हित अनुदान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त ५ पौंड का और अनुदान दिया जाता है यदि स्त्री प्रसवकाल में घर पर हो और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के अन्तर्गत निःशुल्क सेवा का प्रयोग न करती हो। जुड़वां बच्चों के जन्म पर यदि बच्चा जन्म के १२ घंटे बाद तक जीवित रहता है तो १२ पौंड १० शि प्रति बच्चे पर अतिरिक्त सहायता मिलती है। विधवा लाभ की भी व्यवस्था है जिसमें पहले बालक के बाद अन्य प्रत्येक बच्चे के लिये २ शि० के संतान भत्ते के अतिरिक्त ७ शि का विधवा भत्ता मिलता है। विधवा माताओं का भत्ता भी मिलता है जिसकी दर ५ शि प्रति सप्ताह है। ५० शि प्रति सप्ताह के हिसाब से विधवा पेंशन भी है परन्तु यह लाभ ५० साल से अधिक आयु वाली विधवाओं को ही कुछ शर्तों को पूरा करने पर मिलता है। २० शि० ९ पें० की अभिरक्षण सहायता उस व्यक्ति को दी जाती है जिसके परिवार में एक ऐसा बच्चा हो जिसके बीमाकृत माता-पिता मर गये हों। अवकाश-प्राप्ति पेंशन ६५ वर्ष से ऊपर आयु वाले पुरुषों और ६ वर्ष से ऊपर आयु वाली स्त्रियों को उस दशा में दी जाती है जबकि वह नियमित कार्य से अवकाश ग्रहण करते हैं और शेष दशाओं में यह आयु ७० वर्ष (पुरुषों के हेतु) और ६५ वर्ष (स्त्रियों के हेतु) है। इसके लिये निश्चित दर ५० शि० प्रति सप्ताह है। किसी वयस्क व्यक्ति की मृत्यु पर अतिरिक्त संस्कार के लिये २५ पौंड और बच्चों एवं बूढ़ों की मृत्यु पर इस से कुछ कम अनुदान दिया जाता है।

औद्योगिक क्षति बीमा योजना (Industrial Injuries Insurance Scheme)—इस योजना ने जुलाई सन् १९४८ में श्रमिकों की क्षतिपूर्ति योजना का स्थान लिया। इससे सम्बन्धित अधिनियम १९४६ से सन् १९५७ तक पारित राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक क्षति) अधिनियम (National Insurance Industrial Injuries

Acts) है। रोजगार के काम में हुई दुर्घटनाओं के कारण क्षति अथवा कुछ विशेष बीमारियों के लगने पर यह लाभ दिये जाते हैं। क्षति लाभ दर वयस्क के लिये ८५ शि० प्रति सप्ताह है। यह लाभ अधिक से अधिक २६ सप्ताह तक दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक वयस्क आश्रित के लिये ३० शि० प्रथम बालक के लिये १५ शि० तथा शेष बालकों के लिये पारिवारिक भत्तों के अतिरिक्त ७ शि० प्रति बालक और दिया जाता है। असमर्थता लाभ की दर १०० प्रतिशत असमर्थता के लिये ८५ शि० से लेकर २० प्रतिशत असमर्थता के लिये १७ शि० प्रति सप्ताह तक है। २०% से कम असमर्थता के लिए २८० पौंड तक की सहायता दी जाती है। असमर्थता की सीमा एक चिकित्सा बोर्ड निश्चित करता है। यदि दुर्घटना अथवा बीमारी के फल स्वरूप किसी बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु हो जाय तो मृत्यु लाभ आश्रितों को दिया जाता है और लाभ की राशि मृतक व्यक्ति और उसके आश्रितों के बीच जो सम्बन्ध रहा हो, उसके आधार पर निश्चित होती है। परन्तु विधवाओं और बालकों को सहायता उसी प्रकार मिलती रहती है।

राष्ट्रीय सहायता (National Assistance)– सन् १९४८ के राष्ट्रीय सहायता अधिनियम के अन्तर्गत राज्य द्वारा अभीष्ट व्यक्तियों के लिये वित्त सहायता प्रदान करने के लिये एक संगठित व्यवस्था है। यह सुविधा उन सेवाओं के स्थान पर है जो भूतकाल में राज्य और स्थानीय अधिकारियों द्वारा प्रदान की जाती थी। सहायता अथवा भत्ते, उन व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये सरकार द्वारा दिये जाते हैं जो कि अपने स्तर को कायम रखने में असमर्थ हैं एवं जो सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत नहीं आते। इस सहायता का उद्देश्य यह भी है कि बीमा लाभ यदि अपर्याप्त हो तो उसकी कमी को पूरा करें। कुछ कल्याण सेवाओं की भी व्यवस्था है जैसे बूढ़े और कमजोर व्यक्तियों के लिये गृह उपलब्ध करना बेघर व्यक्तियों के लिये आश्रय और अपाहिजों के लिये विशेष कल्याण सेवाओं की व्यवस्था।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा (National Health Service) — इसके अन्तर्गत ब्रिटेन के सभी नागरिकों के लिये चिकित्सा व्यवस्था की जाती है चाहे वे राष्ट्रीय बीमा के लिये अंशदान देते हों अथवा न देते हों। यह व्यवस्था हस्पताल और अन्य स्थानों में भी होती है। लागत का अधिकतर भार सरकारी कोष पर ही पड़ता है। लागत तो केवल थोड़ी सी सेवाओं के लिये भी जाती है, जैसे १ शि० प्रति नुस्खा बनाने के हेतु १ पौंड तक दन्त चिकित्सा के हेतु और दाँत बनाने का आधा खर्च और चश्मों की कीमतों का कुछ भाग ही वसूल किया जाता है। इन मामलों में कुछ विशेष परिस्थितियों में छूट भी मिल जाती है। इस विषय से सम्बन्धित जो अधिनियम हैं वह सन् १९४६, १९४९, १९५१ और १९५२ के 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा अधिनियम' (National Health Service Acts) हैं।

प्रथम तीन व्यवस्थाओं के प्रशासन के लिये एक पेन्शन और राष्ट्रीय बीमा मंत्रालय (Ministry of Pensions and National Insurance) स्थापित किया

मात्रों की दरों में समय-समय पर वृद्धि की गई है। १९५९ में जो दरें थीं वह निम्नलिखित हैं —

बीमारी लाभ की निश्चित साप्ताहिक दर, विवाहित स्त्रियों को छोड़कर १८ वर्ष से अधिक आयु वाले स्त्री और पुरुषों के लिये ५० शि० है। इसके अतिरिक्त वयस्क आश्रित के लिये ३० शि० प्रथम बालक के लिये १५ शि० एवं अतिरिक्त प्रत्येक बालक के लिये ७½ शि० और दिया जाता है। विवाहिता स्त्री के लिये साप्ताहिक दर ३४ शि० है परन्तु यदि उसका अपने पति से सम्बन्ध विच्छेद हो गया हो अथवा उसका पति निबल हो तो उसे ५० शि० प्रति सप्ताह मिलता है। बेरोजगारी लाभ की दरें बीमारी लाभ के समान हैं। आरम्भ में तो बेरोजगारी लाभ १ सप्ताह के लिये दिया जाता है परन्तु बाद में यह अधिक से अधिक १९ मास तक दिया जा सकता है। मातृत्व हित लाभ की दर ५० शि० प्रति सप्ताह है जो प्रसवकाल की अनुमानित तिथि से ११ सप्ताह पहिले से प्रारम्भ कर दिया जाता है और उन महिला श्रमिकों को जो म ग्रयाम की शर्त पूरी करती हैं, १८ सप्ताह तक दिया जाता है। प्रसूतियों को प्रसवकाल में १२ पौंड १० शि० का मातृत्व-हित अनुदान दिया जाता है। इसके अतिरिक्त ५ पौंड का और अनुदान दिया जाता है यदि स्त्री प्रसवकाल में घर पर हो और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा के अन्तर्गत निःशुल्क सेवा का प्रयोग न करती हो। जुड़वां बच्चों के जन्म पर यदि बच्चा जन्म के १२ घंटे बाद तक जीवित रहता है तो १२ पौंड १० शि० प्रति बच्चे पर अतिरिक्त सहायता मिलती है। विधवा लाभ की भी व्यवस्था है, जिसमें पहले बालक के बाद अन्य प्रत्येक बच्चे के लिये २० शि० के संतान भत्ते के अतिरिक्त ७ शि० का विधवा भत्ता मिलता है। विधवा माताओं का भत्ता भी मिलता है जिसकी दर ५ शि० प्रति सप्ताह है। ५० शि० प्रति सप्ताह के हिसाब से विधवा पेंशन भी है परन्तु यह लाभ ५० साल से अधिक आयु वाली विधवाओं को ही कुछ शर्तों को पूरा करने पर मिलता है। २० शि० ६ पें० की अभिरक्षण सहायता उस व्यक्ति को दी जाती है जिसके परिवार में एक ऐसा बच्चा हो जिसके वीमाकृत माता-पिता मर गये हों। अवकाश-प्राप्ति पेंशन ६५ वर्ष से ऊपर आयु वाले पुरुषों और ६० वर्ष से ऊपर आयु वाली स्त्रियों को उस दशा में दी जाती है जबकि वह नियमित कार्य से अवकाश ग्रहण करते हैं और शेष दशाओं में यह आयु ७० वर्ष (पुरुषों के हेतु) और ६५ वर्ष (स्त्रियों के हेतु) है। इसके लिये निश्चित दर ५० शि० प्रति सप्ताह है। किसी वयस्क व्यक्ति की मृत्यु पर अन्तिम संस्कार के लिये २५ पौंड और बच्चों एवं बूढ़ों की मृत्यु पर इस से कुछ कम अनुदान दिया जाता है।

औद्योगिक क्षति बीमा योजना (Industrial Injuries Insurance Scheme)—इस योजना ने जुलाई सन् १९४८ में श्रमिकों की क्षतिपूर्ति योजना का स्थान लिया। इससे सम्बन्धित अधिनियम १९४६ से सन् १९५७ तक पारित राष्ट्रीय बीमा (औद्योगिक क्षति) अधिनियम (National Insurance Industrial Injuries

Acts) है। रोजगार के काम में हुई दुर्घटनाओं के कारण क्षति अथवा कुछ विशेष बीमारियों के लगने पर यह लाभ दिये जाते हैं। क्षति लाभ दर वयस्क के लिये ८५ शि० प्रति सप्ताह है। यह लाभ अधिक से अधिक २६ सप्ताह तक दिया जा सकता है। इसके अतिरिक्त एक वयस्क आश्रित के लिये ३० शि० प्रथम बालक के लिये १२ शि तथा शेष बालकों के लिये पारिवारिक भत्तों के अतिरिक्त ७ शि० प्रति बालक और दिया जाता है। असमर्थता लाभ की दर १ प्रतिशत असमर्थता के लिये ८५ शि० से लेकर २० प्रतिशत असमर्थता के लिये १७ शि० प्रति सप्ताह तक है। २०% से कम असमर्थता के लिये २८ पौंड तक की सहायता दी जाती है। असमर्थता की सीमा एक चिकित्सा बोर्ड निश्चित करता है। यदि दुर्घटना अथवा बीमारी के फल स्वरूप किसी बीमाकृत व्यक्ति की मृत्यु हो जाय तो मृत्यु लाभ आश्रितों को दिया जाता है और लाभ की राशि मृतक व्यक्ति और उसके आश्रितों के बीच जो सम्बन्ध रहा हो उसके आधार पर निश्चित होता है। परन्तु विधवाओं और बालकों को सहायता उसी प्रकार मिलती रहती है।

राष्ट्रीय सहायता (National Assistance)— सन् १९४८ के राष्ट्रीय सहायता अधिनियम के अन्तर्गत राज्य द्वारा अभीप्ट व्यक्तियों के लिये वित्त सहायता प्रदान करने के लिये एक संगठित व्यवस्था है। यह सुविधा उन सेवाओं के स्थान पर है जो भूतकाल में राज्य और स्थानीय प्राधिकारियों द्वारा प्रदान की जाती थी। सहायता अथवा भत्ते उन व्यक्तियों की आवश्यकता की पूर्ति करने के लिये सरकार द्वारा दिये जाते हैं जो कि अपने स्तर को कायम रखने में असमर्थ हैं एवं जो सामाजिक सुरक्षा सेवाओं के अन्तर्गत नहीं आते। इस सहायता का उद्देश्य यह भी है कि बीमा लाभ यदि अपर्याप्त हो तो उसकी कमी को पूरा करें। कुछ कल्याण सेवाओं की भी व्यवस्था है जैसे बूढ़े और कमजोर व्यक्तियों के लिये गृह उपलब्ध करना बेघर व्यक्तियों के लिये आश्रय और अपाहिजों के लिये विशेष कल्याण सेवाओं की व्यवस्था।

राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा (National Health Service) — इसके अन्तर्गत ब्रिटेन के सभी नागरिकों के लिये चिकित्सा व्यवस्था की जाती है चाहे वह राष्ट्रीय बीमा के लिए अंशदान देते हों अथवा न देते हों। यह व्यवस्था हस्पताल और अन्य स्थानों में भी होती है। लागत का अधिकतर भार सरकारी कोष पर ही पड़ता है। लागत तो केवल थोड़ी सी सेवाओं के लिये ली जाती है, जैसे १ शि० प्रति नुस्खा बनाने के हेतु, १ पौंड तक दन्त चिकित्सा के हेतु और दांत बनाने का आधा खर्च और चश्मों की कीमतों का कुछ भाग हो वसूल किया जाता है। इस सम्बन्ध में कुछ विशेष परिस्थितियों में छूट भी मिल जाती है। इस विषय से सम्बन्धित जो अधिनियम हैं वह सन् १९४६ १९४९, १९५१ और १९५२ के 'राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा अधिनियम' (National Health Service Acts) हैं।

प्रथम तीन व्यवस्थाओं के प्रशासन के लिये एक पेन्शन और राष्ट्रीय बीमा मंत्रालय (Ministry of Pensions and National Insurance) स्थापित किया

गया है जिसका मुख्य कार्यालय मम्यन में है। इसमें ९० कर्मचारी कार्य करते हैं। एक केन्द्रीय रिकार्ड कार्यालय भी जो इंगलैंड के प्रत्येक नागरिक की रिकार्ड कायम रखता है न्यूकैसिल में है। इसमें लगभग ७० कर्मचारी हैं। क्षेत्रीय कार्यालयों एवं स्थानीय कार्यालयों का भी निर्माण हुआ है। राष्ट्रीय बीमा योजना के प्रशासन के लिये कुल कर्मचारियों की संख्या ३५,० और ४०,००० के बीच में है। ये कर्मचारी बहुत कार्य दक्ष भी है। राष्ट्रीय सहायता का प्रशासन राष्ट्रीय सहायता बोर्ड द्वारा होता है और राष्ट्रीय स्वास्थ्य सेवा का प्रशासन स्वास्थ्य मंत्री द्वारा होता है।

सामाजिक कल्याण की अन्य व्यवस्था —

इस प्रकार स्पष्ट है कि ब्रिटेन में सामाजिक सुरक्षा की एक व्यापक योजना विद्यमान है। जो समाज सेवायें सब प्रदान की जा रही हैं उनको भी हमें उन कई प्रकार की सेवाओं की पृष्ठभूमि को दृष्टि में रखते हुए देखना चाहिये जो सेवायें सबके लिये एक समान उपलब्ध हैं। ऐसी सेवाएं निम्नलिखित हैं शिक्षा स्कूल में निःशुल्क भोजन स्थानीय प्राधिकारियों की आवास योजनाएं, असमर्थ व्यक्तियों एवं अनाथों की देखभाल माताओं एवं शिशुओं के लिये निःशुल्क दूध प्रसूतिका एवं बाल कल्याण केन्द्र आदि। सन् १९४८ के बालक अधिनियम के अनुसार स्थानीय प्राधिकारियों का कर्तव्य है कि वह ऐसे सब बालकों की देखभाल करें जिनकी आयु १७ वर्ष से कम हो और जिनके माता-पिता व अभिरक्षक भी न हों या जो परित्यक्त हों या जिनके माता पिता उनकी व्यवस्था करने में असमर्थ हों। इसके अतिरिक्त बहुत से ऐच्छिक संगठन भी जनता के हेतु कल्याण-कार्य कर रहे हैं। सामाजिक सेवा योजनाओं में उनका महत्वपूर्ण योग रहा है। ब्रिटेन में ऐच्छिक दान समितियों एवं संस्थाओं की संख्या हजारों में है और उनमें बहुत सी संस्थाओं ने आपस में मिल जुल कर और उसी कार्य में रत स्थानीय प्राधिकारियों से मिलकर अपने कार्य को संगठित किया है। इस प्रकार की समितियों के नाम ये हैं—राष्ट्रीय सामाजिक सेवा कौंसिल (National Council of Social Service), परिवार कल्याण परिषद् (Family Welfare Association) राष्ट्रीय वृद्ध कल्याण समिति, राष्ट्रीय युवक ऐच्छिक संघ का स्थायी सम्मेलन (Standing Conference of National Voluntary Youth Organization), शिशु गृहों की राष्ट्रीय संगठित कौंसिल (National Council of Association of Children's Home), राष्ट्रीय मातृत्व हित एवं शिशु कल्याण कौंसिल अपंगों की देखभाल के लिये केन्द्रीय कौंसिल और मातृत्व हित शिशु और असमर्थ व्यक्तियों के कल्याण के लिये अन्य संस्थाएं। इसके अतिरिक्त ब्रिटिश रैडक्रॉस सोसायटी भी असमर्थ दुर्बल एवं बीमार व्यक्तियों के लिये अमूल्य कार्य कर रही है। महायुद्ध के बाद एक नई ऐच्छिक सेवा विवाह पथ प्रदर्शक कौंसिल (Marriage Guidance Council) के नाम से विवाह एवं पारिवारिक जीवन की शिक्षा का प्रचार करने के लिये बनी है। इसके

अतिरिक्त ब्रिटेन में बहुत से समाज सेवक संघ भी हैं जो कि ब्रिटिश समाज सेवक संघ (British Federation of Social Workers) से सम्बन्धित हैं ।

उपरोक्त बातों से यह सिद्ध होता है कि रूस के अतिरिक्त शायद ब्रिटेन ही ऐसा देश है जहाँ कि राज्य ने जनता को सामाजिक सुरक्षा देने का पूर्ण दायित्व लिया है और जहाँ राज्य द्वारा अधिकतम सीमा तक सामाजिक सेवाएं उपलब्ध की जाती हैं ।

सोवियत रूस में सामाजिक बीमा प्रणाली —
(Social Insurance System in Soviet Russia)

यहाँ सोवियत रूस की सामाजिक बीमा प्रणाली का विवरण देना भी रुचिकर होगा । सत्तारूढ़ होने के कुछ दिन पश्चात् १४ नवम्बर सन् १९१७ को सोवियत सरकार ने सामाजिक बीमे के लिये प्रथम बार आदेश निकाला । इसका उद्देश्य यह था कि 'ज़ार' के समय में जो अपर्याप्त सामाजिक बीमा प्रणाली थी उसमें यथा सम्भव उन्नति की जाय । इसमें निम्नलिखित बातों की व्यवस्था थी— (१) नगरों के श्रमिकों एवं कर्मचारियों के लिए बीमा योजना का विस्तार करना (२) बेरोजगारी अथवा और किसी कारणवश आय शक्ति की हानि को पूरा करना (३) उद्योग द्वारा ही बीमा अंशदान का भुगतान (४) असमर्थता में पूर्ण मजदूरी देने की व्यवस्था (५) बीमाकृत व्यक्तियों द्वारा ही बीमा व्यवस्था का स्वयं प्रशासन करना ।

सोवियत शासन के आरम्भ की कठिनाइयों के कारण सामाजिक बीमा योजना के मूल सिद्धान्त केवल सन् १९२२ में हो गई आर्थिक नीति (New Economic Policy) के अन्तर्गत कार्यान्वित किये जा सके । एक श्रमिक संहिता भी घोषित की गयी जिसके अन्तर्गत निम्न सुविधाओं को प्रदान करने की व्यवस्था थी चिकित्सा सम्बन्धी सहायता अस्थायी असमर्थता के लिये लाभ कुछ अतिरिक्त लाभों का दिया जाना छोटे बच्चों के लिये भोजन निराश्रितों की सहायता मृत्यु संस्कार भत्ता और असमर्थता वृद्धावस्था एवं जीविका कमाने वाले की मृत्यु होने पर पेन्शनें । रूस में एक ऐसा नियम भी बना दिया गया है जो दूसरे देशों की सामाजिक बीमा योजनाओं में नहीं पाया जाता । इस नियम के अनुसार बीमा प्रीमियम केवल कार्य पर लगाने वालों के द्वारा ही देने की व्यवस्था है । यह प्रीमियम उद्योग के मजदूरी बिल की एक निश्चित प्रतिशत के बराबर राशि के रूप में काटकर श्रमिक संघों की बीमा निधि में जमा कर दिया जाता है । इससे बीमाकृत कर्मचारियों और श्रमिकों की मजदूरी में कोई कमी नहीं होती । चिकित्सा सम्बन्धी सहायता जो कि रूस में दी जाती है सामाजिक बीमा योजना के अन्तर्गत नहीं आती । परन्तु यह सामाजिक सेवाओं एवं अन्य सुविधाओं से सम्बन्धित है । रूस में सामाजिक बीमा प्रणाली केवल नौकरी पेशा व्यक्तियों के लिये ही है और इस प्रकार कृषि श्रमिकों को छोड़ दिया गया है । इनकी रक्षा पृथक सामूहिक संगठनों द्वारा की जाती है ।

रूस में सामाजिक बीमे के मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित है—(१) सन् १९३३ से इसका प्रशासन श्रमिक संघों द्वारा होता है और इसका संगठन निधि और कार्य सब श्रमिक संघों के हाथ में है। (२) केवल रोजगार पर लगे हुए व्यक्तियों का ही सामाजिक बीमा किया जाता है। (३) सामाजिक बीमा वह बीमा है जिसमें बीमा किस्त (प्रीमियम) बीमाकृत व्यक्तियों द्वारा नहीं वरन् कार्य पर लगाने वालों के द्वारा दिया जाता है। यह प्रीमियम उद्योग के मजदूरी बिल के एक प्रतिशत मान के रूप में एकमुश्त दिया जाता है। यहाँ तक कि यदि कार्य पर लगाने वालों के द्वारा प्रीमियम किसी कारणवश न दिया जा सका हो तो भी व्यक्तिगत रूप से श्रमिक का बीमा बना रहता है। (४) बीमा लाभ का पूरा लाभ उठाने के लिये श्रमिक संघ की सदस्यता एक शर्त है और जो श्रमिक संघ के सदस्य नहीं होते उनको आधा ही लाभ मिलता है। (५) सामाजिक बीमा श्रमिकों को स्थायी बनाने और उत्पादन में वृद्धि करने की सरकारी आयोजना से सम्बन्धित है। अधिकतम भुगतान उनको मिलता है जिन्होंने एक ही उद्योग में अधिक से अधिक समय तक कार्य किया हो। रोजगार से बर्खास्त किये गये व्यक्तियों को कम सामाजिक सुरक्षा उपलब्ध है। (६) सन् १९३० में जब प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के अन्तर्गत श्रम शक्ति की माँग के बढ़ने पर बेरोजगारी समाप्त हो गई तो बेरोजगारी बीमा को भी समाप्त कर दिया गया।

अब रूस में सामाजिक बीमे की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं— (क) अस्थायी रूप से अशक्त श्रमिकों की सहायता (ख) स्थायी असमर्थता और वृद्धावस्था में पेन्शन की व्यवस्था।

अस्थायी रूप से अशक्त श्रमिकों को बिना किसी शर्त के सहायता मिलती है और यदि यह अशक्तता रोजगार सम्बन्धित बीमारी अथवा क्षति के कारण हुई हो तो औसत वेतन के १०० % तक सहायता मिलती है। अन्य दशाओं में सहायता सेवा अवधि के आधार पर मिलती है जैसे ६ वर्ष अथवा अधिक समय कार्य करने के पश्चात् औसत वेतन का १००% लाभ ३ से ६ वर्ष कार्य करने पर ८०%, २ से ३ वर्ष कार्य करने पर ६०% और २ वर्ष से कम समय कार्य करने पर ५०% लाभ मिलता है। जो श्रमिक संघ के सदस्य नहीं हैं उनको आधा लाभ उपलब्ध होता है। ऐसे श्रमिक जो या तो कार्य से बरखास्त कर दिये गये हैं अथवा जिन्होंने अपनी रुचि से कार्य छोड़ दिया है, अस्थायी असमर्थता लाभ के अधिकारी तभी हो सकते हैं जबकि नये रोजगार में वह कम से कम ६ मास तक कार्य कर चुके हों।

स्थायी असमर्थता एवं वृद्धावस्था में पेंशन केवल तभी प्रदान की जाती है जब यह असमर्थता रोजगार से ही सम्बन्धित बीमारी अथवा क्षति द्वारा हुई हो और अन्य परिस्थितियों में यह पेंशन आयु एवं सेवा अवधि पर निर्भर होती है। पेंशन की राशि इस बात पर निर्भर करती है कि श्रमिक को क्षति के समय कितना वेतन मिलता था। इस राशि की प्रतिशत मात्रा असमर्थता की सीमा के अनुसार निर्धारित होती है। अधिकतम पेंशन की राशि अन्तिम मजदूरी का ६६ प्रतिशत होती है।

रूस में सामाजिक बीमा प्रणाली के साथ-साथ अन्य सामाजिक सेवाओं की भी व्यवस्था है। इस व्यवस्था में वे सब प्रयत्न आ जाते हैं जो जनसाधारण की बीमारी के दिनों में जीवन की सुविधाएँ उपलब्ध करने के लिये किये जाते हैं। यह निम्नलिखित हैं—

(१) 'जनता स्वास्थ्य व्यवस्था' के अन्तर्गत कार्य करने वाले प्रत्येक व्यक्ति के लिए चिकित्सालयों में निःशुल्क चिकित्सा। (२) एक ही उद्योग में कम से कम ११ माह तक निरन्तर कार्य करने के पश्चात् सवेतन २ सप्ताह का अवकाश। (३) विश्राम-गृहों और सनीटोरियम की व्यवस्था यह आंशिक रूप से श्रमिक संघों द्वारा और आंशिक रूप से अपने श्रमिकों के लिये औद्योगिक संस्थाओं द्वारा बनाये जाते हैं। इनके प्रयोग के लिए सेवा अवधि की शर्त भी है और इनके लिए मजदूरी के अनुसार सम्भार भी लगाया जाता है। (४) नगरों और उपनगरों में विश्राम और सांस्कृतिक कार्यों के लिये पार्कों की व्यवस्था जिनमें रविवार अथवा अन्य सार्वजनिक छुट्टियों में लोग जाया करते हैं। (५) प्रारम्भिक शिक्षा के लिए निःशुल्क सुविधाओं की उपलब्धि। (६) गर्भवती माताओं को और प्रसवकाल के तुरन्त बाद ही महिला श्रमिकों को मातृत्व-हित लाभ देने की व्यवस्था है जो कानूनी तौर पर कार्य पर लगाने वालों के द्वारा की जाती है।

माताओं का कल्याण एवं उनकी रक्षा राज्य का सर्वप्रथम कार्य माना जाता है। कुछ श्रमिक अधिनियम गर्भवती माताओं के लिए बनाये गये हैं। उनके अनुसार गर्भवती माताओं को काम पर लगे रहने का आश्वासन होता है। किसी महिला को गर्भवती होने के कारण कार्य न देने पर ६ मास का कारावास अथवा १००० रूबल का दण्ड दिया जा सकता है। ऐसे ही अपराध को दोहराने पर दो वर्ष के कारावास का दण्ड मिलता है। गर्भवती माता को अपनी उसी मजदूरी मिलने का भी आश्वासन होता है जो उसको गर्भवती होने से पूर्व मिलती थी और इस कारण मजदूरी में कटौती करने पर वही दण्ड दिया जाता है जो नौकरी न देने पर दिया जाता है। गर्भावस्था में उनको वेतन में कटौती किये बिना हल्का कार्य करने को दिया जाता है और गर्भ के चार मास पूरे होने के पश्चात् गर्भवती स्त्री को समयोपरि (Overtime) कार्य करना वर्जित है। गर्भवती स्त्री को प्रसव के पूर्व ३५ दिन की छुट्टी एवं राज्य से अनुदान प्राप्त करने का अधिकार है। पहले कानून के अनुसार यह अनुपस्थिति अवकाश प्रसव के बाद २८ दिन तक चलता था। परन्तु जुलाई सन् १९५४ में यह अवधि बढ़ाकर ४२ दिन कर दी गई है। यह अवकाश पूरे वेतन सहित मिलता है। असाधारण प्रसव पर इस छुट्टी की कुल अवधि ९१ दिन तक बढ़ सकती है। युद्ध काल में गर्भवती माताओं के लिए राशन की पूर्ण सुविधाएं उपलब्ध थीं। ट्रामों बसों और रैलों में उनके लिये विशेष स्थानों की व्यवस्था होती है और यात्रा के समय उनको लाइन में लगकर प्रतीक्षा किये बिना ही स्थान दिया जाता है। समस्त देश में स्त्रियों व बच्चों की चिकित्सा का

ध्यान रखने वाले हजारों केन्द्र हैं। फैक्ट्रियों में बच्चों को दूध पिलाने वाली माताओं के लिये पृथक कक्षों की और विशेष "स्त्री स्वास्थ्य विज्ञान" कक्षों की व्यवस्था है। प्रसव काल के पश्चात् छुट्टी समाप्त होने पर स्त्रियों को विशेष कार्य की सुविधायें दी जाती हैं। कार्य-काल में बच्चों को दूध पिलाने के लिए उन्हें अतिरिक्त अवकाश दिया जाता है। यदि दो वर्ष से कम आयु का बालक बीमार पड़े तो उसकी माता को विशेष छुट्टी प्रदान की जाती है। माता को अपने प्रथम बालक के लिये वस्त्रादि बनाने के लिए नकद भत्ता भी दिया जाता है।

रूस में अविवाहित माताओं की भलाई एवं उनके बच्चों की रक्षा के लिये एक विशेष व्यवस्था है। अपने बच्चे का पालन-पोषण करने के लिए उन्हें राज्य द्वारा विशेष भत्ता मिलता है और माताओं और बच्चों की रक्षा करने की उपरोक्त सभी सुविधाएं अविवाहित माताओं को भी उपलब्ध होती हैं। सोवियत परिस्थितियों के अन्तर्गत एक अविवाहित माता देश के सब अधिकारों से परिपूर्ण नागरिक है और सोवियत कानून उसका अपमान करने वाले और उसके मातृत्व का अपमान करने वाले को दण्ड देता है। रूस में अधिक बालकों वाली माताओं को पारितोषिक दिये जाते हैं।

समुक्त राष्ट्र अमरीका में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था :—

अमरीका में सर्वप्रथम सामाजिक सुरक्षा इस रूप में दी जाती थी कि जो भी व्यक्ति कृषि कार्य करना चाहता था उसे सरकार द्वारा १६० एकड़ भूमि तक निःशुल्क मिल जाती थी। अमेरिका प्राकृतिक साधनों में बहुत धनवान है। देश की अर्थ व्यवस्था सदा विकसित ही होती रही है। यहाँ पूर्ण रोजगार भी है और मजदूरी दर भी ऊँची है। अमरीका एक धनवान देश है। यहाँ प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति आय २७२१ डालर है। इसलिये प्रत्येक अमेरिकन कुछ बचत करता है, अपना जीवन बीमा कराता है और उसके पास मकान मोटर और अन्य व्यक्तिगत सम्पत्ति होती है। उसका न केवल जीवन स्तर ही ऊँचा है वरन् धनवान होने के कारण उसे स्वतः ही सुरक्षा मिल जाती है। परन्तु फिर भी एक ऐसे देश में जहाँ औद्योगीकरण की सीमा बहुत अधिक है व्यक्तिगत प्रयत्नों से सभी सामाजिक संकटों में पूर्ण रूप से सुरक्षा नहीं मिल पाती। इसलिये सरकार ने भी सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के लिए कुछ पग उठाये हैं। परन्तु यह सुरक्षा केवल एक आधारशिला का ही कार्य करती है और अपने प्रयत्नों तथा अपने मालिकों की सहायता से प्रत्येक व्यक्ति उस आधार शिला पर अपनी सुरक्षा की विस्तृत रूप से व्यवस्था करता है।

अमरीका में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था के अन्तर्गत सभी नागरिक आ जाते हैं। राष्ट्रीय स्तर पर जो इस व्यवस्था में जो कार्य क्रम है वह वृद्धावस्था उत्तरजीवी और असमर्थता बीमे से सम्बन्धित है। इसके अतिरिक्त प्रत्येक राज्य (State) द्वारा श्रमिक क्षतिपूर्ति तथा बेरोजगारी बीमे की व्यवस्था भी की जाती है। सामाजिक बीमे के कार्य क्रम के पूरक के रूप में संघीय सरकार द्वारा राज्यों को इस हेतु अनुदान

दिया जाता है कि वे अभीष्ट व्यक्तियों के लिये चिकित्सा सुविधाओं तथा अन्य सेवाओं के लिये वित्तीय सहायता प्रदान कर सकें। इसके अतिरिक्त कुछ व्यावसायिक पुनर्वास की सेवायें भी प्रदान की जाती हैं तथा बच्चों व माताओं के लिये स्वास्थ्य और कल्याण सेवाओं के सार्वजनिक कार्य क्रम भी हैं। इसके अतिरिक्त बहुत सी गैर-सरकारी संस्थाओं द्वारा भी सामाजिक सुरक्षा के कार्य क्रम चलाये जाते हैं।

अमरीका में वृद्धावस्था अवकाश लाभ (Old Age Retirement Benefits) श्रमिकों को ६५ वर्ष की आयु पर अवकाश ग्रहण करने पर प्रदान किये जाते हैं और यदि ६२ वर्ष की आयु पर अवकाश ग्रहण कर लिया जाता है तो लाभ कम दर पर दिया जाता है। कुछ आश्रितों को भी यह लाभ दिये जाते हैं उदाहरणतया यदि पत्नी या पति की आयु ६२ वर्ष से अधिक हो या १८ वर्ष से कम आयु के बच्चे हों, या १८ वर्ष की आयु से पूर्व कोई असमर्थता हो गई हो या पत्नी किसी बच्चे की देखरेख करती हो।

उत्तरजीवी लाभ (Survivors Benefits) एक बीमाकृत श्रमिक की मृत्यु पर आश्रितों को दिये जाते हैं। मृत्यु होने पर इकमुश्त राशि भी दी जाती है।

असमर्थता लाभ (Disability Benefits) उन श्रमिकों को दिया जाता है जो आंशिक या पूर्ण रूप से असमर्थ हो गये हों और उनके वंश हो आश्रितों को लाभ दिया जाता है जिनका उल्लेख वृद्धावस्था लाभ के अन्तर्गत किया गया है।

यह लाभ औसतन आय के अनुसार दिये जाते हैं और इस बात पर निर्भर नहीं करते कि अंशदान कितना है। उपरोक्त वृद्धावस्था उत्तरजीवी और असमर्थता लाभ एक ही कार्य क्रम के अन्तर्गत आते हैं। उत्तरजीवी लाभ के लिये श्रमिक अथवा १½ वर्ष की नौकरी के पश्चात् अधिकारी हो जाता है। परन्तु वृद्धावस्था और असमर्थता लाभ पाने के लिये नौकरी की अवधि अधिक रखी गई है। यह लाभ उसी समय दिये जाते हैं जब श्रमिक की आय बिल्कुल बंद हो गयी हो या बहुत कम हो गई हो। इन लाभों में परिवार के सदस्यों का भी ध्यान रखा जाता है। इन लाभों के लिये वित्तीय व्यवस्था पूर्ण रूप से श्रमिकों और मालिकों के अंशदान द्वारा होती है। जो व्यक्ति स्वयं रोजगार पर लगे हुए हैं और जिनका कोई मालिक नहीं है उन्हें भी अंशदान देना होता है। अंशदान न्यास निधियों (Trust Funds) में संचित किये जाते हैं जिनका श्रमिक मालिक और जनता के कुछ प्रतिनिधियों से बनाई गई एक सलाहकार परिषद् द्वारा समय समय पर सर्वेक्षण किया जाता है। असमर्थ श्रमिकों के पुनर्वास (Rehabilitation) के हेतु भी प्रयत्न किये जाते हैं।

श्रमिक क्षतिपूर्ति के लिये प्रत्येक राज्य द्वारा व्यवस्था की गई है और ऐसे श्रमिकों को जो संघीय सरकार द्वारा कार्य पर लगाये जाते हैं क्षतिपूर्ति संघीय विधान के अन्तर्गत दी जाती है। क्षतिपूर्ति उस समय दी जाती है जब श्रमिक को कार्य करते समय कुछ हानि पहुंचती है और घातक हानि पर परिवारों को सहायता दी जाती है। क्षतिपूर्ति विधान प्रत्येक राज्य में भिन्न भिन्न है। परन्तु सबका उद्देश्य

असमर्थ श्रमिकों को तत्काल चिकित्सा सहायता तथा साप्ताहिक नकदी लाभ देना है जो श्रमिकों की लगभग ⅔ मजदूरी के बराबर होता है। घातक क्षति होने पर अन्तिम संस्कार के लिए व्यय तथा उत्तर-जीवियों को नकदी लाभ दिया जाता है। क्षतिपूर्ति की लागत मालिकों द्वारा वहन की जाती है।

बेरोजगारी के लिए एक संघीय राज्य-बेरोजगारी बीमा योजना है जिसकी वित्त व्यवस्था मालिकों द्वारा की जाती है। कृषि तथा घरेलू श्रमिकों को छोड़कर तथा स्थानीय सार्वजनिक कर्मचारियों को छोड़कर यह योजना सभी श्रमिकों पर लागू होती है। साधारणतया २६ सप्ताह तक बेरोजगारी सहायता दी जाती है जो औसत साप्ताहिक मजदूरी का लगभग ५ % होती है। परन्तु प्रत्येक राज्य में अधिकतम राशि भी निश्चित कर दी गई है।

अस्थायी असमर्थता होने पर भी ११ से २६ सप्ताह तक लाभ प्रदान किये जाते हैं। यह लाभ भी जितनी मजदूरी में हानि होती है उसकी आधी राशि के बराबर होते हैं।

अमरीका में इस सुरक्षा के अतिरिक्त सरकार द्वारा और भी सहायता दी जाती है। उदाहरणतया—वृद्ध, अन्धे पूर्णरूप से असमर्थ बेरोजगार और परिवार से पृथक बच्चों आदि के लिए जो समाज सेवायें की जाती हैं उनमें संघ व राज्य द्वारा वित्तीय सहायता दी जाती है। बच्चों के स्वास्थ्य व कल्याण के लिये भी तथा माताओं के हित के लिये भी अनुदान दिये जाते हैं।

सामाजिक बीमे तथा सरकारी सहायता के अतिरिक्त निजी मालिकों द्वारा भी कई प्रकार की सुरक्षा प्रदान की जाती है जो मालिकों श्रमिकों या सामूहिक सौदेबाजी द्वारा निर्धारित की जाती है। इनमें अस्वस्थता बीमारी चिकित्सा हस्पताल स्थायी असमर्थता पेन्शन बेरोजगारी लाभ आदि की सुविधाएं प्रदान की जाती हैं। ऐच्छिक रूप से भी कई सामाजिक संस्थायें इस प्रकार के लाभ प्रदान कर रही हैं।

इस प्रकार अमरीका में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था कई प्रकार से प्रदान की जा रही है परन्तु यह निजी संगठन तथा व्यक्तिगत प्रयत्नों में केवल पूरक का कार्य करती है।

आस्ट्रेलिया में सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था —

सामाजिक सुरक्षा व्यवस्था आस्ट्रेलिया की एक विशेषता है। शताब्दी के प्रारम्भ में सामाजिक समस्याओं पर होने वाले बहुत से प्रयोगों के कारण उसे संसार की सामाजिक प्रयोगशाला" (Social Laboratory of the World) का नाम दिया गया था। सन् १९ १ में संघीय (Federal) विधान से पूर्व भी स्वास्थ्य शिक्षा फैक्ट्री कानून श्रमिक क्षतिपूर्ति लाभ कल्याण आदि सामाजिक कल्याण कार्य करना राज्य का ही उत्तरदायित्व था। संघीय विधान के पश्चात् से कॉमनवेल्थ सरकार ने सामाजिक सेवाओं में अधिक रुचि ली है और सरकार के कल्याण कार्यों [illegible] हुए उसे वास्तव में राष्ट्रीय कहा जा सकता

है। प्रथम संघीय सामाजिक सेवा (Federal Social Service) वृद्धावस्था पेन्शन की थी जो सन् १९०९ में आरम्भ हुई और इसके पश्चात् सन् १९१० में असमर्थता पेन्शन व्यवस्था की गई। सन् १९१२ में मातृत्व-हित भत्ता दिया जाता था। उसके पश्चात् बहुत वर्षों तक संघीय सरकार द्वारा बहुत थोड़ा कार्य किया गया यद्यपि बहुत से राज्यों ने सामाजिक सेवा व्यवस्था को अपनाया। सन् १९ ९ से सामाजिक सेवाओं के लिए राज्य के कार्यों में बहुत वृद्धि हुई है। सन् १९४१ में बाल हित योजना को भी कार्यान्वित किया गया जिसके पश्चात् सन् १९४० में वैधव्य पेन्शन योजना चालू की गई। सन् १९४३ में एक नवीन प्रकार के मातृत्व हित भत्ते का आरम्भ हुआ और मृत्यु संस्कार सहायता की व्यवस्था भी हुई। सन् १९४४ में रोजगार और बीमारी लाभ अधिनियम लागू किया गया। सामाजिक सेवाओं का उत्तरदायित्व संघीय सरकार एवं विभिन्न राज्य दोनों पर ही है। परन्तु सामाजिक सेवा योजनाओं के लिए कानून बनाने का अधिकार संघीय संसद का ही है और इस अधिकार को १९४६ के एक लोक मतदान प्राप्त करने के बाद मान्यता भी प्राप्त हो गई है।

आस्ट्रेलिया में मातृत्व हित भत्ते (Maternity Allowances) से तात्पर्य उस भुगतान से लिया जाता है जो सरकार द्वारा माताओं को बच्चे के जन्म से सम्बन्धित व्यय के लिए वित्तीय सहायता के रूप में दिया जाता है। यह भुगतान निःशुल्क देख रेख चिकित्सा तथा उप स्थान व्यवस्था के अतिरिक्त है जो किसी माता को एक सार्वजनिक हस्पताल के जनरल वार्ड में मिलती है और यदि बच्चा प्राइवेट वार्ड में पैदा हुआ है तो उस के लिए ८ शि० प्रतिदिन का भत्ता दिया जाता है। मातृत्व हित भत्ते के लिए कोई 'जीविका साधन जाँच' नहीं होती। जब कोई और बच्चा न हो तब १५ पौंड की सहायता दी जाती है और बच्चों की संख्या में वृद्धि के साथ साथ यह राशि भी बढ़ती जाती है। जुड़वाँ या अधिक बच्चे होने पर एक बच्चे से अधिक प्रत्येक बच्चे के लिए ५ पौंड की अतिरिक्त सहायता दी जाती है। प्रसव की सम्भावित तिथि से ४ सप्ताह पूर्व प्रार्थना पत्र देने पर ५ पौंड का अगाऊ मातृत्व हित भत्ता मिल जाता है।

आस्ट्रेलिया में बालकों के लिए सहायता (Child Endowment) की भी व्यवस्था है। कोई भी व्यक्ति जो कि १६ वर्ष से कम आयु वाले एक से अधिक बालकों की देख रेख करता है बच्चों के लिए सहायता की माँग कर सकता है। एक बच्चे से अधिक प्रत्येक बच्चे के लिए यह सहायता १० शि० प्रति सप्ताह है। यह भुगतान हर चार सप्ताह के बाद होता है। इसके लिए कोई जीविका साधन जाँच नहीं होती और प्रत्येक व्यक्ति चाहे उसकी आर्थिक स्थिति कैसी भी हो इस लाभ को पाने का अधिकारी है।

बीमारी, बेरोजगारी, दुर्घटना अथवा नियमित आय में अस्थायी हानि होने पर भी लाभ दिए जाते हैं। यह भुगतान १६ व ६५ वर्ष के बीच की आयु वाले पुरुषों

और १६ व ६ वर्ष के बीच की आयु वाली स्त्रियों को उपलब्ध है। जीविका साधन जाँच भी आय के बारे में होती है, परन्तु सम्पत्ति के लिए ऐसी कोई जाँच नहीं होती। अधिकतम सहायता एक विवाहित व्यक्ति के लिए २४ शि० प्रति सप्ताह है परन्तु इसके साथ साथ उसे प्रत्येक आश्रित स्त्री के लिए २० शि० और एक बच्चे के लिए ५ शि० प्रति सप्ताह यानी कुल मिलाकर ५० शि० प्रति सप्ताह मिल सकता है। एक अविवाहित व्यक्ति के लिए अधिकतम सहायता २५ शि० प्रति सप्ताह है और २ शि० अतिरिक्त आय के रूप में लिये जाते हैं। जो व्यक्ति सहायता प्राप्त करने का अधिकारी है और जिसके संरक्षण में यदि १६ वर्ष से भी कम आयु का बच्चा है तो उसको उस बच्चे के लिये ५ शि० प्रति सप्ताह अतिरिक्त लाभ पाने का अधिकार है। बीमारी लाभ असमर्थता होने के सातवें दिन से मिल सकता है, यदि लाभ की माँग बीमारी की तिथि से ६ सप्ताह के अन्दर ही कर दी गई हो। बेरोज़गारी लाभ बेरोज़गार होने के सातवें दिन बाद या दावा करने के दिन से जो भी बाद में हो उस तिथि से मिलता है और तब तक मिलता है जब तक व्यक्ति कोई भी उचित कार्य करने के लिए योग्य व इच्छुक रहता है।

विधवाओं की पेन्शन भी आस्ट्रेलिया में विभिन्न दरों पर दी जाती है। लाभ के लिए विधवाओं को ४ वर्गों में विभाजित किया गया है। ऐसी विधवा को जो १६ वर्ष से कम आयु वाले एक अथवा अधिक बच्चों की देखरेख करती हो २ पौंड ७ शि० ७ पैंस प्रति सप्ताह पेन्शन मिलती है। ऐसी विधवा को जिसकी आयु ५ वर्ष से अधिक हो और उसका कोई बालक १६ वर्ष से कम आयु का न हो १ पौंड १० शि० प्रति सप्ताह पन्शन मिलती है। ऐसी विधवा को जिसकी आयु ५० वर्ष से कम हो और उसका कोई बालक १६ वर्ष से कम आयु का न हो परन्तु पति की मृत्यु के २६ सप्ताह से कम समय में हो अभाव की स्थिति में हो १ पौंड २½ शि० प्रति सप्ताह दिया जाता है। ऐसी स्त्री जिसका पति कम से कम ६ मास से कारावास में हो और जिसके १६ वर्ष से कम आयु वाले एक अथवा अधिक बालक हों अथवा जिसकी आयु ५० वर्ष से अधिक हो १ पौंड १७ शि० प्रति सप्ताह लाभ की अधिकारिणी होती है। इस प्रकार लाभ हेतु "विधवा" शब्द केवल उस स्त्री के लिए ही नहीं आता जिसका पति मर गया है वरन् इस शब्द का प्रयोग अभित्यक्त (Deserted) पत्नी तलाक प्राप्त स्त्री ऐसी स्त्री जिसका पति जेल या हस्पताल में हो और कुछ अन्य आश्रित स्त्रियों के लिए भी होता है।

आस्ट्रेलिया में जीविका साधन जाँच (Means test) (जो कि आय एवं सम्पत्ति दोनों के लिए होती है) के पश्चात् ६५ वर्ष के पुरुषों एवं ६० वर्ष की स्त्रियों के लिए वृद्धावस्था पेन्शन की भी व्यवस्था है। अधिकतम दर ११० पौंड १० शि० प्रति वर्ष अथवा २ पौंड २½ शि० प्रति सप्ताह है। उन व्यक्तियों के लिए, जिनकी आयु १६ वर्ष से अधिक है और जो कार्य करने से स्थायी रूप से असमर्थ हैं अथवा जो स्थायी रूप से नेत्रहीन हैं, निर्योग्यता पेन्शन की व्यवस्था है। दरें वही हैं जो कि

वृद्ध व्यक्तियों के लिए पेन्शन की है। आस्ट्रेलिया में ऐसी स्त्रियों के लिए भत्तों की व्यवस्था है जो कि एक निवृत्त पेन्शनर की पत्नी हैं और अपने पति के साथ ही रहती हैं और यदि उन्हें निबलता लाभ अथवा वृद्धावस्था पेन्शन नहीं मिलती है। ऐसी स्त्री के लिए बालकों का भत्ता भी स्वीकृत है। १० पौंड का मृत्यु संस्कार अनुदान भी एक ऐसे व्यक्ति को मिल सकता है जिसने एक वृद्ध एवं निबल व्यक्ति का अन्तिम संस्कार अपने खर्च से किया हो।

इस प्रकार आस्ट्रेलिया में भी सामाजिक सहायता की एक व्यापक योजना लागू है यद्यपि अधिकतर लाभ आय और सम्पत्ति की जीविका साधन जाँच होने पर मिलते हैं।

अन्य देशों में सामाजिक सुरक्षा की व्यवस्था और भारत में उनके लागू होने की सम्भावना —

उपरोक्त वर्णन से कुछ अन्य देशों की सामाजिक सुरक्षा योजनाओं पर प्रकाश पड़ता है। अब प्रश्न यह उठता है कि भारत को भी इस प्रकार की सामाजिक सेवा योजना का निर्माण करना चाहिए अथवा नहीं। जैसा कि हमने पिछले अध्याय में बताया है हमारे देश में ऐसी योजना नितान्त आवश्यक है परन्तु उसके लागू होने में कुछ विशेष कठिनाइयाँ आती हैं जिनको हम बेवरिज आयोजना के आधार पर कोई सामाजिक सुरक्षा योजना बनाने के पहले सुलझाना होगा। प्रत्येक सामाजिक सुरक्षा योजना की लागत बहुत अधिक होती है और इस की अल्प राष्ट्रीय आय को दृष्टि में रखते हुए भारत इतना व्यय वहन नहीं कर सकता। इससे पूर्व कि हम और देशों के समान अपने देश में अनेक प्रकार के लाभों की व्यवस्था के लिए कोई योजना लागू करने के लिए पग उठाएँ, राष्ट्रीय आय में वृद्धि की जानी चाहिए। देश का बड़ा आकार, अत्यधिक जनसंख्या और जनता की अशिक्षा का भी ध्यान में रखना होगा। चरित्र निर्माण स्वयं अनुशासन आत्म संयम एवं विस्तृत दृष्टिकोण की परम आवश्यकता है और जब तक यह सब न होगा सुधार सम्भव नहीं है।

यह भी विचारणीय है कि सामाजिक सुरक्षा योजनाओं को आर्थिक विकास की अन्य योजनाओं से पृथक रखकर कार्यान्वित नहीं किया जा सकता। इंग्लैंड में भी सर बेवरिज द्वारा योजना की सफलता के लिए यह आवश्यक समझा गया था कि बालकों के भत्ते पूर्ण रोजगार एवं एक व्यापक स्वास्थ्य सेवा पहले से ही होनी चाहिए। भारत में भी सर्वप्रथम तो पूर्ण रोजगार की स्थिति लाने का प्रयत्न होना चाहिए एवं व्यक्तियों के स्वास्थ्य एवं कल्याण की योजनाओं की व्यवस्था होना चाहिये और तब अन्य क्षेत्रों में लाभों के विस्तृत करने पर विचार करना चाहिये। फिर भी इसका प्रारम्भ कुछ सामित व्यक्तियों के लिए किया जा सकता है, और, जैसा कि बताया जा चुका है भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के लिए सामाजिक सुरक्षा योजना को लागू करना वांछनीय ही नहीं वरन् सम्भव भी है। यह प्रसन्नता का विषय है कि सरकार ने इस सम्बन्ध में अपने दायित्व को समझ लिया है और भारत के औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण और सुरक्षा की दिशा में कदम उठाये गए हैं और उठाये जा रहे हैं।

१४

कार्य की दशाएं—कार्य के घन्टे, आदि

(Working Conditions and Hours of Work Etc.)

कार्य की दशाओं की महत्ता —

मनुष्य जिन परिस्थितियों में कार्य करता है उनका उसके स्वास्थ्य कार्य कुशलता मनोवृत्ति तथा कार्य के गुणों पर विशेष प्रभाव पड़ता है। यह कहा जात है कि वातावरण मनुष्य का निर्माण करता है यदि वातावरण में सुधार कर दिय जाय तो मनुष्य स्वयं ही सुधर जाएगा।* अस्वस्थ दशाओं में कठिन श्रम करते रहन सम्भव नहीं है। यह सर्वविदित तथ्य है कि स्वच्छ उजाला और अस्वास्थ्यकर वाता वरण की अपेक्षा स्वस्थ उजाला और प्रेरणात्मक (Inspiring) वातावरण में मनुष्य अधिक और अच्छा कार्य कर सकता है। यदि वातावरण गन्दा और कोलाहलपूर्ण है तो श्रमिक का ध्यान बँट जाएगा। कार्य में एकाग्रता (Concentration) होनी आवश्यक है और यह तभी सम्भव है जब बाह्य विघ्नों से श्रमिकों का ध्यान न बँटे। दीवारों के रंग और मशीनों की स्थिति तक श्रमिक की मनोवृत्ति पर प्रभाव डालते हैं।

यह बात ध्यान देने योग्य है कि सन्तोषप्रद कार्य करने की दशाएं केवल श्रमिकों की कार्यकुशलता को ही प्रभावित नहीं करतीं अपितु उनके वेतन प्रबन्धित और औद्योगिक सम्बन्धों पर भी प्रभाव डालती हैं। प्रत्येक श्रमिक की कार्यकुशलता प्रत्यक्ष रूप से उसके स्वास्थ्य तथा उसकी कार्य करने की इच्छा पर निर्भर करती है। यदि कार्य की दशाएं सन्तोषजनक हैं तो श्रमिक के शरीर व मस्तिष्क प स्वास्थ्यप्रद प्रभाव पड़ेगा। श्रमिक प्रसन्न रहेगा और उसकी कार्यकुशलता बढ़ जा गे उत्पादन भी अधिक होगा। इस प्रकार मालिकों को भी लाभ होगा। इसके विपरीत यदि कार्य करने की दशाएं असन्तोषजनक हैं तो श्रमिक अपने कार्य क घृणित समझेगा कार्य धीरे-धीरे करेगा और उसके लिए समय व्यतीत करना भी कठिन हो जाएगा। सन्तोषजनक कार्य की दशाएं प्रदान कर नकद मजदूरी व वास्तविक मजदूरी के बीच की खाई को बहुत कुछ कम किया जा सकता है। जह पर कार्य का वातावरण स्वस्थ है और मालिकों ने श्रमिकों के कल्याण व सु सुविधा के लिए प्रबन्ध किया है वहाँ पर श्रमिक कम मजदूरी पर भी कार्य करने क तत्पर हो जाते हैं। इन सब बातों के अतिरिक्त श्रमिकों की प्रवासिता का एक मुख कारण यह है कि जो श्रमिक गांव के शुभ वातावरण से आता है उसे कारखानों

* Environments create a man and if we improve the environment we improve the man.

एकदम भिन्न और असन्तोषजनक परिस्थितियों में कार्य करना पड़ता है। फलतः वह ऊब उठता है और शीघ्रातिशीघ्र अपने गांव वापिस लौट जाने का प्रयत्न करता है। सन्तोषजनक एवं स्वास्थ्यप्रद काम की दशाएं श्रमिकों की अस्थिरता के इस मुख्य कारण को दूर कर सकती हैं और उनमें अनुपस्थिति तथा श्रमिकावर्त को भी बहुत सीमा तक कम कर सकती हैं। कार्य का उत्तम और स्वच्छ वातावरण यदि प्रदान किया जाता है तब ऐसा वातावरण मालिक व मजदूर के बीच भी अच्छा सम्बन्ध स्थापित करने में सहायक होता है। सन्तोषजनक वातावरण में श्रमिकों में थकान और उदासी भी नहीं आ पाती और वह अपना समय स्वयं के संगठन परिवार व कल्याण कार्यों में व्यतीत कर सकता है।

काम करने की दशाओं का क्षेत्र —

कार्य करने की दशाओं के अन्तर्गत अनेक विषय आते हैं उदाहरणतः मल मल निकास की व्यवस्था धूल और गन्दगी तापक्रम नमी संवातन कारखाने के अन्दर उचित स्थान और सुरक्षा की दृष्टि से मशीनों के चारों ओर रोक आदि तथा अनेक कल्याणकारी सुविधाएं जैसे कैन्टीन स्नानगृह हाथ मुंह धोने के लिए विश्राम [illegible] पीने के पानी की व्यवस्था जलपान गृह कार्य के घण्टे रात्रि कार्य पारी प्रणाली आदि। उपरोक्त विषयों में से अनेक सुविधाएं कल्याणकारी सुविधाओं के अन्तर्गत प्रदान की जाती हैं तथा अनेक कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आती हैं। परन्तु कानून द्वारा न्यूनतम आवश्यकताओं के निर्धारित होने पर भी जब मल निकास की व्यवस्था संवातन तापक्रम प्रकाश आदि अर्थात् सामान्य वातावरण इस बात पर निर्भर करता है कि मालिक इसका अनुभव कर लें कि अच्छा वातावरण का श्रमिकों के स्वास्थ्य और कार्यकुशलता के लिए बहुत महत्व है।

काम करने की दशाओं के विभिन्न रूप —

मल मल निकास की व्यवस्था (Sanitation) एवं स्वच्छता सम्भवतया सन्तोषजनक कार्य की दशाओं का सबसे मुख्य अंग है। इन से तात्पर्य कारखाने के अन्दर सफाई दीवारों पर सफेदी करना फर्श साफ और स्वच्छ बर्तनें शौचालय तथा पेशाबघर का उचित प्रबन्ध पानी निकालने के साथ नालियां कूड़े करकट के लिए कनस्तर व टोकरियों आदि से है।

कारखाने के अन्दर से धूल व गन्दगी (Dust and Dirt) दूर करने का भी उचित प्रबन्ध होना चाहिए। बहुत से कारखानों में निर्माण प्रक्रिया कुछ ऐसी होती है कि बहुत गन्दगी उत्पन्न हो जाती है। गन्दगी और धूल उत्पन्न होने का कारण यह भी है कि कारखानों के अन्दर की सड़कें कच्ची होती हैं और यदि उन पर उचित रूप से पानी नहीं छिड़का जाता या कारखाना बिल्कुल मुख्य सड़क पर होता है तो धूल भरा आती रहती है। भारत की जलवायु भी इस प्रकार की है कि ग्रीष्म ऋतु में बड़ी मात्रा में धूल व गन्दगी उत्पन्न हो जाती है। धूलयुक्त वातावरण में श्रमिक ठीक प्रकार से सांस भी नहीं ले सकते जिसके कारण अनेक बीमारियां उत्पन्न हो

जाती है और उनकी आँखों पर भी कुप्रभाव पड़ता है। अतः सड़कों तथा मार्गों पर पानी छिड़कने का तथा पक्के फर्शों और पक्के मार्गों का प्रबन्ध होना चाहिए। इसके अतिरिक्त धूल और गन्दगी दूर करने के लिए उचित रूप से हवा के आने जाने और सफाई की व्यवस्था होनी चाहिए।

तापक्रम (Temperature) व नमी (Humidification) का भी कार्य करने की दशाओं में विशेष महत्व है। देश की जलवायु ऐसी है कि ग्रीष्म ऋतु में विशेष तथा गर्म तापक्रम के कारण शारीरिक कार्य असुविधाकर हो जाता है। उच्च तापक्रम में कमी करना या उसके प्रभाव को कम करना अत्यन्त सरल है यद्यपि बहुत से लोग इस बात को नहीं समझते हैं। बिजली के पंखे दूषित वायु निकालने के पंखे खस की टट्टियां और वायु अनुकूलन यन्त्र इन दशाओं में सुधार कर सकते हैं।

पर्याप्त संवातन (Ventilation) और हवा के आने की व्यवस्था एक अन्य आवश्यकता है। यह व्यवस्था खिड़कियों तथा संवातनों द्वारा की जाती है। यह व्यवस्था कृत्रिम उपायों द्वारा भी हो सकती है जैसे मशीनों या पंखों द्वारा हवा को फेंकना। ऐसी व्यवस्था की आवश्यकता वस्त्र उद्योगों में विशेष रूप से होती है, क्योंकि वहाँ कार्य धूलग्रस्त व नम वायु में सम्पन्न होता है। बहुत सारे उद्योगों में धूल तथा हानिकारक गैस उत्पन्न होती हैं जिनको तत्काल कारखाने से निकालने के लिए उचित संवातनों का होना आवश्यक है। उचित रूप से संवातन व्यवस्था न होने के जो हानिकारक परिणाम होते हैं वह भली-भाँति ज्ञात हैं। परन्तु फिर भी भारतीय कारखानों में इस ओर उचित ध्यान नहीं दिया जाता।

प्रकाश (Lighting) की व्यवस्था भी बहुत आवश्यक है। कार्य करने के स्थानों पर उचित तथा पर्याप्त प्रकाश का प्रबन्ध कर्मचारियों की नेत्र दृष्टि की रक्षा करता है और उत्पादन में वृद्धि करता है। प्राकृतिक प्रकाश का प्रबन्ध छतों से अथवा खिड़कियों से किया जा सकता है। कृत्रिम प्रकाश का प्रबन्ध बिजली मिट्टी के तेल या गैस की लालटेनों द्वारा किया जा सकता है। असन्तोषजनक प्राकृतिक प्रकाश प्रायः पुरानी अयोग्य इमारतों अन्य इमारतों की समीपता गन्दी खिड़कियों दीवारों व छतों के कारण होता है। भारत में अनेक कारखाना में इस प्रकार की दशाएं पाई जाती हैं। लगातार कृत्रिम प्रकाश का प्रयोग भी अप्राकृतिक होता है और आँखों पर कुप्रभाव डालता है। असन्तोषजनक प्रकाश से दुर्घटनाएं हो जाती हैं और उत्पादन में कमी हो जाती है। कम प्रकाश से गन्दगी बढ़ती है क्योंकि बहुत से कोनों आदि में गन्दगी दिखाई नहीं देती है। प्रकाश पर्याप्त मात्रा में होना चाहिए और कार्य के ठीक स्थान पर उस प्रकाश से परछाईं भी न पड़नी चाहिए। इस बात का भी प्रबन्ध होना चाहिए कि कर्मचारियों की आँखों पर प्रकाश सीधा न पड़े।

दुर्घटनाओं को रोकने के लिए मशीनों के चारों ओर रोक लगाना (Fencing) व श्रमिकों की सुरक्षा के लिए पर्याप्त साधनों (Safety Provisions) का होना आवश्यक है। इस दृष्टि से विभिन्न कारखाना अधिनियमों में उपबन्ध बनाये

गये हैं परन्तु उनको उचित रूप से लागू करना भी अत्यन्त आवश्यक है। कारखाने ऐसी ही इमारतों में बनाने चाहिए जिनमें काफी जगह हो जिससे कि मशीनों के मध्य काफी स्थान रह सके।

कारखानों के अन्दर पीने के शुद्ध पानी तथा खाना खाने के लिए भी उचित स्थान का प्रबन्ध होना आवश्यक है। काम के घंटे भी लम्बे नहीं होने चाहिएँ तथा बीच बीच में अल्पविराम का प्रबन्ध भी होना चाहिए।

सन् १९४८ का कारखाना अधिनियम—काम की दशाओं के सम्बन्ध में इसके मुख्य उपबन्ध —

यहाँ हम १९४८ के कारखाना अधिनियम (Factories Act of 1948) के उन उपबन्धों की चर्चा करेंगे जिनका मालिकों द्वारा श्रमिकों की सुरक्षा एवं स्वास्थ्य के लिए लागू करना आवश्यक है। इस प्रकार की व्यवस्था समय समय पर अनेक कारखाना अधिनियमों द्वारा की गई थी परन्तु अब उनको एक स्थान पर समायोजित कर १९४८ के अधिनियम में व्यापक रूप प्रदान कर दिया गया है।

जहाँ तक स्वच्छता (Cleanliness) का सम्बन्ध है अधिनियम के अनुसार प्रत्येक कारखाना नालियों या अन्य कारणों से उत्पन्न दुर्गन्ध से मुक्त रहना चाहिए। झाड़ू अथवा किसी अन्य साधन द्वारा प्रतिदिन फर्श काम करने के कमरों की बैंचों सीढ़ियों मार्गों आदि में से गन्दगी और कूड़ा-करकट के ढेर साफ होने चाहिएँ तथा उनको फैंकने की भी उचित व्यवस्था होनी चाहिये। सप्ताह में कम से कम एक दिन प्रत्येक कार्य करने के कमरे का फर्श कीटाणुनाशक (Disinfectant) पदार्थ द्वारा धुलना चाहिए। यदि निर्माण प्रक्रिया के समय फर्श गीला हो जाता है तो नालियों की उचित व्यवस्था करनी होगी। अन्दर की दीवारें और कमरों की ऊपर और नीचे की छतें सीढ़ियाँ मार्ग आदि सभी पर प्रत्येक पाँच वर्ष में कम से कम एक बार पुनः रोगन या वारनिश करनी होगी। प्रत्येक १४ महीने में एक बार सफाई करनी चाहिए। यदि रोगन अथवा वारनिश नहीं की जाती तब १४ महीनों में एक बार पुताई या सफेदी करनी चाहिए।

जहाँ तक कूड़ा करकट और दुर्गन्ध की निकासी (Disposal of Wastes and Effluents) का सम्बन्ध है निर्माण के समय उत्पन्न होने वाली ऐसी वस्तुओं की निकासी के लिए राज्य सरकारों को नियम बनाने का अधिकार दिया गया है। इन नियमों के अनुसार प्रत्येक कारखाने में उचित संवातन (Ventilation) की व्यवस्था होनी चाहिए और प्रत्येक कमरे में शुद्ध वायु के आने जाने के लिये ऐसा तापक्रम (Temperature) जिससे श्रमिकों के स्वास्थ्य को हानि न पहुँचे और वह आराम से कार्य कर सकें रखने के लिए भी प्रभावात्मक और उचित व्यवस्था होनी चाहिए। दीवारें और छतें इस प्रकार और ऐसे पदार्थों की बनानी चाहिएँ कि तापक्रम जितना भी सम्भव है कम रखा जा सके। यदि किसी काम के लिए अधिक तापक्रम की आवश्यकता पड़ती है तब ऐसी अवस्था में जिस प्रक्रिया से अधिक

तापक्रम पैदा होता है, उसे कार्य के कमरे से या किसी अन्य साधन द्वारा पृथक करके श्रमिकों को बचाना चाहिए। राज्य सरकारों को पर्याप्त संवातन और उचित तापक्रम के स्तरों को निर्धारित करने का अधिकार है और राज्य सरकार किसी भी कारखाने से तापक्रम को कम करने की माँग कर सकती है, जिसके लिए कोई भी साधन अपनाया जा सकता है जैसे दीवारों पर सफेदी करना पानी छिड़कना यंत्र लगाना बाहर की दीवारों कमरों और खिड़कियों पर पर्दे लटकाना छत को ऊँचा करना या कोई अन्य साधन।

यदि किसी कारखाने में उत्पादन के समय धूल (Dust) धुआँ (Fumes) या अन्य किसी प्रकार की गन्दगी होती है जिससे श्रमिकों को हानि पहुँचती है और दुर्गन्ध उत्पन्न होती है तब कार्य के कमरों में से इसे तत्काल निकालने और एकत्रित न होने देने की व्यवस्था होनी चाहिए ताकि दूषित वायु में साँस न ली जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये हवा फेंकने वाले यन्त्रों का प्रयोग किया जाना चाहिए। हवा बाहर फेंकने वाले यंत्र के इञ्जिन को भी खुली जगह में लगाना चाहिए और इस प्रकार का कोई इञ्जिन किसी भी कमरे में चालू नहीं करना चाहिए, जब तक भाप को एकत्रित होने से रोकने के लिए कोई व्यवस्था न करली जाय।

उन सभी कारखानों के सम्बन्ध में जहाँ हवा की नमी को कृत्रिम रूप से बढ़ाया जाता है राज्य सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वह इस बात के लिए नियम बनाएं कि नमी (Humidification) का क्या स्तर होगा और हवा की नमी को कृत्रिम रूप से बढ़ाने के ढंग पर नियन्त्रण रखने और पर्याप्त संवातन और कार्य के कमरों को ठंडा रखने की व्यवस्था होगी। नमी को बढ़ाने के लिए केवल शुद्ध जल का ही प्रयोग करना होगा।

भीड़भाड़ को रोकने के लिए अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि उन कारखानों में जो अधिनियम के लागू होने के पूर्व से चल रहे थे काम के प्रत्येक कमरे में प्रत्येक श्रमिक के लिए कम से कम ३५० घन फीट की जगह (Space) होगी तथा उन कारखानों में जो अधिनियम बनाने के बाद स्थापित हुए कम से कम प्रति श्रमिक ५०० घन फीट जगह होगी। कारखानों में मुख्य निरीक्षक को यह निर्धारित करने का अधिकार है कि किसी कमरे में अधिक से अधिक कितने श्रमिक काम कर सकते हैं।

प्रकाश के लिए अधिनियम में यह व्यवस्था है कि कारखाने के प्रत्येक भाग में जहाँ श्रमिक आते जाते हैं अथवा जहाँ वे काम करते हैं कृत्रिम एवं प्राकृतिक अथवा दोनों ही प्रकार के प्रकाश (Lighting) की पर्याप्त और उचित व्यवस्था होगी। प्रत्येक फैक्ट्री के कमरों में प्रकाश रखने के लिये यदि शीशेदार खिड़कियाँ और रोशनदान हों तो वे भीतर और बाहर दोनों प्रकार से साफ रहनी चाहिएं। उनमें तापक्रम के घटाने के समय के अतिरिक्त और किसी समय कोई रुकावट नहीं होनी चाहिए। यदि किसी प्रकार के साधन से सीधे तौर पर या किसी चिकने स्थान

से बरदाश्त होती है तो उसको रोकने के लिए भी व्यवस्था करनी चाहिए। इसी प्रकार ऐसी परछाई को जिससे श्रमिकों की आँखों पर जोर पड़ता हो अथवा दुर्घटना की सम्भावना हो, दूर करने की व्यवस्था होनी चाहिए। विभिन्न श्रेणियों के कारखानों के लिए राज्य सरकारों को सन्तोषजनक और उपयुक्त प्रकाश के स्तर को निर्धारित करना होता है।

यह भी व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक कारखाने में उचित और सुविधाजनक स्थानों पर पीने के पानी (Drinking Water) की पर्याप्त पूर्ति का प्रबन्ध करना होगा। ऐसे स्थानों पर उस भाषा में जिसे श्रमिक समझ सकें 'पीने का पानी' लिखा जायगा। ऐसा स्थान धोने की जगह, शौचालय तथा पेशाबघर से कम से कम २० फुट की दूरी पर होगा। उन कारखानों में जहाँ २५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं गर्मी के दिनों में पीने के पानी को ठंडा करने की भी व्यवस्था करनी होगी।

अधिनियम के अनुसार विशेष प्रकार के शौचालय (Latrines) तथा पेशाबघर (Urinals) की पर्याप्त मात्रा में बनाने चाहिएँ। यह ऐसे स्थानों पर होने चाहिएँ, जहाँ श्रमिक कारखाने में रहते हुए किसी भी समय सरलतापूर्वक जा सकें। इस प्रकार के स्थानों पर पर्याप्त प्रकाश और सफाई की व्यवस्था होनी चाहिए तथा यह हर समय स्वच्छ रहने चाहिएँ। इस काम के लिए भंगियों को नौकरी पर लगाना होगा। स्त्री और पुरुषों के लिए भी अलग-अलग व्यवस्था करनी होगी। ऐसे प्रत्येक कारखाने में जहाँ २५० या अधिक कर्मचारी कार्य करते हैं इनके फर्श और तीन-तीन फीट तक दीवारें चमकदार टाइलों की बनानी होंगी तथा सप्ताह में एक बार सबकी खूब सफाई व कीटाणुनाशक पदार्थों से धुलाई होगी। राज्य सरकारों को प्रत्येक कारखाने के सम्बन्ध में शौचालयों तथा पेशाबघरों की संख्या व सफाई के लिए नियम बनाने का अधिकार है।

अधिनियम में इस बात का भी उल्लेख है कि अन्दर कारखाने के उचित स्थानों पर पीकदानों (Spittoons) की व्यवस्था की जाय और उनको स्वच्छ अवस्था में रखा जाय। कारखाने के अन्दर कोई भी व्यक्ति पीकदान के अलावा कहीं नहीं थूकेगा। राज्य सरकार प्रत्येक कारखाने में पीकदान की संख्या तथा उनके आकार के रूप को निर्धारित करेगी। उस व्यक्ति पर, जो नियमों का उल्लंघन कर और कहीं थूकता है, ५ रुपये का जुर्माना किया जा सकता है।

श्रमिकों की सुरक्षा और दुर्घटनाओं की रोकथाम (Prevention of Accidents) के लिए भी अधिनियम में उपबन्ध हैं। खतरनाक मशीनों, उनके घूमने वाले भागों और पहियों के चारों ओर पर्याप्त रूप से घेरा लगाने का आदेश है। गतिशील मशीनों को इस प्रकार से लगाना होगा जिससे कोई दुर्घटना न हो सके। यदि जाँच पड़ताल के हेतु या उनमें तेल डालने के लिए अथवा पट्टी चढ़ाने के लिए चलती हुई मशीन पर या उसके पास काम करना आवश्यक भी हो तो यह काम किसी विशेष

प्रशिक्षित वयस्क पुरुष द्वारा किया जाना चाहिए। इस व्यक्ति के कपड़े कसे हुए होने चाहियें और उसको किसी भी ऐसी पेटी को जिसकी चौड़ाई ६ इंच से अधिक हो चलायमान (Moving) अवस्था में नहीं छूना चाहिए। मशीन के उन सभी भागों के चारों ओर जिनसे श्रमिक का अधिक सम्पर्क हो सकता है रोक लगानी चाहिए। किसी भी कारखाने में जब मशीन चल रही हो किसी भी स्त्री या बालक को मशीन साफ करने उसमें तेल देने अथवा उसके किसी पुर्जे आदि को लगाने के काम पर नहीं लगाया जा सकता और न उनको मशीनों के चलते हुए भागों के बीच कोई कार्य दिया जा सकता है। बिना पर्याप्त प्रशिक्षण और बिना पर्याप्त निरीक्षण व देख-रेख के कोई भी युवक खतरनाक मशीनों पर काम नहीं कर सकता। इस बात की भी व्यवस्था होनी चाहिये कि संकटकाल में चलती हुई मशीनों से चालू शक्ति (Power) को तत्काल ही बन्द कर दिया जा सके। पेटियों को बदलने के लिए यांत्रिक साधनों की व्यवस्था करना जरूरी है। इस बात के बचाव की भी व्यवस्था है कि स्वयं चलने वाली मशीनों से सम्पर्क न हो पाये।

१९४८ के कारखाना अधिनियम में एक नया उपबन्ध इस बात का भी है कि जो भी नई मशीन बने उसके चारों ओर रोक होने की व्यवस्था उसके साथ ही होनी चाहिए। इसका उत्तरदायित्व कारखाने के मालिकों पर ही नहीं वरन् मशीन के बनाने वाले या मशीन को बेचने वाले एजेन्ट के ऊपर भी है। मशीन में रुई के जाने के मार्ग के पास औरतों व बच्चों को काम पर लगाने की भी मनाही है। लिफ्ट या उठाने वाले यंत्र के सम्बन्ध में भी उपबन्ध बनाये गये हैं। उनकी यांत्रिक रचना अच्छी होनी चाहिए, वे अच्छे पदार्थ के बने होने चाहिएं मजबूत होने चाहिएं, उनको उचित दशा में रखना चाहिए और उनकी जांच भी होती रहनी चाहिए। उनके लिए दरवाजे जाली और अधिकतम बोझ आदि के सम्बन्ध में भी उपबन्ध हैं। क्रेन और अन्य भार उठाने वाली मशीनों घूमती हुई मशीनों दबाव डालने वाली मशीनों आदि से रक्षा करने के लिए भी उपबन्ध बनाये गये हैं। इस बात की भी व्यवस्था है कि तमाम फर्श सीढ़ियां और पहुंचने के साधन अच्छे प्रकार के बने हुए होंगे और उनको अच्छी हालत में रखा जायेगा। अगर फर्श में कोई गड्ढा या छिद्र होगा तो उसको ठीक प्रकार से ढकना होगा और उसके चारों ओर रोक लगानी होगी।

अधिनियम में व्यवस्था की गई है कि कोई भी कर्मचारी ऐसा बोझ न उठा सकता है न ले जा सकता है जिससे उसे हानि होने की सम्भावना हो। राज्य सरकारों को इस बात का अधिकार है कि वह यह निर्धारित कर सकें कि पुरुषों स्त्रियों तथा बच्चों द्वारा अधिक से अधिक कितना भार उठाया जा सकता है। उत्पादन की कुछ विशेष प्रक्रियाओं में तेज रोशनी अथवा कणों से नेत्रों की रक्षा करने का भी उपबन्ध है। अधिनियम में विषैले धुएं शीघ्र जलने वाले तथा विस्फोटक (Explosives) पदार्थों एवं आग लगने पर बचाव के लिए भी व्यवस्था करने के लिए उपबन्ध है। प्रत्येक कारखाने में आग लगने की अवस्था में बच निकलने के

अनेक साधनों तथा आग बुझाने वाले यन्त्रों (Fire Extinguishers) की व्यवस्था करनी होती है। कारखाना निरीक्षक को इस बात का अधिकार है कि यदि मशीन अथवा इमारत का कोई भाग मानव जीवन के लिए हानिकारक है तब वह मालिकों को इसे ठीक करने का आदेश दे सकता है। उसको इस बात का भी अधिकार है कि वह आदेश दे कि मानव जीवन की सुरक्षा के दृष्टिकोण से इमारत और मशीन के सम्बन्ध में कुछ विशिष्ट बातों का पालन किया जाय।

इस सम्बन्ध में एक मुख्य बात यह भी है कि अधिनियम के अन्तर्गत अब कारखाने के स्वामी पर अपने कर्मचारियों की सुरक्षा का दायित्व है। कारखाना निरीक्षक (Inspector) के लिए अब यह आवश्यक नहीं रह गया है कि वह मशीनों के चारों ओर रोक लगाने के लिए अथवा श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा के साधनों की व्यवस्था करने के लिए आदेश दे। कपड़े धोने की सुविधा, बैठने की सुविधा, प्राथमिक चिकित्सा उपाय (First-aid Appliances) कैंटीन, विश्रामगृह, भोजन के लिए कमरे, शिशुगृह, कल्याण अधिकारी आदि की भी व्यवस्था अधिनियम में की गई है। जिनका उल्लेख कल्याण कार्यों के अन्तर्गत किया जा चुका है। (देखें पृष्ठ २८१)।

खानों और बागान के लिए अलग से अधिनियम हैं। १९५२ के भारतीय खान अधिनियम तथा १९५१ के बागान श्रमिक अधिनियम के अन्तर्गत श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा की व्यवस्था ऊपर बताये गये १९४८ के कारखाना अधिनियम के आधार पर ही की गई है।

विभिन्न उद्योगों में काम की दशाएं —

यहाँ हम इस बात पर विचार करेंगे कि विभिन्न उद्योगों में कार्य करने की सामान्य दशाएं कैसी हैं और ऊपर बताये गये उपबन्धों में से कितने सन्तोषजनक रूप से लागू किये जाते हैं। श्रम अनुसंधान समिति ने विभिन्न उद्योगों में कार्य करने की दशाओं का विस्तृत सर्वेक्षण (Survey) किया था। उस समय से जबकि समिति ने अपनी रिपोर्ट दी थी स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। यह कहा जा सकता है कि बड़े कारखानों में सामान्यतः कार्य की दशाएं संतोषजनक हैं परन्तु छोटे और अनियमित कारखानों में विशेषतया उनमें जो पुरानी इमारतों में स्थापित हैं प्रकाश संवातन आदि की दृष्टि से दशा बहुत ही असंतोषजनक है तथा उनमें सुधार होना अति आवश्यक है। श्रम अनुसंधान समिति के अनुसार अधिकतर मालिक कठिनता से ही उतना अधिक करते हैं जितना कानून द्वारा उन्हें करना पड़ता है और कभी-कभी तो कानून की धाराओं से भी बचने का प्रयत्न किया जाता है। दुर्घटनाओं को रोकने के लिए तथा श्रमिकों की ताप धूल आदि से रक्षा के लिए कोई अतिरिक्त व्यवस्था नहीं की जाती। अधिकांश मालिक कार्य की दशाओं के प्रति उदासीन रहते हैं। वे कानून के शब्दों के पालन से ही अपने कर्तव्य की इति-श्री समझ लेते हैं और इसके वास्तविक उद्देश्य की ओर ध्यान ही नहीं देते। फलस्वरूप कानून द्वारा निश्चित

सीमा के अन्तर्गत भी मशीनों एवं यन्त्रों से सुरक्षा आदि के नियमों का उल्लंघन किया जाता है। परन्तु देश के कुछ जागरूक मालिकों ने अपने श्रमिकों की सुरक्षा के लिए अतिरिक्त व्यवस्था भी की है। उन्होंने न केवल मशीनों के गतिशील भागों से श्रमिकों की सुरक्षा की व्यवस्था की है अपितु श्रमिकों में 'सुरक्षा प्रथम (Safety First) समितियाँ भी संगठित की हैं जिससे श्रमिकों को दुर्घटनाओं के खतरों का ज्ञान कराया जा सके। यदि किसी विशेष विभाग में कोई दुर्घटना नहीं घटती है तो श्रमिकों को बोनस दिया जाता है।

यह देखा गया है कि विभिन्न स्थानों की कपड़ा मिलों की इमारतों में आम तौर पर अच्छी प्रकार से रोशनी का प्रबन्ध है तथा उनमें संवातन का उत्तम प्रबन्ध भी है। मशीनों का लगाया जाना भी प्राय: सन्तोषजनक है तथा उनके बीच श्रमिकों के आने जाने के लिए पर्याप्त स्थान पाया जाता है। अहमदाबाद नागपुर, कोयमुतूर देहली आदि की पुरानी कपड़ा मिलों तथा कलकत्ता की पुरानी जूट मिलों में प्रकाश संवातन स्थान तथा मशीनों के लगाने की व्यवस्था असंतोषजनक है। बम्बई अहमदाबाद शोलापुर रहली मदुरा मोदीनगर आदि स्थानों की कुछ कपड़ा मिलों ने वातानुकूलित व्यवस्था भी की है। बम्बई और अहमदाबाद की कुछ मिलों में कपास के रेशों को हटाने के लिए भी मशीनों की व्यवस्था है। अन्य स्थानों पर दशाएँ असहनीय हैं। बिजली के पंखे तो सामान्यतः सभी मिलों में हैं परन्तु जूट मिलों में गन्दी हवा को बाहर फेंकने वाले पंखों तथा शीतल यन्त्रों की व्यवस्था नहीं है। पुरानी स्थापित कपड़ा व जूट मिलों में केवल उन न्यूनतम आवश्यकताओं के जिन्हें कानूनन करना आवश्यक है स्वास्थ्य व आराम के लिए कुछ नहीं किया गया है। कार्य के समय बैठने तक की व्यवस्था नहीं की गई है। अधिकांश रेशमी तथा ऊनी वस्त्र मिलों में जहाँ अतिरिक्त जहाँ अधिनियम लागू नहीं हैं कार्य की दशाएँ साधारणतया संतोषजनक हैं।

अधिकांश इंजिनियरिंग मिलों में संवातन तथा प्रकाश का प्रबन्ध पर्याप्त व सन्तोषजनक है। कलकत्ता तथा ग्वालियर के चीनी और मिट्टी के बर्तन उद्योग में संवातन तथा प्रकाश की दृष्टि से बहुत कुछ सुधार होना आवश्यक है। बंगलौर के अतिरिक्त सुरक्षा साधनों की कहीं व्यवस्था नहीं है।

छापेखानों में कार्य की दशाएँ बहुत ही असन्तोषजनक हैं। कुछ बड़े छापेखानों को छोड़कर शेष छापेखाने ऐसे घरों में स्थित हैं जिनका निर्माण छापेखाने की दृष्टि से किया ही नहीं गया है। कई स्थानों पर मकानों की पुताई होती है। दीवारों पर गर्द की मोटी तह जमी रहती है और मकड़ी के जाले लगे रहते हैं। यह कमरे बड़े होते हैं और उनमें सीलन भी अधिक रहती है। सीसे के धुएँ को जो विषैला होता है निकालने की भी कोई उचित व्यवस्था नहीं है। इससे एक प्रकार की उद्योग जनित बीमारी हो जाती है। मालिकों और श्रमिकों को इससे उत्पन्न होने वाले खतरों का सम्भवतः ज्ञान भी नहीं है। गन्दी हवा को बाहर फेंकने वाले पंखों अथवा

नमों की भी व्यवस्था नहीं है। छापेखानों में प्रकाश का भी उचित प्रबन्ध नहीं होता है जिसके कारण कम्पोजीटरों के नेत्रों पर बहुत जोर पड़ता है और शीघ्र ही उनकी नेत्र-ज्योति हीन हो जाती है। तीन या चार छापेखानों को छोड़कर और कहीं नाखून साफ करने वाले ब्रुशों का प्रयोग नहीं किया जाता है।

कांच उद्योग में आग लगने व जल जाने जैसी छोटी-छोटी दुर्घटनाएं बहुत अधिक संख्या में होती हैं। छोटे-छोटे कांच के कारखानों के फर्श में अधिकतर भाग पर मट्टी बनी रहती है जहां पर श्रमिक पिघले हुए कांच को नलियों द्वारा मुंह से फुलाते हैं। कांच के छोटे-छोटे कण फर्श पर बिखरे पड़े रहते हैं और जब श्रमिक नंगे पैरों चलता है तो वह उसकी त्वचा में घुस जाते हैं। कांच की नलियों को काटने के लिये बिजली के तेज गर्म तारों का प्रयोग किया जाता है। इसके कारण जल जाने की घटनायें बहुत हो जाती हैं। मुंह से फूंक मारने के कारण श्रमिकों के फेफड़ों पर बहुत अधिक जोर पड़ता है और इस प्रकार फेफड़ों की बीमारियां प्रायः उन्हें घेरे रहती हैं। कारखानों के अन्दर तापक्रम बहुत ऊंचा रहता है। अतः श्रमिक जब बाहर आते हैं विशेषतया वर्षा में तो उन्हें ठंड लगने का डर रहता है। फीरोजाबाद के छोटे पैमाने के चूड़ी के कारखानों में काम करने की दशाएं बहुत ही शोचनीय हैं यद्यपि गत कुछ वर्षों में उत्तर प्रदेश सरकार के हस्तक्षेप के कारण इनमें कुछ सुधार हुआ है। फीरोजाबाद में यह उद्योग बहुधा एक कमरे वाली इमारतों में स्थित है जहां सफाई अथवा प्रकाश की कोई उचित व्यवस्था नहीं है।

चीनी उद्योग में मद्रास तथा बम्बई के कारखानों में उत्तर प्रदेश तथा बिहार के कारखानों की अपेक्षा अधिक स्वास्थ्यप्रद कार्य करने की दशाएं हैं। उत्तर प्रदेश एवं बिहार के चीनी कारखानों में दुर्गन्ध रहती है। कारखानों तथा निकटवर्ती क्षेत्रों में भी शीरा व गन्दे पानी के कारण स्वच्छता की समस्या बनी रहती है। फैक्टरी से निकले हुए गन्दे पानी को कच्चे तालाब अथवा सोखने वाले गड्ढों में बहने दिया जाता है। गोरखपुर के दो चीनी कारखानों में गन्दे पानी को नदी में बहा दिया जाता है। केवल मेरठ में एक चीनी मिल ने इस कार्य के लिए पक्की नालियों की व्यवस्था की है। सोखने वाले गड्ढे बिहार की एक मिल में पाये जाते हैं। कच्चे तालाबों में शीरे को एकत्रित करने से असहनीय दुर्गन्ध आती है। 'खोई' का मिल की इमारत में ही ढेर लगा देते हैं। अनेक मिलों में फर्श टूटा फूटा और गन्दा रहता है। श्रम अनुसंधान समिति ने यह उल्लेख किया था कि उत्तर प्रदेश बिहार व अहमदनगर की कुछ मिलों में यह भी देखा गया कि भाप की नलियों में छिद्र होने के कारण भाप बाहर निकलती रहती थी तथा मद्रास व बम्बई की कुछ मिलों में जीने गन्दे और फिसलने थे। गोरखपुर की दो मिलों में लकड़ी का जीना जीर्णशीर्ण (Dilapidated) अवस्था में पाया गया। कुछ कारखानों में मशीनों तथा तेज गति से घूमने वाली धुरी व पेटी के चारों ओर ठीक प्रकार से रोक नहीं लगाई गई थी। यहां तक

प्रकाश और संवातन का सम्बन्ध है चीनी मिलों की दशा मद्रास की चीनी मिलों को छोड़कर साधारणतया सन्तोषजनक पाई गई थी।

कपास ओटने और रुई धुनने के कारखानों में प्रकाश और संवातन की व्यवस्था असन्तोषजनक है। वातावरण में धूल और कपास के रेशे रहते हैं। साधारणतया सुरक्षा साधनों की व्यवस्था नहीं है। मद्रास में अनेक बागान के कारखाने अनुपयुक्त अंधेरी इमारतों में हैं जिनमें दिन में भी कृत्रिम प्रकाश की आवश्यकता पड़ती है। सफाई की दशाएं शोचनीय हैं। धान छोलने वाले तालाबों के कारण बदबू और धूल रहती है। कुछ मिलों में सभी स्थानों पर गन्दगी पाई जाती है।

बड़ी-बड़ी अभ्रक खानों में व्यवस्थायें संतोषजनक हैं परन्तु छोटे-छोटे कारखानों में श्रमिक बुरी व्यवस्था में अंधेरे और बेढ़ंगाकार कमरों में काम करते हैं। चमड़ा फैक्ट्रियों में केवल कलकत्ते की कुछ यन्त्र प्रयोग करने वाली फैक्ट्रियों को छोड़कर श्रमिक कानूनों का ठीक प्रकार से पालन नहीं किया जाता। ऐसे कारखानों में संवातन सफाई और नालियों की व्यवस्था घोर असन्तोषजनक है।

मध्यप्रदेश और बम्बई में बीड़ी कारखानों में जो दशाएं बहुत ही खराब हैं। श्रमिकों को अंधेरे में या धुंधले प्रकाश में कार्य करना पड़ता है। स्त्री पुरुष या बच्चों को कार्य करने के लिए एक दूसरे से सटकर बैठना पड़ता है जिससे किसी श्रमिक के निकलने के लिए कठिनता से ही स्थान मिलता है। यह कारखाने अनियमित कारखाने हैं और कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते हैं। इसलिये इनकी दशाएं बहुत शोचनीय हैं। इनमें प्रकाश संवातन जलमल निकास आदि का कोई प्रबन्ध नहीं है। इसी प्रकार की दशाएं मद्रास के सिगार के कारखानों में पाई जाती हैं।

अधिकांश चमड़ा साफ करने व रंगने के कारखानों में कार्य की दशाएं बहुत शोचनीय हैं। वहां पर बहे हुये गन्दे पानी को निकालने के लिये नालियों की उचित व्यवस्था नहीं है। गन्दे पदार्थों को और गूदों को बिना सोचे समझे कारखानों में इधर उधर डाल दिया जाता है। फर्श ऊंचा नीचा तथा कच्चा होता है। श्रमिकों को सुरक्षा के साधन भी प्रदान नहीं किये गये हैं और वातावरण अत्यधिक गन्दा रहता है।

खानों में भी कार्य की दशाएं अधिक संतोषजनक नहीं हैं। मैंगनीज की खानों में शिवराजपुर (बम्बई) को छोड़कर शेष स्थानों में प्रकाश और संवातन का बहुत ही असंतोषजनक प्रबन्ध है। अधिकांश खानों में शौचालय और पेशाबघरों का सर्वथा अभाव है तथा विश्रामस्थलों व शिशुगृहों का तो नाम ही नहीं है। अभ्रक की खानों में से पानी को नियमित रूप से बाहर नहीं निकाला जाता है। अतः श्रमिकों को खान के भीतर पानी में ही कार्य करना पड़ता है। कोयले की खानों में भी यही दशाएं हैं। वर्षा के दिनों में खानों में पानी भर जाता है और कभी-कभी तो इसके कारण भयानक दुर्घटनाएं भी हो जाती हैं तथा अनेक श्रमिकों की मृत्यु भी हो जाती है।

बागान में भी कार्य की दशाएं अधिक अच्छी नहीं हैं। असम और बंगाल के चाय के अनेक बागान मलेरियाग्रस्त क्षेत्रों में स्थित हैं। अतः श्रमिक सरलता से

बीमारियों के शिकार हो जाते हैं। श्रमिक प्रायः दूरस्थ स्थानों से भर्ती किये जाते हैं। इस प्रकार वातावरण तथा जलवायु का उन पर कुप्रभाव पड़ता है। इनमें खाद्य सामग्री के राशन का भी उचित प्रबन्ध नहीं है। स्त्री श्रमिकों के लिए शिशुगृहों की उचित व्यवस्था नहीं है तथा कन्टीन की भी सुविधा नहीं है।

रेलवे में गैंग मन को वर्षा में कम्बल तथा बरसाती नहीं दी जाती है। काम होने वाले कुलियों तथा कल पुर्जे ठीक करने वालों के लिए छाये की व्यवस्था नहीं है। कोयलाझोंकने वाले श्रमिकों को यदाकदा ही अपनी आँखों की रक्षार्थ चश्मा प्रदान किया जाता है। अनेक स्टेशनों पर 'सिग्नल मैन' को वर्षा और धूप से बचाव के लिये किसी छाये की व्यवस्था नहीं होती। केबिनों में शौचालय, पेशाबघर और पीने के पानी की कोई व्यवस्था नहीं है। गार्ड काम के लगातार घण्टों की शिकायत करते हैं। स्त्रवों को अत्यधिक काम की शिकायत है। दक्षिण भारत रेलवे के ड्राइवरों को यह शिकायत है कि यदि वह कोयला के प्रयोग में मितव्ययता नहीं करते तो प्रशासन उनके विरुद्ध कठोर पग उठाता है।

ट्राम तथा बस सेवाओं के श्रमिकों के लिए भी पीने के पानी, शौचालय और विश्राम-गृहों की व्यवस्था नहीं है। ड्राइवरों को ट्राम तथा बस की गति का नियंत्रित करने के लिए घड़ी प्रदान नहीं की जाती। कण्डक्टरों का यह शिकायत है कि उन्हें नियमित काय के पश्चात् दिन की आय का हिसाब-किताब चुकाने के लिए दो घण्टे तक अधिक रुकना पड़ता है।

कार्य की दशाओं में सुधार करने के सुझाव —

१६४६ की श्रम अनुसंधान समिति ने कार्य की इन दशाओं की ओर संकेत किया था जिसका ऊपर उल्लेख किया गया है। बम्बई, अहमदाबाद, कानपुर आदि विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों को व्यक्तिगत रूप से देखने पर अनुभव किया गया है कि अभी तक कार्य की वैसी ही दशाएँ उपस्थित हैं। मोदीनगर में मोदी वस्त्र मिल जैसे नये स्थापित कारखानों में अवस्था अवश्य संतोषजनक है। बम्बई के माडलिन के कारखानों में दशाएँ बहुत शोचनीय पाई जाती हैं। अधिकांश भारतीय उद्योगों में श्रमिकों के कार्य की दशाएँ बहुत ही असंतोषजनक हैं। निरीक्षण और देखभाल की व्यवस्था को दृढ़ करना चाहिए, निरीक्षण बार-बार होना चाहिए तथा श्रमिक कानूनों को कठोरता के साथ अनियन्त्रित उद्योगों में लागू करना चाहिए। सभी श्रमिकों की दशा में सुधार हो सकेगा, दुर्घटनाओं की संख्या में कमी होगी तथा श्रमिकों की कार्य कुशलता भी बनी रहेगी। श्रम अनुसंधान समिति का यह भी मत था कि कुछ आय श्यक सुविधाओं को वर्तमान की अपेक्षा और भी अधिक विस्तृत आधार पर प्रदान करना चाहिए। सबसे पहली बात तो लगातार उत्पादन में संलग्न कारखानों में विश्राम दिनों की है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए राज्य सरकारों ने सप्ताह में एक दिवस को—रविवार या अन्य कोई दिन—छुट्टी का दिन निश्चित कर दिया है।

विश्राम दिनों की समस्या का विवेचन 'वेतन सहित छुट्टियां व अवकाश' के अन्तर्गत किया जा चुका है। (पृष्ठ ९८ से ७२ तक)।

शौचालय तथा पेशाबघर —(Latrines and Urinals)

शौचालयों तथा पेशाबघरों की व्यवस्था करना एक अन्य आवश्यक सेवा है। अधिकांश नियमित कारखाने केवल कानून का अक्षरशः पालन करते हैं और श्रमिकों के अनुपात में उन्होंने इस सम्बन्ध में व्यवस्था भी की है। परन्तु इनकी उपयुक्तता तो इस बात पर निर्भर है कि शौचालय किस प्रकार से बनाये गये हैं तथा उनमें सफाई की कैसी व्यवस्था है। जनता के शौचालय कच्चे तथा खुले शौचालयों से निश्चित रूप से अच्छे और अधिक सेवा प्रदान करने वाले होते हैं। अधिकांश स्थानों पर शौचालयों का ढांचा उनका स्थान तथा उनकी सफाई की व्यवस्था बहुत ही असन्तोषजनक है। कुछ शौचालयों में छतें नहीं हैं और कुछ में पर्दे का भी अभाव है। कीटाणुनाशक पदार्थों का प्रयोग तो कभी-कभी ही किया जाता है। टट्टी को भी नियमित रूप से थोड़े-थोड़े समय के पश्चात् साफ नहीं किया जाता है क्योंकि भंगियों की संख्या कम होती है और निरीक्षण का भी अभाव होता है। इस कारण श्रमिक खुले मैदानों में ही शौच के लिये जाना अधिक पसन्द करते हैं। शौचालयों तथा पेशाबघरों की अलग अलग व्यवस्था नहीं है। यह बहुत ही गन्दे स्थानों पर बनाये जाते हैं। अनियंत्रित कारखानों में तो दशाएं और भी खराब हैं और अधिकांश में तो शौचालय तथा मूत्रालय हैं ही नहीं। इस ओर सफाई-व्यवस्था की तीव्र आवश्यकता है। १९४८ के कारखाना अधिनियम की धाराओं को कठोरता से लागू करना आवश्यक है।

पीने का पानी —(Drinking Water)

पीने के पानी की व्यवस्था भी सन्तोषजनक नहीं है। अगर पीने के पानी की व्यवस्था की भी जाती है तो पानी बहुधा गन्दे बर्तनों में रख दिया जाता है। अधिकतर तो पानी पीने के लिए केवल टोंटी के नलों की व्यवस्था कर दी जाती है। गर्मी के दिनों में पानी ठण्डा करने के लिए अथवा बर्फ के पानी की कोई व्यवस्था नहीं की जाती। पीने के पानी की उचित व्यवस्था करने की विशेषतया ग्रीष्म ऋतु में ठण्डा पानी प्रदान करने की तीव्र आवश्यकता है।

विश्राम-स्थल —(Rest Shelters)

एक अन्य महत्वपूर्ण सेवा श्रमिकों के लिए ऐसे विश्राम-स्थलों की है जहां वह बैठकर खाना खा सकें अथवा मध्यान्तर में आराम कर सकें। केवल कुछ ही मिलों में इनकी व्यवस्था है। बड़े बड़े कारखानों में तो विश्राम-स्थल अथवा भोजन के लिए स्थान की व्यवस्था पाई जाती है परन्तु छोटे तथा अनियमित कारखानों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। जहां कहीं कुछ व्यवस्था है भी वहां दशाएं असन्तोषजनक नहीं हैं। विश्राम-स्थान ऐसे स्थानों पर बना दिये जाते हैं, जहां मालिकों को सुविधा होती है। साधारणतया सब श्रमिकों के लिए पर्याप्त स्थान भी नहीं होता इनका निर्माण

बिना किसी पूर्व योजना के उल्टा सीधा कर लिया जाता है। इनमें गन्दगी भी रहती है तथा इनकी सफाई भी नहीं की जाती। इसी कारण श्रमिक इनकी अपेक्षा पेड़ों की छाया अधिक पसन्द करते हैं। अधिकांश स्थानों में तो बैठने की भी व्यवस्था नहीं होती और श्रमिकों को धरती पर बैठकर ही भोजन ग्रहण करना पड़ता है। स्त्री और पुरुष श्रमिकों के लिए अलग अलग विश्राम-स्थानों की व्यवस्था नहीं की जाती। इसलिए ऐसी परिस्थितियों में यदि श्रमिक विश्राम-स्थलों का उपयोग नहीं करते जैसा कि कुछ मालिक शिकायत करते हैं तो इसका कारण भी स्पष्ट ही है। श्रमिकों को पेड़ के नीचे जमीन पर धूल में अथवा कार्य के कमरे के अंधेरे कोने में बैठकर खाना खाते हुए देखकर दुःख होता है। स्त्री और पुरुष श्रमिकों के लिए अलग अलग विश्राम-स्थलों का प्रबन्ध होना चाहिए, जिनमें बैठने की उचित व्यवस्था हो। कानून ही इस मामले में श्रमिकों की सहायता कर सकता है। १९४८ के कारखाना अधिनियम में खाने, विश्राम-स्थल तथा खाना खाने के लिए कमरों की व्यवस्था की गई है। परन्तु यह उन्हीं कारखानों के लिए है जहाँ १५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं।

दुर्घटनाओं की रोकथाम — (Prevention of Accidents)

श्रमिकों की सुरक्षा के लिये एक अन्य आवश्यक व्यवस्था दुर्घटनाओं की रोकथाम है। ऐसी दुर्घटनाएँ आधुनिक औद्योगिक जीवन की सामान्य बातें हो गई हैं। औद्योगिक दुर्घटनाओं की ओर अब अधिक से अधिक ध्यान दिया जा रहा है। एच० डब्लू० हैनरिच नामक एक औद्योगिक मनोवैज्ञानिक का अनुमान है कि ९८% औद्योगिक दुर्घटनाओं को रोका जा सकता है। ८८% दुर्घटनाएँ दोषपूर्ण निरीक्षण श्रमिकों की अयोग्यता, हीन अनुशासन, एकाग्रचित्तता की कमी, सुरक्षा सम्बन्धी बातों की अवहेलना करने की आदतों व कार्य के लिये मानसिक व शारीरिक अयोग्यता के कारण होती हैं। १० प्रतिशत दुर्घटनाएँ दोषपूर्ण मशीनरी अथवा कार्य की दुर्व्यवस्थाओं के कारण होती हैं। दुर्घटनाएँ इसलिये भी होती हैं कि कुछ मनुष्यों की मनोवृत्ति ऐसी हो जाती है कि वह दुर्घटनाएँ कर ही बैठते हैं चाहे वह उनसे कितना ही बचना चाहें। औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों की क्लान्ति (Fatigue) तथा उनसे मानसिक परिवर्तन भी दुर्घटनाओं की प्रवृत्तियों को बढ़ा देते हैं।

कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत उन सभी दुर्घटनाओं की सूचना जिनसे मृत्यु हो जाती है अथवा ऐसी शारीरिक चोट पहुँचती है जिससे श्रमिक ४८ घण्टों तक काम करने योग्य नहीं रहता, कारखाना इन्सपेक्टर को देनी होती है। कोई भी दुर्घटना 'गम्भीर' उस समय समझी जाती है जबकि दुर्घटना के कारण श्रमिक २१ या अधिक दिन तक काम पर से अनुपस्थित हो जाता है। दुर्घटना को 'मामूली' उस समय कहा जाता है जब अनुपस्थिति ४८ घण्टों से अधिक परन्तु २१ दिनों से कम होती है। दुर्घटनाओं का तीसरा वर्गीकरण 'घातक' दुर्घटनाओं का है अर्थात् जिनके परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाती है। दुर्घटनाओं के कारण श्रमि-

कारखाना अधिनियम, खान अधिनियम, रेलवे अधिनियम तथा गोदी श्रमिक अधिनियम के अन्तर्गत एकत्रित किये जाते हैं और इन अधिनियमों की वार्षिक रिपोर्टों में प्रकाशित किये जाते हैं। १९५९ में औद्योगिक दुर्घटनाओं की संख्या निम्न प्रकार थी : कारखानों में—१,११,६०९ (११८ घातक तथा १,११,४९१ अघातक) खानों में—२८८ घातक तथा ४०८४ गम्भीर; रेलों में—आवागमन कार्यों में १०१ घातक तथा २८,५१२ अघातक तथा रेलवे कार्यशालाओं में १४ घातक तथा २२,६०६ अघातक; गोदी कर्मचारियों में १७ घातक तथा १,७८८ अघातक। खानों में घातक दुर्घटनाओं की संख्या अधिक है क्योंकि खानों में कार्य खतरनाक होता है। १९६० में खानों में घातक दुर्घटनाओं की कुल संख्या २१८ थी (१४५ कोयला खानों में तथा ७३ अन्य खानों में)। इन दुर्घटनाओं में ३११ व्यक्ति मृत्यु को प्राप्त हुए (इनमें से २१० व्यक्ति कोयला खानों के थे) तथा ५२ श्रमिकों को गम्भीर प्रकार की क्षति पहुंची थी जिनमें से १२ कोयला खानों के श्रमिक थे। कोयला खानों में गम्भीर दुर्घटनाओं की संख्या १,१४ थी जिनमें १०८ व्यक्तियों को गम्भीर क्षति पहुंची थी। अन्य खानों में गम्भीर दुर्घटनाओं की संख्या ७७६ थी जिनमें ७९१ व्यक्तियों को गम्भीर क्षति पहुंची। पिछले कुछ वर्षों से खानों में होने वाली दुर्घटनाएं चिन्ता का विषय बन गई हैं। १९५६ से १९५८ तक कोयला खानों में दुर्घटनाओं की संख्या ८,७२७ थी जिनमें ८५८ व्यक्ति मारे गये और ८,४१८ व्यक्तियों को गम्भीर क्षति पहुंची। सरकार ने एक आपत्कालीन (Emergency) कदम के रूप में आशंकित (Apprehended) खतरों को रोकने तथा ऐसी अवस्थाओं में जो खतरे का कारण हों शीघ्रातिशीघ्र सुधार के लिए १९५५ में कोयला खान (अस्थायी) नियम जारी किये। कोयला खानों में सुरक्षा के प्रश्न पर इंगलैंड के रायल कमीशन के आधार पर ही उच्चस्तरीय आयोग स्थापित करने का विचार किया जा रहा है। खानों में सुरक्षा के लिए एक मार्गदर्शक दल की नियुक्ति भी की गई है। १९५९ में खानों से सम्बन्धित सुरक्षा पर एक सम्मेलन भी हुआ। इसमें यह सुझाव दिया गया कि खानों में कार्य दशाएं सुधारने के लिए सुरक्षा समितियां बनाई जानी चाहिएं। परिणामस्वरूप ५ समितियों की स्थापना की गई है। इन समितियों का कार्य कोयला धूल, सुरक्षा शिक्षा तथा प्रचार, संचालन प्रकाश, श्रमिक स्वास्थ्य आदि से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करना है। ब्रिटेन से खानों के दो विशेषज्ञों की सेवाएं भी प्राप्त की गई हैं जो सरकार को खानों से सम्बन्धित सुरक्षा के विषय पर परामर्श देते हैं। झरिया और रानीगंज की कोयला खानों में "बचाव स्टेशन" (Rescue Stations) स्थापित किये गये हैं। इनको १९१९ के कोयला खान बचाव (Rescue) नियमों के अन्तर्गत स्थापित किया गया है। यह नियम १९५९ में फिर से बना दिए गए हैं और अब यह सभी कोयला खानों में लागू होते हैं। "बचाव स्टेशनों" का कार्य दुर्घटना होने पर लोगों को निकालने और बचाने के कार्यों में सहायता देना है और अब यह सभी कोयला खानों में स्थापित किये जा रहे हैं।

दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिये सुरक्षा सम्बन्धी वैधानिक उपबन्ध कारखाना अधिनियम, भारतीय खान अधिनियम तथा भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियमों में दिये हुए हैं। कारखाना अधिनियम की धाराएं १६४८ के अधिनियम में और अधिक विस्तृत कर दी गई हैं। प्रत्येक कारखाने के स्थानीय स्वामी पर ही श्रमिकों की सुरक्षा का भार डाला गया है और अब इन्सपेक्टर द्वारा पूर्व सूचना अथवा चेतावनी आवश्यक नहीं रह गई है। कारखानों में अधिकतर दुर्घटनाओं (विशेषतया "घातक तथा गम्भीर" दुर्घटनाओं) का कारण साधारणतया मशीनों को कहा जाता है। अतः कारखाना इन्सपेक्टरों द्वारा मशीनों के चारों ओर रोक लगाने पर बहुत अधिक जोर दिया जाता है। पर्याप्त मात्रा में लोहा उपलब्ध न होने के कारण उचित रोक लगाने में अड़चनें पड़ती हैं और इसी कारण अधिकांश राज्यों में लकड़ी की रोक लगाने की आज्ञा दे दी गई है। कारखानों के इन्सपेक्टर कुछ विशेष प्रकार की रोक लगाने के उपयुक्त ढंग का प्रदर्शन करते हैं। बिहार, बम्बई, उत्तर प्रदेश और हैदराबाद में सुरक्षा समितियां के संगठनों को प्रोत्साहन दिया गया है तथा 'दुर्घटना न हो' आन्दोलन (No Accident Campaigns) सचालित किये जाते हैं। कारखानों के मुख्य सलाहकार (Chief Adviser of Factories) के कार्यालय द्वारा समय समय पर सुरक्षा और दुर्घटनाओं की रोकथाम के उपायों पर पुस्तिकाएं, पर्चे तथा विज्ञापन पत्र प्रकाशित किये जाते हैं। जनवरी १६५८ से एक "औद्योगिक सुरक्षा और स्वास्थ्य पत्रिका" भी प्रकाशित की जा रही है। केन्द्रीय सरकार ने बम्बई में एक "औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान संगठन" (Industrial Hygiene Organisation) तथा एक केन्द्रीय श्रम संस्था (Central Labour Institute) की स्थापना की है। इन दोनों संस्थाओं ने खतरनाक व्यवसायों के संबंध में अनेक सर्वेक्षण किये हैं। कानपुर, कलकत्ता और मद्रास में औद्योगिक सुरक्षा स्वास्थ्य एवं कल्याण के तीन प्रादेशिक संस्थानों की स्थापना भी की जा रही है। यह संस्थान एक ऐसी समायोजित योजना का भाग है जिसका उद्देश्य सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण की शिक्षा देना है ताकि औद्योगिक क्षेत्रों की विशेष आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके। बम्बई की केन्द्रीय श्रम संस्थान इस योजना को लागू करने में केन्द्रीय संगठन का कार्य करेगी। मालिकों के कुछ संगठन, श्रमिक संघ तथा 'सुरक्षा प्रथम परिषद' (Safety First Associations) जैसी कुछ स्वैच्छिक संस्थायें भी औद्योगिक सुरक्षा को प्रोत्साहित कर रही हैं। यद्यपि १६४८ के अधिनियम में श्रमिकों की सुरक्षा के लिए अनेक धाराएं दी हुई हैं परन्तु उनको कठोरता से लागू करना आवश्यक है। मार्च १६५५ में कारखानों के मुख्य इन्सपेक्टरों के एक सम्मेलन में दुर्घटनाओं की रोकथाम के प्रश्न पर विचार किया गया था। इस बात पर विशेष बल दिया गया था कि खतरनाक मशीनों से सुरक्षा करने के हेतु कुछ सामान्य सिद्धान्तों की "सुरक्षा पुस्तिकाएं" प्रकाशित की जायें तथा सुरक्षा पुस्तिकाओं की तैयारी के लिये कुछ आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए समितियां बनाई जायें।

अधिनियमों में दिये गये सुरक्षा सम्बन्धी उपबन्धों का भी कठोरता से पालन किया जाना चाहिये।

जनवरी १९६ में श्रम मंत्रियों के सम्मेलन में औद्योगिक दुर्घटनाओं के विषय पर काफी विचार विमर्श किया गया था। इस सम्मेलन में फैक्ट्री निरीक्षक व्यवस्था को दृढ़ करने, छोटे-छोटे मालिकों को परामर्श देने, सुरक्षा उपायों में श्रमिकों को प्रशिक्षण देने, निरन्तर प्रचार करने, पारितोषिक देने, सुरक्षा सम्बन्धी समस्याओं का सर्वेक्षण करने आदि के सम्बन्ध में सिफारिशें की थी।

रिकार्ड के संगीत की व्यवस्था —(Provision of Recorded Music)

कुछ व्यक्तियों का यह सुझाव है कि अच्छा वातावरण बनाये रखने के लिए कार्य के घण्टों की अवधि में ही रिकार्ड के संगीत की व्यवस्था होनी चाहिए। परन्तु यह सुझाव व्यावहारिक प्रतीत नहीं होता क्योंकि बड़े पैमाने के उद्योगों में श्रमिकों पर इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ेगा। कारखानों में मशीनों का शोरगुल इतना अधिक होता है कि कार्य के समय रिकार्ड के संगीत की बात हास्यास्पद प्रतीत होती है। यदि इसकी व्यवस्था की भी जाती है तो यह श्रमिकों के लिए सहायक होने की अपेक्षा उनके ध्यान को बांट देगा। मध्यान्तर अथवा भोजन के समय में तो रेडियो अथवा रिकार्ड के संगीत में कोई आपत्ति नहीं हो सकती। इसकी व्यवस्था कैन्टीन द्वारा सरलता से तथा कुशलतापूर्वक की जा सकती है अन्यथा कारखाने के अन्दर रिकार्ड के संगीत की व्यवस्था के सुझाव पर गम्भीरतापूर्वक ध्यान नहीं देना चाहिए। अन्य देशों में जहां कारखानों के अन्दर मशीनों द्वारा इतना शोर पैदा नहीं होता और संगीत भी भिन्न होता है इस सम्बन्ध में विचार किया जा सकता है। अन्य देशों में इस सम्बन्ध में सफलतापूर्वक कुछ प्रयोग भी किये गये हैं।

उपसंहार –

देश में औद्योगिक श्रमिकों की कार्य की दशाओं में उन्नति करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। किसी भी कारखाने को उस समय तक चलाने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए, जब तक कि कारखाने के स्थान आदि की पूर्व स्वीकृति सरकार द्वारा प्राप्त नहीं कर ली जाती। १९४८ के कारखाना अधिनियम में यद्यपि श्रमिकों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की पर्याप्त व्यवस्था है तथापि सबसे बड़ी आवश्यकता तो इस बात की है कि उन्हें उचित प्रकार से लागू किया जाय तथा उनका उचित प्रकार से निरीक्षण भी हो। अधिनियम का क्षेत्र अनियन्त्रित कारखानों और छोटे छोटे संस्थाओं तक भी विस्तृत होना चाहिए। ऐसे कारखानों में कार्य की दशाएँ *अत्यन्त असंतोषजनक हैं।*

गत कुछ वर्षों में निरीक्षण की व्यवस्था में सुधार हुआ है तथा अधिनियमों के अन्तर्गत दण्ड भी अधिक किये गए हैं। कारखाना निरीक्षकों के लिए नई दिल्ली में प्रशिक्षण पाठ्य-क्रम भी प्रारम्भ किये गये हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अन्तर्गत जनवरी १९६ में कलकत्ते में एक अध्ययन गोष्ठी का आयोजन किया गया था।

कोलम्बो आयोजना और अमरीका प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत श्रम निरीक्षकों को प्रशिक्षण हेतु अन्य देशों में भेजा गया है। उद्योग में तापक्रम अवस्थाओं तथा काम के अनुपात में विश्राम अवधि का निर्धारण करने के लिए अमेरिका के एक विशेषज्ञ की सहायता से अध्ययन किया गया था जिसका उद्देश्य यह मालूम करना था कि श्रमिकों की ताप सहनशीलता कितनी है और अत्यधिक ताप और हवा की नमी का उनके स्वास्थ्य और कार्यकुशलता पर क्या प्रभाव पड़ता है। इस प्रकार का अध्ययन अहमदाबाद की दो सूती कपड़ा मिलों में किया जा रहा है।

काम के घण्टे
(Hours of Work)

काम के घण्टों को नियन्त्रित करने का महत्व —

श्रमिकों का स्वास्थ्य एवं कार्यकुशलता अधिकतर इस बात पर निर्भर करती है कि उन्हें कितने घण्टे काम करना पड़ता है। अधिक घण्टों तक काम करने से स्वभावतया श्रमिक को थकान हो जाती है तथा वह अपने कार्य के प्रति शिथिल भी हो जाता है। थकान के कारण बहुधा श्रमिक का स्वास्थ्य गिर जाता है। इससे उनकी कार्यकुशलता पर भी प्रभाव पड़ता है। इसके अतिरिक्त यदि कार्य के घण्टे अधिक हैं, तब श्रमिकों में इधर उधर घूमने और अनेक बहानों से समय नष्ट करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। भारतीय मालिकों को बहुधा यह शिकायत रहती है कि भारतीय श्रमिक स्थिर चित्त होकर निरन्तर काम करने में असमर्थ हैं। श्रमिक अधिकतर अपनी मशीनों पर से अनुपस्थित पाये जाते हैं तथा उनके स्थान पर अतिरिक्त श्रमिकों को लगाना पड़ता है। श्रमिकों की इस प्रवृत्ति का मुख्य कारण भारतीय कारखानों में चले आ रहे काम के अधिक घण्टों का होना है। अधिक घण्टे से न केवल शारीरिक थकान होती है वरन् श्रमिकों को अधिक समय तक अपने घर से बाहर भी रहना पड़ता है। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक घरेलू काम-काज तथा अपने परिवार की ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाता और न ही अपने मानसिक और शारीरिक मनोरंजन तथा सामाजिक कल्याण के लिए समय निकाल पाता है। भारत में जल वायु की स्थिति तथा काम की अस्वास्थ्यकर दशाएँ भी देश में काम के घण्टों को घटाने की आवश्यकता की ओर इंगित करती हैं। यदि काम के घण्टे सामान्य हों जिनमें विश्राम के लिए मध्यान्तर भी हों, तब श्रमिक अपने कर्तव्यों का कुशलता से और दक्षतापूर्वक पालन कर सकता है। अतः भारतवर्ष में कार्य के घण्टों को कम करने का प्रश्न भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के लिए सदैव ही बड़ा महत्वपूर्ण रहा है परन्तु देश में ४८ घण्टे का सप्ताह १९४८ तक लागू नहीं किया जा सका था।

कारखाना अधिनियमों द्वारा निर्धारित काम के घण्टे —

देश में समय-समय पर विभिन्न कारखाना अधिनियमों द्वारा काम के घण्टे निर्धारित किए गये हैं। सन् १८८१ के प्रथम कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत

केवल सात से बारह वर्ष तक की आयु के बालकों के कार्य के घण्टे निर्धारित किए गये थे। इनके काम करने की अवधि ९ घण्टे प्रतिदिन थी जिसमें प्रतिदिन एक घण्टे का विश्राम और मास में चार दिन की छुट्टियों की भी व्यवस्था थी। वयस्कों के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। सन् १८९१ के कारखाना अधिनियम द्वारा स्त्रियों के कार्य करने के घण्टे प्रतिदिन ११ निर्धारित किए गये थे और १½ घण्टे के विश्राम मध्यान्तर की भी व्यवस्था थी। ९ से १४ वर्ष के बालकों के लिये कार्य करने के घण्टे प्रतिदिन ७ कर दिए गये। स्त्रियों और बालकों के लिए रात्रि में काम करना निषिद्ध कर दिया गया। पुरुष श्रमिकों के लिए भी एक घण्टे के विश्राम की व्यवस्था की गई थी। सन् १९११ के कारखाना अधिनियम में प्रथम बार वयस्क पुरुष श्रमिकों के लिए अधिकतम कार्य के घण्टे प्रतिदिन १२ निर्धारित किए गये जिसमें एक घण्टे के विश्राम की भी व्यवस्था थी। १९२२ के कारखाना अधिनियम द्वारा वयस्क पुरुष श्रमिकों के कार्य के घण्टे घटाकर प्रतिदिन ११ अथवा ६० घण्टे प्रति सप्ताह कर दिये गये। १२ से १५ वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए कार्य के घण्टे प्रतिदिन ६ निर्धारित किए गये। स्त्रियों और बालकों के लिए रात्रि में काम करना निषेध कर दिया गया। १९३४ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत मौसमी कारखानों में वयस्कों के कार्य के घण्टे प्रतिदिन ११ अथवा ६० घंटे प्रति सप्ताह तथा निरन्तर चालू कारखानों में प्रतिदिन १० अथवा ५४ घंटे प्रति सप्ताह निर्धारित किए गये। बालकों के कार्य के घण्टे घटाकर प्रतिदिन ५ कर दिये गए। श्रम-समय-विस्तार (Spread Over) का नियम भी प्रथम बार लागू किया गया और वयस्कों के लगातार काम करने के घण्टे १३ और बालकों के ७½ निर्धारित किये गये। समयोपरि (Over-time) के लिए यह आवश्यक कर दिया गया कि सामान्य मजदूरी से डेढ़ गुना अधिक मजदूरी दी जाय।

नवम्बर, १९४२ में सातवें श्रम सम्मेलन ने ४८ घण्टे प्रति सप्ताह के सिद्धान्त की सिफारिश की और उसके परिणामस्वरूप १९४६ का एक संशोधित अधिनियम पारित किया गया। अब निरन्तर चालू कारखानों में कार्य के घण्टे घटा कर अधिकतम प्रति सप्ताह ४८ अथवा प्रतिदिन ९ और मौसमी कारखानों में प्रति सप्ताह ५४ अथवा प्रतिदिन १० कर दिए गये। श्रम-समय-विस्तार १३ घण्टों से घटाकर निरन्तर चालू कारखानों में १०½ घण्टे और मौसमी कारखानों में ११½ घण्टे कर दिया गया। समयोपरि कार्य के लिये सामान्य वेतन से दुगनी दर से भुगतान की व्यवस्था कर दी गई। इसके पश्चात् १९४८ का कारखाना अधिनियम आता है। इसके अनुसार कार्य के घण्टे पहले की ही भाँति प्रति सप्ताह ४८ अथवा प्रतिदिन ९ हैं और श्रम-समय-विस्तार भी १०½ घण्टे है। इस अधिनियम में निरन्तर चालू और मौसमी कारखानों के अन्तर को समाप्त कर दिया गया है। बालकों और किशोरों के लिए कार्य के घण्टे प्रतिदिन ४½ निर्धारित किये गये हैं और श्रम-समय-विस्तार उनके लिए पाँच घण्टे का कर दिया गया है। प्रति ५ घण्टे कार्य करने के पश्चात्

वयस्क श्रमिक के लिए आध घण्टे के मध्यान्तर की व्यवस्था की गई है। एक साप्ताहिक छुट्टी तथा वेतन सहित अवकाश की भी व्यवस्था है। स्त्रियों और बच्चों का रात्रि ७ बजे से लेकर प्रात: ६ बजे तक काम करना निषिद्ध है। समयोपरि के लिए सामान्य वेतन से दुगना देना होता है। कोई भी श्रमिक एक ही दिन में दो कारखानों में काम नहीं कर सकता। रात्रि पारी में काम करने वाले श्रमिकों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि उन्हें हर सप्ताह २४ घण्टे का निरन्तर विश्राम प्रदान किया जाये।

१९५४ में कारखाना अधिनियम में संशोधन किया गया। इसका मुख्य उद्देश्य कारखानों में रात्रि में कार्य करने वाले युवकों और स्त्री श्रमिकों के रोजगार के सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय को लागू करना था क्योंकि इस अभिसमय को भारत सरकार ने अपना लिया था। इस संशोधित अधिनियम के अनुसार कारखानों के मुख्य निरीक्षकों को यह अधिकार दे दिया गया है कि वे दैनिक कार्य के घण्टों की सीमा के अन्दर कारखानों को कुछ छूट दे सकें ताकि पारियों के परिवर्तन करने में सुविधा हो सके। किसी भी कारखाने को किसी विशेष कारण से अब यह अनुमति भी दी जा सकती है कि ५ घण्टे लगातार काम करने के पश्चात् अपने श्रमिकों को आधे घण्टे का मध्यान्तर देने के स्थान पर ६ घण्टे निरन्तर कार्य करने के बाद मध्यान्तर प्रदान करें। संशोधित अधिनियम में बालकों और किशोरों के काम पर लगाये जाने के सम्बन्ध में कुछ और प्रतिबन्ध भी लगाये गये हैं। बालकों तथा १७ वर्ष से कम आयु के किशोरों का कारखानों में रात्रि में काम करना निषिद्ध घोषित कर दिया गया है। 'रात्रि' की परिभाषा का अर्थ उस अवधि से लिया गया है जो कम से कम निरन्तर १२ घण्टों की हो और जिसमें कम से कम निरन्तर ७ घण्टों की अवधि ऐसी हो जो बालकों के लिए १० बजे रात्रि से प्रातः ६ बजे तक और किशोरों के लिए १० बजे रात्रि से प्रातः ७ बजे तक आती हो।

भारतीय उद्योगों में प्रचलित काम के घण्टे —

उपरोक्त वृत्तान्त भारत में कार्य के घण्टे सम्बन्धी वैधानिक उपबन्धों का है, परन्तु यह विधान केवल नियन्त्रित उद्योगों में ही लागू होते हैं। भारतवर्ष में कारखाना उद्योग के प्रारम्भिक दिनों से अधिक घण्टों तक काम कराना साधारण बात थी। १९०८ तक सूती उद्योग में सामान्य कार्य दिवस १४ से १५ घण्टों का और कभी-कभी तो १८ घण्टों तक का होता था। अनेक कारखाना अधिनियमों द्वारा कार्य दिवस को कम किया जा सका है। द्वितीय विश्व युद्ध से पूर्व कारखानों में कार्य के घण्टे १९३४ के कारखाना अधिनियम द्वारा नियमित किये जाते थे। बम्बई और अन्य स्थानों की सूती वस्त्र मिलों में ५४ घण्टे प्रति सप्ताह अथवा ६ घण्टे प्रतिदिन काम किया जाता था। मौसमी मिलों में कार्य के घण्टे और भी अधिक थे। कपास से बिनौला निकालने वाली मिलों व रेशमी तथा ऊनी कपड़ा मिलों में १० घण्टे

काम होता था। कुछ उद्योग में १२ घण्टे और शीशे, कालीन आदि बनाने वाले कारखानों में ९½ से १० घण्टे तक काम होता था। लगभग सभी कारखानों में नियमित मध्यान्तर और साप्ताहिक छुट्टी दी जाती थी।

१९३९ में युद्ध छिड़ जाने के परिणामस्वरूप उत्पादन को तेजी से बढ़ाना पड़ा और सरकार ने संकटकालीन उपाय के रूप में कारखाना अधिनियमों द्वारा निर्धारित कार्य के घण्टों की धारा में कुछ ढील दे दी। उदाहरणार्थ नवम्बर १९४१ में सूती वस्त्र और बुनाई मिलों को ५४ घण्टों के स्थान पर ६० घण्टे प्रति सप्ताह काम करने की अनुमति प्रदान कर दी गई। जूट मिलों के कार्य के घण्टे तो कहीं-कहीं ६६ घण्टे प्रति सप्ताह तक हो गये। यह ध्यान देने योग्य बात है कि बंगाल में जूट मिलों के कार्य के घण्टों का निर्धारण कानून द्वारा निश्चित की गई सीमाओं के अन्दर ही भारतीय जूट मिल परिषद् द्वारा किया जाता है। युद्धकाल में इसका निर्धारण जूट की मांग और कारखानों को चलाने के लिए कोयले की उपलब्धि के अनुसार किया गया। श्रम अनुसंधान समिति ने १९४६ में यह बताया कि अधिकांश कारखानों में काम के घण्टे ८ से ९ प्रतिदिन तक थे। कुछ कारखानों में जहां कि तीन पारियों में काम होता था कार्य के घण्टे प्रतिदिन ७½ ही थे। कपड़ा और कालीन बनाने वाले जैसे अनियमित कारखानों में कार्य के घण्टे कभी कभी प्रतिदिन १२ तक पहुंच जाते हैं।

जहां तक श्रम-समय-विस्तार (Spread-over) का सम्बन्ध है यह स्थान स्थान पर और विभिन्न उद्योगों में पारी प्रणाली और मध्यान्तर की व्यवस्था के अनुसार अलग अलग है। परन्तु साधारणतया यह कारखाना अधिनियम की धाराओं के अनुसार ही है। राज्य सरकारों को कुछ विशेष श्रेणियों के कर्मचारियों को कार्य के घण्टे और साप्ताहिक छुट्टी आदि सम्बन्धी अधिनियम की धाराओं से छूट देने के लिए नियम बनाने का भी अधिकार है। परन्तु जहां इस प्रकार की छूट प्रदान की जाती है वहां अधिनियम में इस बात का भी उल्लेख है कि (१) कार्य के घण्टों की कुल संख्या एक दिन में १० से अधिक न हो (२) किसी भी एक तिमाही में समयोपरि घण्टों की कुल संख्या ५० से अधिक नहीं होनी चाहिए, (३) श्रम-समय-विस्तार एक दिन में १२ घण्टे से अधिक नहीं होना चाहिए।

यह बात भी उल्लेखनीय है कि १९४६ के संशोधित अधिनियम के पारित होने से पूर्व भी जिसमें कार्य के घण्टों की संख्या घटाकर प्रति सप्ताह ४८ कर दी गई थी अधिकांश नियमित उद्योगों में श्रमिक ४८ घण्टे प्रति सप्ताह ही काम करते थे। १९३८ में यह देखा गया कि भारतवर्ष के निरन्तर चालू कारखानों में कार्य करने वाले २९% पुरुष श्रमिक और ३१% स्त्री श्रमिक ४८ घण्टे प्रति सप्ताह से अधिक कार्य नहीं करते थे तथा मौसमी उद्योगों में भी १६ प्रतिशत पुरुष श्रमिक और ४१ प्रतिशत स्त्री श्रमिक ४८ घण्टे से अधिक काम नहीं करते थे। बिहार श्रमिक जांच समिति ने भी यह उल्लेख किया था कि अधिकतर काम के घंटे कानून

द्वारा निर्धारित काम के घण्टों से कम थे। १९४२ में भारत सरकार के श्रम विभाग द्वारा की गई जाँच पड़ताल से भी यह ज्ञात हुआ कि इंजीनियरिंग कच्चे लोहे चीनी रुई से बिनौला निकालने वाले कारखानों तथा ट्रामवे बस सेवा और बन्दरगाहों में ४८ घण्टे प्रति सप्ताह ही काम किया जाता था। अब सभी प्रकार के कारखानों में १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा निर्धारित ४८ घण्टे प्रति सप्ताह कार्य किया जाता है।

खानों में काम करने के घण्टे

जहाँ तक खानों का सम्बन्ध है काम के घण्टे प्रथम बार १९२३ के भारतीय खान अधिनियम द्वारा निर्धारित किये गये थे। अब खान के ऊपर काम करने वाले श्रमिकों के लिए ६० घण्टे प्रति सप्ताह और खान के भीतर काम करने वालों के लिए ५४ घण्टे प्रति सप्ताह निर्धारित किये गये थे। १९२८ में खानों में १२ घण्टे प्रतिदिन से अधिक कार्य करना निषिद्ध कर दिया गया। १९२९ के बाद से ही खानों के भीतर स्त्रियों को काम करने की मनाही कर दी गई और १९३५ में अधिनियम में संशोधन के अनुसार तो सभी स्त्रियों के लिए खान के अन्दर काम करने पर रोक लगा दी गई। युद्धकाल में श्रमिकों की कमी के कारण यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया था परन्तु १९४६ में इसको पुनः लागू कर दिया गया। भारतीय खान अधिनियम में १९३५ में संशोधन किया गया। इसके द्वारा खान के ऊपर काम करने वाले श्रमिकों के लिए कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह ५४ अथवा प्रतिदिन १० और खान के अन्दर काम करने वाले श्रमिकों के लिए ९ घण्टे प्रतिदिन निर्धारित किये गये। १५ वर्ष से कम आयु के बालकों को किसी भी खान में नौकरी पर नहीं लगाया जा सकता था और किसी भी श्रमिक को खान में १० घण्टे से अधिक रोका नहीं जा सकता था। एक साप्ताहिक छुट्टी की भी अनिवार्य रूप से व्यवस्था थी। श्रमिकों की चिकित्सा सुविधा सफाई जलपूर्ति और स्वास्थ्य की देखभाल करने के लिए खानों में स्वास्थ्य बोर्डों की स्थापना की गई।

फरवरी १९५२ में जो भारतीय खान अधिनियम पारित हुआ उसके अन्तर्गत खान उद्योग में रोजगार और कार्य की दशाओं के सम्बन्ध में जो विधान थे उनको समायोजित करके १९४८ के कारखाना अधिनियम के अनुरूप ही बना दिया गया है। अधिनियम में खान के ऊपर और खान के अन्दर काम करने वाले सभी वयस्क श्रमिकों के लिए कार्य के घण्टे एक बार प्रति सप्ताह ४८ कर दिये गये हैं तथा इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि किसी भी श्रमिक से खान के ऊपर ९ घण्टे प्रतिदिन और खान के अन्दर ८ घण्टे प्रतिदिन से अधिक काम नहीं लिया जा सकता। सम-समय-विस्तार खान के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये १२ घण्टे और खान के अन्दर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये ८ घण्टे निर्धारित किया गया है। खान के भीतर कार्य करने वाले श्रमिकों की कुछ विशेष परिस्थितियों के लिये कार्य के घण्टे प्रतिदिन ९ अथवा प्रति सप्ताह ५४ निर्धारित किये गये हैं। खान के ऊपर

कार्य करने वाले वयस्क श्रमिकों को ५ घण्टे कार्य करने के पश्चात् आधा घण्टे का मध्यान्तर मिलता है। कोई भी श्रमिक समयोपरि सहित एक दिन में १ घण्टे से अधिक कार्य नहीं कर सकता। अधिनियम में इस बात का भी उल्लेख किया गया है कि खान के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिकों को समयोपरि का वेतन सामान्य वेतन का डेढ़ गुना और खान के अन्दर कार्य करने वाले श्रमिकों को सामान्य वेतन का दुगना दिया जायगा। अधिनियम में खान के अन्दर कार्य करने वाले श्रमिकों की आयु की सीमा १७ से बढ़ाकर १८ वर्ष कर दी गई है। किशोरों (१५ से १८ वर्ष तक की आयु वाले) से ४½ घण्टे प्रतिदिन से अधिक काम नहीं लिया जा सकता तथा ६ बजे सायंकाल से ६ बजे प्रातः तक उनको काम पर भी नहीं लगाया जा सकता है। स्त्री श्रमिकों के लिये खान के अन्दर काम करने तथा रात्रि म अर्थात् ७ बजे सायं काल से ६ बजे प्रातः तक काम करने पर प्रतिबन्ध यथावत् बना हुआ है।

१९५९ में खान अधिनियम में संशोधन द्वारा खान के भीतर तथा खान के ऊपर सभी प्रकार के श्रमिकों के लिए समयोपरि के भुगतान की दर मजदूरी की सामान्य दर से दुगुनी निर्धारित की गई है। जो श्रमिक खान के भीतर काम करते हैं वे १६ दिन के कार्य पर एक दिन के हिसाब से वार्षिक छुट्टी लेने के अधिकारी हो जाते है। तथा जो श्रमिक खान के ऊपर कार्य करते हैं उनके लिये हर २० दिन के कार्य पर १ दिन है। छुट्टी ३० दिन तक एकत्रित की जा सकती है।

रेलवे में कार्य करने के घण्टे :—

रेलवे में कार्य करने के घण्टे १९३९ के अधिनियम द्वारा निर्धारित होते हैं। १९३० में इस अधिनियम में संशोधन किया गया था। इसके अनुसार रोजगार के घण्टों के विनियम (Hours of Employment Regulations) बनाये गये हैं। इनके अनुसार लगातार काम करने वाले कर्मचारियों के लिये कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह ६० हैं और सविराम (Intermittent) कार्य करने वाले कर्मचारियों के लिये कार्य करने के घण्टों की संख्या ८४ है। मासिकालय को छोड़कर सप्ताह में एक छुट्टी करना अनिवार्य कर दिया गया है। यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि रोजगार के घण्टों के यह विनियम सभी मुख्य रेलों में लागू होते हैं, परन्तु यह रेलवे वर्कशाप में काम करने वाले कर्मचारियों पर लागू नहीं होते हैं, क्योंकि यह भारतीय कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं। अन्य रेलवे कर्मचारी भी अब ४८ घण्टे प्रति सप्ताह की तथा उन सभी सुविधाओं की माँग करने लगे हैं जो कारखाना श्रमिकों को प्राप्त होती हैं। १९५१ में सरकार ने कार्य के घण्टों के सम्बन्ध में न्यायाधीश राजाध्यक्ष के पंचाट को कार्यान्वित कर दिया है। इसका उल्लेख हम 'यातायात में श्रम विभाग' के अन्तर्गत करेंगे।

बागान में काम के घण्टे :—

बागान में गत कुछ वर्षों तक कार्य के घण्टों के ऊपर नियन्त्रण नहीं था। उत्तरी भारत के बागान में श्रमिक साधारणतया प्रातः ८ से ५ ३ बजे सायं तक

काम करते हैं। इसलिए भारत के चाय और कॉफी बागान में काम के घण्टे साधा
रणतया अधिक हैं। यहाँ पर श्रमिक प्रातः ८ से सायं ५–६ बजे तक काम करते हैं
जिसमें एक घण्टे का मध्यान्तर भी होता है। उसमें भी कभी-कभी काम से लिया जाता
है। काम अधिक होने के समय को छोड़कर साधारणतया चाय और कॉफी बगीचों
में रविवार छुट्टी का दिन होता है। असम के चाय बागान में वर्ष भर में दो तीन
वेतन सहित छुट्टियों की भी व्यवस्था है परन्तु अधिकांश बागान में कोई वेतन सहित
छुट्टी प्रदान नहीं की जाती है।

अक्तूबर १९५१ में सरकार ने बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया,
जिसमें चाय कॉफी रबड़ और सिन्कोना के बागान में लगे हुये श्रमिकों के कार्य की
दशाओं को वैधानिक रूप से नियन्त्रित किया गया है। अधिनियम में प्रत्येक वयस्क
के कार्य के घण्टे ५४ प्रति सप्ताह तथा बच्चा व किशोरों के ४० प्रति सप्ताह निश्चित
किये गये हैं। यदि एक सप्ताह में रोजगार की अवधि ६० दिन से कम नहीं है तो
एक साप्ताहिक छुट्टी प्रदान करने की व्यवस्था है। कोई भी श्रमिक बिना आधे घण्टे
का मध्यान्तर प्राप्त किये ५ घण्टे से अधिक काम नहीं कर सकता। यद्यपि दैनिक
काम के घण्टे निश्चित नहीं किये गये हैं परन्तु श्रम-समय-विस्तार की अवधि एक
दिन में १२ घण्टे निर्धारित की गई है। १२ वर्ष से कम की आयु के बच्चों को कार्य
पर लगाना तथा सायं ७ बजे से प्रातः ६ बजे तक किसी भी स्त्री व बच्चे को काम
पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया है। यदि कोई श्रमिक किसी भी दिन आधा घण्टे
से अधिक देर से आता है तब मालिक उसको काम पर लगाने से इन्कार कर सकता
है। राज्य सरकारों को यह अधिकार दे दिया गया है कि वह एक साप्ताहिक छुट्टी
प्रदान करने के लिए और साप्ताहिक छुट्टी के दिन अगर कार्य किया गया तो उसके
लिए भुगतान करने के लिए नियम बना सकें। श्रमिक छुट्टी के किसी भी दिन काम
कर सकता है परन्तु दस दिन के काम करने के पश्चात् एक दिन का आराम करना
अनिवार्य है।

श्रमिकों की अन्य श्रेणियाँ और उनके काम के घण्टे —

भारत में श्रमजीवी वर्ग की एक अन्य श्रेणी अनियन्त्रित उद्योगों दुकानों व
वाणिज्य प्रतिष्ठानों में काम करने वाले कर्मचारियों की है। उनके कार्य के घण्टे
विभिन्न राज्य के अपने-अपने विधानों द्वारा निर्धारित होते हैं। विभिन्न राज्यों में
कार्य के घण्टे निम्न प्रकार हैं —असम में प्रतिदिन ९ व प्रति सप्ताह ५० पश्चिमी
बंगाल में प्रतिदिन १० व प्रति सप्ताह ५६ बम्बई, बिहार, देहली उड़ीसा पंजाब
राजस्थान और मध्य प्रदेश में प्रतिदिन ९ व प्रति सप्ताह ४८ मद्रास मैसूर आंध्र
तथा केरल में प्रतिदिन ८ और प्रति सप्ताह ४८ तथा उत्तर प्रदेश में प्रतिदिन ८।
विश्राम मध्यान्तर भी विभिन्न राज्यों में आधे घण्टे से १ घण्टे तक का होता है तथा
श्रम-समय-विस्तार भी १२ से १४ घण्टों तक का है। इसी प्रकार वाणिज्य संस्थानों
जलपान गृहों मनोरंजन स्थानों आदि में कार्य के घण्टे निर्धारित कर दिये गये हैं।

इसके अतिरिक्त श्रमिकों के लिये साप्ताहिक छुट्टी एवं सवेतन अवकाश की व्यवस्था भी की गई है। भारत सरकार ने १९४२ में एक 'साप्ताहिक छुट्टी अधिनियम' पारित किया था जिसके अन्तर्गत दुकानों और वाणिज्य संस्थानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिये साप्ताहिक छुट्टियों तथा कार्य के घण्टों को निर्धारित करने की व्यवस्था की गई थी। यह अधिनियम राज्य सरकारों को इस सम्बन्ध में नियम बनाने या अधिनियम पारित करने की केवल अनुमति देता था (पृष्ठ ७०—७२ भी देखिये)।

जहाँ तक कृषि श्रमिकों व घरेलू नौकरों का सम्बन्ध है, भारत के किसी भी भाग में उनके रोजगार की शर्तों को निर्धारित करने वाला कोई भी विशिष्ट कानून नहीं बनाया गया है। साधारणतया उनके कार्य के घण्टे अधिक हैं। उनको सवेतन साप्ताहिक छुट्टी, वार्षिक छुट्टी और निश्चित मध्यान्तर जैसी सुविधाएं भी बहुत थोड़ी मात्रा में प्राप्त होती हैं। यह ऐसी सुविधाएं हैं जिनको औद्योगिक देशों में श्रमजीवी वर्ग के न्यूनतम अधिकारों में माना जाता है। कुछ समय पूर्व देहली में घरेलू नौकरों ने अपने कार्य के घंटों को नियमित करने के लिये आन्दोलन किया था। परन्तु उनके लिये कोई कानून बनाना सम्भव नहीं हो सका है।

कार्य के घण्टों की आलोचनात्मक व्याख्या —

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारतवर्ष में कार्य के घण्टों को नियन्त्रित करने की पर्याप्त वैधानिक व्यवस्था है। परन्तु समय की सबसे बड़ी आवश्यकता यह है कि इन कानूनों को अनियमित कारखानों, कृषि श्रमिकों तथा घरेलू नौकरों पर भी लागू किया जाय। हमारे विचार से इस समय १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा निर्धारित ४८ घंटे प्रति सप्ताह की व्यवस्था पर्याप्त व सन्तोषजनक है। इन कार्य के घंटों को अधिक नहीं घटाया जा सकता है, विशेषतया इस स्थिति को देखते हुए कि हमारे श्रमिकों की मनोवृत्ति ऐसी है कि वह पूर्ण रूप से एकाग्रचित न होकर धीरे धीरे कार्य करते हैं। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उत्पादन पर किसी बुरे प्रभाव के पड़े बिना यदि सम्भव हो सके तो कार्य के घण्टे न घटाये जायें। हमारे कहने का तात्पर्य यही है कि कार्य के घंटों को और भी कम किया जा सकता है, यदि श्रम की बचत करने वाली मशीनों का प्रयोग किया जाय, श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि की जाय तथा उन पर अधिक अनुशासन रखा जाय। दुर्भाग्यवश "श्रम की बचत करने वाले उपायों" (Labour Saving Devices) का गलत अर्थ लिया जाता है। यह समझ लिया जाता है कि इसका अर्थ कुछ श्रमिकों को बर्खास्त करके शेष श्रमिकों से और अधिक काम लेना है। श्रम को कम करने वाले उपायों पर हमें श्रमिकों के दृष्टिकोण से विचार करना चाहिए। ऐसे उपायों से श्रमिकों के कार्य के घंटों को कम करना चाहिये जिससे उन्हें लाभ हो और उत्पादन भी उतना ही या उससे अधिक होता रहे। 'श्रम की बचत' का अर्थ 'श्रमिक की बचत' से नहीं है।

प्रो० पीगू* के अनुसार, कुछ समय पश्चात् साधारण कार्य के घंटों से यदि अधिक कार्य के घंटे किसी भी उद्योग में लागू किये जाते हैं तब अन्ततः इससे राष्ट्रीय लाभांश (National Dividend) में बढ़ोतरी के स्थान पर कमी हो जायगी क्योंकि श्रमिकों को थकान बहुत जल्द हो जाती है। शरीर विज्ञान से यह पता चलता है कि किसी भी विशेष प्रकार के काम करने की कुछ अवधि के पश्चात् शरीर को विश्राम की आवश्यकता होती है ताकि शरीर पुनः अपनी पूर्वावस्था में आ जाय। ऐसे विश्राम मध्यान्तर की आवश्यकता कार्य की अवधि से अधिक लम्बी अनुभव होने लगती है। यदि मनुष्य को पर्याप्त रूप से मध्यान्तर प्रदान नहीं किये जाते तो धीरे-धीरे उसकी शक्ति का ह्रास हो जाता है। अधिक कार्य करके यदि कुछ अधिक कमाकर अधिक भोजन भी किया जाता है तो उससे अधिक लाभ नहीं होता क्योंकि थकान के कारण अधिक भोजन को हजम करना भी कठिन हो जाता है। काम कुशलता में जो इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप से क्षति पहुँचती है उसके अतिरिक्त अप्रत्यक्ष रूप से भी हानि पहुँचती है। इसका कारण यह है कि थकान होने से मनुष्य नशीले पदार्थों का सेवन करने लगता है और उसमें चिड़चिड़ाहट, झुंझलाहट जैसी बुरी उत्तेजित भावनायें आ जाती हैं। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक अनुपस्थित होने लगता है और समय का पाबन्द नहीं रहता तथा साथ ही साथ कार्य करते समय भी उसमें उत्साह कम हो जाता है और कार्य में उसका मन नहीं लगता। इन दोनों कारणों से उत्पादन कम हो जाता है।

परन्तु कई बातों को ध्यान में रखते हुए यह कहना कठिन है कि कार्य के घंटे और राष्ट्रीय लाभांश में पारस्परिक क्या सम्बन्ध है। दोनों का सम्बन्ध कई कारणों से भिन्न होगा। उदाहरणतया—किस प्रकार की जलवायु, विभिन्न वर्गों के श्रमिक, विभिन्न प्रकार के कार्य, प्राप्त मजदूरी, श्रमिक अपना अवकाश समय किस प्रकार व्यतीत करते हैं, मजदूरी का भुगतान किस प्रकार किया जाता है आदि-आदि बातों पर यह सम्बन्ध निर्भर करेगा। गर्म देशों में यदि कार्य धीरे-धीरे मन्दगति से अधिक घंटों तक किया जायगा तो इससे उत्पादन अधिक होगा। इसके विपरीत ठंडे देशों में कार्य तीव्रता से परन्तु कम घंटे करने पर उत्पादन अधिक होगा। बच्चों और स्त्रियों में वयस्क पुरुषों की अपेक्षा साधारणतया सहन शक्ति कम होती है। यदि अधिक घंटों तक कठिन शारीरिक श्रम किया जायेगा या अधिक घंटों तक ऐसा कार्य किया जायगा जिससे मानसिक बोझ पड़ता है तो इससे कार्यकुशलता को क्षति पहुँचेगी। परन्तु यह बात उस समय नहीं होगी जब अधिक घंटों तक ऐसा कार्य किया जायगा जिसमें केवल हल्के प्रकार से देखरेख की आवश्यकता पड़ती हो। इसी प्रकार यदि कोई ऐसा निपुण कार्य है जिसमें निर्णय और सूझबूझ की आवश्यकता पड़ती है तो उसके लिये मनुष्य में ताजगी और स्फूर्ति होनी चाहिये। इसके विपरीत अगर कार्य ऐसा है जिसे मशीन की भाँति किया जा सकता है तो ऐसा कार्य थके हुये

* Pigou—Economics of Welfare

मनुष्य भी भली-भाँति कर सकते हैं। इसके अतिरिक्त ऐसे श्रमिक जिनकी आय अधिक है अच्छा खा पी भी सकते हैं और निर्धन श्रमिकों की अपेक्षा अधिक समय तक कार्य कर सकते हैं। कार्य के घंटों का प्रभाव इस बात से भी भिन्न होगा कि श्रमिक अपना अवकाश समय किस प्रकार व्यतीत करते हैं अर्थात् यह समय व्यर्थ गंवाते हैं अथवा अपने उद्यान में परिश्रम करते हैं या भली प्रकार के मनोरंजन में व्यतीत करते हैं। आवश्यक तत्व यह है कि प्रत्येक उद्योग में तथा प्रत्येक श्रमिक वर्ग के लिये कार्य दिवस की कुछ निश्चित सीमा होती है जिससे यदि अधिक कार्य किया जायगा तो राष्ट्रीय लाभांश को हानि पहुँचेगी।

श्रमिकों पर कार्य के अधिक घंटों का प्रभाव कई वर्षों तक देखना चाहिए। आधुनिक उद्योग की कार्य प्रणाली ऐसी है कि श्रमिकों पर बहुत भार पड़ता है। कार्य के कम घंटे इस भार को हल्का कर देते हैं। कोई भी श्रमिक किसी भी कार्य को एक दिन में १२ घंटे या उससे भी अधिक तक कर सकता है परन्तु इससे उसके स्वास्थ्य को हानि होगी और उसका श्रमिक जीवन उस श्रमिक की अपेक्षा जिसके कार्य के घंटे उचित हैं कम होगा। औसतन कार्य के अधिक घंटे और कम श्रमिक जीवन कार्य के कम घंटे और दीर्घ श्रमिक जीवन की अपेक्षा कम उत्पादक होते हैं। शान्ति की रोकथाम से श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़ जाती है। दुर्घटना और बीमारी की संभावनाएँ कम हो जाती हैं संगठन में सुधार हो जाता है रोजगार नियमित होता चला जाता है और श्रमिकों में समय नष्ट करने की प्रवृत्ति दूर हो जाती है और तब श्रमिक अपने परिवार और कल्याण की ओर अधिक ध्यान दे सकता है। कम घंटे कार्य करने से अन्य व्यक्तियों को रोजगार पर लगाया जा सकता है और यह तब सरलता से हो सकता है जब रेलों की तरह समयानुसार कार्य होता है या जब उत्पादन लागत कम हो जाने से कीमतें गिर जाती हैं और उत्पादित वस्तु की मांग बढ़ जाती है। अतः आर्थिक और सामाजिक दोनों ही दृष्टिकोणों से कार्य के अधिक घंटों की भर्त्सना करनी चाहिए।

विश्राम मध्यान्तर (Rest Intervals) और अल्प विराम (Rest Pauses) —

यहाँ विश्राम मध्यान्तर और अल्प-विराम का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है। भारतवर्ष के संगठित उद्योगों में सुव्यवस्थित अल्प-विरामों की तीव्र आवश्यकता है। भारत में कारखाना अधिनियम के अनुसार साधारणतया एक अथवा आधे घण्टे का विश्राम मध्यान्तर प्रदान किया जाता है। साधारणतया विश्राम मध्यान्तर की व्यवस्था मालिकों की स्वेच्छा से ही की जाती है तथा इसमें श्रमिकों की आवश्यकताओं का कोई ध्यान नहीं रखा जाता। विश्राम मध्यान्तरों के अतिरिक्त १०—१५ मिनट के अल्प विरामों का मालिकों द्वारा कोई विशेष प्रयोगात्मक प्रयत्न नहीं किया गया है। अन्य देशों में इस दृष्टि से किये गये प्रयोगों से पता चलता है कि कार्य के बीच में इस प्रकार के अल्प विरामों से कार्यकुशलता बढ़ती है और उत्पादन भी अधिक होता है। भारत में ऐसे अल्प विरामों की आवश्यकता और भी अधिक है। भारत

की जलवायु ऐसा है कि निरंतर कार्य करने से व्यक्ति शक्तिहीन हो जाता है और थकान अनुभव करने लगता है। श्रमिक साधारणतया गाँवों से आते हैं जहाँ कृषि कार्य नियमित नहीं होता। अतः उनको नियमित रूप से लम्बे समय तक काम करने की आदत नहीं होती। भारत के श्रमिक की मनोवृत्ति पश्चिम के श्रमिक की अपेक्षा अधिक आराम करने की है। अतः यह सुझाव दिया जाता है कि कार्य के सामान्य घण्टों में भी चार-चार पाँच-पाँच घण्टों के पश्चात् मध्य विरामों की व्यवस्था संगठित रूप से करनी चाहिये और इस बात पर निर्भर नहीं होना चाहिये कि श्रमिकों को ऐसे मध्य विराम कच्चे माल आदि की प्रतीक्षा करते समय कार्य में संयोगवश स्वभाव के कारण मिल जाते हैं। अधिकांश व्यक्ति लगभग दो घण्टे एकाग्रचित्त होकर तथा मन से कार्य कर सकते हैं। परन्तु पाँच-पाँच घण्टे तक लगातार काम करने से शक्ति में बाधा पड़ जाती है और उत्पादन पर भी विपरीत प्रभाव पड़ता है। अतः काम के घण्टों के बीच मध्य विरामों की व्यवस्था से काम क्षमता की हानि थकान अनुपस्थिति और दुर्घटनाओं की रोकथाम हो सकती और उत्पादन भी बढ़ जायगा। अतः भारत में उद्योगपतियों को जहाँ कहीं भी सम्भव हो इस दिशा में कदम उठाने चाहियें। समयोपरि (Overtime) को भी इस प्रकार नियमित करना चाहिए जिससे कार्य कुशलता में किसी प्रकार की हानि न हो। १९४८ के कारखाना अधिनियम में समयोपरि के लिये सामान्य मजदूरी से दुगुनी मजदूरी देने की व्यवस्था की गई है। आवश्यकता इस बात की है कि समयोपरि का हिसाब इस प्रकार न लगाया जाय कि वह श्रमिकों के हित के विरुद्ध हो।

पारी प्रणाली (Shift System)

पारी प्रणाली की आवश्यकता —

पारी प्रणाली आधुनिक उद्योगों में सभी जगह नियमित प्रकार की एक विशेषता बन गई है। इसकी आवश्यकता अधिक उत्पादन की माँग के कारण हुई है तथा यह आधुनिक औद्योगिक प्रणाली के कारण सम्भव भी हो गई है। पारी प्रणाली का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसके कारण मशीनों एवं यन्त्रों का पूर्ण उपयोग होता है जिससे उत्पादन की इकाई लागत कम हो जाती है। इस प्रकार से जो लाभ होता है यह श्रमिकों के कार्य दिवस के घण्टे कम हो जाने से यदि उत्पादन में कुछ हानि भी पहुँचती है तो उसे पूरा कर देता है।

पारी प्रणाली के रूप — (Kinds of Shifts)

भारत के विभिन्न उद्योगों में सामान्यतः तीन प्रकार की पारियाँ पाई जाती हैं। पहली तो एक पारी पद्धति (Single Shift System) है। इसमें साधारणतया कार्य दिन में होता है और एक या आधा घण्टे के विश्राम मध्यान्तर को मिलाकर इसमें ८ से ११ घण्टे तक कार्य करना पड़ता है। दूसरी दो पारी पद्धति (Double Shift System) है। इसमें एक पारी रात्रि के समय और एक दिन में होती है

जिसमें १ घण्टे का विश्राम मध्यान्तर मिलाकर कार्य करने की अवधि ६ या १० घण्टे या इससे भी अधिक होती है। तीसरी 'परस्पर व्यापी पारी पद्धति' (Multiple Shift System) है। इसमें दिन में एक सामान्य पारी के अतिरिक्त आठ आठ घण्टे की तीन पारियाँ और होती हैं जिनमें आधा घण्टे का विश्राम मध्यान्तर कभी दिया जाता है और कभी नहीं भी। कुछ परिस्थितियों में तीन समान्तर पारियों के अतिरिक्त दो सामान्य पारियाँ होती हैं। परस्पर व्यापी पारी पद्धति विभिन्न अवधियों (Duration) की भी होती है और परस्पर व्यापी (Overlapping) भी।

परस्पर व्यापी पारियाँ — (Multiple or Overlapping Shifts)

यह कहा जाता है कि परस्पर व्यापी पारियों में उत्पादन प्रक्रिया निरन्तर चालू रहती है। इसके लिये कुछ श्रमिक उस समय तक रोक लिये जाते हैं जब तक कि सामान्यतया उनके स्थान पर दूसरे श्रमिक उन्हें अवकाश देने के लिये नहीं आ जाते। परन्तु इस प्रकार श्रमिकों को रोकना न्यायसंगत नहीं है क्योंकि निरन्तर क्रम चालू रखने के उद्देश्य की पूर्ति श्रमिकों में ठीक समय पर आने की भावना को प्रोत्साहित कर तथा अनुपस्थित श्रमिकों के स्थान पर कार्य करने के लिए कुछ श्रमिक सुरक्षित रखकर की जा सकती है। इस निरन्तर कार्य की आड़ में कभी कभी श्रमिकों को अधिक घण्टों तक काम करना पड़ता है तथा कारखाना निरीक्षकों को इसका पता नहीं चल पाता।

इसके अतिरिक्त परस्पर-व्यापी-पारी-पद्धति के और भी अनेक दोष हैं—प्रथम तो विश्राम मध्यान्तर और खाने के समय में कोई मेल नहीं रह पाता और जब परिवार के विभिन्न सदस्य भिन्न भिन्न समय पर काम करते हैं, जैसा कि साधारणतया होता है, तब वह सब साथ बैठकर भोजन नहीं कर पाते। दूसरे, देख भाल करने का कार्य बहुत कठिन हो जाता है और कभी कभी मालिक उन्हीं श्रमिकों से काम लेते रहते हैं जबकि रजिस्टर में ऐसे बहुत से श्रमिकों का नाम दर्ज कर लिया जाता है जिनका वास्तव में कोई अस्तित्व ही नहीं होता। इन अस्तित्व हीन श्रमिकों का वेतन तक लिया दिया जाता है जिसको उनकों मध्यस्थों तथा उन श्रमिकों में बांट लिया जाता है जो अतिरिक्त काम करते हैं। जहाँ ऐसी बातें पाई जाती हैं, वहाँ दैनिक काम के घण्टे कानून द्वारा निर्धारित सीमा से भी अधिक बढ़ जाते हैं। परस्पर व्यापी पारी पद्धति में इन दोनों की चरम सीमा बालकों के सम्बन्ध में होती है जिनको अधिक घण्टों तक काम करना पड़ता है। जिन स्थानों पर कई पारियाँ होती हैं वहाँ पर कार्य करने के अधिक घण्टे श्रमिकों के लिये कष्ट दायक हो जाते हैं यदि उनके रहने का प्रबन्ध कारखाने के परिसर (Premises) में नहीं होता है।

राजस श्रम आयोग ने परस्पर-व्यापी-पारी-प्रणाली को अच्छा नहीं बताया या तथा श्रमिकों के संगठनों ने भी इसका घोर विरोध किया है। साधारणतया मत यही रहा है कि केवल विशेष अवस्थाओं को छोड़कर परस्पर व्यापी पारी पद्धति को

अनुमति नहीं देनी चाहिए। यह प्रसन्नता का विषय है कि १९४८ के कारखाना अधिनियम में परस्पर व्यापी पारियों को निषेध कर दिया गया है। इस अधिनियम के अन्तर्गत अब किसी भी कारखाने में पारी प्रणाली ऐसी नहीं हो सकती कि एक ही समय पर समान काम के लिए एक से अधिक श्रमिक दल काम करते हों। राज्य सरकारों को किसी कारखाना विशेष को विशेष परिस्थितियों में इस धारा में छूट देने का अधिकार है।

रात्रि पारियाँ — (Night Shifts)

रात्रि पारी की वांछनीयता के प्रश्न पर मतभेद है। निरन्तर उत्पादन में लगे रहने वाले उद्योगों के लिए तो रात्रि पारियाँ आवश्यक हो सकती हैं परन्तु अन्य उद्योगों में इनको साधारणतया सामान्य काम में उचित नहीं समझा जाता। कुछ मालिकों का कहना है कि मशीनों की कमी तथा उत्पादन की माँग के कारण रात्रि पारी चालू करनी पड़ती है। इस सम्बन्ध में श्रम अनुसंधान समिति ने अहमदाबाद मिल मालिक परिषद के मत को उद्धृत किया था। इसके अनुसार रात्रि पारी में एक विशेष लाभ यह है कि इसमें बँधी लागत कम हो जाती है तथा रात्रि पारी में कार्य करने में वर्तमान तीव्र प्रतिस्पर्धा के युग में उद्योगों द्वारा अस्थायी रूप में बढ़ी हुई माँग की पूर्ति अतिरिक्त स्थिर पूँजी लगाए बिना की जा सकती है। इसी प्रकार अहमदाबाद के एक मिल मालिक के कथनानुसार दिन पारी पद्धति में काम करने की अपेक्षा रात्रि पारी में काम करने की प्रवृत्ति अधिक हो गई है क्योंकि वास्तविकता यह है कि नित्य प्रतिदिन नवीन आविष्कार होते जा रहे हैं और मशीनें पुरानी होती जा रही हैं। इसलिए इन मशीनों पर ब्याज और मूल्य ह्रास के व्यय को पूरा करने के लिए उत्पादन एक निश्चित समय में करना पड़ता है जो कि रात्रि पारी में काम द्वारा ही सम्भव है।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि रात्रि पारी में बंधी लागत में कमी हो जाती है तथा माल का शीघ्रतापूर्वक उत्पादन हो जाता है तथा उत्पादन लागत घट जाती है। परन्तु रात्रि में काम करने से श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है तथा रात्रि में श्रमिकों द्वारा जो उत्पादन होता है उसकी मात्रा भी कम होती है तथा वह इतना अच्छा भी नहीं होता। कुछ मालिकों की धारणा है कि रात्रि पारियों से श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव नहीं पड़ता। परन्तु विश्वसनीय मत यही है कि रात्रि पारी में काम करना अप्राकृतिक है तथा इससे श्रमिकों के स्वास्थ्य और कार्य कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिक आवश्यक न्यूनतम नींद भी नहीं ले पाता है क्योंकि दिन के समय वातावरण पूर्ण और भीड़भाड़ के वातावरण में उसको अपनी नींद पूरी करना सम्भव नहीं होता। फिर रात्रि में काम करने और दिन में सोने की आदत डालने के लिए बहुत अधिक समय लगता है। रात्रि पारियों के कारण श्रमिकों को अपना भोजन समय असमय करना पड़ता है जिसके कारण उनकी पाचन शक्ति खराब हो जाती है और उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है। रात्रि पारियाँ

में दिन की पारियों की अपेक्षा निश्चित रूप से काम कम होता है तथा उत्पादन उतना उत्तम भी नहीं हो पाता। रात्रि पारी में प्रकाश भी काम के ऊँचे स्तर को ध्यान में रखते हुए अच्छा नहीं होता है। रात्रि पारियों में अनुपस्थितता अधिक होने के कारण उत्पादन की मात्रा भी कम होती है। रात्रि में प्रभावात्मक रूप से निरीक्षण करना भी बहुत कठिन हो जाता है। रात्रि में कार्य करते रहने पर प्रातःकाल के घण्टों में स्वाभाविक थकान आ जाती है। श्रमिक संगठनों द्वारा भी रात्रि पारियों का विरोध किया जाता है। अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर परिषद का मत है "रात्रि में काम करने से श्रमिकों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है, अनुपस्थिति बढ़ जाती है तथा सामाजिक जीवन के उच्च अवसरों के पाने में बाधा उत्पन्न हो जाती है।

साधारणतया यह सुझाव दिया जाता है कि रात्रि पारी में कार्य तभी किया जाना चाहिए, जबकि इसके बिना कार्य चल ही न सके। अतः यह आवश्यक है कि रात्रि में कार्य करने वाले श्रमिकों की कठिनाइयों को कार्य के घण्टे सीमित करके एवं अन्य सुविधाएं प्रदान करके रात्रि पारी के बुरे प्रभावों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। कोई भी कारखाना रात्रि के १ बजे के पश्चात् चालू नहीं रहना चाहिए। रात्रि पारी का प्रबन्ध इस प्रकार का होना चाहिए कि समस्त मिल मध्य रात्रि के पश्चात् बन्द हो जाएं। श्रम यातायात का भी पर्याप्त प्रबन्ध होना चाहिए, जिससे श्रमिक शीघ्र ही अपने निवास स्थानों को पहुँच सकें। रात्रि के समय श्रमिकों के लिए कैन्टीन, पीने के पानी की सुविधा, निःशुल्क चाय आदि की व्यवस्था होनी चाहिए। बिजली तथा ऐसे कारखानों में जिनमें कार्य निरन्तर रूप से चलाना आवश्यक होता है रात्रि के समय भी कार्य चालू रखना आवश्यक हो जाता है, परन्तु इसमें बारी-बारी समय बाद श्रमिकों का परस्पर परिवर्तन करने की उचित व्यवस्था होनी चाहिए। उदाहरणतः प्रतिमास रात्रि पारी एवं दिन की पारी के श्रमिकों की परस्पर अदल-बदल होती रहनी चाहिए। रात्रि पारियों को पूर्णतया समाप्त कर देना कठिन है क्योंकि इससे जैसी लागत में कमी हो जाती है और उद्योगों के लिए बिना अतिरिक्त मशीनें आदि लगाए हुए मांग का पूरा करना सम्भव हो जाता है। श्रम अनुसंधान समिति का कथन है कि यदि इस विषय पर कोई राष्ट्रीय अथवा अन्तर्राष्ट्रीय समझौता हो तभी रात्रि पारी को प्रभावपूर्ण तरीके से नियन्त्रित किया जा सकता है।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, अनेक कारखाना अधिनियमों में स्त्रियों एवं बच्चों के रात्रि में काम करने पर रोक लगा दी गई है। यह अत्यन्त सराहनीय पग है। स्त्रियाँ एवं बालक असमय काम करने के लिये शारीरिक दृष्टि से अयोग्य होते हैं। दूसरे भारत में रात्रि के समय कार्य करने में स्त्रियों को अनेक नैतिक एवं सामाजिक खतरों का भय रहता है। रात्रि में काम करने से बालकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है और काम करते समय उन्हें नींद आ जाना

स्वाभाविक है। अतः यह सब मानते हैं कि स्त्रियों व बालकों के लिए रात्रि काम पर रोक लगानी आवश्यक है।

श्रम-समय विस्तार — (Spread-Over)

कार्य के घण्टों और पारी प्रणाली के साथ ही श्रम-समय-विस्तार की समस्या भी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इसका अर्थ उस अवधि से है जिसके अन्दर काम के अधिकतम घण्टों का विस्तार किया जा सकता है। यह बात स्पष्ट है कि यदि इस अवधि का अनुचित रूप से विस्तार किया जाता है तब इसमें सभी श्रेणियों के श्रमिकों को रात्रि में आराम करने में और कुछ मनोरंजन करने में विशेषतया अपने पारिवारिक जीवन में और स्त्रियों को अपने घरेलू कर्तव्यों को निबाहने में बाधा पड़ेगी। साधारणतया श्रम-समय विस्तार की अवधि कार्य करने के अधिकतम घण्टों के ही बराबर होती है। इसमें एक या आधा घण्टे का विश्राम मध्यान्तर भी आ जाता है। परन्तु कुछ परिस्थितियों में काम करने के अधिकतम घण्टों को दो भागों में बाँट दिया जाता है और बीच में एक लम्बा मध्यान्तर हो जाता है। बागान जैसे उद्योग में श्रम-समय-विस्तार का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि यहाँ मध्याह्न के विश्राम को छोड़कर जो और उद्योगों की अपेक्षा लम्बा होता है काम तब तक होता रहता है जब तक वह समाप्त नहीं हो जाता। परन्तु अब बागान में भी १९५१ के अधिनियम द्वारा श्रम-समय-विस्तार की सीमा १२ घण्टे प्रतिदिन कर दी गई है। परन्तु यह समस्या खानों में विशेषतया खानों के भीतर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए बड़ी ही गम्भीर रही है। १९३५ के खान अधिनियम ने खान के अन्दर काम के घण्टों की सत्ता प्रतिदिन ९ निश्चित कर दी थी और इसमें श्रम-समय-विस्तार के दोष को बड़ी सीमा तक दूर किया जा सका था। १९५२ के भारतीय खान अधिनियम में श्रम-समय-विस्तार की सीमा खान के अन्दर काम करने वाले श्रमिकों के लिए प्रतिदिन ८ घण्टे और खान के ऊपर काम करने वाले श्रमिकों के लिए प्रतिदिन १२ घण्टे निर्धारित की गई है। कारखानों में श्रम-समय-विस्तार की समस्या तो और भी कठिन है क्योंकि यहाँ पर बहुत रात तक काम को बढ़ाया जा सकता है। जहाँ परस्पर-व्यापी-पारी प्रणालियाँ हैं वहाँ पर पारियों के बीच मध्यान्तर अधिक होता है और इस प्रकार श्रम-समय-विस्तार लम्बा हो जाता है। परन्तु १९३४ के कारखाना अधिनियम द्वारा प्रथम बार इस श्रम-समय-विस्तार को सीमित किया गया था और इसके अन्तर्गत वयस्कों के लगातार प्रतिदिन काम करने के घण्टे ११ और बालकों के ६ निर्धारित किये गए थे। १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा इसको और भी सीमित कर प्रतिदिन १०½ घण्टे निर्धारित कर दिया गया है। यदि छूट भी दी जाती है तो श्रम-समय-विस्तार १२ घण्टे से अधिक नहीं हो सकता। हमारे विचार से यह सीमा उचित है। दुकान तथा वाणिज्य संस्थान अधिनियमों द्वारा भी विभिन्न राज्यों में श्रम-समय-विस्तार के घण्टे निर्धारित कर दिये गए हैं।

रोजगार की कुछ दशायें
(Some Employment Conditions)

पिछले पृष्ठों में भरती, अनुपस्थिति, श्रमिकावर्त, वेतन सहित अवकाश, स्थायी आवास आदि समस्याओं पर विचार किया जा चुका है। अब हम भारतीय उद्योगों में रोजगार से सम्बन्धित कुछ और दशाओं का वर्णन करेंगे जिनका श्रमिक के स्वास्थ्य तथा कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है और जो श्रम कल्याण समाज सुरक्षा तथा काम और रोजगार की समस्याओं से सम्बन्धित हैं।

श्रमिकों की श्रेणियां (Kinds of Workers) —

श्रमिकों का वर्गीकरण स्थायी, अस्थायी, बदली, नैमित्तिक (Casual) तथा परखाधीन (Probationers) और शिक्षार्थी (Apprentices) वर्गों में किया गया है। फिर भी यह वर्गीकरण उद्योग उद्योग और क्षेत्र क्षेत्र में भिन्न होता है। मुख्यतः तो श्रमिकों का वर्गीकरण अधिकतर उद्योगों में स्थायी, अस्थायी और बदली वर्गों में किया गया है तथा कुछ में उनका वर्गीकरण स्थायी, अस्थायी व नैमित्तिक श्रमिकों में हुआ है। श्रमिकों की अधिकांश संख्या स्थायी वर्ग की है। फिर भी उनके विशेषाधिकारों की परिभाषा नहीं की गई है। साधारणतया उनको यह अधिकार है कि बर्खास्तगी के समय उन्हें १४ दिन या एक माह की सूचना या उसके बदले में एक माह का वेतन मिले और उन्हें आकस्मिक छुट्टी, विशेष छुट्टी, प्राविडेण्ट फण्ड या अवकाश प्राप्त धन की सुविधा प्राप्त करने का अधिकार, सेवा सार्टीफिकेट पाने का अधिकार तथा कुछ और सुविधाएं, जैसे बगान के कामों में ग्रेच्यूटी आदि के विशेष अधिकार दिये जाते हैं। अस्थायी श्रमिक अधिकतर मौसमी व अर्द्धसंगठित कारखानों में पाए जाते हैं। यह वह श्रमिक हैं जो अस्थायी प्रकार के कार्य पर लगाए जाते हैं और इनकी संख्या समय समय पर शेष कार्य की मात्रा के अनुसार घटती बढ़ती रहती है। बहुत से उद्योगों में अस्थायी श्रमिकों को भी विभिन्न प्रकार की छुट्टियों की सुविधायें उपलब्ध हैं परन्तु उनके लिए छुट्टियों की अवधि कम होती है। साधारणतया उनको प्राविडेण्ट फण्ड की सुविधा तो नहीं दी जाती परन्तु कुछ स्थानों पर बोनस में से हिस्सा पाने का अधिकार दिया जाता है। बदली श्रमिकों को एक आरक्षित (Reserve) श्रम शक्ति कहा जा सकता है जो उन स्थायी व अस्थायी श्रमिकों को बदलने के लिये रखे जाते हैं जो बीमारी अथवा अन्य कारणों से अनुपस्थित हो जाते हैं। बदली श्रमिक रखने की प्रथा से बहुत से दोष हैं जैसे मालिक उनको हड़ताल अथवा तालाबन्दी के समय में अपना अतिरिक्त सहायक समझते हैं और कभी कभी तो बदली श्रमिकों को रोजगार देने के कारण स्थायी श्रमिकों का अपनी छुट्टी लेने को बाध्य करते हैं। ऐसे श्रमिकों को सम्भवतः भी अनुचित रूप से रखते हैं। फिर भी कुछ बदली श्रमिकों की आवश्यकता तो इस कारण रहती ही है कि अनुपस्थिति के समय जगह खाली न रहे। परन्तु इस

प्रथा का नियन्त्रित करने की आवश्यकता है। बम्बई, शोलापुर, अहमदाबाद तथा कानपुर की कपड़ा मिलों में तो पहले से ही बदली नियन्त्रण प्रथा अथवा स्थायीकरण (Decasualisation) योजनाएं लागू कर रखी हैं जो कि "श्रमिकों की भर्ती" की समस्याओं वाले अध्याय में बताई जा चुकी हैं (देखिए पृष्ठ २९ तथा ३९–४१)। अन्य उद्योगों में भी बदली नियन्त्रण प्रथा का विस्तृत करना आवश्यक है। नैमित्तिक या आगन्तुक श्रमिक वह है जो कि कभी कभी कुछ विशेष अतिरिक्त काम को पूरा करने के लिए काम पर लगाए जाते हैं। वह किसी सुविधा अथवा विशेषाधिकार के अधिकारी नहीं होते और उनकी समय समय पर छंटनी कर दी जाती है। कभी कभी श्रमिकों का वर्गीकरण पर्यवेक्षक (Supervisory) वर्ग, साधारण श्रमिक व ठेके के श्रमिकों में भी किया जाता है।

सेवा काल—(Length of Service)

रोजगार की दशाओं की एक और समस्या यह है कि कर्मचारी कितने समय तक नौकरी पर लगे रहते हैं और उनकी नौकरी निरन्तर रहती है या नहीं। केवल सरकारी और अर्ध सरकारी संस्थाओं और नगरपालिकाओं में ही अधिकांश श्रमिक दीर्घ सेवा काल वाले पाए जाते हैं। इसका कारण यह है कि इन संस्थाओं में श्रमिकों की नौकरी अधिक सुरक्षित होती है। इंजीनियरिंग, कागज, शीशा, [illegible] का कारखानों, छापाखानों आदि जैसे मुख्य रूप से स्थापित उद्योगों में दीर्घ सेवा काल के श्रमिक अधिक पाए जाते हैं। एक और कारण यह भी है कि उनमें प्रोविडेण्ट फण्ड आदि की सुविधाओं के कारण पुराने श्रमिक कार्य करते हैं जो अधिक स्थायी होते हैं। वहाँ श्रमिकों में कार्य करने पर कुछ लाभ प्रदान किए जाते हैं। यहाँ भी श्रमिकों का कुछ भाग प्रदान किया जाता है। नौकरी पर निरन्तर लगे रहने की प्रवृत्ति पाई जाती है। नौकरी पर स्थायी रूप से लगे रहने की आवश्यकता सभी जगह विशेषतया मौसमी कारखानों में है। कोई भी श्रमिक जो कि मौसमी कारखानों में एक मौसम में काम कर चुका है यदि वह अगले मौसम के प्रारम्भ में आ जाए तो उसे पुनः काम पर लगा लेना चाहिए और उसको उस काल में भी जब फैक्टरी का मौसम नहीं होता वेतन का एक विशेष प्रतिशत भाग दिया जाना चाहिए। उसमें से कुछ भाग पुनः नौकरी के समय भी दिया जा सकता है। इस बात की भी बड़ी आवश्यकता है कि श्रमिक की नौकरी सुरक्षित रहे और उसको किसी अत्याचार का भय न हो। यह समस्या रोजगार पर लगने से पहिले ही नौकरी की शर्तों आदि की स्पष्ट रूप से व्याख्या करने से हल हो सकती है और यह काम स्थायी आदेशों द्वारा की जा सकती है जिसका उल्लेख औद्योगिक विवाद के अध्याय में किया जा चुका है (पृष्ठ १४८–१५२)। शक्तिशाली श्रमिक संघ भी अनुचित बर्खास्तगियों और अत्याचारों से श्रमिकों की रक्षा कर सकते हैं और सम्भवतः यही सर्वश्रेष्ठ उपाय है।

पदोन्नति (Promotions)

एक अन्य समस्या पदोन्नति तथा वेतनोन्नति की है। पदोन्नति का अर्थ अपेक्षाकृत अच्छा 'ग्रेड' अथवा पदक्रम या मजदूरी या दोनों में उन्नति है तथा वेतनोन्नति का अर्थ उसी ग्रेड में मजदूरी में वृद्धि है। भारतीय उद्योगों की अधिकांश इकाइयों में वेतन वृद्धि क्रमानुसार देने की बहुत कम प्रथा है परन्तु एक व्यक्तिगत श्रमिक अपनी योग्यता के द्वारा उन्नति कर सकता है। एक निश्चित तथा सुयोजित (Well planned) स्थानान्तरण (Transfer) और पदोन्नति की प्रणाली श्रमिकों को सन्तुष्ट रखने तथा उन्हें अपनी संस्था के प्रति ईमानदार बनाये रखने का एक प्रभावशाली तरीका है। परन्तु अधिकतर मामलों में श्रमिक अपनी वरिष्ठता (Senority) या दक्षता के होते हुए भी उसी वेतन पर कार्य करते रहते हैं और कभी कभी तो स्थायी श्रमिकों के दावे दबा दिये जाते हैं और उच्च वेतन के रिक्त स्थानों को बाहरी व्यक्तियों से भर दिया जाता है। कुछ उद्योगों में श्रमिकों को पदोन्नति क्रम के अनुसार दी जाती है। यह पदोन्नति सर्वेक्षक कर्मचारी वर्ग को भी मिलती है। परन्तु श्रमिकों की साधारणतया यह शिकायत रहती है कि यह पदोन्नति केवल मैनेजरों अथवा मध्यस्थों की इच्छा पर निर्भर करती है और इसमें पक्षपात तथा रिश्वत आदि भी चलती है। पदोन्नति मालिक अथवा मैनेजर की इच्छा पर निर्भर न होकर योग्यता तथा वरिष्ठता पर आधारित होनी चाहिए। ऐसा न होने पर श्रमिकों में ईर्ष्या तथा असन्तोष की भावना उत्पन्न हो जाती है। अत मालिकों को स्वयं ऐसी बात नहीं करनी चाहिए। प्रत्येक उद्योग में सेवा नियमों का बनाना बहुत आवश्यक है और वेतन मान 'ग्रेड' तथा पदोन्नति के नियमों का स्पष्ट रूप से स्थायी आदेशों में उल्लेख कर देना चाहिए।

अनुशासन कार्यवाही की समस्या (Problem of Disciplinary Action)

प्रत्येक सभ्य समाज में जीवन की प्रत्येक अवस्था में अनुशासन का होना परमावश्यक है। अनुशासन को सभ्यता की रीढ़ की हड्डी कहा जा सकता है। अनुशासन से तात्पर्य यह है कि मनुष्य का इस प्रकार से उचित रूप से प्रशिक्षण किया गया है कि उसकी बुद्धि का विकास एक निश्चित ढांचे में हुआ है तथा उसमें संयम की भावना तथा मान्यता प्राप्त अधिकारी या प्रशासन के प्रति आदर की भावना तथा आज्ञा पालन की भावना उत्पन्न हो गई है। उद्योगों में उत्पादन बढ़ाने के लिए यह आवश्यक है कि श्रमिक अनुशासन में रहकर पूर्ण रूप से प्रयत्न करें। अनुशासन तथा उद्योग का घनिष्ट पारस्परिक सम्बन्ध है। श्री गुलजारीलाल नन्दा के शब्दों में "जब श्रमिक अनुशासन की भावना को खो बैठते हैं तो इसका अर्थ यह होता है कि समाज ने तथा उन्होंने कोई बहुत मूल्यवान वस्तु खो दी है। जब तक अनुशासन का स्तर ऊँचा नहीं होता तब तक उत्पादकता में उन्नति की तथा श्रमिकों के प्रबन्ध में प्रभावात्मक रूप से भाग लेने की आशा नहीं की जा सकती।

श्रमिकों में अनुशासन-हीनता के अनेक कारण हैं, उदाहरणार्थ, श्रमिक संघों में पारस्परिक द्वेष, श्रमिकों में अज्ञानता तथा अशिक्षा, बाहरी आदमियों द्वारा श्रमिकों का भड़काना और गलत राह पर ले जाना तथा श्रमिकों में भय की मनोवृत्ति आदि। इसलिए हर श्रमिक संघ, श्रमिक प्रबन्धक सहयोग और उद्योगों में मानवीय सम्बन्धों (Human Relations) पर बल देने से ही श्रमिकों में अनुशासन आ सकता है। (अनुशासन संहिता के लिए परिशिष्ट 'ग' देखिए)।

परन्तु उद्योगों में श्रमिकों के लिए अनुशासन व्यवस्था तथा दण्ड व्यवस्था का प्रश्न एक अन्य समस्या है। सामान्यतया अनुशासनहीनता अथवा दुर्व्यवहार के मामलों में श्रमिकों को या तो बर्खास्त अथवा मुअत्तल कर दिया जाता है या उनकी छुट्टी, जुर्माना या और किसी तरीके से दण्ड दिया जाता है। साधारणतया अनुशासनहीनता के मामले कार्यशाला के फोरमैन द्वारा अथवा सामयिक सर्वेक्षण कर्मचारियों द्वारा प्रबन्धक अथवा व्यवस्थापक अभिकर्ता (Managing Agents) को प्रस्तुत किये जाते हैं, जो उनके बारे में विचार करते हैं। बर्खास्तगी अथवा सेवामुक्ति के मामलों में श्रमिकों पर सरलता से अत्याचार किया जा सकता है और इस प्रकार का दण्ड साधारणतया श्रमिक संघ की कार्यवाहियों में भाग लेने वाले श्रमिकों को दिया जाता है। बर्खास्तगी में सम्बन्धों का श्रमिकों को हटाने का मौका मिलता है। बर्खास्तगी (Dismissal) सेवामुक्ति (Discharge) की अपेक्षा दण्ड का उग्र रूप है क्योंकि सेवामुक्ति में कलंक की उतनी भावना नहीं होती और पुनः नौकरी मिलने में कठिनाई नहीं होती। श्रमिकों को कार्य समाप्त होने के बाद भी हटा दिया जाता है परन्तु बर्खास्तगी में कलंक की भावना आ जाती है और श्रमिक का रिकार्ड दोबारा नौकरी के समय उनके विरुद्ध प्रयोग में लाया जा सकता है। इस कारण इस प्रकार का दण्ड बहुत बार दुर्व्यवहार के समय ही देना चाहिए। अनेक बार बर्खास्तगी के कारण ही अनेक गम्भीर औद्योगिक विवाद हुए हैं और इससे सभी श्रमिकों में मन मुटाव उत्पन्न हो जाता है। बर्खास्तगी या सेवामुक्ति के लिए उचित नोटिस अथवा इसके बदले वेतन देने की वैधानिक व्यवस्था होनी चाहिए। अपराधों के लिए मुअत्तल (Suspend) करने की प्रथा सामान्यतया अधिक नहीं पाई जाती। पहिले तो चेतावनी दी जाती है और यदि श्रमिक अपराध दोबारा करता है तो उसे बर्खास्त कर दिया जाता है। फिर भी इस प्रकार के दण्ड के लिए मुअत्तली की यद्यपि नियम कर दी जानी चाहिए और वह परिस्थितियाँ जिनमें कि मुअत्तली की जा सकती है स्पष्ट शब्दों में दी जानी चाहिएँ। इन सबका उल्लेख स्थायी आदेशों (Standing Orders) में किया जा सकता है। जहाँ तक जुर्मानों का प्रश्न है, मजदूरी अदायगी [illegible] (Payment of Wages Act) में विशेष विवरण में इस मजदूरी के सम्बन्ध में श्रमिकों को [illegible] जुर्माने करने तथा उनकी वसूली के परिसीमन या सब तक [illegible] के कुछ उपबन्ध हैं। विशेष अपराधों के [illegible] व्यवहार का मौका देने का अवसर न दिया जाए, किसी मामले में

जुर्माना नहीं किया जा सकता और जुर्माने की यह राशि मजदूरी में से तीन नए पैसे प्रति रुपए से अधिक नहीं हो सकती। यह जुर्माना ६० दिन के अन्दर वसूल कर लिया जाना चाहिए तथा एक रजिस्टर में दर्ज कर दिया जाना चाहिए और इसकी राशि श्रम कल्याण कार्यों के हेतु काम में लानी चाहिए। एसे उपबन्ध यद्यपि संतोष जनक हैं, किन्तु बहुत से ऐसे उदाहरण हैं जहां जुर्माने के रजिस्टरों की व्यवस्था नहीं की गई है और वसूल किया हुआ धन भी श्रम कल्याण कार्यों में नहीं लगाया गया है। इस दोष को फैक्टरी निरीक्षकों के कठोर निरीक्षण द्वारा दूर किया जा सकता है। श्रमिकों को दण्ड देने की और भी विधियां हैं जैसे वेतन दरों में कमी ग्रेड का घटाना इत्यादि। ऐसी कटौती मजदूरी भुगतान अधिनियम के अन्तर्गत अवैध है, परन्तु इस अधिनियम को कठोरता से कार्यान्वित करने की आवश्यकता है।

यह भी वांछनीय और ध्यान देने योग्य बात है कि अनुशासनात्मक कार्यवाही में श्रमिक को कोई ऐसा दण्ड न मिले जिससे उसके रोजगार पाने की संभावना में कोई कमी हो जाये। दण्ड भी सिद्ध अपराध के लिए ही होना चाहिए और वह नियमानुसार ही मिलना चाहिए। यह तो बहुत ही अच्छा होगा यदि श्रमिकों तथा व्यवस्थापकों में आपसी सहयोग तथा आपसी सहायता की भावना पैदा करके अनुशासन रखा जा सके। यदि अनुशासनीय पग उठाना आवश्यक हो जाये तो दूसरा अच्छा सिद्धान्त यह है कि दण्ड व्यवस्था श्रमिक द्वारा किये गये अपराध के अनुसार ही हो। जहां तक हो सके बर्खास्तगी अथवा मुअत्तली का दण्ड नहीं दिया जाना चाहिए। इस विषय में यह बात उल्लेखनीय है कि भारतीय-टाटा-निगम श्रमिकों के सेवा-कार्ड की व्यवस्था करती है। यह प्रथा अन्य कई स्थानों पर भी अपनायी गई है। प्रत्येक श्रमिक के पास एक कार्ड रहता है जिस पर उसका नाम श्रेणी वेतन दर आदि लिखे होते हैं। उसकी दूसरी ओर अच्छे अथवा बुरे व्यवहार के उल्लेख के हेतु स्थान छोड़ दिया जाता है। यदि श्रमिक कोई अपराध करता है चाहे वह अनुशासन से सम्बन्धित हो या श्रमिक द्वारा काम में ढील डालने के कारण हो अथवा और किसी प्रकार का अपराध हो तो उसे विभाग अध्यक्ष के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है। यदि उसका अपराध सिद्ध हो जाये तो उसे सचेत कर दिया जाता है और उसके सेवा-कार्ड पर इस प्रकार की चेतावनी का विवरण लिख दिया जाता है। दूसरी बार उसी प्रकार के अपराध करने पर उसे पूर्ण सचेत कर दिया जाता है और सेवा-कार्ड पर नोट दे दिया जाता है तीसरी बार उसी प्रकार के अपराध करने पर उसे तुरन्त बर्खास्त कर दिया जाता है। सेवा या रजिस्टरी कार्ड की यह प्रणाली बहुत लाभकारी है। ऐसे कार्ड व्यवस्थापकों को पदोन्नति और बर्खास्तगी की बातों को तय करने में तथा श्रमिकों को ईमानदारी तथा नियमितता के मार्ग पर चलाने में सहायक होते हैं। यह किसी श्रम सुरक्षा योजना के हेतु आंकड़े एकत्रित करने में भी बहुत सहायक होते हैं और इस दृष्टिकोण से रोजगार दफ्तरों के लिए भी लाभदायक हैं। श्रमिकों के बारे में नाम आयु जाति धर्म इत्यादि जैसी स्थायी प्रवृत्ति की और व्यवसाय

परिवर्तन बदल उपस्थिति अवकाश अनुशासनात्मक कार्यवाही क्षतिपूर्ति आदि जैसी बदलती हुई प्रकृति की सभी प्रकार की सूचनाएँ इनमें नोट कर दी जाती हैं। यदि कई कारखानों ने यह सेवा-कार्ड प्रणाली अपना ली है और यह आवश्यक है कि इनमें कम से कम कुछ न्यूनतम सूचना के विषय में समानता हो और कुछ वैज्ञानिक व्यवस्था भी इस उद्देश्य के लिए होनी चाहिए।

विवेकीकरण
(Rationalization)

परिभाषा —

एक अन्य महत्त्वपूर्ण समस्या जिसको हाल ही के कुछ वर्षों में महत्ता दी गई है भारतीय उद्योगों में वैज्ञानिक प्रबन्ध अथवा विवेकीकरण की है। हम विवेकीकरण की परिभाषा इस प्रकार कर सकते हैं, "विवेकीकरण का तात्पर्य उद्योग में उन तकनीक और संगठन की पद्धति से है जो इसलिए अपनाई जाती है कि श्रमिकों के प्रयत्नों और माल में कम से कम अपव्यय (Waste) हो। इस प्रकार इसके अन्तर्गत श्रम का वैज्ञानिक रूप से संगठन, कच्चे माल एवं उत्पादन का समानीकरण, प्रक्रियाओं की सरलता तथा विक्रय एवं यातायात के साधनों में सुधार करना आदि बातें आ जाती हैं।"* सारांश में यह मूल्य में कमी करने की वैज्ञानिक योजना है। इसका अर्थ उत्पादन में तर्क और साधारण बुद्धि का उपयोग करना तथा उत्पादन व उपभोग में नियमित एवं वैज्ञानिक रूप से समायोजना लाना है। विवेकीकरण का मुख्य उद्देश्य उत्पादन के प्राचीन तथा भद्दे एवं परम्परागत तरीकों के स्थान पर वैज्ञानिक साधनों का प्रयोग करना है। १९२७ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की 'प्रबन्ध पर सलाहकार समिति' ने बताया था कि विवेकीकरण एक ऐसा सुधार है जिसके अन्तर्गत उत्पादन की प्राचीन एवं परम्परागत प्रणालियों के स्थान पर तर्कसंगत एवं नियमित प्रणालियों को काम में लाया जाता है। संकुचित रूप में विवेकीकरण का अर्थ ऐसे सुधारों से लिया जा सकता है जो किसी संस्थान, प्रशासन सम्बन्धी अथवा अन्य सार्वजनिक या निजी संस्थाओं में किये जाते हैं परन्तु विस्तृत रूप में इसका अर्थ ऐसे सुधारों से भी लिया जा सकता है जो व्यावसायिक संस्थाओं के एक समूह में उनको इकाई मानकर, किये जाते हैं या बड़े आर्थिक या सामाजिक समूह में होते हैं। इन सुधारों से अनियंत्रित रूप से कार्य करने और अवैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग करने तथा प्रतियोगिता के कारण जो अपव्यय तथा हानि होती है उसको कम किया जा सकता है।

विवेकीकरण की दो महत्त्वपूर्ण तकनीकी बातें हैं (क) केन्द्रीय नियन्त्रण (Centralised Control) एवं यन्त्रीकरण (Mechanisation) (ख) आधुनिकीकरण (Modernisation) एवं समानीकरण (Standardisation)। इनके उद्देश्य उत्पादन

* International Economic Conference Geneva May 1927

को बढ़ाना एवं उत्पादन मूल्य को घटाना दोनों ही हैं। केन्द्रीय नियन्त्रण में उत्पादक इकाइयों का निकट सामंजस्य (Co-ordination) होता है। पूंजी लागत को कम करने तथा बड़े पैमाने के उद्योग की मितव्ययताओं (Economies) को प्राप्त करने के लिए इन इकाइयों का विलीनीकरण (Amalgamation) भी हो सकता है। जो इकाइयां अधिक कमजोर हैं वह समाप्त हो जाती हैं। यन्त्रीकरण का अर्थ है श्रमिकों का मशीनों द्वारा प्रतिस्थापन। आधुनिकीकरण में समस्त घिसी पिटी तथा पुरानी मशीनों को फेंक दिया जाता है तथा प्रत्येक इकाई में आधुनिक मशीनें तथा उसके साथ की अन्य चीजें और यन्त्र पूर्ण रूप से लगाये जाते हैं जिससे उद्योग की प्रत्येक मशीन और सामान सर्वश्रेष्ठ रहे। समानीकरण सामान तथा उत्पादन की रीतियों का होना है। मानव साधन को अर्थात् श्रमिक को वैज्ञानिक व्यवस्था द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। विवेकीकरण में 'समय अध्ययन' (Time Study) 'गति अध्ययन' (Motion Study) एवं 'श्रान्ति अध्ययन' (Fatigue Study) किया जाता है। इसका उद्देश्य यह है कि किसी भी काम को करने में गति की संख्या न्यूनतम हो और समय भी कम लगे तथा श्रमिकों पर कम से कम जोर पड़े।

सर्वप्रथम विवेकीकरण शब्द का प्रयोग जर्मनी में १९१४–१८ के महायुद्ध के पश्चात् के वर्षों में हुआ जब वहां मुद्रा स्फीति (Inflation) एवं आर्थिक अव्यवस्था फैली हुई थी। अब इसको संयुक्त राष्ट्र अमेरिका जर्मनी जापान एवं इंगलैण्ड में अधिक विस्तृत रूप से अपनाया गया है। अन्य देश भी १९२९ की आर्थिक मन्दी के पश्चात् इसके बारे में विचार करने लगे हैं और भारत में भी इस ओर कुछ प्रयत्न किये गये हैं। विवेकीकरण की योजना में उत्पादन लागत में कमी की जाती है। इसके लिए श्रम को बचाने वाले उपाय अपनाये जाते हैं तथा उत्पादन को उपभोग के अनुकूल समायोजित किया जाता है तथा श्रमिकों की कुशलता एवं दक्षता में वृद्धि की जाती है। यह बातें अति उत्पादन तथा अपव्यय को दूर करने तथा मूल्यों में कमी करने के लिए नितान्त आवश्यक हैं। विवेकीकरण के द्वारा कमजोर इकाइयां समाप्त हो जाती हैं तथा शक्तिशाली इकाइयों का विलयन करके विशाल एवं कुशल इकाइयों का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार सम्पूर्ण व्यवसाय को नये प्रकार की मशीनों श्रम बचत उपायों एवं वैज्ञानिक प्रयोगों से तथा व्यापार, उद्योग बैंकिंग वित्त व्यवस्था एवं राज्य के बीच सहयोग से और समस्त उद्योगों को एक कार्यकुशल संगठन के अन्तर्गत लाकर जितना अधिक से अधिक सम्भव होता है कुशल बना दिया जाता है। किसी भी उद्योग में विवेकीकरण को लागू करने से पूर्व एक निश्चित आयोजना बनानी पड़ती है। विवेकीकरण एक व्यापक शब्द है जो उद्योग में केवल आर्थिक दृष्टि से ही नहीं अपितु वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा तकनीकी संगठन की दृष्टि से भी उन्नति करने पर बल देता है।

विवेकीकरण के गुण एवं दोष —

विवेकीकरण के अनेक लाभ हैं। विवेकीकरण से सम्पूर्ण आर्थिक संगठन में अधिकतम कार्यक्षमता आ जाती है। इससे उत्पादन की लागत कम हो जाती है और साथ ही उत्पादन भी अधिक होने लगता है। श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़ जाती है किसी प्रकार का अपव्यय नहीं होता तथा मूल्य भी कम हो जाते हैं। इस प्रकार माँग भी बढ़ती है तथा बाजार का विस्तार होता है। विवेकीकरण से उन्नत एवं आधुनिकतम मशीनों का प्रयोग एवं वस्तुओं का युक्तिपूर्ण चुनाव होता है और श्रमिक कम समय में श्रेष्ठ एवं प्रमापित वस्तुओं का उत्पादन कर लेते हैं। श्रम के दुरुपयोग को रोकने के लिए श्रमिकों को तकनीकी एवं यांत्रिक प्रशिक्षण दिया जाता है। श्रमिकों से उनकी योग्यता के अनुसार ही कार्य लिया जाता है तथा जो श्रमिक जिस कार्य के लिए सर्वाधिक उपयुक्त होता है उसको वही काय सौंपा जाता है। सारांश में इससे न्यूनतम प्रयत्नों से अधिकतम कार्यकुशलता एवं अधिकतम उत्पादन की प्राप्ति होती है और उद्योग की प्रतिस्पर्धा शक्ति बढ़ जाती है। १९२७ में अन्तर्राष्ट्रीय आर्थिक सम्मेलन ने विवेकीकरण से सम्बन्धित निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया था "इस सम्मेलन के विचार में उत्पादन बढ़ाने, श्रमिक की दशाओं में सुधार करने और उत्पादन लागत को कम करने का एक मुख्य साधन यह है कि उत्पादन और वितरण की व्यवस्था को विवेकपूर्ण ढंग से संगठित किया जाय। सम्मेलन के विचार में इस प्रकार के विवेकीकरण का उद्देश्य निम्नलिखित बातों से है, जो सब बातें एक साथ लागू होनी चाहियें (१) न्यूनतम प्रयत्नों द्वारा श्रमिकों को अधिकतम कार्यकुशलता प्राप्त करना (२) जहाँ वस्तु के भिन्न प्रकार के आकार से कोई लाभ न हो वहाँ आकारों में भिन्नता को कम करना तथा समान प्रकार के भागों को एक दूसरे से हस्तांतरित करके उनके निर्माण, उपयोग तथा डिजाइन बनाने में सहायता देना (३) कच्चे माल और शक्ति के उपयोग में अपव्यय को दूर करना (४) पदार्थों की वितरण व्यवस्था को सरल बनाना तथा (५) वितरण व्यवस्था में अनावश्यक यातायात, आर्थिक वित्ताय, सट्टेबाजी तथा बेकार के मध्यस्थों आदि को दूर करना।" इस बात का भी उल्लेख किया गया था कि विवेकीकरण को बुद्धिमत्ता से तथा निरन्तर रूप से लागू करने से निम्नलिखित लाभ होंगे "(i) समाज के लिए अधिक स्थिरता होगी तथा जीवनस्तर ऊँचा हो जायगा (ii) उपभोक्ताओं के लिए कम कीमतें होंगी तथा आवश्यकतानुसार सम्पूर्ण उचित रूप से बनाई जाएंगी तथा (iii) उत्पादन में संलग्न विभिन्न वर्गों को अधिक तथा नियमित रूप से पारिश्रमिक मिलेगा जिसका उनमें समान रूप से वितरण भी होगा।" इस बात पर भी जोर दिया था कि विवेकीकरण के लिए श्रमिकों का सहयोग तथा व्यापार एवं औद्योगिक संगठन को और वैज्ञानिक तथा तकनीकी विशेषज्ञों की सहायता आवश्यक है। विवेकीकरण को सावधानी से लागू करना चाहिए ताकि श्रमिकों के हितों को क्षति न पहुँचे।

इससे विवेकीकरण की महत्ता और लाभ स्पष्ट हो जाते हैं। परन्तु विवेकीकरण में अनेक कठिनाइयां तथा दोष भी हैं। इस योजना का उन मालिकों द्वारा विरोध होता है जो कमजोर होते हैं और जिनका देश में विवेकीकरण की योजना लागू हो जाने पर अस्तित्व ही समाप्त हो जाने का भय रहता है। दूसरी कठिनाई यह है कि विवेकीकरण की योजना के लिए पर्याप्त पूंजी एवं व्यापार-विवेक सदा प्राप्त नहीं हो पाते जबकि यह विवेकीकरण को लागू करने के लिए नितान्त आवश्यक है। विवेकीकरण के अनन्तर उत्पादक आपस में संगठित होकर उपभोक्ताओं से अनुचित रूप से उच्च मूल्य वसूल कर सकते हैं। इसलिए विवेकीकरण सर्वदा लाभदायक नहीं होता। सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि विवेकीकरण का प्रभाव उस समय इतना बुरा नहीं होता जब औद्योगिक समृद्धि (Prosperity) के दिनों में श्रमिकों को दूसरे उद्योगों में लगाया जा सकता है परन्तु साधारणतया विवेकीकरण किसी विशेष उद्योग में आर्थिक मन्दी के दिनों में ही अपनाया जाता है ताकि उत्पादन लागत कम हो सके।

श्रमिक विवेकीकरण का विरोध करते हैं क्योंकि इसे वह कार्य की तीव्रता (Intensification) एवं श्रमिकों के शोषण का साधन समझते हैं। प्रथम विवेकीकरण की योजना लागू करने का तात्पर्य यह हो जाता है कि श्रम बचत उपायों तथा नवीनतम मशीनों को अपनाकर श्रमिकों की संख्या कम कर दी जाय। इसके फलस्वरूप बेरोजगारी बढ़ती है। दूसरे, व्यावहारिक रूप में विवेकीकरण कार्य तीव्रता का रूप ले लेता है क्योंकि वस्तुतः होता यह है कि श्रम व्यय को कम करने के हेतु मालिक कार्य की दशाओं कच्चा माल औजारों आदि में सुधार किये बिना कार्य भार में वृद्धि कर देते हैं। मालिकों द्वारा प्रबन्ध के सभी कार्यों में विवेकीकरण लागू करने का प्रयत्न नहीं किया जाता। इस प्रकार विवेकीकरण से श्रमिकों पर अत्यधिक भार पड़ जाता है। तीसरे, श्रमिक यह शिकायत करते हैं कि विवेकीकरण द्वारा होने वाले समस्त लाभों को मालिक हड़प जाते हैं और जिन श्रमिकों पर अधिक कार्य भार पड़ता है उन्हें बहुत कम अथवा कुछ भी नहीं मिलता।

विवेकीकरण की किसी भी योजना के सफल होने के लिये यह आवश्यक है कि इन आपत्तियों का समाधान किया जाये। विवेकीकरण की योजना ऐसी होनी चाहिये जिससे कम मूल्य पर अधिक उत्पादन हो सके तथा उद्योग के विस्तृत होने के साथ - साथ श्रमिकों को अलग करने की अपेक्षा और अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाया जा सके। अतः विवेकीकरण को सुनियोजित एवं नियमित रूप से लागू करना चाहिये जिससे बेरोजगारी बिल्कुल न हो और यदि हो भी तो बेरोजगारी सहायता की कोई योजना पहले से ही तैयार रहनी चाहिये। विवेकीकरण की किसी भी योजना को कार्यान्वित करने से पूर्व कार्य भार को वैज्ञानिक रीति तथा उचित प्रकार से 'समय अध्ययन' 'गति अध्ययन' तथा 'थकान अध्ययन' आदि से निर्धारित कर लेना चाहिये। श्रमिकों की कार्य की दशाओं मशीनों, कच्चा माल, आदि में भी

सुधार करना चाहिये एवं श्रमिकों के कल्याण के विभिन्न कार्य भी करने चाहिये। इसके साथ ही विवेकीकरण के फलस्वरूप होने वाले अधिक लाभ में से श्रमिकों का उचित भाग मिलना चाहिये। विवेकीकरण से जो लाभ होते हैं उनसे मजदूरी को पर्याप्त मजदूरी (Living Wage) के स्तर तक बढ़ाया जाना चाहिये। इसके अतिरिक्त विवेकीकरण के फलस्वरूप अधिक कार्यकुशल व्यवस्था एवं श्रेष्ठ संगठन होना चाहिये और इसके परिणामस्वरूप मालिकों एवं श्रमिकों के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित होने चाहिये।

भारतीय उद्योगों में विवेकीकरण —

संसार के विभिन्न औद्योगिक देशों की भांति विवेकीकरण को भारत में भी आर्थिक मन्दी के समय कुछ सीमित रूप में अपनाया गया था। इसका कारण यह था कि इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि श्रम बचत उपाया तथा वस्तुओं और उत्पादन में समानीकरण द्वारा श्रमिकों की कार्यकुशलता और क्षमता को बढ़ाया जाय और इस प्रकार से बचत की जाय। उदाहरण के लिये सूती मिल उद्योग के सर फेड्रिक स्टोन ने १६२८ में बम्बई की कुछ कपड़ा मिलों में विवेकीकरण को कार्यरूप दिया। तभी से भारत के सबसे अधिक शक्तिशाली एवं प्रतिनिधि श्रमिक संगठन अर्थात् अहमदाबाद कपड़ा मिल मजदूर संगठन ने विवेकीकरण योजना का विरोध किया है तथा भारतीय उद्योगों के विभिन्न क्षेत्रों में विवेकीकरण के लागू होने से जो गम्भीर कमियां एवं दोष पाये गये उन पर प्रकाश डाला है। डा० राधाकमल मुकर्जी ने अपनी इंजीनियरिंग एवं तम्बाकू उद्योगों में विवेकीकरण की समस्या की भली भाँति समालोचना की है तथा उन सुरक्षात्मक उपायों को भी बताया है जिनका विवेकीकरण की किसी भी योजना को लागू करने से पूर्व अपनाया जाना आवश्यक है ताकि श्रमिकों के उचित हितों को हानि न पहुंचे।*

कपड़ा उद्योग के सम्बन्ध में १६२७ में टैरिफ बोर्ड ने भारत में प्रति श्रमिक उत्पादन बढ़ाने एवं कार्यकुशलता में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया था। उसने बताया था कि जापान में प्रति श्रमिक द्वारा नियन्त्रित किये जाने वाले तकुओं की संख्या २४० इंगलैंड में ५४० एवं संयुक्त राष्ट्र अमरिका में ११२० थी, जबकि भारत में इनकी संख्या केवल १८० तकुए प्रति श्रमिक ही थी। भारत में एक बुनकर द्वारा देखभाल किये जाने वाले करघों की संख्या २ थी जबकि अमरिका में ६ एवं इंगलैंड में ४ से ६ तक थी। जापान में एक बुनकर लड़की ६ करघों की देखभाल कर पाती था। जबकि हमारा बुनकर केवल दो करघों को ही देखभाल करती थी। इस कारण यह सुझाव दिया गया था कि भारतीय उद्योगों में माल एवं कार्य की इसमें कोई सन्देह नहीं कि विभिन्न देशों के श्रमिकों की तुलना भारतीय श्रमिकों की दशाओं में सुधार होना चाहिये तथा वैज्ञानिक प्रबन्ध अपनाना चाहिये। पर जलवायु के प्रभाव एवं रहने की असन्तोषजनक दशाओं को दृष्टि में रख कर ही

---

* Dr R. K. Mukerjee Indian Working Class, p 246-59

करना चाहिए। परन्तु इस बात से भी इन्कार नहीं किया जा सकता कि कार्यकुशलता में वैज्ञानिक प्रबन्ध द्वारा उन्नति हो सकती है। विवेकीकरण से न केवल मिल के विभिन्न विभागों में कार्यकुशलता बढ़ेगी वरन् इससे उत्तम सामंजस्यता (Coordination) एवं सर्वेक्षण में भी वृद्धि होगी। यदि भारतीय सूती मिल उद्योग को इंगलैंड एवं जापान से सफलतापूर्वक प्रतिस्पर्धा करनी है तो विवेकीकरण की नितान्त आवश्यकता है। अभी तक विवेकीकरण बम्बई एवं अहमदाबाद में लागू किया गया है जहाँ १९५५ में श्रमिकों एवं मालिकों के बीच समझौते के पश्चात् कार्यकुशलता के उपाय (Efficiency Methods) अपनाये गये थे। रिंग कताई एवं बुनाई के विभाग को इससे अत्यधिक लाभ हुआ है। बम्बई की कपड़ा मिल के करघा विभाग में भी काफी उन्नति हुई है। यहाँ २२६ बुनकर ३ तथा २७२६ बुनकर ४ एवं ६०१ बुनकर ६ करघे प्रति बुनकर चलाते हैं। अधिकांश कताई करने वाले ४० तकुए अथवा इससे भी अधिक प्रति श्रमिक देखभाल कर लेते हैं। अहमदाबाद में कपड़ा मिल मजदूर परिषद द्वारा किये गये विरोध के कारण इस क्षेत्र में अधिक उन्नति नहीं हो सकी है। शोलापुर में विवेकीकरण बहुत कम हुआ है और यह केवल रिंग कताई के विभाग तक ही सीमित है। यहाँ ११५ श्रमिक दुतरफा कार्य प्रणाली (Double Side System) पर कार्य करते हैं। अन्य स्थानों पर कपड़ा मिलों में उत्तम मशीनों एवं स्वचालित (Automatic) करघों के कारण श्रमिकों की कार्यकुशलता में वृद्धि होने के अतिरिक्त और कोई सुधार नहीं हुआ है। कानपुर में मशीनों की गति में वृद्धि की गई है। परन्तु यह वास्तव में विवेकीकरण न होकर कार्य की तीव्रता है।

फिर भी इसमें संदेह नहीं कि भारतीय उद्योगों में विशेषकर सूती वस्त्र, जूट मिल एवं कोयला खान उद्योगों में विवेकीकरण अत्यधिक आवश्यक है। दूसरे महायुद्ध के पश्चात् भारतीय सूती वस्त्र उद्योग का उत्पादन सामान्यतया २० से ३० प्रतिशत तक घट गया है जबकि जापान इंगलैंड एवं अमेरिका जैसे सूती कपड़े के अन्य उत्पादक देशों के उत्पादन में वृद्धि हुई है। भारत का पिछड़ना इस बात से स्पष्ट है कि इस समय भी भारतीय सूती उद्योग का एक कर्मचारी औसतन २८० रिंग फ्रेम तकुओं की देखभाल करता है जबकि इंगलैंड में एक कर्मचारी ८०० तकुओं एवं अमेरिका का एक श्रमिक १२०० तकुओं की देखभाल करता है। इसी प्रकार एक भारतीय श्रमिक औसतन २.५ साधारण करघों पर कार्य करता है जबकि इंगलैंड में ५ साधारण करघों तथा अमेरिका में ३३ स्वचालित करघे एक श्रमिक द्वारा नियोजित किये जाते हैं। इसके अतिरिक्त अधिकांश भारतीय मिलों में मशीन एवं सामग्री अपेक्षाकृत पुरानी है। यह अनुमान लगाया गया है कि ४६ प्रतिशत करघे ६६ प्रतिशत 'ब्लूम फ्रेम्स' ३१ प्रतिशत 'ड्राइंग फ्रेम्स' २७ प्रतिशत 'स्लबर एवं रोविंग फ्रेम्स' एवं १७ प्रतिशत 'वार्प रिंग' और 'वेफ्ट' रिंग फ्रेम्स लगभग ४४ वर्ष से भी अधिक पुराने हैं। बम्बई मिल मालिकों द्वारा सूती वस्त्र उद्योग के कार्यदल (Working Party) को प्रस्तुत किए गए परिपत्र (Memorandum) के

अनुसार बम्बई जिला में ९० प्रतिशत मशीनें २५ वर्ष से अधिक पुरानी हैं। ऐसी मशीनें जिनसे दूसरे महायुद्ध में परस्पर व्यापी पारियों (Multiple Shifts) में कार्य लिया गया था तथा जो १९१० से पहले लगाई गई थी पुरानी और बेकार हो गई हैं। संसद में एक बार श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने कहा था कि लगभग ६१ सूती मिलों को पुरानी एवं घिसी पिटी मशीनों के कारण बन्द होने की नौबत आ गई थी। स्वचालित करघों का प्रतिशत कुल करघों के अनुपात में जनवरी १९५८ में भारत में ६·८ था जबकि यह अनुपात अन्य देशों में इस प्रकार था अमरीका में १०० फ्रांस में ५२ इटली में ५२·२ सोवियत संघ में ४७·४ पश्चिमी जर्मनी में ३८·२ पाकिस्तान में २९ जापान में १७·८ इंगलैंड में १५ और चीन में ११·३। अतः विदेशी प्रतिस्पर्धा का सामना करने और निर्यात बाजार को व्यवस्थित रखने के हेतु भारतीय कपड़ा उद्योग में विवेकीकरण अत्यन्त आवश्यक है। जूट मिल उद्योग में भी ऐसी ही दशा है। जूट मिल उद्योग के यन्त्रों एवं मशीनों के आधुनिकीकरण की आवश्यकता और भी अधिक हो गई है क्योंकि यूरोपीय एवं यहाँ के अनेक प्रतिस्पर्धियों ने अपनी उत्पादन लागत को कम करने के लिए अपनी मशीनों एवं यन्त्रों का आधुनिकीकरण करने पर बहुत बड़ी मात्रा में पूंजी लगाई है। इससे संसार में भारतीय जूट मिल उद्योग के एकाधिकार (Monopoly) को एक बहुत गम्भीर प्रतिस्पर्धा का सामना करना पड़ रहा है। पाकिस्तान, ब्राजील तथा फिलिपाइन्स ने नवीन प्रकार की मशीनों से नई जूट मिलों की स्थापना की है और वे जूट से बनी वस्तुओं को कम कीमत पर देने में समर्थ हो सकते हैं। १९५४ में जूट जांच आयोग की रिपोर्ट में भी जूट मिलों में तत्काल विवेकीकरण लागू करने की आवश्यकता पर बहुत बल दिया गया था। १९५१ में कोयला उद्योग पर कार्यदल की रिपोर्ट में भी कोयला खान उद्योग के लिये आधुनिकीकरण तथा विवेकीकरण की योजनाएँ लागू करने की सिफारिश की गई थी ताकि खानों की उत्पादन शक्ति बढ़ सके तथा उनकी उत्पादन लागत कम हो सके।

अधिकतर राज्यों की कपड़ा मिलों में विवेकीकरण की योजनाओं को कार्य रूप में परिणत कर दिया गया है तथा भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा नियुक्त की गई जूट उद्योग पर त्रिदलीय औद्योगिक समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप जूट मिलों में भी विवेकीकरण योजनाएँ लागू कर दी गई हैं। विवेकीकरण के सम्बन्ध में मालिकों का मार्ग प्रदर्शन करने के लिए भारतीय श्रम सम्मेलन ने एक आदर्श समझौता भी बनाया है जिसको केन्द्रीय श्रम तथा रोजगार मंत्रालय द्वारा परिचालित किया गया है। परन्तु विवेकीकरण की योजनाओं का श्रमिक संघों द्वारा बहुत विरोध हुआ है।

भारत में विवेकीकरण के खतरे —

भारत में अधिकतर यह देखा गया है कि पूर्णतः नई मशीनों को लगाने की अपेक्षा पुरानी मशीनों को ही फिर से नया कर दिया जाता है तथा मशीनों की गति

काफी बढ़ा दी जाती है और उन्नत मशीनों की व्यवस्था अथवा उन्नत कार्य नियोजन वस्तुओं का प्रमापीकरण अथवा सुधार एवं अच्छा सर्वेक्षण आदि कुछ नहीं किया जाता। केवल काम करने की गति में वृद्धि होती है जिसको काम की तीव्रता या अधिकता ही कहा जा सकता है। इस प्रकार भारत में कार्यतीव्रता (Intensification) विवेकीकरण के वेश में आ रही है। यद्यपि कपड़ा मिलों की मशीनों में सुधार किया गया है परन्तु इसके साथ रुई के गुण एवं मजदूरी में सुधार नहीं हुआ है। मशीनों की गति अहमदाबाद एवं बम्बई की कपड़ा मिलों में अमेरिका से भी अधिक है, परन्तु इससे श्रमिकों के स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है दुर्घटनाओं की संख्या बढ़ जाती है धागे अधिक टूटने लगते हैं एवं श्रमिकों पर अधिक भार पड़ता है। इसके अतिरिक्त भारत में यंत्रीकरण के साथ साथ बहुधा छटनी एवं तीव्रता दोनों ही होते हैं जिससे शक्तिशाली श्रमिक संगठन के अभाव के कारण श्रमिक अपनी रक्षा नहीं कर पाते। फिर कारखाने में वातावरण की दशाओं के सुधार की ओर नियोजित प्रयत्न बहुत कम होता है जिसके सुधार होने से श्रमिकों की कार्यगति चुस्ती एवं कार्यकुशलता पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। अन्य देशों में शक्तिशाली श्रमिक संघों के कारण श्रमिक विवेकीकरण द्वारा उद्योग के बढ़े हुए लाभों में से उचित भाग पाने से वंचित नहीं हुए हैं। परन्तु भारत में अहमदाबाद के अतिरिक्त जहाँ श्रमिक संघ शक्तिशाली हैं यह बात कहीं और नहीं पाई जाती। बम्बई में विवेकीकरण के परिणामस्वरूप विभिन्न कार्यों में जो मजदूरी दी जाती है इसमें ११ प्रतिशत से १५ प्रतिशत तक वृद्धि हुई है। परन्तु श्रमिक इस बात की बहुधा शिकायत करते हैं कि उन पर अतिरिक्त भार पड़ा है तथा कच्चे माल एवं कार्य की दशाओं में सुधार किए बिना ही उनकी संख्या घटा दी गई है। साथ ही उन रोजगारों में जहाँ विवेकीकरण योजनाओं को लागू किया गया है श्रमिकों की आय में पर्याप्त वृद्धि नहीं हुई है। विवेकीकरण के होने पर बेरोजगारी का भय भी सदा ही बना रहता है।

अहमदाबाद में शक्तिशाली श्रम संगठन के कारण कार्यकुशलता प्रणाली (Efficiency System) संतोषपूर्वक कार्य कर रही है, परन्तु अन्य स्थानों में विशेष कर इंजीनियरिंग उद्योग में अनियमित विवेकीकरण के कारण अनेक दोष उत्पन्न हो गये हैं। उदाहरणार्थ जमशेदपुर के लोहा एवं इस्पात कारखानों के विभिन्न यंत्रों एवं विभागों में उत्पादन प्रति इकाई बढ़ गया है परन्तु श्रमिकों की संख्या बहुत घटा दी गई है और उनकी मजदूरी में कोई उचित वृद्धि नहीं की गई है। यह स्थिति लगभग समस्त इंजीनियरिंग मिलों में जहाँ विवेकीकरण के साथ-साथ श्रमिकों की संख्या घटाई गई है या कार्य तीव्रता पाई जाती है व्याप्त है। भारतीय टिन प्लेट क० में भी ऐसी ही दशाएं पाई जाती हैं। लोहे के तार उद्योग में कार्यतीव्रता की तो सीमा ही पहुँच चुकी है। इसी प्रकार की बिना उचित वेतन वृद्धि के कार्यतीव्रता की समस्या सिमेंट उद्योग में भी है जहाँ कि प्रारम्भ से अन्त तक समस्त प्रक्रियाएँ मशीनों से

होती है। कार्यगति में वृद्धि एवं श्रमिकों की संख्या में कमी होना ही श्रमिकों में घोर असन्तोष एवं हड़तालों के कारण बने हैं।

सुझाव —

इसलिए अधिक कार्यक्षमता और मेहनत के कारण उत्पादन तथा मजदूरी में वृद्धि, कार्य गति में वृद्धि, उचित समय विश्राम की आवश्यकता, मशीनों को समान एवं कार्य दशा में सुधार, विवेकीकरण के कारण बेरोजगारी आदि सभी महत्वपूर्ण प्रश्नों का सभी दृष्टिकोणों से अवलोकन करना आवश्यक है। विवेकीकरण की किसी योजना को कुशलता एवं सफलतापूर्वक चलाने के लिये पूंजी व श्रमिकों के हितों में सामंजस्य लाना आवश्यक है। यह भी आवश्यक है कि विवेकीकरण को कार्यान्वित करने में पूर्ण कार्यकुशलता के सभी उपायों का श्रमिकों व मालिकों के प्रतिनिधियों की एक संयुक्त समिति द्वारा अध्ययन किया जाय। इस समिति में कुछ सरकारी [illegible] को विशेषज्ञों के रूप में होना चाहिए जिससे कार्य की दशाओं का तथा श्रमिकों और प्रबन्धकों में विवेकीकरण के लाभ का किस प्रकार से वितरित किया जाय, इनका निर्णय हो सके। यदि श्रमिकों की छटनी की जाती है तो उन्हें क्षतिपूर्ति दी जानी चाहिए तथा उनको यथासम्भव शीघ्र ही पुनः नौकरी पर लगाया जाना चाहिए। आजकल के संकट समय में उत्पादन साधन तथा मूल्यों में कमी की अत्यन्त आवश्यकता है और इसको विवेकीकरण के द्वारा ही किया जा सकता है। कम मूल्यों के कारण माँग बढ़ेगी और उद्योगों का विस्तार और विकास हो सकेगा तथा अधिक उत्पादन के कारण निकाले हुए श्रमिकों को पुनः नौकरी मिल सकेगी। इस प्रकार विवेकीकरण के दीर्घकालीन प्रभाव यह होंगे कि सस्ता उत्पादन होगा, अधिक उपभोग एवं अधिक रोजगार होगा और यदि विवेकीकरण को ठीक प्रकार से कार्यान्वित किया जाय और पर्याप्त रूप से इस पर नियन्त्रण रखा जाय तो इससे धन में वृद्धि होगी एवं सामान्य जीवन स्तर में उन्नति हो सकती।

फिर भी डा० मुकर्जी ने मन में सावधानी बरतने की चेतावनी दी है। भारत में विवेकीकरण इस समय केवल पूंजीपतियों के हित व अधिक लाभ के लिए ही किया जाता है और इससे इतना कार्य बोझ लादा जाता है [illegible] दिखता और मजदूरी में कमी एवं छटनी का एक दूषित चक्र चालू हो जाता है। इससे पूंजी एवं श्रम शक्ति का अपव्यय होता है और उद्योग में कमी अस्थिरता और [illegible] एवं मालिकों के बीच ऐसी कटुता पैदा हो जाती है कि भविष्य में काफी समय तक इस योजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करना सम्भव नहीं हो पाता।

परन्तु जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है भारत के अनेक उद्योगों में विवेकीकरण की नितान्त आवश्यकता और वांछनीयता है। इस समय उत्पादन में काफी अपव्यय होता है तथा लागत भी [illegible] रूप में अधिक [illegible] है। [illegible] सिद्ध [illegible] यदि [illegible] इसलिये यह तो स्पष्ट ही है कि वर्तमान समय के बड़े उद्योगों [illegible]

को जो निकट भविष्य में स्थापित होने वाले हैं, दोनों को ही। यदि अधिक समय तक यह अच्छी प्रकार से चालू रहना है तो आगे पीछे की सभी बातों को लेकर चलना होगा। वर्तमान समय में प्रत्येक औद्योगिक इकाई तात्कालिक दिनचर्या में व्यस्त तथा लाभ कमाने के हेतु लालायित रहती है ताकि अंशधारियों को प्रसन्न रखा जा सके। इस प्रकार यह बड़ी समस्याओं का जिस पर कि उसका अपना अस्तित्व निर्भर होता है, मुख मोड़ती है। अब वह समय आ गया है कि जो लोग इस समय उद्योगों को नियन्त्रित करते हैं, उनको तात्कालिक वातावरण से आगे की सोचनी चाहिये तथा अपने व्यक्तिगत संकुचित दृष्टिकोणों को त्याग कर अपने और सार्वजनिक लाभ के लिये राष्ट्रीय स्तर पर संगठित रूप से कार्य करना चाहिए।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि १९५१ में आयोजना आयोग के तत्वावधान में आयोजित वस्त्र उद्योग विकास समिति की एक उप-समिति की बैठक नई दिल्ली में हुई थी उसने औद्योगिक विवेकीकरण के परिणामस्वरूप होने वाली बेरोजगारी को कम करने, बेरोजगारों को पुनर्स्थापित करने एवं उन्हें निर्वाह भत्ता देने का सुझाव दिया था। जुलाई १९५७ में भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा विवेकीकरण के सम्बन्ध में मालिकों का मार्ग प्रदर्शन करने के लिये एक आदर्श समझौता बनाया गया था। इस समझौते के अनुसार विवेकीकरण की योजनाओं को लागू करने में निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना आवश्यक है (क) वर्तमान श्रमिकों की कोई छटनी नहीं होनी चाहिए और न ही उनकी आय में कमी होनी चाहिए। इसका तात्पर्य यह है कि वर्तमान व्यवस्था बनाये रखनी चाहिये—सिवाय उन मामलों को छोड़कर जिनमें स्वाभाविक रूप से अलहदगी हो जाती है (ख) विवेकीकरण से जो लाभ होते हैं उनका समान मालिक तथा श्रमिकों के बीच समान रूप से वितरण होना चाहिये तथा (ग) पारस्परिक सहमति से विशेषज्ञों द्वारा कार्यभार को उचित प्रकार से निर्धारण करना चाहिये तथा कार्य की दशाओं में भी उचित प्रकार से सुधार होना चाहिये।

उत्तर प्रदेश के उद्योगों में विवेकीकरण —

सन् १९३० में डा० राजेन्द्र प्रसाद की अध्यक्षता में बनाई गई श्रम जाँच समिति के समक्ष कांग्रेस सरकार द्वारा कानपुर की कपड़ा मिलों में विवेकीकरण का प्रश्न प्रस्तुत किया गया था। यह समिति विवेकीकरण योजना को इसी शर्त पर लागू करने को तैयार थी कि श्रमिकों के हित सुरक्षित रहें और उद्योग का विकास इस प्रकार हो कि विवेकीकरण द्वारा छटनी किए गये श्रमिकों को पुनः कार्य पर लगाया जा सके। यही प्रश्न त्रिपक्षीय श्रम समिति (१९४९) के सम्मुख प्रस्तुत किया गया था एवं फरवरी १९५१ के त्रिपक्षीय सम्मेलन में भी इस प्रश्न पर विचार किया गया था। सितम्बर सन् १९५२ में नैनीताल में आयोजित राज्य त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन में भी कपड़ा एवं चीनी उद्योगों में विवेकीकरण के प्रश्न पर विचार हुआ। सम्मेलन में विवेकीकरण के विभिन्न महत्वपूर्ण पहलुओं पर भी विचार किया गया।

उदाहरणत: बेरोजगारी पर उसका प्रभाव, अनुचित छटनी एवं अनुपयोगी पदों के विरुद्ध उपाय, विवेकीकरण के पश्चात् मजदूरी एवं कार्य दशाओं का निर्धारण, श्रमिकों एवं मालिकों के प्रतिनिधियों द्वारा इस प्रश्न पर विचार, आवश्यक तकनीकी सहायता आदि। सामान्य विचार यह था कि विवेकीकरण में देरी नहीं करनी चाहिए तथा सरकार को इस सम्बन्ध में आवश्यक कदम उठाने चाहियें। इसके फलस्वरूप श्रम विभाग में श्रम कमिश्नर के कार्यालय में 'कार्यकुशलता विभाग' (Efficiency Section) की स्थापना की जिसने जनवरी १९५१ से विभिन्न कपड़ा एवं चीनी मिलों में विवेकीकरण से सम्बन्धित अनेक प्रश्नों की जाँच की है। 'सम्पूर्णानन्द मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला' के नाम से इस विभाग के अन्तर्गत एक औद्योगिक मनोवैज्ञानिक प्रयोगशाला (Industrial Psychology Laboratory) भी स्थापित की गई है। इसका कार्य समय अध्ययन, गति अध्ययन, थकान अध्ययन प्रकार के अध्ययन करना है। फिर सरकार ने डा० कस्तूरी मिश्रा को कानपुर की कपड़ा मिलों के सम्बन्ध में अपनी रिपोर्ट देने के लिए विशेष अधिकारी के रूप में नियुक्त किया। उनकी रिपोर्ट पर जून १९५४ में नैनीताल में हुए त्रिदलीय सम्मेलन में विचार किया गया और इसके साथ ही सहायक श्रम आयुक्त की कपड़ा मिलों के हेतु दी गई विवेकीकरण योजना पर भी विचार-विमर्श हुआ। विभिन्न दलों के बीच हुए समझौते के फलस्वरूप सरकार ने कानपुर की कपड़ा मिलों में विवेकीकरण लागू करने के अपने निर्णय को घोषित कर दिया। विवेकीकरण को कार्यान्वित करने के लिए तथा उसकी अन्य विस्तृत बातों पर विचार करने के लिए ७ व्यक्तियों की एक समिति की स्थापना की गई। १९५४ में नैनीताल के सम्मेलन में हुए कुछ निर्णय इस प्रकार थे (१) विवेकीकरण के लागू होने के परिणामस्वरूप किसी प्रकार की बेरोजगारी नहीं होनी चाहिए अर्थात् श्रमिकों की संख्या में कमी केवल अवकाश प्राप्ति एवं स्वाभाविक मृत्यु के कारण ही होनी चाहिए। (२) उत्तर प्रदेश श्रम जाँच समिति द्वारा सुझाये गये मजदूरी निर्धारण के ढाँचे एवं कार्य भार (Work Load) को स्वीकार कर लिया जाना चाहिए। (३) उच्च स्तर का कार्य करने पर पुरस्कार के रूप में प्रेरणात्मक मजदूरी (Incentive Wages) की व्यवस्था करनी चाहिए। (४) मिलों में काम की दशाओं की देखभाल होनी चाहिए। (५) इन सब योजनाओं की विस्तृत रूपरेखाओं को बनाने के हेतु एक समिति की स्थापना होनी चाहिए, जो योजना को कार्यान्वित करने के विभिन्न उपायों एवं साधनों पर विचार करे।

परन्तु सूती मिल मजदूर सभा के असहयोग करने के कारण इस ७ व्यक्तियों की समिति को दिसम्बर, सन् १९५४ में समाप्त कर देना पड़ा और विवेकीकरण की समस्या को मालिकों और कर्मचारियों के आपसी समझौते पर छोड़ दिया गया। इसके पश्चात् विवेकीकरण के विरोध में बहुत प्रचार हुआ जिसके परिणामस्वरूप कानपुर की कपड़ा मिलों में एक आम हड़ताल हुई। यह हड़ताल २ मई १९५५ से २ जुलाई १९५५ तक चली। मालिकों और श्रमिकों के नेताओं द्वारा

एक दूसरे पर गम्भीर आरोप लगाए गए और दोनों ही पक्षों को इसमें काफी कठिनाई का सामना करना पड़ा। सारा विवाद मुख्यतः एक बात पर ही केन्द्रित था कि इस योजना का अर्थ विवेकीकरण है अथवा कार्यकुशलता। सरकार ने नैनीताल सम्मेलन में तय किये गये सिद्धान्तों से पीछे हटने से इन्कार किया और श्रमिकों ने इस प्रश्न पर फिर से विचार करने की मांग की। अन्त में सरकार ने अगस्त १९५५ में एक समिति की स्थापना की जिसके अध्यक्ष इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अवकाश प्राप्त न्यायाधीश श्री बी. बी. प्रसाद थे। इस समिति का कार्य नैनीताल त्रिदलीय सम्मेलन के निर्णयों पर विस्तृत रूप से विचार करना और इसके आधार पर कानपुर की आठ कपड़ा मिलों में अलग-अलग विवेकीकरण को लागू करना था। समिति ने सितम्बर १९५६ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की और बताया कि किसी भी दल को कष्ट पहुंचाये बिना किस प्रकार कानपुर की कपड़ा मिलों में विवेकीकरण लागू किया जा सकता था। यह भी अनुभव किया गया कि नैनीताल सम्मेलन में अपनाये गये सिद्धान्तों को अन्य तीन कपड़ा मिलों में भी लागू करना चाहिए। इसलिये श्री बी. बी. प्रसाद की एक 'एक-सदस्य-समिति' अन्य मिलों के विषय में सिफारिश करने के हेतु बनाई गई जिसने फरवरी १९५७ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। बी. बी. प्रसाद समिति की रिपोर्ट पर जून १९५७ में नैनीताल में हुए त्रिदलीय सम्मेलन में विचार किया गया। इसके तुरन्त बाद ही जुलाई १९५७ में विवेकीकरण के लिए भारतीय श्रम सम्मेलन ने एक आदर्श समझौते का सुझाव दिया। जिसका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। यह रिपोर्ट और भारतीय श्रम सम्मेलन की विवेकीकरण से सम्बन्धित सिफारिशें राज्य सरकार के विचाराधीन हैं। विवेकीकरण और कार्यकुशलता उपायों पर अध्ययन जारी है। श्री सम्पूर्णानन्द का विवेकीकरण की योजनाओं को कानपुर की सूती मिलों में लागू करने के हेतु विशेषज्ञ नियुक्त किया गया है।

उपसंहार —

कानपुर की हड़ताल का परिणाम यह हुआ कि उद्योग में विवेकीकरण के लागू करने के प्रश्न पर काफी वाद-विवाद आरम्भ हो गया। भारत में इसके लाभ हानि तथा श्रम सुरक्षा के उपायों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। सबका एकमात्र यही विचार है कि विवेकीकरण योजनाओं के परिणामस्वरूप बेरोजगारी तथा श्रमिकों की छंटनी और उन्हें कष्ट नहीं होना चाहिए। सरकार का दृष्टिकोण तो १ सितम्बर, सन् १९५४ में लोक सभा द्वारा स्वीकृत विवेकीकरण से सम्बन्धित प्रस्ताव से स्पष्ट हो जाता है जो इस प्रकार है "संसद का विचार है कि जहां देश के हित में आवश्यक हो वहां कपड़ा तथा जूट उद्योगों में विवेकीकरण को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए। परन्तु इस प्रकार की योजना ऐसे ढंग से कार्यान्वित की जानी चाहिए कि श्रमिकों का विस्थापन कम से कम हो। विस्थापित श्रमिकों के रोजगार के लिए भी उचित सुविधाएं प्रदान करनी चाहिएं।" तत्कालीन श्रम मंत्री

। गग्गुभाई देसाई ने मई १९५२ में बम्बई में हुए श्रम सम्मेलन में कहा था विवेकीकरण स्वयं में अति अच्छा हो सकता है। परन्तु जैसे बढ़िया खाना भूख से पीड़ित मनुष्य के लिए विष बन सकता है वैसे ही यदि विवेकीकरण में बेरोजगारी में वृद्धि होती है तब यह उद्योग के उत्थान के लिए बहुत हानिकारक उपचार हो सकता है। विशेषतः श्रम बचत उपायों के विषय में हम अधिक सावधान रहना चाहिए। ऐसे उपाय श्रमिकों को मशीनों की वेदी पर बलिदान कर देते हैं। पं० नेहरू ने भी कहा था विवेकीकरण एक अच्छी बात है परन्तु हम अधिक काम कुशलता के लिए भी मानव के दुःख और पीड़ा को सहन नहीं कर सकते। उत्तर प्रदेश के तत्कालीन मुख्य मंत्री डा० सम्पूर्णानन्द ने स्पष्ट शब्दों में कहा था जैसी आजकल हमारी स्थिति है उसमें यह कहना उचित है कि इसका अर्थ वर्तमान देखते हुए विवेकीकरण का तात्पर्य केवल यही हो सकता है कि विवेकीकरण के कारण बेरोजगारी साधनों का पूर्णतम लाभ उठाया जा सके तथा विवेकीकरण में भी बिना किसी व इस बात को न हो।" उनका यह भी कथन था कि मालिकों ने भी बिना विरोध विवेकीकरण योजना कार्यान्वित न हुई स्वीकार कर लिया है। उनके अनुसार यदि विवेकीकरण योजना लागू हो जायगी क्योंकि कानपुर का कपड़ा तो लगभग ५ से ६ हजार श्रमिक बेरोजगार हो जायेंगे क्योंकि अन्य स्थानों में प्रतिस्पर्धा नहीं उद्योग कानपुर में मजदूरी जो ऊँची है और श्रमिकों का औद्योगिक विवाद (समाधान) कर सकता और बिना विवेकीकरण के श्रमिकों की सम्भावना हो सकती है। अधिनियम के अन्तर्गत क्षतिपूर्ति लाभ इतनी कम की गई है। यद्यपि विवेकी श्री टी० टी० कृष्णमाचारी ने भी कहा था कि यह समय आ गया है जबकि सामान्य करण की नीति को अपनाना चाहिए। इसका आयोजन में सरलता से लाया जा सकता है कि इससे उन्हें हानि सकता है और श्रमिक को यह विश्वास दिलाया जा सकता है (Rationalization Without Tears) न होगी। बिना कष्ट के विवेकीकरण का सुझाया और जिसमें उन्होंने इस बात एक नया नारा था जो उन्होंने मालिकों का सुझाया और श्रमिकों को कोई हानि न होगी क्योंकि यदि पर जोर दिया है कि विवेकीकरण में श्रमिकों को नये दोषों का निर्माण हो जाता है। श्रमिक गतिशील हों तो रोजगार के नये क्षेत्रों में बहुत बढ़कर होता है और यही वाद-विवाद

फिर भी पश्नी और करनी में बहुत अन्तर होता है और यही वाद-विवाद और मतभेद का कारण है। स्वर्गीय पं० हरिहर नाथ शास्त्री ने कहा था "विवेकी करण का विभिन्न उद्योगों में जिस प्रकार लागू किया गया है वह भारतीय सरकार द्वारा अपने उस दृढ़ आश्वासन के बिल्कुल विपरीत हुआ है जो भारतीय सरकार ने उद्योगों को स्वीकृति न दिया था। यह बड़े दुःख का विषय है कि अपनी नीति को लागू करने के लिए तथा अनुचित और अवांछनीय रूप से इतनी जो कि इन से जारी है रोकने के लिए सरकार ने अभी तक कोई कार्यवाही का पग नहीं उठाया है।" डा० सम्पूर्णानन्द ने भी उस समय यह कहा था कि पिछले ५ वर्षों में १२,००० श्रमिकों की घटनी हुई थी यद्यपि उत्पादन में वृद्धि हुई है। परन्तु उत्पादन में वृद्धि से ... के लिए विवेकीकरण योजना को कार्यरूप देना चाहिए।

स्पष्ट है कि विवेकीकरण के भय से कार्यशीलता हो रही है और इसका श्रम श्रमिकों के ऊपर बुरा प्रभाव पड़ रहा है। श्रमिक प्रतिनिधियों द्वारा यह भी बताया गया है कि १६३६ एवं १६५१ के बीच में जबकि मिलों तकुओं एवं करघों की संख्या में कपड़ा उद्योग में वृद्धि हुई है वास्तव में श्रमि शक्ति में कमी हुई है। १६३६ में जब १८६ मिलों की एक करोड़ तकुए व तथा दो लाख करघे थे तब इनमें ४४१ ६४६ श्रमिक कार्य पर लगे थे। परन्तु १६५२ में कपड़ा अध्ययन दल के अनुसार ४४५ मिलों की १ १२,०० ००० तकुए एवं २ ०१ ००० करघे थे परन्तु श्रमिकों की संख्या केवल ४ २६,०१२ थी। राजकीय श्रम ब्यूरो के विवेचन के अनुसार भी यद्यपि श्रमिकों की आय बढ़ गई है परन्तु महायुद्ध से पूर्व के मूल्यों को देखते हुए वास्तविक मजदूरी अब भी कम है। अगस्त १६६ में संसद में एक प्रश्न का उत्तर देते समय यह बताया गया कि आन्ध्र प्रदेश की सूती कपड़ा मिलों में विवेकीकरण के कारण ४७१ श्रमिकों को अपनी नौकरी से हाथ धोना पड़ा था।

इसलिए श्रमिक नेताओं एवं अन्य दलों के वक्ताओं द्वारा विवेकीकरण योजनाओं का विरोध किया जाता है। भारत में विवेकीकरण के खतरों का उल्लेख ऊपर के पृष्ठों में किया जा चुका है। परन्तु साथ ही यह भी बताया जा चुका है कि विवेकीकरण की वांछनीयता बहुत है और इसके बिना हमारे उद्योग विशेषकर कपड़ा एवं जूट उद्योग संसार के उद्योगों के सम्मुख नहीं टिक सकते। इसलिए वर्तमान समय में विवेकीकरण योजनाओं को बहुत सावधानी और देख-रेख के के साथ कार्यान्वित करने के अतिरिक्त और कोई रास्ता दृष्टिगोचर नहीं होता। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मालिक उत्पादन के समस्त क्षेत्रों में विवेकीकरण योजनाओं को लागू न करके और केवल श्रम बचत उपायों को ही अपनाकर, विवेकीकरण से अनुचित लाभ न उठाएँ। यदि मालिकों को ऐसा करने से नहीं रोका जा सकता तब आर्थिक उन्नति की वेदी पर मानव कल्याण की आहुति नहीं दी जानी चाहिए। महात्मा गांधी द्वारा श्रम बचत-उपायों के विरुद्ध दिये गए प्रवचनों को हमें इतना शीघ्र नहीं भूलना चाहिए। जब तक हमारे उद्योगपतियों में देश प्रेम की भावना उत्पन्न नहीं हो जाती और सरकार इस मामले में कोई कठोर पग उठाने की परिस्थिति में नहीं हो जाती हम विवेकीकरण योजनाओं को चाहे उनकी वांछनीयता एवं आवश्यकता कितनी ही अधिक हो धीरे-धीरे ही लागू करना चाहिए।

औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी

(Wages of Industrial Workers)

परिभाषा असल तथा नकद मजदूरी (Real and Nominal Wages) —

मजदूरी का अभिप्राय उत्पादन में श्रम-सेवा के मेहनताने से है। यह मालिकों द्वारा श्रमिकों को उनके उत्पादन के प्रयत्नों के लिए दी गई अदायगी है। यदि प्रबन्ध नीति (Laissez-faire) के दृष्टिकोण से देखा जाय तो मजदूरी की परिभाषा में मालिकों और श्रमिकों की परस्पर निश्चित या निर्धारित संविदा (Contract) आय को लिया जा सकता है। श्रमिक कुछ धन अथवा वस्तुओं अथवा दोनों के लिए अपना श्रम बेचता है। मजदूरी की एक व्यापक परिभाषा यह भी हो सकती है कि मजदूरी का अर्थ धन के रूप में दिए गए ऐसे मेहनताने से है जो रोजगार के संविदा की शर्तों के अनुसार रोजगार में लगे व्यक्ति को दिया जाता है या उस रोजगार में किए गए कार्य के लिए दिया जाता है। अतः मजदूरी में यात्रा भत्ता प्रोवीडेन्ट फण्ड में मालिकों का अनुदान अवकाश प्राप्त धन अथवा आवास भत्ता या मालिकों द्वारा श्रमिकों को दी जाने वाली कल्याण सेवाएँ सम्मिलित नहीं होती।

किन्तु इस दृष्टिकोण से नकद मजदूरी और असल मजदूरी में अन्तर किया जाता है। मालिक श्रमिकों को प्रति सप्ताह प्रति माह या काम की मात्रा के अनुसार कुछ निश्चित धन देते हैं। यह राशि नकद अथवा मुद्रा मजदूरी को प्रकट करती है। किन्तु केवल नकद मजदूरी हमें मजदूर की आर्थिक स्थिति का उचित परिचय नहीं देती। जीवन स्तर को निश्चित करने वाली असल मजदूरी को ज्ञात करने के लिए हमें मुद्रा की क्रय शक्ति का ध्यान रखना होगा और अतिरिक्त प्राप्ति जैसे निःशुल्क आवास सस्ता अनाज अतिरिक्त आय के अवसर, बोनस की अदायगी समयोपरि कार्य के लिए अदायगी तथा काम करने और रोजगार की दशाओं आदि को भी दृष्टि में रखना होगा।

मजदूरी अदायगी की पद्धतियाँ — (Methods of Wage Payment)

मजदूरी अदायगी की विभिन्न पद्धतियाँ हैं। कार्य के अनुसार, अथवा श्रमिक के रोजगार की समय अवधि के अनुसार मजदूरी दी जा सकती है। कार्य के अनुसार दी जाने वाली मजदूरी "कार्यानुसार मजदूरी" (उजरत) (Piece Wages) तथा समय की अवधि के अनुसार दी जाने वाली मजदूरी "समयानुसार मजदूरी" (अमानी) (Time Wages) कहलाती है। "समयानुसार मजदूरी" में एक निश्चित समय के लिए, जैसे प्रति घण्टा प्रति दिन प्रति सप्ताह प्रति माह एक निश्चित धन दिया

जाता है। "समयानुसार मजदूरी" में श्रमिक अपना कार्य धीमी गति किन्तु कुशलता पूर्वक करता है और उसकी आय काफी सीमा तक निश्चित हो जाती है। यह पद्धति बिल्कुल सरल है और इसके अन्तर्गत श्रमिकों में परस्पर स्पर्धा भी नहीं होती। मालिक ऐसी मजदूरी तब देते हैं जब कार्य का प्रमापीकरण सरलता से नहीं हो सकता अथवा कार्य का निरीक्षण सम्भव नहीं होता या कार्य अस्वाभाविक (Unusual) प्रकार का होता है तथा जब कार्य के गुण को कार्य की मात्रा से अधिक महत्व दिया जाता है। समयानुसार मजदूरी को उस समय भी तरजीह (Preference) दी जाती है जब कार्य में सावधानी एवं उचित ध्यान देने की आवश्यकता होती है तथा जब महंगी सामग्री एवं नाजुक प्रकार की मशीनरी का प्रयोग होता है। दो या अधिक व्यक्तियों के संयुक्त उत्पादन में भी समयानुसार मजदूरी देना अधिक उत्तम है। समानी तब भी ठीक है जब श्रमिक की कोई गलती न होने पर भी कार्य में विघ्न पड़ जाता है जैसे खेती में मौसम बदलने के कारण विघ्न पड़ जाता है। परन्तु समयानुसार मजदूरी में यह हो सकता है कि श्रमिक अधिक कार्य न करे। इस पद्धति में अधिक कार्यकुशल व्यक्ति को अधिक कार्य करने का प्रोत्साहन भी नहीं मिलता और कुल उत्पादन में कमी हो जाती है। इस व्यवस्था में अधिक सर्वेक्षण की भी आवश्यकता होती है। इसके विपरीत 'कार्यानुसार मजदूरी' के अन्तर्गत प्रत्येक श्रमिक को कार्य की मात्रानुसार अदायगी की जाती है चाहे वह इसे करने में कितना ही समय लगाए। "कार्यानुसार मजदूरी" को तभी तरजीह दी जाती है जब कार्य का प्रमापीकरण तथा माप सरलतापूर्वक हो सकता है तथा मालिक बंधे व्यय को घटाकर अधिक उत्पादन चाहता है। इस व्यवस्था के अन्तर्गत श्रमिक उत्पादन के गुण पर ध्यान दिये बिना ही अधिक से अधिक उत्पादन करना चाहता है। कभी-कभी श्रमिक अधिक उत्पादन करके अधिक आय प्राप्त करना चाहते हैं। इन दशाओं में मालिक मजदूरी की दर घटाने की चेष्टा करता है जिसका अन्तिम परिणाम यह होता है कि श्रमिक की कार्यकुशलता घट जाती है। इसके अतिरिक्त संतोषजनक प्रमाप दर निश्चित करना भी कठिन है। इस प्रकार समय समय पर मजदूरी की दोनों पद्धतियों की वैज्ञानिक प्रबन्ध के विभिन्न विशेषज्ञों द्वारा आलोचना हुई है।

इस बात के प्रयत्न किये गए हैं कि मजदूरी देने में उपरोक्त दोनों पद्धतियों को मिला दिया जाए। फलस्वरूप "आरोही मजदूरी की बढ़ोती बोनस पद्धतियाँ" (Progressive Wage Systems of Premium Bonus Methods) अपनाई गई हैं। इन्हें कभी कभी मजदूरी अदायगी की प्रेरणात्मक प्रणाली (Incentive Systems of Wage Payments) भी कहा जाता है। इसकी गणना कई प्रकार से की जाती है। एक पद्धति 'हैल्से बढ़ोती प्रणाली' (Halsey Premium System) या 'वेयर' (Weir) प्रणाली कहलाती है। इस पद्धति में यह प्रयत्न किया गया है कि समानी और उजरत दोनों के लाभों का समन्वय कर दिया जाए तथा उनकी हानियों को दूर किया जाए। इसके अनुसार कार्य की एक निश्चित

मात्रा मानक उत्पादन (Standard Output) के रूप में निर्धारित कर दी जाती है जो एक निश्चित समय में पूरा हो जानी चाहिए। यदि कोई श्रमिक इस अवधि से पहिले कार्य समाप्त कर ले तो इस समय की बचत के लिए भी मजदूरी का एक भाग प्रतिदिन के सामान्य वेतन के अतिरिक्त मिलता है। उदाहरणार्थ यदि निश्चित समय १० घण्टे है तथा कार्य ६ घण्टे में पूरा हो जाता है तब श्रमिक को ६ घण्टे की कमाई और मजदूरी का एक भाग (मान लो ५०) ४ घण्टे बचाने के लिए दिया जाता है। इस प्रकार यदि कमाई १ रु० प्रति घण्टा है तो बढ़ोती (Premium) =½(दर×बचाया हुआ समय) (द दर के लिए है) अर्थात् ½(१० - ६) = ० ८ ... मिला हुआ समय × द ... बचाए हुए घण्टे होगी। अतः श्रमिक को कुल मिलाकर ६ ... = ८० रु० मिलेंगे। इस प्रकार इस ... में प्रत्येक बचाए हुए घण्टे के लिए निश्चित दर पर ... बोनस दिया जाता है। इस प्रणाली में श्रमिक को ऊँची मजदूरी (बढ़ोती) अर्थात् ८० रु० मिलेंगे। ... समयानुसार मजदूरी का भरोसा होता है। साथ ... मालिक को ... कभी ... नहीं देनी पड़ती। किन्तु इस व्यवस्था का दोष यह है कि कार्य का स्तर कभी ... इतना ऊँचा निश्चित कर लिया जाता है कि उसे प्राप्त करने में श्रमिक को कठिनाई होती है।

एक अन्य तरीका रोवन बढ़ोती प्रणाली (Rowan Premium System) है। इसमें प्रत्येक श्रमिक को समयानुसार कम से कम मजदूरी का आश्वासन दिया जाता है। इसके पश्चात् प्रत्येक कार्य को पूरा करने का एक मानक समय निश्चित किया जाता है और यदि वह इस निश्चित समय से कम में कार्य पूरा कर लेता है तो पूर्ण समय एवं बचाए हुए समय के समानुपात के अनुसार बोनस मिलता है। उदाहरणार्थ यदि कार्य १० घण्टे में होता है और काम ६ घण्टे में हो जाता है तो बचा हुआ समय ४ घण्टे है अर्थात् निश्चित समय के ४/१० के भाग के आधार पर बोनस दिया जायगा। इस प्रकार यदि समय की दर १० रु० प्रति घण्टा है तब "रोवन प्रणाली" के अनुसार बढ़ोती = $\frac{\text{बचाया हुआ समय}}{\text{निश्चित समय}}$ × लिया गया समय × दर अर्थात् $\frac{4}{10}$ × ६ × १० = २४ रु० अर्थात् श्रमिक को कुल मिलाकर ६ × १० + २४ = ८४ रु० मिलेंगे। इस प्रकार इस प्रणाली में हैल्से प्रणाली की अपेक्षा अधिक बोनस प्राप्त होता है। किन्तु रोवन प्रणाली द्वारा अधिक बढ़ोती तभी मिलती है जब बचाया हुआ समय निश्चित समय के ५० % से कम हो। ५० % पर रोवन तथा हैल्से प्रणाली दोनों में समान बोनस प्राप्त होता है और यदि बचाया हुआ समय निश्चित समय के ५०% से अधिक हो तो रोवन प्रणाली की अपेक्षा हैल्से प्रणाली में बढ़ोती अधिक प्राप्त होती है।

मजदूरी चुकाने की एक अन्य पद्धति भी है जिसे 'निश्चित-कार्य-मजदूरी' (Task Wages) कहते हैं। इसके अनुसार प्रत्येक श्रमिक को एक निश्चित कार्य दे दिया जाता है। इस कार्य को उसे एक निश्चित पद्धति के अनुसार तथा एक निश्चित

के सर्वेक्षण में एक निश्चित समय में पूरा करना होता है। विशेषज्ञ जितने समय की अनुमति देता है यदि उसी समय में कार्य पूरा कर लिया जाता है और निर्धारित स्तर के अनुसार ही होता है तो श्रमिक को अपने दैनिक वेतन के अतिरिक्त कुछ अन्य लाभ भी दिया जाता है। यह लाभ साधारणतया अनुमोदित समयानुसार वेतन का २०% से ५०% तक होता है। यदि कार्य अनुमोदित समय में पूरा नहीं होता या निर्धारित गुण के स्तर को नहीं पहुंचता तो श्रमिक को केवल उस दिन का वेतन ही मिलता है।

फिर एक 'टेलर प्रणाली (Taylor System) भी है जिसके अन्तर्गत प्रथम श्रेणी के श्रमिकों को शीघ्र पदोन्नति दी जाती है यदि वे अपना कार्य निर्धारित समय से पहिले कर लेते हैं। अतः कभी-कभी तो एक समयानुसार मूल मजदूरी तय कर दी जाती है जिसके साथ-साथ उत्पादन के अनुसार उपरान्त भी दी जाती है और कभी कभी अतिरिक्त कार्य के लिए बोनस भी दिया जाता है।

मजदूरी 'सर्पित मजदूरी माप' (Sliding Scale System of Wages) की प्रणाली से भी निश्चित की जा सकती है। इसके अन्तर्गत मजदूरी को उत्पादन वस्तुओं के मूल्य जीवन निर्वाह के व्यय तथा लाभ के अनुसार घटाया बढ़ाया जाता है। मालिक इस प्रणाली को तभी अच्छा समझते हैं जब उत्पादित वस्तु के मूल्य बढ़ते रहते हैं। परन्तु इस प्रणाली में काफी दोष हैं। विभिन्न कारणों से मूल्यों के परिवर्तित होने से गणना करना बहुत कठिन हो जाता है तथा श्रमिक से आशा नहीं की जा सकती कि वह बाजार के जोखिम में भाग लेगा। वर्द्धमान प्रतिफल (Increasing Returns) के नियम के अन्तर्गत मूल्य गिर सकते हैं किन्तु लाभ बढ़ जाते हैं। इसके अतिरिक्त मालिक तथा श्रमिक अपने लाभ के हेतु मूल्य में परिवर्तन लाने का प्रयास कर सकते हैं। कुछ मालिक अपने कर्मचारियों का पूर्ण सहयोग तथा सहानुभूति प्राप्त करने के लिये लाभ सहभाजन (Profit Sharing) योजना को अपना लेते हैं। कुछ स्थानों में मजदूरी कानून द्वारा नियमित होती है और कुछ उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी जाती है। कभी-कभी 'कार्यकुशलता अनुसार मजदूरी" (Efficiency Wages) की प्रणाली भी लागू की जाती है जिसमें श्रमिक की समस्त मजदूरी ही नहीं वरन् मूल मजदूरी भी कार्यकुशलता के अनुसार परिवर्तित होती रहती है अर्थात् एक व्यक्ति जितना अधिक उत्पादन करता है उसे उतनी ही कार्यानुसार अधिक मजदूरी मिलती है और जितना कम उत्पादन करता है उतनी ही कम कार्यानुसार मजदूरी मिलती है अथवा जैसा टेलर प्रणाली के अन्तर्गत होता है प्रथम श्रेणी के श्रमिकों को शीघ्र पदोन्नतियां दी जाती हैं। कार्यकुशलतानुसार मजदूरी मालिकों के लिए लाभप्रद है। यद्यपि मालिकों को अधिक उत्पादन के लिए अधिक मूल्य देना पड़ता है तथापि ऊंची लागत में बचत हो जाती है। किन्तु इसके अन्तर्गत कभी-कभी औसत योग्यता के श्रमिक को अपने निर्वाह के लिए पर्याप्त मजदूरी भी नहीं मिल पाती। अतः कार्यकुशलतानुसार मजदूरी प्रणाली न्यूनतम मजदूरी का आश्वासन देने के पश्चात् ही अपनाई जानी चाहिये।

संक्षिप्त रूप से मजदूरी देने की विभिन्न पद्धतियों का उपरोक्त उल्लेख इस लिये किया गया है क्योंकि यह पद्धतियाँ श्रमिकों की कुल आय उनकी कार्यकुशलता राष्ट्रीय लाभांश तथा आर्थिक कल्याण पर प्रभाव डालती हैं। सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि मजदूरी अदायगी की चालू पद्धति द्वारा परिमाण या उत्पादन के अनुसार जितनी अधिक मजदूरी की अदायगी का समजन (Adjustment) होता है उतना ही अधिक श्रमिक द्वारा उत्पादन होता है। इसलिये प्रो० पीगू के अनुसार "राष्ट्रीय लाभांश और उसके द्वारा आर्थिक कल्याण में तभी उन्नति हो सकती है जब तत्काल पारितोषिक का जितना भी सम्भव हो तत्काल उत्पादन से समजन कर दिया जाय। सामान्यतया प्रभावात्मक रूप से यह तभी हो सकता है जब कार्यों के अनुसार मजदूरी दी जाय जिस पर सामूहिक मोलभाव द्वारा नियन्त्रण किया जाता हो।"*

मजदूरी के सिद्धान्त —(Theories of Wages)

कदाचित भारत में मजदूरी की समस्याओं का विवेचन करने से पूर्व मजदूरी के सिद्धान्तों का भी उल्लेख करना असंगत नहीं होगा। हम मजदूरी की समस्याओं को दो भागों में बाँट सकते हैं अर्थात् सामान्य मजदूरी (General Wages) की समस्या तथा सापेक्ष मजदूरी (Relative Wages) की समस्या। सामान्य मजदूरी की समस्या यह है कि श्रमिकों का राष्ट्रीय लाभांश में से अपना भाग किस आधार पर मिलता है। सापेक्ष मजदूरी की समस्या यह है कि विभिन्न स्थानों तथा विभिन्न समयों पर एक श्रेणी तथा दूसरी श्रेणी के श्रमिकों में मजदूरी की दर किस आधार पर निर्धारित होती है। सामान्य मजदूरी को निर्धारित करने के विभिन्न तत्वों को "मजदूरी के सिद्धान्त" कहते हैं। हम संक्षेप में ही इन सिद्धान्तों का वर्णन करेंगे क्योंकि यह 'अर्थशास्त्र के सिद्धान्त' का विषय है जिसके अन्तर्गत इनका विस्तार से अध्ययन करना चाहिए।

मजदूरी का जीवन निर्वाह सिद्धान्त —(Subsistence Theory of Wages)

मजदूरी को निश्चित करने के लिए एक सिद्धान्त "मजदूरी का निर्वाह सिद्धान्त" है जिसका आविर्भाव (Origin) फिजियोक्रेटिक (Physiocratic) अर्थात् प्रकृतिवादी विचारधारा के फ्रांसीसी अर्थशास्त्रियों द्वारा हुआ और जो १८ वीं शताब्दी में साधारणतः मान्य था। जर्मनी का अर्थशास्त्री लासाले (Lassalle) इसे मजदूरी का "लौह सिद्धान्त (Iron Law of Wages)" कहता था। कार्लमार्क्स ने अपने 'शोषण सिद्धान्त' का आधार भी इसी सिद्धान्त को बनाया था। रिकार्डो का

* "The interest of the national dividend and through that of economic welfare will be best promoted when immediate reward is adjusted as closely as possible to immediate results and this can in general be done most effectively by piece wage scales controlled by collective bargaining."

—Pigou—*Economics of Welfare*

नाम भी इस सिद्धान्त से सम्बन्धित है यद्यपि वह इससे पूर्णतया सहमत नहीं था। इस सिद्धान्तानुसार मजदूरी श्रमिक और उसके परिवार के न्यूनतम जीवन-निर्वाह के स्तर अनुसार निर्धारित हो जाती है। यदि मजदूरी इस स्तर से अधिक बढ़ती है तो श्रमिकों में विवाह अधिक होने लगते हैं और परिवार के सदस्यों की संख्या बढ़ जाती है। स्वभावतः श्रमिकों की पूर्ति बढ़ती है और परिणामस्वरूप मजदूरी फिर घटकर जीवन निर्वाह के स्तर पर आ जाती है। दूसरी ओर यदि मजदूरी इस स्तर से नीचे गिरती है तो विवाह और सन्तान उत्पत्ति कम हो जाते हैं। कम पोषण से मृत्यु दर तेजी से बढ़ती है और अन्त में श्रम की पूर्ति घट जाती है और मजदूरी जीवन-निर्वाह के स्तर पर आ जाती है।

यह सिद्धान्त अत्यन्त निराशावादी है और माल्थस के जनसंख्या सिद्धान्त पर आधारित है। कभी-कभी यह भारत जैसे पिछड़े देश पर लागू हो जाता है जहाँ श्रमिक अति निर्धन हैं और शक्तिशाली पूँजीपतियों से अपनी माँग करने में असमर्थ रहते हैं और उन्हें मजदूरी जीवन निर्वाह के स्तर पर दी जाती है। किन्तु अन्य उन्नत देशों में श्रमिक अधिक मजदूरी पाते हैं। वहाँ मजदूरी में वृद्धि जीवन स्तर को ऊँचा करती है किन्तु जन्म दर को नहीं बढ़ाती अतः यह सिद्धान्त उन देशों पर लागू नहीं होता। यह सिद्धान्त विभिन्न रोजगार की विभिन्न मजदूरी के अन्तर को भी स्पष्ट नहीं करता जबकि जीवन-निर्वाह-स्तर केवल कुछ अपवादों को छोड़कर लगभग सभी श्रमिक वर्गों के लिए एक जैसा ही होता है। यह सिद्धान्त श्रमिकों की पूर्ति पर अधिक बल देता है तथा माँग के प्रभाव पर विचार नहीं करता जो मजदूरी के निर्धारण में समान महत्त्वपूर्ण है।

मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त — (The Standard of Living Theory of Wages)

१९ वीं शताब्दी के अन्त में कुछ लेखकों ने जीवन-निर्वाह सिद्धान्त का रूपान्तरण करके एक अन्य सिद्धान्त दिया जिसको "मजदूरी का जीवन-स्तर सिद्धान्त" कहा जा सकता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मजदूरी का निर्धारण जीवन-निर्वाह के स्तर से न होकर श्रमिकों के उस जीवन-स्तर से होता है जिसके वे अभ्यस्त हो जाते हैं। इस रूपान्तरित सिद्धान्त में कुछ सत्यता भी है क्योंकि श्रमिक अपने जीवन-स्तर से नीचे की मजदूरी स्वीकार नहीं करते। इसके अतिरिक्त ऊँचा जीवन-स्तर उनकी कार्यकुशलता को भी बढ़ा देता है अतः मजदूरी भी बढ़ जाती है। अनेक देशों में श्रमिक अपने संगठन के द्वारा अपनी पूर्ति पर रोक रखते हैं जिससे मजदूरी उनके जीवन-स्तर से नीचे न गिर जाय। तथापि जीवन-स्तर का मजदूरी पर केवल अप्रत्यक्ष प्रभाव होता है क्योंकि केवल जीवन-स्तर बढ़ाने से ही अधिक मजदूरी नहीं मिल सकती जब तक सीमान्त उत्पादकता भी न बढ़े। यह सिद्धान्त मजदूरी पर माँग के प्रभाव का भी विचार नहीं करता।

मजदूरी का शेषाधिकारी सिद्धान्त — (The Residual Claimant Theory of Wages)

अमरीकन अर्थशास्त्री वॉकर (Walker) ने एक अन्य सिद्धान्त "मजदूरी का शेषाधिकारी सिद्धान्त" के नाम से दिया है। इस सिद्धान्तानुसार उत्पादन के उपादानों (Factors of Production) को लगान, ब्याज तथा लाभ का भुगतान करने के पश्चात् जो कुछ बच जाता है वही मजदूरी के रूप में मिलता है। वॉकर के अनुसार लगान, ब्याज एवं लाभ निश्चित नियमों से निर्धारित होते हैं। परन्तु क्योंकि मजदूरी को निर्धारित करने का कोई विशेष नियम नहीं है अतः श्रमिकों को लगान, ब्याज तथा लाभ के भुगतान के पश्चात् जो बच जाता है वही मिलता है। अतः यदि अधिक कार्यकुशलता से राष्ट्रीय आय बढ़ जाए तभी मजदूरी भी बढ़ सकती है।

इस सिद्धान्त में कुछ स्पष्ट दोष हैं। यह इस बात को स्पष्ट नहीं करता कि श्रमिक संघों द्वारा मजदूरी कैसे बढ़ा ली जाती है। यह सिद्धान्त मजदूरी पर पूर्ति के प्रभाव का भी विचार नहीं करता। इसके अतिरिक्त मजदूरी उत्पादन से पूर्व ही तय कर दी जाती है अतः बचे भाग का अधिकारी श्रमिक नहीं वरन् उद्यमकर्ता होता है। और फिर यदि जैसा वॉकर कहते हैं लगान, ब्याज एवं लाभ की निश्चित नियमों द्वारा व्याख्या की जा सकती है तो कोई कारण नहीं है कि मजदूरी निर्धारण की भी व्याख्या उसी प्रकार न हो सके।

मजदूरी निधि सिद्धान्त —(Wages Fund Theory)

मजदूरी का एक अन्य सिद्धान्त "मजदूरी निधि सिद्धान्त" कहलाता है। इस सिद्धान्त का उल्लेख एडम स्मिथ ने भी किया था किन्तु यह जे॰ एस॰ मिल के नाम से सम्बन्धित है। मिल (Mill) के अनुसार मजदूरी जनसंख्या और पूंजी के अनुपात पर निर्भर करती है। यहाँ पर जनसंख्या से अर्थ श्रमिकों की उस संख्या से है जो मजदूरी पर कार्य करने को प्रस्तुत है और पूंजी से तात्पर्य केवल चल पूंजी से है और इसमें भी समस्त पूंजी से नहीं वरन् उस पूंजी से है जो श्रम के क्रय के लिए व्यय की जाती है। अतः इस सिद्धान्तानुसार मजदूरी दो बातों पर निर्भर करती है। प्रथम मजदूरी निधि अथवा चल पूंजी पर जो श्रम के क्रय के हेतु अलग रख दी जाती है। द्वितीय रोजगार ढूंढने वाले श्रमिकों की संख्या पर। अतः मजदूरी तब तक नहीं बढ़ सकती जब तक या तो मजदूरी निधि न बढ़े अथवा श्रमिकों की संख्या में कमी न हो। क्योंकि यह सिद्धान्त मजदूरी निधि को निश्चित मानता है अतः मजदूरी में वृद्धि केवल श्रमिकों की संख्या में कमी होने पर हो सकती है। इसलिए यदि श्रमिक अपनी दशा में उन्नति करना चाहते हैं तो उन्हें अपनी संख्या पर रोक लगानी होगी। इस प्रकार यदि श्रमिकों का कोई वर्ग अधिक मजदूरी प्राप्त करने में सफल हो जाता है तो उसका परिणाम यही होगा कि अन्य श्रमिकों को कम मजदूरी मिलेगी।

इस सिद्धान्त की आलोचना थोर्नटन जेवन्स और अन्य अर्थशास्त्रियों ने की है। जे० एस० मिल ने स्वयं दूसरे संस्करण में इस सिद्धान्त में संशोधन किया था। इस सिद्धान्त की सबसे अधिक आलोचना इस बात पर की गई है कि मजदूरी निधि केवल अल्पकालीन अवधि को छोड़कर निश्चित और पूर्व निर्धारित नहीं होती। निधि का विचार ही अवैज्ञानिक है। राष्ट्रीय लाभांश निधि न होकर एक प्रवाह है तथा मजदूरी की अदायगी किसी ऐसी निधि में से नहीं होती जो मजदूरी भुगतान के लिए अलग रखी हो, वरन् राष्ट्रीय लाभांश से की जाती है। यह सिद्धान्त विभिन्न व्यवसायों में विभिन्न मजदूरी के अन्तर को भी स्पष्ट नहीं करता। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त श्रमिकों की एकरूपता मान लेता है जो वास्तव में नहीं होती। वास्तविक जीवन में मजदूरी श्रमिक संघों की कार्यवाही के फलस्वरूप भी बढ़ जाती है और यह कहना असत्य है कि यदि एक उद्योग के श्रमिकों की मजदूरी बढ़ा दी जाय तो अन्य उद्योग के श्रमिकों को हानि होगी। इस सिद्धान्त का विवेचन अनेक आधुनिक अर्थशास्त्रियों जैसे टौसिग जीन्स आदि ने भी किया है यद्यपि यह वास्तविक जीवन में मजदूरी निर्धारित करने वाला सिद्धान्त नहीं माना जा सकता।

मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता सिद्धांत —

(Marginal Productivity Theory of Wages)

मजदूरी का अन्य महत्वपूर्ण सिद्धान्त "मजदूरी का सीमान्त उत्पादकता का सिद्धान्त" है। इस सिद्धान्तानुसार मालिक के लिए श्रम की एक इकाई की जो सीमान्त उत्पादकता होती है उसी के अनुसार मजदूरी निश्चित हो जाती है। एक स्वतन्त्र अर्थव्यवस्था में मजदूरी ऐसे श्रमिक के निवल (Net) उत्पादन के बराबर होती है जिस श्रमिक का रोजगार सीमान्त कहा जाता है। निवल उत्पादन से अर्थ कुल उत्पादन के मूल्य में उस अतिरिक्त निवल योग से है जो किसी भी एक उपादान को अतिरिक्त रूप से लगाने से होती है अर्थात् यह सीमान्त उत्पादकता पर निर्भर करती है। अन्य शब्दों में यदि हम यह मान लें कि वस्तुओं की पूर्ति तथा उत्पादित वस्तुओं का मूल्य स्थिर है तो श्रमिक की इकाई जितनी अधिक संख्या में एक उद्योग में लगायी जाएगी उतनी ही कम इकाइयों द्वारा घटती दर से उत्पादन होगा। मालिक उस समय तक श्रमिक की इकाई बढ़ाता जाएगा जब तक श्रमिक द्वारा निवल उत्पादन मजदूरी की दर से अधिक है। किन्तु एक स्थिति ऐसी भी आएगी जब श्रमिक की इकाई को रोजगार में लगाए जाने से जो उत्पादन में वृद्धि होगी वह श्रमिक को दी गई मजदूरी के बराबर होगी। श्रमिक की इस इकाई को सीमान्त श्रमिक कहा जाएगा तथा प्रत्येक अन्य श्रमिक की मजदूरी की दर इस श्रमिक को दी गई मजदूरी की दर पर निर्भर होगी। सरल शब्दों में मालिक उस समय तक श्रमिकों को रोजगार देता रहेगा जब तक श्रमिकों को दी गई मजदूरी उत्पादित वस्तुओं के मूल्य से कम रहती है। यदि मजदूरी सीमान्त निवल उत्पादन से अधिक है तो मालिक श्रमिकों के रोजगार में कमी कर देगा और यदि मजदूरी

सीमान्त निवल उत्पादन से कम है तो वह अधिक श्रमिकों को रोजगार देकर अपने लाभ को बढ़ाएगा। अन्य शब्दों में मालिक श्रमिक को सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी उसको नहीं देगा। यह भी नहीं समझना चाहिए कि सीमान्त श्रमिक न्यूनतम कार्यकुशलता का श्रमिक होता है वरन् वह भी साधारण कार्यकुशलता का श्रमिक होता है। वह इस अर्थ में सीमान्त है कि वर्तमान मूल्य तथा मजदूरी को देखते हुए उसको रोजगार देने के पश्चात् मालिक के लिए श्रम की पूर्ति पूर्ण हो जाती है।

यह सिद्धान्त भी कई आधारों पर आलोचित हुआ है। यह श्रमिकों की पूर्ति पर जिन बातों का प्रभाव पड़ता है उन पर विचार नहीं करता। मजदूरी केवल एक उपादान के लिए दिया गया मूल्य ही नहीं है वरन् यह एक श्रमिक की आय भी है तथा इसका प्रभाव श्रमिक की कार्यकुशलता पर पड़ता है। मजदूरी केवल श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता के बराबर ही नहीं होनी चाहिए बल्कि उसके जीवनस्तर को बनाए रखने के लिए यथेष्ट होनी चाहिए। यदि मजदूरी श्रमिकों के जीवन-स्तर की दृष्टि से उचित नहीं है तो या तो जीवन-स्तर गिर जाएगा अथवा उनकी कार्यकुशलता घट जाएगी या जन्म दर में कमी हो जाएगी। ऐसी परिस्थिति में श्रम की पूर्ति कम होगी और मजदूरी बढ़ जाएगी। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त पूर्ण प्रतियोगिता की परिस्थितियां मान लेता है यद्यपि वास्तविक जीवन में कई बार श्रमिक परस्पर संगठित होकर श्रमिक संघों के द्वारा श्रम की पूर्ति पर नियन्त्रण कर अपनी मजदूरी बढ़ा लेते हैं। वास्तविक जीवन में मजदूरी को निश्चित करने में मानवीय धारणायें भी कार्य करती हैं। इसके अतिरिक्त सीमान्त उत्पादकता सिद्धान्त यह मानकर चलता है कि वह अनुपात जिसमें उत्पादन के विभिन्न उपादान रोजगार पर लगाए जाते हैं स्वतन्त्रतापूर्वक बदले जा सकते हैं। अतः यदि कम में अचल पूंजी लगी हो तो यह सिद्धान्त लागू नहीं होगा यद्यपि लम्बे समय में यह बात सम्भव नहीं है। यह सिद्धांत यह भी मान लेता है कि किसी एक उपादान में परिवर्तन किया जा सकता है जबकि अन्य उपादान एक से रहेंगे परन्तु वास्तविक जीवन में ऐसा नहीं होता क्योंकि श्रमिक की एक इकाई में परिवर्तन करने के साथ ही अन्य उपादानों को भी घटाना बढ़ाना आवश्यक हो जाता है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त श्रम की इकाइयों (श्रमिकों) की कार्यकुशलता समान मान लेता है क्योंकि यदि श्रमिक एक जैसे नहीं होंगे तो श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता भी नहीं बताई जा सकती। परन्तु एक अर्थ में एक ही व्यापार में लगे विभिन्न कार्यकुशलता के श्रमिक एक दूसरे के प्रतियोगी होते हैं। फिर यह मानना सर्वथा सत्य नहीं है कि प्रत्येक औद्योगिक इकाई सर्वोत्तम लाभ प्राप्त करने के लिए कार्य करती है।

इस प्रकार इस सीमान्त उत्पादकता के सिद्धान्त के विरुद्ध विभिन्न आपत्तियां की गई हैं किन्तु उनमें से अधिकतर केवल काल्पनिक हैं। इस सिद्धांत की मुख्य आलोचना यह है कि यह सिद्धांत मजदूरी निर्धारित करने में श्रमिकों की पूर्ति तथा

उनके जीवन स्तर का विचार नहीं करता तथा पूर्ण प्रतियोगिता की स्थिति को मान लेता है जो सर्वत्र नहीं पाई जाती।

टौसिग का मजदूरी सिद्धान्त — (Taussig's Theory of Wages)

प्रो० टौसिग ने सीमांत उत्पादकता के सिद्धान्त की आलोचना करते हुए अपना सिद्धांत दी दिया है कि मजदूरी श्रमिक के उत्पादन की सीमान्त "मितीकाटा" (Marginal Discounted Product of Labour) को बताती है। उनका विचार है कि श्रमिक को सीमान्त उत्पादकता की पूर्ण राशि नहीं मिल सकती क्योंकि उत्पादन में समय लगता है और श्रमिक का अन्तिम पूर्ण उत्पादन तुरन्त प्राप्त नहीं किया जा सकता। किन्तु इस समय में श्रमिकों को निर्वाह के लिए सहायता मिलनी चाहिए। यह सहायता पूंजीपति मालिक द्वारा दी जाती है। मालिक श्रमिक को आशान्वित (Expected) सीमांत उत्पादकता के अनुसार पूर्ण राशि नहीं देता। वह जो अग्रिम राशि देने में जोखिम उठाता है उसकी हानि-पूर्ति के लिए वह अन्तिम उत्पत्ति में से कुछ प्रतिशत राशि की कटौती कर लेता है। टौसिग के कथनानुसार यह कटौती ब्याज की चालू दर पर होती है। इस प्रकार जैसा कि ऊपर बताया जा चुका है मजदूरी श्रमिक के कुल उत्पादन में से मितीकाटा (Discounts) की राशि घटाकर होती है। अतः यह सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि श्रमिक तथा पूंजी के सहयोग के कारण तथा संयुक्त उत्पादन होता है तथा इन दोनों के योगदान को पृथक्-पृथक् करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि श्रमिक को संयुक्त उत्पादन के बेचने से पूर्व ही अदायगी करनी पड़ती है। उसको यह भुगतान चालू ब्याज की दर पर कुछ राशि काटकर किया जाता है। अतः मजदूरी श्रमिक के उत्पादन के सीमांत मितीकाटा का प्रतिरूप है।

टौसिग का यह सिद्धान्त बहुत उलझा हुआ है और "वास्तविक जीवन की समस्या से दूर, अव्यावहारिक तथा अस्पष्ट" है। इसके अतिरिक्त यह सिद्धान्त श्रम की पूर्ति का ध्यान भी नहीं रखता। यह श्रम की पूर्ति को निश्चित मान लेता है और तब सीमांत उत्पादन पर विचार करता है। अतः यह सिद्धांत भी मजदूरी का शेषाधिकारी सिद्धान्त (Residual Claimant Theory) जैसा ही है क्योंकि यह यही बताता है कि मजदूरी समस्त उत्पादन में से उत्पादन के अन्य उपादानों के लिए भुगतान को घटाकर बची हुई शेष राशि है। इस प्रकार इस सिद्धान्त में भी शेषाधिकारी सिद्धान्त के सभी दोष पाये जाते हैं।

मजदूरी का मांग तथा पूर्ति सिद्धान्त — (Demand and Supply Theory of Wages)

जैसा डा० मार्शल ने बताया है वास्तविक जीवन में मजदूरी विभिन्न देशों की विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार श्रमिक की मांग तथा पूर्ति दोनों के ही द्वारा निर्धारित होती है। मांग पक्ष में मालिक श्रमिक को सीमान्त उत्पादकता के अनुसार मजदूरी देता है। सीमान्त उत्पादकता श्रमिक की श्रम इकाई की उत्पादकता को

कहते हैं जिस इकाई को मालिक द्वारा निश्चित मजदूरी दर पर तथा उत्पादन के तत्कालीन मूल्य पर रोजगार में लगाना लाभदायक होता है। यह स्वतन्त्र प्रतियोगिता के अन्तर्गत निर्धारित मजदूरी की उच्चतम सीमा है। पूर्ति पक्ष में श्रमिक एक विशेष जीवन-स्तर पर अपने तथा अपने परिवार के जीवन-निर्वाह के लिए पर्याप्त राशि से कम मजदूरी स्वीकार नहीं करते। यह विशेष जीवन-स्तर श्रमिकों की संगठन शक्ति एवं मालिकों से सौदाकारी शक्ति और देश में श्रमिकों की संख्या पर निर्भर करता है। यदि पूर्ति पर कोई रोक न हों तथा श्रमिक असंगठित हों तो मजदूरी निर्वाह-स्तर तक, या न्यूनतम सीमा तक गिर जाती है। जहां भी श्रमिक संगठित हैं अथवा उनकी पूर्ति सीमित है वहां जीवन स्तर उच्चतम स्तर पर निश्चित किया जा सकता है। अतः मालिक सीमान्त उत्पादकता से अधिक मजदूरी न तो दे सकते हैं और न ही देते हैं। दूसरी ओर श्रमिक अपने वर्तमान जीवन-स्तर को बनाये रखने के हेतु आवश्यक मजदूरी से कभी कम स्वीकार नहीं करते। इन दोनों सीमाओं के मध्य में श्रमिक की मांग तथा पूर्ति एवं प्रत्येक पक्ष की तुलनात्मक शक्ति के अनुसार मजदूरी तय होती है। यदि श्रमिक की अधिक मांग है या श्रमिक पूर्ण रूप से संगठित हैं तो मजदूरी बढ़ जाती है और यदि उनकी पूर्ति अधिक है और श्रमिक संगठित नहीं है तो मजदूरी गिर जाती है। पिछले अध्याय में जैसा कि बताया जा चुका है श्रम की विशेषताएं श्रमिकों की शक्ति पर बहुत प्रभाव डालता है और मालिकों की अपेक्षा उनकी शक्ति कम हो जाती है। श्रम की मांग तथा पूर्ति की दशाओं पर भी इन विशेषताओं का समुचित प्रभाव पड़ता है।

मजदूरी के सिद्धान्तों का उपरोक्त संक्षिप्त वर्णन देने का तात्पर्य इस बात की ओर ध्यान आकर्षित कराना है कि अभी तक मजदूरी का कोई पूर्ण और स्पष्ट सिद्धान्त नहीं बन पाया है। इस कारण किसी भी देश में मजदूरी नीति निर्धारण में अनेक कठिनाइयां आती हैं। श्रमिकों का अब उत्पादन का एक उपादान मात्र नहीं समझा जाता और इस बात को नहीं माना जाता कि उनका मूल्य भी मांग और पूर्ति की शक्तियों द्वारा निर्धारित किया जा सकता है। संघर्ष की प्रवृत्ति के स्थान पर अब साझेदारी की प्रवृत्ति का महत्व बढ़ता जा रहा है। श्रमिक की उत्पादकता श्रमिकों की सौदाकारी की क्षमता सरकार के विधान तथा सरकार का हस्तक्षेप आर्थिक विकास की तीव्रता जीवन-निर्वाह व्यय उद्योग की भुगतान क्षमता सामाजिक न्याय की आवश्यकताएं इत्यादि इन सभी ने देश में मजदूरी नीति निर्धारण पर प्रभाव डाला है। भारत जैसे देश में जहां आर्थिक विकास हो रहा है उचित और उचित मजदूरी नीति का निर्धारण भी एक गम्भीर समस्या है।

भारत में मजदूरी समस्या का महत्व —

मजदूरी की समस्या इतनी महत्वपूर्ण है कि अनेक देशों के विशेषज्ञ व्यक्तियों का ध्यान सदैव इसकी ओर आकर्षित रहा है। यह समस्या भारत में वर्तमान समय में अधिक जटिल रूप धारण कर गई है और इसका शीघ्र समाधान होना

चाहिए। इस सत्य को भी कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि मजदूरी वह धुरी है जिस पर अधिकतम श्रम समस्याएं घूमती हैं।* औद्योगिक संघर्षों का मजदूरी ही मुख्य कारण है। यह श्रमिक की आय का मुख्य स्रोत है। उसका तथा उसके परिवार का जीवन-निर्वाह उसकी प्राप्त मजदूरी पर निर्भर करता है। अन्य स्रोतों से कोई आय यदि होती भी है तो अत्यन्त सीमित होती है। अतः मजदूरी श्रमिक के लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। श्रमिक का कल्याण तथा कार्यकुशलता उसकी आय की राशि पर निर्भर करती है। अगर खेतीहर श्रमिक को भी ले लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि जनसंख्या का अधिकांश भाग श्रमिकों का है। अतः समाज का कल्याण श्रमिक के कल्याण से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। यह ही मजदूरी की समस्या का सबसे अधिक महत्व है।

यह भी उल्लेखनीय है कि उस समय मजदूरी की समस्या इतनी गम्भीर नहीं थी जब अधिकांश श्रमिक गांवों से कृषि ऋतु के अतिरिक्त खाली समय में अपनी आय बढ़ाने औद्योगिक क्षेत्रों में आ जाते थे और कम मजदूरी स्वीकार कर लेते थे। अधिकतर श्रमिक अपने परिवार को गांव में ही छोड़ आते थे जहां इनका निर्वाह कृषि-धन्धे से होता था। किन्तु वर्तमान समय में भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ने से कृषि धन्धा इतना लाभप्रद नहीं रहा है और औद्योगिक श्रमिक जो अब तक स्थायी नहीं थे अधिकाधिक स्थायी होते जा रहे हैं। संयुक्त परिवार व्यवस्था भी द्रुत गति से टूटती जा रही है तथा अब श्रमिक अधिकतर अपनी ही आय पर निर्भर है। अतः मजदूरी की समस्या और अधिक महत्वपूर्ण हो गई है।

इसके अतिरिक्त श्रमिक साधारणतया अज्ञानी तथा अशिक्षित होते हैं और अधिकांश अपने अधिकार तथा कर्तव्य समझने में असमर्थ होते हैं। श्रम की विशेष बातों के कारण मालिकों की अपेक्षा श्रमिकों की सौदाकारी शक्ति कम होती है। श्रमिकों का संगठन अभी भी बहुत दुर्बल है। इसका परिणाम यह है कि मालिकों द्वारा श्रमिकों का सरलता से शोषण होता है तथा उनको अत्यन्त कम मजदूरी दी जाती है। अतः मानवीय दृष्टिकोण से भी मजदूरी की समस्या का शीघ्र समाधान आवश्यक है। सरकार के लिए भी मजदूरी समस्या महत्वपूर्ण है क्योंकि यह देश के समस्त वर्गों के लिए न्याय का मापदण्ड है। मालिकों के दृष्टिकोण से भी मजदूरी महत्वपूर्ण है क्योंकि मजदूरी उत्पादन मूल्य का एक मुख्य अवयव (Component) है।

मजदूरी समस्या का महत्व इस तथ्य में भी है कि अधिकतर कारखानों में पर्याप्त मजदूरी की दरें एवं अवैज्ञानिक अन्तर पाए जाते हैं तथा विभिन्न मजदूरी की दरों में अन्तर निर्धारित करने के हेतु भी किसी योजना का अभाव है। प्रत्येक कारखाने ने स्वयं कार्य का विभाजन कर लिया है और विभिन्न श्रेणियां बनाली हैं। उन्होंने इन श्रेणियों की शब्दावली का भी स्वयं निर्माण किया है। विभिन्न कर्मचारी

---

* Wages form the pivot round which most labour problems revolve.

में विभिन्न विनिर्माण प्रक्रियाएं (Manufacturing Processes) हैं तथा विभिन्न प्रकार की मशीनें प्रयोग में लाई जाती हैं। इन बातों ने मजदूरी के "समानीकरण" (Standardization) की समस्या को अधिक जटिल कर दिया है। ये अन्तर एक उद्योग से दूसरे उद्योग में यहाँ तक कि एक कारखाने से दूसरे कारखाने में भी श्रमिक प्रवासिता का कारण हो जाते हैं और कभी-कभी ऐसे अन्तर औद्योगिक अशान्ति और झगड़ों का कारण बन जाते हैं, क्योंकि कम मजदूरी देने वाले उद्योगों के श्रमिक अधिक मजदूरी माँगते हैं जो अन्य उद्योगों में पाई जाती है। वर्तमान समय में श्रमिक की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि मालिकों में श्रमिक का शोषण करने की प्रवृत्ति अधिक है। परन्तु उचित मजदूरी नीति निर्धारित करने में अनेक समस्याएं आ जाती हैं। उदाहरणतया जीवन निर्वाह व्यय परिवार का विस्तार (आकार) उद्योग की भुगतान क्षमता श्रम की उत्पादकता आदि आदि। समस्या का समाधान आर्थिक ही नहीं वरन् सामाजिक दृष्टिकोण से होना चाहिए जिससे समाज में आय और धन की असमानता में कमी हो। अतः मजदूरी की समस्या महत्वपूर्ण तथा गूढ़ समस्याओं में से एक है और इसका शीघ्र ही समाधान होना चाहिए।

भारत में मजदूरी की दरों का अध्ययन —

भारत में अब तक मजदूरी तथा निर्वाह व्यय के तुलनात्मक आँकड़ों के अभाव में मजदूरी का अध्ययन करने में कठिनाई होती थी। शाही श्रम आयोग ने मजदूरी के विषय में सूचना एकत्रित करने के लिए कानून बनाने तथा श्रम सम्बन्धी आँकड़ों में सुधार करने की सिफारिश की थी। परन्तु आसाम तथा चाय के बागान के अतिरिक्त जहाँ बागों के प्रमुख निरीक्षक एवं प्रवासी श्रमिक नियंत्रक (Controller of Emigrant Labour) की वार्षिक रिपोर्टों से उपयोगी सूचना मिलती है अन्य कहीं भी अब तक सारे देश के लिए मजदूरी के आँकड़े एकत्रित करने का समान स्तर से यथेष्ट प्रबन्ध नहीं है। फिर भी पिछले कुछ वर्षों में मजदूरी से सम्बन्धित आँकड़े एकत्रित करने के विषय में कुछ उपयोगी काम हुआ है। १९४२ तक आँकड़ों का एकत्रित करना अधिकतर प्रान्तीय क्षेत्रों तक सीमित था और मजदूरी की जाँच केवल कुछ विशेष उद्योगों में की गई थी किन्तु बम्बई राज्य में तथा कुछ सीमा तक बिहार में व्यापक सर्वेक्षण भी किए गये। प्रथम बार श्रम अनुसंधान समिति द्वारा मजदूरी के व्यापक आँकड़े एकत्रित किये गये थे। इसके पश्चात् तदर्थ (Ad hoc) सर्वेक्षण के लिए मजदूरी की गणना भी की थी। इसके अतिरिक्त विभिन्न राज्यों में विभिन्न श्रम जाँच समितियों ने उपयोगी सूचनाएं दी हैं। इस सम्बन्ध में स्थिति शाही श्रम आयोग के विचार समय नहीं है। इस विषय में स्थिति और अधिक सुधरने की सम्भावना है क्योंकि औद्योगिक आँकड़े अधिनियम (Industrial Statistics Act) की श्रम सम्बन्धी धाराओं को पूर्णतया लागू किया जा रहा है। अतः मासिक मजदूरी के विषय पर कुछ विश्वसनीय आँकड़े मजदूरी गणना से प्राप्त होने

पर प्राप्त हो जायेंगे। यह मजदूरी गणना ४४ मुख्य उद्योगों में हो रही है, जिनमें भारत के ८५% श्रमिक कारखानों के ७६ प्रतिशत श्रमिक और बागान के लगभग समस्त श्रमिक आ जाते हैं। मजदूरी गणना द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की सिफारिशों के अनुसार हो रही है और इसका प्रारम्भिक कार्य पूरा हो चुका है।

भारत के औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी दर में सदैव कम रही है। १९२१ में बम्बई के श्रमिक परिवार बजटों की श्री फिडले शिराज द्वारा की गई जांच से पता चलता है कि औद्योगिक श्रमिक यद्यपि अकाल संहिता (Famine Code) में निर्धारित अधिकतम अनाज का तो उपभोग करते थे किन्तु उनका आहार बम्बई जेल संहिता के अन्तर्गत कैदियों को दिये गये आहार से कम था। १९३४ में बम्बई सरकार द्वारा की गई मजदूरी गणना से यह विदित हुआ कि सूती कपड़ा मिलों में श्रमिकों की मासिक आय इस प्रकार थी : शोलापुर में १८% श्रमिकों की १ शि० से ९ शि० तक, शोलापुर में १२% श्रमिकों की ७ ३ शि० से १५ शि० तक बम्बई शहर में २०% श्रमिकों की ७२ ५ शि० से कम तथा १२% श्रमिकों की २२ शि० से ३० शि० तक। बम्बई सरकार के श्रम विभाग द्वारा की गई जांच के अनुसार भी संगठित उद्योगों में श्रमिकों के प्रत्येक परिवार की औसतन आय युद्ध से पूर्व बम्बई में ५० रुपए, अहमदाबाद में ४६ रुपए, शोलापुर में ४० रुपए तथा मद्रास में १७ रुपए प्रति माह थी। असंगठित उद्योगों में आय २ रुपए से २७ रु० प्रति माह तक थी। डा० वी० के० आर० वी० राव द्वारा १९३१–३२ की राष्ट्रीय आय की जांच के अनुसार औसत वार्षिक मजदूरी बिहार तथा उड़ीसा में ४५३ रु० पंजाब और उत्तरी पश्चिमी सीमान्त प्रान्त में ४१८ रु० मद्रास में ३०५ रु० बम्बई में २६५ रु० बंगाल में १९३ रु० मध्य प्रदेश में १४७ रु० उत्तर प्रदेश में १२९ रु० एवं असम में ६१ रुपए थी। रायल श्रम आयोग ने श्रमिक क्षति पूर्ति अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले मामलों के आधार पर मजदूरी के आंकड़े एकत्रित किए थे। इसके अनुसार भी विभिन्न प्रान्तों में कम मजदूरी दी जाती थी। आयोग ने यह भी बताया कि जहां तक अकुशल श्रमिकों का सम्बन्ध है वे औसत संख्या के परिवार का पालन तब तक नहीं कर सकते जब तक परिवार में एक से अधिक मजदूरी कमाने वाले न हों।

इस प्रकार युद्ध से पहिले मजदूरी बहुत कम थी और यद्यपि युद्ध काल में तथा उसके पश्चात् मजदूरी स्तर में अधिकतर वृद्धि हुई है किन्तु मूल्य वृद्धि को विचार में रखते हुए यह वृद्धि अधिक प्रतीत नहीं होती। श्री वी० वी० गिरी ने भी अपनी अंग्रेजी की पुस्तक "भारतीय उद्योग की श्रम समस्याएं" में इंगित किया है "यद्यपि औद्योगिक अधिकरणों एवं विवाचकों के प्रयत्नों के फलस्वरूप तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के लागू होने के पश्चात् बहुत से उद्योगों में गत वर्षों में मजदूरी की दर में वृद्धि हुई है तथापि इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि अब भी श्रमिकों की अधिक संख्या केवल निर्वाह मात्र मजदूरी प्राप्त कर रही है

और कई स्थानों पर असल मजदूरी या तो वैसी ही है जैसी युद्ध से पूर्व था या कहीं कहीं उससे भी कम है। असल मजदूरी के सामान्य स्तर को ऊंचा करने के हेतु जहां कहीं मजदूरी अब भी कम है और श्रमिक तथा उसके परिवार का निर्वाह नहीं हो पाता वहां मजदूरी बढ़ाने का समठित रूप से प्रयास किया जाना चाहिए।

फैक्टरी उद्योगों में मजदूरी एवं आय —

श्रमिकों की समस्त आय मूल मजदूरी महंगाई भत्ता तथा बोनस को मिला कर होती है। महंगाई भत्ता समान नहीं मिलता क्योंकि इसका सम्बन्ध विभिन्न औद्योगिक केन्द्रों के निर्वाह लागत सूचकांकों से है। इसी प्रकार बोनस समान नहीं है क्योंकि यह प्रत्येक उद्योग द्वारा घोषित लाभ पर निर्भर करता है। मूल मजदूरी की दरें विभिन्न विवाचकों तथा औद्योगिक अधिकरणों के पंचाट (Awards) द्वारा निश्चित की गयी है तथा न्यूनतम मजदूरी की दर १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत निर्धारित की गई हैं। त्रिदलीय मजदूरी बोर्डों की स्थापना भी कुछ उद्योगों के लिए की गई है जिससे मालिक व मजदूर स्वयं मिलकर मजदूरी निर्धारित कर सकें। कई उद्योगों के सम्बन्ध में इन मजदूरी बोर्डों की रिपोर्ट प्रकाशित भी हो चुकी है और उनकी सिफारिशों को लागू भी किया जा चुका है। १९५९ में ब्यौरा देने वाले कारखानों में श्रमिकों की औसत प्रतिदिन संख्या १८ १० ६६६ थी तथा १९५८ में इसकी संख्या १७ ८० ९१८ थी। १९५९ में दी गई कुल मजदूरी लगभग २९१ करोड़ रुपए थी तथा १९५८ में लगभग २६० करोड़ रुपए थी। निम्नलिखित तालिका रेलवे कारखानों में लगे श्रमिकों को छोड़कर अन्य ब्यौरा देने वाली फैक्टरियों के उन कर्मचारियों की जो २०० रु० से कम वेतन पाते हैं औसत वार्षिक आय को प्रकट करती है —

राज्य	कुल आय (१००० रुपयों में)			प्रत्येक श्रमिक की औसत वार्षिक आय (रु० में)		
	१९५७	१९५८	१९५९	१९५७	१९५८	१९५९
१	२	३	४	५	६	७
आंध्र	८१,८११	७८,६६८	८६,३६७	१,०१०·८	७०८ १	८८५ १
असम	५० १०७	५१ १८७	४७ ३६४	१ ११३·१	१ २२१ ०	१,१०७ १
बिहार	१ ७३ ४४८	१ ६७ ८८३	१ ७८ २०२	१,२९९ २	१ २८१ २	१ ३३८·१
बम्बई	११,११ १४७	११,१५,८११	११ ६६ ०१५	१ ४५२ ६	१ ४२८ ०	१ ४८६·८
केरल	४८ १८७	..	५८ ०५	८०५ ०		१ ६६५·२
मध्य प्रदेश	६० ०८०	६६,८७२	६६,०५५	१ ११८ ७	१ २१० १	१ २११·२
बंगाल	२,६० १११			१७८ ९		
मैसूर	१४८१०			[illegible]		

१	२	३	४	५	६	७
उड़ीसा	१७ ०८८	१८ २४४	२१ ७०७	६५६·८	८८१·०	१ ७१ ४
पंजाब	६ ९९	७१ १०५	४१ ११५	६१५·१	१ २१२·०	७७६·२
राजस्थान	१५,७७४	२० ०४५	१७ ६०४	६ ७१	६४४·१	८१२·१
उत्तर प्रदेश	२ ५६,१८१	२ ५६,०५४	२ २६० ७	१ ०७७·५	१ २११·४	१ ११४·०
पश्चिमी बंगाल	६,६७ १९८	६ ५६,६६२	६ ५६ ६५८	१ २०१·६	१ १६८·६	१ २२५·६
अण्डमान एवं निकोबार द्वीप	१ ८४५	२ ३२६	१ ६८१	६६७·१	१ ०१७·४	६८२·२
देहली	७२ २९८	९८ ९३६	७६,१२०	१ ४२१·४	१ १२६·७	१ १४५·४
त्रिपुरा	५५५	५६२	५८४	६३१	१ १४०·१	१ १४५·१
कुल प्रदेश	२८ ६१ ६७१	२६,०५ ४२२	२६,१६,१४६	१ २११·६	१ २६५·२	१ १०६·६

ब्यौरा देने वाले कारखानों में ऐसे कर्मचारियों की जो ४०० रु० से कम वेतन पाते हैं औसत वार्षिक आय निम्नलिखित थी —

	कुल आय (१००० रु० में)		प्रत्येक श्रमिक की औसत वार्षिक आय (रु० में)		प्रत्येक श्रमिक की औसत दैनिक आय (रु० में)	
प्रदेश	१९५८	१९५९	१९५८	१९५९	१९५८	१९५९

निम्न तालिका सूती कपड़ा मिलों में न्यूनतम मूल मजदूरी प्रतिमास तथा औसत महँगाई भत्ता के विषय में बताती है —

केन्द्र या प्रदेश	न्यूनतम मूल मजदूरी (रु० में)	महँगाई भत्ता (रु० में) अक्तूबर १९६१	औसत १९६०
बम्बई	१८·००	९३·७०	८९·२५
अहमदाबाद	१६·०	८८·४६	८७·८१
शोलापुर	१२·०	६६·८२	६०·२८
बड़ौदा	१४·००	७९·६१	७९·००
इन्दौर	१६·००	६४·६६	६३·७०
नागपुर	१२·००	६४·८६	६६·८६
मद्रास	१४·००	५६·९७	६८·३३
कानपुर	१६·००	—	९९·६६
पश्चिमी बंगाल	१४·१७	१८·८९	३२·२०

इसके अतिरिक्त विभिन्न केन्द्रों में उद्योगों की कुछ इकाइयों में वार्षिक लाभ बोनस देने की पद्धति प्रचलित है। यह बोनस मूल आय के आधार पर अनुमानित किया जाता है किन्तु इसके लिए कुछ शर्तें हैं जैसे उपस्थिति और कानूनी हड़तालों में भाग न लेना आदि आदि।

मजदूरी तथा आय के आँकड़े मजदूरी भुगतान अधिनियम के अन्तर्गत प्रस्तुत किये गये ब्योरों से प्राप्त हैं। *सभी प्रदेशों में सूती वस्त्र उद्योग में प्रति श्रमिक* वार्षिक आय १९५५ में १,४७७·४ रु०, १९५८ में १,४१५·८ रु०, १९५७ में १,३६१·२ रु० तथा १९५६ में १,३१० रु० थी। १९५९ में यह वार्षिक आय देहली में १,६७१ रु०, बम्बई में १,४९६ रु०, मद्रास में १,११२ रु०, उत्तर प्रदेश में १,०११ रु०, मध्य प्रदेश में ७०६ रु० तथा पश्चिमी बंगाल में ८२४ रुपए थी। सूती कपड़ा उद्योग के लिए जो मार्च १९५७ में मजदूरी बोर्ड बना था उसकी रिपोर्ट दिसम्बर १९५९ में प्रकाशित हुई। इस बोर्ड ने यह सिफारिश की है कि ८ रु० प्रति माह प्रति श्रमिक औसत दर के हिसाब से उन सभी श्रमिकों के वेतन में वृद्धि कर देनी चाहिए जो श्रमिक वर्ग (I) की मिलों में कार्य करते हैं (ऐसी वर्ग (I) की मिलें निम्नलिखित स्थानों की मिलें हैं: बम्बई नगर तथा द्वीप, अहमदाबाद, बड़ौदा, बिलीमोरा, नवसारी, नाडियाद, सूरत, कलवाड़ा, हिसार, देहली, मोदीनगर, कलकत्ता नगर, मद्रास राज्य तथा बंगलौर)। यह ८ रु० की वृद्धि पहली जनवरी १९६० से किए जाने की सिफारिश की गई है तथा पहली जनवरी १९६२ से २ रु० प्रति श्रमिक और समानरूप से मजदूरी में वृद्धि करने की सिफारिश है। अन्य स्थानों के (वर्ग II की मिलें) श्रमिकों के लिए इसी प्रकार ६ रु० प्रति

माह की वेतन में वृद्धि पहिली जनवरी १९६ से और २ रु० प्रति माह की वृद्धि पहिली जनवरी १९६२ से दी जाने की सिफारिश है। महंगाई भत्ता समस्त केन्द्रों में निर्वाह व्यय सूचकांक से सम्बद्ध करने की सिफारिश है। सरकार ने इन सिफारिशों को मान लिया है और अधिकतर सूती कपड़ा मिलों में यह लागू भी हो चुकी है। (नवम्बर १९६१ तक ऐसी मिलों की संख्या जहाँ वेतन वृद्धि की सिफारिशें लागू कर दी गई हैं ४१६ में से ३९३ थी)। केन्द्रीय श्रम ब्यूरो के एक अध्ययन के अनुसार १९५१ से १९५९ की अवधि में सूती वस्त्र उद्योग में श्रमिकों की मजदूरी में जो वृद्धि हुई है वह इस प्रकार है बम्बई में ३४ प्रतिशत अहमदाबाद तथा बड़ौदा में १८ प्रतिशत इन्दौर में २० प्रतिशत नागपुर में ९ प्रतिशत मद्रास में २५ प्रतिशत कानपुर में ४ प्रतिशत तथा पश्चिमी बंगाल में २१ प्रतिशत। इसके पश्चात् सूती कपड़ा मजदूरी बोर्ड की सिफारिशों के परिणामस्वरूप आठ लाख श्रमिकों के वेतन में ८६ प्रतिशत से २१ प्रतिशत तक वृद्धि हुई है।

जूट वस्त्र उद्योग में प्रति श्रमिक वार्षिक आय सभी राज्यों में १९५६ में १०५७.३ रु० १९५८ में १०६२.२ रु० १९५७ में १०७७.४ रु० तथा १९५९ में १०९१ रु० थी। १९५९ में विभिन्न राज्यों में आय निम्न प्रकार थी। पश्चिमी बंगाल १०४६ रु० आसाम ९२३ रु० बिहार ९०१ रु० तथा उत्तर प्रदेश ८७४ रु०। प्रति माह मूल मजदूरी पश्चिमी बंगाल में १४/१०/६ रु० आसाम में २१ रु० बिहार में २४/६/० रु० तथा कानपुर में १२ रु० थी। जूट बोर्ड के लिए जो केन्द्रीय मजदूरी बोर्ड अगस्त १९६० में स्थापित किया गया था उसने अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत करने तक यह सिफारिश की है कि जूट मिलों के समस्त श्रमिकों को अंतरिम (Interim) सहायता के रूप में पहिली अक्तूबर १९६० से ३१ दिसम्बर १९६० तक की अवधि में २.७२ रु० प्रति मास प्रति श्रमिक की दर से वृद्धि की जाए तथा पहिली जनवरी १९६१ से १.७२ रु० की दर से सहायता दी जाय। कटिहार की जूट मिलों के लिए इस सहायता की दर पहिली सितम्बर १९६१ से १.७२ रु० होनी चाहिए। सरकार ने जनवरी १९६१ में इन सिफारिशों को स्वीकार कर लिया था और अधिकतर जूट मिलों ने इसको लागू कर दिया है (दिसम्बर १९६१ तक ऐसी जूट मिलों की संख्या ८८ में से ८२ थी) केन्द्रीय श्रम ब्यूरो के अध्ययन के अनुसार पिछले दस वर्षों में जूट वस्त्र उद्योग में आन्ध्र प्रदेश में मजदूरी में १०० प्रतिशत वृद्धि हुई है तथा मध्यप्रदेश में मजदूरी में २४ प्रतिशत वृद्धि हुई है। बिहार में मजदूरी स्थिर रही है। मजदूरी बोर्ड के अंतरिम सहायता पंचाट (Award) के परिणामस्वरूप जूट उद्योग के २.५ लाख श्रमिकों की मजदूरी में ५ प्रतिशत वृद्धि हुई है।

ऊनी वस्त्र उद्योग में प्रति श्रमिक वार्षिक आय सभी राज्यों में १९५५ में १०८८.९ रु० १९५८ में १०१०.३ रु० १९५७ में ९८९.४ रु० तथा १९५९ में १.२५ रु० थी। १९५९ में विभिन्न राज्यों में आय इस प्रकार थी—बम्बई

१,१६६ रु०, उत्तर प्रदेश १,०७२ रु० पंजाब ६६८ रु० तथा पश्चिमी बंगाल ६८८ रु०। मूल मजदूरी विभिन्न राज्यों में भिन्न २ थी।

रेशमी वस्त्र उद्योग में प्रति श्रमिक वार्षिक आय १९५५ में १,१४६.० रु० १९५८ में १,११०.९ रु० १९५७ में १,२१२.७ रु० तथा १९५९ में १,२१८ रु० थी। १९५९ में विभिन्न राज्यों में आय इस प्रकार थी। बम्बई १,३१७ रु० देहली १,१७२ रु० पंजाब १,०२३ रु० उत्तर प्रदेश ६४६ रु० पश्चिमी बंगाल ६१६ रु० तथा बिहार २१२ रु०। १९५६–५७ में बम्बई की तीन रेशमी वस्त्र मिलों में बोनस का भुगतान भी किया गया।

लोहा व इस्पात उद्योग में प्रति श्रमिक वार्षिक आय १९५५ में २,११२.७ रु०, १९५८ में २,१११.६ रु० १९५७ में १,९८९ रु० तथा १९५९ में १,११८ रु० थी। विभिन्न राज्यों में १९५९ में आय निम्न प्रकार थी: बिहार में १,६१ रु० बम्बई में १,४०६ रु० तथा पश्चिमी बंगाल में १,१८ रु० मध्य प्रदेश में १,१५२ रु० पंजाब में १,०४२ रु० तथा देहली में १,०७ रु०। नवम्बर १९५० में जमशेदपुर की टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी में मूल मजदूरी में वृद्धि की गई (१ रु० से १ रु० ४ आ० उन श्रमिकों के लिए जिनकी मजदूरी १ रु० प्रतिदिन से कम है तथा ६–८–० रु० मासिक आधार पर मजदूरी पाने वाले उन श्रमिकों के लिए जिनकी मजदूरी ७५ रु० प्रतिमाह से कम है)। मैसूर के लोहा व इस्पात कारखाने में वयस्क पुरुष श्रमिक की न्यूनतम मजदूरी २ रु० प्रतिदिन निश्चित की गई है तथा पांच वर्ष तक बोनस भुगतान के लिए समझौता किया गया है। टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी (TISCO) के श्रमिकों को कम्पनी की लाभ सहभाजन योजना के अन्तर्गत कम्पनी के निवल वार्षिक लाभ में २७½% भाग मिलता है।

मुद्रण प्रकाशन एवं सहायक उद्योगों में प्रति व्यक्ति वार्षिक आय १९५५ में १,११३.८ रु० १९५८ में १,२०९.७ रु० १९५७ में १,२१०.१ रु० तथा १९५९ में १,१९८ रु० थी। १९५९ में विभिन्न स्थानों पर यह आय इस प्रकार थी—देहली १,८११ रु० पश्चिमी बंगाल १,४३६ रु० बम्बई १,२७० रु० आसाम १,११७ रु० तथा पंजाब १,०१८ रु०। आसाम के छापेखानों में न्यूनतम मूल मजदूरी ३५ रु० प्रतिमाह निर्धारित की गई थी। १९५६–५७ में विभिन्न राज्यों में बोनस भी दिया गया।

कागज मिलों में प्रति व्यक्ति वार्षिक औसत आय १९५५ में १,४१०.१ रु० १९५८ में १,११०.८ रु० १९५७ में १,२१२.८ रु० तथा १९५९ में १,०११ रु० थी। यह आय १९५९ में पंजाब में १,२४६ रु० पश्चिमी बंगाल में १,११० रु० उड़ीसा में १,१०१ रु० तथा उत्तर प्रदेश में १,००२ रु० थी। १९५६–५७ में बम्बई पंजाब व उत्तर प्रदेश में बोनस का भुगतान भी किया गया।

चीनी उद्योग में सभी राज्यों में १९५९ में प्रति श्रमिक औसत वार्षिक आय ६१२ रु० थी। विभिन्न प्रदेशों में यह आय इस प्रकार थी—पंजाब १,२२२ रु०

पश्चिमी बंगाल १११० रु० मद्रास ६७३ रु० उत्तर प्रदेश ६२४ रु० तथा बिहार ९१८ रु०। उत्तर प्रदेश तथा बिहार की चीनी मिलों में श्रमिकों को कुल मजदूरी ५९ रु० प्रति माह मिलती है। परन्तु कुछ मामलों में कुल मजदूरी में मूल मजदूरी व भत्ता अलग-अलग सम्मिलित होते हैं। १९५७ में बिहार की २२ चीनी मिलों ने बोनस का भुगतान भी किया।

चीनी उद्योग के लिए केन्द्रीय मजदूरी बोर्ड ने १ जनवरी १९५९ से १४० चीनी कारखानों में निम्नलिखित अन्तरिम सहायता देने की सिफारिश की थी— उन श्रमिकों के लिए जिनकी कुल मिलाकर मजदूरी १०० रु० प्रति माह तक है— ५% परन्तु न्यूनतम ३ रु० १०० रु० से ३०० रु० तक ४% परन्तु न्यूनतम ५ रु० ३०० रु० से ६०० रु० तक ३% परन्तु न्यूनतम ८ रु० ६०० रु० से ९०० रु० तक २% परन्तु न्यूनतम ९ रु०। दिसम्बर १९६० में चीनी मजदूर बोर्ड ने अपनी अन्तिम रिपोर्ट प्रस्तुत की जिसकी सिफारिशों को स्वीकार करने की घोषणा सरकार ने फरवरी १९६१ में की। बोर्ड ने यह सिफारिश की है कि चीनी मिलों में मजदूरी निर्धारण के हेतु देश को चार विभागों में बाँट दिया जाए। अर्थात् उत्तर, मध्य महाराष्ट्र तथा दक्षिण। बोर्ड के अनुसार कम न्यूनतम मजदूरी तो आवश्यक रूप से प्रदेश प्रदेश में भिन्न होगी परन्तु ५० रु० ९५ न० की मूल न्यूनतम मजदूरी सभी स्थानों पर होनी चाहिए और इसके अतिरिक्त जो कुछ मिले वह प्रत्येक प्रदेश के लिए महंगाई भत्ता माना जाना चाहिए। इन सिफारिशों को पहली नवम्बर १९६० से लागू करने की सिफारिश की गई है। विभिन्न वर्गों के कर्मचारियों के लिए पद क्रमानुसार वेतन और श्रमिकों के लिए महंगाई भत्ता और अवकाश प्राप्त धन देने की भी सिफारिश है। उत्तर प्रदेश में इन सिफारिशों को लागू करने के लिए सरकार द्वारा आदेश दिए गए हैं और भारतीय चीनी मिल परिषद् ने भी अपनी सदस्य मिलों को इन सिफारिशों को लागू करने के लिए कहा है। यू० पी० में लगभग ८० हजार श्रमिकों के मासिक वेतन में १८ रु० की दर से वृद्धि हो जाएगी। श्रम ब्यूरो के अध्ययन के अनुसार १९५१ से १९५९ की अवधि में चीनी मिल मजदूरों की आय में विभिन्न राज्यों में निम्नलिखित वृद्धि हुई पश्चिमी बंगाल में ११ प्रतिशत आन्ध्र प्रदेश में १७ प्रतिशत बिहार में ७ प्रतिशत और उत्तर-प्रदेश में ५ प्रतिशत। चीनी उद्योग में लगभग दो लाख श्रमिक कार्य पर लगे हुए हैं। मजदूरी बोर्ड की सिफारिश के अनुसार देश के विभिन्न क्षेत्रों में इन श्रमिकों की मजदूरी में ८ प्रतिशत से ११७.५ प्रतिशत तक की वृद्धि हुई है।

सीमेंट उद्योग में १९५६ में प्रति व्यक्ति औसत वार्षिक आय १९०५ रु० थी। यह आय बिहार में १४७५ रु० बम्बई में १३१२ रु० उत्तर-प्रदेश में १११८ रु० मद्रास में १२०८ रु० उड़ीसा में ११७० रु० तथा पंजाब में ११५५ रु० थी। ए० सी० सी० के स्वामित्व में आने वाले ९ सीमेंट कारखानों में १९५७ में मजदूरी व भत्तों के लिए एक त्रिवर्षीय समझौता हुआ। मार्च १९६० में सरकार

ने सीमेंट मजदूरी बोर्ड की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया। यह सिफारिश इस प्रकार है। सौराष्ट्र व गुजरात को छोड़कर सभी क्षेत्रों में न्यूनतम मजदूरी ९४ रु० प्रति माह निर्धारित की जाय। इसमें से ३ रु० मालिकों द्वारा प्रदान की जाने वाली सुविधाओं के मूल्य के रूप में कट जायेंगे अर्थात् श्रमिकों को कुल नकद मजदूरी ९१ रु० मिलेगी। ९१ रु० में से मूल मजदूरी ५२ रु० महंगाई भत्ता ३१.५० रु० तथा मकान किराया भत्ता ७.५० रु० होगा। गुजरात व सौराष्ट्र के श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी १०१ रु० प्रति माह मिलेगी अर्थात् इन्हें महंगाई भत्ते के ७ रु० अधिक मिलेंगे।

१९५९ में प्रति श्रमिक औसत वार्षिक आय अन्य वृहद उद्योगों में इस प्रकार थी। चमड़ा सफाई एवं रंगाई करने के कारखाने व कपड़े के कारखानों में ७८१.२ रु० रबर माल १,१६१.३ रु० भारी रसायन उद्योग १,१५८.७ रु० दियासलाई ९९६.२ रु० धातु की वस्तुएं और इस्पात के ट्रंक १,१३४.५ रु० बिजली मशीन व सहायक मशीन १,१८३.८ रु० पोत निर्माण व मरम्मत १,६७०.२ रु०।

खानों में मजदूरी तथा आय —

कोयला खानों में मजदूरी के आंकड़े खान के मुख्य निरीक्षक द्वारा एकत्रित और प्रस्तुत किए जाते हैं। पश्चिमी बंगाल तथा बिहार में सुलह बोर्ड की सिफारिशों के परिणामस्वरूप तथा मध्य प्रदेश उड़ीसा एवं असम में वास्तविक भारत कोयला समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप तथा अभ्रक की खानों में औद्योगिक अधिकरण की सिफारिशों के परिणामस्वरूप पिछले कुछ वर्षों में खानों में मजदूरी ढांचे में मामूली परिवर्तन हुए हैं।

कोयला खानों में दिसम्बर १९५९ में श्रमिकों की साप्ताहिक औसत आय प्रति श्रमिक इस प्रकार थी योग २२.२७ रु० असम– १९.८७ रु० बिहार (झरिया)– २२.७१ रु० बिहार (रानीगंज)– २०.६५ रु० बम्बई– १९.६४ रु० मध्य प्रदेश– २१.२१ रु० उड़ीसा– १९.८४ रु० राजस्थान– १०.६१ रु० पश्चिमी बंगाल (रानीगंज)– २१.९५ रु० समस्त भारत– २२.०२ रु०। खानों के भीतर कार्य करने वाले तथा कोयला ढोने वाले श्रमिकों की औसत साप्ताहिक आय निम्न प्रकार थी खानों के भीतर कार्य करने वालों की– २२.७७ रु० खुले में काम करने वालों की २०.९४ रु०। खानों के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिकों की साप्ताहिक आय इस प्रकार थी पुरुष– १९.७६ रु० स्त्रियां १६.१७ रु०। दिसम्बर १९५९ में खान के अन्दर कार्य करने वाले श्रमिकों तथा कोयला ढोने वाले श्रमिकों की साप्ताहिक औसत आय इस प्रकार थी झरिया– मूल मजदूरी ६.११ रु० महंगाई भत्ता १२.७० रु० अन्य नकद अदायगी २.८५ रु० योग २१.६८ रु० रानीगंज– मूल मजदूरी ८.२८ रु० महंगाई भत्ता ११.९० रु० अन्य नकद अदायगी २.११ रु० योग २२.२९ रु०।

कोयला खान प्रॉवीडेन्ट फंड एवं बोनस योजना अधिनियम १९४८ (देखिए पृष्ठ ११०–१२) के अन्तर्गत जो कोयला खान बोनस योजना बनाई गई थी उसके अनुसार आन्ध्र प्रदेश, असम, बिहार, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, राजस्थान तथा पश्चिमी बंगाल की खानों में उन समस्त श्रमिकों को जिनकी मूल मजदूरी १०० रु० प्रति माह से कम है अपनी मूल मजदूरी का १/३ भाग त्रैमासिक बोनस के रूप में लेने का अधिकार है बशर्ते वह उपस्थिति से सम्बन्धित कुछ शर्तों को भी पूरा करते हों। असम में साप्ताहिक मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को साप्ताहिक आधार पर और मासिक मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को मासिक आधार पर बोनस दिया जाता है।

कोयला खानों को छोड़कर अन्य खानों में मजदूरों की औसत दैनिक मजदूरी दिसम्बर १९५८ में इस प्रकार थी : अभ्रक– आन्ध्र प्रदेश १·६२ रु०, बिहार २·०६ रु०, राजस्थान १·५१ रु०। मैंगनीज– बम्बई १·८१ रु०, मध्य प्रदेश २·०१ रु०, उड़ीसा १·८१ रु०। कच्चा लोहा– बिहार, २·२८ रु०, उड़ीसा १·६१ रु०। तांबा– बिहार, १·११ रु०। सोना– मैसूर, ४·२८ रु०। चूना पत्थर– बिहार, २·०२ रु०, मध्य प्रदेश १·६४ रु०। चीनी मिट्टी– बिहार, १·२४ रु०। पत्थर– बिहार, १·१० रु०। कई अभ्रक की खानों में लाभ बोनस, उपस्थिति बोनस तथा सेवा बोनस भी दिया जाता है।

बागान में मजदूरी तथा आय —

आसाम में त्रिदलीय श्रम सम्मेलन की सिफारिशों के परिणामस्वरूप अप्रैल १९४८ से मजदूरी में वृद्धि की गई है। असम के चाय बागान में १९५८–५९ में मजदूरी की औसत दरें पुरुषों के लिए ३२·४३ रु० प्रति मास, स्त्रियों के लिए २८·७६ रु० प्रति मास तथा बालकों के लिए २१·२८ रु० प्रति मास थी। दक्षिण भारत के चाय बागान में मजदूरी की दर पुरुषों, स्त्रियों तथा बालकों के लिए क्रमशः १·५५ रु०, १·११ रु० तथा ०·७८ रु० प्रतिदिन है। कुर्ग के कहवा बागान में मजदूरी की दर पुरुषों के लिए १·५० रु० स्त्रियों के लिए १·१२ रु० तथा बालकों के लिए ०·७५ रु० प्रतिदिन है। मैसूर कॉफी बागान में पुरुष, स्त्री तथा बालकों के लिए वर्तमान दर क्रमशः १·४० रु० १·०६ रु० तथा ०·७० रु० प्रतिदिन है।

रबर के बागान में दैनिक मजदूरी की अधिकतम दरें पुरुषों, स्त्रियों तथा बालकों के लिए क्रमशः १·१२ रु० १·१५ रु० व ०·७० रु० है। नीलगिरि के चाय बागान में मजदूरी की दर पुरुष तथा स्त्रियों के लिए क्रमशः १ रु० ४ आने ३ पाई तथा १४ आने १ पाई है और कॉफी बागान में मजदूरी की दर पुरुषों के लिए १ रु० १ आने ६ पाई एवं स्त्रियों के लिए १४ आने ३ पाई प्रतिदिन है। असम तथा पश्चिमी बंगाल के चाय बागान में अनाज कम कीमत की दरों पर प्रदान किया जाता है। १९५५ में पश्चिमी बंगाल के चाय बागान के श्रमिकों की प्रति श्रमिक वार्षिक आय ४८३·२४ रु० थी।

८ जनवरी १९५९ को एक समझौते के अनुसार (जो नई देहली में हुआ) असम, पश्चिमी बंगाल तथा त्रिपुरा के चाय बागान के श्रमिकों को १९५३-५६ के वर्षों के लिए बोनस दिया गया। १९५७ के पश्चात् बोनस देने के लिए बागान की औद्योगिक समिति ने एक बोनस उप-समिति स्थापित की। इस समिति ने यह सिफारिश की कि जब कोई अन्य समझौता नहीं है तब देहली समझौते के अनुसार ही १९५७ और १९५८ के वर्षों के लिए बोनस देना चाहिए। परन्तु असम तथा पश्चिमी बंगाल में १९५७ और १९५८ के वर्षों के लिए बोनस के भुगतान के लिए पृथक समझौते हो गए। उप समिति द्वारा अगले वर्षों के लिए बोनस भुगतान के प्रश्न पर विचार किया जा रहा है। चाय कॉफी और रबर के बागान के लिए हाल ही में केन्द्रीय मजदूरी बोर्डों की स्थापना हुई है।

परिवहन एवं संवादवहन में श्रमिकों की मजदूरी तथा आय —

रेलवे में लगभग ८० प्रतिशत कर्मचारी चतुर्थ वर्ग के हैं तथा शेष कर्मचारियों को मातहत तथा गजटेड स्टाफ के वर्ग में रखा गया है। चतुर्थ वर्गीय कर्मचारियों के लिए चार वेतन दरें निर्धारित हैं ३०-½-३५ रु० ३५-१-४० रु० ३५-१-५० रु० तथा ४०-१-५०-२-६० रु०। अकुशल कर्मचारियों को निम्नतम वेतन दर में रखा गया है तथा अर्द्ध-कुशल तथा कुशल कर्मचारियों को अन्य वेतन दर दिये जाते हैं। इसके अतिरिक्त दो अन्य वेतन दर हैं ३५-१-५० कु० रो० २-६० रु० वेतन दर व्यापार सम्बन्धित कर्मचारी तथा अर्द्ध कुशल कारीगरों को दिया जाता है। दूसरी वेतन दर ५५-३-८५-४-९५ कु० रो० ४-१२५-५-१३० रु० की है जो कुशल कारीगरों को कार्य की प्रकृति के अनुसार दी जाती है। केन्द्रीय वेतन आयोग ने अखिल भारतीय निर्वाह व्यय सूचनांक से सम्बन्धित एक महंगाई भत्ते की सिफारिश की थी जिसमें ५० रु० पाने वाले व्यक्तियों को २५ रु० भत्ता देने की व्यवस्था थी। किन्तु भारत सरकार ने २५० रु० तक पाने वाले व्यक्तियों के लिए ५ रु० अतिरिक्त भत्ते की स्वीकृति दी। इस समय महंगाई भत्ता ५० रु० प्रति माह तक वेतन पाने वालों के लिए ४० रु० है और ७५१ रु० से १००० रु० पाने वालों के लिए उनके वेतनानुसार १०० रु० तक है। ऐसे व्यक्तियों के लिए, जो अनाज दुकान की सुविधायें चाहते हैं महंगाई भत्ते की विभिन्न दरें निश्चित की गई हैं। यह दर वेतन का १०½% तथा ५ रु० प्रति माह है। परन्तु कुछ न्यूनतम राशि अवश्य मिलनी चाहिए। रेल में साथ चलने वाले कर्मचारियों को मजदूरी तथा महंगाई भत्ते के अतिरिक्त अन्य भत्ता भी दिया जाता है। एक विभागीय समिति की सिफारिशों के पश्चात् ऐसे कर्मचारियों के वेतन की मूल दरों में सरकार द्वारा पुनराकृति कर दी गई है। "स" वर्ग के चालकों (ड्राइवरों) को अब मूल वेतन २१०-१२-३५० रु० तथा ४ रु० प्रति सौ मील रेल के साथ जाने का भत्ता मिलता है तथा "ए" वर्ग के चालकों को १५०-७-१८५-८-२२५ रु० वेतन एवं २ रु० प्रति

को पील रेस के साथ जाने का भत्ता मिलता है। "बी" तथा "सी" वर्ग के ड्राइवरों को क्रमशः १६०–१०–१०० रु० एवं ८०–२–११० कु० रो० ८–१७० रु० वेतन मिलता है। "बी" तथा "सी" वर्ग के गार्डों को क्रमशः १००–२–१२५–६–१५५ कु० रो० ६–१८५ रु० तथा १०–४–१२० कु० रो० –५–१५० रु० वेतन दिया जाता है। १९५८–५९ में सरकारी रेलवे कर्मचारियों की वार्षिक औसत आय इस प्रकार थी वर्ग III के कर्मचारी—वर्कशाप के कर्मचारी तथा कारीगर १८३० रु० अन्य कर्मचारी २ १११ रु । वर्ग IV के कर्मचारी—वर्कशाप के कर्मचारी तथा कारीगर, १ ०१२ रु० अन्य १ ०८२ रु०। फरवरी १९५७ में 'नान गजेटेड' वर्ग के रेलवे कर्मचारियों के (जिनमें स्टेशन मास्टर, असिस्टैंट स्टेशन मास्टर ड्राइवर, गार्ड फायरमैन तथा क्लर्क वर्ग भी सम्मिलित है) वेतन दोहराए गये और अब उनको पहले से अधिक अच्छे वेतन तथा पदोन्नति के अवसर प्रदान किये गए हैं। इस योजना को पहिली अप्रैल १९५६ से लागू किया गया है और इसके फलस्वरूप एक लाख सत्तर हजार कर्मचारियों को लाभ पहुंचा है। वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार पहिली नवम्बर १९५९ से रेलवे कर्मचारियों के वेतन में फिर संशोधन हुआ है। लगभग पांच लाख कर्मचारियों की जिनको सबसे कम वेतन मिलता है अब कुल औसत आय ७८ रु० से बढ़कर ८६ रु० प्रति माह हो गई है। अन्य तीसरी तथा चौथी श्रेणी के कर्मचारियों को भी कई प्रकार के लाभ पहुंचे हैं।

डाक तथा तार विभाग में मजदूरी की दरें केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों द्वारा निर्धारित की गई हैं तथा वर्तमान समय में डाकिये ३५–१–५० रु० प्रति माह पा रहे हैं। ये चतुर्थ वर्गीय कर्मचारियों के अन्तर्गत आते हैं। रेलवे के समान इनको महंगाई भत्ता भी मिलता है। पार्सल बनाने वाले कुली तथा चपरासी ३०–½–३५ रु० वेतन पाते हैं।

बन्दरगाहों तथा नगरपालिकाओं आदि में मजदूरी तथा आय —

कलकत्ता के अतिरिक्त सभी बड़े बन्दरगाहों के अकुशल श्रमिकों की मूल मजदूरी १ रु० २ आने ६ पाई प्रति दिन या ३० रु० प्रति माह है। कलकत्ता में यह मजदूरी २६ रु० प्रति माह है। श्रमिक विभिन्न श्रेणियों में विभाजित किये गए हैं और प्रत्येक श्रेणी में भिन्न-भिन्न दर के अनुसार वेतन दर है। केन्द्रीय वेतन आयोग ने जिस महंगाई भत्ते की रेलवे कर्मचारियों के लिए सिफारिश की थी वही महंगाई भत्ता बन्दरगाहों के लिए निश्चित कर दिया गया है। बन्दरगाह में विभिन्न प्रकार के श्रमिकों की आय बम्बई में ६२ रु० से ८० रु० तक मद्रास में ६५ रु० से ८०' रु० तक तथा कलकत्ता में ६१ रु० से ८५ रु० तक है। सन् १९४९ से बम्बई बन्दरगाह ट्रस्ट ने सामान ढोने तथा उतारने वाले श्रमिकों को 'प्रोत्साहन' (Incentive) बोनस देने की योजना भी लागू कर दी है।

बम्बई नगर में गोदी कर्मचारियों के लिए केन्द्रीय वेतन आयोग की सिफारिशों के अनुसार न्यूनतम मूल मजदूरी ३० रु० प्रति मास निर्धारित कर दी गई है। अन्य स्थानों पर अधिकरणों द्वारा मजदूरी १ रु० २ आने ६ पाई प्रतिदिन से १ रु० ६ आने प्रतिदिन तक निर्धारित की गई है। बंगाल में मजदूरी ३० रु० प्रति मास और विशाखापत्तनम में १ रु० ७ आने प्रतिदिन है। बम्बई में महंगाई भत्ता केन्द्रीय वेतन आयोग द्वारा निर्धारित दर के हिसाब से और कलकत्ता व विशाखापत्तनम में ग्रेड के क्रमानुसार दिया जाता है। गोदी कर्मचारियों को बोनस भी विभिन्न दरों पर दिया गया है। १९५८-५९ में गोदी कर्मचारियों की औसत मासिक आय प्रति श्रमिक इस प्रकार थी : बम्बई में १०६.९९ रु० तथा मद्रास में विभिन्न वर्गों के अनुसार ६६.२१ रु० से १३७.०८ रु० तक। विशाखापत्तनम में सबसे कम वेतन पाने वाले श्रमिकों की आय ७५ रु० प्रति मास थी जिसमें से ३० रु० मजदूरी, २० रु० महंगाई वेतन तथा २५ रु० महंगाई भत्ता था। कोचीन में मजदूरी की मासिक दर श्रमिकों के विभिन्न वर्गों के अनुसार ३ रु० से ९० रु० तक है। तृतीय तथा चतुर्थ वर्ग के गोदी कर्मचारियों के लिए सरकार ने एक समिति नियुक्त की थी जिसकी रिपोर्ट जून १९६१ में प्रकाशित हुई है। इसके अनुसार लगभग ७५ हजार गोदी श्रमिक और बन्दरगाहों के श्रमिकों को लाभ पहुँचेगा।

खनिज तेल उद्योग में १९५४ में श्रम अपीलीय अधिकरण के पंचाट के अनुसार विभिन्न श्रेणियों के श्रमिकों की मूल न्यूनतम मजदूरी १ रु० ७ आने से ४.२० रु० प्रतिदिन तक निश्चित की गई है। महंगाई भत्ता तथा बोनस मूल वेतन के आधार पर प्रदान किये जाते हैं।

नगरपालिकाओं में १९४४ से मूल मजदूरी बढ़ गई है किन्तु अभी तक देश के विभिन्न भागों में मजदूरी में अन्तर पाया जाता है। कटक तथा कोराम में न्यूनतम मासिक मजदूरी १५ रु० तक है जबकि दूसरी ओर बम्बई में ३१ रु० है। महंगाई भत्ते की दरों में भी बहुत विभिन्नता है। साधारणतया विभिन्न आय वर्गों के अनुसार आरोही दर (Graduated rate) पर महंगाई भत्ता दिया जाता है। सबसे कम वेतन पाने वाले वर्ग के श्रमिकों को जो न्यूनतम महंगाई भत्ता मिलता है वह लखनऊ तथा कानपुर में ६.२५ रु० प्रतिमास से बम्बई में ५६ रु० प्रतिमास तक है। इसके अतिरिक्त अनेक नगरपालिकायें मकान-किराया भत्ता अथवा अन्न महंगाई भत्ता भी देती हैं। सफाई करने वाले कर्मचारियों की न्यूनतम मासिक आय कोराम में २०.०५ रु० से बम्बई में ७७ रु० तक है।

केन्द्रीय सार्वजनिक कार्य विभाग में विभाग द्वारा लगाए गए श्रमिक ३० रु० प्रतिमाह मूल न्यूनतम मजदूरी पाते हैं। ठेकेदारों द्वारा लगाए गए श्रमिक विभिन्न श्रेणी में ०.८१ रु० से ६.१२ रु० तक पाते हैं। विभागीय श्रमिक सरकारी दरों पर महंगाई भत्ता पाने के भी अधिकारी हैं जो न्यूनतम ३२ रु० प्रतिमास है। राज्यों के सार्वजनिक कार्य विभागों में मजदूरी की दरें एक जिले से दूसरे जिले में ०.६८ रु०

से ९५० रु० तक भिन्न-भिन्न है। केवल मासिक वेतन पाने वाले कर्मचारियों को विभिन्न दरों पर महंगाई भत्ता दिया जाता है। स्त्रियों की मजदूरी कम है।

नाविकों की मजदूरी विभिन्न श्रेणियों के लिए भिन्न-भिन्न है। कलकत्ता में इनकी मजदूरी दर ६० रु० से १६० रु० प्रतिमाह तक है, बम्बई में मजदूरी दर १०० रु० से १६० रु० प्रतिमाह तक है। युद्ध पूर्व मजदूरी-दर की अपेक्षा इन व्यक्तियों की आय अब पांच गुनी अधिक है।

ऊपर भारत के विभिन्न उद्योग तथा विभिन्न राज्यों में प्रचलित मजदूरी स्तर का केवल एक संक्षिप्त रूप में उल्लेख किया गया है। इन आंकड़ों को ध्यान में रखकर हम भारत में मजदूरी से सम्बन्धित अनेक महत्वपूर्ण समस्याओं का विवेचन कर सकते हैं।

न्यूनतम मजदूरी—इसकी वांछनीयता

(Minimum Wages—and its Desirability)—

सबसे महत्वपूर्ण समस्या भारत में औद्योगिक श्रमिकों की कम मजदूरी की तथा श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की आवश्यकता है। ऊपर दिए गए आंकड़ों से यह स्पष्ट है कि श्रमिकों की आय पर्याप्त नहीं है। यदि कुछ सुधार हुआ भी है तो वह गत कुछ वर्षों से ही हुआ है। वर्तमान समय में देश की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी प्रदान करना है। भारत के अधिकतर श्रमिक असंगठित हैं, अतः मालिकों द्वारा सरलतापूर्वक उनका शोषण किया जाता है। मालिक उन्हें कम से कम मजदूरी देते हैं। यह भी अनुमान लगाया गया है कि जेल के कैदी औद्योगिक श्रमिकों की अपेक्षा अधिक सुविधायें तथा अधिक आहार पाते हैं। श्रमिकों को स्वतन्त्र प्रतियोगिता में अपनी सौदा करने की दुर्बल स्थिति तथा श्रम की अन्य विशेषताओं के कारण शक्तिशाली पूंजीपतियों के समक्ष अपनी स्थिति सुधारने का कोई अवसर नहीं मिल पाता। श्रमिक की सीमान्त उत्पादकता पूंजी की उत्पादकता से सदैव कम होती है अतः श्रमिक को कम प्रतिफल मिलता है। तथापि श्रमिक मानव है और मानवीय दृष्टिकोण से उसकी रक्षा होनी चाहिए। श्रमिकों के लिए सभी देशों में एक न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की समस्या उपस्थित हो गई है। यह मजदूरी केवल उनकी कार्यकुशलता के अनुसार ही न होकर इतनी पर्याप्त होनी चाहिए कि श्रमिक अपनी आवश्यकताओं के अनुसार अपना निर्वाह कर सके। अतः १९२८ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में न्यूनतम मजदूरी पर एक अभिसमय का मसौदा तैयार किया गया था। इसके अनुसार सब सदस्य राष्ट्रों को एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करने और बनाए रखने के लिए कहा गया जिसके अन्तर्गत कुछ विशेष व्यवसायों में रोजगार में लगे श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी की दरें निर्धारित की जा सकें। इन विशेष व्यवसायों से तात्पर्य ऐसे व्यवसायों से है जिनमें सामूहिक समझौते या अन्य किसी प्रकार से प्रभावात्मक रूप से मजदूरी निर्धारित करने की कोई व्यवस्था नहीं है और जिनमें मजदूरी भी बहुत कम है।

१९५२ में इस अभिसमय को भारत सरकार द्वारा अपना लिया गया है।

ऊपर दिए गए मजदूरी के आँकड़ों से प्रकट है कि भारत में मजदूरी असाधारण रूप से कम है यद्यपि कम मजदूरी की यथार्थता इतनी स्पष्ट है कि इसके लिए विस्तृत खोज अथवा आँकड़ों के संकलन की कोई विशेष आवश्यकता नहीं है। औद्योगिक विवाद निम्न जीवन स्तर, श्रमिक की कार्य अकुशलता उसकी ऋण-ग्रस्तता आदि जैसी अनेक समस्याएं कम मजदूरी की समस्या से सम्बन्धित हैं। सामाजिक दृष्टिकोण से भी यह अनुभव किया जाना चाहिए कि यदि हम समाज में स्थिरता चाहते हैं तो श्रमिक के लिए पर्याप्त निर्वाहिका (Living Wage) अत्यन्त आवश्यक है। श्रमिकों की निर्धनता ही साम्यवाद का सम्पत्ति स्रोत रही आती है। यदि हम क्रांतिकारी विचारों को फैलने से रोकना चाहते हैं तो सभी श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी का आश्वासन मिलना चाहिए। औद्योगिक हड़तालों के झगड़ों को कम करने तथा मालिकों एवं श्रमिकों के बीच सद्भावना एवं विश्वास उत्पन्न करने के लिए न्यूनतम मजदूरी का होना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि श्रमिक को न्यूनतम मजदूरी देना कोई दान का कार्य नहीं है। उद्योग के लाभ में श्रमिक का अधिकारपूर्ण (Rightful) भाग होना चाहिए जो वर्तमान समय में श्रमिक की दुर्बल सौदाकारी सामर्थ्य के कारण उसे नहीं दिया जाता। अतः औद्योगिक श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी उनके औद्योगिक जीवन उनके स्वास्थ्य शक्ति तथा नैतिकता के लिए बहुत अधिक महत्व रखती है। इससे श्रमिक की कार्यकुशलता बढ़ जाएगी उत्पादन भी अधिक होगा तथा अनेक औद्योगिक समस्याएं स्वयं हल हो जायेंगी।

न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य —

न्यूनतम मजदूरी के उद्देश्य विभिन्न हैं। मजदूरी दर निश्चित करने का आधार तथा इसके लिए प्रशासन व्यवस्था भी अलग-अलग उद्देश्य के अनुसार भिन्न भिन्न होते हैं। इसका एक मुख्य उद्देश्य उद्योग में शोषण को रोकना है। इसका तात्पर्य यह है कि उन उद्योगों में मजदूरी को बढ़ाया जाय जहां मजदूरी अनुचित रूप से कम है। कम मजदूरी के कारण आर्थिक मन्दी अव्यवस्थित संगठन श्रमिकों की कार्य-अकुशलता अथवा श्रमिकों का शोषण आदि हो सकता है। यदि किसी उद्योग में स्थायी रूप से मन्दी की परिस्थिति है तथा वह उद्योग रोजगार पोषण काम सभी व्यक्तियों को उचित मजदूरी देने में असमर्थ है तो अन्य उद्योगों में न्यूनतम मजदूरी उचित स्तर पर निर्धारित होने से सब उद्योगों में साधन एक समान हो जायगे तथा विभिन्न उद्योगों में श्रमिकों का समान वितरण भी हो जायगा। यदि कार्य अकुशलता के कारण मजदूरी कम है तो न्यूनतम मजदूरी से जीवन स्तर में उन्नति होगी तथा कार्य कुशलता में भी सुधार हो जायगा। फिर न्यूनतम मजदूरी व्यवस्था का उद्देश्य शोषण रोकना भी है तथा श्रमिक को उत्पादक क्षमता के अनुसार जो कार्य होता है उस कार्य के मूल्यानुसार मजदूरी दिलवाना भी है। इस दृष्टिकोण से यह उल्लेखनीय है कि श्रमिकों का हित इसमें नहीं है कि समस्त उद्योगों के लिए एक सामान्य

न्यूनतम दर निर्धारित कर दी जाय बल्कि इसमें है कि विभिन्न वर्गों के श्रमिकों के लिए मजदूरी की न्यूनतम दर निश्चित की जाय। अतः यह समस्या मजदूरी समानीकरण की समस्या से सम्बन्धित है अर्थात् प्रत्येक वर्ग के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित होनी चाहिए। न्यूनतम मजदूरी का उद्देश्य उन श्रमिकों की रक्षा करना है जो असंगठित हैं और सामूहिक समझौतों द्वारा अपनी मजदूरी बढ़ाने में असमर्थ हैं। न्यूनतम मजदूरी से श्रमिकों के संगठन में सुधार होगा यद्यपि यह न्यूनतम मजदूरी विधान का प्रथम उद्देश्य नहीं है। तीसरा उद्देश्य देश की औद्योगिक शान्ति को बनाए रखना है। जहाँ मालिकों तथा श्रमिकों के शक्तिशाली संगठन हैं वहाँ मजदूरी साधारणतः सामूहिक समझौतों से नियमित होती है। किन्तु समझौते सदा सम्भव नहीं हैं तथा कई बार ऐसे झगड़े खड़े हो जाते हैं जो आर्थिक जीवन को अव्यवस्थित कर देते हैं। इन झगड़ों से बचने का एक उपाय यह भी है कि अनेक हड़तालों तथा ताला-बन्दियों को गैरकानूनी घोषित कर दिया जाए। किन्तु इससे पूर्व कि सरकार इस नीति को अपनाए उसे मजदूरी नियमन की सन्तोषजनक प्रणाली की व्यवस्था कर देनी चाहिए। जहाँ विवाचन व्यवस्था भी है वहाँ भी मजदूरी सम्बन्धी झगड़े इस आवश्यकता की ओर संकेत करते हैं कि विभिन्न श्रेणी के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर देनी चाहिए।

न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने में कठिनाइयाँ—

किन्तु न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का प्रश्न इतना सरल नहीं है जितना यह देखने में प्रतीत होता है। न्यूनतम मजदूरी क्या है? विभिन्न उद्योगों तथा क्षेत्रों में इसे कैसे निर्धारित किया जाना चाहिए? इसे लागू करने के हेतु कैसी व्यवस्था की स्थापना करनी चाहिए? क्या पुरुष तथा स्त्री श्रमिकों के लिए अलग-अलग न्यूनतम मजदूरी होनी चाहिए? इस प्रकार के कई प्रश्न हैं जो इस समस्या के विवेचन में उठते हैं। अतः हमें न्यूनतम मजदूरी के निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व कुछ सिद्धान्तों का अनुसरण करना होगा।

श्रमिकों ने सर्दव माँग की है कि न्यूनतम मजदूरी राष्ट्रीय जीवन स्तर पर आधारित होनी चाहिए किन्तु दूसरी ओर मालिकों ने सर्दव मजदूरी के विभिन्न सिद्धान्तों की ओर संकेत किया है तथा नारा उठाया है कि मजदूरी उद्योग की भुगतान क्षमता के अनुसार दी जानी चाहिए। अतः इस विषय में कि न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का क्या उद्देश्य होना चाहिए कई कठिनाइयाँ आती हैं। वास्तव में उद्देश्य यह होना चाहिये कि श्रमिकों को जीवन निर्वाह के लिए ऐसी मजदूरी प्रदान की जाए जो न्यायपूर्ण तथा उचित हो। किन्तु प्रश्न उठता है कि न्यायपूर्ण तथा उचित मजदूरी क्या है? न्याय की परिभाषा करना सम्भव नहीं है। ('न्याय क्या है' के पूछने पर भी न्याय क्या है स्वयं ईसा मसीह भी चुप रह गए थे)। हम केवल सापेक्ष (Relative) दृष्टिकोण से कह सकते हैं कि क्या न्यायपूर्ण है एवं क्या न्यायपूर्ण नहीं है। इसी प्रकार न्यूनतम मजदूरी विभिन्न स्थानों की परिस्थितियों

पर निर्भर करता तथा ऐसी कोई मात्रा नहीं हो सकती जिसको एक निश्चित न्याय-पूर्ण मजदूरी कहा जा सके। यह स्थानीय परिस्थितियों, जलवायु, फैशन तथा व्यक्तियों की आदत आदि के अनुसार स्थान-स्थान पर भिन्न होगी। साधारणतया हम कह सकते हैं कि न्यूनतम मजदूरी का उद्देश्य तभी सभी भांति प्राप्त हो सकता है जब सबसे पहिले मानव के भोजन, वस्त्र तथा आवास की न्यूनतम आवश्यकताओं के आधार पर उसे निर्धारित किया जाए, तत्पश्चात् विभिन्न रोजगारों, वर्गों तथा स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार उसे निश्चित किया जा सकता है। आस्ट्रेलिया में न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा इस प्रकार की गई है "औसत वय के श्रमिक के साधारण उत्तरदायित्व का ध्यान रखते हुए श्रमिक को उचित सुख में रहने योग्य जो पर्याप्त मजदूरी मिलती है वही न्यूनतम मजदूरी कही जा सकती है।"

इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण का आधार केवल श्रमिक के निर्वाह के उद्देश्य से ही नहीं वरन् उसके समस्त परिवार के निर्वाह के उद्देश्य से होना चाहिए। श्रमिक तथा उसके परिवार को सभ्य जीवन का एक उचित स्तर भी प्रदान करना चाहिए। इस सम्बन्ध में औसत परिवार का आकार निर्धारित करने में कठिनाई आती है। भारत में हम पाँच सदस्यों का औसत परिवार मान सकते हैं।

जहाँ तक न्यूनतम आवश्यकताओं का सम्बन्ध है इसके लिए विभिन्न अनुमान किए गए हैं। डा० एक्रोइड का विचार है कि एक साधारण श्रमिक को भोजन की २,६०० कैलोरी की प्रतिदिन आवश्यकता होती है। डा० आर० के० मुकर्जी ने इस अनुमान को कम माना है तथा एक औद्योगिक श्रमिक के लिए ३,००० से ३,२०० कैलोरी भोजन प्रतिदिन की आवश्यकता का सुझाव दिया है। डा० पन्चानन का यह सुझाव कि श्रमिक के लिए २,७०० कैलोरी भोजन प्रतिदिन की साधारण आवश्यकता है, इस सम्बन्ध में गणना के लिए आधार माना जा सकता है। आवास के विषय में यह सुझाव दिया गया था कि एक के साथ १०० वर्ग फीट रहने के लिए न्यूनतम स्थान होना चाहिए। वस्त्र के विषय में यह सुझाव था कि एक वयस्क श्रमिक के लिए प्रति वर्ष ४५ गज कपड़ा होना चाहिए। युद्ध से पूर्व की कीमतों पर आवास की ये आवश्यकताएँ ही प्रति व्यक्ति २० रु० से २५ रु० तक लागत की आती थी और अब तो कीमतें तथा किराया बहुत ऊँचे हो गए हैं।

न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण करने में एक अन्य विचारणीय विषय कीमतों को ध्यान में रखते हुए निर्वाह व्यय को निर्धारित करना है। निर्वाह व्यय सूचकांक (Cost of Living Index Numbers) समय-समय पर बनाना पड़ता है और न्यूनतम मजदूरी का इस सूचकांक के अनुसार समायोजन (Adjustment) करना होता है।

एक अन्य समस्या यह है कि मजदूरी निर्धारण करने के लिए एक कुशल व्यवस्था (Efficient Machinery) होनी चाहिए। किन्तु प्रश्न उठता है कि क्या यह

व्यवस्था केन्द्रीय प्रदेशीय अथवा स्थानीय स्तर पर हो ? सबसे अधिक उचित तो यह होगा कि केन्द्रीय सरकार मुख्य सिद्धान्त निर्धारित कर दे और प्रदेशीय सरकारें स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार इस व्यवस्था की अन्य विस्तृत बातें निर्धारित करें।

भारत में श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी उसकी समस्याएं –

अब हम यहां न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के आन्दोलन तथा सन् १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का उल्लेख कर सकते हैं। रायल श्रम आयोग ने यह सुझाव दिया था कि इस बात की जांच की जाय कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने वाली कोई व्यवस्था हो सकती है या नहीं ! किन्तु उस समय कुछ कठिनाइयों की ओर संकेत किया गया और यह सुधार १९४८ तक नहीं किया जा सका। रायल श्रम आयोग ने स्वयं न्यूनतम मजदूरी लागू करने के लिए उचित व्यवस्था स्थापित करने की कठिनाइयों का उल्लेख किया है। अपने देश में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने से सम्बन्धित कुछ समस्याओं का पहले ही ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। कानपुर श्रम जांच समिति के शब्दों में इन कठिनाइयों को संक्षेप में बताया जा सकता है। 'न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने में हमें निर्वाह लागत का ध्यान रखना होगा। मजदूरी स्तर भी निर्धारित करना पड़ेगा। यह सरल कार्य नहीं है। समस्या के मनोवैज्ञानिक सामाजिक तथा वातावरण सम्बन्धित तत्वों की सावधानीपूर्वक जांच करनी होगी तथा आंकड़े एकत्रित करने होंगे। परिवार के बजट प्राप्त करने होंगे तथा उनका अध्ययन और विश्लेषण करना होगा। आवश्यक मदों को सावधानी से छांटना होगा तथा उनको गुण तथा मात्रा दोनों रूप से भली भांति महत्वांकित करना होगा। यह सब कठिन कार्य है जिनके लिए धैर्य और मर्यादा की आवश्यकता होगी तथा उन मदों को उचित रूप से समझना होगा जिनकी निर्वाह लागत निर्धारित की जा रही है। परिवार इकाई की भी परिभाषा उचित प्रकार से करनी पड़ेगी तथा उसे निश्चित करना होगा। भारतीय सामाजिक पद्धति में यह सब कठिन कार्य है। व्यक्तियों की परम्पराएं तथा सामाजिक आचारों को भी ध्यान में रखना होगा तथा इनका समुचित मूल्यांकन करना पड़ेगा।"

यह भी उल्लेखनीय है कि मालिकों ने भारत की विशेष परिस्थितियों को इंगित करते मजदूरी में वृद्धि के विरुद्ध तर्क प्रस्तुत किए हैं। प्राय: यह कहा जाता है कि मजदूरी में वृद्धि होने से श्रमिक या तो मदिरा पर अधिक व्यय करने लगेंगे या अधिक आलसी हो जायेंगे। आय में यदि आकस्मिक वृद्धि हो जाएगी तो उसका बुद्धिमत्तापूर्ण व्यय नहीं हो सकेगा। इसके अतिरिक्त श्रमिक की पूर्ति भी आय की वृद्धि के साथ घटेगी। यह भी कहा गया है कि मजदूरी में वृद्धि के प्रभाव निर्वाह लागत में वृद्धि होने से समाप्त हो जायेंगे क्योंकि बढ़ी हुई मजदूरी मुद्रा-स्फीति उत्पन्न करेगी। परन्तु यह समस्त तर्क एक पक्षीय है और हम पहले ही अपने देश में न्यूनतम मजदूरी की वांछनीयता का उल्लेख कर चुके हैं। मजदूरी निश्चित करने में भी

कठिनाइयाँ आती हैं केवल उन्हीं को ध्यान में रखता है तथा उन्हें सावधानी पूर्वक हल करता है।

सन् १९४८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम

(Minimum Wages Act of 1948) —

भारत में विधानीय मजदूरी निर्धारण व्यवस्था की स्थापना करने के प्रश्न पर मई १९४३ में त्रिदलीय संगठन की स्थायी श्रम समिति के तीसरे सम्मेलन में विचार विमर्श हुआ तथा त्रिदलीय श्रम समिति के १९४३, १९४४ तथा १९४५ के अधिवेशनों में इस पर विचार किया गया। इनमें से अन्तिम अधिवेशन में इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया गया कि न्यूनतम मजदूरी विधान बनाया जाना चाहिए। ११ अप्रैल सन् १९४६ को डा० बी० आर० अम्बेडकर ने जो उस समय के भारतीय सरकार में श्रम मन्त्री थे न्यूनतम मजदूरी विधेयक प्रस्तुत किया। किन्तु भारत में संवैधानिक परिवर्तन होने के कारण विधेयक के पास होने में कुछ विलम्ब हो गया। मार्च १९४८ में फिर यह न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के नाम से पारित हुआ। इस अधिनियम का अभिप्राय उन कुछ रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करना है जिनमें श्रमिकों से बहुत परिश्रम लिया जाता है अथवा जहाँ श्रमिक के शोषण की अधिक सम्भावना है। अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं—

अधिनियम में केन्द्रीय अथवा प्रदेशीय सरकारों को एक निर्धारित समय में विषय सूची में दिए गए रोजगार में लगे हुए सभी कर्मचारियों की मजदूरी की न्यूनतम दरें निश्चित करने का अधिकार दिया गया है। कर्मचारियों की परिभाषा के अन्तर्गत वह व्यक्ति आते हैं जो कुशल या अकुशल शारीरिक या लिपिक का कोई भी कार्य पारिश्रमिक या वेतन पर करते हैं। अधिनियम में लगी अनुसूची में इन उद्योगों का उल्लेख कर दिया गया है। वह इस प्रकार हैं—ऊनी कालीन बनाने या शाल बुनने वाले व्यवसाय, तम्बाकू एवं बीड़ी बनाने वाले व्यवसाय, चावल मिल, आटा मिल, दाल मिल, तेल मिल, बागान, किसी स्थानीय अधिकारी के अन्तर्गत रोजगार, सड़क निर्माण या इमारत बनाना, पत्थर तोड़ना या कूटना, लाख उत्पादन, अभ्रक कार्य, सार्वजनिक मोटर यातायात, चमड़ा रंगने एवं साफ करने तथा चमड़े की चीजें बनाने के कारखाने तथा खेती। विभिन्न सरकारों को अधिनियम को किसी भी ऐसे उद्योग पर लागू करने का अधिकार भी दिया गया है जहाँ सरकार के विचार में न्यूनतम मजदूरी कानूनी रूप से निश्चित हो जानी चाहिए। न्यूनतम मजदूरी किसी ऐसे उद्योग में निश्चित नहीं की जायेगी जिसमें सम्पूर्ण राज्य में १००० से कम कर्मचारी हैं।

अधिनियम में निम्नलिखित दरों को निर्धारित करने की व्यवस्था है — (क) न्यूनतम उजरत-दर, (Piece rate) (ख) न्यूनतम समयानुसार दर, (Time rate) (ग) गारन्टी-युक्त समयानुसार-दर, (घ) समयोपरि दर (Overtime rate) जो स्थानों, व्यवसायों, श्रम तथा श्रमिक की विभिन्न श्रेणियों तथा व्यक्तियों, किशोरों, बालकों और शिक्षार्थियों के लिए उचित समझी जाय। एक न्यूनतम दर में निम्नलिखित

बातें सम्मिलित होनी चाहिए (क) मजदूरी की मूल दर (Basic rate) एवं निर्वाह लागत (Cost of Living) भत्ता अथवा (ख) निर्वाह लागत भत्ते के साथ या उसके बिना मूल मजदूरी दरें तथा कम दरों पर आवश्यक वस्तुओं को प्रदान करने जैसी सुविधाओं की नकद कीमत अथवा (ग) सब सम्मिलित (All Inclusive) दर। अधिनियम के अनुसार मजदूरी नकदी में दी जानी चाहिये यद्यपि उपयुक्त सरकारें न्यूनतम मजदूरी का पूर्ण रूप से या आंशिक रूप से जिन्स में भुगतान करने का अधिकार दे सकती हैं। उपयुक्त सरकार जाँच करने तथा न्यूनतम मजदूरी की दरें निश्चित करने के लिए परामर्श देने के लिए समितियाँ नियुक्त कर सकती हैं। इन दरों में परिवर्तन के लिए सलाहकार समितियाँ भी नियुक्त की जा सकती हैं। सलाहकार समितियों के कार्यों का समन्वय करने तथा सरकार को मजदूरी की न्यूनतम दरों के निश्चित करने तथा पुनः अवलोकन की सलाह देने के लिए एक सलाहकार बोर्ड नियुक्त करने की व्यवस्था है। केन्द्रीय तथा प्रदेशीय सरकारों को सलाह देने तथा प्रदेशीय सलाहकार बोर्डों के कार्यों का समन्वय करने के लिए एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की स्थापना भी केन्द्रीय सरकार कर सकती है। ये संस्थायें मालिक तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों की समान संख्या में तथा कुल सदस्यों के एक तिहाई से कम स्वतन्त्र व्यक्तियों से निर्मित होंगी। उपयुक्त सरकारें अधिनियम के अन्तर्गत सूची में अंकित रोजगारों में कार्य के दैनिक घंटे भी निश्चित कर सकती हैं एक साप्ताहिक अवकाश दे सकती हैं, तथा समयोपरि मजदूरी की अदायगी का नियम बना सकती हैं। इस अधिनियम के अनुसार उचित रेकार्ड भी रखने होंगे। मजदूरी की न्यूनतम दरों से कम अदायगी के कारण उत्पन्न दावों को जाँचने सुनने तथा निश्चित करने के लिए निरीक्षक तथा अधिकारी नियुक्त किए जा सकते हैं तथा अपराधियों के दण्ड की भी व्यवस्था की गई है।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम में संशोधन—

इस अधिनियम के अनुसार कृषि रोजगारों में (अधिनियम से लगी अनुसूची भाग २) अधिक तीन वर्षों में तथा अन्य रोजगारों में (अनुसूची भाग १) अधिक दो वर्षों में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करनी होगी। निश्चित न्यूनतम मजदूरी दरों में समय-समय पर, परन्तु अधिक से अधिक ५ वर्षों में संशोधन किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार ने १९४९ में कुछ नियम भी बनाए तथा प्रदेशीय सरकारों ने इन नियमों का परिपालन किया तथा उनको १५ मार्च १९५० से पूर्व न्यूनतम मजदूरी निश्चित करनी थी। एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड तथा प्रदेशों में योग्य अधिकारियों की नियुक्ति भी कर दी गई। परन्तु तब भी निर्धारित समय में न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने में विलम्ब हुआ तथा सरकार ने एक अध्यादेश तथा बाद में संशोधित अधिनियम द्वारा न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की तिथि ३१ मार्च १९५१ तक बढ़ा दी। यह तिथि फिर ३१ मार्च १९५२ तक बढ़ायी गई। खेतिहर श्रमिकों की जितनी अपनी विशेष समस्याएं हैं न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के

लिए एक अतिरिक्त वर्ष दिया गया। तथापि ३१ मार्च १९५२ तक अनुसूची में वर्णित समस्त रोजगारों के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित न हो सकी और अप्रैल १९५४ में अधिनियम में संशोधन करके यह समय ३१ दिसम्बर १९५४ तक बढ़ा दिया गया। बार-बार तारीखों का बढ़ाना इंगित करता है कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करना कितना कठिन कार्य है। १९५७ में अधिनियम में एक अन्य महत्वपूर्ण संशोधन हुआ। १९५७ के संशोधित अधिनियम ने मजदूरी के निश्चित करने की अवधि ३१ दिसम्बर १९५९ तक बढ़ा दी तथा अधिनियम को कार्यान्वित करने में हुई अन्य कठिनाइयों को दूर किया है। अब मजदूरी की न्यूनतम दरों का पाँच वर्ष पूरे होने पर पुनः विचार तथा पुनः निर्धारण हो सकता है।

परन्तु अनुसूची में दिए गए उद्योगों में दिसम्बर १९५९ तक भी सभी प्रदेशों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं की जा सकी। अगस्त १९६० में श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन ने इस बात का सुझाव दिया कि न्यूनतम मजदूरी लागू करने की तिथि निर्धारित करने के लिए प्रदेशीय सरकारें अपने कार्यक्रम के अनुसार स्वयं अधिनियम पारित करें। केन्द्रीय न्यूनतम मजदूरी सलाहकार बोर्ड ने यह सिफारिश की कि न्यूनतम मजदूरी लागू करने का कोई निश्चित समय रखा ही न जाय। इन सिफारिशों को मानते हुए सरकार ने १९६१ में न्यूनतम मजदूरी (संशोधित) अधिनियम पारित किया है। इसके अनुसार न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए जो निश्चित तिथि की बाध्यता थी उसे समाप्त कर दिया गया है। प्रदेशीय सरकारें अब आवश्यकतानुसार किसी भी समय किसी भी रोजगार या किसी भी वर्ग के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी की दरें प्रदेश के किसी भी भाग में निर्धारित कर सकती हैं। यदि कोई विवाद किसी अधिकरण (Tribunal) के सम्मुख है या अधिकरण का निर्णय लागू है तो अनुसूचित रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं की जाएगी। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत, यदि सरकार कोई नियम बनाती है तो उसे तीस दिनों के अन्दर संसद के सम्मुख प्रस्तुत करना होगा।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का कार्यान्वित होना —

अधिनियम के उपबन्धों के अन्तर्गत कुछ राज्यों को छोड़कर समस्त प्रदेशीय सरकारों ने अधिनियम के सभी सूची नम्बर १ में वर्णित रोजगारों की न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी है। कुछ राज्यों में इन दरों में महँगाई का निर्वाह भत्ता सम्मिलित कर लिया गया है और कुछ राज्यों में ये अलग सम्मिलित नहीं किए गए हैं। विभिन्न राज्यों में तथा विभिन्न रोजगारों में दरें भिन्न-भिन्न हैं तथा समय समय पर इनको दोहराया भी गया है (इन के विस्तृत विवरण के लिए श्रम मन्त्रालय की वार्षिक पुस्तिकाएँ देखिए)। कुछ राज्य सरकारों ने इस अधिनियम का क्षेत्र अधिनियम की भाग सूची में दिए गए उद्योगों के अतिरिक्त अन्य उद्योगों तक भी बढ़ा दिया है—उदाहरणतया देहली में दुकानों तथा व्यापारिक संस्थानों, पंजाब में इंजीनियरिंग कारखानों तथा अन्य व धातु उद्योगों में, महाराष्ट्र व गुजरात में 'फाउन्ड्री' उद्योग

होटलों तथा जलपान गृहों छापाखानों और रुई धुनने तथा पूनी बनाने के कारखानों में एवं दुकान व वाणिज्य संस्थानों में मध्यप्रदेश में सीमेंट, कांच चीनी के बर्तन व छापाखानों आदि में अजमेर (राजस्थान) में कपड़ा उद्योगों, ऊन की पूनी बनाने तथा ऊन की छटाई के कारखानों तथा छापाखानों व गोटा किनारी उद्योगों में; हैदराबाद में रुई के कारखानों में पंजाब में कपड़ा उद्योग में मैसूर में रेशमी उद्योग में उड़ीसा में मुढ़का बनाने में केरल में सन उद्योग और इलायची बागान में तथा कई प्रदेशों में अन्य कई उद्योगों में जहां श्रमिकों को कम वेतन मिलता था इस अधिनियम को लागू किया गया है। जहां तक अधिनियम के परिशिष्ट II का सम्बन्ध है जिसमें खेतीहर रोजगार का उल्लेख है अधिकतर राज्यों ने समस्त राज्य के या केवल कुछ निर्धारित क्षेत्रों के खेतीहर श्रमिकों के लिए मजदूरी निश्चित कर दी है। केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड की भी १९४९ में स्थापना कर दी गई थी और नवम्बर १९५५ में इस बोर्ड का पुनर्गठन हुआ है। इस बोर्ड में अब अनुसूचित रोजगारों के श्रमिकों और मालिकों के प्रत्येक ६ प्रतिनिधि होते हैं तथा राज्य सरकारों के भी प्रतिनिधि हैं। केन्द्रीय रोजगार व श्रम मन्त्रालय के संयुक्त सचिव इसके प्रधान हैं। एक अन्य महत्वपूर्ण पग जो इस सम्बन्ध में उठाया गया है वह विभिन्न उद्योगों के लिए मजदूरी बोर्डों की स्थापना है। मजदूरी बोर्ड १९५७ से कई उद्योगों के लिए स्थापित कर दिए गए हैं और इन्होंने भी न्यूनतम मजदूरी निश्चित की है।

यह भी उल्लेखनीय है कि कुछ प्रदेशों के विभिन्न उद्योगों में औद्योगिक अधिकरणों के पंचाट द्वारा अथवा विभिन्न समितियों की सिफारिशों पर न्यूनतम मजदूरी भी निश्चित की गई है। उदाहरणतया-उत्तर प्रदेश तथा बिहार चीनी फैक्टरी श्रमिक (मजदूरी) जांच समिति की सिफारिशों पर उ० प्र० में चीनी उद्योग के लिए एक न्यूनतम इकट्ठी मजदूरी १९४६ में ४६ रु० प्रतिमाह निश्चित की गई जो १९४७-४८ में ६२ रु० प्रतिमाह तक बढ़ा दी गई तथा पुनः १९४८-४९ में ५५ रु० प्रतिमाह कर दी गई जो अब तक लागू है। अनुसूची भाग १ में दिए गए सब उद्योगों में भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी गई है। कुछ मुख्य उद्योगों में जैसे कपास तथा ऊनी कपड़ा उद्योग विद्युत व्यवसाय कानपुर का इंजीनियरिंग उद्योग बरेली की पश्चिमी भारत दियासलाई कम्पनी सहारनपुर की स्टार कागज मिल मोदीनगर के लालटेन मर्स देहरादून के चाय बागान आदि में भी उत्तर प्रदेश सरकार ने न्यूनतम मजदूरी निश्चित कर दी है। मजदूरी का प्रश्न समय-समय पर अनेक समितियों को विचार विमर्श के लिए दिया जा चुका है तथा न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का आन्दोलन गहरी जड़ पकड़ चुका है।

अधिनियम का आलोचनात्मक मूल्यांकन :—

इस विषय में कोई मतभेद नहीं हो सकता है कि देश में न्यूनतम मजदूरी विधान पारित करने की बहुत आवश्यकता है किन्तु जैसा कि पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि इस सम्बन्ध में कुछ सिद्धान्तों को दृष्टि में रखना होगा तथा कठिनाइयों

का समाधान करना होगा। न्यूनतम मजदूरी इतनी अधिक भी निश्चित नहीं कर देनी चाहिए जिसे उद्योग सहन न कर सकें और कुछ उद्योगों को अपना व्यवसाय ही छोड़ना पड़े जिसके कारण बेरोजगारी बढ़े। यहां कानपुर कपड़ा मिलों का उदाहरण लिया जा सकता है जहां उत्तर प्रदेश सरकार ने सन् १९४८ में न्यूनतम मजदूरी १२० रु० प्रति माह निश्चित कर दी थी इस आदेश को वापिस लेना पड़ा था। १९४८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम का क्षेत्र भी बहुत संकुचित प्रतीत होता है। इसमें अनेक नियमित तथा अनियमित उद्योग नहीं आते जिनमें मजदूरी बहुत कम है तथा जहां श्रमिकों से अधिक परिश्रम लिया जाता है जैसे छत एवं चटाई उत्पादन दर्जीगिर बनाना चीनी के बर्तन चूड़ी बनाना इत्यादि। कुछ अन्य फैक्ट्रियां भी हैं जैसे जूट, कपास पेलना तथा ऊनी बनाना रेशम कोयला खान आदि जहां मजदूरी सन्तोषजनक नहीं है किन्तु अधिनियम इनका भी कोई उल्लेख नहीं करता। यह उचित होगा कि अधिनियम समस्त रोजगारों में लागू कर दिया जाय।

न्यूनतम मजदूरी अधिनियम की अन्य गम्भीर कमी यह है कि जब तक किसी राज्य में एक उद्योग में १००० कर्मचारी न हों न्यूनतम मजदूरी निश्चित नहीं की जा सकती। अनेक प्रदेशों में बहुत से ऐसे उद्योग हैं जहां श्रमिकों की संख्या १००० से कम है। अतः छोटे तथा अनियमित उद्योगों की एक बड़ी संख्या पर यह अधिनियम लागू नहीं होता। इन उद्योगों में भी न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। अधिनियम के अंतर्गत की गई न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था हुई सन्तोषजनक भी नहीं है। एक स्थायी बोर्ड होना चाहिए अथवा प्रत्येक उद्योग में मजदूरी दरें निश्चित करने तथा दोहराने के लिए एक समिति होनी चाहिये। अगस्त, १९५४ में स्थायी श्रम समिति ने भी सिफारिश की थी कि न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने वाली व्यवस्था की तत्काल स्थापना होनी चाहिये। यह अधिनियम न्यूनतम मजदूरी की परिभाषा भी नहीं करता जिसके मुख्य सिद्धान्त भली भांति निश्चित हो जाने चाहियें।

इसके अतिरिक्त यह भी उल्लेखनीय है कि अधिनियम को लागू करने की अवधि बार-बार बढ़ाने से अनेक वर्षों तक अनेक श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी नहीं दी गई जिसके परिणामस्वरूप उन्हें आर्थिक क्षति पहुंची। एक समान राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की आवश्यकता है तथा केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड ने भी सिफारिश की है कि सम्पूर्ण भारत में राष्ट्रीय न्यूनतम मजदूरी १।।) रु० से २ रु० प्रतिदिन तक होनी चाहिये। पिछले कुछ वर्षों में महंगाई भत्ते का एक भाग मूल मजदूरी में मिलाने की मांग की गई है क्योंकि पूर्व युद्ध भाव स्तर पर कीमतों के आने की कोई सम्भावना नहीं है। केन्द्रीय सरकार पहिले ही इस दिशा में कुछ पग उठा चुकी है तथा आशा की जाती है कि निजी क्षेत्र में भी इसका अनुसरण किया जायगा।

न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिये आदर्श सिद्धान्त (Norms)

न्यूनतम मजदूरी सलाहकार समिति की सिफारिशों पर तथा औद्योगिक अधिकरणों के विभिन्न निर्णयों को देखते हुए सरकार ने न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी निर्धारित करने के लिए कुछ सामान्य सिद्धान्त बनाये हैं। इन में एक मुख्य सिद्धान्त यह है कि न्यूनतम मजदूरी केवल जीवन निर्वाह के लिये ही पर्याप्त नहीं होनी चाहिये वरन् इतनी होनी चाहिये कि श्रमिक शिक्षा चिकित्सा और अन्य सुविधाओं के द्वारा अपनी कार्य कुशलता बनाये रख सके। इसके अतिरिक्त न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय मानवीय आवश्यकताओं परिवार के जीविकोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या निर्वाह व्यय प्रचलित मजदूरी दर आदि का भी ध्यान रखना चाहिये और इससे क्षेत्र की प्रचलित मजदूरी में कोई विघ्न नहीं पड़ना चाहिये। एक वयस्क श्रमिक की मजदूरी साधारणतया १ १२ रु० से लेकर २ रु० प्रतिदिन तक होनी चाहिये। यह मजदूरी सब सम्मिलित दर के हिसाब से होनी चाहिये जिसमें मंहगाई भत्ता आदि भी सम्मिलित होना चाहिये। न्यूनतम मजदूरी कुशल अर्द्ध-कुशल और अकुशल सभी प्रकार के श्रमिकों के लिए प्रत्येक क्षेत्र में निर्धारित होनी चाहिये।

भारतीय श्रम सम्मेलन के १५वें अधिवेशन में जो नई देहली में जुलाई १९५७ में हुआ एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किया गया। इस प्रस्ताव द्वारा यह प्रथम बार स्पष्ट किया गया कि न्यूनतम मजदूरी का आधार 'आवश्यकता' होना चाहिए और मजदूरी इतनी होनी चाहिए कि औद्योगिक श्रमिक को न्यूनतम मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति का आश्वासन रहे। मजदूरी निर्धारित करने वाले अधिकारियों के मार्ग प्रदर्शन के लिये जिनमें मजदूरी समितियाँ मजदूरी बोर्ड विवाचक आदि सम्मिलित हैं निम्नलिखित आदर्श नियम निर्धारित किये गये हैं:—

(i) न्यूनतम मजदूरी की गणना करते समय एक सामान्य श्रमिक परिवार में एक धनोपार्जन करने वाले व्यक्ति पर निर्भर तीन ऐसे सदस्य माने जाने चाहियें जिनको उपभोक्ता इकाई (Consumption Units) कहा जा सकता है। इस सम्बन्ध में स्त्रियों बच्चों और किशोरों द्वारा यदि कोई आय होती है तो उसे सम्मिलित नहीं करना चाहिए।

(ii) न्यूनतम भोजन की आवश्यकताओं की गणना के लिए एक साधारण कार्य करने वाले औसत व्यस्क भारतीय के लिए कैलोरी की मात्रा का आधार वही माना जाना चाहिये जिसका सुझाव डाक्टर एक्रोयड ने दिया था (२६०० कैलोरी प्रतिदिन)।

(iii) कपड़े की आवश्यकता की गणना इस आधार पर की जानी चाहिए कि प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति १८ गज कपड़ा चाहिये। इस आधार पर चार सदस्यों वाले औसत श्रमिक परिवार के लिए कुल ७२ गज कपड़े की प्रतिवर्ष आवश्यकता मानी जानी चाहिए।

(iv) मकानों के सम्बन्ध में यह कहा गया कि न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करते समय उस किराये को ध्यान में रखना चाहिये जो सरकार के औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत न्यूनतम क्षेत्र के लिए निर्धारित किया जाता है।

(v) ईंधन रोशनी और अन्य विभिन्न मदों पर व्यय के लिए कुल न्यूनतम मजदूरी का २० प्रतिशत माना जाना चाहिये। प्रस्ताव में यह भी कहा गया था कि यदि कहीं भी न्यूनतम मजदूरी ऊपर लिखे आदर्श सिद्धान्तों के हिसाब से कम निश्चित की जाये तो मजदूरी निश्चित करने वाली व्यवस्था का यह कर्तव्य होगा कि वह उन अवस्थाओं को न्यायोचित सिद्ध करे जिनके कारण वह उपरोक्त आदर्श नियमों का पालन करने में असमर्थ रह। उचित मजदूरी के सम्बन्ध म यह सुझाव दिया गया कि उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट की सिफारिशों को आधार मानकर मजदूरी बोर्डों को प्रत्येक उद्योग की सभी बातों को विस्तार रूप से देखना चाहिये। इस प्रस्ताव को बहुत महत्वपूर्ण माना गया है क्योंकि इसने प्रथम बार न्यूनतम मजदूरी के समस्त विचार को एक ठोस आधार प्रदान किया है। मजदूरी बोर्ड अपनी सिफारिशें करते समय प्रस्ताव में दिये गये आदर्श नियमों को ध्यान म रखते हैं।

कृषि श्रमिकों के लिये न्यूनतम मजदूरी—इसकी बाधायें —

अधिनियम की अनुसूची भाग II खेतीहर श्रमिकों से सम्बन्धित है। किन्तु खेतीहर श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की समस्या फैक्टरियों के श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने से अधिक कठिन है। हमें देश के विभिन्न भागों में खेतीहर मजदूरी के बहुत कम आंकड़े उपलब्ध हैं। इसके अतिरिक्त कृषि कार्यों में कार्य दिवस के काम घण्टों का निश्चित करना सरल कार्य नहीं है। खेतीहर श्रमिकों का काम ऐसा है कि यह नियमित रूप से नहीं किया जा सकता तथा साधारणतया एक ही श्रमिक खेती की विभिन्न क्रियाओं में भिन्न-भिन्न काम करता है। इसके अतिरिक्त भागों में अधिकतर मजदूरी जिन्स में दी जाती है जिसका मूल्य नकदी में निर्धारित करना कठिन हो जाता है। फिर छोटे-छोटे जमींदारों की बहुत अधिक संख्या है जिन्हें इस अधिनियम को कार्यान्वित करना होगा। छोटे-छोटे जमींदारों की अत्यधिक संख्या ऐसे किसी अधिनियम को लागू करने में बहुत अधिक कठिनाई उत्पन्न करेगी। भारत में कृषकों का रजिस्टर तथा हिसाब रखने का न तो कोई ज्ञान ही होता है न ही इस सम्बन्ध में कोई रुचि होती है जबकि यह ज्ञान तथा रुचि अधिनियम को लागू करने के लिए अत्यन्त आवश्यक है। अतः यह उचित था कि न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने का प्रश्न उस समय तक स्थगित कर दिया जाय जब तक कि पूर्ण जांच न कर ली जाये तथा कृषि श्रमिकों में प्रचलित मजदूरी तथा उनकी दशाओं के विषय में आंकड़े एकत्रित न कर लिये जायें। अतः इस विषय में एक अखिल भारतीय कृषि श्रमिक जांच १९५०–५१ में की गई। इस जांच की रिपोर्ट भी प्रकाशित हो गई है तथा जनवरी १९५६ से एक दूसरी अखिल भारतीय कृषि श्रमिक जांच आरम्भ की गई जो अब पूर्ण हो चुकी है। (देखिये-कृषि श्रमिक का अध्याय) इसका ऊपर उल्लेख हो

चुका है कि न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की तिथि ३१ दिसम्बर १९५९ तक बढ़ा दी गई थी। अब इस विषय में प्रदेश सरकारों को छूट दे दी गई है कि वे आवश्यकतानुसार न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर सकती हैं।

लगभग समस्त प्रदेशों में कृषि श्रमिकों के हेतु न्यूनतम मजदूरी की दरें निश्चित कर दी गई हैं। यद्यपि अधिकतर प्रदेशों में इसके लिए कुछ विशेष क्षेत्र ही लिए गये हैं। उदाहरणतया केरल उड़ीसा पंजाब राजस्थान देहली और त्रिपुरा में समस्त प्रदेश में कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी गई है तथा असम आन्ध्र बिहार, महाराष्ट्र हिमाचल प्रदेश मध्य प्रदेश मैसूर, उत्तर प्रदेश तथा पश्चिमी बंगाल म राज्य के कुछ निश्चित क्षेत्रों में ही कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की गई है। उत्तर प्रदेश में १९५१ में एक समिति की सिफारिशों के अनुसार कृषक श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी १२ पूर्वी जिलों (जिन जिलों को कम मजदूरी वाले जिले कहा जाता है) के ५० एकड़ या उससे अधिक के खेतों में कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए निर्धारित कर दी गई थी। तत्पश्चात इन १२ जिलों में सभी खेतों के श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी गई। उत्तर प्रदेश के अन्य जिलों में ५० एकड़ या उससे अधिक के खेतों म न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी गई परन्तु ४ पहाड़ी जिलों को छोड़ दिया गया। मजदूरी की दरें निम्नलिखित हैं —वयस्कों के लिए १ रु प्रतिदिन अथवा २६ रु० प्रति माह तथा १८ वर्ष की आयु से कम के व्यक्तियों के लिए ६२ न पै प्रतिदिन अथवा १६ रु० प्रति माह। इसके पश्चात सब जिलों और फार्मों में न्यूनतम दरों को लागू कर दिया गया है। बालकों के लिए दर ६२ नए पैसे प्रतिदिन अथवा १६.२२ रु० प्रति माह निश्चित की गई है। अगस्त १९५८ से नैनीताल जिले के तराई और भाभर क्षेत्र के ५० एकड़ या अधिक की सभी संगठित कृषि फार्मों पर भी न्यूनतम मजदूरी की उपरोक्त दर लागू कर दी गई है। दिसम्बर १९६० से अन्य पहाड़ी जिलों में भी न्यूनतम मजदूरी इसी दर से निर्धारित कर दी गई है। न्यूनतम मजदूरी नकदी या जिन्स या दोनों में दी जा सकती है।

अतः इस प्रकार भारत में श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की दिशा में कार्य प्रारम्भ हो गया है। यह पूर्ण रूप से आशा की जाती है कि मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था शनैः शनैः सुधरेगी तथा एक समान मूल मजदूरी दर का प्रादुर्भाव होगा और उसका कार्यान्वित होना भी सम्भव होगा।

न्यूनतम मजदूरी के प्रश्न से सम्बन्धित मजदूरी के सामानीकरण की भी समस्या है तथा "उचित मजदूरी" की परिभाषा देने तथा उसे लागू करने की समस्या भी है। सबसे पहले हम "उचित मजदूरी" के प्रश्न पर विचार करेंगे।

उचित मजदूरी की समस्या (The Problem of a Fair Wage) —

उचित मजदूरी की समस्या एक महत्वपूर्ण समस्या है। प्रत्येक देश में अर्थशास्त्रियों ने इस समस्या पर विचार किया है। युद्ध के पश्चात् उत्पादन में वृद्धि करने

के लिए ऐसी सभी सम्भावनाओं पर विचार किया गया है जिनसे देश में श्रमिकों तथा प्रबन्धकों के सम्बन्धों में सुधार हो सके। यह सब ही मानते हैं कि श्रमिकों तथा प्रबन्धकों के व्यवहार तथा दृष्टिकोण में केवल मनोवैज्ञानिक परिवर्तन ही नहीं होना चाहिए वरन् कुछ ऐसे स्पष्ट प्रमाण भी प्रस्तुत किए जाने चाहियें जिनसे ऐसा प्रतीत हो कि मालिक तथा उद्योगों के प्रबन्धक श्रमिकों के प्रति उचित व्यवहार रखते हैं। इस प्रकार ही झगड़ों के मूल कारणों को दूर किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्वपूर्ण समस्यायें लाभ-सहभाजन तथा उचित मजदूरी की हैं। यह समस्यायें १९४७ के उद्योग-सम्मेलन में उस समय प्रकाश में आयीं जिस समय औद्योगिक विराम सन्धि प्रस्ताव पारित हुआ था। इस सम्मेलन में यह प्रस्ताव पारित किया गया था कि पूंजी के प्रतिफल तथा श्रमिक के पारिश्रमिक देने की प्रणाली की इस प्रकार व्यवस्था की जानी चाहिए कि पूंजीपति तथा श्रमिक दोनों को ही अपने संयुक्त प्रयत्न से किए गए उत्पादन में उचित भाग मिलता रहे। उपभोक्ताओं तथा मूल उत्पादकों के हित को ध्यान में रखते हुए, कर लगाकर एवं अन्य तरीकों द्वारा अत्यधिक लाभ पर रोकथाम लगाई जा सकती है। श्रमिक को उचित मजदूरी मिलने की व्यवस्था भी इसके साथ ही होनी चाहिए। उद्योग में लगी पूंजी पर उचित प्रतिफल मिलने तथा व्यवसाय को विस्तृत करने व उसे कायम रखने के लिए समुचित आरक्षित निधि (Reserve Fund) की भी व्यवस्था होनी चाहिए। ६ अप्रैल १९४८ को केन्द्रीय सरकार ने अपनी औद्योगिक नीति के सम्बन्ध में इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया था। लाभ-सहभाजन की समस्या की जांच करने के लिए एक समिति भी नियुक्त की गई थी। इस समिति ने १९४८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत कर दी थी। केन्द्रीय सलाहकार परिषद ने एक 'उचित मजदूरी समिति' भी नियुक्त की जिसकी रिपोर्ट १९४९ में प्रकाशित हुई। जून १९५० में इसकी सिफारिशों के आधार पर एक विधेयक का मसौदा तैयार करके संसद में प्रस्तुत किया गया। परन्तु यह विधेयक स्वीकृत न हो सका और व्यपगत (Lapse) हो गया। संविधान में इस बात का उल्लेख है कि राज्य को इस बात का प्रयत्न करना होगा कि समस्त श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी मिलती रहे।

उचित मजदूरी क्या है ? इसके बारे में विभिन्न विचार —

उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट में उचित मजदूरी पर विभिन्न दृष्टिकोणों से बड़ा रोचक अध्ययन किया गया है। समिति के शब्दों में "राष्ट्रीय आय की स्थिति को मजदूरी की समस्या से सबसे अधिक सम्बद्ध (Relevant) कहा जा सकता है क्योंकि किसी भी मजदूरी नीति को उस समय तक न्यायोचित और उचित दृष्टि से ठोस नहीं कहा जा सकता जब तक उस नीति द्वारा राष्ट्रीय आय में वृद्धि नहीं होती और उस वृद्धि में से श्रमिकों को वैध अथवा उचित भाग नहीं मिलता।" प्रथम तो यही प्रश्न सामने आता है कि "उचित मजदूरी क्या है ? उचित मजदूरी की परिभाषा सीधी एवं सरल भाषा में देना बहुत कठिन है। उचित मजदूरी को निश्चित करने में देश

की विभिन्न परिस्थितियों और देश के विभिन्न उद्योगों एवं क्षेत्रों की परिस्थितियों को दृष्टि में रखना आवश्यक है। "एनसाइक्लोपीडिया ऑफ सोशल साइन्सेज" नामक पुस्तक के अनुसार उचित मजदूरी श्रमिकों द्वारा प्राप्त उस मजदूरी को कहते हैं जो उनको एक समान (Equal) कुशल कठिन और अप्रिय कार्य करने के लिए मिलती है। किन्तु यह परिभाषा इस बात को मानकर चलती है कि देश की आर्थिक स्थिति की दृष्टि से किसी भी विशेष औद्योगिक संस्था में एक ऐसे आदर्श स्तर बनाने की आवश्यकता है जिस स्तर के अनुसार एक समान तथा एक ही स्थिति के उद्योगों में मजदूरी निश्चित की जा सके। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ ने "न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था" (Minimum Wage Fixing Machinery) के सम्बन्ध में एक सिफारिश की थी। इसमें भी न्यूनतम मजदूरी को निश्चित करने के लिए लगभग इसी प्रकार की पद्धति का सुझाव है। परन्तु इसमें एक अन्य सुझाव यह भी है कि जो भी उद्योग इस हेतु छांटा जाए कि उसके आधार पर न्यूनतम मजदूरी का स्तर दूसरे उद्योगों तथा व्यवसायों के लिए बनाया जा सके वह उद्योग ऐसा होना चाहिए जिसमें श्रमिक पर्याप्त रूप से संगठित हों और जिसमें सामूहिक समझौते प्रभावशाली हों। यदि ऐसा स्तर निर्धारित करने वाला उद्योग न मिले तो देश में प्रचलित साधारण मजदूरी अथवा किसी क्षेत्र विशेष की मजदूरी को न्यूनतम मजदूरी निश्चित करने के लिए स्तर मान लेना चाहिए।

यदि हम इस विषय पर अर्थशास्त्र सम्बन्धी साहित्य पर दृष्टिपात करें तो ज्ञात होता है कि अर्थशास्त्रियों ने भी किसी विशेष उद्योग में ही एक आदर्श या स्तर को मानकर 'उचित मजदूरी' की परिभाषा देना ठीक समझा है। 'मार्शल के अनुसार किसी व्यवसाय में मजदूरी की प्रचलित दर को उस समय ही उचित मजदूरी कहा जा सकता है जब यह मजदूरी लगभग उस मजदूरी के स्तर पर हो जो अन्य व्यवसायों में उन कार्यों के करने के लिए औसत रूप से दी जाती है जो कार्य एक सी कठिनाई एवं एक-सी अरुचि के हों तथा जो एक-सी दुर्लभ प्राकृतिक योग्यता (Equally Rare Natural Abilities) वाला कार्य हों अथवा जिनमें एक-सी लागत वाले प्रशिक्षण की आवश्यकता हो। प्रो० 'पीगू' ने भी उचित मजदूरी की विस्तृत एवं संकुचित दोनों दृष्टि से परिभाषा की है। संकुचित दृष्टि से मजदूरी दर को उस समय 'उचित' कहा जाएगा जब मजदूरी उस चालू दर के बराबर हो जो एक ही प्रकार के श्रमिकों को वैसे ही व्यवसाय में तथा आस-पास के क्षेत्रों में मिलती है। विस्तृत दृष्टिकोण के अनुसार मजदूरी उचित तभी होगी जब मजदूरी दर सम्पूर्ण देश में एवं अधिकतर व्यापारों में एक जैसे कार्य के लिए जो अधिकतर प्रचलित दर हो उसके बराबर हो।

पर्याप्त, न्यूनतम एवं उचित मजदूरी —

उचित मजदूरी पर प्रचलित विचारों को ठीक प्रकार से समझने के लिए पर्याप्त एवं न्यूनतम मजदूरी के बीच अन्तर करना आवश्यक है। न्यूनतम मजदूरी

की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है "न्यूनतम मजदूरी वह मजदूरी है जो न केवल निर्वाह के लिए ही पर्याप्त हो वरन् उसमें कुछ अधिक भी हो।" समिति का कहना है कि "हमारे विचार से न्यूनतम मजदूरी न केवल निर्वाह के लिए पर्याप्त होनी चाहिए वरन् श्रमिक की कार्य-कुशलता को कायम रखने के लिए भी पर्याप्त होनी चाहिए। इस उद्देश्य से न्यूनतम मजदूरी इतनी अवश्य होनी चाहिए कि इससे शिक्षा, आवश्यक चिकित्सा एवं कुछ सुविधाओं की व्यवस्था भी की जा सके।" अब प्रश्न यह उठता है कि पर्याप्त मजदूरी क्या है? इसका स्तर न्यूनतम मजदूरी के स्तर से ऊँचा होना चाहिए। समिति के शब्दों में "इस बात से सब सहमत हैं कि न्यूनतम मजदूरी इतनी होनी चाहिए कि पुरुष श्रमिक को अपने व अपने परिवार के लिए न केवल आवश्यक भोजन, वस्त्र एवं आवास ही प्राप्त हो सके वरन् यह मजदूरी इतनी अवश्य हो कि श्रमिक पर्याप्त सुख से जीवन व्यतीत कर सके, अपने बच्चों को शिक्षा प्रदान कर सके, अस्वस्थता के समय उपचार करा सके, उसकी अन्य सामाजिक आवश्यकताएँ भी पूरी हो सकें तथा बुढ़ापे एवं अन्य महत्त्वपूर्ण अवसरों के लिए बीमा आदि की व्यवस्था भी की जा सके।

उपरोक्त विवेचन के आधार पर अब हम उचित मजदूरी के प्रश्न पर पुनः विचार कर सकते हैं। समिति के अधिकांश सदस्यों के मतानुसार उचित मजदूरी पर्याप्त मजदूरी और न्यूनतम मजदूरी के मध्य किसी बिन्दु पर निश्चित होनी चाहिए। फिर भी समिति के कुछ सदस्य न्यूनतम मजदूरी की सीमा से आगे बढ़ने को तैयार नहीं हैं और कुछ सदस्य पर्याप्त मजदूरी से कम किसी भी मजदूरी को उचित मजदूरी मानने के लिए तैयार नहीं हैं। समिति के अधिकांश सदस्यों का यह विचार कि उचित मजदूरी न्यूनतम मजदूरी से तनिक अधिक और पर्याप्त मजदूरी से तनिक कम होनी चाहिए, ऐसे ही विचार का अनुमोदन है जो आज अन्य देशों में भी प्रचलित है। भारतीय राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस का विचार है कि "उचित मजदूरी पर्याप्त मजदूरी को धीरे धीरे प्राप्त करने की ओर उठा हुआ एक कदम है।" उचित मजदूरी के प्रश्न पर बम्बई सरकार के विचार भी उल्लेखनीय हैं, "यदि प्रतियोगात्मक (Competitive) परिस्थितियों में कोई भी उद्योग पर्याप्त मजदूरी दे सकने में समर्थ हो सकता है तो पर्याप्त मजदूरी से कम कोई भी मजदूरी उचित नहीं हो सकती। न्यूनतम मजदूरी तो ऐसा स्तर निर्धारित कर देती है जिससे कम तो मजदूरी हो ही नहीं सकती अर्थात् यह ऐसी न्यूनतम सीमा बना देती है जिससे कम मजदूरी किसी श्रमिक को नहीं दी जानी चाहिए। उचित मजदूरी न्यूनतम मजदूरी के ऊपर निश्चित की जाती है और पर्याप्त मजदूरी को पाने के लिए जिस प्रक्रिया (Process) का होना आवश्यक है उसके लिए इसको महत्त्वपूर्ण अंग माना जा सकता है।

उचित मजदूरी कैसे निश्चित की जाय ?

उचित मजदूरी का अर्थ समझ लेने के पश्चात् इस बात पर विचार करना

आवश्यक हो जाता है कि उचित मजदूरी को कार्यान्वित करने के लिए कौन-सी व्यावहारिक प्रणाली अपनाई जाए। समिति के विचारानुसार उचित मजदूरी की कम से कम सीमा तो न्यूनतम मजदूरी द्वारा निश्चित हो जाती है किन्तु उच्चतम सीमा उद्योग की भुगतान क्षमता द्वारा निर्धारित होती है। यह भुगतान क्षमता निम्नलिखित बातों पर निर्भर करती है — (i) श्रमिकों की उत्पादकता (ii) मजदूरी की प्रचलित दर, (iii) राष्ट्रीय आय का स्तर तथा उसका वितरण (iv) देश की आर्थिक व्यवस्था में उस उद्योग का स्थान। न्यूनतम मजदूरी का विस्तृत विवरण ऊपर दिया जा चुका है। अब हम उद्योग की भुगतान क्षमता की समस्या का विवेचन करेंगे क्योंकि इस महत्वपूर्ण समस्या पर भी सावधानीपूर्वक विचार करने की आवश्यकता है।

उद्योग की भुगतान क्षमता (Capacity of Industry to Pay) —

किसी उद्योग की उत्पादकता ही एक ऐसा स्रोत है जिससे मजदूरी दी जाती है। न तो शक्तिशाली श्रमिक संघों के दबाव से और न ही राज्य की किसी व्यवस्था द्वारा कुछ हेरफेर करके समस्त मजदूरी को उद्योग की भुगतान क्षमता से अधिक बढ़ाया जा सकता है। यह केवल अस्थायी रूप से लाभप्रद हो सकें वरना यदि मजदूरी को उद्योग की भुगतान क्षमता से अधिक बढ़ाने के प्रयत्न किए जायेंगे तो बेरोजगारी, मुद्रास्फीति (Inflation) आदि जैसे कुछ दुःखदायी परिणाम प्रकट हो जायेंगे। यदि किसी समय एक उद्योग में मजदूरी इतनी अधिक बढ़ा भी दी जाय कि उस उद्योग में मशीनरी के टूट-फूट जाने पर भी उसे पूर्णरूप से बदला न जा सके, तब इसका परिणाम यह होगा कि उत्पादन कम हो जायगा और इसके फलस्वरूप भविष्य में मजदूरी गिर जाएगी। कोई भी उद्योग अपनी भुगतान क्षमता से अधिक मजदूरी तभी दे सकता है जब उस उद्योग को सरकार द्वारा अनुदान (Subsidy) दिया जाता हो परन्तु इसका अर्थ यह होगा कि अन्य उद्योगों की भुगतान क्षमता को प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से कम कर दिया जाता है। यह भी सम्भव है कि यदि कोई उद्योग किसी ऐसी कठिनाई में ग्रस्त हो जिससे उसे छुटकारा मिलने की शीघ्र ही सम्भावना हो तब अस्थायी काल के लिए वह अपनी भुगतान क्षमता से अधिक मजदूरी देने के लिए तैयार हो जाय।

श्रमिकों द्वारा जब भी ऊँचे दर पर मजदूरी की माँग की जाती है तभी मालिक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि उद्योग ऊँची मजदूरी देने की परिस्थितियों में नहीं है। दूसरी ओर श्रमिक यह तर्क देते हैं कि ऊँची दर से मजदूरी देने में 'बचत' होती है। श्रमिक कहते हैं कि अधिक मजदूरी वास्तव में कम मजदूरी है। 'ऊँची दर से मजदूरी देने में बचत होती है' इस कथन का आधार यह है कि मजदूरी जितनी ऊँची होगी उद्योग की भुगतान क्षमता उतनी ही अधिक होगी क्योंकि ऊँची मजदूरी के साथ-साथ श्रमिकों की कार्य-कुशलता में भी वृद्धि होगी और इसलिए प्रति इकाई उत्पादन लागत भी घटेगी। इस प्रकार परिणामस्वरूप उत्पादन की समस्त पद्धतियों

को भी प्रयोग में लाया जा सकेगा। साथ ही साथ मूल्यों में भी कमी होगी। वस्तुओं की माँग बढ़ेगी, बाजार विस्तृत होंगे और इससे उत्पादन में पुनः वृद्धि होगी। यह चक्र इस ही प्रकार चलता रहेगा और अन्त में इन सब बातों के फलस्वरूप श्रमिकों का प्रवाह साथ होगा। इस प्रकार उद्योग की भुगतान क्षमता भी अधिक से अधिक होती जाएगी।

उद्योग की भुगतान क्षमता क्या है यह निश्चय करने में अन्य कुछ बातें भी ध्यान में रखनी चाहिए। कम आय वाले श्रमिकों की मजदूरी तब ही बढ़ाई जा सकती है जब सब श्रमिकों की मजदूरी का पुनः वितरण कर दिया जाय जिससे कि न्यूनतम आय वाले श्रमिकों को अधिक मजदूरी मिल सके तथा अधिकतम आय वाले श्रमिकों की मजदूरी कम हो जाए। परन्तु ऐसा तभी सम्भव है जबकि कुशल श्रमिकों की मजदूरी बहुत अधिक हो और उसमें कुछ कमी करने की सम्भावना हो। इसके अतिरिक्त यह समस्या भी उठती है कि भुगतान-क्षमता का निश्चय उद्योग की किस प्रकार की फर्म के अनुसार किया जाना चाहिए। डा० मार्शल का "प्रतिनिधि फर्म (Representative Firm) का विचार भी इस मामले में कुछ अधिक सहायक नहीं है। क्योंकि यह प्रश्न उठता है कि यह प्रतिनिधि फर्म किसी फर्म के आकार का प्रतिनिधित्व करती है या उसकी लागत का। जब लागत का प्रश्न उठता है तो लाभ की समस्या सामने आ जाती है जिसका समाधान आवश्यक है। मालिक तो सदा सामान्य लाभ पर जोर देंगे और श्रमिक उसका सदैव विरोध करेंगे। एक प्रश्न यह भी उठता है कि उद्योग की भुगतान-क्षमता का अर्थ किसी विशेष उत्पादन इकाई की भुगतान क्षमता से है अथवा किसी विशेष सम्पूर्ण उद्योग की भुगतान क्षमता से है अथवा देश के समस्त उद्योगों की भुगतान क्षमता से है। उद्योग की भुगतान-क्षमता के प्रश्न को तय करने में इन सब ही कठिनाइयों को ध्यान में रखना होगा।

इस समस्या पर उचित मजदूरी समिति ने अपने विचार स्पष्ट रूप से व्यक्त किए हैं। उसके मत में हमारा विचार यह है कि उद्योग की भुगतान-क्षमता का निश्चय करते समय किसी विशेष उत्पादन इकाई या देश के समस्त उद्योगों की भुगतान क्षमता को नहीं मानना होगा। इसका उचित आधार तो किसी निर्धारित क्षेत्र के किसी विशेष उद्योग की भुगतान-क्षमता होनी चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो उस क्षेत्र के उस उद्योग की समस्त इकाइयों में एक समान मजदूरी निर्धारित होनी चाहिए। मजदूरी निश्चित करने वाले बोर्ड के लिए यह सम्भव नहीं है कि वह प्रत्येक क्षेत्र में किसी उद्योग की प्रत्येक इकाई की भुगतान क्षमता का पता लगाए और व्यावहारिक रूप से यही उचित है कि उस उद्योग का एक उचित आधार लेकर मजदूरी निर्धारित की जाये। परन्तु फिर यह प्रश्न उठता है कि इस भुगतान क्षमता को नापा कैसे जाए? इस सम्बन्ध में यह सुझाव दिया गया है कि भुगतान-क्षमता के दो आधार हैं (क) पूँजी पर उचित उपार्जन और प्रबन्धकर्ताओं को उचित पारिश्रमिक (ख) उद्योग को स्वाव

दशा में रखने के लिए आरक्षित निधि तथा मूल्यह्रास (Depreciation) के लिए धन की उचित व्यवस्था। समिति के विचार से एक महत्वपूर्ण सिद्धान्त जिसका मजदूरी का स्तर निर्धारित करने के सम्बन्ध में पालन किया जाना चाहिए यह है कि मजदूरी स्तर ऐसा हो जिससे कि उद्योग अधिक रोजगार दे सके और दक्षता-पूर्वक उत्पादन को कायम रख सके। किसी विशेष उद्योग में मजदूरी निश्चित करने के लिए इस तथ्य का भी ध्यान रखना चाहिए कि उसकी मजदूरी उस क्षेत्र के अन्य उद्योगों में प्रचलित मजदूरी से बहुत भिन्न न हो। मजदूरी की समस्या में अन्तिम निष्कर्ष यही निकलता है कि श्रमिकों की मजदूरी राष्ट्रीय आय स्तर और इस आय के विभाजन पर निर्भर करती है। यद्यपि यह भी एक साधारण नियम है कि व्यवहार में श्रमिकों की मजदूरी प्रत्येक उद्योग विशेष की परिस्थितियों के अनुसार तथा उस उद्योग का देश की अर्थ व्यवस्था में क्या स्थान है इस बात पर निर्भर होनी चाहिए।

उत्पादकता तथा लागत से सम्बन्धित मजदूरी की समस्या —

अब हमारे सम्मुख यह समस्या आती है कि मजदूरी का उत्पादन लागत से क्या सम्बन्ध है। मजदूरी एवं लागत का सम्बन्ध व्यावहारिक रूप से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। श्रमिकों के पक्षपाती यह तर्क देते हैं कि ऊँची मजदूरी से उत्पादकता बढ़ती है और परिणाम-स्वरूप लागत घट जाती है। दूसरी ओर मालिक यह कहते हैं कि मजदूरी में बढ़ोतरी से उत्पादन की लागत बढ़ती है। समस्या यह है कि ऊँची मजदूरी से कार्य-कुशलता बढ़ती है या नहीं तथा ऊँची मजदूरी के साथ-साथ उत्पादकता किस सीमा तक एवं किस गति से बढ़ती है? यह बात इस पर निर्भर करेगी कि जिस वर्ग से श्रमिक सम्बन्धित है उस वर्ग के व्यक्तियों का आदर्श जीवन स्तर कैसा है। आदर्श जीवन-स्तर की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि यह वह स्तर है जिसके फलस्वरूप अधिकतम कार्य-कुशलता एवं न्यूनतम लागत प्राप्त होती है। परन्तु यह कहना कठिन है कि ऐसा स्तर क्या होगा? यह स्तर जलवायु जीवन के संस्कारों रिवाजों सामाजिक परम्पराओं धार्मिक एवं नैतिक विचारों द्वारा निर्धारित होता है। इन आदर्श जीवन-स्तरों का अन्तर ही विभिन्न देशों में समान कार्य-कुशलता के होते हुये भी विभिन्न मजदूरी दरों के प्रचलित होने का कारण है। किसी भी देश में ऊँची मजदूरी अधिक कार्य-कुशलता ला सकती है परन्तु एक सी कार्य-कुशलता होने पर या एक सी लागत आने पर भी यह आवश्यक नहीं है कि विभिन्न देशों में या विभिन्न वर्गों को एक सी ही ऊँची मजदूरी दी जाय। इसके अतिरिक्त उस कार्य-कुशलता की भी एक सीमा है जो मजदूरी में वृद्धि करने से प्राप्त की जा सकती है। मजदूरी को असीमित प्रकार से बढ़ाने से लागत असीमित रूप से नहीं घटाई जा सकती। इस सम्बन्ध में भी एक उच्चतम बिन्दु (Optimum Point) होता है जो कुछ निश्चित परिस्थितियों के अन्तर्गत उच्चतम जीवन-स्तर इंगित करता है। परन्तु यह बिन्दु भी जीवन को सुखमय बनाने के हेतु किये गये नये-नये आविष्कारों के साथ-साथ आगे बढ़ सकता है। इसके अतिरिक्त यदि श्रमिक इतनी कम मजदूरी

अर्जित कर रहा हो कि उसके जीवन की महत्त्वपूर्ण आवश्यकताएँ भी पूर्ण नहीं होतीं तो मजदूरी में तनिक सी वृद्धि भी उसकी कार्य-कुशलता को बढ़ा देगी। परन्तु यदि मजदूरी पहिले से ही इतनी है कि श्रमिकों को न केवल आवश्यकताएँ वरन् सुखमय जीवन भी उपलब्ध है तो मजदूरी में वृद्धि होने से कार्य कुशलता में बहुत ऐसी बढ़ोतरी नहीं होगी। अतः आरम्भ में तो अधिक मजदूरी से लागत अधिक पड़ सकती है परन्तु कुछ समय पश्चात् लागत धीमी गति से ही कम सकेगा।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि मजदूरी बढ़ने पर तुरन्त लागत का घटना आवश्यक नहीं है। मजदूरी की अधिकता से उच्च जीवन-स्तर से ऊँचा उठाने में जितना धन को पश्चात् पड़ गया है कुछ समय लगता है। यदि जीवन-स्तर को ऊँचा कर भी लिया जाय तो भी श्रमिक के स्वास्थ्य एवं साधारण बुद्धिमत्ता के सुधारने में कुछ समय लगेगा। यथार्थता ऊँची मजदूरी के परिणामस्वरूप बचत भी हो सकती है। इस बात पर भी विचार किया जाना चाहिये कि एक श्रमिक को अपनी आय से कितने व्यक्तियों का पालन करना पड़ता है। मजदूरी में बढ़ाने से जीवन-स्तर पर परिवार के आकार और सदस्यों की संख्या के अनुसार पृथक्-पृथक् प्रभाव होगा। स्वास्थ्य, शारीरिक मानसिक शक्ति, कुशलता का स्तर एवं शिक्षा इत्यादि भी विभिन्न श्रमिकों में भिन्न-भिन्न है और यह आवश्यक नहीं है कि मजदूरी वृद्धि का सब पर एक-सा ही प्रभाव पड़े। फिर अधिकतर उद्योगों में मजदूरी का कुल लागत का अंश ही कम होता है किन्तु यह भी उद्योग की प्रकृति पर निर्भर करता है अर्थात् कोई उद्योग छोटा है या विशाल, उस उद्योग को अधिक कुशल श्रमिक की आवश्यकता है या नहीं आदि। उत्पादन की क्षमता न केवल व्यक्तिगत उपादानों (Factors) की कार्य कुशलता पर वरन् कुशल सम्मिश्रण (Combination) और समन्वय (Co-ordination) पर भी निर्भर है। इन बातों के आधार पर कहना यह कठिन है कि मजदूरी और लागत में क्या सम्बन्ध है। फिर भी यदि मजदूरी का लागत पर प्रत्यक्ष प्रभाव कम हो परन्तु अप्रत्यक्ष प्रभाव बहुत अधिक होता है। पूँजी की वृद्धि देश में मजदूरी के सामान्य स्तर से प्रभावित होती है। इन समस्त बातों को दृष्टि में रखते हुए यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि ऊँची मजदूरी से लागत कम हो जाती है किन्तु यह तभी होता है जब इससे श्रमिक की कार्य-कुशलता बढ़े। परन्तु इन प्रभावों में परिवर्तन बहुत सीमित मात्रा में ही हो सकते हैं।

उचित मजदूरी और आधार वर्ष (Base Year) की समस्या —

उचित मजदूरी को निश्चित करने में आधार वर्ष की समस्या का भी सामना करना पड़ता। केवल कम्पनियों का सुझाव है कि १९३९ से १९४८ तक के समय के बीच कोई वर्ष आधार वर्ष नहीं माना जाना चाहिये क्योंकि उस समय असाधारण आर्थिक परिस्थितियाँ थीं। उचित मजदूरी समिति के विचारों के अनुसार बम्बई मिल मालिकों द्वारा लिये गये आधार वर्ष को स्वीकार कर लिया जाना चाहिये। इसका अर्थ यह हुआ कि १९३९ के निर्वाह लागत सूचकांक को १०० मानकर, ११० से १३५

तक निर्वाह लागत सूचकांकों के आधार पर मूल मजदूरी निश्चित की जानी चाहिये। किन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि क्या महंगाई भत्ता प्रदान करना चालू रखा जाय? जब तक कि निर्वाह लागत १६ से १७२ के स्तर तक न गिर जाय तब तक तो निर्वाह लागत में वृद्धि को आंशिक या पूरे तौर पर पूरा करने के लिए महंगाई भत्ता दिया ही जाना चाहिये। यह भी प्रश्न उठता है कि विभिन्न वर्गों के श्रमिकों को कितनी क्षतिपूर्ति दी जाय? समिति के विचार से निम्नतम वर्गों के श्रमिकों के लिए १००% क्षतिपूर्ति होनी चाहिए। परन्तु ऊंची मजदूरी पाने वाले श्रमिक वर्गों के लिए क्षतिपूर्ति की दर कम होनी चाहिए। इस क्षतिपूर्ति की सीमा भी वेतन दर आदि पर आधारित होनी चाहिए।

उचित मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था—

जहां तक उचित मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था स्थापित करने का सम्बन्ध है समिति इसके लिए मजदूरी बोर्डों (Wage Boards) को स्थापित करने के पक्ष में है। प्रत्येक राज्य के लिए एक प्रदेशीय बोर्ड होना चाहिए जिसमें स्वतन्त्र सदस्य एवं बराबर संख्या में मालिकों व श्रमिकों के प्रतिनिधि हों। प्रदेशीय बोर्ड के अतिरिक्त प्रत्येक ऐसे उद्योग में जो कि मजदूरी निश्चित करने के लिए चुना गया हो क्षेत्रीय बोर्ड होना चाहिए। क्षेत्रीय बोर्डों के कार्य का भी प्रदेशीय बोर्ड द्वारा समन्वय किया जाना चाहिए। केन्द्र में एक केन्द्रीय अपीलीय बोर्ड होना चाहिए जिसके सम्मुख मजदूरी बोर्ड द्वारा किए गए निर्णयों की अपील की जा सके।

सन् १९५० का उचित मजदूरी विधेयक (Fair Wages Bill of 1950)—

यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के आधार पर एक विधेयक तैयार करके अगस्त १९५० में विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। किन्तु अब यह व्यपगत (Lapse) हो गया है। सबसे प्रथम इस विधेयक में फैक्ट्री एवं खानों में लगे श्रमिकों की उचित मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था थी। इस विधेयक में दी गई उचित मजदूरी में एक मूल दर तथा निर्वाह लागत भत्ते का आयोजन था किन्तु यह आयोजन तभी तक था जब तक निर्वाह लागत सूचकांक १६२ से २०० तक की स्थिर सीमा से अधिक रहे। (१९३९ के निर्वाह लागत सूचकांक को १०० मानकर) निर्वाह भत्ता समय समय पर विशिष्ट राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित आरोही स्तरों (Graduated Scale) के अनुसार निश्चित होना था। विधेयक में मजदूरी अन्तरों को निश्चित करने के लिए, समयोपरि की गणना के लिए, पुरुष एवं स्त्रियों को समान मजदूरी देने के सिद्धान्त को निश्चित करने के लिए और समय समय पर उचित मजदूरी का दोहराव के लिए व्यवस्था थी। उचित मजदूरी का निर्धारण करने की व्यवस्था उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के अनुसार ही निश्चित की गई थी। कर्मचारियों के लिए मजदूरी की उचित दर किसी भी स्थिति में १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत दी गई मजदूरी की न्यूनतम दरों से कम नहीं हो सकती थी। न्यूनतम मजदूरी

की परिभाषा उसी प्रकार की गई थी जिस प्रकार कि उचित मजदूरी समिति ने की थी। उचित मजदूरी की परिभाषा एवं उद्योग की भुगतान क्षमता के प्रश्न भी उसी प्रकार लिए गए थे जिस प्रकार कि समिति ने सिफारिश की थी। मजदूरी की उचित दर भी उस उचित कार्य की मात्रा से सम्बन्धित की गई थी जिसको करने की श्रमिक से आशा की जाती थी। मजदूरी कार्य की मात्रा के अनुसार निश्चित की जाने की व्यवस्था थी और यदि श्रमिक निर्धारित अनुचित कार्य भार सम्पादन में असफल रहा तो उसके आधार पर वह बर्खास्त किया जा सकता था। जब उचित मजदूरी देने का विषय बोर्ड के विचाराधीन हो उस समय हड़ताल करने तथा तालाबन्दी घोषित करने पर रोक लगायी गई थी।

अब सरकार पुनः उचित मजदूरी विधेयक को समाविष्ट करने तथा उसे प्रस्तुत करने के विषय पर विचार कर रही है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को पर्याप्त नहीं समझा जाता क्योंकि वह उन बड़े उद्योगों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित नहीं करता जिनमें मजदूरी सम्बन्धी विवाद भी अन्य साधारण औद्योगिक विवादों के समान समझ लिए जाते हैं। फिर भी उद्योगपतियों ने इसका विरोध किया है और बढ़ती हुई लागत की आशंका उठाई है। यह कहा जाता है कि न्यूनतम मजदूरी को लागू करने में भी कठिनाई हुई है और अब उचित मजदूरी निश्चित करना तो एक हास्यास्पद सा बन जाता। परन्तु उचित मजदूरी निश्चित करने की आलोचना इतनी अधिक है कि इस कार्य को अब अधिक समय के लिए स्थगित नहीं करना चाहिए। मजदूरी बोर्डों की नियुक्ति करते समय सरकार ने उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाया है ताकि मजदूरी निर्धारण करते समय इस रिपोर्ट में दिए गए सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाए। इसके अतिरिक्त सरकार ने मजदूरी निर्धारण में निम्नलिखित बातों पर विचार करने के लिए कहा है —
(क) विकासोन्मुख आर्थिक व्यवस्था (Developing Economy) में उद्योग की आवश्यकताएँ। (ख) सामाजिक न्याय की माँग। (ग) मजदूरी ढाँचे का समायोजन इस प्रकार से हो कि श्रमिकों को अपनी कुशलता बढ़ाने में प्रोत्साहन मिले।

पंचवर्षीय योजनाएँ तथा मजदूरी —

प्रथम पंचवर्षीय योजना में मजदूरी नीति की समस्या पर समुचित रूप से ध्यान दिया गया था परन्तु योजना मुद्रा-स्फीति की अवस्था में बनी थी। इस कारण योजना आयोग के विचारानुसार मजदूरी में वृद्धि केवल असाधारण रूप से कम पाने वाले उद्योगों के अतिरिक्त अधिक मात्रा में न की जानी चाहिए क्योंकि इसका प्रभाव उत्पादन मूल्य और साधारण मूल्य स्तर पर पड़ता। इस काल में विनियोग पर लाभ के साथ-साथ मजदूरी पर रोक लगाने का भी पक्ष लिया गया। योजना ने यह भी निर्धारित किया कि सरकारी एवं निजी उद्योग में मजदूरी समान रहनी चाहिए, त्रिपक्षीय आधार पर ही स्थायी मजदूरी बोर्ड होने चाहिए, मजदूरी को युक्तिसंगत रूप दी जानी चाहिए और मजदूरी का प्रमापीकरण होना चाहिए तथा न्यूनतम

तक निर्वाह लागत सूचकांकों के आधार पर मूल मजदूरी निश्चित की जानी चाहिये। किन्तु अब प्रश्न यह उठता है कि क्या महंगाई भत्ता दिया जाना जारी रखा जाय? जब तक कि निर्वाह लागत १६ से १०२ के स्तर तक न गिर जाय तब तक तो निर्वाह लागत में वृद्धि को आंशिक या पूरे तौर पर पूरा करने के लिए महंगाई भत्ता दिया ही जाना चाहिये। यह भी प्रश्न उठता है कि विभिन्न वर्गों के श्रमिकों को कितनी क्षतिपूर्ति दी जाय? समिति के विचार से निम्नतम वर्गों के श्रमिकों के लिए १००% क्षतिपूर्ति होनी चाहिए। परन्तु ऊंची मजदूरी पाने वाले श्रमिक वर्गों के लिए क्षतिपूर्ति की दर कम होनी चाहिए। इस क्षतिपूर्ति की सीमा भी वेतन दर आदि पर आधारित होनी चाहिए।

उचित मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था —

जहां तक उचित मजदूरी निश्चित करने की व्यवस्था स्थापित करने का सम्बन्ध है समिति इसके लिए मजदूरी बोर्डों (Wage Boards) को स्थापित करने के पक्ष में है। प्रत्येक राज्य के लिए एक प्रदेशीय बोर्ड होना चाहिए जिसमें स्वतन्त्र सदस्य एवं बराबर संख्या में मालिकों व श्रमिकों के प्रतिनिधि हों। प्रदेशीय बोर्ड के अतिरिक्त प्रत्येक ऐसे उद्योग में जो कि मजदूरी नियमित करने के लिए चुना गया हो क्षेत्रीय बोर्ड होना चाहिए। क्षेत्रीय बोर्ड के कार्य का भी प्रदेशीय बोर्ड द्वारा समन्वय किया जाना चाहिए। अन्त में एक केन्द्रीय अपीलीय बोर्ड होना चाहिए जिसके सम्मुख मजदूरी बोर्ड द्वारा किए गए निर्णयों की अपील की जा सके।

सन् १९५० का उचित मजदूरी विधेयक (Fair Wages Bill of 1950)—

यहां यह उल्लेख किया जा सकता है कि उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के आधार पर एक विधेयक तैयार करके अगस्त १९५० में विधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया गया था। किन्तु अब वह व्यपगत (Lapse) हो गया है। सबसे प्रथम तो इस विधेयक में फैक्ट्री एवं खानों में सभी श्रमिकों की उचित मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था थी। इस विधेयक में दी गई उचित मजदूरी में एक मूल दर तथा निर्वाह लागत भत्ते का आयोजन था किन्तु यह आयोजन तभी तक था जब तक निर्वाह लागत सूचकांक १८२ से १७० तक की स्थिर सीमा से अधिक बढ़े। (१९३९ के निर्वाह लागत सूचकांक को १०० मानकर) निर्वाह भत्ता समय समय पर विशिष्ट राज्य सरकारों द्वारा निर्धारित आरोही स्तरों (Graduated Scale) के अनुसार निश्चित होना था। विधेयक में मजदूरी अवधियों को निश्चित करने के लिए, समयोपरि की गणना के लिए, पुरुष एवं स्त्रियों को समान मजदूरी देने के सिद्धान्त को निश्चित करने के लिए और समय समय पर उचित मजदूरी का दोहराने के लिए व्यवस्था थी। उचित मजदूरी का निर्धारण करने की व्यवस्था उचित मजदूरी समिति की सिफारिशों के अनुसार ही निश्चित की गई थी। कर्मचारियों के लिए मजदूरी की उचित दर किसी भी स्थिति में १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत दी गई मजदूरी की न्यूनतम दरों से कम नहीं हो सकती थी। न्यूनतम मजदूरी

की परिभाषा उसी प्रकार की गई थी जिस प्रकार कि उचित मजदूरी समिति ने की थी। उचित मजदूरी की परिभाषा एवं उद्योग की भुगतान क्षमता के प्रश्न भी उसी प्रकार लिए गए थे जिस प्रकार कि समिति ने सिफारिश की थी। मजदूरी की उचित दर भी उस उचित कार्य की मात्रा से सम्बन्धित की गई थी जिसको करने की श्रमिकों से आशा की जाती थी। मजदूरी कार्य की मात्रा के अनुसार निश्चित की जाने की व्यवस्था थी और अगर श्रमिक निर्धारित समुचित कार्य भार समाप्त न करता था तो उसके आधार पर वह बरखास्त किया जा सकता था। जब उचित मजदूरी देने का विषय बोर्ड के विचाराधीन हो उस समय हड़ताल करने तथा तालाबंदी घोषित करने पर रोक लगादी गई थी।

अब सरकार पुनः उचित मजदूरी विधेयक का संशोधित करने तथा उसे प्रस्तुत करने के विषय पर विचार कर रही है। न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को पर्याप्त नहीं समझा जाता क्योंकि यह उन बड़े उद्योगों को अपने क्षेत्र में सम्मिलित नहीं करता जिनमें मजदूरी सम्बन्धी विवाद भी अन्य साधारण औद्योगिक विवादों के समान समझ लिए जाते हैं। फिर भी उद्योगपतियों ने इसका विरोध किया है और बढ़ती हुई लागत की आवाज उठाई है। यह कहा जाता है कि न्यूनतम मजदूरी को लागू करने में भी कठिनाई हुई है और अब उचित मजदूरी निश्चित करना तो एक हास्यास्पद सा पग होगा। परन्तु उचित मजदूरी निश्चित करने की वांछनीयता इतनी अधिक है कि इस कार्य को अब अधिक समय के लिये स्थगित नहीं करना चाहिए। मजदूरी बोर्डों की नियुक्ति करते समय सरकार ने उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट की ओर विशेष रूप से ध्यान दिलाया है, ताकि मजदूरी निर्धारण करते समय इस रिपोर्ट में दिए गए सिद्धान्तों का ध्यान रखा जाए। इसके अतिरिक्त सरकार ने मजदूरी निर्धारण में निम्नलिखित बातों पर विचार करने के लिए कहा है — (क) विकासोन्मुख आर्थिक व्यवस्था (Developing Economy) में उद्योग की आवश्यकताएं। (ख) सामाजिक न्याय की मांग। (ग) मजदूरी अन्तरों का समंजन इस प्रकार से हो कि श्रमिकों को अपनी कुशलता बढ़ाने में प्रोत्साहन मिले।

पंचवर्षीय आयोजनाएँ तथा मजदूरी —

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में मजदूरी नीति की महत्ता पर समुचित रूप से बल दिया गया था परन्तु आयोजना मुद्रा-स्फीति वातावरण में बनी थी। इस कारण आयोजना आयोग के विचारानुसार मजदूरी में वृद्धि केवल असाधारण रूप से कम दर वाले उद्योगों के अतिरिक्त अधिक सहायक न थी क्योंकि उसका प्रभाव उत्पादन मूल्य और साधारण मूल्य स्तर पर पड़ता। धन-लाभ के वितरण पर एक समझौते के साथ-साथ मजदूरी का रोक लगाना था भी पक्ष लिया गया। आयोजना में यह भी निर्धारित था कि सरकारी एवं निजी उद्योगों में मजदूरी समान रहनी चाहिये त्रिदलीय आधार पर बने स्थायी मजदूरी बोर्ड होने चाहिए, मजदूरी की असमानताएं दूर की जानी चाहिए और मजदूरी का तर्कसंगतीकरण होना चाहिए तथा न्यूनतम

मजदूरी विधान को प्रभावात्मक रूप से कार्यान्वित किया जाना चाहिए।

तथापि वास्तव में न तो मजदूरी पर और न ही लाभों पर रोक लगायी गयी और अधिकतर सिफारिशें तो केवल कागज पर ही सिमटी रह गयीं। अतः द्वितीय पंचवर्षीय योजना में इस बात पर बल दिया गया कि मजदूरी सम्बन्धी ऐसी नीति बनायी जानी चाहिए जो उस स्तर की स्थापना करे जिसका उद्देश्य वास्तविक मजदूरी में वृद्धि करना हो। श्रमिकों के उचित मजदूरी पाने के अधिकार को मान्यता दी गई थी। किन्तु उसको व्यावहारिक रूप में लाने के किसी स्थायी नियम को नहीं बनाया जा सका था। मजदूरी स्तर निर्धारित करने में एक बड़ी कठिनाई यह आती है कि मजदूरी वृद्धि में सीमान्त इकाइयां रुकावट उत्पन्न कर देती हैं। यदि मजदूरी निश्चित करने का आधार प्रत्येक केन्द्र की औसत इकाई की आर्थिक स्थिति को लिया जावे तो उचित मजदूरी को प्राप्त करने की ओर अधिक शीघ्रता से उन्नति हो सकती है किन्तु सीमान्त इकाइयों को उद्योग में बनाये रखने के लिए कुछ पग उठाये जाने आवश्यक हैं। इस कार्य को करने की एक पद्धति यह है कि इन सीमान्त इकाइयों को मिलाकर एक बड़ी इकाई में परिवर्तित कर दिया जाय। इस बात पर भी बल दिया गया था कि मजदूरी में सुधार मुख्यतः उत्पादकता में वृद्धि द्वारा ही हो सकता था और इसके लिए विभिन्न पग उठाए जाने चाहिएं। जो भी लाभ हो उसमें श्रमिकों को बराबर के भाग का आश्वासन दिया जाने चाहिए। समाज की समाजवादी व्यवस्था के ध्येय की पूर्ति के लिए एक सम्पूर्ण मजदूरी नीति का निर्माण करने के हेतु एक मजदूरी आयोग की नियुक्ति करने की भी सिफारिश की गई थी परन्तु इसके पूर्व मजदूरी के आंकड़ों की गणना करने का सुझाव था। इस बीच मजदूरी सम्बन्धी विवादों को निबटाने के लिए त्रिदलीय मजदूरी बोर्ड स्थापित किए जाने चाहिएं।

इन सिफारिशों को कार्यान्वित करने के लिए चीनी (दिसम्बर १९५७) एवं सीमेंट (अप्रैल १९५८) उद्योगों में त्रिदलीय मजदूरी बोर्डों का निर्माण किया गया। सूती कपड़ा उद्योग के लिए मजदूरी बोर्ड पहले ही स्थापित किया जा चुका था। (मार्च १९५७)। १९५५ में श्रमजीवी पत्रकारों के हेतु एक मजदूरी बोर्ड भी स्थापित किया गया था। इसके पश्चात् अन्य अनेक उद्योगों के लिए मजदूरी बोर्डों की स्थापना हो चुकी है। उदाहरणतः—जूट उद्योग के लिए (अगस्त १९६०) चाय बागान के लिए (दिसम्बर १९६०) कॉफी और रबर बागान के लिए (जुलाई १९६१) तथा लोहा तथा इस्पात उद्योग के लिए (जनवरी १९६२)। इन बोर्डों को उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर मजदूरी निर्धारित करने को कहा गया है जिनका उल्लेख उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट में किया गया है। सूती कपड़ा उद्योग सीमेंट उद्योग और चीनी उद्योग के मजदूरी बोर्डों की सिफारिशें और उन पर सरकार का निर्णय प्रकाशित कर दिए गए हैं। जूट उद्योग के मजदूरी बोर्ड की अंतरिम सिफारिशों का ऊपर उल्लेख किया जा चुका है। यह त्रिदलीय मजदूरी बोर्ड मजदूरी निर्धारित करने के लिए

काफी लोकप्रिय हो गए हैं। अन्य उद्योगों के लिए भी ऐसे बोर्डों की माँग की जा रही है। ऐसे मजदूरी बोर्डों के लिए कानून बनाने का विचार भी किया जा रहा था जिससे इनकी सिफारिशों को वैधानिक समर्थन प्राप्त हो सके परन्तु स्थायी श्रम समिति इसके पक्ष में नहीं है और उसके अनुसार विभिन्न दलों को स्वयं ही मजदूरी बोर्डों के निर्णयों को लागू करना चाहिए। परन्तु मजदूरी बोर्डों की सिफारिशों को उद्योग की कई इकाइयों ने लागू नहीं किया है। इस कारण सरकार मजदूरी बोर्डों की सिफारिशों को वैधानिक मान्यता देने के लिए कानून बनाने के लिए पग उठा रही है।

जैसा कि पहले उल्लेख किया जा चुका है ४४ मुख्य उद्योगों में जो कारखाना, बागान और खानों से सम्बन्धित हैं एक मजदूरी गणना (Wage Census) की गई है। इसका उद्देश्य व्यावसायिक मजदूरी के विश्वसनीय आँकड़े एकत्रित करना है। इस गणना का क्षेत्रीय कार्य अगस्त १९५९ में पूरा कर लिया गया था। इसके अन्तर्गत ३७ कारखानों चार खानों और तीन बागान में २६४८ संस्थानों में जाँच की गई। इन आँकड़ों से सम्बन्धित रिपोर्टें तैयार की जा रही हैं।

इसके अतिरिक्त मजदूरी से सम्बन्धित एक 'स्टीयरिंग दल' की भी स्थापना की गई है जिसमें केन्द्रीय एवं राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त व्यक्ति तथा श्रमिक एवं मालिकों के प्रतिनिधि हैं। यह दल मजदूरी उत्पादन एवं मूल्य सम्बन्धी प्रवृत्तियों का अध्ययन करेगा तथा यह दल भारत में उद्योग और क्षेत्र के अनुसार एक मजदूरी का नक्शा बनाने के लिए ऐसे आँकड़े एकत्रित करेगा जिनसे मजदूरी निश्चित करने के लिए मुख्य सिद्धान्त बनाये जा सकें और अधिकारियों को मजदूरी निर्धारित करने में सहायता मिल सके। इस स्टीयरिंग दल की बहुत सी सभायें हो चुकी हैं।

एक और उल्लेखनीय कार्य यह है कि भारत सरकार द्वारा ५ सदस्यों के एक वेतन आयोग की नियुक्ति की गई है जो कि केन्द्रीय सरकारी कर्मचारियों के वेतन, भत्तों एवं नौकरी की दशाओं और अन्य इसी प्रकार के विषयों से सम्बन्धित है। इस आयोग ने कुछ अंतरिम सुधार की घोषणा दिसम्बर १९५७ में की थी। केन्द्रीय वेतन आयोग की रिपोर्ट भी अगस्त १९५९ में प्रस्तुत कर दी गई थी और सरकार ने इसकी सिफारिशों को स्वीकार कर लिया है। एक और महत्वपूर्ण घटना मार्च १९५८ में यह हुई कि उच्चतम न्यायालय ने श्रमजीवी पत्रकारों के लिए वेतन बोर्ड के निर्णयों को इस आधार पर अस्वीकार कर दिया कि ये असंवैधानिक थे। अन्त में जून १९५८ में एक अध्यादेश निकाला गया। इस अध्यादेश में एक समिति के निर्माण की व्यवस्था थी जिसकी सहायता से केन्द्रीय सरकार श्रमजीवी पत्रकारों के लिए वेतन की दर को निश्चित कर सके। यह अध्यादेश सितम्बर १९५८ में एक अधिनियम द्वारा पुनः स्थापित कर दिया गया। एक समिति भी स्थापित कर दी गई है। इसने अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत कर दी हैं जिनको सरकार ने कुछ संशोधनों के बाद स्वीकार कर लिया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि श्रमिक संघों ने सब श्रमिकों की मजदूरी में २५

प्रतिशत वृद्धि की माँग की है जबकि मालिकों के संघों ने मजदूरी कम करने की तथा मजदूरी को उत्पादकता से सम्बन्धित करने की माँग की है। 'मजदूरी दरों को जड़ करने (Wage Freeze) के विषय में भी कुछ आवाज उठाई गई है परन्तु ऐसी जड़ता को व्यावहारिक रूप नहीं दिया जा सकता। विभिन्न प्रकार के नियन्त्रणों को अपनाये बिना विशेषकर आवश्यक वस्तुओं के मूल्यों पर नियन्त्रण किये बिना मजदूरी जड़ नहीं की जा सकती। यह आशा की जाती है कि मजदूरी निश्चित करते समय मजदूरी बोर्ड उचित मजदूरी समिति की रिपोर्ट पर भी ध्यान देंगे और साथ-साथ एक ऐसी मजदूरी नीति का निर्माण करेंगे जो कि देश के साधनों का इष्टतम उपयोग करने तथा आर्थिक उन्नति करने में सहायक होगी और समाज के समाजवादी व्यवस्था के ध्येय के अनुकूल होगी। कुछ मजदूरी बोर्डों ने इस सम्बन्ध में सराहनीय कार्य किए हैं।

तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में यह उल्लेख किया गया है कि कुछ उद्योगों और कृषि में जहां श्रमिकों की आर्थिक स्थिति गिरी हुई है सरकार ने न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करके सुरक्षा प्रदान करने का उत्तरदायित्व लिया है। परन्तु न्यूनतम मजदूरी अधिनियम कई स्थानों में अधिक प्रभावशाली नहीं सिद्ध हुआ है। इस अधिनियम को पहले से अधिक अच्छी तरह लागू करने के लिए हमें निरीक्षण व्यवस्था को और मजबूत बनाना होगा। बड़े-बड़े उद्योगों में अन्ततः मजदूरी का निर्धारण सामूहिक सौदाकारी समझौता और विवाचन द्वारा किया जाना चाहिये। जैसे-जैसे सम्भव हो, मजदूरी बोर्डों को अन्य उद्योगों में भी स्थापित करना चाहिये। तृतीय आयोजना रिपोर्ट में इस बात का भी संकेत किया गया है कि उचित मजदूरी समिति और भारतीय श्रम सम्मेलन में मजदूरी सम्बन्धी जो सिद्धान्त व आदर्श निर्धारित किये गए हैं उन्हें ध्यान में रखना चाहिये। न केवल न्यूनतम मजदूरी ही निर्धारित की जानी चाहिए वरन् मजदूरी इतनी उचित होनी चाहिये कि उसमें कार्यकुशलता को बढ़ाने और उत्पादन की मात्रा और गुण में उन्नति करने के लिये प्रोत्साहन मिले। इस ओर भी संकेत किया गया है कि श्रमिकों की मजदूरी और उच्च प्रबन्धकों के वेतनों में बहुत अधिक असमानता है। वेतन सम्बन्धी दावों और बोनस की अदायगी के लिए निर्देशक सिद्धान्त और आदर्श निर्धारित करने की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए एक आयोग की नियुक्ति करने की सिफारिश है।

मजदूरी अन्तर (Wage Differentials) और मजदूरी का समानीकरण (Standardisation) —

भारत में मजदूरी में ही सम्बन्धित एक अन्य समस्या मजदूरी-अन्तर और मजदूरी का समानीकरण है। यह एक सर्वविदित तथ्य है कि मजदूरी राज्य-राज्य में उद्योग उद्योग में और व्यवसाय-व्यवसाय में भिन्न है तथा वर्ष-वर्ष में बदलती भी रहती है। मजदूरी स्तर का प्रादेशिक विवेचन भी इस बात को स्पष्ट करता है। यह देखा गया है कि मजदूरी दर अन्य राज्यों की अपेक्षा देहली महाराष्ट्र बिहार, उ० प्र०

और पश्चिमी बंगाल में ऊँची है जबकि आसाम और उड़ीसा में नीची है। निरन्तर चालू उद्योगों में औसत वार्षिक आय महाराष्ट्र बिहार देहली उ० प्र० व आसाम में तो ऊँची है जबकि मद्रास और उड़ीसा में अपेक्षाकृत कम है। उद्योगों में श्रमिक पर किये गये व्यय को ध्यान में रखते हुए यह कहा जा सकता है कि औसत मजदूरी दरों में भिन्नता होने के कारण श्रम लागत भी भिन्न हो जाती है। प्रति श्रमिक पर प्रतिदिन लागत महाराष्ट्र पश्चिमी बंगाल मद्रास उ० प्र० बिहार तथा सारे भारत में क्रमशः ३.६२ रु० ३.६९ रु० ३.८१ रु० ३.६६ रु० ३.७५ रु० तथा ३.१६ रु० अनुमान की गयी है। प्रत्येक राज्य के प्रत्येक उद्योग में मजदूरी दरों में अन्तर पाया जाता है परन्तु क्षेत्रीय अन्तर अधिक स्पष्ट है। कुछ श्रमिक वर्गों की न्यूनतम मूल मजदूरी दरें देखने से ज्ञात होता है कि अन्य स्थान क्षेत्रों की अपेक्षा जहाँ सूती उद्योग फैले हुये हैं बम्बई की सूती मिलों में मजदूरी दरें अधिक हैं। उदाहरणार्थ एक बुनने वाले को बम्बई में १ रु० प्रतिमास मिलते हैं मदुरा में २० रु० और बंगाल में २० रुपये मिलते हैं। कमाई तथा उपार्जन की दरों में भी स्थान-स्थान में अन्तर है जिसके कारण स्त्री और पुरुषों की निवल (Net) आय में भी अन्तर पाया जाता है। कुशल अर्ध-कुशल तथा अकुशल श्रमिकों की मजदूरियों में भी भिन्नता पाई जाती है और इनकी मजदूरी के अन्तर अन्य देशों की अपेक्षा भारत में अधिक है।

महंगाई भत्ता भी स्थान-स्थान पर भिन्न है क्योंकि उसको देने का आधार भी अलग-अलग स्थान पर भिन्न-भिन्न होता है। कुछ स्थानों में तो महंगाई भत्ता निर्वाह व्यय से सम्बन्धित है तथा इसकी दर विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिये पृथक-पृथक है। कुछ मामलों में महंगाई भत्ता समान है जबकि अन्य स्थानों में महंगाई भत्ता आय के समानुपात में घटता-बढ़ता है। यह कभी-कभी मालिकों के संघों द्वारा भी निर्धारित किया जाता है और केवल उन्हीं उद्योगों में लागू होता है जिनके मालिक संघ के सदस्य हैं। यह समय-समय पर औद्योगिक अधिकरणों के पंचाटों द्वारा भी निर्धारित किया गया है। इन सब परिस्थितियों का सम्मिलित प्रभाव यह हुआ है कि मजदूरी में विभिन्न क्षेत्रों में बहुत अधिक असमानता आ गई है।

श्रमिकों की औसत वार्षिक आय भी राज्य-राज्य में पृथक-पृथक है। जूट उद्योग में मूल-मजदूरी दर पश्चिमी बंगाल में सर्वाधिक है, जब कि उत्तर प्रदेश की सूत मिलों में श्रमिकों की औसत आय बोनस मिलने के कारण अधिक है। बिहार एवं मद्रास की जूट मिलों के श्रमिकों की आय कम है। पश्चिमी बंगाल के श्रम-मंत्री के जनवरी १९६० में दिए गए वक्तव्य के अनुसार चाय के बागान में श्रमिक को १.०४ नये पैसे प्रतिदिन मिलता है। जूट उद्योग में ९७.१८ रुपये प्रति माह मजदूरी है। इंजीनियरिंग उद्योग में ७९ रुपये प्रति माह मजदूरी है परन्तु बम्बई की कपड़ा मिलों में महंगाई भत्ते के अतिरिक्त श्रमिक को १७५ रुपये प्रति माह मिलते हैं। अन्य उद्योगों में भी मजदूरी दरों की असमानता इसी प्रकार प्रदर्शित है। भागों में

मजदूरी दरों में इतनी अधिक असमानता नहीं है जितनी कि फैक्टरी की मजदूरी दरों में है फिर भी विभिन्न ग्रामों और विभिन्न क्षेत्रों में मूल मजदूरी तथा अर्जित आय में अन्तर है। जापान में भी मजदूरी में काफी अन्तर पाया जाता है। यह भी देखा गया है कि महायुद्ध के पश्चात् औसत नकद मजदूरी में काफी बढ़ोत्तरी हुई है किन्तु यह बढ़ोत्तरी भी समान रूप से नहीं हुई है।

मजदूरी के समानीकरण की आवश्यकता—

मजदूरी दरों में अन्तर किसी वैज्ञानिक सिद्धान्त पर आधारित नहीं है। प्रत्येक फैक्टरी ने अपना अलग-अलग कार्य-विभाजन विभिन्न वर्गों में किया है तथा प्रत्येक वर्ग की अपनी विशेष शब्दावली बना ली गई है। विभिन्न उद्योगों में उत्पादन हेतु विभिन्न कार्य प्रणालियाँ अपनाई जाती हैं और विभिन्न प्रकार की मशीनें कार्य में लाई जाती हैं। इस प्रकार बहुत सा समय धन तथा श्रम व्यर्थ जाता है क्योंकि अधिकतर श्रमिकों के साथ अधिकांश प्रशासन कार्यों के लिए पृथक्-पृथक् आधार पर व्यवहार करना पड़ता है। उद्योग-उद्योग में एक उद्योग की फैक्टरी-फैक्टरी में तथा स्थान-स्थान में मजदूरी दरों के अवैज्ञानिक अन्तर के कारण श्रमिकों का एक फैक्टरी से दूसरी फैक्टरी में प्रवसन होता रहता है। कभी-कभी मजदूरी के यह अन्तर औद्योगिक असन्तोष और विवाद के कारण बन जाते हैं। अधिकतर श्रमिक उत्तम मजदूरी देने वाले उद्योगों की ओर आकर्षित होते हैं तथा कम मजदूरी देने वाले उद्योगों में अधिक मजदूरी में वृद्धि की माँग करते हैं। यदि यह माँगें पूर्ण नहीं की जाती हैं तो हड़ताल आदि का अवलम्ब लिया जाता है, जिसके फलस्वरूप उद्योग आदि बंद हो जाते हैं जिसका परिणाम यह होता है कि उत्पादन तथा लाभ में कमी हो जाती है। इस प्रकार यदि मजदूरी की विभिन्न दरें प्रचलित होती हैं तो उनके कारण प्रत्येक फैक्टरी एवं उद्योग में न केवल अधिक समय श्रम एवं कर्मचारी लगाने पड़ते हैं वरन् ये विभिन्न दरें श्रमिकों में असन्तोष तथा श्रमिकों एवं मालिकों में विवाद का कारण बन जाती हैं क्योंकि या तो श्रमिकों को अपर्याप्त एवं अपूर्ण मजदूरी दी जाती है अथवा श्रमिक विभिन्न दरों के कारण उत्पन्न जटिलता को समझ नहीं पाते।

अतः श्रमिकों एवं मालिकों दोनों की ही ओर से मजदूरी के समानीकरण की बहुत माँग की गई है। समानीकरण का साधारण तौर पर अर्थ उद्योग में समान कार्य वर्ग के लिए मजदूरी के एक समान स्तर को निर्धारित करना है। इसका अर्थ यह नहीं है कि सब श्रमिकों को एक समान मजदूरी दी जाय। समान स्तर की मजदूरी का अर्थ अनियन्त्रित मजदूरी निश्चित करना भी नहीं है वरन् एक ऐसी उचित एवं सन्तोषपूर्ण मजदूरी निश्चित करना है जो व्यवहार में एक समान हो। समान स्तर की मजदूरी स्थानीय तथा उद्योग के अनुसार भी हो सकती है। स्थानीय दर की मजदूरी का समानीकरण निश्चित करना तब सरल प्रतीत होता है जब अकुशल, अर्द्धकुशल कुशल एवं बहुत कुशल श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी निश्चित हो और यह मजदूरी उद्योग के विभिन्न व्यवसायों में कार्यानुसार कुशलता के अनुसार तथा श्रमिक के अनुभव के अनुसार दी

पाती हो। उजरत (कार्यानुसार मजदूरी) के समानीकरण में इस प्रकार की कोई कठिनाई नहीं होगी क्योंकि एक अपेक्षाकृत अधिक उत्तम श्रमिक अपने अधिक उत्पादन के कारण अधिक मजदूरी पाता है किन्तु इस उजरत मजदूरी देने से सम्बन्धित समस्या अधिक दर तकनीकी है। कार्य के प्रकार पद्धति तथा उत्पादक वस्तुओं में अनेक भिन्नतायें होती हैं। अतः उन विभागों में जहाँ उजरत मजदूरी दी जा रही हो समानीकरण योजना का कार्य रूप देने में काफी तकनीकी ज्ञान होना आवश्यक है। फिर भी विभिन्न मिलों में स्तरों को समाप्त करने औद्योगिक विवादों को कम करने तथा मिलों एवं श्रमिकों दोनों की ही कार्यकुशलता को बढ़ाने में मजदूरी का समानीकरण बहुत अधिक उपयोगी सिद्ध होगा।

मजदूरी समानीकरण का प्रश्न विशेषकर बम्बई के सूती मिल उद्योग में बहुत समय से विचार विमर्श का विषय रहा है। १९२२ की बम्बई औद्योगिक विवाद समिति द्वारा भी इस पर विचार किया गया था और १९२७ में इण्डियन टैरिफ बोर्ड ने इस पर पुनः विचार किया था। सन् १९३८ में एक योजना भी बनाई गई परन्तु उसे कार्यरूप न दिया जा सका। इस प्रश्न ने रॉयल श्रम आयोग का ध्यान भी अपनी ओर आकर्षित किया था। उसके शब्दों में "जहाँ तक कुछ विशेष प्रमुख उद्योगों में कार्यरत श्रमिकों का सम्बन्ध है वहाँ मुख्य आवश्यकता एक जैसा कार्य करने वाले श्रमिक वर्गों के लिए मजदूरी के एक समान स्तर की है। हम इस बात से सन्तुष्ट हैं कि कुछ उद्योगों में उनकी आर्थिक स्थिति को विशेष हानि पहुँचाये बिना समान स्तर से मजदूरी दी जा सकती है। साथ ही साथ कम मजदूरी पाने वाले श्रमिकों को एक उच्चतर मजदूरी स्तर भी प्रदान किया जा सकता है।" श्रम अनुसन्धान समिति ने भी भारतीय उद्योगों में वर्तमान मजदूरी स्तरों का उल्लेख किया था और सुझाव दिया था कि विभिन्न उद्योगों तथा उद्योग के समान केन्द्रों की इकाइयों में व्यवसायों के मानकरण एवं मजदूरी के समानीकरण की समस्या शीघ्रतापूर्वक सुलझाई जानी चाहिए।

सूती मिल उद्योग आदि में मजदूरी का समानीकरण—

केवल सूती मिल उद्योगों में मजदूरी के समानीकरण में कुछ प्रगति हुई है। बम्बई औद्योगिक न्यायालय के एवार्ड ने बम्बई तथा उसके उपनगरों के सूती मिल उद्योगों के विषय में १९४० में एक स्थायी योजना बनाने की व्यवस्था की थी जिसका निर्माण इसी कार्य हेतु नियुक्त एक समानीकरण समिति द्वारा किया जाना था। बम्बई औद्योगिक न्यायालय द्वारा विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिए मजदूरी की समानीकरण दरें अहमदाबाद एवं शोलापुर की सूती मिलों के लिए निश्चित की गई हैं। सन् १९४६ के औद्योगिक सम्बन्धी अधिनियम के अन्तर्गत सूती वस्त्र एवं रेशम की कम्पनियों में मजदूरी निश्चित करने के लिए मजदूरी बोर्ड बना दिए गए हैं। मद्रास एवार्ड ने राज्य की समस्त सूती मिलों के लिए समानीकरण व्यवस्था करने के हेतु एक मजदूरी बोर्ड तथा समानीकरण समिति नियुक्त करने का सुझाव दिया था।

उसके द्वारा सुझाई गई योजना को कार्यान्वित कर दिया गया है। बंगाल के औद्योगिक न्यायालय के पंचाट ने विभिन्न व्यवसायों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित कर दी थी किन्तु कुछ व्यावहारिक कठिनाइयों के कारण समानीकरण योजना नहीं बनाई जा सकी। इन्दौर में विभिन्न श्रमिक वर्गों के लिए मजदूरी दरों का समानीकरण कर दिया गया है। मध्य प्रदेश की सूती कपड़ा मिलों में भी औद्योगिक अधिकरण तथा समानीकरण समिति के सुझावों के आधार पर मजदूरी तथा कार्य-भार का समानीकरण कर दिया गया है। जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की सिफारिशों पर सूती कपड़ा सीमेंट चीनी बागान तथा लोहा व इस्पात उद्योगों के लिए और श्रमजीवी पत्रकारों के लिए मजदूरी बोर्डों की स्थापना की गई है। इनका कार्य उचित मजदूरी के सिद्धान्तों पर आधारित मजदूरी ढांचा बनाना तथा उद्योग एवं सामाजिक न्याय को ध्यान में रखकर मजदूरी के अन्तरों को इस प्रकार दूर करना जिससे कि श्रमिकों को अपनी कुशलता में वृद्धि करने का प्रोत्साहन मिले तथा फल के अनुसार मजदूरी देने की प्रणाली की वांछनीयता के प्रश्न पर सिफारिश करना है। ऐसे मजदूरी बोर्ड क्षेत्रीय मजदूरी अन्तरों में छानबीन कर सकते हैं और जहाँ तक सम्भव हो सके अन्तर्क्षेत्रीय समानता लाने के लिए आवश्यक पग उठा सकते हैं। एक सुझाव यह भी हो सकता है कि विभिन्न उद्योगों के विभिन्न मजदूरी बोर्डों के कार्यों का समन्वय करने के लिए एक अखिल भारतीय वेतन बोर्ड होना चाहिए जो कि विभिन्न बोर्डों के निर्णयों का अवलोकन कर सके तथा मजदूरी के समानीकरण में सहायता दे सके।

१९४६–४८ की उ० प्र० श्रम जाँच समिति ने भी मजदूरी दरों के समानीकरण की एक योजना बनाई थी जिसको केवल तीन उद्योगों अर्थात् सूती चीनी एवं बिजली में लागू करने की सिफारिश की थी। १९५० में चीनी उद्योग में मजदूरी समानीकरण के लिये भी एक समिति नियुक्त की गई थी परन्तु इस विषय में अब तक कोई विशेष प्रगति नहीं हुई है। इस समय सरकार में मजदूरी समानीकरण का उत्साह प्रतीत होता है। यह इस बात से प्रकट है कि भारतीय उद्योगों में न्यूनतम एवं उचित मजदूरी तथा मजदूरी बोर्डों को स्थापित करने के लिए सरकार ने कुछ कानूनी एवं प्रशासनीय पग उठाए हैं।

समान काम के लिए समान मजदूरी — (Equal Pay for Equal Work)

यह भी उल्लेखनीय है कि "समान कार्य के लिए समान मजदूरी" का सिद्धान्त अपने विरोधी सिद्धान्त "असमान कार्य के लिए असमान मजदूरी" के साथ-साथ मजदूरी की एक महत्वपूर्ण समस्या है। फिर भी "समान कार्य के लिए समान मजदूरी" का अर्थ एक जैसे कार्य के लिए बराबर मजदूरी देना है और इसका अर्थ यह नहीं है कि सभी प्रकार के श्रमिकों को एकसी ही मजदूरी दी जाए। यह भी नहीं सोचना चाहिए कि इसका यह अर्थ है कि एकसे उत्पादन के लिए या एकसे प्रयत्न एवं परिश्रम के लिए समान मजदूरी दी जाय क्योंकि दोनों दशाओं में उत्पादन के

स्तर या प्रयत्नों एवं परिश्रम की मात्रा को मापना कठिन है और इसलिए इस सिद्धान्त पर मजदूरी निश्चित करने में बहुत अधिक कठिनाई होगी। हो सकता है कि बहुत से व्यक्ति एक सा कार्य करते हों अर्थात् उनके कार्य की दशा, यन्त्र कच्चा माल आदि एक से हों तथा उत्पादित वस्तुएँ भी समान हों फिर भी उनकी कार्य कुशलता एवं अनुभव में काफी अन्तर हो सकता है। अतः उनके उत्पादन की मात्रा एवं गुण में भी अन्तर हो सकता है। इसलिए विभिन्न रोजगारों में विभिन्न स्थानों पर सदैव ही विभिन्न मजदूरी रहेगी और समानीकरण का अर्थ यह नहीं है कि सब स्थानों पर मजदूरी को समान कर दिया जाए। इसका अर्थ तो केवल यह हो सकता है कि वैज्ञानिक आधार पर मजदूरी निश्चित करने का समान स्तर लागू कर दिया जाए और मजदूरी में जो असमानता है उसे इस प्रकार कम कर दिया जाए कि उत्पादकता और कुशलता बढ़ाने में जो प्रोत्साहन मिलता है वह बना रहे। मजदूरी विभिन्न रोजगारों व्यवसायों और स्थानों में अलग-अलग होती है। इसके अनेक कारण होते हैं जैसे किसी रोजगार के कार्य में रुचि या अरुचि होना नौकरी का स्थायी और अस्थायी होना पदोन्नति की सम्भावना उत्तम वेतन-स्तर, पद का सम्मान अतिरिक्त आय के साधनों की सम्भावना कठिनाइयाँ, अतिरिक्त सुविधाएँ जैसे बिना किराए के मकान आदि रोजगार सीखने में कठिनाइयाँ इत्यादि। इन सब कारणों से ही कुछ रोजगारों में मजदूरी कम है और कुछ में अधिक। इसके अतिरिक्त मूल्यों में अन्तर, विभिन्न स्थानों के निर्वाह व्यय में अन्तर तथा उद्योग की दशाओं में अन्तर आदि भी मजदूरी में अन्तर उत्पन्न कर देते हैं। जैसा कि प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में उल्लेख किया गया है, मजदूरी में विभिन्नता निम्नलिखित कारणों से होती है (i) कुशल श्रमिकों की आवश्यकता के अनुसार (ii) कार्य में भार तथा थकान के अनुसार (iii) प्रशिक्षण और अनुभव के अनुसार (iv) उत्तर दायित्व की सीमा के अनुसार (v) कार्य के लिए इच्छित मानसिक तथा शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार (vi) कार्य की अरुचि के अनुसार (vii) कार्य में निहित जोखिम के अनुसार। इन समस्त कारणों को पंचवर्षीय आयोजनाओं में सामाजिक उद्देश्यों की पूर्ति के अनुसार मानक (Standard) मजदूरी निश्चित करते समय ध्यान में रखना चाहिए।

पुरुषों एवं स्त्रियों की मजदूरी —

आरंभ से ही समान कार्य के लिए स्त्री श्रमिकों को पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा कम मजदूरी देने की प्रवृत्ति रही है। स्त्रियाँ प्रकृति से ही पुरुषों के समान शारीरिक कार्य में कुशल नहीं होती तथा वे अधिक समय तक कार्य नहीं कर सकती। स्त्रियाँ परिवार की आय में वृद्धि करने के लिए ही कार्य करती हैं और उन पर पुरुषों के समान कोई उत्तरदायित्व भी नहीं होता। स्त्रियाँ अपने कार्य को जीवन-वृत्ति नहीं समझतीं और अक्सर ही अविवाहित स्त्रियाँ विवाह के पश्चात् कार्य छोड़ देती हैं। इसी कारण स्त्रियाँ स्वयं को अधिक वर्षों में संगठित नहीं कर पाती तथा संयुक्त प्रयत्नों द्वारा

ऊँची मजदूरी प्राप्त नहीं कर पातीं। मालिक को इनके लिए अनेक प्रकार के हित देने पड़ते हैं तथा बहुत सी सुविधायें उपलब्ध करनी पड़ती हैं और मालिक पुरुष श्रमिकों के समान उनके साथ व्यवहार नहीं कर सकते। उन कार्यों में जिनमें स्त्रियां कार्य कर सकती हैं, स्त्रियों की पूर्ति भी अधिक होती है अतः उनको मजदूरी भी कम मिलती है।

आधुनिक प्रगति और स्त्रियों की अधिक शिक्षा के साथ-साथ स्त्री एवं पुरुषों के लिए समान मजदूरी की मांग बढ़ रही है क्योंकि स्त्रियां अपने को पुरुषों से हीन नहीं समझतीं। भारतीय संविधान का एक नीति-निर्देशक सिद्धान्त यह भी है कि "स्त्री एवं पुरुषों को समान कार्य के लिए समान मजदूरी दी जाए"। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी इस विषय पर एक अभिसमय पारित किया है जिसको भारत ने भी अपना लिया है। परन्तु हमारा यह विचार है कि व्यावहारिक रूप से यह सिद्धान्त उचित नहीं है। ऊपर दिए गए कारणों के परिणामस्वरूप मालिक को सदा स्त्रियों को काम में लगाने में हानि होती है अतः स्वाभाविक ही है कि वह उनको कम मजदूरी देता है। निस्संदेह सामाजिक जीवन में स्त्री एवं पुरुष दोनों से समान स्तर पर ही व्यवहार अवश्य किया जाना चाहिए, परन्तु इस सिद्धांत को औद्योगिक मजदूरी पर लागू करने का अर्थ केवल स्त्रियों के रोजगार में कमी करना होगा। जब से स्त्री एवं पुरुषों को समान मजदूरी देने का सिद्धान्त लागू किया गया है तभी से वास्तव में स्त्रियों के रोजगार में कमी हो गई है। अनेक उद्योगों में स्त्री श्रमिकों को पुरुष श्रमिकों द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया है और अब पुरुष श्रमिकों की पूर्ति अधिक होने के कारण स्त्रियों की भर्ती बन्द सी हो गई है। अतः यह देखा गया है कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत भी अनेक उद्योगों में स्त्रियों एवं पुरुषों के लिए भिन्न-भिन्न मजदूरी की दरें निश्चित की गई हैं। सरकार ने भी अब इस बात का अनुभव कर लिया है कि ऐसे उद्योगों में जिनमें महिला श्रमिक कम कार्यकुशल हैं यदि पुरुष व स्त्रियों के लिए समान मजदूरी निर्धारित की जायेगी तो इसका परिणाम यह होगा कि स्त्रियों को रोजगार मिलना धीरे-धीरे समाप्त हो जायेगा।

मजदूरी और निर्वाह खर्च (Wages and Cost of Living)—

संक्षेप में यह उल्लेख किया जा सकता है कि मजदूरी की समस्या पर विचार करते समय निर्वाह खर्च का भी ध्यान रखना चाहिए, क्योंकि श्रमिक की आर्थिक स्थिति का अनुमान लगाने के लिए हमें उसकी नकद मजदूरी की अपेक्षा असल मजदूरी को देखना चाहिए; हाल ही के वर्षों में मजदूरी में वृद्धि हुई है परन्तु श्रमिकों की आर्थिक स्थिति में कोई सुधार नहीं दिखाई देता जिसका कारण मूल्यों में अति वृद्धि तथा साथ ही निर्वाह खर्च की वृद्धि है। आगे दी हुई तालिका से यह बात स्पष्ट हो जायेगी।* (पृष्ठ ५०१ ई० भी देखें)

* Indian Labour Gazette October 1955; India 1961

वर्ष	आय के समान सूचकांक	अखिल भारतीय उपभोक्ता मूल्य सूचकांक	असल आय के सूचकांक
	(आधार वर्ष १९३९=१००)		
१९३९	१००·०	१००	१००·०
१९४०	१०५·१	९७	१०८·६
१९४२	२०१·५	२६९	७४·९
१९४३	२८१·२	३५९	७८·४
१९४८	३०४·०	३६०	८४·४
१९४९	३४०·१	३७१	९१·७
१९५०	३३४·२	३७१	९०·१
१९५१	३५९·८	३८७	९२·८
१९५२	३८२·७	३७६	१०१·८
१९५३	३८४·६	३८५	९९·९
१९५४	३८१·९	३७१	१०२·७
	आधार वर्ष १९४७=१००		
१९५३	१५२	१२२	१२५
१९५४	१५२	११६	१३१
१९५५	१५९	११०	१४५
१९५६	१६२	१२१	१३५
१९५७	१७०	१२८	१३४
१९५८	१६९	१३३	१२६

मजदूरी चुकायगी का तरीका (Manner of Payment of Wages) :—

अब हम मजदूरी की दूसरी समस्या अर्थात् मजदूरी चुकाने की रीति और स्वरूप तथा मजदूरी में से की जाने वाली कटौतियों आदि पर विचार करेंगे। मजदूरी साधारणतया नकदी में तथा उन श्रमिकों को, जो उन्हें अर्जित करते हैं, प्रत्यक्ष रूप से दी जाती है तथा चुकायगी का उत्तरदायित्व मालिकों या उनके उत्तरदायी अधिकारियों पर होता है। तब भी भिन्न-भिन्न उद्योगों में मजदूरी भुगतान का आधार भिन्न-भिन्न होता है। साधारणतया सूती वस्त्र उद्योग में मजदूरी भुगतान का समय एक माह होता है परन्तु अहमदाबाद में यह समय 'हफ्ता' होता है जो १४ से १६ दिन का होता है। पश्चिमी बंगाल में मजदूरी काल एक सप्ताह होता था परन्तु अब यह साधारणतया एक माह का कर दिया गया है। ऊनी वस्त्र उद्योग में अधिकांश स्थानों में मजदूरी मासिक दी जाती है परन्तु कानपुर की मिलों तथा अमृतसर की एक मिल में श्रमिकों को मजदूरी साप्ताहिक दी जाती है। कोयले की खानों में मजदूरी साधारणतया प्रति सप्ताह दी जाती है। रानीगंज की कोयला खानों में कोयला ढोने वालों की मजदूरी दैनिक आधार पर मिलती है। असम के चाय बागान में मजदूरी साधारणतः पखवाड़ा पर अदा की जाती है परन्तु दक्षिण भारत में अधिकतर श्रमिक दैनिक की मजदूरी पर रखे जाते हैं। उत्तरी भारत के बागान में मजदूरी

समय साधारणतया एक सप्ताह है। पश्चिम भारत में १९३६ के मजदूरी भुगतानी अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले क्षेत्रों में मजदूरी समय साधारणतया एक माह है परन्तु अन्य क्षेत्रों में श्रमिक अर्जित की हुई मजदूरी के आधार पर प्रति सप्ताह अग्रिम राशि ले लेते हैं तथा एकत्रित शेष धन को 'हिसाब किताब' साफ करने के समय या उस अवधि अथवा मौसम की समाप्ति पर ले लेते हैं जिसके लिए वह कार्य पर लगाये जाते हैं। केरल के कुछ भागों में मजदूरी साप्ताहिक दी जाती है। मद्रास और कुर्ग के अतिरिक्त जहाँ मजदूरी भुगतानी अधिनियम लागू है, अधिकतर बागान उद्योग में मजदूरी भुगतानी की अवधि रीति-रिवाजों द्वारा निर्धारित होती है। अधिकतर कारखानों में समानी दरें हैं परन्तु उजरत कार्य भी बहुत से कारखानों में पाया जाता है, विशेषतया सूती उद्योग के कातने और बुनने से सम्बन्धित विभागों में। तमाम कारखानों में लगभग १५.१% श्रमिकों को साप्ताहिक आधार पर, ३.७% को पाक्षिक आधार पर और ८१.२% को मासिक आधार पर मजदूरी दी जाती है।

वास्तव में मजदूरी निर्धारण के आधार में कोई भी सामान्य रीति लागू नहीं की जाती है तथा उद्योग क्षेत्र व कार्य की प्रकृति के अनुसार मजदूरी पृथक्-पृथक् है। मजदूरी भुगतान की रीति का प्रश्न भारत में विशेष महत्व का है क्योंकि यहाँ अप्रत्यक्ष भुगतानी (इसमें जिन्स भुगतानी पद्धति भी सम्मिलित है जिसका अर्थ श्रमिक को वस्तुओं के रूप में मजदूरी का भुगतान करना है) मजदूरी भुगतान में देरी अनुचित-जुर्माने और मजदूरियों में से कटौती आदि जैसी बातें बहुत साधारण रही हैं तथा अब तक कुछ सीमा तक प्रचलित हैं, यद्यपि १९३६ के मजदूरी भुगतानी अधिनियम के पारित हो जाने से स्थिति में बहुत कुछ सुधार हुआ है।

१९३६ का मजदूरी भुगतानी अधिनियम —
(Payment of Wages Act 1936)

सन् १९३६ से पूर्व १८६० के मालिक तथा श्रमिक विवाद अधिनियम के अतिरिक्त श्रमिकों की मजदूरी भुगतानी को नियन्त्रित करने वाला अन्य कोई कानून नहीं था। सन् १९२५ में एक गैर-सरकारी सदस्य द्वारा इस विषय पर एक विधेयक प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया था परन्तु सरकार के इस आश्वासन पर कि वह स्वयं इस ओर कदम उठाएगी इसको वापिस ले लिया गया था। रॉयल श्रम आयोग के सुझावों के परिणामस्वरूप जिसने मजदूरी भुगतानी की प्रणाली के दोषों पर काफी प्रकाश डाला था, सरकार ने १९३३ में एक विधेयक प्रस्तुत किया जो कि १९३६ में "मजदूरी भुगतान अधिनियम" के नाम से पारित हुआ। यह अधिनियम मार्च १९३७ से लागू हुआ। इसमें १९३७ तथा १९५७ में संशोधन भी किए गए। अनेक प्रांतीय सरकारों ने भी अपने-अपने प्रदेशों में अधिनियम लागू करने के लिए इसमें संशोधन किए हैं। जम्मू और काश्मीर राज्य को छोड़कर यह अधिनियम समस्त भारत में लागू होता है।

अधिनियम के मुख्य उपबन्ध —

यह अधिनियम प्रत्येक कारखाने और प्रत्येक रेलवे के उन श्रमिकों पर लागू होता है जो कि ४००) रु० प्रतिमाह से कम मजदूरी और वेतन प्राप्त करते हैं। पहले यह सीमा २००) रु० थी परन्तु १९५७ से यह सीमा बढ़ाकर ४००) रु० कर दी गई है। अधिनियम को १९४८ में कोयले की खानों पर तथा १९५१ में तमाम बागों पर और १९५७ में निर्माण उद्योग पर लागू कर दिया गया। उपयुक्त सरकारें अधिनियम के उपबन्धों को इसके अन्तर्गत की गई व्याख्या के अनुसार किसी भी औद्योगिक संस्थान में लागू कर सकती हैं। अधिनियम में दी गई व्याख्या के अनुसार मजदूरी उन तमाम मेहनताने को कहते हैं जिसे द्रव्य के रूप में प्रदर्शित किया जा सकता हो तथा जो रोजगार में लगे हुए श्रमिकों को दिया जाता हो। इसमें बोनस व अन्य सभी प्रकार का पारिश्रमिक भी सम्मिलित होता है परन्तु इसमें आवास की सुविधा, रोशनी पानी व चिकित्सा लाभ या यात्रा भत्ता, यात्रा-छूट (?) एवं पेंशन, प्रोविडेन्ट फण्ड अंशदान आदि जैसी जीवन की अन्य सुविधाओं का समावेश नहीं होता है। १९५७ में किए गए संशोधन के अनुसार मजदूरी में वह सब मेहनताना भी सम्मिलित कर लिया गया है जो किसी पंचाट, समझौते अथवा न्यायालय के आदेशों के परिणामस्वरूप दिया जाता है। अधिनियम के अन्तर्गत यह आवश्यक है कि मजदूरी की अवधि निश्चित कर दी जाए परन्तु यह अवधि एक माह से अधिक न हो। उन संस्थाओं में जो १००० से कम व्यक्तियों को रोजगार देते हैं मजदूरी अदायगी मजदूरी अवधि के समाप्त होने के ७ दिन के अन्दर ही हो जानी चाहिए तथा अन्य संस्थाओं में अवधि समाप्ति के दस दिन के भीतर भीतर मजदूरी दे देनी चाहिए। हटाए गए श्रमिक को दूसरे दिन के समाप्त होने से पहले अर्थात् जिस दिन से उस श्रमिक का रोजगार समाप्त हुआ है उसके दूसरे दिन उसको मजदूरी का भुगतान कर दिया जाना चाहिए। मजदूरी की इस प्रकार की अदायगी प्रचलित कानूनी ग्राह्य मुद्रा (Current Legal Tender) में तथा कार्य के दिन ही होनी चाहिए। १९५७ में किए गए संशोधन द्वारा मालिकों को यह अधिकार है कि वह "हाजिर" हड़ताल की स्थिति में मजदूरी को रोक सकते हैं।

मजदूरी में से कटौतियाँ — (Deductions from the Wages)

अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी में से केवल कुछ निश्चित प्रकार की कटौतियाँ की जा सकती हैं। उदाहरणार्थ (क) जुर्माने (ख) कार्य से अनुपस्थिति पर कटौती (ग) हानि या क्षति के कारण कटौती, (घ) मालिक द्वारा प्रदान की गई आवास सुविधाओं और सेवाओं के लिए कटौती (ङ) अग्रिम राशि की वसूली के लिए या मजदूरी की अधिक अदायगी को ठीक करने के लिए कटौती, (च) आय कर के लिए या प्रोविडेन्ट फण्ड में अंशदान के लिए और उसमें से ली गई अग्रिम राशि को पूरा करने के लिए या सहकारी समिति को अदायगी के लिए या डाक-बीमा के सम्बन्ध में बीमा की किश्तों के लिए कटौति (छ) १९५७ में किए गए संशोधन के अन्तर्गत

बीमा किश्तों और मकान के किराए के लिए, यदि कर्मचारी द्वारा लिखकर दे दिया जाए, या सरकार की प्रतिभूतियों (Securities) के लिए। बच्चा या रोजगार नियमों के अन्तर्गत लगाए गए जुर्मानों के कारण भी हुई कटौतियां अधिकृत (Authorised) मानी गई हैं।

इन कटौतियों के विरुद्ध कुछ रक्षात्मक उपायों की भी व्यवस्था की गई है। जुर्माने केवल (क) विशेष कार्यों तथा भूलों के लिए किए जा सकते हैं जो कि किसी अधिकृत सत्ता (Competent Authority) द्वारा सूचना पत्र में अनुमोदित कर दिए गए हों (ख) जुर्माने की कुल राशि किसी भी मजदूरी काल में प्राप्त होने वाली मजदूरी से ३ नए पैसे प्रति रुपए से अधिक नहीं हो सकती। सब जुर्माने निर्धारित रजिस्टर में दर्ज होने चाहिएं तथा एक जुर्माना निधि में जमा किए जाने चाहिए। इन जुर्माना निधियों द्वारा प्राप्त आय श्रमिकों के ऐसे लाभ के लिए व्यय की जा सकती है जो अधिकृत सत्ता द्वारा अनुमोदित कर दिए गए हों। काम से अनुपस्थिति के लिए कटौती उस राशि से अधिक नहीं होनी चाहिए जो राशि श्रमिक को मजदूरी के रूप में यदि वह अनुपस्थित न होता मिलती। हानि या क्षति के लिए कटौती केवल तब ही की जा सकती है जबकि वह श्रमिक की लापरवाही के कारण हुई हो तथा इस प्रकार की कटौती की राशि श्रमिक को हुई हानि या क्षति की मात्रा से अधिक नहीं होनी चाहिए। इन सब बातों का उल्लेख एक रजिस्टर में किया जाना चाहिए। आवास तथा अन्य सुविधाओं के लिए भी कटौती इन सेवाओं के मूल्य से अधिक नहीं होनी चाहिए और यह तब ही की जा सकती है जबकि श्रमिक ने इस प्रकार की सुविधा या सेवाओं को स्वीकार कर लिया हो।

अधिनियम का प्रशासन और विस्तार —

केन्द्रीय सरकार की एक विज्ञप्ति द्वारा अधिनियम का लाभ १५ जनवरी १९४८ से उन सभी के श्रमिकों के लिए जो कोयले की खानों में काम करते हैं तथा १९५१ से अन्य खानों तक विस्तृत कर दिया गया है। मद्रास, कुर्ग, असम, मैसूर और पंजाब में बागान उद्योग पर कुछ राज्यों में किराये की मोटरों और ट्रामों सेवा पर बिहार में यन्त्रचालित जल यातायात पर, बम्बई में गोदी कर्मचारियों तथा दुकान व वाणिज्य संस्थाओं पर उत्तर प्रदेश में छापाखानों पर व मध्य प्रदेश में अनियन्त्रित कारखानों आदि तक भी इसको विस्तृत कर दिया गया है। अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व राज्य सरकारों पर है और इसका भार कारखाना निरीक्षकों को सौंप दिया जाता है। कोयले की खानों तथा रेलवे के सम्बन्ध में प्रशासन भार मुख्य श्रम आयुक्त पर होता है। राज्य सरकारों के दावों को सुनने तथा फैसला देने के लिए, जो कि मजदूरी में कटौती तथा मजदूरी भुगतानी में देरी के कारण पैदा होते हैं अधिकारियों की नियुक्ति की है। पश्चिमी बंगाल में कोयले की खानों के लिए भारत सरकार ने क्षेत्रीय प्रतिपूर्ति आयुक्त की नियुक्ति की है। १९५७ में किए गए संशोधन के अनुसार दावों को रद्द करने की आज्ञा के विरुद्ध अपील करने का अधिकार

श्रमिकों को ८ दिया गया है। प्राधिकारियों को यह भी अधिकार है कि यदि यह भय हो कि मजदूरी का भुगतान नहीं किया जायेगा या किसी व्यवसाय के बन्द होने पर मजदूरी भुगतान को प्राथमिकता नहीं दी जायेगी तो वह मालिक की या मजदूरी का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों की सम्पत्ति को समर्थ कुर्क करा सकते हैं। बम्बई में १९५४ में एक संशोधन के अनुसार इस नियम के अन्तर्गत यदि कोई राशि बाकी रह जाती है तो उसकी उगाही उसी प्रकार की जा सकती है जैसे माल गुजारी के बकाया की उगाही होती है।

अधिनियम के कार्यान्वित होने का मूल्यांकन —

विभिन्न राज्यों द्वारा इस अधिनियम पर प्रस्तुत की जाने वाली वार्षिक रिपोर्टों से यह पता चलता है कि अधिनियम के उपबन्ध उचित रूप से लागू किए जा रहे हैं परन्तु कुछ राज्यों में शक्तिशाली तथा उत्तरदायी श्रमिक संघों की कमी के कारण श्रमिक इससे लाभ उठाने में असफल रहे हैं। मुख्य श्रम आयुक्त के द्वारा अधिनियम के प्रतिपालन (Observance) की कुछ अनियमितताओं (Irregularities) की रिपोर्ट दी गई है। १९५८–५९ में रेलों में अनियमितताओं के १० १९९ मामले पाए गए। इनमें से ६२ ९% तो देर से अदायगी करने या अदायगी न करने के मामले थे। १९५८ में खानों में अनियमितताओं के १ १८० मामले पाए गए जिनमें से ११.८% तो उचित प्रकार से रजिस्टर न रखने के थे और २१ ९% देर से अदायगी करने के थे। १९५९ में अधिनियम के अन्तर्गत जो अनियमितता पाई गई उनकी कुल संख्या ११ ९६१ थी और यह निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित थी — अदायगी की तिथि और अन्य सूचियों का नोटिस न लगाने से सम्बन्धित—२ ६९१ रजिस्टरों का न रखना—२,०११ रजिस्टरों का उचित प्रकार से न रखना—१ ४२१ मजदूरी की देर से अदायगी—१ ६४६, मजदूरी की अदायगी न करना—१८७ अनुचित कटौतियाँ—११६, जुर्माने—६८ हानि तथा क्षति के लिए कटौती—११८ अग्रिम राशि की उगाही ११४ अन्य—१ २२१। परन्तु सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि श्रमिकों को इस अधिनियम से बहुत लाभ हुआ है।

श्रम अनुसन्धान समिति के कथनानुसार यद्यपि अधिकांश बड़े-बड़े संस्थानों द्वारा अधिनियम का ठीक पालन किया गया है तथापि ठेके के श्रमिकों के सम्बन्ध में तथा छोटे-छोटे संस्थानों में, जहाँ पर किसी प्रकार का कोई रिकार्ड तथा उचित रजिस्टर आदि नहीं रखे जाते इस अधिनियम से बचने का भारी प्रयत्न किया जाता है। अधिकतर मामलों में यह पाया गया है कि कटौती समयोपरि मजदूरी का रिकार्ड मजदूरी की समयानुसार अदायगी बोनस महँगाई भत्ता आदि से सम्बन्धित अधिनियम के उपबन्धों का ठीक प्रकार से पालन नहीं किया जाता है तथा रजिस्टर भी ठीक-ठीक नहीं रखे जाते हैं। रिपोर्ट में यह भी बताया गया है कि यद्यपि अधिनियम के अन्तर्गत जुर्मानों की मात्रा बहुत कम है तथापि अनेक मालिक श्रमिकों को एक या आधे दिन के लिए मुअत्तल कर देते हैं और उनकी मजदूरी में से कटौती कर लेते हैं। समिति के

अनुसार रेलवे में अधिनियम के कार्यकरण के विषय में यह एक बहुत गम्भीर शिकायत है। बीड़ी तथा कपड़ा जैसे कुछ कारखानों में दाम असन्तोषजनक कार्य आदि के लिए मजदूरी से अनाधिकृत कटौती की प्रथा भी प्रचलित है। हानि या क्षति के लिए कटौती का जो उपबन्ध है वह श्रमिकों के विरुद्ध जाता है क्योंकि मजदूरी की अदायगी को इस आधार पर रोक लिया जाता है कि औजार तथा पदार्थ खराब हो गए हैं। बहुत से मामलों में यह देखा गया है कि मजदूरी अदायगी में देरी की जाती है। सबसे अधिक हानि ठेके के श्रमिकों को उठानी पड़ती है तथा उनके मामले में अधिनियम के उपबन्धों से बचने का प्रयत्न भी किया जाता है। अनन्ता कोई भी रिकार्ड नहीं रखा जाता और निरीक्षकों के लिए अधिनियम को लागू करना कठिन हो जाता है। समिति ने बहुत से मामलों में यह पाया कि जुर्माना निधि में बहुत बड़ी-बड़ी राशि एकत्रित हो गई थी तथा उस राशि को कर्मचारियों के लाभ के लिए उपयोग में नहीं लाया जा रहा था। अनेक मामलों में तो जुर्माना निधियां ही नहीं बनाई गई थीं। अधिनियम में इस निधि को किसी निश्चित समय के अन्दर ही श्रमिकों के लाभ के लिए व्यय करने का बन्धन मालिकों पर नहीं लगाया गया है। इन दोषों और कमियों के कारण ही सरकार ने १९५७ में इस अधिनियम में संशोधन किया जिसका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। संक्षेप में १९५७ के संशोधित अधिनियम के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार हैं, (i) मजदूरी सीमा को २०० रु० से बढ़ाकर ४०० रु० कर दिया गया है (ii) अधिनियम को निर्माण उद्योग तक विस्तृत कर दिया गया है (iii) मजदूरी की परिभाषा में संशोधन किया गया है, (iv) बीमा किश्तों मकान का किराया सरकारी प्रतिभूतियों के लिए चन्दा तथा पेशा नियमों के अन्तर्गत लगाए गए जुर्मानों आदि के लिए कटौती को अधिकृत कर दे दिया गया है, (v) दावों को रद्द कर देने के विरुद्ध अपील करने और श्रमिकों के हित की सुरक्षा के लिए मालिकों की सम्पत्ति को कुर्क कराने की व्यवस्था भी की गई है। इस बात का सुझाव दिया गया है कि इस अधिनियम में फिर संशोधन किया जाए ताकि जुर्माने मजदूरी और कटौतियों का रजिस्टर न रखने पर और मजदूरी का उचित समय पर भुगतान न करने पर या वर्ष दिवस के अतिरिक्त दिवस पर भुगतान करने पर मालिकों पर मुकदमा चलाया जा सके और मालिक इस अधिनियम से अनुचित लाभ उठाकर देर से अदायगी न कर सकें। मजदूरी न देने पर क्षतिपूर्ति की दर बढ़ाने का भी सुझाव है।

बोनस अदायगी (Bonus Payment).—

अब हम बोनस अदायगी तथा लाभ सहभाजन की समस्या का उल्लेख करेंगे। भारतीय श्रमिकों की आय पूर्ण रूप से उनकी नकद आय से ही नहीं मापी जा सकती क्योंकि उनको अक्सर अनेक प्रकार के बोनस तथा रियायतें आदि भी दी जाती हैं। बोनस साधारणतया किसी विशेष या अतिरिक्त सेवा के लिए अदायगी है तथा साधारणतया इसका उद्देश्य उपस्थिति में नियमितता लाना व विशेष प्रकार के अच्छे

श्रमों को प्रोत्साहन देना है। इस प्रकार बोनस वह नकद अदायगी है जो कि मजदूरी के अतिरिक्त श्रमिकों के अधिक प्रयत्नों को प्रोत्साहन देने के लिए की जाती है। परन्तु यह परिभाषा 'प्रोत्साहन बोनस' की ओर संकेत करती है अर्थात् जब अधिक प्रयत्नों के लिए बोनस का भुगतान किया जाता है। अब बोनस शब्द ने एक दूसरा अर्थ ग्रहण कर लिया है—अर्थात् लाभ में श्रमिकों का अधिकारपूर्ण भाग। बोनस मालिक-मजदूर सम्बन्धों का एक मुख्य प्रश्न बन गया है।

जैसा कि मजदूरी स्तर के अन्तर्गत उल्लेख किया जा चुका है, बोनस बहुत से उद्योगों में नियमित रूप से दिया जाता है। साधारणतया बोनस उत्सव के समय में दे दिया जाता है तथा अब वह श्रमिकों की मजदूरी का ही भाग समझा जाता है। इस कारण बोनस अदायगी का प्रश्न बहुत से औद्योगिक विवादों का विषय रहा है। ऐसे अनेक विवाद समय-समय पर औद्योगिक विवाद अधिनियम के अन्तर्गत की गई सुलह व्यवस्था को सौंपे जाते हैं। अब यह सुझाव दिया गया है कि श्रमिकों को बोनस देने के लिए कुछ निश्चित सिद्धान्त तथा स्तर होने चाहियें। इनको बनाने के लिए बोनस की प्रकृति से सम्बन्धित बहुत सी बातों की जाँच आवश्यक होगी। यह निर्णय करना होगा कि (क) क्या बोनस अनुग्रहपूर्वक की गई अदायगी (*Ex-gratia payment*) है जो पूर्ण रूप से मालिकों की इच्छा पर निर्भर करती है तथा जिसको उस समय तक कानूनी अधिकार के रूप में नहीं मांगा जा सकता जब तक कि यह रोजगार की संविदा में सम्मिलित न हो, या (ख) बोनस भुगतान की गई मजदूरी तथा जीवन निर्वाह मजदूरी स्तर के अन्तर को कम करने के लिए, श्रमिकों को दी जाने वाली स्थगित मजदूरी है, या (ग) बोनस लाभ में से एक भाग है जिसका दावा श्रमिक एक अधिकार के रूप में कर सकते हैं क्योंकि लाभ, श्रम और पूंजी दोनों के ही संयुक्त प्रयत्नों का परिणाम होता है तथा किसी भी एक पक्ष को दूसरे पक्ष की उपेक्षा करके इसको पूर्ण रूप से प्राप्त करने का अधिकार नहीं होना चाहिए।

इन विचारों में से प्रथम विचार अर्थात् बोनस अनुग्रहपूर्वक की गई अदायगी है, अर्थशास्त्रियों द्वारा स्वीकार नहीं किया जाता है। औद्योगिक अधिकरणों द्वारा दिए गए निर्णयों से भी यही बात अभिव्यक्त होती है। विवाचकों के साथ ही के निर्णयों से भी यही बात स्पष्ट है कि बोनस अनुग्रहपूर्वक की गई अदायगी नहीं है और इसको श्रमिकों द्वारा अधिकार के रूप में मांगा जा सकता है। १९५४ में इलाहाबाद उच्च न्यायालय के अनुसार "इसमें कोई सन्देह नहीं कि आधुनिक समय में 'बोनस' को स्पष्ट रूप से ऐसी स्थगित मजदूरी माना गया है जो श्रमिकों को दी जाती है तथा जो श्रमिकों के द्वारा रोजगार की शर्तों के अनुसार अधिकार के रूप में मांगी जा सकती है। जिन दशाओं के अधीन वर्तमान उद्योग कार्य करता है, उनमें बोनस श्रमिकों का एक अधिकार समझा जाने लगा है जिसको कि वह कुछ परिस्थितियों में मालिकों से दावे के रूप में मांग सकते हैं।" इस प्रकार श्रमिकों के इस बोनस अदायगी के दावे ने कानूनी मान्यता प्राप्त कर ली है। यह हमारे संविधान में दिए गए सामाजिक

और वाजिब न्याय पर आधारित है। बोनस का देना कोई दान का काम नहीं है। यह तो श्रमिकों का लाभ में अधिकारपूर्ण भाग समझा जाता है जो लाभ श्रमिकों के सहयोग और सहायता से ही कमाया जाता है।

श्रमिकों को बोनस की अदायगी की मात्रा कितनी हो इसका निर्णय करने के लिए हमें मालिकों के पास प्राप्त शेषी राशि की मात्रा को देखना होगा। इस शेषी राशि को निश्चित करने के लिए श्रम अपीलीय अधिकरण (Labour Appellate Tribunal) ने एक सिद्धान्त प्रस्तुत किया था। यह सिद्धान्त उद्योग द्वारा किसी एक निश्चित साल के कुल लाभ की मात्रा को लेता है तथा यह बताता है कि निम्न बातों को कुल लाभ में से सबसे पहले अलग कर देना चाहिए मूल्य ह्रास (Depreciation) की व्यवस्था पुनर्वास के लिए कुछ आरक्षित निधि चुकती पूंजी पर ६% का ब्याज कार्यशील पूंजी पर कम दर पर ब्याज और आय-कर अदायगी के लिये व्यवस्था। शेष धन को उस वर्ष के लिए प्राप्य शेषी राशि (Surplus) मान लेना चाहिए जिसमें से श्रमिक अपने लिए उचित भाग के मांगने का अधिकारी है। यह सिद्धान्त जो कि सर्वोच्च न्यायालय (Supreme Court) द्वारा मान्य है, अब सारे देश में श्रमिकों के बोनस के दावों का निर्णय करने के लिए औद्योगिक विवादकों के लिए एक आधार बन गया है। यह भी माना गया है कि श्रमिकों के बोनस दावों को मान्यता देने से पूर्व निम्नलिखित बातों का होना आवश्यक है। (i) जबकि मजदूरी जीवन स्तर से कम हो। (ii) जबकि उद्योग को अत्यधिक लाभ होते हैं जिनका अधिकांश भाग श्रमिकों के सहयोग द्वारा बढ़ाए गए उत्पादन के कारण ही संभव होता है।

मार्च १९६० में स्थायी श्रम समिति ने एक 'बोनस आयोग' की स्थापना की सिफारिश की। इस आयोग का कार्य यह होगा कि नकदी या अन्य रूप में बोनस की अदायगी के लिए कुछ सिद्धान्त बना दे। ऐसे सिद्धान्त बोनस के झगड़ों को निबटाने में बहुत सहायक होंगे। केन्द्रीय श्रम मंत्री श्री नन्दा ने इस बात की घोषणा भी कर दी है कि ऐसे बोनस आयोग के कार्य क्षेत्र को बढ़ा दिया जायेगा और यह बोनस से सम्बन्धित अन्य प्रश्नों पर भी विचार करेगा उदाहरणतः मजदूरी निर्धारण मूल्यों की स्थिरता निर्वाह व्यय तथा उत्पादकता आदि जिनका बोनस के प्रश्न से सम्बन्ध है। मालिकों के प्रतिनिधियों ने ऐसे आयोग का विरोध किया है। उनका कहना है कि जब सर्वोच्च न्यायालय ने बोनस से सम्बन्धित निश्चित सिद्धान्त बना दिये हैं तो ऐसे आयोग की कोई आवश्यकता नहीं है। परन्तु हमारे विचार में बोनस के विषय पर आयोग द्वारा विचार किए जाने में कोई हानि नहीं है। श्री एस॰ आर॰ मिहिर की अध्यक्षता में बोनस कमीशन की नियुक्ति हो चुकी है। यह त्रिदलीय कमीशन है।

हमारे सामने यह प्रश्न उठता है कि कुल लाभ में से श्रमिकों का भाग कितना हो? इससे हमारा ध्यान लाभ सहभाजन की ओर जाता है। लाभ सहभाजन का प्रश्न अभी तक भारत में वाद-विवाद का विषय बना हुआ है। किसी भी प्रकार के वैधानिक नियमों के अभाव में लाभ सहभाजन और बोनस योजना ऐच्छिक या विवादकों

के व्यवहार के परिणामस्वरूप निर्धारित की गई है। परन्तु इसके अतिरिक्त ऐसी राशि की गणना के लिए कोई समान या निर्धारित नियम नहीं है और न ही यह स्पष्ट किया गया है कि श्रमिकों को इसमें से कितना भाग मिलना चाहिए। श्रमिकों तथा मालिकों, दोनों ही के संघों ने विवादकों द्वारा अपनाये गए स्तरों की अनेक आधारों पर आलोचना की है तथा यही बात अनेक बार विवादों और हड़तालों का कारण बनी है। इसलिए यह वांछनीय ही है कि बोनस की प्रकृति तथा लाभ व इसका सम्बन्ध अब स्पष्ट कर निकालकर कुल लाभ में से ऐसी लाभ की गणना बोनस तथा लाभ के लिए आदर्श स्तर आदि प्रश्नों पर किसी निष्पक्ष समिति द्वारा सावधानीपूर्वक विचार किया जाना चाहिए और जो भी निर्णय हो उसे वैधानिक रूप से लागू करना चाहिए। बोनस कमीशन की नियुक्ति तो हो चुकी है परन्तु लाभ सहभाजन के प्रश्न पर अभी तक कोई निर्णय नहीं किया गया है।

भारत में लाभ सहभाजन योजना
(Profit-sharing Scheme in India)

आज की औद्योगिक प्रणाली में श्रमिकों की मुख्य शिकायत यह है कि न तो उनसे उद्योग के प्रबन्ध में सहयोग लिया जाता है और न ही उन्हें उस व्यवसाय के लाभ में जहाँ वह काम करते हैं कोई भाग प्राप्त होता है। इस आपत्ति को दूर करने के लिए संसार के मुख्य औद्योगिक देशों में सह-साझेदारी (Copartnership) तथा लाभ सहभाजन की योजनायें लागू की गई हैं। कुछ देशों में सह-साझेदारी तथा लाभ सहभाजन दोनों ही को साथ-साथ लागू किया गया है। परन्तु दूसरे कुछ देशों में उद्योगपति लाभ का केवल कुछ भाग ही श्रमिकों को देने को तैयार हुए हैं ताकि श्रमिक सन्तुष्ट रह सकें। अतः साधारण लाभ सहभाजन से लेकर पूर्ण सह-साझेदारी तक की अनेक योजनायें हो सकती हैं।

लाभ सहभाजन का अर्थ—

लाभ सहभाजन का तात्पर्य ऐसी व्यवस्था से है जिसके अन्तर्गत मालिक कर्मचारियों को मजदूरी के अतिरिक्त व्यवसाय में हुए ऐसी लाभ में से कुछ भाग दे देते हैं। इसका अर्थ यह भी है कि मालिक तथा कर्मचारियों के मध्य इस भाग को प्राप्त करने के लिए समझौता होता है। अतः लाभ सहभाजन तथा बोनस के भुगतान में अन्तर है। बोनस के भुगतान के पीछे कोई कानूनी मान्यता नहीं होती है और यह भाग मालिकों की सद्भावना या अधिकारों के व्यवहार पर निर्भर करता है। इसके विपरीत लाभ सहभाजन एक ऐसे निश्चित समझौते पर आधारित होता है जो कि मालिक तथा कर्मचारियों के मध्य होता है। आजकल लाभ तथा मजदूरी को एक साथ मानने की प्रवृत्ति हो गई है तथा यह समझा जाता है कि श्रमिकों का मजदूरी के साथ ही लाभ में भी हिस्सा पाने का अधिकार है। मार्क्स के इस सिद्धान्त को कि लाभ चोरी की हुई मजदूरी है अब कोई महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि लाभ औद्योगिक प्रणाली का एक आवश्यक भाग समझा जाता है। श्रम के शोषण की बुराइयों

को दूर करने के लिए लाभ सहभाजन की योजना का सुझाव दिया गया है और कोई भी व्यक्ति लाभ को पूर्णतया समाप्त कर देने के बारे में गम्भीरता से नहीं सोचता है।

लाभ सहभाजन की वांछनीयता—

लाभ सहभाजन के पक्ष में सबसे महत्वपूर्ण तर्क सामाजिक न्याय का है। यह सर्वविदित ही है कि श्रम सम्पत्ति का मूल उपादान है तथा यदि श्रमिक कार्य न करें तो लाभ का होना असम्भव है। यह श्रमिक ही तो है जिसके कारण लाभ उत्पन्न होता है तथा यह बहुत ही अन्यायपूर्ण होगा यदि उसको लाभ में से कोई भाग न दिया जाय। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि पूँजीपति वर्ग द्वारा सारे लाभ का स्वामीकरण (Appropriation) श्रम और पूँजी में तीव्र मत-भेद उत्पन्न कर देता है जिसका परिणाम औद्योगिक झगड़े उत्पादन में कमी और उपादानों के उत्पादनों का अपव्यय होता है। वर्तमान समय में सारा लाभ व्यवसायी ही हड़प जाते हैं लेकिन यदि वह अपने लाभ का एक भाग श्रमिकों को उनकी मजदूरी के अतिरिक्त दे दें तब यह आशा की जा सकती है कि श्रम और पूँजी के बीच संघर्ष कम हो जायेंगे जिसके परिणामस्वरूप उत्पादन भी अच्छा होने लगेगा। लाभ सहभाजन श्रम और पूँजी के सामान्य हितों को सुदृढ़ कर देता है। इससे श्रमिकों में स्थायी रूप से एक स्थान पर कार्य करते रहने की प्रवृत्ति भी आ जायगी तथा निरन्तर श्रमिकावर्त के दोष दूर हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त वह श्रमिक जिन्हें लाभ में हिस्सा प्राप्त होता है बहुत सावधानी तथा परिश्रम से अपना कार्य करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक माल का अपव्यय कम करते हैं तथा मशीन व उत्पादन के औजारों का विशेष ध्यान रखते हैं। उत्पादन की क्षमता बढ़ जाती है जिसका अन्तिम परिणाम अधिकाधिक लाभ होता है। रोबर्ट ओवन के बारे में कहा जाता है कि जब एक बार एक मिल मालिक ने उनसे कहा कि "यदि मेरे श्रमिक चाहें तो वह अच्छा कार्य करके तथा अपव्ययता को दूर करके मेरे १०,००० पौंड प्रतिवर्ष बचा सकते हैं, तो ओवन ने प्रत्युत्तर में कहा कि 'तब आप उनको २,००० पौंड प्रतिवर्ष इस कार्य के लिये क्यों नहीं दे देते हैं।'" लाभ सहभाजन का एक और लाभ यह होता है कि उच्च योग्यता वाले श्रमिक लाभ सहभाजन वाले संस्थानों की ओर आकर्षित होते हैं और इनसे उत्पादन क्षमता और भी बढ़ जाती है।

लाभ सहभाजन योजना में बाधाएँ —

लाभ सहभाजन योजना की व्यवस्था से जहाँ लाभ हैं वहाँ अनेक दोष तथा त्रुटियाँ भी हैं। यह योजना श्रमिक नेताओं द्वारा पसन्द नहीं की गई है क्योंकि इसके द्वारा मालिक भाग श्रमिक संघों को निर्बल करने का अवसर ढूंढते हैं और श्रमिकों को श्रमिक संगठनों पर निर्भर होने के स्थान पर अपने ऊपर आश्रित करना चाहते हैं। लाभ सहभाजन में कभी कभी श्रमिक अपनी सामर्थ्य से अधिक काम करते हैं। अन्त में इसका परिणाम कम मजदूरी होता है। अनेक बार श्रमिकों को जो लाभ में से भाग मिलता है अधिक नहीं होता है और श्रमिक वर्ग लाभ को बांटने

में मालिकों की ईमानदारी और सच्चाई में सन्देह करता है। अतः श्रमिक लाभ सहभाजन की योजनाओं में अधिक रुचि नहीं लेते हैं। भारत में इस प्रकार की शंका उचित है क्योंकि जब चतुर पूंजीपति अपने लाभ के बारे में आय कर अधिकारियों तक को चकमा दे सकते हैं तब उनके लिए बेचारे निर्धन और अशिक्षित श्रमिकों को धोखा देना तो बहुत ही सरल है। इसके अतिरिक्त जब यह व्यवस्था प्रारम्भ की जाती है तो मालिक और श्रमिक दोनों ही यह दिखाने का प्रयत्न करते हैं कि लाभ में जो वृद्धि हुई है वह केवल उनके अपने ही प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हुई है। श्रमिक यह सोचते हैं कि क्योंकि उन्होंने मन लगाकर तथा अधिक उत्साह से कार्य किया है इसलिए लाभ विशेषकर उन्हीं के प्रयत्नों द्वारा हुआ है परन्तु मालिक इस बात को स्वीकार नहीं करते। परिणामस्वरूप विवाद उत्पन्न होने लगते हैं।

लाभ सहभाजन योजना के विरुद्ध अनेक आपत्तियां और भी हैं। यह बताया जा चुका है कि निवल लाभ का ठीक ठीक हिसाब लगाना कठिन है क्योंकि मूल्य ह्रास करारोपण (Taxation), आरक्षित धन (Reserves) चुकती पूंजी पर लाभ आदि ऐसी अनेक बातें हैं जिनके बारे में निवल लाभ (Net Profits) के निश्चित करने में बहुत अधिक तकनीकी ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त मालिक सदा यह कहते हैं कि यदि श्रमिक लाभ में अपने भाग का दावा करते हैं तो क्या व्यवसाय में हानि होने पर उस हानि का कुछ भाग देने को तैयार होंगे? दूसरे शब्दों में क्या श्रमिक व्यवसाय की जोखिम को उसी अनुपात में वहन करने को तैयार हैं जिस अनुपात में वह लाभ से हिस्सा चाहते हैं? लाभ सहभाजन से श्रमिक आलसी भी हो सकते हैं और इस कारण उत्पादन बजाय बढ़ने के घट सकता है।

उपसंहार —

अतः प्रो० टॉजिग का कथन है "यह आशा बिल्कुल नहीं की जा सकती कि लाभ सहभाजन चिरस्थायी रूप धारण कर सका। इसके विस्तृत रूप में अपनाये जाने की आशाएं भी बहुत कम हैं।" तब भी अनेक ऐसे अर्थशास्त्री हैं जिनका विश्वास है कि लाभ सहभाजन ही श्रमिक वर्ग की मुक्ति का एकमात्र मार्ग है। इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि लाभ सहभाजन योजनाओं से श्रमिकों में सन्तुष्टि उत्पन्न होगी और वह अपना कार्य भी अच्छे प्रकार से करेंगे परन्तु वस्तुतः इन योजनाओं को कार्यान्वित करने में अनेक बाधाएं हैं। जब तक कि मालिकों और श्रमिकों के मध्य पारस्परिक विश्वास तथा पारस्परिक सौहार्द्र का वातावरण पैदा नहीं होगा ऐसी योजनाएं कभी भी सफलता प्राप्त नहीं कर सकतीं। यह योजना की बात उतनी लाभकारी ही ज्ञात होता कि लाभ सहभाजन योजनाएं औद्योगिक विवादों को समाप्त कर देंगी। अधिक से अधिक यह कहा जा सकता है कि ऐसी योजनाओं से विवाद कम हो जायें।

श्रमिक सह-साझेदारी (Labour Co-partnership) :—

भारतवर्ष में लाभ सहभाजन की प्रस्तावित योजना पर विचार करने से पूर्व इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि व्यवसाय के प्रबन्ध और निर्देशन में किसी भी प्रकार के अधिकार के बिना श्रमिकों का लाभ में से भाग लेना लाभ सहभाजन का एक आन्तरिक दोष है। इस दोष को दूर करने के लिए बहुत से देशों में श्रमिकों को प्रबन्धक मण्डल में प्रतिनिधित्व देने के प्रयत्न किए गए हैं। इसको सह-साझेदारी के नाम से जाना जाता है। इसका क्षेत्र लाभ सहभाजन के क्षेत्र से अधिक विस्तृत है। वास्तव में इसमें लाभ सहभाजन और प्रबन्ध में भाग दोनों ही का समावेश हो जाता है और इसमें अन्त में श्रमिक पूँजी में हिस्सेदार होने के भी योग्य हो जाते हैं। आरम्भ में श्रमिक सह-साझेदारी को सहकारिता का ही एक रूप समझा जाता था। इस ओर रोबर्ट ओवन द्वारा प्रयत्न किए गए थे। यह प्रयत्न असफल रहे क्योंकि सहकारिता प्रणाली बड़े पैमाने की उत्पत्ति के अनुकूल नहीं है। रोबर्ट ओवन के आदर्श बहुत ही ऊँचे थे जिनको प्राप्त करना बहुत कठिन था। परन्तु यह एक पृथक प्रश्न है जिसका अध्ययन 'श्रम और सहकारिता' के अध्याय में किया जायेगा।

सामान्यतः सह-साझेदारी उन योजनाओं में होती है जो पूँजीवादी प्रकृति की होती हैं तथा इनमें जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है लाभ सहभाजन व श्रमिकों का प्रबन्ध में नियन्त्रण की योजनाएं भी सम्मिलित होती हैं। व्यवसाय का नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक है कि या तो शेयर पूँजी प्राप्त की जाए और इस प्रकार से अंशधारी के साधारण अधिकार तथा उत्तरदायित्व प्राप्त कर लिए जाएं या श्रमिकों की एक सह-साझेदारी समिति बना ली जाए जिसकी आंतरिक प्रबन्ध में कुछ सुनवाई हो। जहां तक शेयर पूँजी प्राप्त करने का सम्बन्ध है हम भारतीय श्रमिकों से उनकी निर्धनता तथा कम मजदूरी के कारण इसकी आशा नहीं कर सकते। इस कारण इस प्रश्न पर विचार करना कोई विशेष लाभदायक नहीं है। सह-साझेदारी समिति का निर्माण निःसन्देह उपयोगी हो सकता है। इससे श्रमिक आन्तरिक प्रबंध में भी अपना हाथ रख सकते हैं। परन्तु यह भी श्रमिकों की शिक्षा उनकी बुद्धिमता तथा मालिकों को उन पर कितना विश्वास है इन बातों पर निर्भर करती है। जब तक देश में एक शक्तिशाली श्रमिक संघ आन्दोलन न हो इस प्रकार की समितियां न तो बनाई जा सकती हैं और न ही सफल हो सकती हैं। फिर भी यदि इस प्रकार की समितियां बनाई गई तो समिति के सदस्यों को व्यवसाय की गुप्त बातें नहीं बताई जाएंगी तथा मुख्य मुख्य देखभाल के कार्यों का भार उनको नहीं दिया जायगा। यह भी बहुत कुछ सम्भव है कि श्रमिक अपने सह श्रमिकों की आज्ञाओं का पालन भी न करें। इसमें भी सन्देह है कि सह-साझेदारी की कोई भी योजना बिना शक्तिशाली श्रमिक संघों के सफल हो सकेगी। श्रम और प्रबन्ध में अधिक सहयोग देने के लिए द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना ने भी जोर दिया गया है जिससे उत्पादन अधिक हो सके तथा औद्योगिक शांति स्थापित की जा सके। श्रमिकों को प्रबन्ध में भी कुछ हिस्सा

देने की ओर टाटा जैसे कुछ जागरूक उद्योगपतियों द्वारा पग उठाए गए हैं। प्रबन्ध में श्रम के भाग लेने की योजनाएं कई संस्थाओं में लागू की गई हैं। (देखिये परिशिष्ट 'घ')

भारत में लाभ सहभाजन के विचार का विकास —

परन्तु उपरोक्त बातें लाभ सहभाजन योजना के विषय में लागू नहीं होतीं। इसके लिए तो देश में एक शक्तिशाली आन्दोलन चालू है और इसका भारत सरकार की श्रम नीति में भी बहुत महत्व है। दिसम्बर १९४७ में तत्कालीन वित्तमंत्री श्री० षणमुखम चेट्टी ने वार्षिक बजट पर बहस के समय यह बताया था कि सरकार उद्योग में लाभ सहभाजन की योजनाओं की सम्भावनाओं पर विचार कर रही थी जिससे श्रमिकों को अधिक उत्पादन करने का पर्याप्त प्रोत्साहन मिल सके। इसी समय सरकार ने एक उद्योग सम्मेलन बुलाया जिसमें प्रान्तीय और देशी राज्य सरकारों के प्रतिनिधि अनेक महत्वपूर्ण व्यापारी तथा उद्योगपति एवं संगठित श्रम के नेताओं ने भाग लिया। औद्योगिक विराम संधि प्रस्ताव (Industrial Truce Resolution) इसी सम्मेलन में पारित किया गया था। इसमें यह बताया गया कि श्रमिकों को उनकी आय में से उचित भाग दिया जाये। सन् १९४८ में सरकार द्वारा औद्योगिक नीति की घोषणा में यह प्रस्ताव स्वीकार कर लिया गया। प्रान्तीय श्रम मन्त्रियों का एक सम्मेलन भी देहली में यह बताने के लिए हुआ था कि पूंजी का क्या उचित पारिश्रमिक होना चाहिए तथा श्रम और पूंजी के बीच लाभ का वितरण किस प्रकार हो। इस सम्मेलन के निर्णय के परिणामस्वरूप एक विशेषज्ञ लाभ सहभाजन समिति नियुक्त की गई। इस समिति ने सितम्बर १९४८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की।

सन् १९४८ की लाभ सहभाजन समिति —

इस समिति के मुख्य निष्कर्ष संक्षेप में निम्न प्रकार हैं —

इस समिति ने सम्बन्धित अनेक पहलुओं की विस्तारपूर्वक जांच करने के पश्चात् यह परिणाम निकाला कि लाभ सहभाजन की ऐसी प्रणाली का निर्धारण करना सम्भव नहीं है जिसमें कि श्रमिकों के लाभ का भाग उत्पादन के अनुपातानुसार निश्चित किया जा सके। समिति ने ६ उद्योगों में ५ वर्ष के लिए लाभ सहभाजन की योजना को प्रयोगात्मक दृष्टि से लागू करने का सुझाव दिया। उद्योगों के नाम निम्न लिखित हैं —सूती वस्त्र उद्योग, जूट, स्टील, सीमेंट, टायरों का उद्योग और सिगरेट उद्योग। समिति ने बताया कि उद्योग के द्वारा प्राप्त किया गया लाभ श्रम के अतिरिक्त और बहुत से साधनों पर निर्भर करता है। लाभ तथा परिश्रम के सम्बन्ध की कोई तार्किक माप नहीं की जा सकती। इसके अतिरिक्त उद्योग उद्योग में और हर उद्योग की इकाई इकाई में उत्पादन भिन्न होता है। इसके अतिरिक्त श्रम की उत्पादकता स्वयं बहुत सी बातों पर निर्भर करती है जैसे मशीन किस प्रकार का है और संगठन व निरीक्षण उचित प्रकार से हो रहा है या नहीं इत्यादि। इन परिस्थितियों में समिति इस निष्कर्ष पर पहुंची कि ऐसी स्थिति में श्रमिक का भाग केवल एक स्वेच्छा रीति (Arbitrary Way) से ही निश्चित किया जा सकता है। इसलिए इस ने श्रमिकों का कुल भाग उनकी

लाभ में से निश्चित हो जाए तब उसे व्यक्तिगत श्रमिकों के मध्य किसी एक पिछले समय में उनकी प्राप्त कुल आय के अनुपात में वितरित किया जाना चाहिए। इस प्रकार की पद्धति से व्यक्तिगत पारिश्रमिक व्यक्तिगत प्रयत्नों के अनुसार कुछ सीमा तक सम्बद्ध हो जाएगा।

समिति ने यह बताया कि लाभ सहभाजन पर विचार विमर्श प्रमुख तीन मुख्य दृष्टिकोणों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। लाभ सहभाजन उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए होना चाहिए या लाभ सहभाजन औद्योगिक शांति की प्राप्त करने के लिये होना चाहिये या प्रबन्ध में भाग देने के उद्देश्य से होना चाहिये। प्रथम बात पर, अर्थात् लाभ सहभाजन उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिये होना चाहिये समिति का मत यह था कि यदि पिछली अवधि की कुल आय के अनुपात में श्रम के उत्पादन का भाग व्यक्तिगत रूप से वितरित कर दिया जाए तब उत्पादन अधिक करने में इससे व्यक्तिगत रूप से प्रोत्साहन मिलेगा। समिति ने जिस कारण लाभ सहभाजन को लागू करने की सिफारिश की वह मुख्यतया यह था कि इससे औद्योगिक शान्ति को प्रोत्साहन मिलता। इस उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए उन्होंने यह सुझाव दिया कि किसी ऐसे वर्ष में जब श्रमिक या श्रमिकों के वर्ग उपयुक्त प्राधिकारियों द्वारा घोषित अवैध हड़ताल में भाग लेते हैं लाभ का सहभाजन पूर्ण अथवा आंशिक रूप से रोक लेना चाहिये। इसी प्रकार यदि कोई अवैध तालाबन्दी है तो वैसी दशा में गणना इस प्रकार लाभ सहभाजन के लिये की जानी चाहिए जैसे मानो कोई तालाबन्दी हुई न हो।

पूंजी पर उचित प्रतिफल क्या होना चाहिए, इस प्रश्न को लेकर समिति ने पूंजी की व्याख्या की है। पूंजी को चुकती पूंजी माना है और इसके साथ-साथ सारे देनदारों के भुगतान के लिये राशि के साथ उस आरक्षित निधि (Reserve Fund) को भी ले लिया है जो व्यवसाय के लिए सुरक्षित रखी जाती है। आरक्षित निधि में मूल्य ह्रास राशि को सम्मिलित नहीं किया जाएगा बरन् सिर्फ उसी आरक्षित राशि को लिया जाएगा जो लाभ में से ली जाती है और जिसके ऊपर करों का भुगतान भी किया जाता है। समिति की राय में कुल लाभ में से सबसे प्रथम तो मूल्य-ह्रास के लिये निधि निकाल देनी चाहिए और निवल लाभ में से सबसे पहले आरक्षित निधि निकाल लेनी चाहिए। निवल लाभ के अर्थ यह लिए गए हैं कि कुल लाभ में से मूल्य-ह्रास राशि व्यवस्थापक एजेंसी (Managing Agents) को अदायगी और करों की भुगतान राशि निकाल देने के बाद जो कुछ बच जाता है वह निवल लाभ है। पूंजी के उचित प्रतिफल के प्रश्न पर समिति इस परिणाम पर पहुँची कि स्थापित उद्योगों में जिनके लिए लाभ सहभाजन योजना का सुझाव दिया गया था पूंजी का उचित प्रतिफल कम से कम इतना होना चाहिए जिससे प्रोत्साहन मिले और विनियोग (Investment) भी बढ़े। तब परिस्थितियों को देखते हुए समिति के विचार में वर्तमान परिस्थितियों में पूंजी पर उचित प्रतिफल की दर चुकती पूंजी पर ६%

होनी चाहिए और इसके साथ-साथ यह सब आरक्षित निधि भी ले लेनी चाहिए जो व्यवसाय के लिए सुरक्षित रखी जाए। उन उद्योगों की इकाइयों में जो समिति ने चुने थे आरक्षित निधि की सीमा की जांच करने के पश्चात् समिति इस निश्चय पर पहुँची कि जो भी पूँजी लगाई जाती है उस पर यदि ६ प्रतिशत मिल जाए और बेशी लाभ में से ५०% मिल जाए तो उद्योग उचित मात्रा में पूँजी प्राप्त करने में समर्थ हो सकता है।

बेशी लाभ में से श्रम का भाग कितना हो इस बारे में समिति ने निर्णय दिया कि यह व्यवसाय के बेशी लाभ का ५० प्रतिशत होना चाहिए। प्रत्येक श्रमिक का भाग उसकी पिछले १२ महीनों की कुल आय के अनुपात में होना चाहिए। परन्तु इस आय में महँगाई भत्ता या अन्य कोई बोनस जो उसके द्वारा प्राप्त किया गया हो सम्मिलित नहीं होना चाहिए। यह भुगतान यदि कोई लाभ सहभाजन बोनस दिया जा रहा हो उसके बदले में होना चाहिए। यदि किसी श्रमिक का भाग उसकी मूल मजदूरी के २५ प्रतिशत से बढ़ जाता है तब नकद भुगतान उसकी मूल मजदूरी के २५ प्रतिशत तक सीमित होना चाहिए तथा शेष राशि उसके प्रोविडेन्ट फण्ड या अन्य किसी हिसाब में रखी जानी चाहिए।

प्रत्येक व्यवसाय या प्रत्येक उद्योग या क्षेत्र विशेष में किसी उद्योग द्वारा श्रम के भाग का वितरण किस प्रकार हो—इसके गुण एवं दोषों तथा कठिनाइयों पर विचार करने के पश्चात् समिति ने यह बताया कि साधारणतया लाभ सहभाजन का आधार उद्योग की इकाई ही होना चाहिए। लेकिन कुछ विशेष स्थितियों में इसका आधार एक उद्योग अथवा क्षेत्र भी हो सकता है। समिति के विचार में आरम्भ में उद्योग व क्षेत्र के आधार को बम्बई, अहमदाबाद और शोलापुर के सूती वस्त्र उद्योग में लागू करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए और सूती वस्त्र उद्योग में अन्य स्थानों पर इसके विस्तार पर सरकार द्वारा बाद में विचार किया जा सकता है। इन स्थितियों में हर इकाई के बेशी लाभ को इस उद्देश्य से पूल (Pool) कर लेना चाहिए कि उस क्षेत्र के उद्योग के श्रमिकों को लाभ सहभाजन बोनस कितना मिलना चाहिए। यह बोनस प्रत्येक इकाई द्वारा अपने श्रमिकों को बिना लाभ का विचार करे हुए एक न्यूनतम भुगतान के रूप में देना चाहिये। परन्तु उन इकाइयों में जहाँ बेशी लाभ का आधा भाग (अर्थात् वह राशि जो श्रमिकों में बाँटी जानी चाहिए) उस बोनस से जो कि कम से कम प्राप्त करना है बढ़ जाता है तब यह बची हुई राशि भी उस इकाई के श्रमिकों को ही अदा की जानी चाहिए। इसका प्रभाव यह होगा कि उस क्षेत्र की प्रत्येक इकाई में लगे हुए श्रमिकों को एक न्यूनतम भाग मिल जाएगा। यह भाग उस क्षेत्र में लगी सारी इकाइयों के कुल बेशी लाभ की आधी राशि के आधार पर निर्धारित किया जाना चाहिए यदि उन इकाइयों में बेशी लाभ होता हो। इसी प्रणाली द्वारा लाभ सहभाजन के आधारभूत उद्देश्य को प्राप्त किया जा सकता है। उद्देश्य यह है कि श्रमिक जिस व्यवसाय में कार्य करते हैं उसके हित में उन्हें प्रत्यक्ष

रूप से रुचि हो। इकाई अनुसार लाभ के वितरण की नीति का निश्चित रूप से यही अर्थ है कि श्रमिकों को उन इकाइयों में जो लाभ उत्पन्न नहीं करतीं कोई लाभ का भाग नहीं मिल सकता। इस प्रकार विभिन्न इकाइयों में श्रमिकों के पारिश्रमिक में भिन्नता आ जाएगी। कार्यकुशल श्रमिक को जो कि दुर्भाग्यवश एक ऐसे व्यवसाय में लगा है जो लाभ नहीं कमा रहा है, केवल अपनी मूल मजदूरी पर संतोष करना पड़ेगा जबकि यदि एक अकुशल श्रमिक लाभ कमाने वाले व्यवसाय में लगा है तब वह लाभ भी प्राप्त कर सकेगा। परन्तु यह कठिनाई दूर की जा सकती है यदि लाभ सहभाजन को उद्योग व क्षेत्र के आधार पर लागू किया जावे। लेकिन मालिक मुख्यतः इस प्रकार लाभ को मिलाने का विरोध करते हैं क्योंकि उनके अनुसार इसका अर्थ यह होगा कि उद्योग में अधिक योग्य इकाइयों को अयोग्य इकाइयों की मदद करनी पड़ेगी। मालिकों द्वारा उद्योग आधार पर लाभ सहभाजन के विरोध के कारण ही समिति ने कुछ विशिष्ट स्थितियों को छोड़कर शेष में लाभ सहभाजन का आधार इकाई ही रखा था।

लाभ सहभाजन का आलोचनात्मक मूल्यांकन—

लाभ सहभाजन समिति की यह रिपोर्ट एक मत नहीं थी। मालिकों तथा श्रमिकों दोनों ही के द्वारा विभिन्न कारणों तथा विभिन्न आधारों पर अनेक आपत्तियाँ उठाई गईं। केन्द्रीय सलाहकार परिषद जिसने इस रिपोर्ट पर विचार किया किसी भी निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकी। अगस्त व सितम्बर १९५१ तथा जून १९५२ में यह मामला बार-बार संयुक्त सलाहकार मंडल की सभाओं में विचारार्थ आया। औद्योगिक विकास समिति द्वारा स्थापित संयुक्त सलाहकार मण्डल के प्रधान श्री गुलजारीलाल नन्दा ने विचार प्रकट किया कि लाभ सहभाजन तथा बोनस जैसी समस्याओं की जटिलता को ध्यान में रखते हुए यह आवश्यक है कि अमेरिका, इंगलैंड, जर्मनी अन्तर्राष्ट्रीय श्रमिक संघ एवं भारतवर्ष के विशेषज्ञों की सहायता से कुछ सिद्धान्त आदर्श और स्तर बनाए जायें। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने भी उल्लेख किया था कि लाभ सहभाजन तथा बोनस के प्रश्नों के लिए विशेष अध्ययन की आवश्यकता है तथा नकदी के रूप में बोनस की अदायगी सीमित होनी चाहिए तथा शेष राशि श्रमिकों की बचत में जमा कर देनी चाहिए। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में भी यह उल्लेख किया गया था कि इससे पूर्व कि कोई योजना सब पक्षों को मान्य हो यह आवश्यक है कि लाभ सहभाजन तथा बोनस सम्बन्धी सिद्धान्तों का और अधिक अध्ययन कर लिया जाए। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में बोनस के सम्बन्ध में एक आयोग की नियुक्ति की सिफारिश है (जिसकी नियुक्ति की जा चुकी है) परन्तु लाभ सहभाजन के बारे में कोई उल्लेख नहीं है।

इस प्रकार लाभ सहभाजन योजना को वैधानिक रूप से लागू करने का प्रश्न लगातार इन वर्षों से सरकार के विचाराधीन है। मालिकों ने जैसा कि आशा की ही इस योजना का पूर्ण रूप से विरोध किया है। कुछ मालिकों ने इसकी मिश्रित समन्वय

बताया है। यह तर्क दिया गया है कि वर्तमान समय में जबकि पूंजी तथा निवेश बाजारों में विश्वास स्थापित करने में बहुत कठिनाई है इस प्रकार का प्रयोग तो विशेषतया जोखिमपूर्ण है। यह भी कहा गया है कि श्रमिकों को पुराने और अनुभव सिद्ध उत्पादन बोनस की पद्धति से कहीं अधिक लाभ हो सकता है और लाभ सहभाजन के इस नये प्रयोग से जो इतना अस्पष्ट है, न श्रमिकों को और न ही पूंजी को लाभ होगा।

परन्तु क्योंकि लाभ सहभाजन योजना को लागू नहीं किया गया है अतः इस नये प्रस्ताव की उपयुक्तता अथवा व्यावहारिकता पर कोई अन्तिम निर्णय नहीं दिया जा सकता। अन्य देशों में भी लाभ सहभाजन सम्बन्धी प्रयोग उत्साहवर्द्धक सिद्ध नहीं हुए हैं वरन् इससे मालिकों और श्रमिकों में अविश्वास पैदा हो गया है। हमारे विचार में भारतवर्ष में वर्तमान परिस्थितियों में लाभ सहभाजन योजना को लागू करना उचित ही होगा। देश घोर औद्योगिक अशान्ति से पीड़ित है और उद्योग में शान्ति स्थापित करने की अत्यन्त आवश्यकता है। यह तब ही हो सकता है जब श्रमिक उद्यमकर्ता (Entrepreneur) पूंजीपति के साथ ही बराबर का भागी हो। इसलिए ऐसा प्रयोग अवश्य करना चाहिए क्योंकि प्रयोग और त्रुटियों के आधार पर ही लाभ सहभाजन तथा श्रमिक सह-साझेदारी का ऐसा व्यावहारिक सिद्धान्त बनाया जा सकता है जिससे राष्ट्रीय समृद्धि में वृद्धि हो। यह स्वीकार करना पड़ेगा कि उद्योगपति अनिश्चित समय तक श्रमिकों का शोषण नहीं कर सकते। अब समय आ गया है जबकि उन्हें उद्योग में लगे अपने निर्धन साथियों को अपनी आय का कुछ भाग स्वेच्छा से देना चाहिए। यदि वह इच्छा से ऐसा नहीं करते हैं तब सामाजिक शक्तियां उनको पूर्ण भाग देने के लिए बाध्य कर सकती हैं। देश परिवर्तन काल से गुजर रहा है तथा पंचवर्षीय आयोजनायें देश में चालू हैं। अधिक और अधिक उत्पादन वर्तमान युग की सबसे बड़ी मांग है। हमें अधिक उत्पादन के हित में श्रमिकों को संतुष्ट रखना पड़ेगा। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इससे अच्छा और कोई मार्ग नहीं हो सकता कि श्रमिकों को भी उद्योग के लाभ में साझीदार बना लिया जाये।

१६

औद्योगिक श्रमिकों की ऋण-ग्रस्तता
(Indebtedness of Industrial Workers)

भारत के औद्योगिक श्रमिकों के विशेषकर कारखानों में कार्यरत लोगों के आर्थिक जीवन का एक विशेष लक्षण यह है कि वह अधिकतर जन्म से ही ऋण ग्रस्त होते हैं, ऋण में ही रहते हैं तथा ऋण में ही मरते हैं। रॉयल श्रम आयोग के अनुसार श्रमिकों के निम्न जीवन-स्तर के उत्तरदायी कारणों में ऋणग्रस्तता को उच्च स्थान दिया जाना चाहिए।" आयोग का यह भी कथन है कि "अधिकांश श्रमिक तो वास्तव में ऋण में ही पैदा होते हैं। इस बात से हृदय में दुःख भी होता है और प्रशंसा भाव भी आता है कि प्रत्येक पुत्र साधारणतः अपने पिता के ऋण का उत्तरदायित्व ले लेता है। यह एक ऐसा उत्तरदायित्व होता है जो कानूनी आधारों की अपेक्षा धार्मिक एवं सामाजिक कारणों पर अधिक आधारित है।"[1] इसलिए आयोग के अनुसार औद्योगिक श्रमिकों की एक बड़ी संख्या अपने श्रमिक जीवन के अधिकांश समय में ऋण ग्रस्त ही रहती है।

ऋण ग्रस्तता की व्यापकता — (Extent of Indebtedness)

यह अनुमान लगाया गया है कि अधिकतर औद्योगिक केन्द्रों में कम से कम दो तिहाई श्रमिक ऋण-ग्रस्त हैं और ऋण की राशि तीन माह के वेतन से भी अधिक है। यद्यपि इस सूचना को अधिक विश्वसनीय नहीं कहा जा सकता क्योंकि जांच अधिकारियों को श्रमिक अपनी आर्थिक स्थिति बताने में संकोच करता है फिर भी इस ही की कुछ जांचों द्वारा श्रमिक वर्ग की ऋण-ग्रस्तता की व्यापकता ज्ञात होती है।[2] श्रमिकों को भी कई बार स्वयं ही ऋण की व्यापकता का पूर्ण ज्ञान नहीं होता। इसके अतिरिक्त रॉयल श्रम आयोग तथा सन् १९४६ की श्रम अनुसंधान समिति ने भी ऋण-ग्रस्तता के प्रश्न पर विस्तारपूर्वक विचार किया था। ऋण के विषय में हमें कुछ ऐसी रिपोर्टों द्वारा भी आंकड़े प्राप्त होते हैं जो रिपोर्टें ऐसी पारिवारिक बजट जांचों की हैं जो कि सन् १९४४-४५ में भारत सरकार की "निर्वाह व्यय सूचनांक" को तैयार करने की योजना के अन्तर्गत की गई थीं। इस विषय पर भारतीय श्रम वार्षिक पुस्तिका १९४७-४८ (Indian Labour Year Book, 1947-48) के पृष्ठ १९६ पर दिए गए आंकड़े निम्नलिखित तालिका में उद्धृत हैं —

1. Report of the Royal Commission on Labour P. 274.
2. Labour Bulletin (U. P.) June 1955. Report by Dr. Vidya Dhar Agnihotri.

औद्योगिक श्रमिकों में ऋण ग्रस्तता

१ केन्द्र	२ सर्वेक्षित परिवारों की संख्या	३ ऋण-ग्रस्त परिवारों की संख्या	४ ऋण ग्रस्त परिवारों का प्रतिशत भाग	५ ऋण-ग्रस्त परिवारों का प्रति परिवार औसत ऋण रु० आने पाई
१ महाराष्ट्र				
(क) महाराष्ट्र	२०१०	११०९	५४.१	१२१ १४ ७
(ख) अमलनेर	१११	७५	६.७	२३ ० ०
(ग) सोलापुर	७७८	६६७	८५.७	आँकड़े नहीं मिले
२ पश्चिमी बंगाल				
(क) कलकत्ता	२७०७	१११४	४१.२	११७ ६ १
(ख) हावड़ा व बाली	१४३५	१००८	७०.२	आँकड़े नहीं मिले
३ बिहार				
(क) डेहरी और सोन	२११	११४	५४.०	११७ ० ०
(ख) जमशेदपुर	६६१	४१०	६२.२	२१४ ११ ८
(ग) झरिया	६६६	१९३	२९.३	२८ ८ ६
(घ) मुंगेर व जमालपुर	६७८	४७६	७१.७	२०१ १० ७
४ आसाम				
(क) गोहाटी	२४१	३२	१३.३	१६७ १ ४
(ख) तिनसुकिया	१८५	२२	११.९	७० ० ०
५ मध्य प्रदेश व बरार				
(क) अकोला	२६४	२१८	८२.६	९९ १५ ३
६ पूर्वी पंजाब				
(क) लुधियाना	२११	२६	१२.४	१२० ८ ४
७ उड़ीसा				
(क) बरहमपुर	१२३	७३	५९.४	१६१ १२ ११
(ख) कटक	१६८	५२	३१.०	१६६ ० ०
बागान्				
१ चाय				
(क) मद्रास	२७४	१९८	७२.१	७६ ० ०
(ख) कोचीन	२२	१८	८१.८	५५ ० ०
२ कॉफी				
(क) मद्रास व कुर्ग	१२२	८७	७१.३	आँकड़े नहीं मिले
(ख) कोचीन	१२	१२	१००.०	७१ ७ ८
३ रबर				
(क) मद्रास व कुर्ग	१५	१४	९३.३	४५ ३ ५
(ख) कोचीन	१५	११	७३.३	४१ १४ १

भिन्न भिन्न औद्योगिक केन्द्रों में ऋण ग्रस्तता —

श्रम अनुसंधान समिति ने भिन्न-भिन्न केन्द्रों तथा भिन्न-भिन्न उद्योगों में ऋण ग्रस्तता की व्यापकता पर एक विस्तृत रिपोर्ट दी थी। बम्बई शहर में ऋण की मात्रा १० रु० से ७०० रु० तक है। अहमदाबाद में ८७% श्रमिक परिवार ऋण ग्रस्त थे और औसत ऋण प्रति परिवार २६६ २० रु० था। शोलापुर में औसत ऋण प्रति परिवार २३४ रु० था। नागपुर में प्रान्तीय सरकार द्वारा १९४१-४२ में की गई जांच से ज्ञात हुआ कि ८२% से अधिक परिवार ऋण-ग्रस्त थे और कुल औसत ऋण ११९ रु० था जो कि औसत मासिक आय का चौगुना था। अजमेर ही जहाँ कि अधिकांश जनसंख्या रेलवे उद्योग में कार्यरत् है वास्तव में एक ऐसा केन्द्र था जहाँ ऋण ग्रस्त परिवारों की प्रतिशत संख्या सबसे कम थी। पारिवारिक बजट जांच के अनुसार वहाँ केवल ६ ७८ प्रतिशत परिवार ऋण-ग्रस्त थे और औसत ऋण प्रति परिवार लगभग २७१ रु था। मद्रास में सन् १९३५ की पारिवारिक बजट जांच से ज्ञात हुआ है कि ९०% परिवार ऋण-ग्रस्त थे और औसत ऋण प्रति परिवार लगभग २६२ रु० था। मिर्जापुर म कालीन उद्योग में ७०·८ /० श्रमिक ऋणग्रस्त पाए गए और औसत ऋण प्रति श्रमिक लगभग ११४ रु० था। श्रीनगर के कालीन बुनने के उद्योग में ८२% श्रमिक तथा अमृतसर में ९०% से अधिक श्रमिक ऋणग्रस्त पाए गए। कलकत्ता कानपुर व मद्रास के चर्म उद्योग व चमड़ा रंगने के उद्योगों में ऋण ग्रस्त श्रमिकों की प्रतिशत संख्या क्रमशः १० ९६ १ तथा ६६·४ थी। विभिन्न स्थानों के छापेखानों में ऋण ग्रस्त श्रमिकों की प्रतिशत संख्या देहली और इलाहाबाद में क्रमशः ९१ ३ और ८७ २ पाई गई। बम्बई के बीड़ी उद्योगों में प्रत्येक श्रमिक ऋण ग्रस्त पाया गया और ऋण ग्रस्तता की औसत राशि १०० रु० पाई गई। चीनी उद्योग में ऋण ग्रस्त श्रमिकों की प्रतिशत संख्या मेरठ, गोरखपुर, व मद्रास में क्रमशः ७८ ९, ८० व ७४ प्रतिशत थी तथा औसत ऋण प्रति श्रमिक क्रमशः १९० रु० १६१ र व १४१ र था। अनुसंधान समिति द्वारा इसी प्रकार चमड़ा उद्योग बागान मिलों बगान की मिलों भिन्न भिन्न भागों ट्रामवेज व बस सेवाओं में ऋण ग्रस्तता अधिक पाई गई है। कुछ प्रान्तों मे औद्योगिक श्रमिकों की पारिवारिक बजट जांच द्वारा भी अधिक ऋण ग्रस्तता का पता चलता है।

कानपुर में डा० अग्निहोत्री द्वारा की गई जांच के आधार पर दो तिहाई अधिक परिवार ऋण ग्रस्त हैं जिनका औसत ऋण प्रति परिवार ११३·८७ रु० है और निषेधात्मक (Prohibitory) कानून के होते हुए भी ब्याज की दर अधिक है। ब्याज की दर १२ से ३० % प्रतिवर्ष तक है। पठान महाजनों की जगह पंजाबी महाजनों ने ले ली है जो कि अत्यधिक ब्याज की दरें वसूल करते हैं। उधार देने वाली एजेंसियां और उनके द्वारा दिए गए ऋणों का प्रतिशत भाग इस प्रकार है :—मित्र तथा सम्बन्धी—४० ८%, बनिया तथा महाजन—३८·७%, सह कारी समिति ।—७ ८%, मध्यस्थ एवं मिस्त्री—२ १%, मकान मालिक—१ ५%

बेकारी—४१%, अन्य २६%। विभिन्न उद्देश्यों के लिए ऋण का प्रतिशत मान इस प्रकार है —रहन-सहन व्यय—४५.१ सामाजिक उत्सव—११.० बीमारी—१४.४ सम्पत्ति-क्रय २.६ तथा ऋण की अदायगी—४.६।

ऋणग्रस्तता के कारण

औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता का उपरोक्त विश्लेषण उनकी गिरी हुई आर्थिक अवस्था की दुखपूर्ण कहानी है—इस अत्यधिक ऋणग्रस्तता के अनेक कारण हैं। अधिकतर पुत्र अपने पिता के ऋण को पैतृक सम्पत्ति के रूप में ग्रहण करता है। परन्तु ऋणग्रस्तता का सबसे प्रमुख कारण समय-समय पर विवाहोत्सव मृत्यु संस्कार, पर्व तथा धार्मिक उत्सव आदि हैं। श्रमिकों की प्रवासिता भी उनकी ऋणग्रस्तता का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। जब कोई ग्रामीण प्रथम बार शहर में पहुँचता है तो उसके साधन एक ग्रामीण गैरिहर की अपेक्षाकृत अधिक सीमित होते हैं। प्रारम्भिक पूर्व के लिए व पहिले कुछ सप्ताहों में (जिनमें कि मालिक उसे कोई वेतन नहीं देता) खर्च हेतु उसे किसी भी शर्त पर ऋण लेने में संकोच नहीं होता। बहुधा किसी बन्धक रखी जाने लायक कोई वस्तु न होने के कारण श्रमिक एक ऐसे प्रोनोट पर धन के लिए हस्ताक्षर कर देता है (जो धन सम्भवतः उसे कभी न मिलता) जिसमें लिखी बातों का अक्षर उसे ज्ञान भी नहीं होता। फिर इस बुराई का एक और कारण अज्ञात विपत्तियों का अकस्मात् सामना करने के लिए किसी भी संचित राशि का न होना है। भारत में मजदूर का वेतन-स्तर अत्यन्त न्यून है और इस कारण बचत भी कम ही हो सकती है। यद्यपि सरकारी पारिवारिक बजट जाँच से यह ज्ञात होता है कि अल्प वेतन ही ऋणग्रस्तता का एकमात्र कारण नहीं है क्योंकि अधिक वेतन पाने वाले श्रमिक अल्प वेतन पाने वालों से अधिक ऋणग्रस्त हैं। फिर भी हम यह कह सकते हैं कि न्यून वेतन श्रमिकों की ऋणग्रस्तता का एक महत्त्वपूर्ण कारण है। निर्धनता कभी तो ऋणग्रस्तता का कारण बन जाती है कभी उसका परिणाम होती है और कभी दोनों ही है। यह सत्य है कि ऋणग्रस्तता का मुख्य कारण सामाजिक रीतियों पर श्रमिकों द्वारा किया गया व्यय है। इस व्यय को साधारणतया अपव्यय समझा जाता है परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रमिक सामाजिक संगठन का एक अंग है अतः उसे भी कुछ सामाजिक कार्य एक निश्चित स्तर पर पूर्ण करने होते हैं। इन मामलों में व्यक्ति प्रायः असहाय होता है क्योंकि श्रम अनुसंधान समिति के शब्दों में "भारत जैसे देश में रीति-रिवाज केवल शासक ही नहीं वरन् अत्यन्त निर्दयी शासक है।"*

यह कहा जा सकता है कि औद्योगिक श्रमिक की ऋणग्रस्तता का एक मुख्य कारण यह है कि उसका व्यय अधिक है और आय कम है। चूंकि न स्थायी नौकरी के कारण उसे अपर्याप्त वेतन मिलता है और इसी कारण उसकी आय भी

* In a country like India custom is not only a king but tyrant as well."

कम है। श्रम के शक्तिशाली संगठन न होने के कारण श्रमिक अधिक मजदूरी पाने में असमर्थ रहता है। जब श्रमिक को अपने व अपने परिवार को पालने के लिए पर्याप्त धन प्राप्त नहीं होता तो उसके लिए, यदि मिले तो केवल ऋण लेने का मार्ग ही खुला रह जाता है। उसका व्यय अधिक होता है क्योंकि उसे सामाजिक उत्सवों पर व्यय करना पड़ता है और यदि ऐसे व्यय को त्यागा भी जा सकता हो तो भी श्रमिक अपनी अशिक्षितता के कारण नहीं त्याग पाता है। फिर शराब व जुआ भी ऋणग्रस्तता के लिए उत्तरदायी है। श्रमिक को परिवार में बीमारी बेरोजगारी बरखास्तगी हड़ताल अथवा तालाबन्दी के समय में भी ऋण लेना पड़ता है। सामाजिक उत्सवों पर विशेषकर विवाहोत्सवों पर व्यय ऋणग्रस्तता का प्रमुख कारण पाया गया है और ऋणग्रस्तता में सामाजिक उत्सवों पर व्यय का अनुपात जमशेदपुर में ११.८% बिहार की कोयला खानों में १८.२% तथा कानपुर में ११% पाया गया है। विभिन्न स्थानों में विवाह के कारण लिए गए ऋण का प्रतिशत भाग १० व ४० प्रतिशत के बीच है।

ऋणग्रस्तता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण यह भी है कि श्रमिकों को ऋण सरलता से मिल जाता है। श्रमिक को नगर में महाजन द्वारा जो कि अधिकतर मारवाड़ी पठान अथवा पंजाबी होता है ऋण आसानी से मिल जाता है। बहुधा यह भी देखा गया है कि मिस्त्री अथवा मध्यस्थ भी ऋण देने का धन्धा करते हैं। औद्योगिक क्षेत्रों में परचूनिए भी ऋण देते हैं और ऋण जिन्स अथवा सामग्री के रूप में भी दिया जाता है। दुकानदार उधार पर भोजन एवं मदिरा भी देते हैं। वास्तव में यह देखा गया है कि कोई भी व्यक्ति, जिसके पास तनिक भी पैसा धन हो ऊँची दर पर ऋण देने के विषय में सोचने लगता है। बहुधा छोटे मोटे क्लर्क सिपाही, श्रमिकों की विधवाएं, अथवा वेश्याएं इस प्रकार से अत्यधिक ब्याज की दरों पर (जो १२० से ३००% तक होती हैं) उधार देकर अपनी आय में वृद्धि कर लेती हैं। ब्याज की दरें बहुत ऊँची होती हैं क्योंकि श्रमिक के पास अपनी जमानत के अतिरिक्त कोई जमानत नहीं होती और उसकी अस्थिरता के कारण उसको ऋण देने में बहुत जोखिम भी होता है। अधिकतर श्रमिक महाजनों के चंगुल में फंस ही जाता है और कभी-कभी अपने मित्रों के अहसान से भी जो बहुधा महाजन के एजेन्ट ही होते हैं उधार धन लेने के लिए तैयार हो जाता है। अशिक्षित औद्योगिक श्रमिक के अंगूठे का निशान प्रोनोट पर ले लिया जाता है और इसमें धोखे की गुंजाइश बहुत अधिक रहती है। यदि लिखित प्रमाण न भी हो तब भी श्रमिक में पठान महाजन की मांग को ठुकराने का साहस नहीं होता। यह पठान बहुत ऊँची दरों पर ब्याज वसूल करते हैं और यदि श्रमिक ऋण चुकाने में कुछ आनाकानी करे तो शारीरिक क्षति पहुंचाने का भय दिखाकर प्रत्येक मास वेतन का अधिकांश भाग ब्याज के रूप में ही ले लेते हैं।

ऋणग्रस्तता के दुष्परिणाम —

सरलता से मिला हुआ ऋण श्रमिक के लिए सबसे बड़ा अभिशाप साबित हुआ है और इस रीति का सबसे दुखदायी भाग यह है कि उसे बड़े-बड़े ऋण भी आसानी से मिल जाते हैं जिनको श्रमिक कभी भी चुकाने की आशा नहीं कर सकते। उनकी अशिक्षितता उनमें व्यावसायिक समझ और दूरदर्शिता पैदा करने में बाधक सिद्ध होती है और उनकी हिसाब लगाने की असमर्थता के कारण उन्हें इस बात के लिए विवश होना पड़ता है कि महाजनों के द्वारा ही ऋण की राशि अधिक या कम जितनी भी बताया जाए, उसे स्वीकार कर लें। अधिकतर महाजनों को पूरा ब्याज लगातार नहीं मिलता और इसलिए इस बकाया ब्याज को वे मूल धन में जोड़ देते हैं। कुछ ही वर्षों में यह मूल ऋण बहुत बड़े व स्थायी ऋण में परिवर्तित हो जाता है। बहुत बार तो महाजन वेतन मिलने वाले दिन ही श्रमिक तथा उसके सम्पूर्ण परिवार का कुल वेतन ले लेते हैं और उनको अपना जीवन निर्वाह हेतु धन दे देते हैं। बहुत से परिश्रमी श्रमिक केवल ब्याज देने के लिये अपने जीवन की आवश्यकताओं का दोहन पर विवश हो जाते हैं और मूल ऋण चुकाने का तो उन्हें मौका ही नहीं मिल पाता। इसलिए ऋणग्रस्तता कार्य कुशलता की वृद्धि में बाधक है। ऋणग्रस्त श्रमिक जो कुछ अतिरिक्त प्रयत्न करते हैं उसका लाभ केवल महाजन को ही होता है और ऋणग्रस्त श्रमिक सदा परेशान रहता है। इस प्रकार ऋण की विडम्बना श्रमिकों के आत्मसम्मान के लिये एक अभिशाप सिद्ध हुई है और उनकी कार्यकुशलता का ह्रास करती है।*

ऋणग्रस्तता की समस्या को सुलझाने के उपाय —

ऋणग्रस्तता के उपरोक्त दुष्परिणामों के फलस्वरूप शाही श्रम आयोग ने अनेक उपाय सुझाए हैं। उनमें प्रमुख यह है कि श्रमिकों की ऋण प्राप्त करने की सुविधा को कम किया जाय और महाजन के लिये श्रमिकों का [illegible] के बाहर ऋण देना असम्भव बना दिया जाय। ऋणग्रस्तता की समस्या को सुलझाने हेतु प्रान्तीय एवं केन्द्रीय सरकारों द्वारा जो वर्तमान वैधानिक पग उठाए गए हैं वे शाही श्रम आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप ही हैं।

मजदूरी की कुर्की के विरुद्ध लिए गए पग —
(Measures against Attachment of Wages)

आयोग ने पहले मजदूरी की कुर्की के प्रश्न पर विचार किया। उस समय यद्यपि सन् १९०८ की व्यावहारिक दण्ड संहिता (Civil Procedure Code) के अन्तर्गत श्रमिकों व घरेलू नौकरों की मजदूरी की कुर्की नहीं हो सकती थी परन्तु और या संहिता के उपबन्ध ऐसे थे कि जिन से व्यवस्थित उद्योगों के श्रमिक संहिता के दायरे में नहीं आते थे। इसके अतिरिक्त इस संहिता के अन्तर्गत महाजनों को इस बात की आशा थी कि वह कुछ वर्गों के श्रमिकों के लिये (जैसे रेलवे

*The tyranny of debt demoralises the employee and impairs his efficiency.

कर्मचारी तथा स्थानीय शासन कर्मचारी) मालिकों द्वारा ऋण वसूल करने में सहायता ले सकते थे और वेतन कुर्की के लिये आज्ञा पत्र प्राप्त कर सकते थे। कानून द्वारा महाजनों को दी गयी इस सुविधा एवं सुरक्षा को दूर करने के लिये आयोग ने सिफारिश की कि "प्रत्येक एस श्रमिक की मजदूरी जिसका वेतन १००) रु० से कम हो कुर्की की सम्भावना से मुक्त कर दी जानी चाहिये।"

इस सिफारिश को कार्यान्वित करने के लिये भारतीय सरकार ने सन् १९०८ में नागरिक दण्ड अधिनियम (Civil Procedure Act) को संशोधित किया। इस संशोधित अधिनियम के अन्तर्गत उन श्रमिकों का वेतन जिन को १००) रु० प्रति मास से कम मिलते हैं और सरकारी कर्मचारी के वेतन के पहिले सौ रुपये और शेष के आधे भाग को कानूनी कुर्की से छूट दे दी गई है। यह अधिनियम निरन्तर कुर्की की अवधि को भी सीमित करता है और इसमें इस बात की एक धारा है कि यदि किसी श्रमिक का २४ माह का वेतन कुर्क कर लिया गया है तो फिर कुर्की से उसे एक वर्ष तक छूट रहेगी। अक्टूबर सन् १९५० के अधिसूचना द्वारा भारतीय सरकार ने निर्वाह खर्च बोनस और अन्य प्रकार के भत्तों को भी कानूनी कुर्की से मुक्त कर दिया है।

ऋण हेतु कारावास के विरुद्ध उपाय —

आयोग की एक अन्य सिफारिश ऋण हेतु कारावास के दण्ड से सम्बन्धित थी। आयोग की रिपोर्ट देने के समय जैसा कि कानून था इसके अनुसार किसी भी ऋणी पुरुष को ५० रु० से अधिक राशि की डिग्री (Decree) के निष्पादन (Execution) के हेतु गिरफ्तार किया जा सकता था और ६ माह का कारावास दिया जा सकता था। यदि ऋण की राशि कुछ कम होती थी तो ६ हफ्ते के कारावास की व्यवस्था थी। आयोग ने यह भी बताया कि केवल इस बात की धमकी ही कि ऋण न अदा करने पर ऋणी को कारावास कराया जा सकता था ऋणदाता के हाथ में एक शक्तिशाली हथियार था यद्यपि आयोग की सूचना के अनुसार यह भी पता लगा कि न्यायालय साधारणतया कारावास का दण्ड देने के पक्ष में न थे और ऋणदाता भी ऐसे व्यक्ति को जिसके पास रुपया न हो कारावास दिलाने के पक्ष में न थे क्योंकि उन्हें कारावास काल में ऋणी के खाने पीने की व्यवस्था करनी पड़ती थी। इसलिए आयोग ने सिफारिश की कि उसके विचार में ऋणियों के लिए कारावास का दण्ड न्यायोचित नहीं था और कम से कम उन औद्योगिक श्रमिकों के लिए जिनका मासिक वेतन १००) रु० से कम हो ऋण के कारण पकड़े जाने के नियम को तथा कारावास के दण्ड को समाप्त कर देना चाहिए जब तक कि यह न सिद्ध हो जाय कि ऋणी अदा करने की स्थिति में होते हुए भी ऋण का भुगतान नहीं कर रहा है।

पंजाब सरकार ने १९३४ में पंजाब ऋणग्रस्तता सहायता अधिनियम (Punjab Relief of Indebtedness Act) पारित किया जिसके अन्तर्गत किसी भी ऋणी को उस समय तक कारावास नहीं हो सकता था जब तक कि वह अपनी किसी ऐसी जायदाद से जो डिग्री के निष्पादन के लिए कुर्क की जा सकती हो ऋण की राशि देने से

इन्कार न करदे। भारत सरकार ने भी १९३६ में ऋण वापिस न करने पर कारावास के दण्ड को रोकने के लिए 'व्यावहारिक दण्ड संहिता' में संशोधन किए। इस संशोधित अधिनियम द्वारा सिवाय उस स्थिति के जबकि ऋणी से यह सम्भावना हो कि वह न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर चला जायगा और इस प्रकार डिक्री निष्पादन में रुकावट डालेगा अथवा देर करेगा या जहाँ सम्पत्ति बेइमानी से हस्तगत न की गई हो ऋण के लिए कारावास का दण्ड नहीं दिया जा सकता।

ऋण अपाकरण के उपाय (Measures for Liquidation of Debt) —

ऋणियों के संरक्षण के उपरोक्त उपायों से आयोग सन्तुष्ट नहीं था और ऋण अपाकरण के विषय में उसने यह सुझाव दिया कि कानून को इस प्रकार संशोधित किया जाय कि श्रमिकों और महाजनों के बीच ऐसे इकरार न हो सकें जिनको श्रमिक भारी व अनवरत (Prolonged) मुसीबतों के उठाये बिना सम्भवतः पूरा नहीं कर सकता।

भारत सरकार ने देहली प्रदेश में एक योजना को प्रयोग के रूप में कार्यान्वित करने का प्रयत्न किया परन्तु योजना को आगे नहीं चला सकी। अभी तक सरकार ने इस विषय में कोई पग नहीं उठाया है। मध्य प्रदेश सरकार (तत्कालीन मध्यप्रान्त) ने १९३६ में "औद्योगिक श्रमिक ऋण समायोजन एवं अपाकरण अधिनियम" (Adjustment and Liquidation of Industrial Workers Debt Act) पारित किया। यह केवल उन औद्योगिक श्रमिकों तक सीमित है जो कि २०) रु० प्रतिमास तक अर्जित कर रहे हैं यद्यपि हाल ही में संशोधन द्वारा इस सीमा को ६०) रु० तक बढ़ा देने का प्रयास किया गया है। इस अधिनियम के अधीन कोई भी श्रमिक जिसका ऋण उसकी परिसम्पत्ति (Assets) और तीन माह की मजदूरी से अधिक हो अपने ऋण के अपाकरण के लिए प्रार्थना पत्र दे सकता है। परिस्थिति की वास्तविकता और श्रमिकों के वेतन एवं उनके आश्रितों की संख्या को ध्यान में रखते हुए न्यायालय उस राशि को तय कर देता है जिसको कि श्रमिक को एक उचित समय में भुगतान कर देना चाहिए। मजदूरी की राशि जो कि श्रमिक से ऋण अपाकरण हेतु एक माह में मांगी जा सकती है १/६ से १/३ तक हो सकती है और इसकी अवधि १८ माह से भी अधिक अवधि तक हो सकती है। ब्याज की कुल राशि को 'दामदुपट' के सिद्धान्त के अनुसार कम कर दिया गया है अर्थात् ब्याज मूल ऋण की कुल राशि से अधिक नहीं हो सकता।

औद्योगिक संस्थाओं को घेरने के विरुद्ध उपाय

(Measures against Besetting of Industrial Establishments)

एक अन्य समस्या जिस पर रॉयल श्रम आयोग ने विचार किया था औद्योगिक संस्थानों को घेरे जाने की थी। घेरने से तात्पर्य किसी भी संस्थान के दरवाजे, फाटक या अहाते के समीप या दिखाई पड़ने तक की दूरी तक घूमना दिखाई दिया जाता है। रॉयल श्रम आयोग ने यह पाया कि पठान ऐसे साहूकार होते हैं जो कानूनी मार्ग

ग्रहण करने की अपेक्षा श्रमिकों पर झपट पड़ते हैं और हिंसात्मक उपायों पर निर्भर रहते हैं। उनके लिए लाठी ही एक ऐसी अदालत है जहाँ वह अपील करते हैं और वेतन वाले दिन कारखानों के फाटक पर श्रमिकों के बाहर आते ही उन पर तत्काल झपट पड़ने के लिए प्रतीक्षा करते हुए दिखाई पड़ते हैं। इसलिए साहूकारों के ऐसे कार्यों को रोकने के लिए आयोग ने सिफारिश की कि ऋण वसूली के लिए औद्योगिक स्थानों को घेरना फौजदारी व प्रवेश्य (Cognizable) अपराध बना देना चाहिए।

फिर भी भारत सरकार द्वारा इस सिफारिश पर कोई पग नहीं उठाया गया है। परन्तु बंगाल सरकार ने १९३४ में बंगाल श्रमिक संरक्षण अधिनियम (Bengal Workmen's Protection Act) पारित किया जिसके अनुसार यदि कोई व्यक्ति कारखानों, कार्यशालाओं आदि में कार्य करने वालों से अपने ऋण वसूल करने की दृष्टि से उनके समीप चक्कर काटता हुआ पाया जायगा तो उसको जुर्माने का दण्ड अथवा कारावास का दण्ड जो कि ६ माह हो सकता है अथवा दोनों ही दण्ड दिए जा सकते हैं। प्रारम्भ में तो इस अधिनियम का क्षेत्र केवल कलकत्ता एवं निकटवर्ती तीन जिलों तक ही सीमित था परन्तु सरकार को इस अधिनियम के क्षेत्र को और भी अधिक विस्तृत कर देने का अधिकार था। अधिनियम के उपबन्धों को अधिक स्पष्ट करने के लिए तथा स्थानीय संस्थाओं, जनोपयोगी सेवाओं व समुद्री कर्मचारियों तक विस्तार करने के लिए इस अधिनियम में १९४० में संशोधन किया गया। मध्य प्रदेश सरकार ने भी १९३७ में 'मध्य प्रान्त ऋणी संरक्षण अधिनियम' पारित किया जो बंगाल के अधिनियम पर ही अधिकतर आधारित था परन्तु उसका विस्तार कुछ अधिक था। मद्रास सरकार ने भी मद्रास शहर में पठान साहूकारों की निर्दयता को रोकने के लिए १९४१ में मद्रास श्रमिक संरक्षण अधिनियम पारित किया। १९४८ का बिहार श्रमिक संरक्षण अधिनियम भी श्रमिकों के कार्य स्थानों को अथवा श्रमिकों की वेतन प्राप्ति की जगहों को घेर कर ऋण वसूली की रीति को रोकने का प्रयत्न करता है और ऐसे श्रमिक को महाजनों के द्वारा तंग किए जाने अथवा डराए धमकाए जाने से बचाता है। ऐसे स्थानों पर ऋण वसूली की दृष्टि से चक्कर लगाने पर जुर्माना अथवा ६ माह के कारावास का दण्ड अथवा दोनों ही दिए जा सकते हैं। उ० प्र० सरकार भी इस प्रकार का विधान बनाने का विचार कर रही है।

अधिनियमों का मूल्यांकन —

श्रम अनुसंधान समिति की रिपोर्ट से यह ज्ञात होता है कि औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता के विषय में सम्बन्धित अधिनियमों से बहुत अधिक लाभ नहीं हुआ है। फिर भी समिति ने यह सिफारिश की है कि इस प्रकार के ही कानून अन्य प्रदेशीय सरकारों द्वारा भी अपनाए जाने चाहिए। समिति के विचार के अनुसार इस प्रकार के उपायों से श्रमिकों की स्थिति में काफी सुधार हो सकता है क्योंकि उनके कष्ट बहुत सीमा तक ऋणग्रस्तता के कारण ही हैं।

उपसंहार एवं सुझाव —

श्रम अनुसन्धान समिति ने इस ओर संकेत किया था कि इन उपायों के होते हुए भी औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता देश में कम होती दिखाई नहीं देती। यह तथ्य सत्य प्रतीत होता है क्योंकि महाजनों को औद्योगिक क्षेत्रों से समाप्त कर देना कठिन है। कानून बनाने से महाजन का मार्ग कठिन अवश्य हो सकता है परन्तु महाजन के लिये श्रमिकों से उनके घरों से अपना ऋण वसूल करना कठिन नहीं है विशेषकर ऐसी परिस्थिति में जबकि बहुधा ऋणदाता कारखाने के बाहर का सम्बन्ध ही होता है। ऐसे अवसर भी आते हैं जबकि श्रमिक को धन की तात्कालिक आवश्यकता होती है। महाजन संकटकालीन परिस्थिति में श्रमिकों को सहायता देकर एक बहुत उपयोगी कार्य करते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि शाही श्रम आयोग श्रमिकों द्वारा ऋण पाने की सुविधाओं को कम करने के पक्ष में था परन्तु चाहे जो भी कानून बनाया जाय जब तक अपर्याप्त मजदूरी, कमी तथा फिजूलखर्ची न घटेगी तथा सर्वव्यापी घूस और भ्रष्टाचार को समाप्त नहीं किया जायगा श्रमिक महाजन के बिना नहीं रह सकता और इस समस्या का कोई विशेष समाधान नहीं हो सकता। इसलिये आवश्यकता इस बात की है कि श्रमिक इतना अर्जित करने योग्य हो जाए कि वह न केवल अपनी प्रतिदिन की आवश्यकताओं को पूरा कर सके वरन् कुछ बचत भी कर सके जो कि भविष्य में अचानक आने वाले संकटों के समय और कुछ विवाह जैसी रीति रिवाज की आवश्यकताओं के अवसरों पर व्यय की जा सके। कुछ काल से मालिकों द्वारा सस्ते अनाज की दुकानों को सुविधा प्रदान की गई है जिनका उल्लेख कल्याण कार्यों के अन्तर्गत किया जा चुका है। विभिन्न वस्तुओं को लागत मूल्य पर देने का प्रबन्ध औद्योगिक श्रमिकों को महाजनों एवं दुकानदारों के चंगुल से बचाने में निस्सन्देह सहायक सिद्ध होगा। यह एक ऐसा कार्य है जो शान्ति काल में भी श्रमिकों के हितों को सुरक्षित रखने के हेतु चालू रखने के योग्य है। श्रमिकों में शिक्षा के विस्तार एवं प्रचार द्वारा अपव्यय को रोकना भी नितान्त आवश्यक है।

ऋणग्रस्तता की समस्या का निवारण करने की दृष्टि से सहकारी साख समितियों और श्रमिक बचत निधियों की स्थापना भी बहुत सहायक सिद्ध हो सकती है। औद्योगिक केन्द्रों में उचित सूद पर ऋण देने का प्रबन्ध तथा कम ब्याज पर ऋण प्रदान करने की सुविधा देने के लिए सहकारी साख समितियों और उत्तम रहन-सहन के हेतु समितियों का विस्तृत रूप से होना नितान्त आवश्यक है। भारत में विभिन्न स्थानों पर औद्योगिक संस्थाओं में सहकारी साख समितियाँ और श्रमिकों के बचत स्थापित किए गए हैं जो श्रमिकों को कम ब्याज पर ऋण उधार देते हैं। इसका उदाहरण बम्बई की टाटा मिल्स है और यहाँ ऐसा करना से मिलता है। अनेक स्थानों पर इन ऋण समितियों का कार्य बहुत सफल रहा है। बिहार की कोयला खानों में ऐसी ४० सहकारी समितियाँ कार्य कर रही हैं जो खान श्रमिकों को उचित दर पर ऋण देती हैं और उनका ऋण चुका देती हैं। सरकार द्वारा इन समितियों को प्रोत्साहन

दान (Grants-in-aid) के रूप में वित्तीय सहायता प्रदान की जाती है। परन्तु यह खेद की बात है कि अभी तक श्रमिकों के लिए सहकारी साख समितियों की स्थापना की ओर उतना ध्यान नहीं दिया गया है जितना दिया जाना चाहिए। इस ओर मालिक अपनी कदम उठा सकते हैं तथा ऐसी समितियों की स्थापना एवं व्यवस्था कर सकते हैं। मालिकों द्वारा बोनस अथवा प्रोविडेन्ट फण्ड में से संकट काल में धन देने की सुविधा भी दी जा सकती है। यह धन श्रमिक की मजदूरी में से छोटी छोटी किस्तों में काटा जा सकता है।

इन सब बातों पर विचार करने के पश्चात यह कहा जा सकता है कि मजदूरी समानीकरण न्यूनतम मजदूरी का आश्वासन साप्ताहिक अदायगी सहकारी आन्दोलन का विस्तार सामाजिक बीमा योजनायें ऋणी श्रमिकों की सुरक्षा के लिए कानून एवं ऋण का अपाकरण (Liquidation) तथा निष्क्रमण (Redemption) इन सब की व्यवस्था करने पर ही श्रमिकों की आर्थिक दशा में सुधार हो सकता और तब ही ऋणग्रस्तता की समस्या का भी समाधान हो सकता।

१७

जीवन स्तर

(The Standard of Living)

जीवन स्तर की परिभाषा एवं उसका अर्थ —

'जीवन स्तर' एक सापेक्षिक वाक्यांश है। इस बात की व्याख्या करना कि जीवन स्तर क्या है वास्तव में बड़ा कठिन है क्योंकि यह व्यक्ति व्यक्ति का वर्ग-वर्ग का और देश-देश का भिन्न होता है। किसी के जीवन स्तर को मापने के लिए कोई विशेष नियम नहीं है। जीवन स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व भी निश्चित नहीं हैं। अतः ऐसी दशा में किसी निश्चित परिणाम पर पहुँचना कठिन ही नहीं दुःसाध्य भी है। कभी कभी यह कहते हुए सुना जाता है कि तुलनात्मक दृष्टि में भारत की अपेक्षा संयुक्त राष्ट्र अमरीका में जीवन स्तर बहुत ऊँचा है। इस बात से सम्पूर्ण समाज के स्तर का बोध होता है। साधारणतः जीवन स्तर किसी देश के प्राकृतिक धन लोगों की कार्य कुशलता और उनकी संख्या तथा देश की औद्योगिक अवस्था पर आधारित होता है। कभी-कभी यह कहने में आता है कि किसी कुशल कारीगर की अपेक्षा डाक्टर का जीवन स्तर उत्तम है और कुशल कारीगर का स्तर साधारण मजदूर के जीवन स्तर से उत्तम है। इस कथन से समाज में स्थित भिन्न-भिन्न वर्गों के जीवन स्तर का पता लगता है और यह जीवन स्तर अधिकतर इस बात पर निर्भर होता है कि सामाजिक आय में से प्रत्येक वर्ग प्रतियोगिता द्वारा अपना कितना भाग पाता है। फिर भी जब तक कि इसके विषय में विशेष रूप से कुछ कहा न जाए, 'जीवन स्तर' शब्द का प्रयोग प्रायः वर्ग विशेष के लिए ही किया जाता है।

यद्यपि जीवन स्तर शब्द की परिभाषा करने में कई कठिनाइयाँ हैं तथापि जीवन स्तर को सामान्य रूप से मालूम किया जा सकता है। जीवन स्तर का भाव यह कहकर भली प्रकार व्यक्त किया जा सकता है कि जीवन स्तर शब्द का तात्पर्य अनिवार्य आराम और विलासिता की वस्तुओं की उस मात्रा से है जिसका कि व्यक्ति उपभोग करता है। इस प्रकार आवश्यकता आराम और विलासिता सम्बन्धी वस्तुएँ जिनका व्यक्ति जीवन में अभ्यस्त हो जाता है उसका जीवन स्तर निश्चित करती हैं। परन्तु आवश्यकता आराम और विलासिता सापेक्ष शब्द हैं और स्थान काल तथा व्यक्ति के अनुसार उनमें भिन्नता पाई जाती है इसलिए व्यक्ति का सामाजिक स्तर, सामाजिक वातावरण तथा जलवायु की दशा आदि सभी बातें उसके जीवन स्तर को मालूम करने में देखनी पड़ती हैं।

इस बात से स्पष्ट है कि जीवन स्तर वास्तव में कैसा है और कैसा होना

चाहिए और कौनसा स्तर ऐसा हो सकता है जिसमें आरामदायक और स्वास्थ्यकर रीति से रहने के लिए सब वस्तुएं प्राप्त हो सकें। वर्तमान काल में कुछ ही लोग इस बात को अस्वीकार कर सकते हैं कि न्यूनतम जीवन स्तर जीविका निर्वाह के स्तर से स्पष्ट रूप से ऊंचा होना चाहिए। यहां यह बात विशेष ध्यातव्य है कि जीवन स्तर का उच्च और निम्न होना व्यक्ति की आदतों पर अवलम्बित होता है और आदतें शीघ्र नहीं बदला करती हैं। इसी प्रकार जीवन स्तर को परिवर्तित करने में समय लगता है। फिर भी सच तो यह है कि जीवन स्तर को गिराने की अपेक्षा बड़ी सुगमता से ऊंचा उठाया जा सकता है क्योंकि उच्च स्तर से अभिप्राय यह है कि अधिक से अधिक आवश्यकताओं की सन्तुष्टि की जाए। इसकी अपेक्षा कि एक मनुष्य ऐसी आवश्यकताओं को जिनका कि वह अभ्यस्त हो गया है कम करे उसके लिए नई नई आवश्यकताओं और नई नई रुचियों को अपना लेना आसान होता है।

जीवन स्तर को निर्धारित करने वाले तत्व —

कुछ तत्व ऐसे भी हैं जिनके द्वारा देश में जीवन स्तर निर्धारित होता है। मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में उसके वातावरण का बड़ा प्रभाव पड़ता है। जो भावनाएं उसके वर्ग में होती हैं वही उसमें आ जाती हैं। वर्ग के प्रभाव के अतिरिक्त जीवन स्तर निर्धारित करने में व्यक्ति की आय का भी बड़ा महत्वपूर्ण योग है। क्रय शक्ति उसकी इच्छाओं की मात्रा और गुणों को निश्चित करती है। इस प्रकार जीवन स्तर आय द्वारा निर्धारित होता है। मार्शल के शब्दों में "सफलता के सोपान पर व्यक्ति जितना ही ऊंचा चढ़ता है उसका दृष्टिकोण उतना ही विस्तृत और व्यापक होता है। जितना वह देखने की चेष्टा करता है उसमें उतनी ही दूर देखने की प्रवृत्ति की वृद्धि होती है।" दूसरा तत्व है—सभ्यता की प्रगति। सभ्यता का ज्यों ज्यों विकास होता है और व्यक्ति अपने उपभोग की अधिक से अधिक वस्तुएं प्राप्त करता है उसकी चिन्ताएं भी बढ़ती जाती हैं। परन्तु इससे जीवन स्तर का उत्थान भी होता है, चाहे उसमें अनिश्चितता के लक्षण भी ही दृष्टिगोचर हों। इसमें मनुष्य की व्यक्तिगत विशिष्टताएं उसकी आदतें शिक्षा और दृष्टिकोण तथा उसके धन व्यय करने का ढंग आदि को भी सम्मिलित कर लेना उचित है। मनुष्य की आय अधिक भी हो सकती है। परन्तु यदि उसमें बुरी आदतें पड़ जाती हैं और वह अपना धन व्यर्थ ही नष्ट करता है तो उसके जीवन स्तर में किसी प्रकार भी प्रगति नहीं हो सकती। मितव्ययी व्यक्ति जीवन के आराम और सुविधाओं पर अधिक व्यय नहीं करता। परिणाम यह होता है कि उसका जीवन स्तर अपेक्षाकृत ऊंचा नहीं हो पाता।

जीवन के प्रति दृष्टिकोण का—अर्थात् किसी मनुष्य का भौतिक उन्नति में विश्वास है या आध्यात्मिक उन्नति में—भी जीवन स्तर पर बड़ा महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। बहुत से मनुष्य सादा जीवन तथा उच्च विचार के अनुयायी हैं और यद्यपि सुविधाएं उपलब्ध करने की उनकी स्थिति भी होती है तब भी बहुत से जीवन के

मानन्दों से वे अपने आप को वंचित रखते हैं। डाक्टर मार्शल के शब्दों में "जीवन स्तर को उठाने के लिए यह आवश्यक है कि बुद्धिमत्ता श्रम और आत्म-सम्मान में वृद्धि हो क्योंकि इन्हीं बातों से व्यय करने में मनुष्य उचित निर्णय और यत्न कर सकता है और ऐसे खान पान से दूर रह सकता है जिससे भूख की तृप्ति तो हो जाती है लेकिन कोई शक्ति प्राप्त नहीं होती। वह उन बातों से भी दूर रह सकता है जो शारीरिक और नैतिक दृष्टि से बुरी हैं।" इसके अतिरिक्त रीति-रिवाज और फैशन की भी जीवन स्तर पर बड़ी प्रभावशाली प्रतिक्रिया होती है। क्या चाहिए, क्या नहीं चाहिए—इस प्रकार की व्यक्ति की आवश्यकताएं मनुष्य के जीवन व्यतीत करने के उस ढंग पर निर्भर करती हैं जिससे कि वह समाज में प्रचलित रीति रिवाजों और फैशन के अनुसार अपने आपको ढाल लेता है। यदि डाक्टर और दुकानदार की एक ही आय भी हो तब भी उनके रहन-सहन का स्तर भिन्न ही होगा। डाक्टर अपनी वेष भूषा अच्छी बनाकर रखेगा, सुन्दर और स्वच्छ मकान में अपने रहने की व्यवस्था करेगा, स्वास्थ्यकर भोजन आदि पर अधिक धन व्यय करेगा जबकि दुकानदार अपने अधिक से अधिक समय धन और शक्ति को अपने व्यापार सम्बन्धी कार्यों के प्रसार में लगाएगा, कपड़े सादे पहन कर और कभी कभी मामूली खाना खाकर साधारण जीवन व्यतीत करेगा। सभी जानते हैं कि दुकानदार वर्ग के लोग जिनका भारत में एक विशेष वर्ग होता है मकान बनवाने और विवाहादि के अवसरों पर असाधारण रूप से व्यय करते हैं अन्यथा वह सादा जीवन ही व्यतीत करते हैं।

किसी देश की सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं का भी आर्थिक कार्यों और जीवन स्तर पर महत्त्व प्रभाव पड़ता है। उदाहरणार्थ जाति-पाँति प्रथा ने भारत में जनता के एक विशेष वर्ग को निम्न स्तर की कोटि में पटक दिया है और उनकी आय चाहे कुछ भी हो यह कल्पना भी नहीं की जा सकती कि किसी मेहतर के घर में मोटरमैन या रेडियो भी हो सकता है। सामाजिक प्रथाएं, जैसे विवाह जन्म मरण के समय व अंत्येष्टि संस्कार आदि पर अत्यधिक व्यय आदि मनुष्य की आय का एक बहुत बड़ा भाग ले लेती हैं और इसमें उसका जीवन निम्न कोटि की श्रेणी में आ जाता है। संयुक्त परिवार प्रणाली भी मनुष्य की आय को अन्य मनुष्यों में विभाजित कर देती है। इससे बाल-विवाह और जनसंख्या में वृद्धि को प्रोत्साहन मिलता है और इस प्रकार जीवन स्तर नीचा होता चला जाता है। इस प्रकार यह बात भी कि परिवार में कितने सदस्य हैं या कितने आश्रित हैं जिनका एक व्यक्ति को पालन-पोषण करना है जीवन स्तर पर प्रभाव डालती है। इसके अतिरिक्त कौशल और विशेष वर्ग का भी रहन-सहन के स्तर पर बड़ा प्रभाव पड़ता है क्योंकि यह वर्ग तुलनात्मक रूप से मनुष्य को अधिक मजदूरी और अधिक मजदूरी से बढ़ दाम देती है।

इस प्रकार, ऐसे अनेक तत्त्व हैं जिनको किसी देश के या किसी भी वर्ग या

समुदाय से सम्बन्धित लोगों के जीवन स्तर की समस्या की विवेचना करते समय ध्यान में रखना पड़ता है।

जीवन स्तर किस प्रकार ज्ञात होता है —

जीवन स्तर को ज्ञात करने की एक चिरपरिचित विधि है—आय और व्यय की मदों का समुचित ज्ञान प्राप्त करना। इसका अभिप्राय है—परिवार बजट निर्माण और उसके विश्लेषण की विधि को अपना लेना। इस आधार पर कोई भी व्यक्ति बड़ी आसानी से यह निर्णय कर सकता है कि कितनी आवश्यकताओं आराम और विलासितापूर्ण वस्तुओं का कोई मनुष्य उपभोग कर रहा है। इसके विश्लेषण के उपरान्त जीवन स्तर उच्च कोटि का है या निम्न कोटि का यह ज्ञात किया जा सकता है। इसलिए हम पहले भारतीय औद्योगिक श्रमिकों के परिवार बजटों का अध्ययन करेंगे।

परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ (Family Budget Enquiries) —

औद्योगिक श्रमिकों से सम्बन्धित कुछ परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ सन् १९२१–२२ में बम्बई में की गई थी। परन्तु इससे भी अधिक व्यापक आँकड़े उस परिवार बजट पूछताछ के परिणामस्वरूप मिलते हैं जो भारतीय सरकार ने सन् १९४४–४५ में निर्वाह-व्यय-सूचनांक बनाने की योजना के अन्तर्गत की थी। २८ केन्द्रों में व्यापक परिवार बजटों के बारे में मालूम किया गया था। इनमें लगभग २७००० बजट एकत्रित किए गए और उनका विश्लेषण किया गया। इन २८ केन्द्रों में से ६ अब पाकिस्तान में चले गए हैं और भारत में २२ केन्द्रों में से २० की रिपोर्टें प्रकाशित की जा चुकी हैं। इसी प्रकार की पूछताछ सन् १९४७ में असम, बंगाल और दक्षिण भारत के चुने हुए बागान में भी की गई थी और इस पूछताछ पर आधारित रिपोर्टें भी प्रकाशित कर दी गई हैं। सन् १९४५ में भारत सरकार के आर्थिक सलाहकार के कार्यालय ने भी केन्द्रीय सरकार के मध्य वर्ग के कर्मचारियों के पारिवारिक बजटों की पूछताछ की थी। इसका उद्देश्य यह था कि इस पूछताछ के आधार पर निर्वाह व्यय-सूचनांक बनाए जाएँ। इसकी रिपोर्ट भी प्रकाशित कर दी गयी है। भारतीय सांख्यिकी संस्थान बम्बई ने भी बम्बई नगर के मध्यम वर्गों के परिवारों से सम्बन्धित स्वास्थ्य और आहार सर्वेक्षण पर अपनी रिपोर्ट प्रकाशित की है। १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को लागू करते समय भी अनेक प्रदेशीय सरकारों और श्रमिक ब्यूरो ने कुछ महत्त्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों में पारिवारिक बजट सम्बन्धी पूछताछ आरम्भ कर दी है और कुछ के परिणाम प्रकाशित भी किए जा चुके हैं। इस प्रकार की पूछताछ श्रमिक ब्यूरो के निदेशक ने सन् १९५६ और १९५७ में आसाम में भी की थी। बाद में श्रमिक ब्यूरो ने व्यापक मात्रा में [illegible] पूर्व और मध्य प्रदेश आदि में भी परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ की। त्रिपुरा के चाय बागान में काम करने वाले कर्मचारियों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के हेतु अक्टूबर १९५९ में पारिवारिक बजट सम्बन्धी एक जाँच की गई।

डा० बी० अग्निहोत्री ने सन् १९५० में कानपुर के ५०० श्रमिक परिवारों से पारिवारिक बजट पूछताछ की थी। आयोजना आयोग की अनुसन्धान कार्य समिति ने भी परिवार बजट पूछताछ के सम्बन्ध में कई योजनाओं की स्वीकृति दी है। १९५५ में बम्बई सरकार ने ८ पारिवारिक सर्वेक्षण किये और औद्योगिक श्रमिकों के परिवार बजटों की भी पूछताछ की। बंगलौर में औद्योगिक श्रमिकों के ८७ परिवार बजटों की मैसूर सरकार ने पूछताछ की है। आसाम में ६ बस्तों में इस प्रकार की पूछताछ की गई है। और पश्चिमी बंगाल के बागान में भी परिवार बजट पूछताछ की गई है। सितम्बर सन् १९५८ से भारत सरकार ने फैक्ट्रियों, खानों और बागान के ५० केन्द्रों में श्रमिकों के परिवारों के रहन-सहन का सर्वेक्षण आरम्भ किया है। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य विभिन्न केन्द्रों पर और सारे भारतवर्ष के लिए समान रूप से ऐसे आँकड़े प्राप्त करना है जिनके आधार पर श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्यांक फिर से बनाए जा सकें और श्रमिकों के जीवन स्तर का अध्ययन भी हो सके। ऐसा सर्वेक्षण करते समय श्रमिकों के कुछ परिवारों को लेकर एक-परिवार का आकार, आय, उपभोग, विभिन्न मदों पर व्यय, जन्म, मरण, बीमारी, शिक्षा, वृद्धि, सम्पत्ति, ऋण और अग्रिमदान, कार्य करने की दशाएँ, मकानों की स्थिति एवं निवास के मुख्य उपकरणों का ज्ञान, परिसम्पत्ति और देनदारी आदि से सम्बन्धित आँकड़ों को नमूने के तौर पर भी एकत्रित किया गया है। जो आँकड़े एकत्रित हुए हैं उनकी जाँच पूरी हो चुकी है। सारणियों तथा रिपोर्ट को अन्तिम रूप दिया जा रहा है। ये सर्वेक्षण आगामी वर्षों में श्रमिकों की आर्थिक समस्याओं को हल करने में बड़े सहायक सिद्ध होंगे। कृषि श्रमिकों के सम्बन्ध में जो जाँच की गई है उनसे कृषि श्रमिकों की आर्थिक स्थिति के विषय में बड़ी महत्त्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं। (कृषि श्रमिकों का अध्याय देखें)।

पूछताछ के समय उत्पन्न होने वाली कठिनाइयाँ —

सर्वेक्षण और पूछताछ से देश के औद्योगिक श्रमिकों के जीवन स्तर सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण आँकड़े प्राप्त हो जाते हैं परन्तु प्रत्येक केन्द्र और प्रत्येक उद्योग में काम और मजदूरी की दशाओं में अन्तर होने के कारण भारत में औद्योगिक श्रमिकों के सामान्य स्तर और निर्वाह-व्यय के विषय में पूर्ण रूप से निश्चित ज्ञान करना सम्भव नहीं है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि पारिवारिक बजटों को तैयार करना कोई सरल कार्य नहीं है। भारतीय जनता अधिकांश अशिक्षित है और परिवार-बजट पूछताछ प्रश्नों का उत्तर ठीक ठीक नहीं दे पाती। अतः समस्याओं को छोटे-छोटे सरल बोधगम्य और निश्चित प्रश्न बनाकर पूछना चाहिए, जिससे किसी प्रकार के भ्रम या गलत समझने की सम्भावना न रहे। श्रमिकों से प्रश्न इस प्रकार पूछने चाहिए कि उन्हें बुरा भी न लगे और साथ ही उनसे निश्चय की सूचना भी प्राप्त हो। कभी-कभी तो वे अपनी अशिक्षा के कारण सरल से सरल प्रश्नों का भी उत्तर नहीं दे पाते अथवा उन्हें बहुत सी व्यय मदों के बारे में न तो स्मरण ही रहता है और न लिखित सामग्री। इसलिए परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ सोच-विचार कर करनी चाहिए।

पारिवारिक बजटों के अध्ययन करने में सर्वप्रथम परिवार का आकार अर्थात् सदस्यों की संख्या जानना आवश्यक है। यह भी देखना होता है कि कितने सदस्य कमाने वाले हैं और कितने आश्रित हैं। भारत में यह प्रश्न बड़ा पेचीदा है क्योंकि सच बात तो यह है कि परिवार में केवल पति पत्नी और अविवाहित बच्चे ही नहीं वरन् निकटतम सम्बन्धियों के परिवार भी सम्मिलित होते हैं। दूसरी बात यह है कि परिवार की आय जिसका तात्पर्य श्रमिक की मजदूरी और आमदनी से है स्थान स्थान पर और उद्योग-उद्योग में भिन्न होती है। इसके अतिरिक्त पारिवारिक बजट में व्यय की भिन्न भिन्न मदों का भिन्न-भिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत उल्लेख किया जाना चाहिए।

पूछताछ के निष्कर्ष —

सन् १९४४-४५ में की गई परिवार बजट सम्बन्धी पूछताछ के जो परिणाम प्रकाशित किए गए थे उनसे श्रमिकों के जीवन-स्तर का ज्ञान होता है। इसके बाद जो पूछताछ हुई है उनसे भी हमें औद्योगिक श्रमिकों के निम्न जीवन स्तर का पता चलता है। यह भी ज्ञात हुआ है कि श्रमिक परिवारों का औसत आकार दिल्ली में ३·७० था और मुंगेर और जमालपुर में ६·८० तक था। अनुपस्थित आश्रितों की संख्या अजमेर में ०·०३ थी और जमशेदपुर में २·९४ तक थी। परिवार में कमाने वालों की औसत संख्या प्रति परिवार के सदस्यों की तुलना में अधिक नहीं थी। साधारणतः कमाने वालों की संख्या कुल सदस्यों की संख्या में आधी पाती थी। प्रत्येक परिवार की औसत आय विभिन्न केन्द्रों में लगभग ५० रु० से लेकर १२० रु० तक पाई गई। भिन्न-भिन्न स्थानों में भी प्रत्येक परिवार की औसत सदस्य संख्या असम में लगभग ४·१२ और मद्रास में १·८० थी। इनकी आय भी ८ रु० से लेकर ११ रु० प्रति सप्ताह तक जाती थी।

व्यय की विभिन्न मदें —

अनेक पूछताछ से जो व्यय की मदें मालूम हुई हैं उनसे पता चलता है कि आय का ६ % से लेकर ७०% तक भाग केवल भोजन पर व्यय हो जाता है। इसका अभिप्राय यह हुआ कि श्रमिक वर्ग के परिवार बजट में कुल व्यय का आधे से अधिक व्यय भोजन-सामग्री पर हो जाता है। ऐन्जिल के सुप्रसिद्ध सिद्धान्त के अनुसार इस ऊंची प्रतिशत दर से यह पता चलता है कि औद्योगिक श्रमिक वर्ग के रहन सहन का स्तर बहुत निम्न है।

श्रमिकों के भोजन की छानबीन करने से ज्ञात होता है कि उनके भोजन में गुण और मात्रा दोनों ही की बहुत कमी है। बम्बई श्रम कार्यालय ने तो एक बार यह निष्कर्ष निकाला था कि औद्योगिक श्रमिक जो भी अन्न खाते थे वह अकाल संहिता में दिए हुए अन्न के बराबर तो होता था परन्तु बम्बई कारागार ग्रन्थ में जो आहार की मात्रा निश्चित की गई है उससे यह अन्न कम ही होता था। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम दफ्तर द्वारा श्रम जांच समिति डा० राधाकमल मुकर्जी और डाक्टर अनवर इकबाल कुरैशी

आदि ने भी भारतीय आहार स्तर की समस्याओं का अध्ययन करने पर यही निष्कर्ष निकाला कि भारतीय श्रमिकों का आहार अपर्याप्त और असन्तुलित होता है और इसमें कैलोरीज की मात्रा बहुत कम होती है। डाक्टर मुकर्जी के अनुसार श्रमिक का आहार में कैलोरीज की मात्रा अधिकतर अनाज और दालों से ही मिलती है अर्थात् लगभग ७५% कार्बोहाइड्रेट्स से प्राप्त होता है और जितनी कैलोरीज चाहिए, उनमें से मुश्किल से १०% प्रोटीन से प्राप्त होती है। प्रतिदिन औसतन ३००० कैलोरीज की आवश्यकता होती है परन्तु भारत में अधिकतर श्रमिकों के आहार में यह मात्रा नहीं पायी जाती। इस प्रकार अधिकतर श्रमिकों को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता और वह अनेक बीमारियों के सरलता से शिकार हो जाते हैं। आहार में कमी इस बात से भी स्पष्ट हो जाती है कि एक ओर तो वे अनाज का अत्यधिक उपभोग करते हैं और दूसरी ओर मांस मछली और दूध आदि पदार्थों का बहुत ही कम सेवन करते हैं। साधारण भोजन में अनुपातिक रूप से सभी आवश्यक तत्वों का समावेश होना चाहिए और आहार सन्तुलित होना चाहिए। असन्तुलित भोजन का शरीर और मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है और कार्य-क्षमता में भी कमी आ जाती है।

भोजन के बाद दूसरी मुख्य आवश्यकता कपड़े की है। कपड़ा और जूतों पर प्रतिशत व्यय विभिन्न स्थानों में ३ से १४ तक आता है। इन सब बातों को ध्यान में रखते हुए कहा जा सकता है कि श्रमिक कपड़ों पर बिल्कुल ध्यान नहीं दे पाते। भारत की जलवायु की दशाओं के अनुसार भी अनुपातिक रूप से कपड़ों पर व्यय इतना अधिक नहीं है जितना योरोपीय देशों में होता है। यहां पुरुष अपने शरीर के निचले भाग में धोती, लुंगी तथा पायजामा पहिनते हैं और स्त्रियां पेटीकोट या साड़ी जिससे उनका समस्त शरीर ढक जाता है। शरीर के ऊपरी भाग के लिए पुरुष बनियान, कमीज, कोट या कुर्ता और चादर आदि कपड़ों का प्रयोग करते हैं और स्त्रियां चोली या जाकिट पहिनती हैं। बहुत से पुरुष सर्दियों को छोड़कर अन्य समय में अपने शरीर के ऊपरी भाग पर कोई कपड़ा नहीं पहिनते। पैरों में अधिकतर जूते या सैण्डिल पहनते हैं परन्तु फिर भी बहुत से पुरुष और स्त्रियां नंगे पैरों ही घूमते हैं। ऊंची आय वाले वर्ग के लोग कपड़ों और जूतों पर अधिक व्यय करते हैं। उनके व्यय की प्रतिशत इन मदों पर आय तक भी हो जाती है क्योंकि उन्हें एक न्यूनतम जीवन स्तर बनाये रखना पड़ता है। परन्तु निम्न आय वर्ग के लोगों का प्रतिशत व्यय अपेक्षाकृत इन मदों पर अधिक हो जाती है। डा० राधाकमल मुकर्जी के अनुसार कपड़े की न्यूनतम आवश्यकता प्रति मनुष्य प्रति वर्ष २५ गज कही जा सकती है।

मकान के किराए पर श्रमिक जो कुछ व्यय करता है उसकी प्रतिशत औसतन ४ से ६ आती है और कभी-कभी कम से कम अर्थात् १ तक भी हो जाती है। मकानों की दशाओं का पूर्ण विवरण एक पृथक अध्याय में दिया जा चुका है जिसमें यहां

चलता है कि हमारे औद्योगिक श्रमिक बहुत ही शोचनीय दशा में और गन्दे स्थानों में रहते हैं।

व्यय की एक और मद ईंधन और प्रकाश की है। भारतीय श्रमिक भोजन पकाने के लिए लकड़ी का प्रयोग करता है। प्रकाश के लिए मिट्टी का तेल या अन्य किसी वनस्पति तेल का प्रयोग किया जाता है। बिजली या गैस तो श्रमिकों के मकानों में बहुत ही कम पाई जाती है। दोनों ही दशाओं में जीवन स्तर बहुत ही निम्न श्रेणी का है। इस मद पर ही कभी-कभी व्यय का प्रतिशत १२ तक पहुँच जाता है। एंजिल्स के सिद्धान्त के अनुसार इससे निम्न प्रकार के जीवन स्तर का पता चलता है।

एक और मद बिस्तर और फर्नीचर जैसी कुछ अन्य घरेलू वस्तुओं की है, जिनको जीवन की आवश्यकताएं माना जा सकता है। इन पर व्यय मुश्किल से १% या २% होता है। बिस्तर आदि पूर्णतया अपर्याप्त हैं। श्रमिकों में प्रायः बिस्तर का प्रयोग ही नहीं होता और सर्दियों में भी रातें अधिकांशतः एक साधारण सी चादर में व्यतीत कर दी जाती हैं। श्रमिक के पास बर्तन भी पूरे नहीं होते। जो होते भी हैं मलीन होते हैं।

आय का ८० प्रतिशत से अधिक केवल भोजन और आवश्यक वस्तुओं पर ही व्यय हो जाता है। इसलिए कोई भी मनुष्य आसानी से यह पता लगा सकता है कि श्रमिकों के पास स्वास्थ्य, शिक्षा और अपने तथा अपने परिवार के मनोरंजन के लिए बहुत कम बचत रह जाती है। फुटकर व्ययों का अनुपात ८% से कम ही होता है। परन्तु यह फुटकर व्यय अधिकतर मदिरा और सामाजिक रीति रिवाजों पर होता है और शिक्षा और मनोरंजन के लिए लगभग कुछ भी शेष नहीं रह जाता।

मदिरा पर किए गए व्यय के निश्चित आंकड़े देना तो सम्भव नहीं है, क्योंकि जो श्रमिक शराब पीता है वह अधिकांशतः यह बताने के लिए तैयार नहीं होता कि वह शराब पीता भी है या पीता है तो कितनी शराब पीता है। फिर भी अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि श्रमिकों के कुल व्यय का १०% केवल शराब और अन्य मादक पदार्थों पर होता है। शराब पर आय का औसत व्यय पंजाब में १२ प्रतिशत और बंगाल में ११.६ प्रतिशत होता है। यह भी पता लगा कि श्रमिकों के परिवारों में से ७२% बम्बई में, ४१% शोलापुर में और २६% अहमदाबाद में शराब पीते थे। कहा जाता है कि श्रमिक शराब पीकर कठिन परिश्रम के भार को हल्का करता है क्योंकि जीवन की और कोई सुविधाएं उसे प्राप्त नहीं होतीं। अनेक प्रदेशों और औद्योगिक नगरों में-विशेषतया मद्रास, बम्बई और कानपुर में मद्यपान निषिद्ध कर दिया गया है। परन्तु इस बात की तत्कालीन आवश्यकता है कि इस मद्य निषेध से अवैध रूप से कितनी शराब खींची जाती है और इसके कारण अवैध रूप से क्रय करने में श्रमिक का कितना व्यय बढ़ गया है।

स्वास्थ्य के मद में हम उस व्यय को लेते हैं जो औषधियों और चिकित्सा पर होता है। कुछ स्थानों पर मालिक अपने कर्मचारियों के लिए ही नहीं अपितु उनके

परिवार के सदस्यों के लिए भी चिकित्सा सहायता की व्यवस्था करता है। इस प्रकार के अन्तर्गत कुछ विशेष स्थानों पर ही कुछ व्यय होता है। अनेक अवसरों पर श्रमिक को अपने परिवार के सदस्यों के लिए चिकित्सा सहायता की बड़ी आवश्यकता होती है। लेकिन उन्हें कष्ट भोगना ही पड़ता है क्योंकि डाक्टर की फीस देने के लिए और दवाइयाँ आदि खरीदने के लिए उनके पास धन नहीं होता।

शिक्षा के सम्बन्ध में यह देखा गया है कि बच्चों को स्कूल भेजने का व्यय केवल कुछ ही पारिवारिक बजटों में पाया जाता है। प्रायः वे परिवार ही शिक्षा पर कुछ व्यय करते हैं जिनकी आय १०० रु० प्रतिमास से अधिक होती है। कठिनता से १५% से २०% श्रमिक परिवार बच्चों को स्कूल भेजने पर व्यय करते हैं। शिक्षा पर व्यय इसलिए अधिक नहीं होता क्योंकि श्रमिकों के पास इसके लिए कुछ बचता ही नहीं।

इसी प्रकार मनोरंजन पर भी व्यय बहुत कम होता है। इसका कारण यह है कि श्रमिक की आय कम होती है और मनोरंजन की सुविधाओं का अभाव होता है। मनोरंजन के लिए कल्याण कार्यों के अतिरिक्त यदि कोई अन्य सस्ती सुविधा उपलब्ध है तो वह केवल सिनेमा है। इस पर श्रमिक कुछ धन व्यय करते हुए पाए जाते हैं।

पान तम्बाकू और बीड़ी आदि भी कुछ ऐसी उपभोग्य वस्तुएँ हैं जिन पर श्रमिक कुछ धन व्यय करते हैं। श्रमिकों और उनके परिवार की एक बहुत बड़ी संख्या लगभग ७०% से ८०% तक ऐसी होती है जो पान बीड़ी और खाने की तम्बाकू की अभ्यस्त होती है। श्रमिक वर्ग में केवल यही विलासिता की वस्तुएँ पाई जा सकती हैं और इन पर प्रतिमास व्यय कभी-कभी २ प्रतिशत से ४ प्रतिशत तक हो जाता है।

फुटकर व्यय के अन्तर्गत एक और व्यय भी देखा जाता है। श्रमिक अधिकांश ग्रामीण होते हैं इसलिए वर्ष में कम से कम एक बार वे गाँव पर जाना अवश्य पसन्द करते हैं। परन्तु यात्रा पर किया गया प्रतिमास व्यय बहुत कम है यह तथ्य भी सिद्ध हुआ है तथा और निम्न कोटि के रहन-सहन का स्तर प्रकट करता है।

इसके अतिरिक्त श्रमिक को लिए गए ऋण पर ब्याज के रूप में भी कुछ न कुछ देना पड़ता है। यह ऋण उन्हें सामाजिक रीति रिवाजों और गाढ़े समय जैसे बीमारी बेकारी दुर्घटना आदि में व्यय करने के लिए लेना पड़ता है। जैसा कि स्पष्ट है श्रमिक की आय का अधिकांश भाग भोजन की आवश्यकताओं पर खर्च हो जाता है और इसीलिए सामाजिक आवश्यकताओं को सम्पन्न करने के लिए उसके पास किसी प्रकार की आरक्षित निधि नहीं होती। इस दशा पर उसका व्यय अधिक हो जाता है और जो धन वह व्यय करता है अधिकांश में वह महाजनों से ऋण के रूप में लिया हुआ धन होता है। ऋणग्रस्तता की यह समस्या पिछले अध्याय में

बतायी जा चुकी है। यहां केवल इतना ही कहना पर्याप्त है कि ऋण-ग्रस्तता का श्रमिकों के जीवन स्तर पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ता है और उनकी कार्य कुशलता भी कम हो जाती है।

उपसंहार —

श्रमिकों के व्यय करने की मदों का संक्षिप्त अवलोकन करने से यह निष्कर्ष निकलता है कि औद्योगिक श्रमिकों का जीवन स्तर बड़ी निम्न श्रेणी का है। यह भी देखने में आता है कि भारतीय श्रमिक का जीवन ऐसा नहीं होता जिसे आधुनिक सभ्य संसार में एक अच्छा और आरामप्रद जीवन कहा जा सके। न तो श्रमिक को पर्याप्त भोजन मिलता है और न कपड़ा। मकानों की दशा ऐसी होती है कि कल्पना भी नहीं की जा सकती कि ऐसे वातावरण में भी मनुष्य रह सकते हैं।

निम्न जीवन स्तर के कारण —

औद्योगिक श्रमिकों का निम्न जीवन स्तर होने के अनेक कारण हैं। मुख्य कारण वास्तव में यह है कि श्रमिक की आय कम होती है और निर्वाह-व्यय अधिक होता है। भारत में श्रमिकों को पर्याप्त मजदूरी नहीं दी जाती यह बात भारतीय मजदूरी-स्तर का अध्ययन करने से भली भांति स्पष्ट हो जाती है। यद्यपि मजदूरी में युद्धकाल के समय और बाद में भी कुछ सुधार किए गए हैं तथापि मूल्यों की वृद्धि के कारण निर्वाह-खर्च अधिक हो गया है। सन् १९४७ में श्री सी० डी० देशमुख ने कहा था "भारत इस समय एक मजदूरी-मूल्य-चक्र से पीड़ित है। ऐसे ही श्रमिकों को अधिक मजदूरी दी जाती है उसका लाभ निर्वाह-खर्च के अधिक बढ़ जाने से अपने आप समाप्त हो जाता है।" (पृष्ठ ४८८—८९ और पृष्ठ ५११ भी देखिए) युद्ध के पश्चात् एशिया के कुछ देशों में असाधारण अनुपात में निर्वाह-खर्च में वृद्धि हुई है परन्तु अधिकांश पश्चिमी देशों में इतनी वृद्धि नहीं हुई है। यह बात निम्न तालिका॰ से स्पष्ट हो जाती है।

निर्वाह-व्यय सूचकांक
(आधार वर्ष १९३७=१००)

वर्ष	इंगलैंड	अमरीका	कनाडा	भारत (बम्बई)
१९३९	१०१	९७	१००	१०
१९४५	११२	१२५	११८	२२२
१९४८	१ ८	१६७	१२१	२८९
१९४९	१११	१६७	१२६	२९

*See "A Survey of Labour in India by V. R. K. Tilak Chapter III and Reserve Bank of India Reports.

१९५६ में औसत सूचकांक
(आधार वर्ष १९५३=१००)

देश	थोक मूल्य	निर्वाह व्यय
भारत	९६	१०८
कनाडा	१०४	१०६
मिस्र	११७	१०६
फ्रांस	१०१	१०४
नैदरलैंड	१०८	१११
स्वीडन	१०५	११४
स्विट्जरलैंड	१००	१०३
इंगलैंड	१०६	११२
अमरीका	९७	१०६

भारत के श्रमिक वर्ग का निर्वाह-व्यय और उसकी वास्तविक आय का तुलनात्मक विवेचन करने से यह सिद्ध होता है कि श्रमिकों का जीवन स्तर गिर गया है। यह किस मात्रा तक गिर गया है यह मजदूरी की वृद्धि और सूचकांक की वृद्धि में भिन्नता से ज्ञात हो जाता है। यह बात भी पृष्ठ ५ १ पर दी गई तालिका से स्पष्ट हो जाएगी। जो महंगाई भत्ता दिया जाता है वह अपर्याप्त होता है और वह सामान्य मूल्य स्तर और निर्वाह-व्यय में जो वृद्धि हुई है उसकी क्षतिपूर्ति करने में असमर्थ है। अतः मूल्यों में वृद्धि का भारी भार श्रमिकों के जीवन स्तर पर पड़ता है।०

जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के प्रयत्न

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि केवल मजदूरी समायोजन (Adjustment) कर देने या महंगाई भत्ता के भुगतान मात्र से ही समस्या का समाधान नहीं हो जाता। हमारे सामने वर्तमान जीवन स्तर को बनाए रखने की ही समस्या नहीं है अपितु इसको इतना ऊँचा उठाना है कि श्रमिक भलीभाँति अपना निर्वाह कर सकें। इसलिए जहाँ तक सम्भव हो श्रमिकों को उन्नति के लिए पर्याप्त मजदूरी देना चाहिए और इस बीच में औद्योगिक श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी और उचित मजदूरी निर्धारित करने में विलम्ब नहीं करना चाहिए। भारतीय उद्योगों की मजदूरी का ढाँचा विवेकपूर्ण (Judicious) इस प्रकार बनाना चाहिए कि श्रमिक वर्ग का वास्तविक कल्याण भी हो सके और न तो मूल्य सन्तुलन (Price Equilibrium) में किसी

० 'निर्वाह-व्यय के सूचकांक' (Cost of Living Index Numbers) के लिए, जो अब 'उपभोक्ता मूल्य सूचकांक' (Consumer Price Index) कहलाते हैं परिशिष्ट 'क' देखिए।

अवकाश मिलने पर भी अपने परिवार के साथ आनन्द मना सके और इस प्रकार बिना किसी प्रकार का विघ्न पड़े और न ही दया के प्राकृतिक विराम में बाधा आए। श्रमिक के लिए जब तक पर्याप्त आय की व्यवस्था नहीं की जाती हम उसका जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठा सकते। उत्तर प्रदेश श्रम जाँच समिति के शब्दों में "यह बात स्वयं सिद्ध है कि मजदूरी एक धुरा (Pivot) है जिसके चारों ओर श्रमिकों की अधिकांश समस्याएं घूमती रहती हैं। इस प्रकार जीवन स्तर से सम्बन्धित प्रश्न श्रमिक की सामान्य आर्थिक क्षमता उसकी आपस कुशलता श्रम की लागत आदि सभी बातें इसी समस्या के अन्तर्गत आती हैं।

श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा करने का एक अन्य उपाय यह है कि उनके लिए पर्याप्त मात्रा में कल्याण कार्यों और सामाजिक सुरक्षा के साधन उपलब्ध किए जाएं। पृथक्-पृथक् अध्यायों में इन बातों का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है और श्रमिकों के स्वास्थ्य कार्य कुशलता एवं जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए उनका महत्व भी बताया जा चुका है। इसी प्रकार आवास ऋण-ग्रस्तता काम करने की परिस्थितियों की कार्य कुशलता पर प्रतिक्रिया आदि दूसरी समस्याओं पर भी विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है।

कुछ अन्य सुझाव —

यह कहा जा सकता है कि जीवन स्तर एक ऐसी समस्या है जो श्रमिकों के सुधार सम्बन्धी सभी उपायों से सम्बन्धित है। सच तो यह है कि हमारी सभी आर्थिक प्रक्रियाओं का लक्ष्य आवश्यकताओं की पूर्ति है और इसलिए श्रमिकों के कल्याण के लिये जो भी पग उठाया जाय उससे उनके जीवन स्तर में उन्नति होनी चाहिए अन्यथा ऐसे पग उठाने के लिए घोषणा भी नहीं चाहिए।

इस विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या भारतीय सामाजिक रीति रिवाजों में यथासम्भव सुधार करने की है। श्रमिकों को उचित रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे कि वे सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठानों तथा त्यौहारों पर व्यर्थ व्यय न करें। अनेक सामाजिक उत्तरदायित्व ऐसे होते हैं जिन पर श्रमिक को धन व्यय करना पड़ता है यद्यपि वह यह भलीभांति अनुभव भी करता है कि उसकी स्थिति ऐसी नहीं है कि अपने धन का वह इस प्रकार व्यय करे। उदाहरणार्थ पुत्री या बहन के विवाह में श्रमिक को भारी दहेज देना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त श्रमिकों को बड़े परिवार की हानियों से भी अवगत कराना चाहिए। विस्तृत दृष्टिकोण से भी वर्तमान समय में जनसंख्या की रोकथाम बड़ी आवश्यकता है। खाद्य समस्या का समाधान तब तक नहीं किया जा सकता जब तक उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या की वृद्धि में रोक नहीं लगाई जाती। आधुनिक समय में जनसंख्या इस प्रकार बढ़ रही है कि निर्धनों के बच्चे अधिक होते हैं। इसीलिए परिवार का आकार श्रमिक वर्गों में अपेक्षाकृत बड़ा होता है। अनेक बार यह बात सामने आई है कि अपनी सीमित आय के कारण जब श्रमिक को अपने परिवार का भरण-पोषण करना और अपने शरीर और आत्मा को एक साथ बनाए

रखना भी कठिन होता है तब इस प्रकार समय में उसके परिवार में कोई नया बच्चा जन्म ले लेता है। ऐसे अवसरों पर उसके सामने इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रहता कि वह महाजनों के पास जाए और उनसे ऋण ले। ऋणग्रस्तता की बुराइयाँ पहले ही बताई जा चुकी हैं। इसलिए परिवार नियोजन के प्रचार की बहुत आवश्यकता है। श्रमिक वर्ग को इस प्रकार की सुविधायें प्रदान करनी चाहिएं कि वे अपने परिवार में जन्म दर को कम कर सकें। इससे उनके जीवन स्तर पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त श्रमिकों को उचित रीति से धन को व्यय करने का ढंग भी बताया जाना चाहिए। अधिकांश श्रमिकों को तो यह भी ज्ञान नहीं होता कि वे कितना कमाते हैं और कितना उपभोग करते हैं। अनपढ़ श्रमिकों से इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि वे अपना बजट ठीक प्रकार से बनायेंगे और अपने धन को सम-सीमान्त तुष्टीकरण नियम (Law of Equi-marginal Utility) के अनुसार व्यय करेंगे। इस समस्या का समाधान तो केवल उचित प्रकार शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के प्रसार और श्रमिक वर्ग की महिलाओं में शिक्षा के विकास से ही हो सकता है।

इसके अतिरिक्त जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में स्वास्थ्य, मकान, अवकाश तथा मनोरंजन की सुविधाओं के महत्व को भी ध्यान में रखना चाहिए। इनकी महत्ता का पूर्व अध्यायों में उल्लेख किया जा चुका है।

औद्योगिक श्रमिकों की कार्य कुशलता पर जीवन स्तर का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। उन श्रमिकों से जो निम्नतम आवश्यक भोजन, वस्त्र के अभाव, ढेरों भारी बीमारी और ऋण-ग्रस्तता के वातावरण में पल कर बड़े होते हैं, कार्य कुशलता की आशा नहीं की जा सकती। मालिकों को अपने कर्मचारियों की अकुशलता की शिकायत रहती है। वे इस बात का अनुभव नहीं करते कि जब तक श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार नहीं हो जाता उनसे काम में कुशलता की आशा करना व्यर्थ है। वर्तमान समय में शारीरिक, नैतिक और मानसिक भार वहन करने में श्रमिक असमर्थ हैं और इसीलिए वे अधिक परिश्रम नहीं कर पाते।

उपसंहार—

इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व अनेक प्रकार सुधारों की आवश्यकता है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दों में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि "उद्योग में तब तक न शान्ति स्थापित हो सकती है न प्रगति हो सकती है जब तक श्रमिकों को केवल उत्पादन का साधन न मानकर अपितु उन्हें मनुष्य समझकर उनकी मूल आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं किया जाता। औद्योगिक शान्ति और प्रगति का भाव श्रमिक वर्ग की कार्यकुशलता, ऊँचा जीवन स्तर, सामाजिक सुरक्षा तथा समस्त जनता में धन सम्पत्ति के उचित वितरण पर ही आधारित होती है।"

प्रकार का विघ्न पड़े और न ही देश के औद्योगिक विकास में बाधा आए। श्रमिक के लिए जब तक पर्याप्त आय की व्यवस्था नहीं की जाती हम उसका जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठा सकते। उत्तर प्रदेश श्रम जाँच समिति के शब्दों में "यह बात स्वयं सिद्ध है कि मजदूरी एक धुरा (Pivot) है जिसके चारों ओर श्रमिकों की अधिकांश समस्याएं घूमती रहती हैं। इस प्रकार जीवन स्तर से सम्बन्धित प्रश्न श्रमिक की सामान्य आर्थिक क्षमता उसकी कार्य कुशलता श्रम की लागत आदि सभी बातें इसी समस्या के अन्तर्गत आती हैं।

श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा करने का एक अन्य उपाय यह है कि उनके लिए पर्याप्त मात्रा में कल्याण कार्यों और सामाजिक सुरक्षा के साधन उपलब्ध किए जाएं। पृथक-पृथक अध्यायों में इन बातों का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है और श्रमिकों के स्वास्थ्य कार्य कुशलता एवं जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए उनका महत्व भी बताया जा चुका है। इसी प्रकार आवास, स्वास्थ्य-प्रद काम करने की परिस्थितियों की कार्य कुशलता पर प्रतिक्रिया आदि दूसरी समस्याओं पर भी विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है।

कुछ अन्य सुझाव —

यह कहा जा सकता है कि जीवन स्तर एक ऐसी समस्या है जो श्रमिकों के सुधार सम्बन्धी सभी उपायों से सम्बन्धित है। सच तो यह है कि हमारी सभी आर्थिक प्रक्रियाओं का लक्ष्य आवश्यकताओं की पूर्ति है और इसलिए श्रमिकों के कल्याण के लिये जो भी पग उठाया जाय उससे उनके जीवन स्तर में उन्नति होनी चाहिए अन्यथा ऐसे पग उठाने के लिए सोचना भी नहीं चाहिए।

इस विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या भारतीय सामाजिक रीति-रिवाजों में यथासम्भव सुधार करने की है। श्रमिकों को उचित रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे कि वे सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठानों तथा त्यौहारों पर व्यर्थ व्यय न करें। अनेक सामाजिक उत्तरदायित्व ऐसे होते हैं जिन पर श्रमिक को धन व्यय करना पड़ता है यद्यपि वह यह भलीभांति अनुभव भी करता है कि उसकी स्थिति ऐसी नहीं है कि अपने धन का वह इस प्रकार व्यय करे। उदाहरणार्थ पुत्री या बहन के विवाह में श्रमिक को भारी दहेज देना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त श्रमिकों को बड़े परिवार की हानियों से भी अवगत कराना चाहिए। विस्तृत दृष्टिकोण से भी वर्तमान समय में जनसंख्या की रोकथाम सबसे बड़ी आवश्यकता है। खाद्य समस्या का समाधान तब तक नहीं किया जा सकता जब तक उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या की वृद्धि में रोक नहीं लगाई जाती। आधुनिक समय में जनसंख्या इस प्रकार बढ़ रही है कि निर्धनों में बच्चे अधिक होते हैं। इसीलिए परिवार का आकार श्रमिक वर्गों में अपेक्षाकृत बड़ा होता है। अनेक बार यह बात सामने आई है कि अपनी सीमित आय के कारण जब श्रमिक को अपने परिवार का भरण-पोषण करना और अपने शरीर और आत्मा को सबल बनाए

रखना भी कठिन होता है जब उस थोड़े समय में उसके परिवार में कोई नया बच्चा जन्म ले लेता है। ऐसे अवसरों पर उसके सामने इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रहता कि वह महाजनों के पास जाए और उनसे ऋण ले। ऋणग्रस्तता की बुराइयां पहले ही बताई जा चुकी हैं। इसलिए परिवार नियोजन के प्रचार की बहुत आवश्यकता है। श्रमिक वर्ग को इस बात की सुविधाएं प्रदान करनी चाहिएं कि वे अपने परिवार में जन्म दर को कम कर सकें। इसका उनके जीवन स्तर पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त श्रमिकों को उचित रीति से धन को व्यय करने का ढंग भी बताया जाना चाहिए। अधिकतर श्रमिकों का तो यह भी ज्ञान नहीं होता कि वे कितना कमाते हैं और कितना उपभोग करते हैं। अनपढ़ श्रमिकों से इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि वे अपना बजट ठीक प्रकार से बनायेंगे और अपने धन को सम-सीमान्त तुष्टिगुण नियम (Law of Equi-marginal Utility) के अनुसार व्यय करेंगे। इस समस्या का समाधान तो केवल अधिक प्रचार, शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के प्रसार और श्रमिक वर्ग की सहकारिताओं के विकास से ही हो सकता है।

इसके अतिरिक्त जीवन स्तर को ऊंचा उठाने में छुट्टियों, सवेतन अवकाश तथा मनोरंजन की सुविधाओं के महत्व को भी ध्यान में रखना चाहिए। इनकी महत्ता का पूर्व अध्यायों में वर्णन किया जा चुका है।

औद्योगिक श्रमिकों की कार्य कुशलता पर जीवन स्तर का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। उन श्रमिकों में जो निर्धनता, अपर्याप्त भोजन, वस्त्र के अभाव, पेचिश जैसी बीमारी और ऋण-ग्रस्तता के वातावरण में रह कर बड़े होते हैं, उनसे काम की आशा नहीं की जा सकती। मालिकों का प्रायः कर्मचारियों की अकुशलता की शिकायत रहती है। वे इस बात का अनुभव नहीं करते कि जब तक श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार नहीं हो जाता उनसे काम में कुशलता की आशा करना व्यर्थ है। वर्तमान समय में शारीरिक, नैतिक और मानसिक भार वहन करने में श्रमिक असमर्थ हैं और इसीलिए वे अधिक परिश्रम नहीं कर सकते।

उपसंहार—

इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाने के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व अनेक अन्य सुधारों की आवश्यकता है। प्रो० राधाकमल मुकर्जी के शब्दों में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि "उद्योग में तब तक न शांति स्थापित हो सकती है न उन्नति हो सकती है जब तक श्रमिकों को केवल उत्पादन का साधन न मानकर अपितु उन्हें मनुष्य समझकर उनकी मूल आवश्यकताओं को सन्तुष्ट नहीं किया जाता। औद्योगिक शान्ति और प्रगति का आधार श्रमिक वर्ग की कार्यकुशलता, उनका जीवन स्तर, सामाजिक सुरक्षा तथा सम्पत्ति, उत्पादन व राष्ट्रीय आय के उचित वितरण पर ही आधारित होती है।"

प्रकार का विघ्न पड़े और न ही दल के औद्योगिक विकास में बाधा आए। श्रमिक के लिए जब तक पर्याप्त आय की व्यवस्था नहीं की जाती हम उसका जीवन स्तर ऊँचा नहीं उठा सकते। उत्तर प्रदेश श्रम जाँच समिति के शब्दों में "यह बात स्वयं सिद्ध है कि मजदूरी एक धुरा (Pivot) है जिसके चारों ओर श्रमिकों की अधिकांश समस्याएं घूमती रहती हैं। इस प्रकार जीवन स्तर से सम्बन्धित प्रश्न श्रमिक की सामान्य आर्थिक क्षमता उसकी कार्य कुशलता श्रम की मात्रा आदि सभी बातें इसी समस्या के अन्तर्गत आती हैं।

श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा करने का एक अन्य उपाय यह है कि उनके लिए पर्याप्त मात्रा में कल्याण कार्यों और सामाजिक सुरक्षा के साधन उपलब्ध किए जाएं। पृथक-पृथक अध्यायों में इन बातों का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है और श्रमिकों के स्वास्थ्य कार्य कुशलता एवं जीवन स्तर को उन्नत करने के लिए उनका महत्व भी बताया जा चुका है। इसी प्रकार आवास ऋण-ग्रस्तता काम करने की परिस्थितियों की कार्य कुशलता पर प्रतिक्रिया आदि दूसरी समस्याओं पर भी विस्तार पूर्वक प्रकाश डाला जा चुका है।

कुछ अन्य सुझाव —

यह कहा जा सकता है कि जीवन स्तर एक ऐसी समस्या है जो श्रमिकों के सुधार सम्बन्धी सभी उपायों में सम्मिलित है। सच तो यह है कि हमारी सभी आर्थिक प्रक्रियाओं का ध्येय आवश्यकताओं की पूर्ति है और इसलिए श्रमिकों के कल्याण के लिये जो भी पग उठाया जाए उससे उनके जीवन स्तर में उन्नति होनी चाहिए अन्यथा ऐसे पग उठाने के लिए सोचना भी नहीं चाहिए।

इस विषय में एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या भारतीय सामाजिक रीति-रिवाजों में यथासम्भव सुधार करने की है। श्रमिकों को उचित रूप से शिक्षा दी जानी चाहिए, जिससे कि वे सामाजिक और धार्मिक अनुष्ठानों तथा त्यौहारों पर व्यर्थ व्यय न करें। अनेक सामाजिक उत्तरदायित्व ऐसे होते हैं जिन पर श्रमिक को धन व्यय करना पड़ता है यद्यपि वह यह भलीभाँति अनुभव भी करता है कि उसकी स्थिति ऐसी नहीं है कि अपने धन को वह इस प्रकार व्यय करे। उदाहरणार्थ पुत्री या बहन के विवाह में श्रमिक को भारी दहेज देना पड़ता है।

इसके अतिरिक्त श्रमिकों को बड़े परिवार की हानियों से भी अवगत कराना चाहिए। विस्तृत दृष्टिकोण से भी वर्तमान समय में जनसंख्या की रोकथाम सबसे बड़ी आवश्यकता है। खाद्य समस्या का समाधान तब तक नहीं किया जा सकता जब तक उत्पादन में वृद्धि के साथ-साथ जनसंख्या की वृद्धि में रोक नहीं लगाई जाती। आधुनिक समय में जनसंख्या इस प्रकार बढ़ रही है कि नियमों में बच्चे अधिक होते हैं। इसीलिए परिवार का आकार श्रमिक वर्गों में अपेक्षाकृत बड़ा होता है। अनेक बार यह बात सामने आई है कि अपनी सीमित आय के कारण जब श्रमिक को अपने परिवार का भरण-पोषण करना और अपने शरीर और आत्मा को सबल बनाए

रखना भी कठिन होता है जब कि प्रायः समय में उसके परिवार में कोई नया बच्चा जन्म ले लेता है। ऐसे अवसरों पर उसके सम्मुख इसके अतिरिक्त कोई अन्य उपाय नहीं रहता कि वह महाजनों के पास जाए और उनसे ऋण ले। ऋणग्रस्तता की बुराइयाँ पहले ही बताई जा चुकी हैं। इसलिए परिवार नियोजन के प्रचार की बहुत आवश्यकता है। श्रमिक वर्ग को इस बात की सुविधायें प्रदान करनी चाहिए कि वे अपने परिवार में जन्म दर को कम कर सकें। इससे उनके जीवन स्तर पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

इसके अतिरिक्त श्रमिकों को उचित रीति से धन को व्यय करने का ढंग भी बताया जाना चाहिए। अधिकांश श्रमिकों को तो यह भी ज्ञान नहीं होता कि वे कितना कमाते हैं और कितना उपभोग करते हैं। अपढ़ श्रमिकों से इस बात की आशा नहीं की जा सकती कि वे अपना बजट ठीक प्रकार से बनायेंगे और अपने धन को सम-सीमान्त तुष्टिगुण नियम (Law of Equi-marginal Utility) के अनुसार व्यय करेंगे। इस समस्या का समाधान तो केवल अधिक प्रचार, शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं के प्रसार और श्रमिक वर्ग की महिलाओं में शिक्षा के विकास से ही हो सकता है।

इसके अतिरिक्त जीवन स्तर को ऊँचा उठाने में छुट्टियों, सवेतन अवकाश तथा मनोरंजन की सुविधाओं के महत्व को भी ध्यान में रखना चाहिए। इनकी महत्ता का पूर्व अध्यायों में उल्लेख किया जा चुका है।

औद्योगिक श्रमिकों की कार्य कुशलता पर जीवन स्तर का भी बड़ा प्रभाव पड़ता है। उन श्रमिकों से जो निर्धनता, अपर्याप्त भोजन, वस्त्र के अभाव, बेरोजगारी, बीमारी और ऋण-ग्रस्तता के वातावरण में पल कर बड़े होते हैं, कार्य की आशा नहीं की जा सकती। मालिकों को अपने कर्मचारियों की अकुशलता की शिकायत रहती है। वे इस बात का अनुभव नहीं करते कि जब तक श्रमिकों के जीवन स्तर में सुधार नहीं हो जाता उनसे काम में कुशलता की आशा करना व्यर्थ है। वर्तमान समय में शारीरिक, नैतिक और मानसिक भार सहन करने में श्रमिक असमर्थ हैं और इसलिए वे अधिक परिश्रम नहीं कर पाते।

उपसंहार—

इसमें कोई सन्देह नहीं कि श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊँचा उठाने के प्रश्न पर विचार करने से पूर्व अनेक अन्य सुधारों की आवश्यकता है। डा० राधाकमल मुकर्जी के शब्दों में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि "उद्योग में तब तक न शान्ति स्थापित हो सकती है न उन्नति हो सकती है, जब तक श्रमिकों को केवल उत्पादन का साधन न मानकर अपितु उन्हें मनुष्य समझकर उनकी मूल आवश्यकताओं को सम्मुख नहीं किया जाता । औद्योगिक शान्ति और उन्नति का भाव श्रमिक वर्ग की कार्यकुशलता, उच्च जीवन स्तर, सामाजिक सुरक्षा तथा समस्त जनता में क्रय शक्ति के उचित वितरण पर ही आधारित होती है।"

१८

औद्योगिक श्रमिकों का स्वास्थ्य और उनकी कार्यकुशलता

(Health and Efficiency of Industrial Workers)

श्रमिकों के स्वास्थ्य की समस्या—

औद्योगिक श्रमिकों की स्वास्थ्य समस्या का दो पहलुओं से अध्ययन किया जा सकता है। प्रथम स्वास्थ्य को हानि की दृष्टि से जो सभी नागरिकों के लिए स्वाभाविक है और द्वितीय व्यवसायजनित स्वास्थ्य संकट की दृष्टि से जिनका कुछ उद्योगों में औद्योगिक श्रमिकों के लिए भय रहता है। औद्योगिक श्रमिक भी एक नागरिक होता है इसलिए अन्य नागरिकों के समान उस पर आने वाले स्वास्थ्य संकट उसको भी झेलने पड़ते हैं। नागरिक होने के नाते श्रमिक की आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा जो समाज में सब के लिए उपलब्ध हैं होनी चाहिए। परन्तु औद्योगिक श्रमिक के रूप में उसके व्यवसायजनित संकट जिनका उसे भय रहता है उचित रीति से निर्मित औद्योगिक श्रम स्वास्थ्य सेवा द्वारा ही दूर किए जा सकते हैं। ऐसी सेवायें काम करने के स्थान के वातावरण से सम्बन्धित उन बातों की रोकथाम करने की व्यवस्था करती हैं जो श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती हैं। (पृष्ठ ३१२ १४ भी देखिए)

असन्तोषजनक स्वास्थ्य पर कुछ रिपोर्टें—

हमारे देश के लोगों का असन्तोषजनक स्वास्थ्य इस बात से विदित होता है कि यहां के जीवन की औसत आयु अपेक्षाकृत कम है। अनुमान किया गया है कि भारत में यह औसत आयु केवल ३२ वर्ष रही है यद्यपि हाल ही के कुछ वर्षों में औसत आयु का अनुमान ४७ वर्ष लगाया गया है। यह आयु आस्ट्रेलिया में ६१ वर्ष इंग्लैंड और वेल्स में ६६ वर्ष जर्मनी में ६० वर्ष और जापान में ६२ वर्ष है। भारत में यद्यपि श्रमिकों के स्वास्थ्य सम्बन्धी आंकड़े पूर्णतया उपलब्ध नहीं हैं तथापि सामान्य स्वास्थ्य की दशाओं के विवरण भारत के अनेकानेक प्रकाशनों [जैसे स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति रिपोर्ट (भोर समिति) भारत सरकार के सार्वजनिक स्वास्थ्य आयुक्त की वार्षिक रिपोर्ट आदि] में मिलते हैं। पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने सम्पूर्ण देश में पाई जाने वाली स्वास्थ्य विषयक परिस्थितियों का विवेचन किया है। कर्मचारी राज्य बीमा निगम की वार्षिक रिपोर्टों से भी श्रमिकों की बीमारी के कुछ आंकड़े प्राप्त होते हैं।

और समिति ने अपनी रिपोर्ट में कहा है कि भारत में औद्योगिक श्रमिकों के स्वास्थ्य सम्बन्धी आँकड़े प्राप्त करने की अभी तक कोई उचित व्यवस्था नहीं है। बहुत से कारखानों में तो औषधालय ही नहीं होते। यही कारण है कि सभी औद्योगिक श्रमिकों का कोई विश्वसनीय अभिलेख (Record) नहीं रखा जा सकता। इसके अतिरिक्त जिन औद्योगिक संस्थाओं में हस्पताल और औषधालय होते हैं उनसे भी पूरी सूचनायें नहीं मिल पातीं। उद्योगजनित बीमारियों (Industrial Diseases) से सम्बन्धित विवरण भी पूर्णतया प्राप्य नहीं होता है। केवल कुछ ही प्रगतिशील औद्योगिक संस्थाओं में बीमारी और अनुपस्थिति के आँकड़े एकत्रित किए जाते हैं। टाटा उद्योग के औद्योगिक स्वास्थ्य विभाग ने टाटा की मिलों के विभिन्न औषधालयों में हो रहे उपचार के आँकड़े प्रस्तुत किये हैं। अनुपस्थिति सम्बन्धी आँकड़ों को देखने से प्रतीत होता है कि बीमारी के कारण होने वाली अनुपस्थिति की प्रतिशत दर काफी अधिक है। (देखें पृष्ठ ६३) १६२८ में कुछ मिल उद्योग में यह प्रतिशत दर १२.२७ थी। १९५८-५९ में कर्मचारी राज्य बीमा निगम की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार वर्ष में १२,८७,००० बीमाकृत कर्मचारियों में से १०,८८,४६० श्रमिक बीमार हुए थे तथा बीमारी के लिए कुल ३,२४,६६,००० रु० नकद लाभ के रूप में दिये गए थे।

प्रो० बी० पी० अदारकर ने औद्योगिक श्रमिकों के लिए स्वास्थ्य बीमा पर अपनी रिपोर्ट देने के सम्बन्ध में जो आँकड़े एकत्रित किए थे उनसे पता चलता है कि बीमारी की अधिकतम दर १६ प्रतिशत प्रति श्रमिक प्रति वर्ष है। सन् १९४६ में प्रकाशित दो और रिपोर्टों में भी श्रमिकों की स्वास्थ्य-अवस्थाओं का वर्णन मिलता है। इनमें से एक रिपोर्ट तो स्वास्थ्य सर्वेक्षण समिति की है और दूसरी औद्योगिक श्रमिकों के स्वास्थ्य पर भारत सरकार को डा० टामस बेडफोर्ड द्वारा दी गई रिपोर्ट है। दोनों रिपोर्टों से यह पता चलता है कि औद्योगिक कर्मचारियों के रहने और काम करने की अवस्थायें वास्तव में संतोषजनक नहीं हैं। काम करने की दशाओं का अध्ययन करने पर यह ज्ञात हुआ है कि कुछ थोड़े ही कारखाने सुव्यवस्थित और आधुनिक ढंग से बने हुए हैं। अधिकतर कारखानों की रचना दोषपूर्ण है और उनमें श्रमिकों के आराम के लिए कोई व्यवस्था नहीं पाई जाती है। साधारणतया उनका तापक्रम अधिक होता है और नमी भी अधिक होती है। प्रकाश का प्रबन्ध भी ठीक से नहीं होता और धूल उड़ती रहती है। मशीनें के चारों ओर उठा-उठा कर चारों ओर गिरते हैं। इस प्रकार उद्योगजनित संकटों को कम करने की कोई व्यवस्था नहीं होती। दुर्घटना और बीमारी से सम्बन्धित आँकड़े तो यद्यपि पूर्णतया उपलब्ध नहीं हैं तथापि साधारणतया यही समझा जाता है कि पश्चिमी देशों की तुलना भारत में दुर्घटनाओं और बीमारी की दर अधिक है। डा० बेडफोर्ड ने इस बात पर भी बल दिया है कि कड़ी निरीक्षणों द्वारा निश्चित स्वास्थ्यप्रद दशा कायम और सुरक्षा नियमों के सभी को

१८

औद्योगिक श्रमिकों का स्वास्थ्य और उनकी कार्यकुशलता

(Health and Efficiency of Industrial Workers)

श्रमिकों के स्वास्थ्य की समस्या—

औद्योगिक श्रमिकों की स्वास्थ्य समस्या का दो पहलुओं से अध्ययन किया जा सकता है। प्रथम, स्वास्थ्य को हानि की दृष्टि से जो सभी नागरिकों के लिए स्वाभाविक है और द्वितीय व्यवसायजनित स्वास्थ्य संकट की दृष्टि से जिनका कुछ उद्योगों में औद्योगिक श्रमिकों के लिए भय रहता है। औद्योगिक श्रमिक भी एक नागरिक होता है, इसलिए अन्य नागरिकों के समान अवसर पर आने वाले स्वास्थ्य संकट उसको भी झेलने पड़ते हैं। नागरिक होने के नाते श्रमिक की आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्य स्वास्थ्य सेवाओं द्वारा जो समाज में सब के लिए उपलब्ध हैं होनी चाहिए। परन्तु औद्योगिक श्रमिक के रूप में उसके व्यवसायजनित संकट जिनका उसे भय रहता है उचित रीति से निर्मित औद्योगिक श्रम स्वास्थ्य सेवा द्वारा ही दूर किए जा सकते हैं। ऐसी सेवाएँ काम करने के स्थान के वातावरण से सम्बन्धित उन बातों की रोकथाम करने की व्यवस्था करती हैं जो श्रमिक के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालती हैं। (पृष्ठ ११२-१४ भी देखिए)

असन्तोषजनक स्वास्थ्य पर कुछ रिपोर्टें—

हमारे देश के लोगों का असन्तोषजनक स्वास्थ्य इस बात से विदित होता है कि यहाँ के जीवन की औसत आयु अपेक्षाकृत कम है। अनुमान किया गया है कि भारत में यह औसत आयु केवल ३२ वर्ष रही है यद्यपि हाल ही के कुछ वर्षों में औसत आयु का अनुमान ४० वर्ष लगाया गया है। यह आयु आस्ट्रेलिया में ६६ वर्ष, इंग्लैंड और वेल्स में ६८ वर्ष, जर्मनी में ६० वर्ष और जापान में ४२ वर्ष है। भारत में यद्यपि श्रमिकों के स्वास्थ्य सम्बन्धी आँकड़े पूर्णतया उपलब्ध नहीं हैं तथापि सामान्य स्वास्थ्य की दशाओं के विवरण भारत के अनेकात्मक प्रकाशनों [जैसे स्वास्थ्य सर्वेक्षण और विकास समिति रिपोर्ट (भोर समिति) भारत सरकार के सार्वजनिक स्वास्थ्य आयुक्त की वार्षिक रिपोर्ट आदि] में मिलते हैं। पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने सम्पूर्ण देश में पाई जाने वाली स्वास्थ्य विषयक परिस्थितियों का विवेचन किया है। कर्मचारी राज्य बीमा निगम की वार्षिक रिपोर्टों से भी श्रमिकों की बीमारी के कुछ आँकड़े प्राप्त होते हैं।

की परिस्थितियों का सम्बन्ध है दोनों ही रिपोर्टों ने औद्योगिक क्षेत्रों में फैली हुई अस्वच्छता और भीड़ भाड़ तथा श्रमिकों के अपर्याप्त पोषण की ओर ध्यान आकर्षित किया है।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने इस बात पर विशेष बल दिया था कि औद्योगिक श्रमिक के काम करने की दशाएं ऐसी होनी चाहिएं जिनसे श्रमिकों के स्वास्थ्य की भी रक्षा हो और व्यवसायजनित संकटों से भी उनका बचाव हो सके। इस आवश्यकता की पूर्ति के निमित्त आयोजना आयोग ने अन्य बातों के साथ-साथ निम्नलिखित सिफारिशें की थी (१) औद्योगिक स्वास्थ्य सुरक्षा और कल्याण के लिए एक राष्ट्रीय संग्रहालय की स्थापना (२) फैक्ट्री के निरीक्षण मण्डल में पूर्ण कालिक चिकित्सा निरीक्षकों की नियुक्ति (३) फैक्ट्रियों में वर्तमान डाक्टरों और चिकित्सा निरीक्षकों के लिए औद्योगिक स्वास्थ्य सम्बन्धी छोटे-छोटे शिक्षा पाठ्य क्रम की व्यवस्था (४) व्यवसायजनित बीमारियों अन्य स्वास्थ्य समस्याओं तथा औद्योगिक प्रतिक्रियाओं के सम्भाव्य (Potential) संकटों को आंकने और उनका मूल्यांकन करने के उद्देश्य को दृष्टिकोण में रखकर सूचना प्राप्त करने के हेतु अनुसन्धानों और सर्वेक्षणों का आयोजन। आयोजना आयोग ने सम्पूर्ण देश की स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य परिस्थितियों की विवेचना करते हुए यह बताया है कि स्वास्थ्य की दशा अत्यन्त शोचनीय है और स्वास्थ्य उन्नति का सम्पूर्ण कार्य-क्रम समाज सुधार की विस्तृत योजनाओं से सम्बद्ध है।

खानों और बागान में श्रमिकों का स्वास्थ्य —

कोयले की खानों में श्रमिकों के अस्वास्थ्योपजनक स्वास्थ्य के महत्वपूर्ण कारणों में मलेरिया सबसे बड़ा कारण है। काम करने की अस्वास्थ्योपजनक परिस्थितियों का भी स्वास्थ्य पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अनेक खानों में वायु में नमी होती है और जहां पर सुरंगे उड़ाई जाती हैं वहां की हवा में धूआं भर जाता है। बड़ी-बड़ी कोयले की खानों में आंखों की बीमारियां विशेषतः रात का अन्धापन कर्मचारियों में बहुधा पाया जाता है। दमा और निमोनिया जैसी बीमारियां भी देखने में आती हैं। मलत्याग के नीचे जल मल निकास की व्यवस्था के अभाव में अंकुश कृमि (Hookworm) की बीमारी भी देखने में आती है। खानों के क्षेत्रों में केन्द्रीय अस्पताल प्रसूति तथा शिशु कल्याण केन्द्रों तथा औषधालयों की स्थापना की जा चुकी है। (देखो पृष्ठ ३००–३०१)

डा० ई० लायड जोन्स द्वारा असम बंगाल और दक्षिण भारत के चाय बागान में की गई सन् १९४७ की पूछताछ से बागान कर्मचारियों के स्वास्थ्य सम्बन्धी कुछ आंकड़े उपलब्ध होते हैं। डा० जोन्स ने अनुभव किया कि असम में श्रमिकों के स्वास्थ्य की दशा बड़ी शोचनीय है और उनमें से अधिकांश अपर्याप्त पोषण व सामान्य दुर्बलता और जीवन-शक्ति के अभाव से पीड़ित हैं। लोगों के आहार की कुछ अच्छी दशा होने के कारण बंगाल में स्वास्थ्य की दशा असम की अपेक्षा कहीं अधिक अच्छी

गों के दिन का मुल्यांकन । कुछ उद्योगों जैसे लोहा उद्योग, इंजीनियरिंग और कपड़ा उद्योग में इतना अधिक शोरगुल होता है कि अन्त में श्रमिकों की कार्यकुशलता और उनके सुनने की शक्ति पर बुरा प्रभाव पड़ता है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियों में पहले शोरगुल के मध्य और उसके बाद शान्त वातावरण में काम करते हुए अनेक श्रमिकों की जूट के कारखानों में डाक्टरी परीक्षा की गई। प्रारम्भिक परिणामों से यह सिद्ध होता है कि शोरगुल जब कम होता है तब कार्यकुशलता में लगभग २·१८ प्रतिशत वृद्धि हो जाती है। कलकत्ता के निकट टाटा जूट कम्पनी में दुर्घटनाओं के कारण बीमार होने से अनुपस्थिति के विषय में भी अनुसंधान किए जा रहे हैं। अन्य महत्त्वपूर्ण अनुसंधान जो किए गए हैं उनका सम्बन्ध कागज और कपड़ा मिलों के श्रमिकों की क्लान्ति (Fatigue) तथा कार्यकुशलता से है। इसके अतिरिक्त यातायात की दुर्घटनाओं और कलकत्ता के बस तथा ट्राम चालकों का दुर्घटनाओं के रोहजान (Proneness) से सम्बन्धित अनुसंधान भी हुए हैं। यौन सम्बन्धी रोगों से पीड़ित रोगियों का भी सर्वेक्षण किया गया था। इससे यह स्पष्ट हो गया कि विलग होकर परिवारों से अलग रहने के कारण इस प्रकार की बीमारियाँ श्रमिकों में बहुत पाई जाती थीं। जूट के कारखानों में महिला श्रमिकों के विषय में यह देखा गया कि उनमें ११ प्रतिशत गर्भ गिर जाते थे।

इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने औद्योगिक स्वास्थ्य में प्रशिक्षण देने के हेतु सुविधायें प्रदान की हैं। औद्योगिक श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा से सम्बन्धित एक पत्रिका का नियमित रूप से प्रकाशन हो रहा है। जो भी चिकित्सक या चिकित्सा से सम्बन्धित कर्मचारी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इन उद्योगों से सम्बन्धित हैं उनके प्रशिक्षण के हेतु कलकत्ता में अखिल भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान तथा सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थान (All India Institute of Public Health) में एक विशेष औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान पाठ्यक्रम का आयोजन किया गया है। कारखानों के मुख्य सलाहकार ने राज्य के कारखानों के निरीक्षकों को औद्योगिक स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधायें भी प्रदान की हैं। अनेक प्रदेशों में चिकित्सा निरीक्षकों की नियुक्ति की गई है। श्रमिकों व मालिकों में सुरक्षा सम्बन्धी विचारों को उत्पन्न करने के लिए एक स्वास्थ्य इकाई व सुरक्षा परिषद की भी स्थापना बम्बई में की गई है। राज्य के कारखानों में श्रमिकों के काम करने की परिस्थितियों और उनके सामान्य स्वास्थ्य में अनुसंधान और सुधार करने के उद्देश्य को दृष्टि में रखकर उत्तर प्रदेश की सरकार ने एक औद्योगिक स्वास्थ्य संगठन की स्थापना की है। इसके अतिरिक्त भारत सरकार की एक प्रार्थना के प्रत्युत्तर में अमरीका की सरकार ने तकनीकी सहयोग कार्यक्रम (Technical Cooperation Programme) के अन्तर्गत एक औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान संघ की भी सेवायें उपलब्ध कर दी हैं। कुछ उद्योगों में स्वास्थ्य संकट और व्यवसायजनित रोगों के प्रश्न पर भी विशेषज्ञों के रूप में अनुसंधान कार्य किया है। मैसूर में कोलार की खानों और अभ्रक की खानों के क्षेत्रों का पहले ही सर्वेक्षण

किया जा चुका था और उनकी रिपोर्टों में दी गई सिफारिशें विचाराधीन हैं। सरकार ने एक औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान संगठन की भी स्थापना की है जिसने अनेक संकट-मय व्यवसायों के सर्वेक्षण किए हैं। इसके अतिरिक्त एक केन्द्रीय स्वास्थ्य शिक्षा ब्यूरो भी है जिसका कार्य स्वास्थ्य प्रचार और स्वास्थ्य शिक्षा कार्य में समन्वित है। ऐसे ब्यूरो की स्थापना राज्यों में भी की जा रही है। बम्बई में एक केन्द्रीय श्रम संस्थान (Central Labour Institute) की स्थापना की जा रही है। इसमें औद्योगिक स्वास्थ्य सुरक्षा तथा कल्याण का राष्ट्रीय संग्रहालय, औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान प्रयोगशाला, प्रशिक्षण केन्द्र तथा पुस्तकालय तथा सूचना केन्द्र आदि भी सम्मिलित हैं। कानपुर, कलकत्ता और कोलार में भी तीन प्रादेशिक संग्रहालयों की स्थापना की जा रही है।

एक भारतीय औद्योगिक चिकित्सा संहिता को मुख्य रूप से निर्धारित करने और बनाने के ऊपर भी विशेष ध्यान दिया जा रहा है। (देखिए पृष्ठ ११४)। संयुक्त राज्य अमरीका के विशेषज्ञों की सहायता से इस बात का पता लगाने के लिए कि श्रमिकों में गर्मी को सहन करने की क्षमता, गर्मी की प्रबलता का प्रभाव और वायु में नमी का उनके स्वास्थ्य तथा उनकी कार्यकुशलता पर क्या प्रभाव पड़ता है एक अध्ययन किया गया है। इस अध्ययन में उद्योग के श्रम वातावरण और कार्य से सम्बन्धित विषय को निर्धारित करने की बातों को लिया गया है। इस प्रकार का अध्ययन अहमदाबाद की ६ कपड़ा मिलों में किया जा रहा है। जून १९५८ में डा० ए० एल० मुदालियर की अध्यक्षता में एक स्वास्थ्य सर्वेक्षण व आयोजना समिति की स्थापना की गई है। इस समिति का कार्य स्वास्थ्य कार्यक्रम व चिकित्सा सुविधाओं का अवलोकन करना तथा सिफारिशें करना है।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अनुसार स्वास्थ्य कार्यक्रमों का उद्देश्य यह है कि वर्तमान स्वास्थ्य सेवाओं में विस्तार किया जाय ताकि सभी लोग इन सेवाओं से लाभ उठा सकें और राष्ट्रीय स्वास्थ्य के स्तर में भी प्रगतिशील सुधार हो। इसके विशिष्ट उद्देश्य निम्नलिखित हैं : (१) अस्पताल आदि जैसी संस्थाओं की स्थापना (२) मनुष्यों की श्रम शक्ति का विकास और प्रशिक्षित व्यक्तियों को रोजगार पर लगाना (३) संक्रामक बीमारियों की रोकथाम के लिए व्यवस्था करना (४) वातावरण अनुकूल स्वास्थ्य विज्ञान आन्दोलन और (५) परिवार नियोजन तथा अन्य सम्बन्धित सहायता। द्वितीय आयोजन काल में स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर २७५ करोड़ रुपए व्यय करने की व्यवस्था थी। प्रथम आयोजना में यह राशि १४० करोड़ रुपये था।

तीसरी आयोजना में स्वास्थ्य और परिवार नियोजन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य स्वास्थ्य सेवाओं का विस्तार करना है और जनता के स्वास्थ्य में धीरे धीरे सुधार करना है। निरोधात्मक तथा स्वास्थ्य सेवाओं पर विशेष जोर दिया जायगा। दूसरी आयोजना की तरह तीसरी आयोजना में पानी के बाहर की व्यवस्था, स्वच्छता प्रयोग और रहने तथा व्यवस्था को उन्नति, संक्रामक रोगों के नियन्त्रण, स्वास्थ्य सेवाओं को अ-

बस्ता के लिए संस्थाओं द्वारा दी जाने वाली सुविधा का संगठन और स्वास्थ्य और चिकित्सा सम्बन्धी कर्मचारियों के प्रशिक्षण और जच्चा-बच्चा के स्वास्थ्य की देखभाल स्वास्थ्य शिक्षा और पौष्टिक आहार जैसी सेवाओं की व्यवस्था के लिए विशेष कार्यक्रम बनाए गए हैं। तृतीय आयोजना में परिवार नियोजन को भी विशेष प्राथमिकता दी गई है। तृतीय आयोजना काल में स्वास्थ्य कार्यक्रमों पर ३४२ करोड़ रुपये खर्च किये जायेंगे।

सुझाव :—

सरकार के यह प्रयत्न वास्तव में प्रशंसनीय हैं। और समिति के कथन के अनुसार स्वास्थ्य का अर्थ यह नहीं है कि किसी व्यक्ति को कोई रोग नहीं है या वह बीमार नहीं है वरन् उसका तात्पर्य उस स्थिति से है जिसमें शरीर और मस्तिष्क एक साथ सुचारु रूप से कार्य करते रहें, ताकि मनुष्य अपने भौतिक व सामाजिक जीवन में पूर्ण लाभ और आनन्द उठा सकें और उत्पादन क्षमता के अधिकतम बिन्दु तक पहुँच सकें। बीमारी की रोकथाम व स्वास्थ्य का बने रहना अधिकतर उस वातावरण पर निर्भर करता है जिसमें मनुष्य पैदा होते हैं पढ़ते लिखते हैं खाते-पीते हैं, चलते फिरते हैं काम करते हैं और आराम करते हैं। इसलिए जब तक जीवन स्तर में सुधार नहीं होता और रहन-सहन की समुचित व्यवस्था नहीं की जाती तब तक औद्योगिक श्रमिक के स्वास्थ्य में सुधार करना सम्भव नहीं है। अपर्याप्त भोजन और रहने की गन्दी अवस्थायें ही शोचनीय स्वास्थ्य का मुख्य कारण हैं और सर्वप्रथम इन्हीं को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए। केवल कानूनी सुविधाओं में सुधार करना ही पर्याप्त नहीं है।

व्यवसायजनित रोग (Occupational Diseases)—

जहाँ तक व्यवसायजनित रोगों का सम्बन्ध है, उसका श्रमिकों को क्षतिपूर्ति के अन्तर्गत पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। जैसा कि बताया जा चुका है मालिक व्यवसायजनित रोगों की रिपोर्ट नहीं देते और अनेक बार जबकि श्रमिकों को क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिये उन्हें क्षतिपूर्ति नहीं दी जाती क्योंकि इस बात की उचित रूप से जाँच नहीं हो पाती कि किसी मृत्यु या असमर्थता का कारण व्यवसायजनित बीमारी ही है। सन् १९४८ में फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत फैक्ट्री के प्रबन्धकों के लिये यह बात अनिवार्य कर दी गई है कि यदि उनका कोई कर्मचारी किसी व्यवसायजनित रोग से ग्रस्त हो जाता है तो उसकी सूचना दें। चिकित्सकों के लिये भी यह अनिवार्य है कि यदि कोई ऐसा रोगी उनके पास इलाज के लिये आता है तो उसकी सूचना मुख्य निरीक्षक को दें। इस कानूनी व्यवस्था से अब व्यवसायजनित रोगों के सम्बन्ध में ठीक प्रकार से रिपोर्ट होने लगेगी। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है भारतीय अनुसंधान निधि परिषद् के औद्योगिक स्वास्थ्य अनुसंधान विभाग ने व्यवसायजनित रोगों के विशेषतया छापाखानों में सीसे और औद्योगिक गर्दें से उत्पन्न हुई सिलीकोसिस के कारण बीमारियों के, सम्बन्ध में सर्वेक्षण किए हैं। बम्बई में इस प्रदेश के

लिये एक अनुसंधानशाला की पहले ही स्थापना की जा चुकी है। अखिल भारतीय स्वास्थ्य विज्ञान और सार्वजनिक स्वास्थ्य संस्थान ने भी एक पुस्तक तैयार की है जिसका नाम 'भारत में व्यावसायिक स्वास्थ्य अनुसंधान सर्वेक्षण' है। इसमें अनेक अन्वेषणों और खोजों का सारांश दिया गया है। सरकार ने व्यवसायजनित रोगों की सूची को दोहराने और उसमें वृद्धि करने का परामर्श देने के लिये १२ सदस्यों की एक तकनीकी समिति नियुक्त की है। फैक्ट्रियों के प्रधान सलाहकार का कार्यालय कुछ विशिष्ट उद्योगों में व्यवसायजनित स्वास्थ्य संकट निर्धारित करने के लिए सर्वेक्षण का कार्य करता है। इसके द्वारा दी गई रिपोर्ट भी जारी की गई है। व्यवसायजनित रोग औद्योगिक श्रमिकों के गिरे हुए स्वास्थ्य के महत्त्वपूर्ण कारण हैं। इनके लिए श्रमिकों को पर्याप्त क्षतिपूर्ति मिलनी चाहिये। जो श्रमिक इस प्रकार के रोगों से ग्रस्त हो जाते हैं उन्हें निःशुल्क चिकित्सा की सुविधायें देने की भी व्यवस्था होनी चाहिये।

जहाँ तक शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं और उनके महत्त्व का सम्बन्ध है उनकी पुस्तक भाग के अध्याय-पृष्ठ ११२–११८ में विवेचना की गई है। औद्योगिक दुर्घटनाओं और उनको रोकने की व्यवस्था का उल्लेख भाग की समस्याओं के अन्तर्गत पृष्ठ ४३०–४४० पर किया गया है।

श्रमिक की कार्यकुशलता (Efficiency of Labour) और उसका माप—

श्रमिक की कार्यकुशलता से हमारा अभिप्राय काम के उस स्तर और मात्रा को व्यक्त करता है, जो किसी निर्धारित अवधि में कोई श्रमिक करता है। दूसरे शब्दों में कार्य-कुशलता शब्द का तात्पर्य किसी निर्धारित अवधि में किसी श्रमिक के अधिक और अच्छा कार्य करने की क्षमता से है। इसलिए उत्पादन के किसी भी उपादान की कार्यकुशलता का उत्पादित धन की कुल मात्रा पर बहुत प्रभाव पड़ता है। लेकिन यह बात विशेष ध्यातव्य है कि कार्यकुशलता एक सापेक्ष शब्द है। इसका किसी समय में उत्पादन के उपादान द्वारा किए गए कार्य की मात्रा और स्तर से ही सम्बन्ध नहीं है अपितु इस का अर्थ यह भी है कि काम लेने वाला को उस उपादान की जो लागत पड़ती है उसकी तुलना में कितना कार्य होता है। यदि इस शब्द का निरपेक्ष आर्थिक अर्थ में तो निर्धारित समय में किसी अन्य श्रमिक की अपेक्षा यदि एक श्रमिक अच्छा और अधिक काम करता है तो वह अधिक कार्यकुशल है। लेकिन यदि पहला श्रमिक बहुत अधिक मजदूरी मांगता है, जिसका भुगतान करना मालिक के लिए लाभदायक नहीं है तो ऐसी परिस्थिति में मालिक के दृष्टिकोण से पहला श्रमिक उतना कार्यकुशल नहीं होगा जितना कि दूसरा श्रमिक जो कि कम मजदूरी मांगता है। तकनीकी निरपेक्ष दृष्टिकोण से जब हम कार्यकुशलता के विषय में बात करते हैं तो हम कार्य की मात्रा, प्रकृति और गुण और कितने समय में कार्य हुआ आदि बातें देखते हैं और आर्थिक दृष्टिकोण से हम यह भी देखते हैं कि श्रमिक द्वारा मांगी गई मजदूरी कितनी है।

श्रमिक की कार्यकुशलता पर प्रभाव डालने वाले तत्व:–

कार्यकुशलता श्रमिक के स्वास्थ्य और शक्ति तथा उसके प्रशिक्षण पर मूलतः निर्भर होती है। परन्तु श्रमिक के स्वास्थ्य और शक्ति पर प्रभाव डालने वाले बहुत से तत्व होते हैं।

पहला तत्व तो वंशानुगत गुण है। पैतृक प्रभावों की सुगमता से व्याख्या करना सरल नहीं है, परन्तु इनका कार्यकुशलता पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। प्रत्येक समाज में कुछ ऐसी जातियां होती हैं, जिनके सदस्य किसी विशेष काम को करने में अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक दक्ष होते हैं। उदाहरणतः पठान श्रमिक उत्तर प्रदेश अथवा बंगाल के श्रमिकों की अपेक्षा अधिक बलवान होते हैं। यह बात उनकी शिक्षा, प्रशिक्षण या अन्य सुविधाओं में किसी प्रकार के अन्तर के कारण नहीं है अपितु पैतृक गुणों के कारण है। कभी-कभी जुलाहों या बढ़इयों के लड़के ऐसी योग्यता प्राप्त कर लेते हैं, जो साधारणतया दूसरों में नहीं पायी जाती। दूसरा तत्व जलवायु का है। गर्म और नम जलवायु शारीरिक बल और शक्ति के विकास के लिए उपयुक्त नहीं है जबकि ठण्डी और शुष्क जलवायु का मनुष्य के स्वास्थ्य पर लाभदायक प्रभाव पड़ता है। गर्म देशों की जलवायु का शारीरिक शक्तियों पर कोई अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता। साथ ही जहाँ कहीं गर्मी के साथ नमी का संयोग हो जाता है तो वह प्रदेश बहुत अस्वास्थ्यकर हो जाता है। जहाँ तक शारीरिक कार्य-कुशलता पर प्रभाव का सम्बन्ध है, गर्म देश की जलवायु की अपेक्षा समशीतोष्ण (Temperate) जलवायु निश्चय ही अच्छी है। परन्तु केवल जलवायु का ही श्रमिक की कार्यकुशलता पर प्रभाव नहीं पड़ता कुछ अन्य बातें भी हैं जिनसे जलवायु के अप्रिय प्रभाव दूर हो सकते हैं। इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक विधि के द्वारा भी जलवायु के प्रभाव को दूर किया जा सकता है।

एक और महत्वपूर्ण तत्व जिसका कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है, जीवन स्तर है। पर्याप्त भोजन अच्छे आवासों की व्यवस्था पर्याप्त वस्त्र आराम और विलासिता की वस्तुएँ आदि भी व्यक्ति के स्वास्थ्य पर अच्छा प्रभाव डालती हैं और इनसे उसकी कार्यकुशलता में भी वृद्धि हो जाती है। किसी मनुष्य को यदि यह वस्तुयें प्राप्त नहीं हैं तो वह काम में अपना मन नहीं लगा पाता और उसके काम करते रहने की क्षमता का ह्रास हो जाता है। एक और तत्व जिसका कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है वह श्रमिकों की मजदूरी है। मजदूरी का केवल रहन-सहन के स्तर पर ही प्रभाव नहीं पड़ता बल्कि इसकी श्रमिक के अधिक या कम काम करने की योग्यता पर भी मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रिया होती है। अच्छी मजदूरी पाने वाला श्रमिक सामान्यतया अपने जीवन से सन्तुष्ट होता है और इसीलिए वह मन लगाकर भली भाँति काम करता है विशेषकर उस दशा में जबकि उसे शीघ्र और नियमित रूप से मजदूरी मिलती है। मानसिक दृष्टिकोण से भी मालिक के लिए श्रमिक की कार्यकुशलता उसकी मजदूरी पर भी निर्भर करती है।

इसके अतिरिक्त सामान्य और तकनीकी, दोनों प्रकार की शिक्षा का भी कार्यकुशलता पर प्रभाव पड़ता है। शिक्षा के बिना न तो मनुष्य निखर पाता है और न अपने वातावरण के प्रति उसमें रुचि उत्पन्न हो पाती है। इस बात में तनिक भी संदेह नहीं है कि शिक्षित श्रमिक अपेक्षाकृत अधिक बुद्धिमान होता है और अपने उत्तरदायित्व को अशिक्षित श्रमिकों की अपेक्षा अधिक अच्छी तरह समझता है। तकनीकी प्रशिक्षण पाये हुये कर्मचारी निश्चय ही अधिक कार्यकुशल होते हैं। काम करने की परिस्थितियों का भी कार्यकुशलता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। प्रकाश की समुचित व्यवस्था, संवातन, स्वच्छता, भवन की कलात्मक आकृति, शान्त और सुन्दर वातावरण आदि का भी मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है और अच्छे वातावरण में ही मनुष्य दत्तचित होकर अपने काम में मन लगाकर उत्पादन में वृद्धि कर सकता है। कार्यकुशलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि काम करने के घण्टे कितने हैं। यदि कार्य के घण्टे लम्बे हों और उनमें विराम या विश्राम या मनोरंजन के समय की व्यवस्था न हो तो कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि कार्य दिवस कम समय का निश्चित किया जाता है और काम समय में बीच बीच में अल्प विराम दे दिये जाते हैं तो श्रमिक अपना कार्य और अच्छी प्रकार कर सकता है।

पारिवारिक जीवन का भी श्रमिक की कार्यकुशलता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। घर के जिस वातावरण में व्यक्ति का लालन-पालन होता है और जिस पारिवारिक जीवन को व्यक्ति को अपनाना पड़ता है उसका भी श्रमिक पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव होता है। इसका कारण यह है कि घर में ही व्यक्ति को शांति मिलती है और वह श्रमिक अच्छा काम करने के लिए अपनी शक्तियों को पुनः अर्जित कर लेता है। बच्चे पर माता का भी अधिक प्रभाव होता है। इसके अतिरिक्त कई ऐसे अप्रिय दिनों के लिए गृह कलह भी व्यक्ति के दृष्टिकोण को विकृत कर देते हैं और उसकी कार्यकुशलता अपेक्षाकृत घट जाती है। जीवन के प्रति व्यक्ति के सामान्य दृष्टिकोण की भी कार्य की मात्रा पर बड़ी प्रभावशाली प्रतिक्रिया होती है। कुछ लोग आरम्भ से ही भाग्यवादी होते हैं। वे यह समझते हैं कि उनके कारण कुछ नहीं होता। जो कुछ होता है, वह भाग्य से ही होता है। वे अपने प्रयत्नों से अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त करने की स्वयं कभी चेष्टा नहीं करते। इस प्रकार के दृष्टिकोण से व्यक्ति में उन्नति करने की भावना कभी उत्पन्न नहीं हो पाती। धर्म को गलत प्रकार से समझने का भी इस प्रवृत्ति से घनिष्ठ सम्बन्ध है। लेकिन सामाजिक और राजनैतिक तत्त्व भी जीवन के प्रति इस उदासीनता के लिए उत्तरदायी हैं। उदाहरण के लिए देश की जातीयता, सामाजिक मर्यादायें और राजनैतिक दासता आदि भी बहुत समय तक भारत में श्रमिकवर्ग लोगों के दृष्टिकोण को विस्तृत करने के अनुकूल नहीं थी।

इसके अतिरिक्त किसी व्यक्ति की कार्यकुशलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उस व्यक्ति की कार्य करने में रुचि या इच्छा है या नहीं। अथवा वह

जीवन में तथा रोजगार में उन्नति करने की आशा कर सकता है या नहीं तथा उसे स्वतन्त्र रूप से कार्य करने में कोई बाधा तो नहीं है। स्वतन्त्र व्यक्ति की तुलना में परतन्त्र व्यक्ति कभी अधिक कार्यकुशल नहीं हो सकता। इसके अतिरिक्त श्रमिक का चरित्र ईमानदारी नियमितता आत्मविश्वास आत्मसम्मान कठिन परिश्रम की आदत तथा अन्य नैतिक गुणों से भी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। हीन बुद्धि वाले श्रमिक की अपेक्षा बुद्धिमान श्रमिक कहीं अधिक कार्यकुशल होता है। एक अन्य महत्व पूर्ण तत्व जिसका श्रमिक की कार्यकुशलता पर बड़ा प्रभाव पड़ता है उद्योग का संगठन और उसके कार्य की सामग्री है। किसी श्रमिक को उसी काम पर लगाना चाहिये जिसके लिए वह उपयुक्त है। इसके साथ ही साथ उसे काम के लिए सही प्रकार की मशीन और उपकरण दिए जाने चाहियें। एक कम बुद्धिमान उत्पादन कर्ता जो पुरानी मशीन और रद्दी सामान का प्रयोग करता है कभी उत्तम श्रेणी का उत्पादन नहीं कर सकता। इस प्रकार श्रमिक की कार्य कुशलता प्रबन्धक की योग्यता और बुद्धि तथा कार्यान्वयन और मशीन व्यवस्था की आधुनिक तकनीकी पद्धति अपनाने पर भी निर्भर होती है। मजदूरी वितरित करने की प्रणाली आदि जैसे परिमाण के अनुसार मजदूरी देने की विधि से भी कार्यकुशलता में वृद्धि होती है। इसके अतिरिक्त श्रमिक संगठन से भी श्रमिकों की कार्यकुशलता में उन्नति होती है। जब श्रमिक उचित रूप से श्रमिक संघ में संगठित होता है तब उसे स्वयं में अधिक आत्मविश्वास हो जाता है और उसमें अधिक काम करने की क्षमता उत्पन्न हो जाती है। कल्याण कार्य भी आमोद प्रमोद और मनोरंजन की व्यवस्था करके श्रमिकों की कार्यकुशलता पर बड़ा प्रभाव डालते हैं जिससे वे अपनी शक्तियां पुनः अर्जित कर लेते हैं।

इस प्रकार श्रमिक की कार्यकुशलता अनेक परिस्थितियों पर निर्भर होती है और यह कहना बड़ा ही कठिन है कि किसी एक देश के श्रमिक किसी अन्य देश के श्रमिकों की तुलना में अधिक कार्यकुशल हैं या नहीं। किसी सामान्य निष्कर्ष पर पहुँचने से पहले हमें इन सभी तत्वों को ध्यान में रखना चाहिए।

कार्यकुशल श्रमिकों के लाभ —

यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि किसी देश की कार्यकुशल श्रम-शक्ति उस देश के लिए बहुत बड़ा वरदान होती है और देश के आर्थिक जीवन में उन्नति करने के लिए और देश के आर्थिक विकास के लिए भी यह एक शक्तिशाली उपकरण है। कार्यकुशल श्रमिकों के लिए अधिक पर्यवेक्षण की आवश्यकता नहीं होती। न तो वे अधिक सामग्री नष्ट करते हैं और न ही मशीनों को कोई हानि पहुँचाते हैं। वे अपना काम बड़ी चतुरता से करते हैं और उनके कार्य से दक्षता और उत्तरदायित्व का बोध होता है। इस प्रकार वे उद्योग में स्वदेशानुरागी रुचि लेने में समर्थ हो जाते हैं। जब चारों ओर मैत्रीपूर्ण सहयोग का वातावरण होता है तो देश के उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि हो जाती है।

भारतीय श्रमिकों की कार्यकुशलता—

भारतीय श्रमिक अन्य देशों के श्रमिकों की अपेक्षा सामान्यतया कम कार्यकुशल समझा जाता है। यदि इस बात से हम यह अर्थ लें कि यूरोपियन श्रमिक भारतीय श्रमिक से किसी निर्धारित समय में अधिक उत्पादन करने में समर्थ होता है तो इस प्रकार के वक्तव्य का विरोध करना सम्भव नहीं है। टैरिफ बोर्ड ने सन् १९२७ में यह कहा था कि भारत में प्रत्येक श्रमिक केवल १८० तकुओं की देखभाल करता था जबकि यह संख्या जापान में २४० इंगलैंड में ५४० से ६०० तक और अमेरिका में ११२० थी। एक बुनकर जितने करघों पर काम करता है उन करघों की संख्या औसत रूप से जापान में २॥ इंगलैंड में ४ से ६ तक और संयुक्तराज्य में ६ थी जबकि भारत में यही संख्या साधारणतया लगभग २ थी। कानपुर श्रम जांच समिति ने भी कहा था कि जापान में प्रत्येक एक हजार तकुओं के लिए ५.१ श्रमिक हैं जबकि भारत में १५ हैं। इसका तात्पर्य यह है कि भारत में एक श्रमिक कताई के काम के एक ओर ही ध्यान देता है जबकि जापान में एक लड़की श्रमिक तीनों ओर ध्यान देती है। जापान में एक लड़की बुनकर ६ करघों की देखभाल करती है जबकि हमारे यहां का बुनकर लगभग दो करघों की ही देखभाल करता है। सर अलेक्जेंडर मैकरावर्ट ने औद्योगिक आयोग के समक्ष यह कहा था कि प्रत्येक श्रमिक भारतीय श्रमिक की अपेक्षा ३.५ या चार गुना अधिक कार्यकुशल है। मर क्लेमेन्ट सिम्पसन की गणना के अनुसार भारतीय कपास की कताई व बुनाई मिल के २.६७ श्रमिक लंकाशायर की मिल के एक श्रमिक के समान हैं।

परन्तु इस प्रकार के विवरण से यह स्पष्ट नहीं हो सकता कि भारतीय श्रमिकों में कोई सहज स्वाभाविक हीनता है। भारत में प्रत्येक मशीन पर अधिक श्रमिक इस लिए लगाए जाते हैं कि श्रमिक सस्ते हैं और मशीनें महंगी हैं। इंग्लैंड में मजदूरी अपेक्षाकृत अधिक है और इसलिए श्रम की बचत करना आवश्यक हो जाता है। भारत में प्रत्येक श्रमिक द्वारा कम उत्पादन होने का कारण केवल श्रमिकों की कम कार्यकुशलता पर ही पूर्णतया लागू नहीं किया जा सकता। प्रबन्ध की अकुशलता, कच्चे माल की घटिया किस्म, अच्छी मशीनों का अभाव और उत्पादन किया में आधुनिक तकनीक को न अपनाने के कारण ही उत्पादन कम होता है। इसके अतिरिक्त भारत में काम करने के घण्टे अधिक और मजदूरी कम है साथ ही आवास की परिस्थितियां भी शोचनीय हैं। अतः विभिन्न देशों के श्रमिकों की कार्यक्षमता की तुलना करते समय हम भारतीय श्रमिकों की अकुशलता के सम्बन्ध में बिना सोचे समझे कोई निर्णय नहीं दे सकते।

लेकिन वर्तमान समय में जो परिस्थितियां हैं उनसे यह विदित होता है कि भारतीय श्रमिक इतना कार्यकुशल नहीं है जितना उसे होना चाहिए। बहुत से ऐसे कारण हैं जिन्होंने हमारे श्रमिकों को अकुशल बना दिया है और इन्हीं कारणों के प्रसंग में हमें यह देखना है कि श्रमिकों की अकुशलता वास्तविक है या श्रमिकों द्वारा बता

बढ़ा कर नहीं जाती है क्योंकि मालिक अकुशलता की दुहाई देकर मजदूरी कम देने का एक बहाना बना लेते हैं।

भारतीय श्रमिक की अकुशलता के कारण —

प्रथम तो हमारे देश की जलवायु कुशल कार्य के अनुकूल नहीं है। भारतीय जलवायु गर्म है और कठोर तथा सुस्थिर कार्य करने के लिए इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ता है विशेषतया गर्मी की ऋतु मे घन्टों बैठकर निरन्तर काम करना सम्भव नहीं हो पाता। लेकिन जैसा कि संकेत किया जा चुका है, कारखाने मे तापक्रम को नियन्त्रित करके जलवायु की परिस्थितियों पर नियन्त्रण हो सकता है और कठोर परिश्रम के लिये उपयुक्त वातावरण का निर्माण किया जा सकता है। कार्य की दशाओं के अन्तर्गत यह उल्लेख किया गया है कि मालिक तापमान पर नियन्त्रण रखने की ओर बहुत ही कम ध्यान देते हैं। इसलिए कठोर और निरन्तर कार्य श्रमिक के लिए बड़ा कठिन हो जाता है और वह अपनी थकान मिटाने के लिए कुछ न कुछ समय व्यर्थ नष्ट करता है।

इसके अतिरिक्त जैसा कि विस्तारक सुविधाओं के अन्तर्गत उल्लेख किया जा चुका है भारतीय श्रमिक में अशिक्षितता अधिक पाई जाती है। इसके अतिरिक्त उसे मशीनों का दक्षतापूर्वक संचालन करने के लिए समुचित प्रशिक्षण भी नहीं दिया जाता। रॉयल श्रम आयोग और मिस्टर हैराल्ड बटलर ने इस विषय में अपने विचार जोरदार शब्दों में व्यक्त किए हैं (देखिए पृष्ठ ११६–११८)। काम में उचित प्रशिक्षण प्राप्त करने के लिए श्रमिकों को न तो समय और न ही संस्थानों में सुअवसर प्राप्त हो पाते हैं। इसलिए यह कहना नितान्त अनुचित है कि औसत भारतीय श्रमिक ब्रिटेन के औसत श्रमिक की अपेक्षा कम बुद्धिमान है। वास्तविकता यह है कि श्रमिक की मानसिक शक्तियाँ प्रशिक्षण के अभाव मे विकसित नहीं हो पाती हैं।

कम मजदूरी और निम्न कोटि का जीवन स्तर सम्भवतया भारतीय श्रमिकों की कार्य अकुशलता का सबसे महत्वपूर्ण कारण है। श्रमिकों को मजदूरी इतनी कम मिलती है कि यह आशा नहीं की जा सकती कि श्रमिक कुछ बचत कर सकेंगे या अपने जीवन स्तर को ऊँचा उठा सकेंगे। श्रमिकों को स्वास्थ्यकर असन्तुलित भोजन तथा पहनने के लिए फटे पुराने अपर्याप्त कपड़े ही मिल पाते हैं और जिन मकानों में वह रहते हैं उनकी भी दशा अत्यन्त शोचनीय होती है। इन सबका पिछले पृष्ठों में विस्तृत वर्णन किया जा चुका है। निम्न कोटि के जीवनस्तर के कारण श्रमिकों की आदतें बिगड़ जाती हैं और उनके रहने का वातावरण भी दूषित हो जाता है। परिणामस्वरूप वे अनेक बीमारियों के शिकार हो जाते हैं और उनकी कार्य-शक्ति तथा कार्यकुशलता का ह्रास हो जाता है। इसके अतिरिक्त काम करने की परिस्थितियाँ भी अत्यन्त विषम हैं तथा कारखानों का वातावरण भी संतोषजनक नहीं होता है। ऐसी अस्वस्थ परिस्थितियों के होते हुए हम यह कैसे आशा कर सकते हैं कि श्रमिक अपना कार्य परिश्रम से तथा मन लगा कर करेंगे।

श्रमिकों की मद्यपानता भी उनकी कार्यकुशलता पर प्रभाव डालती है। मद्यपान के कारण न केवल उनके स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव पड़ता है वरन् उन्हें शहरी जीवन में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त श्रमिक की मदिरा पान की आदत भी उसकी कार्य अकुशलता के लिए उत्तरदायी है। परन्तु इस विषय में साधारणतया यही कहा जाता है कि श्रमिक अपने कठोर परिश्रम की थकावट को मिटाने के लिए ही मदिरा का सहारा लेता है और शराब पीकर वह अपने जीवन की कटुताओं को भूलने का प्रयत्न करता है। जब श्रमिकों के लिए अच्छी सुख सुविधाएं उपलब्ध नहीं हैं और उनके उचित शिक्षा दीक्षा की भी व्यवस्था नहीं है तब यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि उनमें मद्यपान तथा वेश्यागमन जैसी बुरी आदतें पड़ जाती हैं जिससे उनके स्वास्थ्य और कार्यकुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रमिकों की ऋणग्रस्तता भी उनकी कार्य अकुशलता के लिए कुछ सीमा तक उत्तरदायी है।

कार्य अकुशलता का एक अन्य महत्वपूर्ण कारण कारखानों में अच्छी व्यवस्था का अभाव है। अधिकतर प्रबन्ध अपूर्ण और अनुभव शून्य होता है। न तो मशीनें अच्छी होती हैं और न ही काम करने के लिए श्रमिकों को अच्छा सामान दिया जाता है। अतः यह स्वाभाविक है कि पुरानी व अप्रचलित मशीनों और घटिया प्रकार के कच्चे माल के कारण श्रमिक अधिक उत्पादन नहीं कर पाता है। निरीक्षक कर्मचारी वर्ग को इतना प्रशिक्षण नहीं दिया जाता कि वे श्रमिकों का उचित प्रकार से निरीक्षण कर सकें। उत्पादकता बढ़ाने के लिए आधुनिक तकनीक को भी नहीं अपनाया जाता।

क्या भारतीय श्रमिक वास्तव में कार्य-अकुशल हैं ? —

जैसा कि पिछले पृष्ठों में उल्लेख किया जा चुका है श्रमिक की रहन-सहन और काम करने की शोचनीय दशाएं ही उनकी कार्य-अकुशलता का प्रमुख कारण हैं। यदि आज का भारतीय श्रमिक इतना अधिक कार्यकुशल नहीं है जितना कि संसार के अन्य महत्वपूर्ण देशों के श्रमिक हैं तो इसका कारण यह नहीं है कि भारतीय श्रमिक में अधिक कार्यकुशल होने की क्षमता का अभाव है। यदि श्रमिक की शोचनीय दशाओं को देखा जाए तो उस पर यह दोष नहीं लगाया जा सकता कि वह अपने कार्य में रुचि नहीं लेता। श्रमिक बेचारा अपने परिवार और घरेलू वातावरण से दूर होता है तथा गन्दी और लम्बी बस्तियों में उसे रहना पड़ता है। उसको कारखाने में भी अधिक घण्टों तक धुएँ और धूल से भरे वातावरण में काम करना पड़ता है। उसे उचित प्रकार से निर्वाह करने के लिए पर्याप्त मजदूरी भी नहीं मिलती है। महाजनों और मध्यस्थों द्वारा उचित एवं अनुचित हर प्रकार से श्रमिकों से रुपया वसूल किया जाता है। ऐसी परिस्थितियों में यह कठिन है कि श्रमिक कुशलतापूर्वक कार्य कर सके। यदि हमारे देश में भी यह सब परिस्थितियाँ दूर हो जाएँ जिनसे श्रमिक की कार्यकुशलता घटती है। और जिनका उल्लेख इस अध्याय के आरम्भ में किया जा चुका है तो भारतीय श्रमिक

भी थोड़े ही समय में आश्चर्यजनक रूप से उन्नति कर लिया। भारतीय श्रमिक की यह विशेषता है कि वह कठिन और असाध्य (Trying) परिस्थितियों में भी कुशलता पूर्वक कार्य कर लेता है और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप को बड़ी शीघ्रता से ढाल लेता है।

श्रम अनुसंधान समिति के शब्दों में "हमें जो भी प्रकाशित प्रमाण मिले हैं और अपनी जांच-पड़ताल की अवधि में हम जो भी सूचनाएं एकत्रित कर सके हैं उन से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय श्रमिक की तथाकथित कार्यकुशलता एक कोरी कल्पना है। यदि हम अपने श्रमिकों को वैसे ही कार्य करने की दशाएं मजदूरी उचित व्यवस्था मशीनें और यन्त्र आदि प्रदान करें जो दूसरे देशों में श्रमिकों को मिलती हैं तो भारतीय श्रमिकों की कार्यकुशलता भी अन्य देशों के श्रमिकों से कम न होगी। यही नहीं वरन् जिस कार्य में भी यान्त्रिक सामान और संगठन की व्यवस्था सन्तोषप्रद नहीं होती वहां भारतीय श्रमिक ने दूसरे देश के अपने साथियों की अपेक्षा अधिक कार्यकुशलता का प्रमाण दिया है।"

ग्रैडी मिशन ने भी भारतीय उद्योगों की तकनीकी कार्यकुशलता पर अपनी रिपोर्ट में इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया था। कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में जनरल मोटर्स लिमिटेड के जनरल मैनेजर ने भी यह कहा था कि यदि भारतीय श्रमिक को प्राविधिक प्रशिक्षण प्राप्त हो जाए तो वह व्यक्तिगत रूप से उतना ही कार्यकुशल होगा जितना कि एक साधारण अमेरिकन श्रमिक होता है। सन् १९१२ में जब सर थामस हालैंड ने दक्षिणी भारत के चमड़ा उद्योग के विकास का कार्य अपने हाथ में लिया था तो सबसे पहले उन्होंने भारतीय श्रमिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की थी। उस समय उन्हें यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ था और साथ ही प्रसन्नता भी हुई थी कि उत्पादन की नवीन प्रणालियों को भारतीय श्रमिक ने बहुत जल्दी सीख लिया था। टाटा के लोहे और इस्पात के बड़े-बड़े कारखानों में भारतीय श्रमिकों को कुशलता पूर्वक कार्य करता देखकर अनेक योरोपियन व्यक्तियों ने भी इसी प्रकार आश्चर्य प्रकट किया है। टाटा की सारी कम्पनियां भारतीय श्रम और भारतीय प्रबन्ध से चलती हैं। मि० सी० डब्ल्यू० वैसे ने भी यह कहा है कि भारतीय श्रमिक प्रथम श्रेणी के मिस्त्री हैं। वे संसार के किसी भी देश के श्रमिकों से होड़ ले सकते हैं। पिछले महायुद्ध में खाई खोदने वाले भारतीय श्रमिक और इंजिनियरों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर किए गए आश्चर्यजनक कार्यों से अपनी जिस योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत किया था उसकी सभी ने सराहना की है।

गत कुछ वर्षों में औद्योगिक श्रमिकों की कार्यकुशलता में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। यह बात इससे स्पष्ट है कि महाराष्ट्र की कुछ मिलों के जुलाहे छः छः करघों पर काफी समय से कार्य कर रहे हैं और कार्य की दशाएं अपेक्षाकृत असंतोषजनक होते हुए भी प्रत्येक श्रमिक का औसत उत्पादन लंकाशायर के श्रमिक के उत्पादन के ८१% तक पहुँच गया है। इंजिनियरिंग और विद्युतीय इंजिनियरिंग विभागों में

भी कुशल और अर्द्ध कुशल भारतीय श्रमिक कठिन काम भी वैसी ही रुचि से करते हैं जैसा कि अन्य देशों में इंजिनियरिंग विभाग के श्रमिक कार्य करते हैं। यह भी सर्वविदित है कि भारतीय शिल्पी अपनी कलात्मक कृतियों के लिए संसार में प्रख्यात है। संसार का कोई भी शिल्पकार भारतीय शिल्पकार की नक्काशी की बारीकी और चित्रकारी की निपुणता की न तो बराबरी कर सका है और न मुकाबला ही कर पाया है।

अतएव जैसा कि श्रम अनुसंधान समिति ने कहा है "यदि यह देखा जाय कि इस देश में कार्य के घण्टे बहुत लम्बे हैं, अल्प विराम (Rest Pauses) बहुत कम हैं, प्रशिक्षण और प्रशिक्षार्थियों के लिए बहुत कम सुविधाएं हैं, आहार का स्तर और आवास सम्बन्धी सुविधाओं का स्तर बहुत निम्न है तथा अन्य देशों की अपेक्षा मजदूरी भी बहुत कम है तो श्रमिकों की तथाकथित कार्य अकुशलता का कारण यह नहीं हो सकता कि हमारे देश के लोगों की बुद्धिमत्ता में कुछ कमी है या हमारे श्रमिकों में कार्य करने की रुचि नहीं है। श्रमिकों की कार्य अकुशलता का कारण वैज्ञानिक प्रबन्ध का अभाव, व्यवसाय में उच्चतम मस्तिष्क लगाने का अभाव, वातावरण में गर्मी और नमी तथा मशीनों की निम्नता आदि कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जिनके लिए श्रमिकों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। इसलिए श्रमिक के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए, उनके काम करने और रहने की अच्छी दशाएं उपलब्ध करने के लिए तथा उनको उचित प्रशिक्षण की सुविधाएं देने के लिए यदि निरन्तर प्रयत्न किए जाएं तो वह दिन दूर नहीं होगा जब भारतीय श्रमिक यदि अधिक नहीं तो अन्य देशों के श्रमिकों के समान ही कार्यकुशल हो जायगा। इन विषयों में यदि उनके लिए सरकार द्वारा आवश्यक पग उठाए जाएं तो भारतीय श्रमिक बहुत शीघ्र अपने में सुधार कर लेगा क्योंकि उसमें सीखने और उन्नति करने की बहुत क्षमता है। भारतीय श्रमिक में मूलतः कोई कमी नहीं है और कोई कारण नहीं है कि भारत के निवासी इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की हीनता का अनुभव करें।

गत वर्षों में कार्य अकुशलता की शिकायतों के कारण—

गत कुछ वर्षों से श्रमिकों की कार्य-कुशलता में कमी हो जाने की शिकायत सुनने में आती है। यह कहा जाता है कि अब श्रमिक अपने अधिकारों के प्रति तो सजग हो गया है और अधिक से अधिक मजदूरी मांगने लगा है परन्तु वह अपने कर्त्तव्यों को भूल गया है और काम करने में रुचि नहीं लेता है। सन् १९४६ में टाटा आयरन और स्टील की कम्पनी के अध्यक्ष ने शेयरहोल्डरों के समक्ष भाषण देते हुए यह कहा था कि स्टील का औसत उत्पादन सन् १९३९–४० में प्रति कर्मचारी ३४·३६ टन था जो सन् १९४८-४९ में गिर कर १९·१० टन रह गया। उन्होंने इस बात की भी शिकायत की कि कुछ विभागों में श्रमिक अधिकतर अपनी वास्तविक क्षमता से आधा या एक तिहाई काम कर रहे थे। श्रमिक ऐसा क्यों करते हैं इसका कारण ढूंढने के लिए हमें दूर नहीं जाना पड़ेगा। देश की परिवर्तित राजनैतिक परिस्थितियां, श्रम आन्दोलन की

भी थोड़े ही समय में आश्चर्यजनक रूप से उन्नति कर लेगा। भारतीय श्रमिक की यह विशेषता है कि वह कठिन और असाध्य (Trying) परिस्थितियों में भी कुशलता पूर्वक कार्य कर लेता है और परिवर्तित परिस्थितियों के अनुकूल अपने आप को बड़ी शीघ्रता से ढाल लेता है।

श्रम अनुसंधान समिति के शब्दों में "हमें जो भी प्रकाशित प्रमाण मिले हैं और अपनी जांच-पड़ताल की अवधि में हम जो भी सूचनाएं एकत्रित कर सके हैं उन से यह स्पष्ट निष्कर्ष निकलता है कि भारतीय श्रमिक की तथाकथित कार्यकुशलता एक कोरी कल्पना है। यदि हम अपने श्रमिकों को वैसे ही कार्य करने की दशाएं मजदूरी उचित व्यवस्था मशीनें और अन्य आदि प्रदान करें जो दूसरे देशों में श्रमिकों को मिलती हैं तो भारतीय श्रमिकों की कार्यकुशलता भी अन्य देशों के श्रमिकों से कम न होगी। यही नहीं वरन् जिस कार्य में भी यांत्रिक सामान और संगठन की व्यवस्था सन्तोषप्रद नहीं होती वहां भारतीय श्रमिक ने दूसरे देश के अपने साथियों की अपेक्षा अधिक कार्यकुशलता का प्रमाण दिया है।

ग्रैडी मिशन ने भी भारतीय उद्योगों की तकनीकी कामकुशलता पर अपनी रिपोर्ट में इसी प्रकार का विचार व्यक्त किया था। कुछ वर्ष पूर्व बम्बई में जनरल मोटर्स लिमिटेड के जनरल मैनेजर ने भी यह कहा था कि यदि भारतीय श्रमिक को प्राथमिक प्रशिक्षण प्राप्त हो जाए तो वह व्यक्तिगत रूप से उतना ही कार्यकुशल होगा जितना कि एक साधारण अमेरिकन श्रमिक होता है। सन् १९१५ में जब सर थामस हालैंड ने ब्रिटिश भारत के समस्त उद्योग के विकास का कार्य अपने हाथ में लिया था तो सबसे पहले उन्होंने भारतीय श्रमिकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था की थी। उस समय उन्हें यह देख कर अत्यन्त आश्चर्य हुआ था और साथ ही प्रसन्नता भी हुई थी कि उत्पादन की नवीन प्रणालियों को भारतीय श्रमिक ने बहुत जल्दी सीख लिया था। टाटा के लोहे और इस्पात के बड़े-बड़े कारखानों में भारतीय श्रमिकों को कुशलता पूर्वक कार्य करता देखकर अनेक योरोपियन व्यक्तियों ने भी इसी प्रकार आश्चर्य प्रकट किया है। टाटा की सारी कम्पनियां भारतीय श्रम और भारतीय प्रबन्ध से चलती हैं। मि० सी० डब्ल्यू० मैसे ने भी यह कहा है कि भारतीय श्रमिक प्रथम श्रेणी के मिस्त्री हैं। वे संसार के किसी भी देश के श्रमिकों से होड़ ले सकते हैं। द्वितीय महायुद्ध में नाना स्थानों पर भारतीय श्रमिक और इंजिनियरों ने भिन्न-भिन्न स्थानों पर किए गए आश्चर्यजनक कार्यों से अपनी जिस योग्यता का प्रमाण प्रस्तुत किया था उसकी गजब सराहना की है।

गत कुछ वर्षों से औद्योगिक श्रमिकों की कार्यकुशलता में तीव्र गति से वृद्धि हुई है। यह बात इतना स्पष्ट है कि महाराष्ट्र की कुछ मिलों के जुलाहे ८ से १६ करघों पर काफी समय से कार्य कर रहे हैं और कार्य की दशाएं अपेक्षाकृत असंतोष जनक होते हुए भी प्रत्येक श्रमिक का औसत उत्पादन लंकाशायर के श्रमिक के उत्पादन के ८५% तक पहुँच गया है। इंजिनियरिंग और विद्युतीय इंजिनियरिंग विभागों में

भी कुशल और अर्द्ध कुशल भारतीय श्रमिक कठिन कार्य भी वैसी ही रुचि से करते हैं जैसा कि अन्य देशों में इंजिनियरिंग विभाग के श्रमिक कार्य करते हैं। यह भी सर्वविदित है कि भारतीय शिल्पी अपनी कलात्मक कृतियों के लिए संसार में प्रख्यात हैं। संसार का कोई भी शिल्पकार भारतीय शिल्पकार की नक्काशी की बारीकी और चित्रकारी की सिलवता की न तो बराबरी कर सका है और न मुकाबला ही कर पाया है।

अतएव जैसा कि श्रम अनुसंधान समिति ने कहा है 'यदि यह देखा जाय कि इस देश में कार्य के घन्टे बहुत लम्बे हैं, अल्प विराम (Rest Pauses) बहुत कम हैं, प्रशिक्षण और प्रशिक्षार्थियों के लिए बहुत कम सुविधाएं हैं, आहार का स्तर और स्वास्थ्य सम्बन्धी सुविधाओं का स्तर बहुत निम्न है तथा अन्य देशों की अपेक्षा मजदूरी भी बहुत कम है तो श्रमिकों की तथाकथित कार्य अकुशलता का कारण यह नहीं हो सकता कि हमारे देश के लोगों की बुद्धिमता में कुछ कमी है या हमारे श्रमिकों में कार्य करने की रुचि नहीं है। श्रमिकों की कार्य अकुशलता का कारण वैज्ञानिक प्रबन्ध का अभाव, व्यवसाय में उच्चतम नैतिक स्तरों का अभाव, वातावरण में गर्मी और नमी तथा श्रमिकों की निर्धनता आदि कुछ ऐसी परिस्थितियां हैं जिनके लिए श्रमिकों को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता। इसलिए श्रमिकों के स्तर को ऊंचा उठाने के लिए, उनके काम करने और रहने की अच्छी दशाएं उपलब्ध करने के लिए तथा उनको उचित प्रशिक्षण की सुविधाएं देने के लिए यदि निरन्तर प्रयत्न किए जाए तो वह दिन दूर नहीं होगा जब भारतीय श्रमिक यदि अधिक नहीं तो अन्य देशों के श्रमिकों के समान ही कार्यकुशल हो जाएगा। इन विषयों में यदि उनके लिए सरकार द्वारा आवश्यक पग उठाए जाएं तो भारतीय श्रमिक बहुत शीघ्र अपने में सुधार कर लेगा क्योंकि उसमें सीखने और उन्नति करने की बहुत क्षमता है। भारतीय श्रमिक में मूलतः कोई कमी नहीं है और कोई कारण नहीं है कि भारत के निवासी इस सम्बन्ध में किसी प्रकार की हीनता का अनुभव करें।

गत वर्षों में कार्य अकुशलता की शिकायतों के कारण —

गत कुछ वर्षों से श्रमिकों की कार्य-कुशलता में कमी हो जाने की शिकायतें सुनने में आती हैं। यह कहा जाता है कि अब श्रमिक अपने अधिकारों के प्रति तो बहुत सजग हो गया है और अधिक से अधिक मजदूरी मांगने लगा है परन्तु वह अपने कर्त्तव्यों को भूल गया है और काम करने में रुचि नहीं लेता है। सन् १९४९ में टाटा लोहा और इस्पात की कम्पनी के अध्यक्ष ने वार्षिकोत्सव के अवसर पर यह कहा था कि इस्पात का औसत उत्पादन सन् १९३९–४० में प्रति कर्मचारी २४·१६ टन था जो सन् १९४८–४९ में गिर कर १९·१० टन रह गया। उन्होंने इस बात की भी शिकायत की कि कुछ विभागों में श्रमिक अधिकतर अपनी वास्तविक क्षमता से आधा या एक तिहाई काम कर रहे थे। श्रमिक ऐसा क्यों करते हैं इसका कारण ढूंढने के लिए हमें दूर नहीं जाना पड़ेगा। देश की परिवर्तित राजनैतिक परिस्थितियां श्रम आन्दोलन की

बढ़ती हुई शक्ति, निर्वाह व्यय में वृद्धि, कुछ राजनैतिक दलों का अनुचित प्रचार, आदि सभी बातों ने मिल कर श्रमिकों में असन्तोष की भावना उत्पन्न कर दी है और वे अपनी परिस्थितियों में तत्काल सुधार की मांग करने लगे हैं। प्रबन्ध में जो परम्परागत प्रणालियां चली आ रही हैं उनसे भी वह सन्तुष्ट नहीं हैं और कठोर अनुशासन की वह अवहेलना करने लगे हैं। विवेकीकरण और कार्य दीक्षता की योजनाओं ने भी श्रमिकों में बेरोजगारी का भय उत्पन्न कर दिया है और उनमें यह धारणा उत्पन्न हो गई है कि यदि वह अधिक कार्य करेंगे तो उनमें से कुछ श्रमिकों की छंटनी हो जाएगी। इसलिए अधिक कार्य करके रोजगार को कम करने की अपेक्षा वे अपने सहयोगियों के साथ मिल जोल कर कार्य करना चाहते हैं। अतः मजदूरी के ढांचे में किसी प्रकार का परिवर्तन न होने के कारण और कार्य करने के तथा रहने की दशाओं में किसी उल्लेखनीय सुधार के अभाव में श्रमिक पहले की अपेक्षा आज अधिक असन्तुष्ट है।

उत्पादकता (Productivity) —

भारत में श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ाने का बहुत महत्व है विशेषकर जब देश में आर्थिक विकास के लिए पंच-वर्षीय योजनायें चालू की गई हैं। श्री गुलजारी लाल नन्दा का कथन है "व्यावहारिक रूप में उत्पादकता प्रगति का पर्यायवाची है। हमारे लिए इसका अर्थ केवल प्रगति ही नहीं वरन् जीवन है।" "संसार की वर्तमान प्रतियोगी अर्थ व्यवस्था को देखते हुए यह बहुत आवश्यक है कि हम अपने देश के माल को अधिक अच्छे प्रकार का बनाएं, उत्पादन लागत को कम करें और कीमतों को घटाएं। इस प्रकार ही हम विश्व बाजार में अपने देश के माल के लिए स्थान बना सकते हैं तथा अपने देश के भीतर भी बाजार को विस्तृत कर सकते हैं। यदि हम विश्व बाजार में सफलतापूर्वक स्पर्धा करना चाहते हैं तो श्रमिकों की उत्पादकता बढ़ाने की ओर पग उठाना आवश्यक है। अधिक उत्पादकता से जो लाभ होंगे वह सभी वर्गों को उपलब्ध होंगे। बाजारों के विस्तृत होने से उत्पादन भाग भी बढ़ेगा और उद्योग को भी फायदा पहुंचेगा। उत्पादन लागत घटने से मूल्यों में कमी हो जायेगी अधिक अच्छे प्रकार का माल तैयार होगा और उपभोक्ताओं को भी लाभ होगा। अधिक उत्पादकता के कारण श्रमिकों को भी अधिक मजदूरी मिलेगी और उनका जीवन स्तर ऊंचा हो जाएगा। उद्योग की उत्पादकता ही वह स्रोत है जिसमें से ऊंची मजदूरी का भुगतान किया जाता है। किसी प्रकार का किसी भी ओर से कोई भी दबाव उद्योग की भुगतान क्षमता से अधिक मजदूरी दिलाने में समर्थ नहीं हो सकता क्योंकि यदि ऐसा किया जाएगा तो बेरोजगारी व मुद्रा प्रसार जैसी दुखदायी स्थितियों का सामना करना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त उत्पादकता बढ़ने से देश के प्रत्येक प्राकृतिक साधन से अधिक उत्पादन उपलब्ध होगा, कुल उत्पादन बढ़ जाएगा और परिणामस्वरूप राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी, निर्यात भी अधिक होगा, रोजगार अधिक मिलेगा तथा जीवन स्तर भी ऊंचा हो जाएगा। उत्पादकता बढ़ाने का उद्देश्य यह है कि प्राप्य (Available) साधनों द्वारा

अधिकतम उत्पादन हो और किसी भी प्रकार की सामाजिक या आर्थिक विपत्ति (Distress) का सामना न करना पड़े। ऐसे उचित वातावरण बनाने के लिए जिसमें मालिक व मजदूरों के सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण हों तथा श्रमिकों की कार्यकुशलता अधिक हो और उनका जीवन स्तर ऊंचा हो, उत्पादकता आन्दोलन की ओर अच्छी प्रकार से ध्यान देना चाहिए तथा उसे प्रोत्साहन मिलना चाहिए।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि यद्यपि अधिक उत्पादकता से अधिक उत्पादन होता है तथापि इसका अर्थ यह नहीं है कि यदि उत्पादन में वृद्धि होती है तो आवश्यक रूप से उत्पादकता में भी वृद्धि होती है। हम उत्पादन में दो प्रकार से वृद्धि कर सकते हैं—प्रथम तो अधिक साधन और उपादानों को लगाकर उत्पादन बढ़ाया जा सकता है और द्वितीय उत्पादन में वृद्धि प्रत्येक श्रमिक प्रत्येक घण्टे प्रत्येक दिन या प्रत्येक वर्ष उत्पादन बढ़ाकर की जा सकती है। उत्पादकता में वृद्धि का अर्थ द्वितीय प्रकार की वृद्धि से लिया जाता है। किसी भी संस्था में एक ही समान मात्रा और विशिष्ट गुण वाला उत्पादन एक निश्चित समय में यदि १० व्यक्तियों द्वारा किया जाता है और दूसरी संस्था में उसी समान मात्रा और गुण वाला उत्पादन उतने ही समय में १२ व्यक्तियों द्वारा किया जाता है तो 'उत्पादन' तो बराबर होगा परन्तु पहली संस्था में 'उत्पादकता' अधिक होगी।

श्रम उत्पादकता की परिभाषा इस प्रकार की जा सकती है कि श्रम समय के अनुपात में प्रत्येक इकाई में जितना निपज (Out put) होता है उसे श्रम उत्पादकता कहते हैं। श्रम ब्यूरो द्वारा किए गए एक अध्ययन के अनुसार श्रम उत्पादकता का अर्थ भौतिक उत्पादन या निपज के उस अनुपात से है जो उद्योग में श्रम निवेश (Input) की मात्रा से प्राप्त होता है। परन्तु यह एक बहुत विस्तृत परिभाषा है। श्रम के निपज और उद्योग में श्रम के निवेश की मात्रा को किस प्रकार मापा जाता है उसके अनुसार इसके कई अर्थ हो सकते हैं। इस प्रकार से श्रम उत्पादकता श्रम की आंतरिक कार्यक्षमता से हुए परिवर्तनों को स्पष्ट नहीं करती वरन् उस परिवर्तनशील प्रभाव को प्रदर्शित करती है जिसमें श्रम का अन्य साधनों के साथ प्रयोग किया जाता है। इस प्रकार श्रम उत्पादकता पर अनेक बातों का प्रभाव पड़ता है। परन्तु इससे बड़ी संख्या में अलग-अलग परन्तु फिर भी एक दूसरे से आपस में सम्बन्धित साधनों का सम्मिलित प्रभाव होता प्रकट होता है, उदाहरणार्थ तकनीकी सुधार उत्पादन की गति उत्पादन की विभिन्न प्रक्रियाओं में प्राप्त की गई कार्यक्षमता को मात्रा सामग्री की उपलब्धि माल आदि के प्राप्त होने की गति मालिक-मजदूर सम्बन्ध श्रमिकों की कुशलता और उनके प्रयत्न प्रबन्ध की कार्यक्षमता आदि आदि। उत्पादन के सभी उपादानों की उत्पादक कार्यक्षमता में परिवर्तन और उपादानों के स्थानापत्ति के कारण वास्तविक श्रम लागत में जो बचत प्राप्त होती है अथवा उसमें जो अभिव्यय होता है उससे श्रम उत्पादकता के परिवर्तनों का पता लग सकता है। भौतिक निपज से सम्बन्धित प्रश्नों के अध्ययन के लिए श्रम निवेश को ही उपयुक्त समझा गया है

क्योंकि श्रम निवेश अन्य उपादानों के निवेश की अपेक्षा सरलता से मापा जा सकता है। इसके अतिरिक्त श्रम निवेश में एक ऐसी समानता होती है जो तमाम उद्योगों प्रक्रियाओं और मशीनों में पाई जाती है। लेकिन यदि आवश्यक हो तो किसी भी उपादान की उत्पादकता का अध्ययन करने के लिए उस उपादान की एक इकाई की उत्पत्ति को लिया जा सकता है।

ब्यूरो ने जो भी अध्ययन किया है उसमें श्रम निपज और श्रम निवेश को दो अर्थों में लिया है। निपज के जो दो अर्थ लिए हैं वह हैं स्थिर मूल्यों पर 'कुल (Gross) निपज' और निवल (Net) निपज'। कुल निपज उद्योग की अन्तिम निपज को बताती है। विनिर्माण प्रक्रियाओं द्वारा जो सामग्री निवेश में मूल्य (Value) बढ़ जाता है निवल निपज उस ओर संकेत करती है। कुल निपज में साधारणतया सामग्री की लागत का अधिक समानुपात होता है। इस कारण श्रम निवेश में परिवर्तन होने से इस पर कम प्रभाव पड़ता है। परन्तु क्योंकि निवल निपज जो भी सामग्री का प्रयोग किया जाता है और जो मूल्य ह्रास होता है उसे कुल लागत में से घटा कर आती है इस कारण श्रम निवेश के परिवर्तनों का इस पर अधिक प्रभाव पड़ता है। श्रम निवेश को श्रम वर्षों और श्रम घण्टों में मापा जाता है। इन अर्थों के आधार पर श्रम उत्पादकता को चार प्रकार से मापा जा सकता है —

(क) प्रति श्रमिक कुल निपज $= \dfrac{\text{कुल निपज}}{\text{रोजगार पर लगे श्रमिक}}$

(ख) प्रति श्रम घंटे कुल निपज $= \dfrac{\text{कुल निपज}}{\text{जितने श्रम घंटे काम हुआ}}$

(ग) प्रति श्रमिक निवल निपज $= \dfrac{\text{निवल निपज}}{\text{रोजगार पर लगे श्रमिक}}$

(घ) प्रति श्रम घंटे निवल निपज $= \dfrac{\text{निवल निपज}}{\text{जितने श्रम घंटे काम हुआ}}$

जिस किसी विशेष उद्देश्य के लिए उत्पादकता सूचकांक की आवश्यकता होती है उसी दृष्टि से इन चारों प्रकार के सूचकांकों का अलग-अलग प्रयोग हो सकता है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रकाशन के अनुसार [विनिर्माण उद्योगों में अधिक उत्पादकता (Higher Productivity in Manufacturing Industries)] ऐसे तत्वों को जिनका उत्पादकता पर प्रभाव पड़ता है, तीन मुख्य श्रेणियों में बांटा जा सकता है (१) मशीन यन्त्र व सामग्री (२) संगठन और उत्पादन पर नियन्त्रण (३) कार्मिक नीति (Personnel Policy)। प्रथम श्रेणी के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं प्रत्येक श्रमिक के लिए अधिक पूंजी देना उत्पादन की पद्धति ऐसी लागू करना जिसमें अधिक पूंजी हो माल और सामग्री का अधिक उचित प्रकार से उठाना धरना और प्रयोग करना, कम लागत वाले सामान उदाहरणतः शक्ति द्वारा

चालू औजारों आदि का प्रयोग करना, मशीनों की भली-भांति देखभाल रखना और मशीनों को अच्छे ढंग से लगाना। संगठन और उत्पादन के नियन्त्रण के अन्तर्गत निम्न लिखित बातें आती हैं: अधिक अच्छा प्रबन्ध व प्रशासन, उत्पादन आयोजन तथा नियन्त्रण, लागत और बजट नियन्त्रण, सरल विधि, समानीकरण तथा विशिष्टीकरण, कम लागत वाले डिजाइन, कार्यविधि, अध्ययन, कार्य का मापदण्ड, मूल्य नीति तथा बिक्री कार्य। कार्मिक नीति में निम्नलिखित बातें आती हैं: श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग, विवेकपूर्ण रोजगार नीति, उचित प्रकार से श्रमिकों का चुनाव और उन्हें कार्य पर लगाना, विभिन्न स्तरों पर व्यवसाय सम्बन्धी प्रशिक्षण, आगमिक (Inductive) पाठ्य-क्रम, पदोन्नति तथा स्तर उन्नति, कुशल पर्यवेक्षण, कार्य सन्तुष्टि, निपुण श्रमिकों को कार्य पर लगाना, विवेकपूर्ण मजदूरी नीति, उचित पारियाँ तथा उचित कार्य के घण्टे, कार्य की दशाओं और कल्याण सुविधाओं में उन्नति, उद्योग में स्वास्थ्य और सुरक्षा नीति तथा अनुपस्थिति और श्रमिकावर्त में कमी।

इंगलैंड की 'इम्पीरियल कैमीकल्स इण्डस्ट्रीज' के मि० रसल क्यूरी (Mr Russel Curne) ने उत्पादकता की सरल शब्दों में व्याख्या की है। उनके अनुसार "किसी भी संस्थान की उत्पादकता का अर्थ उस अनुपात से होता है जो उत्पादित माल और सेवाओं तथा उपयोग में लाए गए साधनों के बीच में पाता है। उत्पादकता को प्राप्त करने के लिए सबसे अच्छी विधि यह है कि वर्तमान साधनों का अधिक अच्छे ढंग से प्रयोग किया जाय तथा समस्त साधनों से और समस्त रूप से इन साधनों का विकास करके और प्रयोग करके कम निवेश से अधिक मात्रा में माल का उत्पादन किया जाय।" इसको प्राप्त करने के लिए उन्होंने प्रबन्ध तकनीक के रूप में कार्य अध्ययन योजनाओं को लागू करने पर बल दिया है।

उपरोक्त विवेचन से यह भ्रम हो सकता है कि उत्पादकता का विचार बहुत ही अधिक तकनीकी है और बिना अधिक तकनीकी ज्ञान व बुद्धिमता के हमारे जैसे देश में उत्पादकता बढ़ाना कठिन होगा। परन्तु ऐसा नहीं है। उत्पादकता का अर्थ विवेकीकरण से नहीं लेना चाहिए। विवेकीकरण (Rationalization) में (क) केन्द्रीय नियन्त्रण एवं यन्त्रीकरण तथा (ख) आधुनिकीकरण एवं समानीकरण आते हैं। विवेकीकरण का श्रमिकों द्वारा विरोध हुआ है क्योंकि इसके कारण कई स्थानों पर कार्यों में तीव्रता लाकर श्रमिकों को निकाल दिया गया है। उत्पादकता आन्दोलन में इस प्रकार का कोई भय नहीं होना चाहिए। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में यह कहा गया है। "उत्पादकता में वृद्धि करने से यह तात्पर्य नहीं है कि नई मशीनों को लगाया ही जाय अथवा श्रमिकों को अधिक भार उठाना पड़े। मशीनों को उचित प्रकार से लगाना, काम की दशाओं में उन्नति करना और श्रमिकों को प्रशिक्षण देना ऐसे पग हैं—जिनसे श्रमिकों पर बिना अधिक भार डाले उत्पादन में वृद्धि हो सकती है और कुछ परिस्थितियों में तो भार को कम करके भी उत्पादन में वृद्धि हो सकती है।" अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का जो उत्पादकता सम्बन्धी दल (Productivity Mission)

माना था उसने भी इस ओर संकेत किया था कि उत्पादकता का अर्थ मशीनीकरण से नहीं है। इसका अर्थ यह है कि प्रबन्धकों और श्रमिकों में ऐसे वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया जाय जिससे वैज्ञानिक सिद्धान्तों और उचित तकनीक द्वारा वर्तमान साधनों का अच्छी प्रकार से प्रयोग हो सके।

उत्पादकता के विचार का हमें कार्यकुशलता के विचार के साथ ही अध्ययन करना चाहिए। कार्य-कुशलता का विचार बहुत पुराना है। उत्पादकता के विचार में हमें केवल उत्पादन या निपज पर ही बल नहीं देना चाहिए वरन् अच्छे निपज पर जोर देना चाहिए। इसका अर्थ यह है कि हमें उत्पादन की मात्रा के साथ साथ उसके गुण का भी ध्यान रखना चाहिए।

उत्पादकता और कार्य कुशलता पर श्रमिकों के सामाजिक जीवन का भी प्रभाव पड़ता है। घरेलू वातावरण जिसमें व्यक्ति का पालन पोषण होता है और पारिवारिक जीवन जो व्यक्ति व्यतीत करता है उसका श्रमिक पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है। यदि कोई श्रमिक घर में अपनी पत्नी से झगड़ा करके फैक्ट्री में कार्य करने आता है तो वह कुशलतापूर्वक कार्य नहीं कर सकता। इसलिए हमें उन तत्वों में जिनका प्रभाव उत्पादकता पर पड़ता है सामाजिक तथा संस्थावादी (Institutional) तत्व भी सम्मिलित कर लेने चाहिए।

इसके अतिरिक्त जैसा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के श्रम का कथन है, जिन बातों से उत्पादकता में वृद्धि होती है वह बातें तभी आ सकती हैं जबकि उद्योग में मानवीय सम्बन्ध पारस्परिक मान्यताओं पर आधारित हों और इस बात का विश्वास हो कि परिवर्तित और नवीन पद्धतियों से न केवल सभी वर्गों को लाभ होगा वरन् आय तथा कार्य करने की दशाओं में भी उन्नति होगी और रोजगार के अवसरों में वृद्धि होगी। यह बहुत आवश्यक है कि उद्योग में श्रमिक और मालिकों के आपसी सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण और रचनात्मक ढंग के हों। श्रमिक संघ श्रमिकों को समझाने और इस बात का विश्वास दिलाने में कि अधिक उत्पादकता से उनको भी लाभ होगा बहुत महत्वपूर्ण कार्य कर सकते हैं। मालिकों में भी विश्वास उत्पन्न करने की बहुत आवश्यकता है और समाजवाद या पूंजीवाद के विचारों को समाप्त कर देना चाहिए। मालिकों और श्रमिकों के बीच जो आपसी सन्देह का वातावरण है उसे दूर करना होगा और अधिक उत्पादकता लाने के लिए दोनों का सहयोग बहुत आवश्यक है। मालिकों को चाहिए कि अधिक उत्पादकता से जो लाभ हों उनसे श्रमिकों को वंचित रखने का प्रयत्न न करें।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि अधिक उत्पादकता का वातावरण बनाने के लिए श्रम सम्बन्धी अधिनियमों को पूर्ण और प्रभावात्मक रूप से लागू करना चाहिए। यदि किसी अधिनियम में कोई दोष है तो उस अधिनियम में संशोधन कर देना चाहिए या उसे परिवर्तित कर देना चाहिए। परन्तु जब तक अधिनियम लागू है उसके उपबन्धों से बचने का कोई प्रयत्न नहीं करना चाहिए और न ही उसकी कमियों

से अनुचित लाभ उठाना चाहिए।

भारत में श्रमिकों की उत्पादकता के अध्ययन का प्रारम्भ अभी हाल ही में हुआ है। २२ जनवरी १९५२ के एक समझौते के परिणामस्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने इसके के पांच प्रमुख विशेषज्ञों के एक दल को दिसम्बर १९५२ में भारत भेजा था। इस दल का कार्य यह बताना था कि कार्य-अध्ययन की आधुनिक तकनीकी प्रणालियों से और मशीनों के उचित संगठन से तथा उत्पादन के अनुसार भुगतान करने की पद्धति से कपड़ा और इन्जिनियरिंग उद्योगों के श्रमिकों की उत्पादकता और आय में किस प्रकार वृद्धि की जा सकती है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का एक अन्य दल १९५४ में आया। कलकत्ता के इन्जिनियरिंग उद्योग में तथा अहमदाबाद और बम्बई की कपड़ा मिलों में इन दलों ने सराहनीय कार्य किया। उसी मशीन यन्त्र व सामग्री और उन्हीं कर्मचारियों के होते हुए इस दल ने उत्पादकता की तक नीकी बातों में बहुत उन्नति कर दी। दल निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुंचा है— (१) भारत में कार्य-अध्ययन की तकनीक को लागू किया जा सकता है और इससे उत्पादन बढ़ाने में बहुत सफलता मिलेगी। (२) अगर उचित रीति से लागू की जाय तो कार्य-अध्ययन की तकनीक औद्योगिक सम्बन्धों में सुधार कर सकती है। (३) पूंजी के निवेश के बिना भी उत्पादकता में पर्याप्त वृद्धि हो सकती है। (४) कार्य करने की दशाओं में सुधार करना भी एक ऐसा अत्यन्त महत्वपूर्ण तत्व है जिससे उत्पादकता में वृद्धि हो सकती है। (५) कार्य करने की दशाओं में सुधार करके शारीरिक श्रम को कम करके और उत्पादन तथा मजदूरी में वृद्धि करके कार्य-अध्ययन पद्धति श्रमिकों को लाभ पहुंचा सकती है।

इन सुझावों के परिणामस्वरूप अक्तूबर १९५४ में सरकार ने बम्बई में 'केन्द्रीय श्रम संस्थान, के एक भाग के रूप में एक 'राष्ट्रीय उत्पादकता केन्द्र' की स्थापना की। तभी से कुछ कार्य-अध्ययन की व्यापक प्रायोजनाओं को विभिन्न केन्द्रों में आरम्भ कर दिया गया है। पूना के निकट दापोदी नामक स्थान पर बम्बई राज्य की यातायात-कार्यशाला में एक कार्य विधि सुधार प्रायोजना लागू की गई। दिल्ली और श्रीनगर में भी यातायात कार्यशालाओं में कार्य-अध्ययन प्रायोजनाओं को कार्यान्वित किया जा चुका है। पर्यवेक्षकों के लिए एक 'अंतकार्य प्रशिक्षण केन्द्र' की भी व्यवस्था की गई है। (देखिए परिशिष्ट 'ग')। सन् १९५७ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की सहायता से उत्पादकता दल ने मद्रास और कोयम्बुतूर के उद्योगों में तथा कलकत्ता की इन्जीनियरिंग परिषद के कारखानों में भी उत्पादकता प्रायोजनायें लागू की थीं। मद्रास प्रायोजना की रिपोर्ट प्रकाशित कर दी गई है। १९५८-५९ में बम्बई में उच्च कार्य अध्ययन पाठ्यक्रमों का आयोजन किया गया था, तथा कलकत्ता में एक शिखर प्रबन्ध-सेमिनार, उत्पादकता प्रदर्शनी, आदि की भी व्यवस्था की गई। मार्च १९५८ में कलकत्ता में भी एक शिखर प्रबन्ध सेमिनार का आयोजन किया गया। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने संयुक्त रूप से नवम्बर १९६०

से समभौते में एक उच्च प्रबन्ध प्रायोजना प्रारम्भ की है। 'श्रम ब्यूरो ने जूट वस्त्र लोहा व इस्पात चीनी सूती वस्त्र कोयला सीमेंट कागज, माचिस तथा ऊनी वस्त्र उद्योगों में जिन उद्योगों की संख्या ९ है, उत्पादकता सूचकांक बनाने के लिए प्रायोजनायें शुरू की हैं। इनमें से कुछ उद्योगों की रिपोर्टों को अन्तिम रूप दिया जा रहा है। यह वार्षिक सूचकांक १९४८ से १९५९ तक के वर्षों के तैयार किए जायेंगे और इनके लिए १९४७ को आधार वर्ष माना गया है।

उत्पादकता अभियान में एक महत्वपूर्ण पग जो उठाया गया है वह राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद (National Productivity Council) की स्थापना का है। परिषद की रजिस्ट्री फरवरी १९५८ में हुई थी। ऐसी परिषद की स्थापना का विचार सर्वप्रथम भारतीय उत्पादकता प्रतिनिधि मंडल द्वारा सुझाया गया था। यह मंडल अक्तूबर १९५६ में इस उद्देश्य से जापान गया था कि उस देश में उत्पादकता योजनाओं का अध्ययन करे। नवम्बर १९५७ में एक उत्पादकता सेमिनार में इस की रिपोर्ट पर विचार किया गया। इस सेमिनार की सिफारिशों के परिणामस्वरूप राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् की स्थापना फरवरी १९५८ में की गई जिससे उत्पादकता की विशेष समस्याओं पर अनुसंधान किया जा सके और उत्पादकता सम्बन्धी सूचनाओं का प्रसार हो सके। यह परिषद् एक स्वायत्त (Autonomous) संस्था है। परिषद् का उद्देश्य उन्नत पद्धतियों साधनों के उचित प्रयोग उच्च जीवन स्तर और उन्नत कार्य दशाओं के द्वारा उत्पादकता में वृद्धि का आन्दोलन करना है। इस परिषद् में मालिकों और श्रमिकों के राष्ट्रीय संगठनों के सरकार के तथा अन्य हितों यथा तकनीकी व्यक्ति सलाहकार, छोटे उद्योग व विद्वानों आदि के प्रतिनिधि सदस्य हैं जिनकी संख्या लगभग ५० है। डा पी० एस० लोकनाथन को इस परिषद का अध्यक्ष नियुक्त किया गया है। राष्ट्रीय उत्पादकता परिषद् ने देश भर में विभिन्न उत्पादकता तकनीक सम्बन्धी अनेक पाठ्यक्रमों का आयोजन किया है। परिषद् औद्योगिक इंजिनियरिंग औद्योगिक प्रबन्ध और औद्योगिक सम्बन्धों में प्रशिक्षण के लिए प्रशिक्षार्थियों को विदेश भी भेजती है। परिषद् ने उत्पादकता बढ़ाने गहन कार्य अध्ययन और उद्योग के अन्दर ही तकनीकी ज्ञान विनिमय के लिए देश भर में उत्पादकता दलों का भी आयोजन किया है। कार्य-क्रम में सहायता देने के लिए भाषण सम्मेलन वाद-विवाद गोष्ठियाँ आदि का भी आयोजन करती रहती है। पांच क्षेत्रीय उत्पादकता निदेशालय तथा स्थानीय उत्पादकता परिषदों की स्थापना भी की गई है। ४८ स्थानीय उत्पादकता परिषदों की स्थापना की जा चुकी है और सभी मुख्य मुख्य औद्योगिक केन्द्रों में भी ऐसी परिषदों की स्थापना की जा चुकी है। इन स्थानीय परिषदों में मालिक श्रमिक राज्य सरकार और अन्य हितों के प्रतिनिधि होते हैं। इन परिषदों में मालिक और श्रमिक दोनों मिलकर अधिक उत्पादकता के ध्येय को प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं। इन परिषदों के माध्यम से ही अधिक उत्पादकता अभियान को औद्योगिक इकाइयों तक पहुँचाया जाता है।

इस प्रकार भारत में उत्पादकता आन्दोलन तीव्र गति से प्रगति कर रहा है। इसका अर्थ अब केवल श्रमिकों की उत्पादकता से ही नहीं वरन् सभी उपादानों की उत्पादकता से लिया जाता है। परन्तु श्रमिक वर्ग को इस उत्पादकता आन्दोलन से कुछ सन्देह भी उत्पन्न हो गए हैं। इसलिए यह बहुत आवश्यक है कि श्रमिक वर्ग को इस बात का विश्वास दिलाया जाय कि उत्पादकता का अर्थ कार्य भार में वृद्धि करना नहीं है और इसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी नहीं होगी तथा श्रमिकों को अधिक उत्पादकता से जो लाभ होंगे उनमें से उचित भाग दिया जायेगा। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में उत्पादकता के सम्बन्ध में कहा गया है कि "प्रबन्धकों को चाहिए कि वे श्रमिकों के लिए मशीन कार्य करने की उपयुक्त स्थिति व तरीके पर्याप्त प्रशिक्षण और उपयुक्त मनोवैज्ञानिक और भौतिक प्रेरणाएं प्रदान करने का यत्न करें। कार्य में लगे श्रमिकों की योग्यता व दक्षता में वृद्धि करने के लिए उद्योग मजदूर संघों और सरकार को मिलजुल कर प्रशिक्षण कार्यक्रम आरम्भ करने चाहिएं। इस देश में जब तक उत्पादकता में निरन्तर वृद्धि नहीं होती तब तक श्रमिकों के रहन-सहन के स्तर में वास्तविक सुधार नहीं हो सकता।

विभिन्न उद्योगों व प्रत्येक उद्योग में विभिन्न संस्थानों के लिए १९५० में निर्मित उद्योग की संख्या के आधार पर १९६२ में श्रम उत्पादकता सम्बन्धी आंकड़ों का संकलन किया गया था। निम्न तालिका से कुछ विशिष्ट उद्योगों में ऐसे आंकड़ों का पता चलता है।

श्रम की उत्पादकता (१९५०)

प्रति व्यक्ति कार्य लगे के मूल्य के आधार पर (रुपयों में)

उद्योग	सभी आकार के	छोटे आकार के	मध्यम आकार के	बड़े आकार के
चीनी	१·५	१·४	१·५	१·४
सीमेंट	१·४	१·१	१·४	१·५
सूती वस्त्र	०·७	०·७	०·८	०·७
ऊनी वस्त्र	१·२	०·४	१·२	१·४
जूट वस्त्र	०·५	०·५	०·७	०·६
लोहा व इस्पात	१·४	०·४	०·८	१·५
रसायन	१·६	१·५	१·७	२·६
सब उद्योग	०·८	०·६	०·८	१·०

खानों के मुख्य निरीक्षक द्वारा प्रकाशित आंकड़ों से पता चलता है कि १९६१ में कोयला खानों में लगे हुए श्रमिकों की उत्पादकता (प्रत्येक श्रमिक पारी की निपज) निम्न प्रकार थी (औसत) खनिक और ढोने वाले—१·२६ टन भूमि के अन्दर और खुले में काम करने वाले सभी श्रमिक—०·६६ टन; भूमि के ऊपर और भूमि

के अन्दर काम करने वाले सभी श्रमिक—०.४७ टन ।

कुछ उद्योगों में उत्पादकता और आय के सम्बन्ध में जो परिवर्तन हुए उनके अध्ययन की रिपोर्ट १९५५ में प्रकाशित हुई थी । इससे यह पता चलता है कि (१) कोयला खान उद्योग में श्रमिक और ढोने वालों की उत्पादकता में १९५१ और १९५४ के मध्य वृद्धि की दर ०.७१ प्रति माह थी । परन्तु उनकी औसत साप्ताहिक नकदी आय की वृद्धि की दर ०.२१ थी । (२) कागज उद्योग में १९४८ तथा १९५१ के बीच श्रमिकों की औसत आय तो बढ़ गई थी परन्तु उनकी उत्पादकता बढ़ोत्तरी का कोई प्रमाण नहीं मिलता था । (३) जूट कपड़ा उद्योग में उत्पादकता में वृद्धि की दर १९४८ और १९५१ के मध्य २.९ प्रति वर्ष थी और आय में वृद्धि की दर ३.७ थी तथा (४) सूती कपड़ा उद्योग में १९४८ और १९५१ के मध्य उत्पादकता में वार्षिक वृद्धि की दर २.२८ थी तथा आय में वृद्धि की दर १.१४ थी ।

१९५२ में कारखाना श्रमिकों की उत्पादकता के सूचकांक और वास्तविक आय के सूचकांक के सम्बन्धों का अध्ययन किया गया था और इसके जो परिणाम निकले वह निम्न तालिका से स्पष्ट हो जायेंगे * (पृष्ठ ५११ पर दी गई तालिका भी देखिये)

(आधार वर्ष—१९३९=१००)

वर्ष	वास्तविक आय सूचकांक	रोजगार सूचकांक	उत्पादन सूचकांक	उत्पादकता सूचकांक
१९३९	१००.०	१००	१००	१००.०
१९४०	१०८.१	१०४	१०८	१०४.२
१९४५	७४.९	१४१	११२	७९.५
१९४७	७८.४	१३७	९९	७२.५
१९४८	८४.४	१४१	११२	७९.४
१९४९	९१.७	१४३	१०८	७५.१
१९५०	९०.१	१४३.०	१०७.२	७४.८
१९५१	९२.२	१३५.७	१२०.४	८८.७
१९५२	१०१.८	१३६.७	१३३.२	९७.४
१९५३	९९.९	१३३.१	१४०.८	१०२.८
१९५४	१०९.७	१३५.९	१५३.६	१११.०

सुझाव —

कार्यकुशलता में उन्नति करने के हेतु यह नितान्त आवश्यक हो गया है कि श्रमिकों के कल्याण के लिये और उत्पादन की वैज्ञानिक प्रणालियों को लागू करने के लिए एक व्यापक कार्यक्रम को अपनाया जाय । तकनीकी और सामान्य शिक्षा का अधिक से अधिक विस्तार, मजदूरी में उपयुक्त स्तर तक वृद्धि काम करने के घण्टों में

* Indian Labour Gazette November 1955 and India 1961

कमी रहने-सहन और काम करने की दशाओं में आवश्यक सुधार, आदि से निश्चय ही श्रमिकों की कार्यकुशलता पर अनुकूल प्रभाव पड़ेगा। हमारे आदर्शों में आमूल परिवर्तन की भी बड़ी आवश्यकता है। जब तक श्रमिक के मन में असुरक्षा की भावना तथा बेरोजगारी का भय रहता है, और श्रमिक यह अनुभव करता है कि वह दूसरों के लिये कार्य कर रहा है तब तक उसकी कार्य-कुशलता में उच्चतम सीमा तक कभी भी वृद्धि नहीं हो सकती और वह कम से कम कार्य करने तथा अधिक से अधिक मजदूरी पाने का प्रयत्न करता रहेगा। उसे इस बात का अनुभव करा दिया जाना चाहिए कि उसके कार्य से किसी सामाजिक लक्ष्य की भी पूर्ति होती है। साथ ही उसे अपनी आवश्यकताओं के पूर्ण होने और किसी भी प्रकार का भय न होने का पूरा-पूरा आश्वासन मिलना चाहिए। इसी प्रकार श्रमिकों में उचित प्रकार की नैतिकता का विकास हो सकता है। यह बड़े दुःख का विषय है कि जब हमारे श्रमिकों में अधिक से अधिक और अच्छे से अच्छा काम करने की क्षमता है, तो भी परिस्थितियों ने उन्हें इस बात के लिये विवश कर दिया है कि वे अपने कर्त्तव्यों की ओर से उदासीन हो जाएं तथा देश के उत्पादन को इस प्रकार धक्का पहुंचाएं जिस प्रकार वह आजकल कर रहे हैं। हम यह आशा करते हैं कि समस्या पर उचित प्रकार से विचार किया जाएगा और श्रमिकों की कार्य-कुशलता के प्रश्न को केवल एक साधारण समस्या नहीं समझा जाएगा। यह हर्ष का विषय है कि तृतीय पचवर्षीय आयोजना में सुझाव के अनुसार भारतीय श्रम सम्मेलन ने अब कार्यकुशलता और कल्याण-संहिता बनाने के कार्य को अपने हाथ में ले लिया है।

१६

भारत तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन

(India and the International Labour Organisation)

जिन निराशावादियों को इस बात का विश्वास नहीं होता कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग से बहुत व्यावहारिक लाभ हो सकते हैं और जो अपनी इस विचारधारा का प्रमाण संयुक्तराष्ट्र संघ के कटु वाद-विवादों से देते हैं उनको अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संघ के उस कार्य से प्रोत्साहन प्राप्त हो सकता है जो कार्य यह संगठन ४६ वर्षों से शान्त भाव से और चुपचाप करता चला आ रहा है। प्रथम तो यह 'लीग ऑफ नेशन्स' (राष्ट्र संघ) के एक अंग की भांति कार्य करता रहा और अब कुछ वर्षों से यह संयुक्त राष्ट्र संघ की एक विशेषज्ञ संस्था की भांति कार्य कर रहा है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रारम्भ—

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना प्रथम महायुद्ध के अन्त में 'वरसाइल्स' की सन्धि (Treaty of Versailles) के परिणामस्वरूप हुई। इस सन्धि का प्राथमिक उद्देश्य शान्ति बनाए रखना था, परन्तु यह अनुभव किया गया कि "शान्ति केवल उसी दशा में स्थापित हो सकती है जबकि यह सामाजिक न्याय पर आधारित हो।" इसलिए यह विचार किया गया कि औद्योगिक परिस्थितियों के लिए कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियन्त्रणों का होना आवश्यक है। साथ ही श्रमिकों में शान्ति बनाए रखने के उद्देश्य की पूर्ति के लिए भी किसी अन्तर्राष्ट्रीय सुरक्षा की व्यवस्था करना नितान्त आवश्यक है। अतः २८ जून सन् १९१९ को "उच्च कोटि के समझौता करने वाले दल" (High Contracting Parties) श्रमिकों की दशाओं में सुधार करने के निमित्त किसी स्थायी संगठन की स्थापना करने पर सहमत हो गये। यह सुधार विभिन्न उपायों द्वारा किया जा सकता था जैसे "कार्य के घण्टों का नियमन और साथ ही साथ अधिक से अधिक कार्य दिवस और सप्ताह को निश्चित कर देना श्रम सम्भरण (Supply) का नियमन बेरोजगारी की रोकथाम निर्वाह के लिए पर्याप्त मजदूरी रोजगार से उत्पन्न होने वाली बीमारियों रोग और क्षति से श्रमिकों की सुरक्षा बालकों, किशोरों और स्त्रियों की सुरक्षा वृद्धावस्था और क्षति आदि के लिए प्रबन्ध अपने देश से बाहर जब श्रमिक दूसरे देशों में रोजगार पर लग जाते हैं तब उनके हितों की सुरक्षा संघ बनाने की स्वतन्त्रता के सिद्धान्त की मान्यता व्यावसायिक तथा तकनीकी शिक्षा की व्यवस्था तथा अन्य साधन।" अतः राष्ट्र संघ के एक अत्यन्त महत्वपूर्ण अंग के रूप में 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन' का निर्माण हुआ।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आधारभूत (Fundamental) सिद्धान्त —

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का आधार ऐसे ही आधारभूत सिद्धान्तों पर है

जो कि एक 'श्रमिक चार्टर' अथवा श्रमिकों की 'स्वतन्त्रता के चार्टर' में दिए गए हैं। राष्ट्र संघ के प्रत्येक सदस्य को इन सिद्धान्तों को स्वीकार करना होता है। यह सिद्धान्त निम्नलिखित हैं (१) मार्गदर्शक सिद्धान्त यह होगा कि श्रम को केवल पदार्थ अथवा वाणिज्य की वस्तु नहीं समझा जाना चाहिए। (२) मालिक और कर्मचारियों के सभी प्रकार के वैधानिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए संघ बनाने के अधिकारों को मान्यता प्रदान की जानी चाहिए। (३) देश और समय के अनुसार उचित प्रकार के जीवन-स्तर को बनाये रखने के लिए कर्मचारियों को पर्याप्त मजदूरी के भुगतान की व्यवस्था होनी चाहिए। (४) दिन में ८ घन्टे के काम और सप्ताह में ४८ घन्टे के काम के सिद्धान्त को उन सभी स्थानों पर लागू कर देना चाहिए जहां अब तक लागू नहीं है। (५) सप्ताह में कम से कम २४ घन्टे का अवकाश मिलना चाहिए और जहां भी सम्भव हो यह अवकाश रविवार को होना चाहिए। (६) बालकों से काम लेना बन्द कर देना चाहिए और किशोरों के रोजगार पर भी रोक-थाम होनी चाहिए, ताकि उनकी शिक्षा के चालू रहने के साथ साथ उन्हें उचित रीति से शारीरिक विकास का भी अवसर प्राप्त हो सके। (७) यह सिद्धान्त लागू करना चाहिए कि समान मूल्य के समान कार्यों के लिए स्त्री पुरुषों को समान पारिश्रमिक मिले। (८) श्रमिकों के लिए किसी देश में जो भी कानून बनाए जाएँ उनमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि सभी श्रमिकों को चाहे वे देशवासी हों अथवा विदेशी बराबर का आर्थिक व्यवहार मिले। (९) प्रत्येक राज्य को निरीक्षण की ऐसी पद्धति अपनानी चाहिए, जिसमें स्त्रियां भी भाग ले सकें ताकि कर्मचारियों की सुरक्षा के लिए जो भी नियम अथवा विधान बनें, उन्हें उचित रीति से लागू किया जा सके।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना से पूर्व श्रमिकों की दशाओं के लिए अन्तर्राष्ट्रीय नियमन —

यद्यपि १९१९ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का जन्म हो चुका था तथापि अन्तर्राष्ट्रीय संधि द्वारा श्रमिकों की दशाओं को नियमित करने का विचार प्राचीन काल से लोगों के मस्तिष्क में घूम रहा था। इंगलैंड के राबर्ट ओवन तथा फ्रांस के कुछ अर्थशास्त्रियों ने श्रमिकों के लिए कुछ अन्तर्राष्ट्रीय नियमन (Regulations) के बनाने पर सर्वेव से बल दिया था।। इसी विषय को लेकर जर्मन सरकार द्वारा आयोजित १८९० में प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हुआ और १८९७ में ब्रसल्स में एक अन्य सम्मेलन हुआ। सन् १९०० में श्रम विधान के लिए एक अन्तर्राष्ट्रीय परिषद् का निर्माण किया गया। इस परिषद् की १५ राज्यों में समितियां थीं और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रथम निदेशक एलबर्ट थोमस इस परिषद् की फ्रांस की समिति के सदस्य थे। १९०५ तथा सन् १९०६ में 'बर्न' नामक स्थान पर दो अधिकारिक (Official) श्रम सम्मेलनों का आयोजन किया गया। इनमें दो अन्तर्राष्ट्रीय अभिसमय पारित किये गए, जिनमें से एक में स्त्री श्रमिकों पर रात्रि में काम करना तथा दूसरे में दियासलाइयों के निर्माण में सफेद फास्फोरस का प्रयोग करना

निषिद्ध कर दिया गया।

यहां इस बात का भी उल्लेख किया जा सकता है कि सन् १८ ०—६० के बीच श्रमिकों की सुरक्षा के सम्बन्ध में पांच प्रस्तावों पर समान रूप से सभी ने अपनी सहमति प्रकट की थी। यह प्रस्ताव निम्नलिखित हैं (क) औद्योगिक रोजगार में बालकों के लिए कम से कम १४ वर्ष की आयु निर्धारित की जाए, (ख) काम करने के घन्टों का नियमन (ग) साप्ताहिक अवकाश (घ) किशोरों तथा स्त्रियों के लिए रात्रि में काम करने पर निषेध तथा (ङ) व्यवसाय सम्बन्धी संकटों से श्रमिकों की सुरक्षा।

सन् १८६० और १९२० की अवधि में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के समर्थक दस अन्य सिद्धान्तों पर सहमत हो गये। यह सिद्धान्त निम्नलिखित हैं (१) श्रम विधान से सम्बन्धित तथ्यों का अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विनिमय (२) फास्फोरस से सम्बन्धित विषों से सुरक्षा (३) सीसे से सम्बन्धित विषों से सुरक्षा (४) अन्य व्यावसायिक विषों और रोगों से सुरक्षा (५) सामाजिक बीमे में विशेषतया प्रत्येक देश के दुर्घटना बीमा नियमों में देशवासी और विदेशियों के लिए समान व्यवहार के सिद्धान्त को अपनाना (६) क्रमबद्ध निरीक्षण तथा काम का नियमन (७) स्त्रियों और किशोरों के लिए कार्य दिवस की सीमा का निर्धारण करना (८) बेरोजगारी की समस्या (९) प्रसव से पहले या बाद में स्त्रियों को रोजगार पर न लगाना तथा (१०) समुद्री कर्मचारियों की सुरक्षा।

इस प्रकार हमें ज्ञात होता है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना से पहले भी अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर अनेक श्रम समस्याओं पर विचार-विनिमय किया गया था। युद्ध की ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना ने पहली बार एक नियमित अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम समस्याओं को रक्खा तभी से यह सभी देशों के श्रमिकों की उन्नति के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर स्थापित करने में बहुत ही उपयोगी कार्य कर रहा है। सन् १९२० से आज तक अनेकानेक अभिसमयों के माध्यम से अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने उन सभी बातों को जिनका उल्लेख किया जा चुका है तथा अन्य कई बातों को अपना लिया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का संविधान :—

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अनेक देश सदस्य हैं। १९६९ में इनकी कुल संख्या १०० थी। इस प्रकार सरकारों द्वारा वित्त-प्रबन्ध (Financed) यह राष्ट्रों का परिवार है और श्रम संगठनों मालिकों तथा सरकारों के प्रतिनिधि इस पर प्रजातान्त्रिक रूप से नियंत्रण रखते हैं। इसका उद्देश्य संसार के सभी देशों में सामाजिक न्याय की प्रतिष्ठा करना है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए यह श्रमिकों और उनकी सामाजिक परिस्थितियों से सम्बन्धित तथ्यों का संकलन करती है उनके लिये न्यूनतम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर निर्धारित करती है और उनके प्रत्येक देश में लागू होने का पर्यवेक्षण करती है। भारत इस संगठन का प्रारम्भ से ही सक्रिय सदस्य रहा है और संसार के आठ

महत्वपूर्ण औद्योगिक देशों में इसकी गणना होती रही है। संगठन की कुल आय का लगभग ३ से ७ प्रतिशत तक भारत ने वार्षिक अंशदान दिया है। सन् १९६१ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के बजट का कुल व्यय १०४१४२७८ डालर था जबकि १९६० में यह व्यय ६११०००२ डालर था। १९६१ में कुल बजट में भारत का अंशदान ३२३,३११ अमरीकी डालर था (१५३८६६६ ८८ रु० अर्थात् ३.२८ प्रतिशत)। बजट में अंशदान के दृष्टिकोण से भारत का स्थान अमेरिका ब्रिटेन रूस, फ्रांस जर्मन गणतन्त्र व कनाडा के बाद आता है अर्थात् भारत का स्थान सातवां है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तीन प्रधान अंगों के माध्यम से काम करता है (क) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय जो इसका स्थायी सचिवालय है (ख) अंतरंग सभा (Governing Body) जो इसकी कार्यांग (Executive) है तथा (ग) अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय (International Labour Office) —

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय एक सचिवालय एक संसार सूचना केन्द्र तथा एक प्रकाशन गृह के रूप में कार्य करता है। यह श्रम सम्बन्धी समस्याओं पर अनुसंधान और अध्ययन करने के कार्यों में निरन्तर व्यस्त रहता है। भिन्न भिन्न देशों के विशेषज्ञ इसमें कार्य करते हैं जिनके ज्ञान अनुभव और परामर्श सभी सदस्य राष्ट्रों के लिए उपलब्ध है। एक महा निदेशक (Director General) इस कार्यालय का मुख्य कार्यांग अधिकारी है। अनेक देशों में इसकी शाखाएं खुली हुई हैं तथा उनमें इसके सम्वाददाता भी रहते हैं। सन् १९६१ में इसके कर्मचारियों की कुल संख्या ९१४ थी। इनमें से १४५ अधिकारी तो 'मेम्बर ऑफ डिवीजन' अथवा इससे ऊपर के पद के थे। जेनेवा में इसके कार्यालय में लगे भारतीय कर्मचारियों की संख्या १२ थी और इनमें से १४ अधिकारी 'मेम्बर ऑफ डिवीजन' अथवा इससे ऊपर के पदाधिकारी थे। इसमें एक भारतीय अधिकारी सहायक डायरेक्टर जनरल के पद पर आसीन है एक सलाहकार है एक सदस्य विभाग का अध्यक्ष है तथा एक महानिदेशक के कार्यालय में कार्यांग सहायक है। यह कार्यालय 'इन्टरनेशनल लेबर रिव्यू' के नाम से एक मासिक पत्रिका 'इण्डस्ट्री एण्ड लेबर' के नाम से एक पाक्षिक पत्रिका तथा कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं का भी प्रकाशन करता है। भारत सहित ६ देशों में इसकी शाखाएं खुली हुई हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की भारतीय शाखा देहली में है जिसके कर्मचारियों में एक डायरेक्टर श्री पी० के० आर० मेनन के अतिरिक्त अन्य पांच अधिकारी भी हैं। इस देहली शाखा की स्थापना सन् १९२८ में की गयी थी। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय भारत सरकार, मालिकों एवं श्रमिकों के संगठनों के मध्य घनिष्ट सम्पर्क बनाए रखती है और यह श्रम सम्बन्धी सूचनाओं को देने के लिए एक समाशोधन गृह (Clearing House) का कार्य करती है। यह भारत में सामाजिक व आर्थिक प्रगति से सम्बन्धित सभी सूचनाएं अपने मुख्य कार्यालय को देती रहती है। इसने श्रम

तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों से सम्बन्धित उपयोगी साहित्य का भी प्रकाशन किया है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कर्मचारियों में भारतीयों की संख्या अपर्याप्त है।

अंतरंग सभा (Governing Body) —

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की अंतरंग सभा इस संगठन की कार्यांग परिषद् है। यह कार्यालय के कार्य का सामान्य पर्यवेक्षण करती है इसके बजटों का निर्माण करती है और प्रभावात्मक कार्यक्रमों के लिए नीति बनाने और औद्योगिक विशेषज्ञ समितियों आदि की स्थापना करने का भी इस पर उत्तरदायित्व है। वर्ष में इसकी बैठकें साधारणतया तीन बार होती हैं तथा अध्यक्ष व उपाध्यक्ष का चुनाव हर वर्ष होता है। प्रारम्भ में इसके ३२ सदस्य थे जिनमें १६ सरकारों के प्रतिनिधि थे, ८ मालिकों के तथा ८ श्रमिकों के। सरकार के सदस्यों में से ८ स्थान स्थायी रूप से ८ औद्योगिक महत्व के सदस्य देशों के लिए सुरक्षित कर दिये गये थे। मई सन् १९५४ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की इस अंतरंग सभा में इस जापान और पश्चिमी जर्मनी का सम्मिलित कर लिया गया और प्रमुख औद्योगिक देशों के रूप में उनको कार्यांग में स्थायी स्थान दे दिया गया। स्थायी स्थानों की संख्या को बढ़ाकर ८ से १० कर दिया गया और इसमें से ब्राजील को स्थायी स्थान से निकाल दिया गया। इस प्रकार अंतरंग सभा में अब ४० सदस्य सम्मिलित हैं जिनमें २० सरकारों के १० मालिकों के और १० श्रमिकों के प्रतिनिधि होते हैं। कनाडा चीन फ्रांस भारत इटली जापान सोवियत संघ इंगलैंड संयुक्त राज्य अमेरिका तथा पश्चिमी जर्मनी १० स्थायी सदस्य हैं। इस प्रकार प्रारम्भ से ही भारत को अंतरंग सभा में एक स्थायी स्थान प्राप्त है। सरकार के स्थान के अतिरिक्त भारत के दो अन्य सदस्य भी अंतरंग सभा में इस समय हैं जो भारतीय मालिकों और श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं। जनवरी सन् १९५० में इस अंतरंग सभा का ११ वाँ अधिवेशन मैसूर में हुआ था। भारत के प्रतिनिधि श्री० एस० लाल इसके अध्यक्ष थे। १९६१ ६२ के लिए इस अंतरंग सभा का अध्यक्ष भारतीय सरकार के प्रतिनिधि डा० एस० टी० मैराजी को चुना गया। १९६१ तक इसके १५ अधिवेशन हो चुके थे।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन (International Labour Conference)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन श्रमिकों और उनके सामाजिक प्रश्नों के लिए एक विश्व संसद का कार्य करता है। इस सम्मेलन में जो साधारणतया प्रतिवर्ष होता है प्रत्येक सदस्य राष्ट्र चार प्रतिनिधियों का एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजता है। इनमें से दो प्रतिनिधि सरकार के एक प्रतिनिधि संगठित मालिकों का तथा एक प्रतिनिधि संगठित श्रमिकों का होता है। इसमें अनेक सलाहकार भी सम्मिलित होते हैं जिनकी संख्या सम्मेलन की कार्यावली के प्रत्येक प्रकरण के लिये दो से अधिक नहीं हो सकती। सरकारों मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि स्वतन्त्रता पूर्वक अपने विचार प्रकट करते हैं और अपना मत देते हैं, ताकि सभी प्रकार के

दृष्टिकोणों की पूरा रूप से अभिव्यक्ति हो सके। यह सम्मेलन अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की नीति निर्धारण संस्था के रूप में काम करता है। सम्मेलन का मुख्य काम यह है कि अभिसमय और सिफारिशों के रूप में अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक स्तर स्थापित हो सके।

सम्मेलन के अभिसमय (Conventions) और उनकी सिफारिशें (Recommendations) —

प्रतिनिधियों के दो-तिहाई मतों के बहुमत से सम्मेलन इस बात का निर्णय करता है कि जो भी सुझाव है, उसका रूप निम्नलिखित दो बातों में से कौन सा होना चाहिए, (क) एक सिफारिश' का रूप जो सदस्यों के सामने इस हेतु प्रस्तुत की जाए कि वह इस पर विचार करके अपने राष्ट्रीय विधान द्वारा अथवा किसी अन्य प्रकार से इसे कार्यान्वित करें। (ख) एक अन्तर्राष्ट्रीय 'अभिसमय' के मसौदे का रूप जिसको सदस्यों द्वारा अपनाया जाए। इन दो में चाहे कोई भी रूप हो यह प्रत्येक राष्ट्र के प्रतिनिधि के लिए अनिवार्य है कि वह जो भी विषय हो, उस सम्मेलन के अधिवेशन के समाप्त होने पर १८ महीनों की अवधि के भीतर अपने देश की संसद के सम्मुख अथवा किसी अन्य उचित अधिकारी संस्था के सम्मुख प्रस्तुत करे जो इसके लिए विधान बनाए अथवा इसको कोई और कार्य रूप दें। यदि यह अभिसमय संसद द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तब यह कहा जाता है कि इसे अपना (Ratified) लिया गया है। इसके बाद इसको लागू करना पड़ता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान में इस बात का उल्लेख किया गया है कि प्रत्येक राष्ट्र सदस्य को इस सम्बन्ध में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम कार्यालय को एक वार्षिक रिपोर्ट प्रस्तुत करनी होगी कि उसने किसी ऐसे अभिसमय को जिसको पारित करने में उसका भी हाथ था कार्यान्वित करने में क्या-क्या पग उठाए हैं। जब कोई राज्य सदस्य किसी अभिसमय को अपना लेता है तो उसे उसकी सरकार को लागू करना पड़ता है। यदि अपनाए गए अभिसमय को लागू नहीं किया जाता है अथवा किसी ऐसे अभिसमय को जिसको पारित करने में राज्य सदस्य का हाथ होता है मान्यता नहीं दी जाती है तो उसके विरुद्ध मालिकों या श्रमिकों द्वारा शिकायत की जा सकती है। इस प्रकार प्रत्येक राज्य सदस्य को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमयों को अपनाने या अस्वीकार करने के पूरे पूरे अधिकार प्राप्त हैं।

यह प्रस्ताव या अभिसमय (Conventions) और सिफारिशें (Recommendations) श्रम विधान बनाने तथा श्रम सम्बन्धी अन्य पग उठाने के लिए न्यूनतम अन्तर्राष्ट्रीय स्तर निर्धारित करती हैं। यह अभिसमय और सिफारिशें यत्नपूर्वक की गयी खोजों और वाद-विवादों पर आधारित होती हैं और एक प्रकार से यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संहिता का निर्माण करती हैं। क्योंकि सम्मेलन के दो-तिहाई बहुमत से इनको अपनाया जाना आवश्यक होता है, इसलिए इनसे इस बात की ओर भी संकेत मिल जाता है कि विश्व के समझदार व्यक्ति इनमें दी गई बातों से सहमत

है। सन् १६१६ में हुए प्रथम सम्मेलन से लेकर जून १६६२ तक इस सम्मेलन ने अपने ४६ अधिवेशनों में ११८ अभिसमय और ११७ सिफारिशें अपनाई हैं। इन अभिसमय और सिफारिशों में काम करने के घण्टों, सवेतन छुट्टियां, स्त्रियों के कार्य, बच्चों की सुरक्षा, औद्योगिक दुर्घटनाओं की रोकथाम और उनकी क्षतिपूर्ति, बेरोजगारी, बीमारी, वृद्धावस्था तथा मृत्यु आदि में बीमा, न्यूनतम मजदूरी, उपनिवेशों की श्रम समस्यायें, समुद्री कर्मचारियों और मछेरों की दशायें आदि जैसे प्रश्नों का विवेचन किया गया है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है सम्मेलन के निर्णय स्वतः से आप सदस्यों के लिए अनिवार्य नहीं हो जाते परन्तु सदस्य देशों की सरकारों का कर्त्तव्य है कि वे इन अभिसमयों को अपने-अपने राष्ट्रीय विधानों के समक्ष प्रस्तुत करें। यदि विधान में इन अभिसमयों को स्वीकार कर लिया जाता है तब सरकार को इन्हें अनिवार्य रूप से लागू करना पड़ता है।

किसी भी अभिसमय को या तो समग्रतः स्वीकार करना होता है अथवा एकदम अस्वीकार। परन्तु किसी सिफारिश को पूर्णतया लागू करना आवश्यक नहीं है। यह तो राष्ट्रीय कार्यक्रम के लिए पथ प्रदर्शन मात्र है। सदस्य राष्ट्र सिफारिशों को अपने देश की परिस्थितियों के अनुसार कार्यरूप दे सकते हैं। भारत ने अब तक २७ अभिसमय अपनाए हैं जिनमें से २५ लागू हैं लेकिन इसके साथ ही साथ भारत ने अन्य अभिसमयों के आवश्यक तत्वों को भी अपने राष्ट्रीय विधान में सम्मिलित कर लिया है।

फिलाडेलफिया की घोषणा (Declaration of Philadelphia)—

सन् १६३६ में युद्ध छिड़ जाने के उपरान्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यालय को जनेवा से हटाकर कनाडा में 'मांट्रियल' नामक स्थान पर ले जाया गया था। यद्यपि लीग ऑफ नेशन्स (राष्ट्रसंघ) इस समय अधिक क्रियाशील नहीं रहा था तथापि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने मांट्रियल में अपना कार्य जारी रक्खा। मई सन् १६४४ में फिलाडेलफिया की घोषणा में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के उद्देश्यों और लक्ष्यों की फिर से व्याख्या की गई। यह घोषणा अन्तर्राष्ट्रीय नीति में सामाजिक लक्ष्यों को प्राथमिकता देती है और इस उद्देश्य से उन परिस्थितियों की भी व्याख्या करती है जिनमें कि सभी मनुष्यों को चाहे वह किसी भी जाति या धर्म के हों अथवा स्त्री या पुरुष हों इस बात का अधिकार हो कि वह अपने भौतिक कल्याण और आध्यात्मिक विकास के लिये स्वतन्त्र रूप से और आत्म-सम्मान से कार्य कर सकें और उन्हें आर्थिक सुरक्षा तथा समान अवसर आदि प्राप्त हो सकें।

यह घोषणा कई बातों पर बल देती है जैसे पूर्ण रोजगार, जीवन स्तर को ऊंचा करना, श्रमिकों को प्रशिक्षण के लिए सुविधाएं देना, मजदूरी और श्रम से सम्बन्धित नीति अपनाना, काम करने की परिस्थितियों और समय में सुधार करना, सामूहिक सौदाकारी के अधिकार को मान्यता देना, मालिकों और श्रमिकों के मध्य सहयोग स्थापित करना, सामाजिक सुरक्षा साधनों का विस्तार करना, कल्याण

कार्य शिक्षात्मक और व्यावसायिक अवसरों में समानता प्रदान करना आदि आदि। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आधारभूत सिद्धान्तों को फिलाडेलफिया की घोषणा में निम्नलिखित शब्दों में फिर से दोहराया गया है—

"(क) श्रम कोई पदार्थ नहीं है। (ख) अभिव्यक्ति (Expression) तथा साहचर्य (Association) की स्वतन्त्रता निरन्तर प्रगति के लिए बहुत आवश्यक है। (ग) यदि किसी स्थान पर भी निर्धनता होती है तो उसके कारण हर स्थान पर सम्पन्नता को खतरा उत्पन्न हो जाता है। (घ) दरिद्रता और अभाव के विरुद्ध युद्ध करने के लिए प्रत्येक देश में पूर्ण रूप से शक्ति लगानी होगी। इसके लिए यह भी आवश्यक है कि निरन्तर तथा पूर्ण रूप से अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ही प्रयत्न किए जाएं। ऐसे प्रयत्न इस प्रकार हों कि मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधि सरकार के प्रतिनिधियों के साथ समान प्रतिष्ठा से स्वतन्त्र रूप से वाद विवाद कर सकें तथा अपने सम्मान को बढ़ाने तथा कल्याण के लिए लोक-तन्त्रात्मक निर्णय कर सकें"।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा संयुक्त राष्ट्र संघ—(I.L.O. and U.N.O.)

संयुक्त राष्ट्र संघ के बनने के पश्चात् इस बात की व्यवस्था की गई कि संयुक्त राष्ट्र संघ और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मध्य नियमित सम्पर्क और सहयोग बना रहे। एक समझौते द्वारा जिसको प्रथम तो अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मॉन्ट्रियल सम्मेलन में अपनाया गया तत्पश्चात् राष्ट्रीय संघ की सामान्य सभा में भी अपनाया गया, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अब राष्ट्रीय संघ से एक विशेषज्ञ ऐजेंसी के रूप में सम्बन्धित हो गया है। सन् १९४५ के पेरिस सम्मेलन तथा सन् १९४६ के मॉन्ट्रियल सम्मेलन में इस विषय में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान में संशोधन करने की व्यवस्था पर प्रस्ताव भी पारित कर दिए गए थे।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की विभिन्न समितियाँ —

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का कार्य औद्योगिक समितियों विशेषज्ञ समितियों तथा पत्र-व्यवहार समितियों प्रादेशिक समितियों और अन्य विशेष सभाओं तथा सम्मेलनों द्वारा भी सम्पादित होता है। श्रम संगठन द्वारा स्थापित औद्योगिक समितियाँ निम्नलिखित की उद्योगों के लिये हैं — कोयला खान अन्तर्देशीय यातायात, लोहा और इस्पात धातु का व्यापार, कपड़ा उद्योग भवन निर्माण सिविल इन्जिनियरिंग तथा सार्वजनिक कार्य पैट्रोल का उत्पादन तथा उसका विशुद्धीकरण रासायनिक उद्योग तथा बागान। यह समितियाँ त्रिदलीय होती हैं। इन समितियों में प्रत्येक सदस्य राष्ट्र से २ सरकार के २ मालिकों के और २ श्रमिकों के प्रतिनिधि होते हैं। भारत पैट्रोल के उत्पादन और विशुद्धीकरण के उद्योग को छोड़कर अन्य सभी औद्योगिक समितियों का सदस्य रहा है और इसने उनकी कार्यवाहियों में सक्रिय भाग लिया है। नवम्बर १९५९ से यह पैट्रोल समिति का भी सदस्य हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने कृषि सामाजिक बीमा दुर्घटनाओं की रोकथाम औद्योगिक स्वास्थ्य विज्ञान स्त्रियों का कार्य बाल श्रमिक प्रवासिता

और सामियकी जैसी समस्याओं के लिए विशेषज्ञ समितियों तथा पत्र व्यवहार समितियों की भी स्थापना की है। भारत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की इन समितियों और सम्मेलनों में सक्रिय भाग लेता है। भारत ने जेनेवा में 'कोन्सेलेट जनरल आफ इण्डिया' के कार्यालय में एक श्रम अधिकारी की नियुक्ति की है जिससे वह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कार्यवाहियों के साथ निकट सम्पर्क रख सके। यह विभिन्न समितियों और सम्मेलनों में भारत का प्रतिनिधित्व करता है। इसका पदनाम अब अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सलाहकार (International Labour Adviser) कर दिया गया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रादेशिक श्रम सम्मेलन तथा एशियाई कार्य—
(Regional Labour Conferences and Asian Activities of I. L. O.)

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन का एक अन्य महत्वपूर्ण कार्य प्रादेशिक सम्मेलनों की व्यवस्था करना है। यह सम्मेलन सभी एशियाई देशों के लिए, जिनमें भारत भी है, बड़ा महत्व रखते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान में यह बात दी हुई है कि अभिसमय अथवा सिफारिशों का निर्माण करते समय उन देशों का भी उचित रूप से ध्यान रखना चाहिये जिनमें जलवायु, औद्योगिक विकास की अपूर्णता या किन्हीं अन्य विशेष परिस्थितियों के कारण औद्योगिक अवस्थाओं में बहुत भिन्नता पाई जाती है तथा सम्मेलन को इन देशों के लिए सुधार के सुझाव देने चाहिएं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के विचार में इस उद्देश्य की पूर्ति का सबसे अच्छा मार्ग यही था कि सदस्य राज्यों के प्रादेशिक श्रम सम्मेलनों की व्यवस्था की जाए। इसलिए १९३६ और १९३९ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने अमेरिकन राज्यों में प्रथम तथा द्वितीय प्रादेशिक श्रम सम्मेलनों का आयोजन किया। समय समय पर एशियाई देशों के लिये भी इस प्रकार के सम्मेलनों का सुझाव दिया गया। सन् १९२७–२८ में जापान के प्रतिनिधि तथा सन् १९३० में भारत के श्री एस० सी० जोशी ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन को इस बात के लिए प्रोत्साहित करने का प्रयत्न किया कि वह एक विस्तृत एशियाई श्रम सम्मेलन को बुलाए। श्री जोशी ने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये एक प्रस्ताव का मसौदा रखा जिसे 'कोरम' के अभाव में अस्वीकार कर दिया गया। लेकिन सन् १९३१ में जब इसी प्रस्ताव को भारत के श्री आर० आर० बाखले द्वारा पुनः रखा गया तो यह निर्विरोध स्वीकार कर लिया गया। परन्तु फिर भी अनेक कारणों से एशियाई सम्मेलन की व्यवस्था करना तो सम्भव नहीं हो सका यद्यपि संचालक सभा ने इसके महत्व का अनुभव अवश्य कर लिया था। १९३४ तथा १९३५ में इस बात के लिये प्रस्ताव पारित किये गये कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अन्तर्गत ही एक एशियाई समिति की स्थापना की जाय जो समिति प्रत्येक वर्ष के बाद अपनी सभा किसी एशियाई देश में करे।

परन्तु यह सन् १९४४ में ही सम्भव हो सका कि फिलाडेल्फिया में हुए

२६वें अधिवेशन में एक प्रस्ताव पारित किया गया जिसमें इस बात की सिफारिश की गई कि यदि सम्भव हो तो एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन की व्यवस्था शीघ्रातिशीघ्र की जाय ताकि एशियाई देशों की विशिष्ट समस्याओं पर उचित रूप से विचार विनिमय किया जा सके। भारत सरकार ने भारत में एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन का आयोजन करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-संगठन को आमन्त्रित किया और इस आमंत्रण को स्वीकार भी कर लिया गया। सन् १६४७ में २७ अक्तूबर से लेकर ८ नवम्बर तक एक प्रारम्भिक एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन नई दिल्ली में हुआ। सम्मेलन में अनेक देशों के प्रतिनिधि-मण्डलों ने भाग लिया था। इनमें निम्नलिखित देश थे — अफगानिस्तान आस्ट्रेलिया बर्मा लंका कोचीन-चायना चीन फ्रांस भारत में फ्रांस की बस्तियाँ इंगलैंड मलाया हिन्दचीन नैदरलैंड न्यूजीलैंड स्याम सिंगापुर, भारत और पाकिस्तान। इस सम्मेलन में पर्यवेक्षक प्रतिनिधि मण्डल अमेरिका और नैपाल से भी आये तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की अन्तरंग सभा का भी एक प्रतिनिधि मण्डल था। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की अन्तरंग सभा के अध्यक्ष श्री जी० एम० ईवान्स ने इस सम्मेलन का उद्घाटन किया। इस अवसर पर पं० नेहरू ने इस बात की आशा प्रकट की कि सम्मेलन एशिया के सामान्य व्यक्ति को दृष्टिकोण में रखकर सभी समस्याओं पर विचार करेगा ताकि केवल यह नहीं कि "इस या उस देश में जीवन-स्तर ऊंचा हो वरन् प्रत्येक स्थान पर जीवन-स्तर ऊंचा हो सके। भारत सरकार के तत्कालीन श्रम मंत्री श्री जगजीवन राम को इस सम्मेलन का सर्व सम्मति से अध्यक्ष निर्वाचित किया गया। अपने अध्यक्ष पद से बोलते हुए उन्होंने कहा था कि एशियाई प्रादेशिक श्रम सम्मेलनों का कार्य इस विषय पर विचार करना होना चाहिए कि आर्थिक विकास की भावी योजनाओं में हम कैसे सहयोग दें और इस प्रकार के विकास से जो राष्ट्रीय सम्पत्ति में वृद्धि हो उसका समय-समय पर कैसे मूल्यांकन करें तथा न्यायोचित आधार पर इस सम्पत्ति के वितरण करने की योजनाओं का कैसे निर्माण करें। इस सम्मेलन में २१ प्रस्ताव पारित किए गये।—इनमें से महत्वपूर्ण प्रस्ताव निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित थे सामाजिक सुरक्षा श्रम नीति उत्पादन कार्यकुशलता कृषि उत्पादन तथा सहकारिता पद्धति का महत्व रोजगार सेवाएं, पारिवारिक बजट पूछताछ कार्यवाही का कार्यक्रम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एशियाई कार्य में तीव्रता जापान और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की वित्तीय व्यवस्था तथा श्रम संगठन के सामाजिक उद्देश्य।

उसी समय से एशिया में प्रादेशिक सम्मेलन नियमित रूप से होने लगे हैं और अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन एशिया और उसकी समस्याओं में अधिक रुचि प्रकट कर रहा है। अंतरंग सभा के १११ वें अधिवेशन ने एशियाई समस्याओं तथा समान समस्याओं के एशियाई पहलुओं पर अंतरंग सभा को परामर्श देने के लिए त्रिपक्षीय आधार पर एक एशियाई सलाहकार समिति की स्थापना करने का निश्चय किया।

२४ जून सन् १९५० को जेनेवा में इस समिति की प्रथम सभा का आयोजन किया गया। तब से नवम्बर १९५१ तक इस एशियाई सलाहकार समिति के ग्यारह अधिवेशन हो चुके हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का द्वितीय एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन जनवरी सन् १९५० में श्रीलंका में 'नुवारा इलियो' नामक स्थान पर हुआ। भारत ने इस सम्मेलन में एक त्रिदलीय प्रतिनिधि-मण्डल भेजा था। इस सम्मेलन में ११ प्रस्ताव स्वीकार किए गए जो निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित थे :—अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एशियाई कार्यों में तीव्रता लाना अंतरंग सभा में एशियाई प्रतिनिधित्व एशियाई समुद्री कर्मचारी तकनीकी सहायता श्रम निरीक्षण सहकारिता आन्दोलन श्रमिक कल्याण व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण कृषि कर्मचारी और उनकी मजदूरी श्रम शक्ति का उचित संगठन आदि। तीसरा एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन सितम्बर, सन् १९५३ में जापान में टोकियो में हुआ। सम्मेलन में पहले की भांति अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के डायरेक्टर जनरल की रिपोर्ट पर विचार विनिमय हुआ। इस सम्मेलन ने बहुत तर्क वितर्क के उपरान्त तीन मुख्य विषयों पर प्रस्ताव पारित किए,—एशियाई देशों में मजदूरी की समस्यायें की नीति श्रमिकों के मकानों की समस्यायें तथा किशोरों की सुरक्षा।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एशियाई प्रादेशिक सम्मेलन का चौथा अधिवेशन नवम्बर, सन् १९५७ ई० में नई दिल्ली में हुआ। इसकी कार्यावली में डायरेक्टर जनरल की रिपोर्ट के अतिरिक्त निम्नलिखित विषय थे (१) एशियाई देशों में छोटे पैमाने के दस्तकारी उद्योगों में श्रम और सामाजिक समस्यायें (२) कृषि में कार्य करने वाले स्वतन्त्र और अर्द्ध-स्वतन्त्र वर्गों के श्रमिकों जैसे बटाई पर कार्य करने वाले और आसामी कृषक, के जीवन और कार्य की दशायें तथा (३) श्रमिक और प्रबन्धकों के पारस्परिक सम्बन्ध। इस सम्मेलन का उद्घाटन पं० नेहरू ने किया था। उन्होंने श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने पर विशेष बल दिया। केन्द्रीय श्रम तथा आयोजना मंत्री श्री गुलजारीलाल नन्दा इस सम्मेलन के अध्यक्ष थे।

इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारत तथा विभिन्न एशियाई देशों में सम्मेलनों के लिये सामग्री एकत्रित करने सहकारिता आन्दोलन का अध्ययन करने सामाजिक सुरक्षा पर सलाह देने श्रम शक्ति के क्षेत्र में तकनीकी सहायता की आवश्यकताओं की जांच करने उत्पादकता और प्रशिक्षण आदि के लिए अनेक मिशन भेजे हैं। इसने एशियाई देशों में केवल अपने विशेषज्ञ ही नहीं भेजे हैं अपितु एशियाई देशों के नागरिकों के लिए अधिछात्रवृत्तियां और छात्रवृत्तियां भी प्रदान की हैं। सन् १९५९ में जेनेवा में हुये अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के ४३ वें अधिवेशन में भारत और अमेरिका ने संयुक्त रूप से यह प्रस्ताव रखा कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की क्षेत्रीय कार्यवाहियों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिये। एशियन सलाहकार समिति के आधार पर ही अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एक विशेष

अफ्रीकन सलाहकार समिति बनाई गई है। दिसम्बर १९६० में लागोस (Lagos) नामक स्थान (नाइजीरिया) में पहला अफ्रीकन प्रादेशिक सम्मेलन हुआ जिसमें अफ्रीका के १० राज्यों ने भाग लिया। इस सम्मेलन में अफ्रीका में व्यावसायिक और तकनीकी प्रशिक्षण तथा मालिक-मजदूर सम्बन्धों पर विचार विमर्श हुआ।

यहां यह बात भी विशेष उल्लेखनीय है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने एशियाई श्रमिकों के लिए व्यावसायिक प्रशिक्षण पाठ्यक्रम भी प्रारम्भ किए हैं। इस कार्यक्रम के अनुसार पहला प्रादेशिक कार्यालय सन् १९४९ में बना जबकि बंगलौर में एशियाई श्रमशक्ति फील्ड कार्यालय (Asian Manpower Field Office) के नाम से एक संस्था की स्थापना हुई। इसका उद्देश्य यह था कि संसार की श्रम-शक्ति का कठिन कार्यों में भी उचित प्रकार से उपयोग हो सके। यह कार्यालय एशियाई तथा सुदूर पूर्व के देशों को उनके तकनीकी प्रशिक्षण कार्य क्रम में सुधार करने के लिए तकनीकी सहायता प्रदान करता है। यह तकनीकी प्रशिक्षण में एक प्रादेशिक अनुसन्धान तथा सूचना केन्द्र के रूप में भी कार्य करता है। भारतीयों के लिए अन्तर-कार्य प्रशिक्षण कार्य-क्रम के दो अधिवेशन पहले ही हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अर्द्ध-विकसित देशों के लिए 'तकनीकी सहायता कार्यों' के अन्तर्गत २६ अप्रैल सन् १९५१ के अन्तर्राष्ट्रीय श्रमसंगठन के साथ किये गये समझौते पर भारत सरकार ने हस्ताक्षर किये। श्रम सांख्यिकी पर दिसम्बर, १९५१ में नई दिल्ली में कारखाना निरीक्षण पर फरवरी १९५२ में कलकत्ते में पर्यवेक्षण प्रशिक्षण पर अगस्त १९५७ में सिंगापुर में और व्यावसायिक मार्ग प्रदर्शन तथा रोजगार सम्बन्धी परामर्श पर नवम्बर १९५७ में नई दिल्ली में प्रादेशिक गोष्ठियों का आयोजन किया गया। एशियाई देशों के नागरिकों के लिए सहकारिता पर १९५२ में कोपेनहेगन १९५३ तथा १९५४ में लाहौर, १९५५ में बांडुङ्ग, १९५६ में मैसूर तथा १९५७ में श्री लंका में प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की व्यवस्था की गयी। भारत सरकार ने अनेक समस्याओं पर तकनीकी परामर्श और सहायता की प्रार्थना की है। सन् १९५१ की शरद ऋतु में कर्मचारी 'राज्य बीमा योजना' के संगठन तथा चिकित्सा लाभ के लिए डाक्टरों की सूची प्रणाली पर परामर्श देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के तीन विशेषज्ञों की सेवायें भारत द्वारा प्राप्त की गई। दिसम्बर, १९५२ में परिणाम देखकर भुगतान करने की पद्धति पर अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के पांच विशेषज्ञ भारत में आये। इन्होंने कपड़ा तथा इञ्जीनियरिंग उद्योगों में इन विषयों पर तकनीकी सहायता प्रदान की। फरवरी १९५३ में बागान कर्मचारियों को अन्य रोजगार प्राप्त करने के सम्बन्ध में परामर्श देने के निमित्त एक जापानी व्यावसायिक प्रशिक्षण के विशेषज्ञ की सेवायें अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के द्वारा प्राप्त की गयी। फरवरी १९५३ में 'अन्तर कार्य प्रशिक्षण तकनीक' को प्रसार और बढ़ावा देने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के एक विशेषज्ञ की सेवायें भी प्राप्त की गयीं। १९५४ में एक अन्य विशेषज्ञ आये। जून १९५६ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने दो प्रवर निरीक्षक भेजे जिनमें से एक तो इञ्जीनियरिंग और उसमें सम्बद्ध

व्यवसायों के लिए था तथा दूसरा मशीनों को चालू रखने का विशेषज्ञ था। भारत ने सन् १९५७ तथा १९५८ में भी उत्पादकता रोजगार सूचना मैन ह्यौनों के लिए व्यावसायिक शिक्षा व्यावसायिक निर्देशन तथा सुरक्षा आदि के क्षेत्रों में विशेषज्ञों की सेवायें प्राप्त कीं। १९५८ में औद्योगिक सम्बन्धों के ब्रिटिश विशेषज्ञ प्रो० जे० एच० रिचर्डसन की सेवायें प्राप्त की गईं। १९५९ में भी विशेषज्ञों की सेवायें चालू रहीं। प्रशिक्षण और श्रमिक शिक्षा के लिए भी विशेषज्ञ आ चुके हैं। श्रमिक संघवाद, श्रम प्रशासन सामाजिक सुरक्षा श्रमिक शिक्षा सुरक्षा निरीक्षण आदि के प्रशिक्षण के लिए ५० प्रशिक्षार्थियों को विभिन्न देशों में भेजा गया। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की छात्रवृत्ति लिए हुए इथियोपिया मलाया श्रीलंका व चीन के चार छात्रों ने भारत में प्रशिक्षण पाया है। १९६० में उत्पादकता तथा खानों की सुरक्षा पर तीन विशेषज्ञ आये। इनके अतिरिक्त इञ्जीनियरिंग पर एक अन्य विशेषज्ञ कार्य करता रहा। सात भारतीयों को विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण के लिए दूसरे देशों में भेजा गया तथा ईराक व बर्मा से चार व्यक्ति प्रशिक्षण हेतु आये। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के विशेषज्ञों के रूप में दो भारतीयों को विदेशों में भेजा गया है जिनमें से एक कुटीर उद्योगों के क्षेत्र में सहायता देने के लिए बर्मा गया है तथा दूसरा सहकारिता के क्षेत्र में सहायता देने के लिए फिलीपाइन्स गया है। कुछ अन्य विशेषज्ञों को भी भारत से बुलाया गया है। १९६१ के अन्त तक सात भारतीय विशेषज्ञों के रूप में दूसरे देशों में कार्य कर रहे थे। नवम्बर १९६० में नई दिल्ली में एक 'अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का एशियाई प्रादेशिक सामाजिक सुरक्षा में प्रशिक्षण पाठ्यक्रम' का भारत सरकार तथा अन्तर्राष्ट्रीय सामाजिक सुरक्षा परिषद के सहयोग से आयोजन किया गया। इसमें विभिन्न एशियाई देशों के तीस व्यक्तियों ने भाग लिया।

प्रादेशिक सम्मेलनों का महत्व तथा उनसे लाभ —

प्रादेशिक श्रम सम्मेलनों के अनेक लाभ हैं और यदि स्थानीय आवश्यकताओं को ध्यान में रखना है तो ऐसे सम्मेलनों की बहुत आवश्यकता है। एशिया की श्रम शक्ति की कुछ अपनी विशेषतायें हैं जो पश्चिमी औद्योगिक उन्नत देशों में नहीं पाई जातीं। एशियाई देशों में यह भावना बहुत दिनों से चली आ रही है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आम सम्मेलनों में उनके विशेष सामाजिक तथा आर्थिक समस्याओं पर पर्याप्त रूप से ध्यान नहीं दिया जाता क्योंकि इन सम्मेलनों में पश्चिमी देश अधिकतर छाए हुए हैं। इस प्रकार के प्रादेशिक सम्मेलन होने से ऐसी शिकायतें दूर हो जायेंगी। भारत और अन्य एशियाई देश अब अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में दिन प्रतिदिन अपना महत्वपूर्ण स्थान ग्रहण करते जा रहे हैं। अतः यह स्वाभाविक ही है कि वे इस प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों के केवल पर्यवेक्षक (Observers) मात्र न रहें अपितु उनमें अधिक से अधिक सक्रिय भाग लें। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की जब स्थापना हुई थी तब पश्चिमी देशों ने औद्योगिक विकास में परिपक्वता प्राप्त कर ली थी और उनकी मुख्य समस्यायें पूँजी तथा श्रम में समझौता श्रमिकों की परि

स्थितियों में सुधार तथा सामाजिक सुरक्षा आदि थीं। यह समस्यायें एशिया के लिये भी बहुत महत्वपूर्ण हैं लेकिन जैसा कि १९४७ में एशियाई श्रम सम्मेलन का उद्घाटन करते हुए प० नेहरू ने अपने भाषण में कहा था कि एशियाई देशों की मुख्य आर्थिक और श्रम समस्यायें ऐसी हैं जिनके अन्तर्गत हमें यह देखना है कि मध्यकालीन कृषि अर्थ व्यवस्था को बदल कर आधुनिक वैज्ञानिक कृषि और औद्योगिक अर्थ व्यवस्था में कैसे लाया जाये। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने इन समस्याओं पर बिल्कुल ध्यान नहीं दिया था। प्रादेशिक सम्मेलन अब इन दोषों को दूर कर देंगे। इन सम्मेलनों के उपरान्त अब इस बात का अनुभव कर लिया गया है और इस बात पर जोर भी दिया जा रहा है कि अधिक विकसित देशों द्वारा अर्द्ध-विकसित देशों को तकनीकी और आर्थिक सहायता मिलने की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अब एशियाई देशों की ओर भी अधिक ध्यान दे रहा है।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि एशियाई समस्याओं के लिए प्रादेशिक रूप से जो प्रयत्न किये जा रहे हैं वह सराहनीय है। परन्तु इसके साथ ही हमें अवरम सभा के अध्यक्ष की इस चेतावनी को भी ध्यान में रखना चाहिए कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के मूल आधारों में जो सामान्य आदर्श और सामान्य जीवन स्तर का आधार है उसमें किसी प्रकार की रुकावट नहीं पड़नी चाहिए। एशिया के आर्थिक पिछड़ेपन को केवल एक अस्थायी अयोग्यता समझना चाहिये और जितनी जल्दी सम्भव हो इसको समाप्त कर देने के प्रयत्न करने चाहियें। यदि प्रादेशिक सम्मेलनों से प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से इस पिछड़ेपन को स्थिर रखने की ओर संकेत मिलता है और यह एशिया को एक हीन आर्थिक इकाई के रूप में मानकर चलते हैं तो इससे लाभ के स्थान पर हानि ही होगी। प्रादेशिक श्रम सम्मेलनों को एशिया के आर्थिक पिछड़ेपन को दूर करने की भावना से ही कार्य करना चाहिये जिससे इन देशों के ग्रामीण और शहरी श्रमिक उसी प्रकार का जीवन स्तर अपना सकें और सामाजिक बुराइयों से अपनी उसी प्रकार रक्षा कर सकें जिस प्रकार कि प्रगतिशील देशों के श्रमिक करते हैं। इसके साथ ही जो भी प्रादेशिक कार्य होते हैं उनको अन्तर्राष्ट्रीय ढांचे में ही करना चाहिये क्योंकि निर्धनता और अभाव की समस्याओं के समाधान के लिए केवल उन्हीं लोगों का सहयोग नहीं चाहिये जो उनसे पीड़ित हैं वरन् सभी लोगों के सहयोग की आवश्यकता है।

भारत द्वारा अपनाए गए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय —

अब हम अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के उन अभिसमयों की विवेचना करेंगे जिन्हें भारत ने अपना लिया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन ने जून १९६२ तक ११८ अभिसमय और ११७ सिफारिशें पारित की हैं जिनमें से केवल २७ अभिसमय भारत द्वारा अपनाए गए हैं। इनमें से दो अभिसमय अब प्रचलन में नहीं है। यह अभिसमय निम्नलिखित हैं—

(१) काम के घन्टों (उद्योग) से सम्बद्ध सन् १९१९ का अभिसमय न० १–

यह अभिसमय औद्योगिक व्यवसायों में काम करने के घंटों को एक दिन में ८ और सप्ताह में ४८ तक सीमित करने के सम्बन्ध में है। इस अभिसमय को भारत ने अपने लिए पारित किए गए कुछ विशेष नियमों के आधार पर १४ जुलाई १९२१ को अपनाया था। यह आधार यह था कि ब्रिटिश भारत में उन समस्त श्रमिकों के लिए जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले उद्योगों में काम करते हैं या खानों में काम करते हैं या रेलवे कार्य के उन विभागों में कार्य करते हैं जो किसी उचित प्राधिकारी द्वारा निश्चित कर दी गई हैं '६० घंटे प्रति सप्ताह' का सिद्धान्त लागू किया जाए।

(२) बेरोजगारी से सम्बद्ध १९१९ का अभिसमय न० २—इस अभिसमय को अपनाया तो गया था परन्तु १९३८ में त्याग दिया गया।

(३) स्त्रियों के लिये रात्रि में काम करने से सम्बद्ध १९१९ का अभिसमय न० ४—यह अभिसमय रात्रि में स्त्रियों को कार्य पर लगाना निषेध करता है। भारत सरकार ने एक विशेष नियम के आधार पर १४ जुलाई १९२१ को इसे अपनाया था। इस विशेष नियम के अनुसार भारत सरकार को यह अधिकार है कि किसी भी औद्योगिक व्यवसाय के सम्बन्ध में इस अभिसमय को निलम्बित (Suspend) कर सकती है।

(४) किशोरों का रात्रि में काम करने से सम्बद्ध १९१९ का अभिसमय न० ६—इस प्रस्ताव में उद्योगों में लगे हुए किशोरों को रात्रि में रोजगार पर लगाना निषिद्ध है। एक विशेष नियम के आधार पर १४ जुलाई १९२१ को इसे अपनाया गया था। अर्थात् भारतीय कारखाना अधिनियम द्वारा परिभाषित कारखानों में १४ वर्ष से कम आयु के बालकों को रात्रि के समय कार्य पर नहीं लगाया जा सकता।

(५) कृषि कर्मचारियों के संगठन और समुदाय बनाने के अधिकार से सम्बद्ध १९२१ का अभिसमय न० ११—यह ११ मई १९२३ को अपनाया गया।

(६) साप्ताहिक अवकाश (उद्योग) अभिसमय नामक १९२१ का अभिसमय न० १४—यह अभिसमय औद्योगिक व्यवसायों में कर्मचारियों के लिये सप्ताह में २४ घंटे के अवकाश की व्यवस्था करता है। इसे ११ मई १९२३ को अपनाया गया।

(७) सन् १९२१ का अभिसमय न० १५—ट्रीमर या स्टोकरस का कार्य करने वाले किशोरों को रोजगार पर लगाने की न्यूनतम आयु इस अभिसमय द्वारा निर्धारित की गई है। यह अभिसमय २० नवम्बर १९२२ को भारत द्वारा अपनाया गया।

(८) समुद्र में रोजगार पर लगे हुए किशोरों और बालकों के लिये अनिवार्य चिकित्सा जांच उपलब्ध करने से सम्बद्ध १९२१ का अभिसमय न० १६—यह अभिसमय २० नवम्बर १९२२ को अपनाया गया।

(९) व्यवसायजनित रोगों में श्रमिकों की क्षति पूर्ति की व्यवस्था करने से

-सम्बद्ध १९२५ का अभिसमय नं० १८—३० सितम्बर १९२७ को भारत ने इसे अपनाया।

(१०) दुर्घटनाओं में श्रमिकों को क्षति पूर्ति देने के विषय में देशीय और विदेशीय कर्मचारियों से समान व्यवहार करने से सम्बद्ध १९२५ का अभिसमय नं० १९—यह भी ३० सितम्बर १९२७ को अपनाया गया।

(११) १९२६ का अभिसमय नं० २१—इस अभिसमय में जहाज पर पहुंचे हुए उत्प्रवासियों के निरीक्षण को सरल करने के नियमों का उल्लेख किया गया है। इसमें इस बात की व्यवस्था है कि इस प्रकार का निरीक्षण एक से अधिक सरकारें किया करेंगी और उत्प्रवासियों (Emigrants) के सरकारी निरीक्षक की नियुक्ति उस देश की सरकार करेगी जिस देश का उस जहाज पर झंडा लहरा रहा होगा। १४ जनवरी सन् १९२८ को भारत ने यह अभिसमय अपनाया।

(१२) सन् १९२६ का अभिसमय नं० २२—इस अभिसमय में जहाज के मालिकों और उनके समुद्री कर्मचारियों के मध्य समझौते के प्रतिनियमों की व्यवस्था की गई है। जहाज के मालिकों और समुद्री कर्मचारियों-दोनों को ही समझौते के प्रतिनियमों पर हस्ताक्षर करने होंगे। साथ ही समझौते पर हस्ताक्षर करने से पूर्व प्रतिनियमों की जांच करने की सुविधायें भी प्रदान की जायगी। भारत ने यह अभिसमय ११ अक्तूबर १९३२ को अपनाया।

(१३) १९२९ का अभिसमय नं० २७-इस अभिसमय में जहाजों द्वारा यातायात किये गये भारी भारी पहुलों पर भार का चिन्ह लगाने की व्यवस्था की गई है। भारत ने यह अभिसमय ७ सितम्बर १९३१ को अपनाया।

(१४) जहाजों पर माल चढ़ाने और उतारने में होने वाली दुर्घटनाओं से श्रमिकों की सुरक्षा की व्यवस्था से सम्बद्ध १९३२ का अभिसमय नं० ३२-यह अभिसमय १९३४ के भारतीय गोदी कर्मचारी अधिनियम को कार्यान्वित करके फरवरी १९४८ को अपनाया गया।

(१५) रात्रि के समय स्त्रियों को रोजगार पर न लगाने से सम्बद्ध १९३४ का अभिसमय नं० ४१—भारत ने २२ नवम्बर १९३२ को यह अभिसमय उसी प्रकार अपनाया था जिस प्रकार १९१९ का अभिसमय नं० ४ अपनाया गया था। १९३४ का यह अभिसमय संशोधित अभिसमय था। इसमें एक नया उपबंध इस विषय में था कि जो स्त्रियां प्रशासन में उत्तरदायी-पदों पर आसीन हैं और जो साधारण तथा सामान्य कार्य नहीं करती हैं उन पर १९१९ का मूल अभिसमय लागू नहीं होगा। लेकिन यह अभिसमय अब प्रचलन में नहीं रहा है क्योंकि इसी विषय से सम्बन्धित नवीनतम अभिसमय नं० ८९ को भारत ने अपना लिया है।

(१६) १९३५ का अभिसमय नं० ४५—यह अभिसमय किसी भी खान के भीतर स्त्रियों को काम पर न लगाने के सम्बन्ध में था। इसे २५ मार्च १९३८ को अपनाया गया।

(१७) १९४६ का अभिसमय नं० ८०—इसको "अन्तिम पदनियम संशोधित अभिसमय" (Final Articles Revision Convention) भी कहा जाता है। यह अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान में परिवर्तन करने से सम्बद्ध है। भारत ने यह अभिसमय १७ नवम्बर १९४७ को अपनाया।

(१८) १९४७ का अभिसमय नं० ८१—इसको श्रम निरीक्षण अभिसमय भी कहा जाता है। यह अभिसमय उद्योग और वाणिज्य में श्रमिकों के निरीक्षण के सम्बन्ध में है। ७ अप्रैल १९४९ को यह अपनाया गया।

(१९) उद्योग में काम पर लगी हुई स्त्रियों को रात्रि में रोजगार देने से सम्बद्ध १९४८ का अभिसमय नं० ८९—यह एक संशोधित अभिसमय था। २ मार्च १९५० को यह भारत द्वारा अपनाया गया।

(२०) १९४८ का अभिसमय नं० ९०—उद्योग में रोजगार पर लगे हुए किशोरों का रात्रि में काम करने से सम्बद्ध यह एक संशोधित अभिसमय था। २७ फरवरी १९५० को यह भारत द्वारा अपनाया गया।

(२१) १९३० का अभिसमय नं० २९—यह अभिसमय सभी प्रकार की बेगार को समाप्त करने के सम्बन्ध में है। भारत में यह अभिसमय ३० नवम्बर १९५४ को अपनाया गया।

(२२) १९२८ का अभिसमय नं० २६—इसके अन्तर्गत इस बात की व्यवस्था है कि कुछ व्यवसायों में एक न्यूनतम मजदूरी निर्धारित की जाए। भारत ने यह अभिसमय १० जनवरी १९५५ को अपनाया। १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत इस प्रकार की व्यवस्था पहले ही से कर दी गई थी।

(२३) न्यूनतम आयु (उद्योग) नामक १९१९ का अभिसमय नं० ५—इसे भारत ने ९ सितम्बर १९५५ में अपनाया।

(२४) पुरुषों और स्त्रियों के लिये समान मूल्य के समान कार्यों के लिये समान पारिश्रमिक से सम्बद्ध १९५१ का अभिसमय नं० १००—भारत ने यह अभिसमय २५ सितम्बर १९५८ को अपनाया।

(२५) १९५७ का स्वतन्त्र देशों की कबीला व अन्य आदिम तथा अर्ध आदिम जातियों की सुरक्षा तथा संगठन से सम्बन्धित अभिसमय नं० १०७—भारत ने यह अभिसमय २९ सितम्बर १९५८ को अपनाया।

(२६) १९४८ का रोजगार सेवा संगठन सम्बन्धी अभिसमय नं० ८८—भारत ने इसे २४ जून १९५९ को अपनाया।

(२७) १९५८ का अभिसमय नं० १११—यह रोजगार और व्यवसाय में भेद भाव करने से सम्बन्धित है। भारत ने इसे ३ जून १९६ को अपनाया।

इन अभिसमयों के अपनाए जाने से विभिन्न कारखाना अधिनियमों में संशोधन किए गए हैं। यह संशोधन ऐसे अभिसमयों को कार्यान्वित करने के लिए किए गए हैं जो काम करने के घंटों स्त्रियों का रात्रि में काम करने साप्ताहिक अवकाश आदि से

सम्बन्धित है तथा कई अन्य अधिनियमों में जैसे भारत खान अधिनियम रेलवे अधिनियम श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम आदि में संशोधन हुए हैं। अनेक अन्य अभिसमयों को सरकारी अधिसूचना द्वारा अपनाया गया है।*

१९५४ में सरकार ने ३ सदस्यों की एक त्रिदलीय समिति अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के ऐसे अभिसमयों और सिफारिशों पर विचार करने के लिए बनाई जो भारत ने नहीं अपनाए थे ताकि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम स्तर को भारत में भी लागू करने का कार्य तेजी से हो सके। इस समिति की सिफारिशों के परिणामस्वरूप ही अन्तिम ६ ७ अभिसमय जिनका ऊपर उल्लेख किया जा चुका है भारत द्वारा अपनाए गए हैं। कुछ अन्य अभिसमयों को भी अपनाने का सुझाव दिया गया है। उदाहरणतया व्यवसायजनित रोगों में श्रमिकों को क्षतिपूर्ति देने से सम्बद्ध १९३४ का अभिसमय न० ४२ काम करने के घन्टों तथा मजदूरी के आंकड़े से सम्बद्ध १९३८ का अभिसमय न० ६३ तथा कृषि में न्यूनतम मजदूरी की व्यवस्था करने से सम्बद्ध १९५१ का अभिसमय न० ९९।

अन्य अभिसमयों का प्रभाव —

इसके अतिरिक्त भारत ने विभिन्न अभिसमयों के अनेक आवश्यक भागों को अपने राष्ट्रीय विधान में सम्मिलित कर लिया है। उदाहरणतया १९१९ के प्रसव काल से सम्बद्ध अभिसमय न० ३ की धारायें विभिन्न मातृत्व-हित-लाभ अधिनियमों में आ गई हैं १९३६ के सवेतन छुट्टियों से सम्बद्ध अभिसमय के परिणामस्वरूप ही अनेक राज्यों में श्रमिकों को छुट्टियां देने के लिए पग उठाए गए हैं आदि आदि।

भारत में अधिक अभिसमय न अपनाये जाने के कारण —

साधारणतया यह शिकायत की जाती है कि भारत द्वारा अपनाये गये अभिसमयों की संख्या बहुत कम है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के ११८ अभिसमयों में से भारत ने अब तक केवल २७ अभिसमय अपनाये हैं जिनमें से केवल २५ लागू हैं। परन्तु सच यह है कि इन अभिसमयों के न अपनाये जाने का कारण यह नहीं है कि इनमें जो आवश्यक व्यवस्थाएं निहित हैं उनको मान्यता नहीं दी गई है वरन् इसका कारण अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का वह नियम है जिसके अनुसार यह अनिवार्य है कि प्रत्येक अभिसमय को बिना किसी परिवर्तन या संशोधन के अपनाया जाय। अतः या तो किसी भी अभिसमय का पूर्ण रूप से स्वीकार करना होता है अथवा अस्वीकार करना पड़ता है। भारत में अनेक अभिसमय कुछ शर्तों के अनुसार ही अपनाये जा सकते थे परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के नियमों में इस बात की अनुमति नहीं

*अभिसमय न० २ (१९१९ का बेरोजगारी अभिसमय) को भारत ने अपनाया था परन्तु सन् १९३८ में इसे त्याग दिया। १९३४ का अभिसमय न० ४१ भी अब प्रचलन में नहीं है क्योंकि इसके स्थान पर अब १९४८ के अभिसमय न० ८९ को अपना लिया गया है।

थी। अतः इस विषय में संशोधन की आवश्यकता है जिससे कुछ विशेष अभिसमयों को यदि पूर्ण रूप से सम्भव न हो सके तो धीरे धीरे अपनाया जा सके।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का श्रम विधान पर प्रभाव —

इस प्रकार अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भारतीय श्रम विधान की प्रगति को अत्यधिक मात्रा में प्रभावित किया है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है भारत ने अनेक महत्वपूर्ण अभिसमय अपनाए हैं जिनको देश के श्रम विधान में सम्मिलित कर लिया गया है। अन्य अभिसमयों का भी अनेक अधिनियमों की प्रगति पर प्रभाव पड़ा है। इसके अतिरिक्त इस बात को भी अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि भारतीय विधान सभा द्वारा कई अभिसमयों पर विचार-विनिमय करने के फलस्वरूप सामाजिक प्रगति को एक नई प्रेरणा मिली है जिस पर विविध मत के लोगों द्वारा भी एक-मत प्रकट किया गया है। किसी अभिसमय पर वाद-विवाद करने से ही अनेक श्रम समस्यायें प्रकाश में आ जाती हैं। 'सर एलबर्ट क्लोव' ने जो किसी समय भारत सरकार के सदस्य थे एक बार कहा था कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन श्रमिकों की समस्याओं में जनता की रुचि को उभारने का साधन रहा है। कभी कभी तो इस संगठन ने श्रमिकों के हित के लिये ऐसे पग उठाने के लिए प्रोत्साहित किया है जो संगठन के अभाव में कदाचित् कभी सम्भव न हो पाते। परोक्ष या अपरोक्ष रूप से भारतीय श्रम सुधार कार्यों में जो भी प्रगति हुई है उसके लिए रॉयल श्रम आयोग ने भी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रयत्नों की प्रशंसा की है। मालिक भी उन पवित्र शर्तों को स्वीकार करते हैं जिन्हें हमारा देश अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से सम्बन्धित होने के नाते प्राप्त कर रहा है। परन्तु मालिकों को यह भी भय रहा है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन प्रत्यक्ष रूप से प्रयत्न किए बगैर भी देश में श्रम विधान की प्रगति में तीव्रता न ला दे।

इसके अतिरिक्त अनुभव ने भी यह सिद्ध कर दिया है कि यदि कुछ अभिसमय किसी देश में अपनाए नहीं भी जाते फिर भी उनसे एक निश्चित सामाजिक उद्देश्य की पूर्ति होती है। अनेक बार ऐसा होता है कि यदि संसार के प्रमुख देश किसी अभिसमय को अपना लेते हैं तब इसी कारण सामान्य रूप से अभिसमयों को मान्यता प्राप्त हो जाती है चाहे कई देशों में उनको औपचारिक रूप से न भी अपनाया गया हो। यही कारण है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के प्रस्ताव या तो अधिक व्यावहारिक अनुभव पर आधारित हैं या कम से कम अनेक देशों में जो एक निश्चित सामाजिक आवश्यकता अनुभव होती है उस पर आधारित हैं। परिणाम स्वरूप अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन द्वारा पारित अभिसमय सामान्यतया ऐसे व्यवहार के स्तर बन जाते हैं जिनको सब स्वीकार कर लेते हैं। ऐसे स्तर को पिछड़े हुए देश धीरे-धीरे अपनाने का प्रयत्न करते रहते हैं। इस प्रकार कई बार किसी अभिसमय में निहित सामाजिक सुधारों का सारांश साधारणतया उन देशों के राष्ट्रीय विधान में भी सम्मिलित कर लिया जाता है जो किसी तकनीकी अथवा अन्य कारणों से

अभिसमय को अपनाने में कठिनता अनुभव करते हैं। सन् १९१९ के प्रसव काल अभिसमय का उदाहरण लिया जा सकता है। यह अभिसमय भारत में अनेक मातृत्व हित लाभ अधिनियमों के अन्तर्गत आ जाता है। यद्यपि अनेक उद्योगों म स्त्री श्रमिकों की अधिकांश संख्या इन अभिसमयों में दिये गए लाभों का उपभोग कर रही है तथापि भारत की उन देशों में गणना होती है जिन्होंने अभी तक इस अभिसमय को नहीं अपनाया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का श्रम आन्दोलन पर प्रभाव —

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन न देश क श्रम आन्दोलन को भी पर्याप्त मात्रा म प्रभावित किया है। श्रम आन्दोलन का प्रारम्भ अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना के साथ ही साथ हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने श्रमिकों में पारस्परिक एकता की भावना को जन्म दिया है और उनमें जो अलग-अलग रहने की भावना थी उसको दूर किया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने श्रमिकों में उनके अधिकारों और विशेषाधिकारों क प्रति जागृति उत्पन्न कर दी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं श्रम सम्बन्धी रिपोर्टस् आदि क माध्यम से समय समय पर श्रमिकों को अमूल्य सूचनायें भी दी हैं। श्रमिकों के प्रतिनिधि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलनों में सम्मिलित होते हैं, और भारत म श्रमिक संघों के आरम्भ के संगठनों की इसलिये स्थापना हुई थी कि सम्मेलनों के लिए प्रतिनिधि चुनकर भेजने की आवश्यकता अनुभव की गई थी। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभाव में भारतीय श्रम आन्दोलन की सम्भवतया इतनी जल्दी और इतने अल्पकाल की अवधि में प्रगति न हो पाती और श्रम विधान की गति में भी इतनी तीव्रता न आ पाती।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों का मूल्यांकन —

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों का यद्यपि प्रचार अधिक नहीं हुआ है परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं है कि सरकारों मालिकों और श्रमिकों क प्रतिनिधि इस संस्था में सहयोग देकर सामाजिक न्याय को बढ़ा रहे हैं और इस प्रकार स्थायी और अन्तर्राष्ट्रीय शान्ति की स्थापना में योग दे रहे हैं। यदि हम इस संस्था के ऐसे रिकार्डों का जो निश्चय ही बहुत तकनीकी हैं अध्ययन करें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह संस्था श्रमिकों की दशाओं में उन्नति करने उनके जीवन स्तर को ऊंचा उठाने और आर्थिक तथा सामाजिक स्थिरता को बढ़ाने के लिए एक अविरल और विशेष कार्य कर रही है। यद्यपि यह सत्य है कि यह सभी उद्देश्य जिनका १९१९ म अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के ४० वें अधिवेशन म श्री० गुलजारी लाल नन्दा म भी उल्लेख किया था अभी तक पूरे नहीं हो पाये हैं फिर भी अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन सदा संसार को इस सम्बन्ध में चेतावनी देता रहता है कि सरकारों और जनता का सब जगह यह आवश्यक कार्य है कि इस सम्बन्ध में जो भी उन्नति की जा रही है, उसमें तीव्रता लाई जाए। वास्तविकता यह है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के कार्यों के बिना करोड़ों श्रमिकों की दशा जैसी आज है, उससे भी बुरी होती और कई सरकारें मालिकों

इनको ध्यान में रखकर देखा जाए तो भारत के वे सभी प्रयत्न जो सामाजिक उन्नति के लिए किए जा रहे हैं बहुत उत्साहवर्द्धक प्रतीत होते हैं। यदि अपने देश की निश्चित उन्नति की ओर ध्यान दिया जाए या समस्त संसार की ओर भी देखा जाए तो इस उन्नति का उचित प्रकार से मूल्यांकन करने में यह बात स्पष्ट हो जाती है कि अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन पर अब तक जितना भी ध्यान दिया गया है, उससे अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता कि मानवीय श्रम को गौरव और स्वतन्त्रता प्रदान करने में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन का प्रभाव भारत में अत्यधिक रहा है।

२०

भारत में श्रम विधान

(Labour Legislation In India)

श्रम विधान का सामान्य सर्वेक्षण—इतिहास :—

पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में भारत में उद्योग धन्धों के प्रारम्भ होने के समय की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि पूँजीपति इस बात के लिए बहुत उत्सुक रहते थे कि उन्हें शीघ्र और अधिकतम लाभ हो। मालिक कम मजदूरी पर अधिक समय तक काम करने वाले असहाय और निर्धन श्रमिकों को काम पर लगाने का प्रलोभन न छोड़ सके थे और उन्होंने पुरुषों स्त्रियों तथा बच्चों से कठोर परिश्रम करा कर और कम वेतन देकर अत्यधिक लाभ उठाया। उस समय सरकार की नीति श्रमिकों से सामाजिक प्रणाली की रक्षा करने की थी न कि सामाजिक प्रणाली से श्रमिकों की रक्षा की। अतः १८५९ और १८६० में जो विधान बनाए गए—अर्थात् १८५९ का श्रमिकों का संविदा की शर्तों को भंग करने का अधिनियम और १८६० का मालिक व श्रमिक (विवाद) अधिनियम—वह संविदा की शर्तों को भंग करने वाले अपराधी श्रमिकों को दण्ड देने के हेतु बनाए गए थे। ऐसे अपराधों को फौजदारी अपराध मान लिया गया था। प्रारम्भ में जो भी श्रम विधान बनाए गए वह औद्योगिक श्रमिकों के सामान्य वर्ग से सम्बन्धित न होकर उद्योग विशेष से सम्बन्धित होते थे। भारतवर्ष में पहला संगठित उद्योग जिसके कारण वैधानिक निर्धारण हुआ, असम का बागान उद्योग था। वहाँ श्रमिकों की भरती की दोषपूर्ण प्रणाली के कारण भर्ती को नियमित करने के लिए बंगाल तथा केन्द्रीय सरकार ने कुछ वैधानिक कदम उठाए, जिनको असम श्रमिक अधिनियमों के नाम से पुकारा गया। प्रथम कारखाना अधिनियम तथा खान अधिनियम क्रमशः १८८१ तथा १९०१ में पारित किए गए। कारखाना अधिनियम १८९१ तथा १९११ में भी पारित किए गए। इस प्रकार प्रथम महायुद्ध से पूर्व श्रमिक क्षतिपूर्ति श्रमिक संघ व्यावसायिक विवाद आदि से सम्बन्धित औद्योगिक श्रमिकों के सामान्य वर्ग के लिए कोई विधान नहीं था।

प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात श्रम विधान :—

प्रथम विश्वयुद्ध के अनुभवों के कारण श्रम के प्रति सरकार और मालिकों के दृष्टिकोण में काफी परिवर्तन आया। राज्य के हस्तक्षेप के सिद्धान्त को औद्योगिक मामलों में और भी विस्तृत रूप से लागू कर दिया गया। एक संतुष्ट श्रमजीवी वर्ग की आवश्यकता का तीव्रता से अनुभव किया जाने लगा तथा मालिकों और श्रमिकों के

द्वारा सामूहिक कार्यवाही के लाभों की ओर भी ध्यान गया। युद्ध के पश्चात् श्रमिकों में चेतना अधिक आ गई तथा श्रमिक संघों का भी विकास हुआ और साथ ही औद्योगिक अशान्ति भी बढ़ी। (पृष्ठ ८४–८६)। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना से भारत में श्रम विधान को काफी प्रोत्साहन मिला क्योंकि इसने अनेक अभिसमय और सिफारिशें पारित की तथा श्रम के उत्थान के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तरों को निर्धारित किया।

१९१९ के पश्चात् भारत में श्रम विधान बनाने की ओर तीव्र गति से प्रगति हुई। कारखानों से सम्बन्धित कानूनों को १९२२ के कारखाना अधिनियम में समायोजित कर दिया गया। अनेक नवीन और महत्त्वपूर्ण अधिनियम भी पारित किए गए। उदाहरणार्थ १९२३ का भारतीय खान अधिनियम, १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम, १९२६ का भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम तथा १९२९ का व्यापार विवाद अधिनियम। भारतीय व्यापारिक जहाजरानी अधिनियम १९२३ में पारित किया गया। १८९० के रेलवे अधिनियम में कार्य के घण्टों को नियमित करने के लिए १९३० में संशोधन किया गया। १९२९ में भारतवर्ष में रॉयल श्रम आयोग की नियुक्ति की गई जिसने अपनी रिपोर्ट १९३१ में प्रस्तुत की। इस रिपोर्ट में श्रम समस्याओं के सभी पहलुओं पर तथा श्रम कानूनों को बनाने और उनके प्रशासन के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सिफारिशें की गई थी। इसके परिणामस्वरूप अनेक वैधानिक कदम उठाए गए। १९३२ में चाय जिला प्रवासी श्रमिक अधिनियम पारित किया गया। १९३४ में कारखाना अधिनियम को पूर्णतया दोहराया गया। व्यापार विवाद अधिनियम में संशोधन किया गया तथा १९३४ में इसे वैधानिक पुस्तिका में स्थाई स्थान दे दिया गया। १९३६ में मजदूरी भुगतान अधिनियम पारित किया गया। १९३३ में बाल (श्रम अनुबंध) अधिनियम तथा १९३४ में भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम पारित हुए। श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के सम्बन्ध में रॉयल श्रम आयोग की अधिकांश सिफारिशों को इस समय लागू किया गया तथा १९३५ में खान अधिनियम में भी संशोधन किया गया। किसी भी कम्पनी अर्थात् समवाय को श्रमिकों के रहने के लिए मकान बनाने तथा उससे सम्बन्धित सुविधाओं की व्यवस्था करने के हेतु अनिवार्य रूप से भूमि प्राप्त करने के लिए १८९४ के भूमि अधिग्रहण अधिनियम में १९३३ में संशोधन हुआ। आयोग की रिपोर्ट के प्रकाशित होने से पूर्व मातृत्व-हित लाभ अधिनियम केवल बम्बई तथा मध्य प्रदेश में लागू था। अन्य प्रदेशों में भी इसी प्रकार के विधान बनाए गए। केन्द्रीय सरकार ने भी सभी खान उद्योगों के लिए १९४१ में खान मातृत्व-हित लाभ अधिनियम पारित किया।

प्रान्तों में श्रम विधान —

१९३५ के भारत सरकार अधिनियम से पूर्व श्रम के क्षेत्र में यद्यपि केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारों के विधान बनाने के अधिकार संयुक्त थे तथापि प्रान्तों ने इस ओर बहुत कम पग उठाए थे। मुख्यतः प्रान्तों के अधिनियम निम्नलिखित थे- बम्बई

(१६२६), सी० पी० (१६३०) और मद्रास (१६३४) के मातृत्व-हित-लाभ अधिनियम, १६३४ का बम्बई औद्योगिक विवाद सुलह अधिनियम, १६३५ का बंगाल श्रमिक संरक्षण अधिनियम, १६३६ का केन्द्रीय प्रान्त औद्योगिक श्रमिक ऋण समंजन एवं प्रभाकरण अधिनियम, १६३७ का सी० पी० अनियमित कारखाना अधिनियम और १६३७ का सी० पी० ऋणी संरक्षण अधिनियम।

१६३७ में प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् जनप्रिय सरकारों ने और अधिक उत्साह के साथ श्रम विधान बनाए। प्रान्तों में कांग्रेस मंत्री समुदाय ने कांग्रेस की श्रम नीति को ही सामने रखा। कांग्रेस की श्रम नीति यह थी कि "जहां तक देश की आर्थिक स्थिति सहन कर सकती हो वहां तक औद्योगिक श्रमिकों के लिए अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के अनुकूल रहन-सहन के स्तर, कार्य के घण्टों तथा रोजगार की दशाओं को प्राप्त करना चाहिए तथा मालिकों और श्रमिकों के बीच विवादों को सुलझाने की उचित व्यवस्था करनी चाहिए तथा वृद्धावस्था बीमारी और बेरोजगारी के आर्थिक दुष्परिणामों से रक्षा होनी चाहिए तथा श्रमिकों को संघ बनाने और अपने हितों की रक्षा के लिए हड़ताल करने का अधिकार भी होना चाहिए।" बम्बई, सी० पी० यू० पी० तथा बिहार की सरकारों ने श्रम दशाओं का अध्ययन करने के लिए समितियां नियुक्त कीं। इससे पूर्व कि इन समितियों की सिफारिशों को पूर्णतया कार्यान्वित किया जा सकता कांग्रेस सरकारों ने नवम्बर, १६३६ में त्याग-पत्र दे दिये। परन्तु गैर-कांग्रेस सरकारों ने भी श्रम समस्याओं में बहुत रुचि ली। अनेक प्रान्तों ने अपने अपने क्षेत्र की श्रम समस्याओं के लिए श्रम कमिश्नरों अर्थात् आयुक्तों की नियुक्तियां कीं। कमिश्नरों का यह पद आज तक चला आ रहा है। इस अवधि में प्रांतीय श्रम विधान का सबसे महत्वपूर्ण अधिनियम १६३८ का 'बम्बई औद्योगिक विवाद अधिनियम' था। प्रांतीय क्षेत्र में अपनी प्रकार का यह एकमात्र ऐसा विधान था जिसमें औद्योगिक विवादों को शांतिपूर्ण ढंग से सुलझाने की व्यवस्था की गई थी। एक अन्य महत्वपूर्ण श्रम विधान १६३६ का दुकान तथा संस्थान अधिनियम था। इसके अतिरिक्त बंगाल, यू० पी०, पंजाब, आसाम और सिंध में मातृत्व-हित-लाभ अधिनियम, बंगाल और सिंध में दुकान और संस्थान अधिनियम तथा पंजाब में व्यावसायिक कर्मचारी अधिनियम आदि श्रम दशाओं को उन्नत करने के लिए जनप्रिय सरकारों के उत्साह के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

हाल के वर्षों में श्रम विधान —

इतनी प्रगति होने पर भी इन विधानों में समायोजना का अभाव था तथा इनके प्रशासन में कुछ कमियां रह गई थीं। इन दोषों को दूर करने के लिए भारत सरकार १६४० से श्रम मंत्रियों के सम्मेलन का आयोजन करती आ रही है। सरकार को श्रम समस्याओं पर सलाह देने के लिए १६४२ में त्रिदलीय श्रम सम्मेलन की स्थापना की गई। १६४३ में इसकी सिफारिशों के परिणामस्वरूप श्री० डी० वी० रेगे की अध्यक्षता में एक श्रम अनुसंधान समिति की नियुक्ति की गई। इसने अपनी

रिपोर्ट १९४६ में प्रस्तुत की। विभिन्न श्रम समस्याओं पर इस समिति ने व्यापक रूप से सिफारिशें कीं। एक स्थायी श्रम समिति की भी स्थापना की गई। इस त्रिदलीय व्यवस्था से सरकार और श्रमिकों के प्रतिनिधियों के बीच नियमित रूप से समय समय पर विचार विमर्श का जो अवसर प्राप्त हुआ उससे श्रम की मुख्य समस्याओं पर ध्यान केन्द्रित होने में सहायता मिली। १९४२ और १९४८ के मध्य वर्षों में श्रम विधान के क्षेत्र और विषयों का काफी विस्तार हुआ। देश की स्वतन्त्रता के पश्चात् तथा सरकार द्वारा श्रम की दशाओं को सुधारने और उत्पादन बढ़ाने की आवश्यकता का और अधिक अनुभव करने के कारण देश में श्रम विधान की गति और तीव्रतर हो गई।

हाल ही के वर्षों में श्रमिकों की रक्षा व कल्याण के हेतु अनेक विधान पारित किए गए हैं। इनमें मुख्य निम्नलिखित अधिनियम हैं: १९४६ में कारखाना अधिनियम में संशोधन, १९४८ का कारखाना अधिनियम जिसमें १९५४ में संशोधन हुआ। गोदी कर्मचारी (रोजगार का नियमन) अधिनियम १९४८, कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम १९४७, १९५२ का खानों का बचाव व सुरक्षा अधिनियम, अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम १९४६, १९५० का उत्तर प्रदेश चीनी एवं चालक मद्यसार उद्योग श्रम कल्याण एवं विकास निधि अधिनियम, बम्बई (१९५३) तथा उत्तर प्रदेश (१९५६) में श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९४८, श्रमिक संघ (संशोधन) अधिनियम १९४६, १९४७ और १९६०, औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम १९४६, (१९६१ में संशोधन) कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम १९४८, कोयला खान प्रोविडेन्ट फण्ड तथा बोनस योजना अधिनियम १९४८, औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७, बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम १९४६, मध्य प्रदेश (तत्कालीन सी० पी०) औद्योगिक विवाद निपटारा अधिनियम १९४७, उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४७, औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम १९५० १९५१, १९५६-५७ में औद्योगिक विवाद संशोधित अधिनियम, कर्मचारी प्रोविडेन्ट फण्ड अधिनियम १९५२ (१९६० में संशोधन), बागान श्रमिक अधिनियम १९५१ (१९६० में संशोधन), भारतीय खान अधिनियम १९५२ (१९५९ में इसमें संशोधन हुआ), बम्बई (१९४८), मैसूर (१९४९), मध्य प्रदेश (१९५०), हैदराबाद (१९५२), उत्तर प्रदेश (१९५५) और पंजाब (१९५५) में आवास अधिनियम, श्रमजीवी पत्रकार (काम की शर्तें एवं विविध उपबन्ध) अधिनियम १९५५ तथा श्रमजीवी पत्रकार (वेतन की दरों का निर्धारण) अधिनियम १९५८, मद्रास और केरल में औद्योगिक संस्थान (राष्ट्रीय व त्यौहार छुट्टी) अधिनियम १९५८, मद्रास (१९५८) तथा केरल (१९५९) में 'बीड़ी' श्रमिकों के लिए अधिनियम, रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानों की अनिवार्य सूचना) अधिनियम १९५९, मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम १९६१, मातृत्व-हित-लाभ अधिनियम १९६१, शिशुता (Apprenticeship)

अधिनियम १९६१ अभ्रक खोदा खान श्रमिक कल्याण उपकर (Cess) अधिनियम १९६१ तथा अनेक राज्यों में दुकान तथा वाणिज्य संस्थान अधिनियम। केन्द्रीय और प्रदेशीय सरकारों ने समय समय पर विभिन्न अधिनियमों में संशोधन भी किये हैं। उदाहरणतः मजदूरी भुगतान अधिनियम में १९५७ में तथा श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम में १९५९ में संशोधन किये गए। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि पिछले कुछ वर्षों में श्रम विधान बनाने की गति बहुत तीव्र रही है।

भारतवर्ष में कारखाना विधान (Factory Legislation in India)

प्रारम्भिक प्रयत्न —

भारत में आधुनिक उद्योगों के विकास के पश्चात से मालिकों को बहुत दिनों तक इस बात की स्वतंत्रता रही कि वह अपने श्रमिकों से किसी भी प्रकार से जैसा भी चाहें कार्य लेते रहें। और उन पर किसी भी कारखाना कानून का बन्धन नहीं था। फलस्वरूप कार्य के घन्टे बहुत अधिक हो गये थे। श्रम का विशेषतया महिला एवं बालकों का शोषण होने लगा और कारखानों में कार्य की दशायें अमानवीय तथा असहनीय हो गईं। कारखानों में मशीनों के चारों ओर कोई घेरा न होने के कारण श्रमिकों को बहुधा चोट लगती थी परन्तु उनको क्षतिपूर्ति मिलने की कोई व्यवस्था न थी। इस प्रकार भारत में मिल-मालिक अन्य देशों के उद्योगपतियों की तुलना में, लाभ में रहते थे क्योंकि अन्य देशों में अनेक श्रम विधान थे।

प्रारम्भ में भारतीय कारखाना श्रमिकों की अवस्थाओं में रुचि लेने का कारण यह नहीं था कि कुछ दयावान मालिकों, राजनीतिज्ञों अथवा औद्योगिक नगरों में रहने वाले कुछ नागरिकों में इंगलैंड के नागरिकों की तरह कुछ दया भावना आ गई थी वरन् इसका कारण यह था कि बम्बई में सूती कपड़ा मिल उद्योग की सन् १८७० में स्थापना लंकाशायर के कपड़ा उद्योगपतियों एवं व्यापारियों की ओर चिंता का विषय बन गया था। अन्य देशों की तुलना में भारत के उद्योगपतियों को कुछ विशेष सुविधाएं थीं। उनको श्रमिक कम मजदूरी पर उपलब्ध हो जाते थे। इससे लंकाशायर के उद्योगपतियों को डर होने लगा तथा वह भारतीय कपड़ा मिल उद्योग के विकास में हर सम्भव अड़चनें डालने का प्रयत्न करने लगे। मैनचेस्टर के चैम्बर आफ कामर्स ने सन् १८७४ में भारतीय राज्य सचिव के पास अपना एक प्रतिनिधि मंडल भेजा तथा प्रार्थना की कि भारतीय मिलों पर भी वे समस्त कारखाना विधान लागू कर देने चाहिए जो इंगलैंड के कारखानों पर लागू होते थे। परिणामस्वरूप भारत में श्रम विधान की आवश्यकता की जाँच के लिए सन् १८७५ में एक आयोग नियुक्त किया गया। इस आयोग की रिपोर्ट के अनुसार उस समय भारतीय कारखाने सूर्योदय से सूर्यास्त तक कार्य करते थे और श्रमिकों को कठोर परिश्रम करना पड़ता था। उनको साप्ताहिक अवकाश भी प्रदान नहीं किया जाता था तथा सात-सात आठ-आठ वर्ष के बच्चे तक भी श्रमिकों के रूप में कार्य करते थे। आयोग ने इन दोषों के निवारणार्थ यह सुझाव दिया कि एक ऐसा साधारण अधिनियम पारित किया

जाए जिसके अनुसार कार्य के घण्टों की सीमा १० हो जाए, बालकों की एक न्यूनतम आयु निर्धारित कर दी जाए तथा जिसमें एक साप्ताहिक छुट्टी संचालन मशीनों से सुरक्षा आदि के भी उपबन्ध हों। परन्तु सरकार ने तत्काल इस ओर कोई ध्यान न दिया। जैसा कि श्रमिक संघ के अध्याय में बताया जा चुका है, श्रमिकों की दयनीय दशा देखकर कुछ जन-सेवी उदार हृदयों में सहानुभूति उमड़ी और श्रमिकों की रक्षा के हेतु कुछ वैधानिक नियम बनाने के लिए भारत और इंगलैंड में आंदोलन चलता रहा। इन सबके परिणामस्वरूप १८८१ में प्रथम कारखाना अधिनियम पारित किया गया।

१८८१ का प्रथम कारखाना अधिनियम —
(First Factories Act of 1881)

१८८१ का कारखाना अधिनियम ऐसे सभी संस्थानों पर लागू होता था जिनमें १०० या १०० से अधिक श्रमिक कार्य करते थे और जिनमें वर्ष में चार माह से अधिक कार्य होता था। इसके द्वारा ७ वर्ष से कम आयु के बच्चों को कार्य पर लगाना तथा ७ से लेकर १२ वर्ष तक की आयु के बच्चों से ६ घण्टे से अधिक कार्य लेना निषिद्ध कर दिया गया। उनके लिए दिन में एक घण्टे का विश्राम तथा मास में ४ दिन की छुट्टियों की भी व्यवस्था की। खतरनाक मशीनों के चारों ओर घेरा लगाने की तथा दुर्घटनाओं की सूचना देने की भी व्यवस्था की गई। इन सुधारों को कार्यान्वित करने के लिए कारखाना निरीक्षकों की नियुक्ति का भी आयोजन था। अधिनियम में स्त्री और पुरुष वयस्क श्रमिकों को कोई सुरक्षा प्रदान नहीं की गई थी और उन्हें पूर्णतया मालिकों की इच्छा अथवा दया पर छोड़ दिया गया था।

१८९१ का कारखाना अधिनियम —

१८८१ के अधिनियम से श्रमिकों, उनके साथ सहानुभूति रखने वाले व्यक्तियों और यहाँ तक की ब्रिटिश उत्पादकों तक को संतुष्टि नहीं हुई। सब यह चाहते थे कि अधिक कठोर पग उठाए जाएं। अधिनियम के बनते ही उसमें संशोधन करने की माँग की जाने लगी। भारत राज्य सचिव से पुनः प्रार्थना की गई जिसके परिणामस्वरूप १८८४ में बम्बई सरकार ने एक और कारखाना आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने बालकों और स्त्रियों की रक्षार्थ विधान बनाने की सिफारिश की, परन्तु इसका परिणाम कुछ भी नहीं निकला। १८९० में बर्लिन में एक अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन हुआ। इसकी सिफारिशों को इंगलैंड ने स्वीकार कर लिया और यह भी वांछनीय समझा गया कि इनको भारत में भी कार्यान्वित किया जाए। अतः भारत सरकार ने १८९० में एक कारखाना आयोग की नियुक्ति की और इसकी सिफारिशों के आधार पर १८९१ में दूसरा कारखाना अधिनियम पारित किया। यह अधिनियम ५० या अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले तथा शक्ति का प्रयोग करने वाले सभी संस्थानों पर लागू होता था। स्थानीय सरकारों

को यह अधिकार था कि यदि वह चाहें तो इसको २० या अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों पर लागू कर सकती थी। ९ वर्ष से कम आयु के बच्चों को कार्य पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया तथा ९ से १४ वर्ष तक के बच्चों से प्रतिदिन ७ घंटे से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था। स्त्रियों एवं बच्चों को रात्रि ८ बजे से प्रातः ५ बजे के बीच काम पर नहीं लगाया जा सकता था। स्त्रियों से ११ घंटों से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था तथा उनको दिन में कुल मिलाकर १½ घन्टे का विश्राम देने की भी व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक श्रेणी के श्रमिक को एक साप्ताहिक अवकाश देने की व्यवस्था थी तथा पुरुष श्रमिकों को दोपहर १२ बजे से लेकर २ बजे के भीतर आधा घन्टे का विश्राम समय देना अनिवार्य कर दिया गया था। कारखानों के निरीक्षण संवातन और सफाई आदि के सम्बन्ध में भी इस अधिनियम में विस्तृत उपबन्ध थे।

१९११ का कारखाना अधिनियम —

१८९१ के कारखाना अधिनियम पारित हो जाने के पश्चात् आगामी २० वर्षों तक कारखाना विधान के बारे में कोई पग नहीं उठाया गया। सन् १९०५ में बम्बई की मिलों में विद्युत प्रकाश के आ जाने से सूती वस्त्र मिलों के लिए रात्रि में भी कार्य करना सम्भव हो गया और इस प्रकार से कार्य के घन्टे अत्यधिक लम्बे हो गए। कलकत्ते की जूट मिलों में भी कार्य के घन्टे अधिक होने की शिकायतें आने लगीं। इसके परिणामस्वरूप लंकाशायर के उत्पादकों ने पुनः आन्दोलन शुरू कर दिया। इसी समय देश में समाचार पत्रों तथा समाज सेवकों ने श्रम दशाओं की आलोचना शुरू कर दी तथा उन्होंने मांग की कि श्रमजीवी वर्ग को और अधिक रियायतें तथा सुविधायें प्रदान की जाएं। परिणामस्वरूप एक श्रम आयोग की फिर नियुक्ति की गई जिसने १९०८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसकी सिफारिशों के फलस्वरूप १९११ में तीसरा कारखाना अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम में कारखाने की परिभाषा वही रही जो १८९१ के अधिनियम में थी। इसके द्वारा प्रथम बार पुरुष श्रमिकों के कार्य के अधिकतम घंटे प्रतिदिन १२ निश्चित कर दिए गए जिसमें बीच में १ घन्टे का विश्राम समय भी था। पारियों की स्वीकृत प्रणाली को छोड़कर कोई भी श्रमिक किसी भी कारखाने में रात्रि ७ बजे से प्रातः ५ बजे के बीच काम नहीं कर सकता था। बच्चों के लिए सूती वस्त्र मिलों में कार्य के अधिकतम घन्टे प्रतिदिन ६ निश्चित कर दिए गए तथा उनका रात्रि में कार्य करना निषेध कर दिया गया। स्त्रियों के कार्य के घन्टे ११ ही रहे परन्तु उनका विश्राम समय घटा कर एक घन्टा कर दिया गया। उनके लिए रात्रि में कार्य भी निषिद्ध कर दिया गया। मौसमी कारखानों को भी अधिनियम के नियन्त्रण में ले आया गया। बच्चों के लिए आयु का प्रमाण-पत्र रखना आवश्यक कर दिया गया। श्रमिकों के स्वास्थ्य और सुरक्षा के लिए तथा निरीक्षण को और अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए अधिनियम में अनेक नए उपबन्ध भी थे।

१९२२ का कारखाना अधिनियम —

तत्पश्चात् १९१४ १८ का महायुद्ध शुरू हो गया। इससे देश में तीव्रगति से औद्योगिक विकास हुआ। साथ ही साथ श्रमिक वर्ग भी अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होता गया। वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि हो जाने से उद्योगपतियों के लाभ अधिक बढ़ गए थे परन्तु श्रमिकों की मजदूरी में वृद्धि मूल्य-वृद्धि की अपेक्षा कम हुई। १९१८ के पश्चात् देश में औद्योगिक विवाद बहुत सामान्य हो गए। १९२० में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना के परिणाम-स्वरूप कारखाना अधिनियम में संशोधन करना अनिवार्य सा हो गया। फलतः चतुर्थ कारखाना अधिनियम सन् १९२२ में पारित किया गया। इस अधिनियम के अन्तर्गत वह सभी कारखाने आ गए जिनमें शक्ति का प्रयोग होता था तथा जिनमें २० या इससे अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाया जाता था। स्थानीय सरकारों को यह अधिकार प्रदान कर दिए गए कि यदि वह चाहें तो इस अधिनियम को १० या उससे अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों पर भी लागू कर सकती थी। वयस्क श्रमिकों के लिए अधिकतम कार्य के घन्टे प्रतिदिन ११ तथा प्रति सप्ताह ६० निश्चित कर दिए गए। सभी प्रकार के कारखानों में बालकों के कार्य के घन्टे घटाकर प्रतिदिन ६ कर दिए गए। बालकों के लिए रोजगार पर लगने की न्यूनतम आयु ९ वर्ष से बढ़ाकर १२ वर्ष कर दी गई तथा कार्यावस्था की उच्च सीमा १२ वर्ष से बढ़ाकर १५ वर्ष कर दी गई। महिलाओं और बालकों को रात्रि के ७ बजे के पश्चात् तथा प्रातः ५–३० से पूर्व कार्य पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया। बच्चों के लिए प्रति चार घन्टे कार्य करने के पश्चात् आधे घन्टे का विश्राम-समय अनिवार्य कर दिया गया। रविवार या अन्य किसी दिन एक छुट्टी की भी व्यवस्था थी। सभी श्रमिकों को कार्य अवधि ६ घन्टे से अधिक हो जाने पर एक घन्टे का विश्राम-समय देना आवश्यक था। श्रमिकों की सुरक्षा स्वास्थ्य आदि के प्रबन्धों को भी विस्तृत कर दिया गया। श्रमिकों के स्वास्थ्य की हानि को रोकने के लिए प्रान्तीय सरकारों को संवातन नमी आदि के स्तरों को निर्धारित करने का अधिकार दिया गया। निरीक्षण की व्यवस्था में और अधिक सुधार किया गया।

साप्ताहिक अवकाश से सम्बन्धित धारा में एक छोटे से दोष को दूर करने के लिए १९२२ के अधिनियम में १९२३ में संशोधन किया गया। इस अधिनियम में सन् १९२६ में पुनः संशोधन हुआ जिसके अनुसार ऐसे वयस्क श्रमिकों को जो दिन में ८½ घंटों से अधिक कार्य नहीं करते थे आधे घंटे का विश्राम समय देने की व्यवस्था की गई। प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार दिया गया कि वह दुर्घटनाओं की सूचना देने की व्यवस्था में और अधिक सुधार करें तथा जिस समय मशीन आदि गति में हों उनकी सफाई करने को निषेध कर दें। किसी भी बालक को एक ही दिन में दो या अधिक मिलों में कार्य करने की अनुमति देना पिता या संरक्षक के लिए अपराध बना दिया गया। नियमों की धाराओं को तोड़ने पर दण्ड [illegible] के लिए

१८८१ और १८९१ में जो कानून बनाए गए थे वह १९२६ और १९३१ में निरस्त (Repeal) कर दिए गए।

१९३४ का कारखाना अधिनियम —

१९२८ में रॉयल श्रम आयोग की नियुक्ति की गई। आयोग ने अपनी रिपोर्ट १९३१ में प्रस्तुत की और इसके परिणामस्वरूप १९३४ का कारखाना अधिनियम पारित हुआ। अधिनियम के अन्तर्गत कारखानों को दो श्रेणियों में विभाजित किया गया था—मौसमी (Seasonal) तथा निरन्तर चालू (Perennial) कारखाने मौसमी कारखानों की श्रेणी में वह सब कारखाने सम्मिलित किए गए जिनमें वर्ष में १८० दिन से कम कार्य होता था। निरन्तर चालू कारखानों की श्रेणी में वह सब ही सस्थान या जाते थे जिनमें वर्ष में ६ माह से अधिक कार्य होता था। निरन्तर चालू कारखानों में वयस्कों के लिए कार्य के अधिकतम घंटे प्रतिदिन १० तथा सप्ताह में ५४ निश्चित किए गए। मौसमी कारखानों में यह प्रतिदिन ११ तथा सप्ताह में ६० घण्टे थे। बालकों के लिए कार्य के घंटे घटाकर प्रतिदिन ५ कर दिए गए। समय विस्तार (Spread Over) का सिद्धान्त प्रथम बार इस अधिनियम के अन्तर्गत लागू किया गया तथा लगातार कार्य के घण्टे वयस्कों के लिए १३ तथा बालकों के लिए ६½ निश्चित किए गए। समयोपरि के लिए मजदूरी सामान्य मजदूरी से १¼ गुना निर्धारित की गई। इस अधिनियम के अनुसार श्रमिकों का एक नया वर्ग बनाया गया जिसे किशोर (Adolescents) वर्ग का नाम दिया गया। इसके अन्तर्गत १५ से १७ वर्ष के युवक सम्मिलित किए गए। किशोरों को तब तक बालक ही माना गया था जब तक की उन्हें वयस्कों का काम करने योग्य होने का डाक्टरी प्रमाण-पत्र नहीं प्राप्त होता था। कारखाने की परिभाषा १९२२ के अधिनियम जैसी ही रही। कल्याण कार्यों, मशीनों की घटटेबाजी सुरक्षा साधनों नमी आदि के लिए भी अनेक उपबन्ध बनाए गए। अधिनियम के प्रशासन का भार प्रांतीय सरकारों को सौंप दिया गया। इन सरकारों ने इस उद्देश्य के लिये कारखानों के निरीक्षकों और मुख्य निरीक्षकों की नियुक्ति की।

१९४६ में कारखाना अधिनियम में संशोधन —

१९३४ के अधिनियम में १९३५ १९४० १९४१ १९४४ १९४५, १९४६, तथा १९४७ मे सात बार संशोधन किए गए। अन्त में इसे पूर्ण रूप से संशोधित और परिवर्तित करके १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित कर दिया गया। १९४६ का संशोधन बहुत महत्वपूर्ण था। नवम्बर १९४५ में सातवें श्रम सम्मेलन में ४८ घण्टे कार्य करने के सिद्धान्त को मान लिया गया था। इस आधार पर सरकार ने १९४६ में एक कारखाना अधिनियम पारित किया। इसके अनुसार निरन्तर चालू कारखानों में कार्य के घण्टे ४८ प्रति सप्ताह तथा प्रतिदिन ९ निश्चित कर दिये गये। मौसमी कारखानों में कार्य के घण्टे प्रतिदिन १० तथा प्रति सप्ताह ५४ निश्चित कर दिए गए। समय विस्तार निरन्तर चालू कारखानों में १३ घंटों से घटाकर १०½ घंटे

तथा मौसमी कारखानों में ११½ घंटे निर्धारित कर दिया गया। समयोपरि के लिये सामान्य मजदूरी से दुगनी मजदूरी निर्धारित की गई। सन् १६४७ के कारखाना अधिनियम में संशोधन द्वारा २५० या उससे अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों में कैन्टीन की व्यवस्था करना अनिवार्य कर दिया गया।

१६४८ का कारखाना अधिनियम (Factories Act of 1948) :—

१६३४ के कारखाना अधिनियम में इतने संशोधन हो जाने के पश्चात भी यह अनुभव किया गया कि इसके प्रभावपूर्ण ढंग से प्रशासन में अब भी अनेक बाधायें थीं। श्रमिकों की सुरक्षा स्वास्थ्य और कल्याण के लिये जो उपबन्ध बनाये गये थे वह अपर्याप्त और असंतोषजनक थे। इसके अतिरिक्त अधिनियम द्वारा प्रदान की गई इस प्रकार की सुरक्षा बहुत से छोटे छोटे संस्थानों में काम करने वाले श्रमिकों की एक बड़ी संख्या को प्राप्त नहीं थी। अतः यह आवश्यक समझा गया कि इस अधिनियम में पूर्णरूपेण परिवर्तन करने में विलम्ब नहीं करना चाहिये। फलतः नवम्बर १६४७ में इस विषय पर एक विधेयक प्रकाशित किया गया जो संसद में थोड़े से संशोधन के पश्चात् २३ सितम्बर १६४८ से कानून बना दिया गया तथा १ अप्रैल १६४६ से लागू कर दिया गया। यह १६४८ का भारतीय कारखाना अधिनियम के नाम से जाना जाता है। इस अधिनियम में और सन् १६३४ के अधिनियम में बहुत अन्तर है। इसके अन्तर्गत अनेक महत्वपूर्ण परिवर्तन किये गये हैं तथा यह एक व्यापक अधिनियम है। इस अधिनियम में १६५४ में संशोधन हुआ। इस संशोधन का उद्देश्य उन कठिनाइयों को दूर करना था जो सवेतन अवकाश की गणना में उत्पन्न होती थीं। इसके अतिरिक्त स्त्री व किशोरों को कारखानों में रात्रि में रोजगार पर लगाने के उपबन्धों को उस अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय के अनुकूल बनाना था जिसे भारत सरकार ने अपना लिया था। अधिनियम में कुछ और संशोधन करने के विषय में विचार विमर्श मार्च १६५५ में राज्यों के मुख्य कारखाना निरीक्षकों के सम्मेलन में हुआ। कारखानों के मुख्य सलाहकार द्वारा इस सम्बन्ध में जाँच की जा रही है।

१६४८ के कारखाना अधिनियम के मुख्य मुख्य उपबन्ध —

अधिनियम के मुख्य मुख्य उपबन्ध निम्न प्रकार हैं (पृष्ठ ७२ २६१ ४२७-३१ ४४१ ४५ भी देखिये) —

जहाँ तक क्षेत्र का सम्बन्ध है १६३४ का अधिनियम शक्ति का प्रयोग करने वाले तथा २० या उससे अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों पर लागू होता था। १६४८ का अधिनियम शक्ति प्रयोग करने वाले उन सभी कारखानों पर लागू होता है जिनमें १० या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। जिन कारखानों में शक्ति का प्रयोग नहीं होता वहाँ २० श्रमिकों के होने पर यह अधिनियम लागू हो जाता है। १६३४ के अधिनियम के अन्तर्गत प्रान्तीय सरकारों को यह अधिकार प्रदान किये गये थे कि यदि वे चाहें तो इसको १० या उससे अधिक श्रमिकों को कार्य पर लगाने

वाले तथा शक्ति का प्रयोग करने वाले किसी भी कारखाने पर लागू कर सकती थी। १९४८ के अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों के इस अधिकार पर कोई बन्धन नहीं लगाया गया है और उनको यह अधिकार प्रदान कर दिया गया है कि यदि वे चाहें तो इस अधिनियम को निर्माण कार्य करने वाले किसी भी संस्थान पर लागू कर सकती हैं चाहे उसमें कितने ही श्रमिक कार्य करते हों तथा चाहे उसमें शक्ति का प्रयोग होता हो या न होता हो। परन्तु यह उन स्थानों पर लागू नहीं होगा जहाँ कार्य केवल परिवार के सदस्यों की सहायता से किया जाता हो। इस अधिनियम द्वारा मौसमी एवं निरन्तर चालू कारखानों के अन्तर को भी समाप्त कर दिया गया है। यह अधिनियम जम्मू व काश्मीर राज्य को छोड़कर सारे भारत में लागू होता है।

स्वास्थ्य सुरक्षा और कल्याण के सम्बन्ध में जो १९३४ के अधिनियम में उपबन्ध थे वह सामान्य प्रकार के थे और यह प्रान्तीय सरकारों का काम था कि वह नियम बनाकर इस सम्बन्ध में ठीक ठीक आवश्यकताओं का उल्लेख कर दें। इसका परिणाम यह हुआ कि प्रांतों द्वारा निर्धारित स्तरों में भिन्नता आ गई। इस दोष को दूर करने के लिए १९४८ के अधिनियम में विस्तृत उपबन्ध दिये गये हैं तथा इन विषयों के लिए स्पष्ट और ठीक ठीक शब्दों में आवश्यकताओं का उल्लेख किया गया है। सफाई प्रकाश संवातन आदि के उपबन्धों के अतिरिक्त जिनका उल्लेख १९३४ के अधिनियम में भी किया गया था १९४८ के अधिनियम में निरर्थक और अन्य पदार्थों को फेंकने धूल और धुएं को समाप्त करने थूकदानों की व्यवस्था करने, तापक्रम को नियन्त्रित करने ग्रीष्म काल में पीने के लिए ठण्डे पानी की व्यवस्था करने तथा पानी रखने के स्थान को साफ करने के लिए नौकर लगाने की भी व्यवस्था की गई है। भीड़भाड़ को समाप्त करने के लिए उन तमाम कारखानों में जो इस अधिनियम के लागू होने के पश्चात् बने यह बात अनिवार्य कर दी गई है कि प्रत्येक श्रमिक के लिए कम से कम ५०० घन फीट का स्थान होना चाहिए। अन्य कारखानों में प्रत्येक श्रमिक के लिए कम से कम ३५० घन फीट स्थान की व्यवस्था की गई है।

अधिनियम में उन सावधानियों का भी विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है जिनको श्रमिकों की सुरक्षा के लिए लागू करना आवश्यक है। इनका उल्लेख कार्य की दशाओं वाले अध्याय में किया जा चुका है। कुछ नए उपबन्ध जो इस सम्बन्ध में इस अधिनियम में बनाए गए हैं वह निम्नलिखित बातों के लिए हैं नई मशीनों के खोल की व्यवस्था शक्ति को तत्काल बन्द करने की व्यवस्था तथा पानी ऊपर फेंकने के यन्त्र व लिफ्ट क्रेन व दूसरे बोझ उठाने वाले यन्त्र घूमने वाली मशीनें आँखों की सुरक्षा खतरनाक धूलों व विस्फोटक तथा आग पकड़ने वाले पदार्थों से सुरक्षा आदि। अधिनियम में इस बात की व्यवस्था भी है कि कोई भी श्रमिक न तो इतना बोझ उठाएगा और न ले जाएगा जिससे उसे क्षति पहुँचने की

संभावना हो। प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार है कि वह स्त्री पुरुषों तथा बच्चों द्वारा उठाए जाने अथवा ले जाने वाले बोझ की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दें।

अधिनियम में धोने की सुविधाओं प्राथमिक चिकित्सा साधनों कैन्टीन विश्राम स्थानों तथा शिशु गृह आदि जैसे कल्याण कार्यों के लिए एक अलग अध्याय है। इनमें से अधिकतर तो १९३४ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत बनाए गए नियमों में आ जाते हैं। १९४८ के अधिनियम में जो नए कल्याणकारी उपबन्ध और जोड़े गए हैं जो श्रमिकों के बैठने की व्यवस्था से सम्बन्धित हैं और प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे कारखानों में ऐसे उपयुक्त स्थान बनाने के लिए नियम बनाए जहां श्रमिक अपने कपड़े रख सकें और गीले कपड़ों को सुखा सकें। अधिनियम में प्रदेशीय सरकारों को यह भी अधिकार प्रदान किया गया है कि वह ऐसे नियम बना दें जिनके अनुसार इस बात की व्यवस्था हो कि श्रमिकों के प्रतिनिधि भी कल्याण कार्यों के प्रबन्ध में हाथ बटा सकें। अधिनियम के एक अन्य उपबन्ध के अनुसार प्रत्येक ऐसे कारखाने के मालिक को जहां ५०० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हैं कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति करनी होगी। उनके कार्य योग्यताएं आदि प्रदेशीय सरकारें निश्चित करेंगी। जिन कारखानों में २५० या अधिक श्रमिक रोजगार में लगे हैं वहां कैन्टीन की तथा जिन कारखानों में १५० से अधिक श्रमिक काम करते हैं वहां भोजन कक्ष की तथा जहां ५० या अधिक स्त्री श्रमिक कार्य करती हैं वहां शिशु गृहों की व्यवस्था करने के लिए भी उपबन्ध है।

बालकों और किशोरों के रोजगार के सम्बन्ध में १९३४ के अधिनियम के अन्तर्गत तो बालकों की न्यूनतम आयु १२ वर्ष निर्धारित की गई थी तथा १५ से १७ वर्ष के व्यक्तियों को भी तब तक बालक ही माना गया था जब तक की उन्हें व्यस्कों का काम करने के योग्य होने का प्रमाण-पत्र नहीं दे दिया जाता था। १९४८ के अधिनियम के अनुसार १४ वर्ष से कम आयु के बालकों का रोजगार पर लगाना निषिद्ध है तथा १५ से १८ वर्ष के श्रमिकों को किशोर माना गया है। १९३४ के अधिनियम की भांति ही १९४८ के अधिनियम में भी बालकों और किशोरों को रोजगार पर लगाने से पूर्व उनकी डाक्टरी परीक्षा करने और प्रमाण-पत्र देने की व्यवस्था है परन्तु इस प्रकार का प्रमाण-पत्र केवल १२ माह तक ही वैध माना जाएगा। कुछ खतरनाक व्यवसायों में स्त्रियों और बालकों के रोजगार पर निबन्धन भी लगाए गए हैं।

जहां तक कार्य के घण्टों का सम्बन्ध है यह १९४८ के अधिनियम के अन्तर्गत वयस्क श्रमिकों के लिए ४८ प्रति सप्ताह तथा प्रतिदिन ९ घण्टे है एवं समय विस्तार प्रतिदिन १०½ घण्टे है। बालकों और किशोरों के कार्य के घण्टे ५ से घटाकर प्रतिदिन ४½ निर्धारित किए गए हैं तथा श्रम समय विस्तार ५ घण्टे निश्चित किया गया है। किसी भी वयस्क श्रमिक को ५ घण्टे से अधिक कार्य करने की तब तक अनुमति

तक कि उसे विश्राम के लिए कम से कम आधे घण्टे का मध्यान्तर न

मिल जाए। अधिनियम के अन्तर्गत प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वह कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ व्यक्तियों को कार्य के घन्टों साप्ताहिक छुट्टी आदि से सम्बन्धित अधिनियम की धारा से छूट प्रदान कर सकते हैं। परन्तु जहाँ भी ऐसी छूट प्रदान की जाए वहाँ अधिनियम में यह शर्त है कि (१) किसी भी दिन कार्य के घन्टों की कुल संख्या १० से अधिक न हो, (२) किसी भी तिमाही में समयोपरि घन्टों की कुल संख्या ५० से अधिक न हो (३) श्रम समय विस्तार किसी भी दिन १२ घन्टे से अधिक न हो। स्त्रियों को रात्रि ७ बजे से प्रातः ६ बजे तक रोजगार पर लगाना निषेध है तथा बालकों और १७ वर्ष से कम आयु के किशोरों को रात्रि में काम पर नहीं लगाया जा सकता। समयोपरि काम के लिए श्रमिकों को सामान्य वेतन से दुगनी मजदूरी दिए जाने की व्यवस्था है। (१९५४ के संशोधन के लिए पृष्ठ ७४१ देखें)।

जहाँ तक सवेतन अवकाश का प्रश्न है अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक श्रमिक साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त निरन्तर १२ माह का सेवा काल (जिसका अर्थ एक वर्ष में २४० दिन होते हैं) पूरा हो जाने के पश्चात् निम्नलिखित हिसाब से सवेतन अवकाश प्राप्त करने का अधिकारी होगा वयस्क श्रमिक—२० दिन कार्य करने के पश्चात् एक दिन का सवेतन अवकाश तथा वर्ष में कम से कम १० दिन का सवेतन अवकाश। बालक—१५ दिन कार्य करने के पश्चात १ दिन का तथा वर्ष में कम से कम १४ दिन का सवेतन अवकाश। यदि कोई श्रमिक अपने अर्जित अवकाश का लाभ प्राप्त किए बिना नौकरी से निकाल दिया जाता है या नौकरी छोड़ जाता है तो ऐसी दशा में मालिकों को उस उन दिनों का वेतन देना होगा। वयस्क श्रमिक छुट्टियों को १० दिन तक तथा बालक ४० दिन तक एकत्रित कर सकते हैं। (संशोधन के लिए पृष्ठ ७२ देखें)।

व्यवसायजनित बीमारियों के सम्बन्ध में भी अधिनियम में व्यवस्था की गई है। कारखानों के प्रबन्धकों के लिए यह अनिवार्य है कि ऐसी सभी विशेष दुर्घटनाओं की सूचना दें जिनके कारण श्रमिकों की मृत्यु हो गई हो अथवा उन्हें गम्भीर शारीरिक चोट पहुँची हो अथवा श्रमिकों को कोई व्यवसायजनित बीमारी लग गई हो। व्यवसायजनित बीमारियों के रोगियों की चिकित्सा करने वाले डाक्टरों के लिए यह आवश्यक है कि वह भी एसे रोगियों की सूचना कारखाना के मुख्य निरीक्षक को दें। अधिनियम के अन्तर्गत कारखाना निरीक्षकों को यह अधिकार है कि वे उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग होने वाले पदार्थों का नमूना ले सकें जिससे यह पता चल सके कि उनका प्रयोग अधिनियम के उपबन्धों के प्रतिकूल तो नहीं हो रहा है या उससे श्रमिकों को कोई शारीरिक चोट या उनके स्वास्थ्य को कोई हानि तो नहीं पहुँच रही है। प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार है कि वह किसी भी दुर्घटना के कारणों अथवा व्यवसायजनित बीमारी के किसी भी कारण की जाँच के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को नियुक्त कर सकें।

संभावना हो। प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार है कि वह स्त्री पुरुषों तथा बच्चों द्वारा उठाए जाने अथवा ले जाने वाले बोझ की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दें।

अधिनियम में श्रमिकों की सुविधाओं प्राथमिक चिकित्सा साधनों कैंटीन विश्राम स्थलों तथा शिशु गृह आदि जैसे कल्याण कार्यों के लिए एक अलग अध्याय है। इनमें से अधिकतर तो १९३४ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत बनाए गए नियमों में आ चुके हैं। १९४८ के अधिनियम में दो नए कल्याणकारी उपबन्ध और जोड़े गए हैं जो श्रमिकों के बैठने की व्यवस्था से सम्बन्धित हैं और प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वे कारखानों में ऐसे उपयुक्त स्थान बनाने के लिए नियम बनाएं जहां श्रमिक अपने कपड़े रख सकें और भीगे कपड़ों को सुखा सकें। अधिनियम में प्रदेशीय सरकारों को यह भी अधिकार प्रदान किया गया है कि वह ऐसे नियम बना दें जिनके अनुसार इस बात की व्यवस्था हो कि श्रमिकों के प्रतिनिधि भी कल्याण कार्यों के प्रबन्ध में हाथ बटा सकें। अधिनियम के एक अन्य उपबन्ध के अनुसार प्रत्येक ऐसे कारखाने के मालिक को जहां ५०० या इससे अधिक श्रमिक काम करते हैं कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति करनी होगी। उनके कार्य योग्यताएं आदि प्रदेशीय सरकारें निश्चित करेंगी। जिन कारखानों में २५० या अधिक श्रमिक रोजगार में लगे हैं वहां कैंटीन की तथा जिन कारखानों में १५० से अधिक श्रमिक काम करते हैं वहां भोजन कक्ष की तथा जहां ५० या अधिक स्त्री श्रमिक कार्य करती हैं वहां शिशु गृहों की व्यवस्था करने के लिए भी उपबन्ध है।

बालकों और किशोरों के रोजगार के सम्बन्ध में १९३४ के अधिनियम के अन्तर्गत तो बालकों की न्यूनतम आयु १२ वर्ष निर्धारित की गई थी तथा १५ से १७ वर्ष के व्यक्तियों को भी तब तक बालक ही माना जाता था जब तक कि उन्हें वयस्कों का काम करने के योग्य होने का प्रमाण-पत्र नहीं दे दिया जाता था। १९४८ के अधिनियम के अनुसार १४ वर्ष से कम आयु के बालकों को रोजगार पर लगाना निषिद्ध है तथा १५ से १८ वर्ष के श्रमिकों को किशोर माना गया है। १९३४ के अधिनियम की भांति ही १९४८ के अधिनियम में भी बालकों और किशोरों को रोजगार पर लगाने से पूर्व उनकी डाक्टरी परीक्षा करने और प्रमाण-पत्र लेने की व्यवस्था है परन्तु इस प्रकार का प्रमाण-पत्र केवल १२ माह तक ही वैध माना जाएगा। कुछ खतरनाक व्यवसायों में स्त्रियों और बालकों के रोजगार पर नियन्त्रण भी लगाए गए हैं।

जहां तक कार्य के घण्टों का सम्बन्ध है यह १९४८ के अधिनियम के अन्तर्गत वयस्क श्रमिकों के लिए ४८ प्रति सप्ताह तथा प्रतिदिन ९ घण्टे हैं एवं समय विस्तार प्रतिदिन १०½ घण्टे है। बालकों और किशोरों के कार्य के घण्टे ५ से घटाकर प्रतिदिन ४½ निर्धारित किए गए हैं तथा काम समय विस्तार ५ घण्टे निश्चित किया गया है। किसी भी वयस्क श्रमिक को ५ घण्टे से अधिक कार्य करने की तब तक अनुमति नहीं है जब तक कि उसे विश्राम के लिए कम से कम आधे घण्टे का मध्यान्तर न

मिल जाए। अधिनियम के अन्तर्गत प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वह कुछ विशेष परिस्थितियों में कुछ व्यक्तियों को कार्य के घण्टों साप्ताहिक छुट्टी आदि से सम्बन्धित अधिनियम की धारा से छूट प्रदान कर सकते हैं। परन्तु जहां भी ऐसी छूट प्रदान की जाए वहां अधिनियम में यह शर्त है कि (१) किसी भी दिन कार्य के घण्टों की कुल संख्या १० से अधिक न हो, (२) किसी भी तिमाही में समयोपरि घण्टों की कुल संख्या ५० से अधिक न हो, (३) श्रम समय विस्तार किसी भी दिन १२ घण्टे से अधिक न हो। स्त्रियों का रात्रि ७ बजे से प्रातः ६ बजे तक रोजगार पर लगाना निषेध है तथा बालकों और १७ वर्ष से कम आयु के किशोरों को रात्रि में काम पर नहीं लगाया जा सकता। समयोपरि काम के लिए श्रमिकों को सामान्य वेतन से दुगनी मजदूरी दिए जाने की व्यवस्था है। (१९५४ के संशोधन के लिए पृष्ठ ७४१ देखें)।

जहां तक सवेतन अवकाश का प्रश्न है अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि प्रत्येक श्रमिक साप्ताहिक छुट्टी के अतिरिक्त निरन्तर १२ माह का सेवा काल (जिसका अर्थ एक वर्ष में २४० दिन होते हैं) पूरा हो जाने के पश्चात् निम्नलिखित हिसाब से सवेतन अवकाश प्राप्त करने का अधिकारी होगा: वयस्क श्रमिक—२० दिन काम करने के पश्चात् एक दिन का सवेतन अवकाश तथा वर्ष में कम से कम १० दिन का सवेतन अवकाश। बालक—१५ दिन काम करने के पश्चात् १ दिन का तथा वर्ष में कम से कम १४ दिन का सवेतन अवकाश। यदि कोई श्रमिक अपने अर्जित अवकाश का लाभ प्राप्त किए बिना नौकरी से निकाल दिया जाता है या नौकरी छोड़ जाता है तो ऐसी दशा में मालिकों को उन उन दिनों का वेतन देना होगा। वयस्क श्रमिक छुट्टियां ३० दिन तक तथा बालक ४० दिन तक एकत्रित कर सकते हैं। (संशोधन के लिए पृष्ठ ७७ देखें)।

व्यवसायजनित बीमारियों के सम्बन्ध में भी अधिनियम में व्यवस्था की गई है। कारखानों के प्रबन्धकों के लिए यह अनिवार्य है कि ऐसी सभी विशेष दुर्घटनाओं की सूचना दें जिनके कारण श्रमिकों की मृत्यु हो गई हो अथवा उन्हें गम्भीर शारीरिक चोट पहुंची हो अथवा श्रमिकों को कोई व्यवसायजनित बीमारी लग गई हो। व्यवसायजनित बीमारियों के रोगियों की चिकित्सा करने वाले डाक्टरों के लिए यह आवश्यक है कि वह भी उन रोगियों की सूचना कारखानों के मुख्य निरीक्षक को दें। अधिनियम के अन्तर्गत कारखाना निरीक्षकों का यह अधिकार है कि वे उत्पादन प्रक्रिया में प्रयोग होने वाले पदार्थों का नमूना ले सकें जिससे यह पता लग सके कि उनका प्रयोग अधिनियम के उपबन्धों का अतिक्रमण तो नहीं हो रहा है या इससे श्रमिकों को कोई शारीरिक चोट या उनके स्वास्थ्य को कोई हानि तो नहीं पहुंच रही है। प्रदेशीय सरकारों का यह अधिकार है कि वह किसी भी दुर्घटना के कारणों अथवा व्यवसायजनित बीमारी के किसी भी कारण की जांच के लिए उपयुक्त व्यक्तियों को नियुक्त कर सकें।

जहाँ तक कानून के प्रशासन तथा लागू करने का सम्बन्ध है १९४८ के अधिनियम ने पूर्व के अधिनियमों द्वारा की गई व्यवस्था में कोई परिवर्तन नहीं किया है। परन्तु अधिनियम के विस्तार और विस्तृत क्षेत्र के कारण प्रदेशीय सरकारों के लिए यह आवश्यक हो गया है कि वह कारखाना निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि करें। इस कारण अनेक प्रदेशीय सरकारों ने कारखाना निरीक्षकों की संख्या में वृद्धि की है। यद्यपि अधिनियम के प्रशासन के लिए केन्द्रीय सरकार का कोई उत्तरदायित्व नहीं है तथापि उसने एक समाहकारी संगठन की स्थापना की है। इसको कारखानों के मुख्य सलाहकार के कार्यालय के नाम से जाना जाता है। यह संगठन श्रम सुरक्षाओं के विषय में एक प्रकार से निकासी गृह का काम करता है तथा सुरक्षा, कल्याण व ऐसे ही सम्बन्धित विषयों में मालिकों और श्रमिकों की जानकारी हेतु छोटी-छोटी पुस्तिकायें पोस्टर्स आदि प्रकाशित करता है। इसने कारखाना निरीक्षकों के हेतु कुछ प्रशिक्षण पाठ्यक्रमों की भी व्यवस्था की है। प्रदेशीय सरकारों द्वारा नियुक्त किए गए कारखानों के मुख्य निरीक्षक अधिनियम के प्रशासन के लिए उत्तरदायी हैं। उनके अधीन अनेक निरीक्षक होते हैं। अनेक राज्यों में कारखानों की बढ़ती हुई संख्या को देखते हुए (देखें पृष्ठ ५) निरीक्षकों की संख्या बहुत अपर्याप्त है। इस कारण लगभग १२ से २ प्रतिशत कारखाने प्रतिवर्ष बिना निरीक्षण के रह जाते हैं। १९५१ के श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन में यह सुझाव दिया गया था कि राज्यों में प्रति २५० कारखानों के लिए कम से कम एक निरीक्षक अवश्य होना चाहिए। १९५२ में श्रम निरीक्षकों के एक सेमिनार का आयोजन किया गया था। अनेक निरीक्षकों को विदेश भी भेजा गया है। (देखें पृष्ठ ४३९–४०)। 'श्रमिक' 'कारखाना' और 'उत्पादन प्रक्रिया' आदि शब्दों की स्पष्ट व्याख्या करने के लिए सरकार अधिनियम में संशोधन करने के प्रस्ताव पर विचार कर रही है। अधिनियम में निम्नलिखित अन्य संशोधन भी सरकार के विचाराधीन हैं —(क) कारखाना निरीक्षकों द्वारा गम्भीर दुर्घटनाओं की जाँच करना ताकि इन दुर्घटनाओं के कारणों का पता लग सके तथा उनको दूर करने के लिए और रोक की व्यवस्था करने के लिए उचित पग उठाए जा सकें। (ख) निरीक्षणालयों तथा कारखानों में सुरक्षा अधिकारियों (Safety Officers) की नियुक्ति। (ग) कारखानों में सुरक्षा तथा व्यवसाय सम्बन्धी स्वास्थ्य सेवाओं का लागू करना। (घ) ऐसे श्रमिकों के लिए जो चलती हुई मशीन पर या उसके समीप कार्य करते हैं अधिक सुरक्षा साधन प्रदान करना।

औद्योगिक विकास वाले भूतपूर्व भारतीय राज्यों में भी कुछ कारखाना अधिनियम पारित किए थे जो लगभग १९३४ के अधिनियम जैसे ही थे। १९४८ के भारतीय कारखाना अधिनियम के परिणामस्वरूप उनमें संशोधन भी किए गए। परन्तु १९५१ के भाग 'ब' राज्य अधिनियम के पारित हो जाने के परिणामस्वरूप इन राज्य-अधिनियमों को निरस्त कर दिया गया और जम्मू व काश्मीर राज्य को

छोड़कर केन्द्रीय कारखाना अधिनियम अब समस्त देश में लागू होता है। जनवरी १९५७ में जम्मू और काश्मीर में केन्द्रीय अधिनियम के आधार पर एक नया कारखाना अधिनियम पारित किया गया है। अन्तर केवल इतना ही है कि कारखानों में कैन्टीन शिशु-गृह और कल्याण अधिकारियों की दृष्टि से श्रमिकों की संख्या क्रमश: १०० २५ तथा २० निर्धारित की गई है। १९४८ के कारखाना अधिनियम में संशोधन करके उड़ीसा में यह व्यवस्था की गई है कि यदि कोई श्रमिक अपना काम समाप्त होने के पश्चात् भी स्वेच्छा से या किसी अन्य कारण से कारखाने के अन्दर ठहरता है तो समयोपरि काम के लिए यह समय कार्य के घंटे माने जाएँगे।

अनियन्त्रित कारखानों अथवा कार्यशालाओं के सम्बन्ध में विधान :—

अनियन्त्रित (Unregulated) कारखानों अथवा कार्यशालाओं (Work shops) के सम्बन्ध में विधान मध्यप्रदेश तथा मद्रास में पारित हुए हैं। भारत में रॉयल श्रम आयोग ने अपनी जाँच के समय अनियन्त्रित कारखानों में अनेक दोष पाए तथा उनको दूर करने की अनेक सिफारिशें कीं। आयोग का सुझाव था कि अधिनियम की कुछ धाराओं को शक्ति प्रयोग करने वाले तथा १० से २० श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले छोटे कारखानों तक विस्तृत कर देना चाहिए। उन्होंने यह भी सिफारिश की कि शक्ति का प्रयोग न करने वाले कारखानों में कार्य की दशाओं को नियन्त्रित करने के लिए एक साधारण-सा अलग सा अधिनियम भी बनाना चाहिए।

यद्यपि शक्ति का प्रयोग करने वाले कारखानों के सम्बन्ध में १९४० में कारखाना अधिनियम में संशोधन करके आयोग की सिफारिशों को कार्य रूप दे दिया गया था परन्तु शक्ति का प्रयोग न करने वाले कारखानों के सम्बन्ध में उनकी सिफारिशों को कार्य रूप देने के लिए कोई अखिल भारतीय पग नहीं उठाया गया। केवल कारखाना (संशोधन) अधिनियम १९४०, में "छोटे कारखाने" (Small Factories) नामक एक और अध्याय जोड़ दिया गया था। यह अध्याय शक्ति का प्रयोग करने वाले तथा १० से १९ व्यक्तियों को रोजगार पर लगाने वाले छोटे छोटे औद्योगिक संस्थानों में बालकों के शोषण तथा उन्हें अस्वास्थ्यकर एवं खतरनाक दशाओं में रोजगार पर लगाने के विरुद्ध सुरक्षा प्रदान करता था। प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार था कि जहाँ बालक कार्य करते हों ऐसे किसी भी संस्थान को "छोटा कारखाना" घोषित कर सकती थीं चाहे श्रमिकों की संख्या १० से भी कम क्यों न हो।

जहाँ तक शक्ति का प्रयोग न करने वाले कारखानों का सम्बन्ध है मध्य प्रदेश सरकार ने सबसे पहले १९३७ में सी० पी० अनियन्त्रित कारखाना अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के अन्तर्गत अनियन्त्रित कारखाने की परिभाषा किसी भी ऐसे संस्थान से की गई थी जहाँ कारखाना अधिनियम लागू नहीं होता था तथा ५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते थे तथा जहाँ बीड़ी बनाने अथवा उत्पादन

करने व चमड़ा रंगने व साफ करने का काम होता था। अधिनियम के द्वारा दैनिक काम के घंटे पुरुषों के लिए १० स्त्रियों के लिए ६ तथा बालकों के लिए ७ निर्धारित किए गए थे तथा ५ घंटे कार्य करने के पश्चात् कम से कम आधा घंटे के विश्राम मध्यान्तर की व्यवस्था थी। अधिनियम के अन्तर्गत १४ वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बालक माना गया था। किसी भी बालक को उस समय तक काम पर नहीं लगाया जा सकता था जब तक कि उसने १० वर्ष की अवस्था न पार कर ली हो तथा किसी भी प्रामाणिक चिकित्सक द्वारा कार्य करने के लिए योग्य होने का उसे प्रमाण पत्र न मिल गया हो। अधिनियम में स्त्रियों और बालकों की कार्य अवधि को भी नियमित करने की व्यवस्था थी। अधिनियम में साप्ताहिक छुट्टी के भी उपबन्ध थे। इस अधिनियम के अतिरिक्त बीड़ी कारखानों की दशाओं को नियन्त्रित करने के लिए मध्य प्रदेश सरकार द्वारा १९४१ और १९४८ में मध्य प्रदेश नगरपालिका अधिनियम के अन्तर्गत भी अनेक उपनियम बनाए गए थे। १९४७ में इस अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले कारखानों की कुल संख्या ११९ थी। श्रम अनुसंधान समिति की जांच के अनुसार इन दोनों अधिनियमों से कोई अधिक सफलता प्राप्त नहीं हुई है।

मद्रास में १९४७ में मद्रास गैर-शक्ति कारखाना अधिनियम (Madras Non-power Factories Act) पारित किया गया। मध्य प्रदेश के अधिनियम की भांति इस अधिनियम में भी उन संस्थानों के श्रमिकों की कार्य की दशाओं को नियन्त्रित करने का प्रयत्न किया गया था जो कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते हैं। परन्तु इस अधिनियम का विस्तार और क्षेत्र अधिक था। प्रारम्भ में यह अधिनियम २५ ऐसे विशिष्ट उद्योगों और दस्तकारी में लागू किया गया जहां १० या अधिक श्रमिक कार्य करते थे परन्तु सरकार को यह अधिकार था कि वह रोजगार के परिशिष्ट में परिवर्तन कर सकती थी तथा अधिनियम को ऐसे स्थानों अथवा कारखानों में भी लागू कर सकती थी जहां १० से कम श्रमिक कार्य करते हों। अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले प्रत्येक गैर-शक्ति कारखाने के स्वामी को कारखाना चलाने के लिए लाइसेंस लेना होता था। रोजगार के लिए न्यूनतम आयु १४ वर्ष निर्धारित कर दी गई थी। १४ से १७ वर्ष तक के श्रमिकों को कार्य करने के योग्य होने का डाक्टरी प्रमाण-पत्र लेना पड़ता है। काम के घण्टे प्रतिदिन ९ अथवा प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित किए गए थे और श्रम समय-विस्तार की सीमा प्रतिदिन १० घण्टे निर्धारित की गई थी। एक साप्ताहिक छुट्टी की भी व्यवस्था की गई थी। प्रत्येक वर्ष की नौकरी पर १२ बीमारी की छुट्टियों तथा मजदूरी सहित १२ आकस्मिक छुट्टियों के लिए भी उपबन्ध थे। मौसमी कारखानों में अवकाश की अवधि का निर्धारण श्रमिक द्वारा किए गए कार्य दिनों के अनुसार होता था। स्वास्थ्य और सुरक्षा सम्बन्धी उपबन्ध १९३४ के कारखाना अधिनियम जैसे ही थे। किसी भी श्रमिक को, जिसने लगातार ६ मास तक काम किया हो बिना कोई उपयुक्त

कारण बताए अथवा एक माह का वेतन या इसके बदले में एक माह का नोटिस दिए बिना बर्खास्त नहीं किया जा सकता था।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है अनियंत्रित कारखाने अब १९४८ के कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत भी आते हैं। इसके अन्तर्गत प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार दिया गया है कि वह स्वास्थ्य सुरक्षा कल्याण कार्य के घण्टे रोजगार के लिए कम से कम आयु का निर्धारण आदि से सम्बन्धित अधिनियम के कुछ उपबन्धों को किसी भी कारखाने पर लागू कर सकती हैं चाहे उनमें कितने ही श्रमिक कार्य करते हों या शक्ति का प्रयोग होता हो अथवा नहीं। सी० पी० (मध्य प्रदेश) अनियंत्रित कारखाना अधिनियम को जुलाई १९५२ में १९५२ के मध्य प्रदेश अधिनियम VII तथा मद्रास गैर-शक्ति कारखाना अधिनियम को मई १९५१ में १९५१ के मद्रास अधिनियम XIV द्वारा निरस्त कर दिया गया। मद्रास सरकार ने एक अधिसूचना द्वारा १९४८ के कारखाना अधिनियम को उन सभी स्थानों पर लागू कर दिया है जहाँ (क) बिना शक्ति की सहायता के उत्पादन प्रक्रियायें होती हैं या साधारणतया शक्ति का उपयोग नहीं किया जाता तथा (ख) १० या अधिक परन्तु २० से कम श्रमिक कार्य करते हैं।

१९२८ में मद्रास सरकार ने मद्रास बीड़ी औद्योगिक स्थान (कार्य की दशाओं का विनियमन) अधिनियम [Madras Beedi Industrial Premises (Regulation of Conditions of Work) Act] भी पारित किया। इसके अन्तर्गत १९५१ में नियम बनाए गए और लागू कर दिए गए हैं। अधिनियम में बीड़ी औद्योगिक संस्थानों के लिए लाइसेंस देने निरीक्षकों की नियुक्ति और उनके अधिकारों का निर्धारण करने स्वच्छता और संवातन के स्तर को निर्धारित करने बीड़ी उद्योग के स्थानों में भीड़भाड़ को रोकने; पीने के पानी की व्यवस्था करने तथा शौचालय और मूत्रालय धोने की सुविधाएं शिशु-गृह प्राथमिक चिकित्सा श्रमिकों के लिए कैंटीन कार्य के घण्टे आराम समय साप्ताहिक छुट्टियाँ सवेतन वार्षिक छुट्टी समयोपरि काम के लिए मजदूरी बालकों को रोजगार पर लगाने की रोक आदि के उपबन्ध हैं। इसी प्रकार के उपबन्ध केरल व मैसूर में भी "बीड़ी व सिगार औद्योगिक (कार्य की दशाओं का विनियमन) अधिनियम १९६६" नामक अधिनियमों में भी हैं।

भारत में कारखाना विधान का आलोचनात्मक मूल्यांकन —

१९४९ की श्रम अनुसन्धान समिति ने कारखाना अधिनियमों के अनेक दोषों की ओर संकेत किया था। इनमें से कुछ का उल्लेख तो कार्य की दशाओं वाले अध्याय में किया जा चुका है। यह दोष अभी तक पाए जाते हैं। बड़े बड़े औद्योगिक संस्थानों में तो आमतौर पर अधिनियम के उपबन्धों का संतोषजनक रूप से पालन किया जाता है परन्तु छोटे तथा मौसमी कारखानों में अधिनियम के उपबन्धों से—विशेषतया कार्य के घण्टे समयोपरि बालकों को काम पर लगाने सुरक्षा स्वास्थ्य सफाई आदि के उपबन्धों से—बचने का प्रयत्न किया जाता है। कभी-कभी

मुफस्सिल स्थानों में छोटे छोटे कारखानों के प्रबन्धक श्रमिकों से अधिक काम लेने के लिए घड़ी की सुइयों को आगे पीछे कर देते हैं। कारखानों के निरीक्षण और यहां तक कि यदाकदा जांच करने से भी कोई विशेष लाभ नहीं होता क्योंकि साधारणतया प्रबन्धकों को कारखाना निरीक्षकों के आने की सूचना पहले ही मिल जाती है। जहां परस्पर व्यापी पारियों में काम होता था वहां पर श्रमिकों से अधिक कार्य लिया जाता था तथा कारखाना निरीक्षकों के लिए इसे रोकना बहुत कठिन था। अनेक कारखानों में समयोपरि काम के लिए अधिनियम के उपबन्धों के अनुसार भुगतान नहीं किया जाता है। कुछ मामलों में यह भी देखा गया है कि प्रबन्धक दो प्रकार के रजिस्टर रखते हैं एक तो कारखाना निरीक्षक को दिखाने के लिए और दूसरा अपने लिए। बाल श्रमिकों का अनियंत्रित कारखानों में विशेषतया बहुत ही अधिक शोषण होता है। अक्सर बालकों को निर्धारित आयु से कम आयु पर ही रोजगार पर लगा लिया जाता है और इस हेतु उनके लिए झूठे प्रमाण-पत्र प्राप्त कर लिए जाते हैं। स्वास्थ्य और सुरक्षा के उपबन्धों से भी बचा जाता है। इनका उल्लेख कार्य की दशाओं वाले अध्याय में किया जा चुका है।

अधिनियम के अपवंचन (Evasion) का एक मुख्य कारण यह है कि विभिन्न राज्यों में कारखाना निरीक्षकों की संख्या बहुत कम है। बम्बई और मद्रास के अतिरिक्त और कहीं स्त्री निरीक्षकों की नियुक्ति नहीं की गई है, यद्यपि रॉयल श्रम आयोग ने इस सम्बन्ध में सिफारिश की थी। अधिकतर राज्यों में इस बात की प्रवृत्ति पाई जाती है कि निरीक्षक दल को महत्वपूर्ण औद्योगिक केन्द्रों में नियुक्त करने के स्थान पर केन्द्रीय या प्रधान कार्यालय में ही नियुक्त कर दिया जाता है। बहुधा कारखाना निरीक्षक रोजगार, कार्य के घंटे, कार्य की दशाओं आदि जैसे मानवीय पहलुओं पर कम ध्यान देते हैं और कारखाना निरीक्षण के तकनीकी पहलुओं पर ही अपना ध्यान एकत्रित करते हैं।

अधिनियम से अपवंचन का एक कारण यह भी है कि नियम भंग करने वालों को विशेषतया मुफस्सिल न्यायालयों द्वारा बहुत कम दण्ड दिया जाता है। इस सम्बन्ध में रॉयल श्रम आयोग के शब्दों में कहा जा सकता है कि "अधिकांश प्रान्तों में ऐसे अनेक मामले मिलते हैं जिनमें बहुत कम जुर्माना किया गया है विशेषतया ऐसे मामलों में जहां नियम बार बार भंग किए गए हों। नियम भंग से अपराधी को जो लाभ होता है उसकी अपेक्षा जुर्माना बहुधा कम किया जाता है। रॉयल श्रम आयोग की रिपोर्ट के समय के बाद से इस अवस्था में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ है। हल्का दण्ड देने का परिणाम यह होता है कि इसकी अपेक्षा कि अपराधियों पर अच्छा प्रभाव पड़े उन्हें अपराध के लिए प्रोत्साहन मिलता है। अधिनियम के अन्तर्गत प्रदेशीय सरकारों को अनेक छूटें प्रदान करने का अधिकार है। परन्तु ऐसी छूटें सब जगह एक समान नहीं हैं और अनेक मामलों में तो ये न्यायोचित भी नहीं होतीं।

कारखाना विधान का एक अन्य दोष यह रहा है कि १९४८ के कारखाना अधिनियम से पूर्व संस्थानों की एक बड़ी संख्या पर कोई कानून लागू नहीं होता था। १९४८ का कारखाना अधिनियम भी उन संस्थानों पर लागू नहीं होता जो शक्ति का प्रयोग नहीं करते तथा जहां २० से कम श्रमिक काम करते हैं यद्यपि राज्य सरकारों को यह अधिकार है कि वह अधिनियम को यदि चाहें तो ऐसे संस्थानों पर भी लागू कर सकती हैं। बीड़ी अभ्रक कपड़ा कालीन बुनने चमड़े को देशी विधि से साफ करने ऊन साफ करने चटाई बुनने दस्तकारी आदि जैसे अनियंत्रित उद्योगों में औद्योगिक श्रमिकों को सबसे कम सुरक्षा प्रदान की गई है और मद्रास तथा मध्य प्रदेश को छोड़कर इनके ऊपर कोई विधान लागू नहीं होता है। ऐसे उद्योगों को 'शोषित उद्योग' (Sweated Trades) कहा जाता है। इस बात की बहुत अधिक आवश्यकता है कि विधान को इन उद्योगों तक विस्तृत किया जाय। ऐसे उद्योगों में कार्य की दशाएं अत्यन्त शोचनीय हैं श्रमिकों को बहुत कम मजदूरी दी जाती है तथा बाल श्रमिकों का खूब शोषण किया जाता है। शिशुओं को विविध प्रकार के सभी काम करने पड़ते हैं यहां तक कि मालिकों का घरेलू कार्य भी करना पड़ता है। इस प्रकार उन्हें कार्य सीखना बहुत महंगा पड़ता है। केन्द्रीय सरकार को उनके लिए अलग से विधान बनाना चाहिये और इस विषय को प्रदेशीय सरकारों पर ही नहीं छोड़ देना चाहिये। देश में कारखाना अधिनियम को सफलता पूर्वक कार्यान्वित करने के लिए यह आवश्यक है कि अधिनियम को दृढ़तापूर्वक लागू किया जाय निरीक्षक दल की संख्या में वृद्धि की जाय विभिन्न राज्यों के कानूनों में समानता लाई जाय तथा अधिनियम को अनियन्त्रित कारखानों तक विस्तृत कर दिया जाय। जहां तक अधिनियम के उपबन्धों का सम्बन्ध है वह जिस उद्देश्य से अधिनियम बनाया गया है उसके लिए पर्याप्त प्रतीत होता है।

खानों में श्रम विधान

(Mining Legislation)

१९२३ का भारतीय खान अधिनियम (The Indian Mines Act, 1923) —

कोयले की खानों में श्रमिकों के रोजगार की दशाओं को विनियमित करने के हेतु सबसे प्रथम प्रयास १८९४ में किया गया था जब खानों के एक निरीक्षक की नियुक्ति की गई थी। यह नियुक्ति १८९० में बर्लिन में हुए एक अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन के फलस्वरूप हुई थी। परन्तु खानों में कार्य दशाओं को विनियमित करने वाला प्रथम भारतीय खान अधिनियम १९०१ में पारित हुआ। इसके अन्तर्गत निरीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था की गई थी। इस अधिनियम में अनेक दोष थे तथा कई बार संशोधन के पश्चात् इस अधिनियम को पूर्णत: परिवर्तित कर दिया गया और इसके स्थान पर १९२३ का अधिक व्यापक "भारतीय खान अधिनियम" पारित किया गया। इस अधिनियम में १९२८ में संशोधन हुआ। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन द्वारा १९३१ में पारित एक अभिसमय के मसौदे के परिणामस्वरूप जो अभिसमय कोयले की

खानों में कार्य के घंटों के सम्बन्ध में था तथा रॉयल श्रम आयोग की सिफारिशों के अनुसार इस अधिनियम में १९३५ में फिर संशोधन हुआ जिसके अन्तर्गत इसमें कुछ प्रमुख परिवर्तन किए गए। इस अधिनियम में इसके पश्चात भी १९३६, १९३७, १९४० तथा १९४६ में संशोधन हुए तथा अन्त में इसके स्थान पर १९५२ का भारतीय खान अधिनियम पारित किया गया।

१९५२ में पूर्व संशोधित १९२३ के भारतीय खान अधिनियम के मुख्य उपबन्धों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है —

यह अधिनियम समस्त खानों पर लागू होता था। खान की परिभाषा इस प्रकार की गई थी "कोई खुदाई जहाँ खनिज पदार्थों को प्राप्त करने या उनकी खोज करने के हेतु कार्य किया जाता है या किया जा रहा है।" इस अधिनियम में खान के ऊपर कार्य में लगाये हुए व्यक्तियों के लिए कार्य के घंटे प्रतिदिन १० निर्धारित किए गए थे और अधिकतम श्रम समय विस्तार भी १२ घन्टे निश्चित कर दिया था जिसमें प्रत्येक ५ घन्टे कार्य के पश्चात १ घन्टे के विश्राम मध्यान्तर की भी व्यवस्था थी। खान के भीतर रोजगार में लगे व्यक्तियों के लिए दैनिक कार्य समय तथा श्रम समय विस्तार ९ घन्टे निश्चित किया गया था। समस्त कर्मचारियों के लिए साप्ताहिक कार्य घन्टे ५४ निर्धारित किये गए थे। किसी भी व्यक्ति को खान में सप्ताह के ६ दिन से ज्यादा कार्य करने की अनुमति नहीं थी। निरीक्षण तथा प्रबन्ध करने वाले कर्मचारी इन उपबन्धों के अन्तर्गत नहीं आते थे। १५ वर्ष की आयु से कम के बालकों को रोजगार में लगाना निषेध था तथा १७ वर्ष से कम आयु वाले व्यक्तियों को खान के भीतर कार्य करने की तब तक अनुमति नहीं थी जब तक वे इसके योग्य होने का डाक्टरी प्रमाण-पत्र न दें।

अधिनियम में पर्याप्त पीने के पानी का प्रबन्ध, चिकित्सक यन्त्रों की व्यवस्था तथा उचित रूप से मल-मूत्र निकास के प्रबन्ध की व्यवस्था भी की गई थी। १९४६ के संशोधित अधिनियम द्वारा इस बात की भी व्यवस्था कर दी गई थी कि खानों के ऊपर या उनके समीप स्त्री और पुरुषों के लिए अलग-अलग ऐसे स्नानगृह बनाये जाएँ जो बन्द हों और जिनमें फव्वारे से स्नान करने की व्यवस्था हो। १९४५ में खान (संशोधित) अध्यादेश द्वारा खानों में शिशुगृहों की व्यवस्था की गई थी। १९४७ में इस अध्यादेश को निरस्त कर दिया गया। किन्तु इसके उपबन्धों का अधिनियम में समावेश कर लिया गया। *खान में कार्य करने वालों की सुरक्षा के लिए विनियम भी* बनाए गये। इनके अन्तर्गत महत्वपूर्ण खान क्षेत्रों में ऐसे खान बोर्डों के निर्माण की व्यवस्था थी जिनमें मालिकों, कर्मचारियों तथा सरकार के प्रतिनिधि हों। ऐसे बोर्डों का कार्य सरकार के अधिनियम के अन्तर्गत नियम बनाने में सहायता करना था। उत्पादन, रोजगार, श्रमिकों की आय, कार्य के घन्टे आदि के विषय में आँकड़े एकत्रित करने के हेतु सरकार ने कोयला खान विनियमों में संशोधन भी किया। यह अधिनियम हिमाचल प्रदेश तथा मध्य प्रदेश में कुछ भारतीय राज्यों में भी लागू होता था

तथा त्रिवांकुर व मैसूर की खानों के लिए अलग अधिनियम थे। अधिनियम के प्रशासन का उत्तरदायित्व भारत सरकार का था तथा इस अधिनियम का प्रशासन करने तथा उसे लागू करने के लिए खानों का एक मुख्य निरीक्षक नियुक्त किया गया था।

खानों में रोजगार की दशाओं का विनियमन खान अधिनियम के अतिरिक्त खानों में स्वास्थ्य बोर्डों की स्थापना करके भी किया गया है। ये बोर्ड श्रमिकों के स्वास्थ्य की देखभाल करते हैं। इन बोर्डों को यह अधिकार दिया गया है कि वह खानों के मालिकों को इस बात के लिए बाध्य करें कि वे खानों के क्षेत्र में आवास जल सफाई की सुविधायें एवं चिकित्सा सहायता की व्यवस्था करें।

जहां तक खान के भीतर कार्य करने वाली स्त्रियों के रोजगार का सम्बन्ध है मार्च १९२९ में ऐसे विनियम बनाए गए थे। जिनसे अगले १० वर्षों में अर्थात् १९३९ तक स्त्रियों का खान के भीतर कार्य करना धीरे-धीरे समाप्त कर दिया जाए। परन्तु १९३७ में एक अधिसूचना द्वारा स्त्रियों का खान के भीतर कार्य करना निषेध कर दिया गया। युद्ध काल में श्रमिकों की कमी के कारण १९४३ में यह रोक हटा भी गई थी किन्तु पुनः १९४६ में यह रोक लगा दी गई।

१९५२ का भारतीय खान अधिनियम —
(The Indian Mines Act of 1952)

खानों के श्रमिक सम्बन्धी विधान को कारखानों के श्रमिक सम्बन्धी विधान के समान करने के लिए भारतीय सरकार ने लोकसभा में १८ दिसम्बर १९५१ को एक विधेयक प्रस्तुत किया जो १५ फरवरी १९५२ को पारित हुआ। इसको १९५२ का 'भारतीय खान अधिनियम' कहा जाता है। यह अधिनियम पिछले सभी ऐसे अधिनियमों को निरस्त करके उनका समन्वय करता है जो खानों में सुरक्षा तथा श्रमिकों के विनियमन से सम्बन्धित थे। यह अधिनियम अन्य बातों के अतिरिक्त कम कार्य घंटे समयोपरि वेतन तथा वेतन सहित छुट्टियों की भी व्यवस्था करता है तथा सुरक्षा व स्वास्थ्य सम्बन्धी उपबन्धों को दृढ़ बनाता है। अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्नलिखित हैं —

(क) यह अधिनियम उन समस्त व्यक्तियों पर लागू होता है जो खान के कार्यों में या उससे सम्बन्धित किसी भी कार्य में लगे होते हैं। जम्मू व काश्मीर के अतिरिक्त समस्त भारत पर यह लागू होता है और इसमें खान की परिभाषा अधिक स्पष्ट व विस्तृत कर दी गई है। खानों के अन्तर्गत खानों से सम्बन्धित अन्य कार्य तथा स्थान जहां भी श्रमिक कार्य करते हैं सम्मिलित कर लिए गए हैं उदाहरणतया बंगीचे, ट्रामगाड़ियां कार्य शालायें बिजली घर, ट्राम गाड़ियों आदि के ठहरने के स्थान, खनिज पदार्थ और कोयला धोने के स्थान आदि। (ख) यह अधिनियम खान के ऊपर तथा खान के भीतर कार्य करने वाले समस्त वयस्क श्रमिकों के कार्य घंटे घटाकर प्रति सप्ताह ४८ कर देता है तथा इसमें यह भी व्यवस्था है कि खान के अन्दर

प्रतिदिन ८ घण्टे से अधिक एवं खान के ऊपर प्रतिदिन ६ घण्टे से अधिक किसी श्रमिक को कार्य करने की अनुमति नहीं होगी। काम करने के प्रत्येक पांच घण्टों के पश्चात् आधे घण्टे का एक विश्राम मध्यान्तर देना होगा और कोई भी श्रमिक सप्ताह में ६ दिन से अधिक कार्य नहीं करेगा। १९२९ के अधिनियम ने समयोपरि देने की दर निर्दिष्ट नहीं की थी किन्तु १९५२ के अधिनियम में यह व्यवस्था है कि खान के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिकों को मजदूरी की साधारण दरों से १½ गुनी दरों पर समयोपरि दी जायगी तथा खान के भीतर कार्य करने वाले श्रमिकों को मजदूरी की साधारण दर से दुगनी दर पर समयोपरि दी जायगी परन्तु कोई भी श्रमिक समयोपरि सहित एक दिन में १० घण्टों से अधिक कार्य नहीं कर सकता। कार्य का अधिकतम समय विस्तार खान के ऊपर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए १२ घण्टे तथा खान के भीतर कार्य करने वालों के लिए ८ घण्टे निश्चित किया गया है। (ग) अधिनियम के अन्तर्गत खान के अन्दर रोजगार में लगे व्यक्तियों की आयु-सीमा बढ़ा कर १७ से १८ कर दी गई है तथा किशोर (अर्थात् १५ से १८ वर्ष की आयु के बीच के व्यक्ति) श्रमिकों के लिए प्रतिदिन ४½ घण्टे कार्य की सीमा निर्धारित कर दी गई है। (घ) खान के अन्दर स्त्रियों को रोजगार पर लगाने का प्रतिबन्ध इस अधिनियम में भी है तथा इस बात की व्यवस्था है कि खान के ऊपर किसी भी स्त्री को प्रातः ६ बजे से संध्या ७ बजे के अतिरिक्त कार्य करने की अनुमति नहीं दी जायगी। प्रदेशीय सरकार इन सीमाओं को कम या अधिक कर सकती है किन्तु १० बजे रात्रि से ५ बजे प्रातः के बीच कार्य करने की अनुमति नहीं दे सकती। (ङ) यह अधिनियम एक साप्ताहिक विश्राम दिवस के अतिरिक्त श्रमिकों को वेतन सहित छुट्टियाँ तथा ऐच्छिक छुट्टियों को प्रदान करने की व्यवस्था करता है। श्रमिक १२ माह की निरन्तर नौकरी पूर्ण करने के पश्चात् निम्न दरों पर छुट्टी ले सकते हैं (i) मासिक वेतन पाने वाले श्रमिक—१४ दिन (ii) साप्ताहिक मजदूरी पाने वाले श्रमिक अथवा सामान चढ़ाने उतारने या खान के भीतर ठेकेदार पर कार्य करने वाले श्रमिक—७ दिन। मासिक मजदूरी पाने वाले श्रमिक २८ दिन तक छुट्टियाँ एकत्रित कर सकते हैं। (च) १९४८ के फैक्टरी अधिनियम के आधार पर इस अधिनियम में स्वास्थ्य सुरक्षा तथा कल्याण सम्बन्धी पर्याप्त उपबन्ध भी बनाए गए हैं। कल्याण अधिकारी की नियुक्ति प्राथमिक उपचार का सामान, शिशुगृह, विश्रामगृह, खान के ऊपर स्नानघर, कपड़ा बदलने वाले केन्द्रीय स्थान कैन्टीन एम्बुलेंस तथा रोगी को ले जाने वाले स्ट्रेचर ठंडा और शुद्ध पीने का जल शौचालय मूत्रालय आदि की अधिनियम में व्यवस्था है। (छ) अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने वालों को समुचित दण्ड देने की भी व्यवस्था है, यह दण्ड कारावास या जुर्माना या दोनों के रूप में दिया जा सकता है। (ज) प्रशासन के हेतु अधिनियम में खानों के मुख्य निरीक्षक की नियुक्ति की व्यवस्था है मुख्य निरीक्षक की सहायता खानों के निरीक्षक तथा जिलाधीश करेंगे। निरीक्षक ऐसे औपचारिक कार्यों को करने की आज्ञा दे सकते हैं जो श्रमिकों की सुरक्षा के लिए आवश्यक हों।

१६५२ के भारतीय खान अधिनियम में १६५६ के खान (संशोधन) अधिनियम द्वारा संशोधन किया गया है। यह संशोधित अधिनियम १६ जनवरी १६६० को लागू किया गया। संशोधित अधिनियम की कुछ मुख्य धाराएँ निम्नलिखित हैं—'खान' शब्द की परिभाषा को और अधिक स्पष्ट कर दिया गया है और अब इसके अन्तर्गत पत्थर की खानें, निजी रेलें माल ले जाने के लिए बनाए हुए रास्ते तथा गाड़ियाँ तथा समस्त स्थान जो खानों के समीप या खानों से सम्बन्धित हैं और जिनमें खानों से सम्बन्धित कार्य होते हैं खान के अन्तर्गत आ जाते हैं। संशोधित अधिनियम में यह व्यवस्था भी है कि जिन खानों में १५० या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं वहाँ प्राथमिक उपचार के लिए प्रथक कमरे होने चाहिएं। १६५२ के अधिनियम में इसके लिए ३०० श्रमिकों की शर्त थी। अधिनियम में यह भी धारा है कि उस खान में श्रमिकों को रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता जिसका मालिक खान निरीक्षक की चेतावनी पर भी ऐसी बातों को ठीक नहीं करता जिनसे मानव जीवन को खतरे की अथवा सुरक्षा को खतरा हो। इस अधिनियम में खान के अन्दर और खान के ऊपर दोनों ही स्थानों पर किए जाने वाले समयोपरि काम के लिए साधारण मजदूरी से दुगनी मजदूरी देने की व्यवस्था भी गई है। १६५२ के अधिनियम में खान के अन्दर समयोपरि काम के लिए दुगनी और खान के बाहर डेढ़ गुनी मजदूरी देने की व्यवस्था थी। संशोधित अधिनियम में यह भी व्यवस्था की गई है कि खान के अन्दर काम करने वाले श्रमिकों को प्रति २० दिन काम के उपरान्त एक सवेतन छुट्टी दी जाएगी। इस प्रकार की छुट्टियाँ ३० दिन तक एकत्रित की जा सकती हैं। अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने पर और अधिक दण्ड देने की व्यवस्था है।

खानों के लिए अन्य विधान —

१६४७ का कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम तथा १६४६ का अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम भी सरकार द्वारा पारित किए गए हैं। पिछले पृष्ठों में कल्याण कार्यों के अन्तर्गत (देखिए पृष्ठ २६६–३०१) इन अधिनियमों का उल्लेख किया जा चुका है। सरकार ने १६४८ का कोयला खान प्रोवीडेन्ट फण्ड एवं बोनस योजना अधिनियम भी पारित किया है जिसका सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत पृष्ठ (३१०—१२ पर) उल्लेख किया जा चुका है तथा सरकार ने खान मातृत्व-हित-लाभ अधिनियम भी पारित कर दिया है (देखिए पृष्ठ ३४८ व ३५१)। खानों में दुर्घटनाओं की रोकथाम के लिए १६५५ में कोयला खान (अस्थायी) विनियम भी सरकार ने घोषित किए, (देखिए पृष्ठ ४१८)। अक्टूबर १६५७ से कोयला खानों के लिए विनियमों (Regulations) की एक पूर्ण संशोधित संहिता लागू कर दी गई है और अब तक जो भी विनियम थे वह समाप्त कर दिए गए हैं। यह विनियम इस बात की व्यवस्था करते हैं कि जलने वाली तथा जहरीली गैसों युक्त खानों में पानी भर जाने या आग लग जाने या तापक्रम एकदम से बढ़ जाने

ताकि वे खान के भीतर कार्य करने वाले श्रमिकों की प्रभावात्मक रूप से सुरक्षा हो सके। खानों में शिशुगृहों के लिए भी १९४६ में नियम बनाए गए थे तथा १९५९ में यह नियम फिर से बनाए गए और इनमें १९६१ में संशोधन भी किया गया। कच्चे लोहे की खानों के लिए भी १९६१ में एक श्रम कल्याण उपकर अधिनियम पारित किया गया है। इस प्रकार खान श्रमिकों की सुरक्षा तथा श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा आवास दशाओं को सुधारने के लिए सरकार ने उपयोगी विधान बनाए हैं।

सन् १९३९ का कोयला खान सुरक्षा (संचित व्यवस्था) अधिनियम:—
[The Coal Mines Safety (Stowing) Act 1939]

यह अधिनियम कोयला ठिकाने से रखने के कार्यों में सहायता करने के लिए एक निधि की स्थापना करने की व्यवस्था करता था। अधिनियम के अनुसार इस निधि का धन एक उत्पादन कर द्वारा संचित किये जाने की व्यवस्था थी तथा उसका प्रशासन एक कोयला खान स्टोइंग बोर्ड को सौंपा गया था जिसमें ६ व्यक्ति थे। इस अधिनियम के अन्तर्गत खानों के निरीक्षकों तथा मुख्य निरीक्षक को यह अधिकार दिया गया था कि वे खानों के मालिकों, अभिकर्ताओं अथवा प्रबन्धकों को खानों के श्रमिकों के लिए आवश्यक सुरक्षात्मक कार्य करने को बाध्य करें। किन्तु जैसा कि १९४६ में कोयला खानों में श्रम की दशाओं की जांच से स्पष्ट है कुछ खानों ने ही इस अधिनियम का लाभ उठाया। १९४६ की भारतीय कोयला खान समिति ने यह जांच की थी कि यह अधिनियम किस प्रकार लागू किया जा रहा था। इस समिति की कुछ सिफारिशों को लागू भी किया गया। अन्त में इस अधिनियम के स्थान पर १९५२ का निम्नलिखित अधिनियम पारित किया गया।

१९५२ का कोयला खान (बचत तथा सुरक्षा) अधिनियम —
[The Coal Mines (Conservation and Safety) Act, 1952]

यह अधिनियम जो जम्मू व काश्मीर राज्य को छोड़कर समस्त देश में लागू होता है, केन्द्रीय सरकार को ऐसे कार्य अपनाने का अधिकार देता है जिन्हें सरकार कोयला बचत के लिए या कोयला खानों में सुरक्षा व्यवस्था बनाए रखने के लिए आवश्यक समझे। सरकार कोयले की राख कम करने के लिए कोयला धोने की मात्रा दे सकती है तथा कोयला बचत के लिए मालिकों को कोयला ठिकाने से रखने को कह सकती है। इस अधिनियम में एक कोयला बोर्ड तथा सलाहकार समितियों के निर्माण की व्यवस्था भी है। सरकार को कोयला ठिकाने से रखने में सहायता देने के हेतु कोयले पर उत्पादन कर लगाने का भी अधिकार दिया गया है। उत्पादन कर की दर एक रुपये प्रति टन कोयले से अधिक नहीं बढ़ाई जा सकती। सरकार अब कोयले पर एक अतिरिक्त उत्पादन कर भी लगा सकती है जिसकी दर गहन को धुले हुए (क) (ख) ग्रेड के लिए ५ रुपये प्रति टन तथा अन्य ग्रेड (I) के लिए दो रुपये प्रति टन से अधिक नहीं हो सकती। कर से प्राप्त धन बोर्ड

का दिया जाएगा तथा 'कोयला खान बचाव तथा सुरक्षा निधि' में जमा हो जाएगा। यह निधि अधिनियम के अन्तर्गत बनाई गई है। इस निधि का उपयोग अधिनियम के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तथा खानों में सुरक्षा से सम्बन्धित सुरक्षा कार्य के अनुसन्धान के लिए किया जा सकता है। मुख्य निरीक्षक तथा अन्य निरीक्षकों को यह अधिकार है कि वह कायला छिपाने में रखने के लिए, या अन्य किसी भी कार्य के लिए जिसे वह सुरक्षा के लिए आवश्यक समझते हों खानों के मालिक प्रबन्धक या अभिकर्ता को आज्ञा दे सकते हैं।

बागान श्रम विधान
(Plantation Labour Legislation)

बागान में श्रमिक :—

बड़े नगरों के कारखाना श्रमिकों की भांति बागान के श्रमिक न तो इतने वाचाल (Vocal) हैं न ही जनता इन्हें इतना अधिक जानती है। फिर भी अपनी संख्या के कारण और देश की अर्थ-व्यवस्था में महत्वपूर्ण भाग लेने के कारण उनका महत्व कम नहीं है यद्यपि इस महत्व का जनता को बहुत कम ज्ञान कराया जाता है। बागान १२½ लाख श्रमिकों को रोजगार देते हैं तथा निर्यात व्यापार में इनका महत्वपूर्ण योगदान है। बागान श्रमिकों की अपनी विशेष प्रकार की समस्याएं हैं। अधिकतर श्रमिक दूर के क्षेत्रों से भर्ती किये जाते हैं तथा इनमें प्रवासिता पाई जाती है। बागान में कार्य भी साधारणतया मौसमी होता है। अन्य कारखानों की तुलना में बागान के श्रमिकों की आय भी कम होती है। बागान में चिकित्सा तथा शिक्षा की सुविधाओं का अभाव है और कल्याण सुविधायें भी अपर्याप्त हैं। मलेरिया बुखार आम बात है तथा श्रमिकों का स्वास्थ्य साधारणतः असन्तोषजनक रहता है। आवास की दशाओं में भी काफ़ी सुधार की आवश्यकता है। ये समस्त बातें बताती हैं कि बागान के श्रमिकों के जीवन के सब पहलुओं पर ध्यान देने वाले एक व्यापक विधान की बहुत अधिक आवश्यकता रही है। परन्तु १९५१ तक इस दिशा में कोई पग नहीं उठाया गया। १९५१ में ही एक पृथक बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया गया परन्तु इसको भी अप्रैल १९५४ तक लागू नहीं किया गया।

प्रारम्भ में उठाये गए कुछ पग —

भारतीय श्रम विधान के इतिहास में प्रारम्भ में उठाए गए वैधानिक पग बागान में कार्य पर लगे हुए श्रमिकों से सम्बन्धित थे। आसाम के बागान उद्योग को अपने विकास के प्रारम्भिक चरणों में श्रमिकों की कमी की समस्या का सामना करना पड़ा था। श्रमिकों को दूर-दूर से तथा अन्य राज्यों से अधिक भर्ती करने पड़ते थे जिसके कारण अनेक कठिनाइयां तथा समस्यायें उत्पन्न हो गई थीं। इन कठिनाइयों को दूर करने के लिए १८६३ से १९०१ तक अनेक अधिनियम पारित किए गये थे। जिनमें पांच बंगाल में थे तथा एक मद्रास में था। इन अधिनियमों से भर्ती करने वालों

के लाइसेन्स, परावासी (Emigrants) श्रमिकों की रजिस्ट्री यात्रा में स्वास्थ्य सम्बन्धी सावधानियां, श्रमिकों के संविदा की ३ से ५ साल तक की अवधि, तथा मजदूरी निर्धारण आदि की व्यवस्था की गई थी। मालिकों को यह अधिकार दे दिया था कि भागे हुए श्रमिकों को गिरफ्तार कर ले। संविदा भंग करना एक कानूनी अपराध बना दिया गया था। किन्तु इन सब व्यवस्थाओं ने अनुबन्ध श्रम (Indentured Labour) पद्धति को जन्म दे दिया। इस पद्धति ने श्रमिकों की पर्याप्त रूप से पूर्ति की समस्या को हल करने के स्थान पर नवीन कठिनाइयां उत्पन्न कर दीं। अतः १९०१ में प्रथम असम तथा परावासी अधिनियम पारित किया गया। १९०८ में तथा १९१५ में दो संशोधित अधिनियम पारित किए गए, जिन्होंने अनुबन्ध श्रम पद्धति समाप्त कर दी तथा मालिकों द्वारा श्रमिकों को निजी रूप से गिरफ्तार कर लेने के अधिकार को वापिस ले लिया। तथापि यह अधिनियम उद्योग की समस्याओं को हल करने में असफल रहा। १९२९ तथा १९३२ में १९११ एवं १९६० के अधिनियम निरस्त कर दिए गए। भारत में रॉयल श्रम आयोग ने इन सब प्रश्नों पर विस्तार से विचार किया था तथा अनेक सिफारिशें भी की थीं। इन सिफारिशों के आधार पर ही चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम १९३२ में पारित किया गया जो अक्टूबर १९३३ में लागू कर दिया गया।

१९३२ का चाय क्षेत्र परावासी श्रमिक अधिनियम —
(The Tea Districts Emigrant Labour Act, 1932)

यह अधिनियम जम्मू एवं काश्मीर के अतिरिक्त समस्त भारत पर लागू होता है। यह अधिनियम मुख्यतया असम के चाय बागान के श्रमिकों की भर्ती पर नियन्त्रण लागू करने से सम्बन्धित है और इस बात की व्यवस्था करता है कि मोखे से और फुसलाकर श्रमिकों की भर्ती न की जा सके तथा असम तक यात्रा के लिए उचित सुविधायें प्रदान की जाएं। यह अधिनियम केन्द्रीय सरकार के नियन्त्रण में प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार देता है कि राज्य के किसी क्षेत्र को नियन्त्रित परावासी क्षेत्र घोषित कर दें तथा किसी व्यक्ति को मालिक अथवा मालिकों की ओर से भर्ती करने वाले स्थानीय अभिकर्त्ता (Agent) का कार्य करने का लाइसेन्स दे दें। नियन्त्रित परावासी क्षेत्रों से भर्ती किए हुए श्रमिक लाइसेन्स-युक्त स्थानीय अभिकर्ता द्वारा तथा निर्धारित मार्गों से ही असम भेजे जा सकते हैं तथा उनके भेजे जाने के मार्ग में भोजन तथा ठहरने का अभिकर्त्ताओं द्वारा प्रबन्ध होता है। प्रदेशीय सरकारें केन्द्रीय सरकार की अनुमति से किसी नियन्त्रित परावासी क्षेत्र या उसके किसी भाग को सीमाबद्ध (Restricted) भर्ती क्षेत्र भी घोषित कर सकती हैं। ऐसी स्थिति में लाइसेन्स-युक्त भर्ती करने वाले अभिकर्त्ता के या लाइसेन्स-युक्त भर्ती करने वाले के अथवा किसी ऐसे बागान सरदार के अतिरिक्त जो चाय बागान के मालिक या प्रबन्धक का प्रमाण-पत्र रखता हो अन्य कोई व्यक्ति किसी भी व्यक्ति को सहायता प्राप्त परावासी के रूप में असम जाने में सहायता नहीं दे सकता।

अधिनियम १६ वर्ष की आयु से कम के बालकों को असम जाने के लिए सहायता करने पर रोक लगाता है जब तक कि बालक अपने माता-पिता या ऐसे वयस्क रिश्तेदारों के साथ न हो जिन पर वे आश्रित हों। इसी प्रकार किसी विवाहित स्त्री को भी जो अपने पति के साथ रहती हो बिना उसके पति की अनुमति के असम जाने के लिए सहायता नहीं दी जा सकती है। इसके अतिरिक्त असम में प्रवेश करने की तिथि से तीन वर्ष की अवधि समाप्त होने पर, या कुछ विशेष परिस्थितियों में इसके पूर्व समय में भी प्रत्येक प्रवासी तथा उसके परिवार को स्वदेश लौटने का अधिकार है। इस प्रकार वापिस लौटने का व्यय भी मालिकों को वहन करना पड़ता है। अधिनियम के अनुसार मालिक को यात्रा के लिए केवल किराया ही नहीं देना होता है वरन् यात्रा की अवधि में निर्वाह भत्ता भी देना पड़ता है तथा श्रमिकों के लिए उचित स्थानों पर विश्राम गृहों की भी व्यवस्था करनी पड़ती है।

अधिनियम एक प्रवासी श्रमिक के नियन्त्रक (Controller) तथा एक या अधिक उपनियन्त्रकों की नियुक्ति की व्यवस्था करता है जिन्हें अधिनियम में दिए गए कार्यों तथा कर्तव्यों का पालन करना होता है। नियन्त्रक तथा उसके सिब्बंदी (Establishment) के व्यय को वहन करने के लिए अधिनियम में मालिकों पर एक उप-कर लगाने की व्यवस्था है। इस उप-कर की दर असम में प्रवेश करने वाले प्रत्येक सहायता प्राप्त प्रवासी श्रमिक के हिसाब से ६ रुपये तक हो सकती है और यह दर प्रत्येक वर्ष निर्धारित की जा सकती है। १९५९ के लिए सरकार ने उप-कर की दर ५ रु० निश्चित की थी। १९५८ में इस दर को बढ़ाकर ८ रु० कर दिया गया और १९६१ में भी ८ रु० की दर थी। १९६२ में यह दर ६ रु० कर दी गई। प्रवासी श्रमिक का नियन्त्रक इस अधिनियम के प्रशासन की वार्षिक रिपोर्ट भी तैयार करता है।

अधिनियम के अन्तर्गत बनाए गए नियमों को १९ ५ में लागू किया गया। इन नियमों में १९५४ में संशोधन भी हुआ। इस संशोधन के अनुसार असम जाने वाले श्रमिक केवल उन रेलवे मार्ग से ही जा सकते हैं जो मार्ग आरम्भ में पड़ते हैं। इसके अतिरिक्त जो श्रमिक असम में बचपन से ही आ गए थे उन्हें भी अपने घरों को वापिस लौटने का अधिकार दे दिया गया है। गलत सूचना देने वाले मध्यस्थों के लिए दण्ड की व्यवस्था भी की गई है। वापिस भेजे गए श्रमिकों की तथा भागे हुए श्रमिकों की सूचना देना मालिकों के लिए अनिवार्य कर दिया गया है। १९५९ में एक संशोधन के अनुसार रास्ते में पड़ने वाले डिपो में १० वर्ष तक के बच्चों के लिए भी १० छटांक दूध प्रतिदिन देने की व्यवस्था कर दी गई है। २ साल से कम के बच्चों को जो दूध दिया जाता था उसकी मात्रा ६ छटांक से बढ़ाकर १२ छटांक कर दी गई है।

यह अधिनियम केवल श्रमिकों की भर्ती तथा भर्ती हुए श्रमिकों को असम भेजने तथा उनके स्वदेश लौटने को विनियमित करता है। किन्तु चाय बागान में

श्रमिकों की कार्य दशाओं का विनियमित नहीं करता है। केवल कोचीन राज्य में मई १९३७ में बनाए गए कुछ नियमों के अन्तर्गत बागान श्रमिकों की कार्य दशाओं को विनियमित करने की व्यवस्था थी। १९३५ में इस अधिनियम के अन्तर्गत बनाए गए नियमों को उड़ीसा में भी लागू कर दिया गया था।

१९५१ का बागान श्रमिक अधिनियम —
(The Plantation Labour Act of 1951)

बागान की कार्य दशाओं को विनियमित करने के पूर्ण अभाव पर श्रम अनुसंधान समिति (१९४६) ने अपने विचार प्रकट किए थे तथा बागान के लिए एक पृथक अधिनियम बनाने की सिफारिश की थी। १९४७ में बागान के लिए एक औद्योगिक समिति की नियुक्ति की गई तथा भारत सरकार ने प्रदेशीय सरकारों मालिकों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों का बागान उद्योग की समस्याओं पर विचार करने के लिए एक सम्मेलन बुलाया। औद्योगिक समिति ने सिफारिश की कि उपयुक्त मजदूरी निश्चित करने के लिए बागान में श्रमिकों के जीवन स्तर तथा निर्वाह लागत की जांच की जानी चाहिए। यह कार्य श्रम ब्यूरो के निदेशक को सौंपा गया। सम्मेलन में यह भी तय हुआ कि बागान में डाक्टरी सहायता के वर्तमान स्तर का अध्ययन करने तथा उसमें सुधार के लिए सुझाव देने के हेतु एक चिकित्सक विशेषज्ञ नियुक्त किया जाय। यह कार्य स्वास्थ्य सेवाओं (सामाजिक बीमा) के उप-महानिदेशक मेजर इ० लायड जोन्स को सौंपा गया था। मार्च १९४८ में इन सबकी रिपोर्टों पर औद्योगिक समिति द्वारा विचार किया गया। इस समिति ने सिफारिश की कि बागान में १२ वर्ष से कम आयु वाले बालकों को रोजगार देने पर रोक लगा देनी च हिए तथा डाक्टरी सहायता का स्तर कानून द्वारा निर्धारित कर दिया जाना चाहिए तथा बागान में कार्य की दशाओं में भी सुधार होना चाहिए। इन सबके परिणामस्वरूप अक्टूबर १९५१ में सरकार ने बागान श्रमिक अधिनियम पारित किया। किन्तु बागान में मंदी आने के कारण इसे लागू करने में विलम्ब हो गया। अप्रैल १९५४ में यह अधिनियम लागू किया गया। १९६० में इसमें एक संशोधन किया गया। अधिनियम के मुख्य उपबन्ध निम्न प्रकार हैं।—

(१) यह अधिनियम उन समस्त चाय कॉफी रबर तथा सिनकोना बागान में लागू होता है जिनका २५ एकड़ या अधिक क्षेत्र हो तथा जो ३० या अधिक व्यक्तियों को रोजगार में लगाए हों। केन्द्रीय सरकार की अनुमति से किसी भी प्रदेशीय सरकार द्वारा यह अधिनियम अन्य बागान पर भी लागू किया जा सकता है। यह अधिनियम जम्मू तथा काश्मीर के अतिरिक्त समस्त भारत में लागू होता है।

(२) यह अधिनियम बागान के लिए निरीक्षक कर्मचारी-वर्ग की प्रदेशीय सरकार द्वारा नियुक्ति की व्यवस्था करता है। इसके अन्तर्गत बागान का एक मुख्य निरीक्षक तथा इसके अधीन अन्य निरीक्षक नियुक्त किए जाते हैं। इन निरीक्षकों के अधिकारों तथा कार्यों को स्पष्ट कर दिया गया है।

(३) अधिनियम के अन्तर्गत मालिकों से यह कहा गया है कि वे पीने के स्वच्छ पानी की व्यवस्था करें, स्त्री तथा पुरुषों के लिए पर्याप्त मात्रा में शौचालयों एवं मूत्रालयों की व्यवस्था करें तथा उचित डाक्टरी सुविधाएं भी दें। यदि कोई मालिक इन सुविधाओं को प्रदान करने में असफल रहे तो मुख्य निरीक्षक इन सुविधाओं को प्रदान कर सकता है तथा मालिकों से इनका व्यय वसूल कर सकता है।

(४) बागान श्रमिकों के कल्याण के लिए भी अधिनियम में उपबन्ध हैं जैसे प्रत्येक उस बागान में जिसमें १५० या अधिक श्रमिक रोजगार में लगे हों एक कैन्टीन स्थापित करने की व्यवस्था है तथा उन बागानों में जहां ५० या अधिक स्त्री श्रमिक रोजगार में लगी हैं वहां विशिष्ट प्रकार के शिशुगृहों के बनाने की व्यवस्था है। श्रमिक तथा उनके बालकों के लिए मनोरंजन तथा शिक्षा की सुविधायें प्रदान करने की व्यवस्था भी है। प्रदेशीय सरकारों द्वारा निर्धारित किए गए नियमों के अनुसार बीमारी व मातृत्व हित लाभ भत्ते भी दिए जायेंगे। प्रत्येक श्रमिक तथा उसके परिवार को आवश्यक आवास सुविधा देने का उत्तरदायित्व भी मालिक का है तथा प्रदेशीय सरकारें मकानों की विशेषतायें एवं स्तर तथा किराये के लिए नियम बना सकती हैं। इसके अतिरिक्त प्रदेशीय सरकारें मालिकों द्वारा श्रमिकों के लिए पीने के पानी की सुविधा, शौचालय, मूत्रालय तथा छतरी, कम्बल, बरसाती आदि जैसी वस्तुएं प्रदान करने के लिए नियम बना सकती हैं जिससे श्रमिकों का वर्षा तथा शीत से बचाव हो सके। प्रत्येक उस बागान में कल्याण अधिकारी भी नियुक्त करने की व्यवस्था है जहां ३०० या इससे अधिक श्रमिक साधारणतया रोजगार में लगे हों।

(५) अधिनियम वयस्क श्रमिकों के लिए प्रति सप्ताह ५४ घण्टे तथा किशोरों (१५ से १८ वर्ष की आयु के श्रमिक) एवं बालकों (१२ से १५ वर्ष की आयु के श्रमिक) के लिए प्रति सप्ताह ४० घण्टे काम समय निर्धारित करता है। अधिनियम कार्य के दैनिक घण्टे तो निर्धारित नहीं करता किन्तु यह निर्धारित करता है कि कोई भी श्रमिक आधे घण्टे के विश्राम मध्यान्तर के बिना ५ घंटे से अधिक काम नहीं करेगा। काम समय विस्तार प्रतिदिन १२ घंटे निश्चित किया गया है। प्रदेशीय सरकारों को यह अधिकार है कि वह विश्राम के एक साप्ताहिक दिन की व्यवस्था के लिए नियम बनाएं तथा यदि साप्ताहिक छुट्टी के दिन काम कराया जाता है तो उसका भुगतान कैसे किया जाए इसके लिए भी नियम बनाएं। यदि कोई श्रमिक दैनिक काम के लिए निश्चित समय से आध घंटे के अन्दर नहीं आता तो मालिक उस रोजगार में लगाने से मना कर सकता है। १२ वर्ष से कम के बालक बागान में काम नहीं कर सकते तथा ७ बजे सायं से ६ बजे प्रातः के बीच का रात्रि कार्य स्त्रियों तथा बालकों के लिए निषेध कर दिया गया है। समस्त बालकों एवं किशोरों को अपने स्वास्थ्य का प्रमाण-पत्र देना होता है तथा उनकी प्रमाणित (Certified) सर्जन द्वारा जांच की जा सकती है।

(६) प्रत्येक श्रमिक को सवेतन अवकाश निम्नलिखित दर पर दिए जाने की व्यवस्था है (क) यदि श्रमिक वयस्क है तो कार्य के प्रत्येक २० दिनों पर एक दिन का अवकाश (ख) यदि किशोर है तो कार्य के प्रत्येक १५ दिनों पर एक दिन का अवकाश। छुट्टियां ३० दिन तक एकत्रित की जा सकती हैं।

(७) अधिनियम के उपबन्धों का उल्लंघन करने पर अथवा कार्य योग्यता का झूठा प्रमाण-पत्र देने पर दण्ड भी निर्धारित कर दिए गए हैं।

अधिनियम के अन्तर्गत नियम बनाकर अनेक राज्यों में लागू भी कर दिए गए हैं। परन्तु अनेक राज्य ऐसे हैं जिन्होंने नियमों को अभी तक पूर्ण रूप से लागू नहीं किया है। असम पश्चिमी बंगाल एवं केरल में मातृत्व हित-लाभ अधिनियमों के अन्तर्गत बागान की स्त्री श्रमिकों को मातृत्व-हित-लाभ प्रदान किए जाते हैं। (देखिए पृष्ठ ५४७–४८)।

बागान श्रमिक अधिनियम को १९६० में संशोधित किया गया और संशोधित अधिनियम २१ नवम्बर १९६० से लागू कर दिया गया है। इस संशोधित अधिनियम का उद्देश्य यह है कि इस बात को रोका जाए कि मालिक १९५१ के अधिनियम से बचने के लिए अपने बागान को छोटे-छोटे टुकड़ों में न बाँटें क्योंकि मालिकों ने ऐसा करना प्रारम्भ कर दिया था। संशोधित अधिनियम के मुख्य उपबन्ध इस प्रकार हैं —(क) प्रदेशीय सरकारों को इस बात का अधिकार दे दिया गया है कि वह अधिनियम के सभी या किसी भी उपबन्ध को किसी भी ऐसे बागान में लागू कर सकते हैं जिसका क्षेत्र १० ११७ हैक्टर (२५ एकड़) से कम है या जिसमें ३० से कम श्रमिक कार्य करते हैं। परन्तु यह बात उन बागान पर लागू नहीं होगी जो अधिनियम के लागू होने से पहिले ही मौजूद थे। (ख) चिकित्सा सुविधाओं को श्रमिकों के परिवारों तक विस्तृत कर देने का उपबन्ध है। (ग) नौकरी समाप्ति की दशा में श्रमिक को अर्जित छुट्टी प्रदान करने या उसके बदले में मजदूरी देने की व्यवस्था है। (घ) छुट्टी के दिनों में जो मजदूरी दी जाए उसकी गणना किस प्रकार हो इसका भी उपबन्ध है।

यातायात श्रम विधान (Transport Labour Legislation)

रेलवे श्रम विधान —

भारत में यातायात के श्रमिकों के लिए जो विधान बने हैं उनमें सबसे महत्त्वपूर्ण विधान रेलवे श्रमिकों के लिए है। रेलवे कारखाना या वर्कशाप तो फैक्ट्री अधिनियम के अन्तर्गत आ जाते हैं। परन्तु रेलवे के अन्य श्रमिकों के लिए १९३० तक कोई वैधानिक सुरक्षा नहीं थी। १९३० में १८९० के भारतीय रेलवे अधिनियम में संशोधन किया गया और इस अधिनियम में एक नया अध्याय VI (A) जोड़ दिया गया। यह उन कर्मचारियों के लिए कार्यों के घंटे तथा विश्राम अवधि की व्यवस्था करता है जो कारखाना अधिनियम खान अधिनियम तथा भारतीय व्यापारिक जहाज अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते हैं। अधिनियम में १९५६ में भी संशोधन हुआ।

१९३० में संशोधित १८९० का भारतीय रेलवे अधिनियम —

भारतीय रेलवे अधिनियम के अन्तर्गत जो श्रमिक नहीं आते थे उनको दो वर्गों में विभाजित किया गया था। 'निरन्तर कार्य करने वाले श्रमिक' तथा "आवश्यक रूप से सविराम (Intermittent) श्रमिक"। अधिनियम के अनुसार एक महीने में औसत कार्य घण्टे सविराम श्रमिकों के लिए प्रति सप्ताह ८४ तथा निरन्तर कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए प्रति सप्ताह ६० निश्चित हुए थे। समस्त रेलवे कर्मचारियों को रविवार से प्रारम्भ होने वाले प्रत्येक सप्ताह में कम से कम २४ घण्टे का विश्राम देना आवश्यक था। परन्तु यह विश्राम उस समय देना आवश्यक नहीं था जब काम का अधिक भार हो या रेलवे तथा में विघ्न आने जैसी कोई असमान आवश्यकता आ जाए। ऐसी स्थिति में श्रमिकों को अपनी छुट्टी छोड़ने पर क्षतिपूर्ति मिलती थी। समयोपरि काम के लिए भुगतान की दर साधारण मजदूरी से १¼ गुनी निर्धारित की गई थी। अधिनियम के अन्तर्गत सरकार को यह अधिकार भी था कि अधिनियम में दी हुई कुछ विशेष बातों के लिए सरकार नियम बनाए। इस प्रकार के बनाये गए नियमों को रेलवे कर्मचारियों के (रोजगार के घंटों से सम्बन्धित) नियम कहा जाता रहा है। परन्तु अधिनियम तथा नियम दोनों को साधारणतया "रोजगार घंटों के विनियम (Hours of Employment Regulations) कहा जाता है।

१९५६ का भारतीय रेलवे (संशोधन) अधिनियम —
(Indian Railways (Amendment) Act, 1956)

श्रम अनुसंधान समिति की रिपोर्ट तथा रोजगार घंटा के विनियमों के कार्य पर वार्षिक रिपोर्टों में अधिनियम के उपबन्धों की नये सिरे से जाँच करने की आवश्यकता की ओर संकेत किया गया था। मई १९४७ में न्यायाधीश राजाध्यक्ष के विवाचन निर्णय में भी (जिसका नीचे उल्लेख किया गया है) नियमों के दोहराने की सिफारिश की गई थी। नियमों में संशोधन कर दिए गये थे। परन्तु सरकार ने यही उचित समझा कि अधिनियम के अध्याय VI (A) में संशोधन कर दिया जाय जिससे विवाचकों के विवाचन निर्णयों को वैधानिक मान्यता मिल सके। परिणाम स्वरूप भारतीय रेलवे (संशोधन) अधिनियम १९५६ के द्वारा इस अध्याय में संशोधन कर दिया गया यद्यपि विवाचन निर्णय १९५१ तक धीरे-धीरे सभी रेलों पर लागू हो गया था। न्यायाधीश राजाध्यक्ष के विवाचन निर्णय में रेलवे कर्मचारियों के वर्गीकरण, काम के घंटे और विश्राम अवधि आदि के विषय में जो सिफारिशें की गई थी, संशोधित अधिनियम उन्हीं से सम्बन्धित हैं। सभी रेलवे कर्मचारियों को कम से कम ३० घंटे का लगातार विश्राम देना होगा जो रविवार को प्रारम्भ होगा। आपात काल अथवा काम की असाधारण अधिकता के समय अधिनियम के अनुसार उपयुक्त अधिकारियों को यह भी अधिकार है कि वह काम के घण्टे और विश्राम समय के

उपबन्धों से मस्थाई रूप से पूरे हैं । सर्वोपरि काम के लिए साधारण मजदूरी की अपेक्षा कम से कम डेढ़ गुनी मजदूरी देने की व्यवस्था है ।

न्यायाधीश राजाध्यक्ष का विवाचन निर्णय —
(Justice Rajadhyaksha Award)

१९४६ में अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संघ ने रेलवे कर्मचारियों की कुछ मांगों के सम्बन्ध में भारत सरकार से एक विवाचक नियुक्त करने की प्रार्थना की, तथा अप्रैल १९४६ में भारत सरकार द्वारा न्यायाधीश श्री जी० एस० राजाध्यक्ष विवाचक नियुक्त किए गए । विवाद के विषय दैनिक मजदूरी पर कार्य करने वाले एवं अवर (Inferior) वर्ग के कर्मचारियों की निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित थे : काम के घंटे, अवधि पश्चात विश्राम व्यवस्था अवकाश सहित अधिक अवकाश के नियम छुट्टियों की सुविधायें आदि । विवाचक ने अपना पंचाट सरकार को मई १९४७ में प्रस्तुत किया तथा रोजगार घंटों के विनियमों के क्षेत्र का विस्तार करने की सिफारिश की ताकि अब तक जिन विविध अन्य श्रमिक वर्गों को सम्मिलित नहीं किया जाता था उन्हें भी सम्मिलित कर लिया जाय । पंचाट में श्रमिकों के निम्न चार वर्गों के बनाने का सुझाव दिया गया — (क) श्रम प्रधान (Intensive) अर्थात वे श्रमिक जो ऐसा कार्य करते हैं जो कठोर प्रकार का है और जिसमें निरन्तर ध्यान अथवा कठिन शारीरिक परिश्रम की आवश्यकता होती है । इनके कार्यों के घंटे महीने में औसतन प्रति सप्ताह ४२ होने चाहियें और इन्हें प्रत्येक सप्ताह ३० घंटे की लगातार विश्राम अवधि मिलनी चाहिये । (ख) निरन्तर (Continuous) — इस प्रकार के श्रमिकों के कार्य के घंटे महीने में औसतन प्रति सप्ताह ५४ होने चाहियें और प्रत्येक सप्ताह में ३० घंटे की लगातार विश्राम अवधि मिलनी चाहिये । (ग) आवश्यक रूप से अविराम श्रमिक (Essentially Intermittent) — अर्थात वे श्रमिक जिनके दैनिक कार्य घंटों में कुछ ऐसी अवधि आती है जब उन्हें कोई कार्य नहीं करना पड़ता । इनके साप्ताहिक घंटे ७५ होने चाहिएं और साथ-साथ एक पूर्ण रात्रि सहित प्रति सप्ताह २४ घंटों की लगातार विश्राम अवधि मिलनी चाहिये । (घ) इनके अतिरिक्त (Excluded) — इसमें रात्रि-कार्य पर लगे हुए कुछ चतुर्थ वर्गीय कर्मचारी आते हैं जैसे सैलून परिचालक (Attendant) गेटकीपर आदि तथा विश्वसनीय कार्यों में लगे व्यक्ति पर्यवेक्षक कर्मचारी तथा स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सम्बन्धी कर्मचारी । इन कर्मचारियों को एक महीने में कम से कम ४८ घंटों की एक लगातार विश्राम अवधि अथवा प्रत्येक पखवाड़े में २४ घंटों की एक लगातार विश्राम अवधि प्राप्त होनी चाहिए । गाड़ी पर चलने वाले कर्मचारियों के लिए विवाचक ने सिफारिश की थी कि इनका एक बार में कार्य का समय १० घंटे से अधिक नहीं होना चाहिए, तथा इनके लिए विश्राम समय एक माह में ३० निरन्तर घंटों की चार अवधियों का अथवा २२ निरन्तर घंटों की पांच अवधियों का होना चाहिये । विवाचक ने छुट्टियां लेने

श्रम कर्मचारियों को लगाने, सवेतन अवकाश तथा छुट्टियों के सम्बन्ध में भी कुछ सिफारिशें की थी।

भारत सरकार ने कार्य के घंटे विश्राम अवधि तथा छुट्टियां लेने पर अन्य कर्मचारियों के लगाने के विषय में पंचाट को स्वीकार कर लिया तथा एक आदेश द्वारा जून १९४८ में इस पंचाट को तीन वर्ष की अवधि के लिए रेलवे प्रशासन पर लागू घोषित कर दिया। अवकाश नियमों तथा छुट्टी की सुविधाओं के सम्बन्ध में निर्णय स्थगित कर दिया गया था। जुलाई १९४८ में तथा पुनः फरवरी १९५० में रेलवे मन्त्रालय ने निर्धारित तिथियों में तथा विभिन्न चरणों में पंचाट को लागू करने की आज्ञायें दीं। १९५१ के रेलवे कर्मचारी (रोजगार के घंटे) के जो नियम थे उनको विवाचक की सिफारिशों का समावेश करके १९५१ के नवीन नियमों द्वारा स्थानान्तरित कर दिया गया। ११ मार्च १९५१ तक पंचाट समस्त रेलवे में लागू कर दिया गया था। जैसा ऊपर कहा जा चुका है सरकार ने नियमों को कानूनी मान्यता देने के हेतु १९५६ में इस अधिनियम में संशोधन किया। रोजगार घण्टों के इन विनियमों का प्रशासन मुख्य श्रम आयुक्त (केन्द्रीय) का उत्तरदायित्व है यद्यपि प्रशासन का वास्तविक कार्य प्रत्येक रेलवे क्षेत्र में नियुक्त केन्द्रीय क्षेत्रीय श्रम कमिश्नरों सुलह अधिकारियों तथा श्रम निरीक्षकों के द्वारा किया जाता है। १९५९–६० में इन विनियमों के अन्तर्गत आने वाले रेलवे कर्मचारियों की संख्या १२ २५,६४१ थी। काम की प्रकृति के अनुसार इनका वर्गीकरण इस प्रकार था —श्रम प्रधान २९०६ (०.२४%) निरन्तर ७,४८,२७७ (६०.९९%) सविराम १२०६१२ (९.८३%) अतिरिक्त ३,५४ २२६ (२८.९०%)।

जहाज सम्बन्धी श्रम विधान—

जहाजों में रोजगार पर लगे किशोरों तथा बालकों के कार्यों के विनियमन का महत्व सर्वप्रथम भारत सरकार के समक्ष अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन द्वारा लाया गया जिसने १९२० में नाविकों की न्यूनतम आयु से सम्बन्धित एक अभिसमय का मसौदा पारित किया था। यह अभिसमय भारत सरकार ने उस समय नहीं अपनाया। परन्तु १९२१ में अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन ने जब दो और अभिसमय पारित किए तो भारत सरकार ने इन्हें स्वीकार कर लिया। १९२३ में भारतीय व्यापारी जहाज अधिनियम पारित किया गया जिससे भारतीय नाविकों के रोजगार की दशाओं का विनियमन हो सके। अधिनियम बनने के पश्चात् इसमें अनेक अवसरों पर संशोधन किया गया है। १९४१ का संशोधन नाविकों के लिए रोजगार दफ्तर खोलने की व्यवस्था करता है तथा १९५१ का संशोधन नाविकों की डाक्टरी जाँच की व्यवस्था करता है। १९५८ में एक नया अधिनियम 'व्यापारी जहाज अधिनियम' पारित किया जा चुका है।

तथा उसकी मजदूरी जब्त की जा सकती है। यदि भारत के बाहर वह जहाज से भागे तो उसे १२ सप्ताह तक का कारावास भी दिया जा सकता है। कार्य करने से मना करने पर अथवा अपने जहाज पर समय पर नौकरी पर न आने पर या बिना पर्याप्त कारणों के बगैर छुट्टी अनुपस्थित होने पर नाविक को दण्ड दिए जाने की व्यवस्था है। १९२३ का श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम कुछ परिवर्तनों के साथ किसी शक्ति से चलने वाले जहाज पर अथवा ५० या अधिक टन वाले जहाज पर सभी मास्टर तथा नाविकों पर लागू होता है। १९३९ एवं १९४२ के युद्ध-काल में बनाए गए कुछ विशेष कानूनों के अन्तर्गत युद्ध में घायल होने पर नाविकों को क्षति-पूर्ति तथा भत्ता भी दिया जाता था।

अधिनियम का प्रशासन जहाजी मास्टरों द्वारा अथवा कुछ कार्यालयों जैसे सीमा-कर (Customs) कार्यालय द्वारा होता है। यह जहाजी मास्टरों का कर्तव्य है कि वे अधिनियम द्वारा निर्धारित ढंग से नाविकों को हटाने तथा लगाने के कार्य में सुविधाएं दें और देखभाल करें तथा उपयुक्त समय पर नाविकों की उपस्थिति प्राप्त करने के साधनों की व्यवस्था करें।

१९५८ का व्यापारी जहाज अधिनियम —
(The Merchant Shipping Act, 1958)

१९५८ का व्यापारी जहाज अधिनियम' १९५८ में एक नया अधिनियम पारित किया गया। इसके लागू होने के पश्चात् १९२३ के जहाज अधिनियम को निरस्त कर दिया गया है। नए अधिनियम में व्यापारी जहाज से सम्बन्धित कानूनों में संशोधन किया गया है और उन्हें समायोजित भी किया गया है जिससे भारतीय समुद्री व्यापार यातायात में और अधिक कुशलता आ जाय। यह नवीन अधिनियम निम्नलिखित बातों से सम्बन्धित है एक राष्ट्रीय जहाजी बोर्ड की स्थापना और उसके कार्य सामान्य प्रशासन एक जहाजी विकास निधि की स्थापना भारतीय जहाजों का रजिस्ट्रेशन जहाज के अधिकारियों द्वारा सामर्थ्य के प्रमाण-पत्र समुद्री सेवा के लिए नाविकों और शिक्षार्थियों का वर्गीकरण यात्री जहाजों का सर्वेक्षण सुरक्षा पोत के टूट जाने और जहाज को डूबने से बचाना एवं उबारना दण्ड देने की व्यवस्था कार्य विधि आदि। केन्द्रीय सरकार को इस अधिनियम के अन्तर्गत नाविकों के रोजगार दफ्तर स्थापित करने का अधिकार दे दिया गया है ताकि नाविकों के रोजगार पर नियन्त्रण और विनियमन किया जा सके। जहां कहीं ऐसे दफ्तर स्थापित हो जाते हैं वहां किसी भी जहाज पर कोई भी नाविक केवल इन दफ्तरों के द्वारा ही भर्ती किया जा सकता है। प्रत्येक नाविक के पास अलहदगी का एक प्रमाण-पत्र होना आवश्यक है। १९२३ के अधिनियम के समान ही प्रत्येक भारतीय जहाज के मास्टर को (२ टन से कम के देशीय व्यापार जहाजों को छोड़कर) एक करार करना होता है। बच्चों को रोजगार पर लगाने की आयु बढ़ाकर १५ वर्ष कर दी गई है। एक राष्ट्रीय जहाजी बोर्ड जिसमें ६ संसद के सदस्य हैं तथा १६ सदस्य केन्द्रीय सरकार,

जहाज मालिकों और नाविकों के प्रतिनिधि के रूप में हैं, सरकार को इस अधिनियम से सम्बन्धित सभी बातों पर सलाह देने के लिए बनाया गया है। जहाजी विकास निधि में सरकार द्वारा उपदान और ऋण के रूप में धन दिया जायेगा और सरकार द्वारा नियुक्त की गई एक ९ सदस्यों की समिति द्वारा इसका प्रशासन होगा। सरकार द्वारा बनाई हुई शर्तों के अनुसार इस निधि में से कुछ विशिष्ट व्यक्तियों को ऋण तथा वित्तीय सहायता प्रदान की जाएगी। अधिनियम के अन्य उपबन्ध उसी प्रकार के हैं जैसे १९४२ और १९५१ में संशोधित १९२३ के अधिनियम के हैं। इस अधिनियम का प्रशासन जहाजों के महा निदेशक द्वारा किया जाएगा।

गोदी श्रमिक विधान —(Dock Labour Legislation)

यातायात श्रमिकों का अन्य वर्ग जिसे वैधानिक सुरक्षा की आवश्यकता है गोदी या बन्दरगाहों पर रोजगार म लगे श्रमिकों का है। विभिन्न समितियों आदि ने जिन्होंने गोदी श्रमिकों की दशाओं का सर्वेक्षण किया था यह सिफारिश की थी कि रोजगार में आकस्मिकता के कारण उत्पन्न कठिनाइयों को कम करने की दृष्टि से गोदी श्रमिकों के स्थायीकरण (Decasualisation) की नीति अपनाई जाए। भारत सरकार द्वारा स्थायीकरण की ऐच्छिक आयोजनाओं को लागू करने के प्रयत्न किए गए थे किन्तु इन प्रयासों का कोई परिणाम नहीं निकला। काम की आकस्मिक प्रकृति के कारण गोदी कर्मचारियों को जो कठिनाइयां होती थीं उनको दूर करने के लिए सरकार ने मार्च १९४८ में 'गोदी श्रमिक (रोजगार विनियमन) अधिनियम' पारित किया।

आरम्भ में उठाए गए कुछ पग —

१९२२ तथा १९३१ में संशोधित १९०८ का भारतीय बन्दरगाह अधिनियम स्थानीय सरकारों द्वारा ऐसे नियम बनाए जाने की व्यवस्था करता है, जिनके अन्तर्गत ऐसे बन्दरगाहों में, जहां अधिनियम लागू होता है कहीं भी १२ वर्ष से कम के बालकों द्वारा सामान लाने या ले जाने के कार्य को निषेध कर दिया जाय। इसके अतिरिक्त १९२९ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के एक अभिसमय के मसौदे तथा रॉयल श्रम आयोग की सिफारिशों के परिणामस्वरूप १९३४ का भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम पारित किया गया। किन्तु इसको १० फरवरी १९४८ तक लागू नहीं किया जा सका। अधिनियम जहाजों में समान चढ़ाने तथा उतारने के कार्य में लगे गोदी श्रमिकों की सुरक्षा के लिए सरकार को विनियम बनाने का अधिकार देता है। सरकार ने जनवरी १९४८ में विनियमन बनाए जो गोदी श्रमिकों की उन खतरों या संकटों से रक्षा करने की व्यवस्था करते हैं जिन खतरों की उन्हें सम्भावना है। उदाहरणतया कार्य स्थानों की सुरक्षा एवं कार्य स्थानों पर पहुंचने के रास्ते में सुरक्षा, प्रकाश बाड़ (Fence) आदि का प्रबन्ध जहाजों पर पहुंचने और आने जाने के साधन एवं यातायात मशीनों के चारों ओर घेरा तथा अन्य कई सुरक्षात्मक व्यवस्थायें प्राथमिक उपचार के यन्त्र, डूबते हुये व्यक्ति की जीवन रक्षा का सामान आदि। अधिनियम को

लागू करने के लिए विभिन्न बन्दरगाहों में गोदी सुरक्षा निरीक्षक नियुक्त किए गए हैं। १९५१ के संशोधन द्वारा दुर्घटनाओं की सूचना का उत्तरदायित्व पूर्णरूप से मालिकों का कर दिया गया है। अधिनियम का प्रशासन कारखानों के मुख्य सलाहकार का उत्तरदायित्व है।

१९४८ का गोदी श्रमिक (रोजगार विनियमन) अधिनियम —

[The Dock Workers (Regulation of Employment) Act 1940]

यह अधिनियम इंगलैंड में एक ऐसे ही अधिनियम के सामान्य सिद्धान्तों का अनुकरण करता है। अधिनियम मुख्य बन्दरगाहों के लिए केन्द्रीय सरकार को अधिकार देता है तथा अन्य बन्दरगाहों के सम्बन्ध में प्रदेशीय सरकारों को अधिकार देता है कि वे गोदी श्रमिकों की रजिस्ट्री की योजना बनायें जिससे उनके रोजगार में अधिक नियमितता आ सके तथा गोदी श्रमिकों के चाहे वे पंजीकृत हों या न हों रोजगार को एवं किसी भी बन्दरगाह में ऐसे रोजगार की दशाओं तथा शर्तों को विनियमित किया जा सके। योजना में निम्नलिखित बातें विशेष रूप से होनी चाहियें (क) गोदी कर्मचारियों की भर्ती का विनियमन तथा उनका पंजीकरण (ख) रोजगार की दशाओं एवं शर्तों का विनियमन जैसे मजदूरी दर, कार्य के घण्टे सवेतन अवकाश आदि (ग) उन गोदी कर्मचारियों के रोजगार पर, जिन पर योजना लागू नहीं होती नियन्त्रण रोक या प्रतिबन्ध लगाना (घ) गोदी कर्मचारियों के लिए प्रशिक्षण एवं कल्याणकार्य (च) ऐसे स्थानों में जहां गोदी कर्मचारी कार्य पर लगे हैं वहां उनके स्वास्थ्य एवं सुरक्षा की व्यवस्था (छ) ऐसी अवधि में जब योजना के अन्तर्गत आये हुए गोदी कर्मचारियों को रोजगार या पूर्ण रोजगार प्राप्त न हो, उनको एक न्यूनतम वेतन की अदायगी।

अधिनियम में इस बात की भी व्यवस्था की गई है कि एक ऐसी सलाहकार समिति बनाई जाय जो इस अधिनियम के प्रशासन या योजना से सम्बन्धित अन्य विषयों पर सरकार को परामर्श दे। इस समिति में १२ से अधिक सदस्य नहीं होंगे और ये सदस्य बराबर की संख्या में सरकार, श्रमिक और मालिकों के प्रतिनिधि होंगे और सरकार द्वारा मनोनीत एक अध्यक्ष होगा। निरीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था भी कर दी गई है। जून १९४९ में केन्द्रीय सरकार ने नियम बनाये तथा फरवरी १९५० में इस अभिप्राय से एक सलाहकार समिति की स्थापना की है। इसके अतिरिक्त बम्बई में गोदी कर्मचारियों तथा उनके मालिकों में हुये आपसी समझौते के आधार पर भारत सरकार ने एक समिति इस हेतु नियुक्त की कि स्टेवडोर श्रमिकों का पंजीकरण करने, उनकी मजदूरी निश्चित करने तथा बारी-बारी से उन्हें रोजगार पर लगाने के सम्बन्ध में एक व्यापक योजना बनाये। यह योजना जिसे बम्बई गोदी कर्मचारी (रोजगार विनियमन) योजना कहते हैं १९५१ में बनाई गई थी। इस योजना के प्रशासन के लिये बम्बई गोदी श्रमिक बोर्ड की स्थापना की व्यवस्था है तथा प्रतिदिन के प्रशासन के लिए बम्बई स्टेवडोर संघ की नियुक्ति की

व्यवस्था है। अनुशासनात्मक विषयों के लिए एक विशेष अधिकारी और अपीलों को सुनने के लिए अपीलीय अधिकरण भी नियुक्त किये गए हैं। योजना में मालिकों के लिए एक रजिस्टर, एक संरक्षित पूल रजिस्टर तथा एक मासिक रजिस्टर बनाने की भी व्यवस्था है। जिन श्रमिकों को जिस मालिक के साथ काम करना होता है वे उसके अतिरिक्त किसी अन्य मालिक के साथ कार्य नहीं कर सकते और न ही वह मालिक पंजीकृत श्रमिकों के अतिरिक्त किसी अन्य को अपने यहां कार्य पर लगा सकता है। अप्रैल १९५१ में १२ सदस्यों के बम्बई गोदी श्रमिक बोर्ड की स्थापना हुई। इसी प्रकार की योजनाओं के अन्तर्गत ही कलकत्ता (सितम्बर १९५२) मद्रास (जुलाई १९५३) कोचीन (जुलाई १९५६) तथा विशाखापटम (नवम्बर १९५१) में नियमीय गोदी श्रमिक बोर्डों की स्थापना हो गई है। (देखिए पृष्ठ १५–१६)। इन योजनाओं को जनवरी १९५५ में सरकार द्वारा नियुक्त माथी कर्मचारी जांच समिति की सिफारिशों के आधार पर १९५६ में दोहराया भी गया है। (देखिए पृष्ठ १६) तथा १९६१ में इनमें फिर संशोधन किया गया है। १९५७ में एक अन्य योजना जिसको अपंजीकृत गोदी कर्मचारी (रोजगार का विनियमन) योजना [Un-registered Dock Workers (Regulation of Employment) Scheme] कहते हैं, बम्बई, कलकत्ता व मद्रास में नये वर्ग के गोदी श्रमिकों के लिए लागू की गई है।

१९४८ के गोदी कर्मचारी (रोजगार विनियमन) अधिनियम को संशोधित करने के लिए संसद के सामने एक विधेयक प्रस्तुत किया जा चुका है। इसके द्वारा केन्द्रीय सरकार को यह अधिकार होगा कि यदि गोदी श्रमिक बोर्ड अपने कार्य में लगातार कोताही (Default) कर रहे हैं तो सरकार उन्हें अपने नियन्त्रण में ले सकती है।

मोटर यातायात के श्रमिकों के लिए विधान —

१९३९ का मोटर गाड़ी अधिनियम (Motor Vehicles Act of 1939) मोटर चालकों के रोजगार की न्यूनतम आयु, कार्य के घंटे व विश्राम अवधि को नियमित करता है। अधिनियम द्वारा १८ वर्ष से कम की आयु के किसी भी व्यक्ति को मोटर गाड़ी के चालक के रूप में तथा २० वर्ष से कम के किसी भी व्यक्ति को यातायात गाड़ी के चालक के रूप में नियुक्त करना निषेध है। परन्तु यह बात केन्द्रीय सरकार के रोजगारों पर लागू नहीं होती और वहां पर न्यूनतम आयु १८ वर्ष है। अधिनियम द्वारा यातायात श्रमिकों के कार्य के घण्टों को प्रतिदिन ६ अथवा प्रति सप्ताह ५४ निर्धारित किया गया है तथा उन्हें पांच घन्टे लगातार काम के पश्चात् कम से कम आधा घण्टे का विश्राम देने की व्यवस्था है। परन्तु इस अधिनियम में केवल चालकों के घण्टे निर्धारित किए गए हैं और परिचारक (Attendant), कंडक्टर (संवाहक) क्लीनर और निरीक्षकों आदि अन्य श्रमिकों को छोड़ दिया गया है। इनके रोजगार, कार्य और मजदूरी के लिए कोई पृथक विधान अभी तक नहीं था।

मार्च १९५५ में देहली में प्रथम अखिल भारतीय राज्य यातायात श्रमिक

सम्मेलन हुआ। इसने यातायात श्रमिकों के कार्य की दशाओं के विनियमन के लिए एक केन्द्रीय विधान बनाने की सिफारिश की। अप्रैल १९५६ में स्थायी श्रम समिति के १५वें अधिवेशन में इस प्रश्न पर विचार किया गया। इसके परिणामस्वरूप मोटर यातायात श्रमिकों के लिए एक विधान की रूप-रेखा बनाने के लिए एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की गई थी जिसके अध्यक्ष कारखानों के मुख्य सलाहकार थे। इस समिति ने फरवरी १९५८ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की परन्तु यह कार्य के घन्टे श्रम समय विस्तार और समयोपरि से सम्बन्धित प्रश्नों पर एकमत नहीं थी। अक्तूबर १९५८ में स्थायी श्रम समिति के १७वें अधिवेशन के सम्मुख यह प्रश्न फिर रक्खा गया। इस समिति ने यह सिफारिश की कि विधान बनाने से पूर्व इस प्रश्न की जांच केन्द्रीय और प्रदेशीय सरकारों द्वारा होनी चाहिए। अन्तत: अप्रैल १९६० में मोटर यातायात श्रमिक विधेयक प्रस्तुत किया गया जो १९६१ में अधिनियम के रूप में पारित हुआ।

१९६१ का मोटर यातायात श्रमिक अधिनियम —
(The Motor Transport Workers Act, 1961)

इस विधान में मोटर यातायात संस्थानों में श्रमिकों के लिए कार्य घन्टे श्रम समय विस्तार, समयोपरि, सवेतन अवकाश कल्याण सुविधायें आदि पर नियन्त्रण करने की व्यवस्था है। यह अधिनियम उन समस्त मोटर यातायात संस्थानों में लागू होता है जहां पांच या उससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं। प्रदेशीय सरकारें उनको ऐसे मोटर यातायात संस्थानों पर भी लागू कर सकती हैं जहां पांच से कम व्यक्ति कार्य करते हैं। बालकों को रोजगार पर लगाना निषेध कर दिया गया है। किशोर भी तभी कार्य कर सकते हैं जब उनको कार्य करने की समर्थता का प्रमाण-पत्र मिल जाए। वयस्क श्रमिकों के कार्य के घन्टे प्रतिदिन ८ तथा प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित किए गए हैं। लम्बे सफर पर और विशेष अवसरों पर कार्य के घन्टे कुछ अधिक हो सकते हैं। किशोरों के लिए कार्य के घन्टे प्रतिदिन ६ निर्धारित किए गए हैं और उनको १० बजे रात्रि से ६ बजे प्रात: तक कार्य पर नहीं लगाया जा सकता। श्रम समय विस्तार वयस्कों के लिए प्रतिदिन १२ घन्टे व किशोरों के लिए प्रतिदिन ६ घन्टे निर्धारित किया गया है। समयोपरि कार्य के लिए दोनों को ही दुगनी दर से मजदूरी देने की व्यवस्था है। सवेतन छुट्टियों की व्यवस्था इस प्रकार है: १ कलैण्डर वर्ष में २४० दिनों की उपस्थिति के पश्चात् वयस्कों के लिए २० दिन के कार्य पर १ दिन की छुट्टी और किशोरों के लिए १५ दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी।

अन्य श्रम विधान

अन्य अनेक श्रम कानूनों का वर्णन जो देश में पारित हो चुके हैं पिछले पृष्ठों में किया जा चुका है। दुकानों और वाणिज्य संस्थानों में काम करने वाले श्रमिकों के लिए भी वैधानिक पग उठाए गए हैं। भारत सरकार ने सबसे पहले

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के १६३० के एक अभिसमय को अपनाने के सम्बन्ध में दुकानों और वाणिज्य संस्थानों में काम करने वाले श्रमिकों को सुरक्षा प्रदान करने के प्रश्न पर विचार किया था परन्तु अभिसमय को अपनाया ही नहीं गया। इस विषय में बम्बई सरकार ने सर्वप्रथम नवम्बर १६४० में एक अधिनियम पारित किया। इसके पश्चात् इसी प्रकार के अधिनियम अन्य सरकारों द्वारा भी पारित किये गए। राज्यों के पुनर्गठन से पूर्व २१ राज्यों में ऐसे अधिनियम लागू थे। इस समय ऐसे अधिनियम सभी राज्यों में लागू हैं (देखिए पृष्ठ ७०–७१)। १६४२ का साप्ताहिक छुट्टी अधिनियम तथा १६४६ का सवेतन छुट्टी अधिनियम नाम के दो केन्द्रीय अधिनियम भी पारित किए गए थे (देखिए पृष्ठ ७१–७२)। जहां तक प्रदेशीय अधिनियमों के क्षेत्रों का सम्बन्ध है यह विशिष्ट नगरों में दुकानों और वाणिज्य संस्थानों बैंकिंग और बीमा फर्मों भोजनालयों थिएटर व सिनेमा जैसे मनोरंजन के स्थानों पर लागू होते हैं। सरकार को इनके क्षेत्रों को विस्तृत करने का अधिकार है।

जहां तक कार्य के घन्टों का सम्बन्ध है यह विभिन्न राज्यों में भिन्न भिन्न हैं। (देखें पृष्ठ ४४७–४८) अधिनियमों में संस्थानों के खोलने और बन्द करने के घन्टे विश्राम मध्यान्तर, समय-विस्तार, समयोपरि दर आदि के सम्बन्ध में भी उपबन्ध दिए हुए हैं। छुट्टी और अवकाश के सम्बन्ध में उपबन्धों का उल्लेख पृष्ठ ७०–७२ पर किया गया है। जहां तक किशोरों और बालकों के रोजगार की न्यूनतम आयु का सम्बन्ध है यह आयु उत्तर प्रदेश, पंजाब व मद्रास को छोड़कर (जहां १४ वर्ष है) सब राज्यों में १२ वर्ष है। केरल में १७ वर्ष है। उनके लिए रात्रि में कार्य करना निषेध है। बालकों और किशोरों के कार्य के घन्टे आन्ध्र, मद्रास मैसूर और पश्चिमी बंगाल में प्रतिदिन ७ हैं तथा महाराष्ट्र उत्तर प्रदेश तथा देहली में प्रतिदिन ६ हैं और बिहार, उड़ीसा, पंजाब में प्रतिदिन ५ हैं। मध्य प्रदेश में प्रतिदिन ६½ हैं राजस्थान में प्रतिदिन ३ हैं। इनमें अधिकतर स्थानों में एक या आधा घन्टे का विश्राम समय भी सम्मिलित है। बिहार में कार्य के यह घन्टे बालकों के लिए प्रतिदिन ५ तथा किशोरों के लिए प्रतिदिन ७ हैं। बंगाल में बालकों के रोजगार के ऊपर कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

इसके अतिरिक्त सभी अधिनियमों में श्रमिकों की मजदूरी की अदायगी का नियमित करने वाले उपबन्ध हैं। उत्तर प्रदेश आन्ध्र मद्रास पंजाब बिहार, केरल व देहली में मजदूरी समय एक माह से अधिक नहीं होना चाहिए। असम में यह अवधि एक मास है। मजदूरी अवधि के समाप्त होने के पश्चात् मजदूरी का भुगतान बंगाल और असम में १० दिन के अन्दर, उत्तर प्रदेश व देहली में ७ दिन के अन्दर, मद्रास व आन्ध्र में ५ दिन के अन्दर तथा पंजाब में मांगने पर तत्काल ही हो जाना चाहिए। समयोपरि काम तथा कटौती और जुर्मानों के लिए भी उपबन्ध बनाए गए हैं। अधिकांश अधिनियमों में यह व्यवस्था की गई है कि नौकरी समाप्ति की अवस्था

में या तो एक माह का नोटिस देना चाहिए अथवा इसके स्थान पर एक माह का वेतन देना चाहिए। पश्चिमी बंगाल उत्तर प्रदेश आन्ध्र और पंजाब में अधिनियमों के प्रशासन के लिए दुकानों और वाणिज्य संस्थानों के मुख्य निरीक्षक नियुक्त किए गए हैं। कुछ राज्यों में इस कार्य के लिए कारखाना निरीक्षकों की ही नियुक्त कर दी गई है। उत्तर प्रदेश बिहार, मध्य प्रदेश राजस्थान तथा देहली के अधिनियमों में यह भी व्यवस्था की गई है कि श्रमिक क्षतिपूर्ति अधिनियम के उपबन्ध दुकानों और वाणिज्य संस्थानों के श्रमिकों पर भी लागू होंगे। बम्बई, मध्य प्रदेश व राजस्थान के अधिनियमों में प्रदेशीय सरकारों को इस बात के अधिकार हैं कि वह मजदूरी अदायगी अधिनियम के उपबन्धों को किसी भी संस्थान अथवा सब संस्थानों अथवा श्रमिकों के वर्ग या वर्गों पर लागू कर सकती है। मध्य प्रदेश के अधिनियम में प्रोविडेन्ट फण्ड के सम्बन्ध में भी उपबन्ध हैं। उड़ीसा और राजस्थान के अधिनियम मातृत्व-हित-लाभ की भी व्यवस्था करते हैं। कुछ प्रदेशों के अधिनियमों में सफाई संवातन प्रकाश, सुरक्षा आदि से सम्बन्धित उपबन्ध भी हैं।

विभिन्न राज्यों में अधिनियमों की कार्यान्विति से पता चलता है कि निरीक्षक दल की अपर्याप्तता के कारण उनका उचित रूप से पालन नहीं किया जाता है। छुट्टी आदि के सम्बन्ध में अधिनियम के उपबन्धों को साधारणतया माना ही नहीं जाता है। उत्तर प्रदेश और मद्रास जैसे कुछ राज्यों में जहां अधिनियमों को हाल ही में लागू किया है, श्रमिकों और मालिकों को अधिनियम के उपबन्धों के विषय में पूर्ण ज्ञान भी नहीं है। बहुधा देखा गया है कि श्रमिकों को साप्ताहिक छुट्टियों के दिन भी काम पर बुलाया जाता है समयोपरि की अदायगी नहीं की जाती कोई ब्यौरा नहीं रखा जाता तथा मजदूरी की अदायगी नियमित रूप से नहीं की जाती। अतः इन अधिनियमों को दृढ़ रूप से लागू करने की आवश्यकता है। यह भी सुझाव है कि दुकानों और वाणिज्य संस्थानों के लिए केन्द्रीय अधिनियम बनाया जाए तथा कुछ ऐसे स्तर निर्धारित कर दिए जाएं जिनका राज्य अनुसरण करें।

इस अध्याय में श्रम विधान का उल्लेख कारखाना खान बागान यातायात तथा दुकान व वाणिज्य संस्थान वर्गों के अन्तर्गत किया गया है। श्रम विधान का निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत भी उल्लेख किया जा सकता है। श्रमिकों की सुरक्षा के अन्तर्गत जो अधिनियम पारित हुए हैं वह निम्नलिखित हैं : १९१८ का भारतीय गोदी श्रमिक अधिनियम, १९११ का कोयला खान सुरक्षा अधिनियम, १९५२ का कोयला खान (बचत और सुरक्षा) अधिनियम। इनका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कल्याण के सम्बन्ध में सरकार ने निम्नलिखित अधिनियम पारित किए हैं : १९४७ का कोयला खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, १९४६ का अभ्रक खान श्रमिक कल्याण निधि अधिनियम, १९५ का उत्तर प्रदेश चीनी एवं चालक मद्यसार उद्योग श्रम कल्याण एवं विकास निधि अधिनियम, १९५६ का उत्तर प्रदेश श्रम कल्याण निधि अधिनियम तथा बम्बई श्रम कल्याण अधिनियम। इन सबका उल्लेख

'श्रम कल्याण कार्य' के अध्याय ११ में किया गया है। जहाँ तक मजदूरी का सम्बन्ध है सरकार ने १९३६ का मजदूरी अदायगी अधिनियम और १९४८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम पारित किए हैं। इनका उल्लेख 'औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी' अध्याय १२ में किया गया है। सामाजिक सुरक्षा के मुख्य अधिनियम निम्नलिखित हैं १९२३ का श्रमिक क्षति पूर्ति अधिनियम १९४८ का कर्मचारी राज्य बीमा अधिनियम १९४८ का कोयला खान प्रोविडेन्ट फण्ड और बोनस योजना अधिनियम अनेक मातृत्व-हित-लाभ अधिनियम तथा १९५२ का श्रमिक प्रोविडेन्ट फण्ड अधिनियम। इन सबका उल्लेख 'भारत में सामाजिक सुरक्षा' वाले अध्याय १२ में किया जा चुका है। औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में निम्न अधिनियम पारित किए गए हैं १९४७ का औद्योगिक विवाद अधिनियम १९४६ का बम्बई औद्योगिक सम्बन्ध अधिनियम १९४७ का उत्तर प्रदेश औद्योगिक विवाद अधिनियम और १९५० का औद्योगिक विवाद (अपीलीय अधिकरण) अधिनियम। इन सबका विस्तृत वर्णन 'औद्योगिक विवाद' नाम अध्याय ७ में 'औद्योगिक विवाद विधान' के अन्तर्गत किया जा चुका है। उसी अध्याय में १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम का भी उल्लेख किया गया है। १९२६ के भारतीय श्रमिक संघ अधिनियम जिसमें १९४७ तथा १९६० में संशोधन किया गया का उल्लेख भी 'श्रमिक संघ आन्दोलन' अध्याय ६ में किया जा चुका है। ऋणग्रस्तता के सम्बन्ध में विधान का उल्लेख सोलहवें अध्याय में किया गया है। आवास के सम्बन्ध में वैधानिक उपबन्धों का उल्लेख अध्याय ६ में किया गया है। बाल श्रमिकों के सम्बन्ध में १९३३ का बाल (श्रम अनुबन्ध) अधिनियम तथा १९३८ का बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम पारित किए जा चुके हैं। इनका वर्णन 'बाल और स्त्री श्रमिकों' के अध्याय में किया जाएगा। रोजगार दफ्तर (रिक्त स्थानों की अनिवार्य सूचना) अधिनियम का उल्लेख भर्ती के अध्याय ३ में किया जा चुका है। श्रम सम्बन्धी कुछ अन्य अधिनियम निम्नलिखित हैं —

१९४२ का औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम —
(Industrial Statistics Act, 1942)

१९४२ में सरकार ने औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम पारित किया जिसमें निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित आँकड़ों को एकत्रित करने के उपबन्ध थे (क) कारखानों से सम्बन्धित कोई भी विषय (ख) वस्तुओं के मूल्य उपस्थिति आवास और रहने की दशायें ऋणग्रस्तता मकानों का किराया मजदूरी और वेतन प्रोविडेन्ट तथा अन्य निधियाँ लाभ व सुविधाएं काम के घण्टे, रोजगार और बेरोजगारी तथा औद्योगिक व श्रमिक विवाद आदि जैसे श्रम दशाओं और कल्याण से सम्बन्धित विषय। अधिनियम राज्य सरकारों द्वारा नियुक्त सांख्यिकी अधिकारियों को यह अधिकार देता था कि वह आवश्यक ब्यौरे की मांग कर सकें तथा सम्बन्धित कागज-पत्रों की जाँच पड़ताल कर सकें। सूचना देने से मना करने अथवा गलत

सूचना देने पर दण्ड की व्यवस्था भी की गई थी। अधिनियम को लागू करने के विषय में केन्द्रीय सरकार द्वारा प्रदेशीय सरकारों को निर्देश देने की व्यवस्था थी।

१९४२ में प्रदेशीय सरकारों से २९ उद्योगों की पूंजी उत्पादन लागत और उत्पादन मात्रा के सम्बन्ध में सूचना एकत्रित करने को कहा गया। बाद में १४ और उद्योगों को सम्मिलित कर लिया गया था। परन्तु यह अनुभव किया गया कि अधिनियम और ब्यौरा देने के फार्म सरल होते हुए भी ब्यौरे संतोषजनक रूप से नहीं दिए गए। सरकार ने यह निर्णय किया कि इस योजना को अन्य उद्योगों तक विस्तृत कर दिया जाय तथा औद्योगिक विवादों व दण्ड मामलों के सम्बन्ध में भी सूचना एकत्रित की जाए। सरकार ने १९५१ में नमूने के तौर पर कुछ नियमों के मसौदे तैयार किए और इन्हें प्रदेशीय सरकारों को अपनाने के लिए भेजा। इन नियमों को औद्योगिक सांख्यिकी श्रम नियम के नाम से जाना जाता है। इसके आधार पर अनेक प्रदेशीय सरकारें नियम बनाकर प्रकाशित कर चुकी हैं।

१९५३ का सांख्यिकी को एकत्रित करने का अधिनियम –
(The Collection of Statistics Act, 1953)

१९४२ के औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम को निरस्त कर दिया गया और अब उसके स्थान पर अपेक्षाकृत अधिक व्यापक १९५३ का सांख्यिकी एकत्रित करने का अधिनियम पारित किया गया है। इस अधिनियम का उद्देश्य उद्योग व्यापार और वाणिज्य के सम्बन्ध में विशेष प्रकार की सांख्यिकी को एकत्रित करना है। सांख्यिकी के एकत्रित करने के सम्बन्ध में इसके उपबन्ध लगभग वैसे ही हैं जैसे १९४२ के अधिनियम में थे। परन्तु नये अधिनियम में सांख्यिकी एकत्रित की जाने वाली इकाइयों की संख्या बढ़ा दी गई है। सूची में अधिकारवर्ग और श्रमिक संघों के विषयों को भी जोड़ दिया गया है। केन्द्रीय सरकार स्वयं भी यदि चाहे तो सांख्यिकी एकत्रित कर सकती है। जम्मू व काश्मीर राज्य को छोड़कर अधिनियम सारे भारत में लागू होता है। अधिनियम १० नवम्बर १९५६ से लागू किया गया है और इसके अन्तर्गत नियम भी बना दिये गए हैं।

श्रमजीवी पत्रकार (नौकरी की शर्तें व विविध उपबन्ध) अधिनियम १९५५ – [The Working Journalist's (Conditions of Service and Miscellaneous Provisions) Act, 1955]

यह अधिनियम ९ दिसम्बर १९५५ में लागू हुआ। अधिनियम के महत्वपूर्ण उपबन्ध वेतन बोर्डों की नियुक्ति उनके निर्माण और अधिकारों से सम्बन्धित हैं। श्रमजीवी पत्रकारों के लिए वेतन की दरों को निर्धारित करते समय बोर्ड को इस बात का ध्यान रखकर चलना होता है कि अन्य तुलनात्मक नौकरियों में निर्वाह लागत और मजदूरी कितनी है। जिस समय तक वेतन बोर्ड की रिपोर्ट प्रकाशित न हो उस समय तक सरकार को वेतन की अन्तरिम दरें निर्धारित करने का अधिकार है। यदि

छंटनी करती हो तो यह आवश्यक है कि मालिक सम्पादक को ६ माह का तथा अन्य श्रमजीवी पत्रकारों को ३ माह का पूर्व नोटिस दें। मृत्यु अवकाश प्राप्ति त्याग पत्र और सेवा समाप्ति के मामलों में मालिकों को निर्धारित दर पर अवकाश प्राप्ति धन देना होगा। उन सभी समाचार पत्र संस्थानों में जहां २० या अधिक श्रमजीवी पत्रकार कार्य करते हैं १९५२ का श्रमिक प्रोविडेंट फण्ड अधिनियम तथा १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम को लागू कर दिया गया है। अधिनियम में यह व्यवस्था है कि चार लगातार सप्ताहों में किसी पत्रकार से अधिक से अधिक १४४ घन्टे काम लिया जा सकता है। अधिनियम में पत्रकारों के लिए साप्ताहिक छुट्टी आकस्मिक छुट्टी अर्जित छुट्टी और बीमारी की छुट्टी प्रदान करने की भी व्यवस्था है। यदि मालिक पर श्रमिक के किसी धन की देनदारी है तो उसकी उगाही उसी प्रकार से हो सकती है जैसे मालगुजारी के बकाया की होती है। १९५५ के श्रमजीवी पत्रकार (औद्योगिक विवाद) अधिनियम को निरस्त कर दिया गया है और इसके उपबन्धों को नये अधिनियम में समायोजित कर लिया गया है। अप्रैल १९५६ से अधिनियम के प्रशासन का दायित्व सूचना एवं प्रसार मन्त्रालय से हटाकर श्रम मन्त्रालय को स्थानान्तरित कर दिया गया है। मई १९५६ में श्रमजीवी पत्रकारों के लिये वेतन दरों का निर्धारण करने के हेतु एक वेतन बोर्ड बनाया गया। परन्तु वेतन बोर्ड के निर्णयों को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा अवैध और शून्य घोषित कर दिया गया। इसके परिणामस्वरूप जून १९५८ में पहले एक अध्यादेश जारी किया गया और फिर इसके स्थान पर सितम्बर १९५८ में श्रमजीवी पत्रकार (वेतन दरों का निर्धारण) अधिनियम पारित किया गया। अधिनियम में केन्द्रीय सरकार द्वारा श्रमजीवी पत्रकारों के लिए वेतन दरों का निर्धारण करने के हेतु एक समिति बनाने की व्यवस्था थी (देखिए पृष्ठ ५२१)। यह समिति स्थापित की गई और इसने अपनी सिफारिशें भी प्रस्तुत कर दीं। सरकार ने इन सिफारिशों को कुछ रूपांतरण के पश्चात् स्वीकार कर लिया है। श्रमजीवी पत्रकारों के लिए फिर से वेतन बोर्ड नियुक्त करने की मांग की जा रही है।

शिशुता अधिनियम १९६१ (The Apprenticeship Act, 1961) —

इस अधिनियम का उद्देश्य यह है कि विभिन्न व्यवसायों में शिशुओं को प्रशिक्षण तथा उनसे सम्बन्धित अन्य बातों पर नियन्त्रण किया जाय। इस अधिनियम के मुख्य उपबन्ध शिशुता की योग्यताओं शिशुता के संविदा (Contract) शिशुता की अवधि शिशुता संविदा की समाप्ति शिशुता संविदा का नवीनीकरण (Novation) शिशुओं का प्रशिक्षण आदि के नियम निर्धारित करने के सम्बन्ध में हैं। केन्द्रीय शिशुता परिषद् (Central Apprenticeship Council) की सलाह से केन्द्रीय सरकार यह निर्धारित कर सकती है कि विशिष्ट व्यवसायों में कुल श्रमिकों में से (जिनमें अकुशल (Unskilled) श्रमिक सम्मिलित नहीं होंगे) शिशुओं का अनुपात क्या होगा। जिस किसी संस्थान में ५०० से कम श्रमिक मालिकों द्वारा रोजगार पर

का वर्णन एक अलग अध्याय में किया जाएगा। निर्माण उद्योग में लगे श्रमिकों के लिए विधान बनाने के विचार को अब त्याग दिया गया था क्योंकि ऐसे श्रमिक अन्य विभिन्न कानूनों के अन्तर्गत आ जाते हैं। परन्तु सरकार अब फिर इनके लिए अलग से विधान बनाने के सुझाव पर विचार कर रही है। कुछ बड़े शहरों में घरेलू नौकरों ने स्वयं को संगठित कर लिया है और अब अपने लिए कुछ वैधानिक सुरक्षा पाने के लिए आन्दोलन कर रहे हैं। देहली में घरेलू नौकरों की समस्या का समाधान करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की गई है।

सुझाव और उपसंहार —

श्रम विधान के सम्बन्ध में सबसे पहली आवश्यकता यह है कि विभिन्न राज्यों के अनेक अधिनियमों को समायोजित किया जाय विधान को श्रमिकों के कुछ अन्य वर्गों तक विस्तृत किया जाय तथा श्रमिकों को और अधिक सुरक्षा प्रदान की जाय। अब तक देश के श्रम कानूनों में समानता नहीं है। इसका कारण यह है कि श्रम संविधान को केन्द्रीय राज्य और समवर्ती तीनों ही सूचियों में रख दिया गया है जिसके परिणामस्वरूप विधान बनाने में भिन्नता आ जाती है। इस असमायोजित श्रम कानूनों और विनियमनों का दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम यह हुआ है कि उद्योग एक स्थान से दूसरे और दूसरे से तीसरे स्थान में प्रवसन कर जाते हैं और उद्योगों का विकास ऐसे क्षेत्रों में हो जाता है जो कि सामान्यतः उनके लिए उपयुक्त नहीं होते परन्तु वहाँ श्रम कानून कम होने के कारण उद्योग स्थापित हो जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि देश के औद्योगिक साधनों का बड़ा असमान और अनुपयुक्त विकास होता है। श्रम की प्रवृत्ति भी एक स्थान से दूसरे स्थान में प्रवास करने की हो जाती है और इसका प्रभाव यह होता है कि देश में श्रमिकों की अवस्था में सुधार होने की अपेक्षा दशायें और भी अधिक शोचनीय हो जाती हैं।

यही नहीं वरन् श्रम कानूनों के प्रशासन में भी समानता होनी चाहिए। कुछ राज्यों में तो कानूनों का कठोरता से पालन किया जाता है और कुछ में इस सम्बन्ध में शिथिलता पाई जाती है। इसके कारण असमानता के अवांछनीय परिणाम प्रकट होने लगते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के संविधान की भूमिका में उल्लेख है कि "किसी भी राष्ट्र की श्रम के लिए मानवीय अवस्थाओं को अपनाने में असफलता उन अन्य राष्ट्रों के मार्ग में भी बाधा बन जाती है जो अपने देश में दशाओं को सुधारना चाहते हैं।' अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में जब श्रम विधान में समानता की इतनी आवश्यकता है तब भारत जैसे देश में तो समानता की और भी अधिक आवश्यकता है।

इस सम्बन्ध में प्रो० ए० वी० बसा का कथन है कि "श्रमिक वर्ग को किस सीमा तक सुरक्षा प्रदान की जाती है यह इस बात से प्रमाणित नहीं होती कि उनके लिए बनाए गए श्रम कानूनों की संख्या कितनी है वरन् यह इस बात पर निर्भर है कि ऐसे कितने विधान हैं जिनका उचित प्रकार से प्रशासन किया जाता है तथा कि[illegible] सीमा तक उनके उपबन्धों को लागू किया जाता है।" यह ऊपर बताया जा चु

कि अधिकांश उद्योगों में मालिकों द्वारा अधिकांश श्रम कानूनों का किस प्रकार अपवंचन किया जाता है। प्रशासन के लिए उत्तरदायी अधिकारियों द्वारा भी अधिकांश श्रम कानूनों को उचित प्रकार से लागू नहीं किया जाता है। अधिनियमों को लागू करने की व्यवस्था में न केवल सुधार किया जाना चाहिए वरन् इसका विस्तार करना भी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त प्रशासन अधिकारियों से अधिनियम के उन दोषों व कमियों को जानने के लिए परामर्श लिया जाना चाहिए जिनके कारण मालिक कानून से बचने के लिए लाभ उठाते हैं और फिर अधिनियम में इन दोषों को दूर करने के लिए संशोधन कर देना चाहिए। बागान में १९५१ के अधिनियम के दायित्व से बचने के लिए मालिकों द्वारा अनेक बागों का विभाजन किया जा रहा है। दुकान अधिनियम में श्रमिकों की नौकरी की सुरक्षा की कोई व्यवस्था नहीं है और इसके कारण श्रमिक मालिकों के विरुद्ध गवाही देने में हिचकते हैं। कानून के अपवंचन के लिए अथवा उसे टालने के लिए कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। अब एक केन्द्रीय मूल्यांकन तथा कार्यान्विति प्रभाग की व्यवस्था केन्द्र और राज्यों में कर दी गई है जिसका उद्देश्य यह है कि श्रम विधान विवाचन निर्णय संघता नियमों मालिक मजदूर करार आदि के कार्यान्विति की ओर ध्यान रखा जाय। (देखिये पृष्ठ १७४)

एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह ध्यान में रखनी चाहिए कि वैधानिक उपबन्ध श्रमिकों की रुचि और आदतों को ध्यान में रखते हुए बनाए जाएं। उदाहरण के लिए कोयला खानों में श्रमिकों के लिए खानों के ऊपर स्नानगृहों की व्यवस्था है। परन्तु अनेक स्थानों पर उनका निर्माण योरोपियन ढंग से किया गया है जिसके कारण खनिकों में वह लोकप्रिय नहीं हो पाये हैं। ऐसे दोषों को दूर करना चाहिए।

स्वतन्त्रता प्राप्ति और जनप्रिय उत्तरदायी सरकार की स्थापना के पश्चात् श्रम समस्याओं के प्रति सरकार का दृष्टिकोण अधिक सहानुभूतिपूर्ण हो गया है। श्रमिकों के जीवन स्तर को ऊंचा करने तथा सामाजिक न्याय की प्राप्ति के लिए जो पग उठाए जाने आवश्यक हैं उनके लिए सरकार ने अपने उत्तरदायित्व को भलीभांति अनुभव कर लिया है। श्रमिकों को मान्यता देने में एक नए प्रकार की यह भावना आ गई है कि श्रमिक उद्योग में एक अवर (Junior) साथी नहीं है जिसे केवल निर्वाह मजदूरी ही मिलनी चाहिए वरन् उत्पादन में उसका स्थान पूंजीपतियों के साथ बराबर का है और वह उद्योग के लाभ में बराबर का हिस्सा पाने का अधिकारी है। सरकार के इस उत्तरदायित्व का भारत के संविधान में भी उल्लेख किया गया है। अतः आगामी वर्षों में यह आशा की जा सकती है कि शिल्पी और कृषि श्रमिकों जैसे श्रमिक वर्गों तक कानूनी सुरक्षा का विस्तार धीरे धीरे कर दिया जाएगा तथा रोजगार में लगी हुई जनसंख्या के सभी महत्वपूर्ण अंग सामाजिक सुरक्षा के क्षेत्र के अन्तर्गत धीरे धीरे आ जायेंगे और नियमित रूप से श्रम सुरक्षा के स्तरों को ऊंचा उठा कर देश के श्रम विधान को अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संहिता के उपबन्धों के अनुरूप बना दिया जाएगा।

२१

ब्रिटेन में श्रम विधान

(Labour Legislation in Britain)

प्रारम्भिक इतिहास और अधिनियम—

इगलैण्ड में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् कारखाना प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। इससे पूर्व सैकड़ों वर्षों तक इगलैण्ड में श्रम की दशाएं आरम्भ में स्थानीय और फिर बाद में राष्ट्रीय कानूनों द्वारा विनियमित होती थीं। कुछ सीमा तक श्रमिक वर्ग की दशाएं रीति-रिवाजों द्वारा भी निर्धारित होती रहीं जिनका प्रभाव कानून जैसा ही था। मध्य युग में भी उद्योगों पर राज्य का थोड़ा बहुत निरीक्षण और नियंत्रण था। १३५१ के श्रमिक विधान (Statute of Labourers) द्वारा मजदूरी को विनियमित करने का प्रयत्न किया गया था। १३८८ में 'जस्टिसेज आफ पीस' (Justices of Peace) को अपने-अपने जिलों में मजदूरी निर्धारित करने का अधिकार दे दिया गया था। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विशेष उद्योगों से सम्बन्धित अनेक कानून पारित किये गये परन्तु वे निष्क्रिय ही रहे। कुछ कानून दस्तकारी श्रेणियों के प्रशासन अधिकारों से सम्बन्धित थे। १४३७ में एक विधान पारित किया गया जिसके अन्तर्गत दस्तकारी श्रेणियों (Craft Guilds) के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपने नियमों को अनुमोदन हेतु 'जस्टिसेज आफ पीस' के सम्मुख प्रस्तुत करें। १५०४ में इन श्रेणियों को न्यायधीशों के सम्मुख अपने नियमों को प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया। न्यायाधीशों को यह अधिकार था कि वह किसी भी ऐसे नियम को रद्द कर सकते थे जिस पर उन्हें आपत्ति हो।

१५६३ में एक महत्वपूर्ण विधान "शिल्पकारों का विधान" (Statute of Artificers) जिसे 'शिशुओं का विधान' (Statute of Apprentices) भी कहा जाता था पारित किया गया। इसका उद्देश्य यह था कि ग्रामीण शिल्पियों के लिए कुशल शिक्षा की व्यवस्था की जा सके कृषि श्रमिक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते रहें मजदूरी की दर नियमित हो जाय और समय के विचारों और आवश्यकताओं के अनुकूल एक पूर्ण औद्योगिक संहिता बनाई जाए। १२ से ६० वर्ष तक की आयु के सब शारीरिक रूप से योग्य (समर्थ) व्यक्तियों को कृषि कार्य पर लगाया जा सकता था यदि वह किसी अन्य व्यवसाय में नहीं लगे हुए होते थे या उनके पास एक निर्धारित मात्रा में सम्पत्ति नहीं होती थी। इस उद्देश्य से कि रोजगार निरन्तर रहे यह व्यवस्था भी गई थी कि सारे व्यवसायों में एक साल से कम

की अवधि के लिए किसी को मजदूरी पर नहीं लगाया जा सकता और नौकरी को समाप्त करने के लिए तीन माह का नोटिस देना होगा। उचित प्रकार का प्रशिक्षण देने के लिए तमाम व्यवसायों में सात साल की अवधि तक प्रत्येक श्रमिक के लिए शिशु के रूप में कार्य करना अनिवार्य कर दिया गया। परन्तु यह अवधि २१ वर्ष की आयु से पूर्व ही हो सकती थी। व्यवसाय का चुनाव भी कुछ हद तक सीमित था। कुछ व्यवसाय धनी अथवा उच्च स्तर के परिवारों के युवकों के लिए सुरक्षित थे। जहां तक मजदूरी का सम्बन्ध है 'जस्टिसेज आफ पीस' को मजदूरी दरों को निर्धारित करने का अधिकार दिया गया था। इनके निर्णयों को मालिकों और श्रमिकों दोनों को ही मानना पड़ता था।

कारखानों में घोर शोचनीय दशाएं —

जार्ज तृतीय के समय तक उद्योग धंधों पर दस्तकारी श्रेणियों का नियंत्रण समाप्त हो चुका था और शिशुओं अथवा शिल्पकारों के विधान को भी लागू नहीं किया जाता था। अबन्ध नीति के सिद्धान्त को साधारणतया स्वीकार कर लिया गया था और इस बात में पूर्ण रूप से विश्वास किया जाता था कि वर्ग-वर्ग म और हर वर्ग के व्यक्तियों के बीच में पूर्णरूप से स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा होने के अनेक लाभ थे। १८वीं शताब्दी के मध्य तक मजदूरी का निर्धारण एक अतीत की बात बन चुकी थी। संसद द्वारा १८१३ में मजदूरी के निर्धारण सम्बन्धी विधान के उपबन्धों को तथा १८१४ में शिशुओं की आवश्यकता सम्बन्धी विधान के उपबन्धों को निरस्त कर दिया गया। देश में बड़े पैमाने में कारखानों की स्थापना हो रही थी। कारखानों के निर्माण और सामान के सम्बन्ध में कोई भी राज्य का बन्धन अथवा नियंत्रण लागू करने का प्रयत्न नहीं किया गया था। बहुत से कारखाने ऐसी इमारतों (भवनों) में बनाए गये थे जो इस उद्देश्य के लिए नहीं बनाई गई थीं और इनकी दशाएं बहुत ही असंतोषजनक थीं। कारखानों का निर्माण विशेषतया इस प्रकार किया जाता था कि उनके मालिकों को अधिकतम लाभ हो और श्रमिकों के स्वास्थ्य, आराम सुविधा और सुरक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। यदि आधुनिक स्तरों से देखा जाए तो ऐसी इमारतें बहुत ही अपर्याप्त रोशनी वाली संवातनहीन गन्दी और भीड़ भाड़ वाली होती थीं। खतरनाक मशीनों के चारों ओर घेरा नहीं लगाया जाता था। गम्भीर और घातक दुर्घटनाओं का होना साधारण सी बात थी।

बाल श्रमिक और उनकी दयनीय स्थिति —

कारखानों के मालिकों ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि स्त्रियों और बालकों से अधिकांश कार्य लिया जा सकता था और यह पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा सस्ते पड़ते थे। १६०१ के निर्धन कानून (Poor Law) द्वारा यह आदेश दिया गया कि निराश्रित बालकों को किसी व्यवसाय में शिशुओं के रूप में लगा देना चाहिए। अतः मालिकों के लिए यह साधारण बात हो गई कि वह कार्य भवनों (Work Houses) में जाते थे और निराश्रित बालकों की टोलियों की टोलियां शिशुओं के रूप में भरती कर

२१

ब्रिटेन में श्रम विधान

(Labour Legislation in Britain)

प्रारम्भिक इतिहास और अधिनियम—

इंगलैण्ड में औद्योगिक क्रांति के पश्चात् कारखाना प्रणाली का प्रादुर्भाव हुआ। इससे पूर्व सैकड़ों वर्षों तक इंगलैण्ड में श्रम की दशाएं आरम्भ मे स्थानीय और फिर बाद में राष्ट्रीय कानूनों द्वारा विनियमित होती थीं। कुछ सीमा तक श्रमिक वर्ग की दशाएं रीति-रिवाजों द्वारा भी निर्धारित होती रहीं जिनका प्रभाव कानून जैसा ही था। मध्य युग में भी उद्योगों पर राज्य का थोड़ा बहुत निरीक्षण और नियंत्रण था। १३५१ के श्रमिक विधान (Statute of Labourers) द्वारा मजदूरी को विनियमित करने का प्रयत्न किया गया था। १३८८ में 'जस्टिसेज आफ पीस' (Justices of Peace) को अपने-अपने जिलों में मजदूरी निर्धारित करने का अधिकार दे दिया गया था। सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में विशेष उद्योगों से सम्बन्धित अनेक कानून पारित किये गये परन्तु वे निष्क्रिय ही रहे। कुछ कानून दस्तकारी श्रेणियों के प्रशासन अधिकारों से सम्बन्धित थे। १४३७ में एक विधान पारित किया गया जिसके अन्तर्गत दस्तकारी श्रेणियों (Craft Guilds) के लिए यह आवश्यक हो गया कि वह अपने नियमों को अनुमोदन हेतु 'जस्टिसेज आफ पीस' के सम्मुख प्रस्तुत करें। १५०४ में इन श्रेणियों को न्यायधीशों के सम्मुख अपने नियमों को प्रस्तुत करने का आदेश दिया गया। न्यायाधीशों को यह अधिकार था कि वह किसी भी ऐसे नियम को रद्द कर सकते थे जिस पर उन्हें आपत्ति हो।

१५६३ में एक महत्वपूर्ण विधान "शिल्पकारों का विधान" (Statute of Artificers) जिसे 'शिशुओं का विधान" (Statute of Apprentices) भी कहा जाता था पारित किया गया। इसका उद्देश्य यह था कि ग्रामीण शिल्पियों के लिए कुशल शिक्षा की व्यवस्था की जा सके, कृषि श्रमिक पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होते रहें, मजदूरी की दर नियमित हो जाय और समय के विचारों और आवश्यकताओं के अनुकूल एक पूर्ण औद्योगिक संहिता बनाई जाए। १२ से ६० वर्ष तक की आयु के सब शारीरिक रूप से योग्य (समर्थ) व्यक्तियों को कृषि कार्य पर लगाया जा सकता था यदि वह किसी अन्य व्यवसाय में नहीं लगे हुए होते थे या उनके पास एक निर्धारित मात्रा में सम्पत्ति नहीं होती थी। इस उद्देश्य से कि रोजगार निरन्तर रहे यह व्यवस्था की गई थी कि सारे व्यवसायों में एक साल से कम

की अवधि के लिए किसी को मजदूरी पर नहीं लगाया जा सकता और नौकरी को समाप्त करने के लिए तीन माह का नोटिस देना होगा। उचित प्रकार का प्रशिक्षण देने के लिए तमाम व्यवसायों में सात साल की अवधि तक प्रत्येक श्रमिक के लिए शिशु के रूप में कार्य करना अनिवार्य कर दिया गया। परन्तु यह अवधि २१ वर्ष की आयु से पूर्व ही हो सकती थी। व्यवसाय का चुनाव भी कुछ हद तक सीमित था। कुछ व्यवसाय धनी अथवा उच्च स्तर के परिवारों के युवकों के लिए सुरक्षित थे। जहां तक मजदूरी का सम्बन्ध है 'जस्टिसेज आफ पीस' को मजदूरी दरों को निर्धारित करने का अधिकार दिया गया था। इनके निर्णयों को मालिकों और श्रमिकों दोनों को ही मानना पड़ता था।

कारखानों में घोर शोचनीय दशाएं —

जार्ज तृतीय के समय तक उद्योग धन्धों पर हस्तकारी श्रमिकों का नियंत्रण समाप्त हो चुका था और शिशुओं अथवा शिल्पकारों के विधान को भी लागू नहीं किया जाता था। अबन्ध नीति के सिद्धान्त को साधारणतया स्वीकार कर लिया गया था और इस बात में पूर्ण रूप से विश्वास किया जाता था कि वर्ग-वर्ग में और हर वर्ग के व्यक्तियों के बीच में पूर्णरूप से स्वतन्त्र प्रतिस्पर्धा होने के अनेक लाभ थे। १८वीं शताब्दी के मध्य तक मजदूरी का निर्धारण एक अतीत की बात बन चुकी थी। संसद द्वारा १८१३ में मजदूरी के निर्धारण सम्बन्धी विधान के उपबन्धों को तथा १८१४ में शिशुओं की आवश्यकता सम्बन्धी विधान के उपबन्धों को निरस्त कर दिया गया। देश में बड़े पैमाने के कारखानों की स्थापना हो रही थी। कारखानों के निर्माण और सामान के सम्बन्ध में कोई भी राज्य का बन्धन अथवा नियंत्रण लागू करने का प्रयत्न नहीं किया गया था। बहुत से कारखाने ऐसी इमारतों (भवनों) में बनाए गये थे जो इस उद्देश्य के लिए नहीं बनाई गई थीं और इनकी दशाएं बहुत ही असंतोषजनक थीं। कारखानों का निर्माण विशेषतया इस प्रकार किया जाता था कि उनके मालिकों को अधिकतम लाभ हो और श्रमिकों के स्वास्थ्य आराम सुविधा और सुरक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। यदि आधुनिक स्तरों से देखा जाए तो ऐसी इमारतें बहुत ही अपर्याप्त रोशनी वाली सफाईहीन गन्दी और भीड़ भाड़ वाली होती थीं। खतरनाक मशीनों के चारों ओर घेरा नहीं लगाया जाता था। गम्भीर और घातक दुर्घटनाओं का होना साधारण सी बात थी।

बाल श्रमिक और उनकी दयनीय स्थिति —

कारखानों के मालिकों ने शीघ्र ही यह अनुभव किया कि स्त्रियों और बालकों से अधिकांश कार्य लिया जा सकता था और यह पुरुष श्रमिकों की अपेक्षा सस्ते पड़ते थे। १६०१ के निर्धन कानून (Poor Law) द्वारा यह आदेश दिया गया कि नियमित बालकों को किसी व्यवसाय में शिशुओं के रूप में लगा देना चाहिए। अतः मालिकों के लिए यह साधारण बात हो गई कि वह कार्य भवनों (Work Houses) में जाते थे और निर्धनों के बालकों की टोलियों की टोलियां शिशुओं के रूप में भरती कर

लेते थे। इन बालकों को कारखानों में ले जाया जाता था और इनसे दिन में १२ से १५ घण्टों तक का काम लिया जाता था। उनको रविवार तक की छुट्टी नहीं दी जाती थी और इस दिन उन्हें साधारणतया चिमनियों को साफ करना पड़ता था। कई बार चिमनी के नीचे आग जला दी जाती थी ताकि बालक सफाई के लिए चिमनी के ऊपर तक चढ़ जायें। धुएं के कारण बहुत से बालकों की मृत्यु हो जाती थी। बालकों के लिए कारखानों के मालिकों की ओर से भोजन कपड़े और रहने की व्यवस्था तो होती थी परन्तु कुछ मालिकों को छोड़कर अधिकतर मालिक बाल श्रमिक प्रणाली को लाभ का ही साधन समझते थे। बालकों को कार्य के लिए ओवरसियरों के अधीन लगाया जाता था। इन ओवरसियरों का वेतन बालकों से लिए गए काम की मात्रा पर निर्भर होता था। अतः बालकों को कोड़े लगाए जाते थे बेड़ियां बांधी जाती थीं और सताया जाता था। साधारणतया उनका हर प्रकार से दमन होता था और उनके साथ क्रूर व्यवहार किया जाता था। उनकी अवस्था अमरीका में उन दिनों के दास प्रथा वाले राज्यों से भी अधिक खराब थी।

कारखानों में काम करने वाले बाल श्रमिकों की दयनीय दशा की वास्तविकता की ओर जनसाधारण का ध्यान नहीं गया था। जब इनके विषय में जनता को ज्ञात भी हुआ तब भी इस बात से उन्हें कोई चिन्ता नहीं हुई कि ५, ६ या ७ वर्ष की आयु के बालक कारखानों में काम करते थे। यह विचार तो आधुनिक समय में ही आया है कि श्रमिक वर्ग के बालकों को १४ १५ वर्ष की आयु तक जीविकोपार्जन के कार्य में नहीं लगाना चाहिए और तब तक उनका समय केवल पढ़ाई व मनोरंजन में ही व्यतीत होना चाहिए। कारखाना प्रणाली के पूर्व भी बाल श्रमिक पाए जाते थे। तीन-तीन चार-चार वर्ष के मासूम बच्चों तक से यह आशा की जाती थी कि वह कपड़ा बुनने के कार्य तथा कुटीर उद्योगों की सरल प्रक्रियाओं में मदद दें। अतः कारखानों में बाल श्रमिकों को कार्य पर लगाना बुरा नहीं समझा जाता था।

वैधानिक सुरक्षा प्रदान करने के विचार का विकास —

फिर भी जैसे-जैसे समय बीता और कारखानों में कार्य करने वाले बाल श्रमिकों की दयनीय अवस्था का पता चला जनसाधारण की सहानुभूति इन बालकों की ओर आकृष्ट हो गई। उदार हृदय पुरुषों और स्त्रियों को यह ध्यान आया कि यदि बालकों को काम पर लगाया भी जाता था फिर भी उन पर अत्याचार करने कम भोजन [illegible] और लम्बे घण्टों तक काम लेने का तो कोई न्यायोचित आधार नहीं था। परन्तु ऐसे अर्थशास्त्री व राजनीतिज्ञ जो अबंध नीति के सिद्धान्त में विश्वास रखते थे राज्य हस्तक्षेप को अनुचित समझते थे और चाहते थे कि उद्योगों को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाय। परन्तु शीघ्र ही इस बात को मान लिया गया कि यह बात अबंध नीति के प्रतिकूल नहीं होगी कि सरकार हस्तक्षेप करे और उन लोगों की सहायता करे जो उचित रूप से अपने लिए सौदा करने की परिस्थिति में नहीं थे, क्योंकि श्रम एक

मापवान वस्तु है और श्रमिक प्रतीक्षा नहीं कर सकते और मालिकों से समान स्तर पर सौदा करने की परिस्थिति में नहीं होते।

मैनचेस्टर में १७८४ में न्यायाधीशों के एक प्रस्ताव में लकाशायर के कारखानों में व्याप्त बुराइयों की ओर ध्यान आकर्षित किया गया। कारखानों में काम करने वाले बाल श्रमिकों की अवस्थाओं की जांच करने के लिए १७९५ में मैनचेस्टर में एक स्वास्थ्य बोर्ड की स्थापना की गई। इसने अपनी रिपोर्ट में यह बताया कि प्रचलित दशायें बालकों के सामान्य स्वास्थ्य के लिए हानिकारक थीं और बालकों को न तो किसी प्रकार की शिक्षा मिलती थी और न ही नैतिक व धार्मिक उपदेश दिए जाते थे तथा उनसे लम्बे घन्टों तक काम लिया जाता था।

१९वीं शताब्दी में अनेक कारखाना अधिनियम पारित किए गए। उनका उद्देश्य केवल उन व्यक्तियों को ही संरक्षण प्रदान करना था जिनको रोजगार की दशाओं की व्यवस्था करने में सहायता और संरक्षण की आवश्यकता होती थी। अतः प्रारम्भ में कानून केवल शिशुओं पर ही लागू होता था और यह १९वीं शताब्दी के मध्य तक अनुभव नहीं किया गया कि वयस्कों को भी संरक्षण की आवश्यकता थी।

१८०२ का प्रथम कारखाना अधिनियम —

१८०२ में प्रथम कारखाना अधिनियम पारित किया गया। यह शिशुओं के स्वास्थ्य और चरित्र अधिनियम (Health and Morals of Apprentices Act) के नाम से जाना जाता था और केवल सूती व ऊनी कारखानों के शिशुओं से सम्बन्धित था। उनके कार्य के घन्टों को प्रतिदिन १२ तक सीमित कर दिया गया और उनको रात्रि में ९ बजे के पश्चात् कार्य पर रोका भी नहीं जा सकता था। ९ वर्ष से कम आयु के बालकों का कारखानों में काम करना निषेध कर दिया गया। जिन कारखानों में बालक कार्य करते थे उनकी दीवारों पर सफेदी करानी आवश्यक थी और इमारत में पर्याप्त हवा और प्रकाश की व्यवस्था करनी होती थी। बाल श्रमिकों को प्रारम्भिक और धार्मिक शिक्षा की सुविधायें भी प्रदान करनी होती थीं। कारखानों का निरीक्षण करने और अधिनियमों का उल्लंघन करने की रिपोर्ट देने के लिए निरीक्षक नियुक्त किए गए थे।

१८०२ के अधिनियम द्वारा समस्या का केवल छोर ही पकड़ा जा सका था और यह अधिनियम बहुत अधिक प्रभावात्मक नहीं था। वयस्क श्रमिकों के वेतन इतने कम थे कि उन्हें मजबूर होकर अपने बालकों को रोजगार पर लगाना पड़ता था। यदि बालकों से लम्बे घन्टों तक काम लिया जाता था और उनके साथ क्रूर व्यवहार भी किया जाता था तो भी माता पिता विरोध करने का साहस नहीं कर सकते थे कि कहीं उन्हीं की नौकरी मुसीबत में न पड़ जाए। हाउस ऑफ कामन्स में सर रोबर्ट पील ने बालकों की दशा से सम्बन्धित एक विधेयक प्रस्तुत किया और उनकी समस्याओं की जाँच करने के लिए एक समिति की भी नियुक्ति की गई।

रोबर्ट ओवन ने भी समस्त कारखानों पर कुछ निश्चित बन्धनों को लागू करने पर जोर दिया। रोबर्ट ओवन का न्यू लेनार्क में स्वयं का कारखाना एक आदर्श माना जाता था जिसमें १० वर्ष से कम का कोई बालक रोजगार पर नहीं लगाया जाता था और जिसमें कार्य के घण्टे भी सीमित थे।

१८१९ का कारखाना विनियम अधिनियम —

१८१९ में कारखाना विनियम अधिनियम पारित किया गया। सूती उद्योग में इस अधिनियम द्वारा ९ वर्ष से कम आयु के बालकों को लगाना निषेध कर दिया गया। ९ वर्ष से लेकर १६ वर्ष तक की आयु के बच्चों को दिन में १२ घण्टे से अधिक या रात्रि ८ बजे से प्रातः ५ बजे तक किसी भी समय रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता था। भोजन के लिए १½ घण्टे के मध्यान्तर की व्यवस्था भी की गई थी।

यह अधिनियम भी अपर्याप्त ढंग से लागू किया गया और इसका सरलता से उल्लंघन किया जा सकता था। कारखाना विधान के विरोधियों ने यह तर्क प्रस्तुत किया कि बालकों को काम पर लगाने से रोकना बड़ी निर्दयतापूर्ण बात होगी क्योंकि यदि उन्हें काम करने की आज्ञा न दी गई तो वह भूखे मर जायेंगे। उन्होंने यह भी तर्क दिया कि यह बालकों के लिए अच्छा ही था कि उन्हें काम पर लगाया जाता था और इस प्रकार उन्हें गन्दी व दूषित आदतों से दूर रखा जा सकता था।

१८२० और १९०० के बीच कारखाना अधिनियम —

कारखाना विधान बनाने के लिए आन्दोलन जारी रहा और १८२०, १८२५ तथा १८३० के अधिनियमों से कानून की कथन विस्तृत धाराओं में संशोधन हुआ। अन्त में १८३१ के अधिनियम द्वारा इस अधिनियम को निरस्त कर दिया गया। १८३१ के अधिनियम द्वारा सूती कपड़ा कारखानों में काम करने वाले १२ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों के कार्य के घण्टे प्रतिदिन १२ और रविवार को ९ घण्टे निर्धारित किए गए। २१ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों के लिए रात्रि-कार्य निषेध कर दिया गया। यह अधिनियम केवल सूती वस्त्र कारखानों पर ही लागू होता था और अधिक प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ।

एक अन्य महत्वपूर्ण अधिनियम १८३३ का कारखाना अधिनियम था। यह पहला प्रभावात्मक अधिनियम था जिसमें इसके उपबन्धों को लागू करने के लिए निरीक्षकों की व्यवस्था की गई थी। ऐसे निरीक्षक सरकार द्वारा नियुक्त किए जाते थे और उन्हें वेतन भी सरकार द्वारा ही मिलता था। रेशमी वस्त्र मिलों को छोड़कर यह अधिनियम सभी कपड़ा मिलों पर लागू होता था। ९ वर्ष से कम की आयु के बालकों को रोजगार पर लगाना इस अधिनियम द्वारा निषेध कर दिया गया। १३ वर्ष से कम आयु के बालकों के अधिकतम कार्य घण्टे प्रतिदिन ९ एवं प्रति सप्ताह ४८ तथा १८ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों के प्रतिदिन १२ एवं प्रति सप्ताह ६९

निर्धारित किए गए। १८ वर्ष से कम की आयु के श्रमिकों को रात्रि ८–३० बजे से प्रातः ५–३० तक काम पर लगाना निषेध था। बाल श्रमिकों को दिन में कम से कम दो घण्टे स्कूल जाना पड़ता था। एक साल में दो पूरी और आठ आधी छुट्टियां उन्हें दी जाती थीं। अधिनियम में चार कारखाना निरीक्षकों की नियुक्ति की व्यवस्था थी। जिन क्षेत्रों में कारखाने स्थापित होते थे उसी क्षेत्र के निवासी निरीक्षक नहीं रखे जाते थे। कानून का उल्लंघन करने वाले मालिकों पर यह निरीक्षक जुर्माना कर सकते थे। १८३३ के अधिनियम में जिन सिद्धान्तों को अपनाया गया था वे काफी समय तक कारखाना अधिनियमों का आधार रहे। यही नहीं इसकी नकल भी दूसरे देशों ने की।

परन्तु १८३३ के अधिनियम में भी कुछ दोष थे और १८४४ में दूसरा कारखाना अधिनियम पारित किया गया। यह उन सभी कपड़ा मिलों पर लागू होता था जहां मशीनों का प्रयोग होता था। परन्तु यह अधिनियम इस दृष्टि से प्रतिकारी था कि इसमें बालकों के रोजगार की न्यूनतम आयु ८ वर्ष कर दी गई जबकि पहले अधिनियमों में यह ९ वर्ष थी। बालकों किशोरों और स्त्री श्रमिकों की दशाओं को भी नियमित किया गया। ८ से १३ वर्ष तक की आयु के बालकों को प्रतिदिन ६½ घण्टे से अधिक कार्य पर नहीं लगाया जा सकता था और उन्हें ३ घण्टे स्कूल भी जाना पड़ता था। १३ से १८ वर्ष तक के किशोरों के कार्य के अधिकतम घण्टे प्रतिदिन १२ व प्रति सप्ताह ६९ निश्चित किए गए। स्त्री श्रमिकों के कार्य के अधिकतम घण्टे युवकों के समान कर दिए गए। खतरनाक मशीनों के चारों ओर घेरा लगाना होता था तथा दुर्घटनाओं की सूचना निरीक्षकों को देनी होती थी। बिना घेरे वाली मशीनों से होने वाली दुर्घटनाओं अथवा चोटों के लिए क्षतिपूर्ति देनी होती थी। यद्यपि कारखाना निरीक्षकों के अधिकारों में वृद्धि कर दी गई थी परन्तु उनको जुर्माना करने के अधिकार से वंचित कर दिया गया। नियम भंग करने वाले मालिकों पर स्थानीय न्यायाधीशों के सम्मुख मुकदमा चलाया जाता था।

दस घण्टे का कार्य दिन लागू करने के लिए आन्दोलन अब भी चलता रहा। इसके परिणामस्वरूप १८४७ में एक कारखाना अधिनियम पारित किया गया। इसको १८४७ का दस कार्य घंटे का कानून (Ten Hour Law) कहते थे। इस अधिनियम के अन्तर्गत कपड़ा मिलों में कार्य करने वाले किशोरों और स्त्री श्रमिकों के कार्य के घण्टे प्रति सप्ताह ५८ तथा प्रतिदिन १० निर्धारित किए गए एवं शनिवार को आंशिक छुट्टी दी जाती थी। परन्तु अधिनियम का निर्माण इस प्रकार से हुआ कि इसके द्वारा टोली (Relay) प्रणाली को पुनः लागू करना सम्भव हो गया और पारी प्रणाली का प्रयोग करने वाले कारखानों में प्रातः ५½ से सायं ८½ तक काम होने लगा अर्थात् कार्य-दिन बढ़कर १५ घण्टे का हो गया। इससे यह निश्चय करना कठिन हो गया कि कानून का पालन किया भी जाता था अथवा नहीं। वास्तविकता यह थी कि अनेक कारखानों में इस अधिनियम से बचने का प्रयत्न किया जाता था। प्रमाण

१८५० में एक अन्य अधिनियम पारित किया गया। इसके द्वारा १८४७ के अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले सभी श्रमिकों के कार्य के घण्टे ग्रीष्म में प्रातः ६ से सायं ६ तक और शरद में प्रातः ७ से सायं ७ तक निर्धारित कर दिए गए। इस अधिनियम द्वारा स्त्रियों एवं किशोरों के काम-घण्टों को भी निश्चित कर दिया गया। १८५३ में नियमों का बालकों तक विस्तृत कर दिया गया। १८७० में इस अधिनियम के पारित होने का यह प्रभाव हुआ कि कपड़ा मिलों के सम्बन्ध में जो प्रबंध नीति का सिद्धान्त लागू किया जा रहा था वह समस्त समाप्त हो गया।

इसके पश्चात् अनेक वर्षों तक कोई नया विधान नहीं बनाया गया। परन्तु मालिकों द्वारा कारखाना कानूनों को निरस्त कराने के असफल प्रयत्न जारी रहे। इस बात का भी अनुभव किया गया कि अन्य कारखानों में भी श्रम दशाओं को विनियमित किया जाय। १८४५ में छींट (छपाई) के कारखानों में श्रम की दशाओं को विनियमित करने के लिए एक अधिनियम पारित किया गया। १८६० और १८७० में कपड़े की रंगाई धुलाई और छपाई वाले कारखानों में भी श्रम की दशाओं का विनियमित करने के लिए अधिनियम पारित किए गए। १८६२–६६ में एक रॉयल कमीशन ने शक्ति से चालित मशीनों का प्रयोग न करने वाले वस्त्र उद्योगों और गैर-वस्त्र उद्योगों में श्रम दशाओं की जांच की। इसने इन उद्योगों में बाल श्रमिक लम्बे कार्य घंटे व अस्वास्थ्यजनक अवस्थाओं की ओर संकेत किया। इन बुराइयों को दूर करने के लिए विधान बनाया गया। १८६४ में भी एक कारखाना अधिनियम पारित किया गया जिसके द्वारा अनेक गैर-वस्त्र कारखानों का भी विनियमन कर लिया गया।

१८६७ में दो महत्वपूर्ण अधिनियम पारित किए गए—एक तो कारखाना अधिनियमों के विस्तार का अधिनियम तथा दूसरा कार्यशाला विनियमन अधिनियम। प्रथम अधिनियम द्वारा प्रचलित कानूनों को अनेक अन्य उद्योगों पर भी लागू कर दिया गया व दूसरे अधिनियम द्वारा कारखाना व कार्यशाला के बीच अन्तर किया गया। कार्यशाला की परिभाषा के अन्तर्गत कारखानों को छोड़कर ऐसे अन्य स्थान आते थे जहां बालक किशोर अथवा स्त्री श्रमिक द्वारा हस्तकला का कार्य किया जाता था और जहां मालिक न केवल स्वयं पहुंचते थे वरन् अपना नियन्त्रण भी रखते थे। इन कार्यशालाओं के लिए भी कारखानों जैसे ही विनियम बनाये गए। परन्तु कार्यशालाओं के विनियम केवल उन स्थानों पर लागू होते थे जहां ५० से कम श्रमिक कार्य करते थे या जो कारखानों की परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आते थे।

कपड़ा उद्योग के लिए १८७४ के कारखाना अधिनियम में कुछ परिवर्तन किये गये। किशोरों और स्त्री श्रमिकों के कार्य घण्टों को घटाकर प्रतिदिन १० तथा प्रति सप्ताह ५६½ कर दिया गया। समयोपरि को निषेध कर दिया गया। कारखाना विधान के अनेक बार विस्तार के कारण इसको संहिताबद्ध करने की मांग हुई। १८७८ के कारखाना व कार्यशाला अधिनियम द्वारा इस ओर भी प्रयास किया गया।

औद्योगिक संस्थानों को निम्न ५ श्रेणियों में विभाजित किया गया। (१) कपड़ा कारखाने (२) गैर-कपड़ा कारखाने (३) कार्यशालाएं (४) वह कार्यशालाएँ जहां न बालक और न किशोर श्रमिक रोजगार पर लगाये जाते थे तथा (५) घरेलू कार्यशालाएँ जिनमें केवल परिवार के सदस्य ही काम करते थे। कारखाने और कार्यशाला के बीच अन्तर इस आधार पर नहीं रहा कि उनमें कितने श्रमिक काम करते थे वरन् शक्ति-चालित मशीनों के प्रयोग करने अथवा न प्रयोग करने पर यह अन्तर आधारित कर दिया गया।

इस समय से लेकर १९१४ तक इंगलैंड में श्रम विधान के दो महत्वपूर्ण पहलू सामने आए। प्रथम तो सामान्य व्यवसायों में लगे श्रमिकों के लिए राज्य संरक्षण जारी रहा और दूसरे खतरनाक व्यवसायों में श्रम दशाओं को विनियमित करने के लिए विशेष पग उठाए गए। १८८३ में कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत कुछ अन्य प्रकार के श्रमिकों के लिए भी नियम बनाये गए। उदाहरणार्थ सफेदा से सम्बन्धित कार्य करने वाले और नानबाई का कार्य करने वाले श्रमिकों के लिए नियम बनाये गए। १८८९ में सूती वस्त्र मिलों में नमी को नियन्त्रित करने के लिए भी उपबन्ध बनाए गए। १८८९ में थियेटर मनोरंजन में लगे बालकों की सुरक्षा हेतु इस अधिनियम का विस्तार कर दिया गया। १८९१ में कारखाना व कार्यशाला नाम का एक महत्वपूर्ण अधिनियम पारित किया गया और इसमें सम्बन्धित विषय को पूर्णतया दोहराया गया। कारखानों में काम करने के लिए बालकों की न्यूनतम आयु बढ़ाकर ११ वर्ष कर दी गई। जल-मल निकास की व्यवस्था का निरीक्षण स्थानीय अधिकारियों के निरीक्षकों को स्थानान्तरित कर दिया गया। १८९५ में बालकों के काम-घण्टे ३० प्रति सप्ताह तक सीमित कर दिये गए। १४ वर्ष से कम आयु वाले बालकों के लिए रात्रि-कार्य निषेध कर दिया गया। १८९६ में यह व्यवस्था की गई कि व्यवसायजनित बीमारियों की सूचना कारखाना निरीक्षकों को देनी होगी।

१९०१ का कारखाना और कार्यशाला अधिनियम —

संहितावद्ध करने का एक और प्रयत्न १९०१ में कारखाना व कार्यशाला अधिनियम में किया गया। यह काफी समय तक इंगलैंड में कारखाना विधान का आधार रहा। श्रमिकों की आयु तथा शारीरिक योग्यता, कार्य के घण्टे, मशीनें, दुर्घटना आदि से सुरक्षा आदि के विषय में इस अधिनियम में विस्तृत उपबन्ध थे। संस्थानों को दो वर्गों में बांट दिया गया—कारखाने व कार्यशालायें। कारखाने की परिभाषा के अन्तर्गत वह स्थान आते थे जहां उत्पादन प्रक्रिया में यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग किया जाता था तथा कार्यशाला के अन्तर्गत वह स्थान आते थे जहाँ यान्त्रिक शक्ति का प्रयोग नहीं होता था। यह अधिनियम खदानों तथा २० फीट से अधिक गहरी खानों पर लागू नहीं होता था। इनके लिए पृथक से अधिनियम बनाए गए थे। इस अधिनियम में १२ वर्ष से कम आयु के बालकों का किसी भी कारखाने व कार्यशाला में नौकरी पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया। १६ वर्ष से कम आयु

के श्रमिकों के लिए शारीरिक योग्यता का प्रमाण-पत्र देना अनिवार्य कर दिया गया। गैर-मौसमी उद्योगों में प्रतिदिन १० घंटे काम लिया जाता था। भोजन-समय विस्तार के लिए भी उपबन्ध था परन्तु छुट्टियों के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। इन अधिनियमों के अन्तर्गत जो विनियम बनाये गए थे वह १२ से १४ वर्ष के बालकों १४ से १८ वर्ष के किशोरों तथा १८ वर्ष से अधिक की स्त्री श्रमिकों पर भी लागू होते थे। परन्तु सफाई और सुरक्षा के उपबन्ध सभी श्रमिकों पर लागू होते थे।

१९३७ का कारखाना अधिनियम —

इसके पश्चात् १९३७ का कारखाना अधिनियम पारित हुआ जो पहली जुलाई १९३८ से लागू किया गया। इसमें अब तक के सभी कानूनों का समायोजन कर दिया गया। स्त्री और पुरुष श्रमिकों के कार्य के घंटे प्रतिदिन ९ अथवा प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित कर दिए गए। कुल कार्य-घंटे भोजन के समय को मिलाकर प्रतिदिन ११ से अधिक नहीं हो सकते थे और इनको प्रातः ७ बजे से सायं ८ बजे के बीच में ही नियत करना होता था। यह भी व्यवस्था की गई कि रविवार को पूरे दिन तथा शनिवार को १ बजे के पश्चात् कोई कार्य नहीं होगा, तथा आधा घंटे का विश्राम या भोजन के लिए मध्यान्तर दिए बिना ४½ घंटे से अधिक लगातार काम नहीं होना चाहिये। कार्य की अधिकता के समय समयोपरि की अनुमति दी थी परन्तु फिर भी वास्तविक कार्य-घंटे प्रतिदिन १० से अधिक नहीं हो सकते थे। १६ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों को सायं ६ बजे तक अपना कार्य बन्द कर देना होता था और जब तक मुख्य-निरीक्षक ४८ कार्य-घंटों की विशेष अनुमति न दे दे सामान्यतः उनसे प्रति सप्ताह ४४ घण्टों से अधिक कार्य नहीं लिया जा सकता था। समयोपरि या पाली के कार्य के लिए भी उन्हें नहीं लगाया जा सकता था। खानों पर कार्य करने वाले किशोरों के लिए कार्य के सामान्य घण्टे १९३५ के खान अधिनियम द्वारा प्रति सप्ताह ४८ निश्चित किए गए थे तथा इनके लिये समयोपरि को भी नियमित कर दिया गया था।

१९४८ का कारखाना अधिनियम (Factories Act of 1948) —

यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने कार्य घंटों से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय को स्वीकार नहीं किया था तथापि १९३९ ई० के युद्ध से पूर्व ब्रिटिश उद्योगों में सामान्यतः प्रति सप्ताह ४४ घंटे कार्य किया जाता था। १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा १९३७ के कारखाना अधिनियम में कुछ परिवर्तन किए गए तथा उस के उपबन्धों का अधिक दृढ़ बना दिया गया। यह १९४८ का अधिनियम इस समय लागू है। इसके उपबन्ध निम्नलिखित हैं —

इस १९४८ के कारखाना अधिनियम में एक शताब्दी से अधिक से चले आ रहे कारखाना विधानों का समायोजन और संशोधन किया गया है। विशेषतया सामान्य कल्याण से सम्बन्धित इसमें अनेक नए उपबन्ध भी हैं। यह अधिनियम ७० लाख श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले ७॥ लाख औद्योगिक संस्थानों पर लागू होता

है जिनमें कारखाने, बन्दरगाह तथा निर्माण कार्य आदि सभी आ जाते हैं। अधिनियम के प्रशासन का अधिकार श्रम मंत्रालय के कारखाना विभाग तथा राष्ट्रीय सेवा कार्यालय को दिया गया है। यह देखने का उत्तरदायित्व कि अधिनियम के उपबन्धों को ठीक प्रकार से लागू किया जा रहा है तथा सुरक्षा स्वास्थ्य व कल्याण के ऊंचे आदर्शों को कायम रखा जा रहा है, कारखाना निरीक्षकों का है। यह निरीक्षक कारखाना विभाग के अन्तर्गत आते हैं।

मुख्य रूप से अधिनियम में जो सुरक्षा के हेतु विनियम बनाए गए हैं वह निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित हैं मशीनों की उचित प्रकार से देखभाल और उनके चारों ओर रोक, बोझ या सामान उठाने वाले यंत्र, भाप के बॉयलर्स तथा दबाव आदि से सम्बन्धित यन्त्र, काम के स्थान पर सुरक्षापूर्वक पहुँचने की व्यवस्था, विस्फोट होने तथा आग लगने पर रोकथाम और नियन्त्रण आदि। यदि किसी विशेष प्रक्रिया या मशीन से सम्बन्धित किसी विशेष खतरे का भय हो तो उनके लिए इन नियमों के अनुपूरण या संशोधन के लिए विनियम संहिताएं भी बनाई जा सकती हैं। सुरक्षा पर्यवेक्षण के लिए भी उपबन्ध बनाए गए हैं। साधारणतया तो फर्में स्वयं ही इस प्रकार की व्यवस्था कर लेती है और सुरक्षा अधिकारी अथवा सुरक्षा समिति नियुक्त कर देती हैं। अधिनियम में इस बात की व्यवस्था की गई है कि सभी प्रकार की दुर्घटनाओं की सूचना चाहे वह गम्भीर हों अथवा न हों परन्तु जिनमें श्रमिक कम से कम तीन दिन कार्य करने में असमर्थ हो जाय कारखाना निरीक्षकों को देनी होगी। मालिकों और उनकी सुरक्षा व्यवस्था से कारखाना निरीक्षक दुर्घटनाओं की रोकथाम के साधन अपनाने के लिए कह सकते हैं।

स्वच्छता प्रति श्रमिक घन स्थान तापक्रम संवातन धूल और धुएं को दूर करने की व्यवस्था प्रकाश पाने की सुविधायें कपड़े लावर्स प्राथमिक उपचार व पीने के पानी की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में भी अधिनियम में व्यवस्था की गई है। १६ से १८ वर्ष की आयु के किशोरों तथा स्त्रियों के कार्य घंटे भी नियमित किए गए हैं। १६ वर्ष से कम आयु वालों के लिये कार्य-घंटे प्रति सप्ताह ४४ निश्चित किए गए हैं। भोजन मध्यान्तरों रात्रि मध्यान्तरों व एक नियमित साप्ताहिक विश्राम दिन की भी व्यवस्था करने के उपबन्ध हैं। स्त्रियों और किशोरों के लिए समयापरि कार्य को सीमित कर दिया गया है तथा १६ वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए समयोपरि काम निषिद्ध है। इन उपबन्धों से तथा बालकों व स्त्रियों के रात्रि काम पर निषेध लगाने के उपबन्ध से कुछ छूट देने की भी व्यवस्था की गई है क्योंकि कार्य-घण्टों को कुछ अन्तर के साथ लागू करने की आवश्यकता अनुभव की गई थी ताकि बिजली की शक्ति से एक ही समय कार्य लेने के स्थान पर इसके भार का विस्तार हो सके।

अधिनियम में यह व्यवस्था भी की गई है कि १६ वर्ष से कम आयु के सभी श्रमिकों की कारखानों के मुख्य निरीक्षक द्वारा नियुक्त सर्जनों द्वारा डाक्टरी परीक्षा

के श्रमिकों के लिए शारीरिक योग्यता का प्रमाण-पत्र देना अनिवार्य कर दिया गया। गैर-वस्त्र उद्योगों में प्रतिदिन १० घंटे काम लिया जाता था। श्रम-समय विस्तार के लिए भी उपबन्ध था परन्तु छुट्टियों के लिए कोई व्यवस्था नहीं थी। इन अधिनियमों के अन्तर्गत जो विनियम बनाये गए थे वह १२ से १४ वर्ष के बालकों १४ से १८ वर्ष के किशोरों तथा १८ वर्ष से अधिक की स्त्री श्रमिकों पर भी लागू होते थे। परन्तु सफाई और सुरक्षा के उपबन्ध सभी श्रमिकों पर लागू होते थे।

१९३७ का कारखाना अधिनियम —

इसके पश्चात् १९३७ का कारखाना अधिनियम पारित हुआ जो पहली जुलाई १९३८ से लागू किया गया। इसमें अब तक के सभी कानूनों का समायोजन कर दिया गया। स्त्री और पुरुष श्रमिकों के कार्य के घंटे प्रतिदिन ९ अथवा प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित कर दिए गए। कुल कार्य-घंटे भोजन के समय को मिलाकर प्रतिदिन ११ से अधिक नहीं हो सकते थे और इनको प्रातः ७ बजे से सायं ८ बजे के बीच में ही नियत करना होता था। यह भी व्यवस्था की गई कि रविवार को पूरे दिन तथा शनिवार को १ बजे के पश्चात् कोई कार्य नहीं होगा तथा आधा घंटे का विश्राम या भोजन के लिए मध्यान्तर दिए बिना ४½ घंटे से अधिक लगातार काम नहीं होना चाहिये। कार्य की अधिकता के समय समयोपरि की अनुमति तो थी परन्तु फिर भी वास्तविक कार्य-घंटे प्रतिदिन १० से अधिक नहीं हो सकते थे। १६ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों को सायं ६ बजे तक अपना कार्य बन्द कर देना होता था और जब तक राज्य-सचिव ४८ कार्य-घंटा की विशेष अनुमति न दे दे सामान्यतः उनसे प्रति सप्ताह ४४ घन्टों से अधिक काम नहीं लिया जा सकता था। समयोपरि या पाली के काम के लिए भी उन्हें नहीं लगाया जा सकता था। दुकानों पर कार्य करने वाले किशोरों के लिए कार्य के सामान्य घंटे १९३४ के दुकान अधिनियम द्वारा प्रति सप्ताह ४८ निश्चित किए गए थे तथा इनके लिए समयोपरि को भी नियमित कर दिया गया था।

१९४८ का कारखाना अधिनियम (Factories Act of 1948) —

यद्यपि ब्रिटिश सरकार ने कार्य घंटों से सम्बन्धित अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय को स्वीकार नहीं किया था तथापि १९३९-४५ के युद्ध से पूर्व ब्रिटिश उद्योगों में सामान्यतः प्रति सप्ताह ४४ घंटे कार्य किया जाता था। १९४८ के कारखाना अधिनियम द्वारा १९३७ के कारखाना अधिनियम में कुछ परिवर्तन किए गए तथा उस के उपबन्धों को अधिक दृढ़ बना दिया गया। यह १९४८ का अधिनियम इस समय लागू है। इसके उपबन्ध निम्नलिखित हैं —

इस १९४८ के कारखाना अधिनियम में एक शताब्दी से अधिक से चले आ रहे कारखाना विधानों का समायोजन और संशोधन किया गया है। विशेषतया सामान्य कल्याण से सम्बन्धित इसमें अनेक नए उपबन्ध भी हैं। यह अधिनियम ७० लाख श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले ७½ लाख औद्योगिक संस्थानों पर लागू होता

है जिनमें कारखाने, बन्दरगाह तथा निर्माण काम आदि सभी आ जाते हैं। अधिनियम के प्रशासन का अधिकार श्रम मंत्रालय के कारखाना विभाग तथा राष्ट्रीय सेवा कार्यालय को दिया गया है। यह देखने का उत्तरदायित्व कि अधिनियम में उपबन्धों को ठीक प्रकार से लागू किया जा रहा है तथा सुरक्षा, स्वास्थ्य व कल्याण के उच्च आदर्शों को कायम रक्खा जा रहा है कारखाना निरीक्षकों का है। यह निरीक्षक कारखाना विभाग के अन्तर्गत आते हैं।

मुख्य रूप से अधिनियम में जो सुरक्षा के हेतु विनियम बनाए गए हैं वह निम्नलिखित विषयों से सम्बन्धित हैं मशीनों की उचित प्रकार से देखभाल और उनके चारों ओर रोक बोझ या सामान उठाने वाले यंत्र भाप के बॉयलर्स तथा दबाव आदि से सम्बन्धित यंत्र काम के स्थान पर सुरक्षापूर्वक पहुँचने की व्यवस्था विस्फोट होने तथा आग लगने पर रोकथाम और नियन्त्रण आदि। यदि किसी विशेष प्रक्रिया या मशीन से सम्बन्धित किसी विशेष खतरे का भय हो तो उनके लिए इन नियमों के अनुपूरण या संशोधन के लिए विनियम संहितायें भी बनाई जा सकती हैं। सुरक्षा पर्यवेक्षण के लिए भी उपबन्ध बनाए गए हैं। साधारणतया तो फर्में स्वयं ही इस प्रकार की व्यवस्था कर लेती हैं और सुरक्षा अधिकारी अथवा सुरक्षा समिति नियुक्त कर देती हैं। अधिनियम में इस बात की व्यवस्था की गई है कि सभी प्रकार की दुर्घटनाओं की सूचना, चाहे वह गम्भीर हों अथवा न हों परन्तु जिनमें श्रमिक कम से कम तीन दिन कार्य करने में असमर्थ हो जाय कारखाना निरीक्षकों को देनी होगी। मालिकों और उनकी सुरक्षा व्यवस्था से कारखाना निरीक्षक दुर्घटनाओं की रोकथाम के साधन अपनाने के लिए कह सकते हैं।

स्वच्छता प्रति श्रमिक स्थान स्थान तापक्रम संवातन धूल और धुएँ को दूर करने की व्यवस्था, प्रकाश पाने की सुविधायें कपड़े आराम प्राथमिक उपचार व पीने के पानी की व्यवस्था आदि के सम्बन्ध में भी अधिनियम में व्यवस्था की गई है। १६ से १८ वर्ष की आयु के किशोरों तथा स्त्रियों के कार्य घंटे भी नियमित किए गए हैं। १६ वर्ष से कम आयु वालों के लिये काम-घंटे प्रति सप्ताह ४४ निश्चित किए गए हैं। भोजन मध्यान्तरों, रात्रि मध्यान्तरों व एक नियमित साप्ताहिक विश्राम दिन की भी व्यवस्था करने के उपबन्ध हैं। स्त्रियों और किशोरों के लिए समयोपरि कार्य को सीमित कर दिया गया है तथा १६ वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए समयोपरि काम निषिद्ध है। इन उपबन्धों में तथा बालकों व स्त्रियों के रात्रि काम पर निषेध लगाने के उपबन्ध में कुछ छूट देने की भी व्यवस्था की गई है क्योंकि कार्य-घण्टों को कुछ अन्तर के साथ लागू करने की आवश्यकता अनुभव की गई थी ताकि बिजली की शक्ति से एक ही समय कार्य लेने के स्थान पर इसके भार का विस्तार हो सके।

अधिनियम में यह व्यवस्था भी की गई है कि १६ वर्ष से कम आयु के सभी श्रमिकों की डाक्टरों के मुख्य निरीक्षक द्वारा नियुक्त सर्जनों द्वारा डाक्टरी परीक्षा

की जाए और यह देखा जाए कि वह कार्य करने के योग्य है अथवा नहीं। कुछ विशेष उद्योगों व प्रक्रियाओं के लिए कुछ विशेष विनियम बनाए गए हैं। इनका उद्देश्य यह है कि श्रमिकों का हानिकारक पदार्थों तथा अन्य विशेष प्रकार के खतरों से बचाव किया जाए तथा उनकी सर्जनों द्वारा समय-समय पर डाक्टरी परीक्षा भी की जाए ताकि व्यवसायजनित बीमारियों की रोकथाम हो सके और उन पर काबू पाया जा सके। कारखानों के कुछ विशेष वर्गों के लिए या किसी विशेष कारखाने के लिए कुछ विशेष मामलों में डाक्टरी पर्यवेक्षण के हेतु विनियम बनाने की व्यवस्था भी की गई है। सुरक्षा पर्यवेक्षण की भाँति ऐसी व्यवस्था को ऐच्छिक रूप से अपनाने के लिए मालिकों से भी कहा गया है।

१९६१ का कारखाना अधिनियम अब सुरक्षा स्वास्थ्य और कल्याण कार्यों की सूचना एकत्रित करके तथा इन से सम्बन्धित विषयों का प्रचार करके उन्हें उन्नत करने का तथा सुरक्षा स्वास्थ्य और कल्याण समस्याओं से सम्बन्धित विषयों पर अनुसन्धान करने का उत्तरदायित्व श्रम व राष्ट्रीय सेवा के मन्त्री पर डालता है। यह कार्य इस मन्त्रालय द्वारा १९६१ के अधिनियम से पूर्व भी किए जा रहे थे। अब इस अधिनियम ने इन्हें वैधानिक रूप दे दिया है।

प्रतिरक्षा विनियमों के अन्तर्गत जारी किए गए १९४३ के कारखाना (कैन्टीन) आदेश के अतिरिक्त कारखानों के मुख्य निरीक्षक को भी यह अधिकार दिया गया है कि उन संस्थानों में जहाँ २५० या इससे अधिक श्रमिक कार्य करते हैं ऐसी कैन्टीनों की स्थापना का आदेश दे सके जिनसे गर्म-गर्म भोजन खरीदा जा सके।

खानों के सम्बन्ध में विधान —

ब्रिटेन में खानों के लिए काफी समय से 'खान विनियम अधिनियम (Mines Regulation Acts) बनते आ रहे हैं। उदाहरणतः १८४२ में स्त्रियों व १० वर्ष से कम आयु के बालकों को काम पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया था। खानों में कार्य-दशाओं को नियमित करने के लिए १८६०, १८७२, १८८१ तथा १८९६ में विनियम बनाए गए। १८५० में खानों के निरीक्षकों की भी व्यवस्था की गई थी। १९११ में कोयला खानों से सम्बन्धित सभी कानूनों को 'कोयला खान विनियम अधिनियम' में संहिता-बद्ध कर दिया गया। १९५४ का कोयला और पत्थर की खानों का अधिनियम (Mines and Quarries Act of 1954) सबसे अन्तिम विधान है। यह अधिनियम एक व्यापक वैधानिक सुरक्षा संहिता का आधार है। इस संहिता में खान के भीतर काम करने वाले श्रमिकों के विषय में कई नियम हैं। उदाहरणतः संवातन, खान के भीतरी भाग की उचित प्रकार से सुरक्षा, परिवहन व मशीनरी, विस्फोटक द्वारा विस्फोट का संकट, सुरक्षा दल एवं प्राथमिक उपचार आदि। इसके अतिरिक्त प्रबन्धक, पर्यवेक्षक और निरीक्षकों की योग्यता की परीक्षा और खानों में कार्य-नीति आदि के सम्बन्ध में भी उप-बन्ध हैं। १८४२ से ही स्त्रियों व बालकों को खानों के भीतर रोजगार पर लगाना निषिद्ध है। बालकों की न्यूनतम आयु को भी समय-समय पर बढ़ाया गया है। खानों

के भीतर श्रमिकों के कार्य घन्टे १९१९ में एक अधिनियम द्वारा प्रति पारी ७ और १९५० में कोयला खान अधिनियम द्वारा प्रति पारी ७½ निर्धारित किए गए थे। १९४६ में कोयला राष्ट्रीयकरण अधिनियम द्वारा राष्ट्रीय कोयला बोर्ड की स्थापना की गई और इसे श्रमिकों की सुरक्षा स्वास्थ्य और कल्याण को उन्नत करने का उत्तरदायित्व सौंपा गया। इसने १ जनवरी १९४७ से इस उद्योग के निर्देशन के कार्य को सम्भाल लिया है। कोयला व पत्थर की खान अधिनियमों के प्रशासन तथा राष्ट्रीय कोयला बोर्ड के ऊँचे स्तरों को बनाये रखने में सहायता देने का उत्तरदायित्व ईंधन तथा शक्ति मंत्रालय के कोयला व पत्थर की खानों के विभाग पर है। कार्यान्वित उत्तरदायित्व कोयला व पत्थर की खानों के निरीक्षण दल पर है। यह दल विभाग का ही एक अंग होता है।

जन स्वास्थ्य अधिनियम (Public Health Acts) —

इंगलैंड में जन स्वास्थ्य अधिनियम भी बनाये गए हैं। इनके अन्तर्गत स्थानीय अधिकारियों को मकानों तथा कार्य करने के स्थानों में सफाई की व्यवस्था का विनियमन करने का अधिकार दिया गया है और गंदे हानिकारक बे-हवादार अथवा अति भीड़ वाले कार्य के स्थानों को परेशान करने वाले स्थान (Nuisance) घोषित करके इनकी बुराइयों को दूर करने के नियमों को लागू करने का अधिकार भी दे दिया गया है।

दुकान अधिनियम (Shops Acts) —

इंगलैंड में दुकान अधिनियमों को १९५० के दुकान अधिनियम में समायोजित कर दिया गया है। इसके अन्तर्गत स्थानीय अधिकारियों को अधिकार है कि वह यह देखें कि उनके क्षेत्र में आने वाली सभी दुकान उचित नवातन तापक्रम प्रकाश सफाई और धोने की सुविधाओं के उपबन्धों को लागू करती हैं तथा दुकान बन्द करने के घन्टों के विषय में अधिनियम के उपबन्धों का उचित प्रकार से पालन किया जाता है। जब तक विशेष छूट न प्रदान की गई हो सभी दुकानों को रविवार के दिन तथा सप्ताह में एक दिन एक बजे एवं शेष दिन ८ बजे सायं बन्द करने का आदेश है परन्तु एक दिन दुकानें ९ बजे बन्द की जा सकती हैं। १६ वर्ष से कम आयु के श्रमिकों के लिए कार्य के घन्टे प्रति सप्ताह ४४ तथा १६ से १८ वर्ष की आयु के श्रमिकों के लिए प्रति सप्ताह ४८ निर्धारित किये गए हैं।

बालकों के सम्बन्ध में विधान —

१९२० एवं १९२८ में बालक एवं किशोर अधिनियमों का १९३३ एवं १९३८ के अधिनियमों तथा १९४४ से १९४८ तक के शिक्षा अधिनियमों द्वारा विकरण (Modified) किया गया। अधिनियम के अन्तर्गत १३ वर्ष से कम आयु के बालकों का काम पर लगाना निषिद्ध है। १३ वर्ष से कम आयु के बालकों को स्कूल के दिनों में स्कूल के समय के अतिरिक्त केवल दो घन्टे के लिये काम पर लगाया जा सकता है

और यह भी प्रातः ६ बजे से रात्रि के आठ बजे के समय के बीच में। परन्तु स्थानीय अधिकारी बालकों के रोजगार में कार्य के घन्टों और दशाओं को नियमित कर सकते हैं। ऐसे बालकों को जो कारखाना कानून अथवा दुकान अधिनियम के अन्तर्गत नहीं आते १९३८ के एक अन्य अधिनियम द्वारा (Young Persons Employment Act, 1938) सुरक्षा प्रदान की गई है और इस अधिनियम के अन्तर्गत उनके कार्य के घन्टे निर्धारित कर दिये गये हैं—(१८ वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए प्रति सप्ताह ४८ तथा १६ वर्ष से कम आयु के बालकों के लिए प्रति सप्ताह ४४)

मजदूरी विनियमन अधिनियम (Wage Regulation Acts) —

इस सम्बन्ध में पहला अधिनियम १९०९ का व्यापार बोर्ड अधिनियम (Trade Boards Act) था। इसके पश्चात् १९१२ का कोयला खान (न्यूनतम मजदूरी) अधिनियम पारित किया गया। १९०९ के अधिनियम के अन्तर्गत व्यापार बोर्ड को (१९१७ के पश्चात् से श्रम मंत्रालय को) यह अधिकार था कि ऐसे किसी भी व्यापार के लिए जिसमें अन्य व्यवसायों की अपेक्षा मजदूरी बहुत ही कम है न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए एक बोर्ड की नियुक्ति कर दे। प्रारम्भ में तो यह अधिनियम ऐसे व्यवसायों में लागू होता था जो कि शोषित समझे जाते थे परन्तु १९१४ तक यह अधिनियम लगभग ८ व्यवसायों पर लागू हो गया था जिनमें लगभग ५ लाख श्रमिक काम करते थे। १९१८ के संशोधित अधिनियम में श्रम मंत्रालय को यह अधिकार दे दिया गया कि वह ऐसे व्यवसायों के लिए जिनमें मजदूरी को नियमित करने की कोई व्यवस्था नहीं थी व्यापार बोर्डों की नियुक्ति कर सके। इस अधिनियम में मजदूरी को नियमित करने की किसी उचित व्यवस्था के अभाव की ओर ध्यान आकर्षित किया गया था।

इसके पश्चात् इंगलैंड में मजदूरी नियमित करने की वैधानिक व्यवस्था का विकास हुआ। इस समय मजदूरी कौंसिल 'कैटरिंग मजदूरी बोर्ड' और 'कृषि मजदूरी बोर्ड' पाए जाते हैं जो ऐसे उद्योगों के लिए हैं जिनमें मालिकों व श्रमिकों के संगठनों के अभाव के कारण रोजगार की शर्तों और दशाओं पर प्रभावपूर्ण समझौता करने के लिए कोई ऐच्छिक रूप से बातचीत करने की व्यवस्था नहीं है, और यदि है भी तो इतनी पर्याप्त नहीं है कि ऐच्छिक रूप से समझौतों का पालन तमाम उद्योगों में कराया जा सके। मजदूरी कौंसिल तथा मजदूरी बोर्डों में उद्योग से सम्बन्धित श्रमिकों व मालिकों के प्रतिनिधि होते हैं। इनमें कुछ स्वतन्त्र सदस्य भी होते हैं। इनको यह अधिकार है कि वह न्यूनतम दशाओं और शर्तों के लिए सम्बन्धित मंत्री को जो सामान्यतः श्रम मंत्री होता है प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकें। इन प्रस्तावों को बाद में वैधानिक रूप दे दिया जाता है। लगभग ४० से ५० लाख श्रमिक अपनी रोजगार की शर्तों को ऐसी वैधानिक व्यवस्था द्वारा निर्धारित कराने में सफल हुए हैं। दैनिक आधार पर मजदूरी पाने वाले श्रमिकों के लिए उचित दर की व्यवस्था की गई है। समयानुसार मजदूरी को भी निश्चित कर दिया गया है। १९४५ में एक मजदूरी

कौंसिल अधिनियम पारित किया गया जिसके अन्तर्गत श्रम मंत्री बोर्डों तथा कौंसिलों को वैधानिक मान्यता प्रदान कर दी गई है तथा श्रम मंत्री को यह अधिकार दिया गया है कि वह इनके निर्णयों को कानूनी रूप से लागू कर सके।

कृषि के लिए भी न्यूनतम मजदूरी विधान पारित किया गया है। १९१७ के अनाज उत्पादन अधिनियम (Corn Production Act) के अन्तर्गत कृषि श्रमिकों की न्यूनतम मजदूरी २५ शिलिंग प्रति सप्ताह निर्धारित की गई थी। परन्तु इस अधिनियम को १९२१ में निरस्त कर दिया गया और मजदूरी बोर्डों के स्थान पर ऐच्छिक सुलह समितियों की स्थापना की गई। यह समितियां प्रत्येक क्षेत्र के लिए मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित करती थी और यदि इन दरों से कृषि मंत्री सहमत हो जाता था तब इनका मानना अनिवार्य हो जाता था। परन्तु इन समितियों को सफलता प्राप्त नहीं हुई। अगस्त १९२४ में कृषि मजदूरी अधिनियम पारित किया गया जो अभी तक चला आ रहा है। १९४० में इसमें कृषि मजदूरी (विनियमन) अधिनियम द्वारा संशोधन किया गया था। अधिनियम के अन्तर्गत कृषि एवं मत्स्य (Fisheries) मन्त्री को प्रत्येक प्रदेश में कृषि मजदूरी समितियों की स्थापना करने का आदेश दिया गया है। यह समितियां कृषि श्रमिकों के कार्य के घण्टे तथा मजदूरी की न्यूनतम दरें निर्धारित करती हैं। यदि इन दरों को केन्द्रीय कृषि मजदूरी बोर्ड की स्वीकृति प्राप्त हो जाती है तो इन्हें वैधानिक रूप प्रदान कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त इंगलैंड में न्यूनतम मजदूरी को निर्धारित करने वाले अनेक और अधिनियम हैं। उदाहरण के लिए १९१२ का कोयला खान न्यूनतम मजदूरी अधिनियम १९३८ का सड़क परिवहन अधिनियम (Road Haulage Wages Act) १९४३ का कैटॅरिंग मजदूरी अधिनियम (Catering Wages Act) आदि। १९३८ के सवेतन छुट्टी अधिनियम के अन्तर्गत सब वैधानिक मजदूरी निर्धारित करने वाली संस्थाएं इस बात की भी सिफारिश कर सकती हैं कि ६ नियमित सार्वजनिक छुट्टियों के अतिरिक्त वर्ष में सात दिन की सवेतन छुट्टियां भी प्रदान की जाएं।

अन्य श्रम विधान —

जहां तक इंगलैंड में श्रमिक संघों के विधान का सम्बन्ध है इसके विषय में अध्याय ६ में विवेचन किया जा चुका है। औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में विधान का उल्लेख अध्याय ८ में, सामाजिक सुरक्षा योजनाओं के सम्बन्ध में अध्याय १२ में तथा आवास के सम्बन्ध में अध्याय १० में उल्लेख किया जा चुका है। कृषि श्रमिकों के लिए १९५२ व १९५६ में दो अधिनियम बनाए गए हैं ताकि उनकी कृषि में रसायन के उपयोग से जो हानि पहुंचती है उनसे सुरक्षा की जा सके।

ऐच्छिक समझौते तथा प्रयत्न (Voluntary Agreements and Efforts) —

यहां यह बात उल्लेखनीय है कि वैधानिक उपबन्धों के अतिरिक्त श्रमिकों की सुरक्षा कल्याण और कार्य घण्टों के सम्बन्ध में ऐच्छिक समझौतों और ऐच्छिक संगठनों द्वारा भी अनेक पग उठाए गए हैं। इनके द्वारा स्थापित किए गए स्तर कहीं

कहीं तो कानून द्वारा निर्धारित स्तरों से भी ऊंचे हैं। ऐच्छिक समझौतों द्वारा निर्धारित किए गए कार्य-घण्टे औसतन प्रति सप्ताह ४६.१ हैं अर्थात् वैधानिक रूप से निर्धारित किए गए अधिकतम घण्टों से भी दो घण्टे कम हैं। अधिकांश श्रमिकों को सार्वजनिक छुट्टियों के अतिरिक्त दो सप्ताह की सवेतन छुट्टी प्रदान की जाती है। शारीरिक परिश्रम करने वाले श्रमिकों को भी ६ वैधानिक सार्वजनिक छुट्टियों के अतिरिक्त एक सप्ताह की वेतन सहित छुट्टी प्रदान की जाती है। जहां तक सुरक्षा का सम्बन्ध है, कारखाना खान तथा पत्थर की खानों के निरीक्षकों द्वारा दुर्घटना निरोध आन्दोलन का जोरदार समर्थन किया जाता है जो एक ऐच्छिक मितव्ययी अभियान है। सुरक्षा समस्याओं के सम्बन्ध में अन्वेषण किए जाते हैं। सुरक्षा अधिकारियों एवं दुर्घटना निरोध समितियों की भी स्थापना की गई है। जहां तक स्वास्थ्य व कल्याण का सम्बन्ध है अधिकतर कारखाने पूर्ण समय के लिए या आंशिक समय के लिए डाक्टर एवं औद्योगिक नर्स गर्म भोजन के लिए कैन्टीन आदि की व्यवस्था करते हैं। क्लब तथा खेल के स्थानों का पूर्ण अथवा आंशिक व्यय मालिकों द्वारा दिया जाता है। मालिक राज्य बीमा योजना के अनुपूरक के रूप में अवकाश प्राप्ति तथा बीमारी बीमों की व्यवस्था करते हैं। प्रशिक्षण और शिक्षा की सुविधायें भी कारखानों द्वारा प्रदान की जाती हैं। कुछ कारखानों में स्वयं नर्सिंग होम व पुनर्वास केन्द्र भी हैं। कुछ कारखाने तो श्रमिकों के बच्चों के लिए छात्र वृत्ति भी प्रदान करते हैं तथा श्रमिकों के लिए स्कूलों अथवा कालिजों की व्यवस्था भी करते हैं। सभी कोयला खानों व खानों के ऊपर स्नान-गृहों की व्यवस्था है। कल्याण और सुरक्षा के सामाजिक और मनोवैज्ञानिक पहलुओं पर अधिक जोर दिया जाता है।

उपसंहार —

इंगलैण्ड में यद्यपि श्रम विधान से यह प्रकट हो जाता है कि उद्योग में राज्य ने किस सीमा तक हस्तक्षेप किया है परन्तु श्रमिकों की कार्य की दशायें सुरक्षा और कल्याण के लिए हमें विधान के उपबन्धों पर ही दृष्टिपात नहीं करना चाहिए वरन् श्रमिकों के कल्याण व स्वास्थ्य के उन ऐच्छिक समझौतों और ऐच्छिक उपायों की ओर भी ध्यान देना चाहिए। भारत ग्रेट ब्रिटेन के अनुभवों से बहुत लाभ उठा सकता है। परन्तु जब तक श्रमिकों के संगठन शक्तिशाली नहीं हो जाते और मालिक ऐच्छिक रूप से श्रमिकों के लिए अच्छी काम की दशाओं और कल्याण साधनों में उन्नति नहीं करते हमें श्रमिकों की दशा सुधारने के लिए राज्य पर निर्भर रहना पड़ेगा।

२२

बाल तथा स्त्री श्रमिक
(Child and Woman Labour)

बालकों को रोजगार पर लगाने की समस्या :—

आधुनिक औद्योगीकरण के आगमन के साथ मालिकों में यह प्रवृत्ति उत्पन्न हो गई कि कम लागत लगाकर अधिक लाभ प्राप्त किया जाय। अतः प्रत्येक देश में बालकों को अधिक संख्या में कारखानों में रोजगार पर लगाया गया। इन बालकों को बहुत कम मजदूरी दी जाती थी और उनसे अत्यधिक समय तक कार्य कराया जाता था। यह बालक अत्यन्त कष्टप्रद परिस्थितियों में कार्य करते थे। पिछले अध्याय में इंगलैंड में औद्योगिक क्रांति के प्रारम्भ में बालकों की दशा का वर्णन किया जा चुका है। भारत में भी औद्योगीकरण के साथ बालकों को अधिक संख्या में कारखानों में रोजगार पर लगाया गया। कुछ उद्योगों में इनको अब भी रोजगार पर लगाया जाता है, यद्यपि इनकी आयु, कार्य-घण्टे आदि के लिए कुछ विशेष कानूनी उपबन्ध बना दिये गये हैं। श्रम अनुसंधान समिति के शब्दों में "कुछ उद्योगों में अभी तक बालकों को अवैध रूप से रोजगार में लगाना भारत की श्रम दशाओं पर एक काला धब्बा है।"*

कृषि, व्यापार, उद्योग, खान तथा यातायात में काम करने वाले बालकों की संख्या के निश्चित और विस्तृत आंकड़े प्राप्य नहीं हैं। किन्तु यह साधारण ज्ञान का विषय है कि देश के बालकों की एक बड़ी संख्या जीविकोपार्जन में व्यस्त है जबकि उन्हें सामान्य एवं व्यावसायिक शिक्षा मिलनी चाहिये जो उनके आगामी जीवन के लिए अत्यंत आवश्यक है। भारत में मुख्यतः कृषि व्यापार, अनियंत्रित कार्यशालाओं बागान और कारखानों में भी बालकों को रोजगार पर लगाया जाता है।

बालकों को रोजगार पर लगाने के कारण —

बालकों को रोजगार पर लगाने के मुख्य कारणों में से एक कारण तो यह है कि वयस्क श्रमिकों की आय बहुत कम है। इसके अतिरिक्त भारत में राज्य द्वारा संचालित किसी पारिवारिक भत्ते की ऐसी योजना का अभाव है जिसके द्वारा निर्धन माता-पिता अपने बालकों को पर्याप्त एवं संतुलित आहार और रहने योग्य उचित परिस्थितियां दे सकें। किसी ऐसी सामान्य शिक्षा योजना का भी अभाव है जिसमें निर्धारित न्यूनतम आयु वाले बालकों को स्कूलों में शिक्षा पाना अनिवार्य हो। सुरक्षात्मक श्रम विधान का भी देश में धीमा विकास हुआ है और ऐसा विधान कृषि और छोटे पैमाने के उद्योग जैसे अनेक महत्वपूर्ण रोजगारों पर अब तक लागू नहीं

---

* *One black spot of labour conditions in India is the illegal employment of children in certain industries.*

होता। बालकों की सुरक्षा के लिए जो वर्तमान कानून है उनका भी उल्लंघन होता है क्योंकि राज्य की निरीक्षण व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। ये समस्त परिस्थितियां इंगित करती है कि विद्यालयों को न जाने वाले बालकों की अधिकांश संख्या अपने माता-पिता की अल्प आय की कमी-पूर्ति हेतु कार्य करने के लिए भेजी जाती है।

बागान में बाल श्रमिक —

बागान के क्षेत्रों में बालकों की अधिक संख्या मुख्यतः चाय एवं कॉफी की उपज में लगी है। बागान में बालक ६ या ७ वर्ष की आयु से ही कार्य करना प्रारम्भ कर देते हैं। श्रम अनुसंधान समिति के अनुसार समस्त श्रमिकों में से १५ वर्ष की आयु से कम के बालकों की प्रतिशत संख्या इस प्रकार थी — बंगाल के 'डारस' नामक क्षेत्र में २३·७%, दार्जिलिंग में २१%, असम की तराई में १४.५%, सुरमा घाटी में १६%, दक्षिणी भारत के चाय एवं कॉफी के बागान में ११% और रबर के बगीचों में ४.१%। बागान में लगे बालकों के विस्तृत आंकड़े केवल असम के चाय बागान से प्राप्त हैं। चाय क्षेत्र प्रवासी श्रमिक नियंत्रक की वार्षिक रिपोर्ट के अनुसार १९१८–१९ में रजिस्टर में लिखित बालकों की संख्या इस प्रकार थी — बसे हुये बाल श्रमिक ८१,९९८ और अबसतु बाल श्रमिक ६,९८७। १९४४-४५ में बसे हुए बाल श्रमिकों की संख्या ६,६१५ थी और अबसतु बाल श्रमिकों की संख्या ६,०२५ थी। १९५०-५१ में बसे हुए बाल श्रमिक ७१,७७९ और अबसतु बाल श्रमिक ९,११८ थे। १९५१ में चाय के बागान में रोजगार पर लगे बालकों की संख्या १११,२६४ थी अर्थात् श्रमिकों की दैनिक औसत संख्या में से ११.६% बालक थे। १९५४ में यह प्रतिशत घट कर १० रह गई थी। अन्य बागान के विषय में आंकड़े प्राप्त नहीं हैं, किन्तु श्री पी. एस. नरसिंहम के मतानुसार अन्य बागान में बालकों की कुल संख्या ६५,००० हो सकती है।* अतः बागान में कार्य करने वाले बालकों की कुल संख्या लगभग २ लाख से अधिक अनुमानित की जा सकती है। १९४८ से १२ वर्ष की आयु से कम के बालक बागान में रोजगार पर नहीं लगाए जा सकते तथा १९५१ के बागान श्रम अधिनियम ने बालकों की आयु १२ एवं किशोरों की आयु १२ से १८ वर्ष तक निर्धारित कर दी है।

कारखानों में बाल श्रमिक —

केन्द्रीय श्रम मंत्रालय के ब्यूरो द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण की रिपोर्ट ने जो १९५४ में प्रकाशित हुई थी — विभिन्न उद्योगों में बालकों के रोजगार की दशाओं पर काफी प्रकाश डाला है। कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त विवरण से ज्ञात होता है कि कारखाना उद्योगों में लगे बालकों की संख्या धीरे-धीरे कम होती जा रही है।

---

* A. N Agarwal *Indian Labour Problems*, page 142.

इनके सम्बन्ध में आंकड़े निम्न प्रकार हैं —

वर्ष	रोजगार में लगे बालकों की संख्या	कुल श्रमिक संख्या में से बालकों का प्रतिशत
१८९२	१८ ८८८	५ ९
१९२१	७४ ६२०	५ १
१९३१	१९,०९१	१ ४
१९४३	१२ ४८४	० ५
१९४८	११ ४४४	० ६८
१९५०	७ ७६८	० ११
१९५१	६ ८५३	० २७
१९५२	६,१५९	० २५
१९५३	५ ०५६	० २०
१९५४	४ ६९५	० १८
१९५५	४ ९७५	० १९

परन्तु इन आंकड़ों से वास्तविक स्थिति का पता नहीं चलता। बहुत से स्थानों पर बालकों को यह सिखा दिया जाता है कि वे अपनी आयु १८ वर्ष बता दें। अधिकतर यह भी देखा गया है कि कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत जो आयु के प्रमाण पत्र लिये जाते हैं वह भी ठीक नहीं होते। श्रम ब्यूरो की रिपोर्ट के शब्दों में 'इसमें सन्देह है कि कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत प्राप्त विवरण से बाल श्रमिकों के विषय में जो आंकड़े मिलते हैं उनसे वास्तविक स्थिति का पता चलता है क्योंकि कार्य-क्षेत्रों की जांच में लगे हुए अधिकारी तथा कारखाना निरीक्षकों का प्राय: यह अनुभव है कि जैसे ही वे फैक्टरियों में पहुंचते हैं वैसे ही बालकों की एक बड़ी संख्या कारखानों से भाग जाती है। ये प्राय: रोजगार के लिए निर्धारित न्यूनतम आयु से कम आयु के बालक होते हैं। श्रम अनुसंधान समिति ने भी यह बताया था कि कई उद्योगों में बालकों को रोजगार पर लगाने के प्रतिबन्ध की अवहेलना की जाती है और प्रत्येक स्थान पर १२ वर्ष से कम आयु के बालक रोजगार में लगे हुए पाए जाते हैं। १९५१ में दक्षिणी भारत के काजू उद्योग में श्रम दशाओं की एक जांच की रिपोर्ट में इस सम्बन्ध में कुछ शब्द बहुत महत्वपूर्ण हैं तथा दूसरे उद्योगों पर भी लागू हो सकते हैं। रिपोर्ट में कहा गया है "प्रबन्धकों के पास ऐसे समस्त बालकों की आयु का प्रमाण-पत्र मौजूद होता है जो उनके द्वारा कार्य पर लगाए जाते हैं। परन्तु ये प्रमाण-पत्र किसी को धोखा नहीं दे सकते। अनेक उदाहरणों में ऐसे बालकों को जो कठिनाई से ८ या १० वर्ष के हैं इस बात का प्रमाण-पत्र दे दिया जाता है कि उन्होंने १५ वर्ष की आयु पूरी कर ली है। वास्तविक स्थानों पर गुप्त सोतों से ज्ञात हुआ है कि आयु के प्रमाण-पत्र प्रत्येक बालक पर २ या ३ रु० देकर प्राप्त किए जा सकते हैं।'

१९५२ में श्रम ब्यूरो की जाँच के अनुसार कारखानों में बालकों की संख्या ६,१२९ मात्री थी और किशोरों की संख्या १८,१६२ थी। कारखानों में बाल श्रमिकों में अधिक संख्या लड़कों की थी जिसकी प्रतिशत ७४ थी। किशोरों में लड़कों की प्रतिशत ८४ थी। सामाजिक रीतियाँ जैसे शीघ्र विवाह, लड़कियों को कारखानों में काम पर भेजने के विषय में विरोधात्मक धारणायें, पर्दे का रिवाज आदि के कारण ही लड़कियों को कारखानों में काम पर बहुत कम लगाया जाता है।

श्रम ब्यूरो के अनुसार बाल श्रमिक मद्रास, असम, बिहार तथा प० बंगाल में अधिक हैं। बालकों को अधिक संख्या में लगाने वाले औद्योगिक वर्ग निम्नलिखित हैं —रसायन, रसायन पदार्थ, खाद्य, अधातु खनिज पदार्थ तथा तम्बाकू। रसायन वर्ग में दियासलाई फैक्टरियाँ, खाद्य में काजू फैक्टरियाँ, खनिज उत्पादन में अभ्रक फैक्टरियाँ तथा तम्बाकू में बीड़ी कारखाने ऐसे मुख्य उद्योग हैं जहाँ बालक अधिकतर रूप से लगाये जाते हैं। १९५५ में राज्यानुसार आँकड़े निम्न प्रकार थे —

कारखानों में रोजगार पर लगे श्रमिकों की औसत दैनिक संख्या

राज्य	रोजगार में लगे कुल श्रमिक	वयस्क		किशोर	बालक
		पुरुष	स्त्री		
आन्ध्र	१ ११ ४९८	६४ ७९९	४८ २००	२९८	२४१
असम	६८ ५५०	५७ ६६६	८ ६५५	१ ८१५	७१४
बिहार	१ ६४ ५०३	१,५२ ३०६	१० ०४२	१, ८७	६६८
बम्बई	८ ५८ २४५	७ ७६,८८२	७९ ३१२	१ ९४७	१४४
मध्य प्रदेश	१ १० ५७६	१ ०० ०१५	१० ०५	४९१	४५
मद्रास	३ २७ ९२६	२ ३८ ५२	६२ ३२२	४ ४०८	२ ३७६
उड़ीसा	२० ३१९	१७ १४२	२ ७५२	४११	१४
पंजाब	६३,३८९	६० २ ७	२,७१८	२११	१८३
उत्तर प्रदेश	२ ४५ २७९	२ ४२,११२	२ ५११	५११	७५
प० बंगाल	६ ६६ ७३९	५,७३ ४२४	४१ ४५५	१ ६६१	११९
अजमेर	१४ ६०९	१३ ७९७	८०५	७	—
कुर्ग	४३९	११८	३८३	—	—
देहली	४७,२५२	४६ ३६४	७४१	१०१	४६
अंडमान एवं निकोबार द्वीप	१ ९२८	१ ९०३	१४	११	—
योग (१९५५)	२ ६७३ ८९२ (१०० ०)	२ ३६५,३०५ (८८ ४९)	२८९,२८३ (१०·८३)	१३ ०२९ (०·४९)	४ २०६ (० १९)
योग (१९५४)	२ ५६४ ५१४ (१०० ००)	२ २६८,०१४ (८८·४४)	२७९,५७६ (१ ९०)	१२ २२९ (०·४८)	४ ६६५ (० १८)

इससे स्पष्ट है कि मद्रास की फैक्टरियों में सबसे अधिक संख्या में बालक तथा किशोर रोजगार में लगे हैं।

खानों में बाल श्रमिक —

जहाँ तक खानों का सम्बन्ध है सन् १९२३ के खान अधिनियम के पारित होने से पूर्व अनेक खानों में १२ वर्ष से कम आयु के बालक रोजगार में लगाये जाते थे। सन् १९२२ में समस्त खानों में रोजगार पर लगे हुए बालकों की कुल संख्या ४१९९ थी। इनमें से ५१.१ प्रतिशत बालक अभ्रक की खानों में २१.१ प्रतिशत कोयले की खानों में ११.२ प्रतिशत चूने के पत्थर की खानों में तथा १०.४ प्रतिशत अन्य खानों में रोजगार पर लगे हुए थे। सन् १९३५ में बालकों के लिए खानों में रोजगार पर लगाने की न्यूनतम आयु बढ़ाकर १५ वर्ष कर दी गई थी, जो आज तक चली आती है। लेकिन बिहार, मद्रास तथा राजपूताना की अभ्रक की खानों में अधिकांश बालक खानों के भीतर कार्य करते हुए पाये जाते हैं। श्रम अनुसंधान समिति के अनुमान के अनुसार केवल बिहार में अभ्रक की खानों में लगभग १२५० बालक कार्य करते हैं और मद्रास तथा राजपूताना की अभ्रक की खानों में ५,००० बालक रोजगार पर लगे हैं।

अनियंत्रित कारखानों आदि में बाल श्रमिक—

बाल श्रमिकों को रोजगार पर लगाने के सबसे बुरे दोष अनियंत्रित कारखानों और कार्यशालाओं में पाये जाते हैं। इनमें से कुछ ही कारखाने ऐसे हैं जो यांत्रिक शक्ति का उपयोग तो करते हैं परन्तु दस से कम श्रमिकों को ही रोजगार पर लगाते हैं। लेकिन अधिकांश कारखाने ऐसे हैं जो किसी यांत्रिक शक्ति का उपयोग नहीं करते लेकिन अधिक संख्या में श्रमिकों को रोजगार पर लगाते हैं। जैसा कि कारखाना विधान के अन्तर्गत उल्लेख किया जा चुका है कि यह कारखाने और कार्यशालायें न तो कारखाना अधिनियमों के ही अन्तर्गत आते हैं और न ही मद्रास तथा मध्य प्रदेश के अतिरिक्त इनके लिए कहीं किसी पृथक विधान की व्यवस्था की गई है। ऐसे उद्योग निम्नलिखित हैं —बीड़ी कपड़ा अभ्रक कूटना कालीन बुनना कांच की चूड़ियाँ बनाना तथा अन्य छोटे पैमाने के उद्योग आदि। दक्षिण भारत के दियासलाई उद्योग तथा राजपूताना के इसी प्रकार के उद्योगों में भी बाल श्रमिकों को अधिक संख्या में रोजगार पर लगाया जाता है। उदाहरण के लिए सन् १९५२ में मद्रास राज्य के छोटे पैमाने के दियासलाई उद्योग में ४१२ बालक रोजगार में लगे थे जिनमें ११० लड़के व तथा ३०२ लड़कियाँ थीं। बीड़ी बनाने के सबसे अधिक महत्वपूर्ण केन्द्र मध्य प्रदेश बम्बई, मद्रास तथा बंगाल में पाये जाते हैं और लगभग इन सभी क्षेत्रों में ५ वर्ष से लेकर १२ वर्ष के मध्य की आयु के बालकों को अधिकतर पत्तियाँ काटने तथा बीड़ियाँ लपेटने के कार्य पर नियुक्त किया जाता है। श्रम अनुसंधान समिति ने इस बात का उल्लेख किया था कि इन बीड़ी के कारखानों

में श्रमिकों की कुल संख्या में से २९ प्रतिशत वैलोर (मद्रास) में १८% मद्रास नगर में २१.४८% शोलापुर में ७.५५% बम्बई नगर में तथा ७% मध्य प्रदेश में बालकों की थी। कारखानों के रजिस्टरों में इन बालकों का नाम भी नहीं लिखा जाता। इन बालकों के माँ बाप या पड़ौसी अपने काम में सहायता देने के लिये इन्हें लाते हैं। सन् १९५२ में विभिन्न राज्यों में बीड़ी उद्योग में रोजगार पर लगे हुये बालकों की जो संख्या अनुमानित की गई थी वह निम्नलिखित है: असम–१८० बिहार २०८० पश्चिमी बंगाल–३०० हैदराबाद–४६७० ट्रावनकोर–कोचीन– १,४०० भोपाल–११५० विन्ध्य प्रदेश–१०००० । इसके अतिरिक्त मद्रास राज्य राजस्थान तथा सौराष्ट्र के छोटे-छोटे बीड़ी के कारखानों में बालकों की एक अगणित संख्या रोजगार पर लगी हुई थी। श्रम अनुसंधान समिति के अनुसार अभ्रक के विनिर्माण में कानून का खुले आम उल्लंघन करते हुए ६ वर्ष से लेकर १२ वर्ष के मध्य की आयु के बालकों को इतनी अधिक संख्या में रोजगार पर लगाया जाता है कि देखकर आश्चर्य होता है। समिति ने बड़े विस्मय से इस बात का भी उल्लेख किया है कि बिहार में पंचम्बा नामक स्थान पर सरकारी कारखानों में भी बाल श्रमिक रोजगार पर लगे थे। समिति ने अभ्रक उद्योग में रोजगार पर लगे हुए बालकों की कुल संख्या लगभग १२ ००० अनुमानित की है। युद्ध-काल में श्रमिकों की कमी के कारण बालकों को खुले आम रोजगार पर लगाया गया था और कोई इसका विरोध भी नहीं करता था। बिहार, मध्य-प्रदेश तथा बंगाल के चपड़ा उद्योग में लगभग ३५२ कारखानों में से केवल १८ कारखाने ही कारखाना अधिनियम के क्षेत्राधिकार या मध्य-प्रदेश के अनियंत्रित कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत आते हैं। यहाँ भी बालकों के रोजगार के सम्बन्ध में विधान व्यवस्था की खुले रूप से उपेक्षा की जाती है और १४ वर्ष से कम आयु के बालकों को अधिक संख्या में रोजगार पर लगाया जाता है। चपड़ा उद्योग में रोजगार पर लगे हुए बालकों की संख्या लगभग १८०० अनुमानित की जा सकती है। अभी हाल ही में हुए एक सर्वेक्षण के अनुसार केरल की काजू निकालने की क्रियाओं के कारखानों में ६ ००० से भी अधिक बाल श्रमिक कार्य पर लगे हुये हैं।

एक अन्य अपने ही प्रकार का कारखाना उद्योग जिसमें बालकों को रोजगार पर लगाया जाता है उत्तर-प्रदेश में फिरोजाबाद का काँच की चूड़ियों का उद्योग है। इस उद्योग में ६ ००० श्रमिकों की कुल संख्या में से १५ प्रतिशत श्रमिक १४ वर्ष से कम आयु के बालक हैं। कालीन बुनने के उद्योग में ऊन बुनने तथा उसके नाप करने में कपड़ों की बुनाई, छपाई तथा रंगाई करने में चमड़ा रंगने तथा साबुन बनाने में तथा कृषि एवं व्यापार में बालकों को अधिकतर रोजगार पर लगाया जाता है। दुकानों पर नौकरों के रूप में भी इन बालकों को अधिक संख्या में कार्य करते हुए पाया जाता है। यह बात कभी भी बाजार में जाकर देखी जा सकती है। लेकिन ऐसे बाल श्रमिकों के अभी तक कोई विश्वसनीय आँकड़े उपलब्ध नहीं किए

जा सके हैं। परन्तु विभिन्न राज्यों में दुकान एवं वाणिज्य संस्थान अधिनियमों द्वारा उनको कुछ सुरक्षा प्रदान की गई है (देखिये पृष्ठ ६६०–६६२) घरेलू नौकरों के रूप में रोजगार पर लगे हुये अगणित बालकों का भी उल्लेख किया जा सकता है। इनके लिये न तो कोई आँकड़े ही प्राप्त किये गए हैं और न ही इनको कानून द्वारा कोई सुरक्षा प्रदान की गई है। नगर-पालिकाओं तथा सार्वजनिक निर्माण कार्यों में भी बाल श्रमिक पाये जाते हैं। सन् १९५७ में विभिन्न राज्यों की नगर-पालिकाओं में रोजगार पर लगे हुये बालकों की कुल संख्या ५७१ थी। केन्द्रीय सार्वजनिक निर्माण कार्यों में १७२ बालक प्रत्यक्ष रूप से तथा ४२० बालक ठेके के श्रमिकों के रूप में रोजगार पर लगे थे। राज्य के सार्वजनिक निर्माण कार्यों में और मुख्य मार्गों में बालकों की संख्या इस प्रकार थी प्रत्यक्ष श्रमिक ६,४१६ ठेके के श्रमिक ६,४७३।

कृषि में बाल श्रमिक —

गाँवों में बालक बचपन से ही खेतों में अपने माता पिता की सहायता करना प्रारम्भ कर देते हैं और साधारणतया उनका स्कूल जाना एक अपवाद माना जा सकता है। श्रम मन्त्रालय की प्रथम कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार कुल कृषि श्रमिकों में से लगभग ४.६ प्रतिशत १५ वर्ष से कम आयु के बालक हैं। इस प्रकार कृषि में बाल श्रमिकों की संख्या लगभग २० लाख १९५०–५१ में आती थी। द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार बाल श्रमिकों की संख्या १९५६–५७ में १० लाख (९%) थी। इन बालकों से अनेक कार्य कराये जाते हैं जिनमें पशु चराना खेतों की रखवाली करना रोपाई करना फसलें इकट्ठी करना तथा बोझा लादना आदि मुख्य हैं। यह बालक केवल खेतों में ही अपने माता पिता की सहायता नहीं करते अपितु मजदूरी पर भी कार्य करते हैं तथा ऐसे पारिवारिक श्रमिक के रूप में कार्य करते हैं जिनको कोई मजदूरी नहीं दी जाती। गाँवों में लगभग ७ वर्ष से लेकर ९ वर्ष तक की आयु के बालकों को खेतों में कार्य करते हुये देखा जा सकता है।

बाल श्रमिकों के काम करने की दशाएं तथा उनकी मजदूरी —

इन सब बातों से यह ज्ञात होता है कि भारत के विभिन्न उद्योगों में बालकों की एक बड़ी संख्या रोजगार में लगी हुई है। उनके कार्य करने की दशाएं अनियंत्रित कारखानों में विशेष रूप से बहुत ही असंतोषजनक हैं। इन अनियन्त्रित कारखानों में बाल श्रमिक बे-हवादार, कम प्रकाश तथा भीड़-भाड़ वाले और अत्यन्त गन्दे वातावरण में कार्य करते हैं। शिशुओं को सभी प्रकार के फुटकर कार्य करने पड़ते हैं जिनमें घरेलू कार्य भी सम्मिलित होता है। इस प्रकार कार्य सीखने के लिए उन्हें प्राय बहुत भारी मूल्य चुकाना पड़ता है। इन बाल श्रमिकों को केवल बुरी गालियाँ ही नहीं दी जाती अपितु उनके मालिक उन्हें कई बार मार भी बैठते हैं। बाल श्रमिकों की मजदूरी भी बहुत कम होती है। यह मजदूरी सामान्यतया वयस्क श्रमिकों की मजदूरी का ३० प्रतिशत से लेकर ५० प्रतिशत तक होती है।

चाय बागान में बालकों की दैनिक मजदूरी असम में ३७ न० पै० से लेकर ५० न० पै० तक रही है और दक्षिण भारत में ३० न० पै० से लेकर ६२ न० पै० तक है। 'कॉफी' बागान में अब बालकों की दैनिक मजदूरी ६० न० पै० नियत कर दी गई है, इससे पूर्व उनकी मजदूरी केवल ५२ न० पै० प्रतिदिन थी। मैसूर के कॉफी बागान में बालकों को ४८ न० पै० प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी मिलती है और रबड़ के बागान में दैनिक मजदूरी ३७ न० पै० से ४२ न० पै० तक है। दैनिक मजदूरी की दर कपड़ा उद्योग में ५० न० पै० तथा बीड़ी उद्योग में केवल १९ न० पै० से ३७ न० पै० तक है। इन आंकड़ों से यह ज्ञात होता है कि बालकों को बहुत कम मजदूरी दी जाती है। (मजदूरी का अध्याय भी देखिये)।

बालकों की आयु तथा उनके कार्य करने के घण्टे —

कारखानों, खानों, यातायात, बागान तथा दुकान आदि में बालकों की आयु तथा उनके कार्य करने के घण्टों से सम्बन्धित विधान का उल्लेख अध्याय १० तथा ११ में पहले किया जा चुका है। बालकों के कार्य करने के घण्टे सीमित हैं, उनका रात्रि में काम करना निषिद्ध कर दिया गया है, उन्हें साप्ताहिक छुट्टियां देने की भी व्यवस्था की गई है तथा समय-समय पर उनकी आयु भी निर्धारित कर दी गई है। सन् १९४८ के अधिनियम के अनुसार बालकों की आयु १२ वर्ष से बढ़ाकर १४ वर्ष कर दी गई है। किशोरों की आयु जो १५ से लेकर १७ वर्ष तक थी अब एक वर्ष और बढ़ा दी गई है अर्थात १७ वर्ष से १८ वर्ष कर दी गई है। इस अधिनियम में बालकों तथा किशोरों को रोजगार देने से पूर्व उनकी डाक्टरी परीक्षा तथा आयु का प्रमाणीकरण भी अनिवार्य कर दिया गया है। उनके प्रतिदिन कार्य करने के घण्टे ५ से घटाकर ४½ कर दिए गए हैं। श्रम समय विस्तार ५ घण्टे निर्धारित कर दिया गया है। १२ महीने निरन्तर नौकरी करने के उपरान्त बालकों को कम से कम ४ दिन की सवेतन छुट्टी मिलने की व्यवस्था है जो प्रत्येक १५ दिन के कार्य पर एक दिन की छुट्टी की दर से मिल सकती है। खानों में भी १५ वर्ष से कम आयु के बालकों को रोजगार पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया है। कार्य-समर्थता का डाक्टरी प्रमाण-पत्र के बगैर १५ वर्ष से कम आयु के किसी भी बालक को खानों के भीतर कार्य करने की अनुमति नहीं है। सन् १९४८ से तथा सन् १९५१ के बागान श्रम अधिनियम के अन्तर्गत १२ वर्ष से कम आयु के बालकों को बागान में कार्य करने की अनुमति नहीं है। इन बालकों के कार्य घण्टे भी प्रति सप्ताह ४० निर्धारित कर दिए गए हैं। मध्य प्रदेश के नियंत्रित कारखानों में बालकों के कार्य-घण्टे प्रतिदिन ७ नियत किए गए हैं और बालकों की कार्य करने की आयु १० वर्ष से बढ़ाकर १४ वर्ष कर दी गई है। मद्रास में शक्ति से न चलने वाले कारखानों में बालकों के रोजगार की न्यूनतम आयु १४ वर्ष नियत की गई है। १४ वर्ष से लेकर १७ वर्ष के मध्य की आयु के किशोरों को तो केवल उसी दशा में रोजगार पर लगाया जा सकता है जबकि वे कार्य-समर्थता का डाक्टरी प्रमाण-पत्र दे दें। परन्तु बालकों के कार्य करने के घण्टों

और उनकी आयु से सम्बन्धित दोनों नियमों का सभी स्थानों पर उल्लंघन किया जाता है। बालकों के रात्रि में काम करना प्रत्येक स्थान पर निषिद्ध हो गया है और इस सम्बन्ध में सन् १९५४ में कारखाना अधिनियम में संशोधन किया गया था (देखिए पृष्ठ ४४९)।

सन् १९३३ का बाल (श्रम अनुबन्ध) अधिनियम —
[The Children (Pledging of Labour) Act, 1933]

भारत सरकार ने बाल श्रमिकों से सम्बन्धित दो विशेष अधिनियम पारित किए हैं, जो अब जम्मू और काश्मीर के अतिरिक्त सम्पूर्ण भारत में लागू हैं। इनमें एक तो १९३३ का बाल (श्रम अनुबंध) अधिनियम है। यह अधिनियम रॉयल श्रम आयोग की सिफारिशों के परिणाम-स्वरूप पारित किया गया था। रॉयल श्रम आयोग ने अपनी जाँच में यह देखा कि अनेक उद्योगों में विशेषतया कालीन बुनने तथा बीड़ी उद्योग में माता-पिता या संरक्षक अपने छोटे-छोटे बालकों को उनके श्रम का अनुबंधन करके मालिकों के पास कार्य के लिए छोड़ देते थे। श्रम आयोग के अनुसार यह प्रथा बंधक श्रमिकों (Indentured Labour) की प्रथा से भी अधिक बुरी थी। इस प्रथा के अन्तर्गत किसी अग्रिम धन या ऋण के हेतु एक अनिश्चित अवधि के लिए श्रमिकों को अनुबंध कर लिया जाता था। इसलिए आयोग ने बड़े जोरदार शब्दों में इस बात की सिफारिश की थी कि श्रम अनुबंधन को एक दण्डनीय अपराध बनाने के लिए पग उठाए जाएं। फलस्वरूप फरवरी १९३३ में इस विषय पर एक अधिनियम पारित किया गया। इस अधिनियम के अनुसार कोई भी ऐसा समझौता चाहे वह लिखित हो या अलिखित, अवैध हो गया है जिसके अन्तर्गत किसी बालक के माता-पिता या उसके संरक्षक किसी लाभ या धन के बदले उस बालक की सेवाओं को किसी भी रोजगार में उपयोग करने की अनुमति देकर उसके श्रम को अनुबंधित कर देते हैं। परन्तु इस अधिनियम के अन्तर्गत ऐसा कोई समझौता अवैध नहीं है जिसके अनुसार बालकों की सेवाओं के बदले केवल मजदूरी के अतिरिक्त अन्य कोई लाभ नहीं लिया जाता है और जो बालकों के हित के विरुद्ध नहीं है और जिसे एक सप्ताह की सूचना पर समाप्त किया जा सकता है। इस अधिनियम के अन्तर्गत १५ वर्ष से कम आयु के व्यक्तियों को बालक माना जाता है। इस कानून का उल्लंघन करने पर मालिकों पर २०० रु० तक जुर्माने की तथा माँ बाप पर ५० रु० तक जुर्माने की व्यवस्था की गई है। यह अधिनियम जम्मू व काश्मीर को छोड़कर समस्त भारत में लागू होता है।

बाल श्रमिकों की अनुबन्धन के सम्बन्ध में स्थिति —

श्रम अनुसंधान समिति के अनुसार उसकी जाँच के समय दक्षिण भारत तथा मैसूर राज्य के बीड़ी उद्योग के अतिरिक्त शेष किसी भी उद्योग में बाल श्रमिकों को अनुबन्धन जैसी बुराई नहीं पाई गई। बीड़ी सुरट, सुंघनी तम्बाकू साफ करने तथा चमड़ा रंगने के उद्योगों में लगे हुए श्रमिकों की दशाओं के विषय में पृथक्-पृथक्

करने के लिए सन् १९४६ में मद्रास सरकार द्वारा नियुक्त किए गये एक जांच न्यायालय ने इस बात की भी रिपोर्ट दी थी कि मद्रास के बीड़ी उद्योग में छोटे-छोटे बालकों की सेवाओं की अनुबन्धन की प्रणाली पाई जाती थी। मद्रास में यह बुराई इसलिए चली आ रही है कि वहाँ के श्रमिक बहुत निर्धन हैं। बीड़ी उद्योगों में प्रबन्ध श्रमिक अपने बालकों या सहायक लड़कों को कुछ अग्रिम धन देते रहते हैं। यह बालक वैसे तो इस कर्ज को चुकाने के लिए स्वतन्त्र होते हैं और कहीं भी जाकर अपने लिए नौकरी ढूंढ सकते हैं, परन्तु वास्तविक जीवन में इस कर्ज के कारण यह बालक इन विशेष श्रमिकों से बंध जाते हैं। अभी हाल ही में मद्रास सरकार ने इस अधिनियम को दृढ़ रूप से लागू करने के लिए आदेश जारी किए हैं। मैसूर श्रम आयुक्त द्वारा दी गई सूचनाओं से भी यह बात होता है कि मैसूर के कृषि श्रमिकों की दलित जातियों में बाल श्रमिकों के अनुबन्धन की प्रथा अब भी पाई जाती है। सरकार इस बुराई को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करने पर विचार कर रही है।

सन् १९३८ का बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम —

(The Employment of Children Act 1938)

एक अन्य अधिनियम सन् १९३८ का बाल श्रमिक रोजगार अधिनियम है। इस अधिनियम के अनुसार उन समस्त व्यवसायों में १५ वर्ष से कम आयु के बालकों को कार्य पर लगाना निषिद्ध कर दिया गया है जो रेलवे यातायात द्वारा ले जाए गए यात्रियों सामान या डाक से सम्बन्धित हैं या जिनका सम्बन्ध भारतीय बन्दरगाह अधिनियम के द्वारा विनियमित बन्दरगाहों में सामान चढ़ाने उतारने से है। इस १९३८ के अधिनियम के अनुसार उपयुक्त व्यवसायों में, शिशुओं को छोड़कर अन्य १५ वर्ष से लेकर १७ वर्ष के मध्य की आयु के बालकों को एक दिन में निरन्तर १२ घंटे का अवकाश मिलना चाहिए। इनमें से ७ घंटे रात्रि के १० बजे से लेकर प्रातःकाल के ७ बजे तक होने चाहिए। बीड़ी बनाने कालीन बनाने सीमेंट बनाने तथा उसे बोरियों में भरने कपड़े की छपाई, रंगाई तथा बुनाई करने दियासलाइयां बनाना विस्फोटक तथा आतिशबाजी का सामान तैयार करने अभ्रक काटने तथा उसे कूटने चपड़ा बनाने साबुन बनाने चमड़ा रंगने तथा ऊन साफ करने से सम्बद्ध कारखानों में १२ वर्ष से कम आयु के बालकों का रोजगार पर लगाना निषिद्ध करने के लिए सन् १९४९ में इस अधिनियम में संशोधन किया गया। क्योंकि सन् १९४८ के फैक्टरी अधिनियम द्वारा बालकों के रोजगार पर लगने की न्यूनतम आयु १२ वर्ष से १४ वर्ष कर दी गई थी इसलिए सन् १९४८ में उपयुक्त कारखानों में बालकों के रोजगार की न्यूनतम आयु १२ वर्ष से १४ वर्ष करने के लिए इस अधिनियम में पुनः संशोधन किया गया। सन् १९५१ के निरसन तथा संशोधन अधिनियम द्वारा इस अधिनियम में कुछ छोटे-छोटे परिवर्तन भी किए गए, जिनके अन्तर्गत बालकों की आयु के सत्यापन (Verification) के सम्बन्ध में मालिकों और निरीक्षकों के बीच हुए मतभेद और विवाद के निपटारे की भी व्यवस्था की गई है।

राज्य सरकारों को इस अधिनियम में संशोधन करने या इसके क्षेत्र का विस्तार करने के अधिकार दिए गए हैं। सन् १९४७ में मद्रास सरकार ने मोटर यातायात कम्पनियों से सम्बद्ध कारखानों में सफाई करने वाले बाल श्रमिकों पर भी इस अधिनियम को लागू कर दिया। अगस्त सन् १९४८ में पीतल के बर्तनों तथा कांच की चूड़ियों के उद्योगों में रोजगार पर लगे हुए बाल श्रमिकों के लिए उत्तर प्रदेश सरकार ने इस अधिनियम का विस्तार किया। किशोरों के रात्रि में काम करने से सम्बद्ध अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के अभिसमय को कार्यान्वित करने के लिए सन् १९५१ में इस अधिनियम में पुनः संशोधन किया गया। इस संशोधन के अन्तर्गत रेलवे तथा बन्दरगाह के अधिकारियों द्वारा ऐसे रजिस्टर रखना अनिवार्य कर दिया गया है जिनमें १७ वर्ष से कम आयु के बालकों के नाम, जन्म-तिथि तथा उनके विश्राम अन्तरालों आदि का विवरण हो। इसके साथ ही १५ से लेकर १७ वर्ष के मध्य की आयु के किशोरों को रेलवे और बन्दरगाहों में रात्रि में कार्य पर लगाना निषेध कर दिया गया है। इस अधिनियम का उल्लंघन करने पर १ मास के कारावास या ५०० रु० के जुर्माने के दण्ड या दोनों की व्यवस्था है। यह अधिनियम राज्यों में मुख्य कारखाना निरीक्षक, तथा केन्द्रीय व्यवसायों में मुख्य श्रम आयुक्त द्वारा प्रशासित किया जाता है। रेलवे में इस अधिनियम का प्रशासन मुख्य श्रम आयुक्त, प्रादेशिक श्रम आयुक्त तथा श्रम निरीक्षक द्वारा होता है। बन्दरगाहों में श्रम निरीक्षक इस अधिनियम का प्रशासन करते हैं।

रिपोर्टों से यह ज्ञात होता है कि केवल ठेकेदारों के श्रमिकों को छोड़कर रेलवे में इस अधिनियम को उचित रूप से लागू किया जाता है। श्रम अनुसन्धान समिति ने इस ओर ध्यान दिलाया था कि कई उद्योगों में—जैसे दक्षिण भारत में बीड़ी तथा दियासलाई के कारखानों में इस अधिनियम को पर्याप्त रूप से लागू नहीं किया जा रहा था। बीड़ी की फैक्टरियों में इस अधिनियम के लागू होने में सबसे बड़ी कठिनाई यह रही है कि इन छोटे-छोटे कारखानों के मालिक अपने कार्य स्थानों में नित्य परिवर्तन करते रहते हैं। अब मद्रास सरकार ने बीड़ी औद्योगिक संस्थान (कार्य की दशाओं का विनियमन) नाम का १९५८ में एक अधिनियम बना लिया है जिसके अन्तर्गत बीड़ी के कारखानों को लाइसेंस लेना पड़ता है तथा पंजीयन कराना पड़ता है। ऐसे ही अधिनियम १९५९ में केरल तथा मैसूर में भी पारित कर दिए गए हैं। (देखिए पृष्ठ ६१७)।

निष्कर्ष तथा सुझाव—

संक्षेप में कहा जा सकता है कि इन अधिनियमों से कोई विशेष सहायता नहीं मिल सकी है। इसका कारण यह है कि लोग सामान्यतया इन कानूनों से बचने की चेष्टा करते हैं। इसके अतिरिक्त कृषि व्यवसायों में तथा घरेलू नौकरों के रूप में रोजगार पर लगे हुए बालकों के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। अतः बाल श्रमिकों के रोजगार से सम्बद्ध बुराइयों को रोकने के लिए पग उठाए जाने नितान्त आवश्यक,

है। एक सुधार जिसको तत्काल किया जाना चाहिए, वह श्रम निरीक्षण को दृढ़ करने की व्यवस्था करना है ताकि कानून की धाराओं का उल्लंघन न किया जा सके। मालिक प्रायः यह तर्क देते हैं कि वे बालकों को रोजगार पर लगाकर श्रमिकों की पारिवारिक आय को जो बहुत कम है बढ़ाते हैं और इस प्रकार, जब शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव है बालकों को रोजगार देकर उनको बुरी आदतों और आलस्य में पड़ने से बचा लिया जाता है। परन्तु इस प्रकार के तर्कों में कोई विशेष बल नहीं है। कोई भी राष्ट्र अपने बालकों की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि यही बालक तो राष्ट्र के भावी श्रमिक और नागरिक बनते हैं। केवल बालकों को रोजगार देने पर निषेध लगाने से ही काम नहीं चलेगा अपितु आवश्यक यह है कि औद्योगिक रोजगारों से बाल श्रमिकों को हटाने के लिए ठोस कदम उठाए जाएँ। जैसा कि श्रम अनुसंधान समिति ने कहा था "श्रमिकों की भावी संतान की ओर ध्यान देना सरकार का कर्तव्य है और सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए कि कहीं बालकों का बचपन स्कूलों में पढ़ने लिखने के स्थान पर कार्यशालाओं और फैक्टरियों के गन्दे स्थानों में तो नष्ट नहीं हो रहा है।" इसमें सन्देह नहीं है कि सरकार इस ओर अब ध्यान दे रही है और बालकों के हित की नीति को अपना लिया गया है परन्तु इस नीति को पूर्णरूप से लागू करने की आवश्यकता है, यह तभी हो सकता है जब उचित प्रकार के निरीक्षण और श्रमिकों के बच्चों के लिए शिक्षा और अधिक सुविधाओं की व्यवस्था की जाए। इसके अतिरिक्त जैसा बी॰ बी॰ गिरि ने सुझाव दिया है बालकों के रोजगार की आयु बढ़ाकर १६ वर्ष कर दी जानी चाहिए तथा इस आयु तक बालकों को निःशुल्क तथा अनिवार्य रूप से शिक्षा मिलनी चाहिए।

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बाल श्रमिकों की समस्या सभी वयस्क कमाने वालों के लिए पर्याप्त मजदूरी की समस्या से सम्बन्धित है। वयस्क कमाने वालों को जो बहुत कम मजदूरी मिलती है उसी कारण वे अपने बालकों को काम पर भेजने के लिए विवश हो जाते हैं और कानून के उल्लंघन में मालिकों से मिल जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने बालकों तथा किशोरों की सुरक्षा पर अपनी रिपोर्ट में इस बात पर ठीक ही बल दिया है कि बाल श्रमिकों को कार्य में लगाना निषिद्ध कर देने की जो समस्या है वह आवश्यक रूप से इस समस्या से संबंधित है कि बालकों का निर्वाह किस प्रकार से हो और रोजगार पर लगे हुए सभी श्रमिकों को इतनी पर्याप्त मजदूरी मिले कि वे अपने परिवार का एक उचित स्तर पर निर्वाह कर सकें। औद्योगिक श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी तथा उचित मजदूरी का निर्धारण तथा उनके लिए सामाजिक बीमा की योजनाएँ ही बहुत सीमा तक इस समस्या का समाधान कर सकती हैं। समाज को इस बात का उत्तरदायित्व लेना चाहिए कि वह बालकों के निर्वाह और उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करे ताकि बालकों को इस बात का पूरा अवसर मिले कि उनकी मानसिक नैतिक और आध्यात्मिक

शक्तियों का विकास हो सके। इस प्रकार जब वे बड़े होंगे तो अपने और समाज के हित के लिए कार्यकुशल श्रमिक, बुद्धिमान नागरिक और ऐसे स्त्री और पुरुष बन सकेंगे, जो अपना उत्तरदायित्व समझते हों। भारत के संविधान में भी इस बात का उल्लेख है कि १४ वर्ष से कम आयु का कोई भी बालक किसी भी कारखाने, खान या अन्य किसी खतरे वाले कार्य में रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता और यह राज्य का कर्त्तव्य होगा कि वह यह देखे कि सुकुमार आयु के बालकों से अनुचित लाभ नहीं उठाया जाता तथा शैशवकाल व युवावस्था का शोषण नहीं होता है और उनको निर्धनता और नैतिक पतन के गर्त में नहीं गिरने दिया जाता है।

उद्योगों में स्त्री श्रमिक
(Woman Labour in Industries)

भारत के औद्योगिक व्यवसायों में स्त्री श्रमिकों की संख्या भी काफी अधिक है। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में जिन क्षेत्रों में स्त्री श्रमिकों को अधिक संख्या में कार्य पर लगाया जाता है वह निम्नलिखित हैं (१) कृषि (२) बागान (३) खानें (४) कारखाना उद्योग (५) लघु उद्योग धन्धे (६) समाज सेवा के कार्य (७) सफेद पोस नौकरियां (White-Collar Jobs)। अन्य संगठित उद्योगों की अपेक्षा बागान में स्त्रियों को रोजगार पर अधिक लगाया जाता है। सन् १९५७ में उनकी संख्या कुल श्रमिकों में से कारखानों में १० २ प्रतिशत थी जबकि यही संख्या खानों में १६ ३ प्रतिशत तथा बागान में ४७ ६ प्रतिशत थी। ऐसे कारखाना उद्योग जिनमें अधिकतर स्त्रियों को रोजगार पर लगाया जाता है, निम्नलिखित हैं: खाद्य कपास में से बिनौला निकालने तथा उसे दबाने की फैक्ट्रियां, चाय की फैक्ट्रियां, तम्बाकू अर्थात् सम्बन्धी खनिज उत्पादन, कागज और कागज से बनी हुई चीजें रसायन तथा रासायनिक पदार्थों का उत्पादन लकड़ी तथा डाट कपड़ा, पटसन रेशम ऊन कावल मिलें दाल मिलें खाद्य तेल काजू, कॉफी के कारखाने लाख और दियासलाई और कुछ अन्य असंगठित उद्योग जैसे बीड़ी बनाना आदि। सभी फैक्ट्रियों में रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की कुल संख्या में से लगभग आधी स्त्रियां तो केवल कपास तथा जूट के कारखानों में ही लगी हुई हैं। सन् १९५७ में विभिन्न राज्यों की फैक्ट्रियों में रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की कुल संख्या १०० १९२ थी। मद्रास में सबसे अधिक संख्या में स्त्रियां रोजगार पर लगाई जाती हैं। इसके बाद महाराष्ट्र आता है। जिन अन्य राज्यों में स्त्रियों का अधिक संख्या में रोजगार पर लगाया जाता है वे पश्चिमी बंगाल तथा मध्य प्रदेश हैं। सन् १९२९ में खानों के भीतर काम करने वाली स्त्रियों की संख्या २४०८९ थी। इसके पश्चात् खानों के भीतर काम करना उनके लिए निषिद्ध कर दिया गया। लेकिन युद्ध काल में यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया था और सन् १९४५ में खानों के भीतर कार्य करने वाली स्त्रियों की संख्या २२ २१७ तक पहुंच गई थी। सन् १९४६ में यह संख्या घटकर केवल १०,७८२ रह गई थी। उसी समय से खानों के भीतर स्त्रियों को कार्य में लगाना फिर से निषेध कर दिया गया है। सन् १९५८ में ७२,०४४

है। एक सुधार जिसको तत्काल किया जाना चाहिए, वह श्रम निरीक्षण को दृढ़ करने की व्यवस्था करना है ताकि कानून की धाराओं का उल्लंघन न किया जा सके। मालिक प्रायः यह तर्क देते हैं कि वे बालकों को रोजगार पर लगाकर श्रमिकों की पारिवारिक आय को जो बहुत कम है बढ़ाते हैं और इस प्रकार, जब शिक्षा सम्बन्धी सुविधाओं का अभाव है, बालकों को रोजगार देकर उनको बुरी आदतों और आलस्य में पड़ने से बचा लिया जाता है। परन्तु इस प्रकार के तर्कों में कोई विशेष बल नहीं है। कोई भी राष्ट्र अपने बालकों की उपेक्षा नहीं कर सकता क्योंकि यही बालक तो राष्ट्र के भावी श्रमिक और नागरिक बनते हैं। केवल बालकों को रोजगार देने पर निषेध लगाने से ही काम नहीं चलेगा अपितु आवश्यक यह है कि औद्योगिक रोजगारों से बाल श्रमिकों को हटाने के लिए ठोस कदम उठाए जाएँ। जैसा कि श्रम अनुसंधान समिति ने कहा था "श्रमिकों की भावी संतान की ओर ध्यान देना सरकार का कर्तव्य है और सरकार को इस ओर ध्यान देना चाहिए कि कहीं बालकों का बचपन स्कूलों में पढ़ने, शिशुगृहों में पालित-पोषित होने और खेलों के मैदान में खेलने के स्थान पर कार्य शालाओं और फैक्टरियों के लम्बे स्थानों में तो नष्ट नहीं हो रहा है।" इसमें सन्देह नहीं है कि सरकार इस ओर अब ध्यान दे रही है और बालकों के हित की नीति को अपना लिया गया है परन्तु इस नीति को पूर्णरूप से लागू करने की आवश्यकता है, यह तभी हो सकता है जब उचित प्रकार के निरीक्षण और श्रमिकों के बच्चों के लिए शिक्षा और अधिक सुविधाओं की व्यवस्था की जाए। इसके अतिरिक्त जैसा भी वी० वी० गिरि ने सुझाव दिया है, बालकों के रोजगार की आयु बढ़ाकर १६ वर्ष कर दी जानी चाहिए, तथा इस आयु तक बालकों को निःशुल्क तथा अनिवार्य रूप से शिक्षा मिलनी चाहिए।

यह बात विशेष ध्यान देने योग्य है कि बाल श्रमिकों की समस्या सभी वयस्क कमाने वालों के लिए पर्याप्त मजदूरी की समस्या से सम्बन्धित है। वयस्क कमाने वालों को जो बहुत कम मजदूरी मिलती है उसी कारण वे अपने बालकों को काम पर भेजने के लिए विवश हो जाते हैं और कानून के उल्लंघन में मालिकों से मिल जाते हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने बालकों तथा किशोरों की सुरक्षा पर अपनी रिपोर्ट में इस बात पर ठीक ही बल दिया है कि बाल श्रमिकों को कार्य में लगाना निषिद्ध कर देने की जो समस्या है वह आवश्यक रूप से इस समस्या से संबंधित है कि बालकों का निर्वाह किस प्रकार से हो और रोजगार पर लगे हुए सभी श्रमिकों को इतनी पर्याप्त मजदूरी मिले कि वे अपने परिवार का एक उचित स्तर पर निर्वाह कर सकें। औद्योगिक श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी तथा उचित मजदूरी का निर्धारण तथा उनके लिए सामाजिक बीमा की योजनाएँ ही बहुत सीमा तक इस समस्या का समाधान कर सकती हैं। समाज को इस बात का उत्तरदायित्व लेना चाहिए कि वह बालकों के निर्वाह और उनकी शिक्षा का प्रबन्ध करे ताकि बालकों को इस बात का पूरा अवसर मिले कि उनकी मानसिक नैतिक, और आध्यात्मिक

शक्तियों का विकास हो सके। इस प्रकार जब वे बड़े होंगे तो अपने और समाज के हित के लिए कार्यकुशल श्रमिक, बुद्धिमान नागरिक और ऐसे स्त्री और पुरुष बन सकेंगे, जो अपना उत्तरदायित्व समझते हों। भारत के संविधान में भी इस बात का उल्लेख है कि १४ वर्ष से कम आयु का कोई भी बालक किसी भी कारखाने, खान या अन्य किसी खतरे वाले कार्य में रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता और यह राज्य का कर्तव्य होगा कि वह यह देखे कि सुकुमार आयु के बालकों से अनुचित लाभ नहीं उठाया जाता तथा शैशवकाल व युवावस्था का शोषण नहीं होता है और उनको निर्धनता और नैतिक पतन के गर्त में नहीं गिरने दिया जाता है।

उद्योगों में स्त्री श्रमिक
(Woman Labour in Industries)

भारत के औद्योगिक व्यवसायों में स्त्री श्रमिकों की संख्या भी काफी अधिक है। राष्ट्रीय अर्थ-व्यवस्था में जिन क्षेत्रों में स्त्री श्रमिकों को अधिक संख्या में कार्य पर लगाया जाता है, वह निम्नलिखित हैं (१) कृषि, (२) बागान (३) खानें (४) कारखाना उद्योग; (५) लघु उद्योग धन्धे (६) समाज सेवा के कार्य (७) सफेद पोश नौकरियां (White-Collar Jobs)। अन्य संगठित उद्योगों की अपेक्षा बागान में स्त्रियों को रोजगार पर अधिक लगाया जाता है। सन् १९५७ में उनकी संख्या कुल श्रमिकों में से कारखानों में १०.२ प्रतिशत थी जबकि यही संख्या खानों में १६.३ प्रतिशत तथा बागान में ४७.६ प्रतिशत थी। ऐसे कारखाना उद्योग जिनमें अधिकतर स्त्रियों को रोजगार पर लगाया जाता है, निम्नलिखित हैं खाद्य कपास में से बिनौले निकालने तथा उसे दबाने की फैक्ट्रियां, चाय की फैक्ट्रियां, तम्बाकू अधातु सम्बन्धी खनिज उत्पादन, कागज और कागज से बनी हुई चीजें, रसायन तथा रासायनिक पदार्थों का उत्पादन लकड़ी तथा डाट, कपड़ा, पटसन रेशम, ऊन, चावल मिलें दाल मिलें खाद्य तैल काजू, कॉफी के कारखाने खाद्य, और दियासलाई और कुछ अन्य असंगठित उद्योग जैसे बीड़ी बनाना आदि। सभी फैक्ट्रियों में रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की कुल संख्या में से लगभग आधी स्त्रियां तो केवल कपास तथा जूट के कारखानों में ही लगी हुई हैं। सन् १९५७ में विभिन्न राज्यों की फैक्ट्रियों में रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की कुल संख्या १००.१५२ थी। मद्रास में सबसे अधिक संख्या में स्त्रियां रोजगार पर लगाई जाती हैं। इसके बाद महाराष्ट्र आता है। जिन अन्य राज्यों में स्त्रियों को अधिक संख्या में रोजगार पर लगाया जाता है, वे पश्चिमी बंगाल तथा मध्य प्रदेश हैं। सन् १९२६ में खानों के भीतर काम करने वाली स्त्रियों की संख्या २४०८६ थी। इसके पश्चात् खानों के भीतर काम करना उनके लिए निषिद्ध कर दिया गया। लेकिन युद्ध काल में यह प्रतिबन्ध हटा लिया गया था और सन् १९४५ में खानों के भीतर कार्य करने वाली स्त्रियों की संख्या २२,२१७ तक पहुंच गई थी। सन् १९४६ में यह संख्या घटकर केवल १०,७८२ रह गई थी। उसी समय से खानों के भीतर स्त्रियों को कार्य में लगाना फिर से निषेध कर दिया गया है। सन् १९५८ में ७२,०४४

स्त्री श्रमिक बागों के बाहर सुबे में कार्य करती थी। ४५,७६६ स्त्री श्रमिक बाग के अन्दर कार्य करती थीं। इस प्रकार स्त्री श्रमिकों की कुल संख्या ११७८४० थी। विभिन्न खानों में स्त्री श्रमिकों की कुल संख्या इस प्रकार थी। कोयला ४१,१६०, अभ्रक ९,७४२ मैंगनीज २४२८६ कच्चा लोहा ११२४२ सोना ७१२, चूना १२,३७२, अन्य १२६४६। सन् १९५०–५१ में असम के चाय बागान में प्रवासित स्त्री श्रमिकों की कुल संख्या रजिस्टरों के अनुसार २,०४४४१ थी तथा फालतू वर्ग की स्त्री श्रमिकों की संख्या ४१,११८ थी। सन् १९५६–५७ में चाय बागान में रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की संख्या लगभग १६६,२१२ थी अर्थात् औसतन दैनिक कार्य पर लगे हुए श्रमिकों में से ४७.१ प्रतिशत स्त्रियां थीं। असम के चाय बागान में यदि स्त्री और बाल श्रमिकों की संख्या को एक साथ जोड़ दिया जाय तो यह संख्या पुरुष श्रमिकों की संख्या से अधिक हो जाती है।

अभ्रक उद्योग में स्त्री श्रमिकों की संख्या १६०० अर्थात् कुल श्रमिकों का १७ प्रतिशत अनुमानित की गई है। कपड़ा तथा बीड़ी उद्योगों में भी अधिक संख्या में स्त्रियों को रोजगार पर लगाया जाता है। अन्य उद्योग जिसमें स्त्रियों को रोजगार पर अधिक लगाया जाता है, वह चावल की मिलें हैं। यह मिलें बंगाल बिहार तथा मद्रास में अधिक पाई जाती हैं। इन मिलों में स्त्रियों को चावल सुखाने फैलाने तथा उन्हें उलटने-पलटने के काम पर लगाया जाता है। यह स्त्रियां धान में से चावल निकालने तथा भूसी आदि के फटकने का भी काम करती हैं। इन स्त्रियों को अपने पैरों या फावड़े से चावल फैलाने तथा उन्हें उलट-पलट करने के लिए आंगन में घण्टों कड़ी धूप में इधर-उधर चलना पड़ता है। नगर-पालिकाओं तथा सार्वजनिक कार्यों में भी स्त्री श्रमिकों को रोजगार पर लगाया जाता है। सन् १९५७ में विभिन्न राज्यों की नगर-पालिकाओं में रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की कुल संख्या ११७७९ थी तथा सार्वजनिक कार्यों में सीधे रूप से भर्ती की हुई स्त्रियों की संख्या केन्द्र में ७७ थी तथा राज्यों में ६११७ थी। ठेकेदारों द्वारा लगाई हुई स्त्री श्रमिकों की संख्या केन्द्र में ४३१२ थी तथा राज्यों में २४७६७ थी। मार्च सन् १९६० में सरकारी रेलवे में १०४६० स्त्रियां रोजगार पर लगी हुई थीं तथा रेलवे बोर्ड और कार्यालयों में रोजगार पर लगी हुई स्त्रियों की संख्या ९६ थी। इन आंकड़ों से स्त्रियों का रोजगार पूर्णतया ज्ञात नहीं होता क्योंकि सूचना सीमित रूप से ही प्राप्त हो पाती है। कृषि में स्त्री श्रमिकों की संख्या कृषि-श्रम-जांच के अनुसार १९५०–५१ में एक करोड़ चालीस लाख थी तथा १९५६–५७ में एक करोड़ बीस लाख थी।

स्त्री श्रमिकों के रोजगार की समस्या हाल में हुए एक सर्वेक्षण के निष्कर्ष :—

सन् १९०१–५१ की ५० वर्ष की अवधि में कृषि-रोजगारों की अपेक्षा गैर कृषि रोजगारों में स्त्रियों के लिए कार्य करने के अवसरों में बहुत कमी आ गई थी। यह निष्कर्ष उस अध्ययन से ज्ञात होता है, जो भारतीय सरकार के श्रम ब्यूरो तथा

प्रायोजना भारत के श्रम तथा रोजगार विभाग ने मिलकर १९५८ में किया था और जिसका उद्देश्य यह था कि १९०१ से स्त्रियों के लिए जो रोजगार में कमी या अधिकता आ गई थी उसका अध्ययन किया जाए। इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि स्त्री श्रमिकों की संख्या १९११ में ४३०.०० लाख से १९५१ में घटकर ४००.७० लाख रह गई थी, जबकि उसी अवधि में स्त्रियों की जनसंख्या १४६०.६० लाख से बढ़कर १७१०.४० लाख हो गई थी। दूसरे शब्दों में स्त्री श्रमिकों की संख्या २०.३० लाख के लगभग घट गई थी जबकि स्त्रियों की जनसंख्या २१०.५० लाख बढ़ गई थी।

सन् १९०१–५१ की अवधि में, सन् १९३१ के वर्ष को छोड़कर, स्त्रियों का अपने तथा दूसरे के खेतों में कृषि कार्यों में भाग लेना निर्पेक्ष दृष्टि से पर्याप्त मात्रा में बढ़ गया था। सन् १९३१ में जो आँकड़े एकत्रित किए गए थे, वे ठीक नहीं थे क्योंकि जन-गणना के आँकड़ों के अन्तर्गत घरेलू महिलाओं को घरेलू नौकरों की तरह मान लिया गया था। यदि स्त्रियों का रोजगार स्त्री और पुरुष दोनों की कुल जनसंख्या को मिलाकर १०,००० में से सापेक्ष दृष्टिकोण लिया जाए तो इस अध्ययन से यह ज्ञात होता है कि कृषि कार्यों में स्त्रियों के भाग लेने में तथा कृषि श्रमिकों के रूप में उनके रोजगार में अधिक परिवर्तन नहीं हुआ था यद्यपि एक दशी (Decade) से दूसरे दशी में कुछ भिन्नता अवश्य आ गई थी। परन्तु इस अवधि में ऐसी स्त्रियों को जो लगान प्राप्त करने वाले वर्ग के अन्तर्गत आती हैं काफी क्षति पहुँची। इस अध्ययन से यह भी ज्ञात हुआ है कि कृषि, वाणिज्य तथा अन्य सेवाओं और विविध कार्यों पर लगी हुई स्त्रियों की संख्या में निर्पेक्ष तथा सापेक्ष दोनों दृष्टिकोणों से कमी आ गई थी। परन्तु परिवहन के कार्यों में स्त्रियों के रोजगार में वृद्धि हुई थी।

इस पचास वर्ष की अवधि में स्त्रियों के रोजगार में निम्नलिखित उद्योगों में वृद्धि हुई थी कोयले की खानें तम्बाकू लोहा तथा इस्पात तथा लोहा-विमान सम्बन्धी धातु उद्योग परिवहन सामग्री, ईंट खपरैल तथा मिट्टी के अन्य रचनात्मक उत्पादन, फर्नीचर तथा उसके लगाने का सामान कागज तथा कागज के उत्पादन छपाई तथा उसके साथ के अन्य उद्योग शिक्षात्मक सेवायें तथा अन्वेषण नगर पालिकायें तथा स्थानीय बोर्ड होटल भोजनालय तथा चाय-गृहों और अन्य कानून सम्बन्धी सेवायें आदि। लेकिन विविध खाद्य उद्योगों अनाजों तथा दालों तम्बाकू सम्बन्धी खनिज उत्पादनों ईंधन के फुटकर व्यापारी सफाई के कार्यों तथा अन्य सेवाओं और कपड़ा बोने तथा कपड़ा धोने की सेवाओं के कार्यों में इन स्त्रियों के रोजगार में कमी हो गई थी।

संगठित रोजगारों से सम्बद्ध अन्तिम सूचनाएं सन् १९५६ तक की थी और इनको भी इस अध्ययन में सम्मिलित कर लिया गया है। सन् १९५०–५६ की ६ वर्षों की अवधि में विभिन्न औद्योगिक समूहों में स्त्रियों के रोजगार की अवस्था एक

समान नहीं थी। तम्बाकू उद्योगों तथा रसायन पदार्थों तथा रासायनिक उत्पादनों में तो स्त्रियों के रोजगार में वृद्धि हुई थी परन्तु लकड़ी तथा फर्नीचर उद्योगों, कागज तथा कागज के उत्पादनों कपड़ा मिलों तथा अन्य मूलभूत धातु उद्योगों में स्त्रियों के रोजगारों में कमी हो गई थी। अन्य औद्योगिक समूहों जैसे कृषि सम्बन्धी प्रक्रियाओं, मादक पेयों के अतिरिक्त खाद्य तथा तम्बाकू सम्बन्धी खनिज उत्पादनों में स्त्रियों का रोजगार कुछ अधिक स्थिर था। कपड़ा मिलों तथा जूट उद्योगों में जहाँ तक स्त्रियों के रोजगार का प्रश्न था सन् १९५० में स्त्रियों की संख्या १७००० से घटकर सन् १९५६ में २१००० रह गयी थी। बीड़ी तथा दियासलाई उद्योगों में रोजगार की स्थिति अच्छी थी। काजू के उद्योग तथा चाय की फैक्ट्रियों में स्त्रियों के रोजगार में अत्यन्त महत्वपूर्ण कमी आ गई थी। जहाँ तक खानों का सम्बन्ध है मैंगनीज तथा कच्चे लोहे की खानों में स्त्रियों के रोजगार में अधिक वृद्धि हुई थी। लेकिन इसके साथ ही कोयला तथा अभ्रक की खानों में उनका रोजगार अधिकतया कम हो गया था। चाय बागान में स्त्रियों का रोजगार सन् १९५०-५१ में २.४८ लाख से घटकर सन् १९५६-५७ में १.९९ लाख रह गया था लेकिन स्त्री तथा पुरुष दोनों प्रकार के वयस्क श्रमिकों की कुल संख्या में जो कमी हुई थी, स्त्रियों के रोजगार में वह कमी उसी अनुपात से हुई थी। जहाँ तक कारखाना उद्योगों का प्रश्न है उनमें स्त्रियों का कुल रोजगार १९५१ में २१.१ लाख से बढ़कर १९५७ में २२.९ लाख हो गया था। परन्तु स्त्री श्रमिकों की संख्या इस अवधि में ५.१ लाख से घट कर ४.६६ लाख रह गई थी।

इस अध्ययन के अनुसार देश में जैसे-जैसे औद्योगीकरण में वृद्धि होती जायेगी वैसे-वैसे स्त्री श्रमिकों की संख्या में भी वृद्धि होती जायेगी और इस संख्या में तृतीय वर्ग की अर्थ-व्यवस्था के अन्तर्गत विशेष रूप से वृद्धि होगी।

ऐसी अनेक महत्वपूर्ण बातें हैं, जो स्त्री श्रमिकों के रोजगार की कमी के लिए उत्तरदायी हैं। यह बातें तकनीकी वैधानिक तथा आर्थिक हैं। एक महत्वपूर्ण कारण तो यह है कि प्राचीन काल में जो कार्य स्त्रियाँ अपने हाथों से किया करती थीं उनके स्थान पर अब नई मशीनों का प्रचलन हो गया है। कारण यह भी है कि स्त्रियों के लिये खानों के भीतर कार्य करना तथा सब उद्योगों में रात्रि में कार्य करना वैधानिक रूप से निषेध कर दिया गया है। इसके अतिरिक्त स्त्रियों से सम्बन्ध विविध श्रम कानूनों के अन्तर्गत मालिकों पर जो अधिक वित्तीय भार पड़ता है उनके कारण भी स्त्री श्रमिकों को रोजगार देने में कमी हो गई है। ऐसे वैधानिक विषय निम्नलिखित हैं—मातृत्व-हित-लाभ की अदायगी, शिशु-गृहों की व्यवस्था समान कार्य के लिये समान वेतन का सिद्धान्त तथा मजदूरी समानीकरण प्रणाली का लागू करना आदि।

१९५८ में पश्चिमी बंगाल में स्त्रियों की बेरोजगारी की समस्या पर एक

अध्ययन से भी यह ज्ञात होता है कि स्त्रियों के रोजगार में पिछली कई दशियों (Decades) से कमी होती जा रही है।

स्त्री श्रमिकों के कार्य की प्रकृति—

इन आंकड़ों से यह स्पष्ट हो जाता है कि देश में बाल श्रमिकों को रोजगार पर लगाने के समान ही स्त्रियों को रोजगार पर लगाना एक आम बात है। वास्तविकता भी यह है कि यदि स्त्रियों के कार्य करने की दशाओं को उचित रूप से विनियमित कर दिया जाए तो वे भी उत्पादन के क्षेत्र में अत्यन्त महत्वपूर्ण योग दे सकती हैं। कुटीर उद्योगों में पारिवारिक कर्तव्यों की पूर्ति के साथ-साथ स्त्रियां कातने और बुनने जैसे व्यवसायों में भी पुरुषों की सहायता करती हैं। कृषि में भी स्त्रियां खेतों में पुरुषों की बड़ी सहायता करती हैं। परन्तु बड़े पैमाने के उद्योगों में स्त्रियों को रोजगार देना कुछ वर्षों से ही आरम्भ हुआ है। अधिकांश स्त्री श्रमिक पुरुष श्रमिकों के परिवारों से ही सम्बद्ध होती हैं और वे प्रायः अपने परिवारों की आय के अनुपूरण के हेतु ही कार्य करती हैं। कारखानों में रोजगार पर लगी हुई ऐसी बहुत कम स्त्रियां हैं, जो किसी पुरुष पर आश्रित नहीं हैं। विभिन्न उद्योगों में उनके कार्यों की प्रकृति भी भिन्न भिन्न होती है। संगठित तथा निरन्तर चालू कपास और जूट आदि जैसे कारखानों में स्त्रियां सामान्यतया कुलियों के रूप में चर्खी लपेटने तथा वेष्ठन करने के विभागों में अधिक संख्या में रोजगार पर लगाई जाती हैं। मौसमी कारखानों में विशेषतया कपास में से बिनौले निकालने और उसे दबाने तथा चावल के कारखानों में स्त्रियों को साधारण कुलियों के रूप में रोजगार पर लगाया जाता है। बागान में भी अधिक संख्या में स्त्री श्रमिक पाई जाती हैं, क्योंकि बागान में कार्य करने की पद्धति पारिवारिक आधार पर है और वहां केवल छोटे-छोटे बच्चों और अशक्त प्राणियों को छोड़कर परिवार के शेष सभी सदस्य कार्य करते हैं। प्रायः यह देखा गया है कि असम में बागान श्रमिकों के परिवार में औसतन लगभग ४·१२ व्यक्ति होते हैं जिनमें से कम से कम २·५८ व्यक्ति कमाने वाले होते हैं। इनमें १·१७ पुरुष ०·६६ स्त्रियां तथा ०·११ बालक होते हैं। खानों में विशेषतया कोयले की खानों में स्त्रियों को सामान्यतया बोझा ढोने या ठेला लादने के कार्य पर नियुक्त किया जाता है यद्यपि कुछ विशेष परिस्थितियों में उन्हें ट्रामें चलाते हुये भी देखा जाता है।

स्त्री श्रमिकों की मजदूरी तथा उनकी आय—

स्त्रियों की मजदूरी तथा उनकी आय के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि जब स्त्रियों को उसी या उसी प्रकार के व्यवसायों पर भी नियुक्त किया जाता है जिनमें पुरुष कार्य करते हैं, तो भी उनकी मजदूरी अपेक्षाकृत पुरुषों से कुछ कम ही होती है। पृथक भिन्न उद्योगों के अनेक क्षेत्रों में स्त्रियों की आय दो बातों पर निर्भर करती है (क) कार्य की उपलब्धता तथा (ख) उनको कितने घण्टों के लिये काम पर लगाया जाता है क्योंकि स्त्रियों के लिए नियमानुसार कार्य के घण्टे कई बार लागू नहीं किये जाते जिसका कारण यह है कि उन्हें घरेलू कर्तव्यों का भी पालन

करना पड़ता है। कुछ रिपोर्टों से यह भी ज्ञात हुआ है कि कोयले की खानों तथा बागान में कुछ कार्यों में स्त्रियां उतनी ही कार्यकुशल पाई गई हैं जितने कि पुरुष यद्यपि उनकी मजदूरी में थोड़ा अन्तर है। जहां तक भारतीय संगठित उद्योगों में स्त्री श्रमिकों का सम्बन्ध है सन् १९४८ के न्यूनतम मजदूरी अधिनियम में समान कार्य के लिये समान वेतन का सिद्धान्त स्वीकार कर लिया गया है। परन्तु इस सिद्धान्त के अपनाये जाने के कारण अनेक स्थानों पर स्त्री श्रमिकों को रोजगार पर लगाना कम कर दिया गया है क्योंकि जैसा कि मजदूरी के अध्याय में उल्लेख किया गया है। मालिकों को स्त्रियों को नौकरी देने में हानि उठानी पड़ती है। इसका कारण यह है कि इन स्त्रियों को उन्हें बहुत से लाभ देने पड़ते हैं और स्त्रियां बहुत समय तक नौकरी पर टिकती भी नहीं हैं। इसलिए मालिक उन्हें केवल कम मजदूरी पर ही नौकरी देते हैं (देखिये पृष्ठ ५२९–३०)।

स्त्री श्रमिकों के लिये लाभ —

स्त्री श्रमिक के लिये मातृत्व हित-लाभ अधिनियम अब अधिकांश राज्यों में प्रचलित हैं इनका उल्लेख सामाजिक सुरक्षा के अध्याय में विस्तृत रूप से किया जा चुका है। सन् १९४८ के कारखाना अधिनियम और १९५२ के खान अधिनियम के अनुसार जहां भी ५० स्त्री श्रमिकों से अधिक स्त्रियां कार्य करती हैं, वहां शिशुगृहों की व्यवस्था कर दी गई है। सन् १९४७ के अधिनियम के अन्तर्गत स्थापित कोयला खान श्रम कल्याण निधि की एक विशेष शाखा भी स्त्रियों तथा बालकों के हितों की देखभाल करने के लिये खानों में प्रारम्भ कर दी गई है। सभी उद्योगों में स्त्रियों के लिये रात्रि में काम करना निषिद्ध कर दिया गया है। मातृत्व-हित लाभ तथा रात्रि में काम करने पर निषेध के अतिरिक्त अन्तिम कारखाना अधिनियम में कार्य करने के घन्टों मध्यान्तरों तथा छुट्टियों आदि के सम्बन्ध में स्त्री श्रमिकों को कोई अन्य विशेष अधिकार नहीं दिए गए हैं, यद्यपि अब कारखाना विधान बने थे तो प्रारम्भ में स्त्रियों तथा बालकों के ही कार्य करने के घण्टे विनियमित किए गए थे।

स्त्रियों के लिये खानों के भीतर कार्य करने की समस्या —

स्त्रियों के खानों के भीतर कार्य करने पर रोक लगाने से भी कई विशेष प्रकार की समस्यायें उत्पन्न हो गई हैं। इस प्रकार के कार्यों को निषिद्ध करने की सदा से बहुत आवश्यकता रही है और कोई भी सभ्य देश इस बात को सहन नहीं कर सकता कि उनके देश में महिलाओं को जो साधारणतया शरीर से अत्यन्त कोमल होती हैं ऐसे अस्वास्थ्यकर वातावरण में खानों के भीतर कार्य करने की अनुमति दी जाए। इसके अतिरिक्त यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि यदि स्त्रियां खानों के भीतर जाकर पुरुषों के साथ कार्य करें तो इससे कई सामाजिक और नैतिक दोष पैदा हो सकते हैं। जैसा कि श्रम विधान के अन्तर्गत उल्लेख किया है सन् १९२९ में इस बात के लिये विनियम बनाए गए थे कि १० वर्ष की अवधि के भीतर, अर्थात् १९३९ तक स्त्रियों का खान के भीतर कार्य करना धीरे-धीरे बिल्कुल समाप्त

कर दिया जाए। लेकिन सन् १९३७ में एक अभिसूचना के द्वारा स्त्रियों के लिए खानों के भीतर कार्य करना निषिद्ध कर दिया गया। परन्तु युद्ध की आवश्यकताओं के कारण सन् १९४३ में यह प्रतिबन्ध उठा लिया गया था। लेकिन सन् १९४६ में इसे पुनः लागू कर दिया गया और तब से आज तक यह प्रतिबन्ध लागू है। इस प्रकार वर्तमान समय में स्थिति यह है कि स्त्रियों को खानों के भीतर रोजगार पर नहीं लगाया जाता।

डा० आर० के० मुकर्जी ने कुछ ऐसी बुराइयों का उल्लेख किया है, जो स्त्रियों को खानों के भीतर कार्य करने पर प्रतिबन्ध लगाने से आ गई हैं। यह प्रतिबन्ध लगाने के बाद कोयले की खानों से अधिकांश स्त्रियां गांव वापिस चली गई और उसके बाद उनका गांवों से आना भी बन्द हो गया। केवल बड़ी-बड़ी खानों में ही स्त्री श्रमिकों को खानों के ऊपर कुछ कार्य देना सम्भव हो सका और उनमें से बहुत सी स्त्रियों को ढेला लादने सड़कें तथा नालियां बनाने और उनकी मरम्मत करने बस्तियों को साफ करने राजगीरों के साथ कार्य करने तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी सामान्य दशाओं में सुधार करने के कार्यों पर रोजगार मिल गया। परन्तु इन सब बातों के देखते हुए ऐसी स्त्रियों की, जो खानों के भीतर कार्य करती थीं एक बहुत थोड़ी प्रतिशत अर्थात् कठिनाई से १० प्रतिशत ही खान के ऊपर विभिन्न प्रकार के कार्यों में रोजगार पा सकीं। इसके पूर्व जब खानों के भीतर पति-पत्नि दोनों मिलकर कार्य करते थे, तो कोयला काटने तथा कोयला लादने में यह दम्पति बड़ी सुगमता से कोयले की कम से कम तीन गाड़ें भर लिया करते थे अर्थात् उनकी कुल आय १५ आना प्रतिदिन थी। परन्तु स्त्री श्रमिकों को रोजगार पर न लगाए जाने के बाद से पुरुष श्रमिक अकेले प्रतिदिन कोयला काटकर एक गाड़ से अधिक नहीं भर सकता अर्थात् उसकी आय घटकर ५ आना प्रतिदिन रह गई है। यदि कोई कम्पनी उसकी पत्नी को खान के ऊपर रोजगार पर लगा भी लेती है तो भी उसे ४ आना या ५ आना प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती है और यदि वह ठेकेदारों के लिए आकस्मिक रूप से कार्य करती है तो भी उसे दो आने से ५ आने प्रतिदिन तक ही मजदूरी मिल पाती है। इस प्रकार पति और पत्नी दोनों की कुल आय कम हो गई है और उनका जीवन-स्तर गिर गया है। अविवाहित स्त्रियों तथा विधवाओं की स्थिति तो और भी शोचनीय हो गई है क्योंकि स्त्रियों के लिये खानों के ऊपर बहुत ही कम नौकरियां उपलब्ध होती हैं। प्रबन्धकर्ता खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों की पत्नियों को ही रोजगार पर लगाने में प्राथमिकता देते हैं और असम्बद्ध (Unattached) स्त्रियों को ठेकेदारों द्वारा संयोग से कोई कार्य मिल जाय इस बात पर निर्भर रहना पड़ता है।

रॉयल श्रम आयोग ने यह आशा व्यक्त की थी कि यदि स्त्रियों को खानों के भीतर काम करने से मना कर दिया जाय तो इससे कोयले की खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के जीवन की दशाओं में सुधार हो जायगा तथा उनकी कार्य-कुशलता

में भी वृद्धि होगी। इस कारण यदि पारिवारिक आय में कुछ कमी भी हो तो उसकी क्षतिपूर्ति इस सुधार द्वारा हो जायगी। परन्तु प्रतिबन्ध लगाने के पश्चात् से खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों के जीवन की दशाओं में कुछ अधिक सुधार नहीं हुआ है। इसलिए जब स्त्रियाँ काम अर्जन के योग्य नहीं रही हैं तो खान श्रमिक अपनी स्त्रियों को खानों के क्षेत्र में लाते ही नहीं हैं। इस प्रकार स्त्रियों की संख्या पुरुषों के अनुपात में बहुत कम हो गई है और इस कारण पुरुषों में अनुपस्थिति अधिक बढ़ गई है। स्थानीय खान श्रमिक अपने परिवारों को देखने के लिए प्राय: नित्य ही अपने घर जाया करते हैं। इसी कारण बिलासपुरी तथा संथाल के श्रमिकों की संख्या खानों में कम हो गई है, क्योंकि यह लोग अपनी स्त्रियों को गाँवों में छोड़ना पसन्द नहीं करते। स्त्री पुरुषों की संख्या में समान अनुपात न रहने के कारण कोयला खान क्षेत्रों में नैतिक पतन बहुत हो गया है। पहले पति और पत्नी दोनों ही खानों के भीतर साथ-साथ जा सकते थे और हर समय पत्नी को अपने पति का संरक्षण मिलता रहता था। लेकिन अब जब श्रमिक खानों के भीतर कार्य करने जाते हैं तो वे अपनी युवा पत्नियों या युवा पुत्रियों को पीछे छोड़ने में संकट अनुभव करते हैं।

परन्तु इस समस्या का समाधान यह नहीं है कि स्त्रियों को पुनः खानों के भीतर कार्य करने की अनुमति दे दी जाय। डा० मुकर्जी ने यह सुझाव दिया है कि श्रमिकों को अपने परिवारों को साथ लाने के लिए कुछ सुविधाएं तथा आकर्षण देने चाहिए ताकि वर्तमान बुराइयों को दूर किया जा सके। खान के ऊपर यदि कोई नौकरी खाली होती है तो जहां तक सम्भव हो उसे स्त्री श्रमिक को देना चाहिए, तथा उनके लिए सहायक उद्योगों की स्थापना की सम्भावना पर भी ध्यान देना चाहिए। इन सहायक उद्योगों में कोलतार तथा कोयले के अन्य गौण उत्पादनों का उपयोग हो सकता है। इसके अतिरिक्त मकानों तथा जल-मल निकास व्यवस्था में सुधार करने के लिए नियमित रूप से प्रबन्धकों द्वारा प्रयत्न किए जाने चाहिएं, ताकि खान श्रमिकों को अपनी स्त्रियों को खान क्षेत्रों में लाने के लिए प्रेरित किया जा सके। अन्त में यह कहा जा सकता है कि खान श्रमिकों की औसत आय तथा कार्य कुशलता में वृद्धि किए बिना उनकी पारिवारिक आय में जो वर्तमान हानि हुई है, उसका न तो किसी प्रकार प्रतिकार ही किया जा सकता है और न ही उनके जीवन-स्तर को ऊंचा उठाया जा सकता है। गतवर्षों में कोयला खान श्रम कल्याण निधि तथा अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि की स्थापना से और न्यूनतम मजदूरी के निर्धारण से खानों में कार्य करने वाले श्रमिकों की स्थिति में सुधार हुआ है और स्त्रियों का खानों के भीतर कार्य करना निषिद्ध करने से जो आय की हानि हुई है वह इन श्रमिकों को स्वास्थ्यकर तथा मधुर पारिवारिक जीवन व्यतीत करने की सुविधाएं देकर तथा स्त्री श्रमिकों के स्वास्थ्य तथा उनकी कार्यकुशलता में सुधार करके पूर्ती की जा सकती है।

स्त्री श्रमिक तथा सामाजिक वातावरण —

स्त्रियों के रोजगार से सम्बन्धित एक अन्य समस्या जिसकी ओर ध्यान आकर्षित करना आवश्यक है, वह स्त्रियों को रोजगार पर लगाने से जो सामाजिक वातावरण पैदा हो जाता है और रोजगार पर लगी स्त्रियों को जो सामाजिक स्तर दिया जाता है, उस विषय की समस्या है। यह तो एक साधारण ज्ञान की बात है कि *हमारे देश में स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा हीन समझा जाता रहा है* और यह पुरानी रूढ़िग्रस्त विचारधारा अब भी प्रचलित है। इसका परिणाम यह हुआ है कि आत्म सम्मान, प्रतिष्ठा तथा आत्म-विश्वास की जो भावना हमें पश्चिमी देशों की स्त्रियों में मिलती है वह हमारे देश की स्त्रियों में अब तक विकसित नहीं हो सकी है। मजदूर वर्ग की स्त्रियों को उन गांवों के बड़े सामाजिक वायरों में भी सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता जहां से वे कार्य करने आती हैं। यह भी सभी जानते हैं कि हमारे औद्योगिक क्षेत्र में अधिकांश स्त्री श्रमिकों को ऐसे मध्यस्थों तथा अन्य दुराचारी व्यक्तियों द्वारा अनैतिक जीवन व्यतीत करने के लिए विवश कर दिया जाता है जो औद्योगिक क्षेत्रों में अधिकतर पाए जाते हैं। कभी-कभी तो मालिक भी औद्योगिक क्षेत्रों में इन स्त्रियों के पतन के लिए उत्तरदायी होते हैं। गांवों में जो नैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक प्रतिबन्ध होते हैं वे नगरों में नहीं पाए जाते। श्रम आयोग और बंगाल में डा० कर्वे द्वारा [illegible] ऐसे उदाहरण इकट्ठे किए गए थे जिनसे यह ज्ञात होता है कि कुछ संख्या ऐसी विधवाओं और परित्यक्ता स्त्रियों की पाई जाती है, जो दिन में कारखानों से होने वाली आय के अतिरिक्त रात्रि में कुछ पुरुषों से अस्थायी सम्बन्ध बनाए रखकर या वेश्यावृत्ति का धंधा अपनाकर अपनी आय में वृद्धि करती हैं। ऐसी स्त्रियों के बच्चे भी होते हैं, जिनका पालन-पोषण करना पड़ता है।

यह सामाजिक तथा आर्थिक समस्या दिन पर दिन प्रबल होती जा रही है। फिर भी, जैसा कि श्री वनावटीकर ने उल्लेख किया है आज तक इस समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया गया है। श्रम आयोग ने भी इस समस्या पर अपने विचार प्रकट नहीं किए; यहां तक कि श्रम अनुसंधान समिति ने भी इस समस्या की ओर ध्यान नहीं दिया। इसलिए इस बात की बहुत आवश्यकता है कि इस समस्या की उचित प्रकार से जांच की जाए तथा इन स्त्रियों का उत्थान करने तथा इनकी सहायता करने के लिए अच्छे से अच्छे प्रकार के साधन अपनाए जाएं। औद्योगिक क्षेत्रों में सम्पूर्ण वातावरण कुछ इस प्रकार का है कि जिन स्त्रियों में कुछ सम्मान तथा प्रतिष्ठा की भावना होती है, वे कार्य करना ही पसन्द नहीं करतीं और जिन स्त्रियों को विवश होकर नौकरी करनी पड़ती है वे नगरों में प्रचलित इन बुराइयों की बड़ी सुगमता से शिकार हो जाती हैं। हम सभी लोग यह बात जानते हैं इसका अनुभव भी करते हैं फिर भी सरकार ने इस सामाजिक समस्या की ओर अभी तक ध्यान नहीं दिया है।

स्त्री श्रमिक तथा संघ :—

जहां तक श्रमिक संघों तथा स्त्री श्रमिकों की समस्या का सम्बन्ध है, देश में स्त्रियों के किसी पृथक् श्रमिक संघ का विकास नहीं हुआ है। स्त्री श्रमिकों को अपने कुछ पारिवारिक कर्तव्यों का भी पालन करना पड़ता है और इस प्रकार अपने संगठन में सक्रिय रूप से रुचि लेने के लिए उनके पास कोई समय नहीं बच पाता। वे स्थायी रूप से कोई नौकरी भी नहीं कर पातीं और न ही उनमें उत्साह तथा संगठन बनाने की क्षमता होती है। देश में कुछ ऐसी परम्पराएं पड़ गई हैं, जिन्होंने स्त्रियों को सदा पुरुषों के ऊपर आश्रित रखा है और अनपढ़ स्त्री श्रमिक तो कोई पृथक् संगठन बनाने की कल्पना भी नहीं कर सकतीं। वास्तविकता तो यह है कि जब पुरुषों के ही श्रमिक संघ दृढ़ और शक्तिशाली नहीं हैं, तो यदि स्त्री श्रमिकों ने अपने संगठनों के प्रति अधिक ध्यान नहीं दिया है, तो उन्हें इस सम्बन्ध में अधिक दोषी नहीं ठहराया जा सकता। लेकिन इसका अभिप्राय यह नहीं है कि स्त्रियों ने देश के श्रम आन्दोलन में कोई रुचि नहीं ली है। इस बात का प्रमाण मिलता है कि सन् १८९० में श्री लोखण्डे द्वारा आयोजित की गई सभा में दो स्त्री श्रमिकों ने भाषण दिया था। (देखिए पृष्ठ ८१)। श्रमिक संघों में स्त्रियों की सदस्यता में भी वृद्धि हुई है और सन् १९२९ में स्त्री श्रमिकों की सदस्यता ३,८४२ से बढ़कर सन् १९४६–४७ में ६४,७९८ हो गई थी और सन् १९५८–५९ में यही सदस्यता १,९२,१२४ हो गई थी जो कुल सदस्यता का १०.८ प्रतिशत थी। (देखिए पृष्ठ ९१)। कारखानों, खानों तथा बागान में कुल स्त्री श्रमिकों की लगभग १० प्रतिशत स्त्रियां पंजीकृत श्रमिक संघों की सदस्य हैं। इस बात से यह विदित होता है कि स्त्री श्रमिकों की श्रमिक संघों में रुचि रही है, यद्यपि श्रमिक संघों में स्त्री श्रमिक अभी और अधिक कार्य कर सकती हैं। कपड़ा मिल उद्योगों में स्त्री श्रमिकों के श्रमिक संघों की सबसे अधिक प्रगति हुई है। बम्बई और मद्रास का इस सम्बन्ध में विशेष रूप से उल्लेख किया जा सकता है।

उपसंहार :—

इस प्रकार हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि भारत के उद्योगों में स्त्रियां अब स्थिर रूप से रोजगार पाने लगी हैं। उद्योगों में स्त्रियों द्वारा काम पाने के सम्बन्ध में जो परम्परागत विचार थे वह समस्त संसार में और भारत में भी समाप्त होते जा रहे हैं। भारत के संविधान में भी इस बात का उल्लेख किया गया है कि "राज्य अपनी नीति द्वारा इस ओर ध्यान देगा कि प्रत्येक नागरिक को, चाहे वह पुरुष हो या स्त्री इस बात का समान अधिकार हो कि वह अपनी पर्याप्त रूप से जीविका अर्जित कर सके और स्त्री तथा पुरुष दोनों को समान कार्य के लिए समान वेतन मिले तथा स्त्री व पुरुष श्रमिकों की शक्ति और स्वास्थ्य का और बालकों की कोमल आयु का अनुचित लाभ न उठाया जाय और नागरिकों को आर्थिक आवश्यकताओं के कारण ऐसा रोजगार अपनाने के लिए विवश न होना पड़े जो

उनकी आयु और शक्ति के अनुसार अनुपयुक्त हो।" परन्तु सभी देशों में इस बात को स्वीकार किया गया है कि स्त्रियों के साथ विशेष प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने भी स्त्री श्रमिकों की समस्याओं पर एक पृथक २७ सदस्यों की परामर्श देने वालों की नामिका (Panel) बनाई है। भारत में भी हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि स्त्रियों में कोमलता और भावुकता होती है और परिवार पर तथा देश की भावी सन्तति के पालन में उनका बहुत प्रभाव होता है। हमें यह भी विस्मरण नहीं करना चाहिए कि "जो हाथ पालना झुलाते हैं वही संसार पर शासन करते हैं।" अतः स्त्रियों को एक विशेष प्रकार की सुरक्षा की आवश्यकता है। भारत में स्त्री श्रमिकों की शिक्षा, स्वास्थ्य तथा कल्याण के लिए विशेष पग उठाए जाने चाहियें। इनके सामाजिक स्तर को भी ऊंचा उठाने का प्रयत्न करना चाहिए, ताकि वे पुरुषों के साथ बराबर के साथी बनकर कार्य कर सकें।

भारतीय कृषि श्रमिक

(Agricultural Labour in India)

कृषि श्रमिकों की संख्या :—

भारत सर्वदा से एक कृषि प्रधान देश रहा है। सन् १९५१ की जनगणना के अनुसार कृषि २४९,१२२ ४४१ व्यक्तियों की जीविका का मुख्य साधन है, अर्थात् लगभग ६९.८ प्रतिशत जनसंख्या कृषि पर ही निर्भर है। इस कृषि जनसंख्या को निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया जाता है :—

	पुरुष	स्त्रियाँ	योग
(क) कृषक जिनकी अपनी भूमि थी है	८५,११५,४४१	८२,२३१ ०६१	१६७ ३४६ ५०२
(ख) कृषक जिनकी अपनी भूमि नहीं है	१६,२५६,१६५	१५,१८१ ५२४	३१ ६३६,७११
(ग) खेतिहर श्रमिक	२२,११६,८९२	२२,४१६,०७१	४४ ८११,९९८
(घ) अखेतिहर भू-स्वामी	२,७१८ ११०	२,८८६,१११	५,३२४ २०१
योग	१२६,२०५,६८६	१२२,९१६,७६१	२४९,१२२,४४

यहां इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि सन् १९२१ में कृषि श्रमिकों की संख्या २ करोड़ १५ लाख तथा सन् १९३१ में ३ करोड़ ३० लाख अनुमानित की गयी थी। प्रथम तथा द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार १९५०–५१ में देश में लगभग ३½ करोड़ कृषि श्रमिक थे जिनमें से १ करोड़ ९० लाख पुरुष १ करोड़ ४० लाख स्त्रियां तथा २० लाख बालक थे। १९५६–५७ में कृषि श्रमिकों की अनुमानित संख्या ३ करोड़ ३० लाख थी जिनमें से १ करोड़ ८० लाख पुरुष १ करोड़ २० लाख स्त्रियां तथा ३० लाख बालक थे। १९५६–५७ में कृषि श्रमिक परिवारों की अनुमानित संख्या १ करोड़ ६३ लाख थी और १९५०–५१ में यह संख्या १ करोड़ ७९ लाख थी। ५७% १९५६–५७ में तथा ५०% १९५०–५ में भूमि-हीन श्रमिक थे। सन् १९६१ की जनगणना के अनुसार खेतिहर श्रमिकों की संख्या लगभग ४ करोड़ ४ लाख है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेखनीय है कि स १८८२ में कृषि श्रमिकों की कुल संख्या केवल ७५ लाख थी। इस प्रकार अब १

गत ७० वर्षों में उनकी संख्या में बड़ा तीव्र गति से वृद्धि हुई है। इसका कारण भी स्पष्ट है। डा० राधाकमल मुकुर्जी के शब्दों में "ऐसी प्रत्येक परिस्थिति ने जिसने छोटे-छोटे काश्तकारों की आर्थिक दशा को गिराया है कृषि श्रमिकों के सम्भरण (Supply) में वृद्धि की है। उदाहरणार्थ ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में सामान्य अधिकारों का नष्ट हो जाना जोतों का उपविभाजन सामूहिक उद्यम (Collective Enterprise) का प्रचलित न रहना, लगान प्राप्त-कर्ताओं की संख्या में बढ़ोतरी बिना किसी रोक के भूमि का हस्तान्तरण तथा बन्धक रखना और कुटीर उद्योगों का पतन।" इसके अतिरिक्त जनसंख्या में निर्पेक्ष वृद्धि जमींदारी और जागीरदारी प्रथाओं के उन्मूलन जैसे भूमि सुधार के कार्य (जिनके कारण व्यक्तिगत कृषि और कृषि यंत्रीकरण में वृद्धि हुई है), छोटे-छोटे काश्तकारों द्वारा भूमि का विक्रय, आदि आदि भी कृषि श्रमिक-वर्ग की संख्या में वृद्धि का कारण बने हैं।

कृषि श्रमिकों के प्रकार :— (Kinds of Agricultural Workers)

सामान्य रूप से यह कहा जा सकता है कि भारत में कृषि श्रमिक निम्नलिखित परिवारों से प्राप्त होते हैं—(१) भूमिहीन ग्रामीण श्रमिक परिवारों से, (२) अल्पकालिक कृषक परिवारों से तथा (३) अंशकालिक शिल्पकारों अथवा ग्रामीण मजदूरों के परिवारों से। इस प्रकार कृषि श्रमिकों को तीन भागों में विभाजित किया गया है—(१) खेती में कार्य करने वाले श्रमिक जैसे कटाई करने वाले, हल चलाने वाले इत्यादि। (२) साधारण श्रमिक जैसे, कुआँ खोदने वाले और विविध कार्य करने वाले व्यक्ति, इत्यादि। (३) कुशल श्रमिक जैसे राज मिस्त्री बढ़ई इत्यादि। कृषि श्रमिकों की संख्या में उपरोक्त वर्ग किस अनुपात में होते हैं यह बात एक समान नहीं पाई जाती वरन् क्षेत्र-क्षेत्र में भिन्न होती है। खेत जोतने वाले दास श्रमिकों (Serf Labour) का भी देश के कुछ भागों में प्रचलन है। दासता अधिकतर ऋण-ग्रस्तता में फंस जाने के कारण होती है। श्रमिक साधारणतया कुछ सामाजिक या धार्मिक दायित्वों को सम्पन्न करने के लिये ही जमींदार से ऋण लेता है। ऋण के बदले में उस ऋण का भुगतान करने तक काम करने की सहमति देनी पड़ती है। लेकिन यह ऋण घटने की अपेक्षा बढ़ता ही चला जाता है। कभी-कभी तो केवल श्रमिक ही नहीं, अपितु उसका परिवार भी जीवन भर के लिए इस दासता में बंध जाता है। ऐसे श्रमिकों के रहन और कार्य करने की दशाएं भी बड़ी शोचनीय होती हैं। इस प्रकार के दास बहुधा आदिम जातियों और दलित जातियों के होते हैं और विभिन्न राज्यों में इन्हें भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। उदाहरणतया इन्हें बम्बई में 'कोलीज' और 'हालीज', मद्रास में 'पुनियाल' बिहार में 'कामिया', उड़ीसा में 'चाकर' मध्य प्रदेश में 'पालकारी' और उत्तर प्रदेश में 'जोबरी' कहते हैं।

यहाँ यह बात भी विशेष ध्यातव्य है कि कृषि श्रमिक शब्द के अन्तर्गत व सभी व्यक्ति आ जाते हैं, जो नकद या जिन्स के रूप में मजदूरी लेकर कृषि कार्य करते हैं। ऐसे व्यक्तियों की अपनी भूमि होती भी है, और नहीं भी होती। द्वितीय

पंचवर्षीय आयोजना के अनुसार कृषि श्रमिकों की परिभाषा में ऐसे व्यक्तियों का ले सकते हैं जो वर्ष में जितने दिनों वास्तव में कार्य करते हैं उनमें से आधे से अधिक दिनों कृषि श्रमिक का कार्य करते हैं। इस आधार पर, प्रथम कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार ग्रामीण परिवारों में से ३०.४ प्रतिशत कृषि श्रमिक थे जिनमें से आधे व्यक्तियों के पास भूमि भी नहीं थी। अधिक स्पष्ट शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि कृषि श्रमिकों की परिभाषा में निम्नलिखित व्यक्ति आते हैं—हलवाहे, फसल की कटाई करने वाले, बीज की बुवाई करने वाले, निराई करने वाले और रोपाई करने वाले आदि। यह भी विशेष उल्लेखनीय है कि खेतिहर श्रमिकों की संख्या में स्त्री तथा बाल श्रमिकों की प्रतिशत संख्या काफी अधिक है। कृषि कार्य जैसे निराई करना, सैनाई करना पटकोरना खाद डालना, फसलों की देखभाल करना आदि बहुधा स्त्रियों और बाल श्रमिकों द्वारा किए जाते हैं। बंगाल के कुछ जिलों की संथाल जाति में यह बात अधिक पाई जाती है। सच यह है कि संथाल जाति की स्त्रियां खेतिहर कार्यों और कृषि कार्यों में अपने पुरुषों की अपेक्षा कई बातों में अधिक श्रेष्ठ होती हैं। बाल श्रमिकों को, जो निर्धन माता-पिता के यहां जन्म लेते हैं और जाति वाली रीति-रिवाजों में जिनका पालन-पोषण होता है, अत्यन्त कोमल आयु में ही कृषि कार्यों पर लगा दिया जाता है। मुख्यतया बाल श्रमिक कार्य इसलिए करते हैं कि अपने परिवार की आय में जो पहिले ही बहुत कम होती है, कुछ उन्नति कर सकें या कम से कम मालिक से खाना या जिन्स के रूप में मजदूरी लेकर परिवार का भार हल्का कर सकें। देश के लगभग सभी प्रदेशों में इन अल्प-वयस्क श्रमिकों का अत्यधिक शोषण किया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसे कृषि श्रमिक भी हैं, जो भूमि पर कार्य करते हैं और कुल उपज का एक निश्चित भाग उन्हें मजदूरी के रूप में दे दिया जाता है। यह श्रमिक बटाई पर कार्य करते हैं और सामान्यतया बड़े-बड़े जमींदारों से पट्टे पर जमीन ले लेते हैं। ऐसे श्रमिकों की दशा अन्य श्रमिकों की अपेक्षा अधिक अच्छी होती है। इसका कारण यह है कि उनके पास कुछ अपनी पूंजी होती है और उनमें उद्यम करने का उत्साह भी होता है।

कृषि कार्यों की प्रकृति तथा रोजगार —
(Nature of Agricultural Work and Employment)

कृषि रोजगार बहुधा मौसमी और अविराम प्रकृति का होता है। इसलिए कुशलता के अनुसार श्रमिकों का वर्गीकरण नहीं किया जा सकता और यह वर्गीकरण केवल रोजगार की अवधि के आधार पर किया जा सकता है। कृषि श्रमिकों को कृषि मौसम में या तो संविदाकालिक आधार पर स्थायी रूप से नियुक्त किया जाता है या वर्ष की आकस्मिक आवश्यकताओं के अनुसार उन्हें नैमित्तिक रूप से रोजगार पर लगाया जाता है। रोजगार की अवधि फसल की किस्म तथा कृषि की उस पद्धति पर निर्भर होती है जो सामान्यतया अपनायी जाती है। उदाहरणार्थ नहर द्वारा सिंचित उत्तर पश्चिमी प्रदेश के भूखण्डों में तथा उत्तर प्रदेश के केन्द्रीय तथा

उत्तर पश्चिमी क्षेत्रों के उन भूखण्डों में जहाँ गेहूँ पैदा होता है, रोजगार की अधिकतम अवधि, जिसके लिए श्रमिकों को कृषि कार्य पर लगाया जाता है, वर्ष में लगभग ६ महीने पायी है। पूर्वी प्रदेश के उन भूखण्डों में जहाँ गेहूँ पैदा नहीं होता वहाँ अवधि वर्ष में केवल चार माह की होती है। सन् १६४६–५१ की कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार यह अनुमान किया गया है कि रोजगार की अवधि वर्ष में केवल २१८ दिन है। इनमें से १८६ दिन श्रमिक कृषि कार्य और शेष २६ दिन गैर-कृषि कार्य करते हैं। इस प्रकार कृषि श्रमिक साधारणतया दो प्रकार के होते हैं 'सम्बद्ध' (Attached) तथा 'नैमित्तिक' (Casual)। सम्बद्ध श्रमिक वे श्रमिक होते हैं जो एक ही बार में एक या एक से अधिक महीनों के लिए काम पर नियुक्त किये जाते हैं। ऐसे श्रमिक लगभग निरन्तर कार्य में लगे रहते हैं और उनका मालिकों से किसी न किसी प्रकार का ठेका (Contract) भी होता है। नैमित्तिक श्रमिकों को समय समय पर कार्य की आवश्यकताओं के अनुसार रोजगार दिया जाता है। सम्बद्ध श्रमिकों की संख्या कृषि श्रमिकों की कुल संख्या का लगभग १० प्रतिशत से १५ प्रतिशत तक होती है। कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार नैमित्तिक वयस्क पुरुष श्रमिक को १६५०–५१ में औसत रूप से वर्ष में २०० दिन रोजगार मिलता था। और १६५६–५७ में केवल १६७ दिन रोजगार मिलता था। १६५०–५१ में ७५ दिन और १६५६–५७ में ४० दिन वे स्वयं के कार्य पर लगे रहते थे। १६५०–५१ में ६० दिन तथा १६५६–५७ में १२८ दिन वे बेरोजगार रहते थे।

कृषि श्रमिकों की दशायें—

देश के अधिकांश कृषि श्रमिक नितान्त दुःखी हैं। उनकी शोचनीय अवस्था के विषय में भी सभी जानते हैं। उनका रोजगार स्थायी नहीं होता है, और वे बार बार अनेक प्रकार की सामाजिक कठिनाइयों में फंस जाते हैं। यह कठिनाइयाँ उनकी दुर्बलता का गम्भीर कारण बन जाती हैं और वर्तमान कृषि पद्धति में अस्थिरता आ जाती है। श्री जगजीवनराम ने इन अभागे करोड़ों श्रमिकों का अपने एक लेख में बड़ा ही मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। यह श्रमिक बहुधा अब भी आधे पेट भोजन करके ही अपना जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी आय इतनी भी नहीं होती कि वे दो समय ढंग से भोजन भी कर सकें। किसी आरामदायक या सुख की वस्तु का तो उनके लिए प्रश्न ही नहीं उत्पन्न होता। जिन झोंपड़ियों और छप्परों में यह श्रमिक रहते हैं, वे मनुष्य के आवास के लिए सर्वथा अनुपयुक्त होते हैं। कृषि श्रमिकों का वर्ग देश की अर्थ व्यवस्था का सबसे अधिक दुर्बल वर्ग है और इन्होंने सदा बड़ी-बड़ी आपत्तियाँ और कष्ट सह हैं। ऊँचे मूल्यों और वस्तुओं के अभाव के भी सर्वप्रथम यही लोग शिकार होते हैं। सन् १६४५ में अकाल जाँच आयोग ने बताया था कि बंगाल के अकाल में भूख से मरने वालों की सबसे अधिक संख्या कृषि श्रमिकों की ही थी। कृषि में चाहे जितने सुधार किये जावें, लेकिन खाद्य के उत्पादन में तब तक वृद्धि नहीं हो सकती जब तक कि प्राथमिक उत्पादकों अर्थात् भूमि को जोतने वालों का

न्यूनतम आय की सुरक्षा का आश्वासन नहीं दिया जाता और उनके देखभाल की समुचित व्यवस्था नहीं की जाती ।

कार्य करने के घंटे —

कृषि श्रमिकों के कार्य घण्टे किसी श्रम विधान द्वारा नियमित नहीं किये गये हैं। इनके कार्य-घण्टे स्थान-स्थान पर, मौसम-मौसम में, तथा फसल-फसल में भिन्न भिन्न होते हैं। सामान्यतया कृषि में कार्य करने के घण्टे सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक होते हैं जबकि कारखानों में कृत्रिम प्रकाश की सहायता से किसी भी समय काम किया जा सकता है। कृषि के कुछ विशिष्ट कार्यों में जैसे हल चलाने सिंचाई तथा कटाई करने में कार्य-घण्टे भिन्न भी होते हैं। कभी-कभी प्रातःकाल की ठंडी-ठंडी वायु के समय तथा यदाकदा चांदनी रातों में भी ढेंकली से सिंचाई और फटकारने आदि जैसे कार्य कर लिये जाते हैं। हलवाहे या तो मध्यान्तर लेकर लगातार कार्य करते हैं या फिर दो पारियों में कार्य करते हैं जिनमें से एक पारी प्रातःकाल की होती है तथा दूसरी संध्या को। दोनों पारियों के मध्य में साधारणतया ४ से लेकर ६ घण्टे तक कार्य नहीं होता। ढेंकली से सिंचाई करने वाले श्रमिक एक समय में एक या दो घण्टे की पारियों में कार्य करते हैं। इस कार्य के लिये साधारणतया श्रमिकों को दो टोलियों में काम पर लगाया जाता है। इनमें से एक टोली पानी निकालने का काम करती है तथा दूसरी नालियों के माध्यम से इस पानी को खेतों में पहुँचाने की व्यवस्था करती है। श्रमिकों की अपेक्षा छोटे-छोटे काश्तकार और उनकी पत्नियां लगातार कई घण्टों तक अधिक कार्य कर लेते हैं और मजदूरी पर लगाये गये ऐसे श्रमिकों को वे पसन्द नहीं करते जो कार्य के घण्टों में कमी और अधिक मजदूरी की मांग करते हैं। यदि श्रमिकों को मजदूरी कार्य के अनुसार या परिणाम के अनुसार मिलती है तो वह अधिक घण्टों तक कार्य करने में आपत्ति नहीं करते। सच तो यह है कि यदि उन्हें इस प्रकार मजदूरी दी जाती है तो फसल की कटाई के समय वे अधिक श्रम करने को तैयार हो जाते हैं, परन्तु यह बात वर्ष में कुछ ही दिनों के लिये लागू होती है। इस बात को देखते हुये कि कृषि में कार्य इतना थकाने वाला नहीं होता जितना कारखानों में होता है, यह कहा जा सकता है कि कृषि में कार्य के घण्टे अधिक नहीं हैं। श्रमिक सामान्यतया दैनिक मजदूरी पर दिन में लगभग ८ घण्टे कार्य करते हैं और दोपहर में उन्हें दो घण्टे का मध्यान्तर भी मिल जाता है। सामान्यतया कार्य की आकस्मिक प्रकृति के कारण श्रमिकों को वर्ष के कुछ दिनों में बहुत अधिक घण्टों तक कार्य करना पड़ता है जबकि अन्य दिनों में वे प्रायः बेकार ही रहते हैं। ठेकरत पर कार्य करने वाले श्रमिक अन्य श्रमिकों की अपेक्षा बहुधा कम घण्टे कार्य करते हैं परन्तु उनकी आय अधिक हो जाती है।

भारत की वर्तमान दशाओं में कार्य के घण्टों से सम्बन्धित कोई भी विनियमन कृषि में लागू करना सरल नहीं है। इसका कारण यह है कि भारत में खेत बहुत छोटे छोटे हैं और प्रायः टुकड़ों में बटे हुए हैं। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन भी आज तक कृषि

श्रमिकों के लिए उनके कार्य करने के घण्टों से सम्बद्ध कोई अभिसमय पारित नहीं कर सका है। कुछ देशों में वर्ष भर के तथा दिन भर के कार्य करने के घण्टों को निश्चत करने के लिये विधान बनाए गए हैं। परन्तु इन विधानों में स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार कार्य के घण्टे नियमित करने के लिए छूट देनी पड़ी है। श्रमिकों को केवल अति-श्रम करने के विरुद्ध कुछ सुरक्षा प्रदान की गई है।

कृषि में अपूर्ण रोजगार — (Under Employment)

कृषि श्रमिकों की एक अन्य महत्वपूर्ण समस्या मौसमी और सविराम प्रकृति के रोजगार की है। यह समस्या औद्योगिक संस्थाओं में नहीं पाई जाती क्योंकि कारखानों में श्रमिकों को सम्पूर्ण वर्ष के लिए काम पर लगाया जाता है। श्रम मन्त्रालय ने कुछ राज्यों के थोड़े से गाँवों में पारिवारिक गहन सर्वेक्षण किए थे। पश्चिमी बंगाल के एक गाँव में सर्वेक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि कृषि श्रमिक वर्ष में औसतन केवल २२० दिन कार्य करते हैं। इनमें से १६६ दिन वे कृषि कार्य करते थे और शेष ५४ दिन गैर-कृषि कार्य। मद्रास के एक अन्य गाँव में सर्वेक्षण करने पर ज्ञात हुआ कि कृषि श्रमिकों को वर्ष में २०० दिन रोजगार मिलता है। इसी प्रकार बिहार में १५१ दिन, और मैसूर में १२१ दिन वर्ष भर में कार्य मिल पाता है। अन्य पूछताछों से भी यह पता चलता है कि मद्रास में जहाँ एक तिहाई भाग में धान की खेती की जाती है यदि एक फसल हो तो वर्ष में केवल १० सप्ताह कार्य मिलता है और यदि दो फसलें हों तो वर्ष में लगभग १६ सप्ताह कार्य मिलता है। बाजरा और तिलहन आदि के लिए सूखी भूमि पर खेती करने से भी वर्ष में केवल तीन या चार सप्ताह ही कार्य मिलता है। पंजाब में मि० कैलवर्ट ने अनुमान लगाया था कि कृषि में प्रति वर्ष केवल २०० दिन ही कार्य मिल पाता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कृषि श्रमिक पूछताछों के अनुसार भी यह ज्ञात होता है कि कृषि श्रमिकों का रोजगार बहुत अपूर्ण है। इन सब बातों से यह ज्ञात होता है कि कृषि श्रमिकों को वर्ष में अधिक से अधिक ६ माह के लिए ही मजदूरी पर रोजगार मिल पाता है। वर्ष के शेष काल में वे या तो कोई दस्तकारी का कार्य करते हैं या फिर किसी अन्य प्रकार के कार्य, जैसे बैलगाड़ी पर सामान ढोने का खाई खोदने का और सड़क बनाने का कार्य दैनिक मजदूरी पर करते हैं। परन्तु ऐसे रोजगार उनकी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करने में पर्याप्त नहीं होते।

कृषि श्रमिकों की मजदूरी —

केवल यही समस्या नहीं है कि कृषि श्रमिकों को सम्पूर्ण वर्ष के लिए लाभदायक रोजगार नहीं मिलता अपितु वह मजदूरी भी जो उन्हें कृषि कार्य के लिए मिलती है, औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी की अपेक्षा बहुत कम होती है तथा ऐसे श्रमिकों की मजदूरी से भी कम होती है जो उसी क्षेत्र में लगभग उसी प्रकार के गैर-कृषि व्यवसायों में कार्य करते हैं। कृषि मजदूरी और उसकी अदायगी की पद्धति में भी बहुत कम समानता पाई जाती है। मजदूरी और उसकी अदायगी की पद्धति

केवल राज्य-राज्य में ही भिन्न नहीं होती, अपितु हर राज्य के प्रत्येक जिले और जिले के हर उपक्षेत्र में भी भिन्न होती है। एक ही प्रकार के कार्य के लिए भी निम्न जाति के श्रमिकों स्त्रियों और बालकों को उच्च जाति के श्रमिकों और पुरुषों की अपेक्षा प्रायः कम मजदूरी दी जाती है। कुछ व्यवसायों में स्त्री श्रमिकों को रोजगार पर तो लगाया जाता है परन्तु उनकी मजदूरी पुरुषों की मजदूरी की अपेक्षा कम होती है यद्यपि यह भी सत्य है कि वे पुरुषों की अपेक्षा निश्चय ही कहीं अधिक कार्य कुशल होती हैं।

मजदूरी की अदायगी की पद्धतियों में भी अधिक भिन्नता पाई जाती है। कुछ राज्यों के कुछ गाँवों में नकद रूप से अदायगी करने की प्रथा है और कुछ राज्यों में केवल जिन्स के रूप में ही अदायगी की जाती है, तथा कुछ राज्यों में जिन्स और नकदी दोनों रूप में मजदूरी दी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ कृषि कार्यों के लिये जैसे कटाई करने तथा फटकोरने आदि के लिये, मजदूरी की अदायगी उपज के रूप में की जाती है। कृषि श्रमिकों के पारिश्रमिक कभी-कभी विभिन्न रीतियों से निश्चित किये जाते है, जैसे जोत के लिए भूमि देना कपड़ा और अनाज देना नकदी देना भोजन और मकान की व्यवस्था कर देना आदि। इस प्रकार उनकी वित्तीय क्षमता का मूल्यांकन करना सरल नहीं है। यद्यपि नकद रूप में अब मजदूरी की अदायगी करने का अधिक प्रचलन हो गया है तथापि जिन्स के रूप में मजदूरी देना अब भी काफी प्रचलित है विशेषतया कृषि मजदूरों को जिन्स के रूप में ही मजदूरी मिलती है।

कृषि श्रमिकों के लिए मजदूरी की दरों का अनुमान करने के हेतु विभिन्न राज्यों में पूछताछ की गई है। बम्बई में सन् १९४९-५० के लेतिहर श्रमिकों के लिये प्रतिदिन मजदूरी की दरें लगभग १ रु० २ आने से लेकर १ रु० ८ आ० ५ पा० तक अनुमानित की गई थीं। अकुशल श्रमिकों के लिए यही दरें १ रु० ६ आ० १ पा० और १ रु० ९ आ० १ पा० के मध्य अनुमानित की गई थी। इसके अतिरिक्त कुशल श्रमिकों के लिये यह दरें २ रु० ७ पा० और ३ रु० ६ आने ६ पा० के मध्य थी। बिहार में जिन्स के रूप में अदायगी करने की प्रथा अब भी प्रचलित है, यद्यपि कुछ स्थानों में नकद रूप में भी मजदूरी दी जाती है। अगस्त सन् १९५१ में पुरुष खेतिहर श्रमिकों की मजदूरी १ रु० २ आ० ६ पा० तथा १ रु० १० आने के मध्य और स्त्री श्रमिकों की मजदूरी १२ आ० तथा १ रु० ८ आ० ४ पा० के मध्य थी। उत्तरी बिहार में दक्षिणी बिहार की अपेक्षा कम मजदूरी दी जाती है। 'सम्बद्ध' श्रमिक को सामान्यतया १½ सेर धान और ६ छटांक पका हुआ चावल प्रतिदिन दिया जाता है, जिसकी लागत ११ आ० ६ पा० प्रतिदिन आती है। अनेक जिलों में मजदूरी बहुत कम पाई जाती है। पश्चिमी बंगाल के विभिन्न गाँवों में अनेक पूछताछें की गयीं हैं, जिनसे यह ज्ञात हुआ है कि दैनिक मजदूरी विभिन्न स्थानों पर १ रु० ८ आ० से लेकर २ रु० १२ आ० तक है।

उत्तर प्रदेश के चार गांवों में ग्रामीण मजदूरी के विषय में पूछताछ की गयी थी। इनमें से दो गांव मेरठ जिले में और दो गांव झांसी जिले में थे। मेरठ जिले के एक गांव में पूछताछ करने से यह ज्ञात हुआ कि 'सम्बद्ध' श्रमिकों को हल आदि चलाने के लिये एक रुपया प्रतिदिन दिया जाता था और साथ ही ४ छटांक आटा और २ छटांक गुड़ भी दिया जाता था। नैमित्तिक हलवाहों को दो रुपया प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। मेरठ के एक अन्य गांव में नकद रूप में मजदूरी दिये जाने का प्रचलन था। सम्बद्ध हलवाहों को २० रु० मासिक मजदूरी के अतिरिक्त ३ छटांक आटा भी प्रतिदिन दिया जाता था। जिन श्रमिकों को निराई तथा कटाई आदि के कार्यों में उजरत दर पर नियुक्त किया जाता था उन्हें बिना किसी अन्य लाभ के आठ आना प्रति बीघा के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी। कटाई के लिये पुरुष श्रमिकों को ५ सेर और स्त्री श्रमिकों को ३ सेर अन्न हुआ अनाज अतिरिक्त उजरत के रूप में दिया जाता था। झांसी के एक गांव में खेतिहर अनुचरों को हल चलाने और हेंगी चलाने आदि कार्यों के लिये प्रतिदिन आठ आना मजदूरी दी जाती थी। कटाई के लिये मजदूरी जिन्स के रूप में दी जाती थी। यह जिन्स २ सेर ८ छटांक गेहूँ या अनाज के रूप में होती थी। नैमित्तिक श्रमिकों को १२ आ० प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। झांसी के अन्य गांवों में स्थायी खेतिहर अनुचरों को १६ रु० मासिक तो मिलता ही था इसके अतिरिक्त उन्हें चार रोटियां भी प्रतिदिन दी जाती थीं। दो बीघा भूमि भी उन्हें प्रदान की जाती थी जिस पर उन्हें किसी प्रकार का लगान नहीं देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त निराई के लिये उन्हें १० आना प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी और कटाई के लिये उन्हें तीन सेर अनाज मिलता था। निराई और कटाई के लिये स्त्रियों को भी नैमित्तिक श्रमिकों के रूप में रोजगार पर लगाया जाता था। निराई की दर आठ आना प्रतिदिन थी। कटाई के लिये काटे गये अनाज का २ सेर ८ छटांक अनाज मजदूरी के रूप में दिया जाता था। इस गांव के हलवाहे दिन में १० घन्टे कार्य करते थे जबकि अन्य कार्यों में लगे हुये श्रमिक दिन में केवल ८ घन्टे ही कार्य करते थे। आजमगढ़ जिले के एक अन्य पांचवें गांव में की गई पूछताछ से यह ज्ञात हुआ है कि नैमित्तिक कृषि श्रमिकों को चार आने से लेकर आठ आने तक प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी और २ आने प्रतिदिन इसके अतिरिक्त मिलते थे। सम्बद्ध श्रमिकों को दो रुपया प्रतिमाह इस मजदूरी के ऊपर मिलते थे या उनको बिना लगान की एक बीघा भूमि तथा ४ रुपया प्रतिवर्ष इसके अतिरिक्त मिलता था।

अजमेर में कृषि श्रमिकों की दैनिक मजदूरी पुरुषों के लिये १ रु० ४ आ० स्त्रियों के लिये १० आ० तथा बालकों के लिये ८ आ० है। कुर्ग में मजदूरी की दरें सामान्यतया पुरुषों के लिये १ रु० १२ आ० स्त्रियों के लिये १ रु० ८ आ० तथा बालकों के लिए १ रु० है। हैदराबाद में मजदूरी सामान्यतया पुरुषों के लिये १ रु० से लेकर १ रु० ८ आ० तक स्त्रियों के लिए ४ आ० से लेकर १२ आ० तक तथा

केवल राज्य-राज्य में ही भिन्न नहीं होती अपितु हर राज्य के प्रत्येक जिले और जिले के हर उपक्षेत्र में भी भिन्न होती है। एक ही प्रकार के काम के लिए भी निम्न जाति के श्रमिकों, स्त्रियों और बालकों को उच्च जाति के श्रमिकों और पुरुषों की अपेक्षा प्रायः कम मजदूरी दी जाती है। कुछ व्यवसायों में स्त्री श्रमिकों को रोजगार पर तो लगाया जाता है परन्तु उनकी मजदूरी पुरुषों की मजदूरी की अपेक्षा कम होती है, यद्यपि यह भी सत्य है कि वे पुरुषों की अपेक्षा निश्चय ही कहीं अधिक कार्य कुशल होती हैं।

मजदूरी की अदायगी की पद्धतियों में भी अधिक भिन्नता पाई जाती है। कुछ राज्यों के कुछ गाँवों में नकद रूप से अदायगी करने की प्रथा है और कुछ राज्यों में केवल जिन्स के रूप में ही अदायगी की जाती है, तथा कुछ राज्यों में जिन्स और नकदी दोनों रूप में मजदूरी दी जाती है। इसके अतिरिक्त कुछ कृषि कार्यों के लिये जैसे कटाई करने तथा फटकोरने आदि के लिये, मजदूरी की अदायगी उपज के रूप में की जाती है। कृषि श्रमिकों के पारिश्रमिक कभी-कभी विभिन्न रीतियों से नियत किये जाते है, जैसे जोत के लिए भूमि देना कपड़ा और अनाज देना नकदी देना भोजन और मकान की व्यवस्था कर देना आदि। इस प्रकार उनकी वित्तीय क्षमता का मूल्यांकन करना सरल नहीं है। यद्यपि नकद रूप में अब मजदूरी की अदायगी करने का अधिक प्रचलन हो गया है, तथापि जिन्स के रूप में मजदूरी देना अब भी काफी प्रचलित है विशेषतया कृषि मजदूरों को जिन्स के रूप में ही मजदूरी मिलती है।

कृषि श्रमिकों के लिए मजदूरी की दरों का अनुमान करने के हेतु विभिन्न राज्यों में पूछताछ की गई है। बम्बई में सन् १९४९–५० के बेतिहर श्रमिकों के लिये प्रतिदिन मजदूरी की दरें लगभग १ रु० २ आने से लेकर १ रु० ८ आ० ५ पा० तक अनुमानित की गई थीं। अकुशल श्रमिकों के लिए यही दरें १ रु० ६ आ० १ पा० और १ रु० ६ आ० १ पा के मध्य अनुमानित की गई थीं। इसके अतिरिक्त कुशल श्रमिकों के लिये यह दरें २ रु० ७ पा० और ३ रु० ६ आने ६ पा० के मध्य थीं। बिहार में जिन्स के रूप में अदायगी करने की प्रथा अब भी प्रचलित है, यद्यपि कुछ स्थानों में नकद रूप में भी मजदूरी दी जाती है। अगस्त सन् १९५१ में पुरुष खेतिहर श्रमिकों की मजदूरी १ रु० २ आ० ६ पा० तथा १ रु० १० आने के मध्य और स्त्री श्रमिकों की मजदूरी १२ आ० तथा १ रु० ८ आ० ४ पा० के मध्य थी। उत्तरी बिहार में दक्षिणी बिहार की अपेक्षा कम मजदूरी दी जाती है। 'कम्बड' श्रमिकों को सामान्यतया १½ सेर धान और ६ छटांक पका हुआ चावल प्रतिदिन दिया जाता है, जिसकी लागत ११ आ० ६ पा० प्रतिदिन आती है। अनेक जिलों में मजदूरी बहुत कम पाई जाती है। पश्चिमी बंगाल के विभिन्न गाँवों में अनेक पूछताछें की गयी हैं, जिनसे यह ज्ञात हुआ है कि दैनिक मजदूरी विभिन्न स्थानों पर १ रु० ८ आ० से लेकर २ रु० १२ आ० तक है।

उत्तर प्रदेश के चार गांवों में ग्रामीण मजदूरी के विषय में पूछताछ की गयी थी। इसमें से दो गांव मेरठ जिले में और दो गांव झांसी जिले में थे। मेरठ जिले के एक गांव में पूछताछ करने से यह ज्ञात हुआ कि 'सम्बद्ध' श्रमिकों को हल आदि चलाने के लिये एक रुपया प्रतिदिन दिया जाता था और साथ ही ४ छटांक आटा और २ छटांक गुड़ भी दिया जाता था। नैमित्तिक हलवाहों को दो रुपया प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। मेरठ के एक अन्य गांव में नकद रूप में मजदूरी दिये जाने का प्रबन्ध था। सम्बद्ध हलवाहों को २० रु० मासिक मजदूरी के अतिरिक्त २ छटांक आटा भी प्रतिदिन दिया जाता था। जिन श्रमिकों को निराई तथा कटाई आदि के कार्यों में जरूरत पर नियुक्त किया जाता था उन्हें बिना किसी अन्य लाभ के आठ आना प्रति बीघा के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी। कटाई के लिये पुरुष श्रमिकों को ५ सेर और स्त्री श्रमिकों को ३ सेर कटा हुआ अनाज अतिरिक्त उजरत के रूप में दिया जाता था। झांसी के एक गांव में खतिहर मजदूरों को हल चलाने और हेंगी चलाने आदि कार्यों के लिये प्रतिदिन आठ आना मजदूरी दी जाती थी। कटाई के लिये मजदूरी जिन्स के रूप में दी जाती थी। यह जिन्स २ सेर ८ छटांक गेहूँ या अनाज के रूप में होती थी। नैमित्तिक श्रमिकों को १२ आ० प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। झांसी के अन्य गांवों में स्थायी खेतिहर मजदूरों को १६ रु० मासिक तो मिलता ही था इसके अतिरिक्त उन्हें चार रोटियां भी प्रतिदिन दी जाती थीं। दो बीघा भूमि भी उन्हें प्रदान की जाती थी, जिस पर उन्हें किसी प्रकार का लगान नहीं देना पड़ता था। इसके अतिरिक्त निराई के लिये उन्हें १० आना प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी और कटाई के लिये उन्हें तीन सेर अनाज मिलता था। निराई और कटाई के लिए स्त्रियों को भी नैमित्तिक श्रमिकों के रूप में रोजगार पर लगाया जाता था। निराई की दर आठ आना प्रतिदिन थी। कटाई के लिये काटे गए अनाज का २ सेर ८ छटांक अनाज मजदूरी के रूप में दिया जाता था। इस गांव के हलवाहे दिन में १० घण्टे कार्य करते थे, जबकि अन्य कार्यों में लगे हुए श्रमिक दिन में केवल ८ घण्टे ही कार्य करते थे। आजमगढ़ जिले के एक अन्य पांचवें गांव में की गई पूछताछ से यह ज्ञात हुआ है कि नैमित्तिक कृषि श्रमिकों को चार आने से लेकर आठ आने तक प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी और २ आने प्रतिदिन इसके अतिरिक्त मिलते थे। 'सम्बद्ध' श्रमिकों को दो रुपया प्रतिमाह इस मजदूरी से ऊपर मिलते थे या उनको बिना लगान की एक बीघा भूमि तथा ४ रुपया प्रतिवर्ष इसके अतिरिक्त मिलता था।

अजमेर में कृषि श्रमिकों की दैनिक मजदूरी पुरुषों के लिये १ रु० ४ आ०, स्त्रियों के लिये १० आ० तथा बालकों के लिये ८ आ० है। कुर्ग में मजदूरी की दरें सामान्यतया पुरुषों के लिये १ रु० १२ आ०, स्त्रियों के लिये १ रु० ८ आ० तथा बालकों के लिए १ रु० है। हैदराबाद में मजदूरी सामान्यतया पुरुषों के लिये १ रु० से लेकर १ रु० ८ आ० तक, स्त्रियों के लिए ४ आ० से लेकर १२ आ० तक तथा

बालकों के लिए ३ पा० से लेकर १२ पा० तक होती है। सन् १९११ में मद्रास में प्रतिदिन मजदूरी सामान्यतया पुरुषों के लिये १० पा० ६ पा० से लेकर २ रु० ८ पा० तक तथा स्त्रियों के लिए ८ आ० से लेकर १ रु० १४ आ० तक थी। यह युद्धोपरान्त बढ़ी हुई मजदूरी की दर थी। सन् १९४१ में तो यह मजदूरी और भी कम थी। पुरुषों को ४ आ० ३ पाई तथा स्त्रियों को ३ आ० २ पाई प्रतिदिन के हिसाब से मजदूरी दी जाती थी। मद्रास के गांवों में की गई पूछताछ से भी यह पता चलता है कि 'बन्धक' श्रमिकों को ८ रु० प्रतिमाह मजदूरी दी जाती थी। इसके अतिरिक्त उन्हें कुछ कपड़े भी दिए जाते थे और दोपहर में 'कांजी' भी मिलती थी। मध्य प्रदेश में सभी प्रकार के कृषि श्रमिकों की सामान्य मजदूरी १ रु० से लेकर १ रु० ४ आ० तक थी। कुछ स्थानों पर बड़े-बड़े जमींदार सलजन ७० रु० से लेकर ८० रु० तक तथा ३ खन्डी ज्वार से लेकर ४ खन्डी ज्वार तक वार्षिक मजदूरी देते थे (एक खन्डी =२० मन)। सन् १९४८-४९ में ज्वार का मूल्य १० रु० प्रति खन्डी था। अतः दैनिक मजदूरों की कुल आय लगभग २१ रु० प्रति माह आती थी। मध्य प्रदेश में नैमित्तिक श्रमिकों को १ रु० ४ आ० प्रतिदिन मजदूरी मिलती थी जबकि नैमित्तिक स्त्री श्रमिकों और बाल श्रमिकों को ६ आ० से लेकर ८ आ० तक प्रतिदिन मजदूरी दी जाती थी। कृषि श्रमिक पूछताछ के अनुसार कृषि श्रमिक परिवार की वार्षिक औसत आय सन् १९५०-५१ में ४४७ रु० तथा सन् १९५६-५७ में ४३७ रु० थी और पुरुष नैमित्तिक श्रमिकों की औसत दैनिक मजदूरी सन् १९५०-५१ में १०९ नये पैसे तथा सन् १९५६-५७ में ९६ नये पैसे थी। स्त्री श्रमिकों की दैनिक मजदूरी सन् १९५०-५१ में ६८ नये पैसे तथा सन् १९५६-५७ में ५९ नये पैसे थी। बाल श्रमिकों की औसत दैनिक मजदूरी सन् १९५०-५१ में ७० नये पैसे और सन् १९५६-५७ में ५३ नये पैसे थी। कृषि श्रमिकों और औद्योगिक श्रमिकों की मजदूरी का अन्तर भी बहुत अधिक है। कृषि श्रमिकों की प्रति व्यक्ति वार्षिक आय औद्योगिक श्रमिकों की अपेक्षा इस प्रकार है बंगाल में १६० रु०, (औद्योगिक श्रमिकों की २६८ रु०) बिहार में ११६ रु० (औद्योगिक श्रमिकों की ३३२ रु०), उड़ीसा में ७१ रु० (औद्योगिक श्रमिकों की १४५ रु०) मध्य प्रदेश में ८७ रु० (औद्योगिक श्रमिकों की २६२ रु०) पंजाब में १११ रु० (औद्योगिक श्रमिकों की ११६ रु०) बम्बई में ८८ रु० (औद्योगिक श्रमिकों की ११८ रु०)।

कृषि श्रमिकों का जीवन-स्तर —

कृषि श्रमिकों की यह न्यून मजदूरी ही इस बात के लिए उत्तरदायी है कि उनका जीवन-स्तर मानवीय-स्तर से भी नीचा होता है। वर्ष में लगभग ६ माह कृषि कार्य करके अर्जित की गई इस थोड़ी सी मजदूरी से कृषि श्रमिक के लिए निर्वाह करना असम्भव हो जाता है क्योंकि शेष समय उनके पास कोई अन्य रोजगार भी नहीं होता। इसका परिणाम यह निकलता है कि वे प्रायः आधे पेट भूखे रहते हैं। सभी प्रकार के कृषि कार्यों को उचित रीति से करने के लिये भी उनमें पर्याप्त शारीरिक

कम नहीं होता। उनके पारिवारिक बजटों में सदा घाटे का ही रोना रहता है।

कृषि श्रमिकों के पारिवारिक बजटों का विश्लेषण करने से यह भी ज्ञात होता है कि कृषि श्रमिक का आहार, स्तर और मात्रा दोनों ही रूप में असंतोषजनक होता है। भोजन पर सबसे अधिक व्यय होता है जिस पर कृषि श्रमिकों के परिवार की कुल आय की ७० प्रतिशत से लेकर ८४ प्रतिशत राशि व्यय हो जाती है। सामान्यतया कुल व्यय का ८५ प्रतिशत तो भोजन सामग्री पर तथा १.५ प्रतिशत चीनी और साग-सब्जियों पर और २.४ प्रतिशत केवल नमक और मसालों पर होता है। अन्य आवश्यक भोजन सम्बन्धी वस्तुयें जैसे दूध तथा घी आदि का तो कभी-कभी ही प्रयोग किया जाता है। जहां तक मांस का प्रश्न है, यह केवल विशेष सामाजिक अवसरों पर ही खाया जाता है। २.२ प्रतिशत वार्षिक व्यय ईंधन प्रकाश और मकान के किराये आदि पर होता है। पान-सुपारी तम्बाकू और मद्य पान तथा अन्य विविध मदों पर ८.१ प्रतिशत व्यय होता है। कृषि श्रमिक पूछताछों के अनुसार ग्रामीण परिवारों का उपभोग वस्तुओं पर वार्षिक व्यय १९५०–५१ में ४५१ रु० था और यह बढ़कर १९५६–५७ में ६१७ रु० हो गया था। १९५६–५७ में प्रतिशत व्यय निम्न प्रकार था (१९५०–५१ के आंकड़े कोष्ठक में दिए हुए हैं)। आहार—७७.३ (८५.३) कपड़ा और जूते—६.१ (६.१) ईंधन व प्रकाश—७.६ (१.१) विविध मदें तथा सेवायें—८.७ (७.३)।

इस प्रकार श्रमिक के पास किसी आराम या विलासिता की वस्तु पर व्यय करने के लिये कुछ नहीं बच पाता और न ही वह कुछ बचत कर सकता है। इस का परिणाम यह होता है कि आकस्मिक संकट या सामाजिक उत्सवों तथा धार्मिक त्यौहारों के अवसरों आदि पर वह ऋण उधार लेने के लिये विवश हो जाता है। क्योंकि श्रमिकों का भोजन बड़ा असंतोषजनक होता है इसलिये वे सामान्यतया बड़ी आसानी से अनेक प्रकार के रोगों का शिकार हो जाते हैं और इसका उनके स्वास्थ्य तथा उनकी कार्यकुशलता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। कभी-कभी एक छोटी सी महामारी भी श्रमिक वर्ग के असंख्य प्राणियों का संहार कर देती है।

केवल मजदूरी की दरों से ही हमें कृषि श्रमिकों के जीवन स्तर का ज्ञान नहीं हो सकता, अपितु उनके रोजगार की मौसमी प्रकृति का भी विचार करना होगा। जैसा मिसेज होवर्ड ने अपनी पुस्तक 'कृषि में श्रमिक' (Labour in Agriculture) में लिखा है "श्रमिकों की सबसे बड़ी समस्या यह नहीं है कि उनको मजदूरी की दर कितनी मिलती है अपितु यह है कि उन्हें काम मिलता भी है या नहीं। इस प्रकार समस्या यह नहीं है कि वह कितना कमाते हैं अपितु यह है कि उन्हें कमाने का अवसर भी मिलता है या नहीं।" भारत के ऐसे भूभागों में, जहां सिंचाई की व्यवस्था नहीं होती कृषि अधिकतर वर्षा पर निर्भर रहती है। यह वर्षा कृषि के लिए एक जुआ है। यदि वर्षा हो गयी तो खेती अच्छी हो जाती है अन्यथा फसल खराब हो जाती है। जब मानसून नहीं आती, तो श्रमिकों को प्रायः बेकार रहना पड़ता

है। ऐसी स्थिति में अपने जीवन-निर्वाह के लिये वे बहुत अल्प मजदूरी पर कार्य करने के लिये बाध्य हो जाते हैं। अतः रोजगार इस बात पर अधिक निर्भर करता है कि भूमि में सिंचाई की व्यवस्था है, या नहीं कितनी फसलें बोई जाती हैं तथा परिवार के कितने सदस्य कृषि कार्य में लगे हुये हैं।

कृषि श्रमिकों की ऋणग्रस्तता —

कृषि श्रमिकों के जीवन में एक अन्य बाधा यह भी है कि वे निरन्तर ऋण से लदे रहते हैं। एक बार ऋणग्रस्त होने के उपरान्त वे आजीवन उससे अपना उद्धार नहीं कर पाते। ग्रामीण ऋण की समस्या ने समय-समय पर अनेक प्रदेशीय सरकारों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया है और देश में ऋणग्रस्तता कितनी है, इस विषय में अनेक अनुमान लगाये गये हैं। सन् १८९७ के 'दक्षिण रैय्यत आयोग' के अनुसार सरकारी भूमि के जोतने वालों में से एक तिहाई ऋणग्रस्त थे और उनका ऋण मालगुजारी से १८ गुना था। सन् १८८० के अकाल आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला था कि भारत में कृषक वर्ग का एक तिहाई भाग बुरी तरह ऋण में जकड़ा हुआ था। सन् १९०१ का अकाल आयोग इस परिणाम पर पहुँचा था कि ऋण के कारण बम्बई के २१ प्रतिशत किसान अपनी भूमि से बेदखल कर दिये गये थे। सन् १९११ में सर एडवर्ड मैकलेगन ने ब्रिटिश भारत में कुल ग्रामीण ऋण १०० करोड़ रुपये अनुमानित किया था। श्री एम० एल० डार्लिंग ने सन् १९१८ में यही ऋण ६० करोड़ रुपये आँका था। सन् १९३० में भारतीय केन्द्रीय बैंकिंग पूछताछ समिति ने इस ऋण को ९०० करोड़ रुपये बताया था। उत्तर प्रदेशीय 'ऋण सहायता समिति' तथा बंगाल के आर्थिक पूछताछ बोर्ड ने भी कृषक वर्ग की ऋणग्रस्तता का उल्लेख किया था। युद्ध-काल में सन् १९४५ के अकाल आयोग के अनुसार मूल्यों में वृद्धि और कृषि के लाभों के कारण ग्रामीण ऋण की मात्रा में बहुत अधिक कमी हो गयी थी। 'रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया' की रिपोर्ट में भी इस बात की ओर संकेत किया गया था कि अधिकांश ग्रामीण ऋण युद्ध-काल में अदा कर दिये गये थे।

परन्तु जो भी अनुमान लगाए गये थे वे सम्पूर्ण कृषक वर्ग के लिए थे। जहाँ तक कृषि श्रमिक का सम्बन्ध है, इस विषय में यही सूचनाएं मिली हैं कि वह आज भी ऋण के बोझ से पीड़ित है। श्री बी० वी० नारायणस्वामी ने मद्रास में ग्रामीण ऋणग्रस्तता से सम्बद्ध अनुसंधान किये थे। इसके उपरान्त उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला था कि युद्ध-काल में भूमि-हीन श्रमिकों की ऋणग्रस्तता में लगभग ५२.९ प्रतिशत वृद्धि हुई थी। कुल ऋणग्रस्तता में जो कमी आयी थी है उसका लाभ भी भूमिधर कृषक वर्ग को ही मिला है। भूमि-हीन श्रमिकों का ऋण ५७ रु० से बढ़ कर ८१ रु० प्रति व्यक्ति हो गया है। कृषि श्रमिक पूछताछों के अनुसार भी कृषि श्रमिकों का कुल ऋण १९५०–५१ में ८० करोड़ रुपये और १९५६–५७ में १४१ करोड़ रुपये था। ऋण की औसत राशि प्रति परिवार १९५०–५१ में १०५ रु० और १९५६–५७ में ११८ रु० आती थी तथा १९५०–५१ में ४५ प्रतिशत तथा १९५६–५७ में ६४

ग्रतिशत परिवार ऋणग्रस्त थे। इस प्रकार मूल्यों में वृद्धि होने से कृषि श्रमिकों को अधिक लाभ नहीं हुआ है क्योंकि उसी अनुपात में उनकी मजदूरी में वृद्धि नहीं हो सकी है। इसके अतिरिक्त कृषि व्यवसाय में जो लाभ हुये हैं उनमें से भी उन्हें अधिक भाग नहीं मिल पाया है परन्तु उनके निर्वाह-खर्च में वृद्धि हो गयी है।

कृषि श्रमिक को उपभोग के लिये तथा सामाजिक दायित्वों को सम्पन्न करने के लिये प्रायः धन उधार लेना पड़ता है। यह ऋण स्थायी होता है और कभी-कभी पैतृक सम्पत्ति के रूप में इसका भार पुत्र को वहन करना पड़ता है। धन उधार देने की प्रणाली भी बड़ी दोषपूर्ण रही है और ऐसे ऋणों पर सामान्यतया ब्याज की बहुत ऊँची दर ली जाती है। कृषि श्रमिकों के पास भूमि भी नहीं होती जिसकी जमानत पर वह धन उधार ले सकें। इसके अतिरिक्त वह ऋण भी सामान्यतया उन्हीं जमींदारों से लेते हैं जिनके यहाँ वह कार्य करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि श्रमिक की ऋणग्रस्तता का अनुचित लाभ उठाकर उसका शोषण किया जाता है और उसे बहुत न्यून मजदूरी पर कार्य करने के लिये बाध्य कर दिया जाता है। अपने दिन प्रतिदिन के व्ययों को पूर्ण करने के लिये यदि वह ऋण न लेता तो निश्चय ही इस मजदूरी से कहीं अधिक मजदूरी वह पा सकता था। जैसा कि पहले ही संकेत किया जा चुका है इस ऋणग्रस्तता ने ही दास-श्रमिक की प्रथा को जन्म दिया है अर्थात् जब तक ऋण की अदायगी नहीं हो जाती श्रमिक ऋणदाता के यहाँ कार्य करने के लिये विवश होकर बंध जाता है।

कृषि श्रमिकों के मकानों की दशायें—

इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि कृषि श्रमिकों के मकानों की दशायें अत्यन्त शोचनीय हैं। वे गाँवों के सबसे बुरे मकानों या झोंपड़ियों में रहते हैं। सामान्यतया उनके पास अपनी कोई भूमि भी नहीं होती। इसका परिणाम यह होता है कि छोटे-छोटे मकान बनाने के लिये भी भूमि के लिए उन्हें जमींदारों की दया पर आश्रित रहना पड़ता है। यदि मकानों के लिये भूमि मिल भी जाती है तो बेगार के रूप में श्रमिक को बहुत ही निम्न मजदूरी पर अपनी सेवायें अर्पित करनी पड़ती हैं। उनके मकानों में स्वच्छता का पूर्णतया अभाव होता है। सच बात तो यह है कि पुरुषों और पशुओं दोनों को एक ही छत के नीचे रहना और सोना पड़ता है। इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि कृषि श्रमिक-वर्ग में बीमारियाँ अधिक पायी जाती हैं। वर्षा ऋतु तथा शीतकाल के महीनों में मकानों की बुरी दशा होने के कारण श्रमिक को बहुत कष्ट भोगना पड़ता है।

कृषि श्रमिकों के मकानों की दशाओं में सुधार करने के लिये कुछ न कुछ पग उठाये जाना अत्यन्त आवश्यक है। शहरी मकानों के सम्बन्ध में तो हम बहुत कुछ सुनते हैं अब वह समय आ गया है कि ग्रामीण मकानों की ओर भी कुछ ध्यान दिया जाय विशेषतया भूमिहीन कृषि श्रमिक के मकानों की ओर ध्यान देना आवश्यक है। यदि मकानों के लिये भूमि उपलब्ध कर दी जाती है और सस्ती दरों पर सामान की

व्यवस्था कर दी जाती है तो श्रमिक को अपने ही श्रम से मिट्टी या फूस के स्वच्छ मकानों का निर्माण करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है। केन्द्रीय सरकार ने एक ग्रामीण आवास प्रायोजना बनाई है और द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में ग्रामीण मकानों के लिये १० करोड़ रु० की व्यवस्था की है तथा तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में ग्रामीण आवास के लिए १२·७ करोड़ रु० की व्यवस्था है। इस योजना के अन्तर्गत सरकार द्वारा मकान बनाने के खर्चे का दो-तिहाई भाग ऋण के रूप में दिया जाता है जो २० वार्षिक किस्तों में अदा किया जा सकता है। सामुदायिक विकास खंडों में लगभग ५ हजार गांवों में आवास प्रायोजनाएं प्रारम्भ की गई हैं और विभिन्न राज्यों में ग्रामीण आवास विभाग खोले गए हैं। सामुदायिक योजना के अन्तर्गत भी गांवों में नए मकान बनाए गए हैं और पुराने मकानों की मरम्मत की गई है। कुछ प्रदेशीय सरकारों ने भी कृषि श्रमिकों को मकान सम्बन्धी सुविधायें प्रदान करने के हेतु पग उठाए हैं। प्रारम्भ में सरकार ने हरिजनों के लिए बिना मूल्य के मकानों की व्यवस्था करने के हेतु १० लाख रु० की एक विशेष निधि बनाई है। यह हरिजन बहुधा कृषि श्रमिक ही होते हैं। बिहार सरकार ने भूमिहीन और गृहहीन हरिजनों के लिए झोंपड़ियों के निर्माण की योजना बनाई है। इस योजना में प्रति झोंपड़ी ७१८ रु० की लागत का अनुमान किया गया है। लागत का १० प्रतिशत सरकार अंशदान के रूप में देगी। मध्य प्रदेश में कृषि कारीगरों या श्रमिकों को बिना किराया लिए मकान बनाने के लिए भूमि प्रदान कर दी गई है। मद्रास के हरिजनों के लिए भी, जो प्रायः कृषि श्रमिक ही होते हैं यही व्यवस्था की गयी है। उत्तर प्रदेश में भूमिहीन श्रमिकों को मकान बनाने के लिए आबादी में भूमि निर्दिष्ट करने में प्राथमिकता दी गई है। केरल में कृषि श्रमिकों के लिए ग्रामीण क्षत्रों में १०० मकानों का निर्माण करने के लिए आवास बोर्ड की स्थापना की गई है और हरिजनों के मकानों के लिए १३० लाख रु० की व्यवस्था की गई है। मद्रास में हरिजनों के आवास के लिए ३४·८४ लाख रु० की व्यवस्था की गई है। चकबन्दी योजनाओं के अन्तर्गत भी पंजाब तथा देहली जैसे कुछ राज्यों में हरिजनों और कृषि श्रमिकों के रहने के लिए मकान बनाने के लिए भूमि प्रदान की गई है।

कृषि श्रमिकों का संगठन—

यह भी देखने में आता है कि कृषि श्रमिकों का औद्योगिक श्रमिकों जैसा कोई संगठन नहीं है। औद्योगिक श्रमिक तो संघों के माध्यम से अपने हितों की रक्षा कर लेते हैं लेकिन कृषि श्रमिक अभी तक अपने आपको संगठित नहीं कर पाए हैं। इसका कारण यह है कि वे दूर तथा अलग अलग गाँवों में रहते हैं। जैसा कि श्री जगजीवन राम ने सुझाव दिया है, कृषि श्रमिकों को संगठित करने का सबसे अच्छा उपाय सहकारी समितियां ही हैं। उन्हें सहकारी समितियों का सदस्य बनने का अवसर देना चाहिए, जिसके लिए यदि आवश्यक हो तो समितियों के नियमों को सरल कर देना चाहिए। इन समितियों की पंचायतों में भी कृषि श्रमिकों का विशेष रूप से प्रति-

निश्चित होना चाहिए। उनके लिए पृथक समितियों का भी निर्माण किया जा सकता है। यदि वे एक बार किसी तरह संगठित हो गए, तो अपनी देखभाल करने में स्वयं समर्थ हो जायेंगे। इसके अतिरिक्त ऐसी समितियां लाभदायक कार्य भी कर सकती हैं जैसे गौण व्यवसायों का संचालन करना, ग्रामीण मकानों की दशा में उन्नति करना, कृषि श्रमिकों द्वारा उत्पादित सामान की बिक्री की व्यवस्था करना, ब्याज की कम दरों पर कृषि श्रमिकों को ऋण दिलाना तथा उनमें मितव्ययिता की आदत डालना आदि। यहाँ यह बात विशेष उल्लेखनीय है कि भारतीय राष्ट्रीय श्रमिक संघ कांग्रेस ने कृषि श्रमिकों के क्षेत्र में स्वयं कार्य करने का निश्चय किया है और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए वह कुछ श्रमिकों को प्रशिक्षण भी दे रही है।

कृषि भूमि सुधार —

यहाँ इस बात का उल्लेख किया जा सकता है कि गत कुछ वर्षों से कृषक वर्ग की उन्नति के लिए कई विधान बनाए गए हैं। भारत सरकार ने कृषि सम्बन्धी विवादों को रोकने तथा लगान उपकर और इसी प्रकार के सम्बन्धित विषयों में किसान तथा आसामियों को तत्काल सहायता देने के लिए सन् १९४९ में अजमेर मारवाड़ कृषि सहायता अध्यादेश जारी किया। बिहार, उत्तर प्रदेश तथा मद्रास आदि में जमींदारी उन्मूलन अधिनियम पारित किए गए हैं और लगभग सभी राज्यों में भूमि सुधार के लिए पग उठाए गए हैं। लेकिन यह विधान किसानों को कृषि उपज में से उचित भाग दिलाने के सम्बन्ध में तथा भूधृति अर्थात् पट्टेदारी पद्धति में सुधार करने के हेतु ही बनाए गए हैं। कृषि श्रमिकों की समस्याओं पर तो बहुत ही कम ध्यान दिया गया है।

कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी —

एक अन्य पग जो कृषि श्रमिकों के हित के लिए उठाया गया है वह १९४८ का न्यूनतम मजदूरी अधिनियम है। इसमें कुछ निश्चित कृषि रोजगारों में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था की गयी है। इस अधिनियम के अन्तर्गत राज्य सरकारों को कृषि श्रमिकों के लिए तीन वर्ष के अन्दर-अन्दर न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करनी थी। इसमें इस बात की भी व्यवस्था है कि मजदूरी की दरों का समय-समय पर परन्तु ५ वर्ष के भीतर ही पुनरावलोकन किया जाए। अधिनियम की द्वितीय अनुसूचि में कृषि श्रमिकों का विवेचन है। यह अधिनियम कृषि में रोजगार की निम्नलिखित व्याख्या करता है "कृषि में रोजगार से तात्पर्य यह है कि किसी भी प्रकार की खेती में श्रमिक लगा हो अर्थात् इसमें भूमि की जुताई और बुवाई भी आ जाती है और अन्य कार्य भी सम्मिलित हो जाते हैं जैसे दुग्धशाला उद्योग कृषि या उद्यान से संबंधित किसी भी वस्तु का उत्पादन खेती, बुवाई और कटाई पशु पालन मधुमक्खी या मुर्गी पालन और अपनी खेती के कार्यों के साथ-साथ या उनसे संबंधित किसान द्वारा कई अन्य कार्य (इसमें वन सम्बन्धी कार्य, जैसे ढहोर बान्धना, बाजार

में अनाज से जाने की तैयारी तथा व्यवस्था करना, अनाज को गोदाम में भरवाना या बेचना या अनाज को बाजार तक ले जाने के लिए गाड़ी चलाना आदि) भी सम्मिलित है।"

न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की कार्य प्रणाली निम्नलिखित है प्रदेशीय सरकारें यह जांच करने के लिए कि मजदूरी कितनी दी जाय या तो किसी समिति की नियुक्ति करती हैं या फिर किसी सरकारी गजट में अपने प्रस्तावों को प्रकाशित करती हैं और उन प्रस्तावों को कार्य-रूप में परिणित करने से पूर्व उन पर वाद विवाद करने के लिए कुछ समय देती हैं। इसके पश्चात् न्यूनतम मजदूरी की दरों को प्रकाशित करना होता है, जो तीन महीने के बाद लागू हो सकती हैं। इन सभी न्यूनतम मजदूरी के प्रस्तावों का पुनरावलोकन करने के लिए प्रत्येक राज्य में एक सलाहकार बोर्ड स्थापित करने की व्यवस्था है। इसके अतिरिक्त एक केन्द्रीय सलाहकार बोर्ड स्थापित करने की भी व्यवस्था है जो विभिन्न निर्णयों में सामंजस्य कर सके। जहाँ कहीं आवश्यक हो वहाँ सलाहकार समितियाँ भी नियुक्त की जा सकती हैं। इस अधिनियम में यह व्यवस्था की गई है कि मजदूरी नकद रूप में दी जानी चाहिए, लेकिन यदि सरकार से अनुमति प्राप्त हो गई है तो भुगतान जिन्स के रूप में भी की जा सकती है। समयोपरि के लिए भी भुगतान की व्यवस्था की गई है और यह अधिनियम काम के सामान्य घण्टों तथा अवकाश के दिनों की भी व्यवस्था करता है।

सन् १९४८ में केन्द्रीय सरकार ने इस सम्बन्ध में नियम बनाए और उन्हें राज्य सरकारों में परिचालित किया तथा आदेश दिया कि वे १५ मार्च, सन् १९५० से पूर्व न्यूनतम मजदूरी नियत करने के सम्बन्ध में कार्यवाही करें। लेकिन इस योजना को कार्य-रूप में परिणत करने में कुछ विलम्ब हो गया और सरकार ने इस अधिनियम में विभिन्न संशोधन करके इसकी तारीख बढ़ा दी। पहले वह तारीख १५ मार्च सन् १९५१ रक्खी गई, इसके बाद ३१ मार्च सन् १९५२ कर दी गई तत्पश्चात इसे बढ़ाकर ३१ दिसम्बर, सन् १९५४ कर दिया गया। कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए एक अतिरिक्त वर्ष और दिया गया। फिर नवम्बर, सन् १९५६ से एक अन्य संशोधन के अनुसार न्यूनतम मजदूरी नियत करने की अवधि बढ़ाकर ३१ दिसम्बर, सन् १९५९ कर दी गई परन्तु सभी राज्यों में इस तिथि तक भी न्यूनतम मजदूरी निर्धारित नहीं की जा सकी। सन् १९६१ में सरकार ने फिर एक संशोधित अधिनियम पारित किया जिसके अन्तर्गत अब प्रदेशीय सरकारों को छूट दे दी गई है कि वे आवश्यकतानुसार न्यूनतम मजदूरी किसी भी समय निर्धारित कर सकती हैं। (देखिए पृष्ठ ५०७ तथा ३११—१२)।

कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की कठिनाइयों का मजदूरी के अध्याय पृष्ठ ३११—१२ पर पहले ही उल्लेख किया जा चुका है। उदाहरणार्थ यह कठिनाइयां निम्नलिखित हैं सांख्यिकीय सूचनाओं का ठीक-ठीक प्राप्त

न होना कृषि का मौसमी और सविराम प्रकृति का रोजगार, कृषि में विभिन्न प्रकार की भदायगियों की प्रथा विशेषकर जिन्स के रूप में भदायगी करना तथा छोटे-छोटे जमींदारों द्वारा रिकार्ड तथा रजिस्टर रखने की कठिनाई, आदि।

न्यूनतम मजदूरी का निर्धारण —

लगभग सभी राज्यों में कृषि श्रमिकों के लिए न्यूनतम मजदूरी की दरें निर्धारित कर दी गई हैं। अधिकांश राज्यों के कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में ही यह दरें नियत की जा सकी हैं। (देखिए पृष्ठ ३११-१२)। कुछ मुख्य राज्यों में वयस्क पुरुष नैमित्तिक कृषि श्रमिकों के लिए ३१ दिसम्बर, १९६० तक न्यूनतम मजदूरी की दैनिक दरें इस प्रकार थीं केन्द्रीय सरकार—१.२५ रु० से २.२५ रु० तक आन्ध्र—०.७५ से १.५० रु० तक असम—१.०० से १.२५ रु० तक पांच घण्टे कार्य के लिए तथा १.५० रु० ८ घण्टे कार्य के लिए बम्बई—०.६२ रु० से १.०० रु० तक बिहार में मजदूरी जिन्स में निर्धारित की गई है केरल—१.५० रु० से १.६७ रु० तक मध्य प्रदेश—०.५० रु० से १.१५ रु० तक मद्रास—०.७५ रु० से १.२५ रु० तक मसूर—१.०० से १.७५ रु० तक उड़ीसा—०.८७ रु० से १.७५ रु० तक, पंजाब—१.०० रु० से २.०० रु० तक (भोजन सहित) या १.२५ रु० से २.५० रु० तक बिना भोजन के राजस्थान—०.७५ रु० से १.२५ रु० तक उत्तर प्रदेश—१.०० रु० (या २६ रु० प्रति माह) पश्चिमी बंगाल—१.५० रु० से २.२५ रु० तक देहली—१.५० रु० से २.०० रु० तक त्रिपुरा—२.०० रु० हिमाचल प्रदेश—१.५० रु०।

सरकार द्वारा की गई कृषि श्रमिक पूछताछ —

केन्द्रीय श्रम मंत्रालय ने इस बात का अनुभव किया कि कृषि श्रमिकों की रहन-सहन की दशाओं के सम्बन्ध में बिना पूछताछ किए न्यूनतम मजदूरी अधिनियम को कार्य-रूप में परिणित करना कठिन होगा तथा कृषि श्रमिकों के लिए कोई भी कल्याण कार्य करना कठिन हो जायेगा। इसलिए १९५०-५१ में एक ऐसी जाँच आरम्भ की गई जिसको सामाजिक तथा आर्थिक सर्वेक्षणों में सबसे बड़ा मान सकते हैं। यह जाँच प्रदेशीय सरकारों के सहयोग से श्रम मंत्रालय द्वारा पूर्ण की गई और उसके निष्कर्ष १९५४-५५ में प्रकाशित किए गए।

इस पूछताछ का उद्देश्य रोजगार, आय निर्वाह-खर्च तथा जीवन स्तर और कृषि श्रमिकों की ऋणग्रस्तता से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित करना था। यह पूछताछ इस बात को दृष्टि में रखकर की गई थी कि न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के अतिरिक्त श्रमिकों की दशाओं में सुधार करने के लिए क्या-क्या सुरक्षात्मक तथा सुधारात्मक पग उठाए जाने चाहियें। भारत के सभी राज्यों में तथा जम्मू और काश्मीर में भी यह पूछताछ की गई थी। क्योंकि अखिल भारतीय आधार पर इससे पूर्व कृषि श्रमिकों की दशाओं के सम्बन्ध में कभी तक कोई पूछताछ नहीं की गई थी इसलिए यह कृषि श्रमिक पूछताछ धीरे-धीरे

विभिन्न चरणों में की गई। जो पहला चरण था उसमें सन् १९५१ में जून से लेकर नवम्बर तक २७ गाँवों में प्रारम्भिक पूछताछ की गई। इनमें से एक गाँव मैसूर में, दो-दो असम उड़ीसा तथा मध्य प्रदेश में तीन मद्रास में, चार बिहार में पाँच पश्चिमी बंगाल में तथा आठ उत्तर प्रदेश में थे। इन गाँवों की रिपोर्टों को प्रकाशित किया जा चुका है।

कार्यकर्ताओं धन और समय के सीमित होने के कारण यह सम्भव नहीं था कि देश के सभी ६६०००० गाँवों में पूछताछ की जाय। अतः नमूने के तौर पर ८१२ गाँवों को जाँच के लिये छाँट लिया था। पूछताछ की अवधि एक वर्ष थी और इस पूछताछ द्वारा एकत्रित किए गए आँकड़े भी इसी अवधि से सम्बद्ध थे। यह पूछताछ तीन विभिन्न अनुसूचियों (कार्य-क्रम) के माध्यम से तीन विभिन्न चरणों में की गयी। पहले दो चरणों का मुख्य उद्देश्य सामान्य आर्थिक दशाओं तथा गाँवों में रोजगार के ढाँचों और उन परिवारों के आकारों के सम्बन्ध में निश्चित करना था जिन्हें पारिवारिक गहन सर्वेक्षण (Intensive Family Survey) के हेतु कृषि श्रमिक परिवार माना जाता था। यह पारिवारिक गहन सर्वेक्षण जाँच का तीसरा चरण था। कृषि श्रमिक परिवार उस परिवार को माना गया जिसके सबसे बड़े सदस्य (मुखिया) का या रोजी कमाने वालों में से ५० प्रतिशत या उससे अधिक सदस्यों का मुख्य रोजगार कृषि था। इस प्रकार कृषि परिवार को निर्धारित करके ऐसे परिवारों में से "रैन्डम" आधार पर कुछ विशेष परिवारों को नमूने के तौर पर तीसरे चरण के लिए चुन लिया गया। इस प्रकार पूछताछ के प्रथम दो चरणों के नमूने की इकाई गाँव थे तथा तृतीय चरण की इकाई कृषि श्रमिक परिवार थे।

प्रदेशीय सरकारों अर्थशास्त्रियों और विशेषज्ञों के परामर्श से इस विषय पर एक व्यापक प्रश्नावली का निर्माण किया गया। यह प्रश्नावली तीन भागों में विभाजित की गयी थी। प्रथम भाग में सामान्य ग्राम कार्यक्रम (General Village Schedule) दिया गया था। इसके अन्तर्गत ग्रामों की सामान्य आर्थिक दशाओं, भूमि पट्टा पद्धतियों, परिवारों के रोजगार के ढाँचों भूमि के उपयोगों प्रचलित मजदूरी की दरों मजदूरी अदायगी की पद्धतियों उपभोग की मुख्य मुख्य वस्तुओं के थोक तथा फुटकर मूल्यों तथा मनोनिवेश और बाहर से आए हुए श्रमिक यदि हों तो उनके विषय में सूचनाएँ एकत्रित करना था। एकत्रित किए गए आँकड़े चुने हुए ८१२ गाँवों के स्थानीय अधिकारियों के रिकार्डों पर आधारित थे।

द्वितीय भाग में सामान्य पारिवारिक कार्य-क्रम (General Family Schedule) था। इसके अन्तर्गत रोजगार, चुने हुए गाँवों के परिवारों के आकार तथा उनकी आय अर्जन की क्षमता आवास खेतों के आकार, मजदूरी पर लगे श्रमिकों के रोजगार की सीमा पशुओं तथा कृषि उपकरणों आदि के सम्बन्ध में आँकड़े एकत्रित करना था। इस चरण में ८१२ गाँवों द्वारा १०४,० ० ग्रामीण परिवारों का सर्वेक्षण किया गया।

तृतीय भाग गहन पारिवारिक काम-क्रम का था। इसके अन्तर्गत केवल कुछ चुने हुए कृषि श्रमिकों के ऐसे परिवारों को लिया गया था, जिनको प्रतिनिधि के रूप में माना जा सकता था। इन परिवारों को "रेण्डम" आधार पर चुना गया था। इस भाग में रोजगारी तथा बेरोजगारी से सम्बद्ध सूचना, कुल आय तथा निवल आय, अनैच्छिक श्रम कृषि श्रमिक परिवारों के निर्वाह-खर्च तथा जीवन स्तर और ऋण ग्रस्तता से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित किए गए थे। इस गहन पारिवारिक सर्वेक्षण कार्य के लिए देश को ६ क्षेत्रों में विभक्त किया गया था। इस सर्वेक्षण से सम्बद्ध सात रिपोर्टें भी प्रकाशित की जा चुकी हैं। इनमें से एक रिपोर्ट सम्पूर्ण भारत तथा शेष ६ रिपोर्टें प्रत्येक क्षेत्र से सम्बन्धित हैं।

इस सर्वेक्षण के तीनों चरणों के कार्य क्रम से जो आंकड़े एकत्रित किए गए, वे इस प्रकार थे प्रपत्र III 'क' में मासिक आंकड़े थे इनमें से ८१२ सामान्य गांव से १०४,०० सामान्य परिवार से और १६१००० गहन परिवार से सम्बन्धित थे। प्रपत्र III 'ख' में वार्षिक आंकड़े थे जो ११००० गहन परिवार काम-क्रम से सम्बन्धित थे। प्रपत्र III 'ग' में दैनिक आंकड़े थे जो २१००० गहन परिवार कार्य-क्रम से सम्बन्धित थे। इन कार्य-क्रमों द्वारा जो आंकड़े प्राप्त हुए उनकी बड़ी सावधानी से जांच की गयी। इसके पश्चात् उन्हें श्रम मंत्रालय के सांख्यिकीय विभाग में भली भांति जांच-पड़ताल करने के बाद सारिणी-बद्ध कर दिया गया। प्रत्येक क्षेत्र तथा प्रत्येक राज्य के लिए कुल १६ क्षेत्रीय तथा १६ राजकीय सारिणियां बनाई गई थीं। न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने के लिए प्रदेशीय सरकारों का इन आंकड़ों को उपलब्ध कर दिया गया था।

पहली पूछताछ की रिपोर्ट 'भारत में कृषि सम्बन्धी मजदूरी" (Agricultural Wages in India) नामक अंग्रेजी पुस्तिका—भाग १ तथा भाग २—में प्रकाशित की गई है। दूसरी पूछताछ की रिपोर्ट 'ग्रामीण श्रम शक्ति तथा व्यावसायिक आधार' (Rural Manpower and Occupational Structure) नामक पुस्तिका में दी गई है। पूछताछ के इन तीनों चरणों के परिणामों का सारांश "कृषि श्रमिक—वह कैसे कार्य करते हैं और कैसे रहते हैं" (Agricultural Labour-How They Work and Live) नामक एक प्रकाशन में दिया गया है। अब इस पूछताछ की सभी रिपोर्टें प्रकाशित की जा चुकी हैं। पूछताछ में सन् १९४९ से सन् १९५१ तक की अवधि ली गई है।

योजना आयोग की सिफारिशों के फलस्वरूप श्रम व रोजगार मंत्रालय ने केन्द्रीय सांख्यिकी संस्था तथा राष्ट्रीय सेम्पल सर्वे निदेशालय तथा भारतीय सांख्यिकी संस्थान के सहयोग से १९५६ ५७ में द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ आरम्भ की। यह पूछताछ ३६०० गांवों में की गई जिनको 'रेण्डम' आधार पर छांटा गया था और १२ मास की अवधि में इनमें पूछताछ की गई थी। नमूने के तौर पर छांटे हुए इन गांवों में से २८९६० कृषि श्रमिक परिवारों से (जिन्हें नमूने के तौर पर छांट लिया

गया था) रोजगार, बेरोजगारी, मजदूरी, आय, व्यय तथा ऋण-ग्रस्तता से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित किए गए थे। इस द्वितीय पूछताछ का एक मुख्य उद्देश्य यह था कि १९५०-५१ तथा १९५६-५७ के मध्य में जो प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की विकास योजनाओं से उन्नति हुई है उसका प्रभाव कृषि श्रमिकों पर कितना हुआ है—इस बात को आंका जाय। परन्तु जाँच में इस बात का उल्लेख किया गया है कि इस प्रकार की तुलना पूर्ण रूप से सही नहीं हो सकती क्योंकि दोनों जाँचों में परिभाषाओं अवधारणाओं (Concept) तथा पद्धतियों में भिन्नता था। द्वितीय पूछताछ की रिपोर्ट १९६० में प्रकाशित हुई। द्वितीय पूछताछ के निष्कर्ष प्रथम पूछताछ की तुलना में निम्न लिखित हैं —

व्यावसायिक ढांचा —(Occupational Structure)

(१) कृषि श्रमिक परिवारों की औसत संख्या १९५६-५७ में १ करोड़ ६३ लाख थी तथा १९५०-५१ में यह संख्या १ करोड़ ७९ लाख थी। इस प्रकार संख्या १६ लाख कम हो गई थी। यह कमी इस कारण हो सकती है कि दोनों पूछताछों में "कृषि श्रमिक परिवार" की परिभाषा में कुछ भिन्नता थी।

(२) भूमिहीन कृषि श्रमिक परिवार १९५६-५७ में ५७ प्रतिशत थे तथा १९५०-५१ में कुल संख्या का ५० प्रतिशत थे।

(३) १९५०-५१ की पूछताछ के अनुसार सम्बद्ध और अनियमित कृषि श्रमिक परिवारों का अनुपात १० : ९० था। १९५६-५७ की जाँच के अनुसार २७ प्रतिशत तो सम्बद्ध श्रमिक परिवार थे तथा शेष नैमित्तिक श्रम परिवार थे।

(४) कृषि श्रमिक परिवारों का औसत आकार १९५०-५१ में ४·३० था और यह बढ़कर १९५६-५७ में ४·४० हो गया था। १९५६-५७ में धनोपार्जन करने वाले सदस्यों की संख्या प्रति परिवार २·०३ थी जिनमें से १·१३ पुरुष ·७४ महिलायें ·१६ बालक थे। १९५०-५१ में ऐसे सदस्यों की संख्या २·० थी जिनमें से १·१ ·८ महिलायें तथा ·१ बालक थे।

(५) १९५६-५७ में कृषि श्रमिकों की अनुमानित संख्या ३ करोड़ ३० लाख जिनमें से १ करोड़ ८० लाख पुरुष १ करोड़ २० लाख महिलायें तथा ३० लाख बालक थ। १९५०-५१ में कृषि श्रमिकों की संख्या ३ करोड़ ५० लाख थी जिनमें से १ करोड़ ९० लाख पुरुष १ करोड़ ४० लाख महिलायें तथा २० लाख बालक थे।

रोजगार तथा बेरोजगारी —(Employment and Unemployment)

(१) नैमित्तिक व्यस्क पुरुष श्रमिकों को औसत रूप से १९५०-५१ में वर्ष में २०० दिन तथा १९५६-५७ में १९७ दिन मजदूरी पर रोजगार मिलता था। १९५०-५१ में ७५ दिन तथा १९५६-५७ में ४० दिन वे स्वयं के रोजगार पर लगे रहते थे।

(२) नैमित्तिक वयस्क महिला श्रमिकों को १९५०-५१ में १३४ दिन तथा १९५६-५७ में १४१ दिन मजदूरी पर रोजगार मिलता था।

(३) बालकों के रोजगार दिवस की संख्या १९५० ५१ में क्रम से १६१ थी और १९५६ ५७ में २०४ थी।

(४) नैमित्तिक वयस्क पुरुष श्रमिक १९५६ ५७ में १९८ दिन तथा १९५० ५१ में ८० दिन बेरोजगार रहते थे।

दोनों पूछताछों में रोजगार सम्बन्धी आंकड़े एकत्रित करने में कुछ भिन्नता थी। प्रथम पूछताछ में रोजगार सम्बन्धी आंकड़े पूर्णरूप से एकत्रित नहीं किए गए थे तथा स्वयं के रोजगार के आंकड़े भी पृथक रूप से एकत्रित नहीं किए गए थे वरन्, उनका अनुमान लगा लिया गया था। कार्य की गहनता के सम्बन्ध में भी भिन्नता पाई जाती थी।

मजदूरी —(Wages)—

(१) कृषि श्रमिक परिवारों की कृषि कार्यों तथा गैर कृषि कार्यों से औसत आय १९५० ५१ में ७६% थी तथा १९५६ ५७ में ८१% थी। १९५० ५१ में ५९% तथा १९५६ ५७ में ४२·७% कार्य दिनों के लिए नकदी में भुगतान किया गया था। जिन्स में पूर्णरूप से अदायगी १९५० ५१ में ३१ १ प्रतिशत तथा १९५६ ५७ में ४० ५% कार्य दिनों के लिए की गई थी। १९५० ५१ में ९ ८% तथा १९५६ ५७ में १० ८% कार्य दिनों के लिए भुगतान जिन्स और नकदी दोनों के रूप में किया गया था।

(२) वयस्क पुरुष श्रमिक की औसत दैनिक मजदूरी १९५०–५१ में १ ० रुपए थी जो गिरकर १९५६ ५७ में ९६ न० पै० रह गई थी। वयस्क महिला श्रमिकों की भी औसत दैनिक मजदूरी १९५०–५१ में ६८ न० पै० थी और १९५६ ५७ में ५९ न० पै० रह गई थी। बाल श्रमिकों की औसत दैनिक मजदूरी १९५० ५१ में ७० न० पै० तथा १९५६ ५७ में ५३ न० पै० थी।

(३) दोनों पूछताछों में औसत मजदूरी की तुलना करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि भुगतान पद्धतियों जिन्स और नकदी म अदायगी की महत्ता आदि में भिन्नता थी तथा जिन्स अदायगी का मूल्यांकन १९५६ ५७ में तो थोक कीमतों के अनुसार किया गया था तथा १९५०–५१ में फुटकर कीमतों के अनुसार किया गया था।

(४) कृषि में कुल मजदूरी का अनुमान १९५६–५७ म लगभग ५२० करोड़ रु० था और १९५०–५१ में ५०० करोड़ रु० था। इस वृद्धि का कारण यह था कि १९५६–५७ में सम्बद्ध श्रमिक परिवारों का औसत (लगभग २७ प्रतिशत) १९५०–५१ के औसत (लगभग १० प्रतिशत) से अधिक था और सम्बद्ध श्रमिक परिवारों की वार्षिक औसत आय १९५६–५७ म १९५०–५१ की अपेक्षा अधिक थी।

पारिवारिक आय —(Household Income)

(१) कृषि श्रमिक परिवार की वार्षिक औसत आय १९५०–५१ में ४४७ रु० थी और १९५६–५७ में ४३७ रु० थी।

(२) विभिन्न स्रोतों से कृषि श्रमिक परिवारों को दोनों पूछताछों की अवधि में जो औसत आय हुई वह निम्न प्रकार थी (कोष्ठक में दिए गये आँकड़े तमाम स्रोतों से जो आय हुई उसका प्रतिशत बताते हैं)

आय का स्रोत	१९५१–५२ (रु०)	१९५६–५७ (रु०)
(क) भूमि की जुताई से	५६ ९० (११·४६)	३० ०७ (६ ८७)
(ख) कृषि श्रम से	२८६ ९० (५४·२०)	३१६ ५५ (७१ ४)
(ग) गैर-कृषि श्रम से	५१ १६ (११ ९०)	३४ ६४ (७ ९९)
(घ) अन्य	४५ ६४ (१० ५१)	५२ ९१ (१२ १०)

खेतों की जुताई से तथा गैर-कृषि श्रम से तो आय १९५६–५७ में कम हो गई थी परन्तु कृषि श्रम से आय बढ़ गई थी।

उपभोग तथा निर्वाह लागत व्यय —(Consumption and Cost of Living)

(१) कृषि श्रमिक परिवार का वार्षिक औसत उपभोग व्यय १९५ –५१ में ४६१ रु था जो बढ़कर १९५६–५७ में ६१७ रु० हो गया। विभिन्न मदों पर दोनों वर्षों में प्रतिशत व्यय निम्न प्रकार था —

	१९५०–५१	१९५६–५७
भोजन	८५ ३	७७ ३
कपड़ा तथा जूता	६ ३	६ १
ईंधन व प्रकाश	१ १	७ ९
विविध मद तथा सेवाएँ	७ ३	८·७

(२) १९५६–५७ में प्रति परिवार औसत आय ४३७ रु० थी परन्तु औसत उपभोग व्यय ६१७ रु० था। इस प्रकार १८० रु० का घाटा था। इस घाटे की पूर्ति पिछली बचत सम्पत्ति का क्रय दूसरे साधनों से धन की प्राप्ति तथा ऋण लेकर की गई थी।

ऋणग्रस्तता :—(Indebtedness)

(१) १९५६–५७ में ६४% और १९५०–५१ में ४५% कृषि श्रमिक परिवार ऋण-ग्रस्त थे। १९५०–५१ में प्रति परिवार ऋण की औसत मात्रा ४७ रुपये थी और १९५६–५७ में ८८ रु थी।

(२) प्रति ऋणग्रस्त परिवार का औसत ऋण जो १९५०–५१ में १०५ रु० से बढ़कर १९५६–५७ में १३८ रुपए हो गया था।

(३) कृषि श्रमिक परिवारों का कुल अनुमानित ऋण १९५६–५७ में १४१ रु० था तथा १९५०–५१ में ८० करोड़ रु० था।

(४) कुल ऋण में से लगभग ४६% ऋण तो उपभोग व्यय के लिए लिया गया था। सामाजिक कार्यों के लिए ऋण का प्रतिशत २४ तथा उत्पादन कार्यों के लिए १६ था। शेष ११% ऋण विविध मदों पर व्यय करने के लिए लिया गया था।

(५) कुल ऋण में से ३४% महाजन से ४४% मित्रों व सम्बन्धियों से, १२% मालिकों से, ५% दुकानदारों से तथा १% सहकारी साख समितियों से लिया गया था।

बेगार की समस्या —(Problem of Forced Labour)

बेगार या अनिवार्य श्रम से उस कार्य या सेवा से अभिप्राय है जिसके लिये चाहे मजदूरी अदा की जाती हो या न की जाती हो परन्तु जो किसी व्यक्ति से उसकी इच्छा के विरुद्ध बलपूर्वक कराई जाती है। यह बेगार की समस्या एक गम्भीर सामाजिक बुराई है और यह बुराई ग्रामीण भारत के अनेक भागों में पाई जाती है। जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कृषि श्रमिक पूछताछ ने कुछ पिछड़े हुये गांवों में इस दासता की प्रथा के पाए जाने की ओर संकेत किया है। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के सन् १९३० के बेगार से सम्बन्धित अभिसमय के परिणामस्वरूप सन् १९३१ में भारतीय विधान ने एक प्रस्ताव पारित किया था जिसमें भारत सरकार से यह मांग की गयी थी कि वह इस बेगार की बुराई को दूर करने के लिये कुछ आवश्यक कार्यवाही करे। फलस्वरूप भारत सरकार ने प्रान्तीय सरकारों को यह आदेश दिया कि वे उन विभिन्न अधिनियमों की जाँच करें जिनके अन्तर्गत बेगार ली जाती थी। ऐसे अधिनियम अपराधी प्रवृत्ति की जातियों से और अच्छा व्यवहार करने वाले कैदियों को छोड़ने के सम्बन्ध में थे। इसी प्रकार के कुछ अन्य सामाजिक विधान भी थे। राज्य सरकारों को यह भी आदेश दिया गया कि वे यथासम्भव शीघ्रातिशीघ्र इस बेगार की प्रथा को समाप्त कर दें। इसके अतिरिक्त भारत सरकार ने केन्द्रीय अधिनियमों की भी जांच की। जमींदार या अन्य लोग व्यक्तिगत रूप से बेगार न ले सकें इसके लिये सन् १८०६ के बंगाल विनियमन अधिनियम में तथा मालगुजारी के कुछ अधिनियमों में संशोधन किए गए। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने दौरा करने वाले अधिकारियों द्वारा इस बेगार लेने की प्रथा को रोकने के लिये प्रशासनिक आदेश भी जारी किए। अनेक देशी राज्यों ने भी बेगार के विषय पर विधान बनाए थे।

परन्तु इस प्रथा में अधिक परिवर्तन नहीं हो सका। इसलिए सन् १९४० में भारत सरकार ने केन्द्रीय प्रान्तीय तथा भारतीय राज्यों के विभिन्न अधिनियमों तथा बेगार पर उपलब्ध सम्पूर्ण साहित्य का अध्ययन करने के लिए एक विशेष अधिकारी नियुक्त किया। इस अधिकारी को इस विषय पर रिपोर्ट देनी थी कि तत्कालीन विधान किस सीमा तक बेगार को रोकने में समर्थ था तथा भविष्य में इस बेगार को रोकने के लिये क्या करना आवश्यक था। यह रिपोर्ट जो प्रस्तुत की जा चुकी है कई स्थानों पर बेगार की बुराइयों की ओर संकेत करती है तथा बेगार करने वाले श्रमिकों के प्रसार आदि के सम्बन्ध में व्यापक सूचनाएं देती है।

निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत बेगार का वर्गीकरण किया जा सकता है—(१) सार्वजनिक कार्यों के लिए सरकार द्वारा वैध रूप से ली गई अधिग्रहण (Requisitioned) बेगार। (२) जमींदारों या ऋण-दाताओं द्वारा बलपूर्वक ली गई बेगार, तथा (३) रीति-रिवाजों के अन्तर्गत ली जाने वाली बेगार, जो निजी व्यक्तियों द्वारा ली जाती है।

अपने कर्तव्य पालन में सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा अनिवार्य श्रम, या बेगार, सार्वजनिक कार्यों के लिए, सभी वर्गों के व्यक्तियों से ली जाती है। उदाहरणार्थ लोगों को अनिवार्य रूप से कुछ कार्य करने पड़ते हैं, जैसे पुलिस या मजिस्ट्रेट को किसी अपराध की सूचना देना किसी अपराधी को पकड़ना, किसी सार्वजनिक अधिकारी को उसके कर्तव्य-पालन में सहायता देना सार्वजनिक सम्पत्ति की सफाई या देखरेख करना आग, बाढ़, महामारी आदि जैसे संकटों में सहायता देना और सार्वजनिक हित के कार्य करना आदि। यह भी देखा गया है कि कुछ अधिनियमों में ऐसे उपबन्ध हैं जिनके अन्तर्गत कुछ विशेष कार्यों के लिए बेगार की अनुमति या सुविधा है। भारत सरकार इन अधिनियमों में संशोधन करने का विचार कर रही है।

अन्य प्रकार की एक और बेगार भी है। यह बेगार जमींदार अपने आसामियों तथा गांव के अन्य निवासियों से अपने स्वामित्व के बल पर लेते रहे हैं। वास्तव में इन जमींदारों को अपने आसामियों से लगान लेने के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त करने का अधिकार नहीं होता है। सभी प्रदेशीय सरकारों ने अपने रैयतवारी विधान में ऐसी व्यवस्था की है, जिसके अन्तर्गत आसामियों से अवैधानिक रूप से बेगारें या सेवायें लेना एक दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। लेकिन इन सब बातों के होते हुए भी मालिक वर्ग न कई बार आसामियों को बिना मजदूरी दिए या थोड़ी सी मजदूरी देकर अपने खेतों पर कार्य करने के लिए विवश कर देते हैं। कभी-कभी यह जमींदार गांव के कुछ निवासियों को मकानों के लिये या खेती के लिये भूमि दे देते हैं, जिसका लगान उन्हें या तो नकद रूप में अदा करना पड़ता है या फिर उपज के कुछ भाग के रूप में। ऐसे आसामी को प्रायः या तो अपने जमींदार के खेतों में कार्य करना पड़ता है या फिर उसके कुछ घरेलू कार्य करने पड़ते हैं। अनेक बार तो उसके परिवार के सदस्यों को भी जमींदार के लिये कार्य करना पड़ता है, जिसके लिए प्रायः उन्हें कोई मजदूरी नहीं दी जाती और यदि दी भी जाती है तो वह बहुत कम होती है। इस सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि आसामी न तो कार्य करने के लिये मना ही कर सकते हैं और न मजदूरी ही के लिये किसी प्रकार का मोल भाव कर सकते हैं क्योंकि उन्हें इस बात का भय होता है कि कहीं ऐसा न हो कि उन्हें उनके खेतों या मकान की भूमि से निकाल दिया जाय। भारत में अनेक ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ-जहाँ यह जमींदारी प्रथा विद्यमान थी या विद्यमान है वहाँ जमींदारों द्वारा बेगार लिए जाने के विषय में साधारणतया यही बातें अधिक पाई गई हैं।

इसके अतिरिक्त एक और बेगार है। यह बेगार ऋणदाता लेते हैं। वास

श्रमिकों का वर्णन करते समय इस बेगार का उल्लेख किया जा चुका है। कभी-कभी जमींदार अपने आसामियों को ऋण देते हैं, तथा मकानों के लिये भूमि देते हैं और इस प्रकार सदा के लिए उन्हें अपने यहाँ नौकरी करने के बन्धन में आबद्ध कर लेते हैं। यह प्रथा ग्रामीण भारत के अनेक भागों में प्रचलित है। इस प्रथा को भिन्न-भिन्न नाम भी दिए गए हैं। उदाहरणार्थ उत्तर प्रदेश, बिहार तथा मध्य भारत के कुछ भागों में इस प्रथा को 'हरवाही' पद्धति कहते हैं। यही प्रथा बिहार के अन्य भागों में 'कैमुती', उड़ीसा तथा मद्रास के कुछ भागों में 'गोटी', मद्रास के कुछ अन्य भागों में 'बघ' तथा गुजरात आदि में 'हाली' कहलाती है। ऋण के लेने-देने में कानूनी दायित्व केवल इतना ही होता है कि ऋण को ब्याज सहित चुका दिया जाए। लेकिन इस प्रथा के अन्तर्गत जब तक ऋण की अदायगी नहीं हो जाती देनदार को अपने ऋणदाता के लिए शारीरिक श्रम करना पड़ता है। यह ऋण यथार्थ में घटने की अपेक्षा बढ़ता ही चला जाता है। ऐसा भी होता है कि देनदार तथा कभी-कभी उसके परिवार के सदस्य भी आजीवन के लिए इस बन्धन में बंध जाते हैं और देनदार की मृत्यु के बाद भी उसके पुत्र को पैतृक सम्पत्ति के रूप में अपने पिता के सभी अधिकारों तथा दायित्वों का भार वहन करना पड़ता है। अनेक प्रदेशीय सरकारों ने इस बुराई को दूर करने के लिये पग उठाए हैं। सन् १९२० में बिहार तथा उड़ीसा सरकार ने इस बुराई को जड़ से दूर करने के लिए "बिहार तथा उड़ीसा कैमुनी समझौता अधिनियम" पारित किया। मद्रास सरकार ने सन् १९४० में "मद्रास अभिकरण ऋण दासत्व उन्मूलन विनियमन" (Madras Agency Debt Bondage Abolition Regulation) पारित किया। उड़ीसा सरकार ने सन् १९४८ में उड़ीसा ऋण दासत्व उन्मूलन विनियमन बनाया। अन्य प्रदेशीय सरकारों के ऋण विधान ने भी कुछ सीमा तक इस प्रथा की बुराई को कम करने में सहायता दी है।

इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में परम्परागत बेगार भी पाई जाती है। चमारों, कुम्हारों, नाइयों तथा धोबियों आदि द्वारा अन्य वर्गों के व्यक्तियों के प्रति की गयी व्यावसायिक सेवायें इसी बेगार के अन्तर्गत आती हैं। इन सेवाओं के लिए पारिश्रमिक या तो कटाई के समय कृषि की कुछ उपज के रूप में या उत्सवों या त्यौहारों के अवसर पर भोजन तथा कपड़ों के कुछ उपहारों के रूप में दिया जाता है। इस प्रकार की बेगार सामान्यतया दोनों पक्षों के लिए लाभदायक समझी जाती है। लेकिन इस पद्धति में भी शोषण का अवसर रहता है। आजकल आधुनिक शिक्षा के प्रभाव तथा गाँवों की पृथकता समाप्त हो जाने के कारण इस प्रकार की सेवायें अधिक प्रचलित नहीं हैं और ऐसे लोग जो इस प्रकार की सेवायें करते हैं अब सामान्यतया नकद रूप में उचित मजदूरी की अदायगी की माँग करते हैं।

इन सब बातों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि किसी भी प्रकार की बेगार लेना अच्छा नहीं है। इस प्रकार की बेगार मानवी सम्मान के सर्वदा विरुद्ध

निम्नलिखित तीन शीर्षकों के अन्तर्गत बेगार का वर्गीकरण किया जा सकता
है—(१) सार्वजनिक कार्यों के लिए सरकार द्वारा वैध रूप से ली गई अधिग्रहण
(Requisitioned) बेगार। (२) जमींदारों या ऋण-दाताओं द्वारा बलपूर्वक ली गई
बेगार, तथा (३) रीति-रिवाजों के अन्तर्गत ली जाने वाली बेगार, जो निजी व्यक्तियों
द्वारा ली जाती है।

अपने कर्तव्य पालन में सार्वजनिक अधिकारियों द्वारा अनिवार्य श्रम, या
बेगार, सार्वजनिक कार्यों के लिए, सभी वर्गों के व्यक्तियों से ली जाती है। उदा
हरणार्थ, लोगों को अनिवार्य रूप से कुछ कार्य करने पड़ते हैं, जैसे पुलिस या मजिस्ट्रेट
को किसी अपराध की सूचना देना किसी अपराधी को पकड़ना, किसी सार्वजनिक
अधिकारी को उसके कर्तव्य-पालन में सहायता देना, सार्वजनिक सम्पत्ति की सफाई
या देखरेख करना, आग, बाढ़, महामारी आदि जैसे संकटों में सहायता देना और
सार्वजनिक हित के कार्य करना आदि। यह भी देखा गया है कि कुछ अधिनियमों में
ऐसे उपबन्ध हैं जिनके अन्तर्गत कुछ विशेष कार्यों के लिए बेगार की अनुमति या
सुविधा है। भारत सरकार इन अधिनियमों में संशोधन करने का विचार कर रही है।

अन्य प्रकार की एक और बगार भी है। यह बेगार जमींदार अपने आसामिय
तथा गांव के अन्य निवासियों से अपने स्वामित्व के बल पर लेते रहे हैं। वास्तव में इन
जमींदारों को अपने आसामियों से लगान लेने के अतिरिक्त और कुछ प्राप्त कर
का अधिकार नहीं होता है। सभी प्रदेशीय सरकारों ने अपने ऐच्छिक विधान द्वा
ऐसी व्यवस्था की है, जिसके अन्तर्गत आसामियों से अवैधानिक रूप से बेगारें
सेवायें लेना एक दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया गया है। लेकिन इन सब बा
के होते हुए भी मालिक वर्ष में कई बार आसामियों को बिना मजदूरी दिए या बा
सी मजदूरी देकर अपने खेतों पर कार्य करने के लिए विवश कर देते हैं। कभी-क
यह जमींदार गांव के कुछ निवासियों को मकानों के लिये या खेती के लिये भूमि
देते हैं, जिसका लगान उन्हें या तो नकद रूप में अदा करना पड़ता है या फिर उ
के कुछ भाग के रूप में। ऐसे आसामी को प्रायः या तो अपने जमींदार के खेतों
कार्य करना पड़ता है या फिर उसके कुछ घरेलू कार्य करने पड़ते हैं। अनेक बार ए
उसके परिवार के सदस्यों को भी जमींदार के लिये कार्य करना पड़ता है, जिसके लि
प्रायः उन्हें कोई मजदूरी नहीं दी जाती और यदि दी भी जाती है, तो वह बहुत कम
होती है। इस सम्बन्ध में विशेष बात यह है कि आसामी न तो कार्य करने के लि
मना ही कर सकते हैं और न मजदूरी ही के लिये किसी प्रकार का मोल भाव कर
सकते हैं क्योंकि उन्हें इस बात का भय होता है कि कहीं ऐसा न हो कि उन्हें उन
खेतों या मकान की भूमि से निकाल दिया जाय। भारत में अनेक ग्रामीण क्षेत्रों
जहाँ-जहाँ यह जमींदारी प्रथा विद्यमान थी या विद्यमान है वहाँ जमींदारों द्वार
बेगार लिए जाने के विषय में साधारणतया यही बातें अधिक पाई गई हैं।

इसके अतिरिक्त एक और बेगार है। यह बेगार ऋणदाता लेते हैं। दास-

उपसंहार :—

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कृषि श्रमिकों की समस्याओं को हल करने का प्रश्न वर्तमान समय का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। कृषि श्रमिकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रत्येक ऐसी परिस्थिति जिसके कारण छोटे-छोटे काश्तकारों की आर्थिक दशा दुर्बल हो जाती है कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि कर देती है। इसके फलस्वरूप उनकी मजदूरी की दरें बहुत कम हो गई हैं। मूल्यों में वृद्धि होने का लाभ भूमिधर कृषक वर्ग को ही मिला है। इसके साथ ही निर्वाह व्यय में वृद्धि होने से कृषि श्रमिकों पर ऋण का भार और भी बढ़ गया है। भूमि की माँग के बढ़ जाने के कारण गाँवों में चरागाह समाप्त होते जा रहे हैं। इसलिए कृषि श्रमिक अपनी आय की कमी को पूरा करने के लिये दुधारी पशुओं को भी नहीं पाल पाते। उद्योगों में जो विवेकीकरण किया जा रहा है उसका प्रभाव भी कृषि श्रमिकों पर पड़ेगा क्योंकि कृषि व्यवसाय पर भार अधिक हो जायेगा। कृषि में मध्यस्थों की प्रथा के समाप्त हो जाने से भी भूमिधर किसान और कृषि श्रमिकों के मध्य आपसी सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे हैं। छोटे-छोटे ऐसे जमींदार भी जो विभिन्न राज्यों में अनेक जमींदारी उन्मूलन अधिनियमों के लागू हो जाने से समाप्त हो गये हैं इस कृषि श्रमिक वर्ग की संख्या में वृद्धि कर रहे हैं। इस प्रकार कृषि श्रमिकों की वर्तमान दशायें बहुत ही असन्तोषजनक हैं। "उन्हें वर्ष में केवल ६ महीने के लिये रोजगार मिलता है चौपायों और पशुओं के साथ एक ही मकान में रहना पड़ता है तथा भोजन भी उन्हें बहुधा आधे पेट ही मिलता है। परिणाम यह होता है कि वे बड़ी आसानी से महामारियों और साहूकारों के शिकार हो जाते हैं और बहुत ही कम मजदूरी पर उन्हें बेगार करनी पड़ जाती है।" जनसंख्या में वृद्धि से तथा बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार में कोई विशेष अन्तर न होने की कठिनाई से यह समस्या और भी जटिल हो गयी है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से कृषि श्रमिकों ने जमींदारों का परम्परागत संरक्षण भी खो दिया है। गाँवों में अब जो नये स्वामी और नेता बने हैं, उनका इन श्रमिकों के प्रति व्यवहार और भी बुरा है।

कृषि श्रमिकों की दशाओं में सुधार करने के लिए सर्वांगीण प्रयत्नों की बड़ी आवश्यकता है। यह समस्या कृषि में सामान्य सुधार तथा परती भूमि के पुनरुद्धार तथा अन्य ऐसे विषयों से सम्बन्धित है जैसे ग्रामीण आवास स्वच्छता तथा स्वास्थ्य योजनायें, वयस्क शिक्षा, श्रमिकों की ऋणग्रस्तता से निवृत्ति बहुउद्देशीय सहकारी समितियों की स्थापना, ग्राम पंचायतों का निर्माण, आदि। अनेक प्रदेशीय सरकारें कृषि श्रमिकों के कल्याण के लिए इन विषयों पर पहले ही कुछ पग उठा चुकी हैं। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में भी भूमिहीन श्रमिकों तथा छोटे की जोतों के मालिकों को भूमि देने की नीति पर अधिक बल दिया गया है। अभी हाल ही में पुनरुद्धारित की गयी भूमि तथा ऐसी भूमि जो अब तक बेकार पड़ी हुई थी उनके लिए पहले ही अलग कर दी गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए २ करोड़ रुपये की धन राशि

है। जिस व्यक्ति से भी बेगार के किसी काम के लिये कहा जाता है, वह साधारणतया बुरी तरह रुष्ट होता है, चाहे वह काम सार्वजनिक हित के लिये ही क्यों न हो। अतः भारतीय संविधान के अनुच्छेद २३ के अन्तर्गत मनुष्य जाति का पण्यन तथा हर प्रकार की बेगार को निषेध कर दिया गया है। परन्तु सार्वजनिक कार्यों के लिए राज्य द्वारा कुछ अनिवार्य सेवायें बलपूर्वक ली जा सकती हैं। भारतीय दण्ड विधान की धारा ३७४ में भी इस बात की व्यवस्था की गयी है कि जो लोग अवैध रूप से बेगार लेते हैं उन्हें या तो कारावास का दण्ड दिया जा सकता है या उन पर कुछ जुर्माना किया जा सकता है। सन् १९२४ के 'अपराधी जाति अधिनियम' में कुछ सीमा तक बेगार लेने की अनुमति दी गई थी परन्तु इस अधिनियम को १९५२ में निरस्त कर दिया गया। १९५७ में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के ४० वें अधिवेशन में बेगार उन्मूलन पर एक अभिसमय (अभिसमय न० १०५) अपनाया गया। यह अभिसमय इस बात की सिफारिश करता है कि समस्त सदस्य राष्ट्रों को तत्काल और पूर्णरूप से बेगार या अनिवार्य श्रम समाप्त करने के लिए प्रभावात्मक पग उठाने चाहिए। यह अभिसमय जनवरी १९५९ से लागू करने की सिफारिश थी। भारत ने इस अभिसमय को अभी तक नहीं अपनाया है।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन तथा कृषि श्रमिक —

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन अब कुछ समय से कृषि श्रमिकों में रुचि ले रहा है। मिश्रित सलाहकार कृषि समिति का प्रथम अधिवेशन सन् १९३८ में किया गया था और इसके पश्चात् युद्ध आरम्भ होने से पूर्व इस समिति के नियमित रूप से आठ अधिवेशन हुये। इसके पश्चात् अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने अपनी एक स्थायी कृषि समिति बनायी। यह समिति युद्ध-काल के उपरान्त पुनर्निर्मित की गयी। भारत ने इस समिति के विचार-विमर्श में सक्रिय भाग लिया है। सन् १९४७ में दिल्ली में तथा जनवरी सन् १९५० में 'न्यूवरा ईलिया' (श्री लंका) में किये गये एशियायी प्रादेशिक सम्मेलनों में कृषि रोजगार में मजदूरी के विनियमन के प्रश्न पर विचार किया गया था और सन् १९५० में अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के ३३ वें अधिवेशन के कार्यक्रम में 'कृषि में न्यूनतम मजदूरी निर्धारित करने की व्यवस्था' तथा 'कृषि में श्रम समस्यायें' नामक विषय विचार-विमर्श के लिए रखने गए थे। सन् १९५१ में सम्मेलन के ३४ वें अधिवेशन तथा सन् १९५२ के ३५ वें अधिवेशन में 'कृषि में सवेतन छुट्टियों' के विषय पर विचार किया गया। 'कृषि में व्यावसायिक प्रशिक्षण' तथा 'कृषि में किशोरों तथा बालकों के रोजगार' से सम्बद्ध प्रस्तावों को स्थायी कृषि समिति द्वारा पारित किया गया था। सन् १९५५ में सम्मेलन के ३८ वें अधिवेशन में 'कृषि के व्यावसायिक प्रशिक्षण' पर विचार हुआ। स्थायी कृषि समिति तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की एशियायी सलाहकार समिति ने भी समय-समय पर कृषि श्रमिकों की विभिन्न समस्याओं पर विचार-विमर्श किया है।

उपसंहार —

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि कृषि श्रमिकों की समस्याओं को हल करने का प्रश्न वर्तमान समय का अत्यन्त महत्वपूर्ण प्रश्न है। कृषि श्रमिकों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। प्रत्येक ऐसी परिस्थिति जिसके कारण छोटे-छोटे काश्तकारों की आर्थिक दशा दुर्बल हो जाती है कृषि श्रमिकों की संख्या में वृद्धि कर देती है। इसके फलस्वरूप उनकी मजदूरी की दरें बहुत कम हो गई हैं। मूल्यों में वृद्धि होने का लाभ भूमिधर कृषक वर्ग को ही मिला है। इसके साथ ही निर्वाह व्यय में वृद्धि होने से कृषि श्रमिकों पर ऋण का भार और भी बढ़ गया है। भूमि की माँग के बढ़ जाने के कारण गाँवों में चरागाह समाप्त होते जा रहे हैं। इसलिये कृषि श्रमिक अपनी आय की कमी को पूरा करने के लिये दुधारी पशुओं को भी नहीं पाल पाते। उद्योगों में जो विवेकीकरण किया जा रहा है उसका प्रभाव भी कृषि श्रमिकों पर पड़ेगा क्योंकि कृषि व्यवसाय पर भार अधिक हो जायेगा। कृषि में मध्यस्थों की प्रथा के समाप्त हो जाने से भी भूमिधर किसान और कृषि श्रमिकों के मध्य आपसी सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे हैं। छोटे-छोटे ऐसे जमींदार भी जो विभिन्न राज्यों में अनेक 'जमींदारी उन्मूलन अधिनियमों' के लागू हो जाने से समाप्त हो गये हैं, इस कृषि श्रमिक वर्ग की संख्या में वृद्धि कर रहे हैं। इस प्रकार कृषि श्रमिकों की वर्तमान दशायें बहुत ही असन्तोषजनक हैं। "उन्हें वर्ष में केवल ६ महीने के लिये रोजगार मिलता है, चौपायों और पशुओं के साथ एक ही मकान में रहना पड़ता है तथा भोजन भी उन्हें बहुधा आधे पेट ही मिलता है। परिणाम यह होता है कि वे बड़ी आसानी से महामारियों और साहूकारों के शिकार हो जाते हैं और बहुत ही कम मजदूरी पर उन्हें बेगार करनी पड़ जाती है।" जनसंख्या में वृद्धि से तथा बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार में कोई विशेष अन्तर न होने की कठिनाई से यह समस्या और भी जटिल हो गयी है। जमींदारी प्रथा के उन्मूलन से कृषि श्रमिकों ने जमींदारों का परम्परागत संरक्षण भी खो दिया है। गाँवों में अब जो नये स्वामी और नेता बने हैं, उनका इन श्रमिकों के प्रति व्यवहार और भी बुरा है।

कृषि श्रमिकों की दशाओं में सुधार करने के लिए सर्वांगीण प्रयत्नों की बड़ी आवश्यकता है। यह समस्या कृषि में सामान्य सुधार तथा परती भूमि के पुनरुद्धार तथा अन्य ऐसे विषयों से सम्बन्धित है जैसे ग्रामीण आवास, स्वच्छता तथा स्वास्थ्य योजनाएँ, वयस्क शिक्षा, श्रमिकों की ऋणग्रस्तता से निवृत्ति, बहुद्देशीय सहकारी समितियों की स्थापना, ग्राम पंचायतों का निर्माण आदि। अनेक प्रदेशीय सरकारें कृषि श्रमिकों के कल्याण के लिए इन विषयों पर पहले ही कुछ पग उठा चुकी हैं। प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में भी भूमिहीन श्रमिकों तथा छोटे की जोतों के मालिकों को भूमि देने की नीति पर अधिक बल दिया गया है। अभी हाल ही में पुनरुद्धारित की गयी भूमि तथा ऐसी भूमि जो अब तक बेकार पड़ी हुई थी उनके लिए पहले ही अलग कर दी गई है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए २ करोड़ रुपये की धन राशि

निश्चित की गई थी। एक करोड़ रुपये भूमिहीन श्रमिकों के पुनर्वास के लिए व्यय किए गए थे। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में यह सुझाव दिया गया था कि भूमिहीन श्रमिकों को भूमि पर फिर से बसाने के लिए व्यापक योजनाएं तयार की जाएं तथा इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए बोर्ड बनाए जाएं। श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों को प्रोत्साहन दिया जाना चाहिए तथा कृषि श्रमिकों को मकान बनाने के लिए भूमि भी बिना लागत के उपलब्ध होनी चाहिए। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में ५ करोड़ रुपये की लागत से २० हजार भूमिहीन श्रमिक परिवारों को १ लाख एकड़ भूमि पर बसाने की योजना थी तथा ऐसे श्रमिकों की कठिनाइयों को कम करने के लिए निम्नलिखित ४ सुझाव दिए गए थे —(१) कृषि उत्पादन में पर्याप्त वृद्धि करने और पशु पालन के लिए पग उठाने चाहिए। (२) कृषि कार्यों और ग्रामीण व कुटीर उद्योग धन्धों का विस्तृत रूप से विकास करके ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में ही रोजगार के अवसर प्रदान करने चाहिए। (३) भूमि का पुनर्वितरण करके तथा शिक्षा की सुविधाओं को विस्तृत करके हीन कृषि श्रमिकों का सामाजिक स्तर, कार्य कुशलता उत्साह तथा योग्यता में वृद्धि करनी चाहिए। (४) ग्रामीण क्षेत्र में जो विकास सम्बन्धी व्यय हो रहा है उसमें से अधिकांश व्यय कृषि श्रमिकों की रहन की दशाओं को उन्नति करने पर होना चाहिए। तृतीय पंचवर्षीय आयोजना में सहकारी श्रम समितियां बनाने तथा गाँवों में संकार्य परियोजनाओं (Works Programmes) पर बल दिया गया है ताकि ग्रामीण क्षेत्र में जो मानव शक्ति है उसका पूर्ण रूप से उपयोग हो सके और देहाती अर्थ-व्यवस्था का जो ढांचा खड़ा करने का प्रयत्न किया जा रहा है उसमें खेतीहर मजदूर पूरी तरह और बराबरी के आधार पर भाग ले सकें और उसका आर्थिक और सामाजिक स्तर शेष देहाती जनता के बराबर हो जाए।

इस सम्बन्ध में श्री विनोबा भावे के भूदान आन्दोलन का भी उल्लेख किया जा सकता है। इस आन्दोलन का उद्देश्य बड़े-बड़े जमींदारों में दानशीलता की प्रवृत्ति को उभार कर भूमिहीन श्रमिकों को भूमि दिलाना है। इस आन्दोलन की सहायता के लिए उत्तर प्रदेश में भूदान योजना अधिनियम भी पारित किया जा चुका है। सामुदायिक योजना और राष्ट्रीय विस्तार सेवा के अन्तर्गत भी कृषि श्रमिकों के कल्याण कार्यों पर बल दिया जा रहा है। परिगणित और पिछड़ी हुई जाति के बच्चों के लिए, जो अधिकतर भूमिहीन कृषक वर्ग के होते हैं, अब शिक्षा के लिए वजीफे, निःशुल्क पढ़ाई पुस्तकों के लिए अनुदान छात्रावास की सुविधाएं आदि प्रदान की जा रही हैं। ग्राम पंचायतें भी भूमिहीन श्रमिकों के लिए कल्याण कार्य करती हैं। इन सब बातों से यह प्रकट होता है कि कृषि श्रमिकों की समस्याओं पर सरकार तथा जनता द्वारा बहुत ही गम्भीर रूप से ध्यान दिया जा रहा है। फिर भी कृषि श्रमिकों की समस्याओं को मान्यता देने की और इन समस्याओं का यथार्थ रूप से समाधान करने की बहुत आवश्यकता है।

यह बात भी विशेष ध्यान देने योग्य है कि जब तक कृषि श्रमिक निराश और सन्तुष्ट रहते हैं वे खाद्य उत्पादन की वृद्धि में दत्तचित्त होकर योग नहीं दे सकते। सर्वत्र खाद्य की कमी के परिणामस्वरूप अधिक लागत पर अनाज का बहुत मात्रा में आयात करना पड़ता है। देश में जो सामान्य आर्थिक तंगी है उससे भी इस बात की आवश्यकता प्रतीत होती है कि खाद्य के उत्पादन में व्यापक रूप से वृद्धि की जाए ताकि अनाजों की लागत में आशातीत कमी की जा सके। परन्तु कितने खेद की बात है कि प्रति वर्ष लाखों टन अनाज की हमारे देश में हानि हो रही है। इसका कारण यह है कि कृषि श्रमिकों को अच्छी मजदूरी नहीं दी जाती भूमि पर उनका कोई अधिकार नहीं होता और वे काम करने में कोई रुचि नहीं लेते। श्री जगजीवन राम के शब्दों में "यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि यदि किसी भी स्थान पर निर्धनता होगी तो उसके कारण हर स्थान पर सम्पन्नता को खतरा उत्पन्न हो जाएगा। जो व्यक्ति कृषि वस्तुओं का उत्पादन कर रहे हैं उनकी निर्धनता और मलीनता से उत्पादन पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ रहा है। उत्पादन के लिए जो मानवी साधन आवश्यक होता है उसकी यदि हम उपेक्षा करेंगे तो समग्र सारे राष्ट्र को संकट पैदा हो जाएगा। अतीत काल से उपेक्षित तथा बुरी तरह शोषित कृषि श्रमिक वर्तमान समाज के अत्यन्त ही आर्थिक अंग हैं। अव्यवस्था और अशांति फैलाने वाले लोगों के यह बड़ी जल्दी शिकार हो जाते हैं। अतः इस खतरे को दूर करने के लिए यह आवश्यक है कि निर्धन परिश्रमी श्रमिकों के साथ सहानुभूति का व्यवहार किया जाए। प्रत्येक विचारशील प्राणी को यह अनुभव करना चाहिए कि इस समस्या का शीघ्रातिशीघ्र समाधान होना आवश्यक है। यदि इस समस्या की अधिक दिनों तक उपेक्षा की गई तो इसका सम्भावना कठिन हो जाएगा और फिर यह इतनी गम्भीर बन जाएगी कि इससे सामाजिक ढांचे को न केवल खतरा ही पहुँचेगा वरन् उसके नष्ट होने का भय उत्पन्न हो जायगा।" हमें आशा है कि भारत सरकार द्वारा पारित न्यूनतम मजदूरी अधिनियम कृषि श्रमिक पुनर्वास, राज्य सरकारों की विभिन्न योजनाएं और पंचवर्षीय आयोजनाओं के सुझाव सभी कृषि श्रमिकों की समस्या का समाधान करने में सहायक होंगे।

———

२४

श्रम और सहकारिता

(Labour and Co-operation)

सहकारिता का अर्थ और उसके सिद्धान्त—

सहकारिता व्यक्तियों के उस सामुदायिक भावना को कहते हैं जिसका उद्देश्य उचित साधनों द्वारा सामान्य आर्थिक उद्देश्यों को प्राप्त करना है। विभिन्न लेखकों ने सहकारिता की अनेक प्रकार से व्याख्या की है जिनका विशद उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त है कि जब व्यक्ति यह अनुभव करते हैं कि उनका किसी वर्ग द्वारा शोषण किया जा रहा है तब वह उस वर्ग से छुटकारा पाने के लिये स्वयं ही कार्य को अपने हाथ में ले लेते हैं। सहकारिता की अनेक ऐसी विशेषतायें हैं जिनके कारण एक सहकारी समिति और श्रमिक संघ जैसे अन्य संगठनों में अन्तर होता है। सहकारिता एक ऐसा संगठन है जिसमें पारस्परिक आर्थिक हित सम्पादन के लिए व्यक्ति समानता के आधार पर ऐच्छिक रूप से संगठित होते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि व्यक्ति मानव प्राणी के रूप में न कि पूँजीपति के रूप में संगठित होते हैं। यह सहकारिता का प्रथम सिद्धान्त है। दूसरे, सब सदस्य समानता के आधार पर संगठित होते हैं और आवश्यकताओं की सन्तुष्टि के उद्देश्य से उनके बीच कोई अन्तर नहीं होता। तीसरा सिद्धान्त यह है कि संगठित होने का कार्य ऐच्छिक होता है और उसमें कोई बंधन नहीं होता। चौथे सदस्य केवल स्वयं के हितों का सम्पादन करने के हेतु संगठित होते हैं और जो सदस्य नहीं हैं उनसे उनका सम्बन्ध नहीं होता। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि सहकारिता व्यवसाय संगठन का ही एक प्रकार है। अतः यह एक व्यवसाय संस्था भी है। सहकारी संगठन में लाभ का उद्देश्य भी हो सकता है परन्तु इस प्रकार के लाभ को स्वयं सदस्यों में बाँट लिया जाता है जो मालिक व कर्मचारी दोनों स्वयं ही होते हैं। सहकारिता का आधार पारस्परिक सहायता है अर्थात् प्रत्येक सदस्य सबके लिए और सब प्रत्येक सदस्य के लिए कार्य करते हैं। (All for each and each for all)

संगठन के अन्य प्रकार तथा सहकारिता —

सहकारिता पूँजीवादी व्यवस्था से भिन्न है। सहकारिता का उद्देश्य सदस्यों की आर्थिक स्थिति को सुधारना ही नहीं है वरन् उनके नैतिक स्तर को भी उन्नत करना है। यह समाजवाद से भी भिन्न है क्योंकि यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता का समर्थक है। इसका उद्देश्य यह है कि व्यक्ति भूमि और पूँजी का स्वामी बना रहे। सहकारिता राज्य के स्वामित्व का समर्थन नहीं करती। सहकारिता वर्तमान प्रणाली का ही एक

बंध है और इसका उद्देश्य सामाजिक व्यवस्था और वर्तमान आर्थिक व्यवस्था को उखाड़ फेंकना नहीं है। इसका उद्देश्य यह है कि शांति बनी रहे और झगड़ा न हो तथा व्यक्ति निस्वार्थ हों और केवल स्वयं का ही लाभ न देखें।

सहकारिता मिश्रित पूंजी कम्पनियों से भी भिन्न होती है क्योंकि वह कम्पनियां पूंजी की संस्था होती हैं। सहकारिता व्यक्तियों की एक संस्था है। मिश्रित पूंजी कम्पनियों (Joint Stock Companies) में मत का अधिकार व्यक्ति द्वारा क्रय किए गए शेयरों के आधार पर होता है, और इस प्रकार एक व्यक्ति एक से अधिक मत दे सकता है। सहकारिता 'एक व्यक्ति एक मत' के सिद्धांत पर आधारित होती है। इसमें इस बात का विचार नहीं किया जाता कि एक व्यक्ति के पास कितने शेयर हैं या उसका पूंजी में कितना अंशदान है। सहकारिता में मनुष्य प्रधान है पूंजी नहीं। इसका आधार केवल भौतिक ही नहीं है वरन सामाजिक और नैतिक भी है।

सहकारिता श्रमिक संघों से भी भिन्न होती है। श्रमिक संघ श्रमिकों के ऐसे संगठन होते हैं जो सामूहिक सौदाकारी और सामूहिक कार्यवाही के द्वारा अपने रहन सहन और कार्य की दशाओं को सुधारने तथा मजदूरी में वृद्धि करने के लिए बनाए जाते हैं। इस प्रकार श्रमिक संघ मजदूरी प्रणाली को मानकर चलते हैं और मालिकों से सौदा करते हैं। सहकारिता के अन्तर्गत किसी मजदूरी प्रणाली या मालिकों का प्रश्न ही पैदा नहीं होता प्रत्येक व्यक्ति स्वयं ही मालिक और श्रमिक होता है। श्रमिक संघ श्रमिकों के संगठन मात्र हैं जबकि सहकारिता एक व्यावसायिक संगठन का रूप है। श्रमिक संघ राजनैतिक गतिविधियों में भी भाग लेते हैं। सहकारी समितियों का ऐसा कोई उद्देश्य नहीं होता है।

सहकारिता के विचार का विकास —

समाज में निर्धनता व शोषण के होने से तथा उनके दुष्परिणामों से बचने की आवश्यकता के कारण सहकारिता का अभ्युदय हुआ। जब पूंजीवाद और स्वतन्त्र प्रतियोगिता के दोष बहुत गम्भीर हो गए तब ऐसे व्यक्तियों ने जो राज्य के हस्तक्षेप में विश्वास नहीं करते थे, शोषक वर्ग से बचने के लिए विभिन्न कार्यों को अपनी ही भलाई के लिए स्वयं ही करना शुरू कर दिया। सहकारिता को इस प्रकार हम पूंजीवाद एवं समाजवाद के बीच एक समझौता कह सकते हैं।

सहकारिता के अनेक प्रकार विभिन्न क्षेत्रों में सहकारिता आन्दोलन—

सहकारिता को आर्थिक गतिविधि के किसी भी क्षेत्र में प्रारम्भ किया जा सकता है। समाज में अनेक प्रकार की सहकारी समितियां पाई जाती हैं। सहकारिता के विचार का जन्म इंगलैण्ड में उस समय हुआ जब औद्योगिक क्रान्ति के दोषों के कारण श्रमजीवी-वर्ग के हितों का हनन होने लगा था तथा मध्यस्थों के द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण होता था। इस आन्दोलन के नेता रोबर्ट ओवन थे जिन्होंने न्यू लेनार्क में जहां इनका कारखाना था श्रमिकों की एक बस्ती का निर्माण किया।

उन्होंने श्रमिकों को व्यवसाय के प्रबन्ध में यथासम्भव भाग देने की व्यवस्था की। बाल श्रम को समाप्त करने, काम के घंटे घटाने तथा कुमजूरी को समाप्त करने जैसे महत्वपूर्ण सुधार भी रोबर्ट ओवन ने किए और श्रमिकों के लिए अनेक कल्याण कार्य भी किए। ओवन चाहते थे कि सहकारिता के आधार पर श्रमिकों को स्वयं ही प्रबंध का उत्तरदायित्व सौंपा जाय। उन्होंने निर्धन असहाय एवं बेकारों के लिए सहकारी गाँवों अथवा सहकारी बस्तियों के निर्माण का समर्थन किया जहाँ श्रमिकों को काम दिया जा सके और इस प्रकार उन्हें आत्म-निर्भर बनाया जा सके। सन् १८३२ में ओवन के अनुयायियों ने एक सहकारी समिति National Equitable Labour Exchange के नाम से स्थापित की। इस समिति में सब कारखानों के मजदूर ही थे जो माल बनाते भी थे और खरीदते भी थे। वस्तुओं का मूल्य मुद्रा में नहीं वरन् उन घंटों में निश्चित किया जाता था जो हर वस्तु के बनाने में लगते थे। इस प्रकार 'लाभ' का विचार ही समाप्त कर दिया गया था। रोबर्ट ओवन को अपने प्रयत्नों में विशेष सफलता न मिली क्योंकि इसने जनता के सामने ऐसे ऊँचे आदर्श रक्खे थे जिनको व्यावहारिक रूप में प्राप्त करना कठिन था।*

विभिन्न देशों में सहकारी आन्दोलन के उद्गम और उसके इतिहास का यहाँ विस्तृत रूप से उल्लेख करना आवश्यक नहीं है। यहाँ इतना उल्लेख करना ही पर्याप्त होगा कि मालिकों द्वारा श्रमिकों का शोषण करने के कारण ही श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों अर्थात् उत्पादक सहकारी समितियों का जन्म हुआ। इन समितियों में श्रमिक स्वयं ही विभिन्न कार्यों के प्रबन्धक बन जाते हैं और विभिन्न प्रकार की वस्तुओं का उत्पादन करते हैं। इस प्रकार की सहकारी समितियों में कोई मालिक अथवा कोई नौकर नहीं होता। इस विचार का जन्म रोबर्ट ओवन द्वारा इंग्लैण्ड में हुआ और फ्रांस में भी फैला यहाँ यह कुछ सीमा तक सफल रहा। मध्यस्थों द्वारा उपभोक्ताओं का शोषण होने से इंगलैण्ड में राकडेल के अग्रगामियों (Rochdale Pioneers) द्वारा वितरण सहकारिता अथवा उपभोक्ता सहकारी समितियों की स्थापना की गई जो बाद को अन्य देशों में भी फैल गयी। महाजन द्वारा ऋणी के शोषण के कारण जर्मनी में रैफिसन और 'शुल्जे' के तथा इटली में 'लीजीर लज्जटाई' के प्रयत्नों के द्वारा सहकारी साख समितियों की स्थापना हुई जो अन्य देशों में भी लोकप्रिय हो गयी। शीघ्र ही सहकारी आन्दोलन शक्तिशाली हो गया तथा कई अन्य प्रकार की सहकारी समितियों का भी जन्म हुआ। डेनमार्क में दुग्ध-उत्पादन (डेयरी) उद्योग में सहकारिता का प्रयोग बहुत सफल रहा है। अपने ही बाजार में बिक्री और आवास निर्माण जैसी अनेक अन्य आर्थिक क्रियाओं के लिए भी सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं। इसके अतिरिक्त सहकारी समितियाँ सदस्यों की शिक्षा मितव्ययता तथा नैतिक उत्थान की शिक्षा जैसे अन्य कार्य भी करती हैं।

*रॉबर्ट ओवन और उनके प्रयत्नों के विषय में प्रो० मनमोहन भटनागर की पुस्तक 'सहकारिता के सिद्धान्त एवं भारतीय सहकारिता' पृष्ठ १४–१६ देखिये।

सहकारिता के लाभ—

सहकारी आन्दोलन का यह संक्षिप्त वर्णन यहाँ केवल इस तथ्य की ओर संकेत करने के लिए दिया गया है कि सहकारिता निर्धन व असहाय व्यक्तियों के उत्थान के लिए बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हुई है। पिछड़े हुए देशों एव देश में पिछड़ी हुई जातियों के विकास व उन्नति के लिए सहकारिता एक अत्यन्त महत्वपूर्ण साधन है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि किसी बाह्य सहायता की अपेक्षा अपने ही प्रयत्नों एवं पारस्परिक सहायता द्वारा अधिक लाभ प्राप्त हो सकता है। सहकारिता देश में श्रमजीवी वर्ग की अवस्थाओं को सुधारने में भी बहुत महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकती है। भारत जैसे देश में सामान्य जनता के उत्थान के लिए तो सहकारिता की बहुत ही महत्ता है।

भारत में सहकारी आन्दोलन का संक्षिप्त इतिहास—

भारत में सहकारिता का जन्म ग्रामीण ऋणग्रस्तता एवं महाजन के अत्याचारों के कारण हुआ। १६ वीं शताब्दी के अन्त में मद्रास सरकार ने ग्रामीण ऋण की समस्या का अध्ययन करने के लिए श्री फ्रेडरिक निकलसन को नियुक्त किया। उनकी रिपोर्ट १८६७ में प्रकाशित हुई। उन्होंने ग्रामीण ऋण की समस्या को सुलझाने के लिए रैफिसन आधार की सहकारी साख समितियों की स्थापना का सुझाव दिया और अपनी रिपोर्ट का सारांश दो शब्दों में व्यक्त किया—"रैफिसन को खाओ" (Find Raiffeisen)। प्रारम्भ में उनकी रिपोर्ट पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। १६०२ में उत्तर प्रदेश के एक उच्च अधिकारी श्री डुपरनेक्स ने "The Peoples Bank of India" नामक पुस्तक लिखी तथा स्वयं अपने उत्तरदायित्व पर उत्तर प्रदेश में कुछ सहकारी समितियाँ बनाई। १६०१ के अकाल आयोग ने भी जोरदार शब्दों में साख संस्थाओं को प्रारम्भ करने की सिफारिश की थी। इन सबके परिणाम स्वरूप १६०४ में प्रथम सहकारी साख समिति अधिनियम पारित किया गया और इससे देश में सहकारी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ। इस अधिनियम के अनुसार सहकारी साख समितियाँ स्थापित की जा सकती थीं जिनको ग्रामीण एवं 'शहरी' दो श्रेणियों में विभाजित किया गया था। ग्रामीण समितियों में असीमित दायता के सिद्धान्त को रखा गया था। समितियों के कार्य की देखरेख करने के हेतु प्रत्येक प्रान्त में रजिस्ट्रार नियुक्त किए गए। सरकार ने आय-कर, रजिस्ट्रेशन शुल्क तथा स्टेम्प-कर आदि से छूट आदि अनेक रियायतें भी दीं।

इस अधिनियम का विस्तार करने तथा इसके दोषों को दूर करने के लिये १६१२ में 'सहकारी समिति अधिनियम' पारित किया गया। इसमें क्रय विक्रय उत्पादन बीमा, आवास जैसी गैर-साख समितियों के गठन की भी आज्ञा दे दी गई और देखभाल करने के लिए केन्द्रीय संगठनों को भी मान्यता दी गई। समितियों का वैधानिक रूप से वर्गीकरण किया गया अर्थात् ग्रामीण व शहरी समितियों के

स्थान पर अब इनका वर्गीकरण सीमित व असीमित देयता वाली समितियों के आधार पर किया गया।

इस अधिनियम के पारित होने के बाद समितियों की संख्या और सदस्यता में काफी वृद्धि हुई। १९१४ में सरकार ने आन्दोलन की समीक्षा करने के लिये मैकलेगन समिति नियुक्त की। समिति ने आन्दोलन के अनेक दोषों की ओर संकेत किया तथा सुधार के लिये कई महत्वपूर्ण सुझाव भी दिए परन्तु युद्ध छिड़ जाने के कारण इस पर कोई कार्यवाही नहीं की जा सकी। १९१९ के पश्चात् सहकारिता एक ऐसा प्रान्तीय विषय बन गया जिसके लिए मंत्रीगण विधान सभा के सम्मुख उत्तरदायी थे। मंत्रियों ने लोकप्रियता प्राप्त करने के उद्देश्य से सहकारिता का तीव्रता से विस्तार किया। बहुत बड़ी संख्या में समितियां बनाई गयीं परन्तु उनके गुण एवं सुनियोजन की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। १९२६ में रॉयल कृषि आयोग और प्रान्तीय व केन्द्रीय बैंकिंग जांच समिति ने भी सहकारिता के विचार और साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

१९२९ में आर्थिक मन्दी के प्रारम्भ होने से पूर्व तक यह आन्दोलन प्रगति करता रहा। परन्तु कृषि मूल्यों के गिरने तथा साथ ही किसानों की आय में कमी हो जाने के कारण आन्दोलन को बहुत बड़ा धक्का लगा। अनेक समितियों का समापन (Liquidation) हो गया तथा आन्दोलन के अनेक दोष सामने आ गए। १९३५ में रिजर्व बैंक ऑफ इण्डिया की स्थापना के पश्चात् यह आशा प्रकट की गई कि यह बैंक आन्दोलन की प्रगति में सहायता करेगा। कृषि साख की समस्याओं का अध्ययन करने के लिए रिजर्व बैंक ने एक कृषि साख विभाग भी खोला। परन्तु रिजर्व बैंक ने प्रारम्भ में इस सहकारिता आन्दोलन को कोई भी सहायता देने से तब तक के लिये इन्कार कर दिया जब तक की आन्दोलन स्वयं ही अपने दोषों को दूर न कर ले। परन्तु रिजर्व बैंक ने समय-समय पर अनेक रिपोर्टों एवं समालोचनाओं के द्वारा देश में सहकारिता आन्दोलन के पुनर्गठन एवं पुर्नवास के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण सुझाव दिए हैं। १९३७ में प्रान्तीय स्वायत्तता के पश्चात् मंत्रियों ने किसानों की अवस्थाओं में सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया और इसका प्रभाव सहकारी आन्दोलन पर भी पड़ा। परन्तु फिर भी युद्ध से पूर्व आन्दोलन की स्थिति विशेष सन्तोषजनक नहीं थी।

१९३९–४५ के युद्ध के समय और उसके पश्चात् कृषि वस्तुओं के मूल्य बढ़ जाने के कारण आन्दोलन की स्थिति में कुछ सुधार हुआ। सहकारी समितियों के सदस्यों ने अपने अधिकांश ऋणों को अदा कर दिया और इससे आन्दोलन की वित्तीय स्थिति अच्छी बन गई। उपभोक्ता सहकारिता एवं सहकारी खेती जैसी अन्य सहकारी क्रियाओं में भी पर्याप्त वृद्धि हुई। आन्दोलन की प्रगति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि १९३८–३९ में सहकारी आन्दोलन केवल ६ प्रतिशत जन संख्या तक पहुंच पाया था। १९४७–४६ में यह प्रतिशत १९ हो गई थी। १९४२

मे भारत सरकार ने 'सहकारिता आयोजन समिति' की नियुक्ति की। इसने आन्दोलन का विकास करने बहु-उद्देशीय समितियों का गठन करने तथा रिजर्व बैंक द्वारा अधिकाधिक सहायता देने की सिफारिश की। १९५१ में रिजर्व बैंक ने एक निर्देशन समिति नियुक्त की जिसने देश में ग्रामीण साख व्यवस्था का अध्ययन किया और १९५४ में अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। इसने ग्रामीण साख के लिये एक समन्वित (Integrated) योजना की सिफारिश की। इसके परिणामस्वरूप १ जुलाई १९५५ को इम्पीरियल बैंक को स्टेट बैंक ऑफ इण्डिया के रूप में परिणत कर दिया गया ताकि ग्रामीण क्षेत्रों में ४०० नयी शाखायें खोली जा सकें। १९५६ में रिजर्व बैंक ने कृषि साख के लिये दो निधियों की स्थापना की। १९५७ में केन्द्रीय गोदाम निगम की स्थापना हुई ताकि मुख्य-मुख्य केन्द्रों में १०० गोदामों की स्थापना की जा सके। १९५१ में भारत सरकार तथा रिजर्व बैंक ने सहकारी कर्मचारियों को सहकारिता में प्रशिक्षण देने के लिये संयुक्त रूप से मिलकर एक केन्द्रीय समिति की स्थापना की। पूना में एक सहकारी कालिज तथा पांच अन्य सहकारी प्रशिक्षण केन्द्रों की स्थापना भी की जा चुकी है। पंचवर्षीय आयोजनाओं में भी देश में सहकारिता को जो विकास का मुख्याधार बन गया है, भारत में विकास कार्यक्रमों के लिये बहुत महत्वपूर्ण बताया गया है। इस प्रकार से आन्दोलन का विशेषतया गैर-साख समितियों का निरन्तर विकास हुआ है तथा आन्दोलन का भविष्य भी उज्ज्वल प्रतीत होता है। जनवरी १९५९ में कांग्रेस दल ने अपने नागपुर अधिवेशन में एक नयी कृषि ढांचे (सहकारी खेती) की घोषणा की। पंचवर्षीय आयोजनों का मुख्य आधार भी सहकारिता को ही माना गया है। उत्तर प्रदेश में पंचायतों के साथ-साथ बहु उद्देशीय सहकारी समितियों की योजना लागू की जा चुकी है। सेवा सहकारी समितियों की स्थापना का कार्यक्रम भी आरम्भ कर दिया गया है। इसका उद्देश्य यह है कि चाहे उत्पादन या खेती का कार्य सदस्यों द्वारा व्यक्तिगत रूप से किया जाय परन्तु सामान्य सेवाएं 'सेवा सहकारी समितियों' द्वारा प्रदान की जाएं। यह भी प्रस्ताव है कि तृतीय पंचवर्षीय आयोजना के अन्त तक तमाम ग्रामीण परिवारों को सहकारिता आन्दोलन के अन्तर्गत ले लिया जाए।

भारत में सहकारी आन्दोलन के दोष —

भारत में सहकारी आन्दोलन को आरम्भ हुए लगभग ५५ वर्ष हो गए हैं और अभी तक इसका विकास बहुत उत्साहपूर्ण ढंग से नहीं हो पाया है। रॉयल कृषि आयोग ने कहा था कि "यदि भारत में सहकारिता असफल होती है तब भारतीय कृषि की उज्ज्वलतम आशायें असफल रहेंगी।"* हमारे देश के सहकारी आन्दोलन में अनेक त्रुटियां पाई गई हैं। सबसे बड़ा दोष जनसाधारण की अशिक्षितता है। लोग सहकारिता के सिद्धान्तों को ठीक प्रकार से नहीं समझते। गांवों में यह धारणा सी बन

* *"If Cooperation fails there will fail the best hope for Indian agriculture."*

गई है कि सहकारी समितियां केवल महाजनों की स्थानापन्न मात्र हैं। शहरों में भी अधिकतर यह देखा गया है कि लोग लाभ पाने के अधिक उत्सुक रहते हैं और अपनी समितियों के प्रबन्ध में विशेष रुचि नहीं लेते। अधिकतर समितियों में प्रबन्ध भी बड़ा ही दोषपूर्ण पाया जाता है। हिसाब किताब ठीक से नहीं रखा जाता है लेखा-परीक्षा ठीक से नहीं होती है और केवल फाइल व रिकार्ड रखने में ही अधिकतर समय और शक्ति नष्ट की जाती है। ऋण देने में पक्षपात होता है और परिणाम स्वरूप जरूरतमन्द व्यक्तियों को कभी-कभी ऋण नहीं मिल पाता है। किसी भी कृषक अथवा श्रमिक को कर्जे की तत्काल ही आवश्यकता हुआ करती है परन्तु इसके लिये उसे प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है और कई सप्ताह तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है। वह हताश होकर महाजन के पास जाने को बाध्य हो जाता है। समितियों के कर्मचारी भी अधिकतर प्रशिक्षित नहीं होते हैं। समितियों के धन में बेईमानी और गबन के भी अनेक उदाहरण पाये जाते हैं। ऋण का निश्चित तिथि पर भुगतान भी बहुत कम किया जाता है और बकाया राशि की मात्रा भी बहुत अधिक पाई जाती है। दिन प्रतिदिन के कार्यों के लिये बिना वेतन पर काम करने वालों पर बहुत अधिक निर्भर रहा जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रबन्ध में अकुशलता आ जाती है। आरम्भ में सहकारिता आन्दोलन केवल साख-समितियों पर बल देता रहा और काफी समय तक गैर-साख सहकारी कार्यों पर ध्यान नहीं दिया गया।

सहकारी आन्दोलन का एक अन्य दोष यह है कि अभी तक यह बहुत कम अनुभव किया गया है कि सहकारिता जनसाधारण का आन्दोलन है एवं इसके प्रबन्ध का भार भी जनता को ही सौंपना चाहिए। जनसाधारण पर सहकारिता सरकार द्वारा थोपी गयी है। समितियों के दिन प्रतिदिन के कार्यों में भी रजिस्ट्रार और सहायक रजिस्ट्रार द्वारा पर्याप्त हस्तक्षेप किया जाता है। इसके अतिरिक्त सहकारी आन्दोलन में राजनीति भी आ गई है और सहकारी खेती के कार्य क्रम में भी यह देखा गया है कि न केवल आपसी मतभेद है वरन् जो कुछ भी किया जा रहा है वह स्थानीय राजनैतिक नेताओं के कहने से और उनके प्रभाव से किया जा रहा है।

सहकारिता आन्दोलन का ढांचा —

आन्दोलन के ढांचे को केन्द्रीय सहकारी समितियों व प्रारम्भिक सहकारी समितियों के बीच विभाजित किया जा सकता है। केन्द्रीय सहकारी समितियां इस प्रकार हैं प्रान्तीय अर्थात् प्रदेशीय या शिखर सहकारी बैंक, केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा सहकारी संघ। इनका कार्य मुख्यतः निरीक्षण का तथा प्रारम्भिक समितियों को ऋण देने का है। समस्त राज्य के लिये एक सहकारी संस्था भी स्थापित किया जा सकता है। प्रारम्भिक समितियां कृषि अथवा गैर-कृषि होती हैं तथा साख अथवा गैर-साख समितियां होती हैं। कृषि सहकारिता साख समितियां कृषकों को रुपया उधार देने के लिये बनाई जाती हैं। बाजार में बिक्री करने औजारों की चकबन्दी करने अच्छे बीज व खाद का प्रबन्ध करने आदि कार्यों के लिये कृषि गैर-साख समितियों

की स्थापना की जाती है। औद्योगिक श्रमिकों, शिल्पियों आदि का ऋण देने के लिए गैर-कृषि साख समितियाँ बनाई जाती हैं। आवास निर्माण, बिक्री, उपभोक्ता उत्पादन आदि अनेक कार्यों के लिए गैर-कृषि गैर-साख समितियाँ स्थापित की जाती हैं। एक अन्य नये प्रकार की समिति बहु-उद्देश्य सहकारी समिति है। इसमें साख व गैर-साख दोनों ही प्रकार के कार्य सम्मिलित रहते हैं। इस प्रकार राज्य-स्तर पर शिखर सहकारी समितियाँ, जिला-स्तर पर केन्द्रीय सहकारी समितियाँ तथा स्थानीय स्तर पर प्रारम्भिक सहकारी समितियाँ होती हैं। एक नई प्रकार सेवा सहकारी समितियों की है जिसमें सामान्य सेवायें तो समिति द्वारा प्रदान होती हैं परन्तु उत्पादन व्यक्तिगत रूप से सदस्यों द्वारा किया जाता है।

सहकारिता एवं श्रम सहकारी उत्पादन —

सहकारी आन्दोलन के इस संक्षिप्त विवरण को ध्यान में रखते हुये अब हम भारत में श्रमिक वर्ग एवं सहकारिता के विषय पर विचार करेंगे। देश में औद्योगिक श्रमिकों के लिये सहकारी समितियों को प्रारम्भ करने की ओर अभी तक कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया है। प्रथम समस्या तो यह है कि देश में सहकारी उत्पादन समितियाँ स्थापित हो सकती हैं या नहीं। इंगलैंड में रोबर्ट ओवेन द्वारा औद्योगिक सहकारी समितियों को चलाने का प्रयत्न किया गया था। परन्तु इसमें वह सफल न हो सका था। वास्तव में सच तो यह है कि किसी भी देश में बड़े पैमाने के उद्योग में सहकारी उत्पादन सफल नहीं हुआ है। इसके कारण स्पष्ट हैं। प्रथम तो आर्थिक जीवन के विकास के साथ-साथ उत्पादन प्रक्रिया बड़ी विषम हो गई है। उद्यमकर्ता के कार्य इतने कठिन एवं अधिक हो गये हैं कि प्रत्येक व्यक्ति उन्हें सन्तोषजनक ढंग से पूरा नहीं कर सकता। उद्यमकर्ता के लिए पर्याप्त कुशलता एवं चातुर्य का होना आवश्यक है। इस प्रकार की उच्च योग्यता एवं कुशलता किसी साधारण श्रमिक में अथवा कारखाने में श्रमिकों के द्वारा चुने गए प्रतिनिधियों में पाना कठिन है। यह आशा नहीं की जा सकती कि उद्यमकर्ता के कार्यों को श्रमिक उतनी ही कुशलतापूर्वक निभा सकेंगे जितना कि योग्य एवं अनुभवी व्यक्ति कर सकते हैं और फिर उत्पादन की आधुनिक प्रक्रिया में अत्यधिक पूंजी की आवश्यकता होती है जिसको विनियोजित अथवा एकत्र करना श्रमिकों की क्षमता के बाहर है। यह भी कहा जा सकता है कि एक बड़ी सीमा तक श्रमिक स्वयं ही उत्पादन सहकारिता की असफलता के लिये उत्तरदायी हैं। उनमें पारस्परिक ईर्ष्या होती है तथा वह अपने ही साथी द्वारा दिये गए आदेशों एवं निर्देशों को उतनी ही योग्यता व वफादारी से पालन नहीं करते जितना कि वे किसी बाह्य उद्यमकर्ता अथवा प्रबन्धकर्ता के द्वारा दिए गए आदेशों का पालन करते हैं। अतः इंगलैंड व अन्य देशों में अनेक बार प्रयत्न करने पर भी उत्पादन सहकारिता बड़े पैमाने के उद्योगों में कहीं भी सफल नहीं हुई है। भारत में तो इसकी सम्भावना बहुत ही कम है क्योंकि यहाँ के श्रमिक अत्यन्त निर्धन एवं अशिक्षित हैं।

श्रम सह-साझेदारी समितियां —(Labour Co-partnership Societies)

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि उत्पादन सहकारिता की किसी भी प्रकार सम्भावना नहीं है। छोटे पैमाने के उद्योगों तथा कृषि में श्रमिक स्वयं उत्पादक काम कर सकते हैं। औद्योगिक सहकारिता का एक मुख्य रूप श्रम सह-साझेदारी समितियां हैं जो इगलैंड में स्थापित की गई हैं। यह समितियां उत्पादन के उन क्षेत्रों से अलग रहने का प्रयत्न करती हैं जहां फैक्टरी उत्पादन से संघर्ष होने की सम्भावना होती है। वह केवल ऐसी ही वस्तुओं का उत्पादन करती हैं जो छोटे पैमाने पर उत्पादन के लिए उपयुक्त होती हैं और जिनकी बिक्री शीघ्र हो सकती है। इंगलैंड में उपभोक्ता आन्दोलन ने इन समितियों के संचालन को सरल बनाने में सहायता दी है क्योंकि इसने इनकी वस्तुओं की बिक्री का भार अपने ऊपर ले लिया है तथा इन समितियों को ही विभिन्न वस्तुओं के लिए आर्डर दिया जाता है। इंगलैंड में सहकारी उत्पादन केवल तीन प्रकार के उद्योगों में अर्थात् कपड़ा, बूट व जूते और छपाई उद्योग में पाया जाता है। यह समितियां अपने सदस्यों से इस बात की प्रार्थना करती हैं कि वह सहकारी रूप से उत्पादित वस्तुओं को ही खरीदें क्योंकि ऐसी वस्तुएं गुण में अच्छी होने के साथ-साथ अच्छी श्रम दशाओं में उत्पादित की जाती हैं।

श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियां —(Labour Co-operatives)

श्रम सहकारी उत्पादन समितियां भी बहुत लोकप्रिय रही हैं और फ्रांस इटली पैलस्टाइन और न्यूजीलैंड जैसे देशों में इनको पर्याप्त सफलता भी मिली है। ऐसी समितियां श्रमिकों के समूहों को रोजगार पर लगाने के लिए संगठित की जाती हैं और इनमें श्रमिक संयुक्त रूप से काम करने के लिये संगठित होते हैं। भारत के कुछ राज्यों में भी श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियां स्थापित की गई हैं। प्राप्त सूचना के अनुसार (अप्रैल १९५६ में) बम्बई में श्रम श्रमिक समितियों को दूपेज के निर्वाचन और नियमन में कुछ रियायतें दी गई हैं। इन समितियों को इस बात से भी छूट दे दी गई है कि वह जमानत राशि जमा करें। कम ब्याज की दरों पर ऋण देने की व्यवस्था भी की गयी है। इन समितियों के लाभ तथा हानि में प्रदेशीय सरकारें भी हिस्सेदार हैं। छोटे-छोटे काम टेन्डर आदि आमन्त्रित किए बिना ही श्रमिक संविदा समितियों को दे दिए जाते हैं। तकनीकी सहायता जमानत राशि जमा करने से छूट वित्तीय सहायता औजार आदि खरीदने के लिए ऋण आदि जैसी अनेक सुविधाएं भी इन सहकारी समितियों को प्रदान की जाती हैं। केरल में श्रमिक संविदा सहकारी समितियों के संगठन की एक योजना को स्वीकृत कर लिया गया है। छोटे-छोटे काम इन समितियों को श्रम और सामान की निर्धारित लागत से ५ प्रतिशत अधिक पर दिए जाते हैं। सहकारी बैंकों द्वारा इन समितियों को कार्य की लागत का २५ प्रतिशत धन अग्रिम भी दे दिया जाता है। इन समितियों का भी जमानत राशि जमा करने से छूट है। ठेके के कार्य के लिए 'भाड़' धन भी इनसे केवल १ प्रतिशत लिया जाता है। उड़ीसा में टेंडर आमन्त्रित किए बिना स्थानीय काम इन

समितियों को दे दिए जाते हैं। सरकार इन समितियों को पूंजी प्रदान करती है तथा ऋण देती है। बम्बई श्रमिक सहकारी संविदा समितियों को सरकार आर्थिक सहायता प्रदान करती है। पंजाब में बोर्ड मूल्य के कुशल व अकुशल सभी कार्यों को सहकारी समितियों को प्रदान कर दिया जाता है। सार्वजनिक निर्माण विभाग की विद्युत शाखा द्वारा भी सहकारी श्रमिक निर्माण समितियों को सीमित मूल्य वाले कुछ काम दिए जाते हैं। कांगड़ा श्रमिक सहकारी समिति की कार्यशील पूंजी २००० रु० है तथा सदस्य संख्या ४०० है। मद्रास में कुशल श्रमिकों की एक श्रमिक संविदा समिति ने आधुनिक मकानों का निर्माण किया है। अकुशल श्रमिकों की अन्य श्रम समितियां ठेके पर अनेक कार्य करती हैं जैसे मकान, नहरें व सड़कें बनाना सड़क बनाने का सामान की पूर्ति करना आदि। राज्य का सहकारी विभाग इन समितियों को सहायता भी देता है और सलाह भी प्रदान करता है हिमाचल प्रदेश में श्रमिक सहकारी समितियां सड़कों पुलों आदि की मरम्मत के लिए सरकारी ठेके लेती हैं। इन्हें सहकारी विभाग द्वारा इनकी कार्यशील पूंजी को दृढ़ करने के लिए उपदान भी प्रदान किए जाते हैं। मनीपुर में ऐसी समितियों को टेन्डर आमन्त्रित किए बिना छोटे-छोटे कार्य करने के लिए दिए जाते हैं।

श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों की विशेषताएं —

इस प्रकार की श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियां श्रमिक व मालिक दोनों ही के लिए बहुत लाभदायक होती हैं। इन श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों की मुख्य विशेषताएं निम्नलिखित हैं (क) श्रमिक स्वयं साथ कार्य करने वालों का स्वयं चुनाव करते हैं तथा अपने नेता को चुनते हैं (ख) श्रमिक अपनी सामूहिक श्रम की आय को अपनी इच्छानुसार बांट लेते हैं (ग) श्रमिकों को इस बात की स्वतन्त्रता रहती है कि वह जिस प्रकार चाहें कार्य करने की व्यवस्था कर सकते हैं। (घ) श्रमिक किसी बाह्य ठेकेदार की अधीनता में कार्य नहीं करते वरन् कार्य को स्वयं तथा अपने उत्तरदायित्व पर करते हैं (ङ) श्रमिक मालिक के निरीक्षण में कार्य नहीं करते। कार्य पूरा हो जाने के बाद मालिक केवल यह देखता है कि काम योजनानुसार किया गया है अथवा नहीं, (च) यदि कार्य उत्पादन के हिसाब से निर्धारित होता है तब उनको उजरत दर पर मजदूरी दी जाती है। ऐसी समितियों को कार्य सौंपने से मालिक को लाभ होता है क्योंकि एक तो कार्य शीघ्र पूरा हो जाता है तथा दूसरे उसको ऊपरी खर्चों में बचत हो जाती है। मालिक का श्रमिकों में अनुशासन रखने का भार भी नहीं लेना पड़ता क्योंकि श्रमिक स्वयं ही काम को हाथ में ले लेते हैं और पूरा करते हैं।

भारत में श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों की सम्भावनायें —

भारत में यद्यपि श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों की तीव्र आवश्यकता है तथापि बड़े पैमाने के उद्योगों में उनकी सफलता में सन्देह है। इन उद्योगों में काम बहुत विषम होता है तथा छोटे पैमाने के उद्योगों की अपेक्षा संगठन और अनुशासन

भी बहुत अधिक रखना पड़ता है। परन्तु फिर भी कृषि श्रमिकों में श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों के लिए पर्याप्त क्षेत्र है। जैसा कि कृषि श्रमिक के अध्याय में उल्लेख किया जा चुका है श्रमिकों की अधिक पूर्ति और निर्धनता के कारण गाँवों में कृषि श्रमिकों का अत्यधिक शोषण किया जाता है। यह कृषि श्रमिक सहकारी समितियाँ बनाकर संगठित हो सकते हैं तथा अपनी सौदाकारी शक्ति को बढ़ा सकते हैं। ऐसी श्रम सहकारी उत्पादन समितियाँ सार्वजनिक निर्माण विभागों में लगे हुए श्रमिकों में भी सफल हो सकती हैं। सरकार और स्थानीय बोर्डों और अधिकारियों को इन श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों को काम देने में प्राथमिकता देनी चाहिए। इससे ठेके के श्रमिकों की प्रणाली में जो दोष हैं वह भी दूर हो जायेंगे।

उत्पादन सहकारिता एवं छोटे पैमाने के उद्योग —

भारत में उत्पादन सहकारिता छोटे पैमाने के उद्योग धन्धों में सफल हो सकती है। कुछ राज्यों में उत्पादन सहकारिता को सफलता भी मिली है। मद्रास में औद्योगिक सहकारी बुनकर समितियाँ सबसे अधिक महत्वपूर्ण हैं और उनकी संख्या ९५० से भी अधिक है। यह समितियाँ मद्रास हाथ-करघा बुनकर राज्य सहकारी समिति से सम्बद्ध हैं। यह समिति प्रारम्भिक समितियों को कच्चा माल प्रदान करती है, उनके तैयार माल को बेचती है, उनकी सहायता देती है तथा उनके कार्यों का नियन्त्रण तथा निरीक्षण करती है। इस समिति ने मद्रास में तीन रंगाई कारखाने तीन हाथ-करघा कारखाने तथा एक कपड़ा छपाई कारखाने की स्थापना की है। मद्रास में अन्य औद्योगिक समितियों की संख्या १०६ है जो कागज खिलौने आदि बनाती हैं। बम्बई में ६ औद्योगिक सहकारी संस्थायें बनाई गई हैं जिनका कार्य यह है कि हाथ करघा उद्योग को संगठित करके कपड़े के डिजाइनों को अधिक अच्छा बनायें, तथा इस हेतु उन्नत यन्त्र व कच्चे माल को उपलब्ध करें, तथा छपाई व रंगाई का कार्य भी करें और बिक्री के लिए माल को खरीद भी लें। सरकार इन संस्थाओं को अंशदान देकर सहायता करती है। उत्तर प्रदेश में ७८ बुनकर समितियाँ और एक राज्य औद्योगिक संगम है। उत्पादन व बिक्री सहकारी समितियों की कुल संख्या १०० है। हाथ-करघों के सूत की कुल मात्रा को वितरित करने के लिए राज्य में १५ उत्पादन केन्द्र स्थापित किए गए हैं। बिहार, मध्य प्रदेश और केरल में भी बुनकर समितियाँ बनाई गई हैं जो कपड़े व सूत का क्रय-विक्रय करती हैं।

हाथ करघा उद्योग में श्रमिक उत्पादन सहकारी समितियों के बनाए जाने का कारण यह है कि देश में कपड़े की कमी रही है जो युद्ध के दिनों में विशेषतया अनुभव की गई थी। परन्तु इससे यह विदित होता है कि उत्पादन सहकारी समितियाँ उन उद्योगों में विशेषकर सफल हो सकती हैं जहाँ थोड़े धन व अधिक श्रम शक्ति की आवश्यकता होती है। तांबे पीतल लोहे आदि की वस्तुयें बनाने के तथा चमड़े रेशम गुड़ साबुन बीड़ी, सिगार, टोकरी आदि के छोटे पैमाने के उद्योगों में औद्योगिक सहकारी उत्पादन समितियों के लिए अच्छा क्षेत्र है। मथुरा शहर में काफी

समय से एक सहकारी सिगार कारखाना चालू है। इसमें श्रमिक ही अंशधारी व मालिक हैं तथा कार्य के लिए प्रचलित दर पर मजदूरी पाते हैं। व्यापार में जो लाभ होता है उस पर उन्हें लाभांश मिलता है। अतः श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियों के विस्तार और छोटे पैमाने के उद्योगों में उनके विकास के लिए प्रयत्न किए जाने चाहियें। सरकार को इन समितियों को कुछ अनुदान देकर सहायता करनी चाहिए तथा इनकी सहायता के लिए कोई वित्तीय संस्था को स्थापित करने के लिए प्रोत्साहन देना चाहिए। ऐसी सहकारी समितियों को वित्तीय सहायता देने के लिए प्रदेशीय और केन्द्रीय सहकारी बैंक काफी सहायक सिद्ध हो सकते हैं। केन्द्रीय सरकार द्वारा औद्योगिक सहकारी उत्पादन समितियों के विकास के लिए अधिकारियों को विशिष्ट प्रशिक्षण देने हेतु एक योजना चालू की गई है।

अन्य क्षेत्रों में सहकारिता —

कृषि के क्षेत्र में उत्पादन सहकारिता से तात्पर्य सहकारी खेती से है। परन्तु इसका विवेचन इस अध्याय के क्षेत्र के बाहर है। जहां तक श्रमिक सह-साझेदारी का सम्बन्ध है यह भी उत्पादन सहकारिता से एक भिन्न समस्या है और यह उद्योग में प्रबन्धकों के साथ श्रमिकों के सहयोग से सम्बन्धित है। इस पर विचार 'श्रम सह-भाजन' के अन्तर्गत पृष्ठ ३४२-४१ पर पहले ही किया जा चुका है।

सहकारिता और श्रमिकों की ऋणग्रस्तता —

अन्य क्षेत्रों में भी देश के श्रमिक वर्ग के लिए सहकारिता सहायक सिद्ध हो सकती है। एक महत्वपूर्ण समस्या जिसका सहकारिता द्वारा सफलतापूर्वक समाधान किया जा सकता है ऋणग्रस्तता की है। ऋणग्रस्तता की बुराइयों की ओर संकेत 'औद्योगिक श्रमिकों की ऋणग्रस्तता' वाले अध्याय में किया जा चुका है। यदि श्रमिक एक सहकारी साख समिति का संगठन कर लें तो उन्हें बहुत कम सूद की दर पर ऋण मिल सकता है। इस प्रकार से महाजनों के अनेक दोषों को दूर किया जा सकता है। इस प्रकार की समितियां देश में सफलतापूर्वक कार्य कर रही हैं। रेलवे में ऐसी समितियों के उदाहरण मिलते हैं जो युद्ध से पूर्व सफलतापूर्वक कार्य कर रही थीं। उदाहरणतः मद्रास व दक्षिणी मराठा रेलवे श्रमिक सहकारी शहरी बैंक, तथा मद्रास तथा दक्षिणी भारत रेलवे कर्मचारी सहकारी समिति तिरुचिनापली। मद्रास की समिति सबसे पुरानी है। यह १६०७ में प्रारम्भ की गई थी और इसके २५,००० सदस्य थे। १९४४-४५ में इसकी शेयर पूंजी १३.६४ लाख रुपये थी व प्रारक्षित निधि की राशि ५ लाख रुपये से भी अधिक थी। यह सहकारी समिति अपने सदस्यों की बचत की राशि का १० लाख रुपया जमा करने में समर्थ हुई थी। १९४५ में इसकी कार्यशील पूंजी की कुल राशि लगभग ८० लाख रुपया थी। इसने कभी किसी बाहरी संस्था से रुपया उधार नहीं लिया था जो बहुत प्रशंसनीय बात थी। ११ लाख रुपये का मितव्ययी का व आकस्मिक व्यय निकाल कर भी इस बैंक को १९४४-४५ में ६२,७०० रु० का लाभ हुआ था। दक्षिण भारत रेलवे कर्मचारी

सहकारी साख समिति के २५०० श्रमिक सदस्य थे। कुल श्रमिक सदस्य ७५,००० थी। इस समिति की स्थापना १९१९–२० में हुई थी। इसकी कार्यशील पूंजी की राशि ११.० लाख रु० से भी अधिक थी। इस समिति को १९५४–५५ में १२,००० रुपये का लाभ हुआ था। यह बैंक अपने सदस्यों की बचत की राशि का ७ लाख रु० एकत्रित करने में सफल हो सका था। अप्रैल १९५९ में पश्चिमी बंगाल के कोयला क्षेत्रों में १२ सहकारी समितियाँ तथा बिहार के कोयला क्षेत्रों में ४७ सहकारी साख समितियाँ कार्य कर रही थी। इनका मुख्य कार्य अपने सदस्यों को कम दरों पर ऋण देना तथा उपभोक्ता वस्तुएं उचित मूल्यों पर प्रदान करना है। इन उदाहरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि श्रमिक सहकारी साख समितियाँ बना लें और इनके प्रति वफादार रहें तो उन्हें बहुत लाभ हो सकता है।

सहकारिता और आवास —

एक अन्य क्षेत्र जिसमें औद्योगिक श्रमिकों के लिए सहकारिता लाभदायक सिद्ध हो सकती है वह आवास निर्माण के लिए सहकारी समितियों का बनाना है। आवास की बुरी शोचनीय दशाओं का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है और इनमें सुधार करने की तीव्र आवश्यकता को भी बताया जा चुका है। इस सम्बन्ध में सहकारी प्रयत्न बहुत महत्वपूर्ण और उपयोगी हो सकते हैं। श्रमिकों के लिए सहकारी आधार पर मकान बनाने के लिए सफल परीक्षण का उदाहरण मदुरा मिल्स लिमिटेड का है। इस मिल ने मदुरा के निकट हारवेपट्टी में एक गृह निर्माण समिति की स्थापना की है। इस योजना का उद्देश्य यह है कि मिल के निकट घने तथा भीड़भाड़ पूर्ण वाले स्थान से दूर स्वस्थ ग्रामीण क्षेत्रों में श्रमिकों के लिए मकान बनाए जायें और श्रमिक किराया देते हुए निरन्तर कई वर्षों तक रहने पर अन्ततः स्वयं ही इनके स्वामी बन जायें। इस गृह निर्माण समिति की स्थापना सितम्बर १९१८ में की गई थी जबकि प्रत्येक मकान की लागत ६०० रु० आती थी। मकान का किराया ४ रु० प्रति माह निश्चित किया गया था और जो श्रमिक मकान में १२½ वर्ष तक रह लेता था वह इसका स्वामी बन जाता था। इस क्षेत्र में विद्युत प्रकाश, पानी, नाली, सड़कें, पार्क, स्कूल आदि सभी सुविधाओं सहित लगभग ६०० मकानों का निर्माण किया गया है। इस समिति को मालिकों द्वारा पर्याप्त वित्तीय सहायता भी मिली है। इससे देश के दूसरे मालिकों को भी प्रेरणा लेनी चाहिए। मदुरा मिल्स ने ४०,००० रुपये की शेयर पूंजी लगाई है और २ लाख रुपये का ऋण भी बिना ब्याज के दिया है। इसके लिए मदुरा मिल से लगभग ५ मील दूर १०० एकड़ भूमि खरीदी गई थी। स्कूल, अस्पताल, भण्डार आदि की व्यवस्था करने के पश्चात् प्लाट बांट दिए गए थे और इस प्रकार ६० मकान बनाए गए। स्वच्छ जल पूर्ति, जल मल निकास का प्रबन्ध, विद्युतीकरण तथा श्रमिकों को मदुरा में मिल तक जाने व वापिस ले जाने के लिए विशेष ट्रेन आदि की व्यवस्था करने में मालिकों ने १.०० लाख रुपया व्यय किया। स्कूल औषधालय व जल पूर्ति का

बन्ध मालिकों द्वारा किया जाता है। इस बस्ती में भंगियों की व्यवस्था करने के लिए पंचायत प्रति मकान आठ आने एकत्रित करती है। बस्ती का प्रबन्ध सहकारी आवास समिति द्वारा किया जाता है जिसका एक निदेशक मण्डल है। इस मण्डल में मिल मालिक, श्रमिक संघ तथा मिल श्रमिकों के एक-एक प्रतिनिधि जिला कलक्टर तथा मदुरा जिला बोर्ड का अध्यक्ष अथवा उप-अध्यक्ष होते हैं। यदि इस उदाहरण का सर्वत्र पालन किया जाय तो औद्योगिक श्रमिकों की आवास दशाओं में पर्याप्त सुधार हो सकता है। उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास योजना के अन्तर्गत सरकार सहकारी गृह निर्माण समितियों को आर्थिक सहायता व ऋण प्रदान करती है। परन्तु इस सम्बन्ध में विशेष सफलता नहीं मिल सकी है। (देखिए पृष्ठ २२६–३२ तथा २४१–४४)।

सहकारिता और कैन्टीन —

कार्य के घन्टों के मध्य में कारखाने में श्रमिकों को भोजन प्रदान करने में भी सहकारिता के लिए पर्याप्त क्षेत्र है। इस उद्देश्य के लिए कारखानों में कैन्टीन की व्यवस्था की गई है परन्तु अधिकांशतः उनका संचालन कारखाना मालिकों या ठेकेदारों द्वारा किया जाता है। यदि कैन्टीन का संचालन सहकारिता के आधार पर किया जाए तो उससे तीन लाभ होंगे। श्रमिकों को स्वच्छ भोजन मिलेगा, मूल्य कम होंगे तथा वह स्वयं-सहायता व स्वय-निर्भरता के सिद्धान्तों को समझ सकेंगे। परन्तु सहकारी आधार पर कैन्टीन चलाने के लिए आरम्भ में मालिकों की पर्याप्त सहायता की आवश्यकता है। मदुरा की श्री मीनाक्षी मिल्स में सहकारी आधार पर कैंटीन का संचालन किया जाता है। पहले कैन्टीन का संचालन मिल प्रबन्धकर्ताओं द्वारा किया जाता था परन्तु मई १९४० में इसका प्रबन्ध सहकारी भंडार को स्थानान्तरित कर दिया गया। कैन्टीन अब सहकारी भंडार के एक पृथक विभाग के रूप में चलाया जाता है तथा अपनी सभी आवश्यकताओं की चीजें भण्डार से प्राप्त कर लेता है। कैन्टीन विभाग में भोजन को लागत मूल्य या लागत मूल्य से कम पर बेचने के कारण जो हानि होती है उसकी पूर्ति मिल के द्वारा की जाती है। मिल ने सहकारी भण्डार को बिना मूल्य लिए भोजन बनाने के बर्तन तथा फर्नीचर भी प्रदान किए हैं। इस सहकारी आधार पर प्रबन्ध करने की प्रणाली को कारखानों की सभी कैन्टीनों में लागू करने का प्रयत्न करना चाहिए तथा प्रारम्भिक अवस्था में मालिकों को पर्याप्त वित्तीय सहायता देनी चाहिए।

उपभोक्ता सहकारी भण्डार — (Consumer's Co-operative Stores)

कारखाने के अहाते या श्रम बस्ती में उपभोक्ता सहकारी भण्डार की यदि स्थापना करके उसका संचालन किया जाए तो इससे अनेक लाभ होंगे। प्रथम तो दिन भर कार्य करने के पश्चात् श्रमिक को इस बात के लिए कठिनता से ही समय मिल पाता है कि वह बाजार जाकर अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीद सके। दूसरे, दुकानदार के बहुत अधिक लाभ लेने के कारण वस्तुओं का मूल्य बहुत अधिक

होता है और मिलावट होने के कारण कुछ वस्तुएँ भी नहीं मिल पातीं। तीसरे जब श्रमिकों को आर्थिक कठिनाई होती है तो उन्हें उधार चीजें लेनी पड़ती हैं। इससे उन्हें दोहरी हानि होती है, एक तो वस्तुओं का अधिक मूल्य देना पड़ता है और दूसरे उनसे ब्याज भी लिया जाता है। सहकारी भण्डार की स्थापना से यह सब दोष दूर हो सकते हैं। उधार खरीदने के लिए उपनियमों में संशोधन किया जा सकता है। मद्रास में विशेषतया ऐसी समितियाँ मालिकों द्वारा स्थापित की गई हैं और उनको प्रशंसनीय सफलता भी प्राप्त हुई है। कुछ स्थानों पर मालिक श्रमिकों की मजदूरी में से वह राशि काट लेते हैं जो श्रमिकों को उपभोग सहकारिता भण्डार को देनी होती है। कुछ स्थानों पर मालिकों ने अनेक रियायतें भी प्रदान की हैं। उदाहरणतः भण्डार के लिए निःशुल्क इमारत एकाउन्टेन्ट व क्लर्क आदि का कार्य करने के लिए कर्मचारियों को निःशुल्क मेजा देना कागज पेंसिल फर्नीचर आदि को भी बिना दाम के देना भण्डार तक सामान लाने ले जाने के लिए यातायात की सुविधायें प्रदान करना कपड़ा आदि क्रय करने के लिए उधार देना आदि आदि। यह तो ठीक है कि प्रारम्भ में आर्थिक सहकारी भण्डारों को इस प्रकार की सहायता मिलनी चाहिए परन्तु सहकारिता ने अपने आदर्शों को प्राप्त करने के लिए इन भण्डारों को शीघ्र ही आत्मनिर्भर व स्वतन्त्र होने का प्रयत्न करना चाहिए।

उपसंहार श्रमिकों के लिए सहकारिता का महत्त्व —

पिछले पृष्ठों में श्रमिकों के द्वारा सहकारी प्रयत्नों का जो विवेचन किया गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि सहकारिता द्वारा श्रमिक काफी सीमा तक ऋणग्रस्तता से बच सकते हैं और गन्दी बस्तियों में रहने से छुटकारा पा सकते हैं। सहकारिता से ही वह निजी भोजनालयों में गन्दा व अशुद्ध और इस पर भी महंगा भोजन करने से छुटकारा पा सकते हैं तथा अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए लोभी व धनलोलुप लाभ लेने वाले दुकानदारों के चंगुल से भी बच सकते हैं। परिणामस्वरूप श्रमिकों के सामाजिक व आर्थिक कल्याण में अधिक उन्नति हो सकेगी। सहकारिता से श्रमिकों में मितव्ययता और पारस्परिक सहायता की भावनाएँ भी बढ़ेंगी तथा वह अच्छे नागरिक बन सकेंगे। उनमें अनुशासन से रहने और कार्य करने का स्वभाव पड़ जायगा और उनका नैतिक स्तर भी ऊँचा हो जायगा। श्रम-कल्याण कार्य भी श्रमिक स्वयं अपने हाथों में ले सकते हैं। स्वयं श्रमिकों द्वारा इन कार्यों को अपने हितों के लिए अधिक कुशलतापूर्वक चलाया जा सकता है।

परन्तु फिर भी जैसा कि आन्दोलन के संक्षिप्त विवेचन में ऊपर बताया जा चुका है, देश में सहकारी आन्दोलन के दोषों और कमियों को दूर करने के प्रयत्न किए जाने चाहिएँ। यह आवश्यक है कि श्रमिकों को सहकारिता के सिद्धान्तों को समझाया जाए तथा उन्हें स्वयं अपने ही कल्याण में सक्रिय रुचि लेने के लिए उचित शिक्षा दी जाए। जो कठिनाइयाँ एक दक्षिणगामी श्रमिक संघ को बनाने में सामने

आती हैं बहुधा वही कठिनाइयाँ श्रमिक सहकारी समिति के सफलतापूर्वक संचालन में आती हैं। परन्तु जैसा ऊपर बताया जा चुका है सहकारी समितियाँ श्रमिक संघ से भिन्न होती हैं और उनके निर्माण में मालिकों से कोई संघर्ष नहीं होता। मालिकों को तो श्रमिकों के कल्याण के लिए सहकारी समितियों की स्थापना को प्रोत्साहन ही देना चाहिए। प्रारम्भिक अवस्था में तो सहकारिता भारतीय श्रमिकों में बिना किसी बाह्य सहायता के सफल नहीं हो सकती परन्तु अंतत: श्रमिकों को स्वयं अपने पैरों पर ही खड़ा होना पड़ेगा अन्यथा यह सच्चे अर्थों में सहकारिता नहीं होगी।

२५

श्रम प्रशासन
(Labour Administration)

१९३५ का भारत सरकार अधिनियम —

अप्रैल १९३७ से पूर्व भारत सरकार को श्रम मामलों में प्रांतीय सरकारों के ऊपर निरीक्षण, निर्देशन और नियन्त्रण का अधिकार था। परन्तु १९३७ में प्रांतीय स्वायत्तता के पश्चात् से राज्य अधिकांशतः इस सम्बन्ध में अपने-अपने क्षेत्रों में स्वतन्त्र हो गये थे। १९३५ के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार श्रम विधान बनाने और अधिनियमों और विनियमों के प्रशासन के कार्यों को केन्द्रीय सरकार और प्रांतीय सरकारों के बीच स्पष्ट रूप से विभाजित कर दिया गया था। संक्षेप में, खानों और तेल निकासन वाले क्षेत्रों में श्रम की सुरक्षा और विनियम बन्दरगाहों में संगरोध (क्वारंटाइन) नाविकों और जहाजों के लिये अस्पताल बन्दरगाहों के संग रोगों से सम्बन्धित अस्पताल के विषयों को संघीय (केन्द्रीय) विधायी सूची में रखा गया था तथा निर्धन और बेरोजगारों की सहायता के विषयों को प्रान्तीय विधायी सूची में रखा गया था। समवर्ती (Concurrent) विधायी सूची में अर्थात् ऐसी सूची जिसमें दिये हुए विषयों पर केन्द्रीय और प्रान्तीय दोनों ही के विधान मण्डल कानून बना सकते थे निम्न विषय थे कारखाने श्रम कल्याण श्रम की दशायें प्रोविडेन्ट फण्ड मालिकों की देयता और श्रमिकों की क्षतिपूर्ति स्वास्थ्य बीमा जिसमें असमर्थता पेंशन भी सम्मिलित है, वृद्धावस्था पेंशन बेरोजगारी बीमा व्यापार संघ औद्योगिक व श्रम विवाद। श्रम कानूनों के प्रशासन का उत्तरदायित्व प्रान्तों पर था।

युद्ध-काल और इसके बाद से केन्द्रीय नियन्त्रण —

परन्तु द्वितीय महायुद्ध छिड़ जाने के पश्चात् इस बात की तीव्र आवश्यकता अनुभव की गई कि उत्पादन को अधिकतम बढ़ाने के लिये पर्याप्त और सन्तुष्ट श्रमिकों का होना नितान्त आवश्यक है। इस कारण केन्द्रीय सरकार को हस्तक्षेप करना पड़ा और औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण और कार्य की दशाओं को नियन्त्रित और विनियमित करने के लिये सरकार ने विस्तृत अधिकारों को ग्रहण किया। जैसे जैसे युद्ध बढ़ता गया और गति विधियाँ विस्तृत होती गईं वैसे ही समय-समय पर भारत सरकार के श्रम विभाग को अनेक दिशाओं में दृढ़ किया गया। उदाहरणार्थ केन्द्रीय नियन्त्रित संस्थाओं में औद्योगिक सम्बन्धों की देख-रेख के लिये व्यवस्था की गई तथा एक समायोजित पुनःस्थापन संस्था की स्थापना की गई जिसका कार्य सेना से

निकले हुए सैनिकों का पुनर्स्थापन करना और उन्हें पुनः रोजगार पर लगाना था। एक अन्य संस्था कारखानों के मुख्य सलाहकार के अधीन स्थापित की गई जिसका कार्य कारखानों में काम की दशायें सुधारने के लिये केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों को सलाह देना था। युद्ध के तत्काल पश्चात् ही श्रम समस्याओं की अनेकरूपता और गम्भीरता के कारण सरकार को श्रम विभाग का विभाजन करना पड़ा तथा ऐसे अनेक विषयों को जिनका श्रम से सीधा कोई सम्बन्ध नहीं था परन्तु जिनको श्रम विभाग द्वारा प्रशासित किया जाता था नवीन स्थापित निर्माण खान और शक्ति विभाग को हस्तांतरित कर दिया गया। अक्तूबर १९४६ में प्रांतीय श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन में यह बात स्वीकार कर ली गई कि जहां तक हो सके श्रम विधान बनाने का कार्य केन्द्रीय सरकार द्वारा ही हो ताकि समान रूप से इस सम्बन्ध में तीव्र गति से पग उठाये जा सकें। इस बात को ध्यान में रखते हुये भारत सरकार के श्रम मंत्रालय ने श्रमिकों के स्वास्थ्य, कार्यक्षमता कार्य की दशाओं और जीवन-स्तर में सुधार के लिये श्रम विधान और श्रम प्रशासन का एक पंचवर्षीय कार्यक्रम तयार किया।

युद्ध-काल में श्रम सम्मेलनः—

युद्ध-काल में यह भी अनुभव किया गया कि युद्धोपरान्त श्रम कार्यक्रमों की योजना बना लेनी चाहिये तथा श्रम कानूनों में भी कुछ समायोजन होना चाहिये। फलस्वरूप १९४०, १९४१ और १९४२ में प्रांतीय श्रम मन्त्रियों के सम्मेलन आयोजित किये गये। १९४१ और १९४२ में भारत सरकार ने श्रमिकों और मालिकों के प्रतिनिधियों से परामर्श भी किया। इन सम्मेलनों से सरकार आश्वस्त हो गई कि यदि सरकार, श्रमिकों और मालिकों की एक संयुक्त सभा आयोजित की जाती है तो अधिक प्रभावात्मक रूप और शीघ्रता से कार्य किया जा सकता है क्योंकि इससे मालिकों और श्रमिकों के पारस्परिक मतभेदों को वाद-विवाद और पारस्परिक समझौते से दूर करना सरल हो जाएगा। फलस्वरूप अगस्त १९४२ के चतुर्थ श्रम सम्मेलन में केन्द्रीय और प्रांतीय अधिकारियों के अतिरिक्त मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों को भी सम्मिलित किया गया। इस सम्मेलन ने स्थायी त्रिदलीय संगठित व्यवस्था करने का निर्णय किया तथा परिपूर्ण (Plenary) श्रम सम्मेलन और स्थायी श्रम समिति (Standing Labour Committee) का गठन किया। परिपूर्ण सम्मेलन में, जिसकी सभा वार्षिक होती थी ४४ सदस्य होते थे—२२ सदस्य तो केन्द्र, प्रांत तथा देशीय राज्य सरकारों का प्रतिनिधित्व करते थे तथा ११ सदस्य मालिकों का और ११ सदस्य श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते थे। इसका कार्य उन विषयों पर केन्द्रीय सरकार को सलाह देना था जो विषय सलाह के लिए इस सम्मेलन को भेजे जाते थे। सलाह देते समय यह सम्मेलन उन सुझावों का ध्यान रखता था जो श्रमिकों और मालिकों के मान्यता प्राप्त संगठनों के प्रतिनिधियों द्वारा तथा प्रान्तीय और देशीय राज्य सरकारों द्वारा तथा राजा महाराजाओं की परिषद् द्वारा दिये जाते थे। स्थायी

श्रम समिति की सभा जब भी आवश्यक हो तब ही बुलाई जा सकती थी। इसमें २० सदस्य होते थे—१० सरकार का प्रतिनिधित्व करते थे और ५, ५ सदस्य मालिकों और श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते थे। इसका कार्य "सरकार द्वारा प्रस्तुत किए जाने वाले किसी भी मामले पर सलाह देना था।" समिति को सम्मेलन द्वारा सौंपे जाने वाले किसी भी मामले पर अपनी रिपोर्ट देनी होती थी।

जब इस नवीन व्यवस्था के कार्य का कुछ अनुभव हो गया तब यह पता लगा कि सम्मेलन और स्थायी श्रम समिति के कार्यों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन नहीं किया गया था। अक्टूबर १९४४ में छठे श्रम सम्मेलन में यह निर्णय किया गया कि विभिन्न विषयों को दो श्रेणियों में विभाजित किया जाए, एक तो परिपूर्ण श्रम सम्मेलन के लिए और दूसरे एक अन्य संस्था—श्रम कल्याण समिति के लिए। स्थायी श्रम समिति को विचार विमर्श करने वाली संस्था के रूप में ही नहीं वरन् स्थायी श्रम समिति के एजेन्ट के रूप में भी कार्य करना चाहिए। परन्तु कोई भी निर्णय न हो सका और त्रिदलीय व्यवस्था यथावत बनी रही। वाद-विवादों के दौरान में श्रमिकों के प्रतिनिधियों ने अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के आधार पर भारत में औद्योगिक समितियाँ बनाए जाने का सुझाव दिया। सरकार द्वारा इस सुझाव को मान लिया गया और तब से बागान सूती वस्त्र कोयला खान सीमेंट चमड़ा व चमड़ा रंगने अन्य खानें जूट, आवास का निर्माण रसायन तथा लोहा व इस्पात जैसे महत्वपूर्ण उद्योगों के लिए औद्योगिक समितियाँ स्थापित की जा चुकी हैं। इन समितियों की समय-समय पर बैठकें होती रहती हैं और उद्योग से सम्बन्ध रखने वाली विशेष समस्याओं पर विचार किया जाता है तथा श्रमिकों के कल्याण के लिए सुझाव भी दिए जाते हैं।

त्रिदलीय श्रम व्यवस्था (Tripartite Labour Machinery)—

१९४७ में आठवें श्रम सम्मेलन में त्रिदलीय व्यवस्था के पुनर्गठन पर पुनः विचार किया गया परन्तु कोई भी निर्णय न हो सका। इस प्रकार इस समय सरकारी त्रिदलीय व्यवस्था में भारतीय श्रम सम्मेलन जिसको साधारणतया त्रिदलीय श्रम सम्मेलन कहते हैं स्थायी श्रम समिति औद्योगिक समितियाँ और कुछ त्रिदलीय प्रकार की समितियाँ आती हैं। इसके अतिरिक्त श्रम मंत्रियों के सम्मेलन का यद्यपि वह त्रिदलीय नहीं है इससे घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसके अतिरिक्त १९५१ से उद्योग और श्रम अर्थात मालिक और मजदूरों का एक संयुक्त सलाहकार बोर्ड भी बनाया गया है। इस व्यवस्था में श्रम विधान श्रम नीति तथा श्रम प्रशासन से सम्बन्धित अनेक बातों पर विचार और वाद-विवाद करने का अवसर मिलता है। अनेक राज्यों ने भी श्रम और पूँजी के बीच सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने के लिए त्रिदलीय श्रम व्यवस्था गठित की है। (देखिए पृष्ठ १७७-७८)। श्रम और रोजगार मंत्रालय की एक अनौपचारिक (Informal) सलाहकार समिति भी है। अन्य समितियाँ सलाहकार बोर्ड आदि निम्नलिखित हैं अन्तर्राष्ट्रीय श्रम सम्मेलन के अभिसमयों पर एक समिति

(देखिए पृष्ठ ५१५) 'केन्द्रीय कार्यान्वित तथा मूल्यांकन समिति' (देखिए पृष्ठ १७४), मजदूरी से सम्बन्धित एक स्टीयरिंग दल (देखिए पृष्ठ ५२१) मजदूरी पर्याप्त वेतन बोर्ड (देखिए पृष्ठ ५२२–२३) केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड (देखिए पृष्ठ ३१७–१८) तथा सुरक्षा, निरीक्षण श्रम अनुसन्धान आदि पर कई सम्मेलन तथा गोष्ठियाँ। श्रम अनुसन्धान पर भी एक केन्द्रीय समिति बनाई गई है। इन सब समितियों व सम्मेलन आदि की बैठकें समय-समय पर होती रहती हैं। उदाहरणतया भारतीय श्रम सम्मेलन का २०वाँ अधिवेशन अभी हाल ही (अगस्त १९६२) में नई देहली में हुआ है। स्थायी श्रम समिति का १९वाँ अधिवेशन २८ अप्रैल १९६१ को नई देहली में हुआ था।

भारत सरकार का श्रम और रोजगार मंत्रालय—

श्रम व रोजगार मन्त्रालय में मुख्य मन्त्रालय (सचिवालय) तथा निम्नलिखित सम्बद्ध एवं अधीनस्थ कार्यालय आते हैं (१) रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय, नई देहली (२) निदेशक, श्रम ब्यूरो शिमला का कार्यालय (३) कार्यालय मुख्य श्रम आयुक्त, नई देहली (४) कार्यालय कोयला खान आयुक्त, धनबाद (५) कार्यालय कोयला खान प्रोविडेन्ट फण्ड आयुक्त धनबाद (६) कार्यालय कल्याण आयुक्त अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि धनबाद (७) कार्यालय, अध्यक्ष अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि परामर्श समिति आन्ध्र (नीलोर) तथा राजस्थान (भीलवाड़ा) (८) कार्यालय मुख्य खान निरीक्षक धनबाद (९) कार्यालय मुख्य सलाहकार कारखाने नई देहली (१०) कार्यालय, पठानकोट श्रम नियन्त्रक शिलांग; (११) कार्यालय औद्योगिक अधिकरण बम्बई, धनबाद व देहली तथा बम्बई में श्रम अपीलीय अधिकरण का कार्यालय जिसको अब समाप्त कर दिया गया है (१२) राष्ट्रीय औद्योगिक अधिकरण बम्बई, धनबाद तथा कलकत्ता (१३) विभिन्न उद्योगों के लिए मजदूरी बोर्ड उदाहरणार्थ सूती कपड़ा व सीमेंट के लिए बम्बई में, चीनी के लिए गोरखपुर में तथा जूट और बागान के लिए कलकत्ता में (१४) श्रमिकों की शिक्षा के लिए केन्द्रीय बोर्ड (१५) कार्यालय महानिदेशक राज्य कर्मचारी बीमा निगम नई देहली; (१६) कार्यालय केन्द्रीय प्रोविडेन्ट फण्ड आयुक्त नई देहली (१७) गोरखपुर श्रम संगठन गोरखपुर।

जहाँ तक भारत सरकार का सम्बन्ध है श्रम व रोजगार मन्त्रालय श्रम से सम्बन्धित प्रश्नों के विचार के लिए केन्द्रीय स्थान है। श्रम नीति निर्धारित करने, श्रम कानूनों को लागू करने तथा श्रम कल्याण को विकसित करने में मन्त्रालय केन्द्रीय प्रशासकीय अंग है। श्रम क्षेत्र में यह राज्य सरकारों की गतिविधियों को समायोजित करता है। यह त्रिपक्षीय श्रम सम्मेलन तथा भारत सरकार द्वारा आयोजित उद्योग विशेष की समितियों के लिए सचिवालय का काम करता है तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कार्यवाहियों में भारत इसके द्वारा ही भाग लेता है। श्रम मन्त्रालय ने कृषि श्रमिकों की स्थिति का अध्ययन करने के लिए अखिल भारतीय पूछताछ भी की

थी जिसका वर्णन २१वें अध्याय में किया जा चुका है। इस मन्त्रालय में एक मूल्यांकन और कार्यान्वित विभाग भी खोला गया है। इसका कार्य यह देखना है कि श्रम विधान विवाचन निर्णय फैसले, अनुशासन संहिता आदि को शीघ्रातिशीघ्र कार्यान्वित किया जाय। (देखिए पृष्ठ १७४)

१९४६ में लिदेशक श्रम ब्यूरो शिमला के कार्यालय की स्थापना की गई। इसका कार्य श्रम सांख्यिकी को एकत्रित करना, उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों को बनाना, आय की दशाओं के नवीनतम आंकड़ों को एकत्रित करना मासिक 'इण्डियन लेबर गजट' (जिसको अब जरनल कहा जाता है) का सम्पादन करना, देश में श्रम मामलों का अधिकृत रूप से वर्णन करने वाली श्रमिक वार्षिक पुस्तिका (लेबर ईयर बुक) का प्रकाशन करना तथा नीति निर्धारण करने के लिये विशेष समस्याओं का अन्वेषण कर आंकड़े प्रस्तुत करना है। इसी ब्यूरो ने कृषि श्रमिक पूछताछ और मजदूरी गणना पारिवारिक बजट जांच आदि भी की है। विभिन्न श्रम अधिनियमों के कार्यों पर यह रिपोर्टें भी प्रकाशित करता है।

केन्द्रीय सरकार के क्षेत्र में आने वाले उद्योगों और संस्थानों में औद्योगिक सम्बन्धों का निबटारा करने के लिये १९४५ में मुख्य श्रम आयुक्त की नियुक्ति की गयी। इन संस्थानों में औद्योगिक विवादों की रोकथाम करना या निपटारा करना, कल्याणकारी कार्यों की देखभाल करना, श्रम कानूनों को लागू करना तथा कैंटीनों का संगठन करना इस आयुक्त का उत्तरदायित्व है। मुख्य श्रम आयुक्त की सहायता करने के लिये ६ क्षेत्रीय श्रम आयुक्त भी हैं जिनके प्रधान कार्यालय बम्बई, कलकत्ता धनबाद कानपुर, नागपुर और मद्रास में हैं। धनबाद में क्षेत्रीय श्रम आयुक्त के अन्तर्गत न केवल बिहार की कोयला खानें वरन् पश्चिमी बंगाल तथा अन्य स्थानों की कोयला खानें भी आती हैं। इसके अतिरिक्त अनेक सुलह अधिकारी तथा एक कल्याणकारी सलाहकार भी हैं। इस सब व्यवस्था को केन्द्रीय औद्योगिक सम्बन्ध व्यवस्था भी कहा जाता है (Central Industrial Relations Machinery)।

धनबाद में कोयला खान कल्याण आयुक्त का कार्यालय कोयला खान श्रम कल्याण निधि अधिनियम के प्रशासन के लिये उत्तरदायी है। इसी प्रकार कोयला खान प्रोविडेन्ट फण्ड आयुक्त का कार्यालय कोयला खान बोनस तथा प्रोविडेन्ट फण्ड निधि योजनाओं के प्रशासन के लिये उत्तरदायी है। अभ्रक खानों में अभ्रक खान श्रम कल्याण निधि के प्रशासन के लिये धनबाद में कल्याण आयुक्त नियुक्त किया गया है और गूडूर (निलौर) और राजस्थान (भीलवाड़ा) में अध्यक्षों के कार्यालय हैं। खानों के मुख्य निरीक्षक का कार्यालय धनबाद में है और इसका उत्तरदायित्व भारतीय खान अधिनियम तथा खान मातृत्व हित लाभ अधिनियम को लागू करना खानों का निरीक्षण करना दुर्घटनाओं की जांच पड़ताल करना सांख्यिकी को एकत्रित करना खान स्वामियों को तकनीकी सलाह देना मशीनरी की जांच पड़ताल करना तथा विभाग की रिपोर्ट प्रकाशित करना, आदि है।

कार्य की दशाओं, कारखानों के डिजाइन, श्रमिकों के आवास तथा औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं कल्याण संग्रहालय की देखरेख से सम्बन्धित सभी तकनीकी विषयों पर कारखानों के मुख्य सलाहकार के कार्यालय द्वारा विचार किया जाता है। यह कार्यालय कारखानों के प्रशासन तथा स्वास्थ्य एवं सुरक्षा से सम्बन्धित पोस्टरों एवं तस्वीरों को तैयार करता है तथा कारखाना निरीक्षकों के प्रशिक्षण की व्यवस्था, गोदी श्रमिक अधिनियम का प्रशासन, सूचनाएं एकत्रित करने आदि के लिए भी उत्तरदायी है। मुख्य सलाहकार को काम में सहायता देने के लिए तीन उप मुख्य सलाहकार तथा ६ निरीक्षक भी हैं। यह कार्यालय एक केन्द्रीय श्रम संस्था बम्बई, तीन प्रादेशिक औद्योगिक सुरक्षा, स्वास्थ्य और कल्याण के संग्रहालय जो कलकत्ता, कोयम्बतूर तथा कानपुर में हैं, उत्पादकता केन्द्र, पर्यवेक्षण प्रशिक्षण केन्द्र, औद्योगिक मनोविज्ञान तथा शरीर विज्ञान केन्द्र आदि की भी व्यवस्था करता है।

शिलांग में प्रवासी श्रमिक नियन्त्रक कार्यालय का काम १९३२ के चाय क्षेत्र प्रवासी श्रमिक अधिनियम के उपबन्धों का निर्वाचन तथा उसका प्रशासन करना है तथा श्रमिकों की भर्ती व उन्हें घर वापिस भेजने की व्यवस्था एवं चाय बागान व डिपो के निरीक्षण आदि कार्यों का करना है।

औद्योगिक अधिकरणों के कार्यों का उल्लेख औद्योगिक विवाद के अध्याय में, मजदूरी बोर्डों के कार्यों का उल्लेख मजदूरी के अध्याय में तथा कर्मचारी राज्य बीमा निगम और केन्द्रीय प्रोविडेन्ट फण्ड आयुक्त के कार्यों का उल्लेख सामाजिक सुरक्षा के अध्याय में किया जा चुका है। रोजगार तथा प्रशिक्षण महानिदेशालय तथा गोरखपुर श्रम संगठन का उल्लेख भर्ती के अध्याय में किया जा चुका है। केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड का उल्लेख पृष्ठ ११७-१८ पर किया गया है।

राज्यों में श्रम प्रशासन —(Labour Administration in States)

१९५१ के 'ख' भाग राज्य (कानून) अधिनियम के अन्तर्गत केन्द्रीय श्रम कानून सभी 'ख' भाग के राज्यों पर लागू कर दिए गए थे। राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् यह अधिनियम सब राज्यों पर लागू होते हैं। अपने क्षेत्र के लिए पारित किए गए एवं अपने क्षेत्र में लागू श्रम कानूनों के प्रशासन और कार्यान्विति के लिए तथा श्रम से सम्बन्धित आंकड़ों तथा अन्य सूचनाओं को एकत्रित, संकलित तथा विज्ञापित करने के लिए सभी उद्योग प्रधान राज्यों ने अपनी अलग-अलग व्यवस्था की है। सभी राज्यों में श्रम विभाग की स्थापना के अतिरिक्त श्रम आयुक्तों को भी नियुक्त किया गया है जो श्रम प्रशासन के लिए उत्तरदायी हैं। इनके अधीन अनेक अधिकारी होते हैं, उदाहरणतया कारखानों के मुख्य निरीक्षक कारखाना अधिनियम के अन्तर्गत रोजगार, दुर्घटनाओं आदि से सम्बन्धित आंकड़े तथा मजदूरी भुगतान अधिनियम के अन्तर्गत मजदूरी एवं आय की सूचनायें एकत्रित करते हैं, श्रमिक संघों के रजिस्ट्रार, श्रमिक संघों, उनकी सदस्यता एवं उनकी निधि से सम्बन्धित आंकड़े एकत्रित करते हैं, श्रमिक क्षतिपूर्ति के आयुक्त, दुर्घटनाओं, क्षतिपूर्ति भुगतान अनि-

से सम्बन्धित आंकड़ों को एकत्रित करते हैं आदि। १९४२ के औद्योगिक सांख्यिकी अधिनियम के अन्तर्गत अनेक राज्यों में समान आधार पर विस्तृत रूप से आंकड़ों को एकत्रित करने के लिए सांख्यिकी अधिकारियों की भी नियुक्ति की गई है। इस प्रकार से जो आंकड़े एकत्रित होते हैं उनका विश्लेषण किया जाता है और उनमें से कुछ को भारत सरकार द्वारा प्रकाशित पत्रिकाओं तथा 'इण्डियन लेबर जरनल' में प्रकाशित किया जाता है।

उत्तर प्रदेश में श्रम प्रशासन —(Labour Administration in U P)

जिस प्रकार की सूचना का ऊपर उल्लेख किया गया है वह उत्तर प्रदेश में श्रम आयुक्त की अधीनता में सांख्यिकी संगठन द्वारा एकत्रित तथा प्रकाशित की जाती है। हाल ही में इस संगठन का पुनर्गठन किया गया है तथा इसको और अधिक शक्तिशाली बनाया गया है। कानपुर के लिए श्रमिक-वर्ग के जीवन निर्वाह सूचकांकों को एकत्रित करने के अतिरिक्त अनेक ग्रामों में कृषि श्रमिकों की मजदूरी से सम्बन्धित, तथा न्यूनतम मजदूरी अधिनियम के अन्तर्गत आने वाले रोजगारों में औद्योगिक श्रमिकों की दशाओं से सम्बन्धित तथा कुछ विशेष क्षेत्रों में औद्योगिक श्रमिकों के पारिवारिक बजटों से सम्बन्धित पूछताछ भी की गई हैं और की जा रही है।

उत्तर प्रदेश में श्रम विभाग के अध्यक्ष श्रम आयुक्त हैं। वह १९४६ के औद्योगिक रोजगार (स्थायी आदेश) अधिनियम के अन्तर्गत प्रमाण अधिकारी का, कर्मचारी प्रोविडेन्ट फण्ड योजना के अन्तर्गत उत्तर प्रदेश में क्षेत्रीय प्रोविडेन्ट फण्ड आयुक्त का १९५१ के 'उत्तर प्रदेशीय चीनी एवं चालक मद्यसार उद्योग श्रमिक कल्याण तथा विकास निधि अधिनियम' के अन्तर्गत श्रम कल्याण आयुक्त का तथा १९५३ के औद्योगिक आवास अधिनियम के अन्तर्गत आवास आयुक्त का भी कार्य सम्पन्न करते हैं। श्रम आयुक्त को उनके कार्यों में सहायता देने के लिये दो अतिरिक्त श्रम आयुक्त हैं जो प्रशासन और कल्याण कार्यों के लिये हैं। इनमें से एक तो इस समय उत्तर प्रदेश में वृद्धावस्था पेंशन योजना तथा अनुसन्धान, लेखा-जोखा श्रम प्रचार तथा स्थायी आदेशों की देख-रेख कर रहे हैं और दूसरे कल्याण कार्यों की देख रेख करते हैं तथा इनकी सहायता के लिये एक कल्याण और आवास सलाहकार भी है। दो उप-श्रम आयुक्त हैं जिनमें से एक उप-श्रम आयुक्त औद्योगिक सम्बन्धों के हैं और एक उप-श्रम आयुक्त समान कार्यों के हैं तथा एक कारखानों का मुख्य निरीक्षक है तथा एक 'बॉयलर्स' का मुख्य निरीक्षक है तथा एक कार्यकुशलता सलाहकार है। यह ■ अधिकारी श्रम आयुक्त कार्यालय के विभिन्न अनुभागों (Sections) के कार्यों को उच्च-स्तर पर देखभाल के लिये उत्तरदायी होते हैं। श्रम आयुक्त के कार्यालय में निम्नलिखित पूर्ण विकसित अलग अलग अनुभाग हैं और प्रत्येक अनुभाग में अनेक अधिकारी निरीक्षक आदि नियुक्त हैं —(१) कल्याण अनुभाग—यह अनुभाग अतिरिक्त श्रम आयुक्त (कल्याण) के अधीन है और इसकी सहायता के लिए एक सलाहकार, एक सहायक श्रम आयुक्त और दो सहायक कल्याण अधिकारी हैं। इसके अन्तर्गत

पाँच क्षेत्रीय कल्याण कार्यालय हैं जो कानपुर, आगरा बरेली, इलाहाबाद तथा मेरठ में हैं। (२) औद्योगिक सम्बन्ध अनुभाग–यह अनुभाग एक उप-श्रम आयुक्त के अधीन है। इसके अन्तर्गत अनेक सुलह अधिकारी स्थानीय श्रम निरीक्षक श्रम निरीक्षक तथा श्रम सहायक आते हैं। इस समय इसके ७ प्रादेशिक कार्यालय हैं जो ६ सहायक श्रम आयुक्तों के अधीन हैं। (देखिए पृष्ठ १६६–७०) (३) कारखानों के मुख्य निरीक्षक की अध्यक्षता में कारखाना अनुभाग–इसमें कारखानों का एक उप-मुख्य निरीक्षक तथा अनेक कारखाना निरीक्षक हैं। कारखानों के मुख्य निरीक्षक बागान के मुख्य निरीक्षक भी हैं। (४) न्यूनतम मजदूरी और दुकान अनुभाग–यह पहले दो अनुभाग थे जो १९५५ में मिलाकर एक कर दिए गए थे। यह अनुभाग उप-श्रम आयुक्त (औद्योगिक सम्बन्ध) की अधीनता में है। इसकी सहायता के लिए दो सहायक श्रम आयुक्त दुकान और वाणिज्य संस्थानों का एक मुख्य-निरीक्षक तथा अनेक श्रम निरीक्षक और अन्य कर्मचारी हैं। (५) 'बोयलर्स' के मुख्य निरीक्षक की अधीनता में एक बोयलर्स अनुभाग—इसमें बोयलर्स के ६ निरीक्षक हैं। (६) एक सहायक रजिस्ट्रार और श्रमिक संघ निरीक्षक की अधीनता में एक श्रमिक संघ और स्वामी आदेश अनुभाग। (७) सांख्यिकी अनुभाग–इसकी तीन शाखायें हैं–सांख्यिकी अन्वेषण और प्रचार–प्रत्येक शाखा एक उत्तर प्रदेश राजकीय सेवा के अधिकारी के अधीन है। इसमें प्रवर और अवर अन्वेषक सांख्यिकी सहायक आंकड़ों को संकलन करने वाले क्लर्क तथा अन्य सहायक होते हैं। (८) उत्तर प्रदेश राजकीय सेवा का एक लेखा अधिकारी की अधीनता में एक लेखा और संस्थान अनुभाग। (६) आवास से सम्बन्धित एक अनुभाग। (१०) कार्यक्षमता और विवेकीकरण से सम्बन्धित एक अनुभाग। (११) वृद्धावस्था पेंशन योजना से सम्बन्धित एक अनुभाग।

औद्योगिक विवादों की रोकथाम करने और उनके निबटारे से सम्बन्धित व्यवस्था का उल्लेख सातवें अध्याय में किया जा चुका है।

वर्तमान संविधान में श्रम विषय –(Labour in the Present Constitution)

संविधान सभा द्वारा पारित भारत के नए संविधान को पारित द्वारा २६ नवम्बर १९४९ को प्रमाणित किया गया। यह संविधान २६ जनवरी १९५० से लागू हुआ जब भारत को सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य घोषित किया गया।

संविधान के प्राक्कथन में कहा गया है कि हम भारत के लोग भारत को एक सम्पूर्ण प्रभुत्व-सम्पन्न प्रजातन्त्रात्मक गणराज्य बनाने के लिए तथा उसके सभी नागरिकों को सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक न्याय देने के लिए; तथा विचार अभिव्यक्ति विश्वास, धर्म और उपासना की स्वतन्त्रता के लिए; तथा प्रतिष्ठा और अवसर की समता प्राप्त कराने के लिए तथा उन सब में बन्धुता की ऐसी भावना जिसमें व्यक्ति का गौरव और राष्ट्र की एकता सुनिश्चित हो सके बढ़ाने करने के लिए, दृढ़ संकल्प करके इस संविधान को स्वीकृत अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।

संविधान के अनुच्छेद २३ के अन्तर्गत मानव के पणन (Traffic), बेगार तथा अन्य जबरदस्ती से कराए गए श्रम को निषेध कर दिया गया है। अनुच्छेद २४ के अन्तर्गत १४ वर्ष से कम आयु के बालकों को कारखानों, खानों या किसी भी संकट मय कार्यों में रोजगार पर नहीं लगाया जा सकता।

संविधान के भाग IV में राज्य के नीति निदेशक सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। यह देश के शासन के लिये मूल सिद्धान्त हैं और विधान बनाने में इनको लागू करना तथा जन कल्याण को विकसित करना राज्य का कर्तव्य है। संविधान के अनुच्छेद ३९, ४१ ४२ और ४३ श्रम नीति से सम्बन्धित हैं और उन्हें नीचे उद्धृत किया जाता है —

अनुच्छेद ३९ में उन अनेक नीति सिद्धान्तों का उल्लेख है जिनका राज्य को पालन करना चाहिये। विशेषतया राज्य अपनी नीति का ऐसा संचालन करेगा कि सुनिश्चित रूप से (क) नर और नारी सभी नागरिकों को समान रूप से जीविका के पर्याप्त साधन प्राप्त करने का अधिकार हो (ख) समुदाय के भौतिक साधनों का स्वामित्व और नियंत्रण इस प्रकार से विभाजित हो जिससे सार्वजनिक हितों का सर्वोत्तम अनुसरण हो (ग) आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार चले कि धन और उत्पादन साधनों का संकेन्द्रण इस प्रकार न हो पाये कि जनसाधारण के हितों को हानि पहुँचे। (घ) पुरुषों और स्त्रियों दोनों को समान कार्य के लिये समान वेतन मिले। (ङ) पुरुषों और स्त्री श्रमिकों का स्वास्थ्य और शक्ति तथा बालकों की सुकुमार अवस्था का दुरुपयोग न हो तथा नागरिक आर्थिक आवश्यकताओं के कारण ऐसे व्यवसायों का करने को बाध्य न हों जो उनकी आयु और सामर्थ्य को देखते हुये अनुपयुक्त हों। (च) बालक और किशोरों की शोषण तथा नैतिक पतन से रक्षा हो और उनको आर्थिक अभाव न रहे।

अनुच्छेद ४१ काम करने के अधिकार, शिक्षा पाने के अधिकार तथा विशेष मामलों में राज्य सहायता पाने के अधिकार से सम्बन्धित है। इसमें उल्लेख है कि राज्य अपनी आर्थिक सामर्थ्य और विकास की सीमाओं के भीतर कार्य और शिक्षा पाने के, तथा बेकारी, बुढ़ापा बीमारी असमर्थता तथा अनावश्यक अभाव की अन्य अवस्थाओं में सार्वजनिक सहायता पाने की अधिकारों की पूर्ति की व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद ४२ में उल्लेख है कि राज्य कार्य की यथोचित और मानवीय दशाओं को सुनिश्चित करने के लिए तथा मातृत्व-हित लाभ के लिये व्यवस्था करेगा।

अनुच्छेद ४३ श्रमिकों के लिये निर्वाह मजदूरी आदि से सम्बन्धित है। इसमें उल्लेख है कि राज्य उपयुक्त विधान, आर्थिक व्यवस्था के संगठन अथवा अन्य किसी प्रकार से सभी कृषि औद्योगिक एवं अन्य प्रकार के श्रमिकों के लिये ऐसे कार्य निर्वाह मजदूरी तथा कार्य की दशाओं को प्राप्त करने की व्यवस्था करेगा जिससे उनका रहन-सहन का स्तर उच्च और उचित हो सके तथा उनको विश्राम और सामाजिक

तथा सांस्कृतिक सुविधाओं का पूर्ण लाभ उठाने का अवसर प्राप्त हो सके। ग्रामीण क्षेत्रों में राज्य निजी अथवा सहकारिता के आधार पर कुटीर उद्योग धन्धों को विकसित करने का प्रयत्न करेगा।

संविधान के भाग ११ अध्याय १ में केन्द्र और राज्यों (संघीय इकाइयों) के बीच विधायी सम्बन्धों की व्याख्या की गई है। विधान बनाने के सम्बन्ध में विषयों को तीन सूचियों में विभाजित किया गया है —

(१) केन्द्रीय सूची—इस सूची में दिये गये विषयों में से किसी पर भी विधान बनाने का एकमात्र अधिकार संसद को है।

(२) समवर्ती सूची—इस सूची में दिये गये विषयों में से किसी पर भी विधान बनाने का अधिकार संसद अथवा राज्य विधान मंडलों दोनों को ही है।

(३) राज्य सूची—कुछ परिस्थितियों के अन्तर्गत इस सूची में दिये गये विषयों में से किसी पर भी राज्य या इसके किसी भाग के लिये विधान बनाने का एकमात्र अधिकार राज्य विधान मण्डलों को है।

संसद को ऐसे किसी भी विषय पर कानून बनाने का एकमात्र अधिकार है जिसका उल्लेख समवर्ती सूची अथवा राज्य सूची में नहीं है।

संविधान के भाग २२, अनुसूची ७ में केन्द्रीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची के विषयों का उल्लेख है। इन सूचियों में श्रम से सम्बन्धित विषयों का उल्लेख निम्नलिखित किया जाता है :—

(१) केन्द्रीय सूची —

मद संख्या १३—अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलनों परिषदों एवं अन्य निकायों (Bodies) में भाग लेना और उनके द्वारा किये गये निर्णयों को लागू करना।

मद संख्या २८—बन्दरगाह संगरोध (क्वारंटाइन) और उनसे सम्बन्धित अस्पताल तथा नाविकों के तथा जहाजी अस्पताल।

मद संख्या ५५—खानों तथा तेल क्षेत्रों में श्रम सम्बन्धी व सुरक्षा की व्यवस्था का विनियमन।

मद संख्या ६१—केन्द्रीय कर्मचारियों से सम्बन्धित औद्योगिक विवाद।

मद संख्या ६५—(क) रोजगार व्यावसायिक तथा तकनीकी प्रशिक्षण तथा (ख) विशेष अध्ययन एवं अनुसंधान के विकास के लिये केन्द्रीय एजेन्सी एवं संस्थाओं की व्यवस्था।

मद संख्या ९४—इस सूची में दिये गये किसी भी विषय पर जाँच पड़ताल, सर्वेक्षण एवं आंकड़े एकत्रित करना।

(२) राज्य सूची —

मद संख्या ९—बेरोजगार एवं असमर्थ व्यक्तियों की सहायता।

(३) समवर्ती सूची —

मद संख्या २०—आर्थिक एवं सामाजिक आयोजन।

मद संख्या २१—वाणिज्य एवं औद्योगिक एकाधिकार गुट (Combines) एवं प्रन्यास (Trust)।

मद संख्या २२—व्यापार संघ, औद्योगिक एवं श्रम विवाद।

मद संख्या २३—सामाजिक सुरक्षा तथा सामाजिक बीमा रोजगार तथा बेरोजगारी।

मद संख्या २४—श्रम-कल्याण इसमें कार्य की दशाएँ, प्रोविडेन्ट फण्ड, मालिकों की देयता श्रमिक क्षतिपूर्ति निवास एवं वृद्धावस्था की पेन्शनें एवं मातृत्व हित लाभ आदि सम्मिलित हैं।

मद संख्या २५—श्रमिकों का व्यावसायिक एवं तकनीकी प्रशिक्षण।

मद संख्या ३६—कारखाने।

मद संख्या ४५—समवर्ती सूची तथा राज्य सूची में दिए गए किसी भी विषय के लिए जाँच पड़ताल एवं आँकड़े एकत्रित करना।

उपसंहार

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि श्रम प्रशासन में सरकार की अनेक कार्यवाहियाँ और संविधान में श्रम का विशेष रूप से उल्लेख श्रम समस्याओं की बढ़ती हुई महत्ता और राज्य द्वारा उसकी मान्यता के स्पष्ट प्रमाण हैं। यह आशा की जा सकती है कि श्रम समस्याओं के सम्बन्ध में एक उचित व्यवस्था करने तथा श्रम कानूनों का उचित रूप से प्रशासन करने पर देश में श्रमिक-वर्ग की अवस्थाओं में बहुत सीमा तक सुधार हो सकेगा। यह बात ध्यान में रखनी चाहिए कि सम्मेलन, समितियाँ प्रस्ताव और कानून कितने भी क्यों न हों परन्तु उस समय तक वह सहायक नहीं हो सकते जब तक इन प्रस्तावों सिफारिशों और कानूनों को सच्चे हृदय ईमानदारी और उचित प्रकार से लागू नहीं किया जाता है। दुर्भाग्यवश हमारे देश में कागजी कार्यवाही एवं लालफीताशाही अधिक है। अधिकारी वर्ग अधिकतर कागजों पर आँकड़ों द्वारा परिणाम दिखाने में लिप्त रहते हैं। परिस्थिति का इस व्यावहारिक दृष्टिकोण से अध्ययन करने का प्रयत्न नहीं किया जाता कि वास्तव में श्रमिकों का हित हो भी रहा है या नहीं। इसका परिणाम यह होता है कि सुधार करने के लिए सरकार के अनेक प्रयत्नों का कोई लाभदायक फल नहीं निकलता और वास्तविक स्थिति वैसे ही बनी रहती है। सरकार को यह नहीं करना चाहिए कि जिस प्रकार से ब्रिटिश शासन में होता था उसी प्रकार से समितियों की नियुक्ति करने और सम्मेलनों को बुलाने की व्यवस्था ही करती रहे वरन् उसका यह कर्तव्य है कि जन-साधारण के उद्धार के लिए व्यावहारिक पग उठाने की ओर अधिक ध्यान दे।

पंचवर्षीय आयोजनाएँ और श्रम

(The Five Year Plans and Labour)

अबन्ध नीति का सिद्धान्त — (The Doctrine of Laissez Faire)

अबन्ध नीति का प्रभाव बहुत समय तक प्रत्येक देश में व्यक्तियों पर छाया रहा और राष्ट्रों की आर्थिक नीतियां भी इस नीति से प्रभावित रहीं। यह विश्वास किया जाता था कि यदि स्वःहित सम्पादन को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए तो इससे अधिकतम निजी हित प्राप्त हो सकेगा। अबन्ध नीति में विश्वास रखने वालों की धारणा थी कि आर्थिक मामलों में सर्वोत्तम परिणामों को प्राप्त करने के लिए राज्य को आर्थिक क्षेत्र से बाहर ही रहना चाहिए। निजी उद्यम ही सब आवश्यक बातों को पूरा करने के लिए पर्याप्त है क्योंकि इससे उपभोक्ताओं को तो कम मूल्यों के कारण तथा उत्पादकों को अधिक लाभ प्राप्ति के कारण फायदा होगा। लाभ कमाने की इच्छा का परिणाम यह होगा कि अधिकतम उत्पादन हो सकेगा। प्रतियोगिता के कारण लाभ अधिक न हो पाएँगे और जितना कि उत्पादन को प्रोत्साहन देने के लिए आवश्यक होंगे वहीं तक सीमित रहेंगे। परिणामस्वरूप प्रत्येक उत्पादक यथा-सम्भव कुशल होने का प्रयत्न करेगा और उपभोक्ताओं की इच्छाओं का यथा-सम्भव ध्यान रखेगा।[1]

जब स्वःहित स्वतन्त्र रूप से छाया रहता है तो उसके अन्तर्गत आर्थिक प्रणाली निजी लाभ की प्रेरणा से चालित होती है। उत्पादक वही वस्तुएँ और उतनी ही मात्रा में उत्पन्न करते हैं जितनी कि उपभोक्ताओं द्वारा मांग की जाती है। उपभोक्ता अपनी तरजीह (Preferences) को मूल्यों के रूप में प्रकट करते हैं। विभिन्न वस्तुओं के मूल्यों से ही इस बात का निर्धारण होता है कि कौन-कौन सी वस्तुएँ तथा कितनी मात्रा में उत्पन्न की जाएँ। उत्पादन साधनों का विभिन्न उपयोगों में किस प्रकार विनिधान (Allocation) किया जाए इसका निर्धारण भी मूल्यों के द्वारा ही होता है। इस प्रकार मूल्य वह अदृश्य शक्ति है जिसके द्वारा सम्पूर्ण आर्थिक गति विधियों का नियन्त्रण और पथ प्रदर्शन होता है।[2]

---

1 G. D. H. Cole : *Practical Economics* pages 7-8.

2 आयोजना की समस्याओं का विस्तृत विवरण लेखक तथा प्रो० पी० सी० माथुर द्वारा लिखित पुस्तक 'सामाजिक अर्थशास्त्र' में अध्याय १५ से १६ तक देखिए।

आयोजना के विचार का विकास —

अबन्ध नीति सदव ही अपने दृष्टिकोण में पूंजीवादी रही है। यह नीति निजी मालिकों के अस्तित्व को मान कर बनाई गई थी जिनके पास उत्पादन के विशेष साधन तथा श्रम को रोजगार पर लगाने की क्षमता होती है। इस नीति में पूंजी का निजी स्वामित्व भी मान लिया गया था। परन्तु पिछले कुछ वर्षों से इस अबन्ध नीति पर से लोगों का विश्वास उठ गया है। यह देखा गया है कि स्वतन्त्र प्रतियोगिता में उत्पादन प्रणाली बहुधा अस्त-व्यस्त हो जाती है और इसके कारण जन साधारण को घोर परेशानियों का सामना करना पड़ता है। पूंजीवादी समाज की प्रगति बिना बाधाओं के नहीं हो पाती। पूंजीवादी प्रणाली में आर्थिक मन्दी और तेजी जैसी कई अवस्थाओं का सामना करना पड़ता है। निर्बल का सबल द्वारा शोषण किया जाता है और सामाजिक कल्याण की क्षति होती है। अतः यह आवश्यक समझा गया कि आर्थिक प्रणाली को इस प्रकार संगठित किया जाना चाहिये कि शोषण तथा तेजी व मन्दी जैसी आर्थिक अस्थिरता से छुटकारा पाया जा सके। रूस ने यह सिद्ध कर दिया कि आर्थिक आयोजना के द्वारा यह सम्भव हो सकता है। १९२९ में जब समस्त संसार मन्दी और बेरोजगारी से पीड़ित था तब रूस में श्रमिकों की कमी की समस्या थी।

अतः आर्थिक मन्दी के समय में जब संसार ने यह असामान्य और बुरी स्थिति देखी कि वस्तुओं की बाहुल्यता होने पर भी लोग भूख से मर रहे थे तब से समस्त संसार के क्षेत्रों में आयोजना का विचार दृढ़ होता चला गया है। अब आर्थिक प्रणाली को माँग और पूर्ति की दशाओं के अन्दर स्वतन्त्र छोड़ देना सुरक्षित नहीं समझा जाता। अब ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं जो इस बात में विश्वास करते हैं कि यदि आर्थिक शक्तियों को स्वतन्त्र छोड़ दिया जाए तो उनके द्वारा देश के आर्थिक साधनों का स्वतः सर्वोत्तम वितरण हो जायेगा। सर विलियम बेवरिज ने कहा है "यह आशा करना कि व्यक्तिवादी रूप से छोटे-छोटे और पृथक् उद्योग धन्धों से एक ऐसा उद्योग बन जायेगा जिसमें हर प्रकार से अधिकतम कुशलतापूर्वक कार्य होगा, वैसा ही होगा जैसे यह आशा की जाए कि असंख्य छोटे-छोटे सम्पत्ति के मालिक और निर्माणकर्ता अपनी अनियन्त्रित व अव्यवस्थित कार्यवाहियों से कोई ऐसा नियोजित नगर बना लेंगे जिसमें अनावश्यक स्थान छोड़ती गलियां तथा यातायात का अवरुद्ध होना जैसी बातें न हों।" उत्पादकता और आय को बढ़ाने के लिये तथा देश के बहुमुखी विकास में तीव्रता लाने के लिये अब नियोजित अर्थ-व्यवस्था को स्वीकार कर लिया गया है।

आयोजना का अर्थ और उसकी परिभाषा —

आयोजना केन्द्रीय नियन्त्रण को मान कर चलती है और इसमें यह अन्तर्निहित है कि राष्ट्र के साधनों का जो भी उपयोग होता है वह सोच समझकर और विमर्श पूर्वक तथा एक निश्चित उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए किया जाता है। इसमें जितनी भी आर्थिक क्रियायें हैं उन सबको निश्चित रूप से समायोजित और समन्वित

कर लिया जाता है ताकि व्यर्थ की प्रतियोगिता और कार्य का दुहरापन समाप्त हो जाए। बार्बे फ्रेंड्रिक ने अपनी एक पुस्तक Readings in Economic Planning' में 'लुई लारविन' की परिभाषा उद्धृत की है जिसने एक आयोजित अर्थ-व्यवस्था की व्याख्या इस प्रकार की है 'आयोजित अर्थ-व्यवस्था आर्थिक संगठन की एक ऐसी योजना है जिसमें प्रत्येक व्यक्ति तथा पृथक-पृथक अधीन उद्यम और उद्योग सबको एक ही प्रणाली की समायोजित इकाइयां माना जाता है और इसका उद्देश्य यह होता है कि जितने भी उपलब्ध साधन हैं उनका इस प्रकार से उपयोग किया जाए कि एक निश्चित समय में मनुष्य की आवश्यकताओं की अधिकतम सन्तुष्टि हो सके।" डिकिन्सन के शब्दों में "आर्थिक आयोजना का अर्थ यह है कि समस्त आर्थिक प्रणाली के व्यापक सर्वेक्षण के आधार पर एक निर्धारित करने वाली सत्ता द्वारा सोच-समझ कर इरादतन मुख्य आर्थिक निर्णय लिए जाते हैं—जैसे क्या और कितना उत्पादन होना चाहिये और किन-किन में उसका विनियोग होना चाहिये।" डब्लू० एन० लूस ने आयोजना की निम्नलिखित शब्दों में व्याख्या की है "आयोजना से तात्पर्य यह है कि राष्ट्रीय भावना से प्रेरित सामाजिक व्यापक उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिये समस्त आर्थिक क्रियाओं को राष्ट्रीय आधार पर निश्चित किए और ढाले हुए क्षेत्रों में तथा एक समायोजित इकाई में इस प्रकार यथास्थान स्थित कर दिया जाता है जैसे किसी पच्चीकारी का भाग हो।"*

इस प्रकार आर्थिक आयोजना से आर्थिक क्रियाओं को नियन्त्रित करने वाली सत्ता मूल्य के स्थान पर राज्य हो जाता है। आर्थिक प्रणाली पर मूल्य का नियन्त्रण समाप्त हो जाता है। विभिन्न उद्योगों में साधनों का विनिधान राज्य द्वारा किया जाता है और जिस मात्रा में राज्य चाहता है उसी मात्रा में वस्तुओं का उत्पादन होता है। इस प्रकार आयोजना द्वारा अबन्ध नीति की अर्थ व्यवस्था समाप्त हो जाती है और उसके स्थान पर देश की आर्थिक प्रणाली पर प्रभावात्मक नियन्त्रण लागू कर दिया जाता है। उत्पादन विनिमय वितरण आदि सब एक पूर्व निश्चित आयोजना के अनुसार होते हैं। उपभोक्ता के स्थान पर आर्थिक विषयों में राजनैतिक विषयों के साथ-साथ राज्य का प्रभुत्व आ जाता है। स्वहित के स्थान पर समाज हित के उद्देश्य से आर्थिक प्रक्रियायें प्रभावित होती हैं। आर्थिक आयोजना का उद्देश्य विभिन्न देशों में विभिन्न हो सकता है परन्तु सामान्य लक्ष्य यही है कि आर्थिक जीवन में स्थिरता लाई जाय न्यायोचित वितरण हो और देश के साधनों का अधिकतम उपयोग हो सके जिससे अधिक उत्पादन हो पूर्ण रोजगार हो तथा जीवन स्तर ऊंचा हो जाय।

---

* *The shaping of all economic activities into group-defined spheres of action which are nationally mapped out and fitted as part of a mosaic into a co-ordinated whole for the purpose of achieving certain nationally conceived and socially comprehensive goals."*

आधार पर हो तथा जमींदारी प्रणाली का उन्मूलन कर दिया जाए। छोटे पैमाने के उद्योगों का संगठन सहकारी आधार पर किया जाना चाहिए तथा उनको ग्रामीण क्षेत्रों में प्रोत्साहन देने की भी सिफारिश थी।

आयोजना में देश-व्यापी रुचि वास्तव में 'बम्बई आयोजना' के प्रकाशन से उत्पन्न हुई। यह आयोजना १९४४ में बम्बई के ८ उद्योगपतियों द्वारा बनाई गई थी। आयोजना में १५ वर्षों के दौरान में १०,००० करोड़ रुपये व्यय करके राष्ट्रीय आय को दुगना करने का सुझाव था। इसने देश के लिए सन्तुलित अर्थ-व्यवस्था की दलील दी तथा उद्योग कृषि संचार, शिक्षा और आवास के लिए लक्ष्य निर्धारित किए। आयोजना के दूसरे भाग में वितरण की समस्या का उल्लेख किया गया था तथा इसका उद्देश्य राज्य समाजवाद और पूंजीवाद के बीच समझौता स्थापित करना था। इस आयोजना की आलोचना इस आधार पर की गई कि यह पूंजीवादी थी। इसकी महत्ता भी अब समाप्त हो गई है क्योंकि मूल्यों में वृद्धि तथा देश में बदली हुई राजनैतिक व आर्थिक परिस्थितियों के कारण इसके अनुमान सब गलत हो गए हैं।

इसके अतिरिक्त श्री एम० एन० राय द्वारा बनाई गई "जन आयोजना" (People's Plan) भी थी। इसकी लागत १० वर्षों के दौरान में १५,००० करोड़ रुपया अनुमानित की गई थी जो कृषि, उद्योग संचार व स्वास्थ्य पर व्यय की जानी थी। इस आयोजना में कृषि के विकास पर बल दिया गया था भूमि के राष्ट्रीयकरण की दलील दी गई थी तथा कृषि भूमि के क्षेत्र को ५०% तक बढ़ाया जाने का सुझाव दिया गया था। परन्तु यह अनुमान असम्भव प्रतीत होते थे। अतः इस आयोजना पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया।

वर्धा के प्रो० एस० एन० अग्रवाल (श्री श्रीमन नारायण) ने भी 'गांधीवाद आयोजना' (Gandhian Plan) बनाई। इस आयोजना के उद्देश्य बहुत ऊँचे नहीं थे; इसमें घोषणा की गई थी कि भारतवर्ष एक निर्धन देश था अतः आयोजनाओं पर बड़ी धनराशि व्यय नहीं कर सकता था। इसकी अनुमानतः लागत ३,५०० करोड़ रुपये थी और उसको कृषि उद्योग यातायात जन स्वास्थ्य शिक्षा आदि-आदि अनेक मदों में बांटा गया था। आयोजना का मुख्य उद्देश्य कुटीर उद्योगों की पुनर्स्थापना, कृषि में सुधार और आत्म-निर्भरता का आदर्श था। यह आयोजना के लिए पश्चिमी प्रणाली अपनाने के विरुद्ध थी। आयोजना की यह आलोचना की गई कि यह आधुनिक संसार में घोर आदर्शवादी व अव्यावहारिक थी।

युद्धोत्तर पुनर्निर्माण के लिए भी भारत सरकार ने कुछ आयोजनायें बनाईं। जून १९४१ में अनेक पुनर्निर्माण समितियों की स्थापना की गई। जुलाई १९४४ में आयोजना और विकास विभाग की स्थापना की गई। सरकार की आयोजना दो भागों में विभाजित थी तत्कालीन और दीर्घकालीन। तत्कालीन आयोजना में युद्ध से शांतिकालीन अर्थ-व्यवस्था में परिवर्तन की समस्या को सुलझाना था—उदाहरणतः

युद्ध सामग्री व अतिरिक्त स्टाक को काम में लाना, युद्ध सैनिकों का पुनर्वास, युद्ध कालीन नियन्त्रणों को कम करना और धीरे-धीरे दूर करना आदि। यह १,००० करोड़ रुपये की लागत की पंचवर्षीय आयोजना थी। दीर्घकालीन आयोजना में विद्युत-शक्ति के विकास सिंचाई, ग्रामीण एवं बड़े उद्योग धन्धे, यातायात सेवा तथा कृषि में सुधार के द्वारा देश के आर्थिक जीवन का सर्वाङ्गीण विकास करने का उद्देश्य था। धन के समान वितरण पर जोर दिया गया था।

१९५० का आयोजना आयोग —(Planning Commission of 1950)

यह सब आयोजनायें इस धारणा पर आधारित थीं कि भारतवर्ष अविभाजित रहेगा। शरणार्थी पुनर्वास, काश्मीर युद्ध युद्धोत्तर मुद्रा प्रसार, खाद्य की कमी और व्यापार अवरोध जैसी घोर समस्याओं के बारे में किसी ने सोचा भी न था। युद्धोत्तर घटनाओं से यह सब आयोजनायें बेकार हो गईं। अतः यह आवश्यक हो गया है कि भारत में उपलब्ध मानवीय व भौतिक साधनों को ध्यान में रखकर एक नई आयोजना बनाई जाए। अतः मार्च १९५० में श्री नेहरू की अध्यक्षता में एक आयोजना आयोग की स्थापना की गई। इसका कार्य यह था कि भौतिक, पूंजीगत व मानवीय साधनों का ठीक-ठीक अनुमान लगाए तथा "देश के स्रोतों के सन्तुलित व 'बहुत प्रभावात्मक' उपयोग के लिए एक आयोजना बनाए जिससे देश के हर नागरिक को चाहे वह स्त्री हो अथवा पुरुष, जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधन उपलब्ध हो सकें।" राज्यों में आयोजना तथा विकास प्रभागों की स्थापना की गई। आयोग ने तत्काल ही अपना काम प्रारम्भ कर दिया और १५ महीने पश्चात्, जुलाई १९५१ में, सरकार को प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की प्रारम्भिक रूपरेखा प्रस्तुत कर दी। पंचवर्षीय आयोजना अन्तिम रूप में श्री नेहरू द्वारा संसद में ८ दिसम्बर १९५२ को प्रस्तुत की गई। इस आयोजना की अवधि अप्रैल १९५१ से मार्च १९५६ तक रखी गयी।

कोलम्बो आयोजना —(The Colombo Plan)

कोलम्बो आयोजना राष्ट्रमण्डलीय (Commonwealth) देशों के आर्थिक सम्बन्धों का ही एक भाग है। इस आयोजना का अभ्युदय जनवरी १९५० में कोलम्बो में हुए राष्ट्रमंडलीय देशों के विदेश मंत्रियों के विचार-विमर्श के परिणामस्वरूप हुआ। इस सम्मेलन में विश्व समस्याओं पर, विशेषतया दक्षिण और दक्षिण-पूर्व एशिया के देशों की घोर आवश्यकताओं पर विचार विनिमय हुआ। इस सभा में एक सलाहकार समिति बनाई गई। इसका कार्य आवश्यकताओं का सर्वेक्षण करना उपलब्ध साधनों का मूल्यांकन करना तथा इस क्षेत्र में किए जाने वाले विकास कार्यों की ओर संसार का ध्यान आकर्षित कराना था। इसका यह भी कार्य था कि अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग के ऐसे प्रयत्न किए जावें जिनके अन्तर्गत इस क्षेत्र के देशों के निवासियों के जीवन स्तर को ऊंचा उठाया जा सके। प्रारम्भ में इसके सदस्य आस्ट्रेलिया, कनाडा, श्रीलंका, भारतवर्ष, न्यूजीलैंड, पाकिस्तान, इंगलैंड, मलाया तथा

ब्रिटिश बोर्नियो थे। इसके पश्चात् १९५१ में कम्बोडिया लाओस वियतनाम तथा संयुक्तराष्ट्र अमेरिका १९५२ में बर्मा और नेपाल, १९५३ में इंडोनेशिया तथा १९५४ में जापान फिलिपाइन्स और थाईलैंड भी इसके सदस्य हो गए। इस समय 'कोलम्बो आयोजना' में २० सदस्य हैं।

कोलम्बो आयोजना का औपचारिक रूप से उद्घाटन १ जुलाई १९५१ को किया गया। यह ३० जून १९५७ को समाप्त होने को थी। अक्तूबर १९५५ में सलाहकार समिति के सिंगापुर सम्मेलन में आयोजना को ३० जून १९६१ तक बढ़ाना स्वीकार कर लिया गया और अब यह योजना स्थाई रूप से चल रही है। इस आयोजना के अन्तर्गत इस क्षेत्र के देश अपने विकास का यथासम्भव प्रयत्न करते हैं। इन प्रयत्नों में क्षेत्र के बाहर के देशों द्वारा सहायता दी जाती है। आयोजना के पास १८ ६८० लाख पौंड की निधि थी। निधि में से राशि मुख्यतः यातायात और संदेशवाहन कृषि (इसमें नदी घाटी योजनाएँ भी सम्मिलित हैं) आवास स्वास्थ्य व शिक्षा उद्योग और खनिज (इसमें कोयला ईंधन व शक्ति सम्मिलित नहीं हैं) के लिए दी जाती है। १८ ६८० लाख पौंड जो व्यय होगा उसके लिए १० ६८० लाख पौंड आन्तरिक साधनों से और ७ ८४० लाख पौंड बाह्य साधनों से प्राप्त करने की व्यवस्था थी।

आयोजना के अन्तर्गत भारत सहायता भी ले रहा है और दे भी रहा है। भारतवर्ष ने रेलवे के पुनःस्थापन तथा आकाशवाणी के विस्तार के लिए आस्ट्रेलिया से मयूराक्षी और कृष्णा योजनाओं के लिए कनाडा से अखिल भारतीय चिकित्सा विज्ञान संस्था व देहली दुग्ध वितरण योजना के लिए न्यूजीलैंड से तथा दुर्गापुर इस्पात कारखाने के लिए ग्रेट ब्रिटेन से सहायता ली है। १९६१ तक भारत ने २४४ विदेशी विशेषज्ञों की सेवाएँ प्राप्त की तथा २ ४१८ भारतीयों के लिए आयोजना के अन्तर्गत दूसरे देशों में प्रशिक्षण सुविधाएँ प्राप्त कीं। ये सेवाएँ स्वास्थ्य तथा चिकित्सा सम्बन्धी शिक्षा खाद्य तथा कृषि, उद्योग तथा व्यापार शक्ति और ईंधन के साधन यातायात व संचार वाहन बैंकिंग सांख्यिकी, छपाई आदि से सम्बन्धित थीं। श्रम प्रशासन तथा श्रमिक संघवाद में शिक्षा के लिए भी कुछ अधिकारियों को इंगलैंड भेजा गया। भारत को आर्थिक विकास कार्यक्रम के अन्तर्गत जो दूसरे देशों से अंशदान मिला है वह इस प्रकार है आस्ट्रेलिया से १ करोड़ २० लाख पौंड (१९·५ करोड़ रुपए) कनाडा से २,४८० ३० लाख डालर (११८·२ करोड़ रुपए) जिसमें ३३० लाख डालर (१५·७१ करोड़ रुपए) का ऋण भी सम्मिलित है, न्यूजीलैंड से २९ लाख पौंड (३·४ करोड़ रुपए)।

दूसरी ओर भारत ने नेपाल तथा कोलम्बो क्षेत्र के अन्य देशों को सहायता भी दी है। १९६१ तक भारत ने विभिन्न देशों के १ ६९४ व्यक्तियों को प्रशिक्षण सुविधाएँ प्रदान कीं। इनमें से २२९ व्यक्तियों को १९६०–६१ में प्रशिक्षण दिया। प्रशिक्षण हेतु ये व्यक्ति बर्मा श्रीलंका इंडोनेशिया, जापान, मलाया, नेपाल,

फिलिपाइन्स सरवाक, सिंगापुर, थाइलैंड और वियतनाम से आए। इन व्यक्तियों को शिपिंग व मैकेनिकिस इन्जीनियरिंग चिकित्सा वैद्युतवाहन कृषि, उद्योग सांख्यिकी, सहकारिता आदि में प्रशिक्षण दिया गया। इसके अतिरिक्त भारत ने अन्य देशों को विशेषज्ञों की सेवाएँ भी प्रदान की हैं। ये सेवाएँ सिंचाई बैंकिंग लोहा व इस्पात हवाई सर्वेक्षण रेशम उद्योग दुग्ध वितरण आलू उत्पादन ट्रैक्टर इन्जीनियरिंग घड़ौर अनुसन्धान चीनी तथा चमड़ा बनाने की तकनीक रेडियो प्रसार अल्प बचत योजनाएँ, कराधान सुधार, आयुर्वेदिक अनुसन्धान, सड़क यातायात अनुसन्धान हवाई जहाजों का चलाना बीमा योजना का राष्ट्रीयकरण, काजू उत्पादन आदि से सम्बन्धित थीं। १९६०–६१ में भारत ने नेपाल को २.१ करोड़ रुपए की सहायता प्रदान की।

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना का प्रारूप —
(A Brief Outline of the First Five Year Plan)

उपरोक्त वर्णन को ध्यान में रखते हुए अब भारतवर्ष की प्रथम पंचवर्षीय आयोजना पर विचार किया जा सकता है। जुलाई, १९५१ में आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा प्रकाशित की गई जो पाँच वर्षों की अवधि अर्थात् अप्रैल १९५१ से मार्च १९५६ तक के लिए थी। प्रस्तावित रूपरेखा का उद्देश्य यह था कि आयोजना पर जितना भी सम्भव हो जनता द्वारा विचार विमर्श किया जाए। इसको प्रस्तुत करते हुए आयोग ने कहा था 'प्रजातान्त्रिक राज्य में आयोजना एक सामाजिक प्रक्रिया है और इसमें प्रत्येक नागरिक को किसी न किसी प्रकार से भाग लेने का अवसर मिलना चाहिए।' आयोजना आयोग ने केन्द्रीय व राज्य सरकारों मुख्य राजनैतिक दलों के प्रतिनिधियों तथा अन्य विशिष्ट व अनुभवी व्यक्तियों से परामर्श करके आयोजना को अन्तिम रूप दिया। ८ दिसम्बर, १९५२ को संसद के समक्ष प्रथम आयोजना का यह अन्तिम रूप प्रस्तुत किया गया।

आयोजना का मुख्य उद्देश्य विकास की ऐसी प्रक्रिया को आरम्भ करना था जिससे जीवन-स्तर ऊँचा हो जाए तथा व्यक्तियों को अधिक सम्पन्न और विविध प्रकार का जीवन व्यतीत करने के नए-नए अवसर प्राप्त हो सकें। इस आयोजना पर इस दृष्टिकोण से विचार किया जाना था कि इससे इस बात की नींव पड़ सके कि देश का भावी विकास तीव्रगति से हो।

आयोजना एक निरन्तर प्रक्रिया है इसलिए इस बात का विवेचन किया गया था कि प्रथम पंचवर्षीय आयोजना का मुख्य कार्य भारतीयों के सामाजिक और आर्थिक स्तरों को पर्याप्त रूप से ऊँचा उठाना था। उद्देश्य यह था कि प्रति व्यक्ति आय १९७७ तक बढ़कर दुगुनी हो जाए तथा राष्ट्रीय आय १९५१ में ९,००० करोड़ रुपयों से बढ़कर १९५६ में १०,००० करोड़ रुपए तक पहुँच जाए। यह भी आशा व्यक्त की गई थी कि इस अवधि में राष्ट्रीय आय के अनुपात में बचत की दर १९५१ में ५ प्रतिशत से बढ़कर १९५५–५६ में ६.७५%, १९६०–६१ में ११% तथा १९६७–६८ में २०% हो जाएगी। इसके पश्चात् अनुपात अधिक बढ़ाने की

हो गई थी, अर्थात् इसमें १०८% की वृद्धि हुई। १९५०–५१ की तुलना में कृषि उत्पादन में भी १९% की वृद्धि हुई। खाद्य उत्पादन में २९.८% की वृद्धि हुई। रुई के उत्पादन की वृद्धि ३७.५% तथा मुख्य मुख्य तिलहन में उत्पादन की वृद्धि ११.२% रही। सिंचाई की बड़ी बड़ी योजनाओं के परिणामस्वरूप ६० लाख एकड़ भूमि तथा छोटी योजनाओं के परिणामस्वरूप १ करोड़ अतिरिक्त भूमि सिंचाई के अन्तर्गत आ गई। औद्योगिक उत्पादन में भी स्थाई गति से वृद्धि हुई जो १९५१ की अपेक्षा १९५६ में ४०% अधिक था। विद्युत शक्ति का उत्पादन १९५०–५१ में २१ लाख किलोवाट था परन्तु १९५५–५६ में बढ़कर ३३ लाख किलोवाट हो गया। सीमेंट का उत्पादन भी १९५०–५१ में २७ लाख टन से बढ़कर १९५५–५६ में ४६ लाख टन हो गया। सार्वजनिक क्षेत्र में अनेक महत्वपूर्ण औद्योगिक आयोजनायें पूर्ण की गईं और उनके अन्तर्गत कार्य आरम्भ हो गया था। तीन इस्पात कारखानों के सम्बन्ध में प्रारम्भिक कार्य को पूरा किया जा चुका था।

इन पांच वर्षों में अर्थ-व्यवस्था में निवेश का अनुमान लगभग ३,१०० करोड़ रु० का है। १९५०–५१ में निवेश ४५० करोड़ रुपयों से बढ़कर १९५५–५६ में ७९० करोड़ हो गया था। (अर्थात् राष्ट्रीय आय का ७.३%) प्रथम आयोजना आरम्भ होते समय जितने मूल्य थे उससे आयोजना के अन्त में मूल्य १३% कम थे। मूल्यों में बढ़ने की प्रवृत्ति १९५५ के मध्य में दृष्टिगोचर होने लगी थी। देश के व्यापार सन्तुलन में भी सन्तोषजनक सुधार हुआ और इसमें १९५२–५३ में ७७ करोड़ रुपये तथा १९५३–५४ में १० करोड़ रुपये की बची (Surplus) हुई। विदेशी खाते में भी सन्तुलन रहा। आयोजना में विकास योजनाओं के फलस्वरूप तथा पांच वर्षों की अवधि में निजी क्षेत्र में निवेश के फलस्वरूप अतिरिक्त अथवा नौकरियों में अनुमानतः ४५ लाख की वृद्धि हुई परन्तु इस पर भी बेरोजगारी की समस्या गम्भीर रूप धारण किये रही।

समय समय पर आयोजना की आलोचना भी की गई है। यद्यपि यह कहा गया है कि आयोजना वास्तविक है तथापि इसमें अनेक भावपूर्ण विचार निहित हैं। केवल सुझावों को आयोजना नहीं कहा जा सकता। आयोजना के उद्देश्य सीमित थे तथा अधिक ऊँचे नहीं थे। उदाहरणतः योजना-समाप्ति तक खाद्य स्थिति को केवल युद्ध-पूर्व स्तर की स्थिति पर लाना था। आयोजना में जो प्राथमिकतायें दी गई थीं उनकी भी आलोचना की गई। उदाहरणतः शिक्षा के विकास की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया था। यह नागरिकों के चरित्र बनाने व उनमें राष्ट्रीय भावनाओं के संचार के लिए बहुत आवश्यक है। इसके बिना कोई भी आयोजना सफल नहीं हो सकती। वित्तीय साधनों की भी आलोचना की गई। घाटे के बजट पर भी चिन्ता व्यक्त की गई। आयोजना में बेरोजगारी की समस्या का भी कोई ठोस हल प्रस्तुत नहीं किया गया था। यह भी कहा जा सकता है कि जनता के धन और शक्ति का बहुत अपव्यय होता रहा है तथा निवेश के अनुपात में उपलब्धियां कम प्राप्त होती

है। खाद्य के क्षेत्र में देश की आत्म-निर्भरता का श्रेय पंचवर्षीय आयोजना को नहीं दिया जा सकता क्योंकि यह आत्म-निर्भरता स्व० श्री रफी अहमद किदवई की दृढ़ नीति के परिणामस्वरूप ही आ सकी थी। १९७७–७८ तक राष्ट्रीय आय दुगनी होने का लक्ष्य भी बहुत ऊँचा नहीं था। इसके अतिरिक्त आयोजना में भौतिक साधनों का विस्तृत अध्ययन करने की अपेक्षा वित्तीय आयोजना पर अधिक बल दिया गया था। यही नहीं वित्तीय आयोजना में भी अनेक दोष थे जो इस बात से स्पष्ट है कि वास्तविक व्यय (१ ९६० करोड़ रु०) तथा दोहराये गये अनुमानित व्यय (२ ३७८ करोड़ रु०) में काफी अन्तर था।

यहाँ पर आयोजना और उसकी आलोचना के विषय में विस्तारपूर्वक विवरण की आवश्यकता नहीं है। इसके लिए लेखक की पुस्तक 'सार्वजनिक अर्थशास्त्र'* का अध्ययन किया जा सकता है। यहाँ केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि यह प्रथम अवसर था जबकि देश में अखिल भारतीय स्तर पर आयोजना का प्रयत्न किया गया। निःसन्देह प्रथम पंचवर्षीय आयोजना के लागू होने से हमारी अर्थ व्यवस्था को बल और स्थायित्व मिला है। प्रथम आयोजना बहुत ऊँचे लक्ष्यों की आयोजना नहीं थी और इसकी अवधि में अधिक बल इस बात पर दिया गया था कि खाद्य की कमी को पूरा किया जाय और मुद्रा-स्फीति के भार को कम किया जाय। कोलम्बो आयोजना सलाहकार समिति ने अपनी चतुर्थ वार्षिक रिपोर्ट में आयोजना की सफलताओं व असफलताओं का विश्लेषण किया है। समिति के मतानुसार आयोजना की सफलताओं में कमी का कारण यह था कि व्यय किये जाने वाले धन की राशि संशोधित आंकड़ों तक भी नहीं पहुँच सकी सार्वजनिक क्षेत्र में भी साधनों का प्रशंसनीय विकास नहीं हुआ तथा विनियोग की दर भी इतनी ऊँची न थी जिससे कि रोजगार की स्थिति पर कोई महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ सके। परन्तु साथ ही उत्पादन अधिक करने तथा देश की उत्पादन क्षमता बढ़ाने में आयोजना अपने मुख्य उद्देश्य में सफल रही। उत्पादन सामान्यतः निर्धारित लक्ष्यों से भी बढ़ गया। देश की अर्थ-व्यवस्था में पूँजी निर्माण की गति भी बढ़ी। मुद्रा-स्फीति पर पर्याप्त नियन्त्रण कर लिया गया था तथा वस्तुओं के अभाव का वातावरण भी समाप्त हो गया था। सफलता असफलता दोनों को देखते हुए यह कहा जा सकता है कि आयोजना सफल तो रही परन्तु आशातीत रूप से नहीं। आयोजना आयोग का कथन है कि सब बातों के देखते हुए यह कहा जा सकता है कि द्वितीय आयोजना के आरम्भ होने के समय आर्थिक स्थिति प्रथम आयोजना प्रारम्भ होने के समय से अपेक्षाकृत अच्छी थी, व्यक्तियों में विश्वास अधिक था और सब ओर अधिक प्रयत्नों के लिए बड़ी तत्परता दिखाई देती थी। परन्तु इसके साथ ही कोलम्बो समिति के शब्दों को भी भूलना नहीं

---

* 'सार्वजनिक अर्थ-शास्त्र'—लेखक डाक्टर सक्सेना एवं प्रो० माथुर—अध्याय ११–१२।

चाहिए। समिति ने कहा था कि सब कुछ होते हुए भी हमारे अमर भविष्य के लिए आत्म-सन्तुष्टि की भावना नहीं आनी चाहिए।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना —

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की प्रस्तावित रूपरेखा आयोजना आयोग द्वारा फरवरी १९५६ में प्रकाशित की गई। इससे पूर्व मार्च १९५५ में प्रो० पी० सी० महालानवीस द्वारा आयोजना के मसौदे की रूपरेखा प्रकाशित की गई थी तथा आयोजना आयोग एवं वित्त मंत्रालय के अर्थ-विभाग द्वारा भी कुछ मसौदे प्रस्तुत किए गए थे। आयोजना अन्तिम रूप से १५ मई १९५६ को संसद के सम्मुख प्रस्तुत की गई और इसमें विनियोग और उत्पादन के मदों को बढ़ा दिया गया था। इसका कारण यह था कि रोजगार के अवसरों में वृद्धि की आवश्यकता अनुभव की गई थी तथा द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में औद्योगीकरण का बहुत ऊंचा कार्यक्रम होने के कारण अधिक यातायात सेवाओं के लिए व्यवस्था करने की भी आवश्यकता थी।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के मुख्य-मुख्य उद्देश्य निम्न प्रकार हैं, यद्यपि यह सब उद्देश्य परस्पर एक दूसरे से सम्बन्धित हैं —

(१) राष्ट्रीय आय में इतनी वृद्धि करना जिससे देश के रहन-सहन का स्तर ऊंचा हो।

(२) मूल और भारी उद्योगों के विकास पर जोर देते हुए देश का तेजी से औद्योगीकरण।

(३) रोजगार के अवसरों का अधिक विस्तार।

(४) आय और सम्पत्ति की विषमताओं का निराकरण तथा आर्थिक शक्ति का पहले से अधिक समान वितरण।

आर्थिक नीति का उद्देश्य समाज के समाजवादी ढांचे की स्थापना होनी चाहिए, यह बात संसद सरकार और आयोजना द्वारा स्वीकृत की जा चुकी है। राज्य को अपने ऊपर भारी उत्तरदायित्व लेने होंगे क्योंकि राज्य ही समस्त समाज के मुख्य प्रतिनिधि के रूप में कार्य करता है। सार्वजनिक क्षेत्र का विस्तार तीव्र गति से होना चाहिए। निजी क्षेत्र को भी अपना कार्य समाज द्वारा अपनाई गई आयोजना के क्षेत्र में ही रहकर करना होगा। राज्य को उन क्षेत्रों में भी महत्वपूर्ण कार्य करना होगा जहां निजी उद्यम सरकारी सहायता के बिना प्रगति नहीं कर सकता। आर्थिक असमानता में निरन्तर कमी होनी चाहिए तथा धन सम्पत्ति और आर्थिक अधिकारों के एकत्रीकरण में भी कमी करनी चाहिए। राज्य का क्षेत्रीय असमानताओं को दूर करने का प्रयत्न भी करना चाहिए।

१० अप्रैल १९५६ का औद्योगिक नीति प्रस्ताव इन्हीं बातों पर आधारित है। इसमें उद्योगों को तीन श्रेणियों में विभाजित किया गया है। प्रथम श्रेणी में वह उद्योग आते हैं जिनके लिए राज्य का पूर्णतः उत्तरदायित्व है, यद्यपि राष्ट्रीय हित के लिए आवश्यक होने पर निजी उद्यम का सहयोग भी लिया जा सकता है।

बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। कई बार यह देखा गया है कि इच्छा होते हुए भी एक व्यक्ति अपनी शारीरिक विकृति, दुर्बल मानसिक अवस्था, किसी दुर्घटना दोषपूर्ण शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि के कारण कार्य नहीं कर पाता। तथापि यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि इन कारणों को पूर्णतया व्यक्तिगत कह देने का तात्पर्य यह हो जाता है कि इन कारणों का उत्तरदायित्व हम ऐसी परिस्थितियों पर डाल देते हैं जो इसके लिए उत्तरदायी नहीं हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अनेक शारीरिक कमियाँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप से फैक्टरी प्रणाली के कारण ही उत्पन्न होती हैं। यदि यह कारण मालिक से सम्बन्धित है तो इन कमियों का उत्तरदायित्व मालिक का ही होना चाहिए अन्यथा यदि कारण कम विशिष्ट प्रकार का है तो इसका उत्तरदायित्व राज्य पर होना चाहिए।

इसके अतिरिक्त बेरोजगारी के बाह्य कारण भी हैं जिन्हें आर्थिक कारण कहा जा सकता है। इनमें से प्रथम कारण सामयिक उतार चढ़ाव (Cyclical Fluctuations) है। यह देखा गया है कि समृद्धि तथा मंदी के काल लगभग नियमित रूप से कुछ अन्तराल पर एक दूसरे के पश्चात् आते हैं तथा इस चक्र ने इस विश्वास को जन्म दे दिया है कि आर्थिक व्यवस्था में कुछ ऐसे अन्तर्निहित दोष हैं जो व्यापार में चक्र उत्पन्न कर देते हैं। मंदी के काल में व्यवसाय में कमी आ जाती है तथा बेरोजगारी बढ़ जाती है। समृद्धि और मंदी कालों के विभिन्न कारण हैं जिन्हें व्यापार चक्रों के सिद्धान्तों द्वारा समझाया गया है। यह एक पृथक विषय है। द्वितीय कारण औद्योगिक परिवर्तन है, अर्थात् माँग में परिवर्तन के कारण अथवा नवीन खोजों या तकनीकी उन्नति के कारण उत्पादन प्रणालियों में परिवर्तन हो जाता है, अर्थात् विवेकीकरण योजनाएँ लागू करने के कारण बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है। तृतीय कारण यह है कि कुछ आर्थिक क्रियाएँ अल्पकालीन या मौसमी होती हैं जिनके कारण अपूर्ण रोजगार ही मिल पाता है। मकान, सड़कें आदि बनाने वाले तथा खेती में कार्य करने वाले श्रमिक वर्ष भर पूर्णतया रोजगार नहीं पाते। इसके अतिरिक्त नैमित्तिक श्रमिक प्रणाली से यह स्पष्ट है कि कुछ कार्यों के लिए अस्थाई रूप से श्रमिक रखा लिए जाते हैं। ऐसे व्यक्ति तभी रोजगार पाते हैं जब व्यापार तीव्र होता है अन्यथा अन्य काल में वह बेरोजगार ही रहते हैं। यह भी उल्लेख किया जा सकता है कि यदा-कदा श्रमिक संघ मालिकों को श्रमिकों की सीमांत उत्पादकता से अधिक मजदूरी देने को विवश करके बेरोजगारी उत्पन्न कर देते हैं क्योंकि इस कारण कभी न कभी मालिक श्रमिक की मांग घटा देते हैं।

इस प्रकार प्रत्येक देश में बेरोजगारी के अनेक कारण होते हैं। मुख्य कारण तो आर्थिक तथा सामाजिक ढाँचा ही है। बेरोजगारी तब तक चलती रहेगी जब तक उत्पादन का उद्देश्य लाभ प्राप्त करना रहेगा तथा सरकार जनता के लिए पर्याप्त मात्रा में रोजगार के साधनों को निर्मित नहीं कर पाती।

बेरोजगारी के प्रभाव—

बेरोजगारी के दुष्परिणाम इतने स्पष्ट हैं कि उनको विस्तार में बयान करने की आवश्यकता नहीं है। बेरोजगारी का भय ही श्रमिक की प्रसन्नता तथा कार्य कुशलता पर बुरा प्रभाव डालता है। वास्तविक बेरोजगारी सम्भवतः इतनी ही विपत्तियाँ उत्पन्न कर देती है जितनी अस्वास्थ्य तथा रोग से उत्पन्न होती हैं। बेरोजगारी का तत्काल प्रभाव स्पष्ट रूप से यह होता है कि श्रमिक की आय कम हो जाती है। श्रमिक के पास यदि कुछ बचत होती भी है तो वह साधारणतः इतनी अपर्याप्त होती है कि उससे बहुत दिनों तक परिवार का गुजारा नहीं चल सकता। परिणामस्वरूप जीवन-स्तर गिर जाता है और भोजन वस्त्र आदि में अभाव उत्पन्न हो जाता है तथा प्रत्यक्ष रूप से प्रभावित व्यक्ति पर ही नहीं वरन् उसके समस्त परिवार पर संकट आ जाता है। यदि बेरोजगारी चलती रहे तो इससे स्थायी रूप से स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है तथा नैतिक बन्धनों में स्थायी रूप से ढील आ जाती है। जब जीवन-स्तर गिर जाता है तो शीघ्र ही श्रमिक की कार्य-कुशलता पर प्रभाव पड़ता है और श्रमिक पुनः रोजगार में लगने के पश्चात् भी यह अनुभव करता है कि उसकी तकनीकी कुशलता कम हो गई है जिससे उसकी धनोपार्जन की शक्ति घट गई है। परिणामस्वरूप उसे इस बात के लिए विवश होना पड़ता है कि जो भी अकुशल कार्य उसे मिले वह ही कर ले। इस प्रकार कभी-कभी अपना पूर्व का कुशल काम श्रमिक सदा के लिए खो बैठता है।

इसके अतिरिक्त सामाजिक दृष्टिकोण से भी बेरोजगारी बहुत अवांछनीय है। इस कथन में कोई सन्देह नहीं है कि "खाली समय में मस्तिष्क शैतान की कार्यशाला बन जाता है।' अनेक बेरोजगार व्यक्तियों को भीख माँगने की आदत पड़ जाती है। बेरोजगारी व्यक्ति के धैर्य तथा उत्तरदायित्व की भावना को नष्ट कर देती है। *मदिरा-पान कम रोजगार के समय सबसे अधिक होता है।* क्रांतिकारी विचार बेरोजगार व्यक्ति के मस्तिष्क में बहुत जल्दी आ जाते हैं। समाज में कोई व्यक्ति अपने कर्त्तव्यों और उत्तरदायित्वों को तभी पूरा कर सकता है जब वह लाभ-जनक रोजगार पर लगा हुआ हो। जीविकोपार्जन करने वाले को यदि रोजगार का आश्वासन रहता है तब उसमें परिवार में भी स्थायित्व बना रहता है तथा वह सामाजिक उत्तरदायित्वों को निभाने योग्य भी बन जाता है। रोजगार के अभाव में अनेक सामाजिक समस्यायें उत्पन्न हो जाती हैं। इस प्रकार रोजगार के अभाव में जो हानि होती है वह मजदूरी के रूप में ही हानि नहीं होती वरन् उससे कहीं अधिक होती है। बेरोजगारी से उन आवश्यक शक्तियों का ह्रास होता है जिन्हें मुद्रा में नहीं मापा जा सकता। कोई भी व्यक्ति कितना ही कार्य-कुशल क्यों न हो, अधिक समय बेरोजगार रहने पर अवश्य ही उसकी कुशलता में कमी आ जायेगी। उसके हाथों से पूर्व प्रकार का कुशल कार्य नहीं हो सकेगा और उसमें आलस्य की मात्रा बढ़ जायेगी। यह प्रवृत्ति बेरोजगार व्यक्ति को रोजगार के अयोग्य बना देती है।

कार्य की खोज वास्तविक कार्य से अधिक थकाने वाली होती है। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी से उत्पन्न निम्न जीवन-स्तर के कारण अपर्याप्त भोजन से माता तथा बालकों पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। अधिकतर माता को रोजगार पाने के लिए निकलना पड़ता है जिसके परिणामस्वरूप गृहस्थी में विघ्न पड़ जाता है। यदि माता को स्थानीय कार्य मिल भी जाता है तो वेतन की दर बहुत कम होती है। परिणाम स्वरूप फैक्ट्रियों के श्रमिकों की मजदूरी भी गिर जाती है। बालकों को विद्यालय छुड़ाना पड़ता है और अधिकतर इन बालकों को ऐसे रोजगार में लगाना पड़ता है जिनमें भविष्य में उन्नति की कोई सम्भावना नहीं होती।

ऊपर लिखी बातों का प्रभाव एक साथ पड़ता है और यदि अच्छे दिन आ भी जाते हैं तब भी जो हानि हो चुकी होती है उसकी पूर्ति कभी नहीं हो पाती। श्रमिक की कार्य-कुशलता में स्थायी रूप से कमी आ जाती है तथा उसका चरित्र भी बहुत अधिक गिर जाता है। माता का स्वास्थ्य इतना गिर जाता है कि आने वाली संतानों पर इसका बुरा प्रभाव पड़ता है। बालक बड़े होने पर उचित प्रकार से अपना जीवन-निर्वाह करने के योग्य नहीं रह जाते क्योंकि उन्हें उचित शिक्षा नहीं मिल पाती। इस प्रकार बेरोजगारी के जो आर्थिक सामाजिक तथा नैतिक प्रभाव होते हैं वह आरम्भ में भी और अन्त में भी बहुत गम्भीर होते हैं। अतः देश में बेरोजगारी होने से राष्ट्रीय लाभांश तथा समाज कल्याण दोनों को ही हानि पहुंचती है।

बेरोजगारी के उपचार—

बेरोजगारी के उपचार के लिए यह सुझाव दिया जाता है कि श्रम की मांग तथा पूर्ति में सन्तुलन लाने, श्रमिकों को अधिक नियमित प्रकार का कार्य दिलाने, तथा नैमित्तिक श्रम की बुराइयों को कम करने के लिए रोजगार दफ्तरों की स्थापना करनी चाहिए। व्यापार चक्रों के कारण उत्पन्न बेरोजगारी—अर्थात् मन्दी के काल में उत्पन्न बेरोजगारी को राजकीय कार्यवाहियों द्वारा कम किया जा सकता है। मन्दी से प्रभावित समस्त व्यवसायों में कार्य के घन्टों को कम करके अथवा कम समय की पारियां चलाकर श्रम की मांग बढ़ाई जा सकती है। श्रमिकों की मांग सार्वजनिक इमारतों, रेलों सड़कों नहरों आदि का निर्माण जैसे सार्वजनिक कार्यों को करके भी बढ़ायी जा सकती है। यह कार्य न केवल इनमें लगे हुए व्यक्तियों को रोजगार देते हैं वरन् इनमें लगे हुए श्रमिकों में विभिन्न वस्तुओं की मांग उत्पन्न करके इन वस्तुओं के निजी उत्पादन को भी प्रोत्साहित करते हैं। किन्तु इन समस्त कार्यों को सावधानी से आयोजित करना चाहिए जिससे विशेष संस्थायें जैसे राष्ट्रीय रोजगार तथा विकास बोर्ड, स्थापित हो सकें जिनके द्वारा ऐसे सार्वजनिक व्यय को ठीक प्रकार से किया जा सके जो व्यय मन्दी के प्रभाव दूर करने के लिये किया जाता है। सरकार को भी तेजी के व्यापार काल में ऐसी सार्वजनिक प्रयोजनायें नहीं चालू करनी चाहिये जिन्हें स्थगित किया जा सकता है या जिन्हें निजी

उपयोगपद्धतियों को किया जा सकता है। इसके अतिरिक्त मौसमी तथा अल्पकालीन बेरोजगारी विभिन्न व्यापारों का समन्वय करके कम की जा सकती है जिससे पूर्ण वर्ष रोजगार मिलता रहे। रोजगार के अयोग्य व्यक्तियों में से उनका राज्य द्वारा उपचार होना चाहिये जो शारीरिक रूप से अयोग्य हैं किन्तु ठीक हो सकते हैं। जो सामाजिक पराश्रयी हैं उनके सुधार का भी प्रबन्ध किया जाना चाहिए। बेरोजगारी के काल में कष्टों को कम करने के लिये बेरोजगारी बीमा योजनाओं को लागू किया जाना चाहिये। इनका विवेचन सामाजिक सुरक्षा के अन्तर्गत किया जा चुका है।

भारत में बेरोजगारी तथा उसके विभिन्न प्रकार—

भारत जैसे देश में बेरोजगारी के दुष्परिणाम पूर्णतया असहनीय हो जाते हैं। बेरोजगारी देश के लिये बहुत महंगी पड़ती है। ऐसा देश जो खनिज कृषि तथा शक्ति के साधनों में धनी माना जाता है परन्तु जिन साधनों का अभी तक पूर्ण लाभ नहीं उठाया गया है तथा जिसमें निःसन्देह मानव शक्ति का अभाव नहीं है उस देश में बेरोजगारी होने का अर्थ यह होता है कि सम्भाव्य (Potential) राष्ट्रीय धन की बहुत हानि हो रही है।

भारत में साधारण समय में भी समस्त वर्गों में बेरोजगारी व्यापक रूप से पायी जाती है। शिक्षित वर्ग में, अशिक्षित वर्ग में, औद्योगिक श्रमिकों में तथा खेतिहरों में बेरोजगारी की विकट समस्या है। देश में अपूर्ण रोजगार भी बहुत अधिक है। जैसा कि पंडित नेहरू ने संसद में प्रथम पंचवर्षीय आयोजना पर वाद-विवाद के समय बताया था भारत में दो प्रकार के बेरोजगार व्यक्ति हैं—एक अपेक्षाकृत कम संख्या वाले वर्ग के व्यक्ति हैं और एक बड़ी संख्या वाले वर्ग के। कम संख्या वाला वर्ग तो उन व्यक्तियों का है जो बिल्कुल परिश्रम नहीं करते और न कोई उत्पादक प्रयत्न करते हैं बल्कि दूसरों के श्रम पर जीवित रहना चाहते हैं। इनकी आय किराये के रूप में या अन्य किसी प्रकार की होती है। ये व्यक्ति अनुत्पादक तथा बेरोजगार होते हैं। ये ऐसे व्यक्ति हैं जो समाज के उच्च शिखर पर आसीन हैं। इन्हें काम करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि अन्य व्यक्ति इनके लिये पहिले से ही या अन्य किसी समय धन उपार्जन कर चुके थे। यह उच्च स्तर पर बेरोजगार व्यक्ति होते हैं। ये न ही कार्य करते हैं न ही उत्पादन करते हैं वरन् सम्भवतः दूसरों से अधिक उपभोग करते हैं। अतः ये समाज पर भार हैं। दूसरी प्रकार की बेरोजगारी दो श्रेणियों में विभाजित की जा सकती है। बेरोजगारों में से कुछ व्यक्ति आलसी होते हैं क्योंकि हमारे देश में आलस्य को दान देने वाले व्यक्तियों द्वारा बढ़ावा दिया जाता है। ऐसे आलसी व्यक्तियों की संख्या कई लाख भी हो सकती है किन्तु तब भी ऐसे व्यक्ति अपेक्षाकृत कम हैं। इसके पश्चात् वास्तविक बेरोजगार आते हैं अर्थात् वे व्यक्ति जो यदि अवसर दिया जाये तो कार्य कर सकते हैं, किन्तु जिनको साधारणतः ऐसा अवसर नहीं मिल पाता। देश में ऐसे व्यक्तियों की ही बेरोजगारी की वास्तविक समस्या है।

देश में खेतीहर बेरोजगारी तथा अपूर्ण बेरोजगारी पायी जाती है। भूमि पर अधिक जनसंख्या का दबाव उपांग उद्योगों की कमी तथा खेतीहर कार्यों की मौसमी प्रकृति इस प्रकार की बेरोजगारी के कारण हैं। कृषि अनेक दोषों से परिपूर्ण है तथा इस पर निर्भर रहने वाले लाखों भारतीयों को इससे पूर्ण रोजगार नहीं मिलता। यद्यपि इस प्रकार की बेरोजगारी के सही आंकड़े प्राप्त नहीं हैं किन्तु इसकी सीमा इसी बात से ज्ञात हो जाती है कि भारतीय कृषक का अपूर्ण रोजगार के कारण जीवन-स्तर बहुत गिरा हुआ है, तथा अधिक संख्या में भूमि-हीन श्रमिक पाये जाते हैं।

इसके अतिरिक्त देश में औद्योगिक बेरोजगारी भी है क्योंकि औद्योगिक विकास की गति बहुत धीमी रही है। उद्योगों का स्थानीयकरण भी दोषपूर्ण है जिसके कारण कुछ केन्द्रों में बहुत उद्योग स्थापित हो गये हैं तथा बहुत भीड़ भाड़ हो गई है। परिणामस्वरूप श्रमिकों को खपाने की क्षमता कम हो गई है। हमारे उद्योगों में उत्पादन की लागत भी काफी ऊंची है और वे उचित प्रकार से विकसित नहीं हो पाते हैं। कुछ उद्योगों में विवेकीकरण योजनाओं ने भी श्रमिकों को रोजगार विहीन कर दिया है।

शिक्षित वर्ग में भी बेरोजगारी पायी जाती है। इसका कारण भी स्पष्ट है। हमारी शिक्षा प्रणाली बहुत अधिक साहित्यिक है तथा हमारे स्नातक इसको अथवा साहित्यिक कार्यों के अतिरिक्त अन्य कार्यों के लिये उपयुक्त नहीं रहते। स्नातकों की बढ़ती संख्या को सीमित कार्यों में खपाना सम्भव नहीं है अतः शिक्षित वर्ग में भी व्यापक रूप से बेरोजगारी फैली हुई है।

समस्त प्रकार की बेरोजगारी का मूल कारण देश का आर्थिक पिछड़ापन है। आर्थिक-क्रियायें बढ़ती जनसंख्या के साथ गति नहीं रख सकी हैं। समस्त प्रकार के रोजगार-योग्य श्रमिकों की संख्या प्राप्त रोजगार की मात्रा से कहीं अधिक है। इसका कारण यह है कि देश के उत्पादक साधनों का पूर्णतया तथा उचित रूप से उपयोग नहीं किया गया है। हमारी अर्थ-व्यवस्था की असंतुलित प्रकृति ही बेरोजगारी का मुख्य कारण है। आयोजना आयोग बेरोजगारी के लिये निम्नलिखित बातों को मुख्यतः उत्तरदायी मानता है (क) जनसंख्या में तीव्र वृद्धि (ख) पुरातन ग्रामीण उद्योगों का विलीन होना (ग) गैर-खेतीहर क्षेत्र का अपर्याप्त विकास, (घ) विभाजन के कारण जनसंख्या का अधिक संख्या में विस्थापन।

भारत में बेरोजगारी की सीमा —

ऊपर लिखित बातों से यह परिणाम निकलता है कि देश में बेरोजगार लोगों की संख्या बहुत अधिक है। युद्ध-काल में बेरोजगारी की समस्या दूर हो गई थी। क्योंकि युद्ध के सफलतापूर्वक संचालन के लिये सरकार ने बहुत अधिक संख्या में व्यक्तियों को नौकरी पर लगाया था। परन्तु युद्ध समाप्त होने के पश्चात् लाखों व्यक्ति बेरोजगार हो गए और उनको शान्तिकालीन अर्थ-व्यवस्था में

पर समाने की समस्या उत्पन्न हो गई है। बेरोजगारी की समस्या शरणार्थियों के कारण और भी अधिक गम्भीर बन गई है। ऐसे शरणार्थियों की संख्या लगभग ७०—८० लाख है। इनमें से २०—३० लाख ऐसे शरणार्थी हैं जो काम करने के सर्वथा योग्य हैं। जून १९५० के अन्तर्राष्ट्रीय श्रम समीक्षा के अनुसार अप्रैल १९५० में भारत में बेरोजगारी की संख्या २८१ ९७२ थी। १९४८ से रोजगार दफ्तरों के चालू रजिस्टरों में दर्ज प्रार्थियों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हो रही है। ऐसे प्रार्थियों की संख्या प्रति वर्ष के अन्त में निम्न प्रकार थी १९४८—२,१९ ०११ १९५०—३,१०,७४६, १९५२—४ ३७ ५७१ १९५४—६ ०९,७८० १९५५—६ ९१ ९९८, १९५६—७ ५८,५०१ १९५७—९,२२,०९९, १९५८—११ ८३ २९९ १९५९—१४ २०,९०१ १९६०—१६,०६,२४२, १९६१—१८ ३२,७०१। अक्तूबर १९६२ में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या इस प्रकार थी तकनीकी—४९ ८७९, अन्यों १ २०,१२१। सितम्बर १९६२ में रोजगार दफ्तरों के आंकड़ों के अनुसार हाई स्कूल के स्तर तथा इससे अधिक शिक्षा के २ ३० लाख व्यक्तियों के नाम रोजगार दफ्तर के चालू रजिस्टरों में दर्ज थे जो निम्न प्रकार थे हाई स्कूल—१ ७४ लाख इन्टर मीडियेट—०·२८ लाख स्नातक ० २८ लाख। वास्तव में बेरोजगारों की संख्या तो इससे भी बहुत अधिक होगी क्योंकि एक तो सभी बेरोजगार व्यक्ति रोजगार के दफ्तर में अपना नाम नहीं लिखाते हैं और दूसरे रोजगार के दफ्तर मुख्यतः शहरी क्षेत्रों में ही काम करते हैं। यह अनुमान लगाया गया है कि बेरोजगारों की संख्या रोजगार के दफ्तरों में पंजीकृत आंकड़ों से लगभग चार गुना अधिक है। सच तो यह है कि बेरोजगारी के ठीक-ठीक आंकड़े उपलब्ध ही नहीं हैं। १९५३ में किए गए एक राष्ट्रीय सेम्पिल सर्वेक्षण से पता चलता है कि कलकत्ता शहर की ७ १० प्रतिशत जनसंख्या बेरोजगार थी। उसी वर्ष किए गए एक दूसरे सर्वेक्षण से यह भी पता चला है कि उन शहरों में जिनकी जनसंख्या ५० ००० या अधिक है २ ६९ प्रतिशत जनसंख्या अथवा श्रमिक शक्ति का ७·४४ प्रतिशत बेरोजगार थी। इसमें कलकत्ता बम्बई, मद्रास व देहली जैसे बड़े-बड़े नगर सम्मिलित नहीं थे। बाद वाले सर्वेक्षण से यह भी पता चला कि इन नगरों की ८·४८ प्रतिशत जनसंख्या अपूर्ण रोजगार वाली भी थी जिसमें १ १७ प्रतिशत अथवा २७·४ लाख व्यक्तियों का रोजगार अत्यधिक ही अपूर्ण था। इस आधार पर द्वितीय आयोजना के आरम्भ में शहरी क्षेत्रों में अत्यधिक अपूर्ण रोजगार वाले व्यक्तियों की संख्या २७·४ लाख थी। प्रथम कृषि श्रमिक जाँच के अनुसार ग्रामीण बेरोजगारों की संख्या १९५०–५१ में लगभग २८ लाख थी। द्वितीय कृषि श्रमिक जाँच (१९५६–५७) अनुसार रोजगार स्थिति और अधिक शोचनीय हो गई है तथा ग्रामीण क्षेत्रों में भूमि-हीन कृषि श्रमिकों की जीविकोपार्जन शक्ति और कम हो गई है। कार्यक्रम मूल्यांकन संगठन (Programme Evaluation Organization) की एक रिपोर्ट के अनुसार यह अनुमान किया गया है कि किसान, शिल्पी तथा कृषि श्रमिक अधिक और कम काम वाले दोनों ही

श्रमिकों को मिला कर कुल कार्य दिवसों में से १०% से अधिक दिन बेरोजगार रहते हैं या उनका रोजगार अपूर्ण रहता है। उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर आयोजना आयोग ने अनुमान लगाया था कि १९५६ के आरम्भ में देश में बेरोजगारों की संख्या लगभग ५३ लाख थी। उनमें से २५ लाख शहरी क्षेत्रों में तथा २८ लाख ग्रामीण क्षेत्रों में थे।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना अवधि में जितने रोजगार के अवसर उपलब्ध हुए थे वे प्रत्येक वर्ष श्रम शक्ति में वृद्धि के अनुपात से बहुत कम थे। यह कमी लगभग २० लाख की थी। द्वितीय आयोजना अवधि में श्रमिक शक्ति में अनुमानित वृद्धि से कहीं अधिक वृद्धि हुई और यह अधिक वृद्धि १७ लाख की थी। तीसरी आयोजना के आरम्भ होने पर पिछली बेरोजगारी का अनुमान ९० लाख का है। इसके अतिरिक्त ग्रामीण क्षेत्रों में विशेषत बहुत अधिक अपूर्ण रोजगार है। मई १९५५ और अगस्त १९५७ के मध्य राष्ट्रीय सैम्पिल सर्वेक्षण द्वारा अनुसंधान से यह पता चलता है कि काम पर लगी हुई जनसंख्या में से शहरी क्षेत्रों में ८ से ९% तक तथा ग्रामीण क्षेत्रों में १० से ११ प्रतिशत तक जनसंख्या प्रति सप्ताह औसत रूप से ४२ घण्टे कार्य करती थी और वह अतिरिक्त रोजगार के लिए उपलब्ध थी। इस आधार पर आयोजना आयोग ने अनुमान लगाया है कि देश में बेरोजगारों की संख्या १५ करोड़ से १८ करोड़ तक है।

श्रम व रोज़गार मंत्रालय के अन्तर्गत जो रोजगार दफ्तरों के निदेशालय का श्रम शक्ति विभाग है उसके द्वारा १५ मई १९५७ को स्नातकों में बेरोजगारी के स्वरूप का एक अध्ययन किया गया था। इसके अनुसार अन्य राज्यों की अपेक्षा पश्चिमी बंगाल उत्तर-प्रदेश बम्बई व देहली में बेरोजगार स्नातकों की संख्या अधिक थी। बेरोजगार महिला स्नातकों की सबसे अधिक संख्या केरल में थी। रोजगार के इच्छुक बेरोजगारों में ९३% संख्या पुरुषों की थी तथा ७% संख्या महिलाओं की थी। ४८ ५% कला स्नातक २२७% विज्ञान स्नातक तथा १२ ८% वाणिज्य स्नातक थे। कला व विज्ञान के स्नातकों की अपेक्षा वाणिज्य स्नातकों में बेरोजगारी अधिक थी।

राष्ट्रीय रोजगार सेवा द्वारा १९५१–५७ में रोजगार पाने वाले व्यक्तियों की संख्या और प्रकार का एक अध्ययन किया गया था। इससे पता चलता है कि देश में बेरोजगारी तीव्रगति से बढ़ रही है और नई नौकरियों की संख्या बढ़ती हुई बेरोजगारी से मेल नहीं खा पा रही है। अध्ययन से यह पता चलता है कि इस अवधि में प्रति १०० नौकरियों के लिए प्रार्थियों की संख्या २००० से भी अधिक थी। अध्ययन के लिए चालू रजिस्टरों में प्रार्थियों को ७ व्यवसायिक श्रेणियों में बाँटा गया था। दिसम्बर १९५८ में इनकी संख्या अग्र तालिका में बताई गई है —

विभिन्न प्रकार की नौकरियों के प्रार्थी	संख्या	योग का प्रतिशत
औद्योगिक पर्यवेक्षण की नौकरियाँ	८,६२३	०·८
कुशल एवं अर्द्ध-कुशल नौकरियाँ	८८,६१५	७·५
क्लर्की की नौकरियाँ	३,०८,२०३	२६·१
शैक्षणिक नौकरियाँ	५६,६५०	४·८
घरेलू नौकरियाँ	४१,८२५	३·७
अकुशल काम की नौकरियाँ	६,२०,५४६	५२·४
अन्य	५७,२९६	४·८
योग	११,८३,२९९	१००·०

इस प्रकार अकुशल नौकरियों की श्रेणी में सबसे अधिक व्यक्ति थे। इसके बाद बेरोजगारों में क्लर्कों की श्रेणी आती है। अध्ययन से यह भी पता चला कि औद्योगिक पर्यवेक्षण की नौकरियों की श्रेणी में बेरोजगारों की संख्या सीमित थी और इस श्रेणी में प्रार्थियों को शीघ्रता से रोजगार भी मिल जाता था। कुशल एवं अर्द्धकुशल श्रेणी में तकनीकी व्यक्तियों को अपेक्षाकृत अधिक सरलता से कार्य मिल जाता था तथा इस श्रेणी में प्रार्थियों की कमी भी अनुभव की गई थी। अध्यापन कार्य और इसी प्रकार के अन्य व्यवसायों में नौकरी पाने वाले इच्छुक व्यक्तियों की संख्या में तीव्रगति से वृद्धि हुई थी। घरेलू नौकरी पाने वालों की श्रेणी में प्रार्थी निजी व्यक्तियों की नौकरी की अपेक्षा अस्पताल आदि जैसी सार्वजनिक संस्थाओं में नौकरी करना अधिक पसन्द करते थे। अकुशल व वर्करों की श्रेणी में बेरोजगारों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। शैक्षणिक वर्ग को भी नौकरी मिलने में सबसे अधिक वृद्धि हुई और इसके पश्चात् क्लर्क-वर्ग आता था। इस अवधि में ऐसे प्रार्थियों की संख्या जो शिक्षा के काम में नौकरी पाना चाहते थे दुगने से भी अधिक हो गई थी।

दिसम्बर १९६१ के अन्त में रोजगार दफ्तरों के चालू रजिस्टर में जो प्रार्थियों की संख्या थी उसका धन्धे के हिसाब से विवरण निम्नलिखित तालिका में दिया गया है—

(१)	संख्या (१,००० में) (२)	कुल संख्या का प्रतिशत (३)
(१) पेशेवर, तकनीकी तथा सम्बद्ध श्रमिक	८०	४·४
(२) प्रशासनीय, कार्यांग तथा प्रबन्धीय श्रमिक	४	०·२
(३) क्लर्की, विक्रय तथा सम्बद्ध श्रमिक	८९	४·९
(४) कृषि, दुग्धशाला तथा सम्बद्ध श्रमिक	१०	०·५
(५) खानें, पत्थर की खानें तथा सम्बद्ध श्रमिक	६	०·३

(१)	(२)	(३)
(६) यातायात व संचार धन्धों में श्रमिक	६५	१९
(७) शिल्पी तथा उत्पादन प्रक्रिया के श्रमिक	११४	७१
(८) सेवा कर्मचारी (उदाहरणतः बावर्ची चौकीदार, मंत्री आदि)		
(९) कार्य अनुभव ऐसे श्रमिक जिनका अन्य कोई वर्गीकरण नहीं है।	७३	४०
(१०) ऐसे व्यक्ति जिनका किसी पेशे या व्यवसाय में प्रशिक्षण नहीं है अथवा ऐसे व्यक्ति जिन्हें कोई पिछला कार्य अनुभव नहीं है।	१०८	२९
योग	१२९५ १८३३	७०७ १०००

रोजगार दफ्तरों के चालू रजिस्टरों में शिक्षित बेरोजगारों (हाई स्कूल तथा उससे ऊपर के व्यक्ति) की संख्या दिसम्बर १९५९ में ४,११,१११ से बढ़कर दिसम्बर १९६० में ५,०७,२२० हो गई थी। इनमें से ४६,५८४ स्नातक थे। रोजगार पाने के लिए इच्छुक स्त्रियों की संख्या में भी वृद्धि होती जा रही है। रोजगार दफ्तरों में पंजीकृत महिला प्रार्थियों की संख्या दिसम्बर १९५८ में ८५,८८० से बढ़कर १ २१ १२४ दिसम्बर १९५९ में १०५,८४२ हो गई थी और दिसम्बर १९६० में यह संख्या १,२१,१२४ थी।

रोजगार तथा प्रशिक्षण के महा-निदेशक ने नमूने के आधार पर हाल ही में एक अखिल भारतीय स्नातक रोजगार सर्वेक्षण किया है। इस सर्वेक्षण का उद्देश्य उन स्नातकों के रोजगार व आय आदि के विषय में जानकारी प्राप्त करना है जिन्होंने १९५४ में विश्वविद्यालयों से डिग्रियां प्राप्त की थीं। (२२ ५०० स्नातकों की सूची में से २० हजार स्नातकों के पते प्राप्त हो सके थे और उन्हें प्रश्नावली भेजी गई थी। ७ हजार स्नातकों के उत्तर प्राप्त हुए) जो सूचना मिली उसे सारिणीबद्ध किया जा रहा है। देहली विश्वविद्यालय के पिछले विद्यार्थियों को कहां और किस प्रकार का रोजगार मिला है उसका भी एक सर्वेक्षण हाल में किया गया है। विभिन्न राज्यों में रोजगार की प्रवृत्ति और संभावनाओं पर एक अध्ययन किया जा रहा है।

बेरोजगारी के कारण देश को हानि —

बेरोजगारी से सामाजिक तथा राजनैतिक दोनों पर प्रभाव पड़ता है। बेरोजगारी बढ़ने से निर्धनता तथा असहायता उत्पन्न हो जाती है जिनका प्रभाव पूर्ण समाज पर पड़ता है, तथा सामाजिक जीवन में गिरावट आ जाती है। इसके परिणामस्वरूप पाप अपराध मद्यपी तथा रोग जैसी बुराइयां उत्पन्न हो जाती हैं, जिनकी कोई भी समाज अवहेलना नहीं कर सकता है। इसके अतिरिक्त बेरोजगारी देश की राजनैतिक स्थिरता की जड़ में घुन लगा देती है। भारतीय राजनैतिक तथा आर्थिक परिस्थिति के वर्तमान संदर्भ में बेरोजगारी तथा इसके दुष्परिणाम की अवहेलना नहीं की जा सकती। यह मानवीय प्रश्न ही नहीं है वरन् ऐसा प्रश्न है जिस पर सरकार

तथा जनता दोनों को ही गम्भीरतापूर्वक ध्यान देना चाहिए। प्रो० डी पी घाटगे ने गणना की है कि कार्य कुशलता के वर्तमान स्तर पर भारत में बेरोजगारी तथा अपूर्ण बेरोजगारी के कारण वार्षिक हानि एक हजार करोड़ रु० प्रति वर्ष से अधिक होती है। यह राशि समस्त प्रदेशीय सरकारों तथा भारत सरकार के सम्मिलित बजट से भी अधिक है। परन्तु बहुत कम व्यक्ति इस बात का अनुभव करते हैं कि प्रतिवर्ष देश में इतनी विशाल रूप से हानि हो रही है। हानि का अनुभव इसलिए नहीं होता क्योंकि मुद्रात्मक हानि नहीं होती वरन् सम्भाव्य धन की हानि होती है। किन्तु धन में केवल मुद्रा ही नहीं वरन् वस्तुयें तथा वास्तविक सेवायें भी सम्मिलित की जाती हैं।

भारत में बेरोजगारी का उपचार —

अतः बेरोजगारी के उपचारों पर विचार किया जाना आवश्यक है। इस विषय में रोजगार दफ्तर बहुत अधिक सहायक हो सकते हैं। प्रथम तो यदि रोजगार दफ्तर मालिकों तथा कर्मचारियों में निकट सम्पर्क उत्पन्न करने के लिए कुशलता पूर्वक कार्य करें तो मालिकों तथा कर्मचारियों का कार्य सरल हो जाता है तथा रोजगार दिलाने की सामाजिक व्यवस्था उचित प्रकार से कार्य कर सकती है। रोजगार दफ्तर देश में सामाजिक एवं आर्थिक अवस्थाओं के अनुसन्धान का अवसर भी प्रदान करते हैं तथा वह यह संकेत कर सकते हैं कि बेरोजगारी में कितनी वृद्धि हो रही है और इस प्रकार सरकार को अपनी नीति निर्धारित करने तथा कार्यक्रम बनाने का अवसर प्रदान करके आर्थिक विनाश से देश की रक्षा करते हैं। ये दफ्तर श्रमिकों को प्रशिक्षण प्रदान कर सकते हैं तथा श्रमिकों की गतिशीलता बढ़ा सकते हैं। भारत की राष्ट्रीय रोजगार सेवा ने कुछ उत्तम प्रकार के कार्य किये हैं परन्तु फिर भी इस संगठन में सुधार तथा इसके कार्यों में विस्तार करने की बहुत अधिक आवश्यकता है। इस समस्या का भर्ती के अध्याय के अन्तर्गत विवेचन किया जा चुका है।

विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी के हेतु विभिन्न उपचारों का सुझाव देना आवश्यक है यद्यपि ये आपस में पूर्णतया एक दूसरे से सम्बन्धित हैं। खेतीहर बेरोजगारी की समस्या सुलझाने के लिए स्पष्ट उपचार यह है कि भारतीय कृषि का पुर्नसंगठन किया जाय अर्थात् उत्तम भूमि श्रम पूंजी एवं संगठन हो तथा भूमि पर जनसंख्या का दबाव कम करने के लिए कुटीर एवं लघु उद्योग धन्धों को स्थापित किया जाय। भूमि का पुर्नोद्धार जुताई के उत्तम उपाय भूमि सम्बन्धी सुधार सिंचाई सुविधायें सहकारी खेती भूमि का पुनः वितरण आदि कुछ ऐसे उपाय हैं जो इस समस्या को हल करने में सहायक हो सकते हैं।

औद्योगिक बेरोजगारी का उपचार औद्योगिक कुशलता में वृद्धि तथा औद्योगिक ढांचे का पुनर्संगठन करके हो सकता है। यह समस्या पूंजी निर्माण-बचत तथा निवेश से सम्बन्धित है। पंचवर्षीय आयोजनाओं ने तदनुरूप आरम्भ किए गये विकास

कार्यक्रमों से औद्योगिक बेरोजगारी कम होने की आशा की जा सकती है किन्तु कुछ तत्कालीन उपचारों की भी आवश्यकता है और इसके लिए हमें उपभोग सम्बन्धी वस्तुओं के उद्योगों का विकेन्द्रीयकरण करना चाहिए तथा छोटे पैमाने के ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के पुनर्संगठन की साहसपूर्ण नीति का अनुसरण करना चाहिए। इसी प्रकार निर्धनता से ग्रसित लाखों व्यक्तियों को रोजगार प्रदान किया जा सकता है। यह ध्यान में रखने योग्य बात है कि औद्योगिक क्षेत्रों में श्रमिकों की एक बड़ी संख्या ग्रामीण क्षेत्रों से आती है। अतः यदि ग्राम में रोजगार प्रदान कर दिया जाय तो औद्योगिक बेरोजगारी का स्वतः समाधान हो जाएगा।

शिक्षित बेरोजगारी का हल शिक्षा प्रणाली के पुनर्संगठन से हो सकता है। इसके लिए तकनीकी तथा व्यावसायिक अध्ययन पर अधिक बल देना चाहिए तथा मध्यवर्गीय युवकों को वाणिज्य एवं कृषि सम्बन्धी रोजगार ग्रहण करने के लिए उत्साहित करना चाहिए। अतः यह समस्या भी कृषि तथा उद्योगों के विकास से सम्बन्धित है क्योंकि जब तक रोजगार के स्रोत नहीं होंगे किसी भी प्रकार की शिक्षा से समस्या हल नहीं हो सकेगी। विश्वविद्यालयों तथा कालिजों के छात्रों में से अधिकतर छात्र ग्रामीण परिवारों से सम्बन्धित हैं। अतः हमें विश्वास है कि यदि कृषि को आकर्षक तथा लाभप्रद व्यवसाय बना दिया जाय तो उच्च साहित्यिक शिक्षा की उत्कंठा तथा इच्छा स्वतः कम हो जाएगी। इसके अतिरिक्त हमारे देश की जनसंख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही है तथा यह अनुमान लगाया गया है कि प्रतिवर्ष २० लाख श्रम शक्ति में वृद्धि हो जाती है। परिवार नियोजन के द्वारा जन-संख्या की वृद्धि में रोक होनी चाहिए क्योंकि जब तक देश में व्यक्तियों की संख्या तथा देश में उपलब्ध साधनों में उचित सामंजस्य नहीं होगा तथा आर्थिक विकास की गति जनसंख्या की वृद्धि की गति से नहीं बढ़ जाती तब तक बेरोजगारी की समस्या का समाधान नहीं हो सकता। अतः इस बुराई को दूर करने के हेतु हमारे सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचे में संस्थात्मक परिवर्तन की आवश्यकता है।

अब बेरोजगारी की समस्या का दीर्घकालीन दृष्टिकोण से अवलोकन होना चाहिए। बेरोजगारी का सर्वोत्तम उपचार आर्थिक आयोजना है। आयोजना ही हमें इस योग्य बना सकती है कि देश के वर्तमान बेकार मानवीय तथा प्राकृतिक साधनों को धन के उत्पादन में लगा सकें। उचित आर्थिक आयोजना के द्वारा ही यह सम्भव है कि खेती, उद्योग शिक्षा प्रणाली आदि में सुधार किए जा सकें तथा साधनों को उचित रूप से विकसित किया जा सके। बेरोजगारी की समस्या आयोजित आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत हल होनी चाहिए। रूस में तथा अमरीका जैसे पूँजीपति देश में भी किए गए प्रयोगों से ज्ञात होता है कि ऐसा करना सम्भव है। यदि हम देश में बेरोजगारी की समस्या हल करना चाहते हैं तो लघु ग्रामीण एवं कुटीर उद्योगों के संगठन द्वारा श्रम प्रधान उपायों पर आयोजनाओं में अधिक बल दिया जाना चाहिए।

यह भी उल्लेखनीय है कि गत वर्षों में बेरोजगारी की समस्या ने उग्र रूप धारण कर लिया है तथा पंडित नेहरू के शब्दों में "आज यह सबसे गहन प्रश्न है"। प्रो० श्रीमन नारायन ने इस समस्या को प्रथम श्रेणी का शत्रु कहा है। रोजगार दफ्तरों में पंजीकृत व्यक्तियों की संख्या तीव्रता से बढ़ रही है जबकि रिक्त स्थानों की संख्या एवं नौकरियां कम होती जा रही हैं। शिक्षित वर्ग में समस्या अधिक जटिल एवं गम्भीर हो गई है। एक रिक्त पद के लिए हजारों प्रार्थना-पत्र मिलते हैं जिनमें से कुछ उच्चस्तरीय शिक्षित व्यक्तियों के भी होते हैं। भारत में आयोजनाओं का सबसे अधिक असन्तोषजनक लक्षण यही है कि भारत में बेरोजगारी बढ़ती जा रही है। तृतीय आयोजना की सफलता भी अधिकतर इसी बात से आंकी जायगी कि आयोजना अवधि में बेरोजगार तथा अपूर्ण रोजगार वालों को किस सीमा तक नये रोजगार अवसर प्रदान किए गए हैं।

रोजगार और आयोजनायें —

प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना आयोग ने बताया था कि भारत में बेरोजगारी की अपेक्षा अपूर्ण रोजगार की समस्या अधिक थी। अपूर्ण रोजगार को दूर करने तथा वास्तविक आय के बढ़ते हुए सभी स्तरों के साथ-साथ रोजगार के नए अवसरों को उपलब्ध करने की समस्या वस्तुतः विकास की समस्या की पर्यायवाची ही है। बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने में आयोजना का योगदान दो प्रकार से हो सकता है प्रथम तो विकास की दर अधिक होने से उन व्यक्तियों को रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त हो जायगे जो निर्माण कार्यों में लगे हुए हैं तथा दूसरे आर्थिक व्यवस्था में आधारभूत स्थानों में पूंजी का निर्माण करके उत्पादन कार्यों में अधिक व्यक्तियों को रोजगार देने का कार्य किया जा सकता है। प्रथम आयोजना में यह कहा गया था कि आयोजना अवधि में बड़े और छोटे पैमाने दोनों के नए उद्योगों में लगभग ४ लाख अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार पाने की सम्भावना थी २½ लाख श्रमिकों को प्रतिवर्ष मुख्य सिंचाई और शक्ति आयोजनाओं में काम मिल सकता था, पुराने तालाबों कुओं तथा जलाशयों की मरम्मत तथा छोटी सिंचाई योजनाओं में डेढ़ लाख श्रमिकों को प्रतिवर्ष रोजगार मिल सकता था भूमि पुनरुद्धार के कारण ७½ लाख व्यक्तियों को अतिरिक्त रोजगार भवन बनाने तथा निर्माण कार्य में १ लाख व्यक्तियों को सड़कों के बनाने में २ लाख व्यक्तियों को तथा कुटीर उद्योगों में २० लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल सकने का अनुमान था।

उपरोक्त आंकड़े निश्चय उत्साहवर्द्धक नहीं थे और प्रथम पंचवर्षीय आयोजना की यह मुख्य आलोचना थी कि इसमें बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने के लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं किए गए थे। बेरोजगारी व अपूर्ण रोजगार दो ऐसी बुराइयां हैं जिन्होंने भारत जैसे अर्द्ध विकसित देश में एक गम्भीर समस्या उत्पन्न कर दी है। आयोजना के पांच वर्षों में बेरोजगारी की समस्या को सुलझाने में कुछ सफलता

(५)	उद्योग एवं खनिज	७५०
(६)	कुटीर एवं लघु उद्योग	४५०
(७)	वन मछली व्यवसाय, राष्ट्रीय विस्तार सेवा व सम्बन्धित कार्यक्रम	४११
(८)	शिक्षा	११०
(९)	स्वास्थ्य	११६
(१०)	अन्य समाज सेवायें	१७२
(११)	सरकारी नौकरियां	४१४
	(१) से (११) तक का योग	५१ ९९
(१२)	अन्य कार्य जिनमें व्यापार और वाणिज्य भी सम्मिलित है (योग का ५२% के हिसाब से)	२७ ०४
	कुल योग	७९ ०१
	अर्थात् लगभग	८० ००

मद १२ में जो अनुपात दिया गया है वह अनुपात १९५१ की जनगणना के अनुसार ही निकाला गया है। इस वर्ष के व्यक्तियों का कृषि को छोड़कर, अन्य सब वर्गों के रोजगार पर लगे हुए व्यक्तियों के हिसाब से अनुपात निकाला गया था। यह अनुमान लगाया गया था कि १९६१ में भी यही अनुपात रहेगा यद्यपि इस अनुपात के बढ़ने की सम्भावना थी क्योंकि विकास कार्यक्रमों की वृद्धि के कारण व्यापार और वाणिज्य में भी वृद्धि होगी।

उपरोक्त तालिका में दिए गए आंकड़ों के अतिरिक्त यह आशा की गई थी कि कृषि भूमि पुनर्द्धार योजनाओं आयाम के विकास व विस्तार की योजनाओं उद्यान विकास की योजनाओं आदि के कारण १६ लाख नए रोजगार के इच्छुक ग्रामीण व्यक्तियों को रोजगार मिल सकेगा।

ग्रामीण क्षेत्रों में अपूर्ण रोजगार को दूर करने में सिंचाई योजनाओं तथा ग्रामीण व छोटे पैमाने के उद्योग धन्धों के विकास कार्यक्रम से भी सहायता मिलेगी।

आयोजना आयोग ने यह निष्कर्ष निकाला था कि "यद्यपि उपरोक्त बातों को देखते हुए बेरोजगारी दूर करने के लिए आयोजना के रोजगार सम्बन्धी कार्यक्रमों का परिणाम महत्वपूर्ण हो सकता है, परन्तु हमें द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में इस समस्या की ओर निरन्तर ध्यान देना पड़ेगा।"

आयोग ने १९५५ में शिक्षितों में बेरोजगारी दूर करने के हेतु कार्यक्रम बनाने के लिए एक विशेष अध्ययन दल की नियुक्ति की थी। दल के अनुसार वर्तमान ...

बेरोजगारों की संख्या १.५ लाख थी तथा उसने यह भी अनुमान लगाया था कि आगामी पाँच वर्ष की अवधि में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या १८.५ लाख और बढ़ जायगी। इस प्रकार २० लाख शिक्षित व्यक्तियों को रोजगार दिलाने की समस्या थी। दल ने यह भी अनुमान लगाया है कि आयोजना में विभिन्न योजनाओं निजी क्षेत्र में विकास कार्यक्रमों तथा अवकाश ग्रहण करने वाले व्यक्तियों के स्थान पर नए व्यक्तियों को रोजगार प्राप्ति के परिणामस्वरूप केवल १८.२ लाख व्यक्तियों को ही रोजगार मिल सकेगा। इस प्रकार १.८ लाख व्यक्तियों को रोजगार पर लगाने की समस्या फिर भी बनी रहेगी। रोजगार में वृद्धि करने के लिए छोटे व बड़े पैमाने के उद्योग, सहकारी समितियों व यातायात आदि के विकास का सुझाव दिया गया था। आयोग ने यह भी सुझाव दिया था कि इन योजनाओं को पायलट आधार पर चलाया जाए और इनके परिणामों को सतर्कता से देखा जाए। इस ओर भी संकेत किया गया था कि शिक्षित बेरोजगारों की समस्या को सुलझाने के लिए दीर्घकालीन कदम उठाये जाने चाहिएं। इन उपायों से स्थाई परिणाम नहीं प्राप्त किए जा सकते। देश की रोजगार सम्बन्धी आवश्यकताओं के अनुरूप शिक्षा और प्रशिक्षण सुविधाओं में भी समन्वय स्थापित करने की आवश्यकता थी।

संसद में द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना अवधि में कृषि को छोड़कर अन्य क्षेत्रों में लगभग ८० लाख अतिरिक्त व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होने का अनुमान था। कृषि क्षेत्र में भी रोजगार के अवसरों में कुछ वृद्धि होने की सम्भावना थी। इसके अतिरिक्त सिंचाई जैसी कृषि सुविधाओं के अधिक होने तथा भूमि सुधार और कुटीर एवं लघु उद्योगों के विकास की ग्रामीण योजनाओं के लागू करने के कारण अपूर्ण रोजगार को भी कम किया जा सकता था। शिक्षित बेरोजगारों का भी आयोजना के विकास कार्यक्रमों तथा आयोजना में दी गई उनके लिए कुछ विशेष योजनाओं से काफी लाभ हो सकता था। सब बातों को देखते हुए आयोजना में इस बात के लिए पर्याप्त जोर लगाए थी कि श्रम शक्ति में जो १ करोड़ व्यक्तियों की वृद्धि होगी उसके अनुसार श्रम की माँग में भी वृद्धि हो परन्तु द्वितीय आयोजना में जैसा सुझाव था उसके अनुसार यदि उपलब्ध साधनों को एकत्र किया जाय और उनका सर्वोत्तम रूप से प्रयोग भी किया जाय फिर भी बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार की इस दोमुखी समस्या के सुलझाने में इसका इतना अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा जितनी की आवश्यकता थी। आयोग ने इस बात पर भी विशेष जोर दिया था कि "जैसे जैसे आयोजना आगे चलें वैसे वैसे आयोजना के कार्यान्वित होने के कारण जो अतिरिक्त रोजगार उत्पन्न हो उसका निरन्तर मूल्यांकन करते रहना चाहिये जिससे आयोजना में रोजगार के निर्धारित लक्ष्यों को पूरा करने के लिए उपयुक्त कदम उठाए जा सकें।"

यह कहा गया था कि आयोजना 'रोजगार प्रधान आयोजना' (Emp[illegible] Oriented) थी।   था एक उद्देश्य यह माना गया था कि रोजगार के

अवसरों में वृद्धि की जाय। फिर भी हमारे देश में बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार की समस्या इतनी अधिक गम्भीर है कि द्वितीय आयोजना काल में इसके पूर्णतः समाधान की कोई सम्भावना नहीं थी। आयोजना में लगभग १ करोड़ व्यक्तियों के लिए अतिरिक्त रोजगार के अवसरों (परन्तु नौकरियां नहीं) के लिए कार्यक्रम था। पांच वर्ष की अवधि में रोजगार योग्य हो जाने वाले व्यक्तियों की संख्या भी १ करोड़ हो जाने का अनुमान था। इसके अतिरिक्त पिछले बेरोजगारों अर्थात् तत्कालीन बेरोजगारों की संख्या ५३ लाख थी। इस प्रकार यह स्पष्ट था कि आयोजना के बाद भी बेरोजगारी बनी रहेगी। फिर यह सब अनुमान इस पूर्वधारणा पर आधारित थे कि आयोजना सुचारु रूप से लागू हो सकेगी। यदि अर्थ व्यवस्था के किसी भी क्षेत्र में कहीं रुकावट आ जाए या कार्यक्रम में देरी हो जाए, (उदाहरणतः आयात में), तब विकास कार्य-क्रम रुक जायेंगे और इसका परिणाम यह होगा कि रोजगार घट जायगा।

यह स्पष्ट है कि रोजगार के अवसरों का विकास इतनी गति से नहीं हो रहा है कि बढ़ी हुई श्रम शक्ति को संतोषजनक रूप से खपाया जा सके। "द्वितीय आयोजना के मूल्यांकन और सफलता की सम्भावनाओं की झांकी" में यह उल्लेख था कि आयोजना के प्रथम दो वर्षों में कृषि को छोड़कर अन्य व्यवसायों में लगभग २० लाख व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर उपलब्ध हो गए थे तथा आयोजना के तीसरे वर्ष में १० लाख व्यक्तियों के लिए अतिरिक्त रोजगार के अवसर मिलने की सम्भावना थी। ८० लाख व्यक्तियों को रोजगार प्रदान करने का जो लक्ष्य था उसमें संशोधन करना पड़ा था तथा यह अनुमान लगाया गया कि द्वितीय आयोजना अवधि में कृषि को छोड़कर अन्य व्यवसायों में लगभग ६५ लाख व्यक्तियों को ही रोजगार मिल सकेगा। परन्तु यह भी अनुमान लगाया गया था कि आयोजना के प्रथम तीन वर्षों में अधिक से अधिक १० लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल सका था। १९५९-६० में १५ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिलने की सम्भावना व्यक्त की गई थी। द्वितीय आयोजना के अंतिम वर्ष म रोजगार का लक्ष्य महत्वाकांक्षी था क्योंकि इस वर्ष २० लाख व्यक्तियों के लिये रोजगार के अवसर प्रदान करने थे। इस प्रकार द्वितीय आयोजना अवधि में घटे हुए लक्ष्य को—अर्थात् ६५ लाख व्यक्तियों को रोजगार देना—सम्भवतः प्राप्त नहीं किया जा सकता था। वास्तव में स्थिति ऐसी थी कि द्वितीय आयोजना के अन्त में बेरोजगारों की संख्या आयोजना प्रारम्भ होने के समय की संख्या से अधिक हो जाती थी। इससे यह पता चलता है कि अर्थ-व्यवस्था में विकास इस प्रकार से नहीं हो रहा था कि श्रम शक्ति में प्रति वर्ष होने वाली अतिरिक्त वृद्धि को संतोषजनक रूप से रोजगार पर लगाया जा सके।

आयोजना में रोजगार क्षमता के अवसरों को विशेष क्षेत्रों पर दृढ़ करने के प्रयत्न भी किए गए थे; उदाहरणतः ६०,००० अध्यापकों की नियुक्ति की एक

योजना का अनुमोदन किया गया था। श्रम मंत्रालय ने शिक्षित बेरोजगारों को जब तक उन्हें पूर्ण-कालिक रोजगार नहीं मिल जाता अंश-कालिक रोजगार प्रदान करने की एक योजना तैयार की थी। फिटर, बिजली मिस्त्री, रेडियो मिस्त्री, राजगीर, बढ़ई आदि के व्यवसायों में शिक्षित बेरोजगारों को प्रशिक्षण देने के लिये विभिन्न राज्यों में मुख्य मुख्य स्थानों पर प्रशिक्षण केन्द्र खोले गए थे। कुछ विश्वविद्यालयों में रोजगार ब्यूरो की भी स्थापना की गई थी।

अक्तूबर १९५८ में त्रिदलीय आधार पर रोजगार पर एक स्थायी समिति की स्थापना की गई जिसके अध्यक्ष श्रम मंत्री हैं। इसका कार्य निरन्तर रूप से विभिन्न प्रकार की बेरोजगारी की समस्या पर विचार करना तथा रोजगार और रोजगार के अवसरों, राष्ट्रीय रोजगार सेवा के कार्यकरण तथा शिल्पियों आदि के प्रशिक्षण के विषय में श्रम व रोजगार मंत्रालय को सलाह देना है। इस समिति की पहली बैठक २५ मई १९५९ को हुई थी। इसमें रोजगार की स्थिति का पुनर्विलोकन किया गया तथा तीसरी आयोजना में रोजगार की क्या स्थिति होगी इस पर भी विचार किया गया। श्रम शक्ति आयोजित करने तथा रोजगार सम्बन्धी सूचना एकत्रित करने वाली व्यवस्था को दृढ़ करने के लिए राष्ट्रीय रोजगार सेवा के कार्यों पर तथा राष्ट्रीय आयोजनाओं के पूर्ण होने के कारण बेकार हुये श्रमिकों को अन्य स्थानों पर रोजगार पर लगाने के उपायों पर समिति ने विचार किया। रोजगार नियोजन से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने और रोजगार के नव अवसरों की सम्भावनाओं का पता लगाने के लिए इस समिति ने दो अध्ययन दलों की नियुक्ति भी की। अध्ययन दलों की एक संयुक्त बैठक १ अक्तूबर १९५९ को हुई और इसमें इस बात पर विचार किया गया कि आयोजना कार्य-क्रमों में रोजगार के अवसरों को सर्वोत्तम रूप से किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है। इस बैठक में अन्य विषयों के साथ साथ उत्तर प्रदेश के एक जिले (सहारनपुर) में रोजगार की संभावनाओं के विषय में प्रथम अध्ययन की एक रिपोर्ट पर भी विचार किया गया और यह सिफारिश की गई कि ऐसे अध्ययन सभी राज्यों के कुछ विशेष जिलों में होने चाहिए। यह भी सिफारिश की गई कि जहाँ सम्भव हो वहाँ जिला आधार पर रोजगार के अवसरों में वृद्धि करने के कार्यों को प्रोत्साहन देना चाहिए। इस बात पर भी विचार किया गया कि रोजगार का पर्यवेक्षण करने के लिए जिला स्तर पर योजनाओं की कार्यान्विति में प्रभावपूर्ण ढंग से समन्वयन करना चाहिए। राज्य सरकारों से यह भी कहा गया है कि रोजगार दिलाने के कुछ कार्यक्रमों को आरम्भ करने के लिए हर सम्भव प्रयत्न करने चाहिएं।

तीसरी आयोजना में रोजगार की स्थिति —

भारत में आयोजन का एक मुख्य उद्देश्य सभी को रोजगार दिलाना रहा है। परन्तु तृतीय आयोजना में कहा गया है कि मात्रा की दृष्टि से रोजगार के पर्याप्त

अवसर प्रदान करना उन अत्यन्त कठिन कार्यों में से एक है जिन्हें अगले पांच वर्षों में करना है। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी और अर्ध बेरोजगारी अर्थात् अपूर्ण रोजगार दोनों ही साथ-साथ दिखाई पड़ते हैं और उनके बीच कोई स्पष्ट अन्तर प्रतीत नहीं होता। गांवों में साधारणतया बेरोजगारी का स्वरूप अपूर्ण रोजगार है। शहरी क्षेत्रों में व्यापार, यातायात और उद्योग की स्थिति में जो उतार-चढ़ाव होता है उसी के अनुसार रोजगार में भी परिवर्तन होता है। प्रथम दो आयोजनाओं के अनुभव से यह ज्ञात हुआ है कि आयोजना अवधि में जो नए रोजगार अवसर उपलब्ध हुए उनमें से अधिकतर गैर कृषि क्षेत्र में थे। दूसरी आयोजना की अवधि में लगभग ८० लाख नए रोजगार अवसरों का निर्माण हुआ जिनमें से ६५ लाख गैर-कृषि क्षेत्रों में थे।

रोजगार से सम्बन्धित आंकड़े इस समय अपर्याप्त हैं परन्तु फिर भी जो सीमित सूचना उपलब्ध है उसके आधार पर यह अनुमान किया गया है कि द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना के अन्त तक जिन लोगों को रोजगार नहीं दिलाया जा सका उनकी संख्या लगभग ९० लाख है। दूसरी पंचवर्षीय आयोजना की अवधि में बेरोजगार रह जाने वाले लोगों का जो अनुमान था वह केवल ५३ लाख का था। इस अनुमान की तुलना में बेरोजगार रहने वाले लोगों में जो वृद्धि हुई उसका यह अर्थ है कि रोजगार की समस्या पर आयोजना का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। किन्तु फिर भी श्रमिक वर्ग में नए शामिल होने वाले लोगों की संख्या में जो निरन्तर वृद्धि हुई उस हिसाब से लोगों को रोजगार नहीं दिलाया जा सका। पूर्ण बेरोजगारी के अतिरिक्त जिन लोगों के पास कुछ काम है किन्तु जो अतिरिक्त कार्य भी करना चाहते हैं उनकी दृष्टि से अपूर्ण रोजगार वाले लोगों की संख्या लगभग १ करोड़ ५० लाख से १ करोड़ ८० लाख तक है।

किसी भी अवधि में श्रमिक वर्ग में जो वृद्धि होती है उसकी गणना उन पुरुषों व स्त्रियों के अनुपात से की जाती है जो १५–५९ वर्ष के आयु वर्ग में आते हैं क्योंकि यह अनुमान लगाया जाता है कि इस आयु के व्यक्ति ही या तो लाभदायक रोजगार पर लगे होते हैं या रोजगार की तलाश में होते हैं। १९६१ की जनगणना से प्राप्त आंकड़ों के आधार पर यह अनुमान है कि तीसरी आयोजना की अवधि में श्रमिक वर्ग में लगभग १ करोड़ ७० लाख लोगों की वृद्धि होगी। इस वृद्धि में से एक तिहाई वृद्धि शहरी क्षेत्रों में होगी। इसके विपरीत यह अनुमान है कि तीसरी आयोजना में १ करोड़ ४० लाख लोगों को — १ करोड़ ५ लाख लोगों को गैर कृषि कार्यों में और ३५ लाख लोगों को कृषि कार्यों में — अतिरिक्त रोजगार दिलाया जायगा। अग्रलिखित तालिका में गैर-कृषि कार्यों में रोजगार का विवरण दिया गया है।

अतिरिक्त गैर-कृषि रोजगार

(लाखों में)

क्षेत्र	तीसरी आयोजना में अतिरिक्त रोजगार
१ निर्माण*	२१·००
२ सिंचाई और बिजली	१·००
३ रेल	१·५०
४ अन्य यातायात और संचार	८·८०
५ उद्योग और खनिज	७·५०
६ छोटे उद्योग	६·००
७ वन मछली पालन और सम्बद्ध सेवाएं	७·२०
८ शिक्षा	५·६०
९ स्वास्थ्य	१·४०
१० अन्य सामाजिक सेवाएँ	०·८०
११ सरकारी सेवा	१·५०
योग	६७·५०
१२ 'अन्य' जिनमें उद्योग और व्यापार सम्मिलित हैं (१ से ११ तक की मदों के कुल योग का २६ प्रतिशत)	१७·८०
कुल योग	१०२·१०

* चूंकि निर्माण कार्य से बहुत बड़ी संख्या में रोजगार मिलता है इसलिए विभिन्न विकास क्षेत्रों में निर्माण कार्य में रोजगार का निम्न रूप में दिया गया विवरण उपयोगी होगा —

(लाखों में)

(क) कृषि और सामुदायिक विकास	६·१०
(ख) सिंचाई और बिजली	४·६०
(ग) उद्योग और खनिज जिनमें कुटीर और लघु उद्योग भी सम्मिलित हैं	४·६०
(घ) यातायात और संचार (रेल सहित)	३·६०
(ङ) सामाजिक सेवायें	३·५०
(च) विविध	०·५०
योग	२१·००

इस प्रकार श्रमिक वर्ग में नए शामिल होने वाले लोगों को काम दिलाने के पश्चात् ३० लाख लोगों के लिए अतिरिक्त रोजगार होना चाहिए।

तृतीय आयोजना में यह सुझाव है कि रोजगार की समस्या को तीन मुख्य रूपों से सुलझाना चाहिए। प्रथम आयोजना के ढांचे के [illegible] ऐसे प्रयत्न करने

कृषि विनत पहल की अपेक्षा रोजगार के प्रभावों का फैलाव अधिक व्यापक और सन्तुलित रूप से हो । दूसरे ग्रामीण क्षेत्रों को औद्योगीकरण का एक बहुत बड़ा कार्य क्रम हाथ में लेना चाहिए, जिसमें इन बातों पर विशेष जोर दिया जाय — ग्रामीण क्षेत्रों में बिजली लगाना ग्रामीण औद्योगिक सम्पदाओं (Estates) का विकास ग्रामीण उद्योगों की उन्नति और जन-शक्ति को प्रभावशाली रूप में फिर से काम में लगाना । तीसरे लघु उद्योगों द्वारा रोजगार बढ़ाने के अन्य उपायों के अतिरिक्त ग्रामीण निर्माण कार्य-क्रमों (Works Programmes) को संगठित करने का सुझाव है जिनसे लगभग २५ लाख और सम्भवतः इससे भी अधिक लोगों को वर्ष में औसतन १०० दिन तक काम मिलेगा ।

ग्रामीण औद्योगीकरण और गाँवों में बिजली लगाना-यह दोनों सम्बद्ध कार्यक्रम हैं और ग्रामीण क्षेत्रों में स्थिर रोजगार के अवसर बढ़ाने के लिए इनका सबसे अधिक महत्व है। प्रत्येक क्षेत्र म और छोटे छोटे कस्बों और गाँवों में औद्योगिक विकास के केन्द्र स्थापित करना आवश्यक है और यह उत्तम यातायात एवं अन्य सुविधाओं के द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए होने चाहियें । प्रत्येक जिले में अग्रिम आयोजना के द्वारा कृषि सम्बन्धी और औद्योगिक विकास का कार्यक्रम बिजली की पूर्ति के साथ समन्वित होना चाहिए ।

अपूर्ण रोजगार की समस्या के स्थाई समाधान के लिए यह आवश्यक है कि न केवल सभी लोग कृषि कार्यों में विज्ञान का प्रयोग करें बल्कि इस हेतु ग्रामीण आर्थिक ढाँचे को विभिन्न स्तरों में विकसित करना और उसे सुदृढ़ बनाना भी आवश्यक है। ग्रामीण और लघु उद्योगों तथा 'प्रोसेसिंग' उद्योगों के विकास के लिए कार्यक्रमों को और अधिक बढ़ाना होगा और ग्रामीण क्षेत्रों में नए उद्योग स्थापित करने होंगे । इस प्रकार जहां ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का निर्माण किया जा रहा है वहां समस्त ग्रामीण क्षेत्रों में व्यापक निर्माण कार्यक्रमों की आवश्यकता है, विशेषकर उन क्षेत्रों में जहां अधिकांश लोग भूमि पर निर्भर हैं और जहाँ अधिक बेरोजगारी और अपूर्ण रोजगार है। इस कार्यक्रम में खंड (Block) और ग्राम स्तर पर सुस्पष्ट स्थानीय निर्माण कार्य किए जाए थे । विशेषतः कृषि के मन्दे मौसम में कार्यान्वित करने के लिए निर्माण कार्य बनाए जाएंगे । गांवों में जो निर्माण कार्य होंगे उन सभी में ग्राम की प्रचलित दरों पर मजदूरी दी जाएगी । इस सम्बन्ध में हाल ही में ३४ प्रारम्भिक आयोजनाएं (Pilot Projects) चालू की गई हैं। इनमें सिंचाई, वन लगाना, भूमि संरक्षण नालियां बनाना भूमि का पुनरुद्धार, संचार साधनों में सुधार आदि की पृथक योजना सम्मिलित है। अस्थाई रूप से यह अनुमान है कि निर्माण कार्यक्रमों द्वारा पहले वर्ष में १ लाख व्यक्तियों को रोजगार मिल जाएगा दूसरे वर्ष में ४ लाख से ५ लाख तक व्यक्तियों को और तीसरे वर्ष में लगभग १ लाख व्यक्तियों को रोजगार प्राप्त होगा और इस प्रकार बढ़ते बढ़ते आयोजना के अंतिम वर्ष में लगभग २५ लाख

व्यक्तियों को रोजगार मिल सकेगा। आयोजना की अवधि में इस समस्त कार्य-क्रम पर कुल व्यय १५० करोड़ रुपये का हो सकता है।

शिक्षित बेरोजगारों की समस्या पर दो भागों में विचार किया जा सकता है—प्रथम पिछले बेरोजगार तथा दूसरे नए आने वाले बेरोजगार। रोजगार दफ्तरों के आंकड़ों के अनुसार पिछले शिक्षित बेरोजगारों की संख्या लगभग १० लाख है। तीसरी आयोजना की अवधि में हाई स्कूल तथा इससे ऊपर की शिक्षा प्राप्त लोगों की संख्या लगभग १० लाख हो जाने का अनुमान है जिन्हें रोजगार दिलाना होगा। कृषि उद्योग और यातायात की उन्नति होने से कुशल और व्यावसायिक एवं तकनीकी परीक्षण प्राप्त किए हुए व्यक्तियों को रोजगार के अधिक अवसर प्राप्त होंगे। अतः इस सम्बन्ध में शिक्षा प्रणाली का पुनर्गठन बहुत महत्वपूर्ण है। हाल के वर्षों में हाथ से काम करने के प्रति पढ़े लिखे व्यक्तियों के रुख में परिवर्तन हुआ है और उन्हें विकासशील अर्थ-व्यवस्था की आवश्यकताओं के अनुरूप बनाने के लिए बड़े पैमाने पर कार्य-क्रम हाथ में लेने का विचार है। सहकारी समितियों और पंचायतों तथा लोक-तान्त्रिक संस्थाओं की स्थापना हो जाने से ग्रामीण अर्थ-व्यवस्था में अन्तर्गत पढ़े लिखे लोगों के लिए नियमित और निरन्तर रोजगार का योग काफी बढ़ जाएगा। ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में प्राप्त रोजगार से उन्हें वास्तव में उतनी ही आय होगी जितनी कि शहरों में होती है। यह भी सम्भव हो जायगा कि काफी बड़ी संख्या में पढ़े लिखे नवयुवकों को ग्रामीण क्षेत्रों में जहाँ बिजली उपलब्ध की जा सके, छोटे छोटे उद्योग स्थापित करने में सहायता दी जाए।

इस बात की भी आवश्यकता है कि जो आयोजनाएं पूरी हो चुकी हैं या पूर्ण होने वाली हैं वहाँ से कुशल कर्मचारियों को लेकर उन आयोजनाओं में लगाया जाय जो आरम्भ होने वाली हैं। दूसरी आयोजना में इस कार्य के लिए जो व्यवस्था की गई थी उसके अन्तर्गत संतोषजनक रूप से कार्य हुआ है। इस व्यवस्था को बनाए रखते हुए यदि इसी प्रकार की आयोजनाओं को और अधिक अच्छे ढंग से बनाया जाय तथा पूर्व आयोजन करके इन्हें लागू किया जाय तो इस समस्या का अधिक सरलता से सामना किया जा सकता है।

जैसा कि पिछले पृष्ठों से स्पष्ट है— देश में बेरोजगारी की समस्या अत्यन्त गम्भीर है। द्वितीय आयोजना के अन्त में लगभग ९० लाख व्यक्ति बेरोजगार थे। तृतीय आयोजना अवधि में रोजगार के इच्छुक १ करोड़ ७० लाख व्यक्ति और हो जायेंगे। इसका अर्थ यह हुआ कि तीसरी पंचवर्षीय आयोजना अवधि में बेरोजगारी को दूर करने के लिए २ करोड़ ६० लाख व्यक्तियों के लिए रोजगार के अवसर ढूंढने चाहिए परन्तु तीसरी आयोजना में जो कार्यक्रम लिए गए हैं उनके अनुसार केवल १ करोड़ ४० लाख व्यक्तियों को (१ करोड़ ५ लाख गैर-कृषि क्षेत्र में तथा ३५ लाख कृषि क्षेत्र में) रोजगार के अवसर उपलब्ध होंगे। यदि यह लक्ष्य पूरा भी हो

आता है तब भी तीसरी आयोजना के अन्त तक बेरोजगारों की संख्या १ करोड़ २० लाख होगी। एक आयोजना से दूसरी दूसरी से तीसरी और तीसरी से चौथी आयोजना में पुरानी बेरोजगारी का चलते रहना अत्यन्त गम्भीर समस्या है और इस ओर पर्याप्त रूप से ध्यान देना आवश्यक है।

पूर्ण रोजगार की समस्या —(Problem of Full Employment)

एक समस्या यह भी है कि भारत में पूर्ण रोजगार सम्भव है या नहीं। पूर्ण रोजगार की समस्या पर अर्थशास्त्रियों ने काफी विचार किया है। भारत में इस समस्या पर तभी से अधिकाधिक विवेचन हो रहा है जबसे आयोजना आयोग ने प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में इस ओर संकेत किया था कि भारत पिछड़ा देश होने के कारण पूर्ण रोजगार को अपनी आर्थिक क्रियाओं का उद्देश्य नहीं मान सकता। अर्थ व्यवस्था के ढांचे की त्रुटियों को दूर करके ही पूर्ण रोजगार के कार्यक्रम को कार्यान्वित किया जा सकता है। पूर्ण रोजगार के कार्यक्रम को हाथ में लेने से पूर्व पूंजी और भूमि की कमियों को दूर कर लेना चाहिए। इस प्रकार देश में अर्थ व्यवस्था के विस्तार और उसमें विविधता लाने की योजना बनाकर ही पूर्ण रोजगार के उद्देश्य को प्राप्त करने की सम्भावना हो सकती है।

पूर्ण रोजगार का तात्पर्य यह नहीं है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता की सीमा तक कार्य करता रहे वरन् इसका तात्पर्य उस रोजगार से है जो लगभग ऐसे इष्टतम बिन्दु (Optimum Point) तक पहुँच गया हो जब और अधिक वस्तुओं एवं सेवाओं की अपेक्षा मनुष्य फुर्सत (Leisure) अधिक पसन्द करने लगता है। सर विलियम बैवरिज ने पूर्ण रोजगार की परिभाषा इस प्रकार की है—पूर्ण रोजगार की अवस्था में मनुष्यों की अपेक्षा रिक्त स्थान अधिक होते हैं। प्रो० पीगू के अनुसार पूर्ण रोजगार का तात्पर्य यह है कि चालू मजदूरी की दरों पर यदि रोजगार योग्य व्यक्ति कार्य करने को तैयार हों तो उन्हें रोजगार मिल जाता है। पूर्ण रोजगार की स्थिति के लिए राज्य को ध्यान रखना पड़ता है कि किसी भी समय रिक्त स्थानों की संख्या बेरोजगार व्यक्तियों से कम न हो। इसके अतिरिक्त कार्य उचित मजदूरी पर प्रदान किए जाने चाहिएं और काम इस प्रकार स्थित होने चाहिए कि रोजगार के इच्छुक व्यक्ति इन्हें स्वीकार कर लें। यदि ये समस्त दशायें उपस्थित हैं तो एक कार्य के छूटने तथा दूसरे कार्य के पाने के बीच का साधारण अन्तर वास्तव में बहुत कम हो जायगा।

इस प्रश्न पर भी मतभेद है कि एक स्वतन्त्र व्यक्तिवाद समाज में पूर्ण रोजगार सम्भव है या नहीं। मार्क्सवादी तथा कुछ अन्य व्यक्ति विश्वास करते हैं कि पूंजीवादी अर्थ-व्यवस्था की अपनी प्रकृति ही श्रम की मांग तथा पूर्ति में सामंजस्य नहीं होने देती है। परिणामस्वरूप एक नौकरी छूटने तथा दूसरी नौकरी के मिलने के बीच का समयान्तर बहुत अनिश्चित तथा लम्बा हो जाता है। सर विलियम बैवरिज तथा अन्य व्यक्तियों ने इस पर बल दिया है कि यद्यपि सर्व-अधिकार (Totalitarian)

राज्य की अपेक्षा स्वतन्त्र समाज में पूर्ण रोजगार कायम रखने की समस्या अधिक कठिन है तथापि एक व्यक्तिवादी अर्थ-व्यवस्था में इस अवस्था को प्राप्त करना असम्भव भी नहीं है। अत युद्ध के अनुभव ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्यक्तिवादी अर्थ-व्यवस्था में भी बेरोजगारी दूर की जा सकती है। यदि कोई स्थिति युद्ध-काल में प्राप्त की जा सकती है तो कोई कारण नहीं है कि हम उसे शान्ति काल में प्राप्त न कर सकें। राज्य द्वारा आर्थिक क्षेत्र में रोजगार देने हेतु नियन्त्रण से पूर्ण रोजगार की स्थिति प्राप्त की जा सकती है परन्तु इसमें पूर्व कि पूर्ण रोजगार सम्भव हो सके कुछ बातें रखने आवश्यक हैं। उद्योगों का स्थानीयकरण इस प्रकार नियन्त्रित होना चाहिए कि उपलब्ध श्रमिकों का इनमें उचित प्रकार से वितरण हो सके। श्रमिकों की गतिशीलता का नियन्त्रण रोजगार दफ्तरों द्वारा होना चाहिए। सरकारी तथा निजी दोनों क्षेत्रों का कुल व्यय इतना और इस प्रकार होना चाहिए कि वस्तुओं तथा सेवाओं की मांग इतनी अधिक रहे कि यह मांग पूरी करने के लिए राष्ट्र की समस्त मानव शक्ति रोजगार में लगा दी जाए। पूर्ण रोजगार की नीति अपनाने में यह भी आवश्यक है कि आर्थिक नियन्त्रणों को दृढ़ किया जाए और उन्हें विस्तार से लागू किया जाए। इसके अतिरिक्त पूर्ण रोजगार की नीति के साथ-साथ सामाजिक सुरक्षा का कार्यक्रम भी लागू करना चाहिए अन्यथा पूर्ण रोजगार का कोई लाभ नहीं होगा। इस प्रकार पूर्ण रोजगार तब तक सम्भव नहीं हो सकता जब तक राज्य द्वारा कुछ असाधारण अधिकार ग्रहण नहीं कर लिए जाते जैसे निवेशन मार्गदर्शन तथा नियन्त्रण के अधिकार।

उपरोक्त बातों को भारत जैसे देश में प्राप्त करना कठिन है यहां मानव जाति के पांचवें भाग को रोजगार देना दुर्लभ कार्य प्रतीत होता है। किन्तु यदि उन व्यक्तियों की संख्या बहुत विशाल है जिनको रोजगार दिया जाना है तो हमारे साधन भी बहुत अधिक हैं। यदि विकास की आयोजनाएं उचित प्रकार से कार्यान्वित की जाएं तो हमारे जैसे देश में पूर्ण रोजगार प्राप्त करने में अधिक कठिनाई नहीं होगी। कुछ भी हो इस समय पूर्ण रोजगार प्राप्त करने का आदर्श भारत के लिए अपनाना उचित ही है। इस आदर्श को प्राप्त करने के लिए दृढ़ संकल्प भी होना चाहिए।

मन्दी के काल तथा उसके प्रभाव का सामना करने के लिए मालिकों द्वारा उपाय :—

(Ways Open to Employers to Meet Periods of Depression and their Effects)

अब हम एक ऐसे विषय का उल्लेख करेंगे जिसका मालिकों द्वारा किए गए उन प्रयत्नों को समझने में बहुत महत्व है जो प्रायः मन्दी काल की हानियों को दूर करने के लिए इस प्रकार किए जाते हैं कि न तो उनसे राष्ट्रीय आय को हानि पहुँचे

और न उनके कारण बेरोजगारी फैले। जब मन्दी आती है तब परिणाम यह होता है कि मालिकों द्वारा किए गए उत्पादन की मांग कम हो जाती है और मालिक अनुभव करने लगता है कि यदि वह पहिले जैसे स्तर पर उत्पादन करता रहा तो उसे हानि होगी। इसलिए उसे कुछ कमी करनी पड़ती है। आवश्यक कटौती निम्न तीन उपायों में से किसी एक उपाय द्वारा हो सकती है —(१) मालिक श्रमिकों की एक विशेष संख्या को बर्खास्त कर दे और अन्य को पूर्ण रूप से रोजगार देता रहे (२) मालिक समस्त कर्मचारी वर्ग को कार्य में लगाए रखे किन्तु एक 'बदलती श्रमिक' (Rotation) प्रणाली को लागू कर दे जिसके अन्तर्गत उदाहरणतया श्रमिक तीन सप्ताह के लिए कार्य में लगे रहें और चौथे सप्ताह खाली रहें अथवा (३) वह समस्त कर्मचारी वर्ग को लगाए रख परन्तु उनसे प्रत्येक सप्ताह कम समय के लिए कार्य लेता रहे। यह प्रणाली दूसरी प्रणाली से जिसमें अविराम कार्य होता है भिन्न होती है।

पहली योजना को अर्थात् कुछ श्रमिकों के लिए पूर्ण रोजगार तथा अन्य श्रमिकों की बर्खास्तगी को वहीं जहां श्रमिक कुशल नहीं हैं, तरजीह दी जाती है और जहां मांग पुनः बढ़ जाने से उनकी पूर्ति भी अधिक होने की सम्भावना होती है। इसके अतिरिक्त यह प्रणाली वहां भी अधिक प्रचलित होगी जहां श्रमिकों को समयानुसार मजदूरी दी जाती है। इसमें सबसे कम कार्य-कुशल श्रमिक पहिले बर्खास्त कर दिए जाते हैं। तथापि मालिक के लिए उन कुशल और विशेष योग्य श्रमिकों को बर्खास्त करना सम्भव नहीं हो सकता जो फैक्ट्री में नाजुक मशीनरी को चलाने के अभ्यस्त हो गए होते हैं या उन कार्य करने वाले व्यक्तियों को नहीं बर्खास्त किया जा सकता जिन्होंने किसी विशेष कार्य पर कुछ समय से लगे रहने के कारण विशेष योग्यता प्राप्त कर ली है। इस उपाय को अपनाने में दूसरी कठिनाई यह है कि इस बात का भय रहता है कि कहीं बर्खास्त किए गए श्रमिक व्यवसाय के विनिर्माण रहस्यों का उद्घाटन न कर दें। इसके अतिरिक्त मालिकों को श्रमिकों को बर्खास्त करते समय श्रमिक संघों के विरोध का सामना भी करना पड़ता है।

'बदलते श्रमिक' योजना (Rotation Plan) को असुविधा तथा कठिनता के कारण प्रबन्धकों का अधिक समर्थन नहीं मिला है। किन्तु बेरोजगारी बीमा के विकास के साथ कुछ क्षेत्रों में कम समय कार्य के उपाय की अपेक्षा यह उपाय अपनाया गया है। इसका कारण यह है कि यदि एक व्यक्ति चार सप्ताह में से एक सप्ताह कार्य नहीं पाएगा तो वह उस सप्ताह के लिए बेरोजगारी लाभ का अधिकारी हो जाएगा जबकि यदि वह कम समय योजना के अन्तर्गत एक हफ्ते में १२ घण्टे नष्ट कर देता है तो उसे कोई लाभ नहीं मिलेगा। 'बदलते श्रमिक' योजना श्रमिकों को बर्खास्त करने की अपेक्षा कम समय योजना (Short-time Plan) के साथ-साथ अधिक प्रचलित है क्योंकि इसके अन्तर्गत पूर्ण कर्मचारी वर्ग का संस्था के रजिस्टरों में नाम दर्ज रहता है और वह रोजगार में लगे रहते हैं।

तीसरी योजना अर्थात् समस्त कर्मचारी वर्ग के लिए 'कम समय कार्य करने की प्रणाली' को वहाँ व्यवहार में लाया जाता है जहाँ कर्मचारियों को बर्खास्त करने तथा 'बदलते श्रमिक' योजना के लिए उचित परिस्थिति उपस्थित नहीं होती। यह प्रणाली वहाँ अपनायी जाती है जहाँ कार्य के कुछ घण्टों में अन्य घण्टों की अपेक्षा अधिक व्यय पड़ता है, उदाहरणतया उस अवधि में जब प्रकाश और ऊष्मा की अधिक लागत आती है। इसके अतिरिक्त मालिक भी जब कुशल व्यक्तियों को कार्य पर लगाए रखने का इच्छुक होता है तभी इस योजना को अपनाता है। कर्मचारियों को बर्खास्त करना तो उन उद्योगों में एक नियम सा बन जाता है जिनमें मजदूरी समयानुसार (प्रमाती) दी जाती है, जबकि कम समय आयोजना वहाँ ग्रहण की जाती है जहाँ मजदूरी कार्यानुसार (उजरत) दी जाती है, क्योंकि ऐसी दशाओं में सबसे कम कुशल श्रमिकों को बर्खास्त करने की इच्छा इतनी प्रबल नहीं होती।

यदि अन्य कोई रोजगार प्राप्त करने का अवसर है विशेषकर जब व्यापार साधारणतः समृद्धि कर रहा है तब कर्मचारी बर्खास्त करने की योजना कम समय की योजना की अपेक्षा उत्तम रहती है। किन्तु जब पूर्ण व्यापार मन्द हों तो कर्मचारी बर्खास्त करना न्यायोचित नहीं होगा। साधारणतः कम समय योजना को जिसमें 'बदलते श्रमिक' योजना भी आ सकती है जहाँ भी परिस्थिति विशेष रूप से अनुकूल हो, तरजीह देनी चाहिए। इसके कुछ लाभ हैं। सबसे प्रथम तो कम समय योजना कर्मचारियों को बर्खास्त करने से कम कष्टदायक होती है। इसके अतिरिक्त कम समय योजना में श्रमिक व्यय में कटौती करते हैं तथा वे अपनी अपेक्षाकृत आराम की कुछ वस्तुएँ छोड़ देते हैं तथा जीवन की मुख्य आवश्यकताओं पर अपना व्यय केन्द्रित कर देते हैं। यदि व्यय में यह कटौती एक तिहाई की सीमा तक है तब घटती तुष्टिकरण के नियमानुसार समस्त बलिदान पूरा तुष्टिकरण के एक तिहाई से कम होगा। किन्तु यदि इन व्यक्तियों में से दो तिहाई व्यक्ति पूरा रोजगार पर लगे रहते हैं तथा अन्य एक तिहाई हटा दिए जाते हैं तो समस्त बलिदान पहिले स्थिति की अपेक्षा अधिक होगा। इसका कारण यह है कि द्रव्य की वह मात्रा जो पूर्ण रोजगार में लगे व्यक्तियों द्वारा आराम की वस्तुओं पर व्यय की जा रही है यदि अब बेरोजगार हुए व्यक्तियों द्वारा जीवन की आवश्यकताओं पर व्यय की जाती है तो अपेक्षाकृत अधिक तुष्टिकरण प्रदान करेगी। दूसरे कम समय योजना श्रमिकों को बर्खास्त करने से उत्तम है क्योंकि इसमें श्रमिक की कार्य-कुशलता तथा चरित्र हीनता का भय कम होता है। वह व्यक्ति जो दीर्घ अवधि तक बेरोजगार रहता है अपने व्यापार से सम्पर्क खो बैठता है तथा पुनः कार्य करने लगता है और उसके स्वभाव तथा स्वास्थ्य को हानि पहुँचती है। इस प्रकार वह धीरे-धीरे रोजगार के अयोग्य व्यक्तियों की श्रेणी में आ जाता है। अतः मालिकों द्वारा मन्दी का सामना करने के लिए किए गए उपायों में से 'कम व्यय उपाय' कर्मचारी बर्खास्त करने की अपेक्षा अधिक उत्तम है क्योंकि कर्मचारी बर्खास्त करने से बेरोजगारी उत्पन्न हो जाती है।

परिशिष्ट ग

कार्मिक प्रबन्ध (Personnel Management) तथा मानवी सम्बन्धों (Human Relations) पर एक टिप्पणी

कार्मिक प्रबन्ध प्रबन्ध कार्य का ही एक भाग है और मुख्यतः इसका सम्बन्ध संस्थान के भीतर ही मानवी सम्बन्धों से होता है। इसका उद्देश्य इन सम्बन्धों को ऐसे स्तर पर बनाए रखना है जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति के कल्याण को ध्यान में रखते हुए, उन तमाम व्यक्तियों को जो संस्थान में रोजगार पर लगे हुए हैं उस संस्थान के प्रभावात्मक संचालन में व्यक्तिगत रूप से अंशदान देने के योग्य बनाना है।

इस प्रकार कार्मिक प्रबन्ध के अन्तर्गत निम्नलिखित बातें आती हैं (१) "कल्याण दृष्टि से कार्य" —इसका सम्बन्ध श्रमिकों की उन भौतिक सुविधाओं से होता है जो उनके आराम के लिए आवश्यक है। (२) "कार्मिक दृष्टि से कार्य",—इसका मनुष्य के मनोवैज्ञानिक अध्ययन से सम्बन्ध है तथा इसमें मानवी सम्बन्ध के सभी पक्ष आ जाते हैं।

कार्मिक प्रबन्ध का मुख्य आधार कर्मचारियों के मानवीय व्यक्तित्व को मान्यता प्रदान करना है। सौहार्द-पूर्ण औद्योगिक सम्बन्ध बनाए रखने के लिए यह बात अत्यन्त आवश्यक भी है। अतः मालिक तथा कर्मचारियों के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसलिए भावात्मक सहयोग और कर्मचारियों तथा प्रबन्धकर्ताओं में सम्पर्क बनाए रखने के लिए प्रत्येक संस्थान में एक कार्मिक विभाग होना चाहिए।

कार्मिक प्रबन्ध के अन्तर्गत बहुत ही विस्तृत कार्य आते हैं। इसका सम्बन्ध श्रमिकों के लिए कल्याण कार्य करने से ही नहीं है। वास्तविकता तो यह है कि कोई भी कार्य जो प्रबन्ध के प्रति श्रमिकों में विश्वास की भावना को जन्म देता है और उनके हौसले बढ़ाता है तथा उनकी कार्य कुशलता में सुधार करता है, कार्मिक प्रबन्ध के अन्तर्गत आ जाता है। अतः इसके अन्तर्गत प्रबन्ध के वह सभी कार्य सम्मिलित होते हैं, जिनका सम्बन्ध भर्ती रोजगार की शर्तों मजदूरी, औद्योगिक सम्बन्धों कल्याण कार्यों दुर्घटनाओं की रोकथाम, आवास शिक्षा तथा प्रशिक्षण संयुक्त परामर्श तथा अनुसंधान आदि से होता है। इन सभी समस्याओं पर हम पिछले पृष्ठों में विचार कर चुके हैं। हमने इस बात पर भी बल दिया है कि यदि मालिकों और श्रमिकों के मध्य निकट सम्पर्क स्थापित हो जायें और मानवीय दृष्टि कोण से सब बातों को देखा जाय तो अनेक श्रम समस्याओं का बड़ी सुगमता से

निराकरण हो सकता है । अतः कार्मिक विभाग को बड़ी कुशलतापूर्वक कार्य करना पड़ता है। कार्मिक अधिकारी एक अत्यन्त कुशल व बुद्धिमान व्यक्ति होना चाहिए, जिसको श्रम समस्याओं तथा श्रमिकों की परिस्थितियों का विशेष ज्ञान हो।[1]

यह बात उल्लेखनीय है कि उद्योग में मानवी सम्बन्धों का प्रश्न दिन प्रति दिन महत्वपूर्ण एवं प्रभावशाली होता जा रहा है। विस्तृत अर्थों में 'उद्योग में मानवी सम्बन्ध' वाक्यांश से इस बात का बोध होता है कि उद्योग में रोजगार पर लगे हुए व्यक्तियों में कैसे सम्बन्ध होने चाहिएं। लेकिन व्यावहारिक जीवन में यह वाक्यांश उन सम्बन्धों की ओर संकेत करता है जो कि मालिकों अथवा पर्यवेक्षक को अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रति अपनाने चाहिए और बनाए रखना चाहिए। यह समस्या अब अत्यधिक महत्वपूर्ण हो गई है क्योंकि औद्योगीकरण व विस्तार तथा मशीनीकरण के कारण मालिक तथा श्रमिक के मध्य व्यक्तिगत सम्पर्क तो अब केवल अतीत की बात बनकर रह गई है। पर्याप्त मजदूरी तथा कार्य करने की संतोषजनक दशायें स्वस्थ औद्योगिक सम्बन्धों के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। लेकिन यह बातें स्वयं अपने आप में संस्थान की नीति निर्धारण में श्रमिकों का सक्रिय सहयोग प्राप्त नहीं कर सकतीं, जब तक उनका सहयोग पाने के लिए मानवी रूप से व्यवहार नहीं किया जाता।[2] हमें यह भी याद रखना है कि श्रमिक भी मनुष्य होते हैं यह भावुक भी होते हैं उनमें भावनाएं और इच्छायें भी होती हैं। यह सब उनकी मूल आवश्यकताओं और जन्म से उत्पन्न होती हैं जैसे सुरक्षा और स्वामित्व की भावना और स्नेह घृणा क्रोध भय अभिमान जिज्ञासा आदि की प्रवृत्तियां। मानवी सम्बन्धों के क्षेत्र में नीति निर्धारित करने के लिए इन सब बातों का ध्यान अवश्य रखा जाना चाहिए। यद्यपि हम इस बात को मानकर चलते हैं कि सब उद्योगों का उद्देश्य अन्य कार्यों के उद्देश्यों की भांति मनुष्य के रहन सहन की दशाओं में उन्नति करना है अथवा अर्थशास्त्रियों के कथनानुसार, मानवीय आवश्यकताओं की संतुष्टि करना है तब क्या यह अजीब सा न होगा कि इन उद्देश्यों की पूर्ति के कार्यों में मानवीय दृष्टिकोण की उपेक्षा की जाय और अन्य मनुष्यों का ध्यान न करके श्रमिकों को केवल उनकी उत्पादन क्षमता की दृष्टि से ही देखा

---

१ कार्मिक विभाग के कार्यों के विवरण के लिए श्री टी० एन० रस्तोगी की पुस्तक 'Indian Industrial Labour' तथा श्री गिरि की पुस्तक 'Industrial Relations and Personnel Problems' देखिये।

२ मेरठ कालिज अर्थशास्त्र परिषद् के सम्मुख फरवरी १९५५ में श्री डी० आर० मेनन द्वारा दिए गए भाषण के कुछ अंश। उनके भाषण के सारांश के लिए मार्च १९५५ का 'Indian Labour Gazette' देखिये।

जाय ? यंत्रों (मशीनों) को सम्भालना तो सरल होता है क्योंकि यदि यन्त्र में कोई दोष उत्पन्न हो जाता है तब यह पता लग सकता है कि दोष कहां है और यन्त्र को ठीक किया जा सकता है परन्तु मनुष्य को सम्भालना बड़ा विषम कार्य है, क्योंकि यह कोई निश्चित रूप से नहीं कह सकता कि एक व्यक्ति या व्यक्तियों के एक वर्ग पर किसी परिस्थिति की वैसी ही प्रतिक्रिया होगी जैसी किसी दूसरे व्यक्ति या दूसरे व्यक्तियों के वर्ग पर होती है। इस कारण प्रबन्धकर्ताओं का इसी बात में लाभ होगा कि वह केवल औद्योगिक श्रमिकों के कल्याण में ही व्यक्तिगत रूप से रुचि न लें वरन् श्रमिकों के परिवार के कल्याण में भी रुचि प्रदर्शित करें।

मानवी सम्बन्धों की नीति को निर्धारित करने के लिए जो अधिक महत्वपूर्ण तत्व होते हैं उनको अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की 'वस्तु व्यापार समिति' के चौथे अधिवेशन में पारित किए गए एक प्रस्ताव से उद्धृत किया जा सकता है —(१) हर संस्थान में रोजगार पर लगे हुए प्रत्येक व्यक्ति के लिए कार्यों कर्तव्यों और उत्तरदायित्वों के सुस्पष्ट विशेषीकरण के साथ साथ उस संस्थान का पुष्ट संगठनात्मक ढांचा होना चाहिए, (२) रोजगार की पर्याप्त दशायें होनी चाहिएं जैसे उचित मजदूरी काम करने की अच्छी दशायें आदि (३) संस्थान में श्रमिकों को विधिपूर्वक छांटने नियुक्त करने तथा ठीक स्थान पर लगाने के लिए उपयुक्त नीतियां होनी चाहिएं। (४) सबके लिए प्रशिक्षण व शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिये (५) कर्मचारियों की उन्नति के लिए वास्तविक तथा समान अवसर हो तथा जब भी कभी सम्भव हो पदोन्नति या वेतन वृद्धि की जाए तथा नौकरी की समाप्ति के सम्बन्ध में उपयुक्त नीतियां बनाई जाएं, (६) उच्च प्रबन्ध का प्रतिनिधित्व का कार्य करने वाले पर्यवेक्षक वर्ग की ओर अधिक ध्यान दिया जाए क्योंकि उनसे यह आशा की जाती है कि वह श्रमिकों को प्रबन्धकों के उद्देश्यों से अवगत करायेंगे और श्रमिकों की आवश्यकताओं और समस्याओं को प्रबन्धकों के सम्मुख रख सकेंगे। (७) संस्थान में हर स्तर पर श्रमिकों और प्रबन्धकों में श्रमिकों में तथा श्रमिकों के वर्गों में एक दूसरे से सम्पर्क बनाये रखने की व्यवस्था हो। (८) संस्थान में वास्तविक सहयोग बढ़ाने के हर सम्भव प्रयत्न किए जाएं तथा ऐसे ठोस व स्थायी कदम उठाये जाएं जिससे मालिकों व श्रमिकों दोनों को ही बराबर का लाभ हो। इसके अतिरिक्त हर प्रयत्न में वास्तविक रूप से सद्-इच्छा होनी चाहिए अन्यथा मानवी सम्बन्धों को अच्छा बनाने के प्रयत्न सफल नहीं होंगे।

अमेरिका के एक व्यापारिक संस्थान ने मुख्य-मुख्य बातों की एक ऐसी सूची तैयार की है जो प्रबन्धकों को सदा ध्यान में रखनी चाहिए। यह बातें निम्नलिखित हैं —अधीन कर्मचारियों का वैयक्तिक रूप से सम्मान करना और उनके सम्बन्ध में व्यक्तिगत ज्ञान रखना न्यायप्रियता स्पष्टवादिता निष्पक्षता ऐसा निर्देशन जिसमें आदेश की भावना न हो अपना वायदा पूरा करने की योग्यता, दूसरे व्यक्ति के

दृष्टिकोण को समझना तथा जब भी कोई श्रमिक अच्छा काम करे उसकी प्रशंसा करना, आदि। अच्छे सम्बन्ध स्थापित करने व बनाये रखने का उत्तरदायित्व मूलतः श्रमिकों पर ही है। मालिकों की यह ख्याति होनी चाहिए कि वह पूर्णतया ईमानदार हैं और उनमें बुद्धिमत्ता है तथा स्वयं को स्थिति के अनुकूल बनाने की क्षमता है तथा वह अपने ध्येयों के प्रति स्थिर और दृढ़ रहते हैं। इन सब बातों के पश्चात् ही श्रमिक मानवी सम्बन्धों की नीति को स्वीकार कर सकेंगे। इसके विपरीत इस सम्बन्ध में श्रमिक संघों का भी विशेष उत्तरदायित्व है। उनका कार्य केवल नकारात्मक (Negative) ही नहीं होना चाहिए। उनका प्राथमिक उत्तरदायित्व श्रमिकों के अधिकारों की सुरक्षा करना तो है ही परन्तु तब भी उन्हें उस संस्थान के हितों को भी दृष्टिगत रखना चाहिए जिसके श्रमिकों का वह प्रतिनिधित्व करते हैं। उन संस्थानों में जहां मालिकों और श्रमिकों के शक्तिशाली संगठन हैं वहां मानवी सम्बन्धों के विकास की सम्भावनायें अधिक हैं।

कुछ देशों में विश्वविद्यालयों में मानवी सम्बन्धों के विषय में अनुसंधान किए गए हैं और इस उद्देश्य के लिए विशेष विभाग भी बनाए गए हैं। सामाजिक विज्ञान के विद्यार्थी इस दिशा में महत्वपूर्ण योगदान दे सकते हैं। मानवी सम्बन्धों की नीति का उद्देश्य संस्थान के अन्दर श्रमिक का पूर्ण मनोवैज्ञानिक समाकलन (Integration) करना है। सब तत्वों में मानव तत्व को ही प्राथमिकता दी जानी चाहिए। मानवी सम्बन्धों को विकसित करने में मनो विज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास आदि सामाजिक विज्ञानों का बड़ा महत्व है। हमारे देश में इस ओर अनुसंधान के लिए पर्याप्त क्षेत्र है।

उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारी नियम, १९५५
(U. P. Factories Welfare Officers Rules 1955)
(पृष्ठ ७६३–८८ भी देखिए)

उत्तर प्रदेश सरकार ने १९४९ में पारित कारखाना कल्याण अधिकारी नियमों को समाप्त करके १९५५ में उत्तर प्रदेश कारखाना कल्याण अधिकारी नियमों का निर्माण किया। मुख्य संशोधन कल्याण अधिकारियों के पद एवं कर्तव्यों से सम्बन्धित हैं। संशोधित नियमों में प्रधान कल्याण अधिकारी का पद कारखाने के अधिकारी के पद जैसा ही बना दिया गया है। महंगाई भत्ता, बोनस, प्रोविडेंट फण्ड, अवकाश, आवास, चिकित्सा एवं अन्य सुविधाओं के सम्बन्ध में कल्याण अधिकारियों पर वही नियम लागू होते हैं जो कारखाने में उसी पद और श्रेणी के कर्मचारियों पर लागू होते हैं। प्रत्येक उस कारखाने में जहां ५०० या अधिक श्रमिक कार्य करते हैं नियमानुसार कल्याण अधिकारियों की नियुक्ति करनी होगी। ... इस १—नियुक्ति २५०० या अधिक श्रमिकों को काम पर लगाने वाले कारखानों में ३०० रु० ३०० रु० से ५०० रु० १२०० रु० प्रतिमाह के वेतन मान का एक २—नियुक्ति १००० से

२,४४९ तक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों में, २५०-२५-४०० द० रो० १०-७०० द० रो० ५०-८५० रुपये प्रतिमाह के वेतन मान में ग्रेड है— प्रतिदिन ५०० से ९९९ तक श्रमिकों को कार्य पर लगाने वाले कारखानों में, २००-१०-२५० द० रो० १५-४०० रुपये प्रति माह के वेतन मान में। जहां श्रमिकों की संख्या २,५०० से भी अधिक है वहां ग्रेड १ के कल्याण अधिकारी के अधीन ग्रेड २ का एक अतिरिक्त कल्याण अधिकारी होगा। कल्याण अधिकारी कारखानों के जनरल मैनेजर के अधीन कार्य करेंगे और उसके मातहत होंगे। कल्याण अधिकारी उत्तर प्रदेश का निवासी होना चाहिए। नियुक्ति के समय उसकी आयु २५ से ३५ वर्ष तक होनी चाहिए, हिन्दी का पर्याप्त ज्ञान होना चाहिए तथा अर्थशास्त्र अथवा समाजशास्त्र की डिग्री तथा समाज सेवा में डिग्री या डिप्लोमा प्राप्त किए होना चाहिए। प्रथम और द्वितीय वेतन ग्रेड के अधिकारियों के लिए क्रमशः पांच और तीन वर्ष का व्यवहारिक अनुभव होना आवश्यक है। अधि-वर्ष की आयु ५५ वर्ष निश्चित की गई है। परख अवधि एक वर्ष है। परन्तु यह अवधि कार्य संतोषप्रद न होने की अवस्था में बढ़ाई जा सकती है। ऐसे मामलों में दण्ड व अपील की भी व्यवस्था है। कल्याण अधिकारी के कर्तव्य निम्न प्रकार हैं —

(१) श्रमिकों और प्रबन्धकों के बीच सौहार्द-पूर्ण सम्बन्धों को बढ़ाना तथा उनके बीच सम्पर्क अधिकारी का कार्य करना; (२) कार्य की दशाओं के सम्बन्ध में श्रमिकों की शिकायतों और कठिनाइयों को, जितना शीघ्र सम्भव हो दूर करने का प्रयत्न करना; (३) स्वास्थ्य, सुरक्षा और कल्याण के सम्बन्ध में श्रम कानूनों, आदेशों और वैधानिक नियमों को यदि भंग किया जाता है तो उसकी सूचना कारखाने के मैनेजर या देखरेख करने वाले को देना और इस ओर उनका ध्यान दिलाना तथा कैन्टीन विश्राम गृह शिशु गृह पर्याप्त शौचालय सुविधायें, पीने का पानी आदि सुविधाओं के सम्बन्ध में व्यवस्था करने के लिए उचित कदम उठाना (४) संस्थान के क्षेत्र के अन्दर और बाहर मैत्रीपूर्ण सम्पर्क बनाकर श्रमिकों के मनोभावों का अध्ययन करना तथा ऐसे मामलों को जिससे विवाद अथवा तनाव उत्पन्न होने की सम्भावना हो मालिकों के ध्यान में लाना ताकि सौहार्द-पूर्ण सम्बन्ध बने रहें; (५) संयुक्त उत्पादन कार्य समितियां मालिक मजदूर समितियां सहकारी समितियां सुरक्षा प्रथम समितियां अथवा कल्याण समितियों के निर्माण को प्रोत्साहन देना, प्रबन्धकों को अच्छी प्रकार अनुशासन बनाए रखने में सहायता देना तथा श्रमिकों के हितों में वृद्धि करने वाले सभी उपायों को प्रोत्साहन देना (६) श्रम कल्याण कार्यों को संगठित करना और उनकी देखभाल करना तथा यह देखना कि कार्य की दशाओं के सम्बन्ध में वैधानिक उपबन्धों को लागू किया जाता है या नहीं (७) ऐसे मामलों में जिनमें श्रम दशाओं और श्रम कल्याण के विषयों की विशेष जानकारी की आवश्यकता होती है, प्रबन्धकों को सलाह देना तथा श्रमिकों की रहने की अवस्थाओं में सुधार के लिए उचित कदम उठाना (८) बंद हड़ताल और तालाबन्दी के समय

तटस्थ व्यवहार रखना (९) श्रमिकों पर ऐसा प्रभाव डालना कि वह अवैध हड़ताल न करें और मालिकों पर ऐसा प्रभाव डालना कि वह अवैध तालाबन्दी घोषित न करें तथा तोड़-फोड़ एवं अन्य गैर-कानूनी कार्यों को रोकने के प्रयत्न करना (१०) घूस व भ्रष्टाचार का पता लगाना और रोकना तथा ऐसे मामलों को कारखाने के प्रबन्धकों के ध्यान में लाना (११) ऐसी सड़कों पुलों आदि की दशाओं के विषय में सम्बन्धित अधिकारियों के सम्मुख अभिवेदन करना जिन पर होकर श्रमिक अपने कार्य पर आते जाते हैं।

अन्तरकार्य प्रशिक्षण की योजना (देखिए पृष्ठ ९१३)
(Scheme for Training within Industry)

इस योजना का उद्देश्य औद्योगिक संस्थाओं में पर्यवेक्षी कर्मचारी वर्ग (Supervisory Staff) की निम्नलिखित योग्यताओं का विकास करना है (१) मार्ग प्रदर्शन योग्यता (२) अनुदेशन योग्यता (३) कार्य प्रणाली में सुधार करने की योग्यता। इस योजना में निम्नलिखित कार्यक्रम आते हैं श्रमिक सम्बन्ध प्रशिक्षण, कार्य अनुदेशन प्रशिक्षण और कार्य प्रणाली प्रशिक्षण।

'श्रमिक सम्बन्ध प्रशिक्षण' (Job Relations) का कार्यक्रम मार्ग प्रदर्शन की योग्यता से सम्बन्धित है। इसका उद्देश्य यह है कि पर्यवेक्षक इस बात का अनुभव कर लें कि उनको अपने कर्मचारियों के सहयोग तथा वफादारी से अच्छे परिणाम प्राप्त हो सकते हैं। पर्यवेक्षक को यह समझाया जाता है कि वह अपने साथ कार्य करने वालों के प्रति जैसा व्यवहार करेगा वैसा ही व्यवहार उसको श्रमिकों से अपने लिए मिलेगा। श्रमिकों से वफादारी की माँग नहीं की जा सकती। इसको तो अपने ही प्रयत्नों द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यदि दूसरों में हम सद्व्यवहार उत्पन्न करना चाहते हैं तो यह बहुत आवश्यक है कि हममें स्वयं अनुशासन अधिक मात्रा में होना चाहिए। अतः मानवी सम्बन्धों की देखभाल के लिए एक विशेष तकनीक पर विचार विमर्श किया जाता है और उसको व्यवहार में लाया जाता है।

'कार्य अनुदेशन' (Job Instruction) के कार्यक्रम का उद्देश्य पर्यवेक्षकों की अनुदेशन योग्यता को विकसित करना है। इस कार्यक्रम के अन्तर्गत यह बताया जाता है कि अनेक कठिनाइयाँ जो सामने आती हैं वह श्रमिकों के दोष के कारण नहीं होतीं वरन् खराब तथा दोषपूर्ण अनुदेशन के कारण होती हैं। पर्यवेक्षकों को यह सिखाया जाता है कि जो प्रशिक्षण वह देते हैं उसकी पहिले से पूर्ण योजना बना लेनी चाहिए तथा अनुदेशन किस प्रकार का हो यह भी पहिले से तैयार कर लेना चाहिए ताकि कोई बात छूट न जाय। अनुदेशन को भी श्रमिकों के सामने इस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि श्रमिक उस कार्य में जो उन्हें सिखाया जा रहा है ध्यान के साथ लग जायें और उसमें रुचि लें।

कार्य प्रणाली (Job Methods) के कार्यक्रम में पर्यवेक्षकों को यह अनुभव कराया जाता है कि अपने अनुभाग के कार्यों की प्रणाली के प्रति भी उनका कुछ उत्तरदायित्व है। यदि कार्य नीरस सदा थकाने वाला है या ऐसा है जिसमें अनावश्यक रूप से चलना फिरना पड़ता है, या कार्य करने में कुछ खतरा होता है तब पर्यवेक्षक को इस बात की प्रतीक्षा नहीं करनी चाहिए कि कोई अन्य व्यक्ति आकर प्रणाली को ठीक कर देगा। उसमें स्वयं इतनी योग्यता होनी चाहिए कि कार्य किस प्रकार हो रहा है इसकी जाँच करें तथा स्वयं अपने विचारानुसार श्रमिकों के लिए कार्य सरल और अधिक सुरक्षित बना दे।

अन्तरकार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम के लिए भारत सरकार ने १९५१ में तकनीकी सहायता कार्यक्रम (Technical Assistance Programme) के अन्तर्गत अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन से एक विशेषज्ञ की सेवायें प्राप्त कीं जिनका नाम मी किली फोर्ड सी था। अहमदाबाद वस्त्र उद्योग अनुसंधान संस्था व गुजरात मिल व उद्योग संघ बड़ोदा के लिए मी फी ने प्रशिक्षण कार्य-क्रमों का संचालन किया। उनके कार्य काल को दो बार और बढ़ाया गया और इस काम में उन्होंने ऐसोसियेटेड सीमेंट कम्पनीज लि० तथा 'मैसस सिनक इन्डस्ट्रीज' में प्रशिक्षण कार्यक्रमों का संचालन किया। अन्तरकार्य प्रशिक्षण के एक अन्य विशेषज्ञ श्री स्टीफन आर० विपर्लन के नवम्बर १९५४ में आ जाने के कारण प्रशिक्षण कार्य-क्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षण संस्थाओं को सरकारी व निजी दोनों क्षेत्रों के औद्योगिक संस्थानों तक लागू करना सम्भव हो गया। १९५५ में इन प्रशिक्षण कार्यक्रमों के अन्तर्गत प्रशिक्षण पाने वाले व्यक्तियों की संख्या निम्नलिखित थी :—

	नागपुर	नई दिल्ली	बम्बई
कार्य अनुदेशन (Job Instruction)	१०	१५	११
कार्य प्रणाली (Job Methods)	१०	१३	१६
श्रमिक सम्बन्ध (Job Relations)	१०	१५	१९
प्रशिक्षण कार्यक्रमों का पुन: निरीक्षण (Follow up)	१०	२१	

इस कार्यक्रम के अन्तर्गत प्रशिक्षित व्यक्तियों से यह आशा की गई कि वह अपने पृथक् पृथक् संस्थानों में 'अन्तरकार्य प्रशिक्षण' प्रणाली को लागू करेंगे और पर्यवेक्षी कर्मचारी वर्ग को पर्याप्त संख्या में प्रशिक्षण देंगे। परन्तु इस प्रकार प्रशिक्षण कार्यक्रमों को लागू करने से ही उद्देश्य की प्राप्ति नहीं होती थी। इस कारण पुन: निरीक्षण के कार्य का संचालन करना आवश्यक था। अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन के दोनों विशेषज्ञ उन औद्योगिक केन्द्रों में पुन: निरीक्षण के उद्देश्य से फिर गए जहाँ यह योजना प्रारम्भ की गई थी। टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी तथा जमशेदपुर में अन्य सहायक कम्पनियों के लिए इस सम्बन्ध में कुछ वार्ताओं की व्यवस्था भी की गई। सौराष्ट्र और गुजरात के उन औद्योगिक संस्थानों में जहाँ १८ से २८ अनुसार

१९५५ तक की अवधि में योजना को लागू किया गया था पुनः निरीक्षण की व्यवस्था की गई। अपना कार्यकाल समाप्त करने के पश्चात् १९५६ [illegible] ग्रीष्म में विशेषज्ञों ने जब भारत छोड़ा तब उन्होंने कपड़ा इस्पात इन्जीनियरिंग रसायन सीमेंट प्रेस व खनिज आदि १०० संस्थानों के अधिकारियों को प्रशिक्षित कर दिया था तथा अन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम के अन्तर्गत लगभग ५००० पयवेक्षकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका था। ५० से अधिक फर्मों में नियमित रूप से पुनः निरीक्षण की योजना भी लागू की गई थी।

श्रम मंत्रालय ने १९५४ में बम्बई में एक अन्तर्कार्य प्रशिक्षण केन्द्र (Centre) की स्थापना की। यह केन्द्र देश में अन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रमों को लागू करने और उनके विकास करने के लिए उत्तरदायी है। १९५७ में बम्बई व कानपुर में दो अन्तर्कार्य प्रशिक्षण प्रायोजनाएं लागू की गईं और १९५८ में कोयम्बतूर, कलकत्ता और बम्बई में भी ये प्रायोजनाएं आरम्भ की गईं। १९५९ में इस केन्द्र ने बम्बई में दो प्रायोजनाएं और शुरू कीं तथा १९६० में १ प्रायोजना बम्बई में और १ हैदराबाद में आरम्भ की। प्रत्येक प्रायोजना में सरकारी व निजी फर्मों के १९५९ में १२ तथा १९६० में ११ प्रशिक्षण-अधिकारियों ने भाग लिया। अन्तर्कार्य प्रशिक्षण केन्द्र ने मार्च १९६० तक २१७ प्रशिक्षण अधिकारियों को प्रशिक्षित किया। इन अधिकारियों ने अन्तर्कार्य प्रशिक्षण योजना के अन्तर्गत कार्य अनुदेशन कार्य प्रणाली तथा श्रमिक सम्बन्धों में ४०,००० पर्यवेक्षकों को प्रशिक्षित किया है। अनेक फर्मों और उद्योगों ने अन्तर्कार्य प्रशिक्षण योजना को सफलतापूर्वक लागू किया है। १९५९ में इस केन्द्र ने दो नए कार्यक्रम आरम्भ किए—एक 'सम्मेलन नेतृत्व' से सम्बन्धित था तथा दूसरा 'कार्यक्रम विकास' से सम्बन्धित था। १९६० में इस केन्द्र द्वारा दो अन्य कार्यक्रम लागू किए गए। एक तो कार्य विवाद से सम्बन्धित था तथा दूसरा कार्य की सुरक्षा से। ये कार्यक्रम १९६१ में भी चलते रहे और कार्य विवाद के कार्यक्रम में बम्बई उत्पादकता परिषद् ने भी मई १९६१ में सक्रिय भाग लिया। केन्द्र ने 'अन्तर्कार्य प्रशिक्षण' योजना की प्रगति और विकास पर 'न्यूज लैटर' नामक एक मासिक पत्रिका का भी प्रकाशन किया है।

यह भी उल्लेखनीय है कि प्रथम पंचवर्षीय आयोजना में अन्तर्कार्य प्रशिक्षण कार्यक्रम को श्रम और रोजगार मंत्रालय के कार्यक्रम में एक निश्चित अंग के रूप में सम्मिलित कर लिया था और श्रम मंत्रालय को पर्यवेक्षकों को शिक्षा व विकास का उत्तरदायित्व सौंपा था। द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में भी इस कार्यक्रम को जारी रखा गया और तीसरी आयोजना में भी इस बात के महत्त्व की ओर संकेत किया गया है।

यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि १९५८ से आरम्भ से ही श्रम और रोजगार मंत्रालय ने सरकारी कार्यालयों के पर्यवेक्षण कर्मचारियों के प्रशिक्षण के लिए कुछ प्रयोग शुरू किए हैं। यह प्रयोग 'अन्तर्कार्य प्रशिक्षण' के सिद्धान्तों पर आधारित

है। योजना के अन्तर्गत एक प्रशिक्षित अधिकारी ने अनेक विचार विमर्श केन्द्रों का आयोजन किया है।

रिक्शा चलाने का उन्मूलन

रिक्शा चलाने को समाप्त करने के प्रश्न पर श्रम मंत्री सम्मेलन के १२ वें अधिवेशन में जो १९५५ में ४ से ५ नवम्बर तक हुआ विचार किया गया था और यह सिफारिश की गई थी कि —(क) रिक्शा चलाने को धीरे धीरे समाप्त कर देना चाहिए, परन्तु जहाँ इस प्रकार का उन्मूलन सम्भव न हो वहाँ रिक्शा चालकों की कार्य की दशाओं तथा उनकी डाक्टरी परीक्षा के लिए उचित नियम बना देने चाहिएं। इस सम्बन्ध में राज्य सरकारों के मार्ग दर्शनार्थ केन्द्रीय सरकार को कुछ आदर्श नियम बना देने चाहिएं (ख) जब तक रिक्शाओं के पूर्ण उन्मूलन का प्रश्न विचाराधीन है कोई भी नए लाइसेंस नहीं दिए जाने चाहिएं।

राज्य सरकारों से प्रार्थना की गई थी कि वह रिक्शा चलाने को धीरे धीरे समाप्त करने के लिए एक योजना बनाएं एवं अन्य उपायों के साथ साथ निम्न बातों का भी पालन करें —

(१) उस अवधि को निर्धारित कर दें जिसमें हाथ से अथवा साइकल से चलने वाली रिक्शा संतोषजनक रूप से कार्य के योग्य सिद्ध हो सकती है और ऐसी अवधि की समाप्ति के पश्चात् ऐसी रिक्शाओं का चलना बन्द कर दें।

(२) नई रिक्शाओं और नए रिक्शा चालकों के लिए नए लाइसेंस देना बन्द कर दें।

(३) ऐसे क्षेत्र निर्धारित कर दें जिनमें विशेष प्रकार की रिक्शायें चल सकती हैं। एक निर्धारित योजना के अनुसार ऐसे क्षेत्रों को धीरे-धीरे प्रति वर्ष कम कर दें।

केन्द्रीय सरकार ने हाथ से खींचने वाली तथा साइकिल रिक्शाओं को लाइसेंस देने के विषय में कुछ आदर्श विनियम बनाए हैं और इन विनियमों को अपनाने के हेतु राज्य-सरकारों में परिचालन कर दिया है। यह ज्ञात हुआ है कि कुछ संवैधानिक कठिनाईयों के कारण उन्मूलन का प्रश्न संशय में पड़ गया है।

उद्योग में अनुशासन संहिता
(Code of Discipline in Industry)
(पृष्ठ [illegible] तथा ४११ देखिए)

[illegible] की ओर से प्रायः यह शिकायतें मिलती हैं कि कुछ मामलों में मालिक समझौतों तथा अधिकरणों द्वारा दिए गए पचाटों को लागू नहीं करते हैं। इसी प्रकार मालिक यह शिकायत करते हैं कि श्रमिकों में अनुशासनहीनता बढ़ रही है। ऐसी शिकायतों को दूर करने और अनुशासन बनाने के लिए, भारतीय श्रम सम्मेलन के 15 वें अधिवेशन में, जो जुलाई १९५७ में हुआ था, एक त्रिपक्षीय [illegible]

समिति की स्थापना की गई थी। इस उप-समिति ने एक ऐसी अनुशासन-संहिता का निर्माण किया जिसमें दिए हुए सिद्धान्तों का पालन मालिकों और श्रमिक वर्गों को करना चाहिए। स्थायी श्रम समिति ने अक्तूबर १९५७ में इस संहिता का अनुमोदन किया। मार्च १९५८ में भारतीय श्रम सम्मेलन की उप-समिति की एक बैठक में इस संहिता को मालिकों और श्रमिकों के अखिल भारतीय संगठनों द्वारा अनुसमर्थन प्राप्त हो गया था। परन्तु औपचारिक रूप से मई १९५८ में नैनीताल में हुए १६ वें भारतीय श्रम सम्मेलन में ही इस संहिता का अनुसमर्थन किया गया। इस प्रकार यह संहिता १ जून १९५८ से कार्यान्वित की गई। इस संहिता का अनुमोदन और अनुसमर्थन करके मालिक मजदूरों के सम्बन्धों को दृढ़ करने के लिए एक ठोस कदम उठाया गया है।

इस अनुशासन संहिता को जिसे अक्तूबर १९५७ में स्थायी श्रम समिति का अनुमोदन प्राप्त हुआ था मई १९५८ में भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा संशोधित किया गया। संशोधित संहिता को नीचे उद्धृत किया जाता है —

उद्योगों में (सरकारी व निजी दोनों ही क्षेत्रों में) अनुशासन बनाए रखने के लिए, यह होना चाहिए कि (क) कानूनों और समझौतों में (इनमें समय-समय पर विभिन्न स्तरों पर किए जाने वाले द्विदलीय व त्रिदलीय समझौते भी सम्मिलित हैं।) की गई व्याख्या के अनुसार मालिक और श्रमिक दोनों ही एक दूसरे के अधिकारों और उत्तरदायित्वों को उचित प्रकार से मान्यता दें। (ख) इस प्रकार की मान्यता दे देने के पश्चात् सम्बन्धित पक्ष स्वेच्छापूर्वक और उचित प्रकार से अपने दायित्वों को निभायें।

केन्द्रीय और राज्य सरकारों का यह काम होगा कि श्रम कानूनों के प्रशासन के लिए जो व्यवस्था की गई है उसमें यदि कोई कमी है तो उसकी जाँच करें और उसे ठीक करें।

उद्योग में अच्छा अनुशासन लाने और बनाए रखने के लिए —

प्रबन्धक और श्रमिक सब इन बातों पर सहमत हैं — (१) किसी भी औद्योगिक विषय पर कोई भी एकपक्षीय कार्यवाही नहीं की जानी चाहिए, तथा विवादों का उचित स्तर पर निपटारा किया जाना चाहिए, (२) विवादों के निपटारे के लिए जो भी वर्तमान व्यवस्था हो उसका यथोचित रूप से उपयोग किया जाना चाहिए, (३) बिना पूर्व सूचना के कोई हड़ताल या तालाबन्दी नहीं की जायगी। (४) प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों में अपने विश्वास प्रकट करते हुए वह इस बात की प्रतिज्ञा करते हैं कि अपने सभी भविष्य के विवादों व शिकायतों का पारस्परिक वार्तालाप समझौते और पंचनिर्णय द्वारा निपटारा करेंगे (५) कोई भी पक्ष (क) दबाव (ख) धमकी (ग) बलात्कार, या (घ) धीमे काम जैसी किसी कार्यवाही का सहारा नहीं लेगा (६) दोनों पक्ष (क) मुकदमेबाजी (ख) हड़ताल तथा (ग) तालाबन्दी आदि से दूर रहने का प्रयत्न करेंगे (७) वह अपने प्रति-

नियोजकों के बीच तथा श्रमिकों के बीच सभी स्तरों पर स्वस्थ सहयोग को प्रोत्साहन देंगे और पारस्परिक रूप से किए गए समझौतों की भावना का आदर करेंगे (८) पारस्परिक रूप से वह एक ऐसी शिकायत निवारण क्रियाविधि की व्यवस्था करेंगे जिसके द्वारा शीघ्र और पूर्ण रूप से जाँच के पश्चात् समझौते पर पहुँचा जा सके, (९) दोनों पक्ष शिकायत निवारण क्रियाविधि के विभिन्न चरणों को मानेंगे और कोई भी एक-पक्षीय ऐसा कार्य नहीं करेंगे जिससे इस व्यवस्था का उल्लंघन होता हो, तथा (१०) दोनों पक्ष प्रबन्धक कर्मचारियों और श्रमिकों को अपने-अपने उत्तर दायित्वों के बारे में शिक्षा देने की व्यवस्था करेंगे।

प्रबन्धक इन बातों के लिए सहमत हैं —(१) बिना सहमति या समझौते के कार्य भार नहीं बढ़ायेंगे (२) श्रमिकों के प्रति किसी भी प्रकार का अनुचित व्यवहार नहीं करेंगे जैसे (क) उनके इस अधिकार में हस्तक्षेप करना कि वह श्रमिक संघों के सदस्य बन सकते हैं या बने रह सकते हैं, (ख) इस आधार पर कि कोई मजदूर श्रमिक संघों की कार्यवाहियों में भाग लेता है उसके विरुद्ध भेदभाव करना या उस पर दबाव डालना या बन्धन लगाना, (ग) श्रमिकों के प्रति अत्याचार करना या किसी भी रूप में अपने अधिकारों का दुरुपयोग करना (३) (क) शिकायतों का निपटारा करने व (ख) समझौते, पंचाट, निर्णय व आदेशों को लागू करने के लिए तत्काल कार्यवाही करेंगे (४) संस्थान में मुख्य-मुख्य स्थानों पर इस संहिता के उपबन्धों को स्थानीय भाषाओं में लिखवा कर प्रदर्शित करेंगे (५) ऐसी अनुशासनात्मक कार्यवाहियों के बीच जिनमें तत्काल बर्खास्तगी न्यायोचित हो तथा जिनमें बर्खास्तगी से पूर्व चेतावनी डाँट-डपट या मुअत्तली या अन्य किसी प्रकार की अनुशासनात्मक कार्यवाही करनी चाहिए, अन्तर को स्पष्ट करेंगे तथा इस बात की भी व्यवस्था करेंगे कि सामान्य शिकायत निवारण क्रिया विधि के माध्यम से ऐसी सभी अनुशासनात्मक कार्यवाहियों की अपील की जा सके; (६) उन मामलों में अपने अधिकारियों तथा सदस्यों के प्रति उचित अनुशासनात्मक कार्यवाही करेंगे जहाँ जाँच पड़ताल के परिणामस्वरूप यह पता चले कि वह ऐसे कार्यों के लिए उत्तरदायी थे जिनके कारण श्रमिकों को अनुशासनहीनता कार्यवाही करने के लिए मजबूर होना पड़ा (७) मई १९५८ में १६वें भारतीय श्रम सम्मेलन द्वारा निर्धारित जाँच आधारों पर तथा संहिता के अनुबन्ध में दिए गए स्तरों के अनुसार संघों को मान्यता देंगे।

संघ इस बात के लिए सहमत हैं —(१) किसी भी प्रकार का शारीरिक बल प्रदर्शन द्वारा दबाव नहीं डालेंगे (२) अशान्तिपूर्ण प्रदर्शनों को न होने देंगे तथा प्रदर्शनों में किसी प्रकार का उपद्रव नहीं होने देंगे (३) अपने सदस्यों को या अन्य श्रमिकों को काम के घण्टों के दौरान में श्रमिक संघों की कार्यवाहियों में भाग नहीं लेने देंगे जब तक कि कानून समझौते अथवा प्रचलन द्वारा ऐसी व्यवस्था न कर दी गई होः (४) (क) कर्तव्य की उपेक्षा (ख) लापरवाही से काम, (ग) सम्पत्ति को

क्षति, (घ) सामान्य कार्य में रुकावट अथवा बाधा तथा (ङ) अवज्ञा (Insubordination) आदि जैसे अनुचित श्रम व्यवहारों को हतोत्साहित करेंगे (५) पंचाट, समझौतों, निर्णयों, निपटारों आदि को लागू करने के लिए तत्काल कार्यवाही करेंगे (६) इस संहिता के उपबन्धों को स्थानीय भाषाओं में संघ के कार्यालयों में मुख्य-मुख्य स्थानों पर प्रदर्शित करेंगे (७) इस संहिता की भावना के विरुद्ध काम करने वाले पदाधिकारियों और सदस्यों के कार्यों की निन्दा करेंगे और उनके विरुद्ध उचित कार्यवाही करेंगे।

अनुशासन संहिता में जो उपरोक्त मुख्य सिद्धान्त बनाये गये थे उनको संक्षेप में निम्न प्रकार पुनः बताया जा सकता है (१) मालिक और श्रमिक एक दूसरे के अधिकारों और उत्तरदायित्वों को मान्यता देंगे (२) किसी भी औद्योगिक मामले में कोई भी ऐसी एकपक्षीय अथवा स्वेच्छापूर्वक कार्यवाही नहीं करेंगे जिसके कारण पारस्परिक रूप से निश्चित की गई तथा स्थापित शिकायत निवारण क्रियाविधि की अवहेलना होती हो (३) बिना पूर्व सूचना दिए कोई तालाबन्दी अथवा हड़ताल नहीं की जाएगी (४) हिंसा प्रयोग धमकी दबाव जबरदस्ती, भ्रष्टाचार, भेदभाव संघ के कार्यक्रम अथवा सामान्य कार्यों में दखल कर्तव्य के प्रति उपेक्षा अथवा अवज्ञा अथवा अनुशासनहीनता सम्पत्ति अथवा मशीनों की क्षति आदि जैसे कार्य कदापि नहीं किए जाएंगे (५) कार्य मन्दन दुर्भावना हाजिर हड़ताल या धरना गुण्डेबाजी आदि जैसी चालों का सहारा नहीं लिया जायगा (६) विवादों के निपटारे के लिए बनाई हुई व्यवस्था का यथोचित रूप से उपयोग किया जायगा (७) दोनों पक्ष इस बात के लिए सहमत होंगे कि वह अपने सब मतभेदों और शिकायतों को पारस्परिक वार्ता समझौते और ऐच्छिक विवाचन द्वारा सुलझायेंगे (८) पंचाटों निर्णयों समझौतों निपटारों आदि को शीघ्रतापूर्वक तथा तत्परता से कार्यान्वित किया जाएगा। (९) प्रत्येक ऐसे कार्य से जिससे सौहार्दपूर्ण सम्बन्धों में बाधा पड़ती हो अथवा जो इस संहिता के सिद्धान्तों की भावना के विरुद्ध जाते हों दूर रहेंगे।

मालिकों और श्रमिकों के केन्द्रीय संघों के तथा सरकार के प्रतिनिधियों की एक केन्द्रीय मूल्यांकन और कार्यान्विति समिति की स्थापना इस उद्देश्य से की गई है कि अनुशासन संहिता को किस प्रकार से लागू किया जा रहा है इसका मूल्यांकन किया जाए। इस समिति का यह भी कार्य है कि श्रम कानूनों, पंचाटों, समझौतों आदि को लागू करने में देर होने के अथवा असन्तोषजनक रूप से लागू करने के मामलों की जांच करे। इस समिति ने इस बात पर जोर दिया है कि संहिता में लिखित सिद्धान्तों का शब्दानुसार ही पालन नहीं करना चाहिए वरन् उनमें भी जो भावना निहित है उसका भी ध्यान रखना चाहिए। संहिता के उपबन्धों का भी व्यापक तथा विस्तृत रूप से प्रचार करना चाहिए। केन्द्रीय मूल्यांकन और कार्यान्विति प्रभाग संहिता के कार्यान्विति की देखभाल करता है। राज्यों में भी इसी प्रकार की मूल्यांकन और

कार्यान्विति' व्यवस्था की गई है। (देखिए पृष्ठ १७४) यह प्रभाग बहुत से झगड़ों का अदालत से बाहर ही फैसला कराने में सफल हुआ है।

दिसम्बर १९५८ में उद्योग में अनुशासन संहिता को लागू न करने पर कुछ उपाय अथवा शास्ति (Sanctions) निश्चित किए गए। इन उपायों को मालिकों और श्रमिकों के केन्द्रीय संघों द्वारा लागू किया जाएगा। यदि कोई संघ संहिता को भंग करता है, तो उसे केन्द्रीय संगठन द्वारा जिससे संघ सम्बद्ध है नोटिस दिया जायगा। यदि संहिता भंग कोई गम्भीर प्रकृति की है तब केन्द्रीय संगठन सम्बन्धित संघ को चेतावनी देगा या निन्दा करेगा (Censure) अथवा अन्य कोई दण्ड देगा। यदि किसी संघ द्वारा संहिता को बार-बार भंग किया जाता है तो केन्द्रीय संगठन ऐसे संघ को अपनी सदस्यता से अलग कर सकता है। संहिता का गम्भीर रूप से और जानबूझ कर उल्लंघन करने पर, ऐसे उल्लंघनों का व्यापक रूप से प्रचार किया जायगा।

जून १९५८ से जब से इस अनुशासन संहिता को लागू किया गया दिसम्बर १९६१ तक संहिता के उल्लंघन के ७७० मामलों की रिपोर्ट विभाग को मिली। इनमें से २२६ मामलों पर किसी प्रकार की कार्यवाही करने की आवश्यकता नहीं थी क्योंकि या तो शिकायतें स्पष्ट नहीं थीं अथवा उन संघों से सम्बन्धित थीं जिन्होंने इस संहिता को स्वीकार नहीं किया था। १५० मामले राज्यों के क्षेत्र से सम्बन्धित थे इसलिए उचित कार्यवाही करने के लिए ऐसे मामलों को राज्यों के पास भेज दिया गया। शेष ३७१ मामलों में से २४२ (अर्थात् ६५%) का या तो निपटारा कर दिया गया अथवा अपराधी पक्षों का ध्यान इन उल्लंघनों की ओर दिलाया गया और उनसे मामलों को ठीक करने को कहा गया। शेष मामलों की जांच की जा रही थी। १९६० में इस प्रभाग द्वारा संहिता के भंग करने की ९९१ शिकायतें प्राप्त हुईं। इनमें से ९७५ शिकायतें श्रम कानून तथा विवाचन निर्णयों को केन्द्रीय संस्थानों में लागू न करने की थीं। संहिता भंग करने के मामलों में से ७१ प्रतिशत मामले प्रत्येक पक्ष को सूचित किए गए थे और उनके द्वारा जो कुछ भी किया था या नहीं किया था उसे ठीक कर दिया गया। शेष मामलों पर भी जांच की जा रही थी। १९६१ में केन्द्रीय कार्यान्विति तथा मूल्यांकन प्रभाग द्वारा संहिता के केन्द्रीय संस्थानों में भंग होने की ७०६ शिकायतें प्राप्त हुईं। २८% मामले प्रत्येक पक्ष के कहने पर ठीक कर दिए गए थे। १७% मामलों में शिकायतों का कोई आधार न था। २२% मामलों पर जांच की जा रही थी। प्रभाग द्वारा प्रत्येक पक्ष को यह भी सलाह दी जाती है कि वह संहिता को भंग न करे। प्रभाग ने पक्षों से अनुनय (Persuade) करके भी अनेक बार हड़तालों को रोका है और विवादों का शान्तिपूर्वक निपटारा किया है।

अनुशासन संहिता से ऐच्छिक आधार पर औद्योगिक अनुशासन स्थापित करने और मालिकों और श्रमिकों के सहयोग से औद्योगिक शांति को बनाये रखने की सरकार की वर्तमान नीति का बोध होता है। मालिकों और श्रमिकों दोनों ही पक्षों

पर इसका अच्छा प्रभाव पड़ा है तथा इससे औद्योगिक विवादों के प्रति एक नई विचारधारा उत्पन्न हो गई है। मालिकों और श्रमिकों के अनेक सभा ने तथा अन्य सरकारों ने इस संहिता के लागू होने पर सन्तुष्टि प्रकट की है। केन्द्रीय सरकार ने विभागीय उपक्रमों (Undertakings) में भी इस संहिता को लागू करने का निश्चय कर लिया गया है।

सरकार अब इससे भी अधिक एक महत्त्वपूर्ण क्षेत्र की ओर पग उठा रही है अर्थात् 'कार्य-कुशलता और कल्याण कार्य संहिता' (Code of Efficiency and Welfare) लागू करने का विचार कर रही है। केन्द्रीय श्रम व रोजगार मंत्रालय द्वारा इस संहिता का निर्माण किया गया है और इस संहिता को अनुशासन संहिता का पूरक कहा जा सकता है। इसका उद्देश्य उत्पादन, उत्पादकता व कल्याण सुविधाओं में सुधार करना है। इस कार्य कुशलता संहिता पर सितम्बर १९५९ में भारतीय श्रम सम्मेलन में विचार विमर्श हुआ। संहिता के उद्देश्यों की पूर्ति कैसे की जा सकती है उस पर शीघ्र विचार करने के लिए एक समिति की नियुक्ति की गई। इस समिति ने संहिता से सम्बन्धित सूचना एकत्रित करने के लिए एक प्रश्नावली बनाई, तथा सुझाव और टिप्पणियों के लिए मालिकों और श्रमिकों के केन्द्रीय संघों में इसे परिचालित किया। संहिता पर बंगलौर में भारतीय श्रम सम्मेलन के १९वें अधिवेशन में जो अक्तूबर १९६१ में हुआ पुनः विचार किया गया तथा इस संहिता के विषयों की भली भांति जांच करने के लिए एक त्रिदलीय समिति की नियुक्ति की गई है। यह कार्य-कुशलता तथा कल्याण कार्य संहिता अनुशासन संहिता से भिन्न है क्योंकि उसमें तो मालिकों और श्रमिकों से कई बातें न करने के लिए कहा गया है परन्तु कार्य-कुशलता और कल्याण कार्य संहिता रचनात्मक है और इसमें मालिकों व श्रमिकों से ऐसे विधायक कार्य करने को कहा गया है जिससे सौहार्द्रपूर्ण औद्योगिक सम्बन्ध बढ़ें और उत्पादन अधिक हो।

संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए शर्तें —

(Criteria for Recognition of Unions)

संघों को मान्यता प्रदान करने के लिए अनुशासन संहिता के अनुच्छेद में कुछ नियम दिए गए हैं। (१) जहाँ एक से अधिक संघ हैं वहाँ किसी संघ को मान्यता पाने के लिए यह आवश्यक है कि वह संघ पंजीकृत होने के पश्चात् कम से कम एक वर्ष तक कार्य करता रहा हो। जहाँ केवल एक संघ है वहाँ यह शर्त लागू नहीं होगी। (२) संघ की सदस्यता में सम्बन्धित संस्थान में कार्य करने वाले कम से कम १५ प्रतिशत श्रमिक होने चाहिए (सदस्यता केवल उन श्रमिकों की ही गिनी जायेगी जिन्होंने पिछले ६ महीनों में कम से कम तीन महीनों का सदस्यता शुल्क दे दिया हो)। (३) यदि किसी स्थानीय क्षेत्र के उद्योग के २५ प्रतिशत श्रमिक किसी संघ के सदस्य होते हैं तब वह संघ एक प्रतिनिधि संघ (Representative Union) के

औद्योगिक संस्थानों के प्रबन्धकों और उनमें लगे हुए श्रमिकों दोनों को स्वीकृत हों। औद्योगिक सम्बन्धों को सुधारने में इसकी महत्ता पर जोर दिया गया। इस विषय पर विचार करने के लिए सम्मेलन ने एक उप-समिति नियुक्त की। मार्च १९५८ में उप समिति ने अपनी एक बैठक में कुछ सिद्धान्तों को बनाया। इन सिद्धान्तों के अनुसार शिकायत निवारण क्रियाविधि इस प्रकार होनी चाहिए कि (१) यह चालू वैधानिक व्यवस्था की अनुपूरक हो और इस व्यवस्था का प्रयोग भी करे, (२) यह सरल और शीघ्रतापूर्ण हो तथा (३) प्रबन्धकों पर यह उत्तरदायित्व डाले कि वह ऐसे अधिकारियों को नामजद कर दें जिनसे विभिन्न स्तरों पर सम्पर्क बनाया जा सके। निजी सम्बन्धों से सम्बन्धित जो शिकायतें हों उन्हें सबसे पहिले प्रबन्ध के उस अधिकारी के सम्मुख लाना चाहिए जो उस अधिकारी के ठीक ऊपर का अधिकारी होता है जिसके विरुद्ध शिकायत की जाती है। उसके पश्चात् शिकायत को शिकायत निवारण-समिति के सम्मुख ले जाया जा सकता है। अन्य शिकायतों को जिनका सम्बन्ध रोजगार की दशाओं से होता है सर्वप्रथम प्रबन्धक द्वारा नामजद किए गए अधिकारी के सम्मुख लाना चाहिए और बाद में शिकायत निवारण समिति के सम्मुख ले जाना चाहिए। जब कोई विषय शिकायत निवारण समिति के सम्मुख सबसे पहिले आ जाता है तब उसकी अपील उच्च प्रबन्धकों के सम्मुख होनी चाहिए।

भारतीय श्रम सम्मेलन ने अपने १६ वें अधिवेशन में उप-समिति द्वारा प्रस्तुत सिद्धान्तों का अनुमोदन किया तथा प्रार्थना की कि इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखते हुए, एक सरल और नम्य (Flexible) शिकायत निवारण क्रियाविधि बनानी चाहिए। परिणामस्वरूप सितम्बर १९५८ में एक आदर्श शिकायत निवारण क्रियाविधि बनाई गई और त्रिदलीय सभा में इसको स्वीकार कर लिया गया। मालिकों के पास इसको परिचालित कर दिया गया है जिससे यदि पहले से ही उनके संस्थान में इससे उत्तम कोई शिकायत निवारण क्रियाविधि नहीं है तो वह इस क्रियाविधि को लागू कर दें।

शिकायत निवारण क्रियाविधि के प्रशासन के लिए जो व्यवस्था की जाती है उसके अन्तर्गत श्रमिकों द्वारा विभागीय प्रतिनिधियों का चुनाव होता है अथवा संघों द्वारा उन्हें मनोनीत कर दिया जाता है अथवा जहाँ कहीं मालिक मजदूर समितियाँ हैं वहाँ श्रमिकों के प्रतिनिधियों को इस व्यवस्था के लिए ले लिया जाता है। प्रबन्धकों को प्रत्येक विभाग के लिए ऐसे व्यक्ति नामजद करने होते हैं जिनके सम्मुख मामले को सर्वप्रथम रखा जा सके। इससे आशा यह होता है कि शिकायतों को विभागीय अध्यक्षों द्वारा सुना जाए। शिकायत निवारण समिति में प्रबन्धकों और श्रमिकों के सम प्रकार प्रतिनिधि होते हैं जिनकी संख्या ४ से ६ तक निर्धारित की गई है।

शिकायत निवारण क्रियाविधि में उन विभिन्न उपायों का विस्तृत रूप से उल्लेख किया गया है जिनके द्वारा कोई शिकायत सुनी जा सकती है। सर्वप्रथम शिकायत प्रबन्ध के विभागीय प्रतिनिधि के पास जाती है जिसको ४८ घण्टों के अन्दर

अपना निर्णय देना होता है। इसमें सफलता न मिलने पर पीड़ित श्रमिक विभागीय अध्यक्ष के पास विभागीय अधिकारी के साथ जा सकता है। इस कार्य के लिए तीन दिन नियत हैं। इसके ऊपर शिकायत निवारण समिति द्वारा शिकायत पर विचार किया जाता है। समिति को सात दिन के अन्दर अन्दर अपनी सिफारिशें प्रबन्धक के पास भेजनी होती हैं। शिकायत निवारण समिति की सिफारिश करने के तीन दिन के अन्दर प्रबन्धकों का अन्तिम निर्णय श्रमिक के पास भेज दिया जाता है। यदि श्रमिक को इस निर्णय से सन्तुष्टि नहीं होती तब वह निर्णय पर पुनः विचार के लिए अपील कर सकता है तथा तब प्रबन्धकों को सात दिन के अन्दर अपना निर्णय देना होता है। समझौता न होने की दशा में शिकायत को ऐच्छिक विवाचन के लिए सौंपा जा सकता है। जब तक पीड़ित श्रमिक द्वारा उच्च प्रबन्ध के अन्तिम निर्णय को अस्वीकार नहीं कर दिया जाता औपचारिक सुलह व्यवस्था का उपयोग नहीं किया जा सकता।

शिकायत निवारण क्रियाविधि में अन्य और बातों का भी उल्लेख किया गया है, उदाहरणतः जब कोई शिकायत प्रबन्धकों द्वारा दिए गए आदेश के कारण उत्पन्न होती है तब क्रियाविधि के सम्मुख आने से पूर्व उस आदेश को मानना आवश्यक है। शिकायत निवारण समिति में श्रमिकों के प्रतिनिधियों को किन्हीं भी कागजात को देखने का अधिकार है और प्रबन्धकों के प्रतिनिधियों द्वारा किसी भी गोपनीय प्रकृति के कागजातों को दिखाने से इन्कार करने का अधिकार है। उस अवधि (३० घण्टे) का भी उल्लेख है जिसमें अपील एक चरण से दूसरे चरण में की जा सकती है। शिकायत दूर करने में व्यय हुए समय के लिए भुगतान करने की भी व्यवस्था आदि है। बर्खास्तगी और मुअत्तली के विषयों की शिकायत के सम्बन्ध में श्रमिक को यह अधिकार है कि वह बर्खास्त या अलग किए जाने के एक सप्ताह के अन्दर या तो बर्खास्त करने वाले अधिकारियों के सम्मुख या प्रबन्धकों द्वारा नियुक्त किए गए उच्च अधिकारी के सम्मुख अपील कर सके।

श्रमिक प्रबन्धक सहयोग

(Labour-Management Cooperation)

प्रायः सभी देशों में औद्योगिक झगड़ों को कम करने तथा श्रमिकों द्वारा श्रम संगठनों के विरोध को कम करने के लिए श्रमिक संघों को मान्यता प्रदान किया जाता है। यह बात सत्य है कि श्रम संगठनों के प्रति मालिकों का विरोध पूर्णतया समाप्त नहीं हुआ है परन्तु फिर भी काफी सीमा तक कम हो गया है। श्रमिक संघों का मुख्य उद्देश्य यह है कि जब कभी भी मालिकों और श्रमिकों में कोई मतभेद अथवा संघर्ष हो तब वह श्रमिकों के हितों की रक्षा करें। उत्पादन एवं अर्थ-व्यवस्था की आधुनिक प्रणाली में जहाँ पूँजी और श्रम भिन्न-भिन्न व्यक्तियों में होते हैं तथा जहाँ मालिकों का मुख्य उद्देश्य लाभ कमाना है, ऐसा विवाद का होना अवश्यम्भावी है।

हाल ही के वर्षों में मालिकों और श्रमिकों के सम्बन्धों के विषय में एक नई विचारधारा देखने में आयी है और अब इस बात पर अधिक बल दिया जा रहा है कि पारस्परिक सम्बन्ध ऐसे होने चाहिएं कि संघर्ष के स्थान पर इस प्रकार सहयोग से कार्य किया जाए कि सबका हित सम्पादित हो। श्रम समस्याओं के प्रति अब मानवीय दृष्टिकोण लिया जाता है। अब श्रम को एक पदार्थ नहीं समझा जाता जिसको बाजार में खरीदा अथवा बेचा जा सके वरन् श्रमिक को 'मानव' समझा जाता है। फिलेडेलफिया की घोषणा तथा अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की कार्यवाहियों ने भी दृष्टिकोण में इस प्रकार के परिवर्तन होने में काफी योगदान दिया है। इससे श्रमिक और प्रबन्धकों के सहयोग में नए दृष्टिकोण आ गए हैं। इनके कारण अब रोजगार की संविदा के स्थान पर श्रमिकों से अब साझेदारी की संविदा की जाती है, ताकि सभी के हितों के लिए प्रत्येक पक्ष अपना-अपना योगदान दे सके।

श्रमिक प्रबन्धक सहयोग का सिद्धान्त इस बात पर आधारित है कि क्योंकि श्रमिक अपनी जीविका के लिए इस बात पर निर्भर होते हैं कि कारखाना सुचारु रूप से चालू रहे, अतः यह स्वाभाविक है कि व्यवसाय या उद्योग के मामलों में वह रुचि लें और उसके संचालन में उनका भी कुछ हाथ हो। श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग में सबसे आवश्यक बात यह है कि पारस्परिक रूप से परामर्श किया जाए तथा प्रबन्धकों की योजना, नीति और समस्याओं से सभी स्तर के कर्मचारियों को सूचित रखा जाए तथा श्रमिकों के विचारों से प्रबन्धकों को अवगत कराया जाए। इस प्रकार के परामर्श मालिक मजदूर समितियों अथवा श्रमिक प्रबन्धक समितियों के द्वारा औपचारिक रूप में अथवा कार्याङ्ग, पर्यवेक्षक और श्रमिकों के बीच वाद-विवाद व अनौपचारिक वार्ता के रूप में हो सकते हैं। इस प्रकार के सहयोग से मानव-तत्त्व की महत्ता को पूर्ण मान्यता मिलेगी तथा संस्थान के संचालन में श्रमिक और अधिक रुचि लेंगे। श्रमिकों में गैरत्व और पृथक्त्व की भावनायें समाप्त हो जायेंगी तथा श्रमिक और मालिक दोनों ही एक दूसरे को अपेक्षाकृत भली भाँति समझने का प्रयत्न करेंगे। इसका परिणाम यह होगा कि औद्योगिक शान्ति होगी अधिक कार्य-कुशलता होगी तथा अपव्यय और अनिकायतें में कमी होगी और यथासम्भव अधिकतम उत्पादन होगा।

परन्तु उस समय तक कोई श्रमिक-प्रबन्धक सहयोग सफल नहीं हो सकता जब तक कि दोनों पक्ष सच्चे हृदय से ही सहयोग करना न चाहते हों तथा दोनों पक्षों को एक दूसरे का विश्वास एवं अपेक्षा न हो। प्रबन्धकों को सभी मामलों में श्रमिकों की सलाह लेनी चाहिए तथा संस्थान से सम्बन्धित सभी मामलों से उन्हें सूचित रखना चाहिए। उनको प्रशिक्षण की सुविधायें भी देनी चाहिएं तथा अधिक उत्पादकता के कारण जो लाभ प्राप्त हो उनमें से श्रमिकों को भी भाग देना चाहिए। संयुक्त परामर्श व्यवस्था का पर इस यह नहीं होना चाहिए कि श्रमिक संघों की महत्ता कम कर दी जाए। सामूहिक सौदाकारी का कार्य श्रमिक संघों पर ही छोड़ देना चाहिए।

श्रमिक प्रबन्धक सहयोग के अनेक रूप हो सकते हैं। ऐसे सभी मामले जिनमें प्रबन्धकों द्वारा श्रमिकों का सहयोग लिया जाता है अथवा उनसे परामर्श किया जाता है श्रमिक प्रबन्धक सहयोग के अन्तर्गत आ सकते हैं। मालिक मजदूर समितियाँ, संयुक्त परामर्श समितियाँ, प्रबन्ध की संयुक्त परिषदें आदि इस सहयोग के विभिन्न रूप हैं। हाल ही के वर्षों में श्रमिक प्रबन्धक सहयोग से यह तात्पर्य लिया जाता है कि श्रमिकों का उद्योग के प्रबन्ध में भाग है।

प्रबन्ध में श्रमिकों का भाग

(Workers Participation in Management)

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में आयोजना को सफलतापूर्वक कार्यान्वित करने के लिए प्रबन्ध में श्रमिकों के अधिक साहचर्य पर जोर दिया गया है। इसमें बताया गया है कि इन उपायों से (क) उत्पादकता बढ़ेगी जिससे व्यवसाय, श्रमिकों और समाज का सामान्य हित होगा। (ख) उद्योग के संचालन और उत्पादन की प्रक्रियाओं में श्रमिकों का क्या भाग है यह वे अच्छी प्रकार से समझ सकेंगे और (ग) आत्म अभिव्यक्ति की श्रमिकों की इच्छा भी इससे संतुष्ट हो जायगी। इन सबका परिणाम औद्योगिक शान्ति, उच्च औद्योगिक सम्बन्ध और अधिक सहयोग होगा। आयोजना में सिफारिश की गई है कि इस उद्देश्य की प्राप्ति ऐसी प्रबन्ध परिषदों की स्थापना द्वारा की जा सकती है जिनमें प्रबन्धकों, तकनीशियनों तथा श्रमिकों के प्रतिनिधि हों। ऐसी प्रबन्ध-परिषदों को सभी सम्बन्धित विषयों के बारे में उचित और ठीक प्रकार से जानकारी देने की उत्तरदायित्व प्रबन्धकों का होना चाहिए जिससे परिषदें प्रभावात्मक ढंग से कार्य कर सकें। प्रबन्ध-परिषद् को यह अधिकार होना चाहिए कि वह संस्थान से सम्बन्धित विभिन्न प्रश्नों पर विचार विमर्श कर सके तथा उसके अच्छे प्रकार से संचालन के उपायों की सिफारिश कर सके। परन्तु ऐसे विषय जो सामूहिक सौदाकारी से सम्बन्धित हैं परिषद् के विचार क्षेत्र से बाहर होने चाहिए। आरम्भ में ऐसी व्यवस्था संगठित उद्योगों के बड़े-बड़े संस्थानों में प्रयोग के रूप में लागू करनी चाहिए। इस योजना के बारे में अनुभव का आधार विनिमयित होना चाहिए तथा योजना का विस्तार अन्य क्षेत्रों में उनकी पृष्ठभूमि को ध्यान में रखकर ही किया जाना चाहिए।

द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में इस सिफारिश के अनुसार भारत सरकार ने श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की एक विस्तृत योजना तैयार करने का निश्चय किया। इस कार्य को सुगम बनाने के लिए १९५६ में यूरोपीय देशों में एक अध्ययन दल भेजा गया ताकि वह दूसरे देशों में इस योजना के संचालन को स्वयं देखकर अध्ययन कर सके। अध्ययन दल की रिपोर्ट १९५७ में प्रकाशित की गई। रिपोर्ट में दूसरे देशों में प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना का वर्णन किया गया है। इस में इस बात पर विशेष जोर दिया कि भारत में इस दिशा में [illegible]

किया जाना चाहिए ताकि इस प्रकार की योजना के विभिन्न पहलुओं को श्रमिकों, प्रबन्धकों तथा पर्यवेक्षकों द्वारा ठीक प्रकार से समझा जा सके। रिपोर्ट में इस बात पर बल दिया गया है कि "संयुक्त परामर्श की स्थापना स्वयं संस्थान में ही होनी चाहिए," अर्थात् संयुक्त परामर्श का अर्थ केवल दोनों पक्षों को आपस में मिलकर बैठाना ही नहीं होना चाहिए वरन् इसका तात्पर्य यह होना चाहिए कि सभी विषयों में संयुक्त रूप से परामर्श हो। तकनीकी विशेषज्ञ एवं पर्यवेक्षक इस संयुक्त परामर्श प्रणाली के प्रधान अंग होने चाहिएं। रिपोर्ट में दृष्टिकोणों में परिवर्तन मात्र सेवे की व्यवस्था से निकट रूप में सम्पर्क बनाये रखने वाले दृढ़ आत्म-विश्वासी श्रमिक-संघों की स्थापना तथा मधुर औद्योगिक सम्बन्धों की महत्ता पर बल दिया गया है ताकि श्रमिकों की प्रबन्ध में भाग लेने की योजना सफल हो सके। श्रमिक-प्रबन्धक की संयुक्त परिषदें श्रमिक संघों की स्थानापन्न नहीं होनी चाहिएं। सामूहिक सौदाकारी के कार्य ऐसी परिषदों के क्षेत्र के बाहर होने चाहिए। इस प्रकार मजदूरी बोनस और निजी शिकायतों आदि पर ऐसी संयुक्त परिषदों द्वारा विचार नहीं किया जाना चाहिए। संयुक्त परिषदों को उदाहरणतः ऐसे प्रश्नों पर विचार करना चाहिए, जैसे (१) स्थायी आदेशों में परिवर्तन, (२) छटनी (३) विवेकीकरण के लिए प्रस्ताव, (४) संस्थान का बन्द करना या उत्पादन प्रक्रियाओं को कम करना या बन्द करना (५) नई प्रणालियों को लागू करना (६) भरती और दण्ड के लिए कार्य-विधि। परिषदों को निम्नलिखित विषयों में सूचना प्राप्त करने और सुझाव देने का अधिकार भी होना चाहिए (१) संस्थान की सामान्य आर्थिक व्यवस्था, बाजार का [illegible] उत्पादन तथा बिक्री कार्यक्रम (२) संस्थान का संगठन तथा सामान्य संचालन (३) संस्थान की आर्थिक स्थिति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियाँ (४) निर्माण और कार्य की प्रणालियाँ (५) वार्षिक तुलन पत्र व लाभ हानि लेखा तथा सम्बन्धित कागजात [illegible] आदि। इस भय को दूर करने के लिए कि परिषदों में कार्य के प्रति उदासीनता न आ जाय इन परिषदों को कुछ प्रशासनात्मक उत्तरदायित्व सौंपे जा सकते हैं उदाहरणतः (१) कल्याण कार्यक्रमों का प्रशासन (२) सुरक्षा उपायों की देखभाल (३) व्यावसायिक प्रशिक्षण तथा शिक्षार्थी योजनाओं का संचालन (४) कार्य के घण्टे और आराम के लिए अनुसूचि तैयार करना (५) छुट्टियों की अनुसूचि बनाना तथा (६) महत्वपूर्ण सुझावों के लिए पारितोषिक देना। अध्ययन-दल परिषदों के बनाने में किसी भी बन्धन अथवा अनिवार्यता के विरुद्ध था और वह केवल ऐसे विधान बनाने के पक्ष में था जिसके अन्तर्गत ऐसी परिषदों के बनाने की अनुमति मात्र मिल जाय। अगर किसी संस्थान की विभिन्न स्थानों पर विभिन्न इकाइयाँ न हों तो एक संस्थान के लिए केवल एक ही परिषद् बनाने की सिफारिश की गई थी। प्रारम्भ में बाहरी व्यक्तियों का सहयोग आवश्यक हो सकता है परन्तु उनकी संख्या सीमित ही होनी चाहिए।

अध्ययन दल की मुख्य मुख्य सिफारिशें जुलाई १९५७ में हुए भारतीय श्रम

सम्मेलन के १५ वें अधिवेशन में स्वीकृत कर ली गईं थीं । १२ सदस्यों की एक उपसमिति बनाई गयी थी जिसका कार्य यह था कि इस विषय में और विस्तार से जांच पड़ताल करे कि प्रारम्भ में ऐच्छिक आधार पर कुछ चुने हुए संस्थानों में प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना लागू हो सकती है या नहीं । इस उप समिति ने सिफारिश की कि पहले यह योजना सार्वजनिक व निजी क्षेत्र के चुने हुए ५० औद्योगिक संस्थानों में चलाई जानी चाहिए। उन संस्थानों में जहां यह योजना शुरू की जा सकती है तथा उन संस्थानों की जो इस योजना में सहयोग देने को तैयार थे एक सूची बनाई गई । यह निश्चय किया गया कि परीक्षण हेतु जो इकाइयां छांटी जांय उनको निम्न आधार पर चुना जाय (१) उनमें अच्छी प्रकार से स्थापित और शक्तिशाली श्रमिक संघ हों (२) संस्थान में कम से कम ५०० श्रमिक कार्य करते हों (३) मालिक और श्रमिक संघ दोनों ही केन्द्रीय संगठनों के सदस्य हों (४) संस्थान की इस बात में कुछ प्रसिद्धि हो कि उसमें औद्योगिक सम्बन्ध सौहार्दपूर्ण रहे हैं (५) दोनों पक्ष इस योजना को सहयोग की भावना से लागू करने के लिए तैयार हों। उप-समिति ने यह भी निर्णय किया कि एक पूरे संस्थान के लिए केवल एक परिषद् होनी चाहिए श्रमिकों के प्रतिनिधियों को श्रमिक संघों द्वारा मनोनीत किया जाना चाहिए तथा श्रमिकों के प्रतिनिधियों में बाहरी व्यक्तियों की संख्या २५ प्रतिशत से अधिक नहीं होनी चाहिए । संयुक्त परिषद में सदस्यों की संख्या १२ से अधिक नहीं होनी चाहिए। संयुक्त परिषद् की बैठकें भी कार्य के घन्टों के दौरान में ही होनी चाहिएं।

नई देहली में ३१ जनवरी एवं १ फरवरी १९५८ को हुए श्रमिक प्रबन्धक सहयोग के सेमिनार में भी उप-समिति की सिफारिशों पर विचार किया गया । केन्द्रीय श्रम व रोजगार मंत्री श्री गुलजारी लाल नन्दा ने इस सेमिनार की अध्यक्षता की। इसमें मालिकों श्रमिकों व सरकार के १०० से भी अधिक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। इसमें से उन ३० औद्योगिक इकाइयों के प्रतिनिधि भी थे जिन्होंने प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना को स्वीकृत कर लिया था या पहले ही लागू कर चुके थे।

सेमिनार में इस बात पर मतैक्य था कि संयुक्त परिषदों में मालिकों और श्रमिकों के प्रतिनिधियों की संख्या बराबर बराबर होनी चाहिए तथा यह संख्या १२ से अधिक भी नहीं होनी चाहिए ताकि परिषदों का काम प्रभावशाली हो और उनका प्रबन्ध भी ठीक प्रकार से हो सके। छोटे संस्थानों में सदस्यों की संख्या ६ से कम नहीं होनी चाहिए। सेमिनार में इस बात पर भी सब सहमत थे कि जो भी निर्णय लिए जाएं वह सर्व-सम्मति से हों।

संयुक्त परिषदों की स्थापना के लिए एक आवश्यक बात यह है कि संस्थान में अच्छी प्रकार से स्थापित और शक्तिशाली श्रमिक संघ हों। संयुक्त परिषदों में प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर भी सेमिनार में विस्तारपूर्वक विचार किया गया था । एक

बात पर सब सहमत थे कि श्रमिकों के प्रतिनिधि स्वयं श्रमिक ही होने चाहिएं। परन्तु जहाँ श्रमिक संघ यह अनुभव करें कि बाहरी व्यक्ति को भी सम्मिलित किया जाना चाहिए उस स्थिति में ऐसे बाहरी सदस्यों की संख्या १ (अर्थात् २५% से अधिक नहीं) तक सीमित होनी चाहिए और पारस्परिक रूप से सहमत होने पर अधिक से अधिक यह सख्या दो हो सकती है। संयुक्त परिषदें इकाई आधार पर स्थापित की जानी चाहिए। जहाँ एक संस्थान में अनेक विभाग हैं वहाँ के लिए सेमिनार ने यह निर्णय किया कि संयुक्त परिषदों में प्रतिनिधित्व का प्रश्न संघ और संस्थान पर ही छोड़ देना चाहिए। एक ही क्षेत्र और एक ही प्रबन्ध के अन्तर्गत यदि विभिन्न संस्थान हों तो उनके सम्बन्ध में यह निर्णय किया गया कि योजना को प्रथम तो इकाई आधार पर प्रारम्भ करना चाहिए तथा तत्पश्चात् जब कुछ अनुभव हो जाए तब एक केन्द्रीय परिषद की स्थापना की जा सकती है।

प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने के लिए उप-समिति द्वारा तैयार किए गए आदर्श समझौते पत्र पर भी सेमिनार में विचार किया गया। इस समझौते पत्र में इस बात की व्यवस्था की गई है कि संयुक्त परिषदों को, अन्य बातों के अतिरिक्त प्रबन्धकों से संस्थान की सामान्य आर्थिक स्थिति उत्पादन और बिक्री कार्यक्रम वार्षिक तुलन पत्र व लाभ हानि के लेखे तथा सम्बन्धित कागजात व संस्थान के विकास और विस्तार के लिए दीर्घकालीन योजनाओं के विषय में सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार होगा। कुछ वाद-विवाद के पश्चात् यह निर्णय किया गया कि संयुक्त परिषदों को न केवल ऐसी सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार होना चाहिए वरन् उन पर विचार करने और सुझाव देने का अधिकार भी होना चाहिए। इस बात पर भी सहमति प्रकट की गई कि संयुक्त परिषद् को न केवल सदस्यों को सूचना और कागज-पत्र देने की व्यवस्था करनी चाहिए वरन् उनकी सूचना भी यथा सम्भव शीघ्र से शीघ्र देनी चाहिए। कुछ विशेष मामलों में सूचना प्रति तिमाही दी जानी चाहिए।

सेमिनार द्वारा अन्य जिन प्रश्नों पर विचार किया गया वह एक तो ऐसी व्यवस्था के सम्बन्ध में थे जिससे संयुक्त परिषदों तथा श्रम व रोजगार मन्त्रालय के बीच सम्पर्क स्थापित किया जा सके तथा उन संस्थानों में प्रशिक्षण कार्यक्रमों के सम्बन्ध में थे जहाँ प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना लागू थी। सेमिनार को इस बात का दृढ़ विश्वास था कि संयुक्त परिषदें केवल पारस्परिक विश्वास और मित्र भाव के वातावरण में ही उन्नति कर सकती हैं।

बाद में यह निर्णय किया गया कि प्रबन्ध में श्रमिकों का जो भी भाग हो वह संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के रूप में हो। इस परिषद के तीन पृथक कार्य होंगे (क) ऐसे कार्य जिनके अन्तर्गत परिषद् का उत्तरदायित्व सलाह देना होगा उदाहरणार्थ निम्न विषयों में (१) स्थायी आदेशों का प्रशासन, (२) उनमें संशोधन, (३) उत्पादन की नई प्रणालियों को लागू करना जिससे कर्मचारियों को पुनः रोजगार पर

समाया जा सके तथा (४) कुछ प्रक्रियाओं में कमी कर देना उन्हें कुछ समय के लिए रोक देना अथवा उन्हें पूर्णतः बन्द कर देना आदि। (ख) ऐसे कार्य जिनके अन्तर्गत परिषदों को सूचनाओं को प्राप्त करने का अधिकार होगा उदाहरणतः निम्न विषयों में, (१) संस्थान की सामान्य चालू रहने की योग्यता (२) बाजार की दशा उत्पादन तथा बिक्री कार्यक्रम (३) संस्थान का संगठन तथा सामान्य सञ्चालन (४) उत्पादन और कार्य की प्रणालियाँ (५) विस्तार तथा इसी प्रकार के कार्यक्रमों की योजना आदि, तथा (ग) ऐसे कार्य जिनके अन्तर्गत परिषद का दायित्व प्रशासनात्मक होगा उदाहरणतः निम्न विषयों में (१) कल्याण कार्य (२) सुरक्षा कार्यक्रम (३) व्यावसायिक प्रशिक्षण और शिक्षार्थी योजनाएं (४) कार्य सूची को तैयार करना तथा (५) पारितोषिकों का देना आदि।

इस प्रकार मजदूरी बोनस काम की सामान्य दशायें आदि के प्रश्नों पर मालिकों और श्रमिक सभा के बीच वार्ता के लिए काफी क्षेत्र छोड़ दिया गया है। निजी शिकायतों को भी संयुक्त परिषदों के क्षेत्र में सम्मिलित नहीं किया गया है क्योंकि यह सम्भव है कि ऐसी शिकायतों के कारण श्रमिकों व प्रबन्धकर्ताओं के बीच सहयोग के वातावरण पर बुरा असर पड़े।

इसके पश्चात् ५० इकाइयों में इन निर्णयों को लागू करने तथा संयुक्त प्रबन्ध परिषदों को स्थापित करने के प्रयत्न किए गए। चार संस्थान—अर्थात् टाटा लोहा व इस्पात कम्पनी जमशेदपुर, सिम्पसन ग्रुप ऑफ कम्पनीज मद्रास, मोदी शुगर और कताई मिल्स लि० मोदीनगर, (उ० प्र०) तथा राजकीय परिवहन मद्रास—अपने श्रमिकों को प्रबन्ध कार्यों में भाग देने के लिए पहिले से ही सहमति प्रदान कर चुके थे। तीन संस्थानों में विभागीय उत्पादन समितियों की भी स्थापना की जा चुकी थी अर्थात् (१) टाटा लोहा व इस्पात क० (२) मोदी कताई व बुनाई मिल्स तथा (३) इंडियन एल्यूमिनियम वर्क्स लि० बेलूर पश्चिमी बंगाल। टाटा लोहा व इस्पात क० जमशेदपुर तथा इंडियन एल्यूमिनियम वर्क्स बेलूर पश्चिमी बंगाल में योजना के विषय में त्रिदलीय दलों द्वारा का सम्पादनों की रिपोर्ट भी प्रकाशित की जा चुकी है। श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने के विषय में इन दो संस्थानों में जो प्रगति हुई है उसका उल्लेख इन रिपोर्टों में किया गया है।

सितम्बर १९५८ में केन्द्रीय श्रम मंत्रालय द्वारा प्रकाशित एक टिप्पणी में कहा गया है कि श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने के सम्बन्ध में जो भी प्रगति हुई है वह निराशाजनक है। मार्च १९६० में भी गुलजारी लाल नन्दा ने कहा था कि वह इस योजना की प्रगति से सन्तुष्ट नहीं थे। मार्च १९६० तक केवल २१ इकाइयों ने योजना को लागू किया था जिनमें से १३ तो सरकारी क्षेत्र में थीं तथा ८ निजी क्षेत्र में। योजना को लागू करने वाली इकाइयों में संयुक्त परिषदों की कार्यवाहियों के विषय में कार्य ठोस सूचनाएँ प्राप्त की हैं और यह भी इस योजना की सफलता में परामर्श किया है जिससे श्रम मंत्रालय ने इन परिषदों को सहायता

देने के लिए नियुक्त किया है। इस मन्द प्रगति का कारण दोनों पक्षों में सन्देह और भय की भावना है। श्रमिक संघों में पारस्परिक प्रतिस्पर्धा है तथा श्रमिक सघ संगठन में अनेक दोष हैं जिनका उल्लेख भारतीय श्रमिक संघ आन्दोलन के अध्याय में किया जा चुका है। श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजना उस समय तक सफल नहीं हो सकती जब तक कि शक्तिशाली व सुदृढ़ श्रमिक सघ न हों जो इस योजना के प्रति सहयोग का दृष्टिकोण अपनाने को तैयार हों। अधिकतर श्रमिक अशिक्षित होते हैं तथा प्रबन्ध में भाग लेने के विषय पर उनके विचार अस्पष्ट होते हैं। आधुनिक औद्योगिक संस्थानों में प्रबन्ध के लिए तकनीकी प्रशासनात्मक तथा वित्तीय क्षेत्रों में कुशल ज्ञान की आवश्यकता पड़ती है जिसका इस समय श्रमिकों में अभाव है। यदि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों में बाहरी व्यक्ति श्रमिकों का प्रतिनिधित्व करते हैं तब स्थिति और भी बुरी होगी क्योंकि बाहरी व्यक्ति श्रमिक संघवाद और औद्योगिक सम्बन्धों को तो समझ सकता है परन्तु वह प्रबन्ध तथा उद्योग की समस्याओं को नहीं समझ सकता। इनको तो कारखाने या संस्थान के अन्दर कार्य करने वाला श्रमिक ही समझ सकता है। मालिकों को भी श्रमिकों में पूर्ण विश्वास नहीं होता और वह उन्हें व्यापार के ऐसे भेद भी नहीं बताते जिनको ज्ञात किये बिना श्रमिक प्रबन्ध में प्रभावात्मक रूप में भाग नहीं ले सकते। बहुत से मालिक अपने अधिकारों और प्राधिकारों को छोड़ने के लिए तैयार नहीं हैं और जहां कहीं भी यह योजनायें अपनाई गई हैं वह इस कारण नहीं कि मालिकों को उनमें कोई विशेष रुचि है वरन् कई स्थानों पर श्रमिकों को केवल बहकाने के लिए यह योजनायें लागू की गई हैं। कई श्रमिक संघों को इस बात का भी डर है कि यदि श्रमिकों ने इस सम्बन्ध में प्रबन्धकों को सहायता दी तो वह वर्ग संघर्ष की विचारधारा को समाप्त कर देंगे जिस विचारधारा में कई श्रमिक संघ अपना विश्वास रखते हैं। निदेशक मंडल में भी श्रमिकों के प्रतिनिधित्व के प्रश्न पर कई बार विचार विमर्श हुआ है। परन्तु इस प्रकार का प्रतिनिधित्व सहायक सिद्ध नहीं होगा। साधारणतः निदेशक मण्डल ऐसे प्रश्नों पर विचार करता है जिसमें श्रमिकों के प्रतिनिधियों को कोई विशेष रुचि नहीं होती और वह बैठकों में खामोश देखने वालों की भांति बैठे रहते हैं।

श्री वी० वी० गिरि का कथन है कि यदि अपरिपक्व अवस्था में श्रमिकों को प्रबन्ध में सम्मिलित किया जायेगा तब क्या तो प्रबन्धकों द्वारा उन्हें प्रभावपूर्ण रूप से चुप कर दिया जायेगा या यदि श्रमिक कठोर प्रवृत्ति के हैं तो प्रबन्धकों के प्रति उनका रवैया बाधा पहुंचाने वाला और उग्र प्रवृत्ति का होगा चाहे उनके इरादे कितने ही अच्छे क्यों न हों। इनमें से कोई भी स्थिति श्रम प्रबन्ध के हित में नहीं होगी और उत्पादन पर भी अच्छा प्रभाव नहीं डालेगी। अतः श्री गिरि का कहना है कि आवश्यकता तो इस बात की है कि श्रमिकों की समस्याओं पर प्रजातन्त्रात्मक तथा मानवीय रूप से विचार किया जाए।

श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजना पर विचार के लिए बनाए गए

अध्ययन दल ने दूसरे देशों में योजना के संचालन का भी थोड़ा सा उल्लेख किया है। श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की व्यवस्था प्रत्येक देश में भिन्न भिन्न है। ग्रेट ब्रिटेन और स्वीडन में श्रमिकों का प्रबन्ध में भाग संयुक्त संस्थाओं के द्वारा होता है। इन संस्थाओं का परामर्शदात्री स्तर होता है और यह पारस्परिक समझौते द्वारा स्थापित की जाती हैं जिसके पीछे कोई कानूनी बन्धन नहीं होता। ग्रेट ब्रिटेन में सार्वजनिक व निजी क्षेत्रों में संयुक्त परामर्शदात्री संस्थायें स्थापित की गई हैं। (देखिए पृष्ठ २०६–२०७)। परन्तु वहां श्रमिकों में इस सम्बन्ध में कोई विशेष उत्साह नहीं है क्योंकि वहां श्रमिकों में उद्योग में भाग लेने की सक्रिय भावना नहीं पाई जाती। स्वीडन में संयुक्त उद्यम परिषदें हैं उनको तुलन पत्र लाभ तथा हानि के लेखे व प्रशासन और लेखा परीक्षकों की रिपोर्टों को जांच करने का अधिकार है। बेल्जियम फ्रांस और जर्मनी में प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना को वैधानिक मान्यता प्राप्त है। फ्रांस और जर्मनी में तो श्रमिकों का प्रतिनिधित्व प्रबन्धक मण्डल में भी होता है। बेल्जियम में संयुक्त कार्य परिषदों तथा फ्रांस में मालिक मजदूर समितियों की स्थापना की गई है। जर्मनी में मालिक मजदूर परिषदें हैं। दूसरी ओर युगोस्लेविया है जहां निर्वाचित परिषद तथा प्रबन्ध मण्डल के माध्यम से संस्थानों को स्वयं श्रमिकों द्वारा संचालित किया जाता है। १६५० में यूगोस्लाविया विधान मण्डल द्वारा एक नियम पारित किया गया (Basic Law on Managements of State Economic Enterprises and Higher Economic Association by the Workers Collectives) जिसके अन्तर्गत कारखाना खान रेलवे तथा अन्य सभी उपक्रमों में प्रबन्ध को श्रमिक परिषदों को सौंप दिया गया है। अब केवल यह परिषद् ही उद्योगों की प्रबन्धक हैं।

इस सम्बन्ध में विभिन्न देशों में अनेक अन्य विषयों में भी भिन्नता पाई जाती है पीसे कि प्रबन्ध में भाग लेने वाली व्यवस्था द्वारा किन किन मामलों पर विचार किया जाय इन मामलों पर किस सीमा तक उनका अधिकार हो तथा किस प्रकार श्रमिकों के प्रतिनिधियों को चुना जाए, आदि। उदाहरणार्थ फ्रांस में मालिक मजदूर समितियों के कार्य ग्रेट ब्रिटेन की तरह यद्यपि साधारणतया परामर्शदात्री ही हैं तथापि कल्याण योजनाओं का प्रशासन भी साधारणतः इन्हीं के द्वारा किया जाता है। अधिकांश प्रतिनिधियों का निर्वाचन प्रत्यक्ष सभी श्रमिकों द्वारा गुप्त मतदान से किया जाता है परन्तु कुछ देशों में निर्वाचन श्रमिक संघों द्वारा बनाई हुई उम्मीदवारों की सूची तक ही सीमित होता है। श्रमिक संघों द्वारा मनोनीत किए जाने के [illegible] भी मिलते हैं। यी मुनकारी साम [illegible] का कहना है कि कुछ [illegible] देशों में श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की योजना के संचालन का उन्होंने जो अध्ययन किया है उससे दो मुख्य निष्कर्ष निकलते हैं। प्रथम तो यह है कि प्रबन्धकर्ताओं और श्रमिकों के बीच परामर्श यद्यपि कई प्रकार से होता है तथापि उनकी सफलता के लिए [illegible] महत्वपूर्ण तथ्य है वह यह है कि परामर्श उनकी वास्तविक नहीं है। दूसरे इस [illegible]

कभी प्रयत्न नहीं किया जाता कि उपयुक्त परामर्श व्यवस्था की स्थापना द्वारा श्रमिक वर्गों की सद्भावना की जाए।

इसमें तो कोई सन्देह नहीं है कि हम दूसरे देशों के अनुभवों से लाभ उठा सकते हैं परन्तु हमें यह न भूलना चाहिए कि हमारे देश की परिस्थितियां दूसरे देशों से भिन्न हैं। अतः हमें ऐसी योजना बनानी चाहिए जो हमारी परिस्थितियों और आवश्यकताओं के अनुरूप हो। श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने के विषय पर कई ओर ध्यान आकर्षित हुआ है। इस समस्या पर विभिन्न स्तरों पर विचार विमर्श किया जा रहा है। भारत में ३१ दिसम्बर १९५८ से २ जनवरी १९५९ तक जो द्वितीय अखिल भारतीय श्रम अर्थशास्त्र सम्मेलन हुआ था, उसमें भी इस विषय पर विचार किया गया था। सम्मेलन की अध्यक्षता श्री वी० वी० गिरि ने की थी। केन्द्रीय रोजगार व श्रम मंत्रालय के संयुक्त सचिव श्री के० एन० सुब्रामनियम श्रमिकों के प्रबन्ध म भाग लेने वाले विषय के अनुभाग के प्रधान थे। जहां तक 'भाग लेने' के ठीक ठीक अर्थ का सम्बन्ध है, यह मत व्यक्त किया गया था कि 'भाग लेने' की कोई अनम्य और निश्चित व्याख्या नहीं की जानी चाहिए परन्तु ऐसी व्याख्या नम्य होनी चाहिए। योजना लागू होने की प्रारम्भिक अवस्था में इसका अर्थ केवल परामर्श हो सकता है परन्तु इसके पश्चात् इसको धीरे धीरे श्रमिकों के प्रबन्ध में भाग लेने की उच्चतम सीमा तक पहुंचाया जा सकता है तथा संयुक्त प्रबन्ध परिषदों को अनेक काम सौंपे जा सकते हैं। संयुक्त परिषदों में बाह्य व्यक्तियों, कोरमम तथा मध्यस्थों की सदस्यता के प्रश्न पर तथा एच्छिक आधार पर योजना के लागू करने के प्रश्न पर कुछ मतभेद था। अन्य मामलों में सम्मेलन के सदस्य अध्ययन दल की तथा उप-समिति की सिफारिशों से लगभग सहमत थे। प्रधान ने अन्त में यह कहा कि इस योजना को पूर्ण सहयोग और सोच विचार करके तथा उचित प्रकार से लागू करके हमें इसके परिणामों को देखना चाहिए। हम यह आशा नहीं करनी चाहिए और न ही यह उद्देश्य होना चाहिए कि योजना के परिणाम कोई बहुत बड़े निकलेंगे। यदि इस योजना से सफलता प्राप्त करनी है तो हम इसको धीरे-धीरे चलाना चाहिए। और अगला कदम उठाने से पूर्व पहले कदम को ठीक प्रकार से समायोजित कर लेना चाहिए। श्री वी० वी० गिरि ने इस बात पर भी जोर दिया कि श्रमिकों का प्रबन्ध में भाग लेना वास्तविक अर्थों में लाभदायक तब ही सिद्ध होगा जब श्रमिक और प्रबन्धक दोनों में यह भावना आ जाए कि उन्हें कन्धे से कन्धा मिलाकर कार्य करना है और अपने अपने उत्तरदायित्वों को ठीक-ठीक समझना है। दोनों पक्षों को यह समझना चाहिये कि वह एक ऐसी औद्योगिक प्रणाली में सहभागी हैं, जो समाज को आवश्यक वस्तुयें प्रदान करती है और इसलिए जनता के हितों की रक्षा करना उनका मुख्य कर्म है।

संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के कार्यों से जो अनुभव प्राप्त हुआ है उससे विदित होता है कि प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने के विचार की अधिक से अधिक सराहना

की जा रही है। हाल ही में सितम्बर १९६२ में श्री गुलजारी लाल नन्दा ने दक्षिणी रोडवेज प्राइवेट लिमिटेड में संयुक्त प्रबन्ध परिषद् का उद्घाटन करते हुए कहा है कि प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना का काम बहुत उत्साहवर्धक तथा प्रशंसनीय रहा है तथा सरकार की श्रम नीति में यह योजना एक महत्वपूर्ण स्थान रखती है।

परन्तु इस प्रकार की नई योजना के सम्बन्ध में यह अवश्यम्भावी है कि प्रारम्भ की कुछ कठिनाइयों को दूर करने में तथा आवश्यक प्रारम्भिक बातों को पूरा करने में समय का व्यवधान पड़ जाए। इस बात की आवश्यकता अनुभव की गई कि इस प्रश्न पर व्यापक रूप से फिर से विचार किया जाए। तथा इस योजना को विस्तृत रूप से कार्यान्वित करने में जो कठिनाइयाँ आ रही हैं उन्हें दूर करने के लिए उपाय सोचे जाएं। प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग पर द्वितीय सेमिनार ८ व ९ मार्च १९६० में हुआ जिसमें सारी स्थिति पर पुनर्विलोकन किया गया। इस सेमिनार में जिन्होंने भाग लिया उन्होंने संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के कार्य के बारे में परस्पर अपने अनुभव बताए। तथा उन कठिनाइयों का उल्लेख किया जो योजना के प्रारम्भिक चरणों में उनके सामने आईं, और यह बताया कि उन कठिनाइयों को दूर करने के लिए क्या पग उठाए गए थे। इस योजना के तीव्र गति से विस्तार करने के लिए सेमिनार के मुख्य सुझाव निम्नलिखित थे —(१) केन्द्र में योजना की प्रगति के लिए जो व्यवस्था है उसे और दृढ़ किया जाए और इस प्रकार की व्यवस्था राज्यों में भी की जाए, (२) विभिन्न संस्थानों में संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के कार्यों के बारे में सूचना एकत्रित करने तथा उसके प्रसार के लिए उपयुक्त व्यवस्था की जाए (३) केन्द्र में एक त्रिदलीय समिति की स्थापना की जानी चाहिए जिससे समय समय पर इस योजना की प्रगति का पुनर्विलोकन किया जा सके और परिषदों के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों का पता लग सके तथा उन्हें दूर करने के उपायों का सुझाव दिया जा सके।

केन्द्रीय सरकार ने प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग लेने की योजना की प्रगति और विस्तार के लिए तथा योजना से सम्बन्धित सब बातों की देखभाल के लिए श्रम तथा रोजगार मंत्रालय के अन्तर्गत एक विशेष प्रभाग की स्थापना की है। मालिकों और श्रमिकों के केन्द्रीय संगठनों से यह प्रार्थना की गई है कि वह ऐसी उपयुक्त तथा अपने से सम्बद्ध इकाइयों के नामों का सुझाव दें जहाँ संयुक्त प्रबन्ध परिषदें बनाई जा सकती हैं। केन्द्रीय सरकारों से भी इस योजना के लागू करने और विस्तार करने से सम्बन्धित बातों की देखभाल के लिए उपयुक्त व्यवस्था करने के लिए कहा गया है। राजस्थान, उड़ीसा, मद्रास, पश्चिमी बंगाल तथा पंजाब में इस प्रकार की व्यवस्था कर दी गई है। सरकारी क्षेत्र में इस योजना के विस्तार के लिए विशेष पग उठाए जा रहे हैं। सभी मंत्रालयों का पूर्ण रूप से सहयोग प्राप्त करने के लिए फरवरी १९६१ में केन्द्रीय मंत्रियों की एक सभा हुई थी और इसमें यह निश्चय किया गया था कि मंत्रालय स्तर पर इस योजना की प्रगति का समय समय पर पुनर्विलोकन किया जाए। योजना की प्रगति का अध्ययन तीन महीने बाद पुनर्विलोकन करने के

लिए एक विशेष समिति की भी स्थापना कर दी गई। सेमिनार में की गई सिफारिश के अनुसार प्रबन्ध में श्रमिकों के भाग से सम्बन्धित एक त्रिदलीय समिति की भी स्थापना की जा चुकी है। इसका उद्देश्य यह है कि संयुक्त प्रबन्ध परिषदों को योजना से सम्बन्धित सभी बातों पर सलाह दे और मार्ग प्रदर्शन करे तथा उनसे सम्बन्धित सूचना के एकत्रित करने और प्रसार करने की व्यवस्था करे और संयुक्त रूप से सलाह करने के कार्यक्रम को तीव्रगति से लागू करने की सम्भावनाओं की खोज करे। इस समिति की पहली सभा पहली मई १९६१ को हुई। इसमें यह निश्चय किया गया कि श्रमिकों के शिक्षा सम्बन्धी कार्य क्रम को तीव्रगति से लागू करना चाहिए ताकि श्रमिक अधिक उत्तरदायित्वों का बोझ उठाने के योग्य हो सकें। प्रबंधकों को संयुक्त प्रबन्ध परिषदों के कार्यों से अवगत कराने के लिए सेमिनार भी आयोजित किए जाने चाहिए।

मार्च १९६१ के अन्त तक १२ उद्योगों में विभिन्न इकाइयों में २८ संयुक्त प्रबंध परिषदें स्थापित हो चुकी थीं। इनमें से ११ सरकारी क्षेत्र में और १८ निजी क्षेत्र में थीं। २३ इकाइयों में संयुक्त प्रबंध परिषदों के कार्यों का मूल्यांकन करने के लिए अध्ययन भी किए जा चुके थे।

श्रम के क्षेत्र में अनुसन्धान —(Research in the Field of Labour)

श्रम क्षेत्र में कार्य करने के मार्ग में एक बड़ी बाधा यह पड़ती है कि श्रम से सम्बन्धित सूचनायें बहुत अपर्याप्त हैं। इस बात का अनुभव करते हुए द्वितीय पंचवर्षीय आयोजना में पर्याप्त आँकड़े प्राप्त करने के लिए अनेक सर्वेक्षण योजनाओं की मंजूरी दी गई थी। द्वितीय आयोजना अवधि में तीन महत्वपूर्ण निम्नलिखित जाँच की गई थीं (१) द्वितीय कृषि श्रमिक पूछताछ (देखिए पृष्ठ ७२८-२९) (२) मजदूरी गणना (देखिए पृष्ठ ४२१) तथा (३) पारिवारिक बजट सम्बन्धी पूछताछ (देखिए पृष्ठ ४९२-९३)। आयोजना आयोग की अनुसन्धान कार्यक्रम समिति जो विश्वविद्यालयों और अन्य संस्थानों द्वारा अनुसन्धान व अन्वेषण कार्यों के लिए वित्तीय सहायता प्रदान करती है, श्रम अनुसन्धान के विषय में भी अधिक रुचि ले रही है और *श्रम अनुसंधान* के लिए इसने एक विशेष उपसमिति भी बनाई है। श्रम से सम्बन्धित ऐसे विषयों पर जिन पर यह समिति अनुसन्धान अर्थात् अन्वेषण योजनाओं की स्वीकृति दती है निम्न प्रकार हैं (क) कुछ चुनी हुई *औद्योगिक इकाइयों में औद्योगिक सम्बन्धों के विषय में अध्ययन। (ख) प्रोत्साहन* योजनाओं तथा विभिन्न उद्योगों में मजदूरी भुगतान प्रणालियों का अध्ययन। (ग) विभिन्न उद्योगों में गैर मजदूरी लाभ (घ) किसी उद्योग या क्षेत्र में मजदूरी का स्वरूप (ङ) औद्योगीकरण, स्वचालितीकरण तथा आधुनिकरण से श्रमिकों की अभिवृत्ति (Attitude) और उनकी आय पर जो प्रभाव पड़ा है उसका कुछ विशेष चुने हुए उद्योगों में मूल्यांकन।

श्रम विषयों पर अनुसंधान कार्यक्रमों का समन्वय करने तथा उनकी प्रगति

पर विचार करने के लिए नई देहली में २२ सितम्बर १९६० को एक श्रम अनुसंधान सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन की सिफारिशों के परिणाम स्वरूप श्रम अनुसंधान पर एक केन्द्रीय समिति की नियुक्ति की गई है। इस समिति के सदस्य सरकार, मालिकों व श्रमिकों के संगठनों, श्रम अनुसंधान विषय में रुचि लेने वाले विश्वविद्यालयों तथा अन्य संस्थानों के प्रतिनिधि हैं। इस समिति का कार्य यह है कि श्रम अनुसंधान क्षेत्र में जो वर्तमान संस्थाएं काम कर रही हैं उनका तथा उनके साधनों का सर्वेक्षण करे तथा विभिन्न संस्थानों में श्रम अनुसंधान योजनाओं का नियमन करे ताकि अति-व्यापकता (Overlapping) न हो पाए, श्रम क्षेत्र में अनुसंधान को बढ़ावा दे आदि आदि। जुलाई १९६१ में इस समिति ने बम्बई में एक केन्द्रीय श्रम अनुसंधान संस्था स्थापित करने का निश्चय किया जिसका उद्देश्य यह होगा कि श्रम समस्याओं पर वस्तुनिष्ठ (Objective) तथा निष्पक्ष ढंग से सूचनाएं प्राप्त हो सकें। इस योजना में वित्तीय सहायता सरकार से प्राप्त होगी तथा दूसरे संस्थानों से भी सहायता प्राप्त हो सकती है। इस आयोजना में 'फोर्ड फाउंडेशन' ने भी अधिक रुचि दिखाई है। इस समिति ने इस बात का भी निश्चय किया है कि विभिन्न संस्थानों में जो अनुसंधान हो रहे हैं उनकी सूचना एकत्रित करने के लिए तत्काल पग उठाए जाएं। श्रम अर्थशास्त्र में अनुसंधान के विषय पर अखिल भारतीय श्रम अर्थशास्त्र परिषद् के चौथे वार्षिक सम्मेलन में जो दिसम्बर १९६० में चण्डीगढ़ में हुआ विचार विमर्श किया गया। इस सम्मेलन में निर्णय के अनुसार ११ से १८ जून १९६१ तक पूना में श्रम अर्थशास्त्र में अनुसंधान की पद्धति पर एक सेमिनार आयोजित किया गया।

तीसरी पंचवर्षीय आयोजना अवधि में श्रम अनुसंधान क्षेत्र के कार्यक्रमों को अधिक विस्तृत करने का सुझाव है। तीसरी आयोजना में यह भी सुझाव है कि श्रम अनुसंधान का समन्वय करने के लिए एक छोटी केन्द्रीय समिति की नियुक्ति की जाए; इसके अतिरिक्त सरकारी क्षेत्र के बाहर श्रम सम्बन्धी मामलों पर अनुसंधान करने के लिए संस्थानों को सुविधाएं देने का विचार है।

कुछ नवीनतम तथ्य तथा आंकड़े —

(क) श्रमिक शिक्षा कार्यक्रम के अन्तर्गत (देखिए पृष्ठ ११७–१८) केन्द्रीय श्रमिक शिक्षा बोर्ड ने अब तक ११ क्षेत्रीय श्रमिक शिक्षा केन्द्र खोले हैं जिनमें से १ में श्रमिकों को केन्द्र में ही रखा जाता है अर्थात् १ केन्द्र निवासी (Residential) केन्द्र है। चौदहवां केन्द्र जमशेदपुर में खोला जा रहा है। बोर्ड ने अब तक ५ शिक्षक प्रशासकों के कोर्स चलाए हैं। जिनमें १३५ शिक्षक प्रशासकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका है। अक्तूबर १९६१ के अन्त तक १५०२ श्रमिक शिक्षकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका था तथा २९२ प्रशिक्षण पा रहे थे। इसी तिथि तक १७०८९ श्रमिकों को प्रशिक्षण दिया जा चुका था तथा ६,२५४ श्रमिक प्रशिक्षण पा रहे थे।

(ग) अप्रैल १९६२ में रोजगार दफ्तरों की संख्या ३४१ थी और इनके

अतिरिक्त १६ विश्वविद्यालय रोजगार ब्यूरो भी स्थापित किए जा चुके थे। यह रोजगार ब्यूरो निम्नलिखित विश्वविद्यालयों में थे अलीगढ़ इलाहाबाद, कलकत्ता देहली लखनऊ, त्रिवेन्द्रम् वाराणसी, अन्नामलै गोरखपुर, जबलपुर, मैसूर, रुड़की सागर, उज्जैन गोहाटी तथा ग्वालियर। (पृष्ठ ४६ देखिए)

(ग) गोरखपुर श्रम संस्था का प्रशासन पहली अप्रैल १९६१ से रोजगार दफ्तरों के निदेशालय को सौंप दिया गया है। कोयला खानों के लिए भी ६ रोजगार दफ्तर खोल दिए गए हैं जिनमें से ३ मध्य प्रदेश में हैं, २ पश्चिमी बंगाल में और १ बिहार में। अब श्रमिक गोरखपुर वाले के बजाए इन रोजगार दफ्तरों में स्वयं को भर्ती के लिए पंजीकृत करा सकते हैं। (देखिए पृष्ठ ४६)

(घ) दिसम्बर १९६१ के अन्त तक रोजगार दफ्तरों के चालू रजिस्टर में दर्जित बेरोजगारों की संख्या ५,१०,२१० थी जबकि दिसम्बर १९६० में यह संख्या ५०७ २१० थी। रोजगार दफ्तर में पंजीकृत कराने वाली महिलाओं की संख्या अप्रैल १९६० से फरवरी १९६१ तक प्रति मास औसतन १२,१२१ थी तथा यह संख्या अप्रैल १९६१ से फरवरी १९६२ की अवधि में १२,११४ हो गई थी। फरवरी १९६२ के अन्त में रोजगार दफ्तरों के चालू रजिस्टर में महिला प्रार्थियों की संख्या १,४१,०९१ थी। (देखिए पृष्ठ ८४४)

(ङ) कर्मचारी राज्य बीमा योजना को पहली अप्रैल से ३१ दिसम्बर १९६१ की अवधि में २२,८४५ अतिरिक्त श्रमिकों तक विस्तृत कर दिया गया। इस प्रकार इसके अन्तर्गत १३२ केन्द्रों में १६.६९८ लाख श्रमिक आ गए। चिकित्सा सुविधाएं भी ५६,७०० अतिरिक्त परिवारों तक विस्तृत कर दी गई और इस प्रकार ६ २२ लाख परिवारों को जिनमें २० ८१ लाख सदस्य हैं चिकित्सा सुविधाएं प्रदान की जाने लगी हैं। अस्पताल बनाने के लिए दिसम्बर १९६१ तक ६·२१ करोड़ रुपयों की स्वीकृति दी जा चुकी है। इस प्रकार श्रमिकों के लिए ३ २४६ रोगी शैय्याओं की व्यवस्था हो जाएगी। (देखिए पृष्ठ ३६६–७०)

(च) कर्मचारी प्रोविडेन्ट फंड योजना के अन्तर्गत अक्तूबर १९६१ तक १६ २८१ संस्थाओं में अंशदान देने वालों की संख्या ३०·७२ लाख थी। अगस्त १९६२ में ४ उद्योगों में अर्थात् सिगरट उद्योग बिजली मैकेनिकल तथा सामान्य इन्जीनियरिंग उद्योग लोहा तथा स्पात उद्योग तथा कागज उद्योग में प्रोविडेन्ट फन्ड में अंशदान की दर ६¼% से ८% तक बढ़ा देने के लिए राज्य सभा में एक विधेयक प्रस्तुत किया गया है। यह उन संस्थाओं में लागू नहीं होगा जहां ५० से कम श्रमिक कार्य करते हैं।

(छ) २५ मार्च १९६२ से कर्मचारी राज्य बीमा योजना आन्ध्र प्रदेश में ३ केन्द्रों में (गुन्टूर, इलालवरम तथा राजामुन्दरी) और पंजाब में चाकोकी गांव में लागू कर दी गई। (देखिए पृष्ठ ३६६)

(ज) भाग्य श्रम प्रवासी श्रमिक अधिनियम में संशोधन करने पर विचार

किया जा रहा है ताकि इस अधिनियम के अपवचन को रोका जा सके और मालिकों को अवैध रूप से श्रमिक भर्ती करने पर दण्ड दिया जा सके। (देखिए पृष्ठ ११ तथा ६४७–४८)

(ञ) १९५९ में चालू कारखानों की संख्या ४६ ३९६ थी और इनमें रोजगार पर लगे श्रमिकों की औसत दैनिक संख्या का अनुमान ३ ६३५ हजार था। १९६० में चालू कारखानों की संख्या ४७ ९८७ थी तथा उनमें रोजगार पर लगे श्रमिकों की औसत दैनिक संख्या का अनुमान ३ ७६४ हजार था। (देखिए पृष्ठ ६)

(ट) सन् १९६१–६२ में उत्तर प्रदेश में ६७ श्रम कल्याण केन्द्र थे। जिनमें २१ 'क' श्रेणी के १२ 'ख' श्रेणी के १ 'ग' श्रेणी के तथा २ मौसमी केन्द्र थे। १९६१–६२ के वर्ष के लिए उत्तर प्रदेश बजट में श्रम कल्याण कार्यों के हेतु १८ १७ ४९७ रुपयों की व्यवस्था है। (देखिए पृष्ठ २८६–८७)

परिशिष्ट घ

शब्दावली (Glossary)

(English to Hindi)

A

Able-bodied	समर्थ
Absenteeism	अनुपस्थिति
Absolute	निर्पेक्ष
Accession rate	नियुक्ति दर
Accident Prevention	दुर्घटना निवारक
Accrue	प्रोद्भवन
Achievement	उपलब्धियाँ
Acquisition	अभिग्रहण अर्जन
Acquit	निर्मुक्ति
Act	अधिनियम
Ad hoc	तदर्थ
Adjudicator	न्याय निर्णयक विवाचक
Adjustment	समंजन
Administration	प्रशासन
Adolescent	किशोर
Adult	वयस्क
Adulteration	मिलावट
Advisory	सलाहकार
Affiliation	सम्बद्ध
Agent	अभिकर्ता एजेंट
Agreement	करार
Allocation	विनिधान
Allotment	नियतन
Amalgamation	समामेलन
Amendment	संशोधन
Analysis	विश्लेषण
Annul	रद्द करना
Anti-labour	श्रमिक विरोधी
Appellate	अपीलीय
Appendix	परिशिष्ट
Appointment	नियुक्ति
Apprentice	शिक्षार्थी
Apprenticeship	शिक्षुता
Approach	विचारधारा
Aptitude	रुझान
Arbitration	विवाचन
Arrears	बकाया, शेष
Artisan	शिल्पी, दस्तकार
Asset	परिसम्पत्ति
Assignment	अभिन्यास
Association	परिषद्, संस्था
Assumption	पूर्वधारणा
Attachment	कुर्की
Attendance Wage	हाजिरी की मजदूरी
Audit	लेखा परीक्षा
Authorised	प्राधिकृत
Authority	प्राधिकारी
Automatic	स्वत
Auxiliary	सहायक
Avocation	उपव्यवसाय
Award	पंचाट, विवाचन निर्णय

B

Back-log	पिछली
Bargaining	सौदा सौदाकारी
Base	मूल
Benefit	हित
Bill	विधेयक
Bonus	बोनस
Boss	अफसर, हाकिम
Bourgeois	बुर्जुआ
Boycott	बहिष्कार
Breach of Contract	संविदा भंग
Breach of Trust	न्यास भंग
Bureau	ब्यूरो
Bureaucracy	नौकरशाही
Business Union	कारबारी संघ

Bye-law उपविधि
By-product गौण उत्पादन

C

Casual labour नैमित्तिक श्रमिक
Casual leave आकस्मिक छुट्टी
Censure निन्दा करना
Children's allowance संतान भत्ता
Circulate परिचालन
Circular निर्देश-पत्र
Class consciousness वर्ग चेतना
Classical Economists संस्थापक अर्थशास्त्री
Class Struggle वर्ग संघर्ष
Code संहिता
Cognizable ग्राह्य
Collective Bargaining सामूहिक सौदाकारी
Commerce वाणिज्य
Compensable injury पूर्तियोग्य क्षति
Compensation क्षति पूर्ति, क्षति पूर्ति
Complementary पूरक
Comprehensive व्यापक
Concentration संकेन्द्रण
Concept संकल्पना
Conciliation सुलह
Conduct आचरण
Consumer Price Index उपभोक्ता मूल्य सूचकांक
Consumption उपभोग
Contingency आकस्मिकता
Contract संविदा
Contract labour ठेके के श्रमिक
Contribution अंशदान
Convention अभिसमय
Co-ordination समन्वय
Copartnership सह-भागेदारी
Corporation निगम
Cost of living निर्वाह व्यय
Council परिषद्
Craft guild दस्तकार श्रेणी
Craftsman शिल्पी
Credit worthiness उधार पात्रता
Cumulative संचयी
Current wage प्रचलित मजदूरी
Cyclical चक्रीय

D

Day wages दिहाड़ी
Decasualisation स्थायीकरण
Decentralisation विकेन्द्रीकरण
Defaulter बाकीदार
Deferred आस्थगित
Demand Effective समर्थ मांग
Depression मन्दी
Depreciation मूल्य ह्रास
Desirability वांछनीयता
Direct labour प्रत्यक्ष श्रम
Director निदेशक
Disability असमर्थता
Discharge असहरणी
Discipline अनुशासन
Disequilibrium असंतुलन
Discretionary सविवेक
Dismissal बरखास्तगी
Displacement विस्थापन
Dispute विवाद
Dividend लाभांश
Division प्रभाग मण्डल विभाजन
Dock गोदी
Domicile अधिवासी

E

Earning आ
Efficiency कार्यकुशल
Eject बेदखल क
Eligibility पात्रता
Emigration प्रवास उत्प्रवास
Employability रोजगार क्षमता
Employee श्रमिक कर्मचारी
Employer मालिक
Employment रोजगार काम नौकरी
Employment Counselling रोजगार सम्बन्धी मार्ग दर

पर्यावरण [illegible]

Establishment प्रतिष्ठान सिबन्दी
Evaluation मूल्यांकन
Evasion अपवंचन
Exception अपवाद
Execute निष्पादन करना
Executive कार्यपाल
Ex-officio पदेन
Ex-parte एक पक्षीय
Ex-serviceman भूतपूर्व सैनिक
Extend व्यापकता सीमा
Extensive विस्तार
External बाह्य
Extra-mural बहिर्मुखी

F

Fact तथ्य
Fatigue श्रम थकान श्रान्ति क्लान्ति
Fatal घातक
Factionalism गुटबन्दी
Factors उपादान
Factory कारखाना फैक्ट्री
Fair Wage उचित मजदूरी
Federation संघ
Follow up methods पुनः निरीक्षण
Forced labour बेगार
Frictional घर्षणात्मक
Full Employment पूर्ण रोजगार
Fund निधि
Funded निधिबद्ध

G

Gainful धनकर, लाभदायक
Gentleman's Agreement भद्र करार
Go-slow-tactics कार्य मंदन युक्तियां

Handicapped
Hobby centre
Housing
Human
Hygiene

Idle resources
Illegal
Illegitimate
Immobility
Immigrant
Implementatio
Indebtedness
Indentured
Index-number
Industrial-dise
Industrial pea
Industrial rela
Inequalities
Injunction
In-kind
Instalment
Instigate
Institute
Institutional
Instructor
Insured
Intermediary
Interim

Intermittent सविराम
Interview समालाप
Intensive, Labour श्रम प्रधान
Intimidation अभित्रास धमकाना
Intra-mural अन्तर्मुखी
Invalid निबल
Investigation अनुसंधान
Investment/In put निवेश
Inventories कच्चा या अर्ध-तैयार माल

J

Job काम, नौकरी कार्य
Job-instruction कार्यानुदेशन
Job-method कार्य प्रणाली
Job-Relations-Training
श्रमिक सम्बन्ध प्रशिक्षण
Job-specification कार्य-विशिष्टि
Judiciary न्यायांग
Junior अवर
Jurisdication क्षमताधारी

K

Kidnap अपहरण

L

Labour श्रम, श्रमिक, मजदूर
Labourer श्रमिक, कामगार
Labour Co-operatives
श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियाँ
Labour-Court श्रम-न्यायालय
Labour Machinery श्रम-व्यवस्था
Labour Management Co-operation श्रमिक प्रबन्धक सहयोग
Labour-Market श्रम-बाजार
Labour-Turnover श्रमिकावर्त
Laissez-fair अबन्ध नीति
Lay-off बेकारी-छुट्टी
Lay out विन्यास
Legitimate वैध
Legislation विधान
Levy उगाही
Liability दायित्व
Liquidation (of company)
समापन
Liquidation (of debt) अपाकरण
Liquidity Preference
नकदी तरजीह
Living-wage पर्याप्त-वेतन, निर्वाहिका
Local bodies स्थानीय निकाय
Lock-out तालाबन्दी
Localisation स्थानीयकरण
Lost-time कार्य-समय-नाश

M

Management प्रबंध प्रबंधक
Man-day श्रम-दिन
Manufacture विनिर्माण
Marine समुद्री
Maritime सामुद्रिक
Maternity benefit
मातृत्व हित-लाभ
Mature परिपक्व
Means-test जीविका साधन जाँच
Memorandum ज्ञापिका
Method deductive निगमन रीति
Method, inductive आगमन रीति
Migratory character प्रवासिता
Migratory worker प्रवासी श्रमिक
Minimum wage न्यूनतम मजदूरी
Mobility गतिशीलता
Mobilisation सामाबंदी जुटाना
Modernisation आधुनिकीकरण
Modification विकरण रूप भेद
Money-wage नकद मजदूरी
Moral नैतिक
Morale हौसला
Motion-study गति-अध्ययन
Multiplier गुणक
Multi-shift system बहुपारी पद्धति

N

Negative नकारात्मक
Negotiation परक्रामण
Net निवल
Night shift रात्रि पारी
Nominal Wage नकद मजदूरी
Nomination मनोनीत, नामन

Employment Exchange
रोजगार दफ्तर
Employment-oriented
रोजगार प्रधान
पृष्ठांकन
Endorsement — जांच पूछताछ
Enquiry — उद्यमकर्ता
Entrepreneur
Environment
पर्यावरण माहौल वातावरण
Establishment — प्रतिष्ठान सिवयम्बी
Evaluation — मूल्यांकन
Evasion — अपवंचन
Exception — अपवाद
Execute — निष्पादन करना
Executive — कार्यपं
Ex-officio — पदेन
Ex-party — एक पक्षीय
Ex-serviceman — भूतपूर्व सैनिक
Extend — व्यापकता सीमा
Extensive — विस्तार
External — बाह्य
Extra-mural — बहिर्मुखी

F

तथ्य
Fact — थकान
Fatigue श्रम थकान — थांति क्लान्ति
Fatal — घातक
Factionalism — गुटबन्दी
Factors — उपादान
Factory — कारखाना फैक्ट्री
Fair Wage — उचित मजदूरी
Federation — संघ
Follow up methods — पुनः निरीक्षण
Forced labour — बेगार
Frictional — घर्षणात्मक
Full Employment — पूर्ण रोजगार
Fund — निधि
Funded — निधिबद्ध

G

Gainful — पर्थकर, लाभदायक
Gentleman s Agreement — भद्र करार
Go-slow-tactics — कार्यम मंदन युक्तियां

Graduated wage
आरोही मजदूरी अनुदान
अनुदान
Grant
Gratuity
अनुतोषिक, अवकाश प्राप्त धन
Grievance Procedure
शिकायत-निवारण-क्रियाविधि
गारंटी
Guarantee

H

विकलांग
Handicapped — शौक के
Hobby centre — आवास
Housing — मानव
Human — स्वास्थ्य विज्ञान
Hygiene

I

निष्क्रिय साधन
Idle resources — अवैध
Illegal — अवैध
Illegitimate — गतिहीनता
Immobility — आप्रवासी
Immigrant
Implementation
कार्यान्वित लागू होना
ऋणग्रस्तता
Indebtedness — करारबद्ध
Indentured — सूचकांक
Index-number
Industrial-disease
उद्योग जनित बीमारी
उद्योग शांति
Industrial peace
Industrial relations
मालिक मजदूर सम्बन्ध
असमानतायें
Inequalities — निषेधाज्ञा
Injunction — जिन्स में
In-kind — किस्त पंजिका
Instalment — उकसाना
Instigate — संस्थान
Institute — संस्थानिक
Institutional — अनुदेशक
Instructor — बीमाकृत
Insured — मध्यस्थ मध्यग
Intermediary — अन्तरिम
Interim

Intermittent अविराम
Interview समालाप
Intensive Labour श्रम प्रधान
Intimidation अभित्रास धमकाना
Intra-mural अन्तर्मुखी
Invalid निर्बल
Investigation अनुसंधान
Investment/In put निवेश
Inventories कच्चा या अर्ध-तैयार माल

J

Job काम, नौकरी, कार्य
Job-instruction कार्यानुदेशन
Job-method कार्य प्रणाली
Job-Relations-Training श्रमिक सम्बन्ध प्रशिक्षण
Job-specification कार्य-विशिष्टि
Judiciary न्यायांग
Junior अवर
Jurisdiction अधिकारिता

K

Kidnap अपहरण

L

Labour श्रम, श्रमिक, मजदूर
Labourer श्रमिक, कामगार
Labour Co-operatives श्रमिक सहकारी उत्पादन समितियाँ
Labour-Court श्रम-न्यायालय
Labour Machinery श्रम-व्यवस्था
Labour Management Co-operation श्रमिक प्रबन्धक सहयोग
Labour-Market श्रम-बाजार
Labour-Turnover श्रमिकावर्त
Laissez-fair अबन्ध नीति
Lay-off बेकारी-छुट्टी
Lay out विन्यास
Legitimate वैध
Legislation विधान
Levy उगाही
Liability दायित्व
Liquidation (of company) समापन
Liquidation (of debt) अपाकरण
Liquidity Preference नकदी तरजीह
Living-wage पर्याप्त-वेतन, निर्वाहिका
Local bodies स्थानीय निकाय
Lock-out तालाबन्दी
Localisation स्थानीयकरण
Lost time कार्य-समय-नाश

M

Management प्रबन्ध प्रबन्धक
Man-day श्रम दिन
Manufacture विनिर्माण
Marine समुद्री
Maritime सामुद्रिक
Maternity benefit मातृत्व हित-लाभ
Mature परिपक्व
Means-test जीविका साधन जाँच
Memorandum ज्ञापिका
Method deductive निगमन रीति
Method inductive आगमन रीति
Migratory character प्रवासिता
Migratory worker प्रवासी श्रमिक
Minimum wage न्यूनतम मजदूरी
Mobility गतिशीलता
Mobilisation लामबंदी, जुटाना
Modernisation आधुनिकीकरण
Modification विकरण, रूप भेदन
Money-wage नकद मजदूरी
Moral नैतिक
Morale हौसला
Motion-study गति-अध्ययन
Multiplier गुणक
Multi-shift system बहुपाली पद्धति

N

Negative नकारात्मक
Negotiation परक्रामण
Net निवल
Night shift रात्रि पारी
Nominal Wage नाम मजदूरी
Nomination मनोनीत नामन

Repeal	निरसन करना
Representation	अभिवेदन
Requisition	अधिग्रहण
Resettlement	पुनः स्थापन
Resources	साधन
Rest-pause	अल्प विराम
Rest shelter	विश्राम स्थल
Retrenchment	छटनी
Review	समीक्षा पुनर्विलोकन
Revolutionary	क्रांतिकारी
Rioting	बलवा
Risk	जोखिम
Rival	स्पर्धी प्रतिद्वन्दी
Rotation plan	बदलते श्रमिक योजना

S

Sabotage	तोड़फोड़ अन्तर्ध्वंस
Safety campaign	सुरक्षा आन्दोलन
Sanitation	जलमल निकास व्यवस्था
Scarcity	दुर्लभता
Scheme	योजना
Schedule	अनुसूचि
Scuffle	हाथापाई
Seasonal	मौसमी सामयिक
Security	जमानत सुरक्षा
Self-sufficiency	आत्मनिर्भरता
Senior	प्रवर
Separate rate	वियुक्ति दर
Serfdom	कृषि दासता
Settlement	समझौता
Shift	पारी
Shop	अभ्यागम दुकान
Shop steward	अभ्यागम प्रतिनिधि
Single shift system	एक पारी
Sit down strike	हाजिर हड़ताल
Size	आकार
Skilled labour	कुशल कर्मचारी
Social Insurance	सामाजिक बीमा
Social service agencies	सामाजिक सेवा संस्थायें
Source	उद्गम स्थान
Spread over	काम समय विस्तार
Stage	चरण
Standing Order	स्थाई आदेश
Standard time	मानक समय
Standardisation	समानीकरण
Stipend	वजीफा
Strike	हड़ताल
Subsidy	उपदान
Subsidiary	उपसंघी
Substitution	स्थानापन्न
Subsistance level	निर्वाह स्तर
Subsidised Industrial Housing Scheme	उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास-योजना
Supervisor	पर्यवेक्षण
Supply	सम्भरण
Surface workers	खान के ऊपर के श्रमिक
Surplus	बेशी अधिशेष
Surveyers	सर्वेक्षक
Survivor	उत्तर जीवी
Suspension	निलम्बन
Sweating	अति-श्रम
Sweated trades	शोषित धंधे

T

Taxation	करारोपण
Technical	तकनीकी
Test	परीक्षण
Time study	समय अध्ययन
Time-lag	समय का व्यवधान
Time wage	समानी
Threatened strike	आशंकित हड़ताल
Thrift	मितव्ययिता
Token strike	सांकेतिक हड़ताल
Trade council	व्यवसाय परिषद्
Trainee	प्रशिक्षार्थी
Training	प्रशिक्षण सिखलाई
Training within industry	अन्तर्कार्य-प्रशिक्षण
Transaction	सौदा व्यवहार लेन-देन
Tribunal	अधिकरण

O

Occupation — व्यवसाय
Off-shift — इतर पारी
Ordinance — अध्यादेश
Outlay — व्यय
Out put — निपज
Over-crowding — अति-भीड़
Over-lapping shifts — परस्पर व्यापी पारियाँ
Over-time — समयोपरि, सवाई
Over work — अति-श्रम

P

Panel — नामिका
Partial — आंशिक
Part time — अंश कालिक
Participation in Management — प्रबन्ध में भाग
Perennial — निरन्तर चालू
Performance — कार्य
Permissive — अनुज्ञात्मक
Perquisites — अतिरिक्त सुविधायें, अनायगमात
Personal — निजी, व्यक्तिगत
Personnel — कार्मिक
Picketing — धरना
Piece wage — उजरत
Plan — आयोजना
Planning — आयोजन
Planning Commission — आयोजना आयोग
Pledging — अनुबंध
Pool system — पूल प्रणाली
Positive — सकारात्मक
Potential — सम्भाव्य
Preference — अधिमान्यता, तरजीह
Prerogative — विशेषाधिकार
Priority — अग्रता प्राथमिकता
Private sector — निजी क्षेत्र गैर सरकारी क्षेत्र
Privilege — विशेषाधिकार
Probationary — परिवीक्षाधीन
Process — प्रक्रिया
Productivity — उत्पादकता
Profit-sharing — लाभ सहभाजन
Progressive — प्रगतिशील
Project — प्रायोजना
Proletariat — मजदूर वर्ग
Promulgation — प्रख्यापन
Proneness — प्रवृत्ति
Propagation — संचारण, प्रचार
Propensity to consume — उपभोग प्रवृत्ति
Prosecution — अभियोजन
Prospects — सम्भावनायें
Provident Fund — प्रोवीडेन्ट फन्ड निर्वाह निधि
Provision — उपबन्ध
Psychology — मनोविज्ञान
Publicity — प्रचा
Public sector — सरकारी क्षे

Q

Qualification — अर्हता
Quality — गुण
Quantity — मात्र
Questionnaire — प्रश्नमाला
Quit rate — त्याग द

R

Ratification — सत्यांकन अनुसमर्थन अपना
Rationalisation — विवेक संगति विवेकीकरण
Recess — विश्रांति अवकाश
Recruitment — भर्ती
Refer — निर्देशन करना
Registration — पंजीकरण रजिस्ट्री करना
Regularisation — नियमानुकूलन
Regulation — विनियम, विनियमन
Rehabilitation — पुनर्वास
Relative — सापेक्ष
Remedy — उपचार
Remuneration — मेहनताना, पारिश्रमिक

Repeal	निरसन करना
Representation	अभिवेदन
Requisition	अधिग्रहण
Resettlement	पुनः स्थापन
Resources	साधन
Rest-pause	अल्प विराम
Rest shelter	विश्राम स्थल
Retrenchment	छटनी
Review	समीक्षा पुनर्विलोकन
Revolutionary	क्रांतिकारी
Rioting	बलवा
Risk	जोखिम
Rival	स्पर्धी प्रतिद्वन्दी
Rotation plan	बदलते श्रमिक योजना

S

Sabotage	तोड़फोड़, अन्तर्ध्वंस
Safety campaign	सुरक्षा आन्दोलन
Sanitation	जलमल निकास व्यवस्था
Scarcity	दुर्लभता
Scheme	योजना
Schedule	अनुसूचि
Scuffle	हाथापाई
Seasonal	मौसमी, सामयिक
Security	जमानत सुरक्षा
Self-sufficiency	आत्मनिर्भरता
Senior	प्रवर
Separate rate	वियुक्ति दर
Serfdom	कृषि दासता
Settlement	समझौता
Shift	पारी
Shop	श्रमालय दुकान
Shop steward	श्रमालय प्रतिनिधि
Single shift system	एक पारी
Sit down strike	हाजिर हड़ताल
Size	आकार
Skilled labour	कुशल कर्मचारी
Social Insurance	सामाजिक बीमा
Social service agencies	सामाजिक सेवा संस्थाएँ
Source	उद्गम स्थान
Spread over	श्रम समय विस्तार
Stage	चरण
Standing Order	स्थाई आदेश
Standard time	मानक समय
Standardisation	समानीकरण
Stipend	वजीफा
Strike	हड़ताल
Subsidy	उपदान
Subsidiary	उपसंगी
Substitution	स्थानापन्न
Subsistance level	निर्वाह स्तर
Subsidised Industrial Housing Scheme	उपदान प्राप्त औद्योगिक आवास-योजना
Supervisor	पर्यवेक्षण
Supply	सम्भरण
Surface workers	खान के ऊपर के श्रमिक
Surplus	बची अधिशेष
Surveyers	सर्वेक्षक
Survivor	उत्तर जीवी
Suspension	निलम्बन
Sweating	अति-श्रम
Sweated trades	शोषित धंधे

T

Taxation	कराधान
Technical	तकनीकी
Test	परीक्षण
Time study	समय अध्ययन
Time-lag	समय का व्यवधान
Time wage	समयानी
Threatened strike	आशंकित हड़ताल
Thrift	मितव्ययिता
Token strike	सांकेतिक हड़ताल
Trade council	व्यवसाय परिषद्
Trainee	प्रशिक्षार्थी
Training	प्रशिक्षण सिखलाई
Training within-industry	अन्तर-कार्य-प्रशिक्षण
Transaction	गौण अन्तरतर लेन-देन
Tribunal	अधिकरण

Tripartite — त्रिदलीय
Truce — विराम संधि
Trustee — न्यासी

U

Under-employment — अपूर्ण रोजगार
Under ground worker — खान के भीतर के श्रमिक
Unemployment — बेकारी, बेरोजगारी
Unemployable — रोजगार के अयोग्य
Unfair — अनुचित
Unionism — संघ पद्धति, संघवाद
Unlawful — विधि विरुद्ध
Unorganised — असंगठित
Unregulated — अनियमित
Unrest — अशांति
Upgrading — पदोन्नति

V

Vacancy — रिक्त स्थान
Ventilation — संवातन
Victimisation — सताना, अत्याचार, तंग करना
Vocational — व्यावसायिक
Voluntary — ऐच्छिक

W

Wages — मजदूरी
Wage cut — मजदूरी कटौती
Wage differentials — मजदूरी अन्तर
Wages Fund Theory — मजदूरी निधि सिद्धांत
Wage Incentive System — प्रेरणात्मक मजदूरी प्रणाली
Wage, real — वास्तविक मजदूरी
Waiting period — प्रतीक्षाकाल
Weighted — महत्त्वांकित
White collar job — सफेद पोश नौकरी
Whole time — पूर्ण कालिक
Working class — श्रमिक वर्ग
Works Committee — मालिक-मजदूर समिति

Y

Yellow unions — पोषित संघ